Bharti

Hindi

[illegible]

LIB. G.K.V.

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
पुस्तकालय

विषय संख्या
पुस्तक संख्या
आगत पंजिका संख्या

पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान लगाना वर्जित है। कृपया १५ दिन से अधिक समय तक पुस्तक अपने पास न रखें।

पुस्तकालय
कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

76031

76031
COMPILED

25 AUG 1983

[illegible]

[illegible] १२ [illegible]-१२ [illegible]

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

76031

COMPILED

भारती

जनवरी १९५६

ाहित्य, संस्कृति व कला की मासिक पत्रिक

विद्यामन्दिर प्रकाशन की नवीन भेंट !

—बीसवीं शताब्दी का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ—

मध्यदेशीय भाषा

(ग्वालियरी)

लेखक—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी

विद्वान लेखक ने इस पुस्तक में वर्तमान हिन्दी साहित्य के इतिहास की अनेक भ्रांत धारणाओं की जड़ हिला कर, नवीन दिशा दी है। मध्यदेश की भाषा, सीमा तथा हिन्दी की नाम-परम्परा का प्रथम बार प्रामाणिक विवेचन इस पुस्तक में किया गया है।

श्री राहुल सांकृत्यायन इसके सम्बन्ध में कहते हैं—

"हिन्दी पाठकों को इतनी सामयिक और ज्ञानवर्धक पुस्तक देने के लिए द्विवेदी जी का कृतज्ञ होना चाहिए।"

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं—

"इसकी स्थापना चौंका देने वाली है। मैं स्वयं इतनी करारी बौद्धिक उथल-पुथल के लिए तैयार न था। लेकिन लेखक ने जो कहा है उसे इतने प्रमाणों से टिकाया है कि मन सोचने के लिए विवश होता है।"

डा० सत्येन्द्र का मत है—

"आपने अच्छी और नई सामग्री देने की चेष्टा की है।"

श्री कुंजीलाल दुबे, उपकुलपति, नागपुर विश्वविद्यालय लिखते हैं—

"भाषा विज्ञान के क्षेत्र में यह पुस्तक अपना अक्षुण्ण स्थान बनाए रहेगी।"

आज ही अपनी प्रति मंगाइए। इसके बिना आपका पुस्तक-संग्रह अपूर्ण है। विद्वानों ने इसे इस शताब्दी का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ माना है।

सुन्दर सजिल्द, तिरंगा आवरण। पृष्ठ संख्या २५०; मूल्य ५) रु०, डाक व्यय अलग।

विद्यामंदिर प्रकाशन, ग्वालियर

गुलाबसिंह एण्ड सन्स के समस्त रेल्वे-स्टालों पर प्राप्त
मध्यप्रदेश, बम्बई, पंजाब, हिमाचलप्रदेश, भोपाल, अजमेर, हैदराबाद,
काश्मीर, विंध्यप्रदेश, मध्यभारत, तथा अनेक राज्यों की शिक्षा-
संस्थाओं, पंचायतों एवं पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

भारती

6031

वर्ष ३ खंड १] जनवरी, १९५६ [अंक १ पूर्णांक १९

★

50-56

प्रधान-संपादक
हरिहरनिवास द्विवेदी
संपादक
विजयगोविन्द

*

कला-संपादक
भांड-शिल्प-मंदिर
ग्वालियर

प्रबन्धक
उदय द्विवेदी

वार्षिक मूल्य ८) एक अंक का मूल्य ।।।)

आगामी फरवरी अंक
के
आकर्षण

१२ कविताएँ—
- कब तक ?
- कुछ क्लर्कों का कोरस
- आस्था
- नाविक से
- निर्माण यहाँ नाश बन गया
- मुक्तगान आदि

७ कहानियाँ—
- गो माता की जय
- ज़ूरर
- मेरा दोस्त
- कायर
- मदभरे नयन आदि

७ लेख—
- हिन्दी का वर्तमान और भविष्य
- प्रान्तीय भाषाएँ और हिन्दी
- जशपुर के आदिवासो संथाल
- प्राचीन भारत में विज्ञान आदि

एकांकी, गद्यगीत, प्रकाशन-परिचय तथा सम्पादकीय

—कुछ लेखक—

- श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला
- श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी
- श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'
- श्री विनोद रस्तोगी
- श्री श्रीकान्त जोशी
- श्री अनन्तकुमार पाषाण
- श्री वृन्दावनलाल वर्मा
- श्रीमती सरोज लूथरा
- श्री ओमप्रकाश आदि

113535
113535

अनुक्रमणिका

पृष्ठ

कविता—

गीत— श्री माखनलाल चतुर्वेदी ... १
सोमगान— श्री विजय गोविन्द ... १०
कुछ दिनों से खोजता फिरता तुम्हें है मन—श्रीमती विद्यावती मिश्र १७
हृदय की बात— श्री राजनरायण बिसारिया ... २९
गीत— श्री कान्ता ३६
आकुल अंतर— श्री श्रीराम ... ४१
गीत— श्री गोवर्द्धनप्रसाद 'सदय' ४७
शिशिर गीत— श्री देवप्रकाश गुप्त ५४
प्राणों के दीप जलाता हूँ— श्री भीष्मसिंह चौहान ... ६२
गीत— श्री वेदप्रकाश वटुक ... ६५
तुम्हें क्या बताऊँ— श्री रामराजसिंह ६९
धूल— श्री रामकुमार चतुर्वेदी ७५

लेख—

पाणिनिकालीन प्रमाण और उन्मान—डॉ० वासुदेवशरण २
'गीतगोविन्द' का अमर माधुर्य— प्रो० रमाशंकर तिवारी १८
रामकवि रचित दो अज्ञात ग्रन्थ— श्री अगरचंद नाहटा ३७
छत्तीसगढ़ की कला संपत्ति— श्री राजेन्द्र गुप्त ४८
सानमार्को का चौराहा— श्री रामसिंह तोमर ... ६३
विजया— श्री अनवर आगेवान ६७
भारत संघ में हिन्दी— माननीय श्री रविशंकर शुक्ल, मुख्यमंत्री मध्यप्रदेश ८१

कहानी—

सिगरेट के टुकड़े— श्री रजनी पनिकर ११
भगवान बुद्ध की आत्मकथा— श्री परदेशी ३२

अपनी-अपनी बात— श्री कोमलसिंह सोलंकी ४२
पंखा नहीं चलेगा— श्री रमेशचन्द्र बक्षी ५५
हिली-मिली दो बालें आईं— श्री महेन्द्र फुसकेले ६६
बड़ी-बड़ी आँखें— श्री गोविन्दसिंह ७०
प्रकाशन-परिचय— ८६
संपादकीय—
मध्यदेश या मध्यप्रदेश ?—शब्दावलियाँ और भाषा—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति और सम्मेलन—नियतकालिक और शासन— ९३

मुखपृष्ठ का चित्र—राधागोविन्द—चित्रकार श्री भाऊ

ग्रामीण पाठकों की सेवा में

भारती का जानकारी विभाग

भारती के ग्रामीण पाठकों को उचित तथा बिना मूल्य सेवा देने की दृष्टि से हमने 'कृषि मशीन परामर्श दाता विभाग' स्थापित किया है। यह विभाग ग्राम-पंचायतों तथा ग्रामीण पाठकों को उसके कृषि सम्बन्धी औजारों, मशीनों तथा खादों के सम्बन्ध में परामर्श देगा। आपको नई मशीन और औजार खरीदना हो, आपकी मशीन में कोई अड़चन हो, शासन द्वारा खाद वितरण अथवा मशीनरी खरीदने में दी जाने वाली सहायता के सम्बन्ध में जानकारी लेना हो तो नीचे लिखे पर एक पत्र डाल दीजिए। आप तक सारी जानकारी बिना मूल्य पहुँच जावेगी।

व्यवस्थापक,
भारती कार्यालय (जानकारी विभाग)
सराफा, ग्वालियर

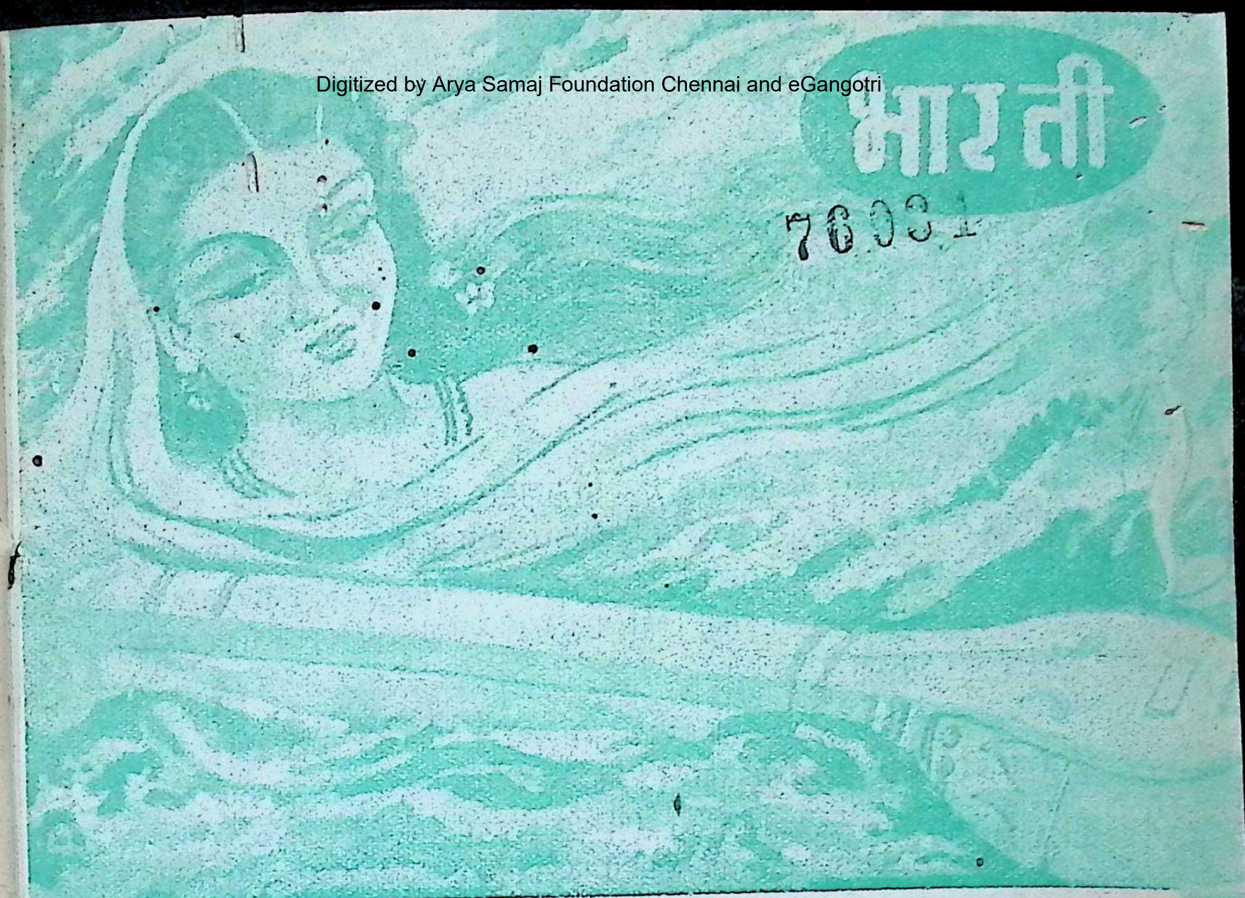

76091

गीत

— श्री माखनलाल चतुर्वेदी —

मेरे युग-स्वर ! प्रभु वर दे, तू धीरे-धीरे गाये।

चुप कि मलय मारुत के जी में शोर नही भर जाये,
चुप कि चाँदनी के डोरों को शोर नहीं उलझाये,

मेरे युग-स्वर ! प्रभु वर दे, तू धीरे-धीरे गाये।

चुप कि तारकों की समाधि में दूख उठेगा जय-रव
चुप कि चाँद में बिदा चरणों की दर्शनभूख न सम्भव।

उठो मधुर ! दरवाजे खोलो, वातायन खुल जाये,
सदियों की उजड़ी साँसों में आज प्राण-प्रभु आये,
मेरे युग-स्वर ! प्रभु वर दे, तू धीरे धीरे गाये।

कर्मवीर, खंडवा

पाणिनिकालीन प्रमाण और उन्मान

— डॉ० वासुदेवशरण

अष्टाध्यायी में परिमाण तोल या घनाकार वस्तुओं के लिए और प्रमाण लम्बाई के लिए आया है। पतंजलि के अनुसार तोल के लिए उन्मान, आयाम या लम्बाई के लिए प्रमाण और लम्बाई-मोटाई-चौड़ाई वाली घनाकृति (सर्वतोमान) वस्तुओं के लिए परिमाण शब्द का प्रयोग किया गया है।[†] अर्थशास्त्र में प्रयुक्त 'पौतव' शब्द का उल्लेख पाणिनि में नहीं है।

वस्तुतः सूत्रों में परिमाण शब्द का दो अर्थों से प्रयोग है। सूत्र* ५।१।१९ में संख्या को परिमाण से अलग माना है, किन्तु सूत्र ३।३।२० और ४।३।१५६ में संख्या का भी परिमाण से ग्रहण किया है। (परिमाणाख्यायां सर्वेभ्यः, ३।३।२०; आख्याग्रहणं रूढिनिरासार्थं तेन संख्याऽपि गृह्यते न प्रस्थाद्येव-काशिका)। पतंजलि के अनुसार काल-परिमाण अर्थात समय की नाप बताने वाले शब्द सूत्रगत परिमाण शब्द के अन्तर्गत नहीं आते (ज्ञापकं तु काल परिमाणाग्रहणस्य, ७।३।१५, वार्तिक)। लम्बाई की माप के लिए सर्वत्र प्रमाण शब्द ही प्रयुक्त हुआ है।

तुला—तराजू और उसमें तोली हुई वस्तुएं तुल्य कहलाती थीं (तुलया संमितम्, ४।४।५१)। तराजू की डंडी के ऊपर बँधी हुई रस्सी बनियों की बोलचाल में प्रग्रह कही जाती थी (प्रे वणिजाम् ३।३।५२)। अथर्ववेद में द्रुवय शब्द दंदुभि या नगाड़े के लकड़ी के बने हुए बाहरी खोल के लिए आया है। (द्रुवयो विबद्धः अथर्व ५।२०।२) लगभग इसी प्रकार के गहरे लकड़ी के पात्र नाप-जोख के लिए काम में आने लगे थे। पाणिनि के समय तक द्रुवय शब्द ऐसे ही नपैनों के लिए[†] रूढ हो गया (माने वयः ४।३।१६२)। ऐसे ही नपैने के बर्तनों में दो विशेष प्रकार से प्रसिद्ध थे। एक जिसका पाणिनि ने विशेष उल्लेख किया है, पाय्य था—

---

* उर्ध्वमानं किलोन्मानं परिमाणं तु सर्वतः।
आयामस्तु प्रमाणं स्यात् संख्या बाह्या तु सर्वतः॥ भाष्य ५।१।१९

[†] गढ़वाल में नापने के बर्तन को पाया कहते हैं। प्राचीन काल में सरकारी लगान इन्हीं के द्वारा लिया जाता था। कई स्थानों में इन्हें नाली भी कहा जाता है।

पाय्य-सानाय्य-निकाय्य-धाय्या मानहविर्निवाससमिधेनीषु । ३।१।१३९
कंस-मंथ-शूर्प-पाय्य-काण्डं द्विगौ । ६।२।१२२

'पाय्य' अभी तक पंजाब राजस्थान में पाइ* और उत्तरप्रदेश में प्या कहलाता है । बुन्देलखण्ड में प्या भगोने की तरह का एक बर्तन होता है । भगोने में कनौठे होते हैं प्या में नहीं होते हैं । मणनी के बाद खलिहान में एकत्र अन्न की रास को गाँवों में अब भी प्या से ही नापने का नियम है । सब नहीं, तो मांगलिक रूप में पाँच प्या भर कर नाप दिये जाते हैं । एक प्या अन्न देकर सवा प्या लेने के नियम को वहाँ सवाई कहते हैं । † प्या की नाप साधारणतः पाँच से सात सेर तक होती है ।‡ जातकों में खेत की रास को नापने वाले अधिकारियों को द्रोण-मापक कहा गया है । हिन्दी भगौना संस्कृत भाग-द्रोणक का ही रूप है । भागद्रोणक का अर्थ खेत की रास में से अलग निकाले हुए राजग्राह्य अंश या भाग को (इसे राजरास कहा जाता था) नापने का बर्तन हुआ । सुभिक्ष की अवस्था में प्रायः यह उपज का छटा भाग होता था । सम्भव है कि पाय्य और द्रोण की माप प्राचीन समय में एक ही रही हो, क्योंकि दोनों ही रास नापने के काम में आते थे । पाणिनि ने एक विशेष प्रकार के मान या नाप को षष्टक कहा है । (षष्ठाष्टमाभ्यां मानपश्वङ्गयोः कन्लुकौ च ५।३।५१) जिसका शब्दार्थ छटा भाग, ऐसा था । ज्ञात होता है कि राजग्राह्य छटे भाग को नापने के लिए जो द्रोण संज्ञक माप थी, वही पाणिनि का षष्टक मान था। कुरुधम्म जातक में द्रोणमापक नाम उक्त राजकीय अधिकारी का ही आया है (कुरुधम्म जातक ३।२७६) ।

व्याकरण साहित्य में एक प्राचीन मूर्धाभिषिक्त उदाहरण सुरक्षित रह गया है—नन्दोपक्रमाणि मानानि (२।४।२१; ६।२।१४, काशिका) । इसका अभिप्राय यह है कि मान या नापतोल के भाग सर्व प्रथम नन्द राजाओं ने निश्चित किये । अपने विस्तृत साम्राज्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन्हें ऐसा करना पड़ा । तभी से मगधमान संज्ञा प्रसिद्ध हुई । कलिंग जनपद स्वतन्त्र था, इसलिए कलिंग मान की परम्परा अलग चलती रही । मान स्थिर हो जाने के बाद आढक (ढाई सेर), द्रोण (दस सेर), खारी (चार मन) इत्यादि शब्द बिल्कुल सही नाप तोल के लिए सर्वत्र

---

* एक पंजाबी लोकोक्ति है—पाई पीसी चंगी, कुड़ी खड़ाई मन्दी । किसी का पाइली भर अनाज पीस देना सुगम है, पर उसकी लड़की खिलाना टेढ़ा काम है ।

† देखिए मेरा लेख संग्रह, पृथिवीपुत्र, पृष्ठ १०९ ।

‡ बम्बई में पायली लगभग तीन सेर की नाप है ।

प्रयुक्त होने लगे, जैसा कि पतंजलि ने लिखा है—उक्तपरिमाणानामर्थानां वाचका भवन्ति नैवाधिके भवन्ति न च न्यूने (१।४।१३, भाष्य)।

अष्टाध्यायी में उल्लिखित तोल और नाप वाची शब्द इस प्रकार हैं।

(१) माष—यह एक तोल और एक सिक्के का नाम भी था (पणपादमाषशताद्यत् ५।१।३४)। ताँबे का माप तोल में पाँच रत्ती और चाँदी का दो रत्ती का होता था (मनु ८।१३५, अर्थशास्त्र २।१२)।

(२) निष्पाव—सूत्र ३।३।२८, निरभ्योः दूल्वोः में निष्पाव शब्द सिद्ध किया गया है। अर्थ के विषय में कोई संकेत नहीं मिलता। जैन साहित्य में सोना-चाँदी रत्न आदि तोलने के सूक्ष्म बाँटों की सूची में निष्पाव भी है—प्रतिमानों में गुंजा, काकणी, निष्पाव, कर्ममाषक, मण्डलक, स्वर्ण ये सोना-चाँदी तोलने में काम आते थे (अनुयोगद्वार सूत्र, १३२)। इस सूची में गुंजा (१ रत्ती), काकणी (सवा रत्ती), माशक (पाँच रत्ती) की तोल सोना तोलने के काम में आती थी। जैन साहित्य में निष्पाव (प्रा० निप्फाव) का पर्याय वल्ल दिया है (बृहत्कल्पसूत्र, गाथा ६०४६)। वल्ल या बाल तीन रत्ती की तोल का नाम था (वल्लस्त्रिगुंजः, लीलावती)। अतएव निष्पाव भी वल्ल या तीन रत्ती माना जा सकता है। अनुयोग द्वार की सूची में सवा रत्ती की काकणी और पाँच रत्ती के माषक के बीच में निष्पाव पठित होने से यह संगत भी होता है।

(३) शाण (५।१।३५, ७।३।१७)—चरक में सुवर्ण का चौथाई भाग शाण कहा गया है। इससे शाण की तोल २० रत्ती के बराबर हुई (कल्पस्थान, १२।७६)।* शाणार्ध उसका आधा, दस रत्ती के बराबर औषधि की स्वल्प मात्रा तोलने के काम में आता था। महाभारत में शाण को शतमान का आठवाँ भाग कहा गया है (आरण्यक पर्व १३४।१४) जिससे उसकी पुरानी तोल १२॥ रत्ती ठहरती है।

परिमाणान्तस्या संज्ञा शाणयोः (७.३।१७) में शाण परिमाण का वाचक है और शाणाद्वा ५।१।३५ में सिक्के का।

(४) बिस्त (४।१।२२; ५।१।३१)—अमरकोश में विस्त को कर्ष या अक्ष का पर्याय कहा है, जो स्वर्ण तोलने के काम में आता था। चरक में कर्ष, सुवर्ण और अक्ष पर्याय है। अतएव बिस्त सुवर्ण का ही पर्याय ज्ञात होता है, जो तोल में अस्सी रत्ती होता था।

(५) अञ्जलि (५।४।१०२)—द्व्यंजलि, अंजलि प्रयोगों में अंजलि शब्द एक

---

* २ शाण = १ द्रंक्षण। २ द्रंक्षण = १ कर्ष या सुवर्ण या अक्ष। शाण की तोल के विषय में आगे चल कर और भी कई विकल्प मिलते हैं (दे० भारतीय मुद्रा परिषद की पत्रिका, १५।१५१-१५२)।

परिमाण ही ज्ञात होता है। चरक के अनुसार सोलह कर्ष या तोले की एक अंजलि होती थी, जिसे कुड़व भी कहते थे। दो पल की एक प्रसृति और दो प्रसृति या चार पल की एक अंजलि कही गयी है (गरुड़ पुराण, २०२।७३ अंजलिं कुड़वं चैव विद्यात् पलचतुष्टयम्)। कौटिल्य के अनुसार तालिका यह थी—चार कुड़व=एक प्रस्थ; चार प्रस्थ=एक आढक; ४ आढक=१ द्रोण=२०० पल=८०० कर्ष=१० सेर (अर्थशास्त्र २।१९)। अतएव कुडव या अंजलि ढाई छटाँक या १२॥ तोले के बराबर थी।

(६) कुलिज—सूत्र ५।१।५५ में कुलिज का विशेष रूप से उल्लेख है (कुलिजाल्लुक् खौच)। उससे कई रूप बनते थे, जैसे द्विकुलिजिकी, द्विकुलजीना, द्वैकुलजिकी। ज्ञात होता है कि उस समय की भाषा में इस शब्द का काफ़ी प्रचार था। इस शब्द पर किसी अन्य स्रोत से अभी तक प्रकाश नहीं पड़ सका। केवल अथर्व वेद के कौशिक सूत्र में यह शब्द दो बार आया है (उदकुलिजं सम्पातवन्तं ग्रामं परिहृत्य मध्ये निनपत्येवं सुरा कुलिजम्, कण्डिका १२; कण्डिका ४३)। पाणिनि में प्रस्थ शब्द का उल्लेख नहीं है। कौटिल्य के समय वह बहुत चालू शब्द था। साढ़े बारह पल या पचास तोले या ढाई पाव की तोल प्रस्थ कहलाती थी। अनुमान है कि पाणिनि ने उसी के लिए कुलिज शब्द का प्रयोग किया है।

(७) आढक—(५।१।५३) चरक के अनुसार आढक और पात्र एक दूसरे के पर्याय हैं (कल्पस्थान, १२।९४)। पाणिनि ने दोनों का एक साथ उल्लेख किया है (आढकाचितपात्रात् खोऽन्यतरस्याम् ५।१।५३)। आढक की तोल के दो प्रकार मिलते हैं—एक चरक में, दूसरा अर्थशास्त्र में। चरक का मान इस प्रकार है—

४ कर्ष= १ पल
२ पल= १ प्रसृति=८ तोला
२ प्रसृति= १ अंजलि या कुड़व=१६ तोला
४ कुड़व= १ प्रस्थ=२५६ तोला
४ प्रस्थक= १ आढक
४ आढक= १ द्रोण=१०२४ तोला=१२·८ सेर

इसके विरुद्ध कौटिल्य ने चार प्रकार के द्रोण लिखे हैं। उनमें पहला दो सौ पल या आठ सौ तोले अर्थात् आजकल के दस सेर के बराबर होता था (अथ धान्यमाषद्विपलशतं द्रोणमायमानम्, अर्थशास्त्र, २।१९)। इस हिसाब से तोल की यह तालिका बन जाती है—

१ कुड़व= १२॥ तोला=२॥ छटाँक
४ कुड़व= १ प्रस्थ=५० तोला=ढाई पाव
४ प्रस्थ= १ आढक=५० पल=२०० तोला=ढाई सेर

४ आढक = १ द्रोण = २०० पल = ८०० तोला = दस सेर
१६ द्रोण = १ खारी = १६० सेर = ४ मन
२० द्रोण = १ कुम्भ = ५ मन
१० कुम्भ = १ वह = ५० मन

इस हिसाब से जिन खेतों को पाणिनि ने पात्रिक क्षेत्र (५।१।४६) कहा है उनमें ढाई सेर बीज बोया जाता था।

(८) कंस (५।१।२५, ६।२।१२२)-चरक के अनुसार कंस आठ प्रस्थ या दो आढक के बराबर था। वह अर्थशास्त्र की तालिका के अनुसार पाँच सेर और चरक की तालिका के अनुसार ६·४ सेर के बराबर हुआ।

(९) मन्थ—(६।२।१२२) इसकी ठीक तोल किसी तालिका में नहीं मिलती। किन्तु पाणिनि ने सूत्र में कंस के बाद उसका उल्लेख किया है (कंसमन्थशूर्पपाय्य-काण्डं द्विगौ)। सम्भव है मन्थ द्रोण का पर्यायवाची हो, क्योंकि द्रोण का सूत्रों में उल्लेख नहीं है। चरक में कलश और घट को द्रोण का पर्याय लिखा है। कौटिल्य के अनुसार द्रोण १० सेर की तोल थी। वही सम्भवतः मन्थ की तोल थी।

(१०) शूर्प (५।१।२६, ६।२।१२२)--चरक ने दो द्रोण का शूर्प माना है, जिसे कुम्भ भी कहते थे। उनकी तालिका के अनुसार शूर्प = ४०९६ तोला = १ मन ११ सेर १६ तोला।

(११) खारी—(५।१।३३) पाणिनि ने लिखा है कि डेढ़ खारी से क्रीत वस्तु, अध्यर्धखारी कहलाती थी। प्राच्य वैयाकरणों के अनुसार खारी शब्द का द्विगु समास में खार हो जाता था (खार्याः प्राचाम्, ५।४।१०१)। कात्यायन ने 'खारशताद्यर्थम्' प्रयोग में अकारान्त रूप ही रखा (५।१।५८, वा०)। कौटिल्य के अनुसार सोलह द्रोण की एक खारी मानी जाती थी। उस हिसाब से उसकी तोल चार मन के बराबर हुई। पतञ्जलि ने भी खारी को द्रोण से बड़ी माना है (अधिको द्रोणः खार्याम्, ५।२।७३)। खलिहान में रास की तोल खारी में बताई जाती थी। कात्यायन के खारशतादि पर पतञ्जलि ने सौ खारी अर्थात चार सौ मन और हजार खारी या चार हजार मन तोल की बड़ी रासों का उल्लेख किया है (खारशतिको राशिः खारसहस्रिको राशिः, ५।१।५८, वा० ६)। यह बहुत ही बड़ी राशि हुई। इतनी भारी उपज के लिए लगभग पाँच सौ पक्के बीघे का खेत या चक भूमिधारी की जोत में होना आवश्यक था। खलिहान में मणानी हो जाने के बाद साफ किए हुए अन्न के ढेर को यहाँ सदा से रास (सं० राशि) कहा जाता रहा है। पाली ग्रन्थों में पाँच प्रकार की अन्न समृद्धि कही गयी है—खेतग्ग, रासग्ग, कोट्ठग्ग, कुम्भिग्ग, भोजनग्ग, अर्थात् लहलहाते हुए खेत में, कोठार में, कुम्भी में, और परोसे हुए थाल में अन्न की बहुतायत। सहस्र खारी परिमाण

की रास के लिए रासग्ग (राशि+अग्र) राशि का भारी ढेर, यह विशेषण उपयुक्त था।

(१२) गोणी (१।२।५०)–श्लोकवार्तिक के अनुसार एक गोणी माप की तोल भी गोणी कहलाती थी (गोणीमात्रमिदं गोणिः, १।२।५०)। चरक ने गोणी को खारी का पर्याय मानते हुए उसे बड़ी तोल लिखा है। तदनुसार खारी=८१९२ तोला=२ मन २२ सेर ३२ तोला॰।

(१३) भार—सूत्र ६।२।३८ में भार और महाभार का उल्लेख है। ये दोनों संज्ञा शब्द थे। अर्थशास्त्र के अनुसार सौ पल या ५ सेर की एक तुला और २० तुला या ढाई मन का एक भार होता था (२।१९, विंशतितौलिको भारः)। अमरकोश में भी यही तोल है। एक भार=८००० कर्ष या ढाई मन (अमर २।९।८७)। आज भी तराजू का एक धड़ा ५ सेर और एक पल्लेदार के लादने का बोझ ढाई मन होता है। इसी आधार पर ढाई मनी बोरी आजकल चलती है। महाभार एक अच्छी सुदृढ़ गाड़ी का बोझा होना चाहिए, जो लगभग २५ मन माना जाता है। अतएव अनुमान होता है कि १० भार का बोझ महाभार कहलाता था। आदिपर्व में १० मनुष्यभार बोझे का उल्लेख आया है।†

(१४) आचित (४।१।२२, ५।१।५३)—अमरकोष के अनुसार आचित गाड़ी के बोझे को कहते थे (शाकटो भार आचितः—२।९।८०), जो १० भार या २०००० पल या २५ मन का होता था। इससे ज्ञात होता है कि आचित और महाभार दोनों पर्याय थे।

(१५) कुम्भ (६।२।१०२)—अर्थशास्त्र में कुम्भ २० द्रोण के बराबर माना है, जो १० सेर प्रतिद्रोण के हिसाब से ५ मन हुआ।

(१६) वह--सूत्र ३।३।११९ में संज्ञा शब्द के रूप में वह शब्द सिद्ध किया गया है। परिमाण से उसका विशेष सम्बन्ध नहीं बताया गया, किन्तु अर्थशास्त्र के अनुसार १० कुम्भ का एक वह होता था, जो ५० मन के बराबर था। कालान्तर में वह ही वाह कहा जाने लगा। अंगुत्तर (५।१७३) के अनुसार कोसल जनपद में २० खारी या ८० मन का वाह होता था (वीसति खारीको कोसलको तिलवाहो)। वसुबन्धु ने २० खारी का ही मागधक तिलवाह कहा है (अभिधर्म॰ ३।८४)।

सूत्र में पण शब्द को भी परिमाणवाचक माना है (नित्यं पणः परिमाणे,

---

† कृताकृतस्य मुख्यस्य कनकस्याग्निवर्चसः।
मनुष्यभारान् दाशार्हो ददौ दश जनार्दनः॥ (आदि २१३।४६)

अर्थात् सुभद्रा के दायज में कृष्ण ने दस मनुष्यभार सोना दिया, जिसमें ढले हुए सिक्के (कृत) और पासा सोना (अकृत) दोनों शामिल थे।

३।३।६६) किन्तु यह उस नाम का सिक्का या तोल नहीं, बल्कि साग-सब्जी की एक गड्डी के लिए प्रयुक्त होता था (क्रय्य शाकादिका, मेदिनी) जैसे मूलक पण, शाक पण (संव्यवहाराय मूलकादीनां यः परिमितो मुष्टिर्बध्यते तस्येदमभिधानम्—काशिका)।

आयाम या लम्बाई की नाप—

प्रमाण—अष्टाध्यायी में सर्वत्र प्रमाण का अर्थ आयाम है, केवल ६।२।४ सूत्र में तोल भी है, जैसे गोलवण, अश्वलवण उदाहरणों से ज्ञात होता है। ६।२।१२ सूत्र में काल को भी प्रमाण के अन्तर्गत माना है। (द्विगौ प्रमाणे), जैसा प्राच्य सप्तसमः, गान्धारि सप्तसमः उदाहरणों में स्पष्ट है।

अष्टाध्यायी में निम्नलिखित आयाम प्रमाणों का उल्लेख है—

(१) अङ्गुलि (५।४।८६)—८ यवमध्य के बराबर प्रमाण की संज्ञा अंगुलि थी (अर्थ० २।२०)। यह आजकल के पौन इंच के बराबर हुआ।

(२) दिष्टि, वितस्ति (६।२।३०१, दिष्टिवितस्त्योश्च) भाष्य में इन दोनों को प्रमाण कहा है जैसा कि ५।२।३७ सूत्र पर काशिका के उदाहरण से भी सिद्ध होता है। ये एक दूसरे के पर्याय थे। इस आधार पर प्राचीन वैयाकरणों में कुछ प्रासंगिक चर्चा चली थी कि सूत्रकार ने इन दोनों का पाठ साथ-साथ क्यों किया, जब एक के ग्रहण होने से दूसरे का ग्रहण भी हो जाता (सूत्र ६।२।१ पर श्लोक वार्तिक और भाष्य) अर्थशास्त्र में १२ अंगुल की वितस्ति कही गयी (२।२०)। प्रमाण अर्थ में दिष्टि शब्द का प्रयोग साहित्य में अत्यन्त विरल है। केवल कौशिकसूत्र (५०।८५) में आया है। तथ्य यह है कि वितस्ति शब्द भारतवर्ष में और दिष्टि ईरान और मध्य एशिया की भाषाओं में अधिक चालू हुआ। मध्य एशिया से मिले हुए खरोष्ठी लेखों में दिष्ठ शब्द प्रायः आता है, जो कि ईरानी दिस्तय का पर्याय है। इसका अर्थ एक वितस्ति ही था (एफ० डब्ल्यू० टामस, मध्य-एशिया के खरोष्ठी लेखों पर कुछ टिप्पणियाँ, स्कूल आफ ओरियंटल एंड अफ्रीकन स्टडीज की पत्रिका, ११, १९४५, पृ० ५४७)।

पतंजलि ने शमः दिष्टिः वितस्तिः का क्रमशः उल्लेख किया है (५।२।३७)। अर्थशास्त्र के अनुसार शम १४ अंगुल का होता था। सम्भवतः पाणिनि में 'शम्बा करोति' (५।४।५८) का अर्थ यही था कि एक शम्ब या १४ अंगुल की गहराई तक खेत को जोतता है।

पुरुष—गहराई नापने के सम्बन्ध में पुरुषसंज्ञक माप का प्रयोग किया जाता था (पुरुषात् प्रमाणेऽ न्यतरस्याम, ४।१।२४) जैसे द्विपुरुषा-द्विपुरुषी, त्रिपुरुषा-त्रिपुरुषी परिखा, अर्थात २ या ३ पुरस गहरी खाई, अथवा द्विपुरुष त्रिपुरुषमुदकम् अर्थात २ या ३ पुरस गहरा पानी (पुरुषहस्तिभ्यामण् च, ५।२।३८)। एक पुरुष प्रमाण के बराबर गहरी वस्तु पौरुष कहलाती थी।

अर्थशास्त्र (२।२०) में पौरुष नाप तीन तरह की है—(१) खातपौरुष, परिखा, रज्जु आदि की नाप के लिए=८४ अंगुल=१ व्याम=५'३"। (२) पौरुष, सम्भवतः सेना में रंगरूटों की ऊँचाई नापने के लिए=४ अरत्नि=९६ अंगुल=६ फुट (इसे दंड भी कहते थे)। (३) अग्निचित्य पौरुष, अग्निचयन की वेदी बनाने के लिए=४।। अरत्नि=१०८ अंगुल=६'९"। इस प्रकार दो पुरस गहरी खाई १०।। फुट और तीन पुरसा गहरी १५।।। फुट होती थी। बौधायन में वेदी-निर्माण के लिए पुरुष माप को ५ अरत्नि या ७।। फुट लिखा है। (बौधायनश्रौत ३०।१, पदमंजरी ४।१।२४, पञ्चारत्निः पुरुष इति शुल्वविदः)।

हस्ति (५।२।३८)—हस्ती की माप ४० वर्ष के उत्तम जातीय पट्ठे हाथी के प्रमाण से ली जाती थी। उसकी ऊँचाई ७ अरत्नि, लम्बाई ९ अरत्नि, और घेरा १० अरत्नि कहा गया है (अर्थशास्त्र २।३१)। हस्ति-माप के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि वह नाप हाथी की ऊँचाई से न लेकर लम्बाई के आधार पर ही ली जाती थी। यों नौ अरत्नि या १३।। फुट हस्ति-संज्ञक माप थी। ५।२।३८ सूत्र पर काशिका में द्विहस्ति, त्रिहस्ति उदाहरण दिये हैं। द्विहस्ति या २७ फुट की नाप किले के परकोटे की ऊँचाई होती थी। महासुत सोम जातक में १८ हाथ ऊँचे परकोटे का उल्लेख है (अट्ठारसहत्थ पाकारेन, जातक ५।४७७)। आज भी पुराने किलों के परकोटे की ऊँचाई १८ हाथ मिलती है।

काण्ड (४।१।२३)—खेतों की नाप के सम्बन्ध में इसका उल्लेख आया है—जैसे द्विकाण्डी, त्रिकाण्डी रज्जु से ज्ञात होता है कि काण्ड रज्जु-संज्ञक नाप का छोटा भाग था। बालमनोरमा ने काण्ड को दण्ड का पर्याय लिखा है, जो १६ हाथ या २७ फुट लम्बा माना जाता था। अर्थशास्त्र में दण्ड को छह कंस या १९२ अंगुल (१२ फुट) लिखा है और १० अंगुल की रज्जु मानी है। खेतों का निवर्तना-संज्ञक क्षेत्रफल ३ रज्जु के बराबर होता था। काण्ड शब्द दो प्रकार की नाप के लिए था। लम्बी नाप के लिए, जैसे द्विकाण्डी रज्जुः। तब उसमें ङीप् प्रत्यय लगता था। किन्तु क्षेत्रभक्ति या क्षेत्रफल के लिए जब उसका प्रयोग होता था, तब स्त्रीलिंग वाची टाप् प्रत्यय लगता था, जैसे द्विकाण्डा क्षेत्रभक्तिः।

किष्कु—पतंजलि ने इसे पारस्करादिगण में प्रामाणिक माना है (पारस्करप्रभृतीनि च संज्ञायाम्, ६।१।१५७)। अर्थशास्त्र के अनुसार ३२ अंगुल या दो फुट का साधारण किष्कु होता था। आराकश एवं राजबढ़ई का किष्कु ४२ अंगुल या ३१।। इंच लम्बा माना जाता था (क्राकचिक किष्कु)। स्कन्धावार, दुर्ग, राजभवन आदि के निर्माण के समय इसी का प्रयोग होता था (अर्थशास्त्र २।२०)। महाभारत में भी

(शेष आगामी पृष्ठ के नीचे)

सोमगान्

तभीमरावी: समर्य आ गृभ्णान्ति योषणो दश।
स्वसार: पार्ये दिवि ॥ ऋग्वेद । मंडल ९ । सूक्त १ । मंत्र ७ ॥

यज्ञाग्नि नभोमुख लहक उठी, अब सोम-क्षरण,
युग-पाणिज अंगुलि शक्त कि बाला वय-निर्भर
दस सोदर द्रुततर भर उमंग बढ़ सर्व प्रथम
बाँधतीं सजीला सोम बाहुओं में कस कर।

तमीं दिन्वन्त्यग्रुवो धमन्ति बाकुरं दृतिम्।
त्रिधातु वारणं मधु ॥ ऋग्वेद । मंडल ९ । सूक्त १ । मंत्र ८ ॥

ऊषा संध्या-सा शरच्चंद्र किरणों-सा
सर्वत: दमकता पात्र अग्रसर करते,
अग्रणी स्तवन कर मधुता फिर फिर ऊर्ज्वल,
फिर शौर्य शत्रु-वारण छलकाते भरते।

— विजयगोविन्द

(गत पृष्ठ का शेष)

किष्कु का उल्लेख है (आरण्यक १२६।२९)। किष्कु ही यहाँ का पुराना गज था।

योजन (योजनं गच्छति, ५।१।७४)—योजन की नाप ४ कोश या ४ गोरुत मानी जाती थी। एक कोश ४००० हाथ या २००० गज का होता था। इस प्रकार योजन = ८००० गज = ४·५४ मील या ४ मील ९६० गज (देखिए श्री शामशास्त्रिकृत अर्थशास्त्र का अनुवाद, पृ० ११८)।

आयाम प्रमाणों की तालिका इस प्रकार है—८ यव = १ अंगुल = ।।। इंच; १२ अंगुल = १ वितस्ति या दिष्टि = ९ इंच; २ वितस्ति = १ अरत्नि = १।। फुट; ४२ अंगुल = १ किष्कु = २ फुट ७।। इंच; ८४ अंगुल = १ खात पौरुष = ५'४"; २१६ अंगुल = १ हस्ति-आयाम = १३'६"; १९२ अंगुल = १ दंड या काण्ड = १२ फुट; १० दंड = १ रज्जु = ४० गज।

हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी

कहानी—

सिगरेट के टुकड़े

— श्री रजनी पनिकर

साधारण सी वस्तु कभी--कभी जीवन के बहुत बड़े रहस्य खोल देती है। सिगरेट के छोटे--छोटे, अधजले टुकड़े, लम्बे टुकड़े, आप सब ने बस में, रास्ते में, किसी आफिस में, दुकान में, कहने का तात्पर्य यह है कि दैनिक जीवन में आँख से गुजरने वाले कई स्थानों में देखे होंगे। कई बार तो हम उन्हें रौंद कर चले जाते हैं और कई बार पाँव से, हाथ के अखबार से या अन्य किसी वस्तु से दूर हटा देते हैं। सिगरेट के टुकड़े को देखकर नाक भौं सिकोड़ लिना, सिगरेट पीने वाले के लिए भी दूर की बात नहीं, तो जो नहीं पीते उनकी तो बात ही दूसरी है। लम्बी भूमिका न बाँध कर मैं कहानी कहती हूँ।

मैंने भी सिगरेट के टुकड़े बहुत जगह देखे थे, हाट--बाजार में, यहाँ तक कि पिकनिक के स्थलों में भी, पहाड़ों पर और दिल्ली में भी। हमारे परिवार में कोई सिगरेट नहीं पीता, फिर भी दूसरे तीसरे दिन सिगरेट के टुकड़े मुझे दिखाई दे जाते हैं। जब भी मैं झाड़-पोंछ करती हूँ, उन्हें हटाती रहती हूँ। कोई मिलने वाला छोड़ जाता है शायद या जंगली घास की तरह वे अपने आप उग आते हैं। खैर, जिन सिगरेट के टुकड़ों की कहानी मैं आपको सुना रही हूँ, वे मैंने आगरा के एक मामूली से होटल के सब से बढ़िया कमरे में देखे थे।

मैं दो दिन के लिए आगरा गयी थी। मेरे पति को अपने सहकारियों के साथ 'कैम्प" में रहना था। यह मामूली सा होटल "कैम्प" से दो-तीन सौ गज की दूरी पर था। मैं इसी में ठहरी थी। होटल के मैनेजर की सूरत से पता चलता था कि वह "धूर्त" है। उसकी आँखें एक अजीब गोलाई से बार-बार घूमतीं। उसने दस-बारह पान की पीक से भरे दाँत अपने भद्दे होठों में से बाहर निकालते हुए मेरे पति को आश्वासन दिया कि वह मुझे सब से बढ़िया कमरे में रखेगा और वे (यानी मेरे पति) किसी बात की चिन्ता न करें।

मेरा सामान होटल के मुख्य भवन से हटा कर एक बड़े-से कमरे में रखवा दिया गया। वह कमरा अन्य कमरों से अलग था। उसके सामने बरामदा भी था, बाहर चिक। कमरे के भीतर परदे भी बुरे नहीं थे। पिछली खिड़कियाँ बगीचे में खुलती थीं।

कमरे में पहुँचते ही एक तेज विलायती सुगन्ध से हमारा सिर भन्ना उठा। हाँ, उसका प्रभाव सुखद था। मैंने सुगन्ध को पहचान लिया, क्योंकि मेरी एक अमीर

सहेली, विलायत से हर दूसरे तीसरे महीने यही सुगन्ध मुझे भेज देती है। सुना है, भारत में उसकी कीमत छप्पन रुपये बारह आने है, शायद सेल्स टैक्स अलग। मेरी उस अमीर सहेली का यह एक छोटा सा मनोरंजन है, आज्ञा दें तो कहूँ यह उसकी "हॉबी" है। शायद आपको यह बात दिलचस्प लगे कि मैं उस सुगन्ध का क्या करती हूँ। मैं भी उसे, एक कृत्रिम गर्वभरी मुस्कान से अपनी किसी रूठी भाभी को मनाने के लिए, अन्यथा किसी नवदम्पति को उपहार रूप में दे देती हूँ, हर बार एक ही वाक्य भी दोहरा देती हूँ—"खास विलायत से मँगवाई है।"

कहानी से फिर मैं भटक गयी। तो उस सुगन्धित कमरे में, मेरा सामान टिका कर, दोपहर का भोजन मेरे साथ खाने का वायदा करके, कुछ अनमने मन से वे "कैम्प" में चले गये। उनकी मध्यवर्गीय समाज की मर्यादा को ज़रा सा धक्का लगा था कि वे ऐसे मामूली होटल में पत्नी को छोड़े जा रहे हैं। परन्तु इस कमरे की बनावट देख कर इनको हलका सा सन्तोष हुआ।

मैंने "बेयरा" को चाय लाने के लिए कहा और स्वयं कमरे को घूम फिर कर देखने लगी।

कमरे की सजावट के विषय में मैं अधिक कहूँगी तो आप ऊब जाएँगे। इस लिए केवल इतना कह देने से आपको अनुमान हो जाएगा कि कमरा किसी साधारण श्रेणी के ईसाई परिवार की बैठक दिखाई देता था।

कमरे के बीच में एक गोल मेज पड़ी थी, उस पर छपा हुआ खादी का एक मेजपोश बिछा था, और हरे रंग का ग्वालियर पाटरीज का बना लम्बा-सा फूलदान रखा था। फूलदान में कागज के गुलाब के फूल। इस प्लास्टिक के युग में कागज के फूल बनावटी मुस्कानों और सस्ते मेक-अप की तरह बहुत प्रचार पा गये हैं परन्तु मुझे इन्हें देख वैसे ही झुँझलाहट होती है, जैसे सुबह नाश्ता करते समय दूध के प्याले में पचहत्तर प्रतिशत पानी और पच्चीस प्रतिशत दूध देखकर होती है। छींट के मेजपोश पर असंख्य सिगरेट के टुकड़े बिखरे थे। सिटरेट के टुकड़ों से दबी हरे रंग की "ऐंश ट्रे" का केवल एक कोना मुझे दिखाई दिया। कमरा साफ था, बिस्तर पर कोई सिलवट नहीं, फिर यह मेज शायद साफ नहीं की गयी थी। मैंने देखा, सिगरेट के पिछले सिरे पर सुनहरा कागज लगा था। मैंने सुन रखा था कि सुनहरी कागज वाली सिगरेट बहुत मँहगी होती है।………इतनी सारी एक-दम उसने कैसे सुलगा ली होंगीं! ढेर सी सिगरेट पीने में उस व्यक्ति को जाने कितना समय लग गया होगा! क्या उसकी साँस नहीं फूल गयी? एक-दम इतनी सारी सिगरेट। मैंने खिड़की में देखा, वहाँ भी सिगरेट पड़ी थीं। कमरे में एक आराम कुर्सी पड़ी थी, उसके नीचे भी अधजली सिगरेट पड़ी थीं। गोल मेज के नीचे, 'क्रेवन ए' का खाली डिब्बा पड़ा था।

तो वह 'क्रेवन ए' की सिगरेट पीने वाला था। वाह! बहुत शौकीन था। मैंने बहुत से धनी-मानी लोगों को देखा था। कोई तो जेब में कॅपस्टन रखते और स्वयं पीते थे चार मिनार, कुछ कॅपस्टन पीते और हाथ में ५५५ का डिब्बा रखते हैं। हाँ, कुछ ऐसे भी होते हैं जो माँग कर गुजारा चला लेते हैं, वह माँग कर ही सिगरेट पीते हैं। जो 'क्रेवन ए' पीता है, वह अवश्य ही सम्पन्न व्यक्ति होगा।

तो 'वह' आराम कुर्सी पर बैठ कर सिगरेट पीता रहा, खिड़की के पास खड़े होकर भी पीता रहा, तभी तो इतने टुकड़े हैं। मैंने टुकड़ों की संख्या को सहम कर देखा………जैसे वे सब के सब मेरी ओर देख रहे हों। एक-एक सिगरेट के टुकड़े में, एक-एक अरमान जल रहा था, सुलग रहा था। हो सकता है………एक ही अरमान बार-बार सिगरेट की उमस और गरमी में जला हो। शायद अरमान की अभी राख भी न हुई होगी। जाने कौन अभागा यहाँ सिगरेट फूँकता रहा।

मेरा मन उस अज्ञात व्यक्ति के लिए समवेदना से भर उठा। जिज्ञासा नारी के चरित्र का एक विशेष अंग है। पुरुष भी जिज्ञासु होते हैं। पर उस समय मेरी जिज्ञासा इतनी तीव्र हो रही थी, कि मैंने अपने से ही बहस करना उचित नहीं समझा। मेरा मन उन सिगरेट के टुकड़ों की कहानी जानने के लिए उतावला हो गया।

इतने में बेयरा चाय ले आया। मैंने उससे पूछा कि मेरे आने से पहले इस कमरे में कौन आया था? वह मुस्करा कर बोला, "कोई बाबू साहब आये थे। रात को नौ बजे आये, खाना भी नहीं खाया। एक बार उन्होंने चाय पी थी और दो 'थरमास' भरवा कर रख ली थीं। सुबह छह बजे जब बेयरा उन्हें चाय देने आया था, तो वह सोये न थे वैसे ही सूट-बूट पहने बैठे थे। सुबह उन्होंने चाय नहीं पी। केवल अपना बिल मँगवा कर पैसे देकर वे सुबह-सुबह चले गये थे।"

बेयरा ने यह भी बतलाया कि अभी सबेरे के नौ बजे थे और सफाई करने वाला नहीं आया था, यदि मैं चाहूँ तो बेयरा सफाई करवा सकता था।

जाने किस अज्ञात प्रेरणावश मैंने कहा था……"सफ़ाई की आवश्यकता नहीं।" फिर मैंने झिझकते झिझकते उस से पूछ लिया कि वह देखने में कैसे थे। बेयरा ने अपनी बुद्धि के अनुसार बतलाया कि वे चैकदार गरम कोट पहने थे, जिसका रंग कम दूध वाली चाय जैसा लगता था, उसमें लाल रंग भी मिश्रित था। उन की पतलून का रंग वैसा ही था, जैसा आमतौर पर बाबू लोगों की पतलून का होता है। उनका कद बहुत लम्बा था और आँखें भूरी।

मेरे यह पूछने पर कि बाबू साहब कुछ उदास थे? बेयरा ने उत्तर दिया। नहीं, वे उदास तो नहीं थे, पर कुछ ऐसा लगता था, मानो वे अपने आप से बातें कर रहे थे। "क्यों बीबी जी? क्या आप की कुछ जान-पहचान के थे?"

मैंने इसका उत्तर नहीं दिया, केवल उसे, यही कहा था……जाओ तुम अपना काम देखो।

जो कुछ बेयरा ने कहा था, वह तो किसी फिल्मी नायक की-सा आचरण लगता था। मैंने दूसरी बन्द खिड़की को खोल डाला, अपने लिए चाय का प्याला बना लिया और उसी आराम कुर्सी पर बैठ गयी, जिस पर शायद कुछ घंटे 'वह' बैठा था।

एकाएक मुझे अपनी मनोदशा पर स्वयं हँसी आ गयी। मुझे कौनसी जासूसी करनी है? होगा कोई। सिगरेट पीता रहा है तो अपनी, कलेजा जलाता रहा तो अपना, समस्या का समाधान ढंढता रहा है, तो अपने लिए। मुझे उससे क्या लेना-देना।

अभी मैंने दो-तीन घूंट चाय भी न पी होगी कि मेरा मन फिर उन सिगरेट के टुकड़ों में फँस गया। काश! हम अपने जीवन से ही मतलब रखें। जो मजा दूसरों की जिन्दगी में झाँकने से आता है, शायद उतना ही किसी उपन्यास को पढ़ने से आता है। मेरे मन में भिन्न-भिन्न कल्पनाएँ जन्म लेने लगीं। इस आगरा शहर में जहाँ प्रेम का इतिहास संगमरमर में लिखा गया है, वह बिचारा किसी निष्ठुर प्रेमिका द्वारा तो नहीं सताया गया? परन्तु फिर मुझे विचार आया, 'क्रेवन-ए' की सिगरेट पीने वाला एक तो क्या, दस प्रेमिकाओं की निष्ठुरता सह सकता है। इस वर्ग की प्रेमिकाएँ भी एक नहीं अनेकों प्रेमियों की धड़कनें बढ़ा सकती हैं। वे साड़ी के रंग को देखकर उस रंग को पसन्द करने वाले प्रेमी के साथ शाम बिताती हैं।

मेरी कल्पना ने उस व्यक्ति को सिगरेट पीते, राख झाड़ते और फिर दियासलाई से सिगरेट जलाते देख लिया। एकाएक मैंने अपने आप को टोका, मैं कहीं भूल कर रही थी, वहाँ कोई दियासलाई का टुकड़ा नहीं था। मैं अपनी मूर्खता पर हँस दी, विदेशी फिल्मों का नायक, लाल-भूरा चैकदार कोट पहनने वाला, माचिस से सिगरेट क्यों जलाता होगा, उसके पास एक सिगरेट 'लाइटर' होगा। 'लाइटर' भी नया होगा, क्योंकि उसमें 'फ्युएल' खत्म नहीं हुआ और वह इतने सिगरेट एकदम जलाने में समर्थ हुआ। शायद यह लाइटर उसे दिवाली पर उपहार में मिला होगा। तब दिवाली बीते केवल एक सप्ताह व्यतीत हुआ था।

उस पुरुष ने क्या स्वास्थ्य को ठीक रखने के विषय में कुछ नहीं पढ़ा। उसे युवक मानने को मेरा मन तैयार नहीं था, क्योंकि युवक ऐसी मनोऽवस्था में उत्तेजना से भर उठते हैं, वे ढेर से सिगरेट एक साथ नहीं पी डालते। इतनी-सारी सिगरेट पीने, पूरी रात भर जागने से एक बात तो स्पष्ट थी कि वह तीस वर्ष से ऊपर और चालीस वर्ष के बीच रहा होगा। यह एकाग्रता, यह मनन और इतना गहन सोच वही व्यक्ति कर सकता है, जिसमें मानसिक प्रौढ़ता आ चुकी हो और जो जीवन में हँसी की फुल-

ड़ियों की कृत्रिमता समझता हो। व्यक्ति समर्थ है, उसे जीविका कमाने की कोई न्ता नहीं, क्यों कि वह आसानी से रुपया खर्च कर सकता है और होटल में रह कर रे रुपये देकर भी वह भोजन नहीं खाता। साधारण स्थिति का आदमी रुपये देकर ायेगा क्यों नहीं? उसे अपने मानसिक तूफान से अधिक अपने बटुए में से निकलते पयों की चिन्ता होगी।

वाद-विवाद में पड़ना मेरा उद्देश्य नहीं, वह तो बात की बात है, मुझे श्वास होता जा रहा था कि वह व्यक्ति आगरा छोड़ कर चला गया है और रात र यहाँ केवल निश्चय ही करता रहा है। अवश्य ही जीवन की बहुत जटिल समस्या ही होगी।

मेरा चाय का प्याला ठंडा हो गया था, मैंने खिड़की से ठंडी चाय फेंकनी चाही, रन्तु बगीचे में माली को काम करते देख, कमरे से सटे गुसलखाने में चली गयी। चाय हाँ फेक दी, परन्तु वहाँ भी वही सुनहरी कागज वाली सिगरेट पड़ी थीं। यहाँ भी वह वश्य बैठा होगा। वहाँ एक 'बिल' के फटे टुकड़े पड़े थे। मैंने वे उठा कर देखे तो सी होटल का बिल था, ग्यारह रुपये आठ आने रात का किराया, तीन रुपये चाय के और क रुपया सर्विस। होटल वालों ने लगभग सोलह रुपये उससे ठग लिये थे। ऊपर नाम ी लिखा था....'श्री प्रकाशचन्द्र सक्सेना'। ओह! मेरी कल्पना को ज़रा-सा धक्का गा, मेरी जासूसी के नायक का उतना ही साधारण नाम था, जितना साधारण यह ोटल। मेरा मन अनजाने ही विद्रूप से भर उठा। उँह! क्यों? मैं वहाँ किसी बड़े ाहित्यिक का, चित्रकार का या किसी वैज्ञानिक का नाम देखना चाहती थी। ठीक ो है, सामान्य पुरुषों के जैसे नाम होते हैं, वैसा नाम है।

मैं कमरे में लौट आयी, मैं सरसरी दृष्टि से गुसलखाने की सभी वस्तुओं को [illegible] आयी थी। और मुझे कुछ नहीं मिला। कहीं कुछ था ही नहीं।

[illegible] चाय बनायी। वह ठण्डी थी। बेयरा को आवाज दी, तो दुबारा नयी चाय आया। इस बार वह बड़ी ढिठाई से हँसता हुआ बोला—"क्यों बीबी जी, अब तो सगरेट के टुकड़े बाहर फेंक दूं?"

मुझे लगा, यह बेयरा मेरी कमजोरी जान गया है कि मैं इन सिगरेट के टुकड़ों ं कुछ खोजने का प्रयत्न कर रही हूँ। मैंने भी फौरन उत्तर दिया—"हाँ झाड़ू लाओ, ब अच्छी तरह से इकट्ठे कर लो।"

वह अपने कन्धे पर रखा मैला तौलिया फैलाता हुआ बोला—"नहीं बीबी जी, ं इस तौलिया में ही सब इकट्ठे कर लूंगा।" मेरे देखते-देखते उसने सिगरेठ के टुकड़े ँभालने शुरू कर दिये। मानो वह किसी गूढ़ रहस्य को मुझ से छिपाने के लिए वे ब उठाये लिये जा रहा है।

सिगरेट के टुकड़े इकट्ठे करते ही ऐंश-ट्रे के नीचे एक पत्र दबा हुआ मिल गया। पत्र का लिफ़ाफ़ा बन्द नहीं था, खुला था।

मैंने बैंयरा से आँख बचा कर वह उठा लिया। बैंयरा को शायद उस कागज के टुकड़े में कोई दिलचस्पी नहीं थी। वह अपनी दिलचस्पी का सामान, सिगरेट के टुकड़े उठा कर चलता बना। मैंने झट से वह पत्र खोला और धड़कते हृदय से पढ़ने लगी, मानो वह प्रकाशचन्द सक्सेना ने अपने रिश्तेदारों और मित्रों के लिए न लिख कर मेरे लिए ही लिखा हो। सबसे पहले मैंने पत्र के नीचे देखा, लिखा था - तुम्हारा प्रकाश। मैंने शुरू से पढ़ना आरम्भ किया।

प्रिय उमा,

मुझे अफसोस है कि विवाह के तीसरे दिन ही हम समझौता न कर पाये। तुम चाहती हो, मैं सिगरेट पीना छोड़ दूँ, परन्तु मैं प्रयत्न कर के भी सिगरेट नहीं छोड़ सकता। तुम्हें मुझ से इतनी घृणा थी तो विवाह करने पर क्यों राजी हो गयी थीं। तुम्हें और तुम्हारे पिताजी को पता था कि मैं सिगरेट पीता हूँ। तुम्हें समझने का अवसर मिलता, भावनाओं के आदान-प्रदान का अवसर मिलता तो शायद मैं समझ जाता कि मुझे सिगरेट पीना छोड़ देना चाहिए और मैं शायद मान लेता, परन्तु जाने क्यों, तुमने मुझे अवसर ही नहीं दिया। एक दम नादिरशाही आज्ञा जारी कर दी कि तुम मुझ से बोलोगी ही तब, जब मैं सिगरेट छोड़ दूँगा। तो मैम साहब, शायद तुम्हें माँ ने यह भी सिखला दिया था कि तुम पति पर हुक्म चलाओ, यह नहीं बतलाया था कि हुक्म देने से पहले, वैसी स्थिति तो पैदा कर लो। खैर मैं गाँव जा रहा हूँ, वहाँ एक सप्ताह तक तुम्हारे पत्र की प्रतीक्षा करूँगा। यदि तुम मुझ से मिलना स्वीकार करो,.........इसी परिस्थिति में जिस में मैं हूँ, तो मुझे लौटती डाक से पत्र लिख देना। यदि इस सप्ताह के भीतर तुम्हारा कोई उत्तर नहीं आया, तो मैं समझ लूंगा कि तुम सम्बन्ध विच्छेद चाहती हो। यदि उत्तर न देना चाहो, तो तुम स्वयं को स्वतन्त्र समझना, मैं विवश नहीं करूँगा। गाँव का पता दे रहा हूँ।

तुम्हारा
प्रकाश

प्रकाशचन्द्र सक्सेना,
द्वारा श्री मुरलीमनोहर सक्सेना,
मैनपुरी

पत्र मेरे हाथ में था। चाय ठंडी हो रही थी। पत्र पढ़ कर उस प्रकाशचन्द्र के लिए मेरी सहानुभूति और बढ़ गयी। मैंने पता देखा आगरा में ही राजा मंडी की एक सड़क का पता था। मैंने मन ही मन सोच लिया कि इन उमा देवी से अवश्य मिलूंगी और समझाने का प्रयत्न करूँगी। यह भारत है, अमरीका नहीं कि इन छोटी-

(शेष आगामी पृष्ठ के नीचे)

कुछ दिनों से खोजता फिरता तुम्हें है मन

— श्रीमती विद्यावती मिश्र —

सब जगह मिलता तुम्हारा ही उसे आभास,
और लगता है कि तुम हो दूर फिर भी पास,
बाँध पर पाते न तुम को दृष्टि के बंधन !
कुछ दिनों से खोजता फिरता तुम्हें है मन !!

खींचती है चित्र संध्या की किरण निस्तेज,
और स्वागत के लिए तारक-दलों की सेज,
चाँद-सूरज दे रहे हैं नित्य आमंत्रण !
कुछ तिनों से खोजता फिरता तुम्हें है मन !!

पा तुम्हें लूँगी कि जैसे धूप को प्रिय छाँह,
और कविता को किसी व्याकुल अधर की आह,
पूर्ण होगा एक दिन पाकर तुम्हें पूजन !
कुछ दिनों से खोजता फिरता तुम्हें है मन !!

द्वार खोले है खड़ा चिर कामना का कोष,
मिलन में सुख है प्रतीक्षा में मुझे संतोष,
हृदय में मधु ऋतु नयन में घिर रहा सावन !
कुछ दिनों से खोजता फिरता तुम्हें है मन !!

दुर्विजय गंज (धान मंडी), लखनऊ

(गत पृष्ठ का शेष)

छोटी बातों पर विवाह सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाएँ। न जाने आजकल की ये लड़कियाँ विवाह को एक खिलवाड़ क्यों समझती हैं। मैंने और देर करना उचित नहीं समझा, लिफाफे पर दो आने का टिकट लगा था और दो आने का मैंने अपने बटुए में से लगा कर, बेयरा को बुला कर वह चिट्ठी डाक में छोड़ने के लिए कहा। मैं नहीं चाहती थी कि इन सिगरेट के टुकड़ों की तरह ही उन दोनों के वैवाहिक जीवन के टुकड़े भी हो जाएँ। कौन जाने आज भी उनका समझौता हुआ है या नहीं, जहाँ कहीं भी सिगरेट के टुकड़े देखती हूँ, मुझे उस घटना की याद हो आती है।

आकाशवाणी, नई दिल्ली

'गीतगोविन्द' का अमर माधुर्य

—— प्रो० रमाशंकर तिवारी

ईसवीं सम्वत् की प्रथम शताब्दी के आसपास से भारतीय काव्य में शृंगार-निष्ठ रचनाओं की अटूट धारा प्रभावित हुई। 'गाथा सत्तसई' में 'कविवत्सल' राजा सातवाहन ने चुनी हुई सात सौ सर्वश्रेष्ठ प्राकृत-गाथाओं का संकलन प्रस्तुत कराया जिनमें प्रकृति के क्रोड़ में जीवन व्यतीत करने वाली ग्राम-वधुओं की रस-गर्भित प्रणय-लीलाओं का अत्यन्त सरस एवं मधुर चित्रण हुआ है। तब से यह धारा अव्याहत रूप में, संस्कृत एवं अपभ्रंश की साहित्य-भूमि को सिंचित करती हुई, हिन्दी-साहित्य के भारतेन्दु-युग तक प्रवहमान रही है। इस शृंगार-धारा के समृद्धिकरण में संस्कृत-कवि पीयूषवर्षी जयदेव का अत्यन्त मूल्यवान सहयोग रहा है। यों तो सत्त सई के काल से ही राधा-कृष्ण की लीलाओं का चित्रण कविता में प्रारम्भ हो गया था तथापि व्यवस्थित ढंग से, स्पष्ट रूप में, राधा-कृष्ण की "रहःकेलियों" का मनोरम, मधुर एवं ललित वर्णन करने का श्रेय जयदेव को ही प्राप्त है। उनका निम्न कथन पूर्णतया अनुमोदनीय है—

यदि हरिस्मरणे सरसं मनो यदि विलासकलासु कुतूहलम्।
मधुरकोमलकान्तपदावलीं शृणु तदा जयदेवसरस्वतीम्॥

'यदि आपका मन हरि-चर्चा की ओर उन्मुख है, यदि आप हरि की मोहक प्रेम-लीलाओं को सुनना चाहते हैं, तो आप मधुर, कोमल एवं ललित पदावली से समन्वित जयदेव की सुन्दर कविता का आस्वादन कीजिए।'

'गीतगोविन्द' की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि आप प्रणय-रस के सम्पूर्ण माधुर्य, सम्पूर्ण मादकता, सम्पूर्ण मार्दव एवं मसृणता का निर्ब्याज अनुभव करते हैं और फिर भी, यह नहीं भूलते कि आप अखंडानन्द-संदोह लीलानिकेतन भगवान श्रीकृष्ण की अलौकिक लीला का रसास्वादन कर रहे हैं। कवि ने प्रारम्भ के डेढ़ दर्जन पदों में भगवान् के भिन्न-भिन्न स्वरूपों की जयजयकार की है तथा बीच-बीच में यह स्मरण कराता गया है कि उसकी अमर-वाणी के प्रतिपाद्य श्रीकृष्ण हैं, जिनसे वह प्रार्थना करता है कि उसके अन्तः करण में कलियुग के कलमषों का समावेश न होने पाए—

कलियुगचरितं न वसतु दुरितं कविनृपजयदेवके।

'गीतगोविन्द'' में बारह सर्ग हैं जिनमें भिन्न-भिन्न रागों में रचित रसपेशल गीत रुचिर सरणि में अनुस्यूत हैं। कथा-सूत्र को मिलाने के लिए यत्र-तत्र वर्णनात्मक पद्य

भी विन्यस्त हुए हैं। कथा अत्यन्त अल्प एवं साधारण है। कृष्ण वसंत ऋतु में अन्य ब्रजबालाओं के साथ वृन्दावन के लताकुंजों में विहार कर रहे हैं। राधा की उपेक्षा हो रही है। सखी राधा से इस विहार का वृत्तान्त वर्णन करती है। इससे राधा बड़ी दुःखित होती है और सखी से अनुरोध करती हैं कि वह उन्हें किसी प्रकार श्रीकृष्ण से मिला दे। इधर केशव स्वयं राधा के साहचर्य के लिए अधीर होते हैं तथा अपनी विरह-वेदना का उन्मीलन करते हैं। सखी कृष्ण के पास जा कर राधा की वियोग-व्यथा की दारुणता का निवेदन करती है। लौट कर वह राधा से कृष्ण की वेदना का भी वर्णन करती है तथा उनसे रात्रि-काल में अभिसार करने का अनुरोध करती है। राधा संकेत स्थान में पहुँचती हैं और वहाँ कृष्ण के आगमन की प्रतीक्षा करने लग जाती है। सखी लौट कर आती है, किन्तु कृष्ण को साथ लेकर नहीं। इससे राधा की व्यग्रता अत्यधिक बढ़ जाती है क्योंकि उन्हें विश्वास है कि कृष्ण अन्य रमणियों के साथ रति-रमण कर रहे हैं। प्रातःकाल कृष्ण लतागृह में आते हैं जहाँ राधा ने उनकी प्रतीक्षा में रात व्यतीत की है। राधा मान कर लेती हैं और कृष्ण को भग्नमनोरथ लौटना पड़ता है। सखी के अनुनय-विनय पर राधा मान भंग करती हैं और सायंकाल पुनः उसी वेतस-लताकुंज में दोनों प्रेमियों का मिलन होता है। प्रेमालाप के साथ रहःकेलि समाप्त होती है और तब, राधा के अनुरोध पर, कृष्ण अपने हाथों से उनका शृंगार सम्पन्न करते हैं। इस प्रकार कथा के प्रारम्भ में राधा-कृष्ण को जो मनोव्यथा हो रही थी तथा जो अवसान के निकट आकर भी समाप्त नहीं हुई, वह कथांत में रमण माधुरी के सरोवर में विलीन हो गयी है।

व्यंजनीय वस्तु पर दृष्टिपात करने पर प्रस्तुत काव्य में इन विषयों का वर्णन उपलब्ध होगा—(१) वसंत की मादकता, (२) कृष्ण का अन्य ब्रजवनिताओं के साथ विहार, (३) राधा और कृष्ण की वियोग-व्यथा, (४) राधा का मान तथा (५) राधा-कृष्ण की मिलन-माधुरी एवं रत्यंत राधा-शृंगार। प्रसंगानुकूल राधा और कृष्ण के रूप-सौन्दर्य का चित्रण भी सन्निविष्ट हुआ है। सबसे अधिक मनोरम तत्त्व यह है कि ये सभी प्रसंग सखी, राधा अथवा कृष्ण के ही द्वारा वर्णित हैं, कवि ने अपने ऊपर अन्यपुरुषात्मक विवरण प्रस्तुत करने का भार नहीं रखा है। इस कारण से, काव्य में नैसर्गिक माधुर्य की अखंड स्त्रोतस्विनी प्रवाहित हो गयी है—सहृदय-जन इस बात का सद्यः अनुभव करेंगे कि जिनके अन्तर् मार्मिक कामनाओं की मार से व्यथित हो रहे हैं, जो भावों के स्वयं भोक्ता हैं, वे जब अपने हृदय की पोथी स्वयमेव, अपने शब्दों में उन्मीलित करेंगे, तो उसमें, कवि के निजी कथन की अपेक्षा, अधिक मर्मग्राहिता का, अधिक मिठास का उद्रेचन हो जाता है। जयदेव ने अपने नायक-नायिका तथा सखियों को वाणी प्रदान कर, "गीतगोविन्द" को अमर माधुर्य से भरित कर दिया है।

कामज्वर से उत्पन्न चिन्ता से व्याकुल राधा को दामोदर-विहार की सूचना सखी यों देना प्रारम्भ करती है—

ललितलवंगलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे ।
मधुकरनिकरकरम्बितकोकिलकूजितकुञ्जकुटीरे ॥
विहरति हरिरिह सरसवसन्ते
नृत्यति युवतिजनेन समं सखि विरहिजनस्य दुरंते
उन्मदमदनमनोरथपथिकवधूजनजनितविलापे ।
अलिकुलसंकुलकुसुमसमूहनिराकुलबकुलकलापे ॥
विहरति...... ॥

—'हे राधे ! जिसमें सुन्दर लौंग की लताओं से स्पर्शित कोमल मलय-पवन बह रहा है, जिसमें भौंरों के रसोन्मत्त समूह तथा कोयल कुंजगृहों में गुंजार एवं कूजन कर रहे हैं, जो वियोगी जनों को भूरिशः सन्तप्त करता है, जिसमें मदन-प्रेरित होकर रतिकामना से युक्त वियोगिनी बालाएँ पथिकों से विलाप करती हैं तथा जिसमें मौलसिरी के कुसुमों पर भौंरे मँड़राते हैं, उस वसंत ऋतु में श्रीकृष्ण तरुणियों के साथ वन में विहार कर रहे हैं।'

वसन्त के वैभव से हम सभी परिचित हैं। किन्तु, सखी के इस निवेदन में एक विशेष अर्थवत्ता गर्भित है। साधारण समय अथवा परिस्थितियों में श्रीकृष्ण यदि अन्य रमणियों के साथ रमण करते, तो कोई अधिक ध्यान देने की बात न होती। लेकिन वे रमण कर रहे हैं वसन्त ऋतु में, जिसमें शीतल मंद सुगन्ध मलयसमीर चल रहा है, जिसमें भ्रमर एवं कोकिल मधुर शब्द-ध्वनि उच्चरित कर रहे हैं, जिसमें वियोगिनी बालाओं को, पति अथवा प्रिय से वियुक्त होने पर, अत्यधिक सन्ताप होता है ! निश्चय ही, ऐसे अवसर पर राधा की उपेक्षा असहनीय है। सखी बड़ी वचनचातुरी से राधा के 'कन्दर्पज्वर' को और भी प्रज्वलित करती है। कालिन्दी के पुलिनवर्ती वृन्दावन में वसन्तश्री जिन-जिन रूपों में विकसित हो सकती है, उन सबका सन्निवेश सखी के निवेदन में हो गया है—'तमाल में नव-किसलय फूट पड़े हैं; पलाश में रक्ताभ कुसुम निकल आए हैं; पाटल-पाटलों पर भ्रमर गुंजरित हो रहे हैं; नवीन वरुणवृक्षों में नुकीले फूल उत्पन्न हो गये हैं; माधवीलता, नूतन मालती एवं चमेली अपने सौरभ पवन में बिखेर रही हैं; आम्रमंजरियाँ विकसित हो गयी हैं; अर्ध-प्रस्फुटित चमेली के पुष्प से आविर्भूत पराग से वनांचलों को सुरभित करने वाला, केवड़े के फूलों का मित्र पवन मधुर अनुराग-स्मृतियाँ जागृत कर रहा है !' कवि ने वसन्त का निखिल उद्दीपक वैभव प्रस्तुत कर दिया है जो शृंगार रस की मधुसलिला सरिता प्रवाहित करने के लिए आवश्यक तथा स्पृहणीय है। इस प्रसंग में

113535

कवि ने पलाश के कुसुमों को कामदेव के नख—'मनसिज नखरुचि'—से उपमित किया है, तथा वरुणवृक्ष के फूलों को विरहीजनों को नोचने वाले भाले के फल एवं बर्छी के समान बताया है। दोनों तुलनाएँ उपयुक्त एवं व्यंजक हैं। सखी इन सब उद्दीपनों का कथन कर राधा की व्याकुलता पर सान चढ़ा देती है।

सखी का उद्देश्य राधा की कामोद्वेजना को ही उद्दीप्त करना नहीं है, अपितु वह उन्हें ईर्ष्यालु भी बनाना चाहती है। वस्तुतः प्रेम की 'रहःकेलियों' के पूर्ण आस्वादन-हेतु वातावरण एवं ईर्ष्या, दोनों का मनोरम महत्त्व है। विलास-लोलुप कृष्ण के रम्याचरण का सखी कुछ विस्तार-पूर्वक निर्देश करती है। वह कहती है—'हे राधे! पीनपयोधर के भार से आक्रान्त कोई गोपी कृष्ण के स्वर का अनुकरण कर पंचम स्वर में गाती है; कोई चपल नयनों के कटाक्ष से समन्वित कृष्ण के मुखारविन्द को निहारती है; कोई सुन्दर जघन वाली तरुणी उनके पुलकित कपोलों को चूमती है, कोई रति-कामना से अनुप्राणित हो उनके वस्त्र को खींचती है, कोई उनके साथ नाचती और कंकणों से बाजा बजाती है, अथच श्रीकृष्ण स्वयं—

श्लिष्यति कामपि चुम्बति कामपि कामपि रमयति रामाम्।
पश्यति सस्मितचारुपरामपरामनुगच्छति वामाम्॥

—'किसी गोपी का आलिंगन करते हैं, किसी का चुम्बन करते हैं, किसी के साथ रमण करते हैं; किसी की ओर मृदुल मुसकान से भरी दृष्टि डालते हैं तथा किसी-किसी के पीछे-पीछे संचरण करते हैं।'

राधा की ईर्ष्या उद्दीप्त हो गयी और वे मधुपों से गुंजायमान एक लताकुंज में छिप गयीं। वहाँ सखी से राधा ने नटवर कृष्ण के रूप का अत्यन्त हृदयग्राही वर्णन किया है। उस रूप में कोई नवीनता नहीं, वह उसी सुपरिचित 'क्लासिकल' ढाँचे में ढला हुआ रूप है—वही पीताम्बर, वही मयूर-मुकुट, वही-बन्धुजीव-कुसुम के समान आरक्त अधर, ललाट पर वही चंदन का तिलक, वही मकराकृत मणिमय कुंडल, तथा हाथ, पैर एवं वक्षस्थल पर वे ही मणि-भूषित आभरण। लेकिन, कवि ने यदि यह वर्णन स्वयं उपस्थित किया होता तो वह चमत्काराधायक नहीं होता। कृष्ण के प्रत्येक अंग का कथन कर राधा सखी से निवेदन करती हैं कि ऐसे शोभाशाली, रमण-कुशल कृष्ण से मिलने के लिए उनका मन लालायित हो रहा है। और वे स्पष्ट शब्दों में अब प्रार्थना भी करने लग जाती हैं कि 'रतिनागर कृष्ण से, हे सखि! मुझे मिला दो।' राधा की इस आग्रहपूर्ण वचनावली में एक अकथनीय माधुर्य है जो सहृदयों को मर्माहत किए बिना नहीं रहता। राधा ने इस अवसर पर स्मृति-कोष खोल दिया है तथा रति-रमण के समय कृष्ण द्वारा सम्पन्न प्रत्येक केलि-क्रिया का कथन कर आनंद का स्रोत प्रवाहित कर दिया है। कवि ने पहले रमणोपयुक्त

~~76081~~

वासन्ती वातावरण उपस्थित किया, फिर राधा की ईर्ष्या जागृत की, तब राधा द्वारा ही कृष्ण-रूप का कथन करा कर अनुराग-दीप्ति के लिए सुन्दर आलम्बन प्रस्तुत किया और तब राधा के स्मृति-कोष का उद्‌घाटन कर, उनकी मिलनोत्कंठा को चरम सीमा तक उद्दीप्त कर दिया। राधा की कृष्ण से उन्हें मिलाने की भूयसी प्रार्थना इत्यादि के रूप में अनुभाव की मोहक योजना वह पहले से कर ही रहा है। इस प्रकार शृंगार रस के मधुर सरोवर को ऊर्म्मिल कर, कवि ने बड़ी निपुणता-पूर्वक सहृदयों को रस-विभोर कर दिया है।

कथा का प्रवाह मंथर गति से चल रहा है। राधा ने अपने को वेतस-लतागृह में छिपा लिया और इधर कृष्ण को भी अपने द्वारा की गयी राधा की अवमानना पर गहरा पश्चात्ताप हो रहा है। उन्होंने राधा की असूया समझ ली है तथा वे राधा के लिए भूरिशः अधीर हो उठते हैं—

किं करिष्यति किं वदिष्यति सा चिरं विरहेण।
किं जनेन धनेन किं मम किं गृहेण सुखेन॥

कृष्ण राधा की रूपमाधुरी का ध्यान कर विरह की असीम वेदना से आक्रान्त हो गये हैं तथा अनंगदेव से त्राण पाने के लिए यह मधुर प्रार्थना कर रहे हैं—

हृदि विलसते हारो नायं भुजंगमनायकः,
कुवलयदलश्रेणी कण्ठे न सा गरलद्युतिः।
मलयजरजो नेदं भस्म प्रियारहिते मयि
प्रहर न हरभ्रान्त्यानंग वुद्धा किमु धावसि॥

—'हे कामदेव ! हमारे हृदय पर यह माला शोभती हैं, इसे सर्पराज न समझिए, कंठ में कमलदलों कीं पंक्ति है, इसे विष की चमक न समझिए; शरीर में यह चन्दन का लेप है, इसे भस्म न मानिए। अर्थात मैं आपका शत्रु शंकर नहीं हूँ, अपितु वियोगतापित प्रेमी हूँ। अतः क्रुद्ध होकर मुझ पर प्रहार मत कीजिए।'*

'गीतगोविन्द' के शृंगार की माधरी इस बात से बढ़ गयी है कि इसमें वर्णित रति 'उभयनिष्ठ' है। कृष्ण दक्षिण नायक हैं। अन्य गोपांगनाओं में अनुरक्त होने पर भी, राधा के प्रति उनकी हार्दिकता में कोई अपचय उपस्थित नहीं हो सका है। वे तो राधा के लिए व्याकुल हैं ही, इधर राधा भी उनके विरह में दग्ध हो रही हैं। सखी ने कृष्ण से राधा की विरह दशा का करुण शब्दों में व्याख्यान किया है। राधा

---

* विद्यापति ने यह भाव शब्दशः ग्रहण किया है, लेकिन कृष्ण के वियोग-दुःख के व्यंजनार्थ नहीं, अपितु राधा की विरह-वेदना के निदेशनार्थ।

—लेखक

को चन्दन, चन्द्रमा, कोमल किसलय-शय्या इत्यादि सभी पदार्थ अब कष्ट पहुँचा रहे हैं तथा वे निरन्तर गाल हाथ पर रखे अश्रुधारा प्रवाहित करती हैं। विरहिणियाँ अपनी व्यथा को भुलाने के लिए विविध आत्म-वंचक क्रियाएँ किया करती हैं। राधा भी एक ऐसी चेष्टा करती हैं—'कामदेव की आकृति के तुल्य कृष्ण की आकृति का कस्तूरी से, एकान्त में, चित्र बनाती हैं, उसके नीचे मकर की आकृति रचती हैं और कृष्ण की आकृति के हाथ में आम का बाण चित्रित करके, उस कृष्णमूर्ति को प्रणाम करती हैं।' इस चित्र-रचना में कितनी माधुरी है, कितनी वेदना है, कितनी सरलता है!

राधा की व्याधि-दशा का हृदयग्राही चित्र देखिए—

सा रोमांचति सीत्करोति विलपत्युकम्पते ताम्यति,
ध्यायत्युद्भ्रमति प्रमीलति पतत्युद्याति मूर्च्छत्यपि।
एतावत्यतनुज्वरे वरतनुर्जीवेन्न किं ते रसा—
त्स्वर्वैद्यप्रतिम प्रसीदसि यदि त्यक्तोन्यथा हस्तकः॥

—'हे स्वर्ग के वैद्य-तुल्य कृष्ण! राधा रोमांचित होती है, सीत्कार करती है, बिलखती है, काँपती है, गिर पड़ती है, खड़ी होती है, ध्यान करती है, मूर्छित होती है। इस तरह उसे कामज्वर सता रहा है। वह आपके सान्निध्य रूपी रस से ही जीवित रह सकती है। अन्यथा, वह जो अभी हस्तादि के संकेत से बोल रही है, वह भी बन्द हो जाएगा—अर्थात उसके प्राण-पखेरू उड़ जाएँगे।'

राधा की विरह-व्यंजना में जयदेव ने कहीं भी सहृदयता एवं स्वाभाविकता का अपघात नहीं होने दिया है। उनकी प्रौढ़ोक्तियाँ सदैव स्वतःसम्भावी रंग में रँगी प्रतीत होती हैं। नैषधकार ने दमयन्ती की विरह-ज्वाला का जो अत्युक्तिपूर्ण वर्णन किया है तथा जिस कोटि की ऊहात्मक चमत्कारोक्तियाँ गाथा सत्तसई एवं परवर्त्ती मुक्तक रचनाओं में मिलती हैं, उनका सन्निवेश 'गीतगोविन्द' में नहीं होने पाया है। यही कारण है कि सहृदय-समाज इसके माधुर्य की एक मत से अभिनन्दना करता चला आया है।

कृष्ण के विरह-सन्ताप की सूचना हमें पहले ही मिल चुकी है। वे भी उन समस्त वेदनाओं के भाजन हो रहे हैं जिनसे राधा पीड़ित दिखाई पड़ी है। सखी द्वारा वर्णित उनकी उन्माद-दशा का भी एक चित्र देखिए—

वसति विपिनविताने त्यजति ललितधाम।
लुठति धरणिशयने बहुविलपति तव नाम॥
रणति पिकसमुदाये प्रतिदिशमनुयाति।
हसति मनुजनिचये विरहमपलपति नेति॥

—'कृष्ण ललित महल छोड़ कर वन के अंचलों में निवास करते हैं। पृथ्वी पर सोते और व्यथा में लोटते रहते हैं। हे सखि ! तुम्हारा नाम वे सदा लेते रहते हैं। कोयलों का समुदाय जब कूकता है, तो वे चारों ओर उन्मत्त की भाँति दौड़ते हैं। इस पर लोग जब हँसते हैं, तब वे विरह को फटकार कर डाँटते हैं कि तुम दूर हो जाओ।'

सखी के समझाने-बुझाने पर राधा ने उचित शृंगार कर नियत लतागृह में रात को अभिसार किया। किन्तु, नटनागर श्रीकृष्ण अपनी करतूत से क्यों बाज आने लगे ? उन्होंने अन्यत्र रति का पालन किया, और वासकसज्जा राधा उनकी प्रतीक्षा करती, बिलखती और कलपती है। उनकी उत्कण्ठित मनोदशा अत्यन्त मर्मभेदी हो गयी है। पत्रों तक की खड़खड़ाहट सुन कर वे अपने अंगों में आभूषण धारण करने लग जाती हैं, शय्या को सजाने लग जाती हैं तथा नाना प्रकार के संकल्प-विकल्पों में मग्न हो जाती हैं। चन्द्रमा के उदय हो जाने पर उनकी विरह-वेदना में पुनः ज्वार आता है और वे जोर-जोर से रोने लगती हैं—

कथितसमयेऽपि हरिरहह न ययौ वनम्।
मम विफलमेतदनुरूपमपि यौवनम्॥
यामि हे कमिह शरणं सखीजनवचनवंचिता॥

—'नियत समय पर भी हरि वन में नहीं आए। उपभोग योग्य मेरा यह यौवन भी व्यर्थ ही है। जब मैं प्यारी सखियों से ही ठगी गयी, तो अब किसकी शरण जाऊँ ! (अतएव, जलाश्रय ग्रहण करना—जल में डूब जाना—ही अब मेरे लिए श्रेयस्कर है*।)'

उक्त निवेदन में प्रतीक्षा-जन्य वेदना का दारुण स्वरूप प्रस्फुटित हुआ है। 'सखियों से ठगे जाने' में कितनी मीठी कसक बोल उठी है ! उन्होंने ही बड़े आश्वासन के साथ राधा को उस संकेत-स्थल में भेजा है ! क्या उन्होंने राधा के साथ मखौल तो नहीं किया है ? अब निराश्रित राधा जीवन का अन्त करने की बात क्यों न सोचे ?

जब सखी कृष्ण को बिना साथ लिये लौट आती है, तब तो जैसे राधा का रहा-सहा धैर्य भी ध्वस्त हो जाता है। उस समय उन्होंने अपनी वेदना के लिए जो सफाई दी है, जो औचित्य दरसाया है, वह सहृदयों को अवश्य मर्माहत कर देगा। राधा सरल, निश्छल बाला प्रतीत होती हैं जो अपनी वेदना एवं असूया का अपह्नव करना नहीं जानती। वस्तुतः वे अनंगज्वर से पीड़ित हैं तथा इस कल्पना से कि कोई अन्य सौभाग्यशाली व्रजांगना कृष्ण के साथ रति का आनन्द ले रही है तथा कृष्ण अपने हाथों से उसका शृंगार कर रहे हैं, उनके मर्म में गहरा आघात लग रहा है। राधा

---

* 'कम्' का अर्थ जल भी होता है—यथा, "पावके च मयूरे च सुखशीर्षजलेषु कम्।" —लेखक

की सम्पूर्ण मनोवृत्ति कन्दर्प-चालित तथा ईर्ष्याभिभूत है, इसका विद्योतन निम्नोदधृत पद्यों से हो जाएगा—

हरिपरिरम्भण-वलितविकारा । कुचकलशोपरितरलितहारा ॥
विचलदलकललितानन-चन्द्रा । तदधर--पानरभसकृततन्द्रा ॥
चंचलकुण्डलदलित-कपोला । मुखरितरशनजघनगतिलोला ॥
कापि चपला मधुरिपुणा । विलसति युवतिरधिकगुणा ॥

अथ च,

रतिगृहजघने विपुलापघने मनसिजकनकासने ।
मणिमयरशनं तोरणहसनं विकिरति कृतवासने ॥
चरणकिसलये कमलानिलये नखमणिगणपूजिते ।
बहिरपवरणं यावकभरणं जनयति हृदि योजिते ॥
रमते यमुनापुलिनवने विजयी मुरारिरधुना ॥"

राधा स्पष्ट ही कहती हैं कि मृगनयनियों के लिए कामदेव अत्यन्त दुर्वृत्त एवं निरंकुश है—"कुवलयदृशां वामः कामो निकामनिरंकुशः।"

रात्रि के अवसान पर जब कृष्ण लौटते हैं, तब खण्डिता राधा ने जो उपालम्भ दिया है, वह भी बड़ा तीव्र एवं पठनीय है। राधा ने उस दिन मान कर लिया है, यद्यपि वे 'मानिनी' की अपेक्षा 'कलहान्तरिता' अधिक हैं। मान तो वे करती हैं, लेकिन भीतर-भीतर उन्हें दुःख है कि उन्होंने कृष्ण के साथ उचित व्यवहार नहीं किया है। सखी की सलाह से मान भंग होता है और सन्ध्या-समय पुनः उसी लतागृह में राधा-मोहन मिलन होता है।

इतने समय तक प्रणय-रस की जो धारा, उमड़ती हुई भी, उद्दिष्ट लक्ष्य को प्राप्त करने में असमर्थ रही है, वह अब पूर्णोपभोग के चरम बिन्दु को उपलब्ध हो गयी है। किन्तु, कवि ने झटिति सम्भोग-सुख का वर्णन नहीं किया है—वैसी दशा में राधा की मान-रक्षा न हो पाती। वास्तविक अपराध कृष्ण का ही रहा है। अतएव, वे राधा के सम्मुख दण्डार्ह हैं। कृष्ण राधा से विनय करते हैं—'हे प्रिये! आप यदि कुछ भी कहेंगी, तो आपके दाँतों की ज्योति मेरे भय रूपी घोर तिमिर का नाश कर देगी तथा आपका मुख रूपी चन्द्र आपके अधरों की सुधा का पान करने के लिए मेरे नयन रूपी चकोरों को प्रोत्साहित करेगा। हे चारुशीले! कृपा कर मान छोड़िए और अपने मुख रूपी कमल का मधुपान दीजिए, क्योंकि मेरा चित्त कामाग्नि से दग्ध हो रहा है।'

कृष्ण अपने लिए दण्ड का भी निर्देश किये देते हैं—

सत्यमेवासि यदि सुदति ! मयि कोपिनी
देहि खरनखरशरघातम् ।
घटय भुजबन्धनं जनय रदखण्डनं
येन वा भजति सुखजातम् ॥

—'हे शुभ्रदन्ते ! आप जो दंड चाहें, मुझे दें । मुझे अपने तेज नख रूपी शरों से बेधिए, भुजाओं के बंधन में बाँध लीजिए; दाँतों से काटिए, जिस प्रकार आप को सुख मिले ।'

इस दण्डविधान में कितनी रसिकता है, सद्यः समझा जा सकता है । शृंगार-रस की परिपाटी से परिचित सहृदय "काटने-नोचने" के उल्लेख में रसविरोध कथमपि नहीं मानेंगे, वात्स्यायन ने इसके लिए "कामसूत्र" में शास्त्रीय विधान प्रस्तुत कर दिया है । इसी प्रसंग में कृष्ण ने राधा का रूपचित्र भी खींचा है, इस पर तनिक दृष्टिपात करलें—'दुपहरिया के फूल (वन्धूक) की तरह उनके अधर लाल हैं, महुए के फूल के समान उनके कपोल स्निग्ध एवं चमकीले हैं, नील कमलों की कान्ति को अपहरण करने वाले उनके नेत्र हैं, तिल के फूल के समान उनकी नासिका है, कुन्द के पुष्प की नाईं उनके दाँत हैं । इस प्रकार, कामदेव के पाँचों पुष्पबाण राधा के मुखभाग में समवेत हो गये हैं । तिरछी भौंहें काले सर्प के समान भयप्रद हैं, मुख चन्द्रमा के समान दीप्त है, जंघा केले के खम्भों को जीतने वाली हैं, नयन मद से परिपूर्ण हैं, तथा रतिकेलि कलापूर्ण है । इस प्रकार, पृथ्वी पर रहने पर भी राधा में सुरांगनाओं के गुण विद्यमान हैं ।' उन्नत, कठोर, कलशाकार उरोजों का वर्णन पहले कई जगह हो गया है ।

कृष्ण राधा को मना कर वेतसलताकुंज में प्रवेश कर जाते हैं । वहाँ आसन्न रति-सुख की कल्पना से वे नाना मनोरथों की सृष्टि करते हैं तथा राधा को ध्यान में रखकर काँप जाते हैं, पुलक- गद्गद् हो जाते हैं । लतागृह गाढ़तिमिराच्छन्न है । सखी राधा को यह कह कर भीतर जाने के लिए सोत्साहित करती है कि गौर-वर्णा अभिसारिकाओं के लिए यह सघन अन्धकार प्रेम-रूपी सुवर्ण की कसौटी है । जैसे सुनार स्वर्ण की परीक्षा कसौटी पर कस कर करता है, वैसे ही प्रेम-प्रवण व्यक्तियों के अनुराग की परीक्षा रात्रि के भयावह अन्धकार में होती है—

एतत्तमालदलनीलतमं तमिस्त्रं
तत्प्रेमहेमनिकषोपलतां तनोति ।

भ्रूक्षेपमात्र से ही क्रीतदास बनने वाले नागर कृष्ण लता-गृह में राधा का स्वागत करने के लिए लालायित हैं । जिस वचनावली में वे अभिसारिका का अभिनन्दन करते हैं, वह नितान्त मादक, नितान्त निर्व्याज है । उसके बाद कवि ने राधा-कृष्ण की

विपरीत-रति का सूक्ष्म वर्णन किया है, जिस पर कवि दार्शनिक मुद्रा में टिप्पणी करता-सा प्रतीत होता है।

इसी स्थल पर कवि कृष्ण से "पूर्वकथा" का उल्लेख कराता है कि किस प्रकार क्षीरसागर के तीर पर राधा (लक्ष्मी) ने उनका वरण किया था। इस वार्ता से राधा का ही ध्यान प्रकृत–प्रसंग (रति-रमण) से नहीं हट जाता है, अपितु पाठक जिस रस-प्रवाह में बह रहा था, उससे उसका भी ध्यान क्षण-भर के लिए विचलित हो जाता है। तदनन्तर कवि ने राधा के रत्यंत शिथिल सौन्दर्य का अत्यन्त सूक्ष्म एवं यथार्थ चित्र अंकित किया है। अनन्तर, रति-श्रान्त राधा भगवान से अपना रूप-शृंगार रचने की मधुर प्रार्थनाएँ करती हैं, अन्तिम पद्य लीजिए—

रचय कुचयोः पत्रं चित्रं कुरुष्व कपोलयो-
र्घटय जघने काञ्चीमञ्च स्रजा कबरीभरम्।
कलय वलयश्रेणीं पाणौ पदे कुरु नूपुरा-
विति निगदितः प्रीतः पीताम्बरोपि तथाकरोत्॥"

—'हे प्राणवल्लभ ! उरोजों पर पत्र-रचना कीजिए, कपोलों पर चित्र-रचना कीजिए, कमर में करधनी पहनाइए, केशपाश में फूल गूँथिए, हाथों में कड़े पहनाइए, पैरों में नूपुर पहनाइए। पीतम्बर धारी गोविन्द ने ऐसा ही किया।' अंततः अखंड सौन्दर्य एवं माधुर्य की धनी राधा की ही विजय दृष्टिगोचर होती है।

'गीतगोविन्द' के काव्य-संसार का जो विवेचन ऊपर किया गया है, उसके आलोक में निम्नलिखित बातें हमारे ध्यान को आकर्षित करती हैं—

(१) राधा कन्दर्पज्वर से पीड़ित तथा असूया की आग में जलने वाली कोमल-प्राण तरुणी हैं। उनके प्रणय में काम की भूख का प्राबल्य है। तथापि, वे सरल हृदय हैं। उन्होंने कभी भी अपने प्रकृत मनोरथ को छिपाने की चेष्टा नहीं की है। कृष्ण की रमण-नागरता को वे खूब समझती हैं, तथा उनके साहचर्य की कामना से निरन्तर इसीलिए पीड़ित हैं कि रति-सुख का सूक्ष्म एवं पूर्ण आस्वादन कर सकें। अन्य ब्रजांगनाओं के प्रति उनकी ईर्ष्या इसीलिए वृद्धिगत हो गयी है कि कृष्ण उनका शृंगार कर रहे हैं तथा उनके साथ नाना भाँति रमण एवं बिहार करते हैं, राधा की भूख मांसल संसर्ग की भूख है—विशुद्ध एवं निर्व्याज। उनकी प्रेमवेदना में गहरी टीस एवं कसक है जो सहृदयों के प्राणों को पिघला देती है। लेकिन, वह प्रेम का ज्वर मांसलता के धरातल को छेद कर मानसिक स्तरों को स्पर्श नहीं कर सका है। इसीलिए सूर की राधा, जयदेव की राधा की अपेक्षा, हमारे मर्म को पकड़ने में अधिक समर्थ है।

'गीतगोविन्द' के कृष्ण रति-नागर दक्षिण नायक हैं। उनमें कोई विशेषता लक्षित नहीं होती।

(२) जयदेव की कला अत्यन्त सजग, निपुण एवं सुकुमार है। कोमलता एवं लालित्य उसके जीवन की साँस हैं। व्यंजनीय वस्तु की मृदुलता के अनुरूप ही उनकी पदावली मसृण एवं प्राञ्जलतापूर्ण हो गयी है। एक स्वतः मधुर प्रसंग उनकी प्रतिभा के पारस से संयुक्त होकर असीम माधुर्य से परिप्लुत हो गया है। कवि का यह दावा बिलकुल सही एवं संगत है कि द्राक्षा, शर्करा इत्यादि की कौन कहे, कान्ता का अधर भी उनकी कविता की माधुरी में फीका तथा नीरस है। संगीत और साहित्य का ऐसा मणिकांचनसंयोग विश्व में अत्यन्त दुर्लभ है।

(३) कवि ने राधा-गोविन्द की विलास-लीलाओं का चित्रण लौकिक धरातल पर ही किया है। सच तो यह है कि प्रणयकेलियाँ, चाहे मिट्टी के मनुष्य की हों, चाहे परमेश्वर की, एक ही प्रवाह-पथ का अनुगमन करती हैं। भगवान भी जब किसी 'भूख' से ग्रसित हो जाएगा, तब भी वह भूख 'भूख' ही रहेगी--सम्पूर्ण सिहरन के साथ, सम्पूर्ण हहर के साथ, सम्पूर्ण ललक के साथ। कृष्ण रसेश्वर हैं, राधा रसेश्वरी हैं। उनकी 'रहःकेलियों' की चर्वणा करने के साथ, भक्तिभाव-भावित सहृदय यह नहीं भूलता कि यह रस निखिलमाधुर्य के स्रोत गोविन्द का है, जिसकी एक पार्थिव झाँकी, भक्त होने के नाते, उसको भी मिल रही है। जयदेव ने समस्त वातावरण भक्तों को इसी तथ्य की अनुभूति कराने के अनूकूल ही रखा है। जो ऐसा नहीं समझते, उनके लिए कृष्ण-भक्ति का समग्र साहित्य एक ग्रंथिल पहेली है।

कासिम बाजार हाउस, बलिया (उ० प्र०)

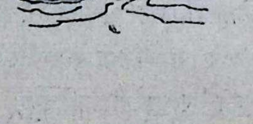

हृदय की बात

— श्री राजनारायण बिसारिया —

(१)

नयन से तुम मत बोलो, प्राण !
हृदय की बात हृदय से कहो !

रूप का दीपक जलता मन्द,
बिखरता गोरा-सा मकरन्द,
गीत-सी उठती ज्योतिर्दृष्टि,
छलकते हैं चितवन में छन्द !

सोच कर लेकिन मैं यह बात
कि छवि जो देखी सुषुमा-स्नात
रहे मन-मन्दिर में दिन रात
नयन-पट कर लेता हूँ बंद !

बन्द नयनों से, तुम ही कहो,
नयन की भाषा कैसे पढ़ूँ ?
दृष्टि के संकेतों के बीच
प्रणय-परिभाषा कैसे गढ़ूँ ?

साँस के तारों पर है प्रीत,
धड़कनों में पूजन के गीत,
फूल-से हे मेरे पाषाण !

हृदय से पुजो, हृदय में रहो !
नयन से तुम मत बोलो, प्राण !
हृदय की बात हृदय से कहो !!

(२)

हुई जब भू मनु से संपन्न
तभी से हृदय हुआ उत्पन्न,
हृदय के लिए प्रणय है वही
देह के लिए कि जो है अन्न !

नयन में आँसू लाये गये,
कि सुख-दुख में बरसाये गये,
मनुज भी रचे मिटाये गये,
प्रणय पर हुआ न मरणासन्न !

मनुज हैं हम तुम, हम को मिले
विरासत में मनु के अधिकार,
लाज की इसमें कैसी बात !
हृदय को आवश्यक है प्यार।

भले ही तुम अंचल को खींच
दबा लो मृदु-अधरों के बीच,

मौन रह कर पर मन की बात
न आँचल-सी अधरों में गहो !
नयन से तुम मत बोलो, प्राण !
हृदय की बात हृदय से कहो !!

(३)

उषा को तुम न करो मेहमान
करो कोकिल-सा स्वर संधान,
विश्व देखे कि पल्लवित हुआ
हमारे जीवन का उद्यान !

किसलयों में फूटे अनुराग,
पलाशों में हो मन की आग,
कली में ऐसे लुटे पराग
माँग में जैसे सिन्दुर-दान !

दिवस हो चाहे, चाहे रात
प्रात या रंगबिरंगी साँझ,
बजें चाहे मेघों के ढोल,
बजे चाहे किरणों की झाँझ !

तुम्हारी गोदी की हो डाल,
फूल-सा रख दूँ अपना भाल,

विश्व की जलन बने यदि शूल
चुभन मैं सहूँ, सुरभि तुम सहो।
नयन से तुम मत बोलो, प्राण !
हृदय की बात हृदय से कहो !!

(४)

न जाने कैसा था वह समय
विधाता को भी सूझा अनय,
फूल जैसे तन को दे दिया
वज्र से भी कठोरतर हृदय !

किया फिर मुझ से भी परिहास,
मुझे दे डाली इतनी प्यास,
बुझाने का जो करूँ प्रयास
विश्व भर में मच जाये प्रलय !

किन्तु फिर भी मैं पिघला स्वयं,
पिघल, पिघलाये कूल-कगार,
लता-द्रुम-तृण-वन-पर्वत बीच
बही मेरे जीवन की धार !

खींच मेरी लहरों के तार
गरज तुम गातीं मेघ-मलार,
घटा बन कर मत डोलो, प्राण !
बरस कर साथ-साथ ही बहो !
नयन से तुम मत बोलो, प्राण !
हृदय की बात हृदय से कहो !!

आकाशवाणी, जालन्धर

धारावाहिक—

भगवान बुद्ध की आत्मकथा

—श्री परदेशी

शैवालिका कहने लगी—

"तब महाराज ने संकेत से अंगरक्षकों को परे कर दिया। और छन्दक से पूछा—'भद्र सारथि! क्या कुमार उद्यान-भूमि की सैर कर चुका? क्या वहाँ की शोभा से वह प्रसन्न हुआ?'

आर्य छन्दक के मुँह से तो बोल न निकलते थे। किसी प्रकार मानो अपने को वश में कर, वे बोले—

'कुमार सिद्धार्थ राजोद्यान की सैर को गये ही नहीं, कृपानाथ! मार्ग-मध्य से ही लौट आए। मैंने बहुधा अनुनय-विनय की!....'

परम भट्टारक सोच में पड़ गये। उनके प्रशस्त ललाट पर उदित चिन्ता की रेखाएं स्पष्ट दीख रही थीं। बंकिम भ्रुओं का सहज संकुचन सुलक्षित था। पूछा—

'भद्र! जाते समय चिरंजीवी सिद्धार्थ ने क्या देखा?'

यह प्रश्न सुन कर तो, छन्दक असमंजस में पड़ गये! कुमार, मैं झूठ नहीं बोलूंगीं, न पिशुनवचन कहना मुझे आता है, न कभी रत्ती भर 'इधर-उधर' करती हूँ।....तो, छन्न तो सन्न रह गये। उनके दुर्बल तन का कम्पन और मन का परिताप झलकने लगा!

आर्य छन्दक के मौन ने परम भट्टारक को व्यग्र कर दिया। तनिक रोष से पूछा—'बोलो?'

और देव के श्रीमुख से अचानक यह सुन कर मैं चौंक पड़ी। शरीर में सिहरन दौड़ने लगी। छाती धड़कने लगी। देखो न, कुमार! अभी तक कलेजा काँप रहा है। ज़रा अपना हाथ लाओ—"

"रहने दे शैवालिका, फिर किसी दिन देख लूंगा। तेरी धड़कन ऐसी वैसी नहीं जो सहज ही मर जाएगी। पर....तनिक संक्षेप में कह!...." मैंने कहा।

"तो कुमार! मैंने स्तम्भ का कोना कस कर पकड़ लिया और मुँह पर वाम कर धर लिया, कहीं, डर कर 'ओह' न कह बैठूं!....

भयभींत हो छंन्दक ने निवेदन किया—'देवपुत्र ने एक वृद्ध पुरुष को जाते हुए देखा।'

'वृद्ध ?'—आर्य-अधिराज चौंक कर दो पग पीछे हट गए। बोले—

'छन्दक, सिद्धार्थ ने शेषनाग देखा होता तो कोई बात नहीं थी। छन्दक, सिद्धार्थ ने हिंस्र-व्याघ्र का खुला मुख देखा होता तो चिन्ता नहीं थी। भद्र, सिद्धार्थ ने महाकाल के कराल डाढ़ और ज्वालामुखी की गोद देखी होती, तो मैं उसे बधाई देता।''''किन्तु किन्तु, हाय रे छन्द, जानते हो, किसी वृद्ध भिखारी के दर्शन का प्रतिफल ?'

आर्य छन्दक ने सिर हिलाकर स्वीकार किया।

'तो फिर छन्दक, तुमने राजाज्ञा का उल्लंघन क्यों किया ?'

'अपराध क्षमा हो शाक्येन्द्र !'

महाराज के सुतीक्ष्ण, सुसीप-लोचनों में मुक्ताफल-से जल-दल झलके।—'तुम और सिद्धार्थ मुझे समान हो। तुम्हें क्या कहूँ छन्ना ?'

छन्दक सिर नवाए रहे।

तब महाराज ने कहा—'जाओ !'

अवसर देख, मैं अलिंजर की वारि-पूर्ति के मिस प्रकट हो गयी।

'कौन ?'—पीछे मुड़ कर परम भट्टारक ने मुझे देखा—'शैवालि, तू है !''' सुरा तो ला री, बहुत दिन हुए तेरे कोमल-करों से विष की एक प्याली पिए !'

मैं तो कुमार, लजा कर रह गयी। अहो मेरे भाग्य !''''इतने दास-दासी और परिचारक हैं परन्तु, महाराज को तो शैवालिका, शैवालिका की ही धुन।''''

जब मैंने पद्मराग मणि के महापात्र का आच्छादन हटाया तो कुमार, सच कहती हूँ, उसकी गंध से मैं बेसुध होने लगी। पर महाराज की सेवा की सुध थी, अतः मैंने स्वतः कहा—शैवालिके क्या कर रही है ? आज तीस बरस से तू परमभट्टारक की प्रधान परिचारिका है। जिन अगम अन्तःपुरों में सिन्धु देश की अश्विकाओं-सी प्रमत्त रानियाँ विहार करतीं हैं, उनमें भी तेरा अरोक गमन है। तेरे लिए राज्य के किसी गृह अन्तःगृह-कक्ष में प्रवेश निषिद्ध नहीं।''''"

"अच्छा, शैवालिके तू थक गयी होगी, शेष वृत्तान्त कल सुनेंगे"—मैंने ऊबकर अन्तिम अस्त्र चलाया। शैवालिका को मृत्यु दण्ड स्वीकार, पर अपना वाक्भंग नहीं। कहने लगी—"सचमुच, महामायाजात ! मैं विस्तार के पार चली गयी। तो, परमभट्टारक ने सागरपति के भेजे अंभसार-पात्र से एक घूंट लेकर आदेशा—'नगर नायक !''''मैं दौड़ी-दौड़ी प्रहरियों के पास गयी। उन्हें सूचना दी।

नगर नायक तत्काल उपस्थित हुए। परमभट्टारक को यथाविधि प्रणाम कर, एक ओर दक्ष मुद्रा में खड़े हो गये।

महाराज के हाथ में पात्र था। क्या कहूँ कुमार, उस अंभसार-पात्र में लहराता सुरा का रंग! मानों किसी गारी की उजली एड़ियों पर अलक्तक की परछाइयाँ लहरा रही हों। दूसरे घूँट पर श्रीमुख ने कहा—

'भद्र! नगर के अशुभ समाचार कहो!'

वह गरीब चौंक पड़ा। स्तब्ध रह गया।

'नायक, राजाज्ञा-द्वारा नगर में किसी वृद्ध का प्रवेश वर्जित है। कल सन्ध्या को सिद्धार्थकुमार ने उद्यानभूमि जाते एक वृद्ध पुरुष देखा····वृद्ध ने कैसे प्रवेश किया?'

नायक चुप रहे।

महाराज के नेत्र अरुण हो गये। रोष के आवेग में अधर फड़कने लगे—'वह घृणित दरिद्र वृद्ध राजमार्ग पर, कुलपुत्रों और कुलकन्याओं के पथ पर किसकी आज्ञा से विचरण कर रहा था?'

'अपराध क्षमा हो,····अपराध क्षमा,····महामहिम!'

'अपराध क्षमा नहीं!—प्रहरी, महाबलाधिपति?'

बलाधिपति के आगमन तक निस्तब्धता रही।····उसे जब महाराज ने विस्फारित आरक्त नयनों से देखा, तो सहम गया। वही कृशागौतमी का प्रेमी····

परमभट्टारक ने बलाधिपति से कहा—'नगर नायक को आजन्म कारावास। परिषद की सम्मति ले लेना।'

नायक को प्रहरी ले चले।

तब महाराज ने मेरी ओर देखा। मैं समझ गयी कि बलाधिपति से गुप्त मन्त्रणा करना चाहते हैं। मैं टल गयी और अपने स्तम्भ की ओट आ गयी।

परमभट्टारक ने आज पहली बार तीसरा पात्र खाली किया था। मैं रह-रह कर काँप जाती थी। उनकी चिन्ता और वेदना अधिक सघन हो उठी थी। गम्भीर स्वर में बोले—

'रिपुदमन देवदत्त,····कुमार के प्रासादों का पहरा तीन योजन तक बढ़ा दो। पूर्व राजाज्ञा का कठोरतापूर्वक पालन हो। राजमार्गों और राजोद्यानों के अतिरिक्त, कुलसम्बन्धियों के किसी आवास और उसके निकट भी किसी वृद्ध, पंगु, कोढ़ी, रुग्ण, अपाहिज, दरिद्री की परछाइँ तक न पहुँचे, अन्यथा जानते हो परिणाम?···'

'मेरी मृत्यु।'

'ठीक।'

'और····' महाराज ने स्वर मंद कर कहा—'हेमन्त प्रासाद में नृत्यों का आयोजन करो। आमोद-प्रमोद और क्रीड़ा-केलि से उसे गुंजारित करो। परिषद

की स्वीकृति से जितनी द्रव्य राशि ले सको, लो, और सुरा-सुन्दरियों का समारोह मनाओ !····सिद्धार्थ का मन जिसमें रम जाय, वह करो। कृशागौतमी····हाँ, मुझे स्मरण है उससे तुम्हारा ब्याह हो जाएगा।····कृशागौतमी को बचाओ। लास, उल्लास और रास की रचना हो। तुम भी नाचो और कुमार का मन भी नाचे। खूब नाचो···· ताक् धिन्····ताक धिन्····थेई थेई थक्····।'

महाराज स्वयं नाचने लगे।

सैन्य-अभिवादन कर रिपुदमन चले गये। मैंने अन्य सेवकों की सहायता से महाराज को शयन कराया। बड़ी देर तक मैं पद-सेवा करती रही। ऐसी उद्वेलित मनोदशा में मैंने महामहिम को आज पहली बार देखा था। मैं तो महाराज की चर्या से परिचित हूँ।····

फिर तन्द्रा में उनके अधरों में स्पन्दम हुआ····'ऐसा न हो····महामाया···· ऐसा न हो पार्षदो, कुमार राज्य न करे....घर से बेघर हो जाय····ज्योतिषी बम्हनों की वाणी सार्थक हो जाय····'

मैंने हौले से उनके आँसू पोंछ दिए, कुमार !

फिर भी महाराज के श्रीमुख से रह-रह कर यही शब्द मिकलते थे····'ऐसा न हो···ऐसा न हो····कि सिद्ध···मेरा सिद्धा···राज्य न करे····हे भगवान···!'

मैं आर्य सम्राट् की रजत केश-राशि सहलाती रही।

—वे तन्द्रावश हो गये।"

"तू जा शैवालिके"—मैंने उससे कहा, और वातायन में आकर खड़ा हो गया।

दूर-दूर तक अधवा के भावी-सा अन्ध तमस छाया था।

ऑर्लेम, मलाड, बम्बई

गीत

— श्री कान्ता —

(१)

सखि, क्यों बने निठुर वे इतने !

हर रात दरस की आशा में
पुलकित हो कर सो जाती हूँ,
दीप अकम्पित जलता रहता—
सपनों में मैं खो जाती हूँ;
किन्तु निराशा मिलती दिन में
तो मुझ पर हँसती हैं किरनें !
सखि, क्यों बने निठुर वे इतने !

मौन गगन से स्वर उठते-से
संगीत नया बरसाते हैं,
उन में निहित राग सुखों-भरे
ज्योति और भी निखराते हैं;
विरह-व्यथा से सने बोल पर
हो जाते सदा करुण कितने !
सखि, क्यों बने निठुर वे इतने !

सफल प्रतीक्षा थी मेरी तो—
साक्षी मधुर-मिलन के क्षण हैं,
उन के ही बन्धन बँधा हुआ
यह तन है, मन है, कण-कण है;
आँसू न कभी यों ढुलके थे
ढुलके ज्यों अभी और जितने !
सखि, क्यों बने निठुर वे इतने !

पो० बॉ० १५३, हैदराबाद

राम कवि रचित दो अज्ञात ग्रन्थ

-- श्री अगरचन्द नाहटा

ग्वालियर प्रदेश हिन्दी भाषा का प्रधान क्षेत्र रहा है, अतएव वहाँ विशाल परिमाण में साहित्य रचा ही जाना चाहिए था। पर अभी तक उस प्रदेश के विद्वानों ने अपने हस्तलिखित ग्रन्थभंडारों को सम्यक प्रकार से देखा नहीं है। कुछ संग्रहालयों के ग्रन्थ तो हाल ही में बिचे हैं, उनका इसके पूर्व शायद किसी को पता भी न था। छोटे-छोटे बहुत से संग्रह देखरेख के अभाव में स्वाहा हो चुके हैं। राजा महाराजाओं, जागीरदारों, उनके आश्रित ब्राह्मण आदि के परिवारों में अभी जो प्रतियाँ बच पाई हैं, उनकी खोज शीघ्र ही की जानी चाहिए। अन्यथा वे भी धीरे-धीरे रास्ते लग रहे हैं। ग्वालियर महाराजा का सरस्वती-भंडार देखने का मैंने प्रयत्न किया, पर मैं असफल रहा। स्थानीय व्यक्तियों को प्रयत्नपूर्वक देखकर अज्ञात ग्रन्थ प्रकाश में लाने चाहिए। इसी तरह सारे प्रदेश में जहाँ कहीं भी प्रतिष्ठित परिवारों में ग्रन्थ पड़े हों, उनकी शीघ्र से शीघ्र खोज की जानी चाहिए।

आठ दस वर्ष हुए, राजस्थान विश्व-विद्यापीठ उदयपुर के लिए मैंने हिन्दी के अज्ञात हस्तलिखित ग्रन्थों के विवरण लेने प्रारम्भ किये थे, तो करीब ५०० ऐसी अज्ञात हिन्दी रचनाएं देखने में आई जिनके विषय में किसी भी खोज-विवरण या साहित्य के इतिहास में कोई उल्लेख नहीं मिलता। इनमें से बारह विषयों के १८३ ग्रन्थों का विवरण राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज के द्वितीय भाग में और अवशेष ११ विषयों और पूर्व भाग की पूर्ति स्वरूप २६१ रचनाओं का विवरण चौथे भाग में दिया जा चुका है। इस प्रकार करीब साढ़े चार सौ अज्ञात रचनाओं का परिचय हिन्दी संसार के सम्मुख रखने का नम्र प्रयास-किया गया है। सौ-पचास विवरण और मेरे पास बचे पड़े हैं। अन्य अन्वेषणकर्ताओं की भांति मैंने राजस्थानी और हिन्दी दोनों भाषाओं की रचनाओं का सम्मिश्रण नहीं किया है। मैं राजस्थानी को स्वतंत्र भाषा मानता हूँ। इसलिए राजस्थानी अज्ञात ग्रन्थों का विवरण एक स्वतंत्र भाग के रूप में अलग दिया गया है और जैन गुर्जर कवियों के तीन भागों में जिन राजस्थानी गुजराती जैन रचनाओं का विवरण नहीं आ पाया, ऐसी करीब पाँच सौ राजस्थानी-प्रधान जैन रचनाओं का विवरण एक स्वतंत्र ग्रन्थ के रूप में अलग दिया गया है।

जब मैंने इन ग्रन्थों के विवरण लेने आरम्भ किये, तो अनूप संस्कृत लायब्रेरी के हिन्दी ग्रन्थों को भी देखने का अवसर मिला। संस्कृत के साथ हिन्दी राजस्थानी

ग्रन्थों का भी यह बहुत ही विशिष्ट संग्रह है। इसमें से हिन्दी के अज्ञात ग्रन्थों की सूची सम्मेलन-पत्रिका में प्रकाशित अपने लेख में दे चुका हूँ, जो इस संग्रहालय के हिन्दी ग्रन्थों की सूची की भूमिका के रूप में लिखा गया था। इन ग्रन्थों में राम कवि के रामसार और समयसार दो अज्ञात ग्रन्थ भी है, जो ग्वालियर राज्य के शिवपुरी के कछवा* राजा आनन्दसिंह के आश्रित कवि ने संवत १७३३-३४ में बनाए हैं। अभी प्रतियाँ मेरे सामने नहीं हैं, इसलिए अधिक विवरण नहीं दिया जा सका। उस समय जो विवरण लिया गया था, उसीको यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है।

ग्वालियर के विद्वान राम कवि के अन्य ग्रन्थों की भी खोज करेंगे और कछुआ* आनन्दसिंह सम्बन्धी जानकारी प्रकाशित करेंगे।

ज्ञानसार, रचयिता—राम कवि, सं० १७३४।

आदि :—

हंसवाहिनी सारदा, गनपति मति के धाम।
बुद्धि करन वकसन उकति, सरन तुम कवि राम ।।१।।
गुर गोवरधन नाथ, तारन तरन दयाल।
उनही के परताप करि, लही बुद्धि यह माल ।।२।।
करम कुल वरनौं सुनो, कुल्लि वुद्धि कुली सिरमौर।
सूरज के परताप मैं, ज्यौं दीपक कुल और ।।३।।
प्रथीराज भुवपाल कै, भीष भीव समि जानि।
तिनके आसकरन भया, धरम मूल गुन जानि ।।४।।
राजसिंघ तिनकैं भए, पृथ्वीपाल भुवपाल।
परिहरन करनी करत्र, विप्रन कौ घनमाल ।।५।।
गउ विप्र कौ दास पुनि, रामदास वलि वड।
फत्तो सिंघ तिनके भए, लए ऊडंडी डंड ।।६।।
अमरसिंघ तिनके भए, रुहर धीर सरदार।
नउ खंड महि मै प्रगट, पूरौ सार पहार ।।७।।
जगत सिंघ जग में प्रगट, जगत सिंघ व वंड।
डिल्लीपुर सौं रौपिपग, करी खड्ग की मंड ।।८।।
तिनके आनन्दसिंघ भए, सूर दानि गुन जानि।
गउ विप्रन के दास पुनि, गहे वेद की वानि ।।९।।
गोपाचल नल दुर्ग, पुनि सुतों राइ के थान।
कुल देव्या वुढवाइ पुनि, रघुवंसी जग जांन ।।१०।।

---

* कच्छपघात—कछवाहा।—सं०।

अब कवि कुल वरनन सुनौ, ताको कहै विचार ।
जोधा जोसी प्रगट महि, वेद क्रम गहै सार ॥११॥
तिनके जोगीदास भय, धरम तनौ अवतार ।
चलै वैद विधि कौ गहै, आंक तिनि पुनिवार ॥१२॥
तिनके सुत गोपाल भए, दांनि जानि जसवंत ।
रीति गहै सत जुगतनी, हरिचरनिनि में संत ॥१३॥
हरि जी, पातीराम भट्ट, तिनके सुत मति धीर ।
करनी करनातनी करै, हरे और के पीर ॥१४॥
हरिजी के सुत प्रगट महि, तास नाम कवि राम ।
देहि देहि लागी रहै, ताकौ आठौ जाम ॥१५॥
ब्रह्मपुरी सम स्यौपुरी, तहां विप्र को धाम ।
रूपवंत जसवंत पुनि, नाम विप्र कवि राम ॥१६॥
तिनि अपनौं बुद्धि बल प्रगट, ज्ञानसार कियसार ।
क्यों हूँ करि वचियौ भीया, चौरासी की धार ॥१७॥
सावन की सुनि सप्तमी, वार वृहस्पति वार ।
सत्रहसै चौतीस भय, ग्यानसार ततसार ॥१८॥
पढ़ान गुनत पुनि सुनत हूँ, मारग मुक्ति विचार ।
राम मिलन को राम कियौ, ग्यानसार निजसार ॥१९॥

अन्त :—

ज्ञानसार निजसार है, कठिन खड्ग की धार ।
राम कहें पग धार धरि, धार कहे जै पार ॥
सुर-नर-नाग सुज जानवर, सुनौ बात इक सार ।
राम पार पहुचाइ है, सुनि यह उडुपति पार ॥

इति ग्यानसार सम्पूर्ण ।

प्रति—गुटकाकार, पत्र—३०, पं० १७, अ० ११, कई पत्र एक तरफ लिखित• आकार ९×६ । स्थान—अनूप संस्कृत पुस्तकालय ।

समैसार, रचयिता—रामकवि, संवत् १७३५ ।

आदि :—

सारद गनपति मयदियन, सिधि वुधि दिथन सुपुर ।
कृपा कटांछ कीनैं सुनो, ग्रन्थ वांचे कूर ॥१॥
काल वंचनी कालिका, कुल देव्या वलि वंड ।
गुरू गोरधननाथ नें, करी बुद्धि की मंड ॥२॥

अमरपुरी सी सिवपुरी, कूरम अमर नरेश।
जगत सिंह हीरा भयौ, औरंग कसियौ जेसु ।।३।।
जिनके आनन्द सिंघ भए, धरम मूल जसवंत।
राम कहे अरि दल दलन, स्वर्ग दान में संत ।।४।।
तिनि के विप्र गुपाल सुनि, ताकै द्वै सुत जानि।
हरि जी पातीराम पुनि, गहै वेद की वानि ।।५।।
हरि जी के सुत प्रगट महि, विप्र राम मति धाम।
छहौ वरन पालन करन, चौसठि आठौ जाम ।।६।।
तिनि बुद्धि बल करि कै कह्यो समैसार निजसार।
राम किसन अवतार के, समऐ कहै अपार ।।७।।
अगहन की सुनि अष्टमी वार वरणि रजनीस।
सत्रहसै पैंतीस भया, समैसार निजसार ।।८।।
कवि कोविद परवीन सब, देखे करि सुविचार।
राम कहै समझो भीया समैसार निजसार ।।९।।
राम किसन अवतार के, समऐ कहै विचारि।
राम नाम यातैं धयौं, समैसार निजसार ।।१०।।

× × ×

जांनि जांनि सब जांनि है, या कौ सुनौ विचार।
समै समै के अंग सुनि समैसार निजसार ।।
राम दोय जिनि दीजियौ सुछिन कह्यौ विचार।
समय सगरे जांनि है समैसार निजसार ।।

इति समैसार सम्पूरन।

प्रति—गुटकाकार, पत्र ३१ से ५६, पं० १७/१८, अक्षर १०/११, वि० राम-कृष्ण, गंगा जी का वर्णन है। आकार ९×६। पूर्व ३० पत्र में ज्ञानसार भी इसी कवि का है।

नाहटों की गवाड़, बीकानेर

आकुल अन्तर

— श्री श्रीराम —

व्याकुल मन की पीर मिटाने,
प्रिय तुम मधुर राग बन जाओ।

प्राणहीन उस तृण पर जलकण,
शैल शिखर पर मुखरित मणिकण,
शुष्क धरा पर करुण अश्रुकण,
रोते नभ में क्यों तारागण ?

मधुमय तरु-जीवन क्रन्दन क्यों ?
प्रिय बस यही भाव समझाओ।

प्रकृति प्रेम से कुंठित मानव,
ज्यों भँवरा पराग हित आगर,
इसी लिए सरिता मिलती बढ़,
और उमड़ता भीषण सागर।

शान्ति राह में यह हलचल क्यों ?
प्रिय बस यही भेद बतलाओ।

पुष्प खिला तब भ्रमर उड़ गया,
तभी कली विहँसी कह तस्कर,
इस वियोग की व्यथा अनूठी,
हँसती नियति, बिराते भूधर।

दीपशिखा क्यों अरे ! सिसकती ?
शलभ जल रहे क्यों इस लौ पर ?
फिर भी क्यों अतृप्त सुमुखी यह ?
प्रिय बस यही रूप समझाओ।

दक्षिण भारती, हैदराबाद

कहानी—

अपनी अपनी बात

—श्री कोमलसिंह सोलंकी

जितेन को सब नहीं जानते और इससे भिन्न दावा भी गलत होगा। जब एक क्षण दूसरे क्षण की यथार्थ कल्पना नहीं कर सकता, तो समय की सीमाओं में बँधा हुआ मनुष्य सब की सब बातें कैसे जान सकता है? जिज्ञासु होना पृथक बात है और उसे गहराई से आँक लेना पृथक! मैं पहले दोनों को एक समझता रहा, तभी तो आज इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि जिज्ञासा में धुली-मिली कल्पना सत्य या घटना से कितनी भिन्न हो सकती है।

और जितेन का कहना है घटना अपने आप में कुछ नहीं है, जो है वह तो केवल स्थिति है, घटना के पूर्व और उसके पश्चात की। घटना स्वयं किसी स्थिति का परिणाम है और परिणाम किसी पर निर्भर रहता है, स्वयं घटना स्थिति नहीं हो सकती।

शायद जितेन ऐसा ही हो जैसा सोचता है, पर बात कुछ जचती नहीं है। जब से होश सम्हाला है तब से वह काम और पढ़ाई एक साथ करता रहा। अब पढ़ाई समाप्त होगयी, केवल काम रह गया। स्थितप्रज्ञ होना घटना से मुँह चुरा लेना है। मैं कहता हूँ, वह कायर है, पलायन की वृत्ति ने उसे दर्शन की ओर मोड़ दिया है,तभी महत्त्वहीन जीवन में खुश है। प्यार मिले या घृणा, पुरष्कार मिले या धिक्कार, उसके मानस में बैठी हुई प्रतिमा पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जिसने उसे समाप्त कर देने के लिए प्रत्येक कुचक्र को अपनाया, उससे मेरे सामने ही कह दिया—'मेरी भूल थी दोस्त! तुम ऐसे नहीं थे। कोई तुम्हें बना रहा है और तुम ऐसे हो जो उसके इंगित पर बन गये। मुझे सब मालूम है, लो मैं अब तुम्हारे रास्ते से अलग हो गया हूँ, तुम्हें जो पसन्द हो करो।'

तब मैंने जितेन से बहुत भलाबुरा कहा था। क्या उसके लिए मैंने कुछ नहीं किया? मेरे कारण उस पर कुछ भी आँच नहीं आई। तब जैसे वह अलग हो गया। 'मैं तुम्हारे रास्ते से अलग हो गया हूँ, तुम्हें जो पसन्द हो करो'—कितनी गलत बात उसने कही! पर वास्तव में क्या उसने यह गलती स्वीकार भी की है? वह कहता है—'जो कुछ मैंने कहा, वह ठीक है शैलेन, तुम जरा सोचो तो सही, अपना क्या बिगड़ गया? क्या घट गया? और यदि उसे तुम भी परेशानियों में फँसा देते तो मुझे या तुम्हें मिल क्या जाता?'

मैं सोचता हूँ, मेरी उमर के जवान इस बात को नहीं मानेंगे, मैं भी नहीं मानता।

पर क्या करूँ, यह नहीं हो सकता कि जितेन की निस्पृहता पर अविश्वास कर बैठूँ। और उसका चाहे अविश्वास करो या विश्वास, उसका विश्वास नहीं डिगता, उसकी वृत्ति केंद्रित नहीं होती, वह ऊर्ध्व से अधोगति की ओर प्रवृत्त नहीं हो पाता, फिर चाहे संसार से बिलकुल ही क्यों न निकाल दिया जाय। पर जितेन संसार से दूर नहीं रहता है। बच्चों में बच्चों की भाँति घुलमिल जाता हैं, और तब कोई सोच नहीं सकता—यह जितेन है। गहरी आँखों से जब देखता है, तो मानो काली पुतलियों में सब पी जाएगा और फिर कुछ ऐसा नहीं बोलेगा जिसका अर्थ न हो, या फिर बोलेगा तो कुछ भी, पर ऐसा जो आपके मन को प्राणों को जच जाए !

यह बात जितेन में गत दो वर्षों से अधिक आगयी है। पहले भी जितेन मेरे निकट था, अब और निकट है। पर पहले उसकी क्रिया की चकाचौंध उसके भीतर बैठे हुए प्राणी को ढके हुए थी, अब कुछ साफ झलक आती है। पर वह क्रिया से नहीं घबराता, दूसरे पर नियंत्रण उसके स्वच्छन्द और स्वतंत्रताप्रिय मन को एक पल स्वीकार नहीं है। वह कहा करता है—'गुलामी के अत्यन्त ऊँचे जीवन से स्वतंत्रता का अत्यन्त नीचा जीवन लाख दर्जे अच्छा है।' पहले अपनी इसी धारणा के अनुसार अपनी शक्ति से अधिक उसने देश की आजादी की लड़ाई में भागलिया—तभी तो लोग उसके बारे में क्या क्या सोचते हैं ! अभी भी उसके प्रत्येक काम को महत्त्वाकांक्षा की दृष्टि से देखते हैं—वैसी ही फबती कस देते हैं।

जितेन के मित्र बहुत हैं, शत्रु भी हैं, पर मित्रों के दिल में उसके लिए बड़ा स्नेह है। यह स्नेह केवल पुरुषों ने दिया हो ऐसी बात नहीं है, समान रूप से नारियाँ भी स्नेह उँडेलती दिखाई पड़ती हैं। तब जैसे वह सहम जाता है। कौन उसका नहीं है या किस केन्द्रस्थ उसकी जीवन परिधि घम रही हैं, समझ में नहीं आता !

आज उसे विदा कर दिया है। वह कुछ दिनों के लिए अपने गाँव में जाकर रहना चाहता है। वहाँ भी उसके लोग हैं, जिन्हें उसने कभी नहीं देखा, पर उनके लिए प्यार अवश्य है, शायद कर्त्तव्य भी हो।

उसने जाते समय कहा था—'शैलेन अमिता से कहना, मैं उससे बिना मिले ही जा रहा हूँ। चाहता था मिल लेता, पर मन कहता है मेरा चाहना गलत है। जो अपना है उससे प्रत्यक्ष मिलन की क्या आवश्यकता ! और वैसे अपना कौन है, सब घटना के पूर्व और पश्चात की स्थितियाँ हैं, प्रवेश के क्षण हैं। स्थिरता के लिए कुछ नहीं—गति के लिए ही सब कुछ है।

मैंने विनोद में कहा था—'केवल अमिता से क्यों नहीं मिल सके जितेन ? शायद जानबूझ कर ! मैं कहता हूँ, जो तुम्हारे लिए इतना आदर और स्नेह देता हो उससे तुम भागते क्यों हो ! मैं उससे कैसे कहूँगा ?'

'क्यों, तुम्हें मालूम है, मेरे पात्र में अधिक भरने की सामर्थ्य नहीं है शैलेन ? अधिक छलक जाया करता है । और यही तो सोचता हूँ, अमिता के सामने से मैं पात्र नहीं हटा पाता । पर पात्र सामने रखा भी नहीं जाना चाहिए । यह स्थिति का दुरुपयोग है मित्र, मैं इस बोझ से कभी हलका नहीं हो सकता ।'

मैं उसे गाड़ी में बिठा आया हूँ । सोचता हूँ, जितेन को मैंने जाने क्यों दिया ? रोक लेता,तो अमिता को सूचना दे देता कि जितेन जा रहा है, तुम से छिपाकर, तुमसे डरता है । तुम उससे छोटी हो और डरता है, पर बड़े से बिलकुल नहीं डरता, कोई भी क्यों न हो । जितेन अमिता का कोई नहीं है । कोई रिश्ता नहीं, कोई नाता नहीं । केवल प्रकट है तो यह कि जितेन की अमिता के घर पर बड़ी कृपा है । कोई काम यदि नहीं हो रहा है, अमिता के कहने पर हो जाता है । पर अमिता के घर वह बहुत कम जाता है, अमिता से बिना मिले ही बाहर से लौट आता है । पर जब इस बार अमिता की बहिन पहाड़ से आई, तो उसने झुक कर छोटे-बड़े सब के चरण छू लिए, अमिता के भी । मेरा अविश्वास तब से विश्वास में बदल गया है ।

अभी अमिता के घर से लौट रहा हूँ । जितेन के सम्बन्ध में लिखे गये संस्मरण अमिता की बातों के उल्लेख बिना अपूर्ण रह जाएँगे, इसलिए लगेहाथ इन्हें भी लिख लेना चाहता हूँ ।

जब मैं अमिता के घर पहुँचा, संध्या ने अपनी झिलमिलाती ओढ़नी मुहँ पर खिसका ली थी । मैं सोच रहा था, रात्रि को किसी के यहाँ जाना कितना कठिन हो जाता है जब स्वयं का परिचय न हो । पर जाना था, इसलिए गया । जाना आवश्यक भी था, जितेन ने जो कहा था ।

बिना कुंडी बजाए ही मुझे बुला लिया गया । नंदन मुझे जानता है, अमिता का बड़ा भाई । सामने तिकोने कमरे से उसने मुझे द्वार पर खड़ा देख लिया था ।

मैंने कहा—'मुझे जितेन ने भेजा है अमिता से...'

'हाँ-हाँ, मैं अमिता को भेज देता हूँ । पर जितेन है कहाँ ? लगभग एक मास से मुझे नहीं मिला । बहुत आवश्यक काम उसके कारण पड़ा हुआ है ।'

'जितेन तो आज गाँव गया है और एक महीने में लोटेगा'—मैंने सहज ही में कह डाला । पर नन्दन ने कोई परेशानी व्यक्त नहीं की ।

'कोई बात नहीं, उसके गाँव का पता अमिता के पास है,मैं उसे वहाँ लिख दूंगा ।'

और कुछ क्षणों के पश्चात द्वार पर खड़ी हुई अमिता ने हाथ जोड़ते हुए कहा—'आपने...'

'जी नहीं, मैंने कोई कष्ट नहीं किया । जितेन ने मुझे भेजा है । वह आज

जरूरी में गाँव गया है—एक महीने में लौटेगा। इतना अवकाश नहीं मिला कि आप से मिल पाए।'

तब मैंने देखा—अमिता की आँखें कुछ क्षण के लिए खिड़की से दिखाई पड़ने वाले आकाश पर टिक गयीं, जैसे कहीं छू कर लौट आई हों!

'अच्छा।'

तब उसके मुँह से निकले हुए इतने छोटे-से वाक्य के पश्चात एकदम लम्बा मौन दम घोंटने लगा। मैंने कहा—'आप बैठिए न!'

'जी-नहीं। आप उनके साथ रहते हैं न!'

'जी!'

'आप उन्हें समझाते क्यों नहीं हैं? वे अपने विषय में इतने लापरवाह हैं! बाबू जी उन्हें जब कभी समझा देते हैं,—और मेरी....'

'आपकी बात संभवतः वे अधिक मानते हैं'—मैंने कहा। तब अमिता के नेत्र अपने आप में कुछ खिल गये थे—कदाचित उसे बुरा लगा हो, शायद उसकी किसी स्थिति का स्पर्श हो गया हो, पर शायद बिलकुल नहीं।

उसने कहा—'मेरी और उनकी बातों को ऐसा समझना ठीक नहीं है, इससे उनकी महत्ता कम होती है। यह उनका बड़प्पन है। पर मैं देखती हूँ, वे किसी की बात नहीं टालते और मैं किसी की बात नहीं मानती।'

वह कह रही थी—'आपसे उन्होंने कहा होगा—वे यहाँ बहुत दिनों से नहीं आए। आना नहीं चाहते यह तो मैं नहीं कह सकती, पर शायद मैंने उनकी बात नहीं मानी, तभी उन्हें ग्लानि हो आई हो। किसी समय बड़ा ही गलत अनुमान हो जाता है। मैं जिद्दी हूँ, किसी की बात नहीं मानती। पर उन्हें शायद नहीं मालूम, उसके पश्चात उन्होंने जो कहा था मैंने सब कुछ मान लिया है।'

तब मैंने देखा—अमिता की आँखों में भारीपन गहरा हो उठा। वह वहाँ ठहरना नहीं चाहती थी। उसने कहा—

'जाने दीजिए। मैं जाती हूँ, मैं उन्हें पत्र नहीं लिखूंगी। यह बिलकुल सत्य बात है, आप भी कम से कम मेरी बात तो नहीं लिखिए।'

मुझे जितेन की वह बात क्यों याद आ रही है—'घटना कुछ नहीं है, स्थिति ही सब कुछ है, स्थिति ही गति है, घटना के पूर्व की हो या पश्चात की।' पर यह सब क्या है? जितेन का क्या अमिता से प्रेम है? नहीं है, प्रेम विरोधी नहीं होता। दो विपरीत दशाओं की ओर खिचना प्रेम नहीं है और यह विरोध, मुझे मालूम है घटना का नहीं, स्थिति का है। जितेन ने एक दिन मुझ से कहा था, यह विरोध प्रारम्भ हुआ

तब से अमिता मेरे निकट आई और तब से जितेन अमिता को भुला नहीं सका और न अमिता जितेन को।

उसने कहा था—'अमिता निरन्तर अठारह घंटे श्रम करती रहती है, उसके पास एक क्षण का भी अवकाश नहीं, अवकाश चाहती भी नहीं है। शायद वह कुछ चाहती होगी शैलेन, पर जिन महान स्थितियों में वह और मैं मिल गये हैं, उन्हें घटना भर बनाना न मैं ही चाह सकता हूँ और न अमिता। घटना तो मृत्यु है, या पड़ाव कह लो—स्थिति की सरलता के बीच कठोर टापू! उसका महत्त्व न हो यह बात नहीं है, पर वह स्थिति भी कोसने के लिए नहीं है। अपने आप में दोनों की महत्ता है।'

तब मैंने पूछा था—'स्थिति तो अपने आप में निर्जीव है जितेन। संघर्षहीन जीवन क्या जीवन है? तुम्हारी स्थिति के पीछे नियति का चक्र मुझे दिखाई पड़ता है। तो क्या तुम्हारा तात्पर्य है कि यह एक दूसरे का मिलन विधिलिखित है—और वह भी यहीं तक—प्रत्येक की सीमा में पृथक?'

'नहीं, शैलेन कुछ विधिलिखित नहीं है और न सीमाओं में पृथक! स्थिति अपने आप में चेतन तत्त्व है और हम हैं उसकी एक इकाई, मानों सम्पूर्ण चेतना के पूर्ण क्षण। पर सीमाएँ हमने बनाई हैं, उन्हें हम चाहें तो तोड़ सकते हैं। ये सीमाएँ व्यवस्था हैं, सम्पूर्ण चेतना को भंग नहीं किया जा सकता। उसमें सन्तुलन अनिवार्य है। जिस दिन किसी का भी संतुलन उठ गया, वह वहाँ नहीं रह सकता। वह घटना भले ही हो जाय।'

यह बात जितेन की अपनी है। मैं लाख सोचता हूँ, पर मुझे मेरे मोटे मस्तिष्क में पूर्व और पश्चात की स्थिति, चेतना के पूर्ण क्षण और घटना ठीक समझ में नहीं आते, शायद अमिता समझती होगी।

जितेन कहा करते हैं, हम केवल सोचते भर न रह जाएँ, इसलिए अपनी बुद्धि में सबसे उत्तम विचारों को क्रियात्मक रूप देते चलें। स्थिति की नीचाई और ऊँचाई को हम जानते हैं। तो शायद अमिता को अपनी नीचाई से जितेन ने उठा दिया है, तभी वह उसे अपनाना नहीं चाहता।

पर यह सच है कि अमिता और जितेन विचारों में एक-दूसरे के जितने निकट हैं, क्रिया में उतने ही दूर। एक का हृदय दया और ममता से भीगा है, दूसरे का निमर्मता में वज्रकठोर। एक किसी काल्पनिक मद में विह्वल, दूसरा व्यावहारिक समाधिस्थ योगी।

अपनी-अपनी बात है।

जनकगंज, लश्कर

गीत

— — श्री गोवर्द्धनप्रसाद 'सदय' — —

तुम दिल से लग के पूछो तो, कोई गात न टालूँगा !

कह दो, जो कहना हो मन से
चाहे बिजली छूटे घन से
जल जाएँगे पर, इस डर से मैं पवि-पात न टालूँगा !

चाह नयन की नित छलती है
सूखे में बाती जलती है
बादल के दिन तो आने दो, कोई रात न टालूँगा !

देख भरा सूना घन-आँगन
नाचा मन का मोर मगन-मन
पपिहा बोला—पी-पी ! मैं भी यह बरसात न टालूँगा !

श्रीअजन्ता प्रेस लिमिटेड, पटना–४

छत्तीसगढ़ की कला संपत्ति

— श्री राजेन्द्र गुप्त

मध्यप्रदेश की गोद में अलसित, निस्तब्ध, आडम्बर रहित छत्तीसगढ़ आपको सब कुछ दे सकता है। आठ-दस से अधिक दर्शनीय स्थल, भाँति-भाँति के दृश्य,तरुश्रेणियाँ, कंदराएँ, गिरिशृंखलाएँ, जलाशय और शीतल आश्रम आदि-आदि। पग-पग पर शुद्ध जल का दर्शनीय सरोवर प्रवासी का स्वागत करता है, तो कोई जलाशय प्रकृति-निर्मित एकांत में आने को उसे पुकारता है। यहाँ पुरातत्त्ववेताओं के लिए भी अनिश्चित युग के नयनाभिराम स्थापत्यकलावशेष हैं। हृदयहारी वन-दृश्यों से आपूर्ण पवित्र मन्दिरों का दर्शन महान सुख है, जिसका अनुभव हजारों प्रवासी श्रद्धा से ओतप्रोत होकर करते हैं। छत्तीसगढ़ के अन्य आकर्षण हैं वहाँ के श्रीपुर, रत्नपुर, खूटाघाट, पाली, अड़भार, खरौंद मल्लार, शिवरीनारायण और जाँजगीर, जिनकी गिनती मध्यप्रदेश के सर्वश्रेष्ठ स्थानों में है।

सिरपुर अथवा श्रीपुर, जो किसी समय यथार्थ समृद्धि का पुर रहा होगा, आजकल छत्तीसगढ़ के एकांत कोने में महानदी के तीर अवस्थित है। इसका उपलब्ध इतिहास है, जिससे पता लगता है कि महाकोशल की भद्रावती नगरी से जब राजधानी हटी, तो वहाँ के बौद्ध राजा शैव बनकर यहाँ आ गये। वैसे प्रचलित किंवदंती तो इसे अर्जुनपुत्र पाण्डव बभ्रुवाहन की नगरी भी बताती है।

एक शिलालेख से यह भी ज्ञात हुआ है कि सोमवंशी पाण्डवों का यहाँ राज्य रहा और पाटलिपुत्र के गुप्तवंशीय राजा की राजकन्या यहाँ ब्याही थी। इसी राजकन्या ने ईंटों का एक सुन्दर लक्ष्मण मन्दिर यहाँ बनवाया है। इस लक्ष्मण देवालय की भव्य रचना भारतीय स्थापत्यकला की दृष्टि से अतिशय उत्कृष्ट गिनी जाती है। मन्दिर की शिल्पकला एवं सुन्दरता तो सराहनीय है ही, साथ ही कलाकारों ने इसे जिस अनुपात से बनाया है, वह भी स्तुत्य है।

लोगों का विश्वास है कि काशी की प्रतिस्पर्धा में यहाँ सवा लाख शिवलिंगों की स्थापना हुई थी। अब भी यहाँ अनेकानेक शिवलिंग यत्र-तत्र बिखरे पाए जाते हैं। अभी हाल में मध्यप्रदेश सरकार का ध्याम इस स्थान की ओर आकृष्ट हुआ और सरकारी अनुदान प्रदाम कर इतिहासकारों और पुरातत्त्ववेताओं को इस दिशा में प्रोत्साहिल किया।

इतिहास और पुरातत्त्व विभाग के अन्वेषकों को लगभग २,३ महीने के खुदाई

काल में ही वहाँ से ऐसी आश्चर्यजनक वस्तुएँ उपलब्ध हुई हैं, जिनका पूरा परिचय निःसंदेह इतिहास का एक नया और स्तंभित कर देने वाला पृष्ठ सिद्ध होगा।

महाकोशल के गौरवस्थलों में रत्नपुर का अपना अलग ही महत्त्व है। ऐतिहासिक एवं धार्मिक महात्म्यों से ओतप्रोत यह नगरी अब एक कस्वे के रूप में रह गयी है। इसकी स्थिति बिलासपुर से १६ मील उत्तर में है। रत्नपुर की प्रसिद्धि हैहयवंशी राजाओं के कारण है। इन्हीं राजाओं द्वारा इसकी सर्वांगीण उन्नति हुई थी। किन्तु सूक्ष्म खोजों से ज्ञात हुआ है कि इसका इतिहास इससे भी अधिक पुराना है।

बस्ती के प्रवेशद्वार पर दक्षिण में विशाल सरोवर के किनारे निर्मित यहाँ का सब से आकर्षक भैरव जी का मन्दिर है। इसमें लगभग ९ फुट ऊँची भैरव जी की प्रतिमा स्थापित है। यहाँ के प्राचीन विश्वास के अनुयाया प्रवासी भैरव के दर्शन बिना बस्ती में नहीं घुसते। रामटेकड़ी पर श्रीरामचन्द्रजी का, नीचे बूढ़ा महादेव का तथा पश्चिम में सबसे प्राचीन श्रीमहामाया देवी का मन्दिर विशेष उल्लेखनीय है। लोग एक स्वप्न के फलस्वरूप नगरी और देवी के मन्दिर का निर्माण हुआ कहते हैं। थोड़ी दूर खारून नदी के संगम पर भोंसले वंश की रानी द्वारा निर्मित श्री संगमेश्वर महादेव का मन्दिर था जो खूँटाघाट जलाशय में डूब गया है। प्रमाण स्वरूप मन्दिर का कलश आज भी दृष्टिगोचर हो रहा है। नैसर्गिक सुन्दरता के अतिरिक्त यहाँ का आध्यात्मिक वातावरण अपने ही जैसा है।

महाभारत की एक प्रसिद्ध कथा का भक्त पात्र मयूरध्वज यहीं का राजा था। उसने ब्राह्मण के वेष में आए श्रीकृष्ण को अपने पुत्र का शरीर आरे से चीरकर दे दिया था। इस घटना का स्मारक यहाँ 'श्रीकृष्णार्जुन' नामक सरोवर आज भी विद्यमान है।

चौथी शती में मध्यप्रदेश दक्षिण कोसल के नाम से प्रसिद्ध था। यह भाग व्याघ्रराज द्वारा शासित था, किन्तु जब महापराक्रमी समुद्रगुप्त ने अपनी विजय यात्रा की तब उक्त राजा ने गुप्तवंश की अधीनता स्वीकार कर ली। किन्तु छत्तीसगढ़ के निवासियों का विश्वास है कि यह नगर द्वापर में भी हीरापुर के नाम से प्रसिद्ध था।

नये रत्नपुर की नींव हैहयवंशियों ने डाली थी और उन्हीं के द्वारा इसकी समृद्धि हुई। हैहयवंशियों का आदिपुरुष सहस्रबाहु था। १० वीं शताब्दी में जब इनके राज्य का विस्तार हुआ, कलिंगराज के हिस्से में छत्तीसगढ़ पड़ा। सन १०५० में कलिंगराज के पुत्र रत्नदेव प्रथम ने रत्नपुर की नींव डाली और वह एक स्वतन्त्र राजा बना। उसने अपने राज्य का विस्तार किया और अनेक मन्दिर, सरोवर आदि का निर्माण कराया।

शनैः शनैः इन हैहयों का पतन प्रारम्भ हो गया। रत्नपुर का अन्तिम राजा रघुनाथसिंह था। १७४० में मराठा सेनापति भाष्कर पंत ने चढ़ाई कर रत्नपुर

जीत लिया । सन १७४५ में रत्नपुर बिबाजी भोंसले के पूर्णतया अधीन हो गया ।

हैहयवंशियों ने रत्नपुर की जितनी भी उन्नति की, मराठों ने इसकी उतनी ही अवनति की । १८१८ के बाद यह राज्य भी अंग्रेजों के अधीन हो गया ।

शिल्प की दृष्टि से रत्नपुर एक भव्य नगर है । यहाँ के शासकों ने इसे सुन्दर बनाने में कसर नहीं रखी । अनेक प्राचीन मन्दिर उन्होंने बनवाए । इन निर्माणों की गणना स्थापत्य कला के सुन्दरतम नमूनों में हो सकती है । मन्दिरों की दीवारों और दरवाजों पर सुन्दर खुदाई की गयी है । अधिकांश मन्दिर और महल हैहय-वंशियों के बनवाए हुए हैं । शैव होने के कारण उन्होंने शिवमन्दिरों का ही निर्माण अधिक कराया । यहाँ की अनेक मूर्त्तियाँ तो महादेव, महामाया आदि मन्दिरों के निर्माण के समय लेली गयीं, बहुत मूर्तियाँ जनसाधारण उठा ले गये, किन्तु जो शेष बची हैं, वे भी इस ध्वस्तनगर की अतुल समृद्धि का और इन नरेशों के शिल्पकला-प्रेम का अच्छा साक्ष्य दे रही हैं ।

रत्नपुर से तीन मील दूर पानी का विस्तृत भंडार खूंटाघाट खारून नदी को बाँधकर बनाया गया है । पहाड़ी के ऊपर एक मनोरम विश्रामगृह है । भवन के चारों ओर प्राकृतिक शोभा बिखरी पड़ी है । छोटे-बड़े पेड़ों से लिपटी हुई लताओं में खिले पुष्प प्रकृति के अनुरूप ही सौन्दर्य का प्रदर्शन करते हैं । दूर-दूर तक फैले पेड़ों की डालियों पर तरह तरह के रंगबिरंगें जंगली फलों से प्रकृति का अनुपम सौन्दर्य-वैभव सरलता से ही सभी के हृदय में अपना स्थान स्थापित कर लेता है । ऊपर से देखने पर नीचे का दृश्य स्पष्ट दिखाई देता है, खारून नदी की धारा का नयनाभिराम दृश्य तो हृदय ही चंचल कर देता है । ऐसे सुन्दर प्राकृतिक स्थान पर यदि यात्री का मन 'सत्यं शिवं सुन्दरम्, के चरणों में श्रद्धा से नत हो उठे तो उसमें क्या आश्चर्य ! वनभोज के लिए इस स्थान का प्रचुर उपयोग होता है ।

रत्नपुर से १८ मील दूर पाली नामक एक प्राचीन नगर है । अष्टकोण सुन्दर सरोवर के समीप शिवजी का एक सुन्दर मन्दिर अपनी भव्यता, सुन्दर शिल्पकला में अब भी अद्वितीय है और कम से कम एक हजार वर्ष व्यतीत हो चुकने पर भी अभी उतनी ही अडिगता के साथ ज्यों का त्यों खड़ा है । आश्चर्य तो यह है कि धरातल से लेकर अपनी ऊँची से ऊँची चोटी तक इस मन्दिर का एक-एक इंच कलाकार की छेनी से अछूता नहीं रहा है । सभी पत्थरों पर माणिक के सदृश नक्काशी की गयी है । मन्दिर के चारों ओर अनेक सुन्दर कलात्मक मूर्तियों का अंकन पत्थर की दीवार पर किया गया है । छत्तीसगढ़ की प्राचीन संस्कृति का विकास इन्हीं मन्दिरों में अंकित मूर्तियों के सहारे हुआ है । अंग-भंगिमा और सूक्ष्म साज-सज्जा की दृष्टि से ये मूर्तियाँ मध्यप्रदेश में बेजोड़ हैं ।

विद्वानों का मत है कि इस दर्शनीय मन्दिर को वाणवंशी प्रथम विक्रमादित्य ने सन ९०० के अन्तिम भाग में निर्मित कराया था और महाराज जाजल्लदेव ने मन्दिर निर्माण के १०० वर्ष पश्चात इसका जीर्णोद्धार कराया था। महाराज जाजल्लदेव का नाम मन्दिर के तीन स्थानों पर खुदा हुआ है।

सभामंडप में चौंसठ योगिनियों की प्रतिमाएँ हैं, जो अत्यन्त सुन्दर एवं मनमोहक हैं। मन्दिर के भीतरी भाग की कलाकृतियों में जिस सुकुमारता के दर्शन होते हैं, उसे देखते ही बनता है। चित्रों में रेखाओं की निपुणता अधिक दर्शनीय है। कलायुक्त मन्दिर की अलौकिक प्रतिमाएँ लालित्यपूर्ण अंगसौष्ठव एवं अद्भुत शिल्पसृष्टि के कारण कला प्रेमियों में रससंचार करती हैं। सरकार द्वारा आवश्यकतानुसार समय-समय पर मन्दिर की मरम्मत होती रहती है। पूर्णिमा की चाँदनी में मन्दिर का सौन्दर्य निखर उठता है। यद्यपि यहाँ चट्टानें अथवा चित्रकूट के समान तरल आकर्षण नहीं, तथापि सरोवर में प्रतिबिंबित चन्द्रछटा का एक अलौकिक आनन्दमय चमत्कार है।

चन्द्रपुर से थोड़ी दूर पर अड़भार में एक प्राचीन मन्दिर है। अभी हाल में एक बड़े-से पत्थर के स्तम्भ पर कुछ अक्षर खुदे प्राप्त हुए हैं, जिनका पाठोद्धार अभी नहीं हुआ है। मन्दिर और दीवारों पर देवमूर्तियाँ, पौराणिक कथाएँ, निर्माणकर्त्ताओं की प्रतिमाएँ, नृत्यदृश्य आदि नयनाभिराम छवियाँ अंकित हैं। गर्भगृह में अवस्थित शिव तथा दुर्गा के सदृश सुन्दर मनोहारिणी प्रतिमा मध्यप्रदेश में अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलेगी।

शिवरीनारायण से दो मील पर खरौंद एक प्राचीन नगर है। खण्डहर, भग्न मन्दिर और टूटे किले इसके विगत वैभव की याद दिलाते हैं। यहाँ के मन्दिरों में मूर्त्तियों से अधिक महत्वपूर्ण चित्रों को स्थान है। अब तक सैकड़ों चित्र नष्ट हो गये हैं, तो भी अनेक सुन्दर चित्र अभी भी यत्रतत्र दिखाई दे रहे हैं, जो चित्रकला के उज्ज्वल नमूने हैं। अधिकतर चित्र तो कृष्ण लीला विषयक हैं। कहीं कृष्ण गोपियों के साथ रास रचा रहे हैं, कहीं किसी सुन्दर गोपी को देख कर विभोर हो गये हैं, कहीं जलक्रीड़ा या रासलीला के दृश्य हैं। एक भावपूर्ण चित्र में तो वह राधा के पैरों में मेंहदी रचाते हुए दीख पड़ते हैं। उनके बालपन का चित्र, जिसमें यशोदा उन्हें माखन चोरी के बाद ताड़ना दे रही हैं, बहुत अनूठा है। शिव के भी कई सुन्दर चित्र हैं। एक स्थान पर नन्दी के पास खड़े शिव पार्वती का चित्र अत्यन्त सुन्दर है। रिपुदमन करती दुर्गा का चित्र भी विशेष रूप से सुन्दर और प्राणवान है। अन्य चित्रों के विषय विविध हैं। कुछ तो तत्कालीन राजाओं के जीवन सम्बन्धी हैं। नायक-नायिकाओं के भी सम्पूर्ण चित्र बनाये गये हैं। दो सुन्दरियों के झूला-झूलने का तथा उसी के

बगल में आँख-मिचौली खेल का अंकन यहाँ के चित्रों का सुन्दर उदाहरण है। कलापूर्ण केश-विन्यास, अंगों के सुठाम-गठन, अन्तर के सौम्य भावों का प्रदर्शन एवं आभूषणों का निर्माण कुशलता से किया गया है, जिससें मूर्त्तिकार की आविश्रान्त शिल्पसाधना का परिचय मिलता है। शिवरात्रि के पुनीत पर्व में साधुओं की पवित्र आत्माएँ यहाँ के वातावरण का पवित्रता से अभिषेक करती हैं।

बिलासपुर से नैऋत्य कोण में मल्लार एक ऐतिहासिक नगर है। यहाँ बहुत से प्राचीन खण्डहर, जैन धर्मीय नग्न प्रतिमाएँ तथा कोमल कमनीय रमणियों की मुग्धकारी मूर्त्तियों से अलंकृत मन्दिर इस बात को प्रमाणित करते हैं कि एक दिन यह विस्तृत, विशाल तथा शिल्पकला-नैपुण्य का द्योतक रहा होगा। प्राप्त मूर्त्तियाँ एक मकान पर रख दी गयी हैं, जिनमें से कुछ की छवि देखते ही बनती है। यहाँ कई शिलालेख भी प्राप्त हुए हैं, जिनमें रतनपुर के कलचुरि राजाओं के सम्वत ९१९ (सन ११६७) की मिति अंकित है। ये शिलालेख अब नागपुर के अजायबघर में सुरक्षित हैं। संस्कृति और कला की इन कृतियों पर जो चित्र अंकित हैं, उसमें हमें उस युग के आभूषण, स्वास्थ्य, सौन्दर्य, जीवन और वेशभूषा का विशुद्ध परिचय मिलता है। ग्राम में लगभग ६०-७० विशाल सरोवर जीर्णदशा में अवस्थित हैं।

महानदी और शिवनाथ के संगम से लगभग एक मील दूर शिवरीनारायण नामक एक प्राचीन नगर है। शिवरीनारायण के नामकरण के पीछे एक प्रचलित कथा है कि प्राचीन काल में एक शवर था। जिस स्थान पर वर्तमान नगर है, वहाँ उस समय सघन वन था और वन में श्री जगन्नाथ जी की मूर्त्ति प्रतिष्ठित थी। वह शवर उस मूर्त्ति की नित्य नियमपूर्वक श्रद्धा-भक्ति से पूजा करता था। एक दिन एक ब्राह्मण ने उस मूर्ति को देख लिया और वहाँ से उसे ले जाकर जगन्नाथ पुरी में उसकी प्रतिष्ठा कर दी। इधर जगन्नाथ जी ने प्रसन्न होकर शवर को वर दिया कि जिस वन प्रदेश में मैं रहता था, वह मेरे और तेरे संयुक्त नाम से प्रसिद्ध होगा। तभी से इस किंवदंती के अनुसार यह नाम चल पड़ा।

शिलालेख से पता चलता है कि एक कलचुरि वंशी राजा ने संवत ८१९ में इसे बनवाया था। मंदिर के निकट ही एक सुन्दर जलाशय है, जो 'रोहिणीकुण्ड' कहलाता है। इसके निकट स्थित लम्बे-लम्बे पलाश के वृक्षों का और विशाल मन्दिर का प्रतिबिंब एक दूसरे से मिल कर इसके सौन्दर्य को बढ़ा रहे हैं। माघी पूर्णिमा को भक्ति भावना से परिपूर्ण लाखों यात्रियों का यहाँ समागम होता है।

प्राकृतिक दृश्यों से परिपूर्ण जाँजगीर एक ऐतिहासिक स्थान है। इसका जाँजगीर नाम जाजल्वनगरी का बिगड़ा हुआ रूप है। जाजल्वदेव रत्नपुर के हैहयवंशी राजाओं में थे। जाँजगीर का प्रसिद्ध मंदिर इन्हीं के द्वारा निर्मित है। यह मंदिर

अपूर्ण है, फिर भी भारत के श्रेष्ठ कलात्मक सौन्दर्य एवं वास्तुकला का सुष्ठुतम प्रतीक है। मन्दिर की पश्चिमी दीवार की पीठ पर सूर्यदेव विराजमान हैं। द्वार के ऊपर ब्रह्मा, विष्णु और महेश की मूर्तियों में सौन्दर्य और आकर्षण उभर पड़ा है। अगर हम मन्दिर को शिल्पकला तथा प्रतिमाओं का निकेतन कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी। प्रत्येक कला और काल को इस मन्दिर के शिलाखंडों में पिरोकर रख दिया गया है और इनके मेल से एक अति सुन्दर एवं नवीन वास्तुकला की सृष्टि हुई है। भावपूर्ण नक्काशी मन्दिर के पत्थरों पर लेस के फीते के समान खोद दी गयी है। उस नक्काशी में सजावट, क्रम और आकर्षण छेनी की नोंक से भर दिया गया है। कहीं अप्सराएँ अपने उभरे वक्षस्थलों पर स्वर्गीय पोशाकों से सजी खड़ी हैं, कही नर्तकियाँ विभिन्न नृत्य मुद्राओं एवं चेष्टाओं द्वारा दर्शकों को प्रसन्न कर रही हैं, कहीं-कहीं प्रफुल्ल देव-सुन्दरियाँ कमल के फूल के साथ सरोवर में खेल रही हैं, तो कहीं शृंगार कर रही हैं। देवता एवं राजा अपने भृत्यों, वीरों एवं प्रेमिकाओं की सेना के साथ शिकार और जलविहार के लिए प्रस्थान कर रहे हैं। जंगलों में विचित्र पशु और पक्षी अपनी स्वाभाविक चेष्टाओं में दिखाए गये हैं। हिन्दू पुराणों द्वारा वर्णित राक्षसों के रूप भी इन दीवारों के पत्थरों पर उतार दिये गये हैं।

भारत का समस्त धार्मिक साहित्य इन भीतों पर खींच दिया गया है। यात्री, घुमक्कड़, शिल्पकला के विद्यार्थी सभी को यहाँ मानसिक आनन्द की सामग्री उपलब्ध हो सकती है। सभी घंटों मन्दिर के प्रांगण में घूमकर इतिहास, धर्म एवं कला का रसास्वादन कर सकते हैं। इन्हीं दीवारों पर समुद्रमंथन की घटना खुदी हुई है और इन्हीं भीतों पर हमें स्वर्ग के वैभव और नरक की यातनाओं के दृश्य मिलेंगे। लक्ष्मी के प्रेम और नारायण के शौर्य की अनेक कथाएँ चित्रों द्वारा इस मन्दिर की दीवारों पर लिखदी गयी हैं। हिन्दू धर्म की कोई कथा, कोई कल्पना नहीं छूट पायी है। ये सभी दृश्य वर्णन की दृष्टि से प्राचीन होते हुए भी शैली एवं प्रदर्शन की दृष्टि से पूर्ण सफल हैं। भावों की स्पष्टता, कला का विस्तार, भड़कीलापन एवं निर्दोष खुदाई इन पत्थरों से बोल रही है।

राघवेन्द्रनगर बिलासपुर (मध्यप्रदेश)

शिशिर गीत

—श्री देवप्रकाश गुप्त—

यह शिशिर की रूपवंती रात रंगिनि,
ज्योति का आँचल जरा धीरे उठाना,
रूप का दीपक सलोना बुझ न जाए !

गीत की कुमकुम बिछी है नीरजा की राह में,
ये नखत के सुम रुपहले चाँद वाली छाँह में,
मुसकराती साँस ज्यों सौगात रंगिनि,
लहर के घर चाँद को धीरे बुलाना,
आँसुओं का कारवाँ यों रुक न जाए !
यह शिशिर की रूपवंती रात रंगिनि,
ज्योति का आँचल जरा धीरे उठाना,
रूप का दीपक सलोना बुझ न जाए !

नयन ज्यों उन्मादिनी जूही उमगती बंसरी,
सुरभि के घर पड़ रहे भाँवर, सुहागन मंजरी,
चंद्रमुख-से सज रहे जलजात रंगिनि,
चम्पई हाथों किरन-पूनम लुटाना,
उम्र का महमान पथ से चुक न जाए !
यह शिशिर की रूपवंती रात रंगिनि,
ज्योति का आँचल जरा धीरे उठाना,
रूप का दीपक सलोना बुझ न जाए !

ज्वार के घुँघरू झमकते जलपरी के आँगना,
बादलों के सँग चली रे नाचने अब ज्योत्स्ना,
माधवी के 'प्रान' हैं मधुस्नात रंगिनि,
दूर नीलम के नगर ओ दर्द, जाना,
दर्द का भगवान देखो झुक न जाए !
यह शिशिर की रूपवंती रात रंगिनि,
ज्योति का आँचल जरा धीरे उठाना,
रूप का दीपक सलोना बुझ न जाए !

स्नोई पैलेस, मेन रोड, जमालपुर (बिहार)

कहानी—

पंखा नहीं चलेगा

—श्री रमेशचन्द्र बक्षी

वार्ड में तीन पलंग खाली पड़े थे और हम चारों बीमार एक ही पलंग पर बैठे घंटे भर से ताश खेल रहे थे। मेरा मुँह बंद था, इसलिए सातवाँ पत्ता खोला गया। राजा ने, सिर पर बँधा पट्टा ढीला किया कि नर्स आ गयी।

'इंजेक्शन लगवाना है राजा ?'

'यस, सिस्टर !' वह उठकर अपने पलंग पर चला गया। उसके हाथ में तेज दर्द होने लगा और वह तकिये पर सिर रखे सुन्न हो गया।

'तुम्हें गार्गल्स (कुल्ले का पानी) चाहिए बक्षी ?'

'यस, सिस्टर, ठंडा पानी।' मुझे भी उठना पड़ा।

किशन अपना गिलास लिए गरम गार्गल्स माँगने चला गया। तभी वार्ड बॉय एक पलंग घसीटता हमारे वार्ड में ले लाया।

'क्यों, क्या बात है ?' सिस्टर ने थर्मामीटर झटक कर पूछा।

'यहाँ एक पेशल बेड लगेगा सिस्टर !' उसने हमारे पलंग एक-एक हाथ पीछे हटा दिये और चाय की तरह 'पेशल बेड' लग गया।

'कौनसा मरीज़ आ गया ?' नर्स ने पूछा ही था कि नीकर बनियान पहने एक छोकरा थाली-लोटा हाथ में लिए आया और 'हो-हो' करता 'पेशल' बेड पर झूलने लगा।

'तू आया ?' सिस्टर ने बाहर जाते पूछा।

'हें-हाँ सिस्टर ! मेरा आपरेतन होयगा।' उसकी जबान तुतलाती-सी थी।

'काहे का ?' राजा ने पूछा।

'गले का। तोतला बोलता, जिबान का होयगा।' उसने एक हाथ से जबान पकड़कर बाहर खींचते हुए कहा। फिर वह उठा और सारे कमरे में टहला। इधर देखा, उधर देखा, मुँह से 'सुर्रर्र' बोला और बाहर चला गया। दो मिनिट नहीं बीते कि वह लौट आया। आकर मेरे पलंग पर बैठ गया। पूछा—'बिमार हो तुम ?' मैंने सिर हिला दिया। तभी डाक्टर आ गया—'ऐं—तुम अपने बेड····पर बैठो।' वह बोलने में ज़रा अटक गया।

छोकरा मेरे बेड पर से 'पेशल' बेड पर कूद गया। बोला—'डाक्टर साब ! हम दोनों सरीखे।' वह जोर से हँसा।

'क्यों-क्यों ?' डाक्टर भी हँस दिया।

'हम दोनों तोतले हैं। मैं भी ऐसाई बोलता, तुम भी ऐसाई बोलते।' वह फिर जोर से हँसा।

'तुम्हारा नाम ?'

'हँसमुख।' उसने सिर पर हाथ रखते हुए कहा।

'हँसमुख ?' डाक्टर को भरोसा नहीं हुआ।

'हाँ-हाँ, हँसमुख अम्बाराम पंड्या गुजराती, गुजरात वाला।'

'उम्र ?'

'ये तो हमकू नई मालम।'

डाक्टर ने अंदाजिया तेरह साल लिख लिए। फिर कहा—'इस तख्ती पर लिखो।'

हँसमुख 'खिलल' की आवाज में जोर से हँसा। तकिये पर तख्ती रख कर पूछा—'मेरे बाप का नाम लिखूँ।'

'नहीं' डाक्टर बोला—'मैं कहता हूँ वह लिखो।'

'च्छा, बोलो तो डाक्टर साब।'

'मैं अपनी राजी-खुशी से....'

वह लिखने लगा।

'....अपना आपरेशन करवा रहा हूँ।'

'वा साब ! आपने बोला इस वास्ते करवा रिये हैं, हमारी राजी खुशी नई साब।' वह बोलकर फिर हँस दिया।

'हाँ-हाँ, लिख तो।....कोई नुक्सान होगा तो उसकी जिम्मेदारी मुझ पर है। बस, तुम्हारा कल आपरेशन हो जायगा।'

बात सुन कर वह हँसा, जैसे किसी ने उसे कल मिठाई मिलने की बात कह दी हो।

'आज तो हँस रहा है ये, कल होगा आॅपरेशन तो टें बोल जायगा।' राजा उसकी तरफ देख कर बोला।

'क्या टें-टू-टाँ-टाँ।' वह फिर जोर से हँसा और 'सुरर्रर' बोलता हुआ बाहर चला गया।

गर्मी बड़ी तेज थी और पूरे अस्पताल के मरीज घबरा रहे थे। पंखे हर वार्ड में थे। अँधेरा घिरा तो राजा ने बल्ब जला दिया, तभी 'खिलिल' हँसकर 'पेशल बेड' वाला हँसमुख आ गया। दुबला-पतला छोकरा था, उसने पंखा देखा और पेशल बेड पर से उछलकर पँखे का स्विच दबा दिया। हम चारों पुराने मरीज डरे। मैं तो कुछ

बोल ही नहीं सकता था, हाथ हिलाकर हँसमुख को पंखा बंद करने का इशारा किया। वह बोला—'अच्छे आदमी हो यार, तुमकू गर्मी नहीं होती ?'

राजा बोला— करो पंखा बंद !'

'करदे भैया बंद !' किशन भी बोला।

'नहीं करते।' वह पंखे के स्विच को दोनों हाथों से छिपाकर बोला और फिर हँसा।

'बात ऐसी है' राजा बोला—'यहाँ का नियम है कि बत्ती जलाओ या पंखा चला लो।'

'वा यार !' वह पहले हँसा, फिर बोला—'उजेला होय सो गर्मी नहीं होती क्या और पंखा चले तो उजेला नईं चइये क्या ?'

'वो तो सब ठीक है।' राजा ने जोर देकर कहा—'अभी नर्स देख लेगी तो नाराज होगी।'

'सिस्टर कायकू ऐसा बोलती हैं ?'

'उस पर मेट्रन नाराज होती है। वो सिस्टर को डबलड्यूटी (चार घंटे अधिक) कर देगी।'

'वा यार !' उसने हँसकर स्विच बंद कर दिया। फिर मेरे पलंग के पास से स्टूल उठाया और दरवाजे पर बैठ गया। 'सुर्रर्र' बोला और पंखा चालू कर दिया।

'क्यों बे ओ। बंद कर पंखा।' राजा चिल्लाया।

वह 'पें-पें' बोलता हुआ राजा के पास आया और उसके गले पर चमकते पसीने को अपने रूमाल से पोंछकर बोला—'पसीने में तर है और पंखा बंद''' पंखा बंद करो।' वह सारे शरीर को हिलाता रहा।

'तू तो आज आया है रे। हमको इकतालीस दिन हो गये इस वार्ड में। अभी सिस्टर नाराज होगी, उस पर इंचार्ज नर्स चिल्लाएगी और उस पर मेट्रन अंग्रेजी में गुस्सा होगी, मालूम है।'

'गुस्सा नईं, गुस्सा नईं।' वह हाथ फैलाए बिल्कुल गोल घूम गया। —'तुम सब आराम से पंखे की चकर-चकर-चकर हवा लो। मैं ज्हाँ स्तूल पे बैतता हूँ। सिस्तर आई कि किचि-चिक, ऊपर-नीचे, पंखा बंद। एँ ? जाता हूँ।' वह फिर 'सुर्रर्र' बोला और स्टूल पर जा बैठा। हमें उसकी बात जम गयी। ठंडी-ठंडी हवा आ रही थी। हम चारों फिर एक ही बेड पर बैठ गये और मेरे नाम सातवाँ पत्ता खोला गया।

सबेरे ही हँसमुख को मार्फिया का इन्जेक्शन लगा दिया गया और वह पलंग पर करवट बदलते हुए बोला—'यार, आँख में तो सब हिलता है।'

'अभी क्या हुआ है, आपरेशन तो होने दे।' राजा ने जोर से कहा।

'किसका आपरेशन ?' नर्स ने कमरे में घुसते हुए पूछा।

'हँसमुख का सिस्टर।'

'नहीं-नहीं। बड़े डाक्टर साब ने कहा कि आज इसका आपरेशन नहीं होगा। अगले शनिवार को होगा रे! तब तक यहाँ आराम से रहो।' सिस्टर कहती हुई चली गयी।

शाम तक मार्फिया का असर कम पड़ा। हँसमुख 'सुरुर्रर्र' की आवाज करता उठा। अँधेरा हुआ तो बल्ब जला दिया। उसने फिर स्टूल दरवाजे पर रखा और पंखा चला कर बोला—'मैं जब जोर से ग़ुँशूशा बोलूँ तो पंखा बंद कर देना, एँ। तुम तो पंखे की चकर-चकर-चकर हवा लो।'

हमने बड़े आराम से पत्ते खेलना शुरू किया। पाँचवीं बार जब मेरे नाम सातवाँ पत्ता खोला गया और दुर्री देखकर राजा जोर से हँसा तो हम देखते क्या हैं कि दरवाजे पर मेट्रन गुस्से में खड़ी है। अंग्रेजी में बोली—'कितनी बार कह दिया कि जब बल्ब जले तब पंखा नहीं चलना चाहिए।'

हम अपने-अपने पलंग पर भागे।

मेट्रन इंचार्ज नर्स से बोली—'इस कमरे में कौन सिस्टर हैं।'

'आशा।'

'बुलाओ उसे।' मेट्रन ने पंखा बंद करते हुए कहा।

आशा डरती हुई आई तो मेट्रन ने उसे घूरकर देखा—तुमने इस वार्ड के लोगों को हिदायत नहीं दी ?'

आशा चुप खड़ी हम लोगों को देखने लगी। हँसमुख कहीं नजर नहीं आया। मैं गुस्से से जल-भुन गया।

'तुम्हारे वार्ड के लोग हमेशा गुस्ताखी किया करते हैं।' मेट्रन आशा को देखकर बोली—'अब इन्हें ठीक तरह समझा दो।····देखो ये स्टूल वार्ड से बाहर पड़ा है. और इसके लिए तुम्हें तीन दिन की डबल-ड्यूटी की सजा।'

मेट्रन चली गयी।

आशा सिस्टर के मन पर क्या गुजरी, कितना गुस्सा आया, किस तरह उसने डाँट सही, यह तो समझ न पड़ा, पर उसका चेहरा देखकर हम सब रुआँसे हो गये।

'आखिर ये पंखा किसने चलाया था बताओ राजा! बक्षी तुम्हें मालूम है ?'

राजा ने पेंशल बेड वाले छोकरे का नाम बताया कि वह 'सुरुर्रर्र' बोलता हुआ कमरे में आ गया।

‘कहाँ चला गया था रे ! सब चौपट हो गया । बड़े कहने लगे शूँशाशी बोलूं तो पंखा बँद कर देना । मर गया था जब मेट्रन आई थी ?’ राजा तेज हो गया ।

‘क्या-क्या !’ हँसमुख के चेहरे पर से हँसी उड़ गयी ।

‘हमें नौकरी करने दें भैया !’ सिस्टर ने उससे कहा—‘देख अब तेरे कारण हमें तीन दिन की डबल-ड्यूटी देना पड़ेगी ।’

‘एँ-ऐसा हो गया । मैं तो उस कमरे झगला हो गया था तो चला गया था देखने । साला पंखा....!’ उसे गुस्सा आ गया—‘इसके वास्ते तुमकू दबल देना पलेगी । मैं-मैं, साले पंखे को बन्द कर दूंगा ।’

सिस्टर चली गयी । वह छोकरा आँसू-आँसू हो गया, पर थोड़ी ही देर में चुटकी बजाने लगा और ‘सुर्रर्र’ बोलता हुआ बाहर चला गया ।

दूसरे दिन हँसमुख पंखे को देख-देखकर गालियाँ देता रहा—‘साला कहीं का। सिस्तर को दबल करवा दिया । मेतून आई थी तो उल्लू तू चकर-चकर-चकर करता खुट्ट से रुक जाता । तेरे बाप का क्या जाता था, सिस्तर को दबल होगिया अब ।’ वह जाने कहाँ से एक लोहे का टुकड़ा उठा लाया, फिर पंखे को देखकर बोला—‘साले तू कौव्वा होता तो... तो तेरे पंख चुकुर-से सब कटांग कर देते, फिर खाली मेत्न के माथे जैसा हिलता ।’

दुपहरी में गर्मी बहुत तेज थी, पर हमने पंखे की तरफ देखा भी नहीं । सोच लिया—‘कुछ दिनों की बात है, गर्मी में ही रह लें । हमारे कारण बेचारी सिस्टर को डबल-ड्यूटी हो यह बात अब न होगी ।’

शाम के समय हम लोग बरामदे में निकल आए, तब हँसमुख ने पूछा—‘इस पंखे की हवा से मेत्न के जमें हुए बाल बिखर जाते हैं क्या, जो सूरी-पूरी होती है सिस्तर पे ।’

हमने कोई जवाब नहीं दिया तो वह अकेला ही कमरे में बैठा रहा । एक बार जोर से बोला—‘साले पंखे, तेरी मुंडी दबा देऊँगा । तेरे बाप के बाप के बाप को, सबको कुचुंग कर देऊँगा ।’

अंधेरा घिरा और राजा ने स्विच दबाया तो बत्ती नहीं जली । दूसरे वार्डों से आवाज आने लगी—‘लाइट नहीं है, लाइट नहीं है ।’

अस्पताल के लोग सुधारने में लगे । एक घंटा, दो घंटे, तीन घंटे बीत गये पर बल्ब नहीं जले । सब लोग परेशान हो गये । उजेला नहीं । हवा नहीं । इस तरह तो मर जाएंगे । सारे मरीज बरामदे में घूम रहे थे । मेट्रन ने फोन किया और एक इलेक्ट्रिशियन को बुलवाया । वह बेचारा तीन घंटे तक परेशान हुआ । टॉर्च ले-लेकर सारे वार्डों में घूमता फिरा ।

हमारे वार्ड में वह आया, तब हँसमुख अँधेरे में अपने पेशल-ब्रेड पर बैठा हँस रहा था। पंखे को देख कर धीरे से बोला—'तू बंद है तो मेत्न के जमे हुए बाल नहीं बिखरेंगे।'

इलेक्ट्रिशियन ने टॉर्च से उजाला किया और चिल्लाया—'यह देखिए, यह देखिए।' लोग दौड़कर देखने आये। मेट्रन भी नर्सों के साथ थी।

'क्या बात है ?' मेट्रन ने पूछा।

'इस वार्ड के किसी आदमी ने तार काट दिये हैं, और पंखे के स्विच को मोड़ दिया है।' इलेक्ट्रिशियन बोला कि हमारे प्राण सूख गये।

'बुलाओ आशा को !'

आशा सिस्टर दौड़ी आई। मैंने राजा की तरफ देखा, राजा ने किशन की तरफ देखा, किशन ने मेट्रन को देखा। तभी हँसमुख पर हमारी निगाह पड़ी।

'सिस्टर ! तुम इस वार्ड के लोगों से कुछ नहीं कहतीं। ये लोग हमेशा गुस्ताखी करते रहते हैं।' मेट्रन जोर से बोली—'देखा तुमने, किसी ने यहाँ के तार काट दिये हैं, स्विच तोड़ दिया है।'

'तो मैं क्या करूँ मैडम ?' आशा सिस्टर घबरा गयी। आगे बढ़ कर उसने पूछा—'किसने किया ये काम ? तुमने राजा ? तुमने बक्षी ? तुमने किशन ? तुमने....?'

हँसमुख पेगल-बेड पर से कूद कर सामने खड़ा हो गया 'ये तार तोरने का काम सिस्तर मैंने किया।'

मेट्रन बोली—'नाटी, व्हेरी मिस चिह्वियस चेप।'

हम लोग गहरे में डूब गये। मेट्रन फिर बोली—'इसके लिए तुम्हें पन्द्रह दिन की डबल ड्यूटी।'

आशा सिस्टर के मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला, पर हँसमुख तेजी से आगे बढ़ कर बोला—'ये नई मेतन साब ! दबल नहीं करो। वो कल पंखा चलाया था और सिस्तर को सजा मिली थी, इस वास्ते, इसी वास्ते मैंने-मैंने ये काम किया था कि पंखा चलेगाई नईं, तो हम चलायँगे नईं। वो चकर-चकर चलता था तो मन हो जाता था।'

मेट्रन रुक गयी, पर झिड़क कर बोली—'भाग जा छोकरे। ये मरीज है या शैतान ? भाग जा, जा !'

हम लोग तो देखते ही रहे। वह अन्दर गया। तख्ती को बाहर ले गया। फिर वहीं रख दिया उसे। थाली-लोटा उठाया।

'कहाँ जा रहा है रे ?' आशा सिस्टर ने पूछा।

'कहीं नहीं सिस्टर ! साला पंखा, सिस्तर तुमकू पन्दरा दिन दबल करना पड़ेगा।' अँधेरा था, पर आवाज से ऐसा लगा कि हँसमुख रो रहा है।

'जा अपने बेड पर !' वह चला गया।

करीब एक घंटे बाद बिजली जल गयी। मैंने स्विच दबाया। पेशल बेड खाली था।

'शायद चला गया छोकरा।' राजा ने कहा।

'किसे पता ?' उसकी तख्ती तो रखी है। किशन ने उसकी तख्ती देखी और चौंका—'ये क्या ?'

'क्या है ? हँसमुख इसमें कुछ लिख गया है क्या ?'

'हाँ-हाँ, ये देखो ?'

हम सब ने पढ़ा, लिखा था—''मैं अपनी राजीखुशी से अपना आपरेशन नहीं करवा रहा हूँ। कोई नुकसान होगा तो उसकी जिम्मेदारी तुम पर है।' उसने बड़ी सफाई से लकीर खींच कर ऊपर की सतर में 'नहीं' जोड़ दिया था और 'मुझ' को काट कर 'तुम' लिख दिया था।

पेशल बेड पर साफ सफेद चादर बिछी हुई थी। बल्ब जल गया था और पंखा बन्द था, जैसे हँसमुख की याद में अब कभी वह चक्र-चक्र-चक्र नहीं चलेगा।

३, व्यास कला, इन्दौर

प्राणों के दीप जलाता हूँ

—श्री भीष्मसिंह चौहान—

प्राणों के दीप जलाता हूँ।

अपना उद्धार नहीं, मैं तो मानवता का उद्धारक हूँ,
अपने जीवन का नहीं, अपितु जन जीवन का ही गायक हूँ,
सब को जीने के स्वत्व और अधिकार दिलाने आया हूँ,
बुझते प्राणों में एक बार नव-ज्योति जलाने आया हूँ,
वसुधा को स्वर्ग बनाने का जग को मैं पाठ पढ़ाता हूँ,
पशुता की जगह मनुजता का सब में विश्वास जगाता हूँ,
तन, मन, धन, जीवन सबका ही बलिदान किया है, करना है,
अभिशापों को, वरदानों में बदला है, और बदलना है,
मानव का मौन मुखर करने शब्दों के शंख बजाता हूँ,
प्राणों के दीप जलाता हूँ।

जड़वाद जगत से, जड़ता का अस्तित्व मिटाने आया हूँ,
इन रक्त मांस प्रतिमाओं की पूजा करवाने आया हूँ,
निर्बल श्वासों को गतिमयता धड़कन वह देने आया हूँ,
आशा के अंकुर फूट उठें, वह बीज उगाने आया हूँ,
परिचय मेरा उस पीड़ा से, जिसमें शोषण की आहें हैं,
परिचय मेरा उस प्राणी से, जिसमें दुख लिये कराहें हैं,
जो अपने हाथों से अपनी किस्मत में आग लगाते हैं,
वह मेरी लोह-लेखनी से पथ अपना नया बनाते हैं,
मंजिल से लौटे राही को
मंजिल तक मैं पहुँचाता हूँ,
प्राणों के दीप जलाता हूँ—

सागोरिया सदन, लश्कर

सान मार्कों का चौराहा

—श्री रामसिंह तोमर

वेनिस संसार में एक अनोखा नगर है। पिछले पाँच वर्षों में कितनी बार वेनिस नहीं आया हूँ ! हर बार मैंने इस नगर को अधिकाधिक पसन्द किया है। वेनिस में नहरें और पानी की नालियाँ ही सड़कें हैं। प्रधान मार्ग है कानाले ग्रान्दे (ग्रॉण्ड केनाल—बड़ी नहर)। बसों और ट्रामों के स्थान पर नौकाएँ चलती हैं। कानाले ग्रान्दे के दोनों ओर प्रधान भवन हैं—प्रदर्शनालय हैं और बड़े-बड़े होटल हैं। इतालिया सब मिलाकर बहुत ही सुन्दर देश है। प्रत्येक नगर की अपनी कोई न कोई विशेषता है, इतिहास एवं कला की दृष्टि से कोई न कोई महत्त्व है। इतालवी अपने देश की सांस्कृतिक समृद्धि के प्रति सजग हैं। कानाले ग्रान्दे में सैर करते हुए एक इतालवी से पूछा—आप कहाँ के हैं ? उन्होंने कहा—'ऊदीने का, और कहने लगे कि कानाले ग्रान्दे संसार का सबसे सुन्दर मार्ग है।' यह चाहे सच न हो, किन्तु संसार का सबसे विचित्र मार्ग तो हो ही सकता है।

वेनिस में कला के अनेक संग्रह हैं। उनके साथ ही अनेक महत्त्वपूर्ण प्रदर्शन होते रहते हैं, जिनमें से कुछ ने अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त करली है। चलचित्रकला विषयक अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी, चित्रकला विषयक द्विवार्षिक प्रदर्शनी, वेषभूषा विषयक प्रदर्शनी तो अब ऐसी संस्थाएँ बन गयी हैं कि संसार के अनेक राष्ट्र इनमें भाग लेते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक कला-प्रदर्शन होते रहते हैं। अभी ज्योर्ज्यो के और उनके समकालीन चित्रकारों के चित्रों की प्रदर्शनी हो रही है। ये तो हैं अस्थायी प्रदर्शन। स्थायी वेनिस भी तो अपने आप में कोई कम महत्त्वपूर्ण प्रदर्शनी नहीं है। सान मार्कों का चौराहा नगर का प्रधान केन्द्र है। सान मार्कों का गिरजा प्रधान आकर्षण है। वाइजेंशियन शैली के जड़ाऊ काम की चित्रकला का यह अद्वितीय स्मारक कहा जा सकता है। इसके समीप प्रसिद्ध इकाले भवन है जिसकी शैली गोथिक-लोम्वार्द शैलियों का बहुत ही समन्वयपूर्ण मिश्रण है। सान मार्कों के सामने विशाल चौराहा है जहाँ दिन में यात्री कबूतरों को दाना चुगाते दिखाई देते हैं। दो विशालकाय जलपान घर हैं, जहाँ हर समय श्रुतिमधुर संगीत होता रहता है। यात्री थक तो सकता ही नहीं। प्रातः सात बजे से लेकर रात के २ वजे तक बहुत ही चहल-पहल और रौनक रहती है। जलपान की व्यवस्था करने वाली दूकानों की कुर्सियों पर बैठ कर कोई देखे तो मानव के अनेक नमूने देखे जा सकते हैं, संसार के विभिन्न कोनों से आने वाले लोग। विचित्र मैत्री स्थल है सान मार्कों का चौराहा ! वेनिस का पूर्व के लिए एक सन्देश है। शताब्दियों पहले एक वेनिसवासी पूर्व के लिए एक जिज्ञासा लेकर रवाना हुआ था। पूर्व

को जानने के लिए उसके मन में कौतूहल था। उस काल की असुविधाओं की चिंता न करते हुए, वर्षों के भ्रमण के पश्चात वह चीन तक पहुँचा और वहाँ रहकर फिर जलमार्ग से लौटा। अनेक प्रकार के अनुभव लेकर वह अपने देश आया और पश्चिम के लोगों को पूर्व के रीति-रिवाजों के सम्बन्ध में कई शतियों के व्यवधान के पश्चात उसने सीधी, प्रत्यक्ष देखी जानकारी दी। वेनिस की एक गली में कुछ मकान हैं। उनमें से एक मकान के ऊपर लिखा है, जिसका आशय है—जहाँ यह मकान है, वहीं उस महान परिव्राजक का मकान था जो शतियों पहले पूर्व के लिए रवाना हुआ था। गत वर्ष उस यात्री मार्को पोलो की ७०० वीं स्मरण तिथि मनाई गयी थी। उनकी कृति 'इल मिलियोने' के कुछ संस्करण भी प्रकाशित किये गये थे। वेनिस का पूर्व के देशों के साथ विशेष रूप से व्यापारिक सम्बन्ध रहा है।

वेनिस निवासी परम्पराओं को नहीं छोड़ना चाहते। यदि कोई मकान गिर जाता है तो उसकी जगह नया मकान बनाने के लिए काफी विचार किया जाता है। उसकी शैली किस प्रकार की हो, इस पर बहुत ध्यान रखा जाता है। वेनिस के निवासी वेनिस को छोड़ कर बाहर जाना पसंद नहीं करते। वेनिस के पास मेस्त्रे और मनघेरा नये नगर बस गये हैं, जहाँ नयी शैली के मकान हैं। लेकिन असली वेनिसवासी वहाँ नहीं जाना चाहेगा। उसे पुरानी शैली, वेनिस की छोटी गलियाँ, गोन्दोले (छोटी नौकाएँ) पसन्द हैं। एक नौका में एक महिला किसी से बात कर रही थी कि वेनिस के मकान तो तारान्तो (दक्षिण इटली का नगर) जैसे दिखते हैं। यह सुन कर एक वेनिस निवासी कहने लगे—'सचमुच, नयी शैली के मकान बनाना वेनिस के वातावरण के अनुकूल नहीं है। वेनिस की तारान्तो से तुलना करना उसका अपमान करना है।'

वेनिस में जल्दी करने की आवश्यकता नहीं है। गलियों में कोई भी वाहन नहीं चल सकता, साइकल भी नहीं। सड़कें सँकरी हैं, अतः सदा दर्शकों की भीड़ रहती है, पैदल भी दौड़ कर नहीं चला जा सकता। केन्द्र में पहुँचने के लिए पहले गोन्दोला लेना चाहिए, जो बड़ी नहर (प्रधान मार्ग) पर ले जा सकेगा। बड़ी नहर में दो प्रकार की नौकाएँ हैं—एक ऐक्सप्रेस और दूसरी पैसिंजर। पैसिंजर सब जगह रुकती है, ऐक्सप्रेस केवल महत्त्वपूर्ण स्थानों पर। आवश्यकता पड़ने पर टैक्सी नौकाएँ भी ली जा सकती हैं। ये नहरें शताब्दियों से वेनिस की सड़कें रही हैं। जन्म, विवाह, मृत्यु, सभी प्रकार के जलूस नौकाओं में ही होकर नहरों में निकलते हैं। शीतकाल और पतझड़ में जब बाहर के यात्री कम संख्या में आते हैं, तब रात को जल्दी ही गलियाँ सूनी पड़ जाती हैं; जहाँ-तहाँ कुछ बिल्लियाँ दिखाई देती हैं—जो व्यथा, प्रेम, निराशा, निर्ममता अपनी आँखों से व्यक्त करती हुई वेनिस को और भी उदास बना देती हैं।

(शेष आगामी पृष्ठ के नीचे)

गीत

— श्री वेदप्रकाश वटुक —

याद ही केवल शेष रही।
आदि अन्त जो कुछ भी समझो व्यथा अशेष यही,
प्यार की स्मृति ही शेष रही।

कलियों के खिलने से पहले रूठ गया मधुमास,
आवे स्वाँति कि पहले ही पावस हो गयी उदास,
विकल द्वितीया के चन्दा को देखे मेघ मही।

नयनों ने मिलते ही चाहे कहना अत्याचार,
वाणी रही अशब्द अधर फड़के यद्यपि हर बार,
भाषा मिली कि जब भावों में गति का लेश नहीं।

व्रीड़ा का अवगुण्ठन, कभी भावना का अतिरेक,
कभी हिमाचल सी प्रसुप्ति, तो कभी सिन्धु उद्रेक।
यूँ कहने को बात हजारों, गयी न एक कही।
याद ही केवल शेष रही।

२२ एसमाउंट रोड, लन्दन नं० १६

(गत पृष्ठ का शेष)

दुनियाँ बाहर कितनी बदल रही है, बदलती जाएगी, लेकिन वेनिस का रंग एक-सा ही रहेगा। गोन्दोले और उन पर सैर करने वाले विदेशी यात्री, सुन्दर वसन्त और ग्रीष्म हर वर्ष आएंगे, पानी के ऊपर रखे जाने वाले मंचों पर नाना प्रकार की रोशनी के बीच गान और नृत्य का आवर्तन होता रहेगा और ग्रीष्म के तप्त सूर्य के प्रकाश में लीरो के समुद्रीतट पर बाल, युवक एवं वृद्ध प्रति वर्ष जल-क्रीड़ा करते रहेंगे। वेनिस का रंग निराला है, जिसमें सभी लोग आ कर एक रंग हो जाते हैं।

एशियन एसोसिएशन इटली, वेनिस

लघुकथा--

हिली-मिली दो बालें आईं

—श्री महेन्द्र फुसकेले

—"हिली-मिली दो बालें आईं ।
फोड़-फाड़ पत्थर से मारीं ।
कोई ले राजा, कोई ले रानी ।"
—"रानी ।"
—"हिली-मिली दो बालें आईं ।
फोड़-फाड़ पत्थर से मारीं ।
कोई ले चन्दा, कोई ले सूरज ।"
—"चंदा ।"

"हिली-मिली ।" और इस प्रकार दोनों खिलाड़ियों ने अपने-अपने साथी चुन लिये । एक ने काँटे चुनकर दूसरे को फूल दे दिये, और दूसरे ने खुद मुसकानों वाला चंदा लेकर लपटों वाला सूरज दूसरे को दे दिया । खेलने वाले दो टोलियों में बँट गये और खेल प्रारंभ हो गया ।

कोई जीता और कोई हार गया । हारने वाला फिर हारा, तो जीतने वालों ने प्रसन्नता से तालियाँ बजाईं । और फिर, हार जीत पर हावी हो बैठी । हारा हुआ जीत गया, और जीतता ही गया ।

और मौत की हार तथा जिंदगी की जीत के साथ खेल खत्म हो गया । जिंदगी सबेरे के सूरज-सी मुस्काती, उछलती-कूदती चल पड़ी । मौत पीछे हो ली । पीछे-पीछे चलती ही गयी ।

जिंदगी ने फूलों को देख कर अट्टहास किया । मौत खिसिया गयी और जिंदगी से भिड़ गयी । कभी मौत ऊपर आई तो कभी जिंदगी । जीत ने हार से "चीं" कहलवाई । हार ने "चीं" बोल दी । जिंदगी की जीत पर फिर तालियाँ बजीं । जीत फिर आगे बढ़ी । हार फिर पीछे चली । जिंदगी ने मुड़ कर पीछे देखा और आगे बढ़ कर मुसकरा कर मौत को गले से लगा लिया । मौत स्वयं अपने में ही मर गयी और जिंदगी मुसकराती आगे चल दी । अब मौत उसके पीछे नहीं थी, आगे नहीं थी । वह जिंदगी में घुल कर मिल गयी थी । अब वह हार नहीं थी, मौत नहीं थी ।

• सराफा बाजार, सागर

संस्कृत-काव्य की एक प्रतिभा—

विजया

—श्री अनवर आगेवान

यह कहने में कोई अतिशयोक्ति न होगी कि भारतवर्ष में अति प्राचीन काल से ही स्त्रियों ने साहित्य-निर्माण में अमूल्य योग दिया है। वेदकाल से अब तक हजारों कवयित्रियों के नये-नये नाम दृष्टिगोचर हो रहे हैं। घोषा, माधवी, रेखा, शशिप्रभा, बिज्जा, मारुला, विज्जका और विजया आदि कवयित्रियाँ अपने युग में प्रसिद्ध थीं। किन्तु आज उनमें से इनेगिने नाम ही शेष रह गये हैं। कौन किस युग में थी, उनके माता-पिता या पति कौन थे, उनकी रचना कैसी थी, आदि सभी बातें महाकाल के मुख में ग्रस्त हो गयी हैं। केवल थोड़ी बहुत स्त्रियों की रचना के बिखरे फूल मिलते हैं, उसके अतिरिक्त कुछ नहीं।

विजया कौन थीं और कब उत्पन्न हुई थीं, इसका कुछ पता नहीं चलता। उनकी काव्य-रचना कैसी सुन्दर एवं सरस थी, और वे कैसी विदुषी थीं, यह निम्न श्लोक ही बताएगा—

सरस्वतीव कार्णाटी विजयांका जयत्यसौ।
या वैदर्भगिरां वासः कालिदासादनंतरम्॥

—कर्णाट देश की सरस्वती के समान है विजया। कालिदास के पश्चात वैदर्भी रीति इन्हीं की कविता में पाई जाती है।

यह प्रशंसा एक स्त्रीकवि के लिए कम गौरव की बात नहीं है। भारत की महिलाएँ केवल पातिव्रत्य एवं कष्टसहिष्णुता में ही प्रसिद्ध न थीं, किन्तु विद्या और प्रतिभा में भी अपना प्रतिद्वन्दी न रखती थीं।

अब इनकी कविता का आस्वाद लीजिए। नमूने के रूप में कुछ श्लोक दिये जाते हैं।

ग्रावाणो मणयो हरिर्जलचरो लक्ष्मीः पयोमानुषी
मुक्तौघाः सिकता प्रवाललतिकाः शैवालमंभः सुधा।
तीरे कल्पमहीरुहः किमपरं नाम्नापि रत्नाकरो
दूरे कर्णरसायनं निकटतस्तृष्णाऽपि नो शाम्यति॥

—हे समुद्र, तेरे पत्थर माणिक-मोती हैं, जलचर जीव कच्छप आदि हरि के अवतार हैं, जलमानुषी लक्ष्मी हैं, बालू मोती के ढेर हैं, सेवार मूंगे की लता हैं, जल अमृत है, किनारे के पेड़ कल्पवृक्ष हैं, और क्या कहें, नाम भी रत्नाकर है। किन्तु दूर

से कानों के लिए रसायन-सी ये सब बात सुन पड़ने पर भी, निकट आ कर देखा, तो तुम से प्यास भी नहीं बुझती, ऐसा खारी पानी है।

एक दूसरा उदाहरण लीजिए—

आमोदैस्तैर्दिशि दिशि गतैर्दूरमाकृष्यमाणाः
साक्षाल्लक्ष्मीन्तव मलयज द्रष्टुमभ्यागतास्म।
किं पश्यामः सुभग भवतः क्रीडति क्रोड़ एव
व्यालस्तुभ्यं भवतु कुशलं मुंच नः साधु यामः॥

—हे मलयज चदंन, दूर-दूर तक प्रत्येक दिशा में प्रसरित तेरी महक से आकर्षित होकर तेरी लक्ष्मी एवं शोभा को साक्षात देखने के लिए हम आए हैं। किन्तु क्या देखते हैं कि तुम्हारी गोद में तो सर्प क्रीड़ा कर रहे हैं। भाई, तुम्हारी कुशल हो, हमें छोड़ दो, हम कुशल के साथ यहाँ से चले जाएँ—यही बड़ी बात होगी।

उपर्युक्त श्लोक किसी राजा पर कहा गया है, जिसका नाम तो बड़ा है, किन्तु संगति दुष्टों की है।

बस, इस मधु-रस की एक प्रसादी और—

तप्ता मही विरहिणामिव चित्तवृत्तिः
तृष्णाध्वगेषु कृपणेष्विव वृद्धिमेति।
सूर्यः करैर्दहति दुर्वचनैः खलो नु
छाया सतीव न विमुंचति पादमूलम्॥

—गर्मियों में पृथ्वी विरहियों की चितवृत्ति के समानत तपी हुई है। मार्ग चलने वालों की प्यास सूम की तृष्णा के समान बढ़ती ही जाती है। सूर्य अपनी किरणों से इस प्रकार जलाते हैं, जैसे दुष्ट लोग दुर्वचनों से पीड़ा पहुँचाते हैं। पर छाया सती स्त्री की भाँति चरणों का परित्याग नहीं करती है।

शिवराजगढ़ (गोंडल, सौराष्ट्र)

तुम्हें क्या बताऊँ

— श्री रामराजसिंह —

किसी एक मधु आश को चिर सँजोए
चला आ रहा हूँ, तुम्हें क्या बताऊँ ?

गगन तो मनाता दिवस प्रति दिवाली
अवनि पर कसमकस नहीं एक खाली;
इसी एक दिन वर्ष-भर की अँधेरी
मिटाकर बढ़ाते सभी हैं उजाली !
अपना अँधेरा किन्हीं अंचलों में
छिपाता रहा हूँ, तुम्हें क्या बताऊँ ?

हँसो यार, हँस लो, न समझो पराया,
किसी एक मन का न कर दो सफाया !
नहीं भूल जाना तुम्हारे भवन में
हमीं ने कभी एक दीपक जलाया !
अँधेरे महल को मैं उजाला सजाने
कहाँ जा रहा हूँ, तुम्हें क्या बताऊँ ?

तुम्हें साथ चलना, करूँगा न वर्जन,
पीछे चलो या करो पथ-प्रदर्शन,
हमारा-तुम्हारा मिलन हो सके जो,
डिगेंगे न पग, लाख हो वज्र-तर्जन !
नहीं चल सकोगे ? मर्जी तुम्हारी,
मजा पा रहा हूँ, तुम्हें क्या बताऊँ ?

नया समाज, कलकत्ता

कहानी—

बड़ी-बड़ी आँखें

— श्री गोविन्दसिंह

अजन्ता की गुफाओं में अंकित नारियों के चित्रों के उन नेत्रों को कोई कैसे भूल सकता है, जो आम की फाँक से लम्बे और विशाल हैं। क्या किसी नारी के ऐसे नेत्र होना सम्भव है? चित्रों को देखते समय मेरे मन में प्रशन उठा था, पर आज प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। मेरे सामनें जो यह लड़की बैठी है, उसके नेत्र ठीक वैसे ही हैं। उसे देख कर मुझे अजन्ता के उन चित्रों की याद आ रही है, जिन की अनेक प्रतिलिपियाँ मेरे संग्रह में हैं।

सुनैना नाम है इस लड़की का। सचमुच इसका नामकरण सोच-समझ कर ही किया गया है।

सुनैना को आज से पढ़ाने आया हूँ मैं। अंग्रेजी में बड़ी कमजोर है। कहने को तो दरजा चार में पढ़ रही है, पर उसे मामूली से मामूली अंग्रेजी शब्दों का अर्थ नहीं मालूम।

लम्बे नेत्रों वाली यह लड़की दो चोटियाँ गूँथे फ्राक पहने बड़ी सुन्दर लग रही है। ग्यारह-बारह साल की इस लड़की को देखकर मैं अगले दो-चार साल के उसके रूप की कल्पना में डूबा हुआ हूँ। जिस चपलता के साथ वह आज मुझ से बातें करती है, जिस निःसंकोच भाव के साथ वह आज मेरे पास बैठती है, क्या दो-चार साल बाद भी इसका यही रूप रहेगा? नहीं, उस समय वह लजाकर दूर ही दूर से कहेगी—"नमस्ते मास्टर सा'ब।" और तब मैं उसे आज की तरह आँखें गड़ा कर न देख सकूँगा।

सुनैना मेरे एक मित्र के मित्र की लड़की है। मेरे मित्र ने एक दिन बात ही बात में कहा—"शाम के वक्त बेकार यहाँ-वहाँ घूमते हो। चलो, मैं एक ट्यूशन दिलवा दूँ। फोर्थ क्लास की लड़की है। एक घंटा पढ़ा दिया करना...."

"लेकिन स्कूल से आने के बाद तो मैं इतना थक जाता हूँ कि...."

"नखरे मत करो।" मेरे मित्र ने कहा—"बैठे बिठाए जेबखर्च निकल आएगा। आपस की बात है। महीने के पन्द्रह रुपया ले लेना।"

मित्र का अनुरोध मैं टाल न सका। सुनैना को पढ़ाने आ गया। प्रतिदिन साँझ को एक घंटा। आज पहला ही दिन है, पर एक ही दिन में यह लड़की मुझ से इतनी घुल-मिल गयी कि जैसे हमारी वर्षों से जान पहचान हो।

आते ही उसने कहा—"मास्टरसा' ब ! मुझे मारिएगा तो नहीं ?"

मुस्करा कर मैंने कहा—"बदमाशी करोगी तो पीटूँगा भी। ठीक से पढ़ोगी-लिखोगी तो टॉफी दूंगा।"

"टॉफी !" सुनैना ने मुँह बिचकाकर कहा—"बड़ी रद्दी चीज है। माँ कहती है, खाने से दाँतों में कीड़े पड़ जाते हैं।"

समझ गया मैं। लड़की बहुत बातूनी है। इसकी बातों में रहूँगा तो बातों ही बातों में यह एक घंटा गुजार देगी, इसीलिए मैंने डाँटकर कहा—"चलो बैठो ! पढ़ो !"

अब वह चुपचाप मेरे सामने बैठ कर पढ़ रही है। कुछ शब्दों के उच्चारण वह मन ही मन याद कर रही है। इसके बाद मुझे सुनाएगी और मैं चुपचाप इस लड़की को देख रहा हूँ। अद्भुत हैं इसके नेत्र। गजब की आकर्षण शक्ति है इन नेत्रों में। ऐसे नेत्र सचमुच हृदय बेध जाते हैं। नेत्र हृदय बीध देते हैं, बात सच है।

हलका नीला रंग लिये इसके सागर जैसे नेत्रों में डूब जाना चाहता हूँ मैं। एक टक देख रहा हूँ। ग्यारह-बारह साल की इस लड़की में कितना आकर्षण है। नेत्रों के अनुरूप इसकी बनावट भी है। जब इन नेत्रों में कटाक्ष होगा, तब क्या होगा....? अपने इस विचार से सिहर उठता हूँ मैं। आँखों के आगे भविष्य का एक चित्र झूल जाता है। उस चित्र में मैं चिर-यौवनमयी उर्वशी को देखता हूँ। यही बालिका उर्वशी के रूप में सामने है और हजारों इसके प्रेम के भिखारी बनकर खड़े हुए हैं। मैं दूर से यह सब तमाशा देख रहा हूँ। दूर से इसलिए कि मैं वृद्ध हो गया हूँ। मेरी कमर एकदम झुक गयी है। दाँत गिर गये हैं और केश श्वेत हैं।

आज भी मेरी अवस्था कम नहीं है। इस समय मैं अपने जीवन के सैंतालीसवें पतझड़ को देख रहा हूँ।

"मास्टरसा' ब ! इसका क्या अर्थ है ?" सुनैना कहती है। मैं चौंक पड़ता हूँ। देखता हूँ। उसकी छोटी-सी प्यारी-प्यारी अंगुली अंग्रेजी के एक शब्द पर है। लव।

"लव !" मैंने कहा है।

"लव ! इसका मतलब, मास्टरसा' ब !"—सुनैना के बड़े-बड़े नेत्र मेरी ओर उठते हैं, एकदम निष्कपट भाव से, बालसुलभ चंचलता से भरे हुए। मेरे नेत्र टकराते हैं। मैं सिहर उठता हूँ, पर सुनैना स्थिर है।

"लव ! लव का अर्थ है प्यार !" मैं उसे अर्थ बताकर सोचता हूँ। क्या आगे कभी सुनैना इसी प्रकार पूछ सकेगी—"मास्टरसा'ब ! लव का अर्थ क्या है ?" सुनैना फिर पढ़ने में लग जाती है और अपने आप पर मुझे घृणा होती है कि एक अबोध

बालिका के विषय में अभी से मैं यह क्या सोच रहा हूँ। कहाँ सुनैना और कहाँ मैं ? दोनों की अवस्था में चारगुना अन्तर है।

सुनैना बड़ी चंचल, बड़ी नटखट है। खेल और बातों में ही उसका मन अधिक लगता है। पढ़ने-लिखने से वह दूर भागती है। कुछ याद करने या कोई काम में उसे दे जाता हूँ, तो वह उससे होता ही नहीं है। उसकी इस शरारत पर दो-एक बार खीझकर मारने के लिए मैंने हाथ उठाया है, पर हर बार उसके नेत्रों से मेरी दृष्टि टकराते ही हाथ रुक जाता है।

असमंजस में हूँ। ऐसी लड़कियों के साथ क्या किया जाय ? कुछ मनोवैज्ञानिक उपाय से काम लूँ। लड़कियाँ-लड़कियाँ एक दूसरे से जलती हैं। इसी ख्याल से मैं उसकी सहेली वन्दना की प्रशंसा करता हूँ—"देख ! तुझसे अच्छी वन्दना ! कैसी होशियार है वन्दना ! जो पूछो बतला देती है।"

"तो जाइए ! उसी को पढ़ाइए ना !" सुनैना रूठ जाती है। उसका रूठना इतना अबोध है कि बरबस मैं हँस पड़ता हूँ।

रूठ जाने पर भी सुनैना के नेत्र पुस्तक पर हैं। फिर मैं एक टक उसके चेहरे की ओर देखने लगता हूँ। कितनी सुकुमार, कितनी कोमल है यह लड़की। त्वचा नवनीत-सी मुलायम है। बड़े सहेज कर रखना होगा इस लड़की को···और मैं सोचता हूँ···यदि यह लड़की मेरी होती तो मैं हजारों खूबसूरत लड़कों में से चुनकर इसके वर की तलाश करता। हर प्रकार से योग्य। भले ही इसके लिए मुझे अपने आपको बेच देना पड़ता।

ऐसी ही जाने कितनी बातें मैं सोचता हूँ।

समय समाप्त होने पर मैं जाने के लिए खड़ा होता हूँ, तो सुनैना मेरा हाथ पकड़ कर मेरी गोद में बैठ जाती है। मेरा शरीर पुलिक हो उठता है। वह कहती है—"मास्टरसा'ब ! वन्दना अच्छी लड़की नहीं हैं। आप उसकी तारीफ क्यों करते हैं ?"

"क्योंकि वह लिखने-पढ़ने में तुमसे ज्यादा होशियार है।" मैं कहता हूँ। किन्तु सुनैना के स्पर्श से मेरा हृदय आत्मविभोर हो जाता है। मेरी देह गद्‌गद् हो रही है। सदा की तरह दो चोटियाँ गूँथे और फ्रॉक पहिने है सुनैना।

"पर आप उसे मत पढ़ाइएगा।"

"अच्छा नहीं पढ़ाऊँगा।"

"विद्या कसम !"

"विद्या कसम।"

मुझे शपथ देकर वह उठ जाती है और फिर कहती है—"आज मैंने वन्दना के साथ एक नया नाच सीखा है।"

"कैसा ?"

"मैं आपके सामने नाचूँगी नहीं। अम्मी नाराज होंगी। हाँ, चुपचाप दिखला सकती हूँ।"

"........"

"आप मन्दिर में चलिए। वहीं दिखलाऊँगी, पर देखिए किसी से कहियेगा नहीं। वन्दना ने मुझे छोड़कर यह नाच न किसी को सिखलाया है, न दिखलाया है।"

"........"

सुनैना चली जाती है। उसके बचपन पर मैं हँस पड़ता हूँ। सोचता हूँ, कौन इसका नाच देखे, पर वह मन्दिर में प्रतीक्षा करने को कह कर गयी है। उसका मन टूट जायगा। फिर सोचता हूँ, इस छोटी-सी लड़की को यह सब बुद्धि कहाँ से आ गयी ? क्या बड़ी होने पर भी वह ऐसे ही किसी को मन्दिर में बुला कर नाच दिखला सकेगी ?

मन्दिर में पहुँचता हूँ, देखता हूँ, सुनैना आ रही है। इस समय फ्रॉक के स्थान पर आसमानी रंग की साड़ी पहने है और उसके केश खुले हुए हैं। साड़ी में वह कुछ लंबी और बड़ी मालूम पड़ रही है। सावन की घटाओं की भाँति उसके केश बिखरे हैं। मंत्रमुग्ध-सा मैं देखता रह जाता हूँ। सुनैना का यह रूप मेरे तार-तार हिला देता है।

"आप यहाँ खड़े होकर देखिए !" वह कहती है। फिर नाचने लगती है। अद्भुत मोहक है उसका नृत्य ! लगता है, अजन्ता की गुफा के चित्र की कोई नर्तकी भागकर यहाँ आ गयी है और मेरे सामने नाच रही है।

मंत्रमुग्ध-सा उसका नृत्य देखता हूँ। उसके बड़े-बड़े नेत्र नाना प्रकार के हाव भावों से मेरा हृदय बेध जाते हैं।

नृत्य समाप्त होने पर मैं उसे विस्फारित आँखों से देखता हूँ। उसके रूप को पी जाना चाहता हूँ। महुअर के संगीत को सुनकर जिस प्रकार विषधर अपने विषैले रूप को और स्वयं को भी भूल जाता है, वैसे ही नृत्य अवलोकन में मैं अपने को भूला हुआ था। महुअर का संगीत समाप्त होते ही—

"जाती हूँ मास्टर सा'ब ! देर हो गयी। माँ खोजती होंगी।" कहकर वह भाग जाती है।

"......."

"वन्दना को पढ़ाने कभी मत जाइएगा, मास्टर सा'ब।" दूर जाकर वह

कहती है और बगीचे की मेंहदी की झाड़ियों के बीच खो जाती है, उसी प्रकार जैसे चम्पा का खुशबूदार फूल अपनी पत्तियों में खोया रहता है।

× × ×

आज आठवाँ दिन है। सुनैना को पढ़ाने नहीं जाता। पन्द्रह रुपये मेरे हाथ पर रखते हुए सुनैना के पिता से मुझे उत्तर मिल चुका है—"सुनैना की पढ़ाई अब जारी न रहेगी।" बस! इतना ही कहा उन्होंने। "क्यों जारी न रहेगी?" यह न मैंने ही पूछा और न ही उन्होंने अपनी ओर से कुछ बतलाया। केवल एक ही महीने में सुनैना को पढ़ा सका। आठ रोज से मन उदास है। सूना-सूना सा लगता है।

मन को समझाना मुश्किल है। सुनैना को पढ़ाना छोड़ चुका, तो क्या हुआ, सुनैना के पिता से तो मित्रता है ही। उनसे मिलने के बहाने मैं सुनैना को देख ही सकता हूँ। मैं उसके बड़े-बड़े लम्बे नेत्र देखना चाहता हूँ।

इसी उद्देश्य से मैं सुनैना के घर आया हूँ।

सुनैना के पिता बड़ी प्रसन्नता से, मुझे देखकर आवाज देते हैं—"ओ बेटी सुनैना! मास्टर सा'ब आये हैं।"

सुनैना के पिता के पास एक व्यक्ति और बैठा हुआ है। बैठे रहने पर भी स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि उसकी कमर झुकी है, दाँत गिर गये हैं, केश श्वेत हैं, पर वह बना-ठना खूब है।

पिता की आवाज सुनकर सुनैना आती है। वह मुझे देखती है। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें मुस्करा सकें कि वह भाग जाती है, अपने पिता के सामने बैठे व्यक्ति को देखकर। सुनैना के पिता मुस्करा उठते हैं। आश्चर्य होता है, मुझे।

"इस वक्त सुनैना यहाँ नहीं आ सकती, मास्टर सा'ब!" इसके पिता कहते हैं—"आप बैठे हैं।" अपने आमने-सामने बैठे व्यक्ति की ओर इशारा करते हैं वे—"आप सेठ चोथाईमल·······नगर के प्रसिद्ध रईस·······,आपसे ही सुनैना का विवाह पक्का हुआ है। कल फलदान है और फिर शादी·······। आप अवश्य आइएगा मास्टर सा'ब! सुनैना को तो आपने पढ़ाया है! सुनैना आपकी बेटी के बराबर है!"

सुनता हूँ मैं, और मुझे लगता है कि मैं गश खाकर गिर पड़ूँगा।

३६/१६४ अगस्त्य कुंड, बनारस

धूल

— श्री रामकुमार चतुर्वेदी —

आज जब मैं घूमकर लौटा बगीचे से सबेरे,
और खोले द्वार कमरे के;
चकित-सा रह गया मैं !
सुबह की कोमल सुनहली धूप में क्या देखता हूँ—
धूल की हलकी परत हर चीज़ के ऊपर जमी है !
खिड़कियों के स्निग्ध काँचों पर जमी है धूल !
फर्श पर, चिकने ग़लीचे पर, जमी है धूल !
पत्रिकाओं, पुस्तकों पर, कागजों की ढेरियों पर,
कुर्सियों, अलमारियों पर छा गयी है धूल !
चीरकर रंगीन पर्दों और शीशों को
कहाँ से आगयी है धूल ?
एक कोने में सजाकर मूर्त्तियाँ मैंने रखी हैं;
राम ! लंका के विजेता !
धूल में जिनने मिलाया दानवों को,
धूल उनकी मूर्त्ति पर भी छा गयी है !
कृष्ण ! गीता के प्रणेता !
महाभारत के विजेता !
गोपियों के प्राण प्यारे !
सूर के लोचन सितारे !
और, मीराँ के दुलारे !
धूल में जिनने मिलाया इन्द्र का अभिमान,
धूल उनकी मूर्ति पर भी छा गयी है !
बुद्ध ! ध्यान निमग्न, अविचल !
शांति के अवतार उज्ज्वल !
सत्य के अविरल समर्थक !
औ' अहिंसा के प्रवर्तक !
विश्व सारा झुक गया जिनके पगों में !

इन्द्रियों को जीत जिनने सिद्धि पाई,
हाय ! उनकी मूर्ति पर भी धूल छाई !
क्रॉस पर लटके हुए चुपचाप ईसा !
त्याग के, बलिदान के, आदर्श सुन्दर !
आज भी गिरजाघरों की घंटियों में
गूँजता जयकार जिनका !
भूल पाई हैं न सदियाँ स्नेह जिनका, प्यार जिनका !
कालिमा निज रक्त से जिनने मिटाई !
आज उनकी मूर्ति पर भी धूल छाई !
चित्र कुछ दीवार पर मैंने सजाए !
हाय, वे भी धूल से बचने न पाए !
चित्र अकबर की सभा का,
जगमगाते हैं मनुज-नवरत्न जिसमें !
दृष्टि हर इतिहास-प्रेमी की कि जिस पर थम गयी है !
क्या बताऊँ, आज उस पर धूल की तह जम गयी है !
चित्र राणा का,
कि जिसमें अश्व उड़ता जा रहा है !
और, भाला हाथ में यम दण्ड को शरमा रहा है !
मोल माँ के दूध का जिसने लहू देकर चुकाया !
छाप जिसके अश्व ने इतिहास के ऊपर लगाई ;
क्या बताऊँ, आज उसके चित्र पर भी धूल छाई !
चित्र यह नैपोलियन का,
फौज जिसमें लड़ रही है !
पंक्ति अश्वारोहियों की, तान भाले बढ़ रही है !
वज्र जैसी तेग जिसकी कौंध करती थी उजाला !
पाँव से यूरोप का भूगोल जिसने रौंद डाला !
आल्प्स की मद से तनी गर्दन कि जिसने थी झुकाई !
धूल निःसंकोच उसके चित्र पर भी आज छाई !
चित्र स्टैलिन और लेनिन का,
कि जिसमें हँस रहे वे,
मुस्कराती दृष्टियों से व्यंग्य युग पर कस रहे वे !
रूस के ये सिद्ध नेता,

एक नवयुग के प्रणेता,
विश्व भर में क्रांति की ज्वाला जिन्होंने थी जगाई !
धूल निःसंकोच उनके चित्र पर भी आज छाई !
चित्र बापू का,
कि जिसमें वे चला चरखा रहे हैं,
त्याग, तप, बलिदान की प्रतिमूर्ति-से मुसका रहे हैं !
जो अहिंसा के व्रती थे !
सत्य के शोधक, कृती थे !
आत्मबल से ही जिन्होंने एटमों को था लजाया !
मुक्ति का टीका जिन्होंने हिन्द के सिर पर लगाया !
जान जिनने धूल को कंचन बनाने में गँवाई !
बेरहम यह धूल उनके चित्र पर भी आज छाई !
चित्र वह टैगोर का,
जिसमें कि वे मुसका रहे हैं !
लोचनों से भावना की ज्योति-सी बरसा रहे हैं !
भैरवी गाते हुए निकले कि जो जीवन-गली से !
अर्चना युगदेवता की कर गये 'गीतांजली' से !
'सत्य' की भू पर खड़े हो, 'सुन्दरम्' की अँगुलियों से,
थी जिन्होंने मृदु 'शिवम्' के राग में वीणा बजाई !
धूल निःसंकोच उनके चित्र पर भी आज छाई !
चित्र कुछ अभिनेत्रियों के,
इन्द्रधनु जैसे रँगीले, चन्द्रमा जैसे रुपहले,
फुल्ल कुसुमों-से रसीले, टहनियों जैसे लचीले,
यामिनी जैसे सजीले, दामिनी जैसे लजीले,
घन घटाओं-से छबीले !
ज्यों घृताची, मेनकाएँ,
उर्वशी-सी अप्सराएँ,
भूमि पर ही आगई हों रूप का ऋतुराज लेकर,
स्वर्ग जैसा साज लेकर !
जादुई अँगड़ाइयाँ हैं !
मदभरी तरुणाइयाँ हैं !
देख जिनको, सृष्टि विश्वामित्र-सी भरमा गयी है !

हाय ! उनके भी मुखों पर धूल की तह छा गयी है !
चित्र टेबिल पर रखा है एक जो मेरा-तुम्हारा,
जोकि अब मेरी अकेली जिन्दगी का है सहारा,
केश मेघों-से, अचंचल चंचला-सा मुख तुम्हारा,
और, वह मुसकान, जैसे चाँदनी की स्निग्धधारा !
लोचनों से झाँकते दो स्नेह में डूबे सितारे !
तुम खड़ी हो प्राण, मेरे पुष्ट कंधे के सहारे !
देखकर जिसको हमेशा आँख उजली हो गयी है,
क्या बताऊँ, आज वह तसवीर धुधँली हो गयी है !
धूल, तेरी शक्ति अब मेरी समझ में आ गयी है !
जी रहा मैं, और मेरे चित्र पर तू छा गयी है !
धूल तू माँ है, कि तेरे गर्भ से पैदा हुए हम,
तू हमें झेले रही, ज्यों झेलते हैं पात शबनम,
जन्म से ले आज तक हम खेलते तुझ पर रहे हैं,
धूप अथवा छाँह सबकुछ झेलते तुझ पर रहे हैं,
फूल, फल, पल्लव, लता या वृक्ष ये जितने खड़े हैं,—
जो उगे तुझ पर उगे हैं, जो गिरे, तुझ पर पड़े हैं !
ये वृहत् पर्वत, शिखर जिनके गगन छूने बढ़े हैं,
सब तुम्हारी गोद में चुपचाप बच्चों-से पड़े हैं !
ये चपल झरने, शिलाएँ फोड़ती जिनकी रवानी,
ये भरी नदियाँ, उमड़ती रात-दिन जिनकी जवानी,
ये पड़े तेरे गले में चमचमाते हार केवल !
लक्ष्य इन का है, करें ये धूल का शृंगार केवल ।
यह गरजता सिन्धु, जिसका है नहीं दिखता किनारा,
कुछ नहीं है,सिर्फ यह नीला दुपट्टा है तुम्हारा !
चाँद-तारों से टँकी, चादर सरीखी जो तनी है,
नभ नहीं है, वायु में उड़ती तुम्हारी ओढ़नी है !
रत्नगर्भा हो, मगर तुम धूल ही कहला रही हो,
सृष्टि के आरंभ से ही सृष्टि पर तुम छा रही हो ।
धूल, अदना भक्त-सा मैं हूँ तुम्हें माथा झुकाता,
एक जलता प्रश्न लेकिन है मुझे पागल बनाता—
धूल, तुम माँ हो, मगर यह शत्रु-सा व्यवहार कैसा ?

जो बदल संसार में जाए, भला वह प्यार कैसा ?
तुम जिन्हें माँ की तरह हो गोद में लेकर खिलातीं,
तुम उन्हें ही सृष्टि के प्रारंभ से आई मिटाती !
फूल जितने भी खिले हैं, सब तुम्हींने हैं मिटाए !
दीप जितने भी जले हैं, सब तुम्हीं ने हैं बुझाए !
सभ्यताएँ और संस्कृतियाँ हजारों खा गयीं तुम !
राजमुकुटों को चबा सिंहासनों पर छा गयीं तुम !
खा गयीं कितने सिकंदर और शाहजहान कितने !
ला चुकी हो तुम धरा पर नाश के तूफ़ान कितने !
लाख-लाख अनारकलियाँ, सैकडों मेहरुन्निसाएँ,
लाख मुमताजें तुम्हीं में सो रहीं दाबे व्यथाएँ !
पी चुकी हो तुम न जाने आदमी का रक्त कितना !
खा रही हो तुम जिसे, संसार वह अभिशप्त कितना !
पृष्ठ भी मिलते नहीं हैं, खा गयीं इतिहास को तुम !
शूल बाकी रह गये हैं, डस गयीं मधुमास को तुम !
ज्ञान पर तुम छा गयीं, विज्ञान पर तुम छा गयीं हो !
कंठ कवियों के दबाकर, तान पर तुम छा गयीं हो !
स्वेद को गंदा बना, इन्सान पर तुम छा गयीं हो !
मंदिरों में पैठ कर, भगवान पर तुम छा गयीं हो !
अश्रुमय आँखें जिधर उठतीं, उधर तुम हँस रहीं हो !
एक नागिन की तरह तुम ज़िन्दगी को डस रहीं हो !
रोकदी थी आदमी ने सिन्धु की निस्सीम धारा,
पर न रोका जा सका है आज तक बढ़ना तुम्हारा !
सत्य हो तुम, और यह संसार सारा झूठ है क्या ?
ज्ञान का, विज्ञान का विस्तार सारा झूठ है क्या ?
झूठ है यह रूप, यह शृंगार सारा झूठ है क्या ?
झूठ है रंगीन यौवन, प्यार सारा झूठ है क्या ?
झूठ है ईश्वर, तुम्हीं हो विश्व की केवल सचाई ?
वह न दिखता, हर तरफ पर दे रही हो तुम दिखाई !
धूल, निर्दय धूल, मेरी पुस्तकों पर छा गयीं तुम !
राहु-सी बढ़ कर रुपहली लेखनी पर आ गयीं तुम !
ढँक रही हो हाय ! तुम कल तक लिखे सब अक्षरों को,

जड़ बनाती जा रही हो, प्राण के चेतन स्वरों को !
चित्र मेरी प्रेयसी का फूल-सा सुकुमार सुन्दर,
पास उसके किस तरह तुम आ गयीं होकर असुन्दर !
रूप पर तुम छा गयीं, शृंगार पर तुम छा गयीं हो,
हाय ! क्या सचमुच हमारे प्यार पर तुम छा गयीं हो ?
देख कर जिस को, हमेशा आँख उजली हो गयीं है !
क्या बताऊँ, आज वह तसवीर धुँधली हो गयी है !
धूल, निर्दय धूल, बोलो, मौन क्यों मुसका रहीं हो !
जी रहा मैं, और मेरे चित्र पर क्यों छा रहीं हो ?

फालके का बाजार, लश्कर

(पृष्ठ ८५ का शेष)

चयन तथा नव साहित्य का मार्गदर्शन करने के लिए हमारे अध्यापकों को अपनी प्रादेशिक सीमा से उठ कर विशाल राष्ट्रीय मंच पर खड़ा होना पड़ेगा। उन्हें हिन्दी को आधुनिक विचार के प्रशस्त मार्ग पर प्रेरित करना होगा—वैज्ञानिक दोहन से लेकर मौलिक क्रियात्मकता का शक्तिशाली माध्यम बनाना होगा।

राज-भाषाओं को प्रवर्तित करने में जो अनुभव मुझे प्राप्त हुए हैं, और समय-समय पर इस सम्बन्ध में जो विचार मेरे मन में उठते रहे हैं, मैंने संक्षेप में उन्हें ही आपके सामने रखने का प्रयत्न किया है। मैं आशा करता हूँ कि आप इन सारी समस्याओं पर विचार करेंगे और राष्ट्र के सामने प्रामाणिक हल उपस्थित करेंगे।

नागपुर

भारत संघ में हिन्दी

— माननीय श्री रविशंकर शुक्ल, मुख्यमंत्री मध्यप्रदेश

*संविधान द्वारा अंग्रेजी के स्थान में हिन्दी को राज-भाषा स्वीकार करने के बाद हिन्दी के ऊपर एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व आ गया है। हिन्दी अब केवल साहित्य-क्षेत्र की ही भाषा नहीं रही, वरन् अब वह कानून, विज्ञान आदि अनेक क्षेत्रों की भाषा भी हो गयी है। उसके प्रयोग के क्षेत्र का विस्तार होते ही हमारे सामने अनेक गंभीर समस्याएँ उपस्थित हो गयी हैं। इन विविध आवश्यकताओं के लिए हमें हिन्दी की अभिव्यक्ति-शक्ति बढ़ानी है। विश्व की अन्य बड़ी भाषाओं में यह सब एक ऐतिहासिक विकास के रूप में हुआ है। परन्तु अंग्रेजी शासन-काल में हिन्दी साहित्य और हिन्दी भाषा को समुचित विकास का अवसर प्राप्त नहीं हो सका। आज हमें यह विकास थोड़े से समय में करना है और इस अल्प-काल में हिन्दी भाषा को इतना समृद्ध तो बना ही देना है कि जिससे हमारा राजकाज और शिक्षा की व्यवस्था उसके माध्यम से की जा सके। इसका भार आज हिन्दी के साहित्यकारों, अध्यापकों और विद्वानों के कंधों पर आ पड़ा है। हिन्दी के लेखकों को एक शक्तिशाली बहुमुखी साहित्य का निर्माण करना है, हिन्दी के अध्यापकों को विद्यार्थियों में हिन्दी साहित्य और भाषा के प्रति श्रद्धा और अध्ययन की वृत्ति उत्पन्न करना है एवं हिन्दी के विद्वानों को उसके रूप, उसके व्याकरण, उसकी पारिभाषिक शब्दावली आदि से सम्बन्धित सभी समस्याओं को गम्भीर चिन्तन और अन्वेषण द्वारा शीघ्रातिशीघ्र सुलझाना है।

हिन्दी के राज-भाषा बनते ही जो समस्याएँ हमारे सामने उपस्थित हुई हैं वे प्रधानतः चार हैं। हिन्दी का रूप क्या हो? हिन्दी में सर्वमान्य शब्दावली का निर्माण किस पद्धति से किया जाए? देवनागरी लिपि को आधुनिक आवश्यकताओं के अनुसार कैसे सक्षम बनाया जाए? एवं हिन्दी के प्रचार करने और अध्ययन-अध्यापन का स्तर ऊँचा करने के लिए क्या-क्या किया जाए? सबसे पहला प्रश्न हिन्दी के रूप का है। संविधान के अनुच्छेद ३५१ के अनुसार राज-भाषा के विकास की ओर दिशानिर्देश किया गया है। वैसे सामाजिक, राजनैतिक विचार-धाराओं का प्रभाव भाषा पर पड़ता अवश्य है, किन्तु भाषा की मौलिक प्रकृति इन सब तूफानों के बीच अपनी रक्षा करती चली जाती है। आज से १०० साल पहले हिन्दी और उर्दू का झगड़ा राजा शिवप्रसाद सितारे-

---

* भारतीय हिन्दी परिषद के त्रयोदश वार्षिक अधिवेशन (नागपुर) का उद्घाटन भाषण।

हिन्द और सर सैयद के बीच उठ खड़ा हुआ था। उसके बाद अभी कुछ समय पहले एक नया झगड़ा हिन्दी और हिन्दुस्तानी का चल निकला था। आज भी किन्हीं कारणों से हिन्दी के क्षेत्र में यह मतभेद चला आ रहा है। किन्तु मतभेद में अब कोई सार नहीं है। आज की प्रचलित और साहित्यिक हिन्दी ने अपने द्वार सभी दिशाओं में खोल रखे हैं, उसमें संस्कृत, अंग्रेजी, फारसी आदि सभी भाषाओं के शब्दों का समावेश हो चुका है और जैसे ही दक्षिणी भारत के लोग हिन्दी में साहित्य की रचना करना शुरू करेंगे, वैसे ही उन भाषाओं के शब्द और मुहावरे भी हिन्दी में सम्मिलित होते चले जाएँगे। किन्तु यह सब एक स्वाभाविक क्रम से होगा। आज तो हिन्दी के सामने न केवल उर्दू या फारसी, वरन् उन सभी भाषाओं से समन्वय स्थापित करने का प्रश्न है जो कि द्रविड भाषाएँ कहलाती हैं और भारत के दक्षिणी भागों में बोली जाती हैं और जिनके बोलने वालों को भारतीय साहित्य और संस्कृत की महान धारा से समय समय पर लाभ होता रहा है। इसीलिए संविधान ने बड़ी सूझ-बूझ के साथ हिन्दी के विकास के लिए यह निर्देश दिया है कि:—

> "हिन्दी भाषा की प्रसार-वृद्धि करना, उसका विकास करना ताकि वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके, तथा उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किये बिना हिन्दुस्तानी और अष्टम अनुसूची में उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात् करते हुए तथा जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ उसके शब्द-भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से तथा गौणतः वैसी उल्लिखित भाषाओं से शब्द-ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघ का कर्त्तव्य होगा।"

तो आज हिन्दी को केवल उर्दू की बराबरी पर रखकर देखना ठीक नहीं है। हिन्दी को तो उत्तर और दक्षिण की सभी प्रादेशिक भाषाओं एवं बोलियों के सन्दर्भ में देखना चाहिए। तभी उसके वास्तविक रूप की कल्पना हो सकती है। अक्सर हिन्दी के उत्साहियों पर यह दोष लगाया जाता है कि वे हिन्दी को संस्कृत-प्रचुर बना रहे हैं। जब से नई पारिभाषिक शब्दावली के प्रयत्न किये जा रहे हैं तथा भारतीय संविधान का अनुवाद हिन्दी में हुआ है, तब से इस आवाज ने और भी जोर पकड़ लिया है। सब लोग सरल हिन्दी का नारा लगा रहे हैं, किन्तु इस समस्या पर कोई विचार नहीं करता कि हिन्दी का कौन सा रूप सरल हो सकता है और कौन सा नहीं। भाषा के प्रयोग के अनेक क्षेत्र होते हैं और प्रत्येक क्षेत्र की विचार-पद्धति अलग हुआ करती है। उन क्षेत्रों में एक ही भाषा के अनेक प्रकार बन जाते हैं। कानूनी भाषा, ललित साहित्य की भाषा से भिन्न होती है। वैज्ञानिक क्षेत्र की भाषा कानून के क्षेत्र से भिन्न होती है। इसी तरह लेखा और सांख्यिकीय क्षेत्रों की भाषा भी एक विशेष प्रकार की हो जाती है।

अंग्रेजी जैसी भाषा में चूँकि बहुत पहले से सभी क्षेत्रों का साहित्य लिखा जाता रहा है, अतएव उसके कुछ निश्चित स्तर और शैलियाँ बन गयी हैं, और लोग उसकी कानून की भाषा पर न तो आश्चर्य करते हैं और न आशंका या आतंक से ही पीड़ित होते हैं। परन्तु हिन्दी भाषा का विकास, प्रचार तथा उसका नवीन क्षेत्र में प्रयोग एक साथ हो रहा है और क्षेत्र की आवश्यकताओं के अनुसार शैली और शब्दावली अलग-अलग रूप लेती जा रही है, इसलिए लोग कभी-कभी आतंकित हो उठते हैं। कचहरियों और अदालतों में जिन फारसी शब्दों का प्रयोग हो रहा था, उनके वास्तविक अर्थ को बिना समझे ही प्रचलित अधकचरे अर्थबोध के आधार पर लोग उन्हें आज तक स्वीकार किये हुए हैं। कानूनी क्षेत्र की हिन्दी या वैज्ञानिक क्षेत्र की हिन्दी को समझने के लिए एक निश्चित स्तर तक हिन्दी का ज्ञान तथा विशेष प्रयत्न आवश्यक होंगे ही। विश्व के उन्नतिशील राष्ट्रों में से किसी भी देश के पारिभाषिक शब्द ललित साहित्य के शब्दों से भिन्न ही मिलेंगे। ललित साहित्य की भाषा एवं वैज्ञानिक अथवा कानूनी जगत की भाषा के बीच की खाई भरने के लिए दूसरे राष्ट्रों में सामान्य-विज्ञान और विविध विषयों का साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। हिन्दी में ऐसा नहीं है। ऐसी स्थिति तो कुछ समय बाद ही आएगी और तब आज की आशंकाएँ अपने आप नष्ट हो जाएँगी। हाँ, इतनी बात अवश्य है कि पारिभाषिक शब्दों के निर्माण में सन्तुलन नहीं खो बैठना चाहिए। यथावश्यक संस्कृत और अन्य भाषाओं से शब्द स्वीकार करने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए। कितने शब्द स्वीकार किये जाएँ, यह क्षेत्र के उद्देश्य और क्षेत्र की आवश्यकताओं पर निर्भर रहेगा। उदाहरण के लिए अगर हम भौतिक विज्ञान या रसायन या यांत्रिकी को विश्वविद्यालयों में हिन्दी माध्यम से पढ़ाते हैं, तो पहले हमें यह सोचना होगा कि अगले १५ वर्षों में हमने इस विज्ञान की शिक्षा का क्या उद्देश्य सम्मुख रखा है। यदि हमें जल्दी से जल्दी देश में ही दवाइयाँ तैयार करना हैं, यंत्र बनाना हैं, योग्य इंजीनियर पैदा करना हैं, तो सारे विश्व का दरवाजा उनके लिए खुला रखना होगा। चूँकि हमें ऐसे विद्यार्थी तैयार करना हैं, इसीलिए भाषा में नये पारिभाषिक शब्द न बनाए जाएँ, यह बात उचित नहीं मालूम पड़ती। ऐसे विद्यार्थियों को हमें हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं के पारिभाषिक शब्दों के माध्यम से विज्ञान पढ़ाना चाहिए ताकि जब वे अपने विचारों को राष्ट्र-भाषा में लिखें, हमें वैज्ञानिक साहित्य उत्तरोत्तर ज़्यादा मात्रा में मिलता चला जाए। अभी तक के अनुभव से हम जानते हैं कि शिक्षा के माध्यम का साहित्य की अभिवृद्धि के साथ बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिन भारतीयों ने तांत्रिक विषयों की शिक्षा अंग्रेजी के माध्यम से ली है और विश्व में नाम कमाया है, उनकी लेखनी जैसे सदा के लिए हमसे छीन ली गयी है। जहाँ एक तरफ उन्होंने अंग्रेजी के साहित्य की श्रीवृद्धि की है, दूसरी तरफ उनकी अपनी ही भाषा

का साहित्य उनकी प्रतिभा से अछूता रहा है। आज हम विज्ञान, स्थापत्य या अन्य किसी शिल्पीय विषय की पुस्तकों की सूची बनाएँ, तो भारतवर्ष के अच्छे-अच्छे विद्वानों की पुस्तकें हमें अंग्रेजी में ही प्राप्त होंगीं। यदि हमारे वैज्ञानिक अपनी भाषा से नहीं पढ़ते और अपनी भाषा द्वारा साहित्य-सर्जन नहीं करते, तो हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य का अभाव बना ही रहेगा और भाषा इस क्षेत्र की अभिव्यक्ति की क्षमता कभी प्राप्त न कर सकेगी। यहाँ यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि मध्यप्रदेश शासन ने बहुत कुछ इन्हीं उद्देश्यों को ध्यान में रखकर शासन साहित्य परिषद नामक संस्था की स्थापना की है और निकट भविष्य में ही हिन्दी एवं मराठी में विविध विषयों की पुस्तकें तैयार करवाने और प्रकाशित करने की योजना बनाई है।

यह स्पष्ट है कि हमारी बोलचाल की या कहानी-उपन्यास की भाषा विज्ञान, प्रशासन, कानून और ऐसे ही आधुनिक विशिष्ट क्षेत्रों की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकती। राष्ट्र की बड़ी-बड़ी समस्याओं को सुलझाने में केवल नारों का सहारा लेना ठीक नहीं। सारी शास्त्रीय बातें शास्त्रीय ढंग से ही निपटानी चाहिए और शास्त्रीय ढंग को समझने में लोगों को जरा गंभीरता से चिन्तन करने की आदत डालनी चाहिए।

भावना-प्रधान साहित्य के स्तर पर भाषा का एक रूप होता है; आधुनिक विचार-प्रणाली के तंतु बड़े बारीक होते हैं, जटिल विचारों के क्षेत्र में भाषा की कसौटी और हो जाती है। शास्त्रीय विचार-धारा में, दीर्घकालीन प्रयोग और अनुभव यथासम्भव छोटे प्रतीकों में, एक तरह से सूत्रों में, केन्द्रित कर दिये जाते हैं और भाषा के अनावश्यक विस्तार को कम से कम करने का यत्न किया जाता है। ऐसी परिस्थिति में पारिभाषिक शब्द अनिवार्य होते हैं। जब हिन्दी के पारिभाषिक शब्द सारी प्रादेशिक भाषाओं को ध्यान में रखते हुए बनाना हैं, तो ऐसा साधन ग्रहण करना और भी आवश्यक हो जाता है जो सदियों से उन्हें एकता के घेरे में बाँधे हुए है। अतएव पारिभाषिक शब्दों के निर्माण में हम संस्कृत की ओर कट्टरता या हठवाद से नहीं झुकते, वरन सहज आवश्यकताओं के कारण झुकते हैं। हो सकता है कि शब्द-निर्माण के प्रयत्नों में प्रारम्भिक पद्धति का पूरा और व्यवस्थित विकास न होने के कारण संस्कृत का आवश्यकता से अधिक सहारा लिया गया हो। किन्तु जहाँ तक मैं सोचता हूँ, इस दिशा में समन्वय का दृष्टिकोण ही सब से अच्छा है। जो यत्न अतिरेकपूर्ण होते हैं, समाज स्वीकार नहीं करता। मैं तो "प्रयोगमूलक समन्वय" का समर्थक हूँ। इस नये शब्द को जान-बूझकर मैं कह रहा हूँ। प्रयोग किये बिना प्रगति सम्भव नहीं, परन्तु वे प्रयोग इस दिशा में किये जाएँ कि उनके द्वारा ऐतिहासिक दृष्टि में एक समन्वय स्थापित होता चला जाए।

यही बात मैंने लिपि के क्षेत्र में भी स्वीकार की है। लखनऊ की कान्फ्रेन्स में जो लिपि स्वीकार की गयी है, उसके उपयोगी अंशों को मध्यप्रदेश शासन ने मान लिया है। परंतु जो सुधार हमारे आज तक के सारे ग्रंथों की लिपि से बहुत ही भिन्न रूप उत्पन्न करते हैं और आगे की पीढ़ी के सम्मुख अपनी परम्परा से निकट सम्बन्ध स्थापित करने में बाधा उपस्थित करते हैं, उन्हें स्वीकार नहीं किया गया। लिपि भाषा के ध्वनिरूप को बाँधने का एक साधन है। ध्वनियों के बाँधने का तरीका शब्द के रूप को स्थिर करता है और भाषा की मौलिकता की रक्षा करने में सहायक होता है। हलन्त या किसी ऐसे ही प्रयोग से बनाए जाने वाले शब्दों के उच्चारण कालान्तर में बिगड़ जाते हैं और वे पूरी भाषा में विकार उत्पन्न करने लगते हैं। जैसे प्रकार यदि परकार बन जाए, नम्र यदि नमर बन जाए, प्रयत्न यदि परयतन बन जाए, तो भाषा के मूल स्वरूप को ही ठेस पहुँच सकती है। यंत्र की आवश्यकताओं के अनुसार लिपि में परिवर्तन नहीं, वरन् लिपि की आवश्यकताओं के अनुसार यंत्र में परिवर्तन ही स्वस्थ सिद्धान्त हो सकता है। मुझे बताया गया है कि चीनी और जापानी टाइप-राइटरों में २०० या ३०० कुंजियाँ (कीज) होती हैं। हम कुंजियों (कीज) को कम करने, मात्राओं में सुधार करने, लिपि में गति लाने की कोशिश करें। लेकिन ऐसा कोई भी प्रयोग नहीं करना चाहिए जो राष्ट्र-भाषा के स्वरूप और गठन में ही परिवर्तन कर दे और परम्परागत मूल धारा से उसे विच्छिन्न कर दे।

हिन्दी के सम्बन्ध में निष्पक्षता और उत्तरदायित्व के साथ-साथ एक वैज्ञानिक मनोवृत्ति से विचार कर निर्णय देने का अन्तिम अधिकार और उत्तरदायित्व भारतीय हिन्दी परिषद जैसी संस्था और उसके विद्वान संयोजकों का है, केवल मान्यताओं के आधार पर ही नहीं, वरन प्रयोगों और अनुभवों के आधार पर भी। हिन्दी के अध्यापकों और आचार्यों को आज बहुत सी बातों पर प्रामाणिक मत देना है। अहिन्दीभाषियों के बीच अध्ययन कर उनकी भाषा-सम्बन्धी, व्याकरण-सम्बन्धी कठिनाइयों की तालिकाएँ बनानी हैं। उनकी भाषाओं से निकट सम्पर्क स्थापित कर इस बात का पता लगाना है कि हिन्दी का उन भाषाओं से किस मात्रा तक सामंजस्य किया जा सकता है। हिन्दी की (आधार) बेसिक शब्दावली तैयार करनी है, जो हिन्दी सीखनेवालों के लिए पुस्तकें तैयार करने में प्रामाणिक मानी जा सके, और इसके साथ ही साथ हमें हिन्दी के अध्यापन का स्तर भी अवश्य ही उठाना है। आज हिन्दी के अध्यापक इस बात को न भूलें कि हिन्दी के प्रति उपेक्षा और अश्रद्धा उत्पन्न हो, तो उसका उत्तरदायित्व सब से अधिक उन्हीं पर होगा। सारे विश्वविद्यालयों में हिन्दी की पाठ्यपुस्तकों को एक अखिल राष्ट्रीय और प्रामाणिक रूप देना अत्यन्त आवश्यक है। साहित्य का उदार और निष्पक्ष

(शेष पृष्ठ ८० पर)

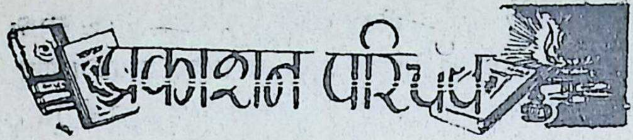

प्रकाशन परिचय

पदमावत—मलिक मुहम्मद जायसी कृत महाकाव्य मूल और 'संजीवनी' व्याख्या; डॉ वासुदेवशरण अग्रवाल कृत; प्रकाशक—साहित्य सदन, चिरगाँव (झाँसी); मूल्य १५) रुपये।

लगभग चार सौ वर्ष पूर्व मलिक मुहम्मद जायसी ने 'पदमावत' लिखा था। वर्त्तमान शताब्दी के कुछ पूर्व से ही उस महाकाव्य के पाठ तथा अर्थ की खोज चल रही है। परन्तु इस ग्रंथ के शुद्धतम पाठ तथा उसके गौरव को पूर्ण रूप से प्रकाशित करने वाली टीका आज इस ग्रंथ द्वारा ही उपलब्ध हो सकी है।

पदमावत का संशोधित मूल पाठ तथा उसकी व्याख्या और शब्द-टिप्पणियाँ अत्यन्त सावधानी से लेखक के अगाध पाण्डित्य की पृष्ठभूमि में इस ग्रंथ में प्रस्तुत की गयी हैं। टिप्पणियों में शब्दों की व्युत्पत्ति और जायसी से पहले-पीछे की भाषा से उनका सम्बन्ध और इतिहास दिखाया गया है। पदमावत के अनेक क्लिष्ट स्थलों का स्पष्ट अर्थ इस ग्रंथ में पहली बार देखने को मिला है। पुस्तक के अन्त में पदमावत के लगभग तीन सहस्र शब्दों की अकारादि क्रम से सूची दी गयी है और उनकी व्याख्या के स्थल का संकेत कर दिया गया है। प्रारम्भ में ५६ पृष्ठ का प्राक्कथन है।

हिन्दी के प्राचीन ग्रन्थों के सम्पादन, पाठ निर्धारण एवं व्याख्या करने की परम्परा में इस ग्रन्थ द्वारा एक ऐसी सीमारेखा खींच दी गयी है कि इसके पहले का तो उसका समकक्ष कोई प्रयास खोजना व्यर्थ ही है, आगे भी कब इस प्रकार का प्रयास हो सकेगा, यह कह सकना सरल नहीं। आज के युग में जब हिन्दी के अधिकांश विद्वान परीक्षार्थियों के उपयोग के लिए सस्ते नोट्स के रूप में समीक्षाएँ लिखने में संलग्न हैं, तब हिन्दी में इस प्रकार के महान ग्रन्थ का प्रणयन हो सका, यह आश्चर्य की बात है, साथ ही असीम संतोष की भी। हम आज गर्व के साथ कह सकते हैं कि हिन्दी में ज्ञान के ऐसे अगाध सागर आज के उथले युग में भी प्रस्तुत किये जाते हैं, जिनकी तुलना इस दिशा में संसार की किसी भी भाषा में किये गये प्रयास से की जा सकती है। मध्यकालीन हिन्दी के लगभग तीन हजार शब्दों का इतिहास सजीव होकर इस संजीवनी भाष्य में बोल उठा है। प्राचीन काल में अरण्यवासी भाष्यकार जिस प्रकार के ज्ञान भण्डार भाष्य के व्याज से प्रस्तुत करते थे, वैसा ही प्रयास यह किया गया है।

डॉ० वासुदेमशरण के इस ग्रन्थ ने जायसी के महाकाव्य को तो उसके सम्पूर्ण प्रकाश के साथ हिन्दी भाषियों को सुलभ कर ही दिया है, उसने भावी अध्ययन के लिए एक अत्यन्त शालीन शैली का भी सूत्रपात किया है। यदि इसके अनुकरण पर हिन्दी के अन्य ग्रन्थों का अध्ययन करने के प्रयासों का सूत्रपात हो सके, तो वह हमारा सौभाग्य ही होगा। निश्चय ही पदमावत का यह संस्करण इस युग का सर्वश्रेष्ठ भाष्य है।

प्राक्कथन में अत्यन्त संक्षेप में इस पुस्तक के प्रणयन के इतिहास तथा आभार प्रदर्शन के अतिरिक्त जायसी और उनकी रचनाओं के विषय में जानकारी दी गयी है। पदमावत के पाठ के निर्धारण के पूर्व प्रयासों का भी उल्लेख किया गया है। यद्यपि कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण जानकारी इस प्राक्कथन में है, परन्तु यदि इसे कुछ और विस्तार दे दिया जाता तो उचित ही होता।

इतने प्रामाणिक ग्रन्थ में एक स्थल पर एक-दो अप्रामाणिक कथन भी हो गये हैं। प्राक्कथन के पृष्ठ २८-२९-३० पर अवधी भाषा के साहित्य की सूची दी गयी है। इस सूची में बनारसीदास जैन कृत अर्ध कथानक, जटमल नाहर कृत प्रेम-विलास प्रेमलता कथा जैसे कुछ ग्रन्थों को भी अवधी भाषा का लिखा गया है। चतुर्भुज दास की मधुमालती का उल्लेख अवधी काव्य के रूप में क्रमांक १८ तथा ४२ पर दो स्थान पर किया गया है। एक स्थान पर उसका रचनाकाल १६ वीं शती लिखा है और दूसरे स्थान पर अठारहवीं शती। परन्तु जैसा डॉ० अग्रवाल ने लिखा है, यह सूची उनने अन्य सूत्रों से ली है। हमें आशा है कि अगले संस्करण में इस सूची को इस ग्रन्थ में स्थान नहीं दिया जायगा अथवा उसमें संशोधन कर दिया जाएगा। अवधी के मध्यकाल की व्यापक काव्य-भाषा होने का जो संकेत किया गया है वह भी किसी प्रमाण के आधार पर नहीं है। वह बोली तो बहुत पुरानी है, इसमें किसी को सन्देह नहीं हो सकता। अवधी बोली को केवल सूफी संतों ने अपने सम्प्रदाय के प्रचार के आशय से अपनाया था, और फिर बस। यह विवादास्पद है कि रामचरित मानस की भाषा अवधी है या उसमें अवधी का प्रभाव मात्र, राम रजधानी को महत्त्व देने के लिए, दिया गया है। मध्यकाल ने अवधी को व्यापक काव्य-भाषा कभी नहीं माना। परन्तु उसकी गौरव वृद्धि के लिए तो जायसी ही पर्याप्त हैं।

यह निश्चित है कि इस ग्रन्थ के द्वारा हिन्दी का मस्तक ऊँचा हुआ है, सम्पादन और भाष्य का नवीन उच्च मान स्थापित हुआ है तथा जायसी के गंभीर अध्ययन का मार्ग सुगम हुआ है। इस ज्ञान-सागर के अवगाहन के बिना किसी का भी हिन्दी का अध्ययन अपूर्ण और अधूरा ही रहेगा।

पुस्तक का वृहत आकार, उसकी कलापूर्ण साजसज्जा, पुष्ट कागद को देखते हुए मूल्य अधिक नहीं है ।

संगीतज्ञ कवियों की हिन्दी रचनाएँ : लेखक—श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी; प्रकाशक—साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद । मूल्य २) रु० ।

हिन्दी-साहित्य के विकास को पूर्णत: समझने के लिए भारतीय संगीत के विकास का अत्यन्त विस्तृत एवं विवेकपूर्ण अध्ययन आवश्यक है । मध्यकालीन काव्य-भाषा का निर्माण और परिमार्जन संगीत के माध्यम से हुआ है । इस ओर सम्यक् ध्यान न देने के कारण अभी तक हिन्दी-साहित्य का इतिहास अधूरा तथा त्रुटिपूर्ण है ।

इस पुस्तक के लेखक ने इस ओर पदार्पण करके अत्यन्त अभिनन्दनीय कार्य किया है । पर इस पुस्तक में केवल दिशा-संकेत मात्र है । विद्वान लेखक इतने महत्त्वपूर्ण और गंभीर विषय के साथ न्याय नहीं कर सके । भारतीय संगीत के विकास को दिखाने का प्रयास तो किया है, परन्तु न उसमें किसी प्रकार सफलता मिल सकी है, न वह अत्रुट ही है । पृष्ठ १३ पर किसी "मानिक सोहिल" ग्रन्थ का उल्लेख किया है । इसके विषय में लेखक ने लिखा है 'उक्त ग्रन्थ का फारसी अनुवाद आलमगीर के समय में 'राग दर्पन" नाम से अमीर फकीरुल्ला ने किया ।" वास्तव में यह "मानिक सोहिल" वह मानकुतूहल है जिसका उल्लेख लेखक ने आगे पृष्ठ ३७ पर किया है । लेखक ने मानकुतूहल के हिन्दी अनुवाद का उल्लेख तो किया है, परन्तु ज्ञात होता है कि इस अनुवाद को देखा नहीं है, अन्यथा इस प्रकार के कथन न किये जाते । वास्तव में ऐतिहासिक सामग्री अधिकांशत: भ्रामक और त्रुटिपूर्ण है ।

इस सम्बन्ध में एक और उल्लेख पर्याप्त होगा । पुस्तक के पृष्ठ १५ पर स्वामी हरिदास की 'डागुर वाणी' के विषय में कुछ अत्यन्त विचित्र अनुमान किये गये हैं । बिना यह समझे कि उनकी संगीत पद्धति को 'डागुर वाणी' कहा जाता था, लेखक ने लिखा "हरिदास नाम के साथ-साथ किसी-किसी पद में वंश परिचायक डागुर शब्द भी जुड़ा है जिससे अनुमान होता है कि वे जाट ठाकुर रहे होंगे ।" स्वामी हरिदास के विषय में अभी भी हिन्दी में इतना लिखा जा चुका कि यदि उस पर दृष्टिपात कर लिया गया होता तो इस प्रकार के अद्भुत कथन न किये जाते ।

लेखक ने इस पुस्तक द्वारा एक अत्यन्त उपयोगी कार्य किया है । आज 'रागकल्पद्रुम' सरलता से उपलब्ध नहीं है । उसमें से अमीरखुसरो, बैजू और तानसेन के कुछ पद इसमें संग्रहीत कर वे सर्व साधारण को सुलभ कर दिये गये हैं ।

लेखक को प्रकाशक प्रतिष्ठित मिल गये हैं, अतएव पुस्तक की छपाई, अलंकरण, जिल्द आदि आकर्षक हैं। हम विद्वान लेखक से अपेक्षा करेंगे कि वे अपने इस विषय का सम्यक अध्ययन करें और अधिक प्रामाणिक एवं विस्तृत जानकारी हिन्दी के पाठकों को दें। जिस दिशा में वे आगे बढ़े हैं, उसमें वास्तव में बहुत कार्य होना है।

हिन्दी शब्द-निर्णय : लेखक—श्री किशोरीदास वाजपेयी; प्रकाशक—हिमालय एजेन्सी, कनखल, मूल्य ।=)।

श्री किशोरीदास वाजपेयी हिन्दी निरुक्त और शब्द-शिल्प के माने हुए पण्डित हैं। उनके द्वारा छोटी-सी पुस्तक में हिन्दी के कुछ ऐसे शब्दों की शुद्धाशुद्धता पर विचार किया गया है, जिन्हें लिखने में बहुधा भूल हो जाती है। कुछ शब्दों के शुद्ध रूप और अनेक अशुद्ध रूपों पर प्रकाश डाला गया है कि उनके विषय में आगे भ्रम शेष नहीं रहता। इस पुस्तक के दसों पाठों को पूरी तरह हृदयंगम किये बिना किसी को हिन्दी की किसी परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं करना चाहिए, यह हमारी मान्यता है। हिन्दी लेखकों में अनिश्चितता तथा अराजकता व्याप्त है, वह इस प्रकार के प्रयासों से ही दूर हो सकेगी।

साहित्यिक केन्द्र उज्जयिनी : लेखक – श्री ब्रजकिशोर चतुर्वेदी; प्रकाशक इन्डियन प्रेस (पब्लिकेशन्स), लिमिटेड, प्रयाग; पक्की सुन्दर जिल्द, पृष्ठ संख्या १४०, मूल्य ३।)।

इस पुस्तक के विद्वान लेखक ने प्राचीन और मध्यकालीन भारत के एक प्रसिद्ध सांस्कृतिक केन्द्र— उज्जयिनी पर हिन्दी में प्रामाणिक पुस्तक लिख कर एक बहुत बड़े अभाव की पूर्त्ति की है।

उज्जयनी का व्यापारिक, धार्मिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व, उज्जैन से सम्बन्धित सभी इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्ति, कालिदास और बाणभट्ट का उज्जयिनी वर्णन, वेधशाला तथा आधुनिक उज्जयिनी—सभी विषयों पर सरल, रोचक, साथ ही प्रामाणिक रूप में प्रकाश डाला गया है। पुस्तक में २५ चित्र देकर उसकी उपयोगिता और भी बढ़ा दी गयी है।

लेखक स्वयं उज्जैन में एक बड़े अधिकारी के रूप में अधिक समम तक रहे हैं और इस महान नगरी के विषय में उनका गम्भीर अध्ययन है। उनकी इस पुस्तक द्वारा इस संस्कृति-केन्द्र की ओर हिन्दी पाठकों का ध्यान आकर्षित होगा और आगे विशेष अध्ययन के लिए प्रेरणा मिलेगी।

—मधुसूदन

नाग नगर की राजकुमारी : लेखिका—कुमारी विमला पाण्डेय; प्रकाशिका—श्रीमती लक्ष्मीदेवी, लक्ष्मी मन्दिर, सागर, पृष्ठ संख्या १५५; मूल्य २॥।≈)।

प्रौढ़ शिक्षण के लिए लोक कथाओं के संग्रह बहुत उपयोगी होते हैं। इस संग्रह में भी लेखिका ने कुछ अत्यन्त मनोरंजक लोक कथाएँ सरल भाषा में संग्रहीत की हैं। उनका मुद्रण भी मोटे अक्षरों में किया गया है। यह संग्रह बालक-बालिकाओं तथा प्रौढ़शालाओं के लिए उपयोगी होगा।

प्रारम्भ में प्रो० राजनाथ पाण्डेय की पौराणिक आख्यानों सम्बन्धी भूमिका है। इसमें आख्यान-साहित्य के विकास पर अच्छा प्रकाश डाला गया है।

पुस्तक संग्रहणीय एवं पठनीय है।

—खण्डेलवाल

विद्यापति के देश में : सम्पादकगण—आचार्य श्री जगन्नाथप्रसाद मिश्र, श्री सुरेन्द्र झा 'सुमन' तथा पं० चन्द्रनाथ मिश्र 'अमर'; प्रकाशक विद्यापति-गोष्ठी, लहेरिया सराय, दरभंगा; मूल्य २)।

हिन्दी का क्षेत्र बहुत विशाल है। देश के कोने-कोने के साहित्य-साधक उसकी श्रीवृद्धि के लिए साधना कर रहे हैं। विद्यापति-गोष्ठी दरभंगा के साहित्यकारों का इसी प्रकार का एक आयोजन है। विद्यापति की काकली के मधुर रव से गुंजित मिथिला के कवियों के एक कविता-संग्रह के प्रकाशन का संकल्प इस विद्यापति-गोष्ठी ने लगभग दो वर्ष पूर्व किया था और उसके परिणामस्वरूप "विद्यापति के देश में" नामक यह कविता-संग्रह "कातिक धवल त्रयोदशी" (विद्यापति-स्मृति-दिवस) १९५४ को प्रकाशित हुआ है।

इस संग्रह में लगभग १००-१२५ कवियों की कविताओं का संग्रह है, जिनमें २०-२५ मैथिली बोली में भी हैं। (प्रारम्भ या अन्त में कहीं सूची न होने से कुछ असुविधा अवश्य होती है।) इन कवियों में अनेक प्रसिद्ध कवि हैं तथा कुछ नवोदित कवियों के नाम सम्भवतः प्रथम बार सामने आए हैं। कविवर दिनकर का अभाव अखरने वाला है और इस संग्रह के सम्पादकगण ने इसको अनुभव भी किया है।

एक जनपद अथवा प्रदेश के कवियों की कुछ प्रतिनिधि रचनाओं को एकत्रित प्रकाशित करने की परम्परा अत्यन्त प्रसंशनीय एवं स्वागतयोग्य है। इस प्रकार के संग्रहों से हिन्दी के विशाल क्षेत्रों के साधकों से परिचय सुलभ हो जाता है। निश्चय ही कुछ नवोदित कवियों की रचनाएँ भी अत्यन्त श्रेष्ठ हैं और उनसे ज्ञात होता है कि मैथिल कोकिल की भूमि आज भी अपनी गरिमा को अक्षुण्ण रखने में समर्थ है।

मैथिली बोली में रचनाएँ आज भी हो रही हैं, यह केवल कौतूहलवर्धक है, उनकी उपयोगिता के विषय में हमें सन्देह है। आज के युग में जब यातायात के साधन अत्यन्त द्रुत हो गये हैं और मुद्रण ने हिन्दी के प्रचार को सुलभ बना दिया है, उस समय बोलियों में की जाने वाली रचनाएँ केवल बाल-कौतूहल और संकुचित प्रदेश-प्रेम की तुष्टि ही कर सकती हैं। इतिहास और वर्तमान दो भिन्न चीजें हैं। इतिहास हमें केवल हमारी परम्पराओं से सम्बद्ध कर सकता है, भूत को वर्त्तमान पर लाद नहीं सकता।

फिर भी हम इस प्रयास को अभिनन्दनीय एवं अन्य जनपदों के लिए अनुकरणीय समझते हैं।

विन्ध्यभारती (त्रैमासिक) : संपादक श्री महावीर प्रसाद अग्रवाल; प्रकाशक—विंध्य प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, रीवाँ; वार्षिक मूल्य २)।

प्रस्तुत पत्रिका प्रादेशिक साहित्यकारों को एक सामान्य सम्मिलित केन्द्र प्रस्तुत करने की दृष्टि से निकाली गयी है। इसके पहले ही अंक से विंध्यप्रदेश के प्राय: सभी प्रतिनिधि साहित्यकारों ने इसमें अपना अंशदान दिया है। सर्वश्री हरिमोहनलाल श्रीवास्तव, उरगेश, महाकवि ब्रजेश, रज्जन श्रीवास्तव आदि साहित्यकार इसे अपनी रचनाओं से सजाने में प्रयत्नशील दिखते हैं। वास्तव में यह प्रयत्न अत्यन्त सराहनीय है, और यदि इसी लगन से इसका प्रकाशन होता रहा तो इसके अंक विंध्यप्रदेश की संस्कृति एवं साहित्य के विश्वकोष बन जाएँगे।

इतनी ठोस सामग्री इतने थोड़े मूल्य में देने का साहस करने के लिए संपादक एवं प्रकाशक सभी साधुवाद के पात्र हैं।

अस्पृश्यता निवारण: लेखकगण-सर्वश्री श्रीमन्नारायण, वियोगी हरि, जगजीवनराम, विशंभरनाथ पांडे; प्रकाशक—पब्लिकेशन डिवीजन, सूचना एवं प्रसार मंत्रालय, नई दिल्ली; पृष्ठ संख्या ३२; मूल्य ६ आना।

प्रस्तुत पुस्तिका में उपर्युक्त सज्जनों की अस्पृश्यता निवारण समस्या पर रेडियो वक्तृताएँ संग्रहीत हैं। श्री श्रीमन्नारायण जी ने अपनी वक्तृताओं में केवल इस समस्या पर हुए प्रयत्नों के इतिहास पर प्रकाश डाला है। श्री जगजीवनराम जी ने अधिकांश में संविधान में दिये गये हरिजनों के संरक्षण की दस वर्षों की अवधि में वृद्धि का प्रतिपादन किया है। सर्वश्री वियोगी हरि तथा पांडे जी ने कुछ कार्यक्रम भी सुझाए हैं। इस प्रकार देश में अस्पृश्यता निवारण के हेतु क्या प्रगति हुई है, इस पुस्तक से संक्षेप में ज्ञात हो जाता है।

यह बनारस है : लेखकगण-श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़ 'बेढब बनारसी' आदि; प्रकाशक—वही; पृष्ठ संख्या २०; मूल्य चार आना।

प्रस्तुत पुस्तक बनारस के भ्रमण के इच्छुक व्यक्तियों के लिए बड़े काम की है। मनोरंजक शैली में काशी के दर्शनीय स्थानों का परिचय कराया गया है।

मानव विज्ञान : प्रकाशक—वही; पृष्ठ सख्या २०, मूल्य चार आना।

प्रस्तुत पुस्तक में मानव जाति के बिकास पर डॉ० पी० सी० बिस्वास द्वारा दिये गये भाषणों का परिशोधित रूप दिया गया हैं। मानव के प्रारम्भिक काल के उसकी विभिन्न जातियों के विकास से लेकर आज तक के सामाजिक विकास पर सुन्दर प्रकाश डाला गया है। नृशास्त्र के प्रारम्भिक ज्ञान के लिए यह पुस्तिका बहुत उपयोगी है।

दक्षिणभारत : प्रकाशक—वही; पृष्ठ संख्या ११२, मूल्य १)।

प्रस्तुत पुस्तक 'भारत देखिए' माला में से है। इसमें, दक्षिण भारत के दर्शनीय स्थानों का, वहाँ ठहरने एवं यातायात की सुविधाओं का विस्तारपूर्वक सचित्र वर्णन किया गया है।

दक्षिण भारत की यात्रा पर जाने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

लाल बुर्ज : लेखक श्री श्याम व्यास; प्रकाशक—रामकृष्ण अग्रवाल, २२, बड़ा सराफा, इन्दौर; पृष्ठ संख्या ७५; मूल्य ।।।)।

प्रस्तुत कहानी संग्रह में व्यास जी की ७ कहानियाँ संकलित हैं। सभी कहानियाँ हृदय में चुभ जाने वाली शैली में लिखी गयी हैं। देश में फैले आर्थिक और सामाजिक विषयों का सुन्दर चित्रण किया गया है। साथ ही सूदखोर कहानी में मानव में शाश्वतरूप से विद्यमान कोमल भावनाओं का भी चित्रण इस पुस्तिका द्वारा मिलता है। बाकी सब कहानियाँ सामाजिक असमानताओं के कारण भग्न मनोभावों पर आधारित हैं।

कहानियों की भाषा देवनागरी लिपि के अतिरिक्त कहीं भी हिन्दी नहीं कही जा सकती, फिर भी उसकी ओजस्विता तथा चित्रणशक्ति गजब की है। हम इस कहानियों के संग्रह का स्वागत करते हैं।

भारत के प्राचीन गणराज्य, राजन्य जनपद और औदुम्बरगण : लेखक—श्री भागीरथ दुबे गौतम, प्रकाशक—गौतम प्रकाशन, इन्दौर; मूल्य २)।

हिन्दी में इतिहास-साहित्य अभी प्रचुर मात्रा में नहीं लिखा गया। इस पुस्तक के लेखक श्री गौतम जी ने प्राचीन गणतन्त्रों में से राजन्य जनपद और औदुम्बर गणों का इतिहास लिखा है। इस सम्बन्ध में उपलब्ध सामग्री को आकर्षक रूप में सँजोकर लेखक ने स्तुत्य प्रयास किया है।

—मधुसूदन

संपादकीय

मध्यदेश या मध्यप्रदेश ?

राज्य पुनर्गठन आयोग ने भारत के वर्त्तमान राज्यों के पुनर्गठन के सम्बन्ध में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत कर दिया है। वह अत्यन्त व्यापक विवाद का विषय भी बना है। उसके परिणामस्वरूप भारत के मध्य में वर्त्तमान मध्यभारत, भूपाल, विंध्यप्रदेश तथा मध्यप्रदेश के चौदह हिन्दी भाषी जिलों को मिला कर एक विशाल राज्य बनना सुनिश्चित है। उसका नाम आयोग ने मध्यप्रदेश सुझाया है।

हमें इस घटना के राजनैतिक पहलू पर कुछ नहीं कहना है। बुन्देलखण्ड, बघेलखण्ड, मालवा, गोंडवाना तथा छत्तीसगढ़ के प्राचीन जनपदों का यह एकीकरण भारतीय संघ और उसके नागरिकों को कल्याणकर हो यही हमारी मंगलकामना है। परन्तु इस नवीन राज्य के नाम के विषय में हमें कुछ अवश्य कहना है, क्योंकि उसका सीधा सम्बन्ध हमारी प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराओं से है। सेण्ट्रल प्रोविंसेज अथवा मध्यप्रदेश नाम हमें अंग्रेजों से मिला है जिनके द्वारा यह नामकरण सांस्कृतिक परम्पराओं के आधार पर न किया जाकर उनकी प्रतिरोधिनी अपनी सैनिक शक्ति की सुविधा की दृष्टि से किया गया था। भारतीय सांस्कृतिक परम्पराओं के अनुसार इस प्रदेश का नाम मध्यदेश था। मनुस्मृति के समय से उन्नीसवीं शताब्दी-तक इस भू-भाग को मध्यदेश ही कहा जाता था। यमुना और नर्मदा तथा चम्बल और सोन के बीच का भू-भाग सदा एक सांस्कृतिक इकाई माना जाता रहा है और उसका नाम हिन्दू तथा मुगल इतिहासकारों ने मध्यदेश ही दिया है।

आज हम भारतीय सांस्कृतिक परम्पराओं का नाम लेते हैं, परन्तु वास्तविक कार्य में उनकी उपेक्षा करते हैं और जानते हुए भी अनजान बन जाते हैं। यह प्रश्न किसी नगर या प्रदेश के हित-अहित का नहीं है, विशुद्ध सांस्कृतिक परम्पराओं का है, अतएव हम भावीराज्य के निर्माताओं का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहते हैं। इस राज्य को मध्यदेश नाम देने में हम इसे पिछली दो हजार वर्ष की परम्पराओं से सम्बद्ध कर सकेंगे।

शब्दावलियाँ और भा

जब से हिन्दी भारत संघ की राजभाषा घोषित की गयी है, उसे इस पद के योग्य प्रसार और क्षमता देने के अनेक प्रयास किये जा रहे हैं। केन्द्रीय शासन तथा

कुछ राज्यशासनों ने इस दिशा में सबसे प्रथम कार्य शब्दावलियों का निर्माण कराने का किया है। शासकीय, न्यायालयीन, वैज्ञानिक तथा अनेक पारिभाषिक कार्यों में उपयोग में आने वाले अंग्रेजी शब्दों को ध्यान् में रखकर उनकी समानार्थक हिन्दी शब्दावलियाँ प्रस्तुत कराई जा रही हैं। यह प्रयास स्तुत्य है, परन्तु पर्याप्त नहीं। कोष और व्याकरण किसी भाषा का निर्माण नहीं करते, न कर सकते हैं। उसका विकास अथवा नव-निर्माण समर्थ लेखकों द्वारा गंभीर विषयों पर लिखे गये ग्रन्थों से होता है। कोष और व्याकरण तो बाद को, उन ग्रन्थों के आधार पर बनते हैं। अतएव ये प्रयास कुछ विपरीत दिशा में चले हैं।

पिछली बार अपनी नागपुर यात्रा में इस दिशा में हमें एक अत्यन्त स्तुत्य प्रयास की सूचना मिली थी। नागपुर विश्वविद्यालय ने कुछ वैज्ञानिक विषयों पर अधिकारी विद्वानों द्वारा ग्रन्थ प्रणयन कराने का आयोजन किया है। हम समझते हैं कि इस प्रकार के प्रयासों से समर्थ और शालीन भाषा का प्रादुर्भाव सही अर्थों में उपयोगी रूप से हो सकेगा। हमने इस आशय का सुझाव मध्यभारत शासन को भी दिया था, और हमें प्रसन्नता है कि इस राज्य के न्याय विभाग ने विधि एवं विधान सम्बन्धी अनेक ग्रन्थों को प्रस्तुत कराने का कार्य हाथ में लिया है। मध्यभारत के एक अंश भूतपूर्व ग्वालियर राज्य में समस्त मूलभूत विधानों का हिन्दीकरण आज से लगभग पन्द्रह वर्ष पूर्व हो भी चुका है और उसके आधार पर शब्दावली भी बनी थी। ऐसी दशा में मध्यभारत में यह कार्य क्षमतापूर्वक हो भी सकता है। हमारा निश्चित मत है कि विधि-विज्ञान, संसदीय प्रक्रिया, विधान आदि को हिन्दी में लिखकर हिन्दी का रूप निखर सकेगा, इससे पूर्व ही तत्सम्बन्धी शब्दावलियाँ गढ़ कर भावी कार्य में बाधा ही उत्पन्न होगी।

आज बेचारी हिन्दी कुछ विचित्र हाथों में पड़ गयी है। नौसिखिए चिकित्सक उसके जीवन को संकट में डाल रहे हैं। इस भाषा की अपनी दो सहस्र वर्ष की परम्पराएँ हैं जो जीवन के व्यापक व्यवहारों के लिए उसके जनपदों ने प्रचलित कर रखी हैं। आज कुछ ऐसे व्यक्तियों के भी हाथ में उसकी रूपसज्जा जा पड़ी है जिन्हें इस परम्परा का कुछ भी ज्ञान नहीं। अंग्रेजी में एक शब्द RANSOM है। हमने आज की नवोद्भूत अनेक शब्दावलियाँ देखीं। इस शब्द के समानार्थी कुछ विचित्र शब्द हमें देखने को मिले, परन्तु कहीं भी वे शब्द न मिले जो शताब्दियों से हिन्दी में इसके लिए प्रचलित हैं। अरबी-फारसी के सम्पर्क के कारण इसका समानार्थी हमें "पनिहाई" मिला और शुद्ध देशज रूप में "छुटौती" प्रचलित है। इनके बदले "निष्क्रयण" लिख कर जो भाषा बनेगी वह हिन्दी नहीं हो सकती, कोई अन्य भाषा हो तो हो। संस्कृत का शब्दभंडार हमारी वह निधि है जिसमें से हमें अपने भंडार में अभाव अथवा शैथिल्य

दिखने पर ही अनुदान माँगना उचित होगा। परन्तु यदि ग्रन्थों के पहले शब्दावलियाँ बनेंगीं तो इस प्रकार की दुर्दशा देखने को मिलेगी ही।

दूसरी चिन्तनीय प्रवृत्ति हिन्दी को अन्य भाषाओं से प्राप्त शब्दों के बहिष्कार की है। हिन्दी का अंग्रेजी से दो सौ वर्ष तक सम्पर्क रहा, अरबी-फारसी से तो बहुत लम्बा सम्बन्ध रहा है। इस सम्पर्क में हिन्दी ने हजारों शब्द आत्मसात किये हैं। आज हम उन्हें बीन-बीन कर निकाल रहे हैं। अपनी इस अर्जित संपत्ति को खोकर हिन्दी को हम दरिद्री ही बनाएँगे।

इस सब अराजकता के निराकरण का एक ही उपाय है। शब्दावलियों की मूलहीन टकसालें या तो बन्द ही करदी जाएँ या फिर उससे अधिक गति से ग्रन्थ-निर्माण का कार्य प्रारम्भ हो, तथा विद्वानों के मार्ग में इन शब्दावलियों को रोड़ा बना कर न डाला जाय।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति और सम्मेलन

गत ३० एवं ३१ दिसम्बर को वर्धा में भारतवर्ष के हिन्दी हितैषी, विद्वान और विचारक राष्ट्र भाषा विचार समिति के आह्वान पर एकत्र हुए थे। उनके सामने प्रधान विचारणीय विषय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का गत्यवरोध मिटाना था। भारती के पाठक हिन्दी साहित्य सम्मेल के पिछले इतिहास से परिचित हैं। हिन्दी की समुन्नति में गौरवशाली योग देकर जैसे ही इस संस्था ने साधनाकाल को समाप्त कर समृद्धि की ओर पदार्पण किया, इसमें व्यक्तिगत सत्ता और स्वार्थ साधना ने जोर पकड़ लिया। परिणामतः आज कोटिशः हिन्दी भाषियों की यह श्रद्धापीठ अत्यन्त अवांछनीय कलह का प्रांगण बनी हुई है। यह एक अत्यन्त खेदजनक प्रसंग है। अपनी प्रतिभा से जनता को ज्ञानदान देने का दम्भ करने वाले अपने आपसी मतभेदों को विचार विनिमय से मिटा न सके और उन्हें सुलझाने के लिए न्यायालय की शरण में चले गये। युगप्रवर्तक साहित्य के सर्जन का नाम लेने वाले युग के दलदल में फँस गये। वर्धा में यह गत्यवरोध दूर न हो सका, यद्यपि आशाएँ और आकांक्षाएँ प्रकट अवश्य की गयीं। न्यायालयीन वाद के एक पक्ष ने वहाँ अनुपस्थित रहकर आपसी समझौते के द्वार को अवरुद्ध कर दिया।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन से ही सम्बद्ध संस्था है वर्धा की राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति। आज की यह समिति जिस लगन और प्रबल सेवा भावना से कार्य कर रही है, वह अत्यन्त आशावर्धक है। वर्धा का हिन्दी नगर हिन्दी का ज्योतिष्मान तीर्थ है। परन्तु दुश्चरित्र पिता की तेजस्वी सन्तान के समान उसे अपने इस कलंक की छाया में अपना भारत व्यापी कार्य करना पड़ रहा है। आज समस्त अहिन्दी भाषी भारत

में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का कार्य चल रहा है। उसी कार्य के साथ-साथ हिन्दी के कर्णधारों की जड़ता का यह प्रत्यक्ष रूप उन सुदूर प्रान्तों में हमें विद्रूप करता है।

संस्थाएं बनती हैं और बिगड़ती भी हैं। सड़े-गले हाथ-पैर को कटवा कर ही समस्त शरीर की रक्षा की जा सकती है। हम नहीं समझते कि जब यह निश्चित है कि सम्मेलन का गतिरोध दूर नहीं किया जा सकता, तब राष्ट्रभाषा प्रचार समिति को उसे स्वतन्त्र कर उसे अपना उपयोगी कार्य निर्बन्ध होकर क्यों नहीं करने दिया जाता। हिन्दी साहित्य सम्मेलन का उद्धार हो सकेगा, ऐसी हमें आशा नहीं है। वह अब केवल निःस्वार्थ सेवा भाव से प्रेरित व्यक्तियों की संस्था नहीं है। उसके साथ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति को भी गहरे गर्त में डुबा देना बुद्धिमत्ता नहीं है। हमारा सुझाव है कि राष्ट्रभाषा प्रचार समिति को सम्मेलन से मुक्त करके उसकी पुनर्स्थापना स्वतन्त्र संस्था के रूप में कर दी जाए और उसे अपना कार्य करने दिया जाए।

नियतकालिक और शासन

उत्तर प्रदेश के हिन्दी पत्रों के सम्पादकों एवं संचालकों के एक संगठन ने कुछ महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किये हैं। इन सुझावों का सम्बन्ध किसी राज्य विशेष से ही नहीं है, वे अखिल भारतीय महत्त्व के हैं; साथ ही उनका सम्बन्ध केवल दैनिक पत्रों से भी नहीं है, वे सभी कोटि के नियतकालिकों से सम्बन्ध रखते हैं। इन में सब से महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव केन्द्र तथा विभिन्न राज्यों द्वारा पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन से सम्बन्ध रखता है। इस प्रस्ताव में कहा गया है कि शासनों द्वारा पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन लोकतन्त्र सम्मत सिद्धान्तों के विपरीत तथा विचार स्वातन्त्र्य के अभ्युदय में बाधक है, क्योंकि यह कार्य स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं से अनुचित प्रतिस्पर्द्धा को जन्म देता है। सम्मेलन ने इस प्रस्ताव में माँग की है कि सरकार स्वयं पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित न करे।

कुछ राज्यों में साप्ताहिक, पाक्षिक आदि का प्रकाशन राजनीतिक एवं शासकीय प्रचार के लिए अथवा किसी भी विषय पर शासकीय दृष्टिकोण प्रस्तुत करने के लिए किया जाता है। इसके लिए भी शासन को स्वयं का कोई पत्र प्रकाशित करने की आवश्यकता नहीं है। अखिल भारतीय एवं प्रादेशिक पत्र उनकी गतिविधियों को सदा ही समुचित स्थान देते रहे हैं। वास्तविकता तो यह है कि यह प्रवृत्ति सीमा से अधिक दिखाई देती है। कभी-कभी कुछ दैनिक पत्रों को पढ़ कर यह आभास-सा होने लगता है कि देश में शासन तन्त्र की विविध गतिविधियों के अतिरिक्त कोई सांस्कृतिक, सामाजिक एवं साहित्यिक कार्य हो ही नहीं रहा। इनका उल्लेख भी बहुधा तभी मिलता है जब

उससे किसी राजपुरुष का सम्बन्ध हो। समाचार समितियाँ भी इसी क्षेत्र के समाचार एकत्रित करने में अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेती हैं। परिणाम यह होता है कि ऐसा आभास होने लगता है कि समस्त देश का सांस्कृतिक जीवन स्तब्ध है और यदि कहीं कुछ हो रहा है तो वह शासकीय क्षेत्र में ही हो रहा है। फिर इन राजकीय पत्रों को प्रकाशित करने से क्या हितसाधन हो सकता है, यह सोच सकना सम्भव नहीं।

इन शासकीय नियतकालिकों का एक उपयोग अथवा दुरुपयोग कुछ मुँहलगे साहित्यकारों को प्रश्रय, प्रोत्साहन अथवा परोक्ष सहायता देना भी हो गया है। धीरे-धीरे प्रवृत्ति यह हो चली है कि साहित्यकार को अपना अस्तित्त्व बनाए रखने के लिए राजनीति में भी अपना प्रभाव उचित या अनुचित साधनों से बनाए रखना पड़ता है अथवा साहित्यकारों और कलाकारों के वर्ग में से भी राजकृपा उनकी ओर ही अधिक झुकी रहती है, जो उनकी राजनीति में भी कुछ करने का दम भरते हैं या उनकी चाटुकारी में निरत रहते हैं। आज स्वतन्त्र भारत में भी इस प्रकार के दृश्य देखने को मिल ही जाते हैं जो कभी देशी नरेशों के निरंकुश शासन में यदाकदा देखने को मिलते थे। आधार और कारण बदल गये हैं, रीति वही है। भाई-भतीजों को ऐसे पत्रों में सेवा का अवसर देना एक बात है, परन्तु बिना सेवक कहलाए अथवा बिना कोई उपयोगी कार्य किये सार्वजनिक धन का दान बिलकुल दूसरी बात है। हम इस प्रसंग पर विस्तार से फिर कभी लिखेंगे।

इस प्रसंग में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात है शासकीय विज्ञापनों के वितरण की। शासकीय नियतकालिक प्रकाशित कर अनेक राज्यों की यह प्रवृत्ति हो जाती है कि शासकीय विज्ञापनों के अनुदान में से अधिकांश उनके अपने पत्रों को मिल जाए। प्रसन्नता यह है कि यह कुप्रथा अभी एक-दो राज्यों में ही चल रही है। परन्तु जहाँ भी चल रही है, वह स्वस्थ एवं स्वतन्त्र पत्रकारिता के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध हुई है। यदि शासकीय नियतकालिक प्रकाशित करना अभीष्ट है, तब उन्हें व्यापारिक स्पर्धा अथवा साहित्यिक पक्षपात से दूर ही रखा जाय तो उचित ही होगा।

दिनारा पधारिए

विशाल वीर सरोवर में नाव की सैर,

- हरियाली भरे खेत,
- संतरों, अमरूदों के बाग,
- बतखों, काले हरिनों तथा
- मछलियों का शिकार
- मनोरम पहाड़ियों की विस्तृत पृष्ठभूमि
- ग्राम जीवन की सुन्दरता

आपको

इस शरत् ऋतु में

आमंत्रित करती हैं

ठहरने के लिये डाक बंगला

झांसी से सुगम यातायात

विशेष विवरण के लिए लिखें

मंत्री केन्द्र पंचायत,
दिनारा (ग्वालियर)

झांसी से दिन में तीन तथा शिवपुरी से दो बार बस सर्विस जाती तथा आती है।

"अमेरिकन और अँग्रेजी प्रकाशनों से भी टक्कर"

हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी की समस्त रचनाओं का संग्रह

बेनीपुरी-ग्रन्थावली

(दस खंडों में)

दूसरा खंड भी प्रकाशित हो गया !

पहला खंड

शब्दचित्र : कहानी : उपन्यास

दूसरा खंड

नाटक : एकांकी : रूपक

प्रत्येक खंड में ५०० से ७०० पृष्ठ

चित्रों से जगमग

बढ़िया कागज पर मोनो की छपाई

रेक्सिन की पक्की सुनहरी जिल्द

नयनाभिराम तिरंगा आवरण

मूल्य प्रति खंड १२॥)

दोनों प्रकाशित खंडों का मूल्य २५)

(दोनों खंड साथ मँगाने पर डाकखर्च माफ)

दसो खंड के लिये १००)

अग्रिम भेजकर अपनी प्रतियाँ
घर बैठे प्राप्त किया कीजिए !

बेनीपुरी की लेखनी

श्री मैथलीशरण गुप्त—
यह लेखनी है या जादू की छड़ी है
आपके हाथ में !

पं० माखनलाल चतुर्वेदी—
बेनीपुरी की लेखनी फौलाद उगलती है !

आचार्य शिवपूजन सहाय—
बेनीपुरी की भाषा चपल खंजन-सी
फुदकती चलती है !

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी—
हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ शब्द-चित्रकार कौन ?
निस्संकोच ही बेनीपुरी !

ग्रन्थावली का प्रकाशन !

श्री रामधारीसिंह दिनकर—
हिन्दी का रिकार्ड प्रकाशन: पुस्तकालय
की शोभा और शृंगार !

श्री जगदीशचन्द्र माथुर—
जैसी चित्रोपम कृतियाँ, वैसी ही
नयनाभिराम रूप-सज्जा !

डॉ० हेमचन्द्र जोशी—
छपाई, सफाई, गेट-अप, एक-से-एक
उत्कृष्ट !

श्री अनन्तगोपाल शेवड़े—
अमेरिकन और अंग्रेजी प्रकाशनों
से भी टक्कर !

बेनीपुरी-प्रकाशन : पटना—६

मध्यभारत के प्रतिनिधि विक्रेता—

विद्यामंदिर प्रकाशन, सराफा, ग्वालियर

याद रखिए पत्रिका के लिए— { १. एक निश्चित उद्देश्य चाहिए ! २. उसका अपना व्यक्तित्व चाहिए !

नई धारा

ऐसी ही एक मासिक पत्रिका है जो अशोक प्रेस, पटना से प्रकाशित हो रही है। कहानियाँ, कविताएँ, शब्द चित्र, संस्मरण, नाटक, आलोचना, निबन्ध।

हिन्दी में नई धारा के प्रतीक श्री रामवृक्ष बेनीपुरी इसका सम्पादन कर रहे हैं।

प्रादेशिक सरकारों के शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत।

जिसकी सहायता के लिए साहित्य महारथियों का सम्पादक मंडल संगठित किया गया है।

डिमाई अठपेजी के १०० पृष्ठ, पक्की जिल्द, आकर्षक कवर, सचित्र, सुसज्जित।

एक अंक १ रु० **वार्षिक १० रु०**

प्रबन्धक नई धारा, अशोक प्रेस, पटना ६

तार—हिन्दी फोन नं० ४८०६

हिन्दी-वाणी

: मासिक :

प्रकाशक—मैसूर हिन्दी साहित्य परिषद, फर्स्ट मेन रोड, चामराजपेट, बैंगलोर-२

संपादक—पी० आर० श्रीनिवास शास्त्री

मूल्य—३-०-० वार्षिक

१. उच्चकोटि का साहित्य २. उच्चकोटि का कन्नड़ साहित्य ३. सुन्दर तथा स्वच्छ छपाई।

आप शीघ्र ही ग्राहक बनिये। कर्नाटक की एक मात्र हिन्दी मासिक पत्रिका।

दक्षिण-भारती

(दक्षिण-भारत की सचित्र मासिक पत्रिका)

आप अभी तक इसके ग्राहक न बने हों तो शीघ्र ही ग्राहक बनें। इसे कल पर छोड़ना एक भूल होगी।

वार्षिक चन्दा ६) प्रति अंक ।।)

दक्षिण-भारती कार्यालय

अफजलगंज, हैदराबाद (दक्षिण)

× हिन्दी साहित्य में युगान्तर—
× भारतीय जन-जीवन में नई दिशा—
× काम सम्बन्धी सम्वाद एवम् साहित्य—
× काम तथा मनोविज्ञान सम्बन्धी खोज—

एक प्रति ।=) **मस्ती** वार्षिक ४)

सम्पादक—नरेन्द्र धीर

—यदि आप ग्राहक नहीं बने हैं तो आज ही ४) भेज कर वार्षिक ग्राहक बनें।
—यदि आपने विज्ञापन इसमें नहीं दिया है तो आज ही विज्ञापन भेजदें।
—यदि आपने एजेन्सी नहीं ली है, तो आज ही एजेन्सी लेलें।

आज ही लिखिए—व्यवस्थापक "मस्ती" खन्ना (पू० पंजाब)

रूस, अमेरिका, चीन, चेकोस्लोवाकिया तथा पूर्वीय एशियायी देशों तक अपना व्यापार, देश तथा विदेशों तक फैलाने के लिये,

भारती में

विज्ञापन दीजिये।

दरों के लिये आज ही लिखें,

व्यवस्थापक,
'भारती'

साहित्यिक और सांस्कृतिक योजना की श्रेष्ठ प्रतीक

अजन्ता

दक्षिण के विविध साहित्यों का गवेषणात्मक परिचय, हिन्दी और संस्कृत साहित्य का अनुशीलनात्मक अध्ययन, विश्व की अन्य साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का पर्यालोचन, नयनाभिराम, कलात्मक चित्र और चित्रकला पर विशद विवेचन-कविताएँ, कहानियाँ, एकांकी सभी कुछ सर्वदा आकर्षणीय।

"अजन्ता का अपना व्यक्तित्व है"—श्री बनारसीदास चतुर्वेदी
"अजन्ता हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिकाओं में से एक है।"
श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी

संपादक
श्री वंशीधर विद्यालंकार

वार्षिक मूल्य ६ रु०। एक प्रति १ रु०।

प्रकाशक—
हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा, नामपल्ली स्टेशन रोड,
हैदराबाद [दक्षिण]

सर्वोच्च न्यायालय

(सुप्रिम कोर्ट)

के निर्णय

अब राष्ट्रभाषा में पढ़िये

राष्ट्रपति, भारत के मुख्य न्यायाधिपति

तथा

सभी अधिकारी व्यक्तियों द्वारा

प्रशंसित—

'सर्वोच्च न्यायालयीन निर्णय'

[सुप्रिम कोर्ट केसेज]

समानान्तर स्तम्भों में अंग्रेजी तथा हिन्दी अनुवाद प्रकाशित होते हैं

वार्षिक मूल्य १५) रु० अग्रिम देय

प्रबन्धक—

म० भा० लॉ जर्नल पब्लिकेशन्स

सराफा, ग्वालियर

जनवरी १९५६ से प्रकाशित हो रहा है
पंजाब का एक मात्र कहानी मासिक

मनोज

- ★ 'मस्ती' सम्पादक के सम्पादकत्व में यह कहानी मासिक अपना विशिष्ट स्थान रखता है।
- ★ 'मस्ती' की भाँति 'मनोज' भी अपने विषय का निराला मासिक है।
- ★ भारत के श्रेष्ठ कहानीकार इसमें अपनी कहानियाँ दे रहे हैं।
- ★ नवोदित कहानीकारों का यह उत्थानक सिद्ध होगा।
- ★ कलाकार गल्लेदार की तूलिका इसे सुसज्जित करेगी।

पत्र विक्रेता अपनी प्रतियां तुरन्त सुरक्षित करवायें। विज्ञापक अपना विज्ञापन तुरन्त भेजें। यदि आप अभी तक इसके सदस्य नहीं बने हैं तो तुरन्त ही ४) रु० भेज कर सदस्य बनें या ४॥) रु० की वी० पी० मंगवायें।

पत्र व्यवहार का पता—
'मनोज'
कार्यालय खन्ना (पंजाब)

मित्र के बिना जीवन नीरस है
पर
आज के युग में सच्चा मित्र ढूंढ़ने से भी नहीं मिलता है—

पर निराश मत होइए, हमारी नेक सलाह मानिए

सफल जीवन

मासिक पत्र--
सफलता के साथ तीसरे वर्ष में प्रवेश कर रहा है।
आपका निःस्वार्थ साथी, मित्र और शुभ चिन्तक है
ज्ञानवर्द्धक, रोचक और स्फूर्तिदायक पाठ्य सामग्री से भरपूर
नयी पीढ़ी के लिये सच्चा पथ प्रदर्शक
आज ही मँगवाइये
वार्षिक मूल्य सात रु०
नमूने की प्रति १२ आने में
"सफल जीवन" पुस्तकमाला प्रत्येक घर की शोभा है।
६४, बेयर्ड रोड, नई दिल्ली

सफेद दाग की रामबाण दवा

भगवान श्री जैन पाँचोरा (खानदेश) के पुत्री का कोढ़ अच्छा हो गया और आपने हमको ५१) रु० इनाम दिया। ऐसे कई इनाम मिले और कोढ़ के हजारों लोग अच्छे हो गये। मू० ५) रु०, डा० ख० १५ आ०, विवरणपत्र मुफ्त मँगावें। नक्कालों से सावधान रहें।

वैद्य बी० आर० बोरकर, आयुर्वेद भवन
पो० मंगरूलपीर, जिला अकोला (बरार) मध्यप्रदेश

पंचायत—सन्देश

[बिहार राज्य पंचायत परिषद् द्वारा संचालित मासिक पत्र]
जिसके प्रत्येक अंक में

पंचायत सम्बन्धी उत्कृष्ट मौलिक कई रचनाओं के साथ-साथ कहानी, कविता एकांकी, निबन्ध तथा अनेक स्थायी स्तम्भों के अन्तर्गत महत्त्वपूर्ण तथा उपादेय सामग्रियाँ अनिवार्य रूप से प्रकाशित की जाती हैं। पंचायतों के लिए विशेष रूप से संग्रहणीय।

चन्दा

वार्षिक—साढ़े चार रुपये ● एक अंक का—छः आने

प्रधान सम्पादक
पं० विनोदानन्द झा

सम्पादक
परमानन्द दोषी

कार्यालयः—
पंचायत-सन्देश
पटना लॉ टाइम्स बिल्डिंग्स, कदमकुआँ, पटना-३

आयुर्वेद का गौरव ! अत्यन्त बलकारक !!

'दिनारा' स्वर्ण मृगांक

- बहुमूल्य द्रव्यों से बना
- अद्वितीय वाजीकरण
- अंग-अंग में नयी स्फूर्ति
- प्रत्येक मात्रा में अपूर्व ताकत
- तत्काल स्थायी प्रभाव

२० दिन की दवा का मूल्य ८) ४० दिन का १५) डाक व्यय अलग

सीधा रसायनशाला से मँगाइए

दिनारा आरोग्य भवन, ग्वालियर

विद्यामन्दिर प्रकाशन

की

नवीन भेंट

मानसिंह और मानकुतूहल

लेखक—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी

मध्यभारत कला-परिषद ने जिस पर वर्ष का
प्रथम पुरस्कार दिया—

उत्तर प्रदेश सरकार नें जिसके लेखक को ६००)रु०
पुरस्कार देकर सम्मानित किया है—

भारत के सांस्कृतिक इतिहास के एक अज्ञात परिच्छेद का प्रथम प्रकाशन—

भारतीय संगीत, हिन्दी साहित्य तथा कलाओं के विकास पर नवीन शोध—

(मध्यभारत तथा मध्यप्रदेश शिक्षा विभाग द्वारा राज्य की शिक्षा संस्थाओं तथा पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत)

मूल्य ५)

कुछ सम्मतियाँ

—श्री नारायणस्वरूप शर्मा, एम० ए०, मंत्री, हिन्दी परिषद, लन्दन—पुस्तक कला-परिषद के प्रथम पुरस्कार की अधिकारी है। हिन्दी साहित्य को इस खोजपूर्ण देन के लिये आप मेरी हार्दिक बधाई लेखक तक पहुँचा दें।

—श्री सियारामशरण गुप्त—"मानसिंह और मानकुतूहल का प्रकाशन हिन्दी के स्वस्थ और विस्तृत दृष्टिकोण का परिचायक है। ऐसे प्रकाशन से आपकी पूर्व परम्परा का गौरव और बढ़ गया है।"

विद्या मंदिर प्रकाशन सराफा ग्वालियर

उत्तर प्रदेश शासन द्वारा पुरस्कृत—

मध्यभारत तथा मध्यप्रदेश शासन द्वारा शिक्षा संस्थाओं के हेतु स्वीकृत—

पुरातात्विक शोध का रोचक ग्रन्थ

त्रिपुरी

लेखक—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी

भारत के तीन प्राचीन वैभवशाली नगरों का इतिहास—

विदिशा—जो अत्यन्त प्राचीन काल से भारत का सांस्कृतिक केन्द्र रही है—

पद्मावती—जहाँ नाग, गुप्त और पूर्व मध्यकालीन प्रतापी राजवंशों ने साहित्य एवं कला की उपासना की—

बाघ—जहाँ की मूर्त्तिकला और चित्रकला भारत की श्रेष्ठतम कृतियों में है—

की हृदयग्राही गाथा की रोचक शोध—

प्राचीन साहित्य, पुराणों, शिलालेखों तथा अवशेषों पर से लिखा गया वर्णन।

सुन्दर जिल्द, अनेक चित्र। मूल्य २)

कुछ सम्मतियाँ—

सामग्री अत्यन्त श्रेष्ठ तथा शैली हृदयग्राहक है—

—श्री व्ही० पी० अग्निहोत्री
भारत शासन के अण्डर सेक्रेटरी,
शिक्षा विभाग

यह हिन्दी साहित्य और इतिहास के वैभव की दिशा है—

—डॉ० रामकुमार वर्मा

इतिहास के विद्यार्थियों के लिये यह पुस्तक बड़े काम की है—

—"नई धारा"

विद्या मंदिर प्रकाशन, सराफा, ग्वालियर

घर बैठे मुफ्त परीक्षा

सरकार से रजिस्टर्ड विद्यापीठ की आयुर्वेद व साहित्य की विशारद, रत्न, भूषण, अलंकार व आचार्य आदि परीक्षायें मुफ्त दीजिये और डिप्लोमा प्राप्त कर लाभ उठाइये। विवरणपत्रिका के लिये ।) के डाक टिकिट भेजिये।

पता:—राष्ट्रीय विद्यापीठ (रजि०)
मुहल्ला—गढ़ा, जबलपुर (म० प्र०)

—: ज्ञातव्य :—

● पंचायत-प्रपत्र प्रस्तुतकर्ता
● हथकड़ी, बैजादिपूर्त्तिकर्ता
● रबर-स्टाम्प निर्माता
● कानूनी पुस्तक विक्रेता

★ पंचायत ★
(भारत का सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)
सम्पादक—श्री चन्द्रदेवनारायण
वार्षिक ३) एक प्रति ।)

★ स्टेशनरी के सारे सामान हम से सुलभ मूल्य में प्राप्त करें।

व्यवस्थापक
युगान्तर प्रेस एवं प्रकाशन
मोतीहारी (बिहार)

मासिक साहित्य में स्पृहणीय वृद्धि
प्रतिभा
हिन्दी मासिक
भारतीय प्रतिभा की प्रतिनिधि
वार्षिक मूल्य ६ रुपये, एक प्रति १२ आने
पृष्ठ संख्या १००
प्रकाशक
प्रतिभा प्रकाशन लिमिटेड
वर्धा रोड,
नागपुर

दि गिर्द डिस्ट्रिक्ट को-ऑपरेटिव्ह बैंक लि० लश्कर

स्थापित सन् १९१८

शाखायें—डबरा, भांडेर, उपशाखायें—मुरार, भितरवार,

१. अधिकृत पूंजी	२,००,०००, रुपया
२. स्वीकृत पूंजी	१,७०,०००, रुपया
३. रक्षित कोष	८२,०००, रुपया
४. अन्य कोष	१,४०,६००, रुपया

५. फिक्स्ड करेण्ट तथा सेविंग अकाउण्ट खाते खोले जाते हैं। डिपाजिट्स पर सूद दर निम्न प्रकार है। एक वर्ष से अधिक की फिक्स्ड डिपाजिट पर छै मासिक सूद दिया जाता है।

फिक्स्ड		
६ माह	२।।।) प्रतिशत	वार्षिक
१ वर्ष	३) प्रतिशत	"
२ वर्ष	३।) प्रतिशत	"
३ वर्ष	३।।) प्रतिशत	"
सेविंग	२।।) प्रतिशत	"

६. त्रय-वर्षीय नगद पत्र ९) रु० में १०) रु० का मिलता है।

७. बैंक बहुत मामूली कमीशन पर अपनी शाखाओं पर ड्राफ्ट इश्यू करता है।

८. यह बैंक आनयमित जोखमदारी की ग्रामीण सहकारी समितियों में रुपया इन्व्हेस्ट करता है। इसलिए इन्व्हेस्टमेन्ट सुरक्षित व बेखतरे है। बैंक के अकाउन्ट्स का हर साल शासन से एप्रूव्हड आडीटर्स द्वारा आडिट होता है।

कृपया बैंक से सम्बन्ध स्थापित कीजिये।

रामनाथ शर्मा मैनेजर	रामकृष्ण दीक्षित व्हाइस चैयरमैन

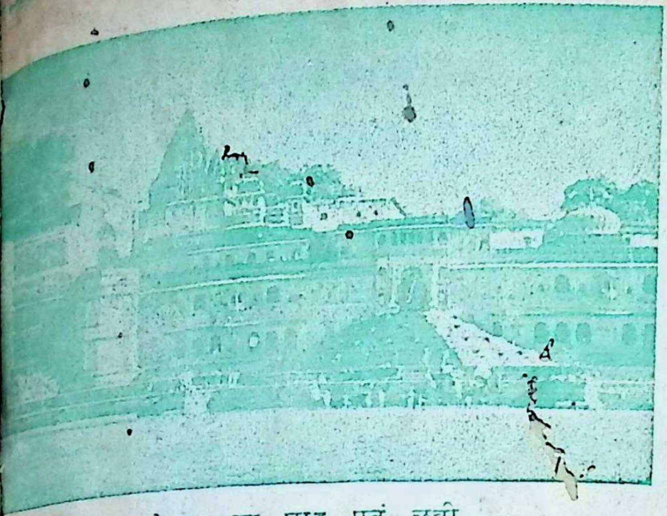

— महेश्वर का घाट एवं छत्री —

'नगर सुन्दर एक महेश्वर'

— कै. राजकवि भा. रा. तांबे

कै. राजकवि भा. रा० तांबे द्वारा वर्णित देवी अहिल्याबाई का

महेश्वर

भ्रमण के लिये सुन्दर स्थान है

उसी प्रकार

महेश्वर की

लुगड़ी

साड़ियां

एवं

खन

का भारतीय महिलाओं के जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है.

मंदिर में दर्शनीय स्थापत्य-कला का एक सुन्दर नमूना

गृह उद्योगों को प्रोत्साहन दीजिये

— सहस्रधारा (नर्मदा) —

— सूचना विभाग, मध्यभारत शासन द्वारा प्रकाशित —

THE FUTURE IS HIS!

His future is indeed bright for he is sure to grow up into a fine healthy man. His mother makes sure his diet is just right, and gives him regularly delicious J. B. Mangharam's NOURISHING Biscuits.

J. B. MANGHARAM'S
NOURISHING
BISCUITS
CHOICE OF MILLIONS

Made with Milk
and Glucose
Rich In Vitamins
J. B. MANGHARAM'S
NOURISHING
Biscuits
NOURISHING

श्री भगवानलाल शर्मा द्वारा नवप्रभात प्रेस, ग्वालियर में मुद्रित तथा प्रकाशित ।

ारती

सेहत और ताकत का नुसखा

जे० बी० मंघाराम के

नरिशिंग

बिस्कुट

विटामिनों से पूर्ण

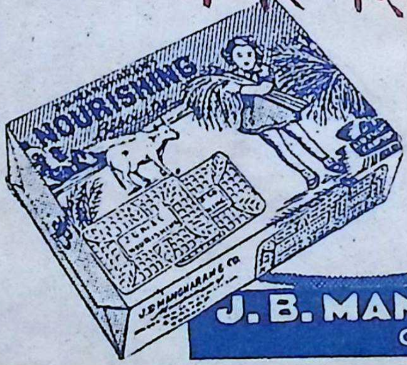
NOURISHING
J.B. MANGHARAM & CO.

J. B. MANGHARAM&C
GWALIOR

Agents:--**PRITAM STORES**
JIVAJI CHOWK PATANKAR BAZAR SUBHASH MARKET

साहित्य, संस्कृति, कला, शिक्षा, ग्रामविकास तथा समाजसेवा की
मासिकपत्रिका

भारती

मध्यभारत की समस्त शिक्षासंस्थाओं तथा पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

★

जनवरी, १९५५

★

प्रधान-संपादक
जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द
प्रबन्ध-संपादक
हरिहरनिवास द्विवेदी

★

वार्षिक मूल्य ८)   एक अंक का ।।।)

भारती-कार्यालय, ग्वालियर

'भारती'–सम्पादक की प्रार्थनाएँ

कृपया

(१) समस्त रचनाएँ, समालोचनार्थ पुस्तकें, परिवर्तन के सामयिक-पत्र आदि, सम्पादक, 'भारती', सराफ़ा, ग्वालियर के पते पर, पूरे डाक-टिकट लगाकर, भेजें।

(२) रचनाएँ सामान्यतः अच्छे काग़ज़ों पर, एक ही ओर, चारों ओर उचित हाशिया छोड़कर, टाइप की गई या सुपाठ्य अक्षरों में स्याही से लिखी गई भेजें।

(३) केवल वही रचनाएँ भेजें, जो पहले कहीं भी प्रकाशित न हुई हों। 'भारती' में छप चुकने के एक मास बाद रचयिता अपनी रचना चाहे जहाँ छपा सकते हैं।

(४) यथासंभव प्रत्येक रचना की प्रतिलिपि अपने पास रख लेने का कष्ट करें। अस्वीकृत रचनाएँ वापस मँगाने के लिए डाक के टिकिट अवश्य भिजवाएँ।

(५) तीन सप्ताह के अन्दर स्वीकृति की सूचना न मिलने पर यह समझ लें कि रचना 'भारती' में प्रकाशित न हो सकेगी।

(६) प्रत्येक रचना के नीचे अपना पूरा नाम और पता स्पष्ट लिखने का कष्ट करें।

(७) अनूदित रचना पर उसके अनूदित होने की सूचना लिखें। मूल लेखक की अनुमति लें।

(८) समालोचनाथ पुस्तकों आदि की दो-दो प्रतियाँ भिजवाएँ।

हिन्दी का स्वतंत्र मासिक
नया समाज
संचालक : नया समाज ट्रस्ट * सम्पादक : मोहनसिंह सेंगर
वार्षिक चन्दा ८) : एक प्रति ।।।) : विदेशों में १२) वार्षिक
आप यदि ग्राहक नहीं हैं, तो आज ही बन जाइये। यदि हैं, तो अप इष्टमित्रों को भी बनाइये। यदि किसी कारण आप ग्राहक नहीं बन सकते, तो चेष्टा कीजिये कि 'नया समाज' आपके पड़ोस के पुस्तकालय में अवश्य मँगाया जाय।
आज ही नमूने के लिए लिखिये:—
व्यवस्थापक, 'नया समाज', ३३, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता–१

—'भारती' हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिका है—

विश्वविश्रुत दार्शनिक
डॉ० भगवान्दास, काशी का

'भारती' पर अभिमत

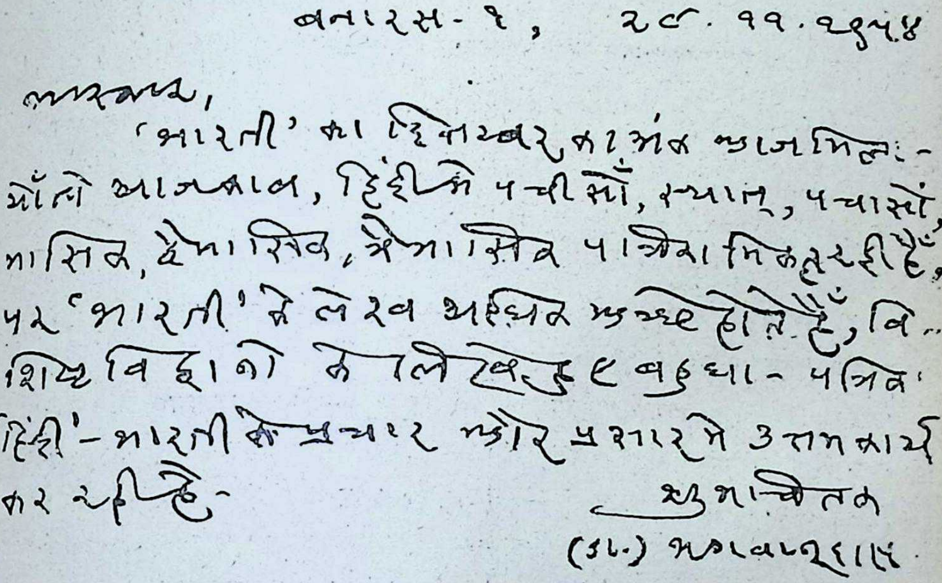

बनारस-१, २८.११.१९५४

मान्यवर,

'भारती' का दिसम्बर का अंक आज मिला।- यों तो आजकल, हिंदी में पचीसों, स्यात्, पचासों, मासिक, द्वैमासिक, त्रैमासिक पत्रिका निकल रही हैं, पर 'भारती' के लेख अधिक अच्छे होते हैं, विशिष्ट विद्वानों के लिखे हुए बहुधा। पत्रिका 'हिंदी'-भारती के प्रचार और प्रसार में उत्तम कार्य कर रही है।

शुभचिन्तक
(डा०) भगवान्दास

डॉ० रामकुमार वर्मा, हिन्दी-विभाग, प्रयाग-विश्वविद्यालय—

'भारती' साहित्यिक सुरुचि की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका है। मेरे अध्ययनकक्ष में उसका प्रमुख स्थान है।

श्री वैजनाथ महोदय, एम० पी०, नई दिल्ली—

यह देखकर खुशी है कि आप 'भारती' के स्टैंडर्ड की दक्षता के साथ रक्षा कर रहे हैं। 'भारती' को हिन्दी के चोटी के विद्वानों और कवियों के आशीर्वाद प्राप्त हैं। मैं कामना करता हूँ कि वह भारत भर में फैलकर अपने नाम को सार्थक करे।

श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल, प्रधानमंत्री, अखिल भारतीय कॉंग्रेस कमेटी, नई दिल्ली—

'भारती' मुझे पसंद आई। जिस पत्रिका का आप स्वयं संपादन करते हैं, उसे अच्छा होना ही चाहिए।

'भारती' का नमूने का अंक मँगवाने के लिए

कृपया बारह आने के डाक के टिकिट भेजें

अनुक्रमणिका

क्रमांक शीर्षक रचयिता पृष्ठसंख्या

१. साधना के स्वर (कविता)—डॉ० रामकुमार वर्मा १
२. आनंद (लेख)—आचार्य गुरुदयाल मल्लिक ३
३. मीरांबाई की परिचयी (लेख)—श्री अगरचन्द नाहटा ४
४. आशावती मरियम का गीत (कविता)—श्री वीरेन्द्रकुमार जैन १४
५. स्कन्दगुप्त (लेख)—डॉ० भगवत्शरण उपाध्याय १६
६. अगली दशाब्दी की वैज्ञानिक कहानी (कहानी)—श्री ओम्प्रकाश २५
७. गाय की रक्षा और सम्वर्धन (लेख)—श्री वैजनाथ महोदय ३३
८. गीत मेरे प्यार के (कविता)—श्री राजेन्द्रकिशोर ४३
९. मध्यदेश और उसकी बोली (लेख)—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी ४४
१०. बेकारों की बैठक (एकांकी नाटक)—श्री लक्ष्मीनारायण अग्रवाल ४९
११. होइहैं शिला सब चन्द्रमुखी (लेख)—श्री विद्यानिवास मिश्र ५८
१२. सांध्य-गीत (कविता)—श्री शिवनारायणसिंह 'सुयोगी' ६४
१३. नीम-चमेली (कहानी)—श्री परदेशी ६५
१४. जागेगी एक बार (कविता)—श्री राधेलाल चतुर्वेदी ७२
१५. मध्यभारत की पंचवर्षीय योजना (लेख)—श्री दयानारायण गुप्त ७३
१६. समृद्धि के लिए विद्युत्-शक्ति (लेख)—श्री चौधरी लहरीसिंह,
सिंचन तथा विद्युत्-मंत्री, पंजाब ८०
१७. भदावर के इतिहास की कठिनाइयाँ (लेख)—न्यायमूर्त्ति
श्री व्रजकिशोर चतुर्वेदी ८४
१८. संपादकीय ९५
१९. सम्मतियाँ १०२

भारती

वर्ष १, खंड २] ग्वालियर, जनवरी, १९५५ [अंक १, पूर्णांक ७

साधना के स्वर

— डॉ॰ रामकुमार वर्मा —

इस मधुर संगीत में स्वर-लिपि विरह के गान की है।
एक अनजानी कहानी रसमयी पहचान की है॥

तार की झनकार में
शतदल मधुर स्मृति के खिले हैं;
उमँगती-सी ऊर्मियों में
प्राण दो बहकर मिले हैं,

इस मिलन को तुम न कहना,
यह कथा अवसान की है।
एक अनजानी कहानी
रसमयी पहचान की है॥

वंशिका के शून्य रंध्रों-मध्य
स्वर के सिंधु संचित;
उस तरह यह शून्य-सा
अस्तित्व है अनुराग-रंजित,
मधुर स्वर-लहरी तुम्हारी एक ही मुसकान की है।
एक अनजानी कहानी रसमयी पहचान की है॥

राग प्रतिध्वनि में लुटा,
अवशेष बस केवल व्यथा है;
एक मूर्छित मूर्छना में
जग उठी प्रिय की कथा है,
यह कथा, संताप के स्वर में कही वरदान की है।
एक अनजानी कहानी रसमयी पहचान की है॥

जब कि यह संगीत है, तो
व्यर्थ है संसार-लेखा;
गूँजते-से तार-सी
मेरी खिंची है भाग्य-रेखा,
क्योंकि छंदों की प्रभा केवल प्रभाती प्राण की है।
एक अनजानी कहानी रसमयी पहचान की है॥

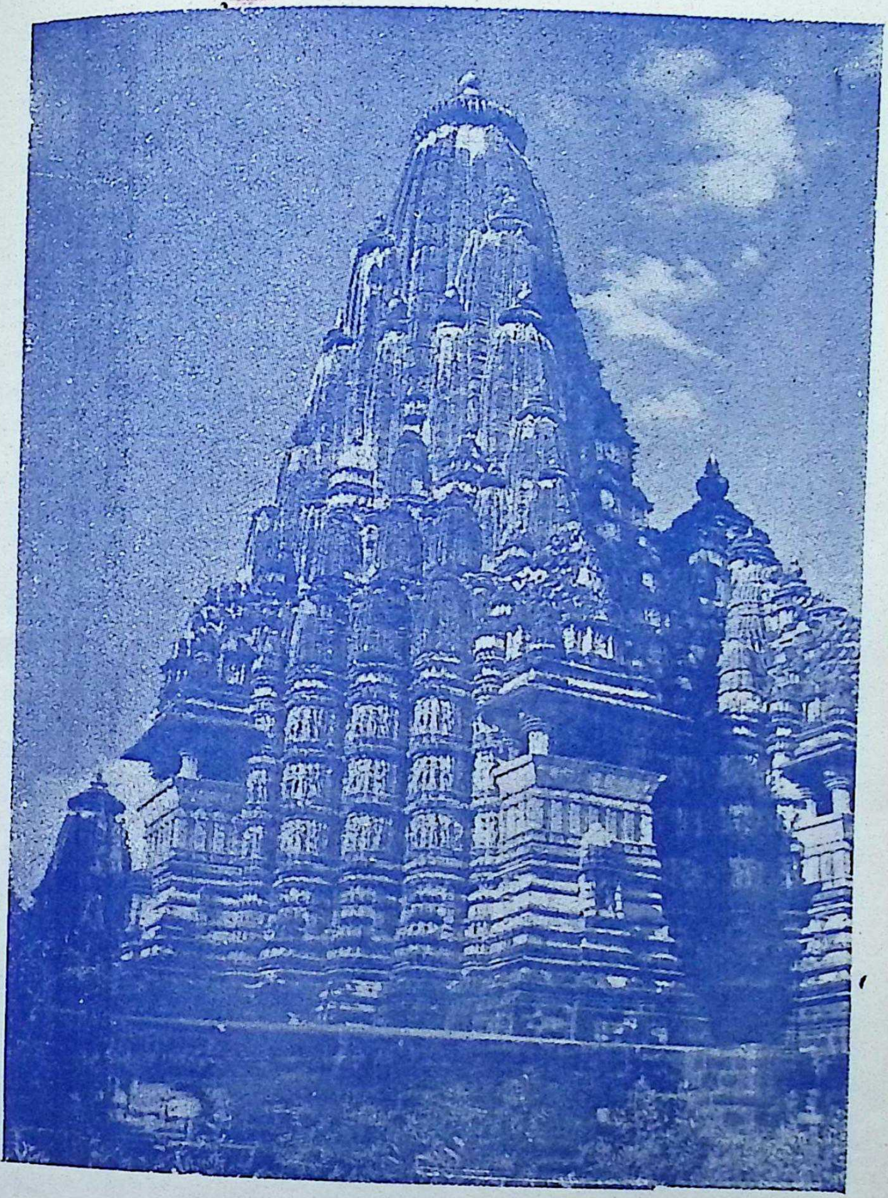

खजुराहो का कण्डारिया महादेव मन्दिर, शिखर का क्रमिक आरोह–उत्तरोत्तर उन्नयन का प्रतीक । (पृष्ठ ६०)

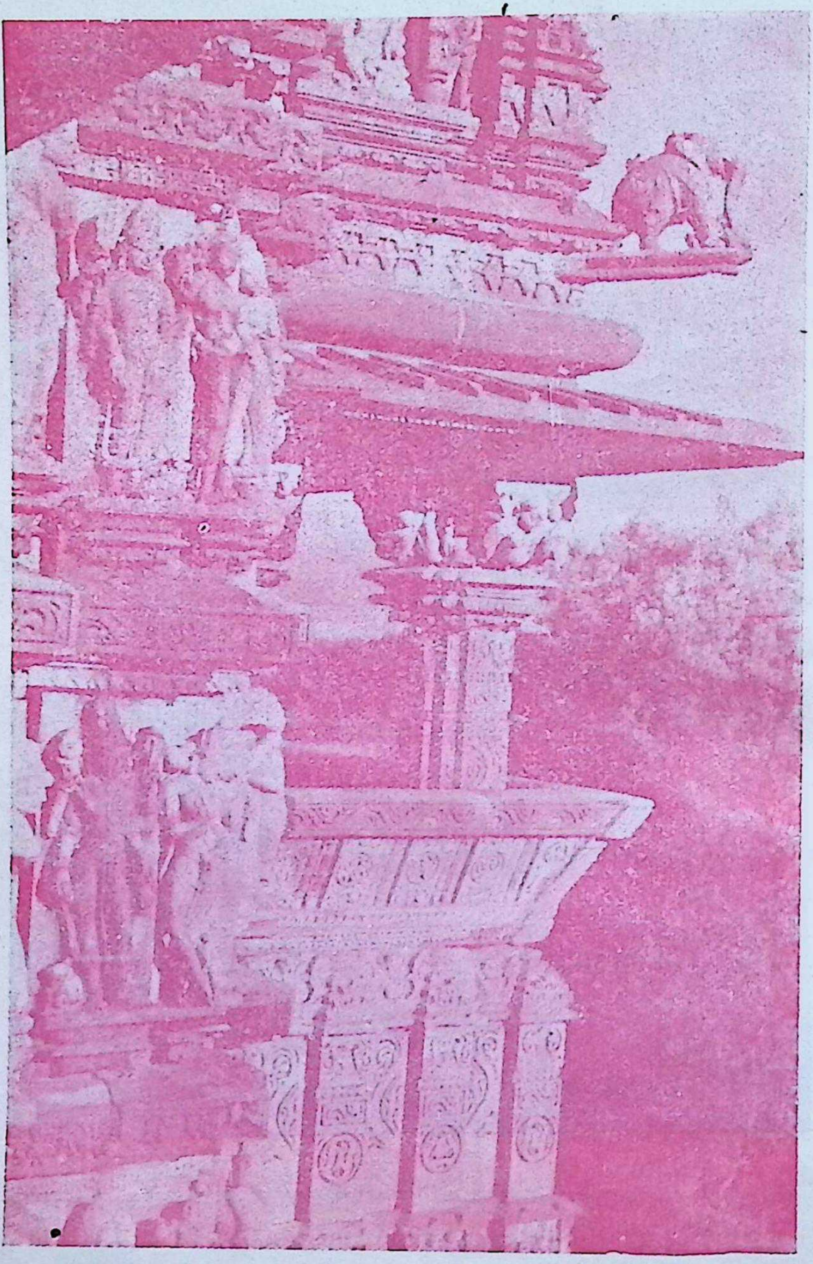

लक्ष्मण-मदिर, खजुराहो के अर्धमंडप के छज्जे से आलोकित पार्श्व का दृश्य।
(पृष्ठ ६०)

76031

आनंद

— आचार्य गुरुदयाल मल्लिक —

हरएक इनसान आनंद" की तलाश करता है । कारण ? क्योंकि आनंद उसकी आत्मा की खुराक है ।

किन्तु, आनंद क्या है ?

"आनंद" शब्द संभवत: दो शब्दों से बना है—ऐसा मेरी बीरबली बुद्धि मुझसे कहती है—"आ" और "नंद" ।

और "नंद" का अर्थ हो सकता है—"न + अन्त" अर्थात् जिसका अन्त नहीं है ।

तो क्या "आनंद" सिर्फ़ ऐसे सत्य में है, जिसका अन्त नहीं, जो सीमा से रहित है, अर्थात्, आनंद क्या सिर्फ़ असीम ही में पाया जा सकता है ?—हाँ ।

और असीम का स्पर्श इनसान को तभी मिलता है, जब वह अपने सीमा-बद्ध 'स्वयम्' से बाहर निकल आता है, क्योंकि तभी वह अपने-आपको सच्चे तौर पर पा सकता है । जब वह अपने आप को पाता है, तभी उसे अनन्त का स्वाद मिलता है और अनन्त का स्वाद पाना ही शुद्ध आनंद है ।

"हद्द से हद्द में दिन बिता जब, भोग बहुत हम पाया ।
हद्द से अहद्द में जब मैं डूबा, तब ही आपा पाया ।।"

(ज्ञानदास)

क्या यही शिक्षा हमें हमारे मुनियों ने सदियों से नहीं दी ?

क्या बार-बार वह हमसे यही नहीं कहते आए कि "भूमा ही में, विराट् ही में, सच्चा आनंद मिल सकता है, बाक़ी सब मिथ्या है" ?

यही कारण है कि आनंद और अनन्त का इतना गूढ़, इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है । आनंद अनन्त की संतान है ।

मीरांबाई की परिचयी

— श्री अगरचन्द नाहटा —

राजस्थान की कृष्णभक्त कवयित्री मीरांबाई के विरह और भक्ति के पद आज सारे भारत में बड़ी उत्कंठा तथा उल्लास के साथ गाए और सुने जाते हैं । सुदूर बंगाल तथा आसाम प्रान्त में भी मीरां के पद आज घर-घर में प्रचारित हैं । वहाँ का कोई भी संगीतज्ञ ऐसा न होगा, जो मीरां के पदों को सुमधुर राग-रागनियों में उत्सवों आदि के अवसरों पर गाकर जनता को भक्ति-विभोर न करता हो । जहाँ हिन्दी भाषा को बहुत कम लोग समझते हैं, वहाँ भी मीरां के पद प्रचारित हैं । इससे इसका सहज ही परिचय मिल जाता है कि जन-हृदय को आन्दोलित तथा आकृष्ट करने की शक्ति मीरां के शब्दों में कितनी अधिक है ।

जैसा कि लोकप्रिय रचनाओं में प्रायः होता है, मीरां के पद, जो आज सैकड़ों की संख्या में प्रसिद्ध हैं, सभी मीरां के नहीं हैं । अनेक जनकवियों ने स्वयं ही मीरां के नाम से उनकी रचना करके उन्हें जनमुख द्वारा सर्वत्र प्रचारित कर दिया है । आज तो यह एक जटिल समस्या-सी हो गई है कि मीरां के वास्तविक पद कौन-से और कितने हैं । इसका निर्णय बहुत ही कठिन है । जो पद मीरां के हैं, उनकी भाषा भी आज बहुत परिवर्तित हो चुकी है । प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के अभाव में मूल भाषा और पदों का निर्णय अभी हो नहीं सका है । राजस्थान में ऐसी कई संग्रह-प्रतियाँ अवश्य हैं, जिनमें मीरां के थोड़े-थोड़े पद लिखे मिलते हैं । उनमें से कुछ पद 'राजस्थानी' आदि पत्रों में और हाल ही में प्रकाशित राजस्थान के हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों की खोज के तीसरे भाग के अन्त में ५५ पद प्रकाशित हुए हैं । गुजरात से मीरां के पदों की एक प्राचीन प्रति मिली थी, जिसमें उपलब्ध पदों को मीरां-अभिनन्दन-ग्रन्थ में प्रकाशित किया गया है । मीरां-माधुरी में श्री व्रजरत्नदासजी ने ४६९ पद प्रकाशित किए थे, तो श्रीमती पद्मावती 'शबनम' ने मीरां का एक बृहद् संग्रह+ निकाला है ।

+ इसमें पदों के जो शब्दार्थ मिले हैं वे बहुत-से भ्रान्त हैं । देखो 'आलोचना' का ८ वाँ अंक ।

वास्तव में इस सम्बन्ध में सबसे अधिक कार्य स्व० पुरोहित हरिनारायण जी ने किया था। उनका विचार मीरांबाई का चरित्र भी बहुत विस्तार से लिखने का था, जिसकी सामग्री लगभग १५ वर्ष पूर्व, जब मैं उनसे मिला था, उन्होंने मुझे बड़े प्रेम से दिखाई थी। वृद्धावस्था तथा अन्य कार्यों में व्यस्त रहने के कारण वह अपना इच्छित कार्य नहीं कर पाए और इसके पूर्व ही स्वर्गवासी हो गए। उनके पुत्रादि उत्तराधिकारी यदि किसी योग्य व्यक्ति को वह सामग्री देकर उस अधूरे कार्य को पूरा करवाते—उनके संगृहीत पदों का सुसम्पादन एवं मीरां-चरित्र-सम्बन्धी संगृहीत सामग्री के आधार से मीरां का चरित्र लिखवाकर प्रकाशित कर पाते, तो अवश्य ही अब तक इस सम्बन्ध में, जो कुछ भी कार्य हुआ है, उससे बहुत-कुछ सुन्दर एवं सन्तोषप्रद कार्य होता।

मीरां के वास्तविक पदों के निर्णय की समस्या के समान ही मीरां के वास्तविक जीवनचरित्र का समस्या भी बड़ी जटिल है। समकालीन सामग्री का तो अभाव है ही, परवर्ती ग्रन्थों में भी अधिक जानकारी नहीं मिलती। जो थोड़ी सी प्राप्त है, उसमें विश्वसनीय बातें बहुत ही कम हैं। कुछ सामग्री का अभी आलोड़न भी हो नहीं पाया है। मीरां का सम्बन्ध उदयपुर के राजघराने से रहा है, अतः उदयपुर के सरस्वती-भाण्डार आदि में कुछ प्रामाणिक सामग्री मिलने की आशा थी, पर, श्री मोतीलालजी मेनारिया से पूछने पर विदित हुआ कि प्राचीन विश्वसनीय सामग्री वहाँ भी विशेष नहीं है।

संत एवं भक्त कवियों के चरित-सम्बन्धी रचनाओं की उपलब्धि १७ वीं शताब्दी से होने लगती है। वल्लभ सम्प्रदाय से सम्बद्ध सभी भक्तों का चरित चौरासी एवं दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ताओं × आदि में संगृहीत मिलता है। इधर नाभादासजी ने 'भक्तमाल' नामक ग्रन्थ में बहुत संक्षेप में अनेक भक्तों का गुणवर्णन किया है। पर, इन ग्रन्थों को विशुद्ध इतिहास नहीं कहा जा सकता। भक्तचरित वर्णन में बहुत कुछ अतिशयोक्ति तथा चमत्कारिक वर्णन समाविष्ट हो गए हैं। साधारण लोगों के लिए कुछ अलौकिक बातों का समावेश कर देने से उनका आकर्षण बढ़ जाता है। भक्तमाल में यद्यपि भक्तों का वैशिष्ट्य नपे-तुले शब्दों में वर्णित है, पर, उसके टीकाकारों ने जो भी अपने समय में चमत्कारिक वर्णन सुन रखे थे, उनका संग्रह कर दिया है। उनमें से तथ्य को ढूँढ़ निकालना आवश्यक है। उपर्युक्त भक्त-चरित्र वाले ग्रन्थत्रय के अतिरिक्त कुछ लीलावर्णन तथा 'परिचयी'-नामक ग्रन्थ भी संतों एवं भक्तों के चरित प्रकाशित करने के लिए रचे गए हैं। जैसे दादू-जन्मलीला और कबीर, रैदास, नामदेव, तिलोकचन्द (त्रिलोचन), पीपा, समनजी की परिचयी एवं धन्नाजी, शेख उस्मान, दयाल हरी पुरुष, रांकाजी आदि की परिचयी प्राप्त हैं। दादूपंथी

× इन दोनों ग्रन्थों में भी मीरां सम्बन्धी वार्ताएँ हैं।

राघवदासजी ने भक्तमाल नामक एक ग्रन्थ भी रचा है, जो दादूपंथी संतों की जानकारी के लिए बड़े महत्त्व का है। वैसे रामसनेही, निरञ्जनी आदि अन्य सम्प्रदायों में भी अपने सम्प्रदाय के विशिष्ट पुरुषों के गुणवर्णनात्मक चरित ग्रन्थ 'परिचयी' आदि संज्ञक रचित मिलते हैं। उनकी रचना १८ वीं शताब्दी में अधिक हुई है। केवल अनन्तदास के रचित ही 'परिचयी'-संज्ञक ६ ग्रन्थ मिलते हैं।

नाभादास की 'भक्तमाल' का रचनाकाल सम्वत् १६५० से १६८० के बीच का माना जाता है। उसमें मीरां का परिचायक पद्य इस प्रकार है:—

लोक लाज कुल शृंखला तजि मीरां गिरधर भजी।
सदृश गोपिकी प्रेम प्रगट कलियुग ही दिखायो।
निर अंकुश अति निडर रसिक यस रसना गायो।
दुष्टन दोष विचार मृत्यु को उद्यम कियो।
बार न बाँका भयो गरल अमृत ज्यों पीयो।
भक्त निशान बजाय के काहूते नांहिन लजी।
लोक लाज कुल शृंखला तजि मीरां गिरधर भजी ॥१॥

प्रस्तुत भक्तमाल की ६ टीकाएँ बतलाई जाती हैं। वे हैं–(१) भक्तिरसबोधिनी (प्रियादास सं० १७६९) (२) भक्तकल्पद्रुम टीका (प्रतापसिंह) (३) भक्तविनोद (कवि मियांसिंह) (४) मुक्तिसुधास्वाद तिलक (श्री सीतारामशरण भगवानदास रूपकला) (५) रामरसिकावली (रघुराजसिंह) और (६) भक्तदामगुणचित्रनी टीका।

इनमें से प्रियादास की टीका सं० १७६९ में रचित सर्वप्रथम टीका है और बम्बई के क्षेमराज श्रीकृष्णदास से प्रकाशित भी हो चुकी है। इस टीका में मीरांबाई के सम्बन्ध में मूल से कुछ अधिक बातें मिलती हैं, पर, अभी अन्य समस्त टीकाओं में और कितना अधिक तथा विशेष वर्णन मिलता है, यह प्रकाश में आना आवश्यक है। उपर्युक्त ६ टीकाओं के अतिरिक्त यदि और भी कोई टीका हो + तो उसमें भी मीरां-सम्बन्धी जो विवरण दिया गया हो, वह प्रकाश में आना चाहिए। फिर सब प्राप्त ग्रन्थों के मीरां-चरित का तुलनात्मक अध्ययन भी होना आवश्यक है। कुछ पद जो मीरां के नाम से प्रचारित हैं और जिनमें मीरां के जीवन की घटनाओं का उल्लेख मिलता है, उनकी प्रमाणिकता की जाँच भी होनी आवश्यक है। वे पद यदि लिखित रूप में मिलते हों, तो कितनी प्राचीन प्रति में मिलते हैं इसका निर्णय होना चाहिए। मीरां चरित सम्बन्धी सामग्री मीरांमाधुरी में ठीक से संगृहीत की गई है।

+ अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर की हिन्दी-ग्रन्थ-सूची में लालदास रचित एक अन्य टीका है, जो सं० १७६८ में रची गई है।

मीरां के नाम से जो मन्दिर प्रसिद्ध हैं, वे कितने पुराने हैं ? मीरां के साथ उनका सम्बन्ध कब से प्रसिद्ध है ?—इत्यादि बातों की जाँच भी गहराई से की जानी चाहिए। अभी हस्तलिखित ग्रन्थों के आधार से मीरां के पद और जीवनी सम्बन्धी शोध जितनी तत्परता से होनी चाहिए थी, नहीं हो पाई, अन्यथा, कुछ तथ्यपूर्ण बातें अवश्य ही प्रकाश में आतीं।

पिछले दिनों स्वामी नरोत्तमदासजी जयपुर पधारे, तो उन्हें वहाँ मीरांबाई-की परिचयी नामक रचना की एक प्रति मिली। प्रति का अन्तिम पत्र प्राप्त नहीं है, जिससे इसके लेखन-समय एवं रचयिता आदि के सम्बन्ध में निश्चिततया नहीं कहा जा सकता, पर, प्रति के काग़ज़ तथा स्याही से वह आधुनिक ही लिखी हुई ज्ञात होती है। जब तक इसकी दूसरी प्रति न मिल जाय, तब तक यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि इस प्रति का आधार क्या था तथा इसकी रचना का समय क्या है। फिर भी मीरां–सम्बन्धी जो विवरण इस ग्रन्थ में मिलता है, उसका प्रकाश में आना आवश्यक समझकर प्रस्तुत लेख में उसका सार दिया जा रहा है।

प्राप्त प्रति में २१२ पद्य हैं। २१३ वें पद्य का कुछ अंश ही मिलता है, आगे का अंश अन्तिम पत्र में था, वह पत्र प्राप्त नहीं हुआ। प्रसन्नता की बात है कि मीरां का चरित्र प्राप्तांश में पूर्ण हो चुका है। इसलिए, अन्त के थोड़े ही पद्य और होंगे और उनमें रचयिता आदि के नाम का उल्लेख होना चाहिए। प्रस्तुत परिचयी का सार मेरे भ्रातृपुत्र श्री भँवरलाल ने लिख भेजा है। यह परिचयी स्पष्टतः किसी राज-भक्त कवि की रचना है।

इस परिचयी में वर्णित चरित्र अन्य भक्तों के लिखित चरित्रों की भाँति ही चमत्कारिक है। बहुत-सी बातें तो लोक-प्रवाद से ली हुई हैं। ऐतिहासिक तथ्य उनमें अधिक मिलना सम्भव नहीं। फिर भी, कुछ बातें अवश्य ही कई तथ्यों की ओर संकेत करती हैं। अबतक हमें जिन बातों की जानकारी है, उनमें से कुछ के समर्थन के रूप में इस ग्रन्थ का उल्लेख किया जा सकता है। इसमें पूर्वजन्मादि की कुछ बातें नई एवं कई बातें भिन्न प्रकार से भी वर्णित हैं। अभी तो मेरा उद्देश्य केवल इसमें वर्णित चरित्र को पाठकों के समक्ष रख देना ही है। फिर, कभी अवसर मिला तो उनपर विशेष विचार किया जायगा। मेरी जानकारी की कुछ हस्तलिखित प्रतियों में मीरां के पद मिलते हैं। समय मिला, तो उनका भी संग्रह करके प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया जायगा, जिससे प्रसिद्ध पदों के प्राचीन पाठ आदि का पता लगाने में सुगमता होगी।

मीरांबाई की उक्त 'परची' का सार इस प्रकार है:—

मरुधर देश के मेड़ता नगर में कुड़की नगर बसाने वाले, दूदा के पुत्र रतन-राव के घर में मीरांबाई ने जन्म लिया। इसकी बहन अनोपां के सिवा इसके अन्य

कोई भाई नहीं था। भक्त-आत्मा मीरां के जन्म के समय बिना बजाए स्वर्णथाल बजे, जिससे सब को आश्चर्य हुआ और वे अनुमान करने लगे कि कोई पराक्रमी या सन्त पुरुष अवतीर्ण हुआ है।

इस जन्म में तो मेड़तणी-मीरां ने राठौड़ क्षत्रिय वंश में जन्म लिया और चित्तौड़ के स्वामी सीसौदिया राणा की रानी हुई, पर, यह पूर्वजन्म में ब्रह्मवंशीय थी, जिसका वर्णन किया जाता है।

पृथ्वी पर दुष्ट राजाओं का जोर होने पर भगवान् कृष्ण ने जन्म लेकर माता-पिता को बंधन से मुक्त किया। वह लीला करते हुए नन्द के यहाँ रहते थे। वह सुबह ग्वालबालों के साथ गायें चराते और संध्या समय लौटते। एक बार उन्होंने बरसाना की ओर गायें ले जाकर चराने की ग्वालबालों को आज्ञा दी। बरसाना के विप्र लोग अज्ञान और जात्यभिमानरत थे। उन्हें यज्ञव्रतादि प्रिय थे, पर, भक्ति नहीं। एक बार भोजन नहीं आने पर कृष्ण ने ग्वालों को उन याज्ञिक विप्रों से भोजन माँगकर लाने को भेजा। ग्वालों ने उनके पास जाकर कृष्ण के वचन सुनाए। ब्राह्मण लोग ग्वालों पर कुपित होकर दुर-दुर' शब्दों द्वारा दुत्कारते हुए लाठी लेकर मारने दौड़े। ग्वालों ने कृष्ण के पास जाकर पुकार की। उन्होंने उन ब्राह्मणों की पत्नियों के घर जाने की आज्ञा दी। ग्वालों के वचन सुनकर हर्षित चित्त से ब्राह्मणपत्नियाँ भोजन लेकर आ गईं। जब वे अपने को धन्य मानती हुईं कृष्णदर्शन के लिए आ रही थीं, तब एक ब्राह्मण ने अपनी स्त्री को घर में लाकर तथा बाँधकर रोक रखा। परवशता से दर्शन न पा सकने के पश्चात्ताप से व्याकुल होकर उसने प्राण-त्याग किया। अन्य ब्राह्मणियों ने कहा—स्वामी! हम अपने घर नहीं जावेंगी, हमें पति दण्ड देंगे। श्रीकृष्ण ने कहा— निर्भय होकर जाओ, कोई कुछ भी नहीं कहेगा।

बरसाने की पूर्वोक्त ब्राह्मणी प्राणत्याग करके कृष्ण-भक्ति में लीन हुई। फिर भगवद्-आज्ञा से उसने मीरां के रूप में जन्म लिया। पूर्वसंस्कारों के कारण मीरां के हृदय में बचपन ही से हरिभक्ति का उदय हुआ। सखियों को गुड़ियों के खेल, शृंगार, आभूषण, गौरीपूजा आदि विविध कार्य अच्छे लगते, पर, मीरां को तो केवल हरिभक्ति ही में आनन्द आता और वह सन्तों के सत्संग में रहा करती। खेलते हुए यदि कहीं बड़ा-सा कंकड़ मिल जाता, तो वह उसे कृष्ण-शालग्राम करके मानती। पद-पद पर तुलसी उग जाती थी। आज भी कुड़की में भक्त का 'परचा' प्रत्यक्ष है।

सखियों ने माता से मीरां की शिकायत की कि यह हमसे अलग रहती है। यह न खेलकूद और हँसी-दिल्लगी में रस लेती है और न पूरी बात ही करती है। इसे तो हम केवल सन्त-सेवा और जाप ही में संलग्न देखती हैं, यह समझाने पर भी नहीं मानती। माता ने भी मीरां को बुलाकर कण्ठीमाला दूर करके शालग्राम को

मन्दिर में रख देने तथा सखियों के साथ खेल, शृंगार, हास्यविलास करने की आज्ञा देते हुए कहा– अभी तुम कुमारी बालिका हो, भावभक्ति को दूर करके मातापिता का कहा मानो और साधु-सन्तों की बात मत सुनो ! मीरां ने कहा– माँ, आपने मुझे ९ मास गर्भ में रखा, पर, मैं हरि को वचन देकर आई हूँ। उन्हींने मुझे भक्ति सिखाई। हरिस्मरण और भक्ति के लिए अवस्था का कोई प्रतिबन्ध नहीं। मृत्यु कब आ घेरती है, इस बात को कोई नहीं जानता ! अतः, भगवद्‌भक्ति को मैं प्राण रहते नहीं छोड़ सकती। मेरा तन-मन राम में लीन है। उसके बिना मेरा जीना ही असम्भव है। माता ने कहा– तुम्हारी सगाई बड़े घराने-सीसौदियों के यहाँ हुई है, तुम्हें ससुराल जाना है; वहाँ इस भावभक्ति का निर्वाह असम्भव है। मीरां ने कहा– माँ ! सीसौदिया कौन और राणा कौन ! मेरे सिर पर तो त्रिभुवनपति सबल 'धणी' है, मेरा ब्याह मत करो ! माँ ने कहा– बेटी ! बड़ों के यहाँ सगाई होने पर छूट नहीं सकती। वे अपनी माँग नहीं छोड़ेंगे और वैर बँधेगा। राणा चढ़ाई करेगा, मनुष्य मरेंगे और अपयश भी होगा। इसलिए हम तुम्हारा ब्याह करती हैं। यदि सच्चे मन से स्मरण करे, तो उसके लिए क्या गृहस्थ जीवन और क्या त्याग ? एक ही बात है।

मीरां ने प्रभु से प्रार्थना की—मैं तुम्हारी जन्मजन्मान्तर की दासी हूँ। यदि कोई मुझसे हरिनाम छुड़ावेगा, तो मेरा मरण और, प्रभु, तुम्हारी हँसी होगी। मुझे सीसौदिया वर अच्छा नहीं लगता और माता-पिता बलात्कार से ब्याहते हैं, तो यह लज्जा आपके हाथ है। मैं तो, प्रभु, तुम्हारे सिवा दूसरे किसी को भर्त्तार नहीं मानती। तुम्हींने तो, स्वामिन्, नामदेव, जनाबाई, सकूंबाई, सिरीया कुम्हारी, अम्बरीक किरानी आदि नाना भक्तों के कार्य सिद्ध किए हैं। स्थान-स्थान पर अपनी विचित्र लीलाएँ दिखलाई थीं। करमाँ का खीचड़ा और शबरी के जूठे बेर तुम्हीं ने खाए ! पीपा भक्त की अर्द्धांगिनी सोलँकी सीता की यवनों से रक्षा की, मण्डलीक की रानी का वेश बनाकर उसकी रक्षा की, कितना कहा जाय, स्वामी, अब मीरां पर करुणा करो !

इस प्रकार मीरां की पुकार सुनकर नारद के साथ श्री हरि पधारे। महलों में ज्योति का अनुपम प्रकाश हुआ। श्री गिरधरलाल ने मीरां से ब्याह किया। हाथों में कंकण-डोरे और केसर से रचे हुए हाथ देखकर सबको आश्चर्य हुआ। राणाजी इसके बाद मीरां से ब्याह करके उसे अपने घर लाए। सासू ने जब कुलदेवी की पूजा करने को कहा, तब मीरां ने कहा– मेरा तो रामकृष्ण की सेवा का व्रत है, मैं अन्य देव-देवी को नहीं मानती ! सास ने कहा– देवी सुहाग-भाग्य की दात्री है, उसे नमस्कार करो ! मीरां ने कहा– यदि सौभाग्य देवी के हाथ की बात है, तो आपके घर में ऊदांबाई विधवा क्यों बैठी है ? मेरी अन्य सभी उलझनें मिट गईं, केवल राम ही मेरा सब कुछ है। सास ने रुष्ट होकर पति के कान भर दिए और मीरां को रहने के लिए अलग

महल दे दिया । एक बार राणा 'खमा, खमा' शब्दों द्वारा स्वागत कराते हुए मीरां के महल पधारे । मीरां ने भगवान् से शीघ्र पधारने की प्रार्थना की—पतितपावन परमेश्वर ! आप मेरे स्वामी हैं, पतिव्रता का एक ही पति होता है । हे प्रभु, मेरी लज्जा आपके हाथ है । समस्त विषय-विकारों को दूर करो ! श्रीकृष्ण स्वयं आकर मीरां के पलंग पर सो गए । राणा ने पर पुरुष को पलंग पर सोया देखकर कुपित हो आज्ञा दी कि मारो इसे, यह जीता न भागने पावे ! लोग खड्ग से मारने दौड़े । पर, श्रीकृष्ण भगवान् का तप-तेज देखकर सब व्यांकुल होकर भागे । उन्होंने सिंह के रूप में पीछा किया । लोगों ने कहा– यह रानी बड़ी 'धूतारी' है ! अब मेड़तणी-मीरां को 'दुहाग' देकर राणा का दूसरी बहू से ब्याह करो। इसके महलों की तरफ़ देखना भी ठीक नहीं। इस प्रकार श्री हरि ने मीरां का बन्धन काट दिया । लोगों में, हरि का चरित न जानने से, मीरां की निन्दा होने लगी । पर, उसके मन में कोई हर्ष-शोक नहीं था । उसने महलों में ठाकुरजी की सेवा पधराई और नित्यप्रति भक्तिभाव में लीन रहने लगी ।

एक बार राणा हरिमन्दिर में गया, जहाँ उसने मीरांबाई को गाते, नाचते और ताल बजाते देखा । राणा दूसरे तीसरे, चौथे दिन मन्दिर में जब-जब गया, मीरां निर्भय होकर नाचती हुई देखी गई । राणा कुछ निश्चय न कर सका । महलों से जब कभी खबर मँगवाई, मीरां ध्यान लगाए बैठी हुई मिली । राणा ने कहा–नीचे उतरने का काम नहीं, महलों में मीरां चाहे सो करे ! मीरां ने कहा–हरिमन्दिर गए बिना अन्नजल कैसे ग्रहण करूँ । ड्यौढ़ी में सन्तों की संगत के बिना मन को चैन नहीं ! मेरे लिए जैसा मेड़ता, वैसा ही चित्तौड़ है, जैसे राठौड़, वैसे ही सीसौदिये हैं ! मैं फ़क़ीरी बाना धारण करूँगी ! यह सुनकर सीसौदियों के मन में खेद हुआ और रानी के महलों से उतरने के कार्य को उन्होंने अनुचित माना । चौकियों पर पहरा और महलों में ताले लगाने की व्यवस्था हो गई, ताकि बिना दर्शन के, अन्नजल पाए बिना, मीरां की मृत्यु ही महलों में हो जाय और झंझट मिटे । ज्यों-ज्यों राणा जी ताले लगवाते, त्यों-त्यों सब खुलकर झड़कर गिर जाते । मीरां को निःशंक होकर मन्दिर आते-जाते देखकर राणा का ख़ून खौलने लगा । पर स्त्री पर हाथ उठाना नीति-धर्मविरुद्ध और अपयश का कारण होने के कारण मन मसोसकर रह जाते । अब मीरां को विष पिलाना ही उपयुक्त जानकर राणा ने दयाराम पांडे के हाथ विष का प्याला चरणामृत के मिस भेजा । मीरां ने उसे विष जानते हुए भी सोचा कि यदि नहीं पीती हूँ, तो 'विरुद लाजता' है । अतः, मीरां ने राम का नाम लेकर विष को हरि-चरणामृत करके उदरस्थ कर लिया । हरिभक्ति के प्रताप से विषपान से मीरां का रूप और प्रताप सविशेष निखर उठा । राणा आदि सब को आश्चर्य हुआ कि विषपान करके भी मीरां कैसे बच गई ।

अब मीरां के लिए राणा ने दूसरी घात सोची । एक स्वर्णमंजूषिका में काला नाग भरकर भेजा और कहलाया कि जेठ के द्वारा कृपाप्रसादीकृत यह चन्द्रहार दूर से आया है, बहुमूल्य हार को वह धारण करे । मीरां ने पेटी खोलकर काले नाग को उठाया और अपने गले में पहना । हरिचरणों के प्रताप से वह हीरा पन्ना आदि रत्नों से जगमग करता हुआ हार हो गया । मीरां के इस तेजस्वी हार को देख सब रानियाँ रुष्ट होकर बिना अन्न-जल ग्रहण किए सो गईं । राणा के वास्तविकता प्रकट करने पर रानियाँ प्रसन्न हुईं । मीरां के लिए नया छल रचा गया । बटुए में पहाड़ी बिच्छू भरकर मीरां के पास भेजे गए और उसे एकान्त अँधेरे में खोलकर पैरों में बिछिए पहनने की आज्ञा दी गई । मीरां के हाथ में लेते ही बिच्छुओं में हीरे के कण चमकने लगे । मीरां उन्हें पहनकर मंदिर गई । जेठ ने कहलाया–तू बड़े बाप की बेटी है, तो महलों में चुपचाप बैठी रह ! नहीं तो मैं तुझे मार डालूँगा । राणा कटार लेकर मारने को गया, तो एक के स्थान पर चार मीरां बैठी देखीं । जिसका राम रक्षक है, उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता ।

अब मीरां को समझाने के लिए ऊदांबाई आई । उसने कहा– देखो भाभी ! मैं तुम्हारी ननद हूँ, मेरा कहा मानो ! भक्तिभाव और साधुसंग का त्याग करो ! अधिक तानना उचित नहीं । यदि हरिनाम लो, तो घर ही में लिया जा सकता है । कोई साधु भुरकी डाल कर भरमा देगा ! लोग नाना प्रकार के तप-जप, काशी-करौत, भैंरव-झाप आदि राजसुख के लिए स्वीकार करते हैं । तुम्हारे लिए सारे सुख-साम्राज्य प्रस्तुत हैं, फिर क्यों नाच-कूदकर वंश को लजाती हो ?

मीरां ने कहा—मैंने पूर्व-जन्म में भक्ति की थी, साधु-संगति माँगकर ली थी एवं राजफल का त्याग कर भक्ति की वांछा की थी । ऐसा कौन अभागा होगा, जो हरि को छोड़कर अन्य की याचना करेगा ? मेरी वांछा पूर्ण हुई । मुक्ति-बीज भक्ति और सत्संग मिला । जो राज्य करता है, वह नरक पाता है एवं भक्ति से मोक्ष-प्राप्ति होती है । गाना-बजाना मुझे प्रिय है. गोविन्द को रिझाने का यह साधन है । मनुष्य-जन्म का सार ही हरिनामस्मरण है । मैं साधुसंग नहीं छोड़ूँगी । इस अनित्य संसार में वही अशरणशरण है और यम का फन्द छुड़ानेवाले राम से साक्षात् करानेवाला है ।

ऊदांबाई का समझाना व्यर्थ होने पर देवरानी-जिठानियाँ मिलकर आईं और आदर-पूर्वक कहने लगीं—"मेड़तणी राणी ! बुरा न मानकर हमारी सीख को सुनो ! नारी का धर्म पातिव्रत है । उसे अपने पति ही को परमेश्वर मानना चाहिए । उसके बिना उसकी गति नहीं । तुमने अपने पति को छोड़कर क्या सुख पाया ? जब यहीं सुख नहीं, तो न जाने आगे क्या होगा ?" मीरां ने कहा– बुरा न मानना ! यह राणा मेरा पति नहीं । मेरा पति जिसकी मैं अर्द्धांगिनी हूँ, तीन भुवन का स्वामी है, जहाँ

अनहद-नाद बजता है, पृथ्वी गलीचा और आसमान तम्बू है, जहाँ गंधर्व गान करते हैं, 'अढारभार' वनस्पति की गले में माला है, चंद्र और सूर्य रूपी दीपक का प्रकाश है, पवन सेविका जहाँ झाड़ू-बुहारी, सफ़ाई करती है। चौदह भुवन मेरा महल है। २१ ब्रह्माण्ड में शासन और चारों पदार्थ आज्ञाधीन हैं। अष्टसिद्धि, नौ निधि चेरा-चेरी हैं। ३३ करोड़ देवी-देव हाज़िरी भरते हैं। ५६ कोटि कलश-जलधारी प्रभु के पनिहारे हैं। सात-समुद्र-रूपी जल की टंकियाँ भरी हैं। अनन्त कोट दुर्ग है, जिसका धर्मराज कोतवाल है, जो पाप-पुण्य का न्याय चुकाता है। चित्रगुप्त के दो दफ़्तरखाने हैं, जिनसे कुछ छिपा नहीं। दफ़्तरों में लिखकर जैसा कर्म होता है, वैसा फल भुगतवाते हैं। ब्रह्मा निर्माणकर्त्ता और शिव विनाशक हैं। उस मुरारी प्रभु को कोई नहीं गंजन करता, शेष, नारद, सनकादि मुनिगण जिनकी सेवा करते हैं। विश्वकर्मा शिल्पकार है, जो सुहावने महल बनाता है। कामधेनु, कल्पवृक्ष और कुबेर-भाण्डार सब कुछ प्रस्तुत हैं। रत्नों की ज्योति और अमृतकुण्ड भरे हैं। पंचतत्त्व रँगरेज़ चीर रँगने वाला है। ठाम ठाम में संत विराजमान हैं। भक्तों के लिए कोई कमी नहीं, सब सुख प्रस्तुत हैं। भक्त ध्रुव ने छः मास भक्ति की, तो तुरन्त कंचनपुरी तैयार कर दी। सुदामा को भी भक्ति का यही फल मिला। रावण का राज्य भक्त विभीषण को दिया। इस सब साहिबी का स्वामी मेरा सच्चा भर्त्तार है! हे रानियो! वही सब नरनारी का पति है। उसे छोड़कर पर की वांछा करना निश्चय ही व्यभिचार है। जब मैंने सच्चे पति को पहचाना, तब मिथ्या का त्याग किया। सच्चा पति शाश्वत सुखदाता परमेश्वर है। मैं उसीकी सेवा और आज्ञा में तत्पर हूँ। उसीमें मुझे सुखानुभूति है। मेरे सच्चे स्वामी का न मरण है, न बिछोह है। उन्हींकी आज्ञा से मैंने भक्तिनिमित्त मानव देह पाई है। जो उनको भजेगा, वह तद्रूप हो जायगा। अन्यथा, चौरासी में भटकना पड़ेगा। संसार के भोगों में पशुपक्षी सभी अभ्यस्त हैं। उसमें सुख कहाँ? तत्वतः दुःख ही है। इस प्रकार मीरां ने रानियों को ज्ञानोपदेश दिया, जिससे उनको भी चैतन्य हुआ।

पीरपैग़म्बर, सिद्ध-साधक, ऋषि-मुनि किसीकी भी देह अमर नहीं। जब मीरां ने अपना अंतकाल निकट जाना, तब उसने कहा—मैं द्वारकापुरी जाकर ज्योति में ज्योति बनकर समाऊँगी! उसने जाने की तैयारी की, तो राजलोक के सभी परिजन मना करने लगे। राणा ने कहा—द्वारिका दूर है, रास्ते में पराए देश हैं, अतः वहाँ न जाकर घर बैठे ही हरिगुण स्मरण करो! देखो अर्जुन के साथ होने पर भी गोपिकाएं लूटी गई थीं। मीरांबाई ने कहा—वे बिना प्रभु-आज्ञा के गई थीं। मैंने प्रभु-आज्ञा पाई है। यों समझा-बुझाकर मीरां जाने लगी। प्रभु ने कंचनमय कलशोंवाला जगमगाहट करता हुआ रथ भेजा, जिसे देखकर सीसोदिये विस्मित हो गए। उन्होंने

रानी की भक्ति का प्रभाव पहचानकर साथ में ब्राह्मण को भेजा और उससे कहा कि केशव जी का दर्शन कराकर रानी को शीघ्र वापस ले आना। ग्राम-नगरों को छोड़ता हुआ रथ चला। संध्यासमय विश्राम किया। कुनणापुर में सोए। प्रातःकाल उठकर देखते हैं तो द्वारिकापुरी में पहुँच चुके हैं। गोमती स्नानकर सब मन्दिरों में घूम फिर दर्शन किए। पीपा झांफ इत्यादि स्थानों का स्पर्श कर मीरां ने भगवान् के समक्ष ध्यान लगाया। उसने प्रभु की स्तुति करते हुए कहा—

प्रभो ! बरसाने का वचन याद करो ! तुम्हारे अनंत अवदात हैं। कबीर को तुमने अपने स्वरूप में मिलाया ! सीता का 'सत्त प्रगट' किया ! प्रह्लाद के लिए खंभ फाड़कर प्रकट हुए ! द्रोपदी का चीर बढ़ाया ! गोकुल की गूजरी तारी ! नामदेव की छान छवाई ! पीपा के समुद्रपात होने पर जल का स्थल ही स्थल कर दिया ! प्रभु मेरी ओर निहारो !

मीरां की स्तुति के प्रभाव से मन्दिर में ज्योति प्रकट हुई और वह मूर्त्ति के अन्दर समा गई ! ब्राह्मण ने कहा—मेरी यजमान कहाँ गईं ? मैं प्राणत्याग करूँगा ! जनेऊ की दुहाई है, मैं मारूँगा-मरूँगा ! इस प्रकार ब्राह्मण के झगड़ा मचाने पर नाना देशों के यात्री एकत्र होगए। मीरां ने प्रकट होकर कहा—विप्र ! किसकी यजमानी, मैं तो मूर्त्ति में समाविष्ट हो गई ! ऐसा कहकर समा गई। आज भी चीर प्रकट रूप से है। आकाशवाणी होने पर मीरां की महिमा सब मंदिरों में गाई जाने लगी। ब्राह्मण ने मीरां का सुयश देखकर सिर नवाया और स्तुति कर मेवाड़ लौटा। मीरां के सम्बन्ध का सारा वृत्तान्त सुनकर राना बहुत पछताया कि उस हरिभक्त अवतारी-अंश को मैंने नहीं पहचाना ! मीरां को अवतारी जानकर महलों में मंदिर बनाकर मूर्त्ति स्थापित करना निश्चित किया।

इस 'मीरां-परची' को जो बाँचेगा–सुनेगा, उसका कल्याण होगा !

इसके २१२ दोहों के बाद कर्त्ता के नामादि का थोड़ा अंश अपूर्ण रह गया है।

★ आशावती मरियम का गीत ★

— श्री वीरेन्द्रकुमार जैन —

(भगवती शक्ति ने अनायास एक रात कुमारी मरियम के हृदय में गर्भ-संस्कार कर दिया था और उसके फल-स्वरूप स्वयम् भगवान् के पुत्र प्रभु ईसा उनके गर्भ में आए थे। उस गर्भकाल में उस भावी जगदम्बा मरियम के हृदय में जो भाव-संवेदन जागते थे, उन्हींको इस गीत में बाँधा गया है। प्रस्तुत गीत लेखक के अप्रकाशित गीति-प्रबन्ध 'ज्योति-पुत्र' का एक अंश है। —ले०)

सखि रि, मेरे आँचल में आज
उमड़ता यह कैसा उल्लास!

दिशाओं के छोरों तक मौन
छा गए मेरे हिय के कोर।
खिंचा-सा आता आज विराट
अरे मेरी गोदी की ओर!

सखि रि, मेरा लघु आँचल आज
छा गया बन असीम आकाश!

प्रात के उस माणिक के कूल
उमड़ता उजियाला अम्लान।
फूटते कमल-दलों पर, स्परें,
ज्योति का शिशु उगता अनजान!

आज आँचल का टूटा मान,
दूध के ढलके कलश अजान!

गगन से भू तक यह खिंच रही,
अरे, किसके पलने की डोर?
कि रह-रह झटका खाती हाय,
मृदुल मेरे अंतर की कोर।

मारता-सा छाती में लात
आ रहा कौन, अरे, अज्ञात!

चाँद-सूरज के आभावलय
धरे आ रहा कौन सम्राट,
बँधी है जिसके रथ की रास
दिए मेरे आँचल में गाँठ?

छा रहा नयनों में चित-चोर,
हृदय देता रह-रह झक-झोर!

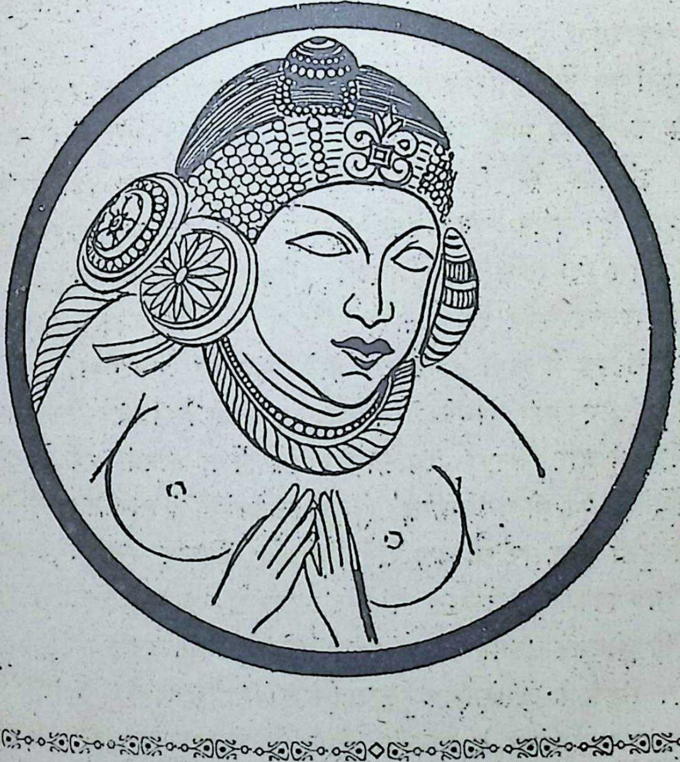

स्कन्दगुप्त

– डॉ० भगवतशरण उपाध्याय –

'स्कन्दगुप्त' स्व० जयशंकर 'प्रसाद' का पाँच अंकों में प्रस्तुत ऐतिहासिक नाटक है। हिन्दी में नाटक औरों ने भी लिखे हैं, पर्याप्त सफल नाटक, परन्तु, ऐतिहासिक नाटक प्रस्तुत करने का प्रायः पहला और सुन्दर प्रयास प्रसादजी ही ने किया। अतीत को खोलने, उसके पुनर्निर्माण और शालीनीकरण का जितना प्रयत्न उन्होंने किया, उतना किसी और ने कभी नहीं किया। उनका इतिहास का अध्ययन भी इतना गहरा है कि उसमें त्रुटियाँ तो कम हैं ही, अतीत उनके नाटकों में जैसे मूर्तिमान् हो उठता है। उस अतीत को रूपायित करते समय जिस भाषा का उन्होंने उपयोग किया है, वह उसे व्यक्त करने में पर्याप्त सहायक होती है।

प्रसाद ने नाटक अनेक लिखे हैं; अजातशत्रु, नागयज्ञ, राज्यश्री, ध्रुवस्वामिनी, चन्द्रगुप्त आदि, परन्तु इनमें स्कन्दगुप्त को साहित्यमर्मज्ञों ने विशेष सराहा है, यद्यपि 'चन्द्रगुप्त' को अनेक आलोचकों ने प्रसाद की प्रधान और सुन्दरतम कृति माना है। यहाँ हम 'स्कन्दगुप्त' के गुण-दोषों पर विचार करेंगे।

जहाँ तक **ऐतिहासिकता का विचार** है, प्रसाद जी की व्यंजना-शक्ति श्लाघ्य है। नाटक का विषय प्रायः पूर्णतः ऐतिहासिक है, उसके अधिकतर भाग ऐतिहासिक हैं, उससे इतिहास के—गुप्त-शासन के—अनेक सांकेतिक (टेक्निकल) शब्दों का व्यवहार हुआ है। नाटक की प्रधान घटना–स्कन्दगुप्त का आक्रमणकारी हूणों से युद्ध—का संकेत स्कन्दगुप्त के अभिलेखों (शिला और स्तंभ-लेख) में मिलता है—हूणैर्यस्य समागतस्य समरे दोर्भ्यां धरा कम्पिता। भीमावर्तकरस्य (जिस स्कन्दगुप्त की भुजाओं के युद्ध में हूणों से टकरा जाने से भँवर बन गया)। इस उद्धरण के अतिरिक्त दो और उन्हीं अभिलेखों से दिए जा सकते हैं, जिनका नाटककार ने पर्याप्त उपयोग किया है और जिनका यथास्थल निर्देश किया जायगा। वे निम्नलिखित हैं—क्षितितलशयनीये येन नीता त्रियामा (जिस स्कन्दगुप्त ने साधारण सैनिकों की भाँति युद्धकाल में सूखी भूमि पर सो कर रातें बिताईं); विहाय सर्वान्मनुजेन्द्रपुत्रान् लक्ष्मी स्वयं यं वरयञ्चकार (बारी-बारी से सारे राजपुत्रों के गुण-दोषों को परखकर, फिर उन सभी को छोड़कर लक्ष्मी ने स्वयं जिस स्कन्दगुप्त को वरा)।

इस नाटक के ऐतिहासिक प्लाट (वस्तु) या घटना-चक्र में भारतीय इतिहास-के स्वर्णयुग गुप्त-साम्राज्य के अन्तिम वैभव को निरावरण किया गया है। गुप्त-

साम्राज्य को उत्तर-पच्छिमी चीन से आनेवाले उन विकराल हूणों ही की एक लहर ने नष्ट किया था, जिनकी दूसरी लहर ने विशाल रोमन साम्राज्य की कुछ ही पहले रीढ़ तोड़ दी थी। स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य ने एक बार उन्हीं हूणों से भारतभूमि की रक्षा के लिए कमर कसी थी और उस दिशा में प्रभूत परिश्रम, प्रयत्न और तप किए थे। पिता कुमारगुप्त के रहते युवराज के पद से उसने नर्मदा तीर के गणतांत्रिक पुष्यमित्रों को हराया था। इस युद्ध के प्रति संकेत भी नाटक के आरंभ में मिलता है। परन्तु, नाटक की प्रधान घटना हूण-युद्ध ही से संबंध रखती है।

उसी ऐतिहासिक घटना-चक्र के बीच षड्यंत्र और कुचक्र भी हैं। सम्राट् कुमारगुप्त की छोटी रानी अनन्तसेना अपने प्रेमी सेनापति भटार्क से मिलकर स्कन्दगुप्त से गुप्त-साम्राज्य का सिंहासन छीनकर अपने बेटे पुरगुप्त को दे देना चाहती हैं। युद्धक्षेत्र विशेषतः दो हैं—मालव-सौराष्ट्र में और गान्धार (सीमाप्रांत) में। नाटक के विशेष स्थल हैं—मालवा की राजधानी उज्जयिनी, मगध की राजधानी कुसुमपुर (पाटलिपुत्र-पटना) और सिंधु पार कुभा (काबुल नदी) के तटवर्ती गांधार का प्रदेश। आरम्भ ही में कुमारगुप्त के मरते ही स्कन्द की माता और पटरानी (प्रधान राजमहिषी) देवकी को मारकर अनन्तदेवी और भटार्क साम्राज्य पुरगुप्त को दे देना चाहते हैं, पर, स्कन्दगुप्त के आ जाने से दोनों की रक्षा होती है। स्कन्द को मालवा का सामन्त राजा बंधुवर्मा अपना मालवा अर्पित कर देता है। स्कन्द वहीं सम्राट् बनता है और षड्यंत्रकारियों का न्याय करता और उन्हें उदारतापूर्वक मुक्त और पुरस्कृत करता है। युद्ध में पहले तो स्कन्द की विजय होती है, फिर भटार्क के विश्वासघात से गुप्त-साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो जाता है। विजया (विजय के रूप में लक्ष्मी) बार-बार उसका वरण करना चाहती है, पर, वह उसे त्याग कर चिरसंगिनी मालवराज बंधुवर्मा की बहन देवसेना का अनुराग स्वीकार करता है, पर, पत्नीरूप में नहीं। उस दिशा में तो वह देवव्रत भीष्म की भाँति ही आजीवन अविवाहित रहने का व्रत लेता है। वह पुरगुप्त को, अपने बाद, साम्राज्य समर्पित कर देता है। उसकी मृत्यु के धोखे में उसकी माँ देवकी मर जाती है। यही थोड़े में इस नाटक की कथा है, विशेषतः युद्ध की, जिसमें गोविन्दगुप्त, पर्णदत्त, चक्रपालित आदि अनेक वीरों का स्कन्दगुप्त को सहयोग मिलता है। उस युद्ध के प्रसंग में भी रोमांचक प्रणय, त्याग आदि के अनेक स्थल सुन्दर बन पड़े हैं।

गुप्त-कालीन सांकेतिक शब्दों के उल्लेख की ओर ऊपर संकेत किया जा चुका है। उनका प्रयोग लाक्षणिक रूप से हुआ है, जैसे महाप्रतिहार, महादंडनायक, दंडनायक, कुमारामात्य अधिकरण, परम भागवत, परम भट्टारक आदि। कुमारगुप्त, स्कन्दगुप्त, पुरगुप्त, गोविन्दगुप्त, पृथ्वीसेन, पर्णदत्त, चक्रपालित, बंधुवर्मा, भीमवर्मा

भटार्क, शर्वनाग, धातुसेन, खिंगिल, प्रख्यातकीर्ति आदि ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। इसी प्रकार अनन्तदेवी भी। देवकी उपमा के रूप में एक अभिलेख में स्कन्द की माता कही गई है। शेष नाम कल्पित हैं।

एकाध स्थलों पर कुछ ऐतिहासिक दोष भी नाटक में आ गए हैं। जैसे, कुमारगुप्त प्रथम अंक (पृ० ११) पर कहता है—"जगद्विजेता सिकन्दर के सेनापति सिल्यूकस से उस प्रान्त को मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त ने लिया था।" यह वक्तव्य अनाक्रॉनिज़्म (anachronism) अर्थात् 'कालविरुद्ध दूषण' उपस्थित करता है। यह सही है कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने सिकन्दर के सेनापति सेल्यूकस से हिन्दुकुश के इधर के प्रान्त जीते थे, परन्तु, यह आज की ऐतिहासिक खोज से जाना गया है। किसी पुराण अथवा भारतीय साहित्य में इसका उल्लेख नहीं मिलता। वह केवल विदेशी ग्रीक आदि प्रमाणों से जाना गया, जिसका ज्ञान कुमारगुप्त को किसी प्रकार नहीं हो सकता था। इसी प्रकार बंधुवर्मा का अपनी पत्नी जयमाला को बंधुवर्मा का मालवा का राज्य दे देना और फिर उसका उसे स्कन्दगुप्त को दे देना (पृ० ८१) इतिहास के विरुद्ध आचरण है। नारी भारतीय राज्यप्रणाली के अनुसार गद्दी पर नहीं बैठ सकती थी। उसमें तभी अपवाद हो सकता था, जब पति मर गया हो और उसके गर्भ में बालक हो। उसके अनुसार न तो बंधुवर्मा अपना राज्य अपनी पत्नी को दे सकते थे और न पत्नी परिणामतः स्कन्दगुप्त को। वस्तुतः राज्य देने का कोई अर्थ भी नहीं है, क्योंकि, मालवा को तो स्कन्दगुप्त के पितामह चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने शकों से छीनकर पहले ही गुप्त-साम्राज्य में मिला लिया था! शर्वनाग को नायक से विषयपति (प्रांत का शासक) बना देना भी कुछ बहुत उचित नहीं जान पड़ता। इतिहास में शर्वनाग अन्तर्वेद (गंगा-यमुना के बीच के दोआब) का विषयपति (प्रान्त-शासक) अवश्य था, पर, वह साधारण नायक से एकदम विषयपति हो जाय, यह तनिक अनैतिक प्रतीत होता है। राजा बना तो किसी को कुछ भी सकता था पर, उसके लिए कार्यभार वहन करने की योग्यता भी तो अपेक्षित है। सो, माता की हत्या का प्रयत्न करने वाले को स्कन्दगुप्त का दंड देने के बदले प्रान्त का गवर्नर बना देना चाहे कुछ अनुचित न माना जाय, पर, उसे निम्नस्तरीय स्थिति से एकदम प्रान्त का शासक बना देना क्या शासन की दृष्टि से उचित माना जा सकता है?—यह प्रश्न उठ सकता है, विशेषकर इसलिए कि जूनागढ़ वाले स्कन्द गुप्त के शिलालेख से प्रमाणित है कि सौराष्ट्र का शासक चुनने में स्कन्द को कैसे दिनरात चिन्ता करनी पड़ी थी। इसीप्रकार पृथ्वीसेन आदि का, बिना स्थिति सँभालने का प्रयास किए, आत्महत्या कर लेना कुछ विशेष अर्थ नहीं रखता। यह भी नहीं कहा जा सकता कि इससे भीतरी कलह मिट सकती थी। क्योंकि, पहले तो वह कलह मिटी भी नहीं, पुरगुप्त की ओर से षड्यंत्र चलते ही रहे। यह तो गुप्तसाम्राज्य

के उत्तराधिकार में कोई नई बात नहीं थी। समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त भी अपने वड़े भाइयों को हराकर गद्दी पर बैठे थे। चन्द्रगुप्त ने तो भाई को शायद मारकर उसकी गद्दी के साथ उसकी पत्नी ध्रुवदेवी भी छीन ली थी।

नाटक में कुछ ऐसी बातें भी आ गई हैं, जो अस्वाभाविक प्रतीत होती हैं–जैसे, सारे स्त्रीपात्रों का कहीं से कहीं पहुँच जाना। विजया मालवा से झट कुसुमपुर (पटना) पहुँच जाती है और वहाँ से गंधार (अफ़ग़ानिस्तान की सरहद पर)। गंधार तो जय-माला, देवसेना, देवकी और कमला मालवे से और रमा अन्तर्वेद से पहुँच जाती हैं। मालवे से कुसुमपुर प्रायः बारह सौ मील है और गंधार दो हज़ार मील से भी ऊपर। आख़िर, उन दिनों, आने-जाने के आज के से साधन तो थे नहीं, फिर इतनी जल्द इतनी दूर लोग क्योंकर पहुँच जाते थे, यह समस्या है। उसी प्रकार सेना की आवश्यकता के लिए गंधार में भूमि खोदते ही रत्नगृह (पृ० १५७) का प्रकट हो जाना भी कुछ अस्वाभाविक ही लगता है।

पात्र-पात्रियों की संख्या भी 'स्कन्दगुप्त' में अत्यन्त अधिक है। तीस से भी अधिक। यह सही है कि ऐतिहासिक नाटकों में पात्रों की संख्या अधिक हो सकती है, पर, केवल अपेक्षाकृत ही, इतनी अधिक नहीं। नाटक खेलने में इससे असुविधा होती है। पात्रों की एक फ़ौज ही तैयार करनी पड़ती है, जो साधारण तौर पर आसान नहीं। यहाँ हम केवल प्रधान पात्रों के चरित्र पर सविस्तर विचार करेंगे। पहले स्कन्दगुप्त। स्कन्दगुप्त सम्राट् कुमारगुप्त की बड़ी रानी से जन्मा त्यागी, कर्मठ, कर्तव्यपरायण मगध (गुप्त) साम्राज्य का युवराज है। उसका जीवन तप और त्याग का है। इतिहास के स्कन्दगुप्त के अनुकूल ही समुचित उसका चरित्र नाटक में उतर आया है। उसमें तनिक कहीं तृष्णा या वासना नहीं, साम्राज्य के लिए भी नहीं। हाँ, मातृभूमि का रक्षक होने के नाते वह साम्राज्य की विदेशी हूणों से रक्षा अवश्य करना चाहता है और उस निमित्त अथक प्रयत्न करता है। वह माता और गुरुजनों के प्रति श्रद्धावान् है और अपने आचरण, सम्बोधन आदि से उनके प्रति विनीत आचरण करता है। इससे वह सभी का प्रिय पात्र है। उसकी राज्य के प्रति तृष्णाहीनता और स्वार्थ के प्रति उदासीनता औरों को व्यंग्य तक करने पर बाध्य करती है। वह हृदय से दयावान् है और माता की रुचि के अनुकूल दंड देते समय भटार्क और शर्वनाग को बन्धनमुक्त कर देता है। और फिर एक को मगध का सेनापति और दूसरे को अन्तर्वेद का विषयपति बना देता है। विजया के रूप में राजलक्ष्मी उसका बार-बार वरण करती है, पर, वह उसे त्याग देता है। वह सम्राट् होकर भी साम्राज्य के ऐश्वर्य के प्रति उदासीन है, अपने विलासी पिता कुमारगुप्त की सर्वथा प्रतिमूर्ति, वैसे ही जैसे देवसेना के प्रति अनुरक्त होकर भी विवाह से प्रतिकूल। वस्तुतः नाटककार ने

स्कन्दगुप्त और देवसेना को पुराणों के दृष्टिकोण से चरित्र में ढाला है। शिवपुत्र स्कन्द (कुमार) का जन्म इसलिए हुआ था कि वह तारकासुर और दैत्यों का नाश और देवताओं की रक्षा कर सके। देवताओं की सेना का संचालक होने से पौराणिक स्कन्द का एक दूसरा नाम 'सेनानी' भी था। पौराणिक देवता स्कन्द (सेनानी) निर्विवाह ही रहा, केवल देवसेना का पति। इसी प्रकार चूँकि ऐतिहासिक स्कन्दगुप्त का विवाह नहीं हुआ था, प्रसाद ने भी प्रिय पात्र होते हुए भी स्कन्दगुप्त का विवाह नहीं कराया, यद्यपि देवसेना पत्नी के स्थान पर बनी रही। वह सम्बन्ध, निश्चय, धूमिल है, पर, उस पौराणिक स्थिति का प्रसाद ने स्कन्द और देवसेना के सम्बन्ध में सफल निर्वाह किया है। इसी निर्वाह के कारण देवसेना का व्यक्तित्व भी खुलकर सामने नहीं आता, कुछ काल्पनिक धुँधला-सा बना रहता है। वह भी स्कन्द ही की भाँति क्वारी बनी रहती है। स्वाभाविक ही है, क्योंकि, देवसेना का सम्बन्ध सिवा स्कन्द के और किसके साथ हो सकता था ? देवसेना स्वप्निल है; गाने का उसे रोग है।

स्कन्द के साथ ही विजया के पात्रत्व पर विचार करना भी उचित होगा। विजया का चरित्र ऋद्ध है, शक्तिम। उसपर आलोचकों ने सही ध्यान नहीं दिया है। उसकी विलासप्रियता को धिक्कारा है, उसकी प्रणय-चंचलता की ओर संकेत किया है। यह सही है कि इस प्रकार का चरित्र विजया का है, पर, वह अकारण नहीं, नाटककार की गलती से नहीं, नाटककार ने जानबूझ कर उसे वह रूप दिया है और अपने उस कार्य में सफल भी वह खूब हुआ है। स्कन्दगुप्त के स्तंभलेख की एक पंक्ति है—विहाय सर्वान्मनुजेन्द्रपुत्रान् लक्ष्मी स्वयं यं वरयञ्चकार (लक्ष्मी ने सारे राजपुत्रों को बारी-बारी से पहचानकर स्वयं जिस स्कन्दगुप्त को वरा)। विजया राजलक्ष्मी है, लक्ष्मी ही की तरह चंचल, अस्थिर। धनकुबेर (सेठ) की बेटी है। मालव-राजपरिवार के साथ पहले बँधी-बँधी-सी सामने आती है, पर, जब स्वयं मालवा की कोई स्वतंत्र स्थिति नहीं, वह मगध के गुप्तसाम्राज्य के अन्तर्गत है, तब वह क्यों उस स्वतंत्रताहीन मालवा से सम्बद्ध रहे ? वह तत्काल मगध के गौरव की ओर देखने लगती है। एक बार उसकी नज़र मगध के प्रवीर सौराष्ट्र के शासक पर्णदत्त के पुत्र चक्रपालित पर पड़ती है। वह कहती '—"वीर हृदय है (चक्रपालित), प्रशस्त वक्ष है, उदार मुखमंडल है।" (पृ० ५२), पर, वस्तुतः इसका हृदय मगध के सही उत्तराधिकारी स्कन्द की ओर लगा है और वह उसके सौन्दर्य से आकृष्ट हो जाती है, पर, षड्यंत्रों के केन्द्र पुरगुप्त के सम्भावित भविष्य की ओर देखने से भी वह नहीं चूकती। कहती है (पृ० ६७) 'यदि आज राजाधिराज कहकर युवराज पुरगुप्त का अभिनन्दन कर सकती !" पर, उस शक्तिहीन, लिबलिब, पियक्कड़ के प्रति भला उसका स्नेह तनिक भी कैसे टिक सकता था ? उसके प्रतिकूल शक्तिम, समृद्ध, अनन्तदेवी का प्रणयी और उस अर्थ मगध का

व्यावहारिक शासक, मागध सेना का सेनापति भटार्क शीघ्र उस लक्ष्मी को अपनी ओर खींच लेता है। और अन्त में जब वह स्कन्द का पराक्रम देखती है, उसकी सम्भावनाएँ देखती है, तब फिर वह उसे अपने को समर्पित कर देती है। इस प्रकार बारी-बारी से वह शक्ति और अभिजात्य की ओर जाती है और अन्त में स्कन्द ही की होना चाहती है। पर, स्कन्द तो देवसेना का था, एकमात्र म्लेच्छों से देश की रक्षा करनेवाली सेना का पति, भला वह उसे वरण कैसे करे? वह लक्ष्मी से विवाह नहीं करता, साम्राज्य नहीं लेता, सो भला लक्ष्मी को कैसे स्वीकार करे? सो, विजया चंचल लक्ष्मी है।

पर्णदत्त को हम अधिक तो नहीं देख पाते, पर, जितना देख पाते हैं, उतने से भी उसकी सक्षम, वयोवृद्ध, कर्तव्यपरायण काया स्पष्ट हो आती है। चक्रपालित, उसका पुत्र, नाटक का प्रबल पात्र है, स्कन्द और साम्राज्य का एकान्त सेवक, स्पष्टभाषी और वीर। उदारहृदय, उदार मुखमंडल, प्रशस्त वक्षवाला, वास्तविक पुरुष। पिता का सही पुत्र। पृथ्वीसेन कर्तव्यपरायण मंत्री है, जो औरों के साथ गृहयुद्ध के भय से आत्महत्या कर लेता है। गोविन्दगुप्त सम्राट् कुमारगुप्त का छोटा भाई है, जो सब प्रकार से साम्राज्य की सेवा करता है, देवसेना को लेकर देश की रक्षा के लिए भीख तक माँगता है। कुमारगुप्त की विलासिता उसे असह्य है, पर, स्कन्दगुप्त से उसे आशा होती है और वह उसकी सब प्रकार की सहायता करता है, उसे 'आर्य-चन्द्रगुप्त' की प्रतिमूर्ति मानता है। वयोवृद्ध है, पर, कर्मठ और जागरूक है। पर्णदत्त और वह रंगमंच पर बहुत नहीं आते, पर, जितना थोड़ा भी उनका उल्लेख हुआ है, उसीसे उनकी सबल आकृति स्पष्ट हो आती है।

बन्धु वर्मा, मालवा का राजा, मगध का सामन्त-मित्र है। स्कन्दगुप्त और साम्राज्य की सेवा निष्ठा से करता है। अपना राज्य अपने आप स्कन्दगुन्त को अर्पित कर देता है। वह देश को हूणों से बचाने के लिए सब प्रयत्न करता है, सर्वत्र लड़ता है। उसका भाई भीमवर्मा उसका अनुकूल वीर सहचर है। बन्धु वर्मा की पत्नी जयमाला निर्भीक क्षत्राणी है और सदा लड़ने और अपनी रक्षा आप करने को उद्यत रहती है। जैसे पति बंधुवर्मा लड़ता हुआ वीर गति पाता है, वैसे ही वह भी पति के मरने पर उसके शव के साथ सती हो जाती है। शर्वनाग वीर और स्वामिभक्त है, पर, मद्य पीने पर उसकी वृत्ति बदल जाती है। सोना उसे खींचने लगता है और वह षड्यन्त्रकारियों का अस्त्र बन जाता है। पर, बाद में स्कन्दगुप्त द्वारा मुक्त और उपकृत होकर वह उदार, कर्तव्यपरायण और स्वामिभक्त बन जाता है। उससे कहीं अधिक सजीव चित्रण उसकी पत्नी रमा का हुआ है। वह निर्भीक कर्तव्य पालनेवाली नारी है। भेद की बात झट समझ जाती है। पति को हत्या से विरत करने का प्रयत्न करती

हुई मारने-मरने को तैयार हो जाती है। देवकी के प्रति उसका बड़ा मोह है और अपने स्वामी के प्रति बड़ी घृणा और भारी क्षोभ।

भटार्क का चित्रण शक्तिम हुआ है। वह कुमारगुप्त की दूसरी पत्नी अनन्तदेवी का प्रणयी है, उसके बेटे पुरगुप्त को सम्राट् बनाने के लिए षड्यंत्र करता है। बार-बार स्कन्दगुप्त और स्वदेश के विरुद्ध द्रोह करता है और विदेशियों को भारत पर चढ़ा लाता है। वैसे वीर और सशक्त है। उसकी माँ कमला साध्वी है, स्कन्दगुप्त के प्रति अनुरक्त, जिसे अपने पुत्र के आचरण से लज्जा होती है और जो उसके विरुद्ध न्याय चाहती है। पर, नाटककार ने जो भटार्क को उसका अनौरस पुत्र बनाया है, उसकी आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि ऐसी बात नहीं कि ऐसा पुत्र पथभ्रष्ट जननी ही से उत्पन्न हो। विभीषण और जयचन्द आखिर प्रकृत माँ ही के औरस पुत्र थे। अनन्तदेवी का चित्रण भी स्पष्ट हुआ है, मोटी, गहरी रेखाओं द्वारा। उसका अपना व्यक्तित्व है। वह अपने पुत्र को सिंहासन देना चाहती है। उसके लिए सभी प्रकार के षड्यंत्र करती है, हत्या तक करने पर उद्यत है। सपत्नी देवकी से घृणा करती है। भटार्क को प्रणयी केवल अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए बनाती है, जो विजया के प्रति भटार्क के सम्बन्ध में प्रकटित उसके वक्तव्य से स्पष्ट है। पर, उसके जिस पुत्र पुरगुप्त के लिए ये सब षड्यंत्र होते हैं, वह पियक्कड़ और लिर्जालजा है, साम्राज्य के लिए सर्वथा अयोग्य।

मुद्गल विदूषक है। कुछ जागरूक ज़रूर है, पर, उसका गठन संस्कृत के विदूषकों की परम्परा में हुआ है, जिससे उसका हास्य अधिकतर खाने तक ही सीमित रहता है। धातुसेन सिंहल का राजकुमार है, जो भारत देखने आया हुआ है। भारत और गुप्त साम्राज्य की शालीनता में उसकी बड़ी निष्ठा है, विलास से घृणा भी और वह कुमारगुप्त की विलासिता के सम्बन्ध में अनन्तदेवी के विरुद्ध उत्कट व्यंग्य करता है। हँसोड़ है, पर, उसकी हँसी में व्यंग्य भरा है। विभीषण और सुग्रीव का संकेत कर वर्त्तमान पर व्यंग्य करता है। वह मातृगुप्त का मित्र है। वही कुमारदास भी है, कालिदास का मित्र। प्रसाद दो कालिदास मानते हैं, जिनमें से एक, मातृगुप्त, उनकी राय में, स्कन्दगुप्त का समकालीन काश्मीर का शासक मातृगुप्त है। पर, इस धारणा के लिए कोई प्रमाण नहीं है। प्रपंचबुद्धि क्रूरकर्मा कापालिक है, जो बौद्ध धर्म की रक्षा के लिए कुछ भी कर सकता है, भटार्क, अनन्तदेवी आदि के साथ स्कन्दगुप्त के विरुद्ध षड्यंत्र करता है। इस दिशा में उसे स्वदेश के शत्रुओं को भी देश पर चढ़ा लाने में कोई आपत्ति नहीं। देवसेना की बलि देने तक को वह तैयार हो जाता है। भयानक है। ख्यातबुद्धि महाबोधि विहार का स्थविर है, स्नेहशील और दयावान्। ब्राह्मणों ौर बौद्धों के झगड़ों को सुलझाने के लिए यज्ञ में अपनी आहुति तक दे देने को तैयार

हो जाता है । प्रपंचबुद्धि के ठीक उलटा है । हूण सेनापति खिंगिल का चरित्र साफ़ निखर नहीं पाया ।

अब नाटक की भाषा पर कुछ विचार । साधारणतः भाषा कठिन होकर भी जो समझ सके उसके लिए सुन्दर है । उसमें प्रवाह है । कई स्थान तो ख़ासे सुन्दर बन गए हैं, जैसे—"स्थिर होना मृत्यु है, निश्चेष्ट शांति मरण है ।" (पृ० २१) "पवित्रता की माप है मलिनता, सुख का आलोचक है दुख, पुण्य की कसौटी है पाप" (पृ० ४८) । कड़वेपन को संकेत करता नाटककार कहता है—"उँह, हृदय तक लकीर खिंच गई ।" (पृ० ५६)

भाषा, जैसे ऊपर कहा जा चुका है, प्राचीनता के अनुकूल संस्कृतनिष्ठ है । प्रजा के अर्थ में 'प्रकृति' शब्द का प्रयोग (पृ० ४) किया गया है, जो संस्कृत में भी सदा नहीं होता । लौटने के स्थान पर नाटककार 'प्रत्यावर्तन' का व्यवहार अधिक उचित समझता है । 'आर्य' अनवधानतावश ही एकाध बार लिखा गया है, वरना, अधिकतर वह 'आर्य्य' है, जैसे 'सूर्य्य', 'कर्म्म', 'बंधुवर्म्मा' आदि । एकाध स्थल पर भाषा की भूल भी लक्षित होती है—जैसे, कुमारगुप्त को 'प्रौढ़' (पृ० ४) और 'वृद्ध' (पृ० २१) दोनों कहा गया है । आकाश को इसी प्रकार स्तंभित, जिसे स्तंभे-रत खड़ा न होने के कारण स्तब्ध कहना अधिक उचित होता । इसी प्रकार 'पराग की चहल-पहल' बहुत अच्छा प्रयोग नहीं है, 'पराग की महमह' जैसा कुछ होना चाहिए था । काली पुतली की नवनीत से उपमा दी गई है (२०), 'शव-चिता' (२६) में 'शव' अनावश्यक है, क्योंकि हिन्दी में चिता का प्रयोग केवल एक ही अर्थ में होता है, प्रस्तुत अर्थ में । 'जीर्ण कलेवर क्रिया-कंकालों में क्या धरा है' में कलेवर और कंकाल दोनों एक साथ प्रयुक्त हुए हैं । कंकाल की पंजरप्रदर्शिनी शक्ति जीर्णकलेवर कहने से कम हो जाती है । 'प्रत्येक हरी-हरी पत्ती' में एक हरी निरर्थक है । 'राज्याभिषेक का प्रकरण होगा' (५५) में प्रकरण वाक्य को व्यंग्यात्मक बना देता है, जो नाटककार को इष्ट नहीं है । 'प्रकरण' या तो अध्याय हुआ या नाटक । दोनों अर्थों में यह कहना नाटककार या बंधुवर्मा को इष्ट नहीं । बुद्ध के लिए उस काल में कोई बौद्ध विशेषतः भिक्षु 'गौतम' नहीं कहता । या तो बुद्ध कहता या तथागत, जो सदा प्रस्तुत होता था । स्कन्दगुप्त का साम्राज्याभिषेक हो चुकने पर भी देवसेना उसे 'युवराज' (९६) ही कहती है । बंधुवर्मा का अपने मुँह से अपने को 'मालव वीर' (११८) कहना अच्छा नहीं लगता । 'भगवान् ने प्राणिमात्र को बराबर बनाया है' (१३३) यह तबके बौद्ध का वाक्य नहीं हो सकता । वे नास्तिक थे और भगवान् का नाम नहीं लेते थे । सम्बोधनों के प्रयोग में भी अनवधानता हुई है, क्योंकि कहीं तो हिन्दी तरीक़े से 'सेनापति' कहा गया है, कहीं संस्कृत के अनुसार 'सेनापते !' ऐसे ही कहीं 'शिरोमणि' कहीं 'शिरोमणे !' एक असावधानी मंच-निर्देशन में है । 'किवाड़ तोड़कर स्कन्दगुप्त घुस आता है' (७०) । किवाड़ बन्द

करने का संकेत कहीं नहीं है और तुरन्त ही पहले उसी द्वार से हत्यारे घुसे हैं।

अब तनिक नाटक की नाटकीयता और रंगमंचीय सफलता पर विचार करें। हमारी सम्मति में, रंगमंच की दृष्टि से स्कन्दगुप्त अथवा प्रसाद के अन्य अधिकांश नाटक भी असफल हैं, खेले जाने के अयोग्य। उनमें साहित्यिक सौन्दर्य (मेरिट) ज़रूर है, पर, वे केवल पढ़ने के काम के हैं। कोई नाटक-कम्पनी उन्हें अपने आप स्वाभाविक रूप से खेलने को उद्यत न होगी, न हुई है। कोई अगर एक बार खेल भी लें, तो दूसरी बार सम्भवतः उसे पर्याप्त दर्शक नहीं मिलेंगे। ये नाटक मुख्यतः पाठ्यक्रम की पुस्तकें हैं। इस असफलता का कारण क्या है?

नाटक, जैसा कालिदास ने अपने 'मालविकाग्निमित्र' में कहा है, 'प्रयोगप्रधान' (प्रैक्टीकल आर्ट) कला है, 'चाक्षष प्रयत्न'—आँख से देखने की चीज़ है, पढ़ने की नहीं। और उसके प्रयोगप्रधान होने के कारण उसकी शक्ति उसी अनुपात में प्रदर्शित होती है, जिस अनुपात में वह समझा जाय। इस समझे जाने में भाषा की कठिनता बड़ा अवरोध पैदा कर देती है। भाषा इन नाटकों की इस मानी में कृत्रिम है कि वह कहीं बोली नहीं जाती, जिससे वह आशुग्राह्य नहीं हो पाती।

गाने स्कन्दगुप्त के ऐसे नहीं, जो सामान्य दर्शकों को स्पर्श कर सकें। अव्वल तो उनमें और कविताओं में कोई अन्तर ही नहीं है। कई घटिया क़िस्म के भी हैं। अधिकतर काफ़ी लम्बे हैं-१२-१४ से ३०-३० पंक्तियों तक के। उनका भला क्या असर हो सकता है? और पृ० १५ पर जो गाना—न छेड़ना उस अतीत स्मृति से-दिया है, वह तो हमारी राय में, किसी स्तर का नहीं कहा जा सकता।

पात्रों की बहुलता भी 'स्कन्दगुप्त' को खेलने में विघ्न डालेगी। फिर प्राचीनता को मूर्तिमान् करने के लिए केवल अनुकूल भाषा ही की आवश्यकता नहीं होती, उससे कहीं अधिक अनिवार्य तत्कालीन वेश-भूषा हो जाती है, जिसका अन्दाज़ नाटककार और खेलनेवाले दोनों को प्रायः नहीं हो सकता।

अन्त में एक बात और कह देनी आवश्यक जान पड़ती है कि अतीत के शालीन गौरव ही को निरावरण करना नाटककार का ध्येय नहीं होना चाहिए। उसके राम और रावण दोनों पक्षों को जब खोलकर रखा जाय, तभी अतीत के स्वरूप की रक्षा की जा सकती है। प्रसाद ने भारतीय इतिहास के स्वर्णयुग की शालीनतामात्र को सराहा है, उस काल के पतनशील समाज का रूप भुला दिया है जिसमें अछूतों की दयनीय संख्या नगरों से बाहर रहती थी और, जैसा कि फ़ाहियान ने लिखा है, नगरों में प्रवेश करते समय लकड़ियाँ बजाती आती थी, जिससे सवर्ण दूर हट जायँ और उनके स्पर्श से पतित न हो जायँ। इससे अतीत अपने सर्वांग रूप में दर्शक या पाठक के सामने नहीं आ पाता। दण्डी ने अपने 'दशकुमारचरित' में इसके विपरीत समाज को यथावत् सही रूपायन किया है।

अगली दशाब्दी की वैज्ञानिक कहानी

— श्री ओम्प्रकाश —

मैंने जब अपने घर में प्रवेश किया, तब देखा कि घर की सारी व्यवस्था में आमूल परिवर्तन हो गया है । ज्योंही मैं द्वार पर पहुँचा और मैंने सूचना देने की घंटी का बटन दबाया, त्योंही अन्दर से एक आवाज़ आई—"कृपाशंकर, आप अन्दर आ सकते हैं ।"

मेरे विस्मय का ठिकाना न रहा । द्वार के बाहर कोई भी व्यक्ति नहीं था, फिर मेरे मामा को केवल घंटी बजाने से मेरा पता किस प्रकार चल गया । इससे भी अधिक अचरज तो मुझे तब हुआ, जब द्वार के पट अपने आप खुले गए । मैंने देखा कि मामा का कमरा प्रकाश से जगमगा रहा है । पर, घर के अन्दर बिजली का न कोई तार नज़र आया और न बाहर कोई खम्भा । मैं लगभग चकरा-सा गया । तभी मेरे मामा ने दहलीज़ में आकर मुझे अन्दर चलने को कहा और मैं हक्का-बक्का-सा चारों ओर देखता हुआ कमरे में जाकर बैठ गया । मैंने देखा कि मेज़ के निकट दीवार पर लगे हुए एक पटल पर मेरे मामा की बड़ी लड़की का रसोईघर में काम करते समयका चलचित्र आ रहा है । यह देखकर मैं और घबरा उठा और मैंने इसी घबराहट में पूछा—"मामा, आखिर आपने घर को क्या भूलभूलैयाँ-सा बना रखा है अथवा मैं किसी तिलिस्मी मकान में आ गया हूँ ।"

"कृपाशंकर, घबराओ नहीं । ऐसा कुछ नहीं हुआ है । बस अन्तर यही है कि तुम सन् १९५४ में अपने इस मकान को मेरे सिपुर्द करके हिमालय पर्वत को चले गए थे और यह सन् १९६५ है । इन ११ सालों में विज्ञान ने ज़माने को बिलकुल बदल दिया है और उसीका यह खेल तुमको इस मकान में भी दृष्टिगोचर हो रहा है ।" इतना कहकर मामा चुप हो गए और मेरे मुख की ओर देखने लगे ।

मुझे अभी तक भी मामा की बातों पर विश्वास नहीं हो रहा था और मामा ने भी इस बात को जान लिया । इसलिए, वह मेरे पास आए और हाथ पकड़कर बोले—"चलो इस परिवर्तन को तुम स्वयं अपनी आँखों से चलकर देख लो । तभी इसपर तुम विश्वास कर सकोगे ।"

इतना कहकर वह मुझे मकान की छतपर ले आए। मैंने छत के एक कोने में खड़े होकर देखा कि सम्पूर्ण छत पर कुछ पत्तर-जैसे पदार्थ बड़े तरतीबवार लगे हुए हैं। मामा मुझे समझाते हुए बोले—"देखो, छत पर ये जो पत्तर तुम फैले हुए देखते हो, ये 'सिलकन' तत्त्व के बने हुए हैं। इन पत्तरो को बनाने के पूर्व 'सिलकन' के सूक्ष्म कणों को विशेष प्रकार से विद्युत्धारी बना लिया गया था। इनकी सहायता से घर में ख़र्च होनेवाली सारी बिजली बन जाती है।"

मेरे यह पूछने के पहले ही कि "कैसे ?", उन्होंने उत्तर दिया—,,सूर्य नित्य ही धरती पर १०० नील किलोवाट शक्ति अपनी किरणों द्वारा भेजता है। उसी धूप की किरणों को या सूर्यप्रकाश को 'सिलकन' की सहायता से बिजली में बदल दिया गया हैं, क्योंकि 'सिलकन' के ठोस और सूक्ष्म विद्युत्-कणों में यह गुण होता है कि वे प्रकाश को विद्युत् में बदल देते हैं। सबसे पहले सन् १९५० में इसका पता अमरीका की 'बैल'-प्रयोगशाला ने लगाया था। इसीको अपनाकर 'बैल'-प्रयोगशाला ने १९५३ में एक ऐसा यन्त्र बनाया, जिसमें २५ वर्गफ़ीट में बिछी हुई 'सिलकन' की ये पत्तरें १०० वाट के एक बल्ब को जलाने योग्य विद्युत् सूर्य-किरणों से पैदा कर लेती थी। अब तो इस यंत्र को सुधारकर बहुत विकसित कर लिया गया है। इसकी सहायता से दिन में बिजली पैदा करके संगृहीत कर ली जाती है।" इतना कहकर उन्होंने छत के दूसरे कोने में रखे एक यंत्र की ओर संकेत करते हुए कहा—"सूर्य-शक्ति को विद्युत्-शक्ति में बदलकर इन्हीं बैटरियों में संगृहीत करके रखा जाता है और रात को यहीं से बिजली लेकर सारे घर में उसका उपयोग किया जाता है। इसीसे हस अपने तीनों टेलीविज़न-सेट चलाते हैं।"

"पर, मामा, इस प्रकार उत्पन्न बिजली को आप घर के अन्दर किस प्रकार ले गए हैं। मुझे तो कोई बिजली का तार नज़र नहीं आता !"

"कृपाशंकर, अब ज़माना बहुत आगे बढ़ गया है। बिजली के तार अब दीवारों के बाहर नहीं, अन्दर रहते हैं, सारे घर की दीवारों के अन्दर ही अन्दर उनका एक विस्तृत जाल फैला हुआ है। अब आओ, नीचे चलें !"

इतना कहकर वह नीचे मुझे सीधे रसोई में ले गए। उन्होंने मुझे एक ठोस सूक्ष्म विद्युत्कणधारी चूल्हा दिखाया और कहने लगे—"इसमें ईंधन की आवश्यकता नहीं। कुछ विद्युत्कण सूर्य-किरणों से पैदा हुई विद्युत्-शक्ति का बहुत थोड़ा-सा अंश लेकर ही घर का खाना पका देते हैं। ये चूल्हे स्वतःचालित हैं।" फिर एक दूसरी वस्तु दिखाते हुए वह बोले—"यह बर्तन साफ़ करने का स्वतःचालित यंत्र है। इसके पास ही दूसरी वस्तु जो तुम देख रहे हो, वह वस्त्र साफ़ करने का यन्त्र है। यह अपने आप ही कपड़ों को धोता और साफ़ करता है। यही इन कपड़ों को सुखा भी देता है। इसमें एक

ऐसे सूक्ष्म और ठोस विद्युत्कण का उपयोग किया गया है, जो एक सैकण्ड में २६ हज़ार बार कम्पित होता है।'' इतना कहकर वह रसोई से बाहर निकले। मैंने देखा कि द्वार अपने-आप खुल गए और हमारे बाहर आते ही फिर अपने आप ही बन्द हो गए। मैंने अपना कौतूहल शान्त करने के लिए पूछा—''क्या ये द्वार अपने आप खुलते और बन्द होते हैं ?''

''हाँ, सो तो है ही'' मामा ने उत्तर दिया ''इनका सम्बन्ध विद्युत्-नेत्र से है। इसे 'फ़ोटो एलेक्ट्रिक सेल' भी कहते हैं। इसमें 'केसियम' धातु के सूक्ष्म विद्युत्कणों का लेप एक चाँदी के पत्तर पर किया होता है। जब इसमें विद्युत् का प्रवेश कराया जाता है, तब यह प्रकाश देने लगता है। इसके अन्य उपयोगों का तुम्हें अभी आगे चलकर पता चलेगा'' यह कहकर वह आगे बढ़े। उन्होंने कुछ अलमारी-जैसी वस्तुओं की ओर हाथ उठाकर कहा—इनमेंसे एक यन्त्र में प्लेट, प्याले और तश्तरी अपने आप साफ़ हो जाती हैं। इसको उन ध्वनि-तरंगों की सहायता से चलाया जाता है, जिनकी गति बहुत तेज़ होती है और जो कानों को सुनाई नहीं दे सकतीं। इन ध्वनि-तरंगों को 'अल्ट्रा ज़ोनिक' कहते हैं।'' एक और अलमारी की ओर संकेत करते हुए वह बोले—''यह घरेलू 'शीतलकर' है। यह भी अल्ट्राज़ोनिक की सहायता से कार्य करता है। इसमें रखने से कोई भी खाद्य पदार्थ काफ़ी समय तक बिना बिगड़े भाण्डारित किया जा सकता है।'' हम जिस द्वार से निकले, उसके सामने घास का मैदान था। द्वार के पास ही एक और यंत्र रखा हुआ था। उसे दिखाकर मामा बोले—''यही हमारे घर का पहरेदार है। जब तक यह काम करता है, तब तक कोई व्यक्ति, जीव अथवा वस्तु घर की सीमा के अन्दर आती है, उसका हमें तुरन्त पता चल जाता है। यह काम भी विद्युत्-नेत्र करता है। इस यन्त्र में एक विद्युत्-नेत्र लगा हुआ है, जिसका प्रकाश चारों ओर छाया रहता है। ज्योंही कोई व्यक्ति या वस्तु इस प्रकाश-क्षेत्र में प्रवेश करती है, त्योंही मेरे कमरे की घंटी बज उठती है। इसीलिए, तुम्हारे आने का पता भी मुझे पहले ही चल गया था।''

इसके पश्चात् हम एक छोटे-से 'केबिन' में घुसे। इसमें एक टेलीफ़ोन रखा हुआ था। उसे दिखाकर वह बोले—''यह टेलीफ़ोन स्वतःचालित है। इसके द्वारा आप किसी भी नगर से बिना एक्सचेंज के ट्रंककाल कर सकते हैं। इसका नाम 'टेलीविज़ोफ़ोन' है। इस पर बात करते समय उस व्यक्ति का चित्र भी इसके डायल के साथ लगे हुए पट पर आकर अंकित होता रहता है, जिसके साथ बातें की जा रही हों। और मज़ेदार बात तो यह है कि जिस मुद्रा में भी वह बातें कर रहा हो, हूबहू वही मुद्रा-चित्र इस पट पर बोलता नज़र आता है।'' और फिर ऊपर छत की ओर इशारा करते हुए वह बोले—''देखो, यह छत काफ़ी नीची लगती है, पर, बात ऐसी नहीं है। छत बीच में

खोखली है, जिसमें स्वतःचालित उष्णता प्रदान करनेवाला यंत्र और 'एयर कंडीशनिंग' यंत्र लगे हुए हैं। जब चाहो, कमरे को इच्छानुसार गर्म कर लो या शीतल बना लो, केवल एक बटन दबाने की देर है। टेलीविज़ोफ़ोन और इन गर्म और ठण्डा करनेवाले यंत्रों में 'ट्रांज़ीस्टर्स' नामक कुछ छोटे-छोटे विद्युत्-कण लगे हुए हैं। पहले इनमें 'वेक्यूम ट्यूब' काम में लाए जाते थे, जो बहुत मँहगे होते थे और कोई विरला ही इन वैज्ञानिक सुविधाओं का उपयोग कर पाता था, किन्तु, जबसे ठोस-विद्युत्-कण-विज्ञान का विकास हुआ है, तब से ये सारी सुविधाएँ जनसाधारण की भी आर्थिक पहुँच के अन्दर आ गई हैं।"

इसके पश्चात् मामा मुझे घास के 'लान' में ले आए। इसके एक कोने में कुछ खम्भों पर एक टंकी आधारित थी। मामा ने मुझे बताया कि "हम जिस प्रकार बिजली के सम्बन्ध में स्वावलम्बी हैं, ठीक उसी प्रकार हम स्वयं पानी का भी अपना ही प्रबन्ध रखते हैं। हम उस हौज़ में ट्यूब-वैल से पानी लेकर भर लेते हैं और यही सारे घर को पानी पहुँचाता है। यह भी स्वतःचालित है। जब इसका पानी समाप्त होने लगता है, तब यह स्वयं ही ट्यूब-वैल को चलाकर अपने आपको भर लेता है।"

मामा की बातें सुनकर मुझे अचम्भा हुआ। वह तो पानी के हौज़ से भी आदमी-जैसा ही काम ले रहे थे। तभी मैंने मामा के चार वर्षीय बच्चे को तीन पहिए की साइकिल पर अपनी ओर आते देखा। वह बहुत ही सुन्दर गा रहा था। मैंने मामा से कहा—"आपने चुन्नू को इतनी कम आयु में इतना ऊँचा शास्त्रीय संगीत किस प्रकार सिखलाया है। वाह, भाई वाह, कमाल कर रहा है।"

"कृपाशंकर जी, यह बात नहीं है। उसने अपनी ट्राइसाइकिल पर एक जेबी रेडियो लगा रखा है। उसीसे यह शास्त्रीय संगीत का स्वर निकल रहा है। देखिए, ठीक इसी प्रकार का एक जेबी रेडियो मेरी जेब में भी पड़ा हुआ है।" यह कहकर उन्होंने एक प्लास्टिक की छोटी-सी तश्तरी मेरे हाथ में पकड़ा दी। इस तश्तरी पर ग्रामोफ़ोन के रिकार्ड-जैसी अनेक गहरी रेखाएँ बनी हुई थीं। मैं उसे देखता ही रह गया।

मामा ने बात को समझाते हुए कहा—"प्लास्टिक की इस तश्तरी में जो रेखाएँ दिखाई दे रही हैं, इन्हीं में, 'सैलीनियम' और दूसरी अन्य धातुओं के कुछ विद्युत्-कण जड़े हुए हैं। वही रेडियो के सभी 'वाल्वों' का काम करते हैं। तश्तरी के साथ में लगा हुआ गुलाब के फूल जैसे-आकार का लाउड-स्पीकर है और उसके साथ ही लगी हुई छोटी-सी एक बैटरी है। बस इतने ही से रेडियो बन जाता है।

इसको आप किसी भी जेब में रख सकते हैं और सरल बनावट और कम सामग्री के कारण ही यह इतना सस्ता है कि हमारे घर में प्रत्येक के पास एक-एक जेबी रेडियो है।"

थोड़ा आगे बढ़े, तो देखा कि चुन्नू का बड़ा भाई मुन्नू अकेला बैठा हुआ कुछ कर रहा है। मैंने ध्यान से अपने चारों ओर देखा। लगभग १०० गज की दूरी पर दो बच्चों के खेलने की रेलगाड़ियाँ एक-दूसरे की ओर भागी चली जा रही थीं। एक छोटी-सी मोटर घास पर दौड़ रही थी। मुझे मामा ने बताया कि मुन्नू इतनी दूर पर बैठा हुआ उनको चला रहा है और अपने नियंत्रण में रखे हुए है। ये खिलौने भी विद्युत्-कणों की सहायता ही से इस प्रकार के बन सके हैं।"

मैं उधर देख ही रहा था कि एक मशीन घास काटती हुई मेरे बराबर से निकल गई। मेरे मुँह से अचानक निकल गया—"वाह, खूब, यह भी शायद स्वतःचालित ही है।" मामाजी ने कहा—"तुम ठीक कहते हो। यह घास की मशीन अपने-आप ही 'लान' की सारी घास, स्वतःचालित होने के कारण, काट लेती है।"

गोधूलि का समय हो चुका था। भगवान् भास्कर धीरे-धीरे पश्चिम में डूबते जा रहे थे। आकाश में चारों ओर लाली छा गई थी। मुझे एक बार पुनः हिमालय पर्वत के उन रमणीय दृश्यों का स्मरण हो आया, जिनको मैं पिछले दस वर्षों से वहाँ बराबर देख रहा था। ज्यों ही मैंने घर की ओर देखा, त्यों ही सारा मकान प्रकाश से जगमगा उठा। घर की खिड़कियों का काँच, जो अब तक पूरी तरह पारदर्शक था, रंग-बिरंगे प्रकाशों से चमक उठा था। किसी खिड़की का काँच लाल प्रकाश दे रहा था, तो कोई पीला। कोई हरी ज्योति देता था, तो कोई नीली। दीवारों की ओर देखा, तो ऐसा लगा, जैसे दीवारों से प्रकाश फूट पड़ा हो। जब मैं मामा के साथ घर के अन्दर आया, तब यही दशा प्रत्येक कमरे की थी। प्रत्येक दीवार और छत से प्रकाश निकल रहा था। किसी भी कमरे में कोई बिजली का बटन नहीं था। मैं फिर चकरा गया। मामा ने मेरी यह दशा देखी, तो वह मुझे समझाते हुए बोले—"कृपाशंकरजी, यह सारा खेल 'सेलिनियम', 'केसियम', आदि धातुओं के अत्यधिक सूक्ष्म विद्युत्-कणों ही का है। इन कणों का छत के भीतरी भाग और दीवारों की सतह पर लेप कर दिया गया है। छत और दीवारों के अन्दर बिजली के तारों का जाल फैला हुआ है। छत के भीतरी भाग और दीवारों के ऊपर पुते हुए विद्युत्-कणों में यह गुण होता है कि वे बिजली के तारों के सम्पर्क में आए बिना ही उनसे विद्युत् ग्रहण करने लगते हैं। इनका दूसरा गुण यह है कि जब इनमें विद्युत् प्रवाहित होती है, तब ये चमकने लगते हैं। चारों ओर जो यह प्रकाश तुम देख रहे हो, वह इन्हींसे निकलनेवाली ज्योति है।"

मामा कुछ रुककर बोले—"इस प्रकार की प्रकाश-व्यवस्था में बिजली के बटन की भी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। एक ठोस विशेष प्रकार के विद्युत्-कणों में यह गुण पाया गया है कि प्रकाश की तीव्रता या मन्दता के सूक्ष्म से सूक्ष्म अन्तर पर भी ये सक्रिय हो उठते हैं। इनका सम्बन्ध मकान में फैले हुए बिजली के तारों से कर दिया गया है। अतएव, जब गोधूलि का समय होता है और सूर्य का प्रकाश मन्द पड़ जाता है, तब ये विद्युत्-कण बिजली के तारों का 'सरकिट' पूरा करके विद्युत्-संचार कर देते हैं और इस प्रकार अपने आप ही सारे कमरों में प्रकाश हो जाता है।"

"किन्तु खिड़कियों का पारदर्शक काँच किस प्रकार रंग-बिरंगे प्रकाश से चमक उठा?" मैंने कहा।

"उसके लिए भी यही बात लागू होती है। खिड़की के काँच पर कुछ विशेष प्रकार के विद्युत्-कणों का लेप कर दिया गया है, जो विद्युत्-शक्ति के प्रवाहित होने पर अलग-अलग रंग के प्रकाश देते हैं। और काँच के पीछे की ओर बिजली के तार लगे हुए हैं। जब तारों में विद्युत् प्रवाहित होती है, तब काँच की सतह पर लगे हुए ये विद्युत्-कण तारों की विद्युत् के सम्पर्क में आए बिना ही उससे विद्युत्-शक्ति प्राप्त कर लेते हैं और रंग-बिरंगे प्रकाश देने लगते हैं।"

मैं थककर मामाजी के कमरे में बैठ गया। मामाजी दीवार पर टँगे हुए एक प्लास्टिक के बने हुए पट के निकट गए। यह दूर से बिलकुल दीवार पर जड़े हुए चित्रों के समान लग रहा था। मामाजी ने एक बटन घुमा दिया। पट में चलचित्र का एक दृश्य सामने आ गया। अब मैं समझा कि यह टैलीविज़न सेट था। पर, वास्तव में यह बहुत हलका था। बाद में मुझे पता लगा कि इसका भार केवल एक सेर के लगभग था। मैं उस दृश्य को देख ही रहा था कि मामाजी ने एक दूसरा बटन घुमा दिया। अब पट पर पास वाले कमरे में खेलते हुए चुन्नू और मुन्नू का चलचित्र आ गया। मामाजी ने तीसरा बटन दबाया, तो पट पर मकान के द्वार का चित्र स्पष्ट दिखाई देने लगा। अब मैं समझा कि मामाजी ने इस यंत्र की सहायता से मुझे अपने कमरे में बैठे-बैठे ही द्वार पर खड़ा किस प्रकार देख लिया था। मैं इस यंत्र के विषय में सब कुछ जानने को उत्सुक हो उठा और मैंने मामाजी से पूछ ही लिया—"मामाजी, इसके विषय में तो मुझे विस्तार-पूर्वक समझाइएगा!"

मामाजी हँसे और बोले—"यह कोई विशेष यंत्र नहीं है। यह तो सन् १९५३ ई॰ का साधारण टेलीविज़न सेट है। हाँ, इसके साथ एक 'विडीकोन केमरा' लगा दिया गया है और यह सारे चमत्कार उसीके हैं। इस केमरे को 'टेलीविज़न यंत्र' से संबद्ध करने पर न केवल टेलीविज़न स्टेशनों से प्रसारित कार्यक्रमों को देखा और

सुना जा सकता है, वरन्, एक दूसरा बटन घुमाने पर इसी पट पर हम यह भी देख सकते हैं कि हमारे घर के दूसरे कमरों में क्या-क्या हो रहा है, जैसा कि तुमने अभी देखा था। तीसरे बटन को घुमाने पर हम यह भी मालूम कर सकते हैं कि घर के द्वार की घंटी जिस व्यक्ति ने बजाई है, उसका रूप-रंग और शक्ल कैसी है। इस विडीकोन केमरे में एक विडीकोन नलिका होती है। इसपर कुछ विशेष प्रकार के ठोस विद्युत्कणों का लेप कर दिया जाता है। यह केमरा आजकल बड़े-बड़े चलचित्रों का चित्र लेने के लिए सभी स्टूडियो में लाया जाता है। सन् १९५४ के विडीकोन केमरे का आकार एक पुस्तक जितना और भार १–१॥ सेर होता था, पर, आज तो यह उसका आधा ही रह गया है। उस समय इसका मूल्य ४५,०० रुपए था, पर, आज इसका मूल्य ७०० रुपए और १००० रुपए के बीच में है।"

इसके बाद मामा एक और यंत्र की ओर संकेत करते हुए बोले—"यह 'टेपरिकार्डर' है। आजकल तो यह बड़े काम की वस्तु बन गया है। सन् १९५४ का टेपरिकार्डर केवल इतना ही कर सकता था कि हमारी बोली हुई बातों को बोलते समय इस्पात के एक पत्तर पर अंकित कर लेता था और हम फिर जिस समय भी चाहें, उक्त समय की बोली हुई बातों को अपनी बोली में ज्यों का त्यों सुन लेते थे। पर, आज के टेपरिकार्डर में बड़ा भारी परिवर्तन हो गया है। इसकी सहायता से हम अपने घर में होने वाले प्रत्येक कार्य का चित्रपट पर दिखाएं जाने वाले चित्र की तरह एक बोलता और चलता चित्र सरलता से तैयार कर सकते हैं। टेपरिकार्डर देखने में बिलकुल रेडियो जैसा लगता है। इसके साथ एक 'माइक्रोफ़ोन' लगा रहता है। इसका सम्बन्ध यंत्र के अन्दर रखे हुए एक विद्युतीय चुम्बक से होता है और यह चुम्बक एक इस्पात के पत्तर या तार से सम्बद्ध होता है। जब कोई व्यक्ति टेपरिकार्डर पर अपनी ही बोली में अपनी बातों को अंकित करवाना चाहता है, तब वह माइक्रोफ़ोन द्वारा बोलता है। बोली की ध्वनि-तरंगों को माइक्रोफ़ोन विद्युत्-तरंगों में बदल देता है। जब टेपरिकार्डर से अपनी बोली सुननी होती है, तब ये संगृहीत की गई विद्युत्-तरंगें टेपरिकार्डर के अन्दर एक यंत्र द्वारा ध्वनि-तरंगों में बदल दी जाती हैं और हमको अपनी बोली सुनाई पड़ने लगती है। विडीकोन केमरे की सहायता से इसी टेपरिकार्डर द्वारा चलचित्र तैयार किए जाते हैं। आजकल ये चलचित्र फ़िल्मों पर अंकित उसी प्रकार बिकते हैं, जैसे सन् १९५० में ग्रामोफ़ोन के रिकार्ड बिकते थे। इन फ़िल्मों को टेपरिकार्डर पर चलाकर देखा और सुना जा सकता है।"

उपर्युक्त चित्र अगले ११ वर्षों के पश्चात् आने वाले युग के आधुनिक साधनों से सुसज्जित एक घर का है। आज हमें उपर्युक्त बातों को पढ़कर आश्चर्य हो सकता है और इनपर हमें सहसा विश्वास नहीं हो सकता, पर, उपर्युक्त बातें बिलकुल

तथ्यों पर आधारित हैं । ऊपर बताए गए ८० प्रतिशत यंत्रों का निर्माण विभिन्न वैज्ञानिक प्रयोग-शालाओं में हो चुका है अथवा हो रहा है । हमारे देखते ही देखते एक नए विज्ञान, ठोस-सूक्ष्म-विद्युत्-कण-विज्ञान, का जन्म हो रहा है और इसने हमारे जीवन में अद्भुत और क्रान्तिकारी परिवर्तनों को लाने का कार्य आरम्भ भी कर दिया है ।

*

*

गाय की रक्षा और सम्वर्धन

— श्री वैजनाथ महोदय —

इस समय देश में गोवधबन्दी के लिए कहीं-कहीं सत्याग्रह चल रहा है। इसमें जिस हद तक गाय के प्रति भक्ति का प्रश्न है, वह बहुत स्तुत्य और आदरणीय वस्तु है। शासन को भी व्यापक लोक-भावना का आदर करके इस समस्या को सुलझाना चाहिए। परन्तु, जन-समाज को यह नहीं भूलना चाहिए कि यह प्रश्न केवल भावना से हल नहीं होगा। गाय को बचाना हैं, तो उसके लिए जनता को लगन के साथ लगातार वर्षों तक प्रयत्न करना होगा। आज गाय का जो वध हो रहा है, उसमें विवेक-शून्यता ज़रूर है। भावना की शून्यता भी है। विदेशी शासन के समय से जानबूझकर चलाई गई ग़लत परिपाटी भी है। परन्तु, यह भी एक सत्य है कि कुछ सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियाँ भी ऐसी बन गई हैं, जो इसमें मददगार हो रही हैं। शासन की ओर से गोवंश का वध क़ानूनन् बन्द करवाने का प्रयत्न अवश्य हो। परन्तु, समाज के अन्दर भी गो-पालन तथा गो-रक्षा की सही भावना पैदा करना समझदार गो-भक्तों का कर्त्तव्य है। इसी दृष्टि से यहाँ हमें कुछ विचार करना है।

भारतवर्ष में कृषि और गो-पालन (पशु-पालन) मुख्य पेशे रहे हैं। प्रकृति की ऐसी ही कृपा यहाँ रही है। प्राचीन काल में तो गृहस्थ, राजा या आश्रमसंचालन करनेवाले कुलपतियों की समृद्धि का नाम ही गाय रहा है। किस के पास कितनी गायें हैं, कितनी गायें उसने दान में दीं, इसी का ख़ास तौर पर ज़िक्र होता था। गोपालों के बड़े-बड़े 'व्रज' अर्थात् सदा घूमते रहनेवाले समूह होते थे। शनैः-शनैः ये बसने और खेती करने लगे। उन्होंने समझा कि मुख्य वस्तु खेती है। खेती से मनुष्य के लिए अनाज और पशु के लिए घासपात भी मिल जाता है। और चूंकि खेती बैलों ही से होती है, इसलिए, गो-पालन एक आवश्यक कर्त्तव्य बन गया। इस तरह हलधर बड़ा भाई बन गया और गोपाल छोटा भाई। राजगद्दी स्वभावतः हलधर ही के सिपुर्द रही। परन्तु, हल तो बैल के बल ही से चल सकता है, अतः समृद्धि के द्वार का असली अधीश गोपाल ही कहलाया। इस तरह हलधर और गोपाल की इस अमर जोड़ी

की पूजा भारत अनादि काल से करता आया है। और इसीमें उसका कल्याण है। 'Mixed farming' का भी इसके सिवा और कोई अर्थ नहीं।

दूध और घी में जो गुण हैं, उनका वर्णन प्राचीन और आधुनिक आयुःशास्त्रियों ने मुक्त कण्ठ से किया है। यह जितनी अधिक मात्रा में मिल सके आवश्यक है। दूध से जितने जल्द प्राणशक्तिस्वरूप वीर्य बनता है, उतने और किसी चीज़ से नहीं। और घी को तो प्राण ही की उपमा दी गई है। "सद्यःशुक्रकरं पयः", "घृतं वै प्राणाः" इत्यादि शास्त्रवचन प्रसिद्ध हैं। फिर गाय के दूध-घी में तो यह गुण और भी अधिक होता है। वह शरीरबलवर्धक, बुद्धिवर्धक और ख़ास करके आँखों के लिए बहुत ही लाभदायक है। फिर उससे खेती के लिए बैल और ज़मीन के लिए खाद भी मिलती है। इस प्रकार गाय मानवसमाज के लिए सर्वश्रेयस्करी और समृद्धि की जननी बन गई है। इसीलिए, गाय के वध को हमारे पूर्व-पुरुषों ने महापातक बताया है और गाय के पालन को पुण्य। किन्तु, आज हम देखते क्या हैं कि जिन देशों में गाय का वध होता है, उनमें उसकी हालत बहुत अच्छी है और जहाँ गाय की पूजा होती है, वहाँ उसकी हालत सबसे अधिक गई-गुज़री है। और उस देश के लोग भी संसार भर में सब से अधिक दरिद्र और दीन-दुर्बल हैं। यहाँ की जनता की दरिद्रता तथा दुर्बलता के और भी अनेक कारण हैं। परन्तु, उनमें एक कारण गाय की अवगणना, उसके प्रति नासमझी-भरा व्यवहार भी निःसन्देह है।

हमारे पूर्व-पुरुषों ने गो-पालन को धर्म का एक आवश्यक अंग बताया है और वह सही है। परन्तु, धर्म के पालन में जिस प्रकार हम दूसरी अनेक दिशाओं में अन्ध अर्थात् लकीर के फ़कीर बन गए हैं, उसी प्रकार गाय के पालन में भी हमारा हाल है। 'धर्म' शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में होता है। परन्तु. मुख्य अर्थ दो हैं। आत्मा का कल्याण और व्यक्ति तथा समाज की उन्नति। इसीको अभ्युदय और निःश्रेयस् कहा है और सीधी-सादी भाषा में लोक और परलोक सुधारना कहा है। मनुष्य की दृष्टि भूतमात्र के हित की भले ही हो, परन्तु, चूँकि उसकी शारीरिक शक्ति सामाजिक और सांसारिक परिस्थितियों से सीमित है, अतः, उसे अपनी व्यक्तिगत और सामाजिक मर्यादाओं का ध्यान रखकर ही चलना पड़ता है। इस मर्यादा को वह भूल जायगा, तो अपने-आपको संकट में डाल लेगा और संसार में हँसी का पात्र बन जायगा। पृथ्वी तो ठीक, वायु और आकाश भी सूक्ष्म जीवाणुओं से भरे पड़े हैं। यहाँ तो साँस लेने में भी हिंसा है। मनुष्य ज़िन्दा ही नहीं रह सकता, अगर वह सूक्ष्म अहिंसा का पालन करना चाहता है। तब भूतमात्र के हित और सूक्ष्म-अहिंसा की केवल भावना रखकर ही मनुष्य को सन्तोष मानना पड़ता है। प्रत्यक्ष व्यवहार में तो हम मानव-समाज के और उसने जिन पशुओं को अपना सेवक-सहायक बना लिया है उनके हित का भी

पालन कर सकें, तो बहुत है । ऐसा मानकर इन पशुओं में गाय को समस्त जीवसृष्टि का एक प्रतिनिधि समझकर उसकी रक्षा और पालन पर प्राचीन भारतीयों ने ज़ोर दिया है । फिर मनुष्य-मात्र के हित में भी स्वदेश, परदेश, आत्म और पर, कुटुम्बीजन और मित्रजन, तत्काल का लाभ या स्वार्थ और लम्बा–दूर का–कल्याण, व्यक्तिगत हित और समाज का हित, इन सब का तारतम्य है ही । संक्षेप में, धर्म और व्यवहार का सारसर्वस्व यह तारतम्यभाव ही तो है । व्यक्ति हो या समाज, जिसने इस तारतम्य को ठीक तरह से समझकर व्यवहार किया है, वह ऊपर उठा है और जो इसमें भूला है, वह नीचे गिरा है । प्राचीन भारतीय इस तारतम्य के समझने में कुशल थे । वे इसी कुशलता के आधार पर सूक्ष्म और व्यापक कर्त्तव्यों के जंगलों में से साहस के साथ अपना मार्ग निकाल सकते थे । वे इसीलिए आगे बढ़ सके । किन्तु, जबसे हमने यह तारतम्य की सूझ खोई, हम ग़ोते खाने लगे तथा आज इस दशा को प्राप्त हुए हैं । अध्यात्म के ऊँचे सिद्धान्त हमारे पास मौजूद हैं, किन्तु, पुस्तकों ही में । व्यवहार में तारतम्य की यह कुंजी खोकर हमने अपने-आप ही को खो-सा दिया है । छुआछूत, जात-पाँत, धर्म-अधर्म का अविवेक, दारिद्र्य, पराधीनता आदि कितनी ही बातों की जड़ में यही भूल मुझे नज़र आती है ।

गाय ही की बात लें । उसकी हालत चौंका देने वाली है । संख्या की दृष्टि से इस देश में गाय और गोवंश के पशु इतने हैं, जितने संसार के किसी देश में नहीं । समस्त संसार के गोधन का १ बटा ४ अर्थात् लगभग १५,५१,००,००० भारत में हैं । इस संख्या को देखते हुए यहाँ दूध-घी की विपुलता होनी चाहिए । परन्तु, बात ऐसी नहीं है । दूध की दृष्टि से भारत सब से अधिक दरिद्र है । जहाँ दूसरे देशों में गायें एक-एक बियान में २००० पौंड से लेकर ७००० पौंड तक दूध देती हैं, वहाँ हमारे यहाँ मुश्किल से गाय के दूध का औसत ४१३ पौंड साल भर का पड़ता है । और इस कारण प्रत्येक व्यक्ति को मिलनेवाले दूध का औसत भी संसार में सब से कम है ।

आज तुलनात्मक रूप में इस देश में दूध की हालत यह है:—

ऑस्ट्रेलिया में प्रतिव्यक्ति	२२	छटाक दूध मिलता है ।
कैनाडा में	२८	,,
डेन्मार्क में	२०	,,
संयुक्तराज्य	१७	,,
अमेरिका में	१७	,,
और भारत में केवल	२	छटाक

फिर, इसमें भैंस और बकरी का दूध भी शामिल है । हालत कितनी सोचनीय है !

सन् १९५१ की पशुगणना के अनुसार भारत में नीचे लिखे अनुसार पशु थे (संख्या हज़ारों में है, अर्थात् प्रत्येक संख्या के ऊपर तीन शून्य और लगाकर पढ़ें।)

पशु का नाम	१९४०	१९४५	१९५१
गोवंश	१३७९२९	१३६७३९	१५५०९९
भैंसें	४०१२५	४०७३२	४३३५१
भेड़ें	४१,५०६	३७७२८	३८८२९
बकरी	५०२५३	४६३०२	४७०७७
घोड़े, टट्टू	१७८०	१३९८	१५१४
खच्चर	५०	४५	६०
गधे	११८६	११३१	१२३९
ऊँट	६१७	९५६	६२९
सूअर	२७०२	३७०९	४४२०
कुल	२७,६१,४८	२६,८४,४०	२९,२२,१८

संख्या इतनी बड़ी हैं। परन्तु, पशुओं की हालत बहुत ही ख़राब है। और गाय की तो सबसे अधिक ख़राब है। चूँकि गाय तो पूजनीय है, अतः, उसकी रक्षा करना और पालन एक आवश्यक धर्म है. भले ही, उतने साधन पास हों या नहीं। परिणाम यह होता है कि गो-रक्षा और गो-पालन का अर्थ हो जाता है गाय के शरीर और प्राणों को जिस किसी तरह बने एक साथ बनाए रखना। उसे केवलमात्र मरने से बचाए रखना, यह ग़ोरक्षा न गाय की सेवा है, न मनुष्य की और न धर्म की। वह न दूध पर्याप्त दे सकती है और न अच्छे बलिष्ठ बछड़े। ऐसी गाय समाज के ऊपर एक भार बन जाती है। मनुष्य के दिल में उसके लिए चाहे कितनी ही पूजा की भावना हो, वह अपनी आर्थिक विवशता के कारण ऐसी गाय का पालन अधिक अर्से तक नहीं कर सकता। आज हमारी आर्थिक हालत इतनी शोचनीय है कि गाय तो दूर, बेकार भाई का बोझ भी हम अधिक नहीं उठा सकते। मतलब यह कि आज की हालत में हम व्यवहारतः गाय को अधिक समय तक नहीं जिला सकते। वध से बचाकर भी नहीं। जो लोग ऐसी गाय को खिला नहीं सकते, वे उसे अपने घर में रखना भी पसन्द नहीं करते। वे उसे खुली छोड़ देते हैं। किन्तु, ऐसी गायें भी ज़िन्दा तो रहना ही चाहती हैं। इसलिए, वे फ़सलें ख़राब करने लगती हैं। भारत के कई हिस्सों में ऐसे आवारा पशुओं की संख्या इतनी बढ़ गई है कि लोग परेशान हैं।

यह हालत तमाम गायों की और सब प्रान्तों की नहीं है। किन्तु, अधिकांश रूप में यह ज़रूर एक दुःखदायी सत्य है। तब क्या इसका अर्थ यह है कि हम गाय-

के विषय में आशा छोड़ दें और उसे यों ही मरती रहने दें या उसका वध होने दें ? नहीं, हमारी संस्कृति इस विकल्प को बरदाश्त नहीं कर सकती। अतः, हमें गो-रक्षा और गो-पालन का एक ऐसा हल ढूँढ़ निकालना होगा, जो गाय को अधिक उपयोगी बना सके और गो-पालन को आर्थिक दृष्टि से लाभदायक बना दे।

उपाय योजना—

गोरक्षा और गोसंवर्धन आज कोई एकदम नया विषय नहीं है। इस देश में और बाहर भी इसके असंख्य प्रयोग हुए हैं और आज भी होते रहते हैं। इनके फलस्वरूप गो-पालन के विशेषज्ञ जिस नतीजे पर पहुँचे हैं, उसपर हम विचार करें।

भिन्न-भिन्न गोवंश—

हमारे देश में अनेक गोवंश हैं। कुछ ऐसे हैं, जिनकी गायें ख़ूब दूध देती हैं। किन्तु, उनके बछड़े बलिष्ठ नहीं होते। कुछ ऐसे हैं, जिनकी गायें दूध भी काफ़ी देती हैं और उनके बछड़े भी अच्छे बलवान् होते हैं। और कुछ ऐसी हैं, जो दूध अधिक नहीं देतीं, परन्तु उनके बछड़े बलवान् बैल होते हैं। किन्तु, अधिकांश गायें ऐसी बिगड़ गई हैं कि वे न तो दूध काफ़ी देती हैं और न अच्छे बछड़े।

उत्तम दूध वाले गोवंशों का नाश—

देश में जो बहुत अच्छे गोवंश माने जाते रहे हैं, उनका, दुर्भाग्यवश, बम्बई, कलकत्ता-जैसे बड़े-बड़े शहरों में बुरी तरह से संहार हो गया है। वहाँ के धनवान् व्यापारी और 'डेरी' वाले मनमानी क़ीमतें देकर अच्छी से अच्छी गायें शहरों में ले जाते रहे। किन्तु, इन गायों का वंश नहीं बढ़ सका। शहरों में इनके योग्य साँड़ नहीं होते। और सूखी हो जाने पर उनका पालन आर्थिक दृष्टि से लाभदायक नहीं रहने के कारण वे बेच दी जाती रहीं और बिकने पर वे सीधी क़त्लगाहों में पहुँच जाती रहीं। गोवंश का यह संहार लगातार वर्षों से चला आता रहा, जिसके कारण देश का अच्छे से अच्छा गोधन उठ गया। जो गाय गई, वह मुड़कर वापस नहीं आई। अब कहीं कुछ ही अर्से से हमारी आँखें खुली हैं और इसकी उपाय योजना में गोप्रेमी लगे हैं। यह यत्न किया जा रहा है कि गोवध बन्द हो और शहरों में गायें जाने ही न पावें। वहाँ केवल दूध जाया करे।

गाय और भैंस—

गाय के विकास में एक बड़ा बाधक कारण भैंस है। लोगों में यह एक मिथ्या धारणा बन गई है कि भैंस गाय की अपेक्षा दूध अधिक देती है, उसका दूध अधिक अच्छा होता है और वह घी भी अधिक देती है। इसलिए, लोग दूध की दृष्टि से भैंस पालने लगे हैं और चूँकि खेती बिना बैलों के हो नहीं सकती, इसलिए बछड़ों के लिए गाय पालते हैं। किन्तु, प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया है कि भैंस के बारे में

यह धारणा ग़लत है कि वह गाय की अपेक्षा दूध अधिक मात्रा में देती है और गाय से उसका दूध अच्छा है। पुराने और नए सभी जानकार मान गए हैं कि भैंस की अपेक्षा दूध देने की शक्ति गाय ही में अधिक है। इसके अतिरिक्त गाय का दूध गुण में तो सर्वश्रेष्ठ होता ही है। इसलिए, संसार के प्रायः सभी देशों में गाय ही का पालन होता है तथा गाय ही के दूध का सेवन होता है। गाय घी ज़रूर कम देती है, परन्तु, उसका घी अत्यन्त स्वादिष्ट और गुणकारी होता है। पुराने और नए आयु:-शास्त्र से इसके समर्थन में असंख्य प्रमाण मिल सकते हैं। मतलब यह कि आज गाय की जो हालत है, वह इसलिए नहीं कि वह जीवनसंघर्ष में भैंस से कम उपयोगी है। वास्तव में उसकी दुरवस्था का कारण हमारी लापरवाही और अज्ञान है। भैंस की जितनी सँभाल की जाती है, उसकी जैसी खिलाई होती है, उतनी यदि गाय की भी हो, तो वह निःसन्देह भैंस की अपेक्षा अपने-आपको अधिक उपयोगी सिद्ध कर सकती है। हाँ, एक बात ज़रूर है। हमने बहुत लम्बे अर्से से अभी तक उसकी जो उपेक्षा की है, उसके प्रायश्चित-स्वरूप कुछ समय तक गाय के पालन और संवर्धन पर हमें अपनी सारी शक्ति और पूरा ध्यान केन्द्रित कर देना होगा। यदि हम ऐसा करें, तो गाय की एक नई नस्ल ऐसी उत्पन्न की जा सकती है, जो दोनों दृष्टियों से उपयोगी होगी, अर्थात् दूध भी अधिक देगी और बछड़े भी उत्तम देगी। परन्तु, यह एक दिन का काम नहीं है। धीरज और शान्ति के साथ इसके प्रयोग करने होंगे। यह प्रयोग भी यदि केवल सरकार करे, तो काम नहीं चलेगा। सरकार मार्ग-दर्शन कर सकती है, नमूने के तौर पर कुछ केन्द्र भी चलाकर बता सकती है, परन्तु, व्यापक सिद्धि के लिए तो जनता को, किसानों को और गोपालों को सजीव दिलचस्पी लेकर इन प्रयोगों का दायित्व उठाकर सरकार के साथ सहयोग करना होगा।

अब गो-पालन की केवल अंध भावना से काम नहीं चलेगा। गो-पालन को हर प्रकार से प्रोत्साहन देकर इस प्रवृत्ति का संचालन व्यावहारिक तथा व्यावसायिक तौर पर करना होगा। एक उदाहरण लीजिए। वही उद्योग और कारख़ाना चल सकता है, जिसके माल की बिक्री अच्छी हो। हम गाय की पूजा तो करते हैं, परन्तु, गाय-के दूध-घी का आग्रह हममें नहीं है। दूध-घी हम भैंस का माँगते हैं। तब क्यों कोई व्यावसायिक आदमी—ग्वाला या डेरी वाला—गायें रखेगा? गाँवों में रहनेवाले बेकारों को काम देने के लिए खादी या ग्रामोद्योग हैं। यदि हम इन चीज़ों को खरीदेंगे, तो ये उद्योग बढ़ेंगे और बेकारों को काम भी मिलेगा। जितने भी प्रकार से बेकारी मिट सकती है, वे सब उपाय काम में लाने होंगे। केवल चिल्लाहट मचाने से कुछ नहीं होगा। समाज में अशान्तिमात्र बढ़ेगी। यही बात गाय की भी है। उसको बचाना और बढ़ाना है, तो उसीके दूध-घी का आग्रह रखना होगा। वर्धा के गोसेवा-

संघ ने इस बात पर अपना ध्यान केन्द्रित किया, तो उसे काफ़ी लाभ हुआ । उसने एक-एक सेर दूध देने वाली गायों को हाथ में लिया । उनके लिए अच्छे साँड़ ढूँढ़े । उनकी खिलाई-पिलाई की उचित व्यवस्था की, तो आज उन्हीं गायों की सन्तति ७।७ सेर दूध देने लग गई । इसी प्रकार अपने दुग्धालय में यह आग्रह रखा कि दूध उसी किसान या ग्वाले के यहाँ से नक़द दाम देकर लेंगे, जिसके यहाँ केवल गायें होंगी । इसका फल यह हुआ कि आसपास के सब किसानों-ग्वालों के यहाँ गायें ही गायें हो गईं । गायों का दूध बढ़ गया, उनका वंश सुधर गया और ग्वालों का दारिद्र्य मिट गया । भैंसे भी कम हो गईं ।

नस्ल-सुधार—

गाय की हालत सुधारने की दिशा में सबसे पहली बात नस्ल-सुधार है। पता नहीं, कब से, इस विषय में बड़ी लापरवाही बरती गई है । अच्छे साँड़ पर्याप्त संख्या में उपलब्ध नहीं हैं । जहाँ-तहाँ ख़राब प्रकार के साँड़ ख़राब प्रजा पैदा करके पशु-संख्या में वृद्धि कर रहे हैं । इसे हमें रोकना होगा । देश के अच्छे और मुख्य गोवंशों का निर्णय करके उन्हींको बढ़ाना और ख़राब वंश की प्रजा को बढ़ने से रोकना ज़रूरी है । यह काम शासन ने अपने हाथ में ले लिया है । देश के उत्तम गोवंशों का निर्णय करके उन वंशों के साँड़ ढूँढ़-ढूँढ़ कर उन्हींकी वंशवृद्धि उस क्षेत्र में हो, इसके हेतु केन्द्र स्थापित किए जा रहे हैं । और उस क्षेत्र के ख़राब साँड़ों को बधिया किया जा रहा है । पहली पंच-वर्षीय योजना में सारे देश में ऐसे ६०० क़ेन्द्र स्थापित करने का संकल्प था । उसमें से अबतक ४०० से ऊपर केन्द्र स्थापित किए जा चुके हैं । उदाहरणार्थ, मध्यभारत में इसके लिए तीन गोवंश चुने गए हैं । उत्तरी ज़िलों के लिए हरियाना, मालवा के लिए मालवी और नेमाड़ के लिए नेमाड़ी ।

यह काम हम वेग से करना चाहते हैं । परन्तु, इतने साँड़ आज उपलब्ध नहीं हैं । अतः, अच्छे साँड़ों के वीर्य का संग्रह करके कृत्रिम रीति से गायों का गर्भाधान करनेवाले केन्द्र भी स्थापित किए गए हैं । जहाँ-तहाँ इस पद्धति से उत्पन्न बछड़े उछलते-कूदते दिखाई भी देने लगे हैं । फ्हली पंचवर्षीय योजना में ऐसे १५० केन्द्र काम करने लगेंगे । पर्याप्त दूध और बलिष्ट बछड़े नहीं देनेवाले गोवंशों की वृद्धि को रोकना भी आवश्यक है । उसका एक उपाय तो यह है कि इस प्रकार के जितने साँड़ हों, उनको बधिया करके उनसे काम लिया जाय और गायों को पहाड़ों में या दूर जंगलों में ऐसी जगह रख दिया जाय, जहाँ की घास का हम उपयोग नहीं कर पाते । इस प्रवृत्ति तथा कार्यक्रम का नाम "गोसदन" है । इन गोसदनों में नर पशु नहीं रखे जाते । फलतः, अपने आप बेकार पशुओं की संख्या क्रमशः कम होती जाती है । इस तरह कालान्तर में केवल अच्छे वंश बच जायँगे ।

उत्तम गोवंशों की बात छोड़ दें, तो आज गाय का पालना लाभदायक व्यवसाय नहीं रह गया है। इसीलिए, गायें मारी जाती हैं। आज गाय के केवल दो उपयोग हो सकते हैं, दूध और बछड़े देना। जो गायें न अच्छे बछड़े देती हैं और न काफ़ी दूध, वे या तो क़साई के हाथों मारी जायँगी या अन्ध गो-भक्त उन्हें भूखी रखकर तिल-तिल करके मारेंगे। बेकार मनुष्य या बेकार प्राणी को जीवन-भर कौन खिलानेवाला है? हाँ, जिस गाय या बैल ने जीवन-भर मनुष्य की सेवा की है, उसके वृद्ध या पंगु हो जाने पर कृतज्ञतापूर्वक उसका पालन करना मनुष्य का धर्म है। परन्तु, जो भर-जवानी से बेकार हो, उसे कौन और कब तक पालेगा? ऐसी गायों या पशुओं को बचाना है, तो उनके शरीर-बल का उपयोग हमें करना ही होगा। केवल गाय होने के कारण यदि हम उनको छोड़ देंगे, तो वह गोरक्षा नहीं, गोहत्या कही जायगी। क्या मनुष्यों में स्त्रियों से हम कोई काम नहीं लेते? तब गायों के बारे में यदि भावनावश हम अन्ध बन जायँगे, तो हम गाय को नहीं बचा सकेंगे। वह मरेगी ही—भूखों मरेगी या खाने के लिए मारी जावेगी। गाय से या साँड़ से भी काम लेना हमें अधर्म लगता है। परन्तु, इस भावना को हमें बदलना होगा। काम करने से मनुष्य या प्राणी कमज़ोर नहीं, बलवान् ही बनता है। हाँ, ख़ुराक अच्छी हो। काम होगा, तो ख़ुराक भी मिलेगी। मैसोर राज्य में गायों से काम लेने की प्रथा है, तो वहाँ गोरक्षा स्वावलम्बी बन गई है। जहाँ काम लिया जाना बुरा माना जाता है, वहाँ की गायें कटेंगी ही। इसलिए, गो-पालन को एक लाभदायक व्यवसाय बनाने की तरफ़ हमें अपनी सारी शक्ति लगा देनी है। तभी हम गाय को बचा सकेंगे। बेकार पशु उपयोगी पशुओं और मनुष्यों की ख़ुराक में भी हिस्सा बँटावेंगे, तो मनुष्य भी दुर्बल होंगे। इसलिए, यदि गाय और मनुष्य दोनों को बचाना है, तो बेकार पशुओं की वृद्धि को रोकना ही पड़ेगा। गोवध के केवल दो विकल्प हैं—गाय को काम देना और खराब गायों की वंशवृद्धि को रोकना—गोसदन। शासन ने जगह-जगह गो-सदन क़ायम किए हैं। परन्तु, वहाँ लोग अपने बेकार पशुओं को नहीं भेज रहे हैं, ऐसा अनुभव है।

गो-शालाएँ—

आज देश के अन्दर लगभग ३००० गो-शालाएँ हैं। इनकी स्थापना प्रायः पींजरापोल के रूप ही में की गई थी। लँगड़ी, अन्धी, पंगु गायों को कष्ट न हो तथा आवारा पशु फ़सलों की बरबादी न करें इस हेतु से ये गो-शालाएँ बनी थीं। इस उपयोगी संस्था का आज भी उपयोग हो सकता है। जिनके पास अच्छे साधन हैं, उन गो-शालाओं को आदर्श दुग्धालय या गो-संवर्धन-केन्द्र बनाया जा सकता है और जिनके पास अच्छे साधन नहीं हैं, उन्हें 'गो-सदनों' के सहायक केन्द्र (Receiving Centres) बनाया जा सकता है।

परन्तु, गो-शालाएँ तभी सफल होंगी, जब इनका संचालन धर्मादाय की वृत्ति (जिसका दूसरा अर्थ है लापरवाही) से नहीं बल्कि व्यावसायिक (व्यक्तिगत लाभ नहीं, सामाजिक लाभ की) दृष्टि से किया जाने लगेगा।

प्रारम्भ करने की दृष्टि से इस कार्य के अन्दर गाय की रक्षा और विकास द्वारा राष्ट्र की सेवा करने के लिए बहुत अवकाश है। सातत्ययुक्त दृढ़ भावना-भरे उद्योग ही से राष्ट्र की उन्नति हो सकती है। निरी चिल्लाहट से सस्ती लोकप्रियता भले ही मिल जाय, परन्तु, राष्ट्र की वास्तविक सेवा नहीं हो सकती। राष्ट्र की जो सचमुच सेवा करना चाहते हैं, उनका कर्त्तव्य है कि जहाँ भूल हो रही हो, त्रुटि हो, किसी प्रकार की कमी हो, उसको ठीक करने में लग जावें। काम बहुत बड़ा है और साथ ही ऐसा भी है, जिसका परिणाम तुरन्त नज़र नहीं आ सकता। सच्चे सेवकों की कमी भी है ही। अतः, यदि उसकी पूर्त्ति में गो-भक्त लगेंगे, तो गाय की और राष्ट्र की अधिक सेवा होगी।

कुछ अन्य फुटकर बातें—

सरकार की जो ज़िम्मेदारियाँ और कर्त्तव्य हैं, उन्हें तो शासन को पूरा करना ही चाहिए। परन्तु, गाय की रक्षा और संवर्धन मुख्यतः किसानों और ग्वालों का विषय है। अतः, उनको सही दृष्टि और समुचित मार्गदर्शन मिलते रहना आवश्यक है। बेकार पशुओं को गो-सदनों पर अगर भेज दिया जायगा, तो किसानों का बोझ काफ़ी कम हो सकता है। फिर वे बचे हुए अच्छे पशुओं की ओर अधिक ध्यान दे सकेंगे। दूध बढ़ाने और गाय को हृष्टपुष्ट करने के लिए हरी घास भी बहुत आवश्यक है। प्रत्येक किसान, जिसके पास कुआँ है, कुछ हरी घास भी ज़रूर पैदा करे। या पंचायतें योजना बनाकर व्यवस्था करें कि गाँव में कुछ किसान केवल हरी घास ही पैदा करें। इससे सारे गाँव को लाभ हो सकता है।

दूसरा महत्त्वपूर्ण प्रश्न है चरनोई का। जब हम गाँवों में जाते हैं, तब यही बात लोग पेश करते हैं। इस प्रश्न को भी ठीक तरह से समझ लेना चाहिए। देश की आबादी लगातार बढ़ रही है। इसके साथ ज़मीन का बोझ भी बढ़ रहा है। जमीन की माँग बहुत बढ़ गई है। एक-एक इंच ज़मीन को गाँववालों ने हड़प लिया है और वही अब यह भी शिकायत कर रहे हैं कि गायों के लिए चरनोई की ज़मीन चाहिए। अब ज़मीन आवे कहाँ से? जंगलात तो सीमा से अधिक कट चुके हैं, अतः गाँव ही में से बचाकर ज़मीन निकालनी होगी। अब पंचायतों को अपने गाँव की व्यवस्था करने का अधिकार–ग्रामराज्य–मिल ही गया है। वे खुद अपने-अपने गाँव के लिए गोचर-भूमि का प्रबन्ध करें और यदि क़ानून से मदद मिल सकती है, तो क़ानून बनवा लें। गाँव में गोचर ज़मीन निकाल लेना कठिन नहीं होना चाहिए। खेती के तरीक़ों में

सुधार कर लें, तो कम ज़मीन में से भी चावल की भाँति दूसरी पैदावार भी अधिक की जा सकती है।

घास का अपव्यय—

उदाहरणार्थ मध्यभारत को ले लें। इस राज्य में घास-कड़बी का अपव्यय भी बहुत होता है। अगर इसमें सुधार हो जाय, तो इतनी ही घास-कड़बी जानवरों का अधिक अच्छी तरह और अधिक संख्या में पोषण कर सकती हैं। घास-कड़बी की कुट्टी करके खिलाई जाय, तो अपव्यय कम होगा। इसी प्रकार जहाँ इसका पूरा उपयोग नहीं होता, वहाँ से घास-कड़बी उन हिस्सों में भेज दी जाय, जहाँ वह कम होती है या घास-कड़बी की बहुतायत वाले हिस्से पशु-पालन के केन्द्र बना दिए जावें। कम घास वाले भागों के पशु वहाँ भेज दिए जावें।

गायं की नस्ल सुधारने के बारे में एक भ्रान्त धारणा यह फैली हुई है कि अधिक दूध देने वाली गायें या साँड़ दूसरे देशों या प्रान्तों से लाकर उनका वंश बढ़ावें। ये प्रयोग देश के अनेक राजा-महाराजाओं और अमीरों ने करके देख लिए। परन्तु, उनमें सफलता नहीं मिल सकी है। भिन्न प्रकार के जलवायु और परिस्थितियों-में आने पर उन पशुओं की हालत ख़राब हो गई है। वे नहीं पनप सके। फिर ऐसे प्रयोग इने-गिने साधनवान् लोग ही कर सकते हैं। जनसाधारण का लाभ तो इसीमें है कि अपने ही प्रान्त की आबोहवा में पैदा हुई नस्ल के अन्दर से अच्छे से अच्छे जानवर लेकर उन्हींकी प्रजा को बढ़ावें।

संक्षेप में, गोरक्षा, और गोसंवर्धन का प्रश्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसके लिए केवल चिल्लाहट मचाने से काम नहीं चलेगा, बल्कि सारे प्रश्न को ठीक तरह-से समझकर जब योजनापूर्वक इस महान् कार्य में सारा राष्ट्र लग जावेगा, तभी काम चलेगा।

* * *

★ गीत मेरे प्यार के ★

— श्री राजेन्द्रकिशोर —

गीत बहुत लिखे मैंने प्यार के,—
फूल के, वसंत के, बहार के,
कहो, याद तुम्हें गीत कौन है ?
कहो, क्यों सितार मूक-मौन है ?

गीत, जिन्हें
साथियों ने सुना, कहा—स्वर्ग है,
—सृष्टि का नवीन एक सर्ग है,
—गीत नहीं, फूल हैं बहार के,
—क्षण मधुर किसी प्रथम सिंगार के;
तुम कहो, सुहाग की तुम्हें कसम,
गीत मेरे स्वर्ग से कभी न कम,
किन्तु, क्यों तुम्हें न स्वर्ग मिल सका ?
क्यों बँधे अधर, न हास खिल सका ?
गीत ये सभी तुम्हारे प्यार के—
फूल के, वसंत के, बहार के,
पर, तुम्हें न पल मिला सिंगार का,
एक अधखिला सुमन बहार का !

गुनगुना सकीं जिन्हें न दो घड़ी,
मौत की सफ़ेद सेज पर पड़ी,
भूख की अखंड ज्वाल में जली,
वस्त्रहीन भोर की बनी कली;
गीत मेरे कौन काम आ सके,
जब कि दो अधर न गुनगुना सके ?

मध्यदेश और उसकी बोली

— श्री हरिहरनिवास द्विवेदी —

लगभग तीस वर्ष पूर्व, नागरीप्रचारिणी पत्रिका के भाग ४, अंक १ में श्री धीरेन्द्र वर्मा का एक लेख "मध्यदेश का विकास"—शीर्षक प्रकाशित हुआ था। उसमें ऐतरेय ब्राह्मण से लेकर अलबेरूनी तक, "मध्यदेश से भारत के जिस भू-भाग का आशय समझा जाता था, उसका विवेचन किया गया है। मध्यदेश की कल्पना में समय-समय पर अन्तर आता रहा है, यह स्थापना भी उक्त लेख में की गई है। उस लेख के अन्त में लिखा गया है कि "विदेशियों के आधिपत्य के कारण 'मध्यदेश' शब्द को यद्यपि मध्यदेश वालों ने बिलकुल भुला दिया है, किन्तु, उसका पुराना रूप पूर्णतया लुप्त नहीं हो गया। पिता हिमालय ने उसको भी शरण दी है। काठमाँडू के बाज़ार में यदि कोई हिन्दुस्तानी निकलता हो, तो नेपाली लोग अब भी कहते हैं कि मदेशिया जा रहा है अर्थात् मध्यदेशीय या मध्यदेश का आदमी जा रहा है"। इस स्थापना को डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने सन् १९५३ में भी दोहराया है (देखिए हिन्दी-भाषा का इतिहास, चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ ४४)। डॉ० हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने 'हिन्दी साहित्य' की प्रस्तावना में पुराने ज़माने में हिन्दी-भाषी प्रदेश के 'मध्यदेश' कहे जाने के कारण समस्त हिन्दी-भाषा-भाषी क्षेत्र ही को मध्यदेश कहना उचित समझा। वह लिखते हैं कि 'जिस विशाल भू-भाग को आज हिन्दी-भाषा-भाषी क्षेत्र कहा जाता है, उसका कोई एक नाम खोजना कठिन है। परन्तु, इसके मुख्य भाग को पुराने ज़माने ही से 'मध्य-देश' कहते रहे हैं। यद्यपि वर्तमान भारतवर्ष के रूप को देखते हुए इस विस्तीर्ण भू-भाग को 'मध्यदेश' कहना ठीक नहीं मालूम होता, तथापि, यह शब्द प्राचीन काल ही से बहुत अधिक परिचित है; इसलिए, इस पुस्तक में हम 'हिन्दी-भाषा-भाषी क्षेत्र' जैसे भारी-भरकम शब्द का सदा व्यवहार न करके 'मध्यदेश' ही का व्यवहार करेंगे।" (हिन्दी-साहित्य, पृष्ठ १)

परन्तु, न तो यह सत्य है कि अलबेरूनी के पश्चात् मध्यदेश वालों ने मध्यदेश शब्द को भुला दिया और न समस्त हिन्दी-भाषा-भाषी क्षेत्र को मध्यदेश कहना समीचीन

है। मध्यदेश से मध्य-काल में क्या आशय था, इसकी परम्परा हिन्दी-साहित्य में मौजूद है और उसे समस्त हिन्दी-भाषा-भाषी क्षेत्र का समानार्थक बना देने में उस परम्परा को सदा के लिए भुला देने का आग्रह है।

यह अवश्य है कि ऐतरेय ब्राह्मण से मध्य-काल तक मध्यदेश की कल्पनाएँ बदलती रही हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में जिस मध्यदेश का उल्लेख है, उसमें कुरु, पंचाल, वश और उशीनरों के प्रदेश आते हैं। अतः, पश्चिम में प्रायः कुरुक्षेत्र से लेकर पूर्व में फ़र्रुखाबाद के निकट तक और उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में प्रायः चम्बल नदी तक का आर्यावर्त देश ऐतरेय ब्राह्मण के समय में मध्यदेश गिना जाता था।

मनुस्मृति में मध्यदेश की सीमा हिमालय और विन्ध्य के मध्य में और विनशन से पूर्व और प्रयाग से पश्चिम में बतलाई गई है। विनयपिटक और वराहमिहिर की बृहत्संहिता में भी मध्यदेश की सीमाएँ दी हुई हैं। फ़ाह्यान मथुरा से दक्षिण के प्रदेश को मध्यदेश कहता है और अलबेरूनी कन्नौज के चारों ओर के भाग को।

अलबेरूनी के पश्चात् मध्यदेश का स्मरण मध्यदेश के महाकवि केशवदास ने किया है। कविप्रिया (ई० सन् १६०१) के सातवें प्रभाव में केशव ने लिखा है:—

आछे आछे असन, बसन, बस, बासु, पशु,
दान सनमान, मान, बाहन, बखानिये।
लोग, भोग, योग, भाग, बाग, राग, रूपयुत,
भूषननि भूषित सुभाषा सुख जानिये।
सातो पुरी तीरथ सरित सब गंगादिक
केशोदास पूरन पुरान गुण जानिये।
गोपाचल ऐसे गढ़, राजा रामसिंह जू से,
देसन की मणि यह मध्यदेश मानिये ॥३॥

अतएव, केशवदास ने न केवल मध्यदेश का स्मरण किया है, वरन् उसे देशों की मणि कहा है। केशव के इस कवित्त में मध्यदेश की चतुस्सीमा नहीं दी गई, केवल उसके अन्तर्गत ओरछा के राजा और गोपाचलगढ़ का होना लिखा गया है।

मध्यकाल के मध्यदेश की भौगोलिक सीमा का निर्देश केशवदास के पूर्व लिखे गए 'मानकुतूहल' (ई० सन् १५००) में किया गया, जिसके अनुवादक फ़क़ीरुल्ला सैफ़ख़ाँ ने ईसवी सन् १६६६ में लिखा कि मानसिंह द्वारा प्रवर्तित ध्रुपद राग के पद मध्यदेश की देशी भाषा में लिखे जाते थे। इस सुदेश की सीमाओं का

वर्णन करते हुए वह लिखता है—"सुदेश से हमारा मतलब है ग्वालियर से, जो आगरा के राज्य का केन्द्र है और जिसके उत्तर में मथुरा तक, पूर्व में उन्नाव तक, दक्षिण में ऊँज तक तथा पश्चिम में बाराँ तक है। भारतवर्ष में इतने बीच की भाषा सबसे अच्छी है। यह खण्ड भारत में उसी प्रकार है, जिस प्रकार ईरान में शीराज़।" (देखिए 'मानसिंह और मानकुतूहल' पृष्ठ ९१)

ईसवी सन् १६४३ में मध्यदेश के एक निवासी बनारसीदास ने अपना जीवन-चरित्र अर्धकथानक के नाम से लिखा। उसमें वह लिखता है:—

"याही भरत सुखेत में, मध्यदेस सुभ ठाँउ।
वसै नगर रोहतगपुर, निकट बिहोली गाँउ" ॥८॥

और साथ ही वह यह भी लिखता है कि उसने अपना यह ग्रन्थ मध्यदेश की बोली में लिखा है:—

"मध्यदेश की बोली बोलि। गर्भित बात कहों जी खोल ॥
भाखों पूरबदसा-चरित्र। सुनहु कानि धरि मेरे मित्र" ॥

मध्यदेश और उसकी भाषा एवं साहित्य की परम्परा को भुला देने से हिन्दी भाषा के इतिहास-निर्माण में अनेक भ्रान्तियाँ उत्पन्न हो गई हैं। मध्यदेश की बोली के विभिन्न रूपों के आज तीन नाम प्रचलित हैं–बुन्देली, ब्रज और राजस्थानी। सबसे पूर्व यह नामकरण ग्रियर्सन ने किया और वह आजतक प्रभावित करता रहा। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने अपने 'हिन्दी-भाषा के इतिहास' में बुन्देली का विवरण देते हुए लिखा है—"मध्यकाल में बुन्देलखण्ड साहित्य का प्रसिद्ध केन्द्र रहा है, किन्तु यहाँ होने वाले कवियों ने भी ब्रज भाषा ही में कविता की है, यद्यपि, इनकी भाषा पर बुन्देली बोली का प्रभाव अधिक पाया जाता है। बुन्देली बोली और ब्रज भाषा-मे बहुत साम्य है। सच तो यह है कि ब्रज, कन्नौजी तथा बुन्देली एक ही बोली के तीन प्रादेशिक रूप मात्र हैं।" (पृष्ठ ६४)

बुन्देली, ब्रज अथवा कन्नौजी नाम हिन्दी साहित्य की मध्यकालीन परम्परा-के नहीं हैं। ब्रज-भाषा नाम बहुत पीछे का है, जब कृष्ण-काव्य का बहुत अधिक निर्माण हो चुका था और ब्रज-भूमि तथा ब्रजराज के उपासकों ने ब्रज-बोली को महत्त्व प्रदान किया। बुन्देलखण्ड नाम भी बुन्देल राजाओं के कारण पड़ा और आगे बुन्देलखण्डी बोली नाम आया। वास्तव में मूल नाम मध्यदेशी बोली है, जो पूर्व की अवधी बोली से पृथक्करण प्रकट करने के लिए प्रयुक्त किया गया है। इस मध्यदेशी बोली में प्रचुर साहित्य की रचना हुई है। चौदहवीं, पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी का गेय-पद-साहित्य जो ग्वालियरी हिन्दी को केन्द्र मानकर रचा गया, वह इस मध्यदेशी बोली का प्रमुख उदाहरण है। भाषा-विज्ञान के विद्वानों की कठिनाई

यह है कि मध्यदेशी बोली का सूरदास के पूर्व का साहित्य न तो प्रकाशित हुआ और न उसकी सम्यक् खोज हुई। कबीर की अटपटी वाणी और सूर की प्रांजल भाषा के बीच की कड़ी यही मध्यदेशी बोली का साहित्य है, जो अधिकांश में गेय था। अतएव, यदि मध्यदेशी बोली के अस्तित्व को मानकर हिन्दी-भाषा के विकास का विवेचन किया जाय, तो फिर इस प्रकार के कथन न करने पड़ेंगे, जैसे निम्न उदाहरण में किए गए हैं:—

"सत्रहवीं तथा अठारहवीं शताब्दी में प्रायः हिन्दी-साहित्य ब्रज-भाषा में लिखा गया है। ब्रज-भाषा का रूप दिन-दिन साहित्यिक, परिष्कृत तथा सुसंस्कृत होता चला गया है। बिहारी और सूरदास की भाषा में बहुत भेद है। बुन्देलखण्ड तथा राजस्थान के देशी राज्यों से सम्पर्क में आने के कारण इस काल के बहुत से कवियो की भाषा में जहाँ-तहाँ बुन्देली तथा राजस्थानी बोलियों का प्रभाव आ गया है। उदाहरण के लिए केशवदास (१६०० ई०) की ब्रज-भाषा में बुन्देली प्रयोग बहुत मिलते हैं" (डॉ० धीरेन्द्र वर्मा-कृत हिन्दी-भाषा का इतिहास, पृष्ठ ८१)। इस कथन में व्रज, बुन्देली आदि नामों के जन्म के पूर्व प्रचलित व्यापक नाम मध्यदेशी बोली को भुला दिया गया है। इस महत्त्वपूर्ण कड़ी के छूट जाने के कारण पहले तो केशवदास की भाषा को ब्रज-भाषा मान लिया गया और फिर उस भाषा में बुन्देली प्रयोग बहुत मिलने का आरोप किया गया है तथा अन्य कवियों की भाषा को व्रज मानकर उसमें जहाँ-तहाँ बुन्देली तथा राजस्थानी बोलियों का प्रभाव बतलाया गया है। बीसवीं शताब्दी के अँग्रेज़ी के विद्वानों द्वारा डाली गई मिथ्या परम्परा के स्थान पर यदि हिन्दी-साहित्य की मध्यकालीन परम्परा को अपनाया जाय तो इस प्रकार के भ्रान्त कथन न किए जा सकेंगे।

वास्तविकता यह है कि शौरसेनी अपभ्रंश से जिस मध्यदेश की बोली का विकास हुआ, वह मध्यदेश की हिन्दी है। उसका विकास तब हो चुका था, जब इस प्रदेश का नाम बुन्देलखण्ड नहीं पड़ा था। तँवरों के समय चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी-में इसका गेय पदों में परिमार्जन हुआ। केशवदास एवं सूरदास ने इसी बोली में रचना की। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी-साहित्य के इतिहास में सूरदास-के पदों के सम्बन्ध में लिखा है—"इन पदों के सम्बन्ध में सबसे पहली बात ध्यान देने की यह है कि चलती हुई ब्रज-भाषा में सबसे पहली साहित्यिक रचना होने पर भी ये इतने सुडौल और परमार्जित हैं—अतः सूरसागर किसी चली आती हुई गीति-काव्य-परम्परा का, चाहे वह मौखिक ही रही हो, पूर्ण विकास-सा प्रतीत होता है" (पृ०१८५)। वास्तव में सूरदास कितने ही प्रतिभाशाली रहे हों, परन्तु, इतने नहीं हो सकते कि एक परिमार्जित भाषा का स्वयं निर्माण कर दें। परन्तु, सूरदास अथवा उनके पूर्व की गीति-

काव्य-परम्परा की भाषा का नाम ब्रज-भाषा नहीं था, यद्यपि आचार्य शुक्ल ने अपने उक्त इतिहास में लिखा है—'पश्चिमी हिन्दी बोलनेवाले सारे प्रदेशों में गीतों की भाषा ब्रज ही थी। दिल्ली के आस-पास के गीत ब्रज-भाषा ही में गाए जाते थे, यह हम अमीर खुसरू (संवत् १३४०) के गीतों में दिखा आए हैं। कबीर (संवत् १५६०) के प्रसंग में कहा जा चुका है कि उनकी साखी की भाषा तो सधुक्कड़ी ही है, पर, पदों की भाषा काव्य में प्रचलित ब्रज-भाषा है" (पृष्ठ १८८)।

मध्यदेश का विस्तार मध्यकाल में उत्तर में मथुरा तक था। इस मध्यदेश के केन्द्र ग्वालियर में मथुरा से विद्वान् आते रहते थे (देखिए 'मानसिंह और मानकुतूहल', पृ० १६१) अतएव, यदि हिन्दी-साहित्य की परम्परा के अनुसार कहा जाय, तो यह कहा जायगा कि मध्यदेश की बोली में प्रचुर साहित्य की रचना हुई। केशव, सूर, बनारसीदास आदि अनेक महाकवियों एवं कवियों ने उस बोली में रचना की। कबीर, मीरां एवं तुलसीदास की अनेक रचनाएँ उक्त बोली में लिखी गईं और आगे चलकर उसमें प्रचुर कृष्ण-काव्य लिखा गया और ब्रज-भूमि एवं ब्रजराज के गुणगान से परिपूर्ण होने के कारण एवं स्थानीय देशज शब्दों का प्रयोग बढ़ जाने के कारण उसके उत्तरी रूप को ब्रज-भाषा कहा जाने लगा और दक्षिणी मध्यदेश की बोली को बुन्देलखण्डी बोली कहा जाने लगा तथा पश्चिमी रूप को राजस्थानी। इस प्रकार मान लेने पर फिर न केशव की भाषा को ब्रज-भाषा कहा जाकर उसमें बुन्देली प्रयोग अधिक होने की कल्पना की जायगी और न पश्चिमी हिन्दी बोलनेवाले सारे प्रदेशों में गीतों की भाषा ब्रज कही जायगी, न खुसरो और कबीर की रचनाओं की भाषा, जन्म और नामकरण के पूर्व, ब्रज-भाषा कही जायगी और न समस्त हिन्दी-भाषा-भाषी क्षेत्र को मध्यदेश संज्ञा दी जा सकेगी।

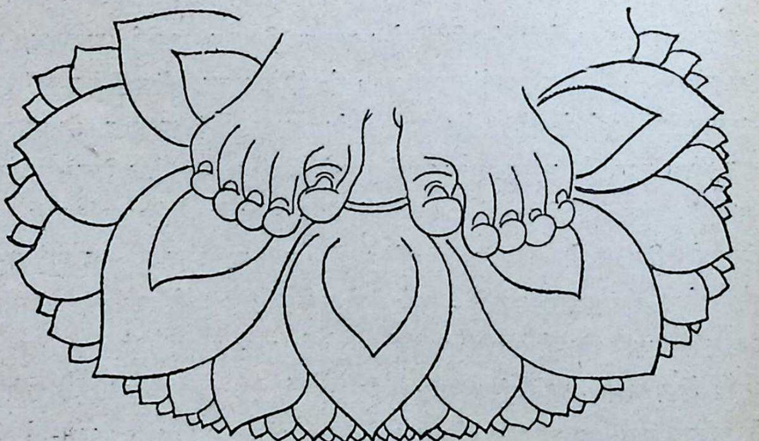

बेकारों की बैठक

— श्री लक्ष्मीनारायण अग्रवाल —

स्थान

एक बड़े नगर का एक साधारण स्वल्पाहार-गृह

समय

संध्या

दृश्य

(स्वल्पाहार-गृह का एक भीतरी कक्ष, जिसमें सामने की ओर एक दरवाज़ा है। दरवाज़े में 'टेपेस्ट्री' का एक पर्दा लटक रहा है। कक्ष में आने-जाने के लिए अकेला यही मार्ग है। कक्ष की दीवारों पर विभिन्न प्रकार के चित्र और कैलेन्डर लटक रहे हैं, जिनमें अधिकांश सिनेमा—अभिनेत्रियों के हैं। कक्ष के बीच में छत से एक 'सीलिंग फ़ैन' लटक रहा है तथा कक्ष में 'ट्यूब लाइट' का प्रकाश हो रहा है।

कक्ष में चार टेबिलें रखी हुई हैं तथा प्रत्येक टेबिल के तीन ओर तीन-तीन कुर्सियाँ रखी हैं (दर्शकों की ओर पीठ करके कोई कुर्सी नहीं है)। टेबिलों पर घंटी, 'एश-ट्रे', फूलदान, कुछ समाचार-पत्र तथा 'स्क्रीन', 'फ़िल्मफ़ेअर' आदि पत्रिकाएँ पड़ी हैं।

पर्दा उठने पर बैरा कमरे की मेज़ें साफ़ करता हुआ दिखाई देता है। बैरा काले रंग का दुबला-पतला अधेड़ आदमी है। चाल थोड़ी लँगड़ी और भाषा बम्बइया है। नंगे सर तथा सफ़ेद बन्द गले का कोट और पेन्ट पहने है। बैरा कमरा साफ़ करते समय सिनेमा के कभी किसी गीत की एक पंक्ति गाता है और कभी किसी दूसरे गीत की। थोड़ी देर बाद एक मेज़ पर से 'फ़िल्मफ़ेअर' उठाकर देखने लगता है। 'फ़िल्मफ़ेअर' में निम्मी के चित्र को लालसा-पूर्ण नेत्रों से देखता है, तभी बातें करते हुए क्रांतिकुमार और रमेश का प्रवेश। क्रांतिकुमार एक सूती सूट पहने है तथा लाल रंग की टाई लगाए हुए

है। रमेश नरगिस-राजकपूर-छाप बुशशर्ट और पेन्ट पहने है। बैरा उन्हें देखते ही सहमकर तुरन्त 'फ़िल्मफ़ेअर' मेज़ पर रख देता है।)

क्रांतिकुमार—रमेश ! मैं पूछता हूँ कि आखिर तुम कब तक पिछड़े रहोगे ? तुम्हारी यह अप्रगतिशीलता अवश्य तुम्हें एक दिन अन्धकार के गहरे गर्त में ढकेल देगी। मैं कहता हूँ कि जो मज़ा कॉलेज की ज़िन्दगी में है, वह शायद किसी फ़िल्म-कम्पनी में भी नहीं मिल सकता। यदि स्वर्ग कहीं ज़मीन पर है, तो यहीं—कॉलेज ही में—है। हमीनस्तो। हमीनस्तो। हमीनस्त !

(बीच में रखी मेज़ के सामनेवाली कुर्सी पर बैठ जाता है)

रमेश—**(कुर्सी पर बैठते हुए)** पर, अपनी ज़िन्दगी तो हाईस्कूल के दलदल ही से नहीं निकल पा रही है। पिछले तीन साल से लगातार परीक्षा में फ़ेल होता चला आ रहा हूँ। मैंने पास होने के सभी नुस्ख़े आज़माए, पर, कोई भी ठीक नहीं उतरा। नक़ल करते पकड़े जाने पर 'रेस्टीकेशन' अलग हो गया है। ऐसा लगता है कि कॉलेज की ज़िन्दगी मेरे लिए एक स्वप्न बन कर ही रह जायगी !

(अफ़सोस से ठंडी साँस भरता है)

क्रांतिकुमार—मुझे तुम्हारे साथ हार्दिक सहानुभूति है रमेश ! **(बैरा से)** बैरा एक ट्रे चाय लाओ !

(बैरा चला जाता है)

(रमेश से) लेकिन, तुम्हारा 'रेस्टीकेशन' केवल एक साल के लिए ही तो हुआ है। यदि तुम प्रत्यत्न करो, तो दो साल बाद मैट्रिक पास करके कॉलेज में प्रवेश प्राप्त कर सकते हो।

रमेश—किन्तु, प्रश्न रुपए का है। पिताजी ने साफ़-साफ़ कह दिया है कि वे मेरे जैसे नालायक पुत्र का बोझ उठाने के लिए तैयार नहीं हैं। मुझे अपना ख़र्च स्वयं चलाना होगा। पिछले दो मास से मैंने अनेक प्रयत्न किए, पर, कहीं कोई काम नहीं मिल सका। नॉन-मैट्रिक का ट्रेडमार्क नौकरी के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा बन गया है।

(बैरा आकर दो गिलास पानी मेज़ पर रख देता है)

क्रांतिकुमार—जेम्स् ! तुमसे चाय लाने को कहा था, पानी नहीं !

जेम्स्—साब ! यहाँ सिर्फ़ पानी फ़्री मिलता है। मालिक बोलता है कि चाय नक़द मिलेगा। पहला हिसाब आपका बहुत बाक़ी है।

क्रांतिकुमार—**(गुस्से में एक रुपया निकालकर फेंक देता है)** यह लो ! और देखो, चाय ठीक बनाकर लाना।

जेम्स—ओ० के० साब !

क्रांतिकुमार—तुम ठीक कहते हो रमेश ! शिक्षा की व्यवस्था ही आज दोषपूर्ण है। और ये परीक्षाएँ-ये डिग्रियाँ एकदम बेकार हैं ! ये बेकारी की समस्या को बढ़ाती हैं—हल नहीं करतीं। (कुछ रुककर) मैं कहता हूँ, रमेश, तुम क्यों नहीं हमारी पार्टी में आ जाते ! खाने-पीने का ख़र्च तुम्हें पार्टी देगी।

रमेश—लेकिन, मैं पार्टी में रहकर करूँगा क्या ?

क्रांतिकुमार—आन्दोलन ! जो पार्टी कहे: वह ! और तुम तो परीक्षा के, वर्त्तमान शिक्षा-व्यवस्था के विरुद्ध भी नारा बुलन्द कर सकते हो, क्योंकि तुम स्वयं उसके शिकार हो।

(शांतिचरण का मौलाना अरमान के साथ बातें करते हुए प्रवेश)

मौलाना अरमान—बड़ा अच्छा हुआ, शांति बाबू, जो आज आपसे मुलाकात हो गई। मैं तो आपके घर जाने वाले था।

क्रांतिकुमार—(उन लोगों को देखकर) ओह ! आप लोग हैं। आइए, तशरीफ़ लाइए !

(शांतिचरण मेज़ के पास एक कुर्सी पर बैठ जाता है। मौलाना साहब भी पास से कुर्सी खींचकर वहीं जम जाते हैं)

शांतिचरण—कहिए, क्या बात है, मौलाना साहब ! मेरे योग्य कोई सेवा हो, तो कहें !

मौलाना अरमान—(ऐनक ज़रा ठीक करके दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए) आपको थोड़ी तकलीफ़ देना चाहता था। बात यह है कि……आजकल शायरी-से पेट नहीं भरता। मैं चाहता था कि आप मुझे कोई नौकरी दिला देते ! मिनिस्टरों से आपकी काफ़ी जान-पहचान है और सुना है कि शिक्षामंत्रीजी तो आपकी बात को कभी नहीं टालते।

(अशोक का सीताराम के साथ प्रवेश। उन्हें देखकर शांतिचरण मौलाना को उत्तर देना भूल जाते हैं)

शांतिचरण--(अशोक से) इधर आइए, अशोक बाबू ! बहुत दिनों से आपके दर्शन नहीं हुए। किस चक्कर में हैं आजकल ?

अशोक—(एक कुर्सी खींचकर शांतिचरण के पास बैठ जाता है) आप भी इधर ही आ जायँ, सीताराम जी ! (सीताराम एक कुर्सी उठाकर ले आते हैं) शांतिचरणजी, आप हैं श्री सीतारामजी—एक सफल व्यापारी !

सीताराम—असफल व्यापारी कहिए, अशोक बाबू ! आजकल व्यापार में फ़ायदा कहाँ होता है !

अशोक—व्यापार में आज भी लाभ है! मैं कहता हूँ कि आप एक हिन्दी की मासिक-पत्रिका निकालिए! आपको भी लाभ होगा और समाज को भी! आप अगर हिम्मत करें, तो पत्रिका के चलाने का उत्तरदायित्व मैं लेने को तैयार हूँ।

सीताराम—पर, अशोक बाबू! इस बेकारी के युग में पत्रिका खरीद कर कौन पढ़ेगा?

(महेश का केशवराव के साथ प्रवेश। उनके पीछे-पीछे एक युवक कृषक है, जो वेश-भूषा से देहाती, पर, मुख-मुद्रा से शिक्षित जान पड़ता है)

महेश—(क्रांतिकुमार को देखकर) आप यहाँ बैठे हैं कॉमरेड! और मैं आपको पार्टी-ऑफ़िस में देखने गया था।

क्रांतिकुमार—आइए महेश जी! (केशवराव की ओर इशारा करके) आपका परिचय?

महेश—आप हैं श्री केशवरावजी! प्रसिद्ध शास्त्रीय संगीतकार। मेरे पड़ोस ही में रहते हैं।

क्रांतिकुमार—बड़ी प्रसन्नता हुई आपसे मिलकर। आइए, बैठिए! (क्रांतिकुमार सबसे परिचय कराता है) आप हैं श्री रमेश! दुर्भाग्यवश इस साल मैट्रिक में तीसरी बार फ़ेल हो गए हैं। आप हैं श्री शांतिचरणजी--प्रसिद्ध काँग्रेसी नेता! आप हैं मौलाना अरमान—उर्दू के प्रसिद्ध शायर! आप हैं श्री अशोक—हिन्दी के प्रसिद्ध कवि, लेखक एवं पत्रकार। आप हैं—

(सीताराम को देखकर रुक जाता है)

सीताराम—(खड़े होकर) मेरा नाम सीताराम है।

(देहाती नवयुवक एक कोने में पड़ी मेज़ के पास जाकर एक शेष रह गई कुर्सी पर बैठ कर घण्टी बजाता है)

क्रांतिकुमार—कहिए, महेश जी! आपकी नौकरी का क्या हुआ?

महेश--होना क्या है क्रांतिकुमार जी! आज का शासन कर्मचारियों के सुख-दुख का कोई ध्यान थोड़े ही रखता है।

(बैरा का प्रवेश। देहाती युवक उसे इशारे से बुलाकर ऑर्डर देता है। बैरा ऑर्डर सुनकर चला जाता है)

क्रांतिकुमार—आप ठीक कहते हैं महेश बाबू! आज की हुकूमत जनता की सही हुकूमत नहीं है। लोकतंत्र के नाम पर यह पूँजीवादी व्यवस्था ही का दूसरा रूप है और इसका नतीजा है—भूख, बेकारी और बर्बादी!

शांतिचरण—आप इस प्रकार शासन को दोष नहीं दे सकते! आखिर शासन है किसका? जनता ही के तो प्रतिनिधि आज शासन चला रहे हैं। आज के युग में जनता का भी उतना ही उत्तरदायित्व है, जितना शासन का!

क्रांतिकुमार—शासन की बात करते हैं आप ? आज जनता के प्रतिनिधियों के नाम पर अधिकतर वही लोग बैठे हैं, जो कल तक बेकार थे । उन बेकार लोगों के पहुँच जाने से बेकारी नहीं फैलेगी तो क्या होगा ?

शांतिचरण—आप नेताओं को बेकार कहते हैं ?

अशोक—मैं तो नेतागीरी ही को बेकारी का दूसरा रूप समझता हूँ । आप ही बताइए, आखिर आप क्या करते हैं ? आपकी जीविका का साधन क्या है ?

रमेश—इन नेताओं के कारण ही अनेक आदमियों की ज़िन्दगी चौपट हो रही है ।

शांतिचरण—और जनाब आप क्या करते हैं ? मज़े में पिताजी की कमाई पर हाथ साफ़ कर रहे हैं । मैं कहता हूँ कि आपके समान अकर्मण्य लोगों ही ने बेकारी को बढ़ाया है ।

(बैरा सामान लेकर आता है । बैरा को देखकर बहस रुक जाती है । बैरा चाय आदि का सामान लेकर देहाती युवक के सामने रख देता है और फिर चला जाता है ।)

मौलाना अरमान—(खड़े होकर) मेरी आप सब लोगों से एक दरख़्वास्त है और वह यह है कि हम लोग इत्तफ़ाक़ से यहाँ इकट्ठे हो गए हैं । ठीक तो यह होगा कि हम एक-दूसरे पर कीचड़ उछालने के बजाय ठंडे दिल से बेकारी की समस्या पर विचार करें—अपनी राय ज़ाहिर करें ।

शांतिचरण—आप ठीक फ़रमाते हैं, मौलाना साहब ! उचित यह होगा कि हम परस्पर विचार-विनिमय करें और साथ में खान-पान का भी दौर चलता रहे ।

(सब 'ठीक है—ठीक है' कहकर समर्थन करते हैं । शांतिचरण सब की ओर से बैरा को बुलाकर ऑर्डर देते हैं ।)

शांतिचरण—बैरा ! देखो सबके लिए चाय और साथ में कुछ खाने के लिए भी ले आओ ।

बैरा—जी साब ! अभी लाता है ।

महेश—(खड़े होकर) भाइयो ! यह बहुत प्रसन्नता की बात है कि आज हम लोग सौभाग्यवश यहाँ एकत्र हुए हैं । आज देश के सामने अनेक समस्याएँ हैं और उनमें सबसे बड़ी समस्या बेरोज़गारी और रोटी की समस्या है । मुझीको देखिए ! मैंने बड़ी मेहनत से ज़िन्दगी-भर सरकार की नौकरी की और आज, जब मैं लगभग बूढ़ा हो गया हूँ, मुझे नौकरी से अलग कर दिया गया है । अब आप बताइए कि इस बुढ़ापे में मैं क्या कर सकात

हूँ । और यह समस्या केवल मेरी समस्या नहीं है । मेरे समान अनेक व्यक्ति, न जाने, कहाँ-कहाँ की ठोकरें खाते फिर रहे होंगे ?

रमेश—(महेश के बैठने के पूर्व ही उठकर खड़ा हो जाता है और बोलने लगता है । मजबूर होकर महेश बैठ जाता है) महेश बाबू ने आपके सामने जो समस्या रखी है, उसका मैं समर्थन करता हूँ । मुझीको देखिए, इस जवानी में मुझे किस तरह निराश होना पड़ रहा है ।

महेश—(चिढ़कर) आपकी बात अलग है मिस्टर रमेश ! आपने अभी मैट्रिक भी पास नहीं किया है और मैं एम० ए० कर चुका हूँ ।

(रमेश उठना चाहता है)

क्रांतिकुमार—(रमेश को रोकते हुए) समस्या नॉन-मैट्रिक और एम० ए० की नहीं है । समस्या बेकारी की है, जो सर्व-साधारण की समस्या है ! इसके सभी शिकार हैं—अनपढ़ और शिक्षित, कलाकार और साहित्यकार, जवान और बूढ़े । सभी पूँजीवादी व्यवस्था के कारण पिस रहे हैं । (क्रांतिकुमार बोलता रहता है और बीच में बैरा खाने का सामान और चाय रख जाता है । खान-पान का दौर चलने लगता है) हमारे इन मौलाना अरमान साहब ही को देखिए—उर्दू के अव्वल दर्जे के शायर होकर भी नौकरी ढूँढ़ते फिरते हैं । मैं कहता हूँ कि क्या इनकी प्रतिभा का उपयोग नहीं किया जा सकता ? इन केशवरावजी को देखिए—उच्चकोटि के गायक होने पर भी यह अपना पेट भरने में असमर्थ हैं । मैं कहता हूँ कि बेकारी की समस्या तभी हल हो सकती है, जब देश में सही अर्थों में जनता की सरकार होगी । रूस और चीन में यह बात सिद्ध हो चुकी है । हमें भी उनके उदाहरण को अपनाना होगा ।

शांतिचरण—क्रांतिकुमार जी ! बात हिन्दुस्तान की हो रही है और आप बीच में रूस और चीन को ले आए । आखिर, इस नक़लपरस्ती को आप क्यों अच्छा समझते हैं ?

क्रांतिकुमार—इसलिए कि असल हमारे पास कुछ नहीं है !

शांतिचरण—यह आप ग़लत कहते हैं । शासन द्वारा प्रारम्भ की गई पंचवर्षीय योजना देश की एक महान् मौलिक योजना है ।

सीताराम—लेकिन, इस योजना में है भी कुछ ! सब कुछ ख़याली पुलाव है । देश का सारा व्यापार चौपट हो रहा है और आप पंचवर्षीय योजना की तारीफ़ करते हैं ।

केशवराव—(थोड़ा झिझकते हुए) मैं कहता हूँ कि आप संगीत की दुर्दशा की ओर

ध्यान क्यों नहीं देते ! राजाओं के ज़माने में क्या क़द्र थी हम लोगों की, किन्तु आज शास्त्रीय संगीतकारों को कोई नहीं पूछता। सब सिनेमा-संगीत के पीछे पागल हैं।

रमेश—लेकिन, जो माधुर्य और आकर्षण सिनेमा के संगीत में है, वह शास्त्रीय संगीत में कहाँ है ? कोरी गलेबाज़ी के बल पर………

केशवराव—(गुस्से में) आप शास्त्रीय संगीत को गलेबाज़ी कहते हैं ! यह कला और कलाकारों का सरासर अपमान है !

(बैरा का बिल लेकर प्रवेश। बैरा को देखकर केशवराव चुप हो जाता है।)

बैरा—कुल पाँच रुपया हुआ है, साब ! मालिक बिल जल्दी चुकाने को बोलता है।

शांतिचरण—ठीक है। तुम जाओ।

(बैरा चला जाता है। बैरा के साथ ही क्रांतिकुमार उठकर जाना चाहता है।)

शांतिचरण—जनाब, आप कहाँ जा रहे हैं। बिल के अपने हिस्से के पैसे तो देते जाइएगा।

क्रांतिकुमार—शांति बाबू, आज की दावत तो आपकी ओर से रही ! आप इतने बड़े 'काँग्रेस के लीडर हैं।

शांतिचरण—लेकिन, मेरे पास तो इस समय सिर्फ़ आठ आने ही हैं।

क्रांतिकुमार—रमेश, कुछ तुम्हारी जेब में है ?

(रमेश कोट की जेब उल्टी करके दिखा देता है। शांतिबाबू अन्य व्यक्तियों की ओर देखते हैं, पर, सब मुँह लटकाकर बैठ जाते हैं। बैरा फिर आकर रुपए माँगता है। कोई उत्तर नहीं देता है। कोई अख़बार पढ़ने लगता है और कोई चाय पीने का बहाना करता है। बैरा यह देखकर कि पैसे मिलने की कोई आशा नहीं है, मालिक को सूचित करने चला जाता है।)

शांतिचरण—क्रांतिकुमार जी ! यह क्या मज़ाक़ है ! खान-पान का प्रस्ताव आपने ही रखा था और अब पैसे देते समय कतरा रहे हैं ?

क्रांतिकुमार—पर, बैरा को ऑर्डर तो आपने ही दिया था। ऑर्डर देने के पहले ही आपको पेमेन्ट के सम्बन्ध में सोच लेना चाहिए था।

शांतिचरण—बस, इसी मुर्दा दिल के बल पर आप इतनी लम्बी-चौड़ी बातें करते हैं।

(क्रांतिकुमार और शांतिबाबू एक दूसरे को सक्रोध देखते हैं। रमेश क्रांतिकुमार का साथ देता है। केशवराव शांतिबाबू का साथ देते हैं। सीताराम और मौलाना साहब बीचबचाव करते हैं तथा अन्य कतरा जाते हैं।)

क्रांतिकुमार—आप कौन-सा तीर मार रहे हैं, जनाब ! खादी की पोशाक में आप जनता को उल्लू बनाते हैं।

शांतिचरण—ज़रा तमीज से बात करें आप !

सीताराम—शांति रखिए, शांतिचरण जी ! बात कुछ चल रही थी और आप कहाँ पहुँच गए।

क्रांतिकुमार—शुरुआत इनकी ओर से हुई है।

मौलाना साहब—क्रांतिकुमार जी ! आप ही ख़ामोश हो जाइएगा। पैसे की कोई बात नहीं है। उधार भी चल सकता है।

(होटल के मालिक अमरसिंह का बैरा के साथ प्रवेश)

अमरसिंह—उधार-सुधार नहीं चलेगा। आप बिल चूकता करने ही पर यहाँ से जा सकते हैं। न जाने कहाँ-कहाँ के बेकार यहाँ आकर इकट्ठे हो जाते हैं।

क्रांतिकुमार—मिस्टर अमरसिंह ! आप इस तरह से हम लोगों की 'इन्सल्ट' नहीं कर सकते हैं।

अमरसिंह—'इन्सल्ट' तो उनकी होती है, जिनकी इज़्ज़त हो। आप तो 'इन्सल्ट प्रूफ़' हैं जनाब !

(क्रांतिकुमार गुस्से में गिलास का पानी अमरसिंह के मुँह पर फेंक देता है। अमरसिंह क्रांतिकुमार का कॉलर पकड़ लेता है। बात बढ़ती देखकर देहाती युवक हरि आकर बीच-बचाव करता है)

हरि—छोड़ दीजिए, अमरसिंहजी ! बिज़िनेस-मैन को यह शोभा नहीं देता। इन लोगों का बिल मैं चुकाए देता हूँ।

(जेब से पाँच रुपए का नोट निकालकर देता है।)

अमरसिंह—लेकिन आप······

हरि—ये मेरे मित्र लोग हैं। आपको तो पेमेन्ट से मतलब है।

(रुपए लेकर अमरसिंह और बैरा चले जाते हैं।)

शांतिचरण—धन्यवाद, महाशय ! क्या हम लोग आपका परिचय जान सकते हैं ?

हरि—मेरा नाम हरि है। मैं एक कृषक हूँ। बी० ए० करने के बाद मैंने खेती को अपना पेशा बना लिया है।

क्रांतिकुमार—बी० ए० और खेती ? यह सब देश की वर्त्तमान व्यवस्था का दोष है। बेरोज़गारी·······

हरि—(बीच ही में मुसकराते हुए) जी नहीं ! देश की व्यवस्था का कोई दोष नहीं है। हम लोगों की 'मैन्टेलिटी' का दोष है। हम लोग मेहनत से डरकर

मज़दूरी नहीं करते । बेकार बातों में अपना समय नष्ट करते हैं। परस्पर झगड़ते हैं। आप लोग कहें, तो मैं आप सबको काम दे सकता हूँ।

(सब चुप रह जाते हैं)

अजीब बात है ! आप लोग मेहनत नहीं करना चाहते और बेकारी दूर करना चाहते हैं ! आपके समान लोग ही बेकारी को बढ़ाते हैं। एक बार फिर सोच लीजिए ! अच्छा नमस्कार !

(सब झेंपते हुए नमस्कार करते हैं। हरि चला जाता है। लोग एक-दूसरे की ओर पिटी-पिटी निगाहों से देखते हैं। तभी परदा गिरता है।)

पटाक्षेप

होइ हैं शिला सब चन्द्रमुखी

— श्री विद्यानिवास मिश्र —

गोसाँईजी ने जब विन्ध्य के वासी उदासियों के साथ मधूर परिहास करते हुए लिखा था कि राम के चरणों के स्पर्श से समस्त शिलाएँ चन्द्रमुखी हो जायँगी, यह जानकर इन तपस्वी जनों को मन ही मन बहुत आनन्दलाभ हो रहा है, तब निश्चय ही उनके कलाग्राहक मन में खजुराहो की स्मृति बसी होगी, जहाँ ऐसा लगता है कि विश्व के समस्त सौन्दर्य की गतिशीलता पाहन के बन्धन में छटपटाते हुए रुँध गई हो और जहाँ शिलामयी चन्द्रमुखियों की भंगिमाओं को देखकर सहज ही में पार्थिव नारी-सौन्दर्य की मोहकता बिसराई जा सकती है ।

मैं खजुराहो कई बार हो आया हूँ, ऐसे लोगों के साथ, जिनका कला से या सौन्दर्य की रसानुभूति से ३ और ६ का सम्बन्ध रहता है, ऐसे लोगों के साथ भी, जो कला के प्रत्येक उत्कर्ष में पार्थिव धरातल छोड़कर एकदम ऊपर उठ जाते हैं, ऐसे लोगों के साथ भी, जो साहित्य के अधकचरे ज्ञान की बदौलत अपनी वासनाओं की प्रतिच्छवि ढूँढ़ने की ऐसी जगहों में कोशिश किया करते हैं और ऐसे लोगों के साथ भी, जो मेरी तन्मयता में अधिक तन्मय हुए हैं और जिस कला के साथ वह तन्मयता है, उसमें कम ।

पर, मैं जब-जब गया हूँ, तब-तब मुझे यही लगा है कि शायद यह चीज़ पिछली बार मैं इस दृष्टि से नहीं देख सका था या यह चीज़ पहले यहाँ नहीं थी, आज यहाँ नई आ गई है । बराबर लगा है कि जैसे कोई गायक अपने स्वरों को नई मीड़ दे रहा हो या कोई चितेरा अपने चित्र में नई वर्णच्छाया भर रहा हो या कोई महाकवि अपनी पंक्तियों में नई व्यंजना दे रहा हो या कोई दार्शनिक अपनी चिन्तना में नई कड़ी जोड़ रहा हो । नएपन का यह सर्वांगीण बोध क्या ह्रासोन्मुख कला या तथाकथित अनैतिक समाज की कुण्ठाओं की अतृप्तियों की प्रतिकृति कही जानेवाली मनुष्य की भोग-लालसा में कभी फले-फूले यह सम्भव नहीं है ? सत्य से बढ़कर कोई नैतिक आचरण होता नहीं है और जो उस सत्य को शिव रूप दे सके, यह कला केवल इसलिए हेय हो जाय

कि उसका कुछ विपरीत प्रभाव अपरिपक्व मस्तिष्क वाले या विकृत हृदय वाले पामर जनों पर पड़ता है, यह उचित नहीं । इसलिए, जब मैंने अपनी पहली यात्रा ही में अज्ञेय जी को यह सुझाया कि खजुराहो के मन्दिरों में सर्वश्रेष्ठ और सर्वांगीण मन्दिर कन्दरिया का नाम इस परिशर को देखते हुए कन्दर्पेश्वर होना चाहिए, तो उन्हें भी बहुत रुचा और उन्होंने कहा था कि यदि काम शिव के क्रोधानल में भस्मीभूत होने के अनन्तर शिव को पुनः अपने अनुकूल बनाने के लिए कोई साधन सोचता, तो शायद यहाँ की कला-साधना से वह ओछा ही पड़ता । यही बात प्रकारान्तर से आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने किसी दूसरे प्रसंग में दुहराई थी कि गतिशील सौन्दर्य को यदि कोई शिव कहीं टिका पाया है, तो वह खजुराहो के इन तीर्थों में, जहाँ शिव के भाग्य में लिखी हुई कला की रेखा की सफलता दिखलाई जाती है ।

खजुराहो रीवा से लगभग, सड़क से, सौ मील है । रीवा-नौगाँव-सड़क पर पन्ना की मनोरम घाटी पार करने के बाद केन नदी का पुल पड़ता है । केन नदी बरसात में बहुत भयंकर हो जाती है और पुल, जो कि रपट-मात्र है, जलमग्न हो जाता है । पर, और महीनों में बड़े-बड़े भूरे पत्थरों के ढोकों के नीचे नदी दुबकी दिखाई देती है और केवल जहाँ-तहाँ कुछ मरकतमय जल का प्रसार सघन हो जाता है । इस स्थान से खजुराहो पैदल के रास्ते से केवल ८-९ मील है और खजुराहो के मन्दिरों के लिए पत्थर यहीं से ढोए गए थे, इसका प्रमाण जार्डिन म्यूज़ियम में उपलब्ध एक शिल्प से प्राप्त होता है । अनुश्रुति के अनुसार जिन चन्देल-नृपतियों की कीर्ति का वितान जुराहों में है, उनके उद्भव की कहानी इस प्रकार है कि कर्णावती (केन) और चन्द्रमा (चन्देल) के सम्मिलन से चन्द्रात्रेय वंश की उत्पत्ति हुई । इस अनुश्रुति का और कोई अर्थ हो न हो, पर, इतनी ध्वनि उससे अवश्य निकाली जा सकती है कि खजुराहो की कला जहाँ अपने उपादान के लिए कर्णावती की ओर उन्मुख है, वहाँ कल्पना के एक मोहक आह्लाद के लिए शिव के ललाटवासी चन्द्रमा की मुखापेक्षी । दूसरे शब्दों में कर्णावती के युगों के सोए अरमानों का साकार स्वप्न है खजुराहो का कला-वितान ।

इस केन नदी के पुल पर गाड़ी रोककर, हाथ-मुँह धोकर, मैं सोचने लगा कि वर्ष भर होने को आया, पर, अभी पुल के निर्माण में, आधुनिक युग के समस्त साधनों के होते हुए भी, जो प्रगति की जा सकी है, वह काफ़ी मन्द है और कितनी खर्चीली है, यह तो अलग बात है । और जब टनों सामान लादने वाले ट्रक नहीं थे, टनों बोझ उठानेवाले क्रेन नहीं थे और जब भवन का रेखा-चित्र बनाकर देश भर के निर्माण-विशारदों का सम्मेलन बुलाने का साधन नहीं था, तब भी जिन लोगों ने हद से हद बैलगाड़ी पर बड़े-बड़े पत्थर के ढोके लादकर इन मन्दिरों का निर्माण किया, वे अतिमानव तो नहीं थे । कम से कम यह तो सही ही है कि

अपनी कृति के लिए जो एकान्त समर्पण और उस कृति के द्वारा परम शिव की आराधना के प्रति अटूट विश्वास यदि उनमें न होता, तो कोई राजशक्ति भाड़े पर उनसे यह निर्माण का काम नहीं करा सकती थी। भाड़े पर ढूह खड़े हो सकते हैं, दीवार बन सकती है या अधिक से अधिक ज्य.मिति की शकलें खड़ी की जा सकती हैं, पर सजीव रूप का नर्तन या मानव जीवन के समस्त उल्लास का इस प्रकार विविध रीतियों में विकिरण या समस्त कलात्मक व्यापार का शिव में केन्द्रीयीकरण तथा समस्त ऐन्द्रिक रसानुभूतियों का पारमार्थिक आनन्द की अवस्था में उन्नयन, इन सब में इतनी अधिक सिद्धि सम्भव नहीं होती। म्यूजियम वाले उक्त शिल्प में पत्यर ढोने और उठाने वालों के मुख पर जो विलक्षण उल्लास की भंगिमा हैं, वह कभी भाड़े की नहीं हो सकती। वह स्पष्ट इंगित करती है कि खजुराहो का निर्माता केवल कला-जीवी नहीं था, कला-साधक था। उस समय सबसे अधिक प्रवर्तित दर्शन सिद्धान्त को अपनाते हुए अपने माध्यम द्वारा, शिल्प द्वारा, महान् विश्व-व्यापी आनन्द-तत्त्व की सच्ची आराधना उन्होंने की है।

केन के पुल से लगभग ८—१० मील आगे जाने पर बमीठा आता है, जहाँ से दाईं ओर एक सड़क फूटती है और खजुराहो की ओर ले जाती है। खजुराहो से बस-सर्विस निममित रूप से आती-जाती है। कह नहीं सकता पर शब्दों के लिए जातिवश एक विशेष आकर्षण होने के कारण बमीठा नाम में मुझे तत्काल यह ध्वनि निकलने लगी कि कहीं यह वामिष्ठ का स्मृति-शेष तो नहीं है, क्योंकि जो २५ मील के घेरे में लगभग ८५ मन्दिरों का विस्तार पुराने विवरणों में वर्णित मिलता है, उसके अनुसार तो यह स्थान उस महान् वाम-साधना के लिए तीर्थ का द्वार रहा हो, तो कोई आश्चर्य नहीं है। बमीठा के लगभग ७ मील पर वर्त्तमान खजुराहो पड़ता है। खजुराहो गाँव के पहले खोदर नाला पड़ता है। सबसे पहले सड़क से जो चीज़ दिखाई देती है, यह शिव-सागर तालाब और उसके पीछे कुछ बड़े पेड़ों की ओट में खजुराहो के दक्षिणी समूहों के मन्दिर। चन्देलों और बुन्देलों ने तालाब बनवाने में विशेष रुचि दिखलाई है, पर, उनमें से आज बहुत से मरम्मत के अभाव में भग्न पड़े हुए हैं। वर्त्तमान सरकार का ध्यान उधर जा रहा है, यह सन्तोष की बात है, नहीं तो इन जलाशयों के उजड़े हुए कमल, जो हज़ारों वर्षों की अतीत लक्ष्मी के विहार की स्मृति प्रस्तुत करते हैं, पुरोगामी से पुरोगामी हृदय को भी द्रवित कर देते हैं। जिस 'सामन्त' शब्द के साथ लगी हुई प्रत्येक परम्परा का आज हम चुटकी उड़ाते-उड़ाते महज़ एक 'फ़्यूडल' नाम देकर तिरस्कार कर देते हैं, उसका भी कृतित्व मनुष्य की ऊँची से ऊँची आकांक्षा को स्पर्श करने वाला है, यह समय के आघात से बचे हुए इन पुरावशेषों से स्पष्ट प्रतिभाषित हो जाता है। लगता यह है कि जो सन्तुलित

होइ हैं शिला सब चन्द्रमुखी

खजुनाहो की सुन्दर भाव भंगिमाओं युक्त अप्सराएँ। (पृष्ठ६०)

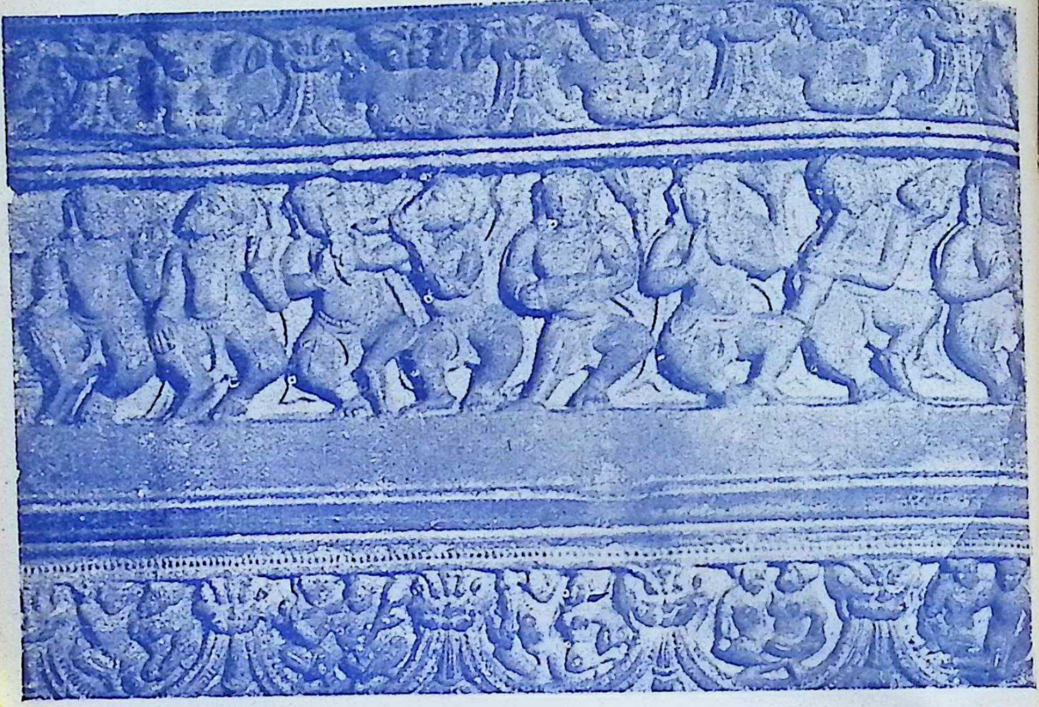

लक्ष्मणेश्वर मंदिर के गर्भगृह की परिक्रमा में नृत्यमंडली का अर्धशिल्प : यह अभिप्राय बारबार पुनरावृत्त हुआ है। (पृ० ६०)

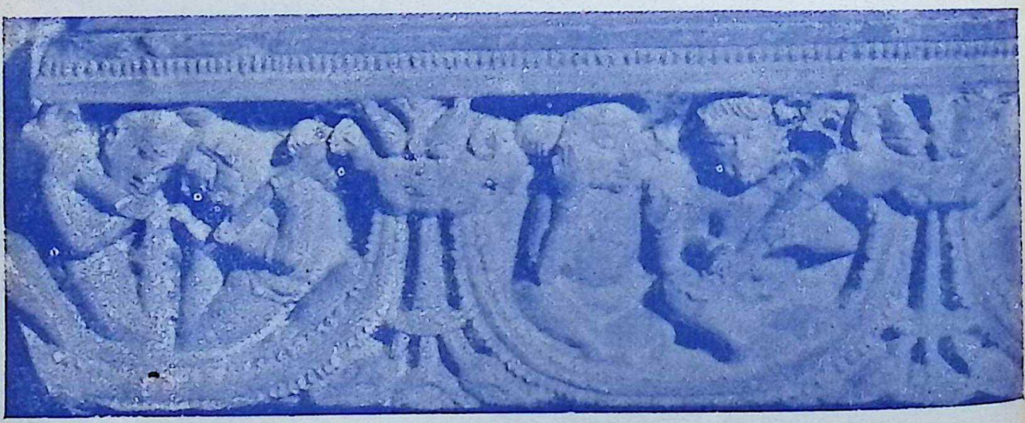

गायन पादन का उल्लास जो जीवन की अभिव्यक्ति के लिए बार-बार अंकित हुआ है (पृष्ठ ६०)

दृष्टि अतीत के मूल्यांकन के लिए अपेक्षित है और जिससे अपने को समझने और अपने भावी निर्माण को साकार रूप देने में सहायता मिल सकती है, वह प्रायः लोग नहीं रख पाते। या तो पुरानेपन के लिये चिपकाव रहता है या नएपन का उन्माद ही। दोनों के बीच में कोई सीमान्त-रेखा देखने की कोशिश भी नहीं की जाती। प्रत्येक कला अपने परिसर और अपनी पिछली परम्परा को लेकर ही प्रस्तुत होती है, इसलिए उसके रस-ग्रहण के लिए भी उसके देश-काल के प्रति न केवल सहानुभूति ही अपेक्षित होती है, बल्कि, वह संतुलित दृष्टि भी, जिससे उसको आज जोड़ने में मदद मिल सके।

खजुराहो के मन्दिरों का निर्माण-काल लगभग छठी-सातवीं शताब्दी से लेकर, यदि जैन-मन्दिरों के पुनरुद्धार को सम्मिलित कर लिया जाय तो, १६ वीं १७ वीं शताब्दी तक फैला हुआ है। चौसठ योगिनी के मन्दिरों के अवशेषों तथा उसकी कुछ अनुमानित प्रतिमाओं के संग्रहालय में अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह स्थान निश्चय ही कोई जीवित शक्तिपीठ था और यहाँ तारों की साधना प्रवर्तित थी। पर, कैसे यह शक्तिपीठ धीरे-धीरे शैव और वैष्णव क्षेत्र बना, यह किसी दबाव या आकस्मिक परिवर्तन के कारण नहीं, बल्कि, प्रतिभिज्ञादर्शन की ओर से जो क्रमशः यह प्रयत्न जारी था कि शक्ति में अवस्थित चिदंश में शिव को परिस्फुटित कराया जाय, उसीका यह अवश्यम्भावी परिणाम है। शंकर के अद्वैत और शक्ति-तन्त्र के बीच एक ओर तथा लगभग उसी समय प्रचलित वज्रयान शाखा की सहजिया साधना और वैष्णवों की रागात्मक भक्ति के बीच दूसरी ओर सुन्दर समन्वय प्राप्त करने का यह एक सफल प्रयत्न है। अब इसको जो आँखें ह्रासोन्मुखता का परिचायक मानती हैं, उनकी प्राज्ञता के बारे में क्या कहा जाय? जो इन्हें समाज की अनैतिकता का दर्पण मानते हैं उनके कुण्ठित मनोविकारों को क्या कहा जाय और जो काम से आगे कभी ऊपर उठ नहीं पाए, इसलिए उन्हें इनमें अपने काम की विकृति की परितृप्ति मिलती है, उनकी मूढ़ता को क्या कहा जाय? पर, सही बात यह है कि कला का सत्य इतना विराट् होता है कि वह स्थूल बुद्धि के लिए गोचर हो नहीं सकता, जब तक कि वह ऐसे प्रतीकों को ग्रहण न करे; जो स्वयं स्थूल हों। और यदि आनन्द के प्रतीक के रूप में भौतिक सुखों का चरम उत्कर्ष रति गृहीत है, तो उसका अर्थ यह नहीं होता है कि वह आनन्द अपने इस प्रतीक में पर्यवसित है। प्रतीक सर्वत्र व्यंजक साधन के रूप में गृहीत होते हैं और प्रतीकों ही में साध्य की इतिश्री मानना वज्रमूर्खता है। जो लोग अपने दिमागी नक्शे में खजुराहो की कला ढालना चाहते हैं, उन्हें एक क्षण के लिए यह सोचना चाहिए कि उसका निर्माता कौन था, कब था, कहाँ था और यदि उसकी आत्मकथा आज छपी हुई नहीं मिलती है तो क्या उसकी कृति में उसकी आराधना का केन्द्रविन्दु वही है, जो हमारा है। हम, जो गर्भगृह में प्रतिष्ठापित गह-

नता, शून्यता के साथ-साथ विशालता और परिपूर्णता से परिवेष्ठित प्रतिमा तक पहुँच नहीं पाते, बाहरी दीवार की रूप-लालसा में भटक जाते हैं। हम, जो रूप-रूप की प्रतिच्छवि या छाया ही में तड़प उठते हैं और रूप का समग्र पाने करने की कौन कहे केवल उसकी अतृप्त चाहना ही में आत्मनिःशेष हो जाते हैं। पार्थिव रूप के उन्माद में डूबकर भी उससे भी बड़े आनन्द के लिए सन्नद्ध चैतन्य ही खजुराहो के कलाकार का चैतन्य है, यह भुला देना उसके साथ महान् अन्याय करना है। मेरे बहुत-से मित्रों ने मुझे कोसा है कि तुम आर्य-संस्कृति में पले होकर भी ऐसे कुत्सित अंकनों को भी न्याय्य ठहराते हो ? क्या कला की कसौटी जन-साधारण की पहचान नहीं है ? मैं उन्हें कैसे समझाऊँ कि युग बदलता है, तो युग के मान भी बदलते हैं और नए युगमान से प्राचीन कलाकृति का मूल्यनिर्धारण अन्याय है। कालिदास के युग के स्तर की कला-प्रियता तथा आमोद-प्रियता आज नहीं है। और इसलिए हम उनके कुछ शृंगारिक वर्णन पढ़ते ही कुण्ठित हो जाते हैं। दूर की तुलना क्यों की जाय ? हमारी जो नई पीढ़ी है, वही हमारी पिछली पीढ़ी तक के लोगों की घूंघट के प्रति जो एक नैतिक आस्था है, उसे अत्यन्त उपहास्यास्पद मानने लगी है। यौवन के स्वस्थ उपयोग के बिना मनुष्य की जीवन-साधना अधूरी है, यह कालिदास की अपनी धारणा थी और कालिदास आज भी जीवित हैं। न केवल जीवित हैं, अब भी शिव के भक्तों के लिए शिव आराध्य हैं, क्योंकि कालिदास का यौवन शिव-भक्ति में चूक बरदाश्त नहीं कर सकता। उसका यक्ष शिव की आराधना में प्रमाद करने से अलका से निर्वासित होता है। आज हमारी कुण्ठा इसलिए है कि उस आस्थापूर्ण शिव-साधना की दृढ़ आधार-शिला हमारे पास नहीं है। रूप को बिछली में रपटते हुए हमें टिकने के लिए कहीं ठौर नहीं हैं। रूप की उद्‌भ्रान्ति से बचने के लिए हमारी आँखों में शिव का कोई अंजन नहीं है। यह अविश्वास या अनस्तित्व ही हमें वह संकीर्ण दृष्टि देता है, जिसके कारण हम स्वयं गहरी अनैतिकता में निमग्न होते हुए भी पूर्वजों की नैतिकता-अनैतिकता की मीमांसा करने बैठ जाते हैं। नैतिकता का उत्कर्ष वहाँ है, जहाँ से नैतिकता तथा अनैतिकता की पार्थिव संधि-रेखा आध्यात्मिकता के प्रकाश के कारण आँखों से ओझल हो जाती है। श्रीमद्‌भागवत के गायक परमहंस शुकदेव के समक्ष यदि जलविहार करनेवाली अप्सराओं को लज्जा नहीं सता सकी, तो यह शुकदेव की उत्कृष्ट नैतिकता थी। कला नैतिकता की इस उत्कर्षभूमि पर अवस्थित रहती है। यह स्मरण करते हुए ही उसकी प्रशंसा या आलोचना करनी चाहिए।

खजुराहो के ऊपर बहुत कम लिखा गया है और जो लिखा गया है, वह भी एक प्रकार से न लिखा जाता तो उसके साथ अधिक न्याय होता, क्योंकि असमग्र सत्य प्रायः असत्य के समान होता है। एक प्रकार से वह असत्य से भी अधिक अहितकर

और भ्रामक होता है, क्योंकि उसमें सत्य के आभास की गन्ध रहती है। पर्यटक आते हैं और आते रहेंगे, पर, जब तक कला की पारखी आँखें यहाँ के कलाकार की आँखों से नहीं मिलतीं, तब तक उसकी आत्मा आनन्द में लीन होते हुए भी अपने स्वरूप के प्रतिभिज्ञान के लिए बेचैन रहेगी।

मैं स्वयं कला का मर्मज्ञ नहीं हूँ, कलाकार नहीं हूँ, पर वहाँ जितनी बार गया हूँ, उतनी बार मुझे अपनी इस विवशता पर ग्लानि अवश्य हुई है कि कहीं मेरे पास वह परख होती, जो शब्दों में अपने को बिखेर पाती, तो मैं जो अपने अन्तर्मन से अत्यन्त निश्छलता एवं निश्चलतापूर्वक उस कलाकार की साधना की उज्ज्वलता देख सका हूँ, उसको दूसरों तक पहुँचा सकता। स्टीला क्रीमरिश ने कुछ न्याय किया है। मैं भाई अज्ञेय को भी इसी निमित्त खींच लाया कि वही मेरी साध पूरी करें। पर, अभी वह पूरी नहीं हुई और वही व्यथा बनी हुई है। अपने बहुधन्धी जीवन में मुझे भी बहुत कम अवसर मिलता है, जब मैं खजुराहो की कला के उलझे हुए सूत्रों की गुत्थी का शैव तन्त्रागम में या तन्त्रागम के शक्तिपात में या त्रिपुर-सुन्दरी की ध्यान-मुद्राओं में या शैवागम की प्रतिज्ञा में या भरत के नाट्यशास्त्र के अभिनवगुप्त के लोचन में संकेत ढूँढूँ। बहुत-कम लक्षण मिलते हैं और उन लक्षणों ही में जो कभी-कभी सुलझाव का इशारा झलक आता है, उसको भी अंकित करने का अवसर नहीं मिलता, इसका बराबर अनुताप रहा है। मैं खजुराहो की स्मृतियों को आज जब गूँथने बैठा हूँ, तब अपने पुण्यों के उदय को उसका कारण मानता हूँ, जिनसे मुझे खजुराहो को अवकाशपूर्वक देखने का अवसर मिला है और साथ ही उन जले पापों को शाप भी मानता हूँ, जो अभी इस अवसर को सफल नहीं होने दे रहे हैं। केवल इतना और सूचित करना चाहता हूँ कि खजुराहो स्वयं में एक विश्व है और उस विश्व में जाने के पहले अन्य विश्वों की स्मृति विसर्जित करके जाना ठीक होता है।

★ सांध्य-गीत ★

— श्री शिवनारायणसिंह 'सुयोगी' —

आजा रे……
मैं सुधि की भँवर बना बैठा,
तू अन्तर की लहरों पर
खिलते कमल सा बहता आजा रे……आजा रे

नभ का मौन
सितारे बन कर बिखर रहा है,
यह समय सुहाना
एक ताल पर—एक चरण पर
झूम रहा है,
मेरा जीवन 'आवाज़ काँपती',
प्राणों के परदे से बाहर आजा रे……आजा रे

मन-कण डूब रहे,
दृग-मीन बही जाती,
तन छिटक गिर गया दूर,
धार उमड़ी आती।
रागों का क्षितिज-बाँध
राह तकता तेरी
तू लय-पथ से स्वर बनकर
कल कल आजा रे……आजा रे।

नीम-चमेली

— श्री परदेशी —

(१)

पहले माँ मर गई थी। अब बाप मर गया। सोना अनाथ हो गई। एक दिन राधा काकी आईं। सोना को एक नज़र सिर से पैर तक देखा। उसे दिलासा दिया। फिर उसकी माँ की बड़ाइयाँ गाने लगीं—वह कितनी मेहनती थी, कितना काम करती थी, कितनी नेक, भली और सती थी। और चम्पा के सतीत्व पर जैसे राधा काकी को विशेष गर्व और गुमान था, क्योंकि सती मेहरिया का मोल वह भली भाँति जानती हैं। कहने लगीं, "सोना, डरना मत बेटी! मैं जब तक हूँ, तुम्हें कोई तकलीफ़ नहीं होगी……"

सोना मासूम जो ठहरी। उसने राधा काकी की भलाइयाँ अपने सिर पर चढ़ा लीं। फलतः, अपना घर छोड़कर, भाई के साथ, राधा काकी के घर आ लगी।

बचपन के साथी चैना ने बहुत समझाया—"सोना, मेरे घर चल! मेरी माँ तुझसे बहुत ख़ुश है, वह तुझे सिर-आँखों पर बिठाएगी।"

पर, सोना ने उसकी एक भी मनुहार न मानी।

चैना पर उसे विश्वास नहीं आता था। वह जुआरी था, शराब पीता था और चोरी करता था। सोना उसके घर कैसे रहे?

जब सोना न मानी, तब चैना ने आख़िरी तर्क रखा—"राधा-काकी के चरित्तर अच्छे नहीं हैं। जानती है, तेरसी को उसने क्या कर दिया? तू अभी बच्ची है!……"

फिर भी सोना राधा-काकी के घर आ गई। कई दिनों तक उसे सूना-अटपटा लगा। नन्हा भाई बराबर प्रश्न करता—"बापू कब आयँगे?"

"अभी आयँगे, वह देख, आ रहे हैं……अरे वह तो दूसरा आदमी निकल गया……तेरे लिए बाज़ार से कुछ लाने गए हैं।"……कहकर वह उसे फुसलाती-बहलाती। पर, बहलावे के इन शब्दों से वह ख़ुद तो नहीं बहल सकती थी! उसका अपना जी तो कण्व की शकुंतला-सा छटपटा रहा था। चौदह वर्ष की नादान और

सूनी लड़की, उसका गुमसुम और उदास भोलापन, इकहरी देह और अकेला बालापन। नुकीली नाक और पतले होंठ, जिन पर ओस-भीगी लाल कनेर की हँसी का रंग चढ़ रहा था। ऐसी यह सोना मूक और बोझिल थी। बापू के अवसान पर रह-रहकर उसके मन का गोवत्स चिहुक उठता था। भूखी रहती। नींद न आती। दोपहर को जब गर्मी के कारण सब ऊँघ जाते, तब वह चुपके-से अपने घर जाती। उसके बाहर के दालान में बैठी घंटों रोती रहती। रोने से आँखें लाल हो जातीं, पर, जी हलका हो जाता।

लौटकर राधा काकी की नज़र बचाकर कहीं पड़ीं रहतीं। उनके घर के बर्तन माँजती। उपले थापती। गायें दुहती और अकेले ही सिर पर पीतल की भारी दूध-भरी गगरी उठाए शहर की ओर चल पड़ती। पैरों में काँटे गड़े होते। बालों-में ढेरों धूल समाई होती। पसीने में अँगिया चिपक जाती। रुकती-बढ़ती, वह ज़मींदार के बँगले पर जाती। पिछवाड़े से कुंडी खटखटाने पर रसोइया महाराज आता और दूध ले लेता। कभी बरामदे में बड़े तख्त पर हुक्का गुड़गुड़ाते ज़मींदार साहब दिखाई देते। सोना उन्हें कनखियों से देखती, डरती, झिझकती और सँभलती। बड़ी-बड़ी नुकीली मूँछें। रोबदार चेहरा। कौड़े-कौड़े-सी आँखें—लाल-लाल और भूखी-प्यासी। चेहरे पर मक्खन-जैसी चमक। बादाम का रस-पिया शरीर। गठीले और अधेड़। ग़ुस्सैल और कपटी। वह दिन भर कुछ न कुछ खाते ही रहते। गर्मियों में अपने सामने आमों का टोकरा रख लेते। ऊख के रस के कटोरे भरकर पीते। तरबूज़ का लाल कलेजा निकालते। बरसात में भुट्टों और ककड़ियों का माहात्म्य समझाते और सर्दियों में गाजर, मूली और शकरकन्द पर बसेरा लेते।

सोना से वह बड़े ख़ुश थे। वह आती, तो उसके 'पाँलागन' कहने पर सिर हिला देते। बोलते नहीं। ज़मींदार कहीं बोलते हैं? वह सिर्फ़ सिर हिलाते हैं। कोई काम का आदमी हुआ, तो एक उँगली उठाकर ज़रा ऊँची कर देते हैं। बैठे रहते हैं, उठते नहीं। ऊँघते हैं, सोते नहीं। धीरे-धीरे तुतलाते हैं, बोलते नहीं। और जब बोलते हैं, तब चिल्लाते हैं। जब क्रोध में होते हैं, तभी बोलते हैं। और बात-बात पर बन्दूक़ उठा लेते हैं—जैसे उनके सिवा सारी दुनिया, मौत और बन्दूक़ का निशाना बनने के लिए ही है!

सोना को वह, न जाने क्यों, अच्छे नहीं लगते। उनसे वह दबती-छिपती है। सहमती है। भय खाती है। मन-ही-मन उन्हें गाली देती है। यह उन्हें शब्दों से खाती है, वह इसे नज़रों से पीते हैं। यह मानो फ़ौलाद को पानी से गला देना चाहती है। वह अजगर बनकर चिड़िया की बच्ची को निगल जाना चाहते हैं!

सोना के मन में अपने बापू की एक पिछली बात आज भी अंकित है—"ज़मीं-

दार ने रुपए माँगने पर कहा था……उसका ख़ून कर दूँ ? कर दूँ उसका ख़ून ?"

और वह अपना ही ख़ून पीकर रह गया था।

दरवाज़ा खोलकर ब्राह्मण कहता—"आ री बिटिया, आ !"

"हाँ, बाबा !"

इस तरह उनके रोज़ के स्वागत-समादर समाप्त होते। वह सिर झुकाए दूध नापती—पाव, दो पाव, तीन पाव, चार पाव और तब तक मन में हिम्मत बटोरती रहती। साहस करके कनखियों से ज़मींदार को देखती।……पाँच……पाव, आठ……पाव। वह पूरे बीस पाव ज़मींदार के यहाँ देती, जिसमें सात पाव गाय का दूध होता और शेष भैंस का। गाय का दूध बच्चे पीते, क्योंकि उनकी जन्मदात्री माताओं के स्तनों का दूध सूख गया था !

जब तक वह बीस पाव गिनती, ज़मींदार उसे देखते रहते, मानो निर्विकल्प समाधि में तल्लीन हों। ऐसा प्रतीत होता कि किसी और जगह दृष्टि थमी है। पर, उनकी आँख को सोना पहचानती है। तभी न, उनसे सहमती है, लजाती है वह। वह उससे कुछ चाहते-से लगते हैं, ऐसा वह सोचती है। पर, सोना उन्हें क्या दे सकती है ?

और यह जान लेने का यत्न करके वह हैरान है।

सोना सहमकर थरथरा उठती है। उसका रोम-रोम जग जाता है और वह काँपने लगती है।

लौटती, तो वह धीरे-धीरे आँगन पार करती और दरवाज़े के बाहर निकलते ही पहले लम्बे-लम्बे क़दम उठाती, फिर भागकर चलने लग जाती। गली के बड़े पीपल के नीचे बैठकर वह साँस लेती।

"बापू !"—और उसकी आँखों में दो उजली सफ़ेद बूँदें तिर आतीं और उन उजली बूदों में खेलती—ज़मींदार की नुकीली मूँछों वाली तसवीर ! पीपल की नादान नन्हीं कोपलें उसे देखतीं और देखकर सिर हिलातीं। ज़मींदार तब तक वहीं बैठे रहते, एक घुटना मोड़े और दूसरा पाँव खाट से बाहर फैलाए। घोड़े के बालों की चँवरी से मक्खियाँ उड़ाते रहते। पल-पल हाथ की हथेलियाँ खोलते और बन्द करते, जैसे कबूतर हाथ में थामकर—गिरफ़्तार कर, वापस उड़ा रहे हों। उँगलियों की पोरों को लाल—गदराई हथेली पर छुआकर उठा देते। उन हथेलियों में खुजली चल रही थी। और जब किसी अमीर आदमी के हाथों में खुजली चलती है, तब उसे कुछ प्राप्ति होती है।

(२)

दूध बाँट देने पर सोना रोटी पाती। फिर खेत में जाती, जहाँ उसकी अन्य

सहेलियाँ उसे मिलतीं। यों स्वयं राधा-काकी के घर में तीन लड़कियाँ और थीं--रूपा, धानी और तेरसी।

रूपा और धानी राधा-काकी की अपनी बड़ी और छोटी लड़कियाँ थीं। बड़ी अच्छी थीं। सोना उन्हें जी से चाहती थी। बचपन से उनके साथ खेली थी।

तेरसी, कहते हैं, राधा-काकी की दूर की नातिन थी। रूप-रंग में सबसे चटकीली थी। वह सोना को अच्छी नहीं लगती थी, क्योंकि वह कुछ काम नहीं करती। भोर में देर से उठती, जब धूप उसके चेहरे पर तपने लगती। दिन भर बनाव-सिंगार किया करती। सुबह नहाने निकल जाती। दोपहर में अपनी चोलियाँ और चुनरियाँ सीती-सहेजती। साँझ को उसके पैरों में मेंहदी लग जाती। वह दिन-प्रतिदिन नाज़ुक और नख़रीली होती जा रही थी।

तेरसी घी-दूध में पल रही थी। उसकी आँखों में दूध उफन रहा था। गालों पर मक्खन झलक रहा था और देह में गोरस की चिकनाई इठला रही थी।

"कोई चाहे, तो इसकी देह की चमक में अपना चेहरा देख ले।"--गाँव की बहुएँ आपस में कहतीं। पर, उनकी बातें सोना की समझ में कभी न आईं।

खेतों में झूले डाले जाते। आम की डाल पर मोटी रस्सी बँधती और नौजवान लड़कियाँ झूलतीं। जामुन की टहनी पर पतली डोरी डाली जाती और उसे थामकर कमसिन बालाएँ लहरें लेतीं। सोना का आवागमन आम और जामुन के बीच था।

रूपा और तेरसी आम पर झूलतीं। पकड़ की जगह वे शहरी मेले से ख़रीदे लाल रेशमी रूमाल बाँधतीं। आमने-सामने खड़ी होकर सटकर वे झूला देतीं-लेतीं। उनकी ओढ़नियाँ और लहरिए हवा में उड़ने लगते। छोटी घेरदार घघरियाँ रंग-बिरंगी दिखतीं। गीत के पहले बोल उनके मधुर कण्ठों से निकलकर होंठों को चूम लेते। कहीं पत्तों में छिपी कोकिला-वधू अपने नैहर का गीत गाने लगती। कुमारियों की हँसी कच्चे आमों को पका देती। वे डाली से चू पड़ते। खिलखिलाहट पर खिलखिलाहट उठती। ऊँची उठती रस्सी पतले धागे-सी नज़र आती। छोकरियाँ आसमान से उतरने वाली परियों-सी लगतीं।

कभी-कभी जब बंदिनी हवाएँ मौसम की कारा से छूटकर आई होतीं और अलमस्ती में झमझमातीं, तब झूलनेवालियों की घघरियाँ और अधिक लहरातीं। बालापन और कौमार्य की अल्हड़ मस्ती में बेसुध, वे झूलती रहतीं।

फिर गीत, हँसी-मुसकान, रंग-बिरंगी घघरियाँ, चोलियाँ, चुनरियाँ और हरे-हरे पत्ते! शिशु के दाँतों-सी कोंपलें, कचकचे आम और अधपकी कैरियाँ! मधुर मुसकानों में मीठे गीतों की गूँज--"बनाजी, आजो म्हारा देश……!" वन में कुहराम मच जाता। बगियाँ सिर धुनतीं।

आम और जामुन की शाखाएँ लचलचा जातीं। उनकी कमर में बल पड़ जाते। सावन की चंचल फुहारें उनकी हँसी उड़ातीं। आकाश में मेघ गरजते। बिजलियाँ थिरकतीं और झूलों पर कजलियाँ गाई जातीं। धरती और आकाश में, पेड़ों में, पत्तों में, डालियों में, सब तरफ़ सरसराहट आती, उनमें जान आ जाती और वे स्तब्ध खड़े देखते रह जाते। इसी तरह न मालूम कितने मौसम बदल जाते !

फिरसे हिंडोले बँधते। हिचकोले लगते। चढ़ाव और उतार। डालियों की ऐंठन उतर जाती। झूलनेवाली नवबालाओं की अल्हड़ मस्ती का भार सह न पातीं और लचक जातीं। पत्ते झरने लगते। आम अपनी कच्ची अँबियाओं को थाम न पाते। वे धरती पर चू पड़तीं।

प्रकृति के रस के ऐसे निर्मल प्रवाह में सोना बढ़ रही थी।

× × ×

एक दिन शाम को जब तेरसी बन-ठनकर आँखों में काजल आँजने ज़ा रही थी, तब सोना उसके पीछे आकर खड़ी हो गई––"तेरसी······जीजी !"

"क्या है सोना ?"

"मैंने दोपहरवाली तुम्हारी और काकी की सारी बातें सुन ली हैं·······"

तेरसी चुप रही।

'मैं ज़मींदार के यहाँ हरगिज़ नहीं जाऊँगी। उसकी शिकार बनने न जाऊँगी ! तेरसी। वह तो राक्षस है ! तेरसी, मैं तेरे पैरों पड़ती हूँ, मुझे बचा ले मेरी जीजी !" और वह तेरसी के पैरों से लिपट गई। आँसू बह-बह कर तेरसी के पैरों में लगी हुई मेंहदी को फिर से गीली कर रहे थे।

"मैं भी तो ज़मींदार के यहाँ जा रही हूँ आज रात को। फिर तुझे क्या डर है ? तू क्या बच्ची है ? राधा-काकी किसी को मुफ़्त में नहीं पालतीं, सोना ! ज़मींदार के यहाँ तू एक बार चलकर तो देख ! कह देगी कि मैं घर नहीं लौटूँगी······" कहकर तेरसी हँसने लगी !

"मैं मर जाऊँगी, पर, उस राक्षस के यहाँ न जाऊँगी ! तो तेरसी, तू मुझे मदद न देगी बहन ?" सोना ने पुनः मनुहार की।

तेरसी 'बहन' शब्द पर चौंकी और उसने नज़र उठाकर देखा। उस अबोध बाला के मुख पर भय और उत्पीड़न की भारी वेदना पथरा रही थी।

आँखों की कोरों पर बूँदें अचल थमी थीं। तेरसी को 'बहन' शब्द पर अपनी बहन की याद आई, जिसने इसी तरह एक रात, ज़मींदार से उसे बचाने के लिए तेरसी से पैरों पड़कर प्रार्थना की थी, पर······पाप की पटरानी बनी तेरसी ने उस विनती पर ध्यान न दिया और वह मासूम बच्ची उस रात ज़मींदार की वासना की

वेदी पर चढ़ा दी गई। उस नृशंसता को सह न सकने के कारण वह चौथे ही दिन श्मशान पहुँच गई थी।……और तेरसी को दस वर्ष पूर्व का अपना ठीक ऐसा ही चित्र याद आया, जब वह पहली बार राधा-काकी के द्वारा ज़मींदार की शिकार बनी थी। तब से आज तक उसका जीवन एक निःसहाय नारी की करुण कथा बन गया है……

"सोना, तू क्या चाहती है ?" उसने भारी कण्ठ से पूछा।

"मैं चैना के साथ कहीं चली जाना चाहती हूँ, जहाँ राधा-काकी न हो, ज़मींदार न हो, ज़ुल्मों की यह दुनिया न हो, और"……

"चैना के साथ ? क्या कहती है बहन ! वह तो आवारा है। वह तो, तुझे भूखों मारेगा, बरबाद कर देगा !"

"नहीं तेरसी, तू चैना को नहीं जानती। मैं उसे बदल लूँगी। वह ग़रीबी का मारा इन्सान है, दौलत के नशे में फूला राक्षस नहीं। यदि चैना मुझे पीटेगा, तो और पीटने को कहूँगी। यदि वह शराब पिएगा, तो उसके पैरों पड़ूँगी। यदि वह जुआ खेलेगा, तो मैं निर्जल उपवास कर-करके उसे रोकूँगी और दिखा दूँगी कि सोना उसे बदलकर रहेगी……बस, तू यही मदद कर बहना कि……"

तेरसी राज़ी हो गई। उसके हृदय की वर्षों की सुप्त मानवता सहसा जाग उठी।

× × ×

रात को ज़मींदार राधा-काकी के आश्वासन पर जब सोना को पाने के सपने देख रहा था, तब सोना चैना के साथ गाँव की सीमा से बहुत दूर निकल चुकी थी। तेरसी ने इसमें उसकी सहायता की थी।

(३)

आकाश की पगडंडी पर चलता हुआ चाँद, थककर, एक ओर थम गया था। रात में सूना सन्नाटा था। और दूर राह पर दो छायाएँ, कन्धों पर गठरियाँ लटकाए, चली जा रही थीं।

"तो, तेरसी कहती थी, तू शराब पीता है, चैना ? क्या यह सच है ?"

"सच है !"

"और तू जुआ खेलता है ?"

"हाँ, खेलता हूँ।"

"और तू चो……री……?"

"हाँ मैं चोर हूँ, ज़मींदार के बैल मैंने ही चुराए थे।"

"तू मज़ाक़ करता है !"

"नहीं !"

चलते-चलते सोना नदी के उस ऊँचे कगार पर रुक गई और बोली—"तो चैना, मेरी ओर देख। क़सम खा कि आज से न शराब पीऊँगा, न जुआ खेलूँगा, न चोरी करूँगा……वरना, मैं अभी नीचे कूदे जाती हूँ……"

चैना ने तुरन्त सोना का हाथ थाम लिया और ज़ोर से हँस पड़ा—"अरी पगली, मैं तो तेरे ही लिए यह सब करता था। अब तो तू मुझे मिल गई है। अब मुझे क्या करना है ? मैंने काफ़ी रुपया जमा कर लिया है……अब चोरी और जुआ छोड़ दूँगा। मैं न जुआ खेलूँगा, न नशा ही करूँगा।"

सोना ने चैना की आँखों में देखा—वे एकदम निर्मल और निश्छल थीं। उनमें मानवता की निर्धूम ज्योति थी। चैना ने सोना के पैर छू लिए। "तेरी सौगन्ध, सोना ! जो तू कहेगी, वही करूँगा……" तब, सोना न हिली, न डुली, न झुकी, न रुकी। चैना के मन के इस मानवीय वैभव से विस्मित वह ज्यों-की-त्यों खड़ी रह गई। चैना उसे देखता रह गया। दो मानवों को सच्चे जीवन-साथी मिल गए !

और भोर होते ही गाँव में यह ख़बर फैल गई कि सोना चैना जुआरी के साथ भाग गई है। राधा-काकी ने जाना, तो सिर पीट लिया। उसे ज़मींदार से एक बड़ी रक़म की आशा थी। रोती हुई तेरसी से बोली, "कुलच्छनी को उस शराबी के साथ भागना ही था, तो एक दिन ज़मींदार साहब के यहाँ रहकर ही चली जाती। हाय…… हाय……सत्यानाशिनी……!"

★ जागेगी एक बार ★

—श्री राधेलाल चतुर्वेदी—

(१)

गीतों की धरती पर
दर्द नहीं फूलेंगे,
मिहनत के सौरभ को
सर्प नहीं सूँघेंगे,
सहमी-सी साँसों से
दहकेगी लाल-लाल
प्राणों में छिपी ज्वाल !

(२)

कोंपल-से फूटेंगे
अधरों पर मधुर गीत,
ठुनकेगी पग-पग की
पायलिया भरे प्रीत,
जागेगी एक बार
गीतों की गंगा की
लहरों पर नई ताज़ !

(३)

बरगद-सी बाँहों में
मानवता लिए प्यार
संस्कृति के भवनों पर
बाँधेगी बँदनवार,
तृष्णा के ढाँचे की
अरथी को धर लेगा
कन्धों पर नग्न काल !

मध्यभारत की पंचवर्षीय योजना

— श्री दयानारायण गुप्त —

मध्यभारत प्राकृतिक साधनों और अपने क्षेत्र की परिश्रमशील जनता की दृष्टि से भारत की एक होनहार इकाई माना जा सकता है। यहाँकी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परम्परा भी भारतीय इतिहास की एक उल्लेखनीय निधि है। चम्बल और नर्मदा-जैसी सततप्रवाहिनी सरिताएँ, विन्ध्य-जैसी काष्ठ एवं पाषाण सम्पदा की अनन्त भांडार वाली श्रृंखलाएँ, मालव की अन्नपूर्णा शस्यश्यामला भूमि और स्वास्थ्यकर जलवायु मध्यभारत की कतिपय ऐसी विशेषताएँ हैं जो देश की समृद्धि में योगदान के लिए एक विश्वस्त आधार मानी जा सकती हैं।

राष्ट्र के सर्वांगीण विकास का उद्देश्य लेकर केन्द्रीय शासन द्वारा जो प्रथम पंचवर्षीय योजना बनाई गई थी, उसीके उद्देश्यों एवं लक्ष्यों के अनुसरण की चेष्टा करते हुए मध्यभारत की पंचवर्षीय योजना सन् १९५१ में परिकल्पित की गई थी। तदुपरान्त उसका पुनरीक्षित स्वरूप निर्धारित किया गया। उसीके अनुसार राज्य में विकासकार्यों के पाँच प्रमुख अंग निर्धारित करके उसकी अर्थ-व्यवस्था के लिए २१५८.६७ लाख रुपयों की धनराशि का निवेश किया गया, जिसका विवरण इस प्रकार है:—

कृषि एवं ग्राम विकास	८१४.५० लाख रुपए
सिंचाई एवं विद्युत्-शक्ति की बड़ी योजनाएँ	४३८.०० ,,
उद्योग	४३.५८ ,,
यातायात	२०६.२८ ,,
सामाजिक सेवाकार्य	५५७.०६ ,,
कुल	२१५८.६७ लाख रुपए

प्रस्तुत लेख में उक्त राज्य की पंचवर्षीय योजना का, उल्लिखित प्रमुख अंगों की रूप-रेखा के साथ, परिचय देने का यत्न किया जा रहा है, जिसमें प्रथम तीन वर्षों

अर्थात् सन् १९५१-५२ से १९५३-५४ तक सम्पन्न हुए कार्यों का संक्षिप्त विवरण भी दिया गया है।

योजना का लक्ष्य खाद्यान्नों तथा प्रमुख कच्चे पदार्थों-जैसे कपास और तिलहन के उत्पादन में वृद्धि द्वारा कृषकों की आय में वृद्धि, लघु उद्योग-धन्धों की स्थापना और वर्तमान उद्योगों एवं गृह-उद्योगों का विकास, शिक्षा का प्रसार, सार्वजनिक स्वास्थ्य का सुधार, रोगों की रोक तथा चिकित्सा एवं आवागमन के मार्गों का निर्माण और सुधार करना बताया गया है, जिससे जन-जीवन अधिक उन्नत, अधिक सुखी और अधिक समृद्ध बन सके।

योजना में व्यय की जानेवाली २१५८.९७ लाख रुपयों की धनराशि निम्न स्रोतों से उपलब्ध होगी:—

चालू राजस्व-प्राप्ति से	६१२.०० लाख रुपए
करों से अतिरिक्त आय	३८.०० ,,
निक्षेप तथा अन्य प्राप्ति	४४८.०० ,,
रक्षित निधियों से निकासी	३८७.०० ,,
केन्द्रीय सहायता	६००.०० ,,
कुल	२०८५.०० लाख रुपए

इस प्रकार योजना के निर्धारित व्यय और आय के संभावित साधनों में ७३.९७ लाख रुपयों का अन्तर परिलक्षित होता है। इस कमी की पूर्ति के लिए मितव्यय, कार्यों पर सजग दृष्टि तथा जन-सहयोग के आधार पर आगे चलकर कोई न कोई मार्ग निकल आने की सम्भावना समझी जा रही है।

कृषि-उत्पादन-कार्यक्रमों में गहन एवं विस्तृत कृषि के कार्य सम्मिलित किए गए हैं। गहन-कृषि का उद्देश्य सिंचाई, सुधरे हुए खाद के उपयोग, उत्तम बीज तथा आधुनिक कृषि के औजारों के उपयोग द्वारा थोड़ी भूमि में प्रतिएकड़ अनाज उत्पन्न करना है। विस्तृत कृषि का उद्देश्य वर्तमान कृषि-योग्य भूमि के क्षेत्रफल का विस्तार करना है। पड़त और बंजर बीहड़ भूमि को कृषि-योग्य बनाकर, उसे भूमिहीन किसानों को देकर तथा उन्हें आर्थिक सहायता देकर यह कार्य सम्पन्न किया जायगा। इसके फलस्वरूप, यह अनुमान बताया जाता है कि, लगभग १० लाख एकड़ नई भूमि कृषि-योग्य बना दी जायगी, जिसकी उपज का अनुमान लगभग प्रतिवर्ष ५० लाख मन होगा। कृषि-विकास-कार्यों में सहायतार्थ राज्य के सामुदायिक विकास-योजना-क्षेत्र तथा राष्ट्रीय-विस्तार-सेवा-खंड भी अपना कार्य कर रहे हैं। योजना की अवधि के अन्त तक २८ खंड प्रारम्भ हो जाने की आशा की जा रही है।

सिंचाई-कार्यक्रम का प्रस्तावित व्यय ३१०.०० लाख रुपए है। इसके अन्तर्गत सिंचाई की तीन बड़ी योजनाएँ तथा अन्य छोटे-छोटे सिंचाई-कार्य किए जायँगे, जैसे २५ नवीन तालाबों का निर्माण, १२० पुराने तालाबों का जीर्णोद्धार तथा ४०० से अधिक नहरी नालियों का सुधार आदि। सिंचाई की इन योजनाओं के पूरे होने पर १.६७ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होने की सम्भावना हो सकेगी। ज़िलों में भी सिंचाई की छोटी योजनाएँ प्रारम्भ की जायँगी, जिनपर योजना-काल-में १३८.०० लाख रुपए व्यय होंगे।

पशु-चिकित्सा तथा पशु-सुधार—

योजना में पशु-चिकित्सा तथा पशु-सुधार के लिए ५२.१४ लाख रुपयों की धनराशि रखी गई है। इसके अन्तर्गत अनुसन्धान तथा वेक्सीन संस्था का गठन, ११ चल-चिकित्सालयों का प्रारम्भ, ३५ नवीन पशु-चिकित्सालयों की स्थापना, १५ ग्राम-केन्द्र, ५ कृत्रिम-गर्भाधान-केन्द्र, ३ भेड़-पालन-केन्द्र, ३ पशु-पालन-केन्द्र तथा २० पशु-चिकित्सालय-भवनों के निर्माण का प्रस्ताव रखा गया है। गोशालाओं के सुधार, उन्नत-पशु-क्रय तथा ग्वाल-बस्तियों के लिए ऋण देने की भी व्यवस्था रखी गई है।

इस शीर्षक के अन्तर्गत अब तक ३ चल-चिकित्सालय, १५ पशु-चिकित्सालय, ७ ग्राम-केन्द्र, ३ कृत्रिम-गर्भाधान-केन्द्र तथा ३ पशु-पालन-केन्द्र स्थापित किए जा चुके हैं।

वन-विकास—

वन-विकास के हेतु ५० लाख रुपए व्यय किए जायँगे। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत मध्यभारत के समस्त वन-प्रदेश का सर्वेक्षण तथा उचित भागों में विभाजन, वन-सम्बन्धी कार्यों के लिए सड़कों तथा भवनों का निर्माण शिकारगाहों तथा राष्ट्रीय पार्कों का विकास, भूमि-क्षय-निरोध, भू-रक्षण तथा वन-शोषण-कार्यों का विकास, अनुसन्धान, वन-उद्योग का विकास आदि कार्य किए जाने की योजना है।

सहकारिता—

सहकारिता के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की सहकारी-समितियों को गठित करने तथा उन्हें आर्थिक सहायता प्रदान करने एवं तत्सम्बन्धी प्रशिक्षण के हेतु २५ लाख रु० की धनराशि रखी गई है। इसके अन्तर्गत १००० ऋण-दात्री समितियों, ५० क्रय-विक्रय-समितियों, १६ कृषि-समितियों, ८ उत्सिंचन-समितियों, १२५ बहु-कार्यकारिणी समितियों तथा ७८ अन्य समितियों का गठन, भवन-निर्माण-समितियों तथा एक अपैक्स बैंक की स्थापना का लक्ष्य रखा गया है।

ग्राम-विकास-कार्य—

ग्राम-विकास-कार्यों पर १४१.२८ लाख रुपए व्यय किए जायँगे। इसके

अन्तर्गत पंचायतों को आर्थिक सहायता दी जायगी। ग्राम-सुधार-कार्यों तथा कुओं, पंचायत-भवनों और ग्राम-सड़कों के निर्माण तथा बावड़ियों को कुओं में परिवर्तित करने के लिए आर्थिक सहायता दी जायगी। मत्स्योद्योग के विकास के लिए ७॥ लाख रुपयों की व्यवस्था की गई है।

चम्बल-घाटी-विकास-योजना—

चम्बल-घाटी-विकास-योजना (प्रथम-सोपान) राष्ट्रीय-पंचवर्षीय-योजना में सम्मिलित की जा चुकी है। इसके पूर्ण होने पर राज्य के भिण्ड और मुरैना ज़िलों-के १३०० गाँवों की ७ लाख एकड़ भूमि सींची जा सकेगी और तीन विद्युत्-आलयों द्वारा राजस्थान तथा मध्यभारत को २ लाख २० हज़ार किलोवाट बिजली मिल सकेगी।

विद्युत्-विकास—

विद्युत्-विकास के हेतु पंचवर्षीय-योजना में २२८.०० लाख रुपयों की धन-राशि का निवेश किया गया है। इस कार्यक्रम के अनुसार इन्दौर में केन्द्रीय विद्युत्-आलय की स्थापना करके ३००० किलोवाट टर्बो सेट की व्यवस्था की जायगी। इन्दौर से उज्जैन तक एच० टी० लाइन डालना, ग्वालियर विद्युत्-आलय में वृद्धि तथा मेन्स का सुधार, अन्य महत्त्वपूर्ण नगरों में बिजली की व्यवस्था एवं छोटे विद्युत्-आलयों में परिवर्तन तथा सुधार के कार्य भी इसीके अन्तर्गत रखे गए हैं। अब तक जो कार्य पूर्ण हो चुके हैं, उनमें इन्दौर में टर्बो सेट लगा दिया गया है तथा भिण्ड, शिवपुरी, शाजापुर, खरगौन और महिदपुर के बिजलीघरों ने कार्य करना प्रारम्भ कर दिया है।

उद्योगों का विकास—

योजना में उद्योगों के विकास के लिए ४३.५८ लाख रुपयों की धनराशि व्यय की जायगी। ३८.२१ लाख रुपए कुटीर-उद्योगों के विकास के लिए प्रस्तावित हैं। कुटीर-उद्योगों के अन्तर्गत सर्वेक्षण, विभिन्न हस्त-कौशलों के प्रदर्शन तथा प्रशिक्षण-केन्द्रों की स्थापना, कुटीर-उद्योगों को आर्थिक सहायता तथा उनके उत्पादन के विक्रय की व्यवस्था का कार्य किया जायगा। अन्य उद्योगों के हेतु ५.३७ लाख रुपयों की धनराशि का उपयोग सर्वेक्षण, औद्योगिक खोज एवं खनिज-विकास के लिए किया जायगा।

यातायात—

मार्ग-विकास-कार्यों के लिए २०६.२८ लाख रुपयों की व्यवस्था की गई है। इससे ३४१ मील लम्बी ३८ सड़कों का निर्माण, पुरानी और जीर्ण सड़कों की मरम्मत तथा पुनर्निर्माण, नगरों में होकर निकलनेवाली सड़कों का सुधार, सड़क-निर्माण-

सम्बन्धी मशीनों का क्रय, नौ नवीन पुलों का निर्माण तथा नालियों, पुलियों और पुलों का सुधार किया जायगा। अब तक १५० मील लम्बी १३ सड़कों का निर्माण किया जा चुका है, १३६ मील सड़कें सुधारी जा चुकी हैं तथा एक पुल तैयार किया जा चुका है।

शिक्षा--

शिक्षा-सम्बन्धी कार्यों पर २००.४१ लाख रुपए व्यय करने की योजना है। इस कार्यक्रम में सिन्धिया-प्राच्य-अनुसन्धान-शाला में खोज-शाखा की स्थापना, कला-कौशल-विद्यालयों का पुनर्गठन तथा विश्व-विद्यालयीन शिक्षा के अन्तर्गत एक मनोवैज्ञानिक-विभाग स्थापित करने की व्यवस्था की गई है। माध्यमिक-शिक्षा के अन्तर्गत अशासकीय उच्च विद्यालयों तथा अन्तर्-महा-विद्यालयों को आर्थिक सहायता दी जायगी और माध्यमिक-शालाओं का भवन-निर्माण-कार्य किया जायगा। स्त्री-शिक्षा के अन्तर्गत ८०० नवीन प्राथमिक-शालाओं तथा एक नार्मल-स्कूल की स्थापना का लक्ष्य है। २३ प्राथमिक-शालाओं को माध्यमिक-शालाओं में, १३ माध्यमिक-शालाओं को उच्च-विद्यालयों में एवं एक उच्च-विद्यालय को अन्तर्-महा-विद्यालय में परिणत करने की व्यवस्था है। प्राथमिक-शिक्षा-क्षेत्र में अनिवार्य-शिक्षा की व्यवस्था तथा अंशदान के आधार पर शाला-भवन-निर्माण तथा उनमें सामग्री जुटाने की व्यवस्था की गई है।

सामाजिक-शिक्षा--

सामाजिक-शिक्षा के अन्तर्गत बुनियादी-शिक्षा-शालाओं, सामाजिक-शिक्षा-केन्द्रों और पुस्तकालयों की स्थापना तथा सिनेमा-यानों की व्यवस्था की जा रही है। इस कार्यक्रम में व्यावसायिक तथा औद्योगिक शिक्षा और उज्जैन वेधशाला तथा ग्वालियर के केन्द्रीय-पुस्तकालय के पुनर्गठन की व्यवस्था भी सम्मिलित है।

अनिवार्य-प्राथमिक-शिक्षा—

अनिवार्य-प्राथमिक-शिक्षा का प्रारम्भ ज़िला-नगरों तथा उनके निकटवर्ती ५ या १० मील की परिधि के गाँवों में किया जा चुका है और १८०० अध्यापकों की नियुक्ति की जा चुकी है। शिक्षितों की बेकारी कम करने की योजना में ४०० अध्यापकों की नियुक्ति की गई है। स्त्री-शिक्षा के विकास के हेतु ३४१ प्राथमिक शालाओं तथा १ नार्मल स्कूल की स्थापना हो चुकी है तथा १० प्राथमिक शालाओं को माध्यमिक शालाओं में, ८ माध्यमिक शालाओं को उच्च विद्यालयों में और १ उच्च-विद्यालय को अन्तर्-महाविद्यालय में उन्नत किया जा चुका है। दो बुनियादी-केन्द्रों की स्थापना की जा चुकी है और २ नार्मल-स्कूलों एवं ७५ प्राथमिक-शालाओं को बुनियादी-शालाओं में परिवर्तित किया जा चुका है। १६१ सामाजिक-शिक्षा-केन्द्र और १६४ पुस्तकालय तथा वाचनालय खोले जा चुके हैं।

चिकित्सा—

पंचवर्षीय योजना में चिकित्सा के अन्तर्गत ११८.०९ लाख रुपए व्यय किए जावेंगे। इस धनराशि से इन्दौर में मेडिकल कालेज तथा अस्पताल-भवन-निर्माण, १०६ आयुर्वेदिक औषधालयों तथा ६ श्रेणीबद्ध चिकित्सालयों की स्थापना की व्यवस्था की जायगी। इसके अतिरिक्त गाँवों के लिए औषधि-पेटियाँ वितरित करने की व्यवस्था, २५ शय्यावाले एक आयुर्वेदिक चिकित्सालय की स्थापना तथा उज्जैन में क्षयरोग-चिकित्सालय एवं आयुर्वेदिक-चिकित्सालय के भवनों का निर्माण, मेडिकल कॉलेज तथा अस्पताल, क्षयरोग-चिकित्सालय एवं आयुर्वेदिक चिकित्सालय के भवनों का निर्माण-कार्य इस कार्यक्रम में सम्मिलित है। अब तक मेडिकल कालेज एवं अस्पताल, क्षयरोग-चिकित्सालय और आयुर्वेदिक-चिकित्सालय के भवनों का निर्माण-कार्य प्रारम्भ हो चुका है। ३१ नवीन औषधालयों तथा ६ श्रेणीबद्ध चिकित्सालयों की स्थापना भी हो चुकी है।

जनकार्य की पंचवर्षीय-योजना पर ३४.९२ लाख रुपए व्यय किए जाने को हैं। इसके अन्तर्गत मलेरिया-विनाशक-कार्य, १३ क्षयरोग-उपचारालयों, २३ प्रसूतिगृहों तथा बाल-कल्याण-केन्द्रों की स्थापना, चल-चिकित्सालयों का विस्तार, लिम्फ़-डिपो का पुनर्गठन, बी.सी.जी. टीकों का कार्य तथा ११ कुष्ठ-चिकित्सालयों की स्थापना की जायगी। अब तक ९ क्षयरोग-चिकित्सालय एवं १६ प्रसूतिगृह एवं बाल-कल्याण-केन्द्र खोले जा चुके हैं। २९२२ ग्रामों में मलेरिया-विनाशक कार्य प्रारम्भ किया गया है। बी. सी. जी. के अभियान के अन्तर्गत लगभग २० लाख लोगों का परीक्षण हो चुका है तथा ६ लाख व्यक्तियों के बी.सी.जी के टीके लगाए जा चुके हैं।

जनस्वास्थ्य-इंजीनियरिंग—

जनस्वास्थ्य-इंजीनियरिंग में ग्वालियर, उज्जैन, शुजालपुर, बड़नगर, खाचरौद, रतलाम, गुना, धार और झाबुआ में वाटरवर्क्स के निर्माण की व्यवस्था, इन्दौर, उज्जैन, गुना, शिवपुरी, राजगढ़, भिण्ड तथा भेलसा के जलघरों में सुधार किए जाने की व्यवस्था प्रस्तावित की गई है। इस कार्यक्रम में इन्दौर, भेलसा तथा मन्दसौर में गन्दी नालियाँ बनाने तथा औद्योगिक गृह-निर्माण तथा नगरों के भवन-निर्माण-कार्य भी सम्मिलित हैं। उज्जैन, शुजालपुर, बड़नगर तथा खाचरौद में वाटरवर्क्स बनाए जा चुके हैं। भेलसा और मन्दसौर में गन्दी नालियों के निर्माण का कार्य पूरा हो चुका है।

श्रम तथा श्रम-कल्याण—

श्रम तथा श्रम-कल्याण के लिए ८.२१ लाख रुपयों की धनराशि का निवेश किया गया है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत श्रमकल्याण-केन्द्रों को आर्थिक सहायता प्रदान करने, औद्योगिक-गृह-निर्माण के लिए ऋण देने और ४ स्वास्थ्य-केन्द्रों की स्थापना की व्यवस्था है।

पिछड़ी हुई जातियों का विकास—

पंचवर्षीय योजना में पिछड़ी हुई जातियों की उन्नति के लिए ८८.६२ लाख रुपए व्यय किए जायँगे। इनमें से ५८.६२ लाख रुपए परिगणित जनजातियों (आदिवासियों) पर तथा ३०.०० लाख रुपए परिगणित तथा अन्य पिछड़ी हुई जातियों की उन्नति के लक्ष्य से व्यय किए जायँगे। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत ५ ताड़गुड़-केन्द्रों की स्थापना, बहु-कार्यकारिणी-सहकारी-समितियों का संगठन, ग्रामपंचायतों को वार्षिक सहायता, कच्ची सड़कों तथा छात्रावासों का निर्माण, छात्रवृत्तियों की व्यवस्था, सामाजिक-कल्याणकेन्द्रों की स्थापना, औषधियों का निःशुल्क प्रदाय, जीवन-विकास-केन्द्रों तथा बालवाड़ियों की स्थापना आदि कार्य करने का यत्न किया जा रहा है।

योजना के सारे कार्यक्रम पर दृष्टि डालने से ज्ञात होगा कि योजना के संशोधित रूप में ८३ लाख रुपयों की कमी कर दी गई है और वह २१.५९ करोड़ रुपयों की रखी गई है। किन्तु, दूसरी ओर से विकास-कार्यों पर पर्याप्त धन व्यय किए जाने की संभावना है। प्रथम पंचवर्षीय- योजना-काल में विकास-कार्यों पर व्यय की जानेवाली धनराशि का अनुमान ३७ करोड़ रुपए हो जाता है।

समृद्धि के लिए विद्युत-शक्ति

श्री चौधरी लहरीसिंह, सिंचनतथाविद्युत्-मंत्री, पंजाब

वर्त्तमान युग में बिजली ने इतना बुनियादी महत्त्व प्राप्त कर लिया है कि इसके बिना किसी भी क्षेत्र में, चाहे वह गृह-सम्बन्धी हो या व्यावसायिक, कृषिगत हो अथवा औद्योगिक, किसी भी तरह की उन्नति अथवा विकास का विचार भी नहीं किया जा सकता। राष्ट्र-निर्माण में बिजली की जो महत्ता है, वह वर्त्तमान रूस के जनक लेनिन द्वारा समाजवाद के सम्बन्ध में की गई सरल व्याख्या से प्रकट हो जाती है। उनकी व्याख्या में समाजवाद से अभिप्राय है "सोवियट" और "बिजली" का मेल अर्थात् श्रमिकों का संगठन और विज्ञान के नवीनतम साधनों का उपयोग।

आज हम सब भारतवासी जिस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए संघर्ष कर रहे हैं, वह है राष्ट्र की सामूहिक समृद्धि। आज की परिस्थितियों में समृद्धि की व्याख्या "प्रयत्न" और "बिजली" के शब्दों में करना अनुचित न होगा। भारत की धरती के लाखों-करोड़ों सपूत राष्ट्रीय पुनर्जागरण के लिए कोई भी कसर बाकी न उठा रखेंगे और जब इनके प्रयत्नों को 'बिजली' का सहयोग मिलेगा, तब सर्वसाधारण की सुख-समृद्धि और उसके लिए बाहुल्य और प्रचुरता प्राप्त करने के हमारे चिर-प्रतीक्षित स्वप्न, विश्वास है कि, अवश्य साकार होंगे।

भारत के शासन और हमारे नेताओं ने बिजली के महत्त्व का भली भाँति अनुभव कर लिया है और यही कारण है कि प्रथम पंचवर्षीय योजना में कुल खर्च का मुख्य भाग अर्थात् २५ प्रतिशत से भी अधिक सिंचाई और बिजली की योजनाओं के लिए सुनिश्चित किया गया। पंजाब राज्य सौभाग्यशाली है कि इसके एक भाग में एक महत्तम विद्युत्-परियोजना, भाखड़ा नंगल, आई है। बड़े परिमाण में बिजली की उपलब्धि की तात्कालिक आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए इस परियोजना के सम्बन्ध में उचित गति से कार्य करने का यत्न किया गया। दुष्कर कठिनाइयें तथा सतत मानवीय प्रयत्नों में एक प्रकार की भगीरथ होड़-सी लग गई। गंगूवाल का बिजलीघर और इसकी पारेषण-संहति (ट्रांसमिशन सिस्टम) राष्ट्र के लिए एक

ऐसा वरदान है, जो हमारे नेताओं की आयोजन-शक्ति और हमारे इन्जीनियरों के सतत सक्रिय परिश्रम का फल है।

सन् १९४७ के बँटवारे के फलस्वरूप उहल-नदी-योजना बुरी तरह क्षत-विक्षत हो गई, क्योंकि पारेषण-संहति (ट्रान्समिशन सिस्टम) का मुख्य भाग पाकिस्तान में रह गया। सौभाग्यवश जोगिन्दरनगर का बिजलीघर हमारे हिस्से में आया। विस्थापित उद्योगों के पुनःस्थापन और खाद्य-उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए यह अत्यन्त अनिवार्य था कि शक्ति के इस स्रोत से सर्वोत्तम ढंग पर और अधिकाधिक रूप से लाभ उठाया जाय और वह लाभ उठाने का यत्न भी किया गया। उद्योग और कृषि-सम्बन्धी तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भारतीय पंजाब राज्य के पूर्वी भागों में कई 'थर्मल सेट' लगाने पड़े और उसके साथ ही भाखड़ा-नंगल-विद्युत-परियोजना की, जो उस समय अपनी आरम्भिक अवस्था ही में थी, सत्वर सम्पन्नता के लिए दत्तचित्त होकर प्रयत्न आरम्भ कर दिए गए। यह बात गर्व और हर्ष की है कि प्रशिक्षित श्रम और सामग्री की उपलब्धि में होनेवाली बहुत-सी कठिनाइयों और विदेशों से आनेवाली मशीनरी में विलम्ब के बावजूद भी हमारे इन्जीनियर इस परियोजना के प्रथम भाग को इतने कम समय में सम्पन्न करने में सफल हो गए हैं।

गंगूवाल के बिजलीघर के चालू हो जाने से पंजाब और उसके पड़ोसी राज्यों के निवासियों की कतिपय चिर-प्रतीक्षित कल्पनाएँ साकार होने जा रही हैं। गंगूवाल के बिजलीघर का अधिष्ठापित सामर्थ्य जोगिन्दरनगर के बिजलीघर के समान ही है, किन्तु, यह सामर्थ्य एक वर्ष के बाद, जब कोटला का बिजलीघर चालू होगा दुगना हो जायगा। इन बिजलीघरों में इतनी ही मात्रा में और बिजली पैदा करने का भी सामर्थ्य है। इसके अलावा भाखड़ा के बिजलीघरों से बिजली मिलनी है। भाखड़ा का बिजलीघर सम्भवतः भारत का सबसे बड़ा बिजलीघर होगा, जहाँ का हर यूनिट ९३००० किलोवाट-शक्ति का है। इन बिजलीघरों से पैदा होनेवाली बिजली १८०० मील लम्बी पारेषणसंहतियों (ट्रांसमिशन-लाइनों) द्वारा पंजाब, पेप्सू, हिमाचलप्रदेश और दिल्ली के विविध 'लोड'-केन्द्रों में पहुँचेगी। नंगल-दिल्ली लाइन पर पारेषणशक्ति (ट्रांसमिशन-पावर) २२०००० वोल्ट्स होगी और यह वोल्टेज भारत में प्रयुक्त किसी भी वोल्टेज से अधिक है। इन लाइनों से ७० से अधिक बड़े नगरों के अलावा इर्द-गिर्द के क्षेत्रों और पेप्सू, राजस्थान, हिमाचलप्रदेश और दिल्ली के राज्यों आदि के बहुत-से क़स्बों और गाँवों को बिजली मिलेगी। उहल-नदी-योज़ना से बिजली उपलब्ध करनेवाले क्षेत्रों के बाहर के शहरी क्षेत्र बिजली के लिए तरसते रहे हैं और जहाँ कहीं भी यह उपलब्ध थी, वहाँ महँगे भावों की शिकायतें होती रही हैं और देहाती इलाक़ों के

लोगों ने तो कभी बिजली के स्वप्न ही नहीं देखे थे। इस बिजली से न केवल पुराने उद्योग ही पुनः स्थापित हो जायेंगे, अपितु, नए-नए उद्योगों का विकास भी होगा और राज्य की उस पूँजी को, जो बँटवारे के समय बिजली तथा अन्य अनिवार्य आवश्यकताओं के अभाव में बाहर चली गई, धीरे-धीरे राज्य में लौटाने में सहायता मिलेगी। बड़े-बड़े उद्योग–संगठनकर्ता इस राज्य में किसी भी परिमाण में सस्ती क़ीमत पर बिजली की उपलब्धता के कारण बड़े-बड़े उद्योगों की स्थापना के लिए उत्सुक हैं और यह बात अब कही जा सकती है कि वह क्षेत्र निकट भविष्य ही में एक बड़े औद्योगिक क्षेत्र के रूप मे परिवर्तित होनेवाला है।

चूँकि भारत एक कृषि-प्रधान देश है, इसलिए, इसकी समृद्धि बहुत हद तक औद्योगिक उन्नति के साथ-साथ इसकी कृषि-सम्बन्धी उन्नति पर आश्रित है। कृषि के लिए बिजली के प्रयोग से हमारे देहाती जीवन और देहाती अर्थव्यवस्था में आमूल रूप से एक क्रान्ति आ जाने की संभावना है। परिश्रमी किसानों को अपने कठिन कामों की सम्पन्नता में 'बिजली' मित्र के समान सहयोग देगी और उनके लिए सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग लेने के लिए ऐसे अवसर जुटाएगी, जो उन्हें अब तक नहीं मिले। जहाँ नहरें नहीं, वहाँ बिजली 'ट्यूबवेलों' द्वारा सिंचाई का सबसे उत्तम और सबसे सस्ता साधन है। बिजली के मिल जाने से इन इलाक़ों के किसानों को अब केवल वर्षा की दया ही पर निर्भर न रहना पड़ेगा।

'ट्यूबवेल' लगाने की एक बड़ी योजना पंजाब-सरकार ने बनाई है और इस सम्बन्ध में काफ़ी सफलताएँ प्राप्त की जा चुकी हैं। अब वह दिन दूर नहीं, जब पंजाब एक बार फिर देश का एक महत्त्वपूर्ण अन्नभांडार बन जायगा और देश की खाद्य-सम्बन्धी आवश्यकताओं के एक मुख्य भाग की पूर्ति करेगा। बिजली शिक्षित वर्ग को कृषि-उद्योग की ओर आकृष्ट करने में सहायता देगी और जल्द ही हमारी देहाती सामाजिक व्यवस्था में एक सर्वांगीण क्रान्ति आने की संभावना होगी।

घरेलू मोर्चे पर भी बिजली अपने चमत्कार दिखाएगी। यहाँकी गृहिणियों को खाना पकाने, कपड़े धोने, घर साफ़ सुथरा रखने तथा अन्य घरेलू कामों में बिजली की सहायता मिलेगी और उनके लिए ये काम सरल बन जाएँगे। घर में प्रायः कोई ऐसा काम नहीं है, जो बिजली से नहीं हो सकता।

व्यवसासियों को अपने व्यवसाय के विज्ञापन में बिजली बड़ी मदद दे सकती है। कुटीर और छोटे-बड़े सभी प्रकार के उद्योगों के विकास से हमारे नौजवानों को काम के बड़े अवसर मिलेंगे और इस प्रकार देश की राष्ट्रीय सम्पत्ति और वैयक्तिक आय में काफ़ी वृद्धि हो जायगी।

समृद्धि के लिए विद्युत्-शक्ति

अपने देश के विकास के लिए अपनी ओर से पूरा ज़ोर लगा देने के दृढ़ संकल्प को लेकर और भाखड़ा-नंगल विद्युत्-परियोजना से प्रचुरमात्रा में बिजली उपलब्ध कर हम आज गंगूवाल-बिजलीघर के उद्घाटन (२ जनवरी १९५५) के इस ऐतिहासिक अवसर पर बाहुल्य और समृद्धि की ओर ले जानेवाले प्रगति-पथ पर पग रखने का प्रयत्न कर रहे हैं।

भदावर के इतिहास की कठिनाइयाँ

— न्यायमूर्त्ति श्री व्रजकिशोर चतुर्वेदी —

भदौरिया राजपूतों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेकानेक कथाएँ हैं। ये लोग अपने-आपको चौहान राजपूत कहते हैं। स्वनामधन्य महामहोपाध्याय कविराज श्यामलदासजी ने हिन्दी में पहला इतिहास 'वीर-विनोद' के नाम से लिखा था। उदयपुर के स्वर्गीय महाराणा फ़तहसिह ने इसको मुद्रित कराया था। किन्तु, संभवतया कुछ बातें उदयपुर के पक्ष में न होने से उसका प्रकाशन अभी तक नहीं हुआ। स्वर्गीय गौरीशंकर हीराचन्द ओझाजी की कृपा से इस ग्रन्थ की एक हस्त-लिखित प्रति मुझे पढ़ने को मिल गई थी। इस ग्रन्थ में चौहानों के राजवंश का बड़ी खोज के साथ वर्णन लिखा गया है। इसके अनुसार, चाहमान से पचासवीं पीढ़ी में अजयपाल हुए, जिन्होंने अजमेर बसाया और १३४ वीं पीढ़ी में माणिक्यराज द्वितीय हुए। इनके दस पुत्र बड़े प्रतापी हुए :–(१) मुहुःकर्मा, (२) लालसिंह, (३) हरिसिंह, (४) शार्दूल, (५) पूर्णराज, (६) मौक्तिकराज, (७) निर्वाण, (८) कृष्णराज, (९) लसनराज, और (१०) प्रवालराज। इनमें से लालसिह ने मद्रदेश में विजय की और इनकी सन्तान मादेचे चहुँवान कहलाई। हरिसिह के बेटे धूवेटिए चहुँवान कहलाए। शार्दूल के बड़े पुत्र धनजी हुए, जिनके वंशज पंजाबी चहुँवान और छोटे टाँकजी हुए, जिनके वंशज टाँकजी चहुँवान हुए। मौक्तिकराज के सोनगिरिए चहुँवान और निर्माण के वंशज निरबाड़िए चहुँवान कहलाए। कृष्णराज ने पांड्य-देश में राज्य किया और उनके वंशज पाँडिए चहुँवान हुए। लसनराज ने गुजरात जीता। उनके वंशज गुजराती चहुँवान हुए। प्रबालराज ने बकसर में राज्य स्थापित किया। उनके वंशज बकसरिए चौहान हुए। पाँचवे पुत्र पूर्णराज ने भदावर जीता था और इनकी सन्तान भदौरिए चौहान कहलाई।

यह बात तो भदौरियों की उत्पत्ति के विषय में हुई। किन्तु, पूर्णराज के अनन्तर 'पठान-काल' में, वर्तमान मध्यभारत के प्राचीन ऐतिहासिक भाग भदावर का राज्य कैसा था, इस सम्बन्ध में कुछ भी पता नहीं चलता। हतिकांत अवश्य राजधानी था और दिल्ली-स्थित राजसेना को हतिकांती विद्रोह दबाने को बार-बार आना भी पड़ता था। उधर भदावर को डराने के लिए 'रपड़ी' पर भी सेना रखनी पड़ती थी।

रपड़ी, कंपिल, पटियाली, इटावा, चन्दवार, ग्वालियर और धौलपुर पठान-काल में महत्वपूर्ण स्थान थे। इनके इतिहासों से भदावर के इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ सकता है। किन्तु, यह बात कि मैनपुरी, इटावा, और कानपुर तक भदावर-राज्य फैला हुआ था, सत्य नहीं है। भदावर एक छोटा और सीमित राज्य था। पठान-काल में भी भदौरिए लूटमार के लिए प्रसिद्ध थे। सन् १४२६ ईसवी का ज़िक्र करते हुए यह्या-बिन-अहमद ने अपनी 'तवारीखे मुबारिकशाह' में लिखा है कि सुलतान मुबारिकशाह अपने दुश्मन इब्राहीमशाह शर्की के भाग जाने पर हतिकांत गए और वहाँ राय ग्वालियर और दूसरे रईसों से माल-महसूल वसूल किया। सन् १४२९-३० में सुलतान ने हतिकांत के राय को बुरी तरह हराया। राय जाल्हौर के पहाड़ों में भाग गए। उनका राज्य तहस-नहस कर दिया गया। हतिकांत से सुलतान रपड़ी गए और वहाँ की जागीर कुतुबखाँ से छीनकर मलिक हमज़ा को दी। इसके अनन्तर 'नियामतउल्ला' की 'तवारीखे खान-जहाँ लोदी' में यह ज़िक्र आता है कि सोनहार और रपड़ी पर सुलतान बहलोल लोदी ने सुलतान हुसेन को बुरी तरह हराया। सुलतान हुसेन ने भागते हुए यमुना पार की। पार करते समय उसकी कई औरतें और बच्चे यमुना में डूब गए और रास्ते में भदौरियों ने उसको लूट लिया। सन् १५०९ ई० में सुलतान सिकन्दर लोदी ने हतिकांत पर हमला किया। क़त्ले आम के बाद विद्रोह शान्त हुआ। इसके अनन्तर 'अब्बास खाँ' के 'तुहफ़े अकबरशाही' या 'तारीखे शेरशाही' में फिर लूटमार का ज़िक्र आता है। शेरशाह यह ख़बर पाकर १२,००० सवारों की फ़ौज के साथ हतिकान्त आया और उसने विद्रोह दबाकर भी सेना वहीं रखनी उचित समझी। उसने स्थान-स्थान पर चौकियाँ भी स्थापित कीं। वास्तव में, पठान-सेना कम होते ही, अथवा हटते ही, भदावर फिर स्वतन्त्र हो जाता था। 'आईने अकबरी' में इस बात पर बड़ा आश्चर्य प्रकट किया गया है कि दिल्ली के निकट होते हुए भी, भदावर राज्य दिल्ली-शक्ति की इतनी उपेक्षा करता था। अकबर के राज्यारोहण के कुछ काल बाद भदावर में फिर विद्रोह हुआ। उसे शान्त करने के लिए आदम ख़ाँ के साथ एक बड़ी मुग़ल सेना हतिकांत भेजी गई और विद्रोह बुरी तरह दबा दिया गया। राजा भदावर को क़ैद करके दिल्ली ले जाया गया, जहाँ उनको हाथी के पैरों तले कुचलवा कर मरवा डाला गया। भदावर की स्वतन्त्रता की कथा यहाँ समाप्त होती है। अन्तिम राजा का नाम क्या था, यह भी निश्चित नहीं। कोई-कोई उनका नाम मदन बताते हैं। उनके बाद राजा मुकुटमणि (अथवा मुकतमन) ने मुग़ल सम्राट् के अधीन मनसबदारी स्वीकार कर ली और वह एकहजारी मनसब के अधिकारी होकर मुग़ल सेना के साथ युद्ध के लिए हिजरी सन् ९९२ में गुजरात भेजे गए थे। इसके अनन्तर भदावर के राजा, मुग़ल साम्राज्य-के अन्तर्गत, केवल सामन्त ही बने रहे। आगे का इतिहास, मुग़ल साम्राज्य के

इतिहास से इतना मिला-जुला है कि दोनों को अलग नहीं किया जा सकता। पठान-काल के इतिहासकारों ने फ़ारसी-भाषा ही में इतिहास लिखे हैं, जिनमें से अधिकांश के अनुवाद अँग्रेज़ी में हो चुके हैं, परन्तु, बहुतों के अनुवाद अभी तक नहीं हो पाए हैं। अतएव, जो सज्जन फ़ारसी-भाषा से अनभिज्ञ हैं, वे इस काल के भदावर के इतिहास पर किस प्रकार प्रकाश डाल सकते हैं ? इसमें सन्देह नहीं कि इस काल के इतिहासकारों ने भदावर को उपेक्षा की दृष्टि से देखा है। जहाँ हमें ग्वालियर में राय करणसिंह एवं कल्याणमल, राजा मान एवं विक्रमादित्य के नाम मिलते हैं, धौलपुर में राजा मानिकदेव एवं विनायकदेव, पटियाली में राय गणेश, बक्सर में राय तिलोकचन्द, कम्पिल एवं नौगाँव में राय प्रताप, इटावा के राजा हरसिंह राव, राय सिपर, राय दादंड और राय संगतसिंह के नाम विशेष रूप से लिए गए हैं, क्या यह आश्चर्य की बात नहीं कि हतिकांत के राय का नाम तक लेना उचित नहीं समझा गया ? जिस काल में भदावर स्वतन्त्र रहा, उस काल में दिल्ली-सेना ने न जाने कितनी बार हतिकांत पर हमला किया और न जाने कितनी बार भदावर को तहस-नहस किया। ऐसे समय में भदावर राज्य में न तो कोई सुव्यवस्था ही रही होगी और न कोई नए गाँव ही बसाए गए होंगे।

हम ऊपर बता चुके हैं कि अकबर के राज्य के पूर्व भदावर-राज्य स्वतन्त्र था और इस राज्य को धमकाने अथवा भयभीत करने के लिए मुसलमानों की एक सेना नारंगीवाह घाट पर यमुना के उस पार 'रपड़ी' स्थान पर रहती थी। इसके मुक़ाबिले में अपनी रक्षा के हेतु सम्भवतः भदावर की सेना मई अथवा बटेश्वर में रहती होगी। अतः हतिकांत के अतिरिक्त मई और बटेश्वर में भी शिला-लेखों एवं दानपत्रों की खोज करना अनिवार्य है। बटेश्वर एक बहुत प्राचीन तीर्थ-स्थान है। जैन लोगों में यह सौरिपुर के नाम से विख्यात है। हिन्दुओं की परम्परा के अनुसार दूसरे प्रदेश के राजाओं ने भी यहाँ मन्दिर बनवाए थे। दूसरे राजवंशों पर भी इस स्थान में खोज होने से पर्याप्त प्रकाश पड़ सकता है। स्वतन्त्र भदावर राज्य के राजाओं के नाम और उनके राज्यकाल एवं राज्य की सीमा का कुछ भी पता नहीं चलता। इस ऐतिहासिक दलदल में ऐसी दो-चार चट्टानें खोजने का हमने प्रयत्न किया, जिनपर कुछ देर पैर टिक सकें, किन्तु, इस प्रयत्न में हमें किंचित् भी सफलता नहीं मिल पाई। जो सज्जन भदावर का इतिहास लिखने के इच्छुक हों, उनसे हमारा अनुरोध यही है कि वे प्रथम इस काल के अन्धकार को हटाने का प्रयत्न करें। अकबर बादशाह के उपरान्त, भदावर के राजाओं के नाम अथवा उनका राज्य-काल जानने में विशेष बाधाएँ उपस्थित नहीं होतीं। मुग़ल साम्राज्य के अन्तर्गत भदावर के राजा केवल सामन्त ही रह गए थे। मुसलिम इतिहासकारों ने अपने ग्रन्थों में और विशेषतः "मौसर-

उल-उमरा" सरीखे ग्रंथों में इन सामन्तों और उनके वंश-वृक्षों का उल्लेख किया है। यह सभी सामन्त मुग़ल सेना में रहते थे और समय-समय पर काबुल, कन्दहार और दक्षिण सेना के साथ जाते थे। उनकी अनुपस्थिति में भदावर में राज्यकार्य किस प्रकार चला करता था? मन्त्री थे या नहीं? राज्य-व्यवस्था कैसी थी? इन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं मिलता। न यही पता चलता है कि हतिकांत से अटेर राजधानी किस संवत् में आई? इतिहास लिखने में यह दूसरी कठिनाई है, जिसको हल करना अनिवार्य है।

जहाँगीर बादशाह के काल में भदावर की गद्दी पर राजा विक्रमादित्य भदौरिया थे। उदयपुर के महाराणा अमरसिंह के विरुद्ध जब जहाँगीर ने शाहज़ादे खुर्रम को सेना के साथ भेजा, तब राजा विक्रमादित्य प्रमुख सरदारों एवं उमरावों के साथ उस सेना में सम्मिलित हुए थे। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि आचार्य केशवदास ने 'वीरसिंह-देव-चरित' में स्थान-स्थान पर भदौरियों का उल्लेख किया है।

इससे यह आभास मिलता है कि ओरछा-नरेश वीरसिंह देव और विक्रमादित्य भदौरिया के सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ थे। अपने 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' आचार्य केशवने जहाँगीर के तेईस सामन्तों का उल्लेख करते हुए राजा विक्रमादित्य भदौरिया की बड़ी प्रशंसा की है।

कहा नहीं जा सकता कि यह प्रशंसा कहाँ तक उपयुक्त थी। बादशाह जहाँगीर के बाईस वर्ष के शासन-काल (सन् १६०५ से १६२७ ई०) के प्रथम बारह साल का हाल स्वयं बादशाह ने 'तुजुक-जहाँगीरी' में लिखा है। इसमें विक्रमादित्य भदौरिया का कहीं उल्लेख नहीं है। अन्तिम (अर्थात् बारहवें) वर्ष के हाल में ता० २८ शअबान हिजरी सन् १०२६ का उल्लेख करते हुए केवल यह लिखा गया है कि उस दिन, राजा विक्रमादित्य भदौरिए के लड़के भोज ने अपने पिता का देहान्त होने पर, दक्षिण से आकर, दरबार में उपस्थित होकर, सौ मोहरों की नज़र की। तात्पर्य यह कि ३० अगस्त सन् १६१७ के पूर्व राजा विक्रमादित्य का देहान्त हो चुका था और राजा भोज गद्दी पर बैठे थे। शाहजहाँ के काल में राजा कृष्णसिंह का नाम ५ मार्च सन् १६३० को दक्षिण जाती हुई सेना में आता है और उसके अनन्तर राजा बदनसिंह भदौरिया का नाम आता है।

राजा कृष्णसिंह को मुग़ल सेना के सेनापति होकर ख़ानजहान लोदी आदि के साथ युद्ध करना पड़ा था और दौलताबाद की लड़ाई में उनकी वीरता चारों ओर व्याप्त हो गई थी। कृष्णसिंह के बाद उनके चचेरे भाई बदनसिंह गद्दी पर बैठे थे। एक दिन शाहजहाँ के दरबार में सहसा एक मस्त हाथी के आ जाने से खलबली मच गई। उस हाथी ने एक व्यक्ति को दाँतों से घायल कर दिया। सहसा राजा बदनसिंह

भदौरिए ने हाथी का मुक़ाबिला किया और उसे मार डाला। बादशाह इस पर बहुत प्रसन्न हुए और ख़िलअत देकर भदावर राज्य का पचास हज़ार रुपयों का कर माफ़ कर दिया। इनको डेढ़हज़ारी मनसबदारी मिली और फिर यह कन्दहार युद्ध में गए। दूसरे साल इनकी मृत्यु हो गई। यू० पी० मैनुएल ऑफ़ टाईटिल्स १९१७ की आवृत्ति में भदावर का वंश-वृक्ष राजा बदनसिंह से प्रारंभ किया गया है और उनका देहान्त सन् १६५५ ई० में और उनके पुत्र राजा महासिंह की मृत्यु सन् १६८४ ई० में बताई गई है। शाहजहाँ के अन्तिम काल में भाइयों के युद्ध में, महासिंह दाराशिकोह के साथ थे।

दारा ने चम्बल के जितने घाट उतरने योग्य समझे थे, सब रुकवा दिए थे। किन्तु, राजा चम्पत बुन्देले की सहायता से औरंगज़ेब और मुराद ने रोके हुए रास्ते छोड़कर, ता० ३ जून सन् १६५८ को ग्राम भदौरी से अपनी सेना को चम्बल पार कराया (वीरविनोद, भाग १, पृष्ठ ४१३)। यहाँ यह लिखना अनुचित न होगा कि ग्राम भदौरी ही से भदावर नाम पड़ा प्रतीत होता है। औरंगज़ेब के काल में राजा महासिंह ने बुन्देला-विद्रोह और युसुफ़ जै का दमन किया था और बादशाह के कृपा-पात्र हो गए थे। इनके लड़के उद्योतसिंह भदौरिया को पौष कृष्ण ४ सम्बत् १७३७ (११ दिसम्बर १६८० ई०) को चित्तौड़ की क़िलेदारी प्राप्त हुई (वीरविनोद, भाग २, पृष्ठ ६८) और फिर ता० ५ जनवरी १६८४ को दक्षिण की फ़तह पर और १२ नवम्बर १६८६ को इब्राहीमगढ़ क़िला लेने पर उनको बादशाह की ओर से खिलअत, इनाम, इकराम, मिले थे। (वीरविनोद, भाग २, पृष्ठ ३१२ एवं ३१७)। राजा उद्योतसिंह के दो पुत्र थे। प्रथम राजा कल्याणसिंह और द्वितीय सुजानसिंह। कल्याणसिंह के पुत्र राजा गोपालसिंह हुए और उनके पुत्र राजा अनूतसिंह अथवा अमृतसिंह हुए। अनूतसिंह के पुत्र राजा राजसिंह हुए। उसके अनन्तर छः राजा, एक के बाद दूसरे, सुजानसिंहजी के वंश से गोद लिए गए। इनके नाम यू० पी० मैनुएल ऑफ़ टाईटिल्स में इस प्रकार दिए गए हैं:— (१) राजा हनुमतजैसिंह, (मृत्यु सन् १७५५ ई०), (२) राजा बख़्तलालसिंह, (३) राजा परतापसिंह, (४) राजा सरनेतसिंह (मृत्यु १८३९ ई०) (५) राजा महेन्द्रसिंह (मृत्यु १६०२ ई०) और (६) राजा महेन्द्रमानसिंह। राजा गोपालसिंह अत्यन्त प्रतिभाशाली हुए थे, किन्तु, उनकी मृत्यु के अनन्तर मराठों ने भदावर को लूटा। तदनन्तर जाटों ने विजय प्राप्त की। भिण्ड, गोहद और अटेर शिन्दे के राज्य में मिल गए और राजधानी नौगाँव चली गई। राजा गोपालसिंह की मृत्यु के अनन्तर भदावर के दीपक की ज्योति अत्यन्त मन्द हो गई थी, जो सन् १८५७ ई० में सदा के लिए बुझ गई राजा गोपालसिंह के अनन्तर कोई राजा प्रसिद्ध एवं यशस्वी नहीं हुआ।

मुग़ल काल के जिन भदावर-राजाओं के नाम मुकुटमणि से लेकर बदनसिंह तक ऊपर लिखे गए हैं, वे नाम हमको एक स्थान पर नहीं मिले। कतिपय मुस्लिम इतिहासकारों के ग्रन्थों से संकलित किए गए हैं। सम्भव है, कई नाम छूट भी गए हों और कई नाम अशुद्ध हों। दानपत्रों एवं कुओं, मन्दिरों एवं घाटों के शिलालेखों से, पुरोहितों एवं जग्गा और भाटों की पुस्तकों से राजाओं के नाम एवं उनके काल निश्चित किए जाने रह गए हैं।

भारत-इतिहास के मुग़ल-काल में भदावर-राजाओं में तीन राजाओं का नाम बहुत प्रसिद्ध हुआ। प्रथम राजा विक्रमादित्य, द्वितीय राजा बदनसिंह और तृतीय राजा गोपालसिंह। राजा बदनसिंह ने बटेश्वर मेले का सूत्रपात किया था और बटेश्वर में 'बदन-बाहो' द्वारा यमुना नदी की धारा उलटी बहाई थी। अटेर-के क़िले की उत्तरी दीवार में खुदे शिलालेख से पता चलता है कि अटेर का पूर्व-नाम 'देवगिरि' था और सन् १६४५ ई० में राजा बदनसिंह ने क़िला-निर्माण प्रारम्भ किया और उनके पुत्र राजा महासिंह ने सन् १६६८ ई० में निर्माण-कार्य समाप्त किया। (देखिए 'ग्वालियर टुडे' पृष्ठ १५६)। वे कारण अज्ञात हैं, जिनसे राजधानी हतिकांत से हटाकर अटेर लाई गई, किन्तु, यह सम्भव है कि सन् १६४५ से १६६८ तक राजधानी अटेर आ गई होगी। राजा बदनसिंह का देहान्त कन्दहार में १६५५ ई० में हुआ, जहाँ सेना में वह नियुक्त थे। राजा महासिंह ने मार्च से जून १६६७ ई० में यूसफ़जई के विरुद्ध, सिन्धु नदी के दक्षिण किनारे पर बड़ी वीरता प्रदर्शित की और उनके लड़के उद्योतसिंह ने दक्षिण में एवं चित्तौड़ में पर्याप्त यश प्राप्त किया। वंश-परम्परानुसार राजा का ख़िताब पहले-पहल इन्हींको मिला। मुग़ल साम्राज्य के अन्तिम दिनों में राजा कल्याणसिंह भदावर की गद्दी पर थे। उनका नाम किसी इतिहास में नहीं मिलता। प्रतीत यह होता है कि वह किसी सेना में सम्मिलित नहीं हुए। कल्याणपुर (भत्तार) अवश्य उनके नाम पर बसाया गया है। वर्त्तमान बाह बसाने का श्रेय उन्हींको प्राप्त है। राजा कल्याणसिंह के पुत्र राजा गोपालसिंह ने भदावर की कीर्ति को चरम सीमा पर पहुँचा दिया था। किन्तु, यह निश्चय नहीं हो सका कि किस सम्वत् में राजा गोपालसिंह गद्दी पर बैठे। मीर ग़ुलामहुसैन ख़ाँ ने अपने ग्रन्थ 'सियरुल-मुत ख़ैरीन' और रुस्तम अली ने अपने इतिहास 'तारीख़े-हिन्दी' में राजा गोपालसिंह की पर्याप्त प्रशंसा की है। 'तारीख़े हिन्दी' सन् १७४१-१७४२ ई० में लिखी गई थी और बादशाह मुहम्मदशाह के शासन का इतिहास है। बादशाह फ़र्रुख़सियर का शासन ६ मार्च १७१२ से २८ फ़रवरी १७१९ ई० तक रहा। इस काल में सैयद भाइयों का बोलबाला था। वास्तव में अब्दुल्ला ख़ाँ और हुसैन अली ख़ाँ, दोनों भाई, शासन चला रहे थे। बादशाह केवल इन भाइयों की कठपुतली थे

और इन्हीं भाइयों ने फ़र्रुखसियर बादशाह को अन्त में मरवा डाला था। इनके अनन्तर कुछ महीनों के लिए, एक के बाद दूसरे, चार बादशाह गद्दी पर बिठाए गए और अन्त में सन् १७१९ ई० में मुहम्मदशाह बादशाह बनाए गए। राजा गोपालसिंह बादशाह फ़र्रुखसियर के काल ही में सेना में यश प्राप्त करने लगे थे। राजा अजीतसिंह राठौर का हराने को जो सेना ६ जनवरी सन् १७१४ ई० को हुसैनअली खाँ के नेतृत्व में दिल्ली से भेजी गई थी, उसमें राजा गोपालसिंह भदौरिया भी सम्मिलित हुए थे (विलियम इरविन, लेटर मुग़ल्स, जिल्द १, पृष्ठ २८६)। इससे अनुमान यह होता है कि राजा गोपालसिंह इसके ८, १० साल पूर्व ही गद्दी पर बैठ गए होंगे। सन् १७०७ ई० में भदौरियों ने गोहद जाटों से छीन लिया था और ३२ साल तक (१७०७ से १७३९ ई० तक) गोहद पर राजा भदावर का आधिपत्य रहा था। हमारा अनुमान है कि राजा गोपालसिंह ही ने गोहद छीना होगा, क्योंकि राजा कल्याणसिंह में सैनिक रुचि का कोई आभास प्रतीत नहीं होता।

बादशाह मुहम्मदशाह ने आख़िर तंग आकर सैयद भाइयों से युद्ध करना उचित समझा। ८ अक्टूबर १७२० को परगना पलवल में हसनपुर मौजा में युद्ध हुआ। इस युद्ध में बादशाह की सेना में राजा गोपालसिंह थे। हुसैनअलीखाँ युद्ध में मारे गए और अब्दुल्लाखाँ भाग गए। दूसरे दिन विजयोत्सव मनाने पर राजा गोपालसिंह आदि ने बादशाह को नज़र की और उनकी पदोन्नति हुई (लेटर मुग़ल्स, जिल्द २, पृष्ठ ६५ से ६८)। बादशाह मुहम्मदशाह के गद्दी पर बैठने के पाँचवें वर्ष के हाल का बयान करते हुए रुस्तमअली ने लिखा है कि राजा अजीतसिंह ने फिर विद्रोह किया। अजमेर और साँभर जीतकर वह नारनौल तक पहुँच चुके थे। उस समय एक लाख सेना के साथ शर्फ़ुद्दौला इरादतमन्दख़ाँ ने विद्रोह दबाने के लिए कूच किया। राजा अजीतसिंह इस सेना का मुक़ाबिला न कर सके। वह नारनौल से भाग गए और आख़िर अपने छोटे भाई बख़्तसिंह के हाथ से जोधपुर में मारे गए। शर्फ़ुद्दौला के साथ मुग़ल सेना में जो सामन्त सम्मिलित हुए थे, उनमें राजा जयसिंह सवाई, मुहम्मदख़ाँ बंगश और राजा गोपालसिंह भदौरिया प्रमुख थे। इन युद्धों के कारण राजा गोपालसिंह की कीर्त्ति चारों ओर फैल रही थी और उनके नाम के कारण भदावर में नए-नए गाँव बसाए जा रहे थे। बादशाह मुहम्मदशाह ने उनको धौलपुर में बारी का और ग्वालियर में नरवर का शासक नियुक्त किया था। राजा गोपालसिंह ने पिनाहट का क़िला बनाकर भदावर में पिनाहट को एक महत्त्वपूर्ण स्थान बना दिया था। राजा गोपालसिंह शूरवीर एवं राजनीतिज्ञ थे, किन्तु, राजभक्ति के जोश में आकर कहीं कहीं मर्यादा का अतिक्रमण कर जाते थे। बादशाह मुहम्मदशाह के शासन के दसवें साल का हाल वर्णन करते हुए रुस्तमअली ने शाहबाद, क़न्नौज, के पास चाचण्डी के क़िले के घेरे का उल्लेख किया

है। चांचण्डी का क़िला चन्देल राजपूत राजा हिन्दूसिंह के आधिपत्य में था। बुरहानुलमुल्क ने इस क़िले पर धावा बोला। क़िले पर विजय होने की कोई आशा नहीं रही, तब राजा गोपालसिंह संधि का संवाद लेकर हिन्दूसिंह से मिलने गए। राजा गोपालसिंह ने यह विश्वास दिलाया कि हिन्दूसिंह यदि तीन दिन को क़िला छोड़ देंगे, तो बादशाह की ओर से फिर उनका क़िले पर आधिपत्य करा दिया जायगा। राजा हिन्दूसिंह ने विश्वास करके क़िला छोड़ दिया, किन्तु राजा गोपालसिंह ने क़िले पर स्वयं अपना अधिकार कर लिया और हिन्दूसिंह को टकासा जवाब दे दिया। बुरहानुलमुल्क की फ़ौज ने हिन्दूसिंह की सेना को क़िले के बाहर आने पर घेर लिया और हिन्दूसिंह बुरी तरह हारा। मुस्लिम इतिहासकार रुस्तमअली ने लिखा है कि इस विश्वासघात का परिणाम राजा गोपालसिंह को शीघ्र ही भुगतना पड़ा और उनकी मृत्यु हो गई (एलियट, जिल्द ८, पृष्ठ ४६)। इस हिसाब से राजा गोपालसिंह की मृत्यु सन् १७२९ के आस-पास हुई और उनके पुत्र अनृतसिंह अथवा अमृतसिंह गद्दी पर बैठे। 'सियरुल- मुतख़ैरीन' में इनका नाम अनिरुद्धसिंह लिखा है, जो शुद्ध प्रतीत होता है। राजा गोपालसिंह भदावर के अन्तिम यशस्वी राजा थे। उनकी मृत्यु के उपरान्त भदावर-राज्य का वैभव शनैः-शनैः लुप्त होने लगा। दक्षिण से मराठा सेनाएं बाजीराव पेशवा के नेतृत्व में उत्तर की ओर बढ़ने लगी थीं और पेशवा को राजा छत्रसाल बुन्देला की पूर्ण सहायता मिल रही थी। सन् १७३७ ई० के मार्च महीने में मराठा-सेना भदावर के पास आ चुकी थी। राजा भदावर ने बादशाह से और अवध के शासक सआदतखाँ से सहायता की याचना की। बादशाह ने सआदतखाँ को सेना लेकर भदावर पहुँचने की आज्ञा दी, किन्तु, बुन्देलों और मराठों ने यमुना नदी के सब घाट रुकवा कर अवध की सेना को यमुना पार नहीं करने दिया। अतः, राजा अनिरुद्धसिंह को अकेले ही मराठा-सेना से युद्ध करना पड़ा। भदावर की सेना में ४५ हाथी, सात हज़ार घुड़सवार और बीस सहस्र पैदल सिपाही थे, किन्तु, मराठा सेना एक लाख के लगभग थी। दुर्भाग्य से राजा भदावर के एक भाई मराठों से मिल गए और राजा को अटेर के पास ही युद्ध में बुरी तरह पराजित होना पड़ा। भदावर की लूट के उपरान्त भी राजा को बीस लाख रुपए और दस हाथी मराठों को देने पड़े। अप्रैल १७३७ ई० में मल्हारराव होलकर, पिलाजी जाधव और बिट्ठूजी बुले मराठा सेना को लेकर रपड़ी होते हुए शिकोहाबाद, फ़ीरोज़ाबाद, एतमादपुर और जलेसर लूटते हुए निकल गए। इस लूटमार के अनन्तर भदावर की शक्ति बिलकुल कम हो गई थी। परिस्थितियों का लाभ उठाकर जाट राणा भीमसिंह ने १७३९ ई० में गोहद छीन लिया था। प्रतीत यह होता है कि राजा अनिरुद्धसिंह अधिक दिनों जीवित नहीं रह सके। बादशाह मुहम्मदशाह के शासन के तेईसवें साल का उल्लेख

करते हुए रुस्तमअली ने लिखा है कि जहीरुद्दौला अज़ीमुल्लाख़ाँ ने पाँच-लाख रुपए नज़राना लेकर राजा राजसिंह को भदावर की गद्दी पर बिठा दिया। यह घटना सन् १७४१-१७४२ ई० के लगभग हुई। यू० पी० मैन्युअल ऑफ़ टाईटिल्स और उत्तरप्रदेश के डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर (जिल्द ८) में राजसिंह का नाम भी नहीं लिया गया है। डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर (पृष्ठ ९१ एवं ९३) में लिखा है कि अनिरुद्धसिंह के कोई पुत्र नहीं था, अतएव, उनकी मृत्यु के उपरान्त उनके भाई हिम्मतसिंह गद्दी पर बैठे। यह निर्णय करना कठिन है कि राजा हिम्मतसिंह भाई के गोद आए थे अथवा अपने भतीजे राजा राजसिंह के। हमने पहले भ्रमवश यह लिख दिया है कि राजा हिम्मतसिंह सुजानसिंह के वंश में थे। वास्तव में राजा गोपालसिंह के दो पुत्र थे (१) राजा अनिरुद्धसिंह, (२) हिम्मतसिंह। डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर में दिए गए वंशवृक्ष के सभी नाम सही हों, इसमें भी सन्देह है, क्योंकि मौजा चितावली (परगना भिण्ड) की सनद जवाहरसिंह भदौरिए को राजा महेन्द्रप्रह्लाद भदौरिए की दी हुई बताई जाती है (तवारीख़ जागीरदार ग्वालियर, जिल्द २, पृष्ठ १८६)। इन राजा का नाम कहीं भी इस वंशवृक्ष में नहीं मिलता। कहा यह जाता है कि भिण्ड में भदौरियों की बाईस (२२) पीढ़ियों ने राज्य किया था। यह कहना कठिन है कि भिण्ड किस सन् में भदौरियों के आधिपत्य से चला गया। सन् १७६१ से सन् १८०३ ई० का इतिहास मराठों, जाटों और अँग्रेज़ों के संघर्ष का इतिहास है, जिसमें भिण्ड कभी इधर, कभी उधर जाता रहा। ग्राम मुंडियाखेड़ा, परगना भिण्ड, की सनद से पता चलता है कि संवत् १८३६ (सन् १७७९ ई०) में राजा भदावर ने यह ग्राम पं० मित्रकर ओझा को दिया था। इस सन् के बाद की कोई सनद माफ़ी, परगना भिण्ड में, भदौरियों की दी हुई नहीं दिखाई पड़ी। कई ग्रामों की माफ़ी की सनदें महादजी शिन्दे ने १७९० ई० में बहाल की हैं (देखिए तारीख़ जागीरदारान, जिल्द २, पृष्ठ १६७, १६९ और १७७)। एक ग्राम सेमरा राजा गोपालसिंह ने लक्ष्मीपति पुंडरीक को गुरुपूजा में दिया था। बताया यह जाता है कि जब यह देश महादजी शिन्दे के आधिपत्य में आया, तब लक्ष्मीपति के नाती कृष्णपति को महादजी अपने साथ पानीपत के तृतीय युद्ध में ले गए थे, जहाँ कृष्णपति युद्ध में मारे गए। सं० १८४० (सन् १७८३ ई०) में महादजी ने कृष्णपति के लड़के और भाई को सनद दी थी। पानीपत का यह युद्ध १७६१ ई० में हुआ था। तात्पर्य यह है कि भिण्ड के आसपास के ग्राम इस सन् के पूर्व भदावर से निकल गए थे। कम से कम १७९० में मराठों का यहाँ शासन था। राजा हिम्मतसिंह का देहान्त सन् १७५५ ई० में हुआ, राजा बख़तलालसिंह उनकी गोद आए। १७६१ ई० में पानीपत में मराठों की करारी हार हुई और जाट राजा सूरजमल ने ज़िला आगरा पर अपना आधिपत्य कर लिया। सन् १७६५ ई० में जाटों ने बाह भी

भदौरियों से छीन लिया । जाट शासन ने बाह और पिनाहट के दो परगने स्थापित किए । जुलाई, सितम्बर १७६७ ई० में जाट राजा जवाहरसिंह ने अटेर और भिण्ड पर हमला किया था और सारा भदावर जाटों के आधिपत्य में आ गया था । सन् १७६८ ई० में जवाहरसिंह की मृत्यु हुई और उसके कुछ काल बाद भिण्ड और अटेर फिर भदावर के पास आ गए और सन् १७७० ई० में बाह पर भदावर का आधिपत्य हो पाया । कम से कम पाँच साल तक राजा भदावर के पास कोई राज्य नहीं था । सन् १७८४ ई० में महादजी शिन्दे ने गोहद पर चढ़ाई करने के समय राजा भदावर को सहायता देने के लिए आज्ञा दी, किन्तु, भदावर-राजा ने कोई सेना नहीं भेजी । इसपर क्रुद्ध होकर शिन्दे ने भदावर-राज्य ज़ब्त कर लिया । फिर सन् १७८५ई० में बाह परगना में तीस ग्राम शिन्दे की ओर से राजा हिम्मतसिंह की विधवा रानी सुखावत को दिए गए, जो अभी तक भदावर में चले आते हैं । इस हिसाब से सन् १७८४ में भदावर भिण्ड से हट गए । बाद में यह ब्रिटिशों के अधीन एवं सहायक रहे । सन् १८०३ में अँग्रेजों की ओर से भिण्ड और अटेर इनको माफ़ी में दिए गए । किन्तु सुर्जी अञ्जनगाँव की संधि (३० दिसम्बर १८०३) की जो व्याख्या इलाहाबाद में ३ दिसम्बर १८०५ को हुई, उसके अनुसार परगना भिण्ड और अटेर शिन्दे की अमलदारी में मान लिए गए । यह पता नहीं चलता कि १८०३ से १८०५ ई० तक भिण्ड पर भदौरियों का आधिपत्य रहा या नहीं । किन्तु, यह बात निश्चित है कि भिण्ड में अन्तिम भदौरिए राजा बख्तलालसिंह थे और दुर्भाग्य से उन्हींके राज्यकाल में भदावर-राज्य तहस-नहस हुआ । राजा बख्तलालसिंह को बहुत विपत्तियों का सामना करना पड़ा और वे ब्रिटिशों के प्रबल समर्थक हो चुके थे । १८०३ ई० में बाह और पिनाहट में उन्होंने अँग्रेज़ों की सहायता के लिए सेना एकत्र की और फिर ग्वालियर पर जब अँग्रेज़ी सेना ने हमला किया, तब राजा बख्तलाल साथ थे । उस समय भदौरिया कुंजमन ग्वालियर का क़िलेदार था, जो राजा भदावर के साथ मिल गया था । ग्वालियर की विजय के उपरान्त राजा बख्तलालसिंह को अटेर इनाम में दिया गया, किन्तु, १८०५ में शिन्दे को वापस कर दिया गया । सन् १८०५ में परगना बाह-पिनाहट पर होलकर और राजा भरतपुर के बीस हज़ार सैनिकों ने हमला किया । राजा बख्तलालसिंह ने कर्नल बौवी की सेना पहुँचने तक शत्रुओं का मुक़ाबिला किया और उक्त कर्नल ने इनकी प्रशंसा करते हुए इनको भारी इनाम देने के लिए कम्पनी को सिफ़ारिश की । किन्तु, परिणाम कुछ नहीं हुआ । १८०८ में राजा भदावर का कचौरा घाट से घाट उतरने का कर वसूल करने का अधिकार ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने समाप्त कर दिया । बताया जाता है कि इस घाट से इस कर के द्वारा भदावर को सालाना एक लाख रुपए की आय होती थी । इसी साल बाह-पिनाहट के ज़मींदारों से बन्दोबस्त तय किया गया और राजा के बाह-

पिनाहट के ज़मींदारी अधिकार समाप्त किए गए। कुछ काल के अनन्तर तीस ग्रामों की आमदनी २४,१००) राजा बख़्तलालसिंह को दी गई। सन् १८४० के बन्दोबस्त में यही तीस गाँव राजा को माफ़ी में दिए गए दर्ज किए गए।

राजा बख़्तलालसिंह के अनन्तर उनके चचेरे भाई अजीतसिंह के पुत्र परतावसिंह राजा हुए और फिर परतावसिंह के पुत्र सरनेतसिंह भदावर के राजा हुए। इसके अनन्तर राजा महेन्द्रसिंह गोद आए, जिन्होंने १८५७ ई० में अँग्रेज़ों की सहायता करते हुए चम्बल के घाटों पर अँग्रेज़ों के विद्रोहियों को रोके रखा। यह धारणा निराधार है कि १८५७ ई० में राजा भदावर ने अँग्रेज़ों के विरुद्ध विद्रोह किया था। प्रत्युत इन राजा की सेवा से प्रसन्न होकर राजा महेन्द्रसिंह को व्यक्तिगत 'महाराजा' की पदवी से अलंकृत किया गया था और उसके अनन्तर सी० आई० ई० का टाइटिल भी मिला था।

+ + +

भदावर के इतिहास की कुछ मुख्य बातें हमने ऊपर लिखी हैं। राजा बख़्तलाल के बाईस पूर्वजों के नाम और उनके राज्यकाल निश्चित नहीं हैं। भदावर-इतिहास लिखने में मुख्य कठिनाई यही है। इन्हींके निश्चित होने पर भदावर-इतिहास की सामग्री, कुछ अंश में, पूर्ण हो सकेगी। अपने अध्ययन के आधार पर भदावर-इतिहास की एक सूक्ष्म रूप-रेखा प्रस्तुत करने का हमने इस लेख में प्रयत्न किया है और स्थान-स्थान पर जो कठिनाई प्रतीत हुई है, उसकी ओर भी इंगित किया है।

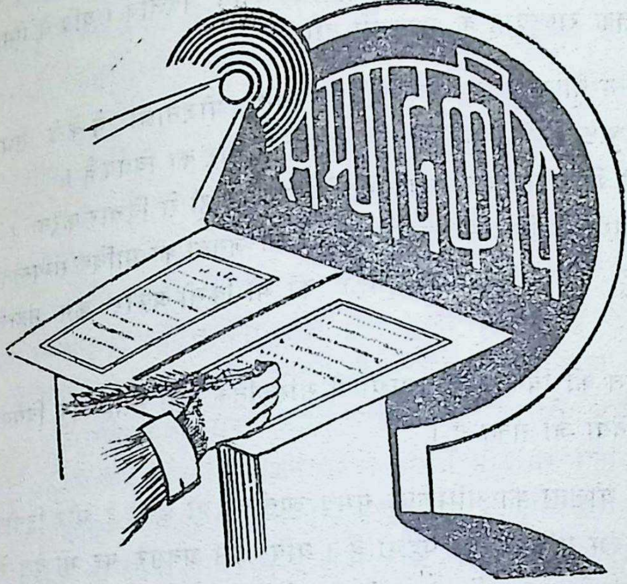

साहित्य और योजनाएँ

पाँच-पाँच वर्ष की अवधि के लिए राष्ट्रोन्नति की विभिन्न योजनाएँ बनाना आज के युग की एक प्रचलित परंपरा बन गया है। पंचवर्षीय योजनाएँ सफल हों या असफल, उनका प्रचार उनके नाम को आज घर-घर पहुँचाने का यत्न कर रहा है और जनता के मन में विविध आशाएँ उत्पन्न कर रहा है । लोकमानस की उत्कंठा आज उनकी ओर ऊर्ध्वदृष्टि है ।

पंचवर्षीय योजनाओं की असफलताएँ जनता में घोर निराशा उत्पन्न कर सकती हैं, अतः, उनकी सफलताओं के लिए सम्पूर्ण राष्ट्र को समवेत तथा प्रवलतम प्रयत्न करना चाहिए । उनकी सफलताएँ उचित दक्षतापूर्ण नियोजनों तथा उनसे भी अधिक दक्षतापूर्ण निर्वहनों पर निर्भर हैं ।

अनुभवहीनता, लालफ़ीताशाही, नौकरशाही, अज्ञान आदि अनेक बाधाएँ ऐसी हो सकती हैं, जो नेकनीयती से किए गए नियोजनों को भी काफ़ी हद तक असफल बना सकती हैं । अतः, इन विभिन्न बाधाओं को अपने दृढ़ निश्चय तथा सतत प्रयत्न से परास्त करके योजनाओं के निर्माण तथा उन्हें कार्यान्वित करने के मार्ग पर राष्ट्र को बढ़ना पड़ेगा ।

उत्पादन की अधिकतम सम्पन्नता तथा वितरण की अधिकतम न्यायपूर्णता ही किसी योजना की सफलता का प्रमुख मापदंड हो सकती है ।

इस दृष्टि से, नियोजनों में, मानवीय क्षमता की स्वाभाविक सीमितता के

कारण, कुछ त्रुटियाँ रहना संभव है । देश के योग्य विचारकों का यह पवित्र कर्त्तव्य है कि उन त्रुटियों की ओर निस्संकोच और निर्भय होकर ध्यान दिलावें । यदि वे ऐसा न करेंगे, तो किसी हद तक राष्ट्रद्रोह के अपराधी होंगे ।

आर्थिक तथा अन्य दृष्टियों से भारत की पंचवर्षीय योजनाओं में केन्द्र तथा राज्यों के स्तर पर क्या त्रुटियाँ हो सकती हैं, यह अलग विचार का विषय है ।

हमें इन पंक्तियों में सांस्कृतिक तथा साहित्यिक दृष्टि ही से विचार करना है ।

यह माना कि राष्ट्र के विकास का मेरुदंड उसकी जनता की आर्थिक सम्पन्नता ही होती है, किन्तु, राष्ट्र की सांस्कृतिक उन्नति का भी किसी प्रकार कम महत्त्व नहीं होता ।

खेद है कि भारत की विकास-योजनाओं में सांस्कृतिक तथा साहित्यिक विषयों को उचित महत्त्व नहीं दिया जा सका है ।

प्रथम पंचवर्षीय योजना का अधिकांश समय व्यतीत हो चुका है और द्वितीय पंचवर्षीय योजना का प्रारंभ संनिकट आ पहुँचा है । यदि इस अवसर पर भी देश के सांस्कृतिक क्षेत्रों के कार्यकर्ता तथा साहित्यकार नियोजनों में सांस्कृतिक और साहित्यिक विषयों की उपेक्षा के विरुद्ध अपनी आवाज़ बुलंद न करेंगे, तो द्वितीय पंचवर्षीय योजना में भी साहित्य, कला और संस्कृति के उन्नयन के आयोजनों को उचित स्थान प्राप्त न हो सकेगा ।

आहार, परिधान तथा आश्रय-स्थान पाने की आवश्यकता पशुओं और मानवों में समान है । जो मानव अपनी इन प्रारंभिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी नहीं कर पाते, वे पशुओं से भी गए-बीते हैं । अतः, यह तो अनिवार्य रूप से आवश्यक है ही कि यथासंभव न्यूनतम समय में देश के प्रत्येक मानव की उक्त प्रारंभिक आवश्यकताओं की न्यायोचित पूर्ति की जाय और उक्त आवश्यकताओं की पूर्ति के आयोजनों को पंचवर्षीय योजना में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो । किन्तु, मानव को पशु से पृथक् और उन्नत सिद्ध करनेवाली अन्य आवश्यकताएँ भी हैं, जिनकी नियोजनों में किसी भी रूप में उपेक्षा न की जानी चाहिए । राष्ट्र की साहित्यिक तथा सांस्कृतिक उन्नति की आवश्यकता भी उन्हीं आवश्यकताओं में है ।

राष्ट्र की साहित्यिक उन्नति का अर्थ यह नहीं है कि साहित्यकारों के विचारों तथा भावनाओं का किसी भी रूप में बद्धीकरण (रेजिमेन्टेशन) किया जाय और आर्थिक विकास की योजनाओं का प्रशस्तिपाठ और प्रोत्साहन ही साहित्यिक सर्जन और विकास का प्रतीक माना जाय । साहित्यसर्जन की आत्मा और प्राण तो मुक्ति ही हो सकती है । सब प्रकार के बंधनों से मुक्त रहते हुए मानवता की प्रगति तथा सांस्कृतिक

विकास के आत्मस्फूर्त लक्ष्य से जो सत्य, शिव तथा सुन्दर का कलात्मक सर्जन किया जाता है, साहित्यक्षेत्र में वही वास्तविक उन्नति का मापदंड माना जा सकता है।

इस दृष्टि से, अन्न, वस्त्र आदि के स्रष्टा किसान और मज़दूर को जो स्वतन्त्रता, समृद्धि तथा सुविधा देने का प्रयास पंचवर्षीय विकासयोजनाओं द्वारा किया जा सकता है, वही आत्मिक तथा भौतिक स्वतन्त्रता, समृद्धि तथा सुविधा साहित्य के स्रष्टा कलाकार को भी मिलनी चाहिए और उसके स्तर के अनुपात में मिलनी चाहिए। यदि विकासयोजनाओं में इसका ख़याल नहीं रखा जाता, तो वे योजनाएँ एकांगी तथा असफल ही कही जायँगी और उनके द्वारा एक ऐसे ही राष्ट्र का विकास सम्भव होगा, जिसके विकसित शरीर तो है, किन्तु, आत्मा और हृदय नहीं है।

निस्संदेह ऐसा भारत राष्ट्र आज किसी का भी अभीष्ट नहीं है। फिर क्यों नहीं साहित्य को पंचवर्षीय योजनाओं में उचित और सम्मानपूर्ण स्थान दिया जाता?

इसका कारण साहित्यकारों का संकोच ही हो सकता है। आज किसानों और मज़दूरों में तो इतना साहस और सामर्थ्य है कि वे अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की उचित पूर्ति के लिए उपयुक्त योजनाएँ बनवाने के लिए हुंकार करें, किन्तु, जनता को प्रेरित करनेवाले युगस्रष्टा साहित्यकारों में इतना साहस नहीं नज़र आता कि वे योजनाओं के निर्माताओं को अपने आत्मिक तथा लौकिक विकास की योजनाएँ बनाने को विवश कर सकें।

प्रथम और द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं के इस संधिकाल पर साहित्यकारों को अत्यन्त सावधान होकर संगठित रूप से ज़ोरदार प्रयत्न करना चाहिए कि उन्हें भी एक महत्त्वपूर्ण केन्द्रविन्दु मानकर योजनाओं के शिल्पी अपने अगले क़दम उठावें और उन्हें भी राष्ट्र से वह सब मिले, जिसके वे न्यायतः अधिकारी हैं और परतन्त्रता के युग में उन्हें जिससे वंचित रहना पड़ा था। शासन को और शासन के द्वारा समाज को ऐसी योजनाएँ बनाकर कार्यान्वित करनी ही होंगी, जिनसे साहित्यकार अपनी आत्मा, हृदय, मन, प्राण, लेखनी और वाणी की स्वतन्त्रता को पूर्णतया अक्षुण्ण रखते हुए भी साहित्यसर्जन और जीवनयापन के न्यायोचित साधन और सुविधाएँ पा सकें।

विनोबाजी का एक सुझाव

आचार्य विनोबा भावे ने हाल में बिहार के देवघर-क्षेत्र के चित्रा-गाँव की एक प्रार्थना-सभा में भाषण देते हुए यह सुझाव दिया कि प्रत्येक सवर्ण परिवार को कम से कम एक हरिजन को अपना एक सदस्य बनाकर अपना लेना चाहिए और उसे उसी रूप में अपने साथ बनाए रहना चाहिए। यह कार्य पचास हज़ार विद्यार्थियों के लिए छात्रावास की व्यवस्था करने से भी अधिक उदार तथा महान् होगा। उन्होंने आगे कहा कि हरिजनों को केवल क़ानून द्वारा ही समानता न मिलनी चाहिए, बल्कि,

व्यवहार में भी उनके साथ पूर्ण समानता बरती जानी चाहिए । हरिजनों का हमें उसी ममत्व के साथ ध्यान रखना चाहिए, जिस ममत्व के साथ हम अपने पुत्रपुत्रियों का ध्यान रखते हैं । सामाजिक तथा आर्थिक दोनों प्रकार की विषमताएँ दूर की जानी चाहिए । सामाजिक तथा आर्थिक गुलामी के क़ायम रहते राजनीतिक आज़ादी का कोई अर्थ नहीं है ।

विनोबाजी के उपर्युक्त विचारों में एक मूलभूत तथा महत्त्वपूर्ण सत्य निहित है ।

विधानों में तथा शाब्दिक रूप में आज भले ही हरिजनों तथा सवर्णों की समानता की दुहाई दी जाती हो, किन्तु, व्यावहारिक रूप में स्थिति में उल्लेखनीय सुधार अभी तक नहीं हो पाया है । आचार्य विनोबाजी के उपर्युक्त सुझाव में स्वार्थ-त्याग तथा सम्पत्तिदान की वह प्रेरणा भी मौजूद है, जो उनके वर्त्तमान जीवनकार्य (मिशन) का एक महत्त्वपूर्ण अंग है ।

यदि प्रत्येक सवर्ण-परिवार विनोबाजी के इस सुझाव पर ईमानदारी से अमल करे, तो न केवल छुआछूत की भावना के मूल पर ही आघात हो, बल्कि, परिवार के अंग बन जाने के कारण दत्तक हरिजन का परिवार की सम्पत्ति में भी हिस्सा हो सके ।

इस प्रकार आचार्यजी का यह सुझाव दुहेरी लक्ष्यसिद्धि की प्रेरणा रखता है और इसका महत्त्व निर्विवाद है ।

प्रश्न यह है कि क्या सवर्ण परिवारों में इतनी उदारता और मनुष्यता है कि वे आचार्यजी के इस सुझाव पर उचित रूप से अमल करें ।

प्रेस-कमीशन के सुझावों पर अमल

भारतसरकार द्वारा नियुक्त प्रेस-कमीशन ने पत्रों तथा पत्रकारों के हितों तथा समस्याओं से सम्बद्ध प्रश्नों पर अपनी रिपोर्ट में जो सुझाव दिए हैं, उनमें अनेक अपूर्णताएँ रह गई हैं । फिर भी, उस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण प्रारंभिक क़दम के रूप में उसका काफ़ी महत्त्व अनुभव किया गया है ।

यद्यपि शासकीय प्रवक्ताओं द्वारा समय-समय पर ऐसे आश्वासन दिए जाते रहे हैं, जिनसे यह आशा हुई है कि उक्त आयोग ने जो सुझाव दिए हैं, उनपर शीघ्र ही यथासम्भव अमल करने का यत्न किया जायगा, तथापि, व्यावहारिक रूप में इस दिशा में अभी तक आवश्यक क़दम नहीं उठाए जा सके हैं ।

स्वतन्त्र भारत में पत्रकारों और पत्रों का महत्त्व निर्विवाद है और यह अत्यन्त आवश्यक है कि वे राष्ट्र की पवित्र और मूल्यवान सम्पत्ति समझे जावें और सदाशयता-

शून्य पूँजीवाद को उनके जीवन के साथ और अधिक अनियंत्रित खिलवाड़ न करने दिया जाय।

समस्त भारत के लिए एक लिपि

मद्रास हाईकोर्ट के एक न्यायाधीश श्री पी० गोविन्द मेनन ने त्रावणकोर-विश्वविद्यालय के हाल दीक्षांत-समारोह में अभिभाषण देते हुए कहा कि देवनागरी लिपि सारे भारत की सर्वसामान्य लिपि के रूप में मान ली जानी चाहिए, जिससे भाषा की समस्या बिना किसी विवाद के सन्तोषजनक रूप में हल हो सके। इसके लिए विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं की विभिन्न विषयों की पुस्तकें देवनागरी लिपि में प्रकाशित की जानी चाहिए। संस्कृत साहित्य के अध्ययन की भी भारतव्यापी आवश्यकता है, क्योंकि संस्कृत साहित्य में हमारी संस्कृति की निधि निहित है।

श्री मेनन की इन बातों का महत्त्व इसलिए और भी अधिक है कि वे एक ऐसे विद्वान् के मुख से निकली हैं, जिसकी मातृभाषा की लिपि देवनागरी नहीं है। ऐसे व्यक्ति के द्वारा देवनागरी लिपि के साथ शुद्ध न्याय ही हो सकता है, पक्षपात नहीं।

हिन्दी, मराठी आदि जिनकी मातृभाषाएँ हैं, वे तो देवनागरी लिपि से पूर्ण परिचित हैं ही, अन्य भाषाओं के साहित्य के देवनागरी लिपि में प्रकाशित होने पर उन भाषाओं के बोलनेवाले भी देवनागरी लिपि से परिचित हो सकेंगे।

संस्कृत भाषा के अधिकांश भारतीय भाषाओं की स्रोतभाषा होने के कारण तथा संस्कृत में भारत के समस्त प्रान्तों का प्राचीन साहित्य निहित होने के कारण संस्कृत की लिपि देवनागरी को वैसे भी व्यापक आधार प्राप्त है। ऐसी स्थिति में श्री मेनन के देवनागरी-संबंधी उपर्युक्त विचारों का समस्त देश के द्वारा हार्दिक स्वागत किया जाना चाहिए। ये विचार यद्यपि पहली बार देश के सामने नहीं आए हैं, तथापि, दक्षिणभारत में पिछले दिनों देवनागरी में लिखी जानेवाली प्रमुख भाषा हिन्दी के विरुद्ध किए गए आन्दोलनों को ध्यान में रखते हुए एक दक्षिण-भारतीय विचारक के ये विचार देवनागरी लिपि के माध्यम से हिन्दी-भाषा के सौहार्दपूर्ण स्वागत के लिए दक्षिण-भारत में किए जानेवाले अधिक उत्साहपूर्ण प्रयत्नों की एक अच्छी पृष्ठभूमि बन सकते हैं।

कालिदाससाहित्य का संपादन

केन्द्रीय शासन की साहित्य अकादमी (परिषद्) ने संस्कृत भाषा के कुछ प्रसिद्ध विद्वानों का एक संपादन-मंडल नियुक्त करके उसके सिपुर्द यह कार्य किया है कि वह महाकवि कालिदास के संस्कृत ग्रंथों के संपादन-संकलन की विस्तृत योजना बनावे। जब सारे ग्रंथों का मूल स्वीकृत कर लिया जायगा, तब उसके अनुवाद का

उन वर्त्तमान भारतीय भाषाओं में प्रकाशन किया जायगा, जिनमें उनके अधिकृत अनुवादों का अभाव है।

हमारी विनम्र सम्मति में यदि साहित्य अकादमी का प्रस्ताव यही है, तो वह कुछ अधूरा है।

महाकवि कालिदास के समस्त संस्कृत ग्रंथों का अविकल रूप में शब्दशः प्रकाशन सुसंपादित संस्करण के रूप में होना चाहिए और उसका संपूर्ण अनुवाद भी, विभिन्न भारतीय भाषाओं में, संस्कृत मूल के साथ ही होना चाहिए। इसके बिना कालिदास के संपूर्ण साहित्य का वास्तविक रसास्वादन न किया जा सकेगा।

इससे निचले स्तर का कोई कार्य उस गौरव के अनुरूप न होगा, जिसकी आशा भारत-सरकार की केन्द्रीय साहित्य अकादमी से की जानी चाहिए।

ईमानदारी का स्तर

पिछले दिनों आचार्य विनोबा भावे ने 'सफ़ेद बाज़ार' के नाम से बहुसंख्यक भारतीयों की उस हीन स्तर की व्यावसायिक मनोवृत्ति को अभिहित किया था, जिसके द्वारा लोग एक दूसरे की सरे आम गाँठ काटने का यत्न करते रहते हैं और जो 'काला बाज़ार' से भी बदतर होते हुए भी उचित भर्त्सना की पात्र नहीं बन पाती।

इसी कुत्सित मनोवृत्ति के एक दूसरे ऐसे पहलू की ओर हाल में श्री जवाहरलाल नेहरू ने एक इंगित किया है, जो पहले पहलू से किसी भी प्रकार कम लज्जाजनक नहीं है। किंबहुना, भारत की अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा पर आघात करनेवाला होने के कारण यह और भी अधिक निकृष्ट है।

श्री नेहरू ने हाल में काँग्रेसी संसत्सदस्यों की एक बैठक में कहा कि हाल के महीनों में जो विभिन्न प्रतिनिधि-मंडल भारत से चीन गए, उनके कुछ सदस्य वहाँ से अपने साथ बढ़िया चीनी रेशम के पाज़ामे उड़ा लाए। ये पाज़ामे मेहमाँनवाज़ चीनियों ने अपने भारतीय अतिथियों के कमरों में अन्य सुखसुविधा की सामग्री के साथ रख दिए थे। मैं यह तो चाहूँगा कि और अधिक भारतीय चीन के विकास और वहाँ के लोगों के जीवन और संस्कृति का अध्ययन करने वहाँ जायँ, किन्तु, यह नहीं चाहता कि लोग अपने मेज़बानों की मेहमाँनवाज़ी का बेजा फ़ायदा उठावें।

नेहरूजी की इस शिकायत से प्रत्येक स्वाभिमानी भारतीय के हृदय पर आघात पहुँचना स्वाभाविक है। इससे यह प्रकट होता है कि हमारे चारित्र्य की दुर्बलता के ये नमूने राष्ट्रीय सीमा को लाँघकर अन्तर्राष्ट्रीय सीमा तक भी पहुँच रहे हैं।

दूषित फ़िल्मों की रोक का प्रस्ताव

हाल में भारतीय राज्यसभा ने सर्वसम्मति से श्रीमती लीलावती मुंशी का वह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है, जिसमें कहा गया है कि सरकार अवांछनीय चलचित्रों

का प्रदर्शन रोके और मनोरंजक एवं शिक्षाप्रद फ़िल्मों का निर्माण कराए। प्रस्ताव में इस बात पर चिन्ता प्रकट की गई है कि अनभीष्ट प्रकार के देशी तथा विदेशी चित्रपटों के प्रदर्शन से देश के नैतिक प्रतिमान पर प्रभाव पड़ा है।

यह प्रस्ताव देश के विचारशील नागरिकों के मनों की उस बेचैनी का एक प्रतीक है, जो कुरुचिपूर्ण चलचित्र-पटों के प्रदर्शनों पर बहुधा उत्पन्न हुआ करती है।

भारतशासन को राज्यसभा के इस प्रस्ताव पर गंभीरतापूर्वक विचार करके इस दिशा में शीघ्र ही उचित क़दम उठाने चाहिए। फ़िल्म-सेन्सर-बोर्ड में ऐसे लोगों को रखा जाना चाहिए, जो कला और मनोरंजन के साथ-साथ नैतिकता का भी पूरा ध्यान रख सकें, ऐसी विदेशी फ़िल्मों के प्रदर्शन पर रोक लगाई जानी चाहिए, जो भारतीय संस्कृति के सर्वमान्य नैतिक मानदंडों की अवहेलना करती हों, अनिवार्यतः प्रदर्शनीय वृत्तचित्रों का परिमाण बढ़ाया जाना चाहिए और उच्चकोटि के तथा नैतिक दृष्टि से सुरुचिपूर्ण चलचित्र-पटों के निर्माताओं को प्रभूत आर्थिक पुरस्कार देकर प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

कृषि-अनुसंधान किसानों तक पहुँचें

हाल में भारतीय कृषि–अनुसंधान-परिषद् की रजत-जयंती-प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने अपने भाषण में कहा कि कृषि-सम्बन्धी अनुसंधानों को किसानों तक पहुँचाने के लिए भी परिश्रम किया जाय तथा किसानों को उक्त अनुसंधानों को व्यवहार में लाने के तरीक़े बताए जायँ। केवल अनुसंधान से, चाहे वह कितना ही मौलिक और उपयोगी क्यों न हो, देश को कोई लाभ नहीं हो सकता।

राष्ट्रपति की उवत पिछली बात कठोर होते हुए भी सत्य है।

भारत की अधिकांश जनता के जीवन का आर्थिक आधार खेती पर होते हुए भी खेती की उन्नति के व्यावहारिक तरीक़ों की दृष्टि से इस देश के किसान आज भी ऐसे अनेक देशों के किसानों से बहुत पिछड़े हुए हैं, जो भारत से आर्थिक दृष्टि से अधिक उन्नत नहीं हैं। इसका एक कारण यह भी है कि भारत में कृषि-सम्बन्धी अनुसंधानकर्ताओं तथा किसानों के बीच एक गहरी खाई है। उपयोगी वैज्ञानिक अनुसंधान अपने व्यावहारिक रूप में यथासमय किसानों के पास पहुँचकर उनके काम में नहीं आने पाते। आशा है, राष्ट्रपति के इस इंगित के फलस्वरूप यह खाई कम हो सकेगी।

—ज० प्र० मि०

* * *

'भारती' पर सम्मतियाँ

दैनिक 'आज', काशी—

मध्यभारत से निकलनेवाली 'भारती' सामग्री के चयन और स्तर की दृष्टि से हिन्दी पत्रिकाओं में शीघ्र ही अपना विशिष्ट स्थान बना लेगी ऐसी आशा है। हम 'भारती' का अभिनन्दन करते हुए उसकी उत्तरोत्तर उन्नति की कामना करते हैं।

श्री रमाकान्त श्रीवास्तव, कानपुर—

इतनी सुन्दर पत्रिका निकालने के लिए बधाई स्वीकार करें। 'भारती' को आप जैसे कर्मठ साहित्यकार की साहित्यिक साधना का प्रतीक कहें, तो अत्युक्ति न होगी। 'भारती' की सामग्री उच्च स्तर की है। इतनी सुन्दर सामग्री जुटाना आपके व्यक्तित्व ही की प्रेरणा का प्रतिफल कहना चाहिए। 'भारती' का अपना व्यक्तित्व है।

श्री एस० आर० अरविन्द, कानपुर—

'भारती' का प्रयास भूरि-भूरि प्रशंसनीय है। छपाई, सफ़ाई, गेटअप, पाठ्य सामग्री अत्यन्त सुन्दर है। संपादकीय सामग्री और उसे प्रस्तुत करने की टेकनीक और भी आकर्षक है।

श्रीमती लीला प्रकाश, संपादिका, 'आरसी', कानपुर—

उपादेय साहित्यिक सामग्री से सुसज्जित 'भारती' हिन्दीजगत् की प्रगतिशील पत्रिका है। संपादकीय टिप्पणियाँ विशेष रूप से प्रशंसनीय हैं। छपाई उच्चकोटि की है।

* * *

भारती

रचना-सूची

वर्ष १, खंड १ [अंक १ से ६ तक]

शीर्षक	रचयिता	पृष्ठसंख्या
१८५७ की क्रान्ति का जनवादी रूप (लेख)	—श्री रतनलाल बंसल	३०७
अहिंसक सामाजिक क्रांति की ओर (लेख)	प्रो० रंजन	४२
अन्नदाता की जीत (कहानी)	—श्री मोहनसिंह सेंगर	५११
अस्थिर अभिमान (कविता)	—श्री रामकुमार चतुर्वेदी 'चंचल'	२५६
अनजाने में (कहानी)	—श्री कोमलसिंह सोलंकी	५५५
आँधी और अंकुर (कविता)	—श्री छोटेलाल भारद्वाज	४६१
आश्रमसंस्कृति की एक झाँकी (कहानी)	—आचार्य नानाभाई भट्ट	४६५
इतिहास का अध्ययन (लेख)	—श्री राहुल सांस्कृत्यायन	३९०
ईफ़ेल टॉवर की छाया में (लेख)	—श्री रामवृक्ष बेनीपुरी	२०२
उत्तरीय मालाबार का देवनृत्य (लेख)	—श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार	४४२
उपसंहार (कहानी)	—श्री मोहनसिंह सेंगर	४६
कण और विराट् (कविता)	—डॉ० मैथिलीशरण गुप्त	२९१
कविता का चित्रसौन्दर्य (लेख)	—श्री छोटेलाल भारद्वाज	३३२
कम्बोडिया की राजधानी में (लेख)	—प्रो० रंजन	१६०
कवयित्री विज्जका (लेख)	—श्री अनवर आगेवान	५८२
क्या हिन्दी मेरठ की बोली है (लेख)	—श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी	५
क्यों आए हो ? (कविता)	—श्री माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा'	१८७
कौशाम्बी की महत्त्वपूर्ण मुद्राएँ (लेख)	—श्री सतीशचन्द्र काला	५१९
खंडित दर्पण (कहानी)	—श्री अनन्तकुमार पाषाण	४४७
गीत (कविता)	—श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'	१

गीत (कविता) श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ३८९
गीतों की झंकार (कविता)—श्री परमेश्वर द्विरेफ ५३४
गोमति दादा का गौरव (कहानी)—श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी ३५
जनतंत्र की धरोहर (कहानी)—श्री जहूरबख़्श ६४
जर्मनी से प्राप्त हिन्दी की हस्तलिखित पोथी (लेख)—प्रो० विनयमोहन शर्मा ४५४
तुलसीदास (कविता)—प्रो० रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' २४७
तुलसीदास (कविता)—श्री देवेन्द्रनारायण वर्मा ३२६
धर्म, दर्शन और संस्कृति (लेख)—डॉ० रामानन्द तिवारी ३१४
धूल की पर्त (कहानी)—श्री देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' १३७
नए समाज की ओर (लेख)—प्रो० रंजन ३२१
नवाब ख़ानेख़ानाँ (लेख)—श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी १८८
नामकरण (कविता)—श्री उदयशंकर भट्ट २०८
निशि ढलने में (कविता)—प्रो० रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' ४४१
नौकर (कहानी)—श्री शम्भुनाथ सकसेना ४२१
पड़ोसी से (कविता)—श्री माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' ८७
परियों के देश में (कहानी)—कुमारी सुन्दर बापट ५७८
पतित (कविता)—श्री माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' ३९५
पहले कौन (कहानी)—श्री वृन्दावनलाल वर्मा ३०३
पाश्चात्य एकांकी नाटकों पर एक दृष्टि (लेख)—प्रो० रामचरण महेन्द्र १४५
प्रकाशनपरिचय (समालोचनाएँ) ३७३, ४९८
प्रणय : पुराना और नया (कहानी)—श्री क० मा० मुन्शी १०७
प्रश्न-चिह्न (कविता)—प्रो० रामेश्वरदयाल दुबे ४५२
प्राचीन मालव का सास्कृतिक विकास (लेख)—श्री श्याम परमार ४८३
पंजाबी का लोक-साहित्य (लेख)—श्री नरेन्द्र धीर ५६१
फ़कीरुल्ला सैफ़ख़ाँ (लेख)—डॉ० रघुवीरसिंह ५२४
बढ़े हैं चरण, तो बढ़े ही रहेंगे (कविता)—श्री दिवाकर ५२२
बनारसीदासजी के रेखाचित्र और संस्मरण (लेख)—प्रो० रामचरण महेन्द्र ३६६
बिच्छू का डंक (कहानी)—श्री देवीलाल चतुर्वेदी 'मस्त' ३४८
बुनियादी शिक्षा : एक रचनात्मक क्रान्ति (लेख)—श्री प्रभाकर जोशी १५५
बेकारी का हल (लेख) डॉ० जे० सी० कुमारप्पा ९
बेकारी और ग्रामोद्योग (लेख)—श्री कृष्णचंद्र विद्यालंकार ११४
बेचैनी (कविता)—श्री माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' ५०१

ब्रह्मपुराण में उज्जयिनी (लेख)—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ५०२
भाग्यरेखाएँ (कविता)—श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' १३५
भारतीय संस्कृति और उसका विस्तार (लेख)—श्री अवनीन्द्रकुमार
विद्यालंकार १६७, १९३
भारत की भारती (लेख)—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी ५३५
भोजपुर (लेख)—श्री मुनि कान्तिसागरजी ३९६
मणिपुरी नृत्य (लेख)—श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार २९५
मध्यकालीन कला की पृष्ठभूमि (लेख)—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी ४२८
महँगी पहचान (कहानी)—श्री माखनलाल चतुर्वेदी २९२
महाकवि 'निराला' का स्वास्थ्य (लेख)—श्री जयगोपाल मिश्र ३४५
महाकवि कालिदास के प्रति (कविता)—श्री कुंजबिहारी व्यास ४७५
महाकोसल और तंत्रपरम्परा (लेख)—मुनि कान्तिसागरजी २२१
महारानी लक्ष्मीबाई : पुरोहित के संस्मरण (लेख)—श्री रतनलाल बंसल २४९
माता (कहानी)—श्री ज़हूरबख़्श २५८
मास्टरजी (कहानी)—श्री राहुल सांकृत्यायन १३
मुक्त धारा (कविता)—श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' ४
मेरा स्वर (कविता)—श्री उदयशंकर भट्ट ११२
मेरे अहंकार को झेलो (कविता)—श्री वीरेन्द्रकुमार जैन ६२
यहूदी संस्कृति पर भारतीय प्रभाव (लेख)—श्री नारायणप्रसाद सिन्हा
जहानाबादी ३५८
युगप्रतीक (कविता)—प्रो० रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' ३०६
विष्णु से कृष्ण (लेख)—डॉ० सत्येन्द्र २६
शान्ति का निश्चित मार्ग : सर्वोदय (लेख)—डॉ० जे० सी० कुमारप्पा १९९
शान्ति के लिए भारत-चीन-मैत्री (लेख)—श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल ५७४
श्वान पहरेदार (कविता)—श्री रमाकान्त श्रीवास्तव ५४४
स्वतंत्र भारत में जनता की ग़रीबी का कारण (लेख)—श्री रतनलाल बंसल ५४६
सत्ता-तम (कविता)—श्री हरिशंकर शर्मा ४२०
स्वतंत्र भारत में नारीसमस्या (लेख)—श्रीमती हीरादेवी चतुर्वेदी ३३८
स्वाधीनतासंग्राम में शरत्चंद्र का सक्रिय योग (लेख)—श्री रतनलाल वंसल ७३
संस्कृत साहित्य में संख्यानिर्देश (लेख)—श्री रामशंकर भट्टाचार्य २६६
संस्कृति (लेख)—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल २
संपादकीय (टिप्पणियाँ) ७८, १७८, २७६, ३७५, ४८९, ५८६

संलाप (कविता)—श्री हरिश्चन्द्रदेव 'चातक' ३५६
सावित्री दीदी (कहानी)—श्रीमती हीरांदेवी चतुर्वेदी २१४
साहित्य और आंदोलन (लेख)—डॉ० भगवत्शरण उपाध्याय ९३
सांस्कृतिक क्षेत्र की अणुशक्ति : सिनेमा (लेख)—श्री विष्णुशंकर भार्गव ४७९
स्नेह की मधु-धार हूँ मैं (कविता)—श्री महेन्द्र भटनागर ५७३
सीखचों के भीतर से (लेख)—प्रो० रंजन २०९
सैनिक की संध्या (कविता)—श्री अनन्तकुमार पाषाण ३४४
हिन्दी शब्दों में प्रयुक्त अक्षरों पर विचार (लेख)—श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी ८८
हिन्दी और मराठी के रचनाकार : नामदेव (लेख)—श्री प्रभाकर माचवे १२१
हे आदर्शपुंज द्युतिमान (कविता)—श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ७१

हिन्दचीन व स्याम की यात्रा सम्बन्धी
श्रेष्ठ पठनीय ग्रन्थ

~हमारे पड़ौसी देश~

लेखक
प्रो० रंजन एम० ए०

विषय-सूची

स्याम की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि
बैंकाक के तैरते बाजार
स्याम की कला और रंगमंच
स्याम के ग्राम और ग्रामीण
शिक्षा-व्यवस्था और उद्योग धन्धे
स्याम का महिला समाज
जहां भारत की प्राचीन बोलती है
कला और सौंदर्य का संगम—चांगमाई
थाई लैण्ड के बच्चे
भिक्षुओं के देश में
स्याम के भारतीय
थाई समाज की एक झलक
स्यामी साहित्य
खमेर राजाओं के देश में
कम्बोडिआ की राजधानी—नामपेन में

—प्रकाशन की प्रतीक्षा कीजिये—
प्रकाशक—विद्यामंदिर प्रकाशन, सराफा, ग्वालियर

दक्षिण-भारती

(दक्षिण-भारत की सचित्र मासिक पत्रिका)

आप अभी तक इसके ग्राहक न बने तो शीघ्र ही ग्राहक बनें। इसे कल पर छोड़ना एक भूल होगी।

वार्षिक चन्दा ६) प्रति अंक ॥)

दक्षिण-भारती कार्यालय
अफजलगंज, हैदराबाद (दक्षिण)

तार : हिन्दी फोन नं० ५४५०

अजन्ता

: मासिक :

प्रकाशक : हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद दक्षिण

मूल्य : ६-०-० भा. मु. वार्षिक

किसी भी मास से ग्राहक बना जा सकता है।

कुछ विशेषताएँ

१. उच्च कोटि का साहित्य
२. सुन्दर और स्वच्छ छपाई
३. कलापूर्ण चित्र

संपादक
श्री वंशीधर विद्यालंकार
श्री श्रीराम शर्मा

कुछ सम्मतियाँ

१. "अजन्ता का अपना व्यक्तित्व है"—श्री बनारसीदास चतुर्वेदी
२. "अजन्ता सुंदर और स्वच्छ पत्रिका है"—श्री दिनकर जी
३. "अजन्ता साहित्य का नया कल्पवृक्ष है"—श्री वासुदेवशरण अग्रवाल
४. "अजन्ता हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिकाओं में से एक है।"
श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी

याद रखिए पत्रिका के लिए—
१. एक निश्चित उद्देश्य चाहिए !
२. उसका अपना व्यक्तित्व चाहिए !

नई धारा

ऐसी ही एक मासिक पत्रिका है जो अशोक प्रेस, पटना से प्रकाशित हो रही है। कहानियाँ, कविताएँ, शब्द चित्र, संस्मरण, नाटक, आलोचना, निबन्ध।

हिन्दी में नई धारा के प्रतीक श्री रामवृक्ष बेनीपुरी इसका सम्पादन कर रहे हैं।

प्रादेशिक सरकारों के शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत।

जिसकी सहायता के लिए साहित्य महारथियों का सम्पादक मंडल संगठित किया गया है।

डिमाई अठपेजी के १०० पृष्ठ, पक्की जिल्द, आकर्षक कवर, सचित्र, सुसज्जित।

एक अंक १ रु० **वार्षिक १० रु०**

प्रबन्धक नई धारा, अशोक प्रेस, पटना ६

एकमात्र सचित्र पारिवारिक मासिक पत्रिका

आरसी

जिसमें

कहानी, कविता, लेख, आदि अनेक सुरुचिपूर्ण साहित्यिक स्तम्भों के साथ।

बुनाई, कढ़ाई, सिलाई और पाक पर प्रतिमास सचित्र लेख।

अन्यान्य स्थायी स्तम्भ

मां और शिशु: डाक्टर के पत्र: पुरुष लोक: बालमंदिर: पुस्तक परिचय: चलचित्र जगत: शब्दार्थ और व्याख्या। हिन्दी की प्रमुख वर्ग पहेलियों पर टिप्पणियां।

इतनी उपादेय सामग्री के साथ भी मूल्य केवल ४ रु० वार्षिक।

नोट:—वार्षिक ग्राहक को प्रतिमास एक कढ़ाई ट्रान्सफर मुफ्त भेजा जाता है।

आरसी' अपने स्थानीय एजेण्ट से मांगिए या छै आने के टिकिट भेजकर हमसे नमूना प्राप्त करिए।

व्यवस्थापक (आरसी)
स्वरूपनगर, कानपुर,

दि गिर्द डिस्ट्रिक्ट को-ऑपरेटिव्ह बैंक लि० लश्कर

स्थापित सन् १९१८

शाखायें—डबरा, भांडेर, उपशाखायें—मुरार, भितरवार,

१.	अधिकृत पूंजी	२,००,००० रुपया
२.	स्वीकृत पूंजी	१,४०,००० रुपया
३.	रक्षित कोष	७४,४०० रुपया
४.	अन्य कोष	१,१०,९०० रुपया

५. फिक्स्ड करेन्ट तथा सेविंग अकाउन्ट खाते खोले जाते हैं। डिपाजिटस पर सूद दर निम्न प्रकार है। एक वर्ष से अधिक की फिक्स्ड डिपाजिट पर छैं मासिक सूद दिया जाता है।

फिक्स्ड

६ माह	२।।।) प्रतिशत	वार्षिक
१ वर्ष	३) प्रतिशत	,,
२ वर्ष	३।) प्रतिशत	,,
३ वर्ष	३।।) प्रतिशत	,,
सेविंग	२।।) प्रतिशत	,,

६. त्रय-वर्षीय नगद पत्र ९) रु० में १०) रु० का मिलता है।

७. बैंक बहुत मामूली कमीशन पर अपनी शाखाओं पर ड्राफ्ट इश्यू करता है।

८. यह बैंक अनियमित जोखमदारी की ग्रामीण सहकारीं समितियों में रुपया इन्व्हेस्ट करता है। इसलिए इन्व्हेस्टमेन्ट सुरक्षित व बेखतरे है। बैंक के अकाउन्टस का हर साल शासन से एप्रूव्हड आडीटर्स द्वारा आडिट होता है।

कृपया बैंक से सम्बन्ध स्थापित कीजिये।

रामनाथ शर्मा

रामकृष्ण दीक्षित
व्हाइस चैयरमेन

कल्पना का कला अंक

इसकी विशेषताएँ —

卐इस अंक में प्रकाशित होने वाले प्रायः सभी रंगीन तथा इकरंगे चित्र अबतक अप्रकाशित रहे हैं।

卐भारत के सर्वश्रेष्ठ ब्लॉक मेकर्स द्वारा तैयार किये गये रंगीन तथा सादे ब्लॉकों की आर्ट पेपर पर भारत में उपलब्ध सर्वश्रेष्ठ छपाई की व्यवस्था इस अंक के लिये की गई है।

इस अंक में ३० रंगीन तथा १०० इकरंगे चित्र रहेंगे।

卐अधिकारी विद्वानों द्वारा लिखे गये निबन्धों की २०० पृष्ठों की पाठ्य सामग्री इस अंक में रहेगी।

卐इसका आकार साधारण अंकों के आकार से बड़ा होगा।

विशेष विवरण के लिये लिखें।

शाखा कार्यालय,
२० हमाम स्ट्रीट, फोर्ट,
बम्बई

व्यवस्थापक
कल्पना मासिक
८३१ बेगम बाजार,
हैदराबाद

स्मृतिदायक ~ केशवर्धक ~ सुगन्धयुक्त

दिनारा

ब्राह्मी आँवला तैल

DINARA BRAHMI ANWLA HAIROIL

JUDICIOUSLY MEDICATED HAIR & BRAIN TONIC WITH De Luxe PERFUME

तिल तैल
भृंगराज
आंवला
ब्राह्मी
अगर
चंदन
कपूर
इलायची
उशीर
केशर
जायपत्री
पुष्करमूल
आदि से निर्मित

आमलकीब्राह्मीभृंगपद्मकागुरुचन्दनैः ।
एलामैलेयकर्पूरोशीरजातीसुमादिभिः ॥

विधिनापाचयेत्तैलं शटीपुष्करकेशरैः ।
दिव्यगंधंहितंमेध्यंशान्तिदंकेशवर्धनम् ॥

दिनारा आरोग्य भवन, ग्वालियर, म. भा.

DINARA AROGYA BHAVAN, GWALIOR, M. B.

सर्वत्र मिलता है

२० औंस शीशी	३ रु० ६ आ०	५ औंस	१ रु० १ आ०
१० औंस	२ रु० १ आ०	१॥ औंस	५ आ०–६ पा०

से अधिक न दें

जिस साहित्य का जीवन से सम्बन्ध नहीं, वह निरर्थक है।
जो साहित्य मानव-जाति की सेवा की प्रेरणा नहीं देता,
वह निष्प्रयोजनीय है। और

जो साहित्य बुद्धि-भेद उत्पन्न करता है, वह अनिष्टकारी है।

जीवन साहित्य

में जीवन, मानव-जाति की सेवा की प्रेरणा और एकनिष्ट बुद्धि से
अपने मार्ग पर चलने का बल मिलेगा।

एक प्रति अवश्य देखने की कृपा कीजिये।

वार्षिक मूल्य ४) एक प्रति ।=)

सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली।

विद्यामंदिर प्रकाशन
की नवीन भेंट
लेखक—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी

मानसिंह और मानकुतूहल—भारत के सांस्कृतिक इतिहास के एक अज्ञात परिच्छेद का प्रथम प्रकाशन। भारतीय संगीत, हिंदी साहित्य तथा कलाओं के विकास पर नवीन शोध।

मध्यभारत कला परिषद द्वारा
प्रथम पुरस्कार प्राप्त पुस्तक

मूल्य ५) डाक व्यय १)

त्रिपुरी—भारत के तीन प्राचीन स्थल, विदिशा, पद्मावती तथा बाघ पर अत्यन्त सुन्दर तथा प्रामाणिक ग्रंथ। मूल्य २)

प्रबन्धक—विद्या मंदिर प्रकाशन, सराफा, ग्वालियर

राष्ट्रभारती

वार्षिक
६)

एक प्रति
।।=)

—:सम्पादकः—

मोहनलाल भट्ट
हृषीकेश शर्मा

(१) यह हिन्दी पत्रिकाओं में सबसे अधिक सस्ती, एक सुन्दर साहित्यिक और सांस्कृतिक मासिक पत्रिका है। (२) इस पत्रिका को राष्ट्र-भाषा हिन्दी के तथा लगभग सभी भारतीय साहित्य और संस्कृति को बल व प्रेरणा पहुंचाने वाले प्रान्तीय भाषाओं के श्रेष्ठ लेख, विद्वान साहित्यकारों का सहयोग प्राप्त है। (३) इसमें ज्ञानपोषक और मनोरंजक श्रेष्ठ लेख, कविताएँ, कहानियाँ, एकांकी नाटक, रेखाचित्र और शब्दचित्र रहते हैं। (४) बंगला, मराठी, गुजराती आदि भारतीय भाषाओं के सुन्दर हिन्दी अनुवाद भी इसमें रहते हैं। (५) प्रतिमास पहली तारीख को प्रकाशित होती है।

ग्राहक बना देने वालों को विशेष सुविधा । एजेंसी तथा विज्ञान दर के लिए लिखिये।

"राष्ट्रभारती" हिन्दीनगर, वर्धा [मध्य-प्रदेश]

पश्चिमोत्तर भारत की प्रमुख हिन्दी मासिक पत्रिका

विश्व ज्योति

—:सम्पादकः—

श्री विश्वबन्धु शास्त्री, श्री सन्तराम, बी ए०

संचालक—श्री विश्वेश्वरानन्द

विश्व-हित की साधना के लिए—

(क) शुद्ध सांस्कृतिक साहित्य का सृजन,
(ख) प्राचीन और नवीन ज्ञान-विज्ञान का समन्वय,
(ग) बौद्धिक क्रान्ति और नई चेतना का जागरण,
(घ) अन्यायपूर्ण सामाजिक विषमताओं का दूरीकरण,
(ङ) सभी प्रकार के विचारों का निष्पक्ष अध्ययन और आलोचन।

वार्षिक चन्दा: ८) रुपये

१०) रु० वार्षिक चन्दा देकर विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान के सदस्य बन जाने पर भेंट के रूप में मुफ्त।

पत्र-व्यवहार का पता:—

व्यवस्थापक 'विश्वज्योति', साधु आश्रम
होश्यारपुर (पंजाब)

आर० एस० सोठानी एन्ड ब्रदर्स

ग्वालियर

नववर्ष के उपलक्ष
में
आपके परिवार के लिये
हार्दिक शुभकामनायें

हमारी विशेषताएँ
रेडिओ व साउन्ड इक्युपमेंटस
रैफ्रीजरेटरर्स, वाटर कूलर्स-पंखे
साइन्टीफिक इन्स्ट्रूमेन्टस्
तथा
समस्त प्रकार का बिजली का सामान

पुस्तकालय-सन्देश का विशाल विशेषांक
अपने चौथे वर्ष के प्रथम अंक के रूप में
प्रकाशन मास मई—१९५५, मूल्य केवल १।।), पृष्ठ संख्या—२००
३१ मार्च १९५५ के पूर्व तक ३) भेजकर वार्षिक ग्राहक बनने
वालों को यह विशेषांक मुफ्त मिलेगा।
सम्पादक—श्री कृष्ण खण्डेलवाल
इस विशेषांक के प्रधान सलाहकार होंगे
विश्वविख्यात पुस्तकालय-विज्ञान के विद्वान् डा० शि० रा० रंगनाथन्
यह विशेषांक—
पुस्तकालय साहित्य की अनुपम एवं दुर्लभ कृति होगा।
पुस्तकालय-कार्यकर्त्ताओं का पथ-प्रदर्शक होगा।
विश्वपुस्तकालय-आन्दोलन का वर्त्तमान रूप बतलायेगा।
अमेरिका, बृटेन, फ्रांस, रूस, चीन आदि देशों ने पुस्तकालय के क्षेत्र
में क्या प्रगति की है, इसके सम्बन्ध में विस्तृत विवरण देगा।
अभी ही अपनी प्रति सुरक्षित कराने के लिए १।।) भेजिए
अथवा ३) भेजकर ग्राहक बनिए
पता—पुस्तकालय-सन्देश [मासिक]
पो० पटना विश्वविद्यालय, पटना—५

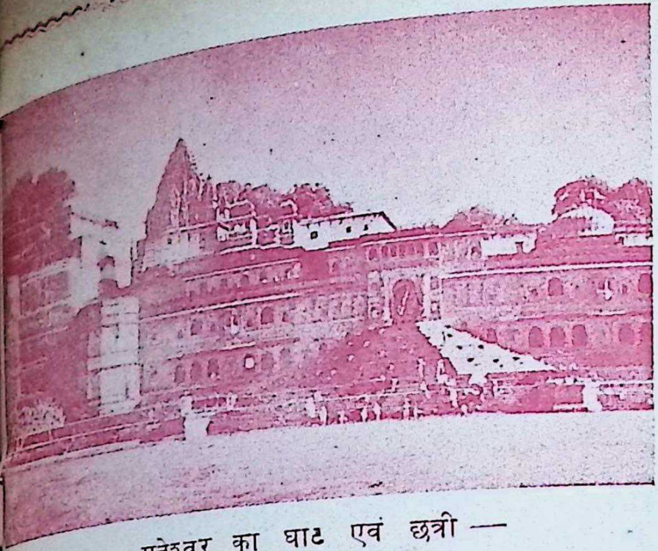

— महेश्वर का घाट एवं छत्री —

'नगर सुन्दर एक महेश्वर'

— कै. राजकवि भा. रा. तांबे

कै. राजकवि भा. रा० तांबे द्वारा वर्णित देवी अहिल्याबाई का

महेश्वर

भ्रमण के लिये सुन्दर स्थान है

उसी प्रकार

महेश्वर की

लुगड़ी

साड़ियां

एवं

खन

का भारतीय महिलाओं के जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है

मंदिर में दर्शनीय स्थापत्य-कला का एक सुन्दर नमूना

गृह उद्योगों

को

प्रोत्साहन

दीजिये

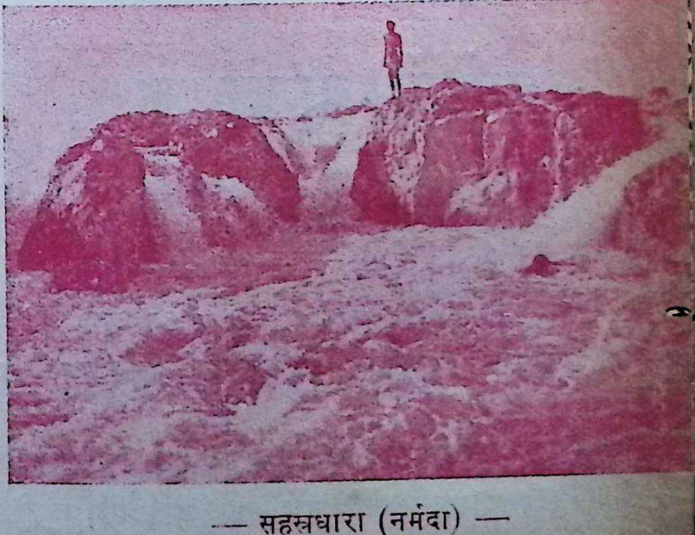

— सहस्रधारा (नर्मदा) —

— सूचना विभाग, मध्यभारत शासन द्वारा प्रकाशित —

नववर्ष

के

उपलक्ष में

हार्दिक शुभकामनाएँ

प्रेषक

दि विनोद मिल्स लि०

उज्जैन

सुन्दर, टिकाऊ एवं

उपयोगी वस्त्रों के

प्रसिद्ध निर्माता

हमारे द्वारा निर्मित कपड़ा सर्वत्र मिलता है

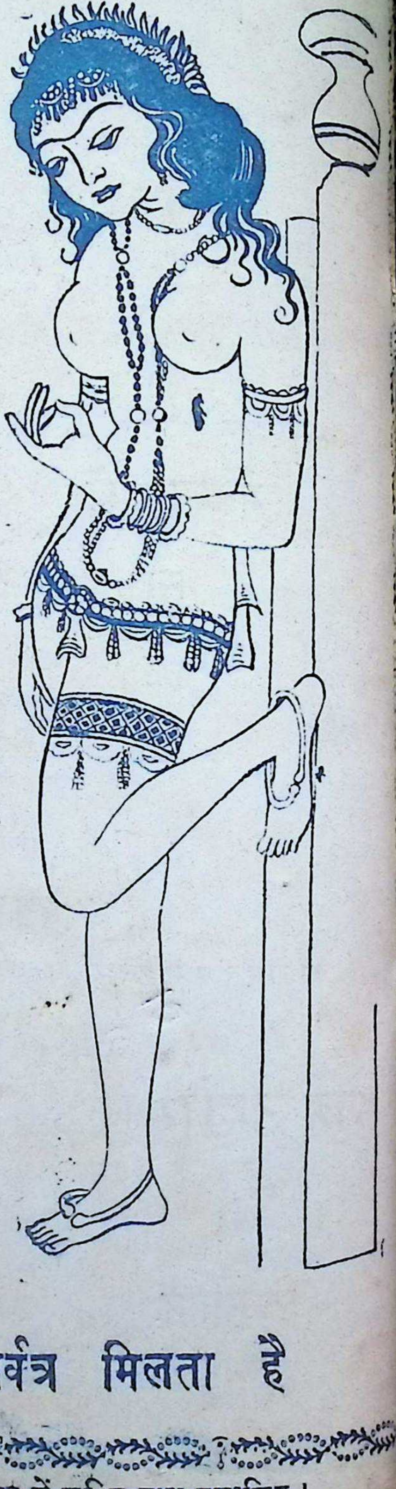

श्री भगवानलाल शर्मा द्वारा नवप्रभात प्रेस, ग्वालियर में मुद्रित तथा प्रकाशित।

फरवरी, १९५५

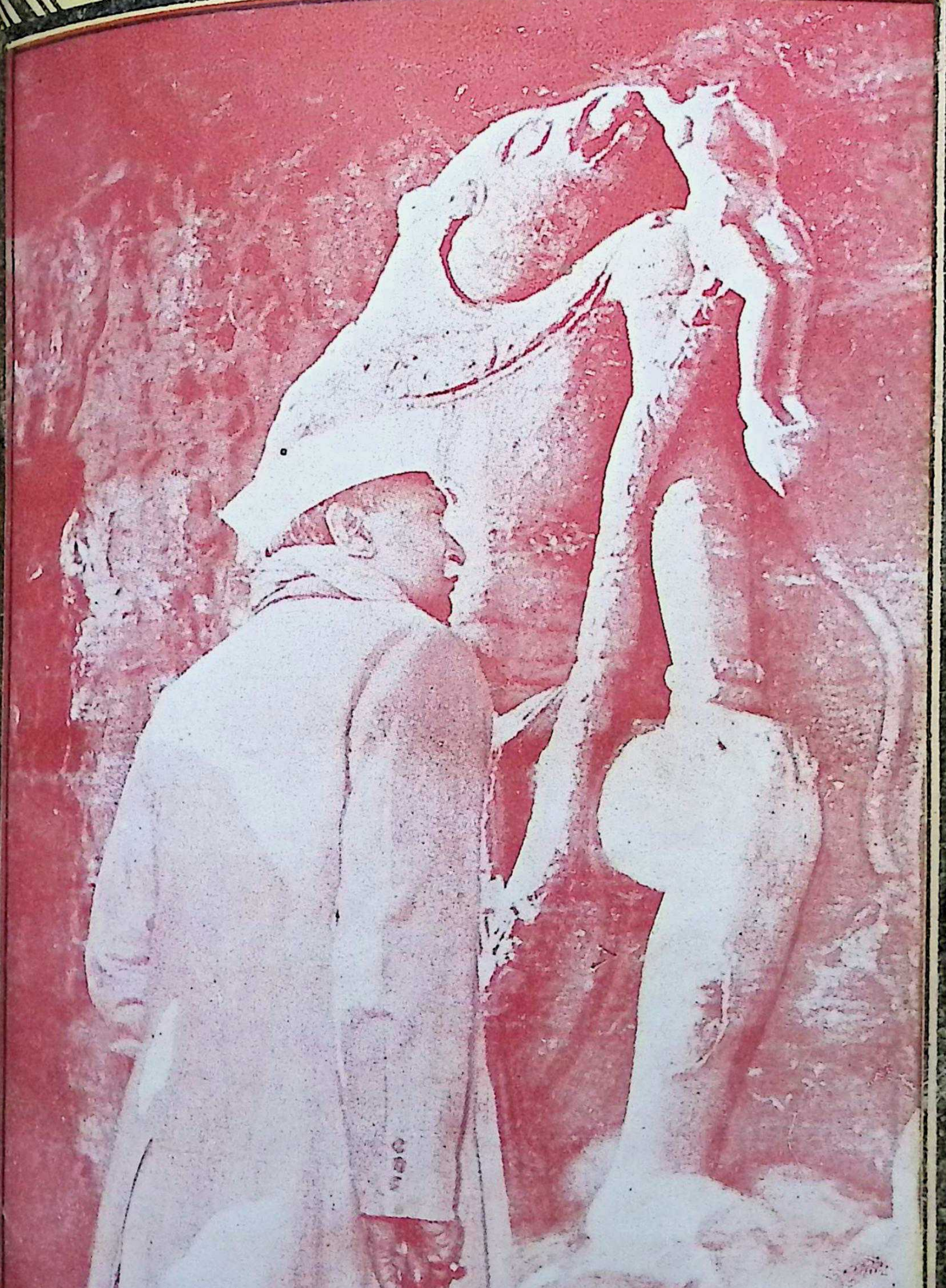

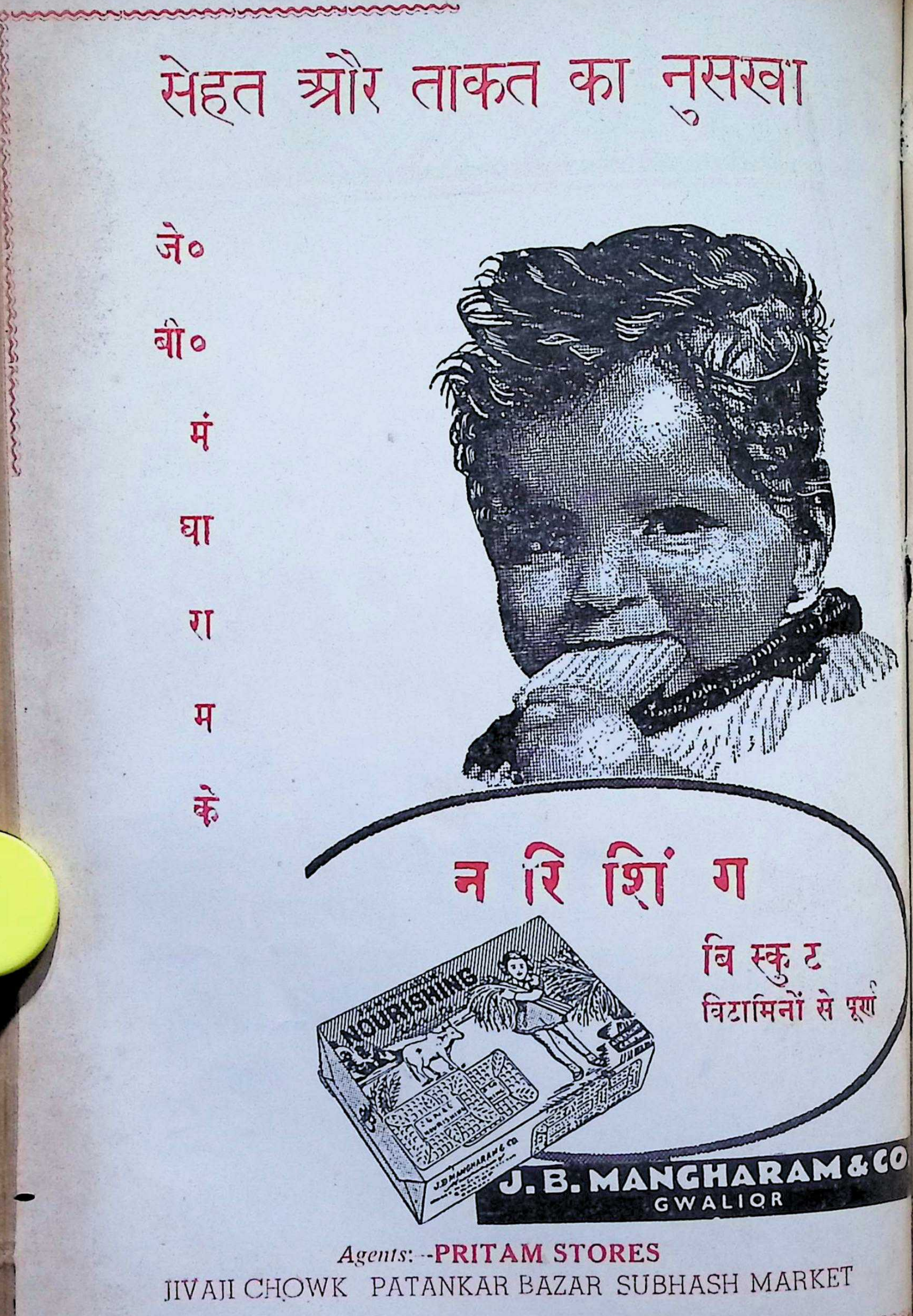

सेहत और ताकत का नुसखा

जे० बी० मंघाराम के

नरिशिंग

बिस्कुट

विटामिनों से पूर्ण

NOURISHING
J.B. MANGHARAM & CO.

J. B. MANGHARAM & CO
GWALIOR

Agents: --**PRITAM STORES**
JIVAJI CHOWK PATANKAR BAZAR SUBHASH MARKET

मध्यभारत की समस्त शिक्षासंस्थाओं तथा पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

भारती

फ़रवरी, १९५५

★

प्रधान-संपादक
जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द
प्रबन्ध-संपादक
हरिहरनिवास द्विवेदी

★

वार्षिक मूल्य ८)   एक अंक का ।।।)

भारती-कार्यालय, ग्वालियर

—'भारती' हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ मासिक-पत्रिका है—

विश्वविश्रुत दार्शनिक

डॉ० भगवान्दास, काशी का

'भारती' पर अभिमत

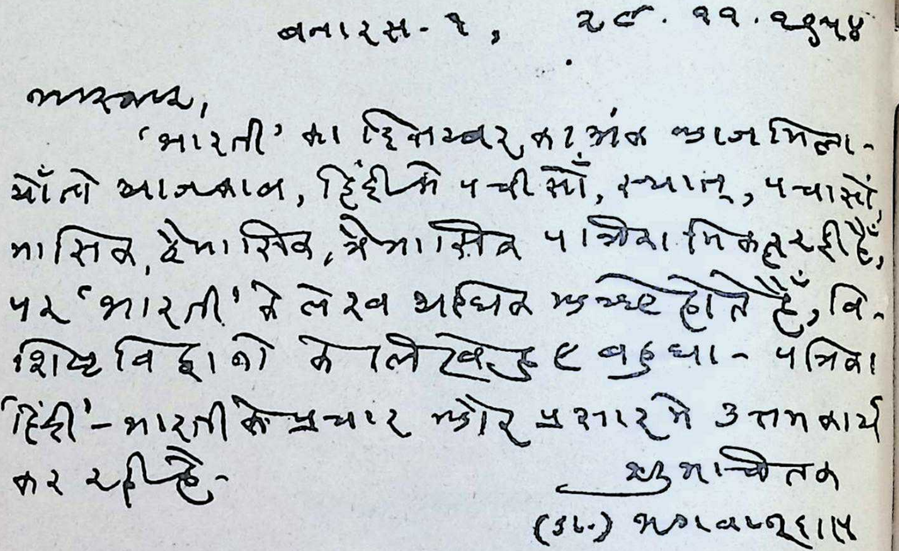

बनारस-१, २८.११.१९५४

मान्यवर,

'भारती' का दिसम्बर का अंक आज मिला। यों तो आजकल, हिंदी के पचीसों, स्यात्, पचासों, मासिक, द्वैमासिक, त्रैमासिक पत्रिका निकल रही हैं, पर 'भारती' के लेख अधिक अच्छे होते हैं, विशिष्ट विद्वानों के लेख हुए। यह उच्चा-पत्रिका 'हिंदी'-भारती के प्रचार और प्रसार में उत्तम कार्य कर रही है।

शुभाचिंतक

(डा.) भगवानदास

डॉ० रामकुमार वर्मा, हिन्दी-विभाग, प्रयाग-विश्वविद्यालय—

'भारती' साहित्यिक सुरुचि की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका है । मेरे अध्ययनकक्ष में उसका प्रमु स्थान है ।

श्री इन्द्र, विद्यावाचस्पति, सदस्य, राज्य-परिषद्, लिखते हैं—

मैं 'भारती' प्रतिमास देखता हूँ । उत्तमोत्तम लेखों से सुसज्जित होती है । लेखों में विवि भी है और गम्भीरता भी । भारती की गिनती हिन्दी की उत्कृष्ट मासिक-पत्रिकाओं में होनी चाहि

प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री एवं इतिहासज्ञ विद्वान् डॉ० ह० रा० दिवेकर का कथन है—

आप लोगों ने इसका स्तर पर्याप्त उच्च रखा है । मुझ जैसे अभ्यासक विद्यार्थी को कुछ कुछ चीज़ उसमें मिल ही जाती है ।

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, नई दिल्ली—

मैंने आपका सुन्दर संपादकीय लेख 'साहित्य और योजनाएँ' पढ़ा । मैं आप से सहमत आपने बहुत ठीक लिखा है और बढ़िया ढंग पर । मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार कीजिए । 'भारत का गेटअप सुन्दरतर हो रहा है, यह देखकर प्रसन्नता हुई ।

मध्यभारत की समस्त शिक्षासंस्थाओं तथा पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

भारती

फ़रवरी, १९५५

* * *

प्रधान-संपादक
जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द
प्रबन्ध-संपादक
हरिहरनिवास द्विवेदी

* * *

वार्षिक मूल्य ८)　　एक अंक का ।।।)

भारती-कार्यालय, ग्वालियर

—'भारती' हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ मासिक-पत्रिका है—

विश्वविश्रुत दार्शनिक
डॉ० भगवान्दास, काशी का

'भारती' पर अभिमत

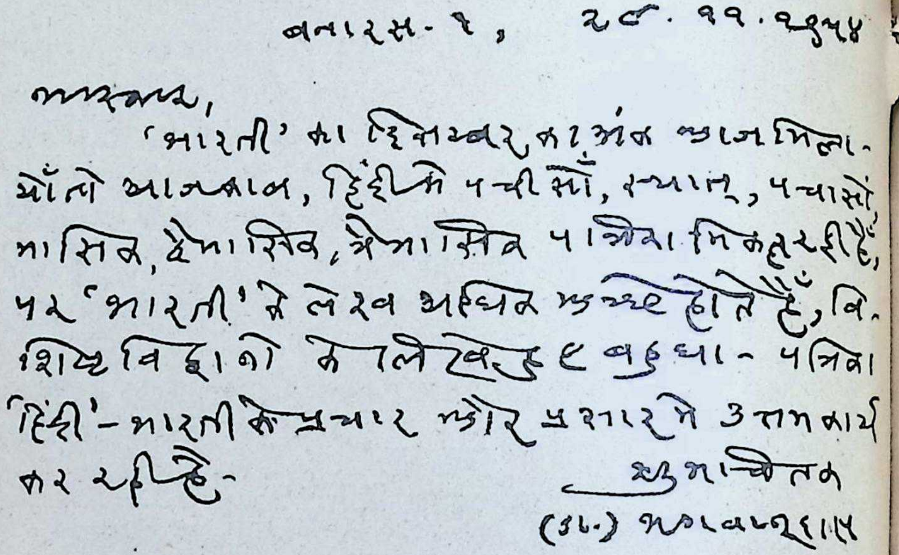

बनारस-१, २८.११.१९५४

नमस्कार,
'भारती' का दिसम्बर का अंक आज मिला। यों तो आजकल, हिंदी में पचीसों, स्यात्, पचासों, मासिक, द्वैमासिक, त्रैमासिक पत्रिका निकल रही हैं, पर 'भारती' के लेख अधिक अच्छे होते हैं, विशिष्ट विद्वानों के लेख हुए बहुधा। पत्रिका 'हिंदी'-भारती के प्रचार और प्रसार में उत्तम कार्य कर रही है।

शुभचिंतक
(डा.) भगवानदास

डॉ० रामकुमार वर्मा, हिन्दी-विभाग, प्रयाग-विश्वविद्यालय—

'भारती' साहित्यिक सुरुचि की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका है । मेरे अध्ययनकक्ष में उसका प्र स्थान है ।

श्री इन्द्र, विद्यावाचस्पति, सदस्य, राज्य-परिषद्, लिखते हैं—

मैं 'भारती' प्रतिमास देखता हूँ । उत्तमोत्तम लेखों से सुसज्जित होती है । लेखों में विवि भी है और गम्भीरता भी । भारती की गिनती हिन्दी की उत्कृष्ट मासिक-पत्रिकाओं में होनी चाहि

प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री एवं इतिहासज्ञ विद्वान् डॉ० ह० रा० दिवेकर का कथन है—

आप लोगों ने इसका स्तर पर्याप्त उच्च रखा है । मुझ जैसे अभ्यासक विद्यार्थी को कु कुछ चीज़ उसमें मिल ही जाती है ।

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, नई दिल्ली—

मैंने आपका सुन्दर संपादकीय लेख 'साहित्य और योजनाएँ' पढ़ा । मैं आप से सहमत आपने बहुत ठीक लिखा है और बढ़िया ढंग पर । मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार कीजिए । 'भा का गेटअप सुन्दरतर हो रहा है, यह देखकर प्रसन्नता हुई ।

'भारती'–सम्पादक की प्रार्थनाएँ

कृपया

(१) समस्त रचनाएँ, समालोचनार्थ पुस्तकें, परिवर्तन के सामयिक-पत्र आदि, सम्पादक, 'भारती', सराफ़ा, ग्वालियर के पते पर, पूरे डाक-टिकट लगाकर, भेजें।

(२) रचनाएँ सामान्यतः अच्छे कागज़ों पर, एक ही ओर, चारों ओर उचित हाशिया छोड़कर, टाइप की गई या सुपाठ्य अक्षरों में स्याही से लिखी गई भेजें।

(३) केवल वही रचनाएँ भेजें, जो पहले कहीं भी प्रकाशित न हुई हों। 'भारती' में छप चुकने के एक मास बाद रचयिता अपनी रचना चाहे जहाँ छपा सकते हैं।

(४) यथासंभव प्रत्येक रचना की प्रतिलिपि अपने पास रख लेने का कष्ट करें। अस्वीकृत रचनाएँ वापस मँगाने के लिए डाक के टिकिट अवश्य भिजवाएँ।

(५) तीन सप्ताह के अन्दर स्वीकृति की सूचना न मिलने पर यह समझ लें कि रचना 'भारती' में प्रकाशित न हो सकेगी।

(६) प्रत्येक रचना के नीचे अपना पूरा नाम और पता स्पष्ट लिखने का कष्ट करें।

(७) अनूदित रचना पर उसके अनूदित होने की सूचना लिखें। मूल लेखक की अनुमति लें।

(८) समालोचनार्थ पुस्तकों आदि की दो-दो प्रतियाँ भिजवाएँ।

हिन्दी साहित्य के इतिहास की एक नवीन धारा का आविष्कार

चतुर्भुजदास की

मधुमालती

—सम्पादक—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी—

विशुद्ध भारतीय प्रेमाख्यान परम्परा में मध्यदेश की बोली में लिखी गई इस 'रसकथा' के प्रकाशन से हिन्दी भाषा एवम् साहित्य के अज्ञात एवम् अप्रकाशित अध्याय को सर्वप्रथम सामने लाया गया है। बीस हस्तलिखित प्रतियों पर से सम्पादित पाठ, अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना, जिसमें भारत के आख्यान साहित्य, मधुमालती का उसमें स्थान, मध्यदेश की बोली आदि विषयों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

अनेक सुन्दर चित्र। छपाई, सफाई, जिल्द आदि दर्शनीय।

मूल्य ५)। डाक व्यय पृथक्।

(मार्च १९५५ के प्रथम सप्ताह में प्रकाशनीय)

—आज ही ऑर्डर दें।

प्रबन्धक—विद्यामंदिर प्रकाशन, सराफा ग्वालियर।

भारती, फरवरी १९५५

अनुक्रमणिका

क्रमांक शीर्षक रचयिता पृष्ठसंख्या

१. गीत (कविता)—डॉ॰ हरिवंशराय 'बच्चन' १०३
२. अस्तित्ववाद (लेख)—प्रो॰ रमाशंकर तिवारी १०५
३. जैन इतिहास में धारा-नगरी (लेख)—श्री अगरचन्द नाहटा ११६
४. ज्ञान-दीप (कविता)—श्री दिवाकर १२८
५. भारतीय शिक्षा की समस्या (लेख)—श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार १२९
६. किलकिलानो द्वीप के कौवे (एकांकी)—श्री अनन्तकुमार पाषाण १३९
७. 'दिनकर' की कृति 'रश्मिरथी' (लेख)—श्री कालिकाप्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर' १४७
८. गीत (कविता)—श्री जितेन्द्रकुमार १५५
९. चतुर्भुजदास की मधुमालती का सौन्दर्यवर्णन (लेख)—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी १५७
१०. नयन-मिलन (कविता)—श्री आरसीप्रसादसिंह १६६
११. लोकतंत्र में हिन्दी की समस्याएँ (लेख)—श्री ब्रिजलाल बियाणी, वित्तमंत्री, मध्यप्रदेश १६८
१२. पत्नी का विद्रोह (कहानी)—सुश्री विमला बाँठिया १७६
१३. कबीर और तुलसी के राम (लेख)—आचार्य सद्गुरुशरण अवस्थी १८२
१४. जीवन-क्रम (कविता)—श्री कृष्णानन्दन 'पीयूष' १८९
१५. कृषिविकास और मध्यभारत (लेख)—श्री श्रीवल्लभ श्रीवास्तव १९०
१६. सम्मतियाँ १९५
१७. संपादकीय १९६

चित्र-सूची

मुखपृष्ठ—भारत के राष्ट्रपति डॉ॰ राजेन्द्रप्रसाद उदयगिरि गुहामंडप, भेलसा में स्थित भारत की श्रेष्ठतम गुप्तकालीन मूर्त्ति 'महावराह' का दर्शन करते हुए।

चतुर्भुजदास की मधुमालती सम्बन्धी चार चित्र।

'भारती'—सम्पादक की प्रार्थनाएँ

कृपया

(१) समस्त रचनाएँ, समालोचनार्थ पुस्तकें, परिवर्तन के सामयिक-पत्र आदि, सम्पादक, 'भारती', सराफ़ा, ग्वालियर के पते पर, पूरे डाक-टिकट लगाकर, भेजें।

(२) रचनाएँ सामान्यतः अच्छे काग़ज़ों पर, एक ही ओर, चारों ओर उचित हाशिया छोड़कर, टाइप की गई या सुपाठ्य अक्षरों में स्याही से लिखी गई भेजें।

(३) केवल वही रचनाएँ भेजें, जो पहले कहीं भी प्रकाशित न हुई हों। 'भारती' में छप चुकने के एक मास बाद रचयिता अपनी रचना चाहे जहाँ छपा सकते हैं।

(४) यथासंभव प्रत्येक रचना की प्रतिलिपि अपने पास रख लेने का कष्ट करें। अस्वीकृत रचनाएँ वापस मँगाने के लिए डाक के टिकिट अवश्य भिजवाएँ।

(५) तीन सप्ताह के अन्दर स्वीकृति की सूचना न मिलने पर यह समझ लें कि रचना 'भारती' में प्रकाशित न हो सकेगी।

(६) प्रत्येक रचना के नीचे अपना पूरा नाम और पता स्पष्ट लिखने का कष्ट करें।

(७) अनूदित रचना पर उसके अनूदित होने की सूचना लिखें। मूल लेखक की अनुमति लें।

(८) समालोचनार्थ पुस्तकों आदि की दो-दो प्रतियाँ भिजवाएँ।

हिन्दी साहित्य के इतिहास की एक नवीन धारा का आविष्कार
चतुर्भुजदास की
मधुमालती
—सम्पादक—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी—

विशुद्ध भारतीय प्रेमाख्यान परम्परा में मध्यदेश की बोली में लिखी गई इस 'रसकथा' के प्रकाशन से हिन्दी भाषा एवम् साहित्य के अज्ञात एवम् अप्रकाशित अध्याय को सर्वप्रथम सामने लाया गया है। बीस हस्तलिखित प्रतियों पर से सम्पादित पाठ, अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना, जिसमें भारत के आख्यान साहित्य, मधुमालती का उसमें स्थान, मध्यदेश की बोली आदि विषयों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

अनेक सुन्दर चित्र। छपाई, सफाई, जिल्द आदि दर्शनीय।
मूल्य ५)। डाक व्यय पृथक्।
(मार्च १९५५ के प्रथम सप्ताह में प्रकाशनीय)
—आज ही ऑर्डर दें।

प्रबन्धक—विद्यामंदिर प्रकाशन, सराफा ग्वालियर।

भारती, फरवरी १९५५

अनुक्रमणिका

क्रमांक	शीर्षक रचयिता	पृष्ठसंख्या
१.	गीत (कविता)—डॉ० हरिवंशराय 'बच्चन'	१०३
२.	अस्तित्ववाद (लेख)—प्रो० रमाशंकर तिवारी	१०५
३.	जैन इतिहास में धारा-नगरी (लेख)—श्री अगरचन्द नाहटा	११६
४.	ज्ञान-दीप (कविता)—श्री दिवाकर	१२८
५.	भारतीय शिक्षा की समस्या (लेख)—श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार	१२९
६.	किलकिलानो द्वीप के कौवे (एकांकी)—श्री अनन्तकुमार पाषाण	१३९
७.	'दिनकर' की कृति 'रश्मिरथी' (लेख)— श्री कालिकाप्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर'	१४७
८.	गीत (कविता)—श्री जितेन्द्रकुमार	१५५
९.	चतुर्भुजदास की मधुमालती का सौन्दर्यवर्णन (लेख)— श्री हरिहरनिवास द्विवेदी	१५७
१०.	नयन-मिलन (कविता)—श्री आरसीप्रसादसिंह	१६६
११.	लोकतंत्र में हिन्दी की समस्याएँ (लेख)— श्री ब्रिजलाल बियाणी, वित्तमंत्री, मध्यप्रदेश	१६८
१२.	पत्नी का विद्रोह (कहानी)—सुश्री विमला बाँठिया	१७६
१३.	कबीर और तुलसी के राम (लेख)—आचार्य सद्गुरुशरण अवस्थी	१८२
१४.	जीवन-क्रम (कविता)—श्री कृष्णनन्दन 'पीयूष'	१८९
१५.	कृषिविकास और मध्यभारत (लेख)—श्री श्रीवल्लभ श्रीवास्तव	१९०
१६.	सम्मतियाँ	१९५
१७.	संपादकीय	१९६

चित्र-सूची

मुखपृष्ठ—भारत के राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद उदयगिरि गुहामंडप, भेलसा में स्थित भारत की श्रेष्ठतम गुप्तकालीन मूर्त्ति 'महावराह' का दर्शन करते हुए।

चतुर्भुजदास की मधुमालती सम्बन्धी चार चित्र।

साहित्य, संस्कृति, कला, शिक्षा, ग्रामविकास तथा समाजसेवा की
मासिकपत्रिका

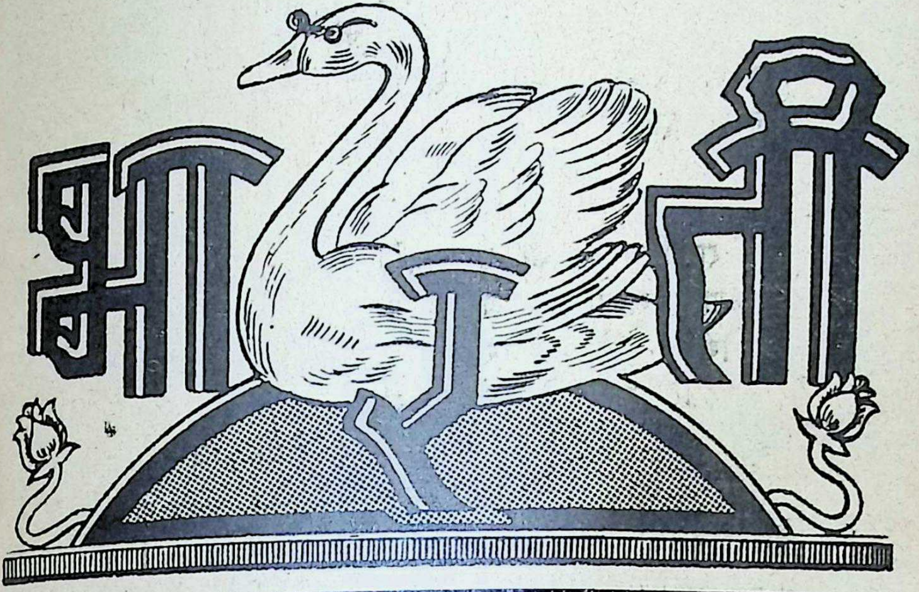

वर्ष १, खंड २] ग्वालियर, फ़रवरी, १९५५ [अंक १, पूर्णांक ८

गीत

— डॉ० हरिवंशराय 'बच्चन' —

(१)

झलक तुम्हारी मैंने पाई सुख-दुख दोनों की सीमा पर।
ललक गया मैं सुख की बाँहों
में जब-जब उसने चुमकारा,
औ' ललकारा जब-जब दुख ने
कब मैं अपना पौरुष हारा?
आलिंगन में प्राण निकलते,
खड्ग तले जीवन मिलता है,
झलक तुम्हारी मैंने पाई सुख-दुख दोनों की सीमा पर।

(२)

दुनिया की नीची सतहों पर
अलग-अलग सबकी परिभाषा;
हुआ न जिनका हास रुदनमय,
हुई न जिनकी आश निराशा,

वे छोटा-सा हृदय, परिधि भी
छोटी-सी नयनों की लाए;
मेरा तो दम ही घुट जाता ऐसे दिल के बीच समाकर।
झलक तुम्हारी·······

(३)

मेरा दिन चमका है सबसे
ज्यादा संध्या के आनन में,
मेरी रातें गहराई हैं
आकर ऊषा के आँगन में,
और लालिमा में दोनों की
भावुकता भी मेरे मन की।
देश-काल को देखा मैंने अपने लोहू से नहलाकर।
झलक तुम्हारी······

(४)

सब सुख का बलिदान, तुम्हारे
पावों की आहट अब आती,
सब दुख का अवसान, तुम्हारी
आँखें कल्पित मूर्ति बनातीं,
जहाँ न सुख है, जहाँ न दुख है
तुम हो एक, दूसरा मैं हूँ,
जीभ तीसरी, जो गाती है ऐसे क्षण को गीत बनाकर।
झलक तुम्हारी·······

अस्तित्ववाद

— प्रो० रमाशंकर तिवारी —

गत दस वर्षों में फ़्रांस के दार्शनिक जगत् में 'अस्तित्ववाद-नामक' विचार-धारा काफ़ी लोक-प्रिय हो गई है। साहित्य-सर्जना भी इस नवीन दृष्टि से प्रभावित हो रही है। इसके प्रबल प्रतिपादक फ़्रांस के प्रसिद्ध नाट्यकार एवं उपन्यास-रचयिता श्री जीन-पॉल सार्त्रे हैं। अस्तित्ववाद एक निरीश्वरवादी विचार-धारा है, जो इस बात पर ज़ोर देती है कि मनुष्य जीवन में सर्वथा स्वतंत्र है तथा उसे अपने विकास का पथ स्वयं प्रशस्त करना पड़ेगा।

यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि फ़्रांस में इस विचार-धारा का सहसा आविर्भाव नहीं हुआ है। इसके पीछे लगभग एक शताब्दी का इतिहास है। यूरोप के चिन्तन-प्रवाह में रह-रहकर नवीन धाराओं का प्रवर्त्तन हुआ है, जिनके द्वारा वहाँ के भिन्न-भिन्न देशों के तत्त्वचिन्तकों ने परिवर्तित परिस्थितियों के प्रकाश में मानव-समस्याओं के समाधान का प्रयत्न किया है। अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक विश्व एवं समाज-व्यवस्थाओं की कल्पना शाश्वत स्थिति के रूप में की जाती थी। किन्तु, फ़्रांस की राज्य-क्रान्ति, विभिन्न देशों में घटित होने वाली व्यावसायिक क्रान्ति तथा डार्विन इत्यादि द्वारा प्रतिपन्न विकासवाद के सिद्धान्तों के फलस्वरूप यूरोपीय विचार-जगत् में भी परिवर्तन हुआ। जहाँ पहले के चिन्तकों ने यह धारणा प्रचारित कर रखी थी कि विश्व का वर्त्तमान संघटन शाश्वत एवं सनातन है, वहाँ अब यह समझा जाने लगा कि सभी वस्तुएँ एवं व्यवस्थाएँ परिवर्तनीय हैं तथा निरन्तर गतिशीलता सृष्टि का नियम है। इसके लिए नवीन तर्क-प्रणाली की प्रतिष्ठा आवश्यक थी। प्रसिद्ध जर्मन पंडित हीगेल ने इस आवश्यकता की पूर्ति की। हीगेल की तर्क-प्रणाली का मूल आधार गतिशीलता है। बाद को मार्क्स और एंजेल्स ने उसीसे प्रेरणा ग्रहण कर, ऐतिहासिक भौतिकवाद का निरूपण किया, जो प्रथम महायुद्ध के बाद से अनेक राष्ट्रों को आकृष्ट करता चला जा रहा है।

किन्तु, हीगेल की द्वन्द्वात्मक विचार-भूमि का विरोध उसी समय डेनमार्क के

दार्शनिक सोरेन किर्कीगार्ड (Soren Kierkegaard) द्वारा किया गया। वही अस्तित्ववादियों के मार्ग का प्रशस्तकर्त्ता है। किर्कीगार्ड व्यक्ति ही को महत्त्व प्रदान करता है। उसकी मान्यता है कि व्यक्ति के जीवन में जो संकटपूर्ण द्विविधा की गहन परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं, उनका समाधान उसकी अन्तरात्मा में घटित होनेवाले संघर्षों, उद्वेलनों, चिन्ताओं तथा प्रपीड़नाओं से होकर प्रसूत होता है। इस प्रकार, प्रत्येक मनुष्य के जीवन की सत्यता की आधार-भूमि उसकी अंतरभिमुखता (inwardness) है तथा इसीलिए आत्मनिष्ठता (subjectivity) ही सत्य है। किर्कीगार्ड की अधिकांश तर्कना उसके अपने व्यक्तिगत अनुभव पर आधारित हैं, जिसमें उसके प्रणय-व्यापार का प्रचुर सन्निवेश है। प्रोटेस्टेंट चर्च का उसने तीव्र विरोध किया, किन्तु, फिर भी वह मुख्यतया धार्मिक लेखक है, क्योंकि परम्परानुगत धर्म का पुनः प्रकाशन और रक्षण ही उसका उद्देश्य है।

जर्मनी में नीत्शे (Nietzsche) ने भी लगभग उसी समय अस्तित्ववाद का प्रवर्त्तन किया। किर्कीगार्ड के समान यह भी व्यक्ति मानव के निर्णयों, रागावेश तथा उद्वेजना पर बल देता था तथा यह समझता था कि आधुनिक सभ्यता की लपेट में मानवता का महान् अनिष्ट हो सकता है। नीत्शे के 'अतिमानव' ('सुपरमैन') तथा किर्कीगार्ड के 'धर्म-वीर' (Knight of the Faith) में घनिष्ठ साम्य है, क्योंकि इन दोनों आदर्शों में आत्मनिष्ठता ही की मुख्यता है। धर्म की दृष्टि से तो नीत्शे ने ईसाई धर्म का प्रबल विरोध किया था। उसकी मृत्यु के उपरान्त, दोनों विश्व-युद्धों के बीच उत्पन्न होने वाले बौद्धिक उद्वेलन में, जर्मनी में जब उसकी विचार-धारा का प्रभाव बढ़ने लगा, तब, किर्कीगार्ड की चिन्तन-पद्धति भी जर्मनी में अत्यन्त प्रभावशाली सिद्ध हुई और दोनों धाराओं में विचित्र सहयोग सम्पन्न हुआ। नीत्शे और किर्कीगार्ड जैसे विभिन्न चिन्तकों के अनुयायियों के इस घनिष्ठ साम्य एवं सहयोग से अस्तित्ववादी सिद्धान्त की अस्पष्टता (Ambiguity) पर प्रकाश पड़ता है। अब तक अस्तित्ववादी चिन्तन दो शाखाओं में विकसित हुआ है, जिनमें एक ने धार्मिक दर्शन तथा दूसरी ने धर्म-विरोधी लौकिक या भौतिक 'क्रियावाद' (Activism) का स्वरूप ग्रहण किया है। प्रोटेस्टेंट धर्म-दर्शन में जो आधुनिक विकास हुए हैं, वे अधिकांश अस्तित्ववादी चिन्तन ही के परिणाम हैं। किन्तु, हीडेगर (Heidegger) का भौतिक या लौकिक (सेक्यूलर) दर्शन भी, जो साम्प्रतिक फ्रेंच अस्तित्वाद की प्रधान प्रेरणा-भूमि है, मूलतः अस्तित्ववादी ही है। प्रथम विश्व-युद्ध की समाप्ति के अनन्तर एक दशक तक मध्य-यूरोप, विशेषतया जर्मनी, की सामाजिक एवं मानसिक अवस्था ऐसी थी कि वहाँ आत्मनिष्ठ निरंकुशता (subjective absolutism) का पल्लवन और विकसन नितान्त स्वाभाविक था। जब वर्तमान सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्थाएं जन कल्याण का

सम्पादन करने में असमर्थ सिद्ध हो जाती हैं, तब निसर्गतः उनके आधारभूत विश्वासों, सिद्धान्तों एवं संस्थाओं के प्रति प्रश्न एवं सन्देह की भावना उत्पन्न होती है और लोग जीवन का दृढ़तर आधार खोजने के लिए अपने भीतर, अपनी अन्तरात्मा ही में, झाँकना और देखना प्रारम्भ कर देते हैं । जर्मनी में ऐसा ही हुआ । कार्ल जैस्पर्स ने अपनी पुस्तक 'मैन इन मॉडर्न एज' में वर्त्तमान वैज्ञानिक, मुख्यतया 'टेक्नोलॉजिकल' सभ्यता की तीव्र भर्त्सना की है तथा यह आशंका व्यक्त की है कि उसकी लपेट में मानवता का विनाश एक-दिन निश्चित है । जैस्पर्स कैथॉलिक धर्मावलंबी है और उसका विश्वास है कि आधुनिक संस्कृति के अवश्यंभावी विनाश से बचने का एकमात्र मार्ग यही है कि मनुष्य यह समझे कि वह सर्वथा स्वतंत्र होने के साथ ही, आत्म-पूर्ण ('सेल्फ़-सफ़ीशेंट') नहीं बन सकता । किन्तु हीडेगर के लिए, मनुष्य के अतिरिक्त कोई अन्य वस्तु या सत्ता नहीं है, जो उसके प्रश्नों का समाधान कर सके । हीडेगर, किर्कीगार्ड के समान, यह समझता है कि मनुष्य अपने अस्तित्व को जानने और अनुभव करने के लिए अत्यन्त व्याकुल होता है तथा वही उसकी समस्त चिन्ताओं का मूल उत्स है । मनुष्य जिन उद्देश्यों तथा योजनाओं की सृष्टि करता है उनसे उसे केवल यही ज्ञान होता है, यही अनुभव होता है कि वह 'है', उसका अस्तित्व है । अधिकांश लोगों को तो अपने अस्तित्व को सिद्ध करने की चिन्ता नहीं होती तथा वे अपनी संनिकट मृत्यु का बिलकुल ध्यान न रखते हुए मनुष्य, विज्ञान अथवा अन्य किसी वस्तुनिष्ठ सत्ता की पूजा-अर्चना ही में अपने को कृतकृत्य मान लेते हैं । किन्तु, हीडेगर का कथन है कि भावी विनाश से बचने के लिए मनुष्य को अपने अस्तित्व की प्रगाढ़ अनुभूति होना नितान्त आवश्यक है ।

हीडेगर का यह निर्मम निरीश्वरवाद सार्त्रे के सम्प्रदायवाले फ़्रेंच अस्तित्ववादियों को अत्यधिक प्रभावित किए है—यद्यपि फ़्रांस ही में गैब्रियल मार्सेल जैसे नाट्यकार और दार्शनिक विद्यमान हैं, जो रोमन कैथॉलिक मत के अवलम्बी हैं । यह समझना उचित नहीं होगा कि किसी बड़ी संख्या में व्यक्तियों का समूह अस्तित्ववादी विचारों के अनुरूप फ़्रांस में जीवन व्यतीत करता है । बात यह है कि फ़्रेंच लोग कला-प्रेमी हैं तथा उनके उपन्यासों और कथा-साहित्य में लेखकों द्वारा, सहज-ज्ञान के आधार पर, अपनी रचनाओं में प्रचुर अस्तित्ववादी विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है । अन्तरभिमुखता एवं आत्मनिष्ठता अस्तित्ववाद के प्रधान प्रेरणास्रोत हैं और फ़्रेंच रचनाकार, सार्त्रे के पथ-प्रदर्शन में, मनुष्य की स्वतंत्रता, निस्सहायता तथा अन्तर्वेदना का प्रचुर परिमाण में उन्मीलन करते जा रहे हैं । हमने ऊपर सकेत किया है कि अस्तित्ववादी चिन्तकों में आस्तिक और नास्तिक दोनों विचारों के व्यक्ति सन्निविष्ट हैं तथा उनमें समानता यही है कि दोनों सम-भाव से आधुनिक विज्ञानवादी सभ्यता

की स्थूल वस्तुनिष्ठता ('ऑवजेक्टिविटी') के विरोधी हैं तथा मानव-कल्याण के निमित्त अन्तरभिमुखता ('सब्जेक्टिविटी') के समर्थक हैं । निम्न पंक्तियों में फ्रांस के अस्तित्ववादी रचयिताओं के नायक प्रसिद्ध उपन्यासकार और चिन्तक जीन-पाल सार्त्रें के विचारों के आधार पर + निरीश्वरवादी अस्तित्ववाद (Existentialism) का परिचय दिया जाएगा ।

अस्तित्ववाद यह मानता है कि मनुष्य के 'गुणों' (Essence) के पहले उसका 'अस्तित्व' (Existence) है । इसे एक उदाहरण से समझा जा सकता है । घड़ी के बनने, अस्तित्व में आने, के पूर्व शिल्पी के मस्तिष्क में उसके निर्माण की एक निश्चित योजना थी; वह यह समझता था कि अमुक ढंग से निर्मित होने पर वह अमुक कार्य सम्पन्न करेगी । इस प्रकार, घड़ी के 'गुणों' अथवा 'एसेन्स' की कल्पना पहले की गई और तब उसके फलस्वरूप उसकी रचना हुई, अर्थात् उसका 'अस्तित्व' उसके 'परिचायक धर्म' अथवा उसके 'उत्पादन' का अनुगामी है । जब हम यह मानते हैं कि ईश्वर सृष्टि का रचयिता है, तब हम उसे एक स्वर्गीय या अलौकिक शिल्पी मानते हैं, जो मनुष्य की रचना करते समय यह जानता है कि वह क्या बना रहा है, उसे किन-किन गुणों से समन्वित किया जायगा तथा संसार में जाकर वह क्या-क्या करेगा । अर्थात्, जिस प्रकार घड़ी शिल्पी की मानसिक योजना और कल्पना का परिणाम है, उसी प्रकार ईश्वरीय बुद्धि या मस्तिष्क में रहने वाली एक निश्चित धारणा या योजना ही का प्रत्यक्षीकृत स्वरूप मनुष्य है । इस दृष्टि-कोण से, मनुष्य का एक स्वभाव है, जो सभी मनुष्यों में सम-भाव से उपलब्ध है । अतः, इस दृष्टि से, मनुष्य की 'मनुष्यता', उसका 'एसेंस' पूर्व-निर्णीत है और उसका अस्तित्व उसका अनुगामी है । किन्तु, अस्तित्ववाद, इसके विपरीत, यह मानता है कि यदि सृष्टि करनेवाला ईश्वर नहीं है तो कम-से-कम एक ऐसी सत्ता 'है', जिसका अस्तित्व उसके स्वभाव का पूर्वगामी है, जो अपने परिचायक गुणों के विकास के पूर्व ही वर्त्तमान है । वह सत्ता मनुष्य है, जिसे हीडेगर ने 'मानवी सत्य' (human reality) कहा है । अतएव, 'स्वभाव' ('एसेन्स') से पूर्व 'अस्तित्व' ('एग्ज़िस्टेन्स') मानने का अर्थ यह है कि सर्व-प्रथम मनुष्य 'है', उसे अपना ही साक्षात्कार होता है, वह संसार में पल्लवित और विकसित होता है तथा इस प्रकार वह अपनी 'परिभाषा' स्वयं बनाता है, अपनी परिचयात्मक प्रकृति का स्वयं निर्माण करता है । अतः, केवल मनुष्य 'है', उसका कोई 'स्वभाव' या 'स्वरूप' नहीं, क्योंकि उस स्वरूप की नियोजित रचना करनेवाला कोई ईश्वर नहीं है । इसका अर्थ

+ सन् १९४५ ई० में सार्त्रें ने पेरिस में एक व्याख्यान दिया था, जिसका अँग्रेज़ी अनुवाद श्री फ़िलिप मैरेट ने 'Existentialism and Humanism' नाम से प्रस्तुत किया है । —लेखक

यह हुआ कि मनुष्य अपनी संकल्प-शक्ति (will) से स्वयं अपना निर्माण करता है। अस्तित्ववाद का यह पहला सिद्धान्त है अथच इसीको 'आत्मनिष्ठता' या 'सब्जेक्टिविटी' की आख्या दी गई है। इसके अनुसार यह निष्कर्ष निष्पन्न होता है कि प्रत्येक मनुष्य अपने लिए स्वयं उत्तरदायी है।

किन्तु, जब यह कहा जाता है कि मनुष्य अपने लिए स्वयं उत्तरदायी है, तब इसका यह अर्थ नहीं है कि वह केवल अपनी व्यक्तिता ही के लिए उत्तरदायी है, अपितु इससे यह अभिप्रेत है कि वह सभी मनुष्यों के लिए उत्तरदायी है। आत्मनिष्ठता का अर्थ व्यक्ति की स्वतंत्रता तो है ही, उसका दूसरा गंभीरतर अर्थ यह है कि मनुष्य मानवीय अन्तरभिमुखता की परिधि से बाहर नहीं जा सकता। जब यह कहा जाता है कि मनुष्य स्वयं किसी क्रिया या पदार्थ का चुनाव करता है, तब इसका अभिप्राय यह भी है कि अपने लिए चुनाव करते समय वह सभी मनुष्यों के लिए भी चुनाव करता है। अपना निर्माण करने के लिए वह जो भी कार्य करता है, वह मनुष्य के उस रूप का सर्जन करने में समर्थ होता है, जो उसके द्वारा आकांक्षित है। पुनः, कोई चुनाव करते समय हम उसके महत्त्व या मूल्य को स्वीकार करते हैं तथा वही चीज़ हमारे लिए श्रेयस्कर होगी, जो सबके लिए कल्याणकर हो। अतः, हमारा दायित्व अत्यधिक बढ़ जाता है। उदाहरणतः, यदि कोई विवाह करने और संतति उत्पन्न करने का निर्णय करता है, तो उस निर्णय की बाध्यता केवल उसीके लिए नहीं है, अपितु, वह सम्पूर्ण मानवता के लिए विवाह की प्रथा को मान्य ठहरा देता है। इस प्रकार, अपना निर्माण करते समय वह मानव का निर्माण करता है।

उक्त निरूपण के आलोक में 'वेदना' (Anguish), 'असहायता' (Abandonment) और 'निराशा' जैसे शब्दों का तात्पर्य आसानी से समझा जा सकता है— ये कुछ विशिष्ट शब्द हैं, जिनका प्रयोग अस्तित्ववादी विवेचना या आलोचना में प्रायः हुआ करता है। अस्तित्ववादी स्पष्ट स्वीकार करता है कि वह अन्तर्वेदना की ज्वाला में झुलस रहा है। यह जानने से कि मनुष्य अपने लिए कोई निर्णय करके सम्पूर्ण मानवता का भी नियामक बना जा रहा है, उसे सदैव उत्तरदायित्व की गहन भावना आक्रान्त किए रहती है। 'जो कार्य मैं कर रहा हूँ, यदि वही दूसरे भी करें, तो क्या परिणाम होगा'?—इस प्रकार का प्रश्न प्रत्येक मनुष्य को अपने से पूछना चाहिए। जो इस उद्वेगजनक विचार को दबा देता है, वह एक प्रकार से आत्म-प्रवंचना करता है। 'यदि मैं किसी कार्य को श्रेयस्कर समझता हूँ, तो मैं अन्य लोगों को भी वैसा करने के लिए अपने आचरण से बाध्य करता हूँ। किन्तु, क्या मुझे अधिकार है कि मैं सम्पूर्ण मानवता के अनुसरण के लिए कोई पद्धति अथवा आदर्श प्रस्तुत करूँ?'— इस मानसिक उद्वेजना से प्रत्येक मनुष्य को अन्तर्वेदना होती है अथच इस वेदना का

पर्यवसान मौनावलंबन या निष्क्रियता में नहीं होता। राष्ट्र-नायकों को इसी कोटि की अन्तर्वेदना निरन्तर पीडित किए रहती है। अस्तित्ववादियों की भी यही अन्तर्वेदना है तथा यह निष्क्रियता के बदले क्रियाशीलता ही की उत्पादिका है।

'असहायता' (Abandonment) से अस्तित्ववादियों का यह अभिप्राय होता है कि ईश्वर नहीं है और इसलिए उसकी सत्ता के अभाव में जो परिणाम हो सकते हैं, उन्हें मनुष्य को स्वीकार करना चाहिए। सन् १८८० ई० के लगभग फ्रेंच प्राध्यापकों ने ईश्वर की जगह एक लौकिक नैतिकता का निर्माण करने का उद्योग किया। उन्होंने ईश्वर का प्रत्याख्यान तो किया, किन्तु, सत्य, ईमानदारी, परोपकार आदि जैसे गुणों के सनातन महत्त्व की ओर संकेत करके एक नैतिक आचार-प्रणाली की स्थापना पर बल दिया, जिससे समाज और संसार का कार्य व्यवस्थित रूप से चलता रहे। किन्तु, अस्तित्ववादी ऐसा नहीं करता। उसे तो इस विचार से अधिक उलझन होती है कि जब ईश्वर नहीं है, तब उसी के साथ-साथ एक बोधगम्य स्वर्ग में सत्य, ईमानदारी आदि जैसे सनातन मूल्यों की अवस्थिति की संभावना भी समाप्त हो जाती है। तब तो हम ऐसे धरातल पर जीवन ग्रहण कर रहे होते हैं, जहाँ केवल मनुष्य ही मनुष्य हैं, कोई अन्य असीम एवं पूर्ण सत्ता नहीं। तो तब क्यों यही माना जाय कि हमें सत्य बोलना चाहिए और ईमानदारी बरतनी चाहिए? ईश्वर के अभाव में सभी प्रकार की क्रियाएँ मान्य हो जायँगी। इस प्रकार मनुष्य, अस्तित्ववादी दृष्टि से, असहाय बन जाता है, क्योंकि, भीतर या बाहर कोई ऐसी वस्तु नहीं, जिसपर वह अवलंबित या आश्रित रह सके। ऐसी दशा में उसे सद्यः प्रतीत हो जाता है कि वह अकेला है, उसके लिए उसके कार्यों का कोई बहाना नहीं है। क्योंकि अस्तित्ववादी के लिए तो 'स्वभाव' या 'प्रकृति ('एसेन्स'), 'अस्तित्व' ('एग्ज़िस्टेन्स') की अनुवर्ती है, उसीसे प्रसूत होती है। अतः, वह अपने कार्यों के लिए यह तर्कना नहीं कर सकता कि वे मनुष्य के किसी पूर्व-निश्चित तथा पूर्व-प्रदत्त स्वभाव के कारण घटित हुए हैं। दूसरे शब्दों में, वह नियति (Determinism) की शरण नहीं ले सकता, क्योंकि मनुष्य स्वतंत्र है, किसी पूर्व-प्राप्त या किसी रहस्यपूर्ण दिव्य शक्ति द्वारा प्रदत्त स्वभाव या प्रकृति (nature) की सीमाओं से नियंत्रित नहीं है। उसी प्रकार जब ईश्वर नहीं है, तब हमें कोई मूल्य अथवा आदेश भी प्राप्त नहीं हैं, जिनसे हमारे आचरणों को अनुमोदन मिल सके। अतएव, जितनी भी मान्यताएँ आज समाज में प्रचलित हैं, उनमें से किसी के सहारे हम अपने कार्यों का औचित्य सिद्ध नहीं कर सकते। इस प्रकार हम अकेले हैं, हमारे लिए कोई संबल नहीं, कोई बहाना नहीं। इसी कारण मनुष्य का यह 'दुर्भाग्य' है कि वह 'स्वतंत्र' है, अनियंत्रित और निरंकुश है। 'दुर्भाग्य' इसलिए कि वह स्वयं तो संसार में आया नहीं, किन्तु, यहाँ आने के अनन्तर अपने निर्माण का,

और उसके द्वारा समूचे मानवसमुदाय के निर्माण का समस्त उत्तरदायित्व उसी-पर आ पड़ा है।

अस्तित्ववादी मनुष्य के भीतर रागावेश (Passion) की अवस्थिति तो मानता है, लेकिन, यह नहीं मानता कि यह आवेश कोई ऐसी विध्वंसक शक्ति है, जिससे मनुष्य किन्हीं कार्यों में प्रवृत्त होने के लिए बाध्य हो जाय। उसकी धारणा है कि मनुष्य अपने रागों के लिए स्वयं उत्तरदायी है। इसी प्रकार, अस्तित्ववाद किसी ऐसे मानवेतर संकेत पर भी विश्वास नहीं करता, जो उसे उसके मार्ग-निर्वाचन में सहायता प्रदान कर सके। अतएव, चारों ओर से असहाय मनुष्य अपने निर्माण में, अपने भविष्य के सर्जन में, पूर्णतया, अपितु निर्ममतया, स्वतंत्र है। अर्थात् "मनुष्य ही मनुष्य का भविष्य है"।

जब हमें किसी वाहरी आदेश अथवा नैतिक मान्यता से कोई सहायता नहीं मिलती, तब यह सोचा जा सकता है कि हमारी भावना (Feeling) हमें निर्णय करने में मदद करेगी। किन्तु, भावना सर्वदा विश्वसनीय नहीं होती, अतः, इससे कार्य-निर्देशक के रूप में सलाह नहीं ली जा सकती। भावना के अतिरिक्त, यदि हम यह कहें कि हम 'अन्तर्ध्वनि' (Inner Voice) का अनुगमन करेंगे, तब भी तो उस आन्तरिक संकेत का अर्थ लगाना हमारा ही उत्तरदायित्व होगा। अतएव, न भीतर से, न वाहर से, न ऊपर से, न कहीं से भी, मनुष्य अपने निर्णयों और निर्वाचनों में कोई सहायता पा सकता। अर्थात्, वह सर्वथा निस्सहाय है, और यही उसको अन्तर्वेदना की जननी है।

अस्तित्ववादियों की 'निराशा' (Despair) उपर्युवत पंक्तियों के आलोक में समझी जा सकती है। जब अपने कार्यों के लिए हमींको निर्णय करना पड़ेगा तब उसका अर्थ यह हुआ कि हमें अपनी संकल्प-शवित ही पर निर्भर रहना होगा। जव कोई किसी वस्तु की इच्छा करता है, तब उसमें सर्वदा संभवनीयता के तत्त्व सन्निविष्ट रहते हैं। किन्तु, ये संभावनाएँ हमारे कार्यों से सम्बद्ध होती हैं और इसलिए जहाँ कोई भी सभावनाएँ हमारे कार्य को प्रभावित करने के लिए दृष्टिगोचर नहीं होतीं, वहाँ हमारी दिलचस्पी समाप्त हो जाती है। ईश्वर हैं ही नहीं और न है कोई पूर्व-निर्धारित योजना, जो संसार तथा इसकी सम्पूर्ण संभावनाओं को हमारे संकल्प के अनुकूल बना दे। इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्य को बिना किसी आशा के कार्य करना चाहिए। अस्तित्ववादी दृष्टि से, वह इस पर भी विश्वास नहीं कर सकता कि दूसरे उसके उद्देश्य की सिद्धि में कार्य-रत हैं तथा उसकी मृत्यु के अनन्तर वे उसके कार्य को अग्रसर करते रहेंगे। जिन आदमियों को वह जानता नहीं, उनपर वह निर्भर नहीं रह सकता। वह मनुष्य की नेकी या अच्छाई अथवा उसकी लोक-कल्याण की

कामना पर भी विश्वास नहीं कर सकता; क्योंकि वह जानता है कि मनुष्य अपने निर्णयों में सर्वथा स्वतंत्र है तथा किसी आधारभूत मानवी प्रकृति की अवस्थिति नहीं है, जिससे वह लोक-मंगल में निसर्गतः प्रवृत्त हो। उसके मरणोपरान्त उसके साथी और सहयोगी उसके उद्देश्य की सिद्धि के लिए कार्य करते रहेंगे—इसकी भी क्या गारंटी (विश्वास) है ? वे तो स्वतंत्र प्रमाता हैं और कल बिलकुल नवीन निश्चय कर सकते हैं कि मनुष्य क्या होने जा रहा है। आज हमारे देश में लोकतंत्र है और कल, संभव है, इसकी जगह अधिनायक-तंत्र ग्रहण कर ले। कहने का अभिप्राय यह है कि लोग जैसा निश्चय करेंगे, वैसा ही उनका स्वरूप, उनका विकास होगा।

किन्तु, इस तर्कना से यह समझना प्रमाद होगा कि अस्तित्ववादी निष्क्रियता का संवरण करने के पक्षपाती हैं। इसके विपरीत, उनकी सही दृष्टिभंगी यह है—एक बार विवेकपूर्वक निर्णय कर लेना चाहिए; पुनः, उस निर्णय को कार्यान्वित करने का उद्योग करना चाहिए; किन्तु, यह आशा नहीं रखनी चाहिए कि कोई लौकिक या पारलौकिक शक्ति उसे किसी प्रकार की सहायता प्रदान करेगी। अस्तित्ववाद इस बात की उद्घोषणा करता है कि मनुष्य ही एकमात्र सत्य है और यह सत्य क्रियाशीलता में है, निष्क्रिय मौनावलंबन में नहीं। "मनुष्य जो संकल्प करता है, उससे अधिक वह कुछ भी नहीं है; उसका अस्तित्व उसी परिमाण में है, जिसमें वह अपने संकल्पों को उपलब्ध कर लेता है; अतएव, वह अपने कार्यों के पूर्ण-योग (total) के अतिरिक्त और कुछ नहीं है; जो उसका जीवन है, उससे बढ़कर या घटकर वह कुछ नहीं है।" इस दृष्टि से कोई यह शिकायत नहीं कर सकता कि परिस्थितियाँ उसके प्रतिकूल थीं; अन्यथा, वह अमुक सफलता प्राप्त कर लेता। अतः, मनुष्य अनेक निर्णयों और उनके कार्यान्वय के प्रयत्नों का सम्मिलित प्रतिफलन है। उसकी पूर्व-निर्धारित कोई परिभाषा ('एसेन्स') नहीं, अपितु, वह अपने कार्यों से स्वयं अपना मानदण्ड, अपना स्वरूप निर्मित करता है।

साहित्य-सर्जन के क्षेत्र में अस्तित्ववादी रचयिता प्रायः ऐसे चरित्रों की अवतारणा करते नजर आते हैं, जो हेय, हीन, दुर्बल, कायर तथा कभी-कभी स्पष्टतया बुरे होते हैं। लेकिन, ज़ोला जैसे घोर यथार्थवादियों की तरह वे यह नहीं निर्दशित करते कि उनकी हेयता अथवा निकृष्टता का कारण उसकी वंशानुगत विशिष्टता ('हेरेडिटी') अथवा उनका परिवेश है, क्योंकि, वैसी अवस्था में मनुष्य अपने दुर्भाग्यों के लिए अन्य वस्तु को उत्तरदायी समझने लग जा सकता है। अस्तित्ववादी लेखक, जब वह किसी कायर का चित्रण करता है, तब यह दिखाता है कि वह मनुष्य स्वयं अपनी कायरता के लिए उत्तरदायी है। वह इसलिए कायर नहीं बना है कि उसके मस्तिष्क, फेफड़े, हृदय अथवा किसी अन्य भीतरी शारीरिक रचना में कोई ऐसा तत्त्व

है, जो उसे कायरता की प्रेरणा देता है। अवश्य ही, वह कायर कायरता के लिए दोषी ठहराया जाता है, लेकिन, इसकी संभावना तो निरन्तर रहती ही है कि वह अपनी कायरता छोड़ दे और वीर बन जाय। वास्तव में, निर्णयों की सम्पूर्णता का महत्त्व है और किसी एक ही कार्य से अथवा एक ही दशा में, मनुष्य निःशेष-भाव से कोई अन्तिम निर्णय नहीं कर लेता, जो उसके जीवन के चरम स्वरूप का निर्धारण कर सके।

उपर्युक्त विवेचन से अस्तित्ववाद के सम्बन्ध में ये तथ्य प्रकाश में आते हैं—(१) यह निष्क्रियतावादी दर्शन नहीं है, क्योंकि यह मनुष्य की परिभाषा उसके कार्यों से करता है। (२) यह मनुष्य का नैराश्य-मूलक-वर्णन नहीं करता, अपितु, यह सभी सिद्धान्तों से अधिक आशावादी सिद्धान्त है, क्योंकि यह मनुष्य को अपने भाग्य का स्वयं विधायक बताता है। (३) यह मनुष्य को कार्य करने में निरुत्साहित नहीं करता, क्योंकि, यह बताता है कि उसके लिए उसके कार्यों के अतिरिक्त कोई अन्य आशा का स्रोत नहीं है। तथापि, अस्तित्ववाद की आधार-शिला है मनुष्य की आत्मनिष्ठता। सार्त्रे का कथन है कि इसके लिए विशुद्ध दार्शनिक कारण हैं। "मैं सोचता हूँ, अतः, मैं हूँ"— इसके अतिरिक्त कोई अन्य सत्य नहीं है। आत्म-प्रतीति अथवा आत्म-बोध ही पूर्ण निरपेक्ष सत्य है तथा इसीपर अन्य सम्भावनाएँ अवलंबित हैं। दूसरी बात यह है कि यही सिद्धान्त मनुष्य की महिमा को स्वीकार करता है। सभी प्रकार के भौतिकवादी सिद्धान्त मनुष्य को पूर्व-निश्चित प्रतिक्रियाओं का निश्चेष्ट समवाय-मात्र समझते हैं। केवल अस्तित्ववाद ही ऐसा सिद्धान्त है, जो मनुष्य के लिए भौतिकवाद से पृथक् मूल्यों का निरूपण कर, उसकी इयत्ता को स्वीकृति प्रदान करता है। किन्तु, जैसा पहले बताया जा चुका है, इस आत्म-बोध में मनुष्य अपने ही को नहीं, प्रत्युत, अन्यों को भी उपलब्ध करता है, जो उसके अस्तित्व की आवश्यक शर्तें हैं। उसे यह ज्ञात होता है कि वह नेक, दुष्ट या ईर्ष्यालु कुछ भी नहीं है, जब तक दूसरे उसे वैसा नहीं समझें। दूसरे की मध्यस्थता ही से मैं अपने विषय में किसी सत्य का पता पाऊँगा। जब मैं घनिष्ठ-भाव से आत्म-बोध प्राप्त करता हूँ, तब यह भी प्रतीति मुझे होती है कि दूसरा भी स्वतंत्र सत्ता है, जो जब कभी कुछ सोचेगा या संकल्प करेगा, वह अवश्य ही मेरे अनुकूल या प्रतिकूल होगा। इस प्रकार, यह कहा जा सकता है कि हम 'अन्तर्-आत्म-निष्ठता' (inter-subjectivity) की दुनिया में निवास करते हैं। इसी ससार में रहते हुए मनुष्य को यह निर्णय करना पड़ता है कि वह क्या है और दूसरे क्या हैं।

इस सम्बन्ध में यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि यद्यपि कोई सार्वभौम मानव-स्वभाव नहीं है, तथापि कुछ ऐसी सामान्य सीमाएँ या मर्यादाएँ हैं, जो विश्व में मनुष्य की स्थिति को परिभाषित करती हैं। उसकी ऐतिहासिक परिस्थितियाँ भिन्न हो

सकती हैं, किन्तु संसार में जीवन धारण करने, परिश्रम करने और मृत्यु को प्राप्त हो जाने की आवश्यकताएँ ऐसी हैं, जो कभी परिवर्तित नहीं होतीं। मनुष्य, सर्वत्र और सदैव, विकसित होने के प्रयास में या तो इन बन्धनों का अतिक्रमण कर जाता है या उन्हें और विस्तृत बना देता है। सुतरां, किसी भी देश का मनुष्य जो कुछ संकल्प या चेष्टा करता है, उसका सार्वभौम मूल्य हो जाता है, क्योंकि प्रत्येक चेष्टा प्रत्येक मनुष्य द्वारा समझ ली जाती है। किन्तु, यह मानवीय सार्वभौमता कोई निश्चित वस्तु नहीं, अपितु, वह निरन्तर निर्मित होती रहती है।

अस्तित्ववाद का केन्द्रीय तत्त्व यह है कि मनुष्य निर्णय के लिए पूर्णतया स्वतंत्र है तथा उससे वह आत्मोपलब्धि के साथ-साथ मानवता के विकास में भी हाथ बँटाता है। यह सही है कि वह किन्हीं पूर्व-निश्चित मूल्यों के अनुसार चुनाव नहीं करता; किन्तु, उसपर, इस कारण, मनमाने आचरण का आरोप लगाना अनुचित होगा। सार्त्रे का यहाँ कथन है कि जिस प्रकार कलाकार किसी चित्र की रचना करने में किसी पूर्व-निश्चित नमूने का अनुकरण नहीं करता, उसी प्रकार मनुष्य निर्णय करते समय किसी नैतिक मानदण्ड का अनुसरण नहीं करता अथच उसी चित्रकार के समान वह 'सृष्टि' करता है तथा इस प्रकार अपने लिए स्वयं नियमों और विधानों की रचना करता है। अतः, मनुष्य का कोई बना-बनाया रूप नहीं, वह अपने को स्वयं बनाता है तथा इस निर्माण में वह अनिवार्यतया एक नैतिकता की भी सृष्टि कर लेता है। अस्तित्ववादी 'उन्नति' पर विश्वास नहीं करते। उन्नति (प्रोग्रेस) का अर्थ है अवस्था में सुधार। लेकिन, मनुष्य सर्वदा वही है, तथा उसे सदा एक परिस्थिति का सामना करना पड़ता है, जो सदैव बदलती रहती है अथच जो निर्णय वह करता है वह परिस्थिति-विशेष से प्रभावित है। किन्तु, इस निर्णय में वह रहता है पूर्णतया स्वतंत्र। जब मनुष्य यह देखता है कि उसीके ऊपर मूल्य (Values) निर्भर करते हैं, तब उस असहायावस्था में वह केवल एक ही संकल्प कर सकता है और वह होगी स्वतंत्रता, जिसपर सभी मूल्य निर्भर हैं। इस प्रकार हम स्वतंत्रता का संवरण करते हैं स्वतंत्रता के लिए तथा कुछ विशेष परिस्थितियों में। सुतरां, हमें यह प्रतीत हो जाता है कि हमारी स्वतंत्रता दूसरों की स्वतंत्रता पर अवलंबित है तथा दूसरों की स्वतंत्रता भी हमारी स्वतंत्रता पर आश्रित है।

श्री सार्त्रे अस्तित्ववाद को 'मानववाद' (Humanism) ही का एक रूप मानते हैं, जिसके लिए उनकी खरी आलोचना हुई है। उनका कथन है कि मानववाद दो प्रकार का होता है। कुछ विशेष मनुष्यों ने हवाई जहाज का आविष्कार या निर्माण किया। किन्तु, उसी के आधार पर हम यह कह बैठते हैं कि "मनुष्य महान् है!" अर्थात् कुछ ख़ास लोगों ने जो महत्त्व के कार्य किए, उनका श्रेय समस्त मानव-समूह

76031

को दे दिया गया । यह भी एक मानववाद है, लेकिन, यह मूर्खतापूर्ण है । सार्त्र के अनुसार मानववाद का एक दूसरा स्वरूप यों है—मनुष्य सदैव मानवीय आत्मनिष्ठता के विश्व में विद्यमान रहता है, जहाँ प्रत्येक आदमी स्वयं अपना निर्णय स्वतंत्र-भाव से करता है । उसके अतिरिक्त वहाँ कोई अन्य नियामक नहीं । वह चारों ओर से निस्सहाय होकर अपने लिए स्वयं निर्णय करने को बाध्य है तथा मुक्ति प्राप्त करने के लिए अन्य किसी विशेष उपलब्धि के बिना ही वह सीमाओं के बाहर जाकर ही आत्मोपलब्धि (Self-realisation) कर सकता है । इस अर्थ में अस्तित्ववाद मानववाद ही का पर्याय है अथवा इस मानववाद को 'अस्तित्ववादी मानववाद' (Existential humanism) कहा जा सकता है ।

अतएव, यह स्पष्ट हो जाता है कि ईश्वर की सत्ता पर अनास्था रखने के जो भी तर्क-संगत परिणाम हो सकते हैं, वे सभी अस्तित्ववाद के विधायक तत्त्व हैं । इसके अनुसार मनुष्य को पुनः अपने अस्तित्व पर विश्वास उत्पन्न करना है तथा यह समझ लेना है कि यदि ईश्वर की सत्ता किसी तर्क-पूर्ण पद्धति से प्रमाणित भी हो जाय, तो भी वह अपने से किसी भी प्रकार बच नहीं सकता । इस प्रकार, अस्तित्ववाद एक आशावादी क्रियाशीलता का सिद्धान्त है, जो मनुष्य को यह बताता है कि वह स्वयं अपने भाग्य का विधाता है ।

संक्षेप में यही सार्त्र के अस्तित्ववाद का स्वरूप है । विद्वानों का कथन है कि अभी सार्त्र ने न तो अनियंत्रित स्वतंत्रता के सिद्धान्त के राजनीतिक परिणामों की विवेचना की है और न उसके आध्यात्मिक परिणामों ही की पूर्ण छान-बीन की है । कुछ विद्वानों का तो यहाँ तक कहना है कि उसकी आधारभूत कल्पना में जो दार्शनिक आवश्यकनाएँ सन्निहित हैं, वे उसे कभी ईश्वरवादी बना देंगी । अस्तित्ववाद की सम्पूर्ण संभावनाएँ अभी समाप्त नहीं हो गई हैं ।

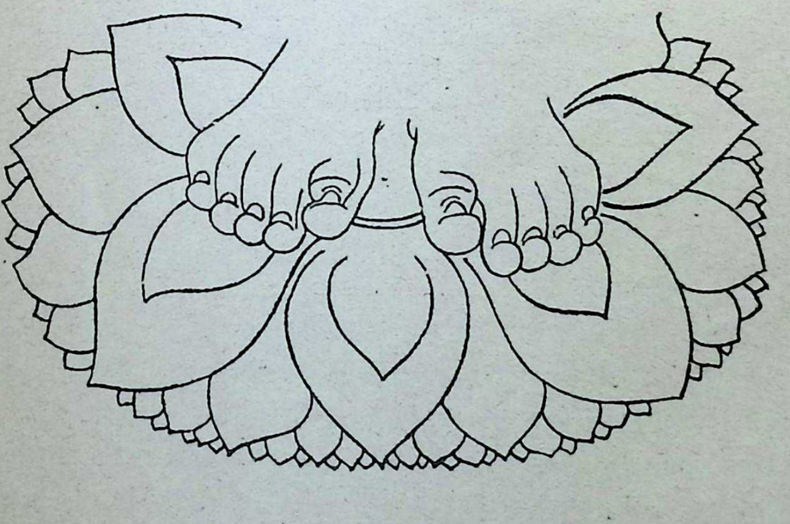

जैन इतिहास में धारा-नगरी

— श्री अगरचन्द नाहटा —

आधारः पुरुषार्थानां पुरी धाराऽस्ति यत्पुरः ।
दानकल्पाद्रु बाहुल्यादसारा साऽमरावती । ६ ।
प्रभावकचरित्रे महेन्द्रसूरिप्रबंधः

मालव प्रान्त के साथ जैन धर्म का सम्बन्ध बहुत प्राचीन एवं घनिष्ठ रहा है। मालव के प्रधान नगर उज्जयनी का वर्णन तो अनेक जैन ग्रन्थों में मिलता ही है, पर, परवर्त्ती राजधानी धारा-नगरी के भी अनेक उल्लेख जैन ग्रन्थों में बिखरे पड़े हैं। यहाँ उनमें से कुछ ग्रन्थों के आधार पर जैनधर्म तथा धारा नगरी के शताब्दियों के घनिष्ठ सम्बन्ध पर प्रकाश डाला जायगा।

श्री नन्दकिशोर द्विवेदी के धारा-राज्य के इतिहास के अनुसार, धारा-नगरी की स्थापना पँवार वैरीसिंह द्वितीय ने सन् ९१४ से ९४१ ई० के बीच में की थी। उसने अपनी तीक्ष्ण तलवार की धार से शत्रुओं को मार भगाकर यह नया नगर बसाया, इसीलिए इस नगरी का नाम धारा-नगरी प्रसिद्ध हुआ बतलाया गया है, पर, प्रबन्ध-चिन्तामणि के "भोजभीमप्रबन्ध" में धारा-नगरी की उत्पत्ति भिन्न ही प्रकार से बतलाई है। उसके अनुसार धारा नाम की वेश्या के नाम से यह नगर बसाया गया। + प्रबन्धचिन्तामणि की रचना सम्वत् १३६१ में की गई, इसलिए उसमें दी गई अनुश्रुति अवश्य ही कुछ तथ्यपूर्ण होनी चाहिए। विद्वानों को इस सम्बन्ध में विशेष खोज करके तथ्य को शीघ्र ही प्रकाश में लाना चाहिए।

जहाँ तक जैन इतिहास का सम्बन्ध है, सबसे प्राचीन उल्लेख दर्शनसार का

+ राजा को नया नगर बसाने की इच्छा हुई, तो उसने पटह बजवाया। उस समय धारा वेश्या अग्निवेताल के साथ लंका जाकर उस नगर का निवेश देख आई। उसने यह कहकर कि नगर को मेरा नाम देना, लंका का मानचित्र राजा को दिया। उसके अनुसार राजा ने नई धारा-नगरी बसाई।

है। इस ग्रन्थ की रचना वि० सं० ९९० माघ सुदी १०, के दिन धारा-नगरी के पार्श्व-नाथमन्दिर में हुई थी।

पुव्वायरिय कदाइं गाहाइं संचिऊण एयत्थ ।
सिरिदेवसेणगणिणा धाराए संवसंतेण ॥४९॥
रइओ दंसणसारो हारो भव्वाणं णवसए नवए ।
सिरिपासणाहगेहे सुविसुद्धे माहसुद्ध दसमीए ॥५०॥

ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी में तो जैनधर्म का धारा-नगरी में काफ़ी प्रभाव रहा है। श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों के जैनाचार्यों का यहाँ आना तथा रहना होता रहा। श्री नाथूरामजी प्रेमी ने श्री आचार्य अमितगति का परिचय देते हुए लिखा है कि "मालवे के विद्याप्रेमी और विद्वान् पँवारवंश के राजाओं के काल में जो अनेक जैन विद्वान् हो गए हैं, उनमें आचार्य अमितगति का भी एक विशेष स्थान है। इस वंश के राजा जैनधर्म के प्रति आदर भाव रखते थे। प्रद्युम्न-चरित्र-काव्य के कर्त्ता आचार्य महासेन राजा मुञ्ज द्वारा पूजित थे। इसी तरह महासेन महाराजा सिंधुल के महामहत्तम पर्पट के गुरु थे। न्यायकुमुदचन्द्र और प्रमेयकमलमार्तण्ड के कर्त्ता प्रभाचन्द्र धाराधीश भोजदेव द्वारा सम्मानित थे। महाकवि धनपाल ने अपने प्रसिद्ध गद्यकाव्य 'तिलकमञ्जरी' की रचना राजा भोज के कहने से की थी और राजा भोज ने उन्हें अपनी सभा में 'सरस्वती' की पदवी से सम्मानित किया था। दुबकुंड सं० ११४५ के लेख के अनुसार जैनाचार्य शान्तिसेन ने भोजदेव की सभा में अम्बरसेन आदि जैन विद्वानों का अपमान करने वाले पण्डितों को हराया था। इसी तरह भोज के वंशज अर्जुनदेव के सांधिविग्रहिक मंत्री लखण सम्भवतः पण्डित आशाधर के पिता थे। वह गुरु बालसरस्वती मदनोपाध्याय के शिष्य थे। इससे पता लगता है कि उक्त सब राजाओं के काल में जैन विद्वानों की काफ़ी प्रतिष्ठा थी और उनका जैन धर्म के प्रति सद्भाव था।

साहित्याचार्य पं० विश्वेश्वरनाथ रेऊ के कथनानुसार अमितगति वाक्पति राजा मुञ्ज की सभा के एक रत्न थे। अपने ग्रन्थों में उन्होंने मुञ्ज और सिंधुल का उल्लेख किया है। उनकी राजधानी धारा थी। अमितगति के 'सुभाषितरत्नसंदोह' की रचना वि० सं० १०५० ई० में हुई।

महासेन के प्रद्युम्नचरित्र काव्य की रचना भी मुञ्ज के समय में हुई। इस ग्रन्थ के प्रत्येक सर्ग के अन्त में महासेन को सिंधुराज के महामहत्तम पर्पट का गुरु लिखा है। इससे यह ज्ञात होता है कि पर्पट जैन धर्मानुयायी था और उसके कहने से इस काव्य की रचना हुई।

आसीत् श्री महसेनसूरिरनघः श्री मुंजराजार्चितः।
सीमादर्शनबोधवृत्ततपसां भव्याब्जिनी बांधवः ॥३॥
श्री सिन्धुराजस्य महत्तमेन श्री पर्पटेनार्चितपादपद्मः।
चकार तेनाभिहितः प्रबंधं स पावनं निष्ठितमङ्गजस्य ॥४॥

इसके पश्चात् प्रभाचन्द्र और श्रीचन्द्र नामक दिगम्बर विद्वान् भोजदेव तथा इनके उत्तराधिकारी जयसिंहदेव के समय में हुए। प्रभाचन्द्र ने प्रमेय कमलमार्तण्ड की रचना तो भोजदेव के समय में की थी और आदिपुराण टिप्पण और आराधना कथाकोष जयसिंहदेव के समय में बनाया।

'श्री भोजदेवराज्ये श्री मद्धारानिवासिना परपटापरमेष्ठिपदप्रणामार्जितामलपुण्यनिराकृतनिखिलमलकलंकेन श्रीमत्प्रभाचन्द्रपण्डितेन निखिलप्रमाणप्रमेयस्वरूपोद्योतपरीक्षामुखपदमिदं विवृतमिति।"

आदिपुराण टिप्पण और आराधनाकथाकोश में भोजदेव राज्य के स्थान पर "श्री जयसिंह देव राज्ये" पाठ है, इतना ही अन्तर है।

श्रीचन्द्र ने धारा-नगरी ही में पुराणसार, पद्मचरित्र टिप्पण, और महापुराण टिप्पण की रचना सं० १०८० और ८७ में की थी।

धारायां परि भोजदेवनृपते राज्ये जयात्युच्चकैः
श्री मत्सागरसेनतो यतिपतेर्ज्ञात्वा पुराणं महत्।
मुक्त्यर्थं भवभीतिभीतजगता श्रीनन्दिशिष्यो बुधः
कुर्वे चारुपुराणसारयमलं श्रीचन्द्रनामा मुनिः

श्री विक्रमादित्यसंवत्सरे यक्षपूत्य (अशीत्य ?) धिकवर्षसहस्त्रे पुराणसाराभिधानं समाप्तं।

इसके पश्चात् दिगम्बर संप्रदाय के महान् विद्वान् पण्डित आशाधर को हम धारा-नगरी में सं० १२४९ के लगभग पाते हैं। विन्ध्य वर्मा, सुभट वर्मा, अर्जुन वर्मा, देवपाल और जयसिंह द्वितीय, पण्डित आशाधर के समकालीन राजा थे। जिस समय पं० आशाधर माण्डलगढ़ (मेवाड़) को छोड़कर धारा में आए, उस समय वहाँ के शासक विन्ध्य वर्मा थे। धारा-नगरी उस समय विद्याकेन्द्र थी। "पारिजात-मंजरी" के अनुसार, उस समय विशाल धारा-नगरी में ८४ चौराहे थे और वहाँ नाना दिशाओं से आए हुए विविध विद्याओं के पण्डितों और कलाकोविदों की भीड़ लगी रहती थी। वहाँ शारदा-सदन नाम का एक दूर-दूर तक ख्याति पाया हुआ विद्यापीठ था। स्वयं आशाधरजी ने भी धारा ही में व्याकरण और न्याय शास्त्र का अध्ययन किया था। ऐसी धारा को भी, जिसपर प्रत्येक विद्वान् को मोह होना चाहिए, पण्डित आशाधर ने

जैन धर्म के ज्ञान को लुप्त होते देखकर उस जैन ज्ञान के उदय के लिए छोड़ दिया और अपना शेष जीवन नालछा में जाकर इसी कार्य में लगा दिया।

आशाधरजी ने धारा में आकर बादिराज पं० धरसेन के शिष्य पं० महावीर से जैनेन्द्र व्याकरण और जैन न्यायशास्त्र पढ़ा था।

दिगम्बर सम्प्रदाय के उपर्युक्त उल्लेख श्री नाथूराम प्रेमी के "जैन साहित्य और इतिहास" नामक ग्रन्थ से लिए गए हैं। अब हम श्वेताम्बर सम्प्रदाय के ऐतिहासिक ग्रन्थोंका सार देते हैं।

प्रभावकचरित (र० सं० १३३४) के अनुसार धारा-नगरी के लक्ष्मीपति नामक समृद्ध व्यापारी के यहाँ मध्यदेशीय दो ब्राह्मण पढ़ने के लिए ठहरे हुए थे। उनका नाम श्रीधर और श्रीपति था। आचार्य वर्धमानसूरि विचरते हुए एक बार धारा-नगरी पधारे, तो उनके उपदेश से दोनों ब्राह्मणों ने जैन धर्म का प्रतिबोध पाकर दीक्षा ले ली। आगे चलकर ये दोनों मुनि जिनेश्वरसूरि और बुद्धिसागरसूरि के नाम से विख्यात ग्रन्थकार हुए। इनके रचित कथाकोश, लीलावती, प्रमाणशास्त्र और बुद्धिसागर व्याकरण उपलब्ध हैं। लीलावती मूल रूप में तो नहीं, पर, उसका संस्कृत-सार, जिनरत्नसूरि द्वारा रचित जैसलमेर रात्र भांडार में प्राप्त है। जिनेश्वरसूरि ने पाटण के दुर्लभराज की राजसभा में चैत्यवासियों से शास्त्रार्थ कर विजय प्राप्त की और तभी से "खरतर" विरुद (गच्छ) प्रसिद्ध हुआ।

धारा-नगरी के सेठ धनदेव के पुत्र अभयकुमार ने ज़िनेश्वरसूरि से दीक्षा ग्रहण की और सं० १०८८ में प्रगुरु वर्द्धमान सूरि के आदेश से उन्हें आचार्य पद प्राप्त हुआ। यह अभयदेव सुरि 'नवांगी वृत्तिकार' के रूप में बहुत ही समर्थ विद्वान् माने जाते हैं। धारा-नगरी की इस विभूति ने जैन शासन की बड़ी सेवा की। प्रभावक चरित और युग-प्रधानाचार्यगुर्वावलि आदि में इनका विस्तृत चरित्र पाया जाता है।

इसी समय महाराज भोज के सभापंडित कविवर धनपाल हुए, जिनकी कीर्ति तिलकमंजरी द्वारा विख्यात है। इनका चरित्र सर्वविदित होने के कारण यहाँ विस्तार से नहीं दिया जा रहा है। इनके भ्राता शोभन मुनि भी अच्छे विद्वान् हो गए हैं, जिनकी रचित शोभन चतुर्विंशतिका बहुत ही प्रसिद्ध कृति है।

धनपाल के अनुरोध से वादिवेताल शान्तिसूरि धारा नगरी में पधारे थे। और उन्होंने भोजराज की सभा के ८४ वादियों को वाद में जीत कर भोज से शर्त के अनुसार ८४ लाख मालवी रुपए प्राप्त किए थे। मालवे के एक लाख रुपए, गुजरात के १५ हज़ार समझने चाहिए। इस हिसाब से इनके १२ लाख ६० हज़ार गुजराती रुपए हुए, जिनमें से १२ लाख तो वहीं के जैन मंदिरों में खर्च किए गए और ३० हज़ार थराद के आदिनाथ मंदिर के लिए भेज दिए गए। अपने सभापंडितों के

लिए शान्तिसूरि वेताल के समान निकले, इसलिए भोज ने उन्हें वादिवेताल विरुद दिया। इन शान्तिसूरि ने महाकवि धनपाल की तिलकमंजरी का संशोधन किया था। प्रभावकचरित में इनका विस्तृत चरित्र देखना चाहिए। इनके रचित उत्तराध्ययन टीका, तिलक-मंजरी टिप्पण, चैत्यवन्दन महाभाष्य, जीवविचारप्रकरणादि प्राप्त हैं। प्रभावकचरित के महेन्द्रसूरिप्रबन्ध में, महेन्द्रसूरि, शोभन, धनपाल और कौल कवि-धर्म इन चार विद्वानों का वृत्तान्त है। उसके अनुसार धनपाल और शोभन सगे भाई थे। इनके पिता का नाम सर्वदेव और दादा का नाम देवर्षि था। इनका मूल निवास-स्थान मध्यदेश के समीप में था, पर देवर्षि से समय ही से यह कुटुम्ब धारा में आ गया और इसने अच्छी राज्य-प्रतिष्ठा प्राप्त की।

महेन्द्रसूरि शोभन को उसके पिता की आज्ञा से जैन दीक्षा देकर अपने साथ ले गए। धनपाल को अपने भाई का वियोग बड़ा अखरा और वह जैन साधुओं का द्वेषी हो गया। कहा जाता है कि उसने राजा को समझाकर १२ वर्ष तक श्वेताम्बर साधुओं का वहाँ आगमन रोक दिया। अन्त में उनके भ्राता शोभन मुनि ने इस अन्याय को धारा में आकर दूर हटाया और उनके प्रभाव से धनपाल भी जैन हो गया।

धनपाल के पश्चात् सूराचार्य के धारा नगरी में आने का विस्तृत वृत्तान्त प्रभावकचरित में मिलता है। सूराचार्य के गुरु ने उनका विद्याभिमान देखकर ताना दिया था कि तुम्हें वादविवाद का इतना शौक़ है, तो भोज की सभा में जाकर विजय प्राप्त करो। गुरु के इस मर्म-वचन से सूराचार्य का स्वाभिमान जाग उठा। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि जबतक भोज की सभा को विजित नहीं करूँगा, तबतक घी, तेल, मिठाई आदि ६ प्रकार के विगयों का त्याग है। प्रतिज्ञानुसार वे धारा पहुँचे। महाराज भोज ने उनका पहले तो अच्छा सत्कार किया, पर उसे अपने भोज-व्याकरण की भूलें बताना और मालवीय पंडितों की हँसी उड़ाना बहुत अखरा। कवि धनपाल ने समयसूचकता से उन्हें बचाकर पाटन भेज दिया। सूराचार्य जब भोज की सभा में आए थे तब वहाँ कई दार्शनिक विद्वान् किसी कारण से क़ैद थे। सूराचार्य ने महाराज को समझाकर उन्हें मुक्त करवाया। धारा-नगरी में उन्होंने हाथी की सवारी से प्रवेश किया था और चूड़सारस्वताचार्य के यहाँ वह ठहरे थे।

इसके पश्चात् खरतरगच्छाचार्य जिनवल्लभसूरि महाराज नरवर्म के समय धारा-नगरी में आए थे। उसका प्रसंग गणधरसार्धशतक बृहद्वृत्ति में इस प्रकार दिया है कि एक बार धारा-नगरी के राजा नरवर्म की विद्वत्-सभा की प्रशंसा सुनकर दक्षिण के दो पण्डित वहाँ आए। उन्होंने राजसभा में एक समस्या-पद रखा—"कण्ठे कुठारः कमठे ठकारः"। सभापण्डितों ने अपनी-अपनी ओर से तीन-पाद-पूर्ति करके सुनाई पर आगत दक्षिणी पण्डितों को उनकी समस्यापूर्ति से सन्तोष नहीं हुआ।

राजा ने इसमें अपनी सभा की हीनता समझी और किसी विचक्षण से पूछा कि क्या इस पद की सुन्दर पूर्ति कर सके, ऐसा अन्य विद्वान् जानकारी में है ? उसने कहा—महाराज ! चित्तौड़ में एक श्वेताम्बर जिनवल्लभगणी सर्वविद्यानिधान हैं। वह मनोनुकूल पूर्ति कर सकेंगे। महाराज ने तत्काल दो शीघ्रगामी ऊँटों पर अपने पुरुषों को बिठा पत्र के साथ वह समस्या भेजी। संध्या समय जब जिनवल्लभ प्रतिक्रमण कर रहे थे, राजा का पत्र उनके हाथ में पहुँचा। प्रतिक्रमणान्तर तत्काल उन्होंने उसकी पूर्ति इस प्रकार करके दे दी:—

'रे रे नृपाः ! श्री नरवर्मभूपप्रसादनाय क्रियतां नताङ्गैः ।
कण्ठे कुठारः कमठे ठकारश्चक्रे यदश्वोऽग्रखुराग्रघौतः" ।

धारा-नगरी से आए हुए दोनों पुरुष रातों-रात वहाँ से रवाना होकर शीघ्र ही धारा पहुँचे। प्रातःकाल दक्षिणी विद्वानों के सामने वह पूर्ति रखी गई और उन्हें वह बहुत पसंद आई।

कुछ दिनों के बाद जब जिनवल्लभसूरि का धारा में आगमन हुआ और जब महाराज को यह विदित हुआ कि वह समस्या पूर्ति करने वाले यहाँ आए हैं, तब उन्होंने उन्हें सत्कार के साथ राजसभा में बुलाया और प्रसन्न होकर ३ लाख पारुत्थ और तीन गाँव उन्हें भेंट किए। पर गणीजी ने कहा कि महाराज, यह अर्थ साधुओं के लिए अनर्थ का कारण है, इसलिए मैं तो इसे न लूँगा। आप चाहते हों, तो चित्तौड़ के श्रावकों ने जो नया मन्दिर बनाया है, उसकी पूजादि के लिए अपने जगातमंडी से दो पारुत्थ प्रतिदिन दिए जाने का प्रबन्ध कर सकते हैं। महाराज उनके इस निर्लोभता-सूचक वाक्य से बड़े प्रभावित हुए और उनकी सूचनानुसार हमेशा के लिए प्रबन्ध कर दिया। जिनवल्लभसूरि की सर्वत्र बड़ी प्रसिद्धि हुई।

जिनवल्लभसूरि के पट्टधर जिनदत्तसूरि हुए। उनके समय धारा-नगरी एक प्रसिद्ध विद्या-पीठ थी। सूरिजी ने अपने शिष्य जिन-रक्षित, स्थिरचन्द्रादि और शिष्यिणी श्रीमति, जिनमति, पूर्णश्री आदि को वृत्तिपञ्जिकादि लक्षणशास्त्र पढ़ने के लिए धारा-नगरी भेजा था। जब वह बागड़ देश में थे, तब ये साधुसाध्वी विद्याध्ययन कर वापस लौटे। सूरिजी ने उन्हें सैद्धान्तिक अध्ययन कराया।

इसी बीच के कई अन्य उल्लेख भी मिलते हैं, जिनकी चर्चा कर देना भी यहाँ आवश्यक है। सन्मतितर्क के टीकाकार अभयदेवसूरि के शिष्य धनेश्वरसूरि ने धाराधिपति मुञ्ज की सभा में विजय प्राप्त की थी।

धर्मघोषसूरि के शिष्य समुद्रघोष ने धारा के नरवर्म की राज-सभा में अपनी प्रतिभा दिखाई थी:—

यो मालवोपात्त विशिष्टतर्कविद्यानवद्यो प्रशमप्रधानः ।
विद्वज्जनाभिश्रितपादपद्म केषां न विद्यागुरुतामधत्त ॥
धारायां नरवर्मदेवनृपतिश्रीगोह्लदक्ष्मापतिं
श्रीमत्सिद्धपतिं च गुजरपुरे विद्वज्जने साक्षिणि
स्वैर्यो रंजयति स्म सद्गुणगणैर्विद्यामविद्याशयो
लब्धिः प्राक्तनगौतमादिगणभृत्, संवादिनीर्द्धारयन् ॥

सं० १२३२ में धारा-नगरी के आम्रदेव के पुत्र नरपति ने नरपति-जयचर्या नामक स्वरोदय और शकुन सम्बन्धी ग्रन्थ बनाया ।

सं० १२५४ में जिनपतिसूरि ने धारा के शान्तिनाथ-देवगृह में विधि प्रवर्तित की—"सं० १४५४ श्रीधारायां श्रीशान्तिनाथदेवगृहे विधिः प्रवर्तितः ।"

सं० १२९५ में सुमतिगणी ने धारा और नालछा से विहार करते हुए गणधर-सार्धशतक स्वृहद्वृत्ति की पूर्णाहुति मण्डपदुर्ग (मांडव) में की, जिसकी ताड़पत्रीय प्रति जैसलमेर के वृहद ज्ञानभांडार में है । पुष्पिका इस प्रकार है:—

"सं० १२९५ वर्षे श्री धारापुरी-नलकच्छकादिकृत विहारक्रमेण सुमति-गणिना श्रीमंडपदुर्गे वृत्तिरियं समर्थितेति ।"

१४ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में मांडवगढ़ के धनिक श्री पेथड़साह ने भारत के विभिन्न स्थानों में ८४ जैन-मंदिर बनवाए थे । उनमें धारा-नगरी में जैन-मंदिर-निर्माण कराने का भी उल्लेख पाया जाता है ।

वादिदेवसूरिप्रबन्ध के अनुसार उन्होंने धारा के धरणीधर पण्डित को वाद में परास्त किया था ।

१४ वीं शताब्दी तक के उल्लेखों की चर्चा ऊपर की जा चुकी है । १५ वीं शताब्दी का कोई महत्त्वपूर्ण उल्लेख ज्ञात न हो सका । पर, १६ वीं शताब्दी के प्रारम्भ की एक महत्त्वपूर्ण प्रशस्ति हमारे संग्रह में है, जिसका सार इस प्रकार है:—

यह प्रशस्ति एक स्वर्णाक्षरी तथा सचित्र कल्पसूत्र की प्रति को लिखाने की है । २९ श्लोकों में १६ वीं शताब्दी के सुप्रसिद्ध भाषाबालावबोध के लेखक 'मेरूसुन्दर' मुनि ने इसकी रचना की है । इसके अनुसार मालव-मंडल की धारा-नगरी के निवासी पर्वत और आम्बा नामक दो संघ मुख्य जैन श्रावकों ने, इस स्वर्णाक्षरीविशिष्ट प्रति को लिखाया था । उन्होंने और भी लगभग एक लाख श्लोक प्रमाणग्रन्थ लिखवाए थे । जैन चैत्य-प्रतिमा-प्रतिष्ठा और तीर्थ-यात्रादि में बहुत-सा द्रव्य खर्च करके जैन शासन की प्रभावना की थी । सं० १५१२ में यह प्रति ख़रतर गच्छ के जिनचन्द्रसूरि के उपदेश से लिखाई गई । पर्वत और आम्बा श्रीमाल वंश के बहकटा गोत्रीय थे । उनका वंश-वृक्ष प्रशस्ति के अनुसार इस प्रकार बनता है:—

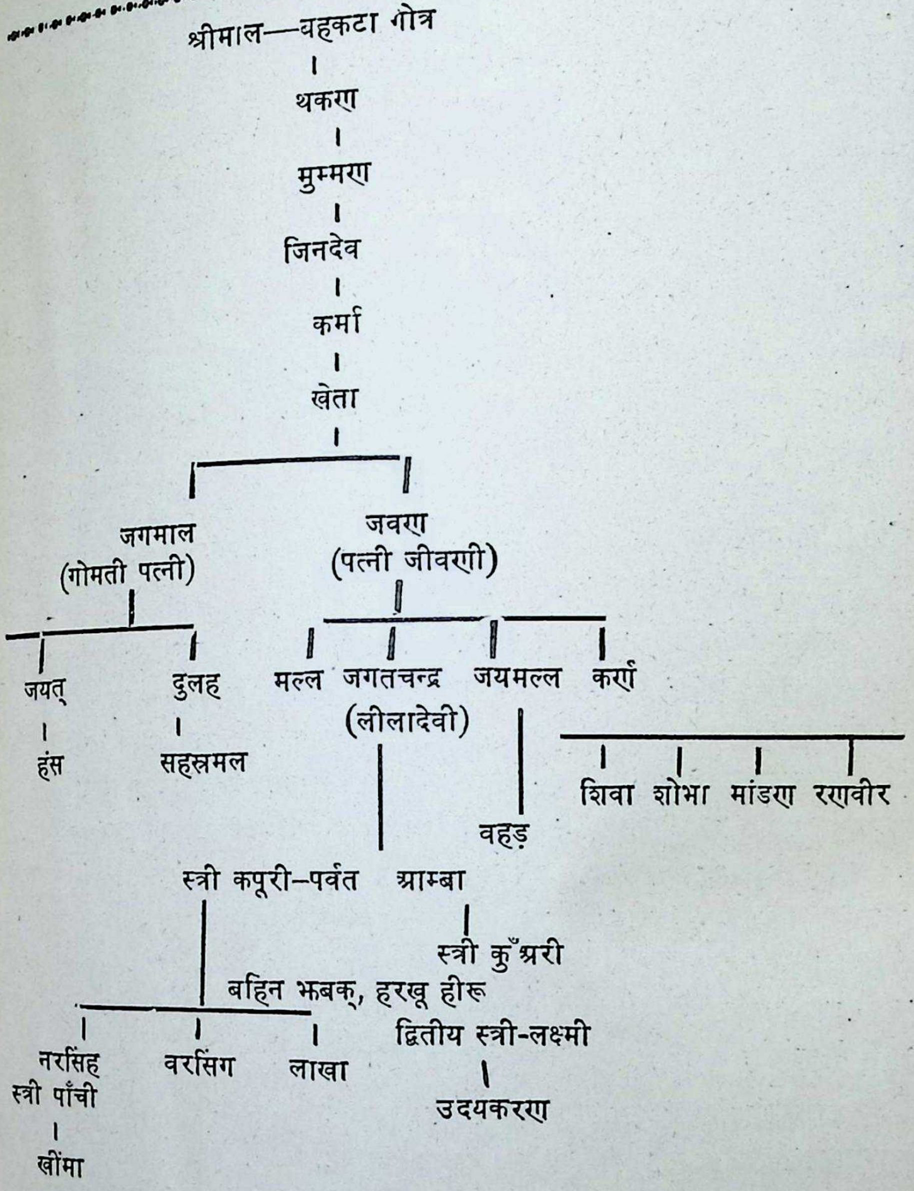
श्रीमाल—वहकटा गोत्र
थकण
मुम्मण
जिनदेव
कर्मा
खेता
जगमाल
(गोमती पत्नी)
जवण
(पत्नी जीवणी)
जयत्
दुलह
मल्ल
जगतचन्द्र
(लीलादेवी)
जयमल्ल
कर्ण
हंस
सहस्रमल
शिवा
शोभा
मांडण
रणवीर
वहड़
स्त्री कपूरी–पर्वत
आम्बा
स्त्री कुँअरी
बहिन झबकू, हरखू हीरू
द्वितीय स्त्री-लक्ष्मी
नरसिंह
स्त्री पाँची
खीमा
वरसिंग
लाखा
उदयकरण

स्वर्णाक्षरी सचित्र प्रति लिखाने में सैकड़ों रुपए ख़र्च होते हैं, अतः पर्वत और आम्बा इस नगर के काफ़ी समृद्ध व्यक्ति प्रतीत होते हैं। इनके पूर्वज जवण ने शत्रुंजय का तीन बार संघ निकालकर बहुत-सा धन सुकृत में लगाया था, इसी प्रकार जगच्चन्द्र की पत्नी लीलादेवी ने भी शत्रुंजय और गिरनार की तीन बार यात्रा की थी और सात क्षेत्रों में बहुत-सा धन ख़र्च किया था।

इसके बाद का कोई महत्त्वपूर्ण उल्लेख अभी ध्यान में नहीं है।

धारा-नगरी में शान्तिनाथ मंदिर आदि कई जैन मंदिर थे। उनके सम्बन्ध में भी हमारी विशेष जानकारी नहीं है कि वहाँ कितने जैन मंदिर थे तथा प्राचीन मंदिरों का कब विनाश हुआ। "मध्यप्रान्त, मध्यभारत तथा राजपूताने के प्राचीन जैन-स्मारक और "यतीन्द्रविहादिग्दर्शन" के भाग ४ से विदित होता है कि सन् १४०५ मं जैन मंदिरों को तोड़कर, दिलावरखाँ ने लाट मस्जिद बनवाई। वर्तमान में यहाँ दो श्वेताम्बर-मंदिर हैं, एक बनिया-बाड़ी में, जो प्राचीन है और दूसरा सदर बाज़ार में, जो शिखरबद्ध नया बनाया गया है। पहला मंदिर आदिनाथ का और दूसरा पारसनाथ का है। पहले मंदिर में धातुमय ७५ प्रतिमाएँ और कुछ प्राचीन पाषाण प्रतिमाएँ भी हैं। मूल नायक की प्रतिमा सं० १२०३ की प्रतिष्ठित है। सं० १३२८, १३६२, १५४७ आदि की अन्य प्रतिमाएँ भी हैं।

जैन इतिहास से सम्बद्ध धारा-नगरी के यथाज्ञात उल्लेख के पश्चात् अब जैन ग्रंथों में जो धारा-नगरी के उत्थान और पतन की कहानी लिखी मिलती है, उसका भी संक्षिप्त परिचय दे देना उचित होगा।

मध्यकाल से श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय के सबसे अधिक प्रचारकेन्द्र राजस्थान और गुजरात रहे हैं। ९ वीं शताब्दी के लगभग श्रीमाल नगर से बहुत से जैन गुजरात की ओर जाने प्रारम्भ हुए और पाटण की दिनों दिन उन्नति होने लगी। गुजरात की राजधानी अनहिल पाटण के स्थापक वनराज चावड़ा पर जैनाचार्य शीलगुणसूरि का बड़ा उपकार रहा। फलतः, गुजरात के राजाओं के साथ जैनाचार्य और श्रावकों का सम्बन्ध बहुत ही अच्छा रहा। मंत्री और सेनापति जैसे उच्च पदों पर जैन श्रावकों ने लम्बे समय तक रह कर गुजरात की समृद्धि बढ़ाने का बड़ा प्रयत्न किया। इधर जैनाचार्यों की विद्वत्ता और चारित्र्य की छाप गुजरात के राजाओं पर बहुत अच्छी रही। इस मधुर सम्बन्ध के कारण जैन विद्वानों के रचित ऐतिहासिक प्रबन्ध आदि ग्रन्थों में गुजरात के इतिहास की भरपूर सामग्री मिलती है।

गुजरात और मालवा उस समय के बहुत समृद्धि-शाली प्रदेश थे। यहाँ के राजाओं का प्रताप बहुत ही ज़बर्दस्त था। फलतः, दोनों स्थानों के शासकों में ईर्ष्या और प्रतिस्पर्द्धा होना स्वाभाविक है। उसने आगे चलकर संघर्ष का रूप धारण किया, जिसका परिणाम बहुत घातक हुआ।

प्रबन्धचिन्तामणि के अनुसार गुर्जर-नरेश वल्लभराज ने धारा-नगरी पर चढ़ाई की। उसने क़िले को घेर रखा था। उसी समय सं० १०६६ में शीली रोग से उसकी मृत्यु हो गई। उसके बाद दुर्लभराज, जो उसका छोटा भाई था, राजा बना। साढ़े ग्यारह वर्ष राज्य करने के पश्चात् अपने पुत्र भीम का राज्याभिषेक कर वह स्वयं तीर्थोपासना के लिए वाराणसी की ओर चला। मालवमंडल में पहुँचने पर, वहाँ-

के महाराज मुञ्ज ने उसे रोककर कहा कि—"छत्रचामरादि राज्य-चिह्नों का परित्याग करके कार्पटिक (संन्यासी) की भाँति आगे जाओ, नहीं तो युद्ध करो"। दुर्लभराज ने इसे धार्मिक विघ्न समझा और वह भीमराज को इस अपमान की सूचना देकर स्वयं कार्पटिक का वेश पहन कर तीर्थयात्रा करते हुए परलोक सिधारा। इसी एक प्रसंग से गुजरात और मालवे के राजाओं में सदा के लिए विरोध और संघर्ष की उत्पत्ति हुई।

भोज और भीम का संघर्ष चालू रहा। जब जिसने मौका देखा, आक्रमण का प्रयत्न किया। प्रबन्ध-चिन्तामणि में लिखा है कि वर्षा न होने के कारण गुजरात में जब कण और तृण की प्राप्ति कठिन हो गई, तब ऐसे कुसमय में भोज ने गुजरात पर आक्रमण की तैयारी की। भीम को बड़ी चिन्ता हुई. पर, उसके कुशल सांधिविग्रहिक दामर ने बड़ी कुशलता से भोज को प्रसन्न कर किसी तरह उस आफ़त को टाला। दूसरी बार फिर राजा भीम जब सिंधुदेश की विजय में रुका हुआ था, तब भोज के सेनापति दिगम्बर कुलचन्द्र ने गुजरात पर आक्रमण किया। भोज और भीम दोनों अपने समय के बड़े प्रतापशाली राजा थे। सांधिविग्रहिक दामर ने दोनों का मिलन बड़ी चतुराई से कराया। भोज और भीम के अनेक प्रसंग प्रबन्ध-चिन्तामणि में मिलते हैं।

भोज और कर्ण के संघर्ष का वृत्तान्त भी उक्त ग्रंथ में मिलता है। कर्ण और भीम दोनों ने मिलकर भोज पर आक्रमण किया। तदनन्तर सिद्धराज ने तो इस संघर्ष को चरम सीमा तक पहुँचा दिया। उसने धारा-नगरी का, जिस बेहयाई से ध्वंस किया और वहाँ के राजा को अपमानित किया, इसकी कहानी बड़ी ही वेदनापूर्ण है। प्रबन्ध-चिंतामणिके अनुसार, सिद्धराज जयसिंह जिस समय सोमेश्वर की यात्रा में व्यस्त था, उसी समय मालवे का छलान्वेषी राजा यशोवर्मा गुर्जर देश में उपद्रव करने लगा। सान्तू मंत्री ने किसी तरह यशोवर्मा का कहा मानकर इस आफ़त से पिंड छुड़ाया। पर, सिद्धराज को जब यह विदित हुआ, तब उसे वह बहुत ही अखरा। फलतः उसने मालव पर चढ़ाई करदी। १२ वर्ष तक युद्ध होता रहा। फिर भी जब धारा का क़िला नहीं टूटा, तब उसने प्रतिज्ञा की कि "क़िले को तोड़े बिना आज अन्न ही न खाऊँगा"। सायंकाल हो जाने पर भी जब सफलता नहीं मिली, तब मंत्रियों ने आटे की बनावटी धारा बनाकर किसी परमार राजपूत को मरवाकर प्रपंच से प्रतिज्ञा का निर्वाह कराया। अन्त में बड़े प्रयत्न के बाद किसी धारा-निवासी ही से यह भेद मिला कि दक्षिण दरवाज़े की ओर से हमला करने पर ही क़िले का तोड़ना सम्भव हो सकता है। सिद्धराज ने अपने बलवान् पट्ट-हस्ती पर बैठकर दरवाज़े को तोड़ने का भरसक प्रयत्न किया। किवाड़ तो टूट गए, पर, हाथी की हड्डी भी साथ में टूट गई। हाथी वहीं गिर पड़ा। दुर्ग का भंग कर

यशोवर्मा को बाँधकर सिद्धराज पाटन लौटा। उसने प्रतिज्ञा की थी कि यशोवर्मा के हाथ में बिना म्यान की छुरी देकर और उसे अपने पीछे बिठाकर हाथी पर सवार होकर, नगरप्रवेश करेंगे। मुञ्जाल मंत्री को यह अनुचित लगा। पर, यह सोचकर कि राजा की प्रतिज्ञा भंग होगी, उसने वैसा ही किया।

सं० १४०५ में रचित राजशेखरसूरि के प्रबन्धकोश में मदनवर्मा का प्रबन्ध है। उसने यह घटना यशोवर्मा के स्थान पर नरवर्मा से संबद्ध बताई गई है। उसके अनुसार, धारा-नगरी के त्रिपोलिए के लोहे की अर्गला सोमनाथ में (इस ग्रंथ-रचना के समय) विद्यमान है। सिद्धराज जयसिंह ने प्रतिज्ञा की थी कि धारा-नरेश नरवर्मा के चमड़े से बने हुए म्यान ही में मेरी तलवार प्रवेश करेगी। और प्रतिज्ञा-पूर्ति के लिए हाथी पर आरूढ़ नरवर्मा को पृथ्वी पर गिराकर उसके पैर का एक बेंत चमड़ा उतरवाया। वह तो और भी चमड़ा उतरवाने पर उतारू था, पर, मंत्रियों ने "राजा के अवध्य होने की नीति सुनाकर किसी तरह उस कृत्य को रोका; फिर भी नरवर्मा को लकड़ी के पिंजरे में रखा गया। इस तरह सिद्धराज के द्वारा समृद्धिशाली धारा का बड़ा करुण ध्वंस हुआ।

प्रवन्धचिंतामणि और पुरातनप्रबन्ध-संग्रह आदि में धारा के इतिहास की वहुत सी कड़ियाँ संगृहीत हैं। मुञ्जराज, भोजराज और धनपाल के अतिरिक्त भी कई प्रबन्ध धारा के इतिहास से संबद्ध हैं। उपर्युक्त तीन प्रबन्धों का सम्बन्ध तो पूर्ण रूप से धारा के साथ है ही, सिद्धराज ने जो जैनाचार्य हेमचन्द्रसूरि से सिद्धहेम व्याकरण बनवाया, उसमें भी धारा-ध्वंस के समय भोजराज का जो पुस्तक-भांडार मिला था, उसमें से भोज के व्याकरण द्वारा ही नया व्याकरण गुजरात में भी बनाए जाने की प्रेरणा मिली।

धारा नगरी पँवार-वंशीय नरेशों ने बसाई थी। इस वंश की राज्यसत्ता वहाँ सं० १३१० तक रही। उसके बाद वह मुसलमान सम्राटों के अधीन हो गई। धार के उत्तर में एक छोटी पहाड़ी पर जो किला है, उसे सं० १३२५ में मोहम्मद तुग़लक ने बनवाया था। जीरापुर (धार) के पास जो मानसरोवर तालाब बारहों महीने जल से परिपूर्ण रहता है, उसे भी मुसलमान सम्राटों ही ने बनवाया था। इन सम्राटों के शासन के समय में हिन्दुओं के अनेक प्राचीन स्मारक नष्टभ्रष्ट कर दिए गए, प्राचीन मंदिर तोड़कर मसजिदें बना दी गईं और शिलालेखादि वर्बाद कर दिए गए। दो वर्ष पूर्व मैं धारा-नगरी गया था। उस समय यद्यपि मैं वहाँ कुछ घंटे ही ठहरा, पर, महाराज भोज की पाठशाला आदि अनेक महत्त्वपूर्ण प्राचीन स्मारकों को मस्जिदों के रूप में देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ था। चार-पाँच स्मारकों को छोड़ कर अब सब प्राचीन अवशेष समाप्त हो चुके हैं। समृद्धिशाली धारा की यह अवस्था देख

किस सहृदय को कष्ट न होगा । इसी तरह हमारी अन्य अनेक प्राचीन नगरियाँ ध्वस्त हुईं । उनकी भी कहानी बड़ी रोमांचक है । प्राचीन इतिहास के विद्यार्थी के सामने जब उनके प्राचीन वैभव और वर्त्तमान विनाश का दृश्य उपस्थित होता है, तब उसे मर्माहत होना पड़ता है ।

धारा के पास ही मांडवगढ़ भी करुण कहानी लिए खड़ा है । मैं वहाँ भी गया था । वहाँ भी आलीशान मस्जिदों और अन्य मंदिरों तथा मकानों को खँडहर के रूप में देखकर मुझे बड़ा ही परिताप हुआ । १३ वीं शताब्दी से १६ वीं शताब्दी तक की माण्डव की समृद्धि जो जैन ग्रन्थों में वर्णित है, उसका चित्र मेरे सामने घूमने लगा । जहाँ किसी समय ३२-३२ जैन मंदिर थे, वहाँ एक भी प्राचीन अवशेष नहीं है । उत्थान और पतन की यह कहानी मानव के लिए एक सबक है ।

★ ज्ञान-दीप ★

— श्री दिवाकर —

विनाश के विनाश हेतु ज्ञान-दीप जल रहा।

अनन्त ज्योति से उसे अनन्त है प्रभा मिली,
अपूर्व वर्त्तिका मिली, असीम चेतना मिली,
अजस्र स्नेह-स्रोत से अमर प्रदीप पल रहा।

बढ़ा प्रकाश का चरण, निबिड़ तमिस्र छट रहा,
उदित विवेक-सूर्य, अन्धकार-पट सिमट रहा,
सुधांशु शांति का कराल काल को निगल रहा।

पयोधि-गोद में प्रलय पला सदा समोद है,
परन्तु, बाड़वाग्नि की वही प्रसिद्ध गोद है,
विनाश-तत्त्व के लिए विकास-तत्त्व खल रहा।

जले-बुझे अनेक दीप, किन्तु, यह जला किया,
दिया किया प्रकाश है सदैव ज्ञान का दिया,
समृद्धि-क्रोड़ में लिए अनन्त वृक्ष फल रहा।

भारतीय शिक्षा की समस्या

— श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार —

वर्तमान भारतीय शिक्षा-प्रणाली दूषित है । इसमें आमूल परिवर्तन होना चाहिए । यह आवाज़ नई नहीं है । जब बीसवीं शती के प्रारम्भ में महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) ने गंगा के किनारे हरिद्वार के पास 'गुरुकुल कांगड़ी' की स्थापना की थी और विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ने कलकत्ता छोड़कर बोलपुर के पास 'शान्ति-निकेतन' की स्थापना की थी, उस समय से इस शिक्षा-प्रणाली के प्रति असन्तोष व्यक्त किया जा रहा है । जब कलकत्ता-विश्वविद्यालय ने जाँच के लिए 'सेडलर कमीशन' नियुक्त किया था, तब विदेशी सरकार ने इस बात को स्वीकार किया था कि शिक्षा-प्रणाली दूषित है और उसमें सुधार करने की आवश्यकता है ।

किन्तु, भारत के स्वाधीन होने के सात साल बाद भी इस दिशा में कोई सुधार नहीं हुआ है । गुजरात विद्यापीठ के समावर्तन-संस्कार पर भाषण देते हुए राष्ट्रपति ने इस बात पर खेद प्रकट किया कि आज भी विदेशी शिक्षा-प्रणाली देश में विद्यमान है और गाँधीजी की शिक्षा-प्रणाली अभी तक प्रचलित नहीं की गई है, यद्यपि राज्यों और केन्द्र में लोकप्रिय मंत्रिमण्डलों का शासन है। वर्तमान कॉलेजों में दी जा रही शिक्षा के विषय में राष्ट्रपति ने कहा है, कि यह पश्चिमी परम्परा से पूर्ण है और यह छात्रों को जनता की सेवा के योग्य, उद्देश्यपूर्ण और सक्रिय नहीं बनाती । इससे एक बात स्पष्ट है कि देश वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में परिवर्तन चाहता है । पर, वह परिवर्तन क्या हो, उसका रूप क्या हो, इसका स्पष्ट विचार भी किसी के पास नहीं है, यह भी मानना चाहिए । इसका कारण यह है कि भारतीय शिक्षा-समस्या बड़ी है ।

बुनियादी तालीम या नई तालीम एकदम जारी करनी चाहिए, यह कहनेवालों ने भी शिक्षा-समस्या की गुरुता और विशालता को अभी अनुभव नहीं किया है । वास्तविक प्रश्न यह है कि हम अभिनव भारत की किस रूप में कल्पना करते हैं । जब तक हमारे मन में इसका कोई स्पष्ट चित्र न होगा, हम शिक्षा-प्रणाली में आवश्यक सुधार न कर सकेंगे । यही कारण है कि आधी सदी बीत जाने पर भी हम आज भी अँधेरे में टटोल रहे हैं ।

एक बात यहाँ याद रखनी चाहिए। पूर्व और पश्चिम का भेद आज से पचास साल पहले चाहे कोई अर्थ रखता हो, आज वह कोई अर्थ नहीं रखता। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में किसी प्रकार की सीमा नहीं मानी जा सकती। फिर १००० मील प्रतिघण्टे की चाल से भी अधिक रफ़्तार से चलनेवाले विमानों ने भौगोलिक सीमाओं को ढहा दिया है, यद्यपि राजनीतिक सीमाएँ आज भी क़ायम हैं। भविष्य में शिक्षा का उद्देश्य विश्व का नागरिक बनाना होगा। यह सत्य है कि राष्ट्रीयता पर अन्तर्राष्ट्रीयता और मानवता अभी विजय नहीं पा सकी हैं और न अभी विश्व की एक सरकार स्थापित करने में मानव सफल हुआ है। परन्तु, मानव का क़दम उस दिशा में–एक विश्व की ओर–बढ़ रहा है, चाहे क़दम छोटा ही क्यों न हो। इसलिए, हमारा शिक्षा के क्षेत्र में पूर्व और पश्चिम की शब्दावली और परिभाषा में सोचना ठीक न होगा। भारत को मध्ययुग के समान कूपमण्डूक बनाना ठीक न होगा। इसका यह अर्थ नहीं है कि भारत पुनः गौरव के उच्च शिखर पर पहुँचने का यत्न न करे और मनु द्वारा उत्तराधिकार में दिए गए इस मिशन (जीवनलक्ष्य) को कि—

"एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः
स्वं स्वं चरित्र शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः"

पूरा न करे। यह महान् मिशन है। भूमण्डल के प्रत्येक भाग में भारतीय बसे हुए हैं। उनतक पहुँचना और उनके साथ गाढ़ सम्पर्क क़ायम रखना हमारा कर्त्तव्य है। पर, एकाङ्गी शिक्षा देने से यह उद्देश्य पूरा न होगा।

इस अणु-युग में जब मानव की पाकशाला में सूर्य-किरणों को सेवक बनाने की कल्पना की जा रही है, उस समय विज्ञान की उपेक्षा करके हम आगे नहीं बढ़ सकते। वैदिक ऋषि ने विद्या और अविद्या, सम्भूति और असम्भूति, दोनों की उपासना करने के लिए कहा था। यथा—

"विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥"
"अन्धं तमः प्रविशन्ति ये असंभूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ संभूत्यां रताः॥"

इसलिए—

"संभूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सभूत्यामृतमश्नुते॥"

केवल अविद्या या असम्भूति या विज्ञान की शिक्षा देने का फल है—अन्धकार में फँसना। पर, एकमात्र विद्या या सम्भूति या अध्यात्मज्ञान की शिक्षा देने का फल भी गाढ़ अन्धकार में रहना है। भौतिक ज्ञान की उपेक्षा करने का फल हम एक हज़ार

साल से भोगते रहे हैं। पराधीनता की रात बीत गई है। स्वाधीनता-सूर्य का उदय हुआ है। इसकी रक्षा करना हमारा कर्त्तव्य है। महात्मा मुंशीराम ने गुरुकुल, काँगड़ी की स्थापना करते हुए ये तीन महान् उद्देश्य अपने सामने रखे थे। आज भी उनका महत्त्व कम नहीं हुआ है। अतः, उनको उद्धृत करना असामयिक न होगा:—

"लोके तपोधन पुनर्जननं यथा स्यात्—
तेजोविहीनजनताविलयो यथा स्यात्
सद्ब्रह्मचर्यचरणप्रसरो यथास्या—
देतत्तथा गुरुकुलं विबुधा ! निबद्धम्।"
"याः कारणं सकलबाधकलोदयानाम्—
आद्यो गुरुः स भगवांश्च यदीयवक्ता
तेषां कथात्रिगमपुण्यगिराञ्जगत्याम्—
कर्तुम्पुनर्गुरुकुलं विबुधाः ! निबद्धम्।"
"आचार्यशिष्यजन भावनया विहीनां,
कीरोपमाज्ञजनमात्रविभूतिदक्षाम्,
शिक्षां विचार्थ मनसः किल दूषयित्रीं,
नव्यम्पुनर्गुरुकुलं विबुधा ! निबद्धम्।"

जिससे ब्रह्मचर्य का प्रसार हो, जनता तेजस्वी हो, अतः, शिक्षा में आश्रम-प्रणाली की स्थापना की जाय, भारतीय संस्कृति और सभ्यता से नई पीढ़ी का सम्बन्ध रहे. वेदवेदाङ्गसमेत संस्कृत-साहित्य की शिक्षा का शिक्षा-प्रणाली में समावेश किया जाय और बच्चे तोतारटन्त न करें, बल्कि, उनका पूर्णतः मानसिक विकास हो, अतः शिक्षकों और छात्रों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया जाय और शिक्षकों का समाज में दर्जा और स्थिति उच्च की जाय। ये उद्देश्य थे महात्मा मुंशीराम के सामने। परन्तु, उन्होंने प्रचलित शिक्षा-प्रणाली को एकदम ढहा कर गुरुकुल स्थापित नहीं किया था। आज तो वर्तमान शिक्षा को एकदम दूषित और त्याज्य बताया जा रहा है।

कवीन्द्र रवीन्द्र ने शान्तिनिकेतन की स्थापना के समय अपने सामने आदर्श रखा कि पूर्व और पश्चिम एक हों।

"यत्र विश्वं भवत्येकनीडम।"

यह उनका आदर्श वाक्य था। विश्व को एक घोंसले में बदलने का स्वप्न देखनेवाला किसी शिक्षा-प्रणाली का इसी कारण परित्याग नहीं कर सकता था कि वह विदेशी है। इस शिक्षा ने भारत में भारतीयता की भावना को जन्म दिया, उसको पुष्ट किया और उसको बढ़ाया, यह हमें स्वीकार करना होगा। इसमें दोष होते हुए भी इसने भारत में राष्ट्रीयता को जन्म दिया और इसने देश में एक ऐसा बड़ा समुदाय उत्पन्न करने

में सहायता दी, जो हरएक सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक प्रश्न को भारत की दृष्टि से देखता है और उसपर विचार करता है । भारतीय दृष्टिकोण का निर्माण इस शिक्षा ने किया है, इसका विस्मरण नहीं करना चाहिए । आज भी देश में भारतीय दृष्टिकोण का विकास करने, उसका निर्माण करने और उसको पुष्ट करने की ज़रूरत है, इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता । आज भी भारत की एकता, अखण्डता और अक्षुण्णता को खतरे में डालनेवाले प्रान्तीय, जातीय, साम्प्रदायिक, भाषिक तत्त्वों का अभाव नहीं है । इसलिए, किसी प्रणाली का समर्थन और किसी की निन्दा करने के पहले हमें अपनी आवश्यकताओं और अपनी शिक्षा-समस्या की ओर ध्यान देना चाहिए । यदि महात्मा मुंशीराम का दृष्टिकोण एकाङ्गी था और वह पौर्वात्य संस्कृति का तीव्र पक्षपाती था, तो आज शिक्षा का माध्यम अँग्रेज़ी को बनाए रखने के समर्थक और केवल अँग्रेज़ी की खिड़की से दुनिया को देखने के अभ्यस्त भी एकाङ्गी दृष्टिकोण से इस समस्या को देख रहे हैं ।

प्रश्न यह है कि भारतीय शिक्षा-समस्या क्या है ? मोटे तौर पर हम इसको तीन भागों में बाँट सकते हैं—भौतिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक । भारत में निरक्षरता व्यापक रूप में विद्यमान है । इसके साथ देश की आबादी भी बहुत है । देश अत्यन्त दरिद्र है । करोड़ों लोगों को दोनों जून पेटभर खाने को भी नहीं मिलता । फिर भाषा, धर्म, जाति, सम्प्रदाय, लिंग, प्रान्त और प्रदेश के भेदों से यहाँ के निवासी अनेक भागों में बँटे हुए हैं । गणतंत्र की सफलता और लोकतंत्र के विकास के लिए यह आवश्यक है कि देश के विभिन्न भागों के लोगों के मध्य विचार, दृष्टिकोण और भावों की अधिक से अधिक एकता हो । नियोजित आर्थिक विकास भी इसके बिना सम्भव नहीं । विभिन्न जातियों, समाजों, वर्गों और सम्प्रदायों को विभक्त करनेवाली मनोवैज्ञानिक दीवारों का गिराया जाना आवश्यक है ।

इसके लिए उचित प्रकार की शिक्षा आवश्यक है । इससे अभीष्ट परिवर्तन होगा । परन्तु, देश के साधन सीमित हैं । प्रश्न यह है कि किस विन्दु पर हम अपनी शक्ति केन्द्रित करें ? भारतीय संविधान ने भारत के समस्त नागरिकों को "सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता" और "प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने" का वचन दिया है । यही नहीं, उसके अनुच्छेद्र ३९ (क) में कहा गया है "समान रूप से सभी नागरिकों को जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो" और अनुच्छेद ४३ में कहा गया है "सब श्रमिकों को काम, निर्वाह-मज़दूरी, शिष्ट जीवनस्तर तथा अवकाश का सम्पूर्ण उपभोग सुनिश्चित करने वाली काम की दशाएँ तथा सामाजिक और सांस्कृतिक अवसर प्राप्त कराने का प्रयास करेगा" । निस्सन्देह ये निर्देशक तत्त्व

हैं। किन्तु, हमारे भारतीय समाज का भावी रूप हम क्या चाहते हैं, इसका ग्राभास इसमें मिल जाता है। हमारी शिक्षा-प्रणाली इस ग्रावश्यकता की पूर्ति करनेवाली होनी चाहिए।

यही नहीं, निर्देशक तत्त्वों में ग्रनुच्छेद ४५ में यह भी कहा गया है कि "राज्य इस संविधान के प्रारम्भ से दस वर्ष की कालावधि के भीतर सब बालकों को चौदह वर्ष की ग्रवस्था-समाप्ति तक निःशुल्क ग्रौर ग्रनिवार्य शिक्षा देने के लिए उपबन्ध करने का प्रयास करेगा!" इसका ग्रर्थ है कि १९६० से भारत में ६ से १४ वर्ष तक की ग्रायु के समस्त बालक-बालिकाग्रों को शिक्षा देने की व्यवस्था होनी चाहिए। इसके साथ ही हमें वयस्क शिक्षा की भी व्यवस्था करनी चाहिए। इस सम्बन्ध में प्रो० हुमायूँ कबीर का कहना है:—

"स्कूल जाने की ग्रायु के तमाम बच्चों की सार्वत्रिक, निःशुल्क एवं बाधित शिक्षा ग्रौर निरक्षर वयस्कों की सामाजिक शिक्षा की व्यवस्था करना इस समय की सबसे बड़ी ज़रूरत है। माध्यमिक ग्रौर उच्च शिक्षा का पुनर्संघटन करना भी ग्रावश्यक है। इसके साथ इसके विस्तार का उपबन्ध करना भी ज़रूरी है। इसके ग्रतिरिक्त वैज्ञानिक ग्रौर तांत्रिक (टेक्निकल) शिक्षा का भी विस्तार करना है। राष्ट्र के सांस्कृतिक विकास की भी हमें उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।"

यह काम महान् है। छः साल बाद ही हमें सार्वत्रिक, निःशुल्क ग्रौर बाधित शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए। हमारे देश की ग्राबादी इस समय ३७ कोटि है। यह प्रति वर्ष डेढ़ प्रतिशत बढ़ रही है। १९६० में यह ४० करोड़ हो जायगी। ३७ कोटि में से ३० करोड़ जनसंख्या निरक्षर है या निरक्षर के समान है। हमारी जनसंख्या में ६ से १४ तक की ग्रायु के बच्चों की संख्या १९ प्रतिशत है। इसका ग्रर्थ है कि १९६० में लगभग १५ करोड़ बच्चों को निःशुल्क ग्रौर बाधित शिक्षा देने की व्यवस्था हमें करनी चाहिए। यह एकदम से न हो सकेगी। इसकी व्यवस्था ग्रभी से होनी चाहिए।

१९४७ में ६ से ११ वर्ष तक की ग्रायु के बच्चों में से ३० प्रतिशत स्कूलों में शिक्षा पा रहे थे। ११ से १४ तक की ग्रायु के बच्चों में से लगभग १५ प्रतिशत शिक्षा पा रहे थे। ग्राज स्थिति यह है कि ६ से ११ तक की ग्रायु के बच्चों में से ४० प्रतिशत ग्रौर ११ से १४ तक की ग्रायु के बच्चों में से २० प्रतिशत स्कूलों में शिक्षा पा रहे हैं। इसलिए, समुचित शिक्षा की नींव रखने के लिए भी भारत के सामने ३० कोटि वयस्कों ग्रौर ७ कोटि बच्चों को शिक्षा देने का महान् काम है। प्रतिवर्ष यह संख्या बढ़ेगी, विशेषतः बच्चों की, यह न भूलना चाहिए।

किन्तु, यह कार्य ग्रसम्भव नहीं है। प्रश्न है लक्ष्य का। चीन की जनसंख्या हम-

से अधिक है । १९४९ में वहाँ १७ प्रतिशत साक्षरता थी । आज वहाँ साक्षरों की संख्या ३७ प्रतिशत है । पाँच साल में शत प्रतिशत प्रगति यदि वहाँ सम्भव है, तो यह भारत में भी सम्भव है । आवश्यकता है कि हम मानव और मानव-श्रम का सम्मान करें और मानव-योग्यता का मापदण्ड पैसे को न बनावें । क्या यह अद्भुत बात नहीं है कि देश में शिक्षित बेकारों की संख्या प्रतिवर्ष बढ़ रही है, दूसरी ओर शिक्षकों की कमी की हम शिकायत कर रहे हैं !

भगवान् वेदव्यास ने लिखा है:—

"मनुष्यात् श्रेष्टतरः नान्यत् कश्चित्"

मानव से श्रेष्ठतर वस्तु दूसरी नहीं है । इसको हम सत्य तो कहते हैं, पर, कार्य में हम क्या मानव की पूजा करते हैं ? चीन में शिक्षक का वेतन १२० रु० है, एक मज़दूर का न्यूनतम वेतन ६० रु० है, प्रधानमंत्री का वेतन ५०० रु० और राष्ट्रपति का वेतन ७५० रु० है । लोहे के कारख़ाने के मैनेजर का वेतन, जहाँ सवा लाख आदमी काम करते हैं और २० लाख टन इस्पात प्रतिवर्ष तैयार होता है, जब कि भारत के टाटा के कारख़ाने में ९ लाख टन इस्पात ही तैयार होता है और ७५००० व्यक्ति ही काम करते हैं, केवल ४०० रु० है और उसको मज़दूरों ही के ब्लाक में रहने के लिए स्नानगृह और रसोईघर के साथ तीन कमरे दिए गए हैं । मजदूर को स्नानगृह और रसोईघर के साथ एक कमरा दिया गया है । चीन में विषमता इस सीमा तक सीमित कर दी गई है। किन्तु, हमारे यहाँ क्या है ? उत्तरप्रदेश में शिक्षक भत्तों समेत ४५ रु० मासिक पाता है और दिल्ली में ६० रु० पाता है, जबकि भारतसरकार के चौथे वर्ग के एक कर्मचारी को ६० रु० मिलते हैं। शिक्षा का प्रसार हो सकता है, यदि हम अपने देश का आर्थिक और सामाजिक ढाँचा बदलें । यदि शंघाई के पीपुल्स बैंक का मैनेजर ४०० रु० में रह सकता है और अपने लिए चपरासी रखना मानव-श्रम का अपव्यय मानता है, तो हमारे देश के बैंक-मैनेजर ऐसा क्यों नहीं कर सकते ? क्योंकि, बैंक और बीमा राष्ट्र के लाभ के लिए नहीं, अपितु वैयक्तिक लाभ के वास्ते चलाए जा रहे हैं । यदि सोना-चाँदी का बेचना बन्द कर दिया जाय, रेसों, रात्रि-क्लबों आदि का अन्त कर दिया जाय, महाजनी का अन्त कर दिया जाय, तो कोई भी शिक्षित युवक १२० रु० पर प्रसन्नतापूर्वक देश के किसी भी गाँव में, जहाँ ४०० आबादी हो, जाकर रहना और शिक्षा देना पसन्द करेगा । इसलिए, पहला प्रश्न यह नहीं है कि हमारी शिक्षा-प्रणाली क्या हो, बल्कि, पहला प्रश्न यह है कि हम भावी भारतीय समाज किस रूप का चाहते हैं ? हम लोकतंत्रात्मक समाजवादी समाज चाहते हैं, यह कहना काफ़ी नहीं है । वास्तविक प्रश्न यह है कि हम इस दिशा में इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए क्या कर रहे हैं ।

शिक्षा की समस्या केवल संख्या की नहीं है, शिक्षा का माध्यम क्या हो,

इसका भी हम अभीतक निश्चय नहीं कर सके । अँग्रेजी के प्रति हमारे शिक्षकों में अपार मोह है । यह मोह स्वार्थमूलक है । आज के शिक्षक विषय-ज्ञान के कारण नहीं, अपितु अँग्रेज़ी बोलने के कारण बने हुए हैं। जिस दिन अँग्रेज़ी माध्यम न रहेगा, उनकी उपयोगिता समाप्त हो जायगी । यही कारण है कि इस देश में शिक्षक वर्ग ही अँग्रेज़ी को क़ायम रखने का सबसे बड़ा समर्थक है । यदि चीन और हिन्देशिया, थाईलैण्ड और जापान ज्ञान-विज्ञान के सब विषयों की शिक्षा अपनी मातृ-भाषा में दे सकते हैं, तो हम क्यों नहीं दे सकते ? क्या भारतीय बुद्धि का दिवाला निकल गया है ? मुक्डन के इंजीनियरिंग कॉलेज में ७००० छात्र पढ़ते हैं और जब इस कॉलेज के पाँचों वर्ग खुल जावेंगे तो छात्रों की संख्या १२००० हो जायगी । वहाँ इंजीनियरिंग की सारी शिक्षा चीनी भाषा में दी जाती है और वहाँ का प्रिंसिपल अँग्रेज़ी जानते हुए भी दुभाषिए के सहारे अपनी बात करना पसन्द करता है, पर, बोलता है चीनी ही में । इधर हमारी मनोवृत्ति इससे भिन्न है । हिन्दी में बोलने में हम गौरव अनुभव नहीं करते । अँग्रेज़ी बोलने में अभिमान करते हैं । राष्ट्रीयता हमको छू नहीं गई है । 'औपचारिक' शब्द यदि किसी वक्ता ने कह दिया, तो हमारे मंत्री कहते हैं कि यह शब्द तो मेरे लिए और शायद आप के लिए भी नया होगा । राष्ट्रीयता हममें नहीं है और हमारा राष्ट्र-प्रेम वाणी से आगे नहीं बढ़ता । अन्यथा, यदि चीन १४००० पुस्तकें पाँच साल में इंजीनियरिंग में प्रकाशित कर सकता है, तो हम भी कर सकते थे । अनुवाद करने का एक अलग विभाग खोल दिया जाता ! किन्तु, हमने इसको कोई महत्त्व ही नहीं दिया और आज भी रो रहे हैं कि पारिभाषिक शब्दों का अभाव है उच्च शिक्षा के लिए उपयुक्त पुस्तकों का अभाव है । चीन में कॉलेज और विश्व-विद्यालय की शिक्षा सर्वत्र निःशुल्क है । भोजन, वस्त्र, निवास, शिक्षा, पुस्तकें, सबकुछ निःशुल्क है । इस प्रकार पढ़े हुए युवक क्या अपना जीवन हँसते-हँसते राष्ट्र के लिए आत्मोत्सर्ग न करेंगे ? हमारे देश में युवकों से कहा तो जाता है कि राष्ट्र की सेवा करो, पर, उच्च-शिक्षा के मार्ग में पग-पग पर बाधा है । प्रवेश फ़ीस में भारी रक़म देनी पड़ती है । फिर इतने प्रतिशत से अधिक पास नहीं करना और इतने से अधिक विद्यार्थी दाखिल नहीं करने आदि अनेक प्रतिबन्ध लगे हुए हैं । क्योंकि, हमारी मनोवृत्ति दूषित है और शिक्षा को हम कुछ लोगों के लिए विशेषाधिकार बनाए रखना चाहते हैं । यदि हमारे मंत्री ५०० रु० लेंगे, तो हमारे प्रोफ़ेसर भी ४०० रु० लेकर प्रसन्नतापूर्वक विद्यादान करना स्वीकार करेंगे और सरकारी नौकरी के प्रति उनको कोई आकर्षण न होगा । विद्यार्जन और ज्ञान-विस्तार की ओर ही उनका ध्यान रहेगा और वे इस पर वस्तुतः विश्वास करेंगे कि:—

"विद्वान् सर्वत्र पूज्यते"

ज्ञानमन्दिरों में जब धन का समादर न होगा, लक्ष्मी की पूजा न होगी, तब सरस्वती के पुजारी भी इधर-उधर न देखेंगे और शिक्षा-क्षेत्र में आई अनेक बुराइयों का अन्त हो जायगा। यदि शंघाई यूनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर १५०० रु० की जगह ४००) रु० नए युग में लेकर पढ़ाना स्वीकार कर सकते हैं, तो भारतीय विद्वान् भी यह पसन्द करेंगे ।

संविधान ने जातिभेद का अन्त कर दिया, पर, व्यवहारतः यह आज भी क़ायम है। शिक्षा से आशा की जाती है कि वह इसका अन्त करेगी, पर, अभी तक यह आशा पूरी नहीं हुई। फिर, शिक्षा पा रहे बच्चों में लड़कियों की संख्या केवल एक-चौथाई है। यही नहीं, जो बच्चे स्कूल जाते भी हैं, वे नियमित रूप से नहीं जाते। दस में से केवल ४ ही बच्चे चौथी कक्षा तक पहुँचते हैं। ८० प्रतिशत लोग गाँवों में रहते हैं। अनेक गाँवों तक पहुँचने को सड़कें तक नहीं हैं। इसी प्रकार लाखों लोग शहरों के ऐसे भागों में रहते हैं, जो शिक्षा की दृष्टि से अगम्य हैं। अकेले कलकत्ते में ऐसे लोगों की संख्या ६००००० है।

शिक्षा की समस्या को हल करने के लिए हम रुपयों-पैसों ही की भाषा में सोचते रहे हैं। जब एक भारतीय की औसत वार्षिक आय २६० रु० है, जो पेट भर खाने के लिए भी पर्याप्त नहीं है, तब वह शिक्षा-दान में क्या अंशदान करेगा? निःशुल्क और बाधित शिक्षा जारी करने का व्यय कम से कम ८०० करोड़ रु० कूता गया है। यह आज शिक्षा पर जितना ख़र्च किया जा रहा है, उसका सात गुना है। यह विपुल राशि कहाँ से आयगी? किन्तु, एक बात का विस्मरण कर दिया जाता है कि जिन लोगों ने इस हिसाब को लगाया था, उनके सामने समाज का रूप यही था, जो आज हमारे समाज का रूप है। इस समाज को बदलने की उनके मन में कल्पना भी नहीं थी। सार्जेंट-योजना के भरोसे बैठे रहने पर हम अगले सौ सालों में भी निःशुल्क और बाधित शिक्षा जारी न कर सकेंगे, जबकि १९६० से हमें इसको जारी कर देना है।

महात्मा गाँधी ने बुनियादी तालीम जारी करने की सलाह दी थी। इस शिक्षा के दो मुख्य सिद्धान्त हैं और उनमें एक आर्थिक है। इसका आधार है उत्पादक शारीरिक श्रम और शिक्षा का किसी दस्तकारी को केन्द्रविन्दु बनाकर दिया जाना। इसके अनुसार, बच्चों द्वारा किया गया उत्पादक श्रम ऐसा होना चाहिए, जिसका कुछ आर्थिक मूल्य हो, जिससे बच्चों के काम से शिक्षकों का वेतन निकल आवे। बच्चों द्वारा तैयार किया गया माल फ़ैक्टरी में बने माल की तुलना में घटिया होगा, यह न मानने पर भी यह तो मानना होगा कि उस माल की खपत होने में कुछ कठिनाई आवेगी।

इस सम्बन्ध में बिहार की कुछ शालाओं को, जहाँ १९३८ से बुनियादी तालीम दी जा रही है, देखकर 'सैयदेन कमेटी' ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है—

> यदि स्कूल साधारणतः कार्यक्षम हो, उसकी शिक्षा की बुनियाद क़ताई और बुनाई हो, वह अपने छात्रों की पूरी शक्ति से काम करे और उसको कच्चा माल पाने और तैयार माल को बेचने में सरकार के विभिन्न विभागों का सहयोग प्राप्त हो, तो स्कूल सरलता से इतना उपार्जन कर सकता है, जो स्कूल के कुछ आवर्तक व्यय का ५० प्रतिशत पूरा कर सके।

राजाजी ने चाहा था कि बच्चे स्कूल में तीन घण्टे पढ़ें और शेष समय अपने घर के काम में माँ-बाप की मदद करें। इसमें एक लाभ था। बच्चा पढ़ भी जाता था और उसके माँ-बाप की आय में भी कमी नहीं आती थी। बाधित शिक्षा जारी करने में एक भारी बाधा यह है कि माँ-बाप यह अनुभव करते हैं कि कमाने वाला एक हाथ छिन गया। जहाँ लोगों की आय पेट-भर खाने लायक़ भी न हो, वहाँ इस काम की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

मैकाले का कहना था कि कोशिश करके हमें ऐसे दुभाषियों का एक बड़ा वर्ग तैयार कर लेना चाहिए, जो अँग्रेज़ों और भारतीय समाज के बीच माध्यम का काम करे। १८३५ में लार्ड बैंटिक ने घोषणा की कि सरकारी सहायता एकमात्र अंग्रेज़ी शिक्षा को दी जायगी। इस ब्रिटिश नीति का फल यह हुआ है कि यह शिक्षा 'नियुक्ति-शिक्षा' के नाम से प्रसिद्ध हो गई। फल यह हुआ कि शिक्षा ने तोतारटन्ती का रूप धारण किया और शिक्षितों ने अपनी साधना की सिद्धि सरकारी नौकरी में मानी। यह वर्ग भारतीय जीवन-धारा से पृथक हो गया। पुस्तकी शिक्षा पाने के कारण यह क्लर्की के सिवा और किसी काम का नहीं रहा। यही कारण है कि मैट्रिक की जगह के लिए एम० ए० पास प्रार्थी भी पाए जाते हैं। इसमें छात्र के मनोभावों, इच्छाओं, रुचि और भावनाओं पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता।

शिक्षा देने की प्रणाली दूषित है। यह न तो छात्र में स्वतंत्र विचार करने की शक्ति उत्पन्न करती है और न यह उसमें साहसिक वृत्ति या किसी कार्य का उपक्रमण करने की प्रवृत्ति पैदा करती है। यांत्रिक रूप से जो जानकारी दी जाती है, उसको छात्र अनिच्छापूर्वक कण्ठस्थ कर लेता है। परीक्षा का भार छात्र को निःसत्व कर देता है। शिक्षा देने का तरीक़ा जीवनशून्य और नीरस होता है और वह परीक्षण और खोज करने की प्रवृत्ति को नष्ट कर देता है। यदि इस अवस्था में हमारे तरुण बौद्धिक योग्यता में हीन दर्जे के पाए जायँ, तो क्या आश्चर्य! पर, क्या इसकी ज़िम्मेदारी शिक्षकों पर नहीं है? इसपर भी आश्चर्य की बात है कि शिक्षा का माध्यम मातृभाषा को बनाने का हम विरोध कर रहे हैं।

विश्वविद्यालय के छात्रों में आज जितना असन्तोष है, उतना और किसी वर्ग में नहीं है, क्योंकि सरकारी नौकरी पाने के लिए सरकारी उपाधि सबसे बड़ा 'पासपोर्ट' है। इसके अभाव में उसका द्वार बन्द है। एक मैट्रिक पास या जो मैट्रिक न भी हो वह मंत्री, मुख्यमंत्री और शिक्षामंत्री भी हो सकता है, पर वह एक क्लर्क नहीं हो सकता। १९५१ में एक स्नातक युवक ने नहर-विभाग में नौकरी पाने के लिए प्रार्थनापत्र दिया था। पर, वह रद्द हो गया। वह पंजाब-विधान-सभा के लिए खड़ा हों गया और चुना गया। संभव था कि वह आगे चलकर अनुकूल परिस्थितियाँ पाने पर शिक्षामंत्री भी बन जाता। यह घटना बता रही है कि देश के छात्रों और युवकों में आज असन्तोष क्यों है। उनमें भारी असन्तोष और निराशा है, क्योंकि उनके ज्ञान का उपयोग नहीं हो रहा है। छात्रों की हड़तालों के मूल में भी अधिकतर यही असन्तोष और निराशा है।

शिक्षकों को आज जो वेतन मिलता है, वह इतना कम होता है कि शिक्षक अपना और अपने परिवार के पेट का भी पालन नहीं कर सकता। आज शिक्षक का समाज में आदर नहीं। छात्र भी उस पर श्रद्धा नहीं रखते। युवक भी सब ओर से निराश होकर, अन्य सब द्वारों से धक्के खाकर इस क्षेत्र में आते हैं। फलतः, हम देख रहे हैं कि साक्षरता की ओर हम मन्थर गति से बढ़ रहे हैं, पर, बेकार शिक्षकों की संख्या तेजी से बढ़ रही है। इसका हल क्या है ? सामाजिक व्यवस्था का आमूल-चूल परिवर्तन। मानव और मानवता की प्रतिष्ठा। श्रम का मूल्य बढ़ाया जाय और स्वत्व और स्वामित्व को गौण स्थान दिया जाय। जब तक हम यह न करेंगे, हम देश की सारी जनसंख्या को शिक्षित न बना सकेंगे और न शिक्षादान और शिक्षाप्रेम के प्रति देश भर में उपयुक्त वातावरण और उत्साह उत्पन्न कर सकेंगे। क्या इस सत्य को हम अनुभव करेंगे ?

किलकिलानो द्वीप के कौवे

— श्री अनन्तकुमार पाषाण —

(घटनास्थान—पैसेफ़िक महासागर का एक द्वीप किलकिलानो।)

समय—सन् १९३३ ई०

पात्र—

अकाकी—अमेरिका का नागरिक एक रूसी

बिलामो
कोज़ाइ } किलकिलानो द्वीप की आदिजाति की दो किशोरियाँ

जैक—एक ईसाई पादरी

आदिजाति के
कुछ स्त्री,
पुरुष,
बच्चे

स्थान—अकाकी का शयन-कक्ष।
समय—सुबह के चार बजे।

(एक पलंग पर अकाकी सो रहा है। वह बहुत लम्बा और मोटा आदमी है। उम्र लगभग चालीस वर्ष। कमरे को देखने ही से प्रतीत होता है कि यह किसी करोड़पति का कमरा है। अकाकी बहुत डरा हुआ-सा बिस्तर पर से कूदकर खड़ा हो जाता है।)

अकाकी—आज कौवे नहीं बोल रहे हैं! (डरा हुआ-सा खिड़की के पास कान लगाकर सुनने की चेष्टा करता है।) हाँ, नहीं बोल रहे हैं। कोज़ाइ ने कहा था—(याद-सा करता हुआ) अकाकी, जिस दिन सुबह कौवे नहीं बोलेंगे, उस दिन तुम मर जाओगे! (कैलेंडर की ओर देखता हुआ) आज

क्या वार है ? इतवार ! सन्डे ! ओह, आज तो छुट्टी का दिन है ! आज मरने से एक अच्छी ख़ासी छुट्टी ख़राब हो जायगी !

(एक स्वस्थ लड़की जंगली वेशभूषा में एक ट्रे में चाय लेकर आती है)

अकाकी—बिलामो, आज मैं मर जाऊँगा बिलामो !

बिलामो—कितने बजे ?

अकाकी—क्यों ?

बिलामो—मुझे अंडे लेने जाना है। दो घण्टे लगेंगे।

अकाकी—अगर मैं मर ही गया, तो फिर खायगा कौन अंडे ?

बिलामो (कुछ सोचते हुए)—अगर फिकने लगे, तो फिर मैं ही खा लूँगी।

अकाकी—हाँ, यह तो मैंने सोचा ही नहीं था। दस साल से इस कम्बख़्त जंगली टापू किलकिलानो में रहते-रहते मैं भी जंगली हो गया हूँ।

बिलामो—और दस साल से सभ्य आदमियों की उँगलियों पर नाचते-नाचते हम सभ्य हो गए हैं।

अकाकी—सभ्य ? तुम लोग ?

बिलामो—हाँ, अगर सभ्य नहीं हो गए होते, तो लड़ते नहीं। देखो, कैसी ख़ामोशी से तुम्हारी एड़ी चाट रहे हैं। तुमने हमें शान्ति का पाठ पढ़ाया है अकाकी, हम तुम्हारा अहसान ज़िन्दगी भर नहीं भूलेंगे !

अकाकी—हाँ, शान्ति ही मानव-जीवन का ध्येय है ! तुम ठीक कह रही हो बिलामो !

बिलामो—**(कुछ खोई-सी)**—आज से दस साल पहले तुम्हारे ही देशवासी तुम्हें यहाँ फेंक गए थे। हमें पता चला था कि कप्तान के भतीजे को तुमने गोली मार दी थी !

अकाकी—नहीं, नहीं, बिलामो ! मुझे मालूम है कि वह आत्म-हत्या करना चाहता था, पर, उसमें साहस नहीं था !

बिलामो—**(सुनी-अनसुनी करके)**—फिर तुम हमारे इस प्यारे टापू पर आए और हमारे लहलहाते हुए सन्तरे के बाग़ों पर तुमने धीरे-धीरे क़ब्ज़ा कर लिया ! अपने ही बाग़ों में हम ग़ुलाम हो गए !

अकाकी—ग़ुलाम ? अरे, क्या कह रही हो बिलामो ! ग़ुलाम ! कभी मैंने रोका तुम्हें सन्तरे खाने से ?

बिलामो—हम बाग़ की रखवाली करते, तुम उन सन्तरों को गोरे आदमियों की दुनिया में भेज देते। धीरे-धीरे तुम्हारे देश के आदमी यहाँ आकर बसने लगे ! तुमने अपना घण्टेवाला मन्दिर यहाँ बनवाया और उसमें अपना एक

पादरी रखा ! सन्तरों से भरा पूराटापू किलकिलानो तुम लोगों के लिए सैर की जगह हो गया ! हम भूखों मरने लगे !

अकाकी—तुम समझती हो कि मैं मरनेवाला हूँ, इसलिए बकबक कर रही हो ! मैं तुम्हें गोली मार दूँगा !

(तकिए के नीचे हाथ डालकर एक पिस्तौल निकालता है।)

बिलामो—मेरे पेट में जो तुम्हारी हैवानियत का चिन्ह पड़ गया है, वह मर ही जाय तो अच्छा ! चलाओ गोली !

अकाकी—इस टापू की हरएक औरत, सन्तरे का हरएक पेड़ मेरा है ! (ज़ोर से हँसता हुआ) ले बिलामो, अपनी बदज़बानी का मजा !

(पिस्तौल चला देता है। बिलामो गिर पड़ती है।)

अकाकी—सन्तरे और औरतें ! उफ़ ! बिलामो भी क्या थी ! ऐसी औरत अगर पेरिस में होती, तो शहर में हड़ताल हो जाती ! (बिलामो की ओर देखता हुआ) बिलामो ! मुझे माफ़ करो ! अपनी मौत से डरकर मैंने तुम्हें गोली मार दी ! मगर, यह पिस्तौल अमेरिकन है, इसकी गोली से आवाज़ ज्यादा होती है, असर कम होता है ! (बिलामो के पास जाकर) बिलामो, यह पिस्तौल अमेरिकन है !

बिलामो—(उठती हुई) मैं जानती थी अकाकी !

अकाकी—फिर गिर क्यों गई थीं हनी !

बिलामो—(नक़ल करते हुए) गिर क्यों गई थीं हनी ! (खिलखिलाकर) तुम्हें डराने को !

अकाकी—मैं तो बिलकुल नहीं डरा !

बिलामो—(सुनी-अनसुनी करके) हाँ, तुम मरने वाले हो अकाकी, तो अभी मर जाओ, जिससे लौटते हुए मैं लोगों को खबर करती आऊँ !

अकाकी—सन्तरे के बाग़ में उस दिन बिलामो, जिस दिन मैं कोज़ाइ के साथ बैठा था, इद्रीस आया। कोज़ाइ, सन्तरों की खुशबू में लिपटी हुई कोज़ाइ इद्रीस की बीवी थी। वह छुरा लेकर कोज़ाइ को मारना चाहता था कि मैंने गोली चला दी। हालाँकि पिस्तौल यही था, पर, वह धक्के ही से मर गया। खौफ़ बड़ी बुरी चीज़ है बिलामो !

बिलामो—फिर !

अकाकी—(रोते हुए) फिर कोज़ाइ ने मुझे सख्त नफ़रत से देखा और बोली—"क़मीने, तुम समझे थे कि मैं अपने आदमी के खूनी से प्रेम करूँगी ? फिर उसने मुझे शाप दिया ! (रोता हुआ) कोज़ाइ ने मुझे शाप दिया !

बिलामो—तो तुमने वह शाप ले क्यों लिया ?

अकाकी—(रोते हुए) मुझे लेना पड़ा बिलामो ! उसके पास से सन्तरे की भीनी-भीनी ख़ुशबू आ रही थी और वह मेरा हाथ हाथ में लेकर धीरे से बोली—अकाकी किलकिलानो टापू का क़ायदा है कि अपने पति को मारने वाले को औरत फ़ौरन् शाप देती है। इसलिए, मेरा शाप सुनो—जिस दिन सुबह कौवे न बोलें, उस दिन समझ लेना कि तुम मर जाओगे ! जिस वक़्त मैंने इद्रीस को मारा, उस वक़्त कम्बख़्त कौवे बुरी तरह बोल रहे थे !

बिलामो—फिर कोज़ाइ कहाँ गई ?

अकाकी—वह हमारे पादरी के साथ रहती है !

बिलामो—अच्छा, मरना है तो जल्दी मरो ! मैं सब लोगों को ख़बर कर आऊँ !

(अकाकी रोता हुआ बिस्तर पर लेट जाता है और आँख बन्द कर लेता है।)

अकाकी—(लेटे-ही-लेटे) बिलामो, मेरे ऊपर कपड़ा डाल दो और रोना-पीटना शुरू कर दो !

(बिलामो की नज़र सहसा चाय पर जाती है।)

बिलामो—चाय पीकर मरो अकाकी ! सुनते हैं, मौत की दुनिया में बड़ी ठंडक होती है !

अकाकी—मुझे ऐसे ही पिला दो ! मरने के बाद आदमी उठ नहीं सकता है ! हाँ, भूत बन जाय, तो बात दूसरी है !

बिलामो—तो भूत बनकर चाय पी लो !

अकाकी—हाँ, यह भी ठीक है। मैं भूत बनता हूँ। तुम डरना।

(एकदम "हॉ-हॉ" करके भयानक शकल बनाकर बिस्तर से उठकर चाय पीता है।)

बिलामो—(चिल्लाती है) हाय, भूत ! भूत !

(भागती है। अकाकी चाय पीता रहता है और चाय पीकर लेटना ही चाहता है कि जैसे उसे कुछ याद आता है।)

अकाकी—(सिगार के डिब्बे में से सिगार निकालते हुए) अगर भूत बनकर मैं चाय पी सकता हूँ, तो सिगार भी पी सकता हूँ !

(एक-साथ कुछ शोर-गुल-सा पास आना सुनाई पड़ता है। अकाकी आँख बन्द कर लेता है, हालाँकि सिगार मुँह ही में लगा रहता है। पादरी और कुछ लोग उदास-से आते हैं। पीछे-पीछे रोती हुई बिलामो। अकाकी को सिगार पीते देखकर लोग डर जाते हैं।)

पादरी—(क्रॉस का निशान सीने पर बनाता हुआ)—सभ्य पुरुषो और स्त्रियो, डरिए मत ! शायद अकाकी भूत बन गया है ! पापी लोगों का भूत बन जाना स्वाभाविक ही है। परमात्मा पापियों को तरह-तरह से दण्ड देता है। आप में से जो लोग पापी हों, वे सावधान हो जायँ !

(एक साथ अकाकी मुँह में से सिगार निकालकर चाँदी की 'एश-ट्रे' में राख गिराकर फिर पीने लगता है। लोग डरकर पीछे हटते हैं।)

पादरी—संसार की वासनाओं में डूबे रहने वाले मूर्खो ! हम सब का यही अन्त होना है ! देख लो, आँखें खोलकर अच्छी तरह ! मरने पर भूत बनना कौन चाहता है ?

सब लोग गाते हैं—

(कोरस)

मरने पर भूत बनना कौन चाहता है !
हाँ, हाँ, मरने पर भूत बनना कौन चाहता है !
पाप न करना जग में रे भाई,
सदा पुण्य करना !
खाना देकर, कपड़ा देकर
दुखियों का दुख हरना !
हाँ, हाँ, मरने पर भूत बनना कौन चाहता है !

(पादरी हाथ से इशारा करता है। सब चुप हो जाते हैं। एक साथ एक रोती हुई औरत का एक बच्चे को लेकर प्रवेश।)

औरत—(बच्चे से रोते हुए) देख लो बेटे, तुम सदा पूछते थे न कि तुम्हारा बाप कहाँ है ! यही हैं तुम्हारे पिताजी ! कितने बदक़िस्मत हो तुम ! अब यह मर गए हैं ! अब, जब कि पहली बार तुमने इन्हें देखा है !

(बच्चा जाकर अकाकी से लिपटकर रोने लगता है। पादरी गम्भीर होकर उस औरत के पास आगे आता है।)

पादरी—मेरी प्यारी बच्ची, मौत के आगे किसी की नहीं चलती। मगर क्या सचमुच अकाकी ही तुम्हारे बच्चे का बाप है ?

औरत—जो सचमुच बाप है, उसका नाम बताकर मैं उसे बदनाम करना नहीं चाहती, इसलिए अच्छा है कि यह गौरव एक मरे हुए आदमी ही को प्राप्त हो ! मरा हुआ आदमी बदनाम हुआ तो क्या और नेकनाम हुआ तो क्या ?

पादरी—(गम्भीर होकर) ठीक है ! मौत बेनाम है ! अरे, तुम लोग खड़े-खड़े क्या देख रहे हो ! जल्दी से 'कॉफ़िन-बॉक्स' लाकर इसे क़ब्रिस्तान ले चलो !

(कुछ लोग जाकर एक ताबूत ले आते हैं और अकाकी को कपड़े में लपेटने लगते हैं।)

उनमें से एक आदमी—यह भी कोई मरना है ! मैं तो चाहता हूँ कि जब मैं मरूँ, तब अपनी बीवी की गोद में मेरा सिर हो, वह मेरे माथे पर हाथ रखे हो और, और……

दूसरा आदमी—बीवी ! (हँसते हुए) तेरी तो अभी शादी भी नहीं हुई है।

पहला आदमी—हैं ? नहीं ! (कुछ सोचकर) अच्छा !

(ये लोग लपेट रहे हैं कि एक साथ कोज़ाइ दौड़ी-दौड़ी आती है और पादरी के पैरों में गिर पड़ती है।)

कोज़ाइ—तुम इसे जिला सकते हो जैक ! जिला दो, जिला दो ! यह मेरे शाप से मरा है !

पादरी—कोज़ाइ ! बेवकूफ़ी की बातें मत करो ! मैं मरे हुए को जिला दूँगा, तो लोग मेरी पूजा करने लगेंगे ! मुझे मसीहा मान लेंगे !

कोज़ाइ—नहीं, नहीं, जैक ! मसीहों को पूजा नहीं जाता, उन्हें तो सूली पर चढ़ाया जाता है !

पादरी—(कुछ सोचते हुए) हाँ, यह भी ठीक है ! मगर, सूली है कहाँ ?

कोज़ाइ—(उत्साहित होकर) मैंने बढ़ई से पहले ही बनवा ली है !

पादरी—हाँ, ठीक है ! मसीहा बनने का यह अच्छा मौका और आसान तरीका , कोज़ाइ !

कोज़ाइ—जैक !

पादरी—मेरा 'टेप-रिकॉर्डर' है न, जिसमें मैं किलकिलानो की सभी चिड़ियों की बोलियाँ रिकार्ड कर रहा हूँ !

कोज़ाइ—हाँ !

पादरी—दौड़कर ले आओ !

(कोज़ाइ दौडती हुई जाती है।)

पादरी—(कुर्सी पर खड़ा होकर अत्यन्त उदास मुद्रा में) मेरे प्यारे बच्चो ! जिस काम के लिए परमात्मा ने मुझे दुनिया में भेजा था, वह पूरा हो गया !

एक आदमी—कौन-सा काम पिता ?

पादरी—यह मेरे मरने के बाद मालूम होगा ! हाँ, तो जिस काम के लिए परमात्मा ने मुझे भेजा था, वह पूरा हो गया । अब मैं अपना अन्तिम चमत्कार करूँगा । अकाकी को जिला दूँगा ! फिर आप लोग मुझे सूली पर लटका

दीजिएगा, क्योंकि मैं मसीहा हूँ ! प्रभु जीज़स आखिरी मसीहा नहीं थे ! (छाती ठोककर) आख़िरी मसीहा हैं प्रभु जैक !

(सब लोग चुपचाप खड़े रहते हैं ।)

पादरी—और जब आप लोग मुझे सूली पर चढ़ाकर शहीद बना देंगे, तब मेरे देशवासी इस पाप का दण्ड देने को आपपर आक्रमण करेंगे और सन्तरों के इस सब्ज़ टापू पर मेरे देश का प्यारा झंडा फरफरा उठेगा ! (आँख बन्द करके) आमीन !

(कोज़ाइ भागी-भागी टेप-रिकॉर्डर लेकर आती है ।)

कोज़ाइ—लो जैक, जल्दी करो !

(पादरी टेप-रिकॉर्डर कनेक्ट करता है । रिकार्ड की हुई कौवों की तेज़ आवाज़ें शुरू हो जाती हैं । अकाकी धीरे-धीरे आँख खोलकर उठता है ।)

अकाकी—कौवे बोलने लगे ! अब मैं नहीं मर सकता !

(कोज़ाइ दौड़कर उसके पास जाती है ।)

कोज़ाइ—अकाकी !

अकाकी—(ख़ुशी से) कोज़ाइ ! मुझे मालूम था कि तुम एक दिन ज़रूर आओगी !

(वह बच्चा जो अकाकी को अपना बाप समझ रहा है, जाकर उसका कोट पकड़ लेता है ।)

बच्चा—पापा !

अकाकी—पापी !

(उसे धक्का देता है, बच्चा गिरकर रोने लगता है । वह औरत उसे उठा लेती है ।)

कोज़ाइ—अकाकी ! अब मैं तुम्हारे ही साथ रहूँगी ! जैक को तो आज सूली पर चढ़ा दिया जायगा !

अकाकी—क्यों ?

पादरी—(कुर्सी पर खड़ा-खड़ा गम्भीरता से) मैं मसीहा हूँ अकाकी ! मुर्दों को जिला सकता हूँ ! मुझे शहीद होना ही चाहिए !

अकाकी—ठीक है, कोज़ाइ की फ़िक्र न करना ! उसकी ज़िम्मेदारी मैं अपने ऊपर लेता हूँ !

पादरी—और अकाकी, एक चिट्ठी मेरे देश को लिख देना कि किलकिलानो नामक टापू में जंगली लोगों ने एक गोरे पादरी को सूली पर चढ़ा दिया, जिससे वे लोग इस टापू पर आक्रमण करके इसपर अधिकार कर लें !

अकाकी—ठीक है, फ़िक्र मत करो पूज्य जैक ! कोज़ाइ और बिलामो को लेकर मैं खुद वहाँ जा रहा हूँ !

पादरी—क्यों ?

अकाकी—एक नाच की कम्पनी शुरू करूँगा !

पादरी—बहुत अच्छा ! (लोगों से) मेरे प्यारे बच्चो, अब आप लोग मुझे सूली पर चढ़ा दीजिए !

सब लोग—(जाते हुए) हमारे पास फ़ालतू वक़्त नहीं है !

पादरी—(ग़ुस्से से काँपता हुआ) अकाकी, फ़ौरन् मेरे देश को एक चिट्ठी लिख दो कि इस टापू की जँगली जातियों ने एक गोरे पादरी को, स्वयं उसके कई बार निर्देश देने पर भी, सूली पर लटकाने से इन्कार कर दिया !

(अकाकी दौड़कर राइटिंग टेबल पर बैठकर लिखने लगता है। उसके एक ओर बिलामो और दूसरी ओर कोजाइ आकर खड़ी हो जाती हैं। पादरी कुर्सी पर गंभीर खड़ा है।)

[धीरे-धीरे पर्दा गिरता है।]

'दिनकर' की कृति 'रश्मिरथी'

श्री कालिकाप्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर'

इसमें सन्देह नहीं कि 'दिनकर' का सर्गबद्ध काव्य 'रश्मिरथी' एक उच्चकोटि का ग्रन्थ है और इसमें कवि की वाणी का ओज सफलता के साथ प्रकट हुआ है। हमारी सम्मति में, कुछ बातों में यह रचना 'कुरुक्षेत्र' से भी अच्छी है। इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में स्वयं दिनकर ने भूमिका में लिखा है कि "मुझे इस बात का सन्तोष है कि अपने अध्ययन और मनन में मैं कर्ण के चरित्र को जैसा समझ सका हूँ, वह इस काव्य में ठीक से उतर आया है और उसके वर्णन के बहाने मैं अपने समय और समाज के विषय में जो कुछ कहना चाहता था, उसके अवसर भी मुझे यथास्थान मिल गए हैं।" कवि को इतिहास से विशेष प्रेम है और इस ग्रन्थ में उसने एक ऐतिहासिक चरित्र को अपनी कल्पना के द्वारा बड़े सुन्दर रूप में उपस्थित किया है और वह समाज की संकीर्णता एवं अवांछनीय परम्पराओं के विरुद्ध भी बहुत कुछ कह सका है।

कर्ण महादानी और महायोद्धा के रूप में सामने आता है, परन्तु, उसके कुल का पता नहीं, क्योंकि, उसकी माता कुन्ती ने कौमार्य-अवस्था ही में सूर्य-भगवान् की अनुकम्पा से कर्ण को गर्भ में धारण किया, परन्तु, जन्म होने पर समाज के भय से एक पिटारी में रखकर नदी में प्रवाहित कर दिया और एक सूतपत्नी राधा ने उसका पालन किया। इसीलिए, अक्सर उसे 'राधेय' भी कहा गया है। कर्ण अपनी असली माता को न जानकर इस राधा ही को अपनी माँ समझता था, परन्तु, इसके कारण उच्चकुलोत्पन्न लोग उससे घृणा करते थे और उसे शिक्षित-दीक्षित करने को भी तैयार न थे। कौरवों और पाण्डवों के गुरु द्रोणाचार्य ने जब स्पष्ट इन्कार कर दिया, तब किसी प्रकार कर्ण ने अपनी जाति छिपाकर यमदग्नि-पुत्र परशुराम से युद्ध-शिक्षा ग्रहण की। कर्ण ने स्वयं किस प्रकार अपने को गुणों से अभिषिक्त किया, इसपर कवि कहता है—

"तन से समरशूर, मन से भावुक, स्वभाव से दानी,
जाति-गोत्र का नहीं, शील का, पौरुष का अभिमानी।

ज्ञान-ध्यान, शस्त्रास्त्र, शास्त्र का कर सम्यक् अभ्यास,
अपने गुण का किया कर्ण ने आप स्वयं सुविकास।"

दिनकर के काव्य में उनकी एक विचारधारा भी रहती है, जिसका सम्बन्ध अतीत के गौरव और भविष्य के चिन्तन से रहता है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि श्री माखनलाल चतुर्वेदीजी ने दिनकर के काव्य के सम्बन्ध में उन्हींको एक पत्र में लिखा था कि "तुम्हारी रचना और काव्यों को लोक-हृदय अपने में बसा लेगा और तुम्हारे गीतों पर नवीन और प्राचीन रचनाओं के विवादों के महल खड़े होंगे। उसी दिन विश्व की मस्तानी सौभाग्यदेवता, तुम्हारी साँसों का हार पहनकर, युग के रथ पर बैठी, तुम्हें उस दिव्य लोक में अमर कर देगी जहाँ तुम्हारी ध्वनि--धारा सतत प्रवाहित होगी और तुम्हारी बाँसुरी का स्वर कोटि-कोटि कंठों से निनादित हो उठेगा।" (रेणुका की भूमिका)। वास्तव में दिनकर की काव्यमन्दाकिनी में लोक-चेतना की जो भावना रहती है, उसका मुख्य कारण यही अतीत और भविष्य का समन्वय है।

दिनकर ने वैसे तो अपने विचार काव्य के सम्बन्ध में अनेक स्थलों पर प्रकट किए हैं, जिनमें 'मिट्टी की ओर' तथा 'अर्द्धनारीश्वर' पुस्तकों में व्यक्त किए गए विचार विशेष महत्त्व रखते हैं, क्योंकि इनमें दिनकर की विचार-शक्ति अधिक स्पष्ट और प्रौढ़ हो गई है।

'मिट्टी की ओर' में आपका कहना है कि कलाकार की मानसिक अवस्था-विशेष में जीवन अपने जिस अर्थ में प्रकट होता है, उसीके भावमय चित्रण को हम साहित्य कहते हैं।" इसका अर्थ यह है कि अँग्रेज़ आलोचक मैथ्यू अर्नाल्ड की भांति आप साहित्य को जीवन की आलोचना समझते हैं, परन्तु, वास्तव में साहित्य जीवन की आलोचना नहीं, जीवन का दर्शन है, जिससे साहित्यकार की अनुभूतियाँ कलात्मक रूप में अभिव्यंजित होती हैं।

काव्य के क्षेत्र में दिनकर व्यक्तित्व और समाजतत्त्व के समर्थक जान पड़ते हैं और इसीलिए 'रश्मिरथी' में कवि ने अपनी व्यक्तिगत भावनाएं समय और समाज के प्रति प्रकट की हैं और उन्होंने समाज के उन तत्त्वों की भर्त्सना भी की है, जो प्रगति-पथ में बाधक हैं। इस प्रकार के वर्णनों से कवि का व्यक्तित्व अधिक मुखरित हो उठा है तथा उसने समाज-व्यवस्था की मूलभूत घृणित मान्यताओं पर बड़े तीक्ष्ण व्यंग्य किए हैं। व्यक्ति और समाज का जो अंगांगी सम्बन्ध है, उसकी तो उपेक्षा नहीं की जा सकती। ऐसी स्थिति में समाज के चित्रण में व्यक्ति की और व्यक्ति के चित्रण में समाज की छाया अवश्य पड़ेगी।

दिनकर किसी वाद के पीछे दौड़नेवाले व्यक्ति नहीं। न वह मूलरूप से

रस-सम्प्रदाय के अनुयायी हैं, न ध्वनि, व क्रोक्ति या अलंकार--सम्प्रदाय के। वह तो अनुभूति के आग्रही जान पड़ते हैं और उनकी अनुभूतियाँ विशेषकर रस ही की निष्पत्ति करती हैं। आधुनिक आलोचक टाल्सटाय, इलियट, रिचर्ड्स् और काडवेल की भाँति दिनकर साहित्य या काव्य को निरुद्देश्य आनन्द का साधन नहीं मानते। यही कारण है कि उनकी चिन्तनशक्ति कहीं-कहीं अधिक प्रखर हो गई है और 'कुरुक्षेत्र' में तो कवि को कहना पड़ता है कि "दरअसल इस पुस्तक में मैं प्रायः सोचता ही रहा हूँ। भीष्म के सामने पहुँचकर कविता जैसे भूल सी गई हो।" इसका मुख्य कारण कवि की भावुकता और वह चिन्तन-धारा है, जिसकी परिधि में निरुद्देश्य आनन्द का प्रवेश नहीं होता। कवि की विचार-धारा विभिन्न क्षेत्रों में किस प्रकार अधिकृत और अनधिकृत पैर पसारती है, इसका प्रमाण 'अर्द्धनारीश्वर' पुस्तक में संगृहीत निबन्ध हैं।

दिनकर को कुछ आलोचक अन्तर्द्वन्द्व से घिरा हुआ पाते हैं, जिसका कारण उनकी वैयक्तिक धारणाएँ हैं, जो साहित्य के क्षेत्र से हटकर भी समाज के दायरे में चक्कर लगाने लगती हैं। उनके सामने व्यक्ति और समष्टि, मार्क्सवाद और गाँधीवाद, छायावाद और प्रगतिवाद के अनेक धुँधले चित्र हैं, जो कभी-कभी उनकी काव्य-सृष्टि को अवगुंठित कर लेते हैं। इस प्रकार की धाराएँ पन्त और बच्चन जैसे कवियों में भी पाई जाती हैं, परन्तु, दिनकर के सामने समाज का जो व्यामोह है, वह उनकी अपनी बात है और यह व्यामोह कभी-कभी उन्हें कवि के स्थान से च्युत भी कर देता है। राजनीति की बैसाखी पकड़कर चलनेवाला साहित्य कभी शाश्वत सत्य का वाहक नहीं हो सकता, क्योंकि राजनीति स्वयं अशाश्वत है। दिनकर ने कर्ण के हृदय में जो अन्तर्द्वन्द दिखलाया है, वह स्वयं उनकी मानसिक स्थिति का परिणाम है।

काडवेल कविता का सामाजिक जीवन से अविछिन्न सम्बन्ध मानते हैं और इसमें सन्देह नहीं कि सच्ची कविता केवल कल्पनालोक या भावलोक में विचरण कर समाज से प्रेरणा नहीं ग्रहण करती है। उसे समाज के अन्दर प्रवेश करना पड़ता है। दिनकर के काव्य का भी यही हाल है। उनका काव्य सामाजिक जीवन से प्रेरणा ग्रहण करता हैं और कभी-कभी तो वह समाज की सीमा में अवरुद्ध हो जाता है। 'रश्मिरथी' का कथानक महाभारत से अवश्य लिया गया है, परन्तु, उसमें समाज की सभी वर्त्तमान समस्याएँ उपस्थित हैं और उनके प्रति कवि का दृष्टिकोण भी बड़े संयत रूप में सामने आता है। इसीलिए, कुछ विद्वानों का मत है कि कविता का स्वप्न समाज द्वारा निर्दिष्ट और प्रभावित व्यक्ति का स्वप्न है, जो अपनी व्यक्तिगत चेतना से समस्त वर्ग की रचनात्मक भूमिका को प्रतिफलित करता है।

'रश्मिरथी' में कवि ने ईसा, सुकरात और गाँधी का उल्लेख किया है, कर्ण-

के जीवन की विशेषता पर प्रकाश डालते हुए, जो ऐतिहासिक दृष्टि से उचित नहीं जान पड़ता, परन्तु, ऐसे स्थल पर कवि की भावुकता ऐतिहासिकता से अधिक सजग हो गई है और उसी भावुकता के प्रवाह में कवि कहने लगता है:—

"ईसा ने संसार-हेतु शूली पर प्राण गँवाकर,
अन्तिम मूल्य दिया गाँधी ने तीन गोलियाँ खाकर।
सुन अन्तिम ललकार मोल माँगते हुए जीवन की,
सरसद ने हँसकर उतार दी त्वचा समूचे तन की।"

जातिगत संकीर्णताओं के प्रति कवि ने कर्ण के मुख से बड़े मार्मिक वचन कहलवाए हैं और यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि प्रतिभावान् व्यक्ति जाति के वल पर आगे नहीं बढ़ते, वे अपने पौरुष से कीर्ति प्राप्त करते हैं और उनकी कीर्ति के सामने जाति के नाम पर मस्तक ऊँचा उठाकर चलनेवाले भी नत हो जाते हैं। इस सम्वन्ध में कवि ने कर्ण से कहलाया है:—

"जाति! हाय री जाति! कर्ण का हृदय क्षोभ से डोला,
कुपित सूर्य की ओर देख, वह वीर क्रोध से बोला—
जाति-जाति रटते, जिनकी पूँजी केवल पाखंड,
मैं क्या जानूँ जाति? जाति हैं ये मेरे भुज-दंड।"

द्रोणाचार्य से कर्ण कहता है:—

"पूछो मेरी जाति, शक्ति हो तो, मेरे भुजबल से,
रवि-समान दीपित ललाट से और कवच-कुण्डल से।
पढ़ो उसे, जो झलक रहा है, मुझमें तेज-प्रकाश,
मेरे रोम-रोम में अंकित है मेरा इतिहास।"

कर्ण की वीरता और दानशीलता की प्रशंसा कवि ने विरोधियों तक के मुख से करवाई है और सभी उसका लोहा मानते हैं। उसकी दानशीलता की चरम सीमा इन्द्र को कवच और कुंडल देते समय सामने आती है और युद्ध-क्षेत्र में उसकी अतुलनीय वीरता ने तो अर्जुन के भी दाँत खट्टे कर दिए। यदि कर्ण का रथ न फँस जाता, उसपर अन्याय से शस्त्र न उठाया जाता, तो कर्ण को मारना अर्जुन की शक्ति के वाहर की बात थी। कर्ण का युद्ध-कौशल देखकर स्वयं श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं:—

"औ' देख चरम वीरता आज तो,
यही सोचता हूँ मन में,
है भी कोई जो जीत सके
इस अतुल धनुर्धर को रण में।

मैं चक्र-सुदर्शन धारूँ औ'
गाण्डीव अगर तू तानेगा,
तब भी, शायद ही, आज कर्ण
आतंक हमारा मानेगा।
यह नहीं देह का बल केवल,
अन्तर्तम के भी विवस्वान
हैं किए हुए मिलकर इसको
इतना जाज्वल्यमान।
सामान्य पुरुष यह नहीं, वीर
यह तपोनिष्ठ व्रतधारी है।
मृत्तिकापुंज यह मनुज
ज्योतियों के जग का अधिकारी है।"

युद्ध के सम्बन्ध में कवि के विचार वही हैं, जो आजकल के युद्धविरोधी लोगों द्वारा प्रकट किए जाते हैं और महाभारत का युद्ध भी जिस प्रकार दोनों पक्षों के विनाश का कारण हुआ, उससे भी कवि अपरिचित नहीं। युद्धों के सम्बन्ध में कवि का कहना है:—

"रण केवल इसलिए कि राजे और सुखी हों, मानी हों,
और प्रजाएँ मिलें उन्हें, वे और अधिक अभिमानी हों।
रण केवल इसलिए कि वे कल्पित अभाव से छूट सकें,
बढ़े राज्य की सीमा जिससे, अधिक जनों को लूट सकें।"

आधुनिक साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के कारण होनेवाले युद्धों की भर्त्सना कवि ने उपयुक्त शब्दों में की है, क्योंकि कवि की दृष्टि मानवता की रक्षा और मानव के अधिकार के संरक्षण पर है। कवि मनुष्य का स्थान देवताओं से भी ऊपर मानता है, इसलिए देवराज इन्द्र से कहलाता है:—

"तू पहुँचा है जहाँ, कर्ण, देवत्व न जा सकता है,
इस महान पद को कोई मानव ही पा सकता है।"

मानव के प्रति यह अगाध एवं अपार श्रद्धा दिनकर के काव्य में सर्वत्र पाई जाती है। वह मानव का पशुत्व उचित नहीं समझते। वह पशुत्व, जिसके कारण संसार में कलह वैमनस्य और युद्धों का साम्राज्य दिखाई पड़ता है, कवि मनुष्य में नहीं देखना चाहता, इसीलिए, उसका कहना है कि:—

"आकुल अंतर की आह मनुज की,
इस चिन्ता में भरी हुई,
इस तरह रहेगी मानवता,
कब तक मनुष्य से डरी हुई ?
पाशविक वेग की लहर लहू में,
कब तक धूम मचाएगी ?
कब तक मनुष्यता पशुता के
आगे यों झुकती जाएगी ?"

युद्धों के प्रति भी कवि घृणा के भाव प्रकट करता है और उन्हें मनुष्य की कमज़ोरी मानता है। वास्तव में मनुष्य की आत्मपरता एवं स्वार्थपरता ही उसे युद्धों की प्रेरणा देती है। युद्धों के द्वारा शांति एवं सुख की आशा करना भी व्यर्थ है। इसलिए, दिनकर ने महाभारत की कथा का एक प्रमुख युद्ध-कालीन दृश्य लेकर भी लिखा है कि:—

"हो जिसे धर्म से प्रेम कभी,
वह कुत्सित कर्म करेगा क्या ?
बर्बर, कराल-दंष्ट्री बनकर
मारेगा और मरेगा क्या ?
पर, हाय, मनुज के भाग्य अभी
तक भी खोटे के खोटे हैं,
हम बढ़े बहुत बाहर, भीतर,
लेकिन, छोटे के छोटे हैं।
संग्राम धर्मगुण का विशेष्य
किस तरह भला हो सकता है ?
कैसे मनुष्य अंगारों से
अपना प्रदाह धो सकता है ?
सर्पिणी-उदर से जो निकला,
पीयूष नहीं दे पाएगा,
निश्छल होकर संग्राम धर्म का
साथ न कभी निभाएगा।"

साध्य के लिए साधन भी पवित्र होना चाहिए, गाँधीजी का यह सिद्धान्त दिनकर की कविता में प्रमुख रूप से प्रतिध्वनित हुआ है और सचमुच भारतवर्ष सदियों से इस मत का अनुयायी भी रहा है। मानव-जीवन के अस्तित्व की सार्थकता युद्धों में

नहीं, शांति ही में दिखाई पड़ सकती है, परन्तु, यह युद्ध-प्रियता तो मानव प्रकृति का एक अंग बनती जा रही है और जब तक इससे मुक्ति नहीं मिलती, संसार शांति के सुख का उपभोग नहीं कर सकता, न उसकी कला संस्कृति का ही ठीक-ठीक विकास हो सकता।

इन युद्धों का कारण दिनकर व्यक्ति को मानते हैं, समष्टि को नहीं। व्यक्ति ही अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए युद्धों का आह्वान करता है और उसीमें समष्टि को अपना बलिदान करना पड़ता है। गाँधीवादी आचार्य कुमारप्पा का भी यही मत है। 'कुरुक्षेत्र' में दिनकर ने लिखा है:—

"विश्व-मानव के हृदय निर्द्वेष में
मूल हो सकता नहीं द्रोहाग्नि का;
चाहता लड़ना नहीं समुदाय है,
फैलतीं लपटें विषैली, व्यक्तियों की साँस से।"

दिनकर के 'रश्मिरथी' की भाषा सरल और प्रवाहपूर्ण है। उसमें ओज उचित मात्रा में पाया जाता है, परन्तु, कथानक की दृष्टि से फ़क़त. मक़सद. मुसीबत, क़िस्मत और दुश्मन जैसे शब्दों का प्रयोग खटकता है. ख़ासकर इसलिए कि दूसरी ओर संस्कृत के तत्सम शब्द प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त किए गए हैं। कुछ शब्दों की तोड़-मरोड़ भी ग़लत है, जो दिनकर जैसे कवि के लिए शोभनीय नहीं। इसी प्रकार "हुंकार सुनाई पड़ते हैं" के छन्द में यति-भंग और गतिभंग का ज़ोर है। सप्तम सर्ग में तो इस प्रकार की त्रुटियाँ सबसे अधिक हैं:—

"लो, वह देखो, वानरी ध्वजा
दूर से दिखाई पड़ती है।
× × ×
शत्रु का या कि अपना मस्तक
काटकर यहीं धर देना है।"

'रश्मिरथी' दिनकर की प्रचार-धारा को व्यक्त करने वाला सुन्दर काव्यग्रन्थ अवश्य है और इससे कवि की चिन्तनशक्ति का पता लगता है। साथ ही उसके काव्य की विशेषताएँ भी स्पष्ट रूप से हमारे सामने आती हैं। दिनकर के काव्य में वीर-रस प्राचीन शैली को लेकर नहीं चलता। इसकी तुलना चन्द्र, भूषण या लाल कवि के वीररसात्मक वर्णनों से नहीं की जा सकती, क्योंकि इसमें मानव की रागात्मक प्रवृत्तियों एवं भावनाओं का अति सूक्ष्म विश्लेषण हमें मिलता है, जो इस युग के साहित्य और काव्य का मुख्य ध्येय है। अतीत से आलोक में कवि जिस भविष्य का

निर्माण चाहता है, उसकी कल्पना अत्यन्त प्रखर रूप से सामने आती है और हमें विश्वास होता है कि कवि का ध्येय समाज का मार्ग-दर्शन एवं परिचालन भी है, परन्तु एक उपदेशक की भाँति नहीं, सच्चे कलाकार के रूप में। उनका काव्य राष्ट्रीय-चेतना का द्योतक है, जिसके बिना कला अपना महत्त्व खो देती है। 'डाक्टर कज़िन्स्' तो राष्ट्रीयता-रहित कला को श्मशान जाने वाली कला मानते थे और सचमुच कला का आदर्श राष्ट्रीयता एवं मानवता की अनुगामिनी बनना है।

*

*

गीत

— श्री जितेन्द्रकुमार —

मेरा तो हर श्वास तुम्हारा लेकर नाम पुकार रहा है।

मुझे बाँधता है युग-युग से
मेरी ही सीमा का बन्धन,
मुझे बाँधता है युग-युग से
मेरा ही यह लघु अपनापन,
इस कुंठा से, इस कारा से
पाने को उद्धार युगों से
मेरा तो हर श्वास तुम्हारा लेकर नाम पुकार रहा है!
मेरा तो हर श्वास तुम्हारा लेकर नाम पुकार रहा है।

काटो ये ममता के बन्धन,
यह व्यामोहावरण हटाओ,
मेरे मन के अन्धकार में
चिन्मय विद्युत्-दीप जलाओ,
दिखलाओ अपना श्रेयस्-पथ,
अपनी ज्योतिर्बाहु बढ़ाओ,
कस लो मुझे प्रकाश-पाश में, मेरा हृदय गुहार रहा है।
मेरा तो हर श्वास तुम्हारा लेकर नाम पुकार रहा है।

केवल स्वप्न अधूरे देखा
करते मेरे नयन अकिंचन,
केवल गीत अधूरे गाया
करते मेरे अधर-प्रकम्पन,
केवल दृश्यावली अधूरी
फैली-फैली रहती सम्मुख,

ओ सम्पूर्ण ! तुम्हें छू पाने से भी डर लाचार रहा है !
मेरा तो हर श्वास तुम्हारा लेकर नाम पुकार रहा है !

सदय हृदय हो, ओ करुणा–
वरुणालय ! अपनी छाँह बढ़ाओ।
स्नेहाश्रय दो, घन कुहेलिका
की यह भीषण भीति मिटाओ,
दो अपनी पद-रेणु प्रभामय,
मत को अमृत-चेतना भी दो,
यह पाषाण तुम्हारा युग से अपलक पंथ निहार रहा है !
मेरा तो हर श्वास तुम्हारा लेकर नाम पुकार रहा है !

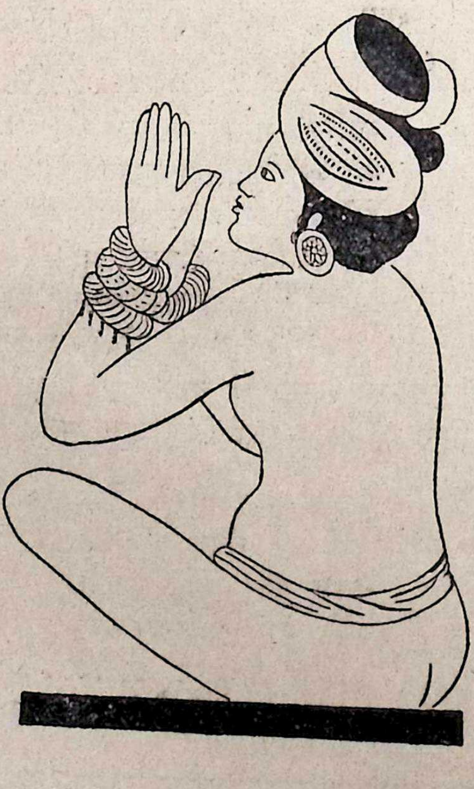

राम सरोवर

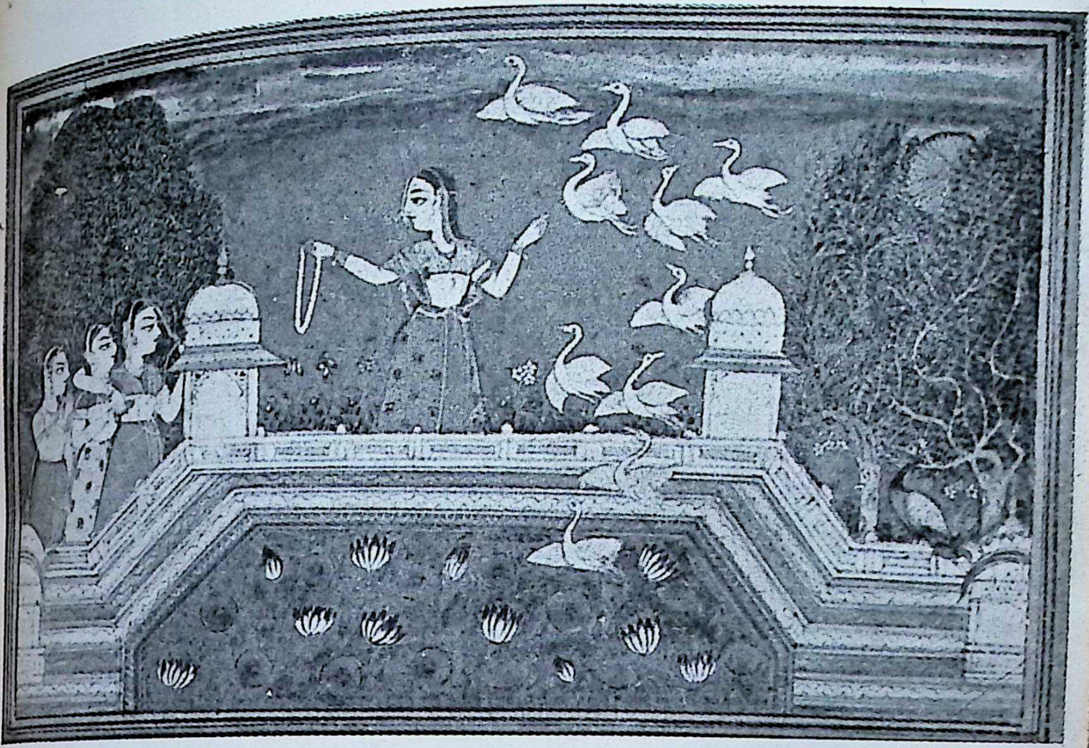

चतुर्भुजदास कृत मधुमालती की प्रतिलिपियां बहुत बड़ी संख्या में समस्त मध्यदेश में पाई जाती हैं। ग्वालियर तो इसका केन्द्र ही है। इनमें से अनेक प्रतियों पर अत्यन्त उच्चकोटि के चित्र मिलते हैं। वि० सं० १८२२ (१७६५ ई०) की एक प्रतिलिपि में जो चित्रमाला दी गई है वह अद्वितीय है। पक्षियों तथा हाथी-घोड़ों का इतना सुन्दर अंकन अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। इसी प्रति के चार चित्र यहाँ दिये जा रहे हैं। यह मूल चित्र अत्यन्त चटकीले रंगों में है। ऊपर के चित्र में हंसों और मयूर के अंकन अत्यन्त सजीव हुए हैं।

भारण्ड, गरुड और समुद्र

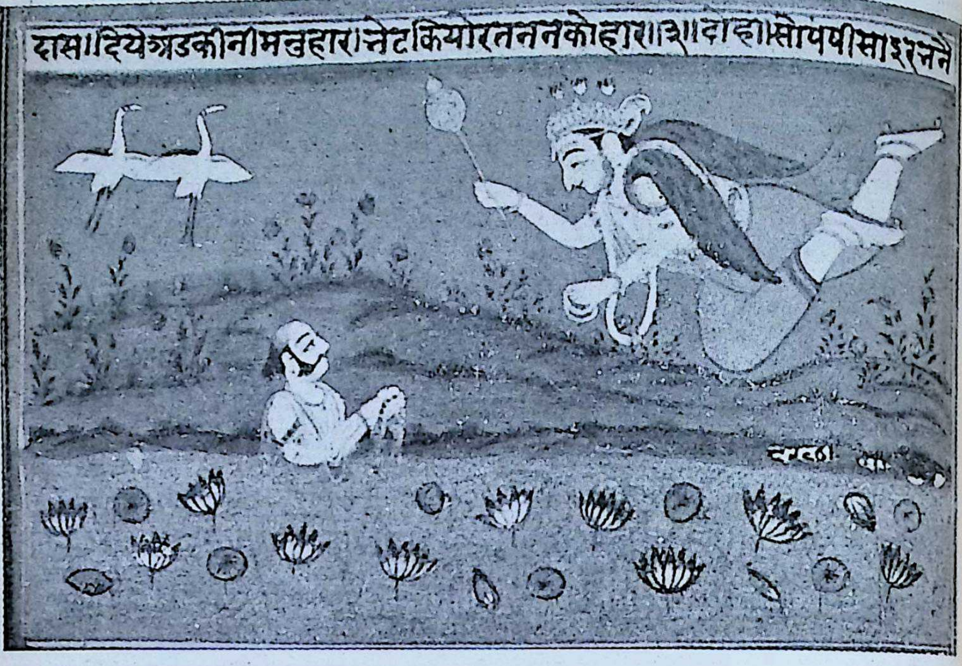
दास।।दियेगरुडकीनामनहार।।नेटकियोरतननकोहार।।३।।दोहा।।सोपषीसाइरननै

मधुमालतीकार ने गरुड़ द्वारा समुद्र से भारण्ड-युग्म के अंडे दिलाने का आख्यान लिखा है। उसके इस चित्र में भारण्डों का बारीक अंकन अत्यन्त सुन्दर है। दुर्भाग्य से इस प्रति में चित्रकार का नाम-धाम नहीं दिया गया।

चतुर्भुजदास की मधुमालती का सौन्दर्यवर्णन

— श्री हरिहरनिवास द्विवेदी —

चतुर्भुजदास निगम ने 'मधुमालती'-नामक कथा-प्रबन्ध लिखा है। हिन्दी भाषा और साहित्य के इतिहास में इस ग्रन्थ का विशिष्ट स्थान है। साम्प्रदायिक-आग्रह-रहित लौकिक कथा-प्रबन्धों में यह प्राचीनतम और श्रेष्ठतम है। इसमें किसी ऐतिहासिक राजा-रानी या राजवंश का वर्णन नहीं, अतएव, इस ग्रन्थ को ऐतिहासिक अथवा अर्ध-ऐतिहासिक प्रबन्ध-काव्यों की श्रेणी में तो नहीं रखा जा सकता, परन्तु, इसमें तत्कालीन समाज के विश्वास, आचार-विचार, रहन-सहन आदि का वास्तविक चित्रण अवश्य है। ईसवी चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी के सामाजिक इतिहास की सामग्री देने वाले ग्रन्थ की दृष्टि से भी इस रचना का बहुत अधिक महत्त्व है। तुलसीदास के रामचरित मानस के समान तत्कालीन समाज की दुर्बलताओं की भर्त्सना और भावी आदर्श समाज की कल्पना इसमें नहीं है, परन्तु, इसमें अनायास, अप्रयास रूप में तत्कालीन समाज की रूढ़ियों, अन्ध-विश्वासों और रीति-रिवाजों का वर्णन आया है।

अधिक जाँच-पड़ताल का कष्ट उठाए बिना ही हिन्दी-साहित्य के इतिहासों में इसका रचनाकाल १८ वीं शताब्दी लिखा गया है। जब आगे चलकर इस रचना पर कुछ अधिक विचार किया गया, तब इसका रचनाकाल १७ वीं और फिर १६ वीं शताब्दी तक माना गया है। दुर्भाग्य से इसके रचयिता चतुर्भुजदास ने अपना परिचय अत्यन्त संक्षिप्त दिया है। उसने अपने विषय में केवल यह लिखा है।—

कायथ निगम सुकुल इहैं, नाथा (नथमल) सुत भयौ राम (अभैराम)।
तनय चतुर्भुज तास कर कथा प्रकासी ताम ॥

इससे केवल यह ज्ञात होता है कि चतुर्भुजदास निगम कायस्थ, राम अथवा अभयराम के पुत्र और नाथा अथवा नथमल के पौत्र थे। इससे न रचनाकाल ज्ञात होता है और न स्थान। कम से कम अभी तक जिन बीस-पच्चीस प्रतियों की परीक्षा हुई है, उनमें तो इन दोनों के सम्बन्ध में कोई पाठ नहीं है। ये सब प्रतियाँ

ईसवी सत्रहवीं, अठारहवीं, और उन्नीसवीं शताब्दी की हैं। जब तक इनके पूर्व की कोई प्रति न मिले, तब तक कुछ निश्चयपूर्वक कह सकना संभव नहीं। अभी केवल यह कहा जा सकता है कि यह रचना ईसवी १५ वीं शताब्दी के बाद की नहीं है।

इसकी भाषा को देखते हुए यह, निश्चित ही, तत्कालीन मध्यदेश की (जिसका केन्द्र ग्वालियर था) रचना है। अत्यन्त अल्प समय ही में यहाँ इसकी आठ प्रतियाँ मिल गईं और वे भी केवल ग्वालियर और दतिया में। अनेक प्रतियों की हमें सूचना भी प्राप्त हो चुकी है। मधुमालती का प्रचार आगरा से उज्जैन तथा इन्दौर तक और पश्चिम में राजस्थान तक हुआ। प्रतिलिपिकारों ने न केवल शब्दों को स्थानीय रूप देने का प्रयास किया, वरन्, कहीं-कहीं अनेक उपकथाएँ जोड़कर इसका आकार दुगना तक कर डाला। इस कथा-प्रबन्ध में समाज के सभी वर्गों को आकृष्ट करने के तत्व विद्यमान हैं। इस कारण १९ वीं शताब्दी तक इसका प्रचार जन-साधारण में बहुत अधिक हुआ।

वर्त्तमान काल में हिन्दी के प्रवन्ध--काव्यों में, ऐतिहासिक प्रबन्ध-काव्यों में, चन्दवरदायी के पृथ्वीराज रासौ से लेकर कल्याण कवि के लक्ष्मीबाई रासौ तक प्रकाशित तथा संपादित हुए। धार्मिक अथवा साम्प्रदायिक प्रबन्ध-काव्यों में राम, कृष्ण सम्बन्धी और सूफ़ी प्रबन्ध-काव्य भी प्रचुरमात्रा में प्रकाशित हुए हैं और ये हैं भी हिन्दी साहित्य की गौरव वृद्धि के प्रधान उपकरण। किन्तु, विशुद्ध लौकिक अथवा साम्प्रदायिक-आग्रह से रहित कथा-प्रबन्धों की जो परंपरा चतुर्भुजदास की मधुमालती से प्रारम्भ हुई और आगे चलकर जिसमें समयसुन्दर की मृगावती (ई० स० १६११) तथा मेघराज प्रधान की मृगावती (ई० स० १७६६) तथा अनेक अन्य कथा-प्रबन्ध लिखे गए, उसका न तो सम्यक् अध्ययन तथा मूल्यांकन ही हुआ और न प्रकाशन ही। इसके अभाव में उन्हें अब तक सूफ़ी कवियों के प्रेमाख्यानों के साथ-साथ घसीट दिया गया है, जो किसी भी प्रकार उचित नहीं।

प्रेमाख्यानों के वास्तव में तीन वर्ग हिन्दी में स्पष्ट तथा पृथक्-पृथक् दिखाई देते हैं। पहले वर्ग की प्रतिनिधि रचना है चतुर्भुजदास की मधुमालती, दूसरे वर्ग की प्रतिनिधि रचना है नन्ददास की 'रूपमंजरी' और तीसरे वर्ग में वह इस्लाम-परक वर्ग है, जिसकी प्रतिनिधि रचना जायसी का पद्मावत है। इनके मौलिक तत्त्व ही इतने भिन्न हैं कि इनको किसी भी प्रकार एक वर्ग में रखकर इनका विवेचन करना उचित नहीं। सूफ़ी कवियों के प्रेमाख्यान तो काशी के कतिपय वर्त्तमान पंडितों की कृपा से आवश्यकता से अधिक प्रकाश में आ चुके हैं। कृष्णप्रेम के आधार पर लिखी गई 'रूपमंजरी' एक बार प्रकाशित हो चुकी है। परन्तु, लौकिक प्रेमाख्यान की कोई भी रचना अब तक न तो प्रकाशित हुई और न उसके

सर्वांगपूर्ण अध्ययन का प्रयास ही हुआ। चतुर्भुजदास की मधुमालती पर अभी तक कुछ स्फुट लेख यत्र-तत्र श्री अगरचन्द नाहटा तथा डॉ० माताप्रसाद गुप्त के अवश्य प्रकाशित हुए हैं, परन्तु, उसके पाठ के सम्पादन में जो प्रत्यक्ष कठिनाइयाँ हैं, उनके कारण वह अभी तक प्रकाशित नहीं हुई। हमने, अपनी बुद्धि के अनुसार, इसके पाठ के मूल रूप को खोजने का प्रयास किया है। कबीर के पश्चात् और तुलसी, सूर, केशव, जायसी तथा बिहारी के पूर्व मध्यदेश की भाषा के इस लौकिक प्रेमाख्यान के विस्तृत अध्ययन का अवरुद्ध द्वार इससे खुल सकेगा, ऐसी आशा है। इस वर्ग के अप्रकाशित अन्य ग्रन्थों की प्रतियों की प्राप्ति एवं उनका संपादन एवं प्रकाशन जितने समय, धन, प्रभाव, साधन एवं शक्ति की अपेक्षा करता है, वह हमारे पास अभी नहीं है। सम्भव है, स्वतंत्र भारत की राष्ट्रभाषा के इतिहास के इस अलिखित एवं उपेक्षित अध्याय को पूर्ण करने का सुयोग एवं साधन कभी जुट सकें। अभी तो हम इस लेख द्वारा चतुर्भुजदास की प्रतिभा एवं उसकी मधुमालती के विषय एवं सौन्दर्य-वर्णन की एक झांकी मात्र यहाँ देना चाहते हैं।

चतुर्भुजदास ने अपनी रचना मधुमालती के अन्त में उसके विषय एवं महत्त्व के सम्बन्ध में लिखा है। उसने मधुमालती को 'रसकथा' अथवा 'काम-प्रबन्ध' कहा है। सूफ़ी प्रेमाख्यानों के समान इसमें लोककथा का साम्प्रदायिक सिद्धान्तों के प्रचार के लिए उपयोग नहीं किया गया और न नन्ददास की रूपमंजरी के समान भगवान् कृष्ण को उपपति के रूप में ग्रहण करने ही में जीवन की नियति बतलाई गई है। उसका उद्देश्य पूर्णतः लौकिक है और इसी में, उसकी दृष्टि में, उसकी रचना का महत्त्व है। अपनी इस 'रसकथा' के सम्बन्ध में वह लिखता है:—

चौपाई

काम प्रबन्ध प्रकास फुनि, मधुमालती विलास।
प्रदुमन की लीला इहै, कहत चतुर्भुजदास॥
बनसपती में अंब्रफल, रस में ऊख रसंत।
चारि बरन में विप्र ज्यों, षटरितु मांझ बसंत॥
लता मध्य पन्नग लता, सोधै में घनसार।
कथा मध्य मधुमालती, आभूषण में हार॥
राजनीति की यामैं साखी। पंचाख्यान बुद्धि इहिं भाखी॥
चानाइक चातुरी बताई। थोरी थोरी सब ही आई॥
फुनि बसंत राज रस गायो। जामे ईश्वर काम दझ्यायो॥
ताकी इह लीला बिसतारी। रसिकन रसन स्रबन सुखकारी॥
रसिक होइ सो रस कौं चाहै। आध्यातम आतम अवगाहै॥
चातुर पुरुष होइहै सोई। यह रसकथा समझिहै सोई॥

किसन देव को कुंवर कहावै । प्रदुमन काम अंस मधु गावै ।।
पुत्र कलत्र सबै सुख पावै । दुख दारिद नहिं नियरौ आवै ।।

श्लोक

कामार्थी लभ्यते कामं धनार्थी लभ्यते धनं ।
अपुत्रो लभ्यते पुत्रं, व्याधितस्य न पीडते ।।

दोहा

राजा पढ़ै तो राज गति, मंत्री पढ़ै तो बुद्धि ।
कामी काम विलास रस, ग्यानी ग्यान सुबुद्धि ।।
संपूरन मधुमालती, नौ सौ सत्तरि छंद ।
बकता स्रोता सबनकूं, दूरि करै दुख दंद ।।

नौ सौ सत्तर छंदों वाली यह रसकथा मूलतः काम के अवतार मधु और मालती की प्रेमकथा है। राजनीति, पंचाख्यान बुद्धि और चाणक्य-चातुरी इसमें कवि के शब्दों में 'थोरी थोरी' प्रसंगवशात् ही आई है, प्रधानता तो काम-प्रबन्ध की ही है, मधुमालती-विलास ही इसका मुख्य आधार है।

इस रस कथा के नायक मनोहर और नायिका मालती का रूप-वर्णन हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। रूप-वर्णन की जितनी शैलियाँ आगे हिन्दी साहित्य में दिखाई दीं, संक्षिप्त रूप में सभी इस प्रबन्ध-काव्य में दिखाई देती हैं। मनोहर (मधु) के रूप-वर्णन में चतुर्भुजदासदास ने 'कोटि मनोज लजावन हारे' रूप की कल्पना तो नहीं की, क्योंकि, उसका मधु तो मनोज का अवतार-मात्र था, परन्तु, उसका रूप मृत्तिका की पुतलियों को आत्मविभोर करने के लिए पर्याप्त अवश्य था। यौवनागम के पूर्व ही मधु की रूपमाधुरी का क्या प्रभाव था यह कवि के मुख ही से सुनिए—

चौपाई

मधु मधु कहे खिलावै तात । बाढ़ै मनहुँ कलानिधि गात ।।
घड़ी दिवस पख मासन ओर । ज्यौ वसंत किसलय दलकोर ।।
भयौ बरस दस मासक संध । देखत त्रिया होइँ कामांध ।।
तन मन धन सुधि बिसरी गेह । भृंगी भई मनौ गति तेह ।।
जित जित कुँवर करै कहुँ सैल । दौरी फिरैं त्रिया तिहि गैल ।।
कबहुँक राम सरोबर जाई । भृंगी जूथ मनौ चौक भुलाई ।।
अबला केतिक पानी भरैं । चितबत कुंभ सीस तै ढरैं ।।
रीते कलस हाथ तें परैं । भूली मनौ बिना मृत मरैं ।।

मधु-युद्ध

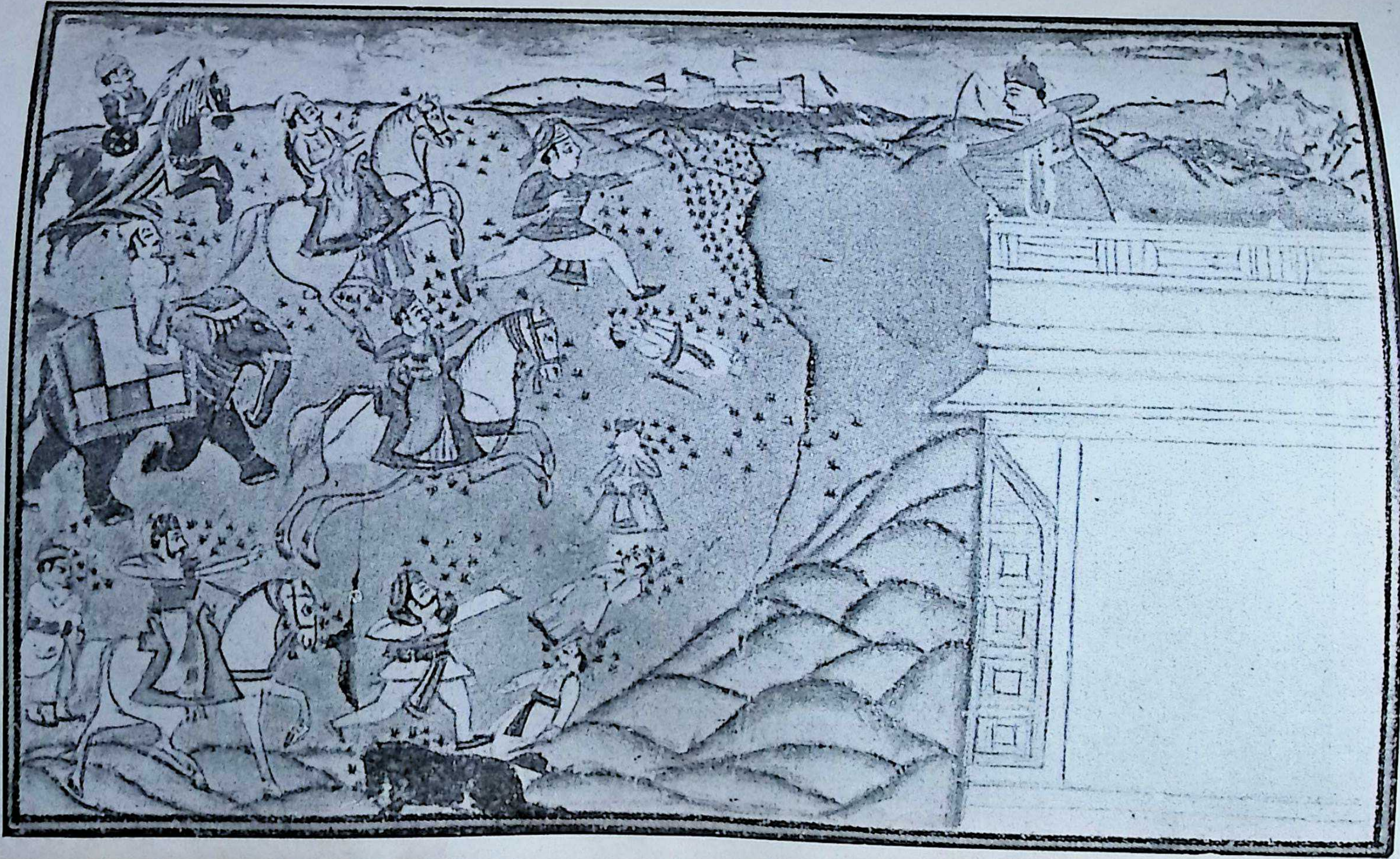

भ्रमरों की सहायता से मधु राजा की सेना से युद्ध कर रहा है। इस चित्र में हाथी और घोड़ों का वहुत सुन्दर अंकन हुआ है।

उलूक और काक

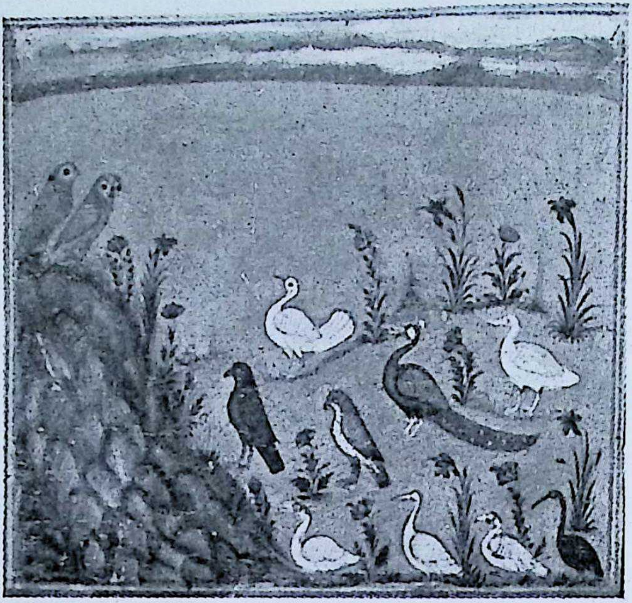

काकोलूकीयम आख्यान का अत्यन्त सजीव चित्र इस प्रति में चित्रकार ने दिया है। उलूक को पक्षियों का राजा बनाने के उद्देश्य से वन के सभी पक्षी एकत्रित हैं। इसी बीच काक महाशय भी आगए हैं और उलूक के स्थान पर गरुड़ को राजा बनाने की मंत्रणा दे रहे हैं। इस छोटे से चित्र में सभी पक्षियों की भावभंगी सफलता-पूर्वक अंकित की गई हैं।

एक अन्य स्थल पर कवि ने लिखा है—

चौपाई

भरहिं नीर सुन्दर वर नारीं। मधु के चरित देखि कैं हारीं॥
सिर धरि कुंभ लिए जिन जैसे। चितवत चकित भई पुनि तैसे॥
मनहुँ मैन आजुध मिलानी। काम जाल तैं सबै रुकानी॥

बेचारा मधु भी उनकी यह दशा देख कर शरमा गया और सरोवर छोड़कर चला गया।

यह दशा तो मधु के दर्शन से होती है। जब मधु दिखाई नहीं देता, तब इस रूपराशि से प्रभावित रमणियों की जो दशा हो जाती है, उसके विषय में कवि ने लिखा है—

चौपाई

जौंलों मधु अपने ग्रह रहैं। केतिक नारि अरबरी रहैं॥
उनके सजन बंधु कछु कहैं। केतिक भली बुरी सब सहैं॥
मनकी कोऊ न कहिन सुनावैं। ज्यों चात्रक स्वाती कूं धावैं॥

मध्यदेश की इस रचना ने आगे कृष्ण के रूप के प्रभाव और आकर्षण के वर्णन को कहाँ तक प्रभावित किया है, इसके लिए अधिक उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है। गोपियों का कृष्ण के पीछे पागल बनी घूमना, सजन-बन्धुओं के ताने सहना आदि को यदि उनके देवत्व के आवरण को हटाकर देखा जाय, जैसा कुछ परवर्ती कवियों ने किया भी है, तो उस रूप-वर्णन में इस रस-कथा के छींटे प्रत्यक्ष दिखाई देंगे।

इस कथा की नायिका मालती पर इस रूप का अत्यन्त मादक प्रभाव पड़ना प्राकृतिक था। अन्य युवतियों से रूप-वर्णन सुनकर मालती के मन में मधु के रूप दर्शन की लालसा तो थी ही—

इही बात मालति सुन पाई। मधु देखन को मनसा छाई॥

और जब मधु के गुरु नन्द पण्डित से राजा ने मालती को भी अध्ययन करने को कहा तब वह संयोग आ गया—

दोहा

कारा कलम कपाल में विधना लिख्यौ सुभाय।
मधुमालतीविलास कौ लाग्यौं होन उपाय॥

राजा ने मालती के परदे के पीछे बैठ कर पढ़ने का प्रबन्ध किया। गुरु और मधु दोनों परदे के दूसरी ओर बैठते थे। साथ ही राजा ने यह भी बात मालती को समझा दी थी कि नन्द गुरु में एक बहुत बड़ा दोष यह है कि यदि कोई स्त्री उसे

देख ले, तो वह सर्वांग-श्वेत (कुष्ठिनी) हो जाती है। परन्तु, एक दिन जब गुरु जी वन में गए थे, मालती ने परदे में से मधु को देख ही लिया—

चौपाई

एक दिवस गुरु वन में गयौ। मन में गूढ़ मालती ठयौ।
पटपरेच सौं दीने नैन। निरख्यौ मधु संपूरन मैन॥

सोरठा

भई बिरह बस बाल मधु मूरति निरखी नयन ;
मनहुँ कोवरी जाल गिरी मीन ज्यौं मालती॥

ऐसा है इस रसकथा के नायक का रूप! परन्तु, कवि ने मालती के रूप-वर्णन में जो काव्य वैभव तथा कल्पना की सूक्ष्मता और मौलिकता प्रदर्शित की है, वह उसे हिन्दी के प्रसिद्ध रूप-शिल्पियों में स्थान देते हैं। उपमेयों तथा रूप-माधुरी के प्रभाव-प्रदर्शन दोनों के सहारे ही उसने नायिका के अपूर्व सौन्दर्य का अंकन किया है। मालती का रूप-वर्णन करते हुए एक स्थल पर वह लिखता है—

चौपाई

बरनूं काहा रूप अपार। मानहुँ उरबसि लियौ अवतार॥
उपमा कौन पटंतर कहूँ। गुन अनेक छबि पार न लहूँ॥
दिन दिन रूप अनूपम चढ़ै। ऐसी और न बिधना गढ़ै॥
गज कपोत हरि बिंब प्रबाल। भृंगी, मधुकर, मीन, मराल॥
कदली, कनक पीक सी सोई। इन्द्रसभा सब फीकी होई॥
जा देखे चित चलै महेसा। भूलै ससि डोलै महि देसा॥
देखत धरती नावै सेसा। सूरज भूलि फिरै अनदेसा॥

इसी अनुपम रूप को चटसाल में पटपरेच में से मधु ने देखा था। उस समय वह घोर संकोच में था। मालती की यही रूप-राशि जब मधु के सम्मुख रामसरोवर के तीर पर आई, उस समय का वर्णन करते हुए कवि लिखता है—

चौपाई

औंचक आनि दामिनी कौंधी। देखत नैन भई चकचौंधी॥
पट परेच झांकत मुख देख्यौ। अब तौ रूपहिं नख सिख पेख्यौ॥
उपमा कौन? पटंतर को है? सुरनर नागलोक मन मोहै॥
बदन कलानिधि पूरन तरुनी। कबि कौं उपमा और न बरनी॥
ससि कलंक घटि घटि तन बाढ़े। मुख सोभा दिन दिन अति चाढ़ै॥
वेणी मांग मध्य दई पाटी। मानहुँ सेस फुनिग कर काटी॥

तापर सीसफूल मधि धारी । मृगमदतिलक रसन दे कारी ॥
सुभग भौंह स्यामता सुहाई । कमल हाथ सरसुती बनाई ॥
किधूं काम धनुष कर तूटी । चितबनि बनी मनूं सर छूटी ॥
नैन कमल दल मधुकर बैठे । मृग खंजन आरन उर पैठे ॥
पुनि विसाल राजें दृग कोए । मनु लघुमीन महावर धोए ॥
नासा केसु कलीन बनाई । केहरि नख केसुक मुख पाई ॥
मुकताचार अलक तहँ सोहै । ता ऊपर मनु नागिन मोहै ॥
सुधरी श्रवन सुभग छबि ऐसी । फुनि लघु सीप स्वाँति की जैसी ॥
तापर कर्णफूल छबि छाए । उभै चक्र मनु सूर सुहाए ॥
अलकनि बंक महाछबि सोहैं । अंडनि पर नागिन अवरोहै ॥
अधर प्रवाली निरखैं हारे । फुनि कै बिंब पके निरवारे ॥
तामे दसन मुसकनि मोहैं । निसि खद्योत पंक्ति सी सोहैं ॥
ठोडी कुमुद कली मनु कोरी । सोभा चिबुक तासु पर दौरी ॥
मृग मद बूंद किधूं तिल बाढ़ौ । कै अलि कंज कोरि मुख काढ़ौ ॥
ग्रीवा निरखि कपोत लजाने । फुनि जराब भूषन तहँ ठाने ॥
चौकी स्याम डोर छबि पाए । कालिन्दी तट नवग्रह आए ॥
लहँगा लसत लाल अतलस कौ । तापर भीर जरद जरकस कौ ॥
सोधैं सगबगाइ रहि सुथरी । मानहुँ इन्द्रभवन तें उतरी ॥
भुज मृणाल किधूं द्रुम गोभा । कै कदली सुत सुन्दर सोभा ॥
तापरिं बलय बहुत छबि छाई । मानूं बाल द्वै ससि कर नाईं ॥
पहुँचनि पहुँची अति छबि पावै । अंगुरनि मुंदरी जटित जरावै ॥
जैसे कमल कंठ अलि लागै । सच पायो उपमा रस रागै ॥
नाभि कमल हाटकघट जैसी । फुनि त्रिबली राजै तहाँ कैसी ॥
भृंगी कटि किधूं केहरि छबि है । मानहु तूट परै किन अब है ॥
तापर छुद्र घंटिका बाँधी । जानि बिधाता तुछ कर सांधी ॥
राजत चरण कमल रविवंसी । अँगुरनि अँगुरी लसै कनी सी ॥
पद भूषन नूपुर धुनि राजैं । मत्त मराल मनौ गति साजैं ॥

सोरठा

गहनौ और सरूप, सब सुन्दरि सुन्दर लगैं ।
वह रमणी को रूप गहना कौं गहनौ भयो ॥

दोहा

काठ सिंगार बनाइए तौ पुनि सोभा होय ।
बिन भूषन तन राजही सांची सोभा सोय ॥

चौपाई

मालति बिन भूषन तन सोहै। सौभा सिन्धु देख मन मोहै॥
तीन लोक महँ भई न कोई। जैसी कुंवरि मालती होई॥

तीनों लोकों में अनुपम चतुर्भुजदास की यह 'पूर्ण तरुणी' और शोभा की सिन्धु मालती की छाया हिन्दी के अनेक परवर्ती कवियों की नायिकाओं के रूप को सँवारती है। तुलसीदास, सूरदास एवं बिहारी के रूप-वर्णन में इसकी झाँकी दिखाई देती है। अनेक विद्वानों के मत में सोलहवीं शताब्दी में और हमारे मत में पन्द्रहवीं शताब्दी में लिखी गई इस रस-कथा के रूप-वर्णन का प्रभाव हिन्दी साहित्य में कितना व्यापक था, यह बतलाने के उद्देश्य से ये कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की गई हैं। इस प्रकार की कोमल कल्पना अन्यत्र मिलना कठिन है। मालती की भौंहें स्वयं सरस्वती ने अपने कमल-जैसे हाथों से बनाई हैं, उसकी उपमा क्या दी जा सकती है और किस से उसकी समता की जा सकती है ? चतुर्भुजदास की कुछ अत्यन्त सुन्दर उपमाएँ एवं उत्प्रेक्षाएँ ऊपर के खंड में दी गई हैं, हम तो उनमें से केवल एक की ओर विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट करते हैं। माथे पर मृगमद का काला टीका लगा है। इसकी पहली उत्प्रेक्षा तो यह की गई कि मानो तिल बड़ा हो गया है और तुरन्त ही दूसरी बात यह कही गई 'मानो कमल को भ्रमर ने कुरेद डाला और उसमें से वह अपना मुख दिखा रहा है।'

चन्द्रमा से अपनी नायिका के मुख की उपमा देना तो कवि इस कारण से अनुचित समझता ही है कि चन्द्रमा घट-घट कर बढ़ता है, परन्तु, मालती के मुख की आभा सदा बढ़ती ही रहती है, साथ ही चन्द्रमा सूर्य के सामने निस्तेज दिखाई देता है, परन्तु, मालती का मुख देखकर सूर्य भी निस्तेज हो जाता है—

सोरठा

ससि देख्यो कै बार रवि के ढिंग फीकौ सदा।
मालति-बदन निहार तेजहीन दिनकर भयौ॥

नायक-नायिका के रूपवर्णन के अतिरिक्त कवि को प्रकृति के सौन्दर्य-आलेखन में भी बहुत सफलता मिली है। चतुर्भुजदास वर्णन को संक्षिप्त करने की ओर विशेष ध्यान देते रहे—

थोरे माँहि बहुत रस होई। बहुत कहे मन फीकी होई॥

फिर भी स्थान-स्थान पर प्रकृति-चित्रण सुन्दर बन पड़ा है। राम-सरोवर का वर्णन करते हुए वह लिखते हैं:—

दोहा

रामसरोवर ताल की सोभा बरनि न जाय।
सेत अरुन पंकज जहाँ मुनि मन रहे लुभाय॥

चौपाई

सोभा कौन रामसर कहै । बहुतक तहाँ बिहंगम रहै ।।
प्रफुलित कमल बास महमहै । उपमा कौन रामसर कहै ।।

इसी राम-सरोवर पर मधु अपनी गुलेल से खेलने लगा । सरोवर के पक्षियों के पानी में से उड़कर भागने का अत्यन्त सुन्दर और प्राकृतिक वर्णन चतुर्भुजदास ने किया है:—

चौपाई

कर गिलोल खेलत नहिं हारै । गोरे लै पंछिन पै डारै ।
अरबराय जल तैं उडि भाजैं । पंख-प्रवाह मनौ घन गाजैं ।
उडे बहुत पंछी मन मोहैं । मानहु घटा मेघ की सोहैं ।।
भीजे पंख मनौ घन बरसैं । सो जल मधु अपने तन परसैं ।।

चतुर्भुजदास का प्रधान उद्देश्य कथा कहना था । प्रकृतिचित्रण को उसने अधिक स्थान नहीं दिया । उसका एक ही उद्देश्य था कि कथा का कौतूहल कहीं कम न होने पाए । इस कारण प्रकृति सौन्दर्यांकन के स्थल बहुत थोड़े हैं । ×

× इस लेख से सम्बद्ध चित्र लेखक द्वारा संपादित 'मधुमालती' के हैं, जो लेखक के संग्रहालय की एक सचित्र प्रति से लिए गए हैं । यह प्रति वि० सं० १८२२ में लिखी गई थी । इस प्रति के चित्रों में पशु-पक्षियों का जैसा सुन्दर चित्रण हुआ है, वैसा अन्यत्र कम मिलता है—सं० ।

★ नयन-मिलन ★

— श्री आरसीप्रसादसिंह —

जब मिलते हैं नयन नयन से,
सुख की वर्षा हो जाती है!
बाँध तोड़कर नदी सिन्धु से
मिल जाने को अकुलाती है!

मिलते हैं जब हृदय हृदय से,
प्राण प्राण से मिल जाते हैं!
कनक-किरण के एक स्पर्श से
मनके पाटल खिल जाते हैं!

प्रेम-प्रेम के विमल मिलन में
जग की सुध-बुध खो जाती है!
जब मिलते हैं नयन नयन से,
सुख की वर्षा हो जाती है!

बँध जाते हैं एक सूत्र में,
जो समस्त व्यापार हृदय के!
और एक ही स्वर में बजने
लगते जब दो तार प्रणय के!

स्वर न फूटता कोई, भाषा
भी आने में सकुचाती है!
जब मिलते हैं नयन नयन से,
सुख की वर्षा हो जाती है!

वह आनन्द न कहने का है,
अनुभव ही होता उस सुख का,
चाँद जहाँ कुम्हला जाता है,
दर्शन कर उस सुन्दर मुख का!

झड़ जाते हैं पंख स्वप्न के,
कहीं नींद भी सो जाती है!
जब मिलते हैं नयन नयन से,
सुख की वर्षा हो जाती है!

लोकतंत्र में हिन्दी की समस्याएँ

-- श्री ब्रिजलाल बियाणी, वित्तमंत्री, मध्यप्रदेश --

स्वराज्य के पश्चात् इस देश में भाषा के क्षेत्र में एक उथल-पुथल दिखाई देती है। भाषिक क्षेत्र में नई व्यवस्था करना, नई निगाह से देखना और सारे देश को नए साँचे में ढालना है, जिसकी वजह से उसका हृदय बलवान् हो, अपनी भाषा के लिए उसमें ममत्व पैदा हो और भाषा की समृद्धि का गौरव उसे मिले। भाषा-क्षेत्र के पुराने मूल्यों में परिवर्तन होना है और नवीन मूल्यों की स्थापना होनी है। इस परिस्थिति में सारी अवस्था को शांति के साथ समझना ज़रूरी है और सामंजस्य और शांति से कार्य करना आवश्यक है। हिन्दी-भाषा-भाषियों के लिए हिन्दी भाषा का उत्तरदायित्व सबसे अधिक श्रेष्ठ है, कारण हिन्दी भाषा को अन्य भाषाओं की तुलना में श्रेष्ठता प्रदान की गई है। स्थान की श्रेष्ठता के साथ उत्तरदायित्व की श्रेष्ठता आती है और इस नाते सारी परिस्थिति का शांति से अवलोकन कर क़दम उठाना है और वह क़दम उठाना है. जिससे हिन्दी का कल्याण हो और देश के भाषा-विषयक क्षेत्र में यत्किंचित् भी अशांति का निर्माण न हो।

सर्वसाधारणतः हिन्दी-भाषा-भाषी जब हिन्दी की बात करते हैं, तब वे हिंदी को राष्ट्रभाषा के गौरवपूर्ण नाम से संबोधित करते हैं। मैं उस दिन की राह देख रहा हूँ, जिस दिन सही मानी में हिन्दी इस देश की राष्ट्रभाषा होगी। राष्ट्रभाषा का अर्थ है वह भाषा, जिस भाषा में समस्त राष्ट्र बोलता हो, राष्ट्र की शिक्षा का जो माध्यम हो और राष्ट्र का राज्य-कार्य जिस भाषा में चलता हो। जिस भाषा में ये तीनों गुण हैं, वह पूर्णतया देश की राष्ट्रभाषा कहलाने योग्य होती है। इस दृष्टि से हम हिन्दी के स्थान को देखें। जहाँ तक जनता की बोलचाल की भाषा का सवाल है, हिन्दी यद्यपि सारे राष्ट्र की बोलचाल की भाषा नहीं है, तथापि, व्यापक रूप में यदि समस्त राष्ट्र में किसी भाषा द्वारा काम चल सकता है, तो वह हिन्दी भाषा द्वारा। सारे देश में सबसे अधिक बोली जाती है, तो वह हिन्दी भाषा ही। इस नाते हिन्दी भाषा इस देश की व्यापक जन-भाषा है और राष्ट्रभाषा का वह गुण उसमें है। परन्तु, वह आज सारे देश में शिक्षा का माध्यम नहीं है और सारे प्रदेशों का राज्य भी उस

भाषा में नहीं चलता है। तब फिर आज हिन्दी का कौन-सा स्थान है, इसको ठीक समझ लेना आवश्यक है। हमारे संविधान ने हिन्दी को संघ की राज्य-भाषा स्वीकार किया है। साथ ही १४ भाषाओं को अन्य भाषाओं की सूची में स्वीकृति दी है। अतः, इस देश के भाषा-क्षेत्र में हमारे संविधान ने हिन्दी को राज्यभाषा के रूप में और अन्य १४ भाषाओं को प्रादेशिक भाषाओं के क्षेत्र में मान्यता प्रदान की है। इस मान्यता के बीच हमें कार्य करना है और भाषाओं का समन्वय स्थापित करना है।

राज्यभाषा हिन्दी का अर्थ इतना ही है कि शनैः-शनैः अँग्रेज़ी का स्थान हटाकर उसकी जगह पर राज्यकार्य में हिन्दी की स्थापना हो और १५ वर्षों में यह परिवर्तन पूरा हो जाय। केन्द्र का कार्य राज्यभाषा में चले और केन्द्र का तथा राज्य-सरकारों का काम और राज्य-सरकारों का आपस का कार्य राज्यभाषा हिन्दी में चले। यह हिन्दी का आज का संविधान-द्वारा मान्य स्थान है। साथ ही संविधान में अन्य भाषाओं को भी मान्यता प्रदान की गई है। जिन १४ भाषाओं को संविधान ने स्वीकृत किया है, उनमें १२ भाषाएँ ऐसी हैं, जिन्हें हम प्रादेशिक भाषाएँ कह सकते हैं, जो किसी एक खास प्रदेश में बोली जाती हैं, जिनका अपना साहित्य है और संविधान की धारणा के अनुसार जो भाषाएँ प्रदेशों में राज्यभाषाओं का कार्य करेंगी। हिन्दी को भारतीय राज्यभाषा का स्वरूप दिया गया है तथा प्रादेशिक भाषाओं को प्रादेशिक राज्यभाषा की मान्यता दी गई है। संस्कृत और उर्दू, इन दो भाषाओं को भी १४ भाषाओं की फ़ेहरिस्त में सम्मिलित किया गया है। इन दो भाषाओं का अपना कोई निश्चित प्रदेश नहीं है, पर, भारतव्यापी उनका क्षेत्र है। हिन्दी-भाषा-भाषी क्षेत्र की कल्पना है कि हिन्दी इस देश में अँग्रेज़ी का स्थान प्राप्त करे। आज संविधान में इस कल्पना की स्वीकृति नहीं है। अँग्रेज़ी इस देश की राज्यभाषा थी और थी इस देश की दुय्यम शिक्षण की माध्यमिक भाषा भी। संविधान के अनुसार हिन्दी समस्त देश की शिक्षा की माध्यम भाषा नहीं है। प्रादेशिक भाषा ही हर प्रदेश की शिक्षा की माध्यम भाषा रहेगी। हिन्दी एक अनिवार्य भाषा रहेगी। अतः, जहाँ तक शिक्षा-क्षेत्र का प्रश्न है, प्रादेशिक भाषाएँ ही शिक्षा का माध्यम हैं। हिन्दी राज्यभाषा रहेगी। प्रदेश में प्रादेशिक भाषाएँ राज्यभाषाएँ रहेंगी। हिन्दी शिक्षा के क्षेत्र में अनिवार्य रहेगी, पर, वह भारतव्यापी माध्यम नहीं रहेगी। वह जनता की व्यापक भाषा रहेगी। यह है आज हिन्दी की सत्य स्थिति। इस स्थिति को हिन्दी-भाषा-भाषी मित्र व्यवस्थित रूप में समझ लें, तो भाषा-क्षेत्र में जहाँ कहीं कटुता उत्पन्न हो जाती है, वह उत्पन्न न होगी और हिन्दी तथा प्रादेशिक भाषाएँ अपने अपने क्षेत्र में सामंजस्य से कार्य कर सकेंगी। हिन्दी भाषा के विकास और प्रचार के लिए हिन्दी-भाषा-भाषियों को उतावला होना उचित नहीं है। हिन्दी का स्थान निश्चित हो गया है

और वह शनैः-शनैः वृद्धिगत होनेवाला है । हिन्दी भाषा के विकास का कर्त्तव्य तो संविधान ने स्वयं स्वीकृत कर लिया है । संविधान की धारा ३५१ का हमें सदैव स्मरण रखना चाहिए। वह इस प्रकार है:—

> "३५१. हिन्दी-भाषा की प्रसार-वृद्धि करना, उसका विकास करना, ताकि वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सब तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके, तथा उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किए बिना हिन्दुस्तानी और अष्टम अनुसूची में उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात् करते हुए तथा जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ उसके शब्द-भांडार के लिए मुख्यत: संस्कृत से तथा गौणतः वैसी उल्लिखित भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघ का कर्तव्य होगा।"

राज्य-सत्ता के इस कर्त्तव्य को स्वीकार करने के बाद जिनकी मातृभाषा हिन्दी है उनका कर्त्तव्य हलका हो जाता है और उन्हें विश्वास की साँस लेने का अधिकार मिल जाता है। मेरा अपना विश्वास है और इस विश्वास में मैं निश्चिन्त हूँ कि हिन्दी का भविष्य उज्ज्वल है, और दिन-प्रति-दिन उसका क्षेत्र व्यापक होनेवाला है। वह समय दूर नहीं है, जब हिन्दी समस्त भारत में गौरव की निगाह से देखी जायगी। उसके प्रति संपूर्ण ममत्व पैदा होगा और जो आज इधर-उधर उसका विरोध दिखाई देता है, वह संपूर्णतया नष्ट होगा। हिन्दी का सूर्य भारत के आकाश में निरभ्र प्रकाशित होकर इस देश को तेज और शक्ति का संदेश देता रहेगा । हमें भविष्य की कल्पना करना है। वर्त्तमान के संकुचित स्वरूप में अपने आपको नहीं खोना है। ऊँचा उठकर कार्य करना है । हिन्दी जिनकी मातृभाषा है, उनके अपने ऊपर एक विशेष उत्तरदायित्व आया है, इस भावना को त्यागना चाहिए। अब हिन्दी सारे राष्ट्र की राज्यभाषा हो गई है, अतः, उसके विकास का भार तो सारे देश पर आ गया है। हम अपने ऊपर हिन्दी के प्रचार का सारा बोझ न लेते हुए अन्यों को भी उस बोझ के साझेदार बनाएँ और जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है, उनको उस बोझ में जितने अधिक हिस्सेदार बनने का अवसर हम देंगे, उतना ही हिन्दी के प्रति उनका ममत्व बढ़ेगा।

राज्यभाषा के नाते सारे देश का उस पर अधिकार है। इसको स्वीकृत करने के पश्चात् जिनकी मातृभाषा हिन्दी है, उनका अपनी मातृभाषा के नाते भी हिन्दी के प्रति एक महान् कर्त्तव्य है और वह है उस मातृभाषा को राज्यभाषा बनाने के लिए सारी सुविधाएं देना और सारी शक्ति प्रदान करना । हर माता के सपूत का यही एक कर्त्तव्य हो कि वह हिन्दी भाषा को सर्वव्यापी बनाने का कार्य करे, उसको सरल बनावे, उसे लोकाभिमुख करे और सच्चे मानी में वह जनता की भाषा हो इस बात की ओर ध्यान दे।

स्वतंत्रता आने के पश्चात् इस देश की अपनी भाषा हो, जिसमें सारा देश बोल सके और अँग्रेज़ी को यदि हटा दिया जाय तो कोई भाषा उसका स्थान ले सके, यह प्रश्न इस देश के सम्मुख था। हिन्दी ने उस चुनौती को स्वीकार किया और जिन अँग्रेज़ी-प्रेमी भारतीयों के दिलों में यह आशंका थी कि अँग्रेज़ी चली जायगी तो हिन्दी में सब विषयों की चर्चा किस प्रकार की जा सकेगी, हिन्दी में कहाँ शब्द-भांडार है, उनकी आशंका तथा अँग्रेज़ी की चुनौती को स्वीकार करने का कार्य अनेक मित्रों ने किया, पर, उस कार्य में डॉ० रघुवीर को सबसे बड़ा श्रेय है। अँग्रेजी चली जाय, तब हर अँग्रेजी शब्द के लिए हिन्दी में शब्द हैं और हर बात को हम हिन्दी में कैसे कह सकते है इस निर्बलता का निवारण डॉ० रघुवीर ने किया और उस नाते उनका कार्य प्रशंसनीय है। परन्तु, इस चुनौती को स्वीकार करते समय यदि हम हिन्दी को क्लिष्ट बनाते हैं, तो हमारी गति अवरुद्ध हो जाती है। डा० रघुवीर की चुनौती ने कुछ अंश में यह कार्य किया। हिन्दी-प्रेमियों को चाहिए कि वे अँग्रेज़ी की चुनौती को स्वीकार करते हुए हिन्दी को सरल और जनभाषा बनावें। आज यदि 'घर' को वापस 'गृह' बनाया जाय, दूध' को 'दुग्ध' बनाया जाय और 'जूते' को 'पादत्राण' का रूप दिया जाय, तो हम हिन्दी का निर्माण नहीं कर रहे हैं, संभवतः हिन्दी को संस्कृत बना रहे हैं या संस्कृत को हिन्दी के क्षेत्र में उतार रहे हैं। हमें हिन्दी को न संस्कृत बनाना है और न संस्कृत को हिन्दी बनाना है। हमें तो हिन्दी का नव-निर्माण करना है और उस निर्माण के कार्य में किस रास्ते से जाना है, किस दृष्टि से कार्य करना है, इसका उल्लेख संविधान की धारा ३५१ में किया गया है, जिसको मैंने उल्लिखित किया है। हमारी हिन्दी भाषा अन्य भारतीय भाषाओं के रूप और शैली को आत्मसात् करेगी। यह निश्चित है कि उसका शब्द-भांडार संस्कृत से प्राप्त होगा, परन्तु, अन्य भाषाओं का दरवाज़ा बन्द नहीं रहेगा। अतः, चारों ओर से हिन्दी की शब्द-सामग्री एकत्र करना है, उसकी शैली में विविधता लाना है और चहुँ ओर उसके लिये ममत्व पैदा करना है।

संविधान में यह सब निश्चित व्यवस्था होने के पश्चात् देश में इधर-उधर जब कभी अन्य किसी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाने की बात सुनता हूँ, संस्कृत के लिए आदर होते हुए भी संस्कृत को राष्ट्रभाषा के स्थान पर आसीन करने की भावना को देखता हूँ और जब कभी यह भी सुन लेता हूँ कि हिंदी भी राष्ट्रभाषा है और अन्य भाषाएँ भी राष्ट्रभाषा, तब यह कह देना चाहता हूँ कि हमें भाषा के क्षेत्र के अपने विचारों को बिलकुल स्पष्ट कर लेना है। इस देश की यदि कोई भाषा राज्यभाषा आज है और भविष्य में रहेगी, तो वह हिन्दी ही रहेगी, अन्य किसी भाषा के राज्यभाषा बनने की संभावना निरर्थक है। उस प्रकार का आन्दोलन देश के लिए आपत्तिजनक है।

हिन्दी में और प्रादेशिक भाषाओं के स्थान में फ़र्क़ है। हिन्दी देशव्यापी राज्यभाषा है, तो प्रादेशिक भाषाएँ प्रदेशव्यापी राज्यभाषाएँ हैं। हमें इस समन्वय में देखना है, बोलना है और कार्य करना है। किसी भी विषय के सम्बन्ध में हमारी कल्पनाएँ स्पष्ट हो जायँ, तो विषय स्पष्ट हो जाता है और विवाद की कटुता निकल जाती है। मैं आशा करता हूँ कि भाषा के क्षेत्र में क्या हिन्दी-भाषा-भाषी और क्या अन्य-भाषा-भाषी सारी स्थिति को स्पष्ट समझकर चर्चा करें और व्यवहार करें, ताकि इस क्षेत्र में कटुता का तनिक भी निर्माण न हो और कोई भी भाषा दूसरी भाषा के अपने न्याय्य क्षेत्र पर आक्रमण न करे। यही भाषा-क्षेत्र का व्यवस्थित मार्ग है और है हमारे विकास और प्रगति का रास्ता।

भाषा के क्षेत्र में जो ग्रंथियाँ हैं, उन्हें ठीक-ठीक सुलझाने के पश्चात् देश के सामने दूसरा एक महान् सवाल खड़ा हो जाता है और वह है इन भाषाओं के साहित्य का निर्माण। अन्य भाषाओं की अपेक्षा हिन्दी के लिए यह प्रश्न अधिक महत्त्व का है। आज हिन्दी भाषा यद्यपि राज्यभाषा के स्थान पर विराजमान हुई है, तथापि उसे यह स्थान अपने साहित्य की निधि पर प्राप्त नहीं हुआ है। साहित्य की निगाह ही से देखा जाय, तो सस्कृत का साहित्य महान् है और दुनिया के श्रेष्ठतम साहित्यों में एक है। अन्य कुछ प्रादेशिक भाषाओं का साहित्य भी प्रचुर और उच्च श्रेणी का है। इतना होते हुए भी हिन्दी को जो अन्य भाषाओं की अपेक्षा विशेष स्थान मिला है, वह उसकी साहित्य-सम्पत्ति पर नहीं, अपितु, उसकी व्यापक उपयोगिता की क्षमता पर। अन्य किसी भी भाषा की अपेक्षा हिन्दी अधिक व्यापक है और जन-भाषा है इसी नाते हिन्दी को यह सम्मान प्राप्त हुआ है। जनभाषा का स्थान क़ायम रखते हुए, नहीं, उसे विकसित करते हुए, हिन्दी को अपना साहित्य-निर्माण करना है, ताकि जनता और साहित्य के क्षेत्र में वह अपना अद्वितीय स्थान प्राप्त कर सके।

किसी भी देश की सम्पत्ति दो प्रकार की होती है। उसकी आर्थिक सम्पत्ति और उसकी विचारों की सम्पत्ति या साहित्यिक सम्पत्ति। आज भारत का पुनर्निर्माण करना है। उसे विकसित करना है। संसार के क्षेत्र में उसे महान् बनाना है, तो दोनों क्षेत्रों की सम्पत्ति को वृद्धिगत करना चाहिए। उसकी आर्थिक स्थिति सुधारना है, तो उसकी साहित्यिक सम्पत्ति को सामयिक और उच्चतम बनाना है। जिस देश का साहित्य महान् है, उस देश की महत्ता निश्चित है, अतः, देश के पुनर्निर्माण में आर्थिक स्थिति की बराबरी का स्थान विचारों का भी है प्रत्युत, विचार-निर्माण के ऊपर ही देश का सच्चा निर्माण अवलंबित है। मानवता का निर्माण आर्थिक स्थिति से संबंध रखता है, तो कुछ अंश में विचारों की समृद्धता की बुनियाद पर भी मानवता की सुदृढ़ निर्मिति निर्भर रहती है। इन तत्वों को ध्यान में रखते हुए हमें हिन्दी का

साहित्य-निर्माण करना है, ताकि हिन्दी अपना स्थान अपने गुणों से प्राप्त करे, न केवल राज्य की शक्ति से। भाषा का वही स्थान श्रेष्ठ है, जो भाषा अपनी अंतःस्थ शक्ति से प्राप्त करती है। आज देश में राज्यभाषा की अपेक्षा जनभाषा का स्थान अधिक गौरवशाली है. यह मेरी मान्यता है।

साहित्य की विविध परिभाषाएँ हैं। साहित्य के मानव-जीवन में विविध कार्य हैं। मैं साहित्य के विविध रूपों के वाद में न पड़ते हुए संक्षेप में यह अवश्य कहना चाहूँगा कि सच्चा साहित्य वह है, जो मानव के भावनामय जीवन को विचारमय बनाता है, मानव की निर्बलता का निवारण करके उसे बलवान् बनाता है, उसके व्यक्तिगत जीवन को सामाजिक जामा पहनाकर उसे सामूहिक जीवन के योग्य बनाता है, उसके सीमित स्वरूप को विश्वव्यापी बनाकर सारे विश्व से उसे समरस होने की क्षमता प्रदान करता है, उसके नीरस जीवन को रसयुक्त बनाता है और उसे सौन्दर्ययुवत बनाकर जीवन के सम्पूर्ण रूप का उसे दर्शन कराताहै। यह है साहित्य का कार्य और यह है साहित्य का ध्येय। इसी ध्येय से प्रेरित होकर साहित्यिक को साहित्य लिखना है और लिखना है वह साहित्य, जो मानव-समाज में शक्ति का संचार करे।

मानव का जीवन भावनाप्रधान है। जीवन के आरंभ-काल से भावना ही पर मनुष्य का जीवन चलता है और विचारों का प्रादुर्भाव जीवन की प्रौढ़ता का साथी है। इस परिस्थिति मे साहित्य का प्रथम कार्य भावनामय जीवन को विचारमय बनाना है। भावना जीवन का रस है, पर वह निर्बलता भी है। हमें उस मानव का निर्माण करना है, जिसका जीवन रसमय हो, पर, साथ ही बलयुवत भी हो। यदि भारतीय तत्त्वज्ञान का आदर्श स्थितप्रज्ञता है, तो भावना को वश में करके विचारमय जीवन बिताना आवश्यक है। दुःख के समय रुदन भावना का वेग है, पर, उस रुदन को रोककर आत्मप्रतिष्ठा से जीवन की शान्ति को बनाए रखना विचार-शवित का प्रतीक है और है मानव की भावनाओं पर प्राप्त विजय का नमूना। रुदन की मोहकता या रुदन को वश में करने की शवित की श्रेष्ठता का चित्र साहित्यकार को समाज के सम्मुख रखना है। भावनामय माता के स्थान पर विचारमयी माता को जन्म देकर बालक का लालन-पालन करना है और दुःख के अवसरों पर मानसिक शान्ति का भंग न होने देने की वृत्ति का निर्माण करना है। जो साहित्य इस कार्य को करता है, वह मानवता की प्रतिष्ठा बढ़ाता है। जहाँ निर्बलता है, अन्यायों की शरण में जाने की वृत्ति है, वहाँ विचारों की प्रबल धारा के वेग से शवित को जन्म देना है, मानव के व्यक्तिगत जीवन की वृत्तियों को सामाजिक जीवन के विशाल परमार्थ में प्रवाहित करना है और स्वल्प से निर्बल मानव को विश्व की महान् शक्तियों से एकता स्थापित करने की शक्ति देकर उसे नया बल देना है। जीवन की रुक्षता में रस पैदा करना

है। जीवन केवल खानपान का आदर्श नहीं है, उसमें कला का स्थान है। इस आकर्षण को पैदा करना है और अन्त में सौन्दर्य का पुजारी बनाकर मानव को अपने जीवन की सम्पूर्णता की आराधना के लिए जीवन के नव-मन्दिर में प्रविष्ट कराना है। यह है साहित्य का सच्चा कार्य। यह है नव-समाज-निर्माण की विचारधारा का नवप्रवाह। यह है हमारे अपने छोटे से जगत् को विशाल बनाने की शक्ति का महामन्त्र। यह है लोकतन्त्र में समाज के व्यापक रूप की पूजा का आदर्श और उस साहित्य का निर्माण, जो भारत के हर कण्ठ से स्फुटित हो, हर दिमाग का स्पर्श करे और हर हृदय को हिलावे। समुचित मानव-जाति के हृदय-तंतुओं का सूक्ष्म स्पंदन ही साहित्य और साहित्यकार का कलामय स्पर्श है।

महान् और स्थायी साहित्य के निर्माण के साथ अनेक नए स्रोत प्रवहित हो रहे हैं, जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों का स्पर्श करते हैं। आकाशवाणी साहित्य का रूप है, चित्रपट साहित्य का अलग अवतार है, पर, इन सबसे महत्त्व की साहित्य की लहर पत्रकारिता में है। लोकतन्त्र में पत्रकारिता बहुत बड़ा स्थान रखती है, मुख्यतः, सामयिक साहित्य का निर्माण करना, प्रतिदिन की विविध आवश्यकताओं की पूर्ति का संदेश देना, विशाल मानव-जाति की एकता का चित्र प्रतिदिन चित्रित करना और उसके द्वारा अस्थायी और स्थायी दोनों प्रकार का साहित्य निर्माण करना, यह है आज की पत्रकारिता का नवीन अवतार। हिन्दी साहित्य की सर्वांगीण उन्नति के लिए नितान्त आवश्यक है कि हिन्दी-साहित्य के इस अंग की ओर पूरा ध्यान दिया जाय। भाषा-समृद्धि और साहित्य को जनता तक पहुँचाने का जितना कार्य पत्रकारिता कर सकती है, उतना पुस्तकाकार साहित्य नहीं कर सकता। हिन्दी पत्रकारिता को समृद्ध होना है, तो उसमें दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक आदि सब तरह के विकसित सामयिक पत्रों का प्रकाशित होना अत्यन्त आवश्यक है।

साहित्य और उसके विविध क्षेत्रों का विकास तभी संभव है, जब उसके निर्माताओं का जीवन विकसित, उच्च और स्वावलंबी हो। अतः, आवश्यक है कि हिन्दी के क्षेत्र में कार्य करने वाले साहित्यिक, पत्रकार, संवाददाता आदि सबके जीवन-विकास की ओर ध्यान दिया जाय। शासन का भी यह कार्य है। साहित्य के क्षेत्र में कार्य करने वालों का यह कर्त्तव्य है और जनता का भी अपने विकास के हित में यह उत्तरदायित्व है। देश का विकास एक सामूहिक वस्तु है, जिसमें सब प्रकार की आवश्यकताएँ अपना स्थान रखती हैं। अर्थ का स्थान है, तो उसके निर्माण करने वालों का भी स्थान है। साहित्य का स्थान है, तो साहित्य निर्माण करने वालों का भी स्थान है। उत्तम पुष्पों की आवश्यकता है, तो उत्तम पुष्प-निर्माण करने वाले मालियों का निर्माण करने की भी आवश्यकता है। साथ ही इस बात को भी देखना है कि

पुष्पों का निर्माण केवल निर्माण के लिए नहीं, पर, उनके रस और सौन्दर्य का उपभोग लेने के लिए भी है । हमें साहित्य-निर्माण करना है, पर, वह ऐसा हो, जो जीवनोपयोगी हो और जीवन के लिए आवश्यक हो । अतः, साहित्य-निर्माण का अर्थ केवल निर्माण की शक्ति पैदा करना नहीं है, पर, वह शक्ति निर्माण करना है, जो सत्यं शिवं, सुन्दरम् का निर्माण करे ।

* * *

पत्नी का विद्रोह

— सुश्री विमला बाँठिया —

(१)

जग्गू की माँ से रमिया ने अपना दुखड़ा रोया—"राम जाने कैसी खोटी तकदीर लेकर पैदा हुई हूँ कि आज तक एक दिन को भी चैन की नींद नहीं सोई। माँ मरी, तो बाप ने सौतेली माँ लाकर खड़ी कर दी। दो-तीन दर्जे जो पढ़ा, वह भी भाड़ में चला गया। खोज-ढूँढ़कर ब्याह किया, तो वह भी ऐसी जगह, जहाँ एक दिन के लिए भी सुख से नहीं रह पाई। क्या करूँ, जग्गू की माँ, कहाँ तक मरूँ-खपूँ। वकील साहब के यहाँ से मुझे जो भी मजदूरी मिलती है, सारी की सारी यह शराबी उड़ा देता है। दिन-रात हड्डी-तोड़ मेहनत करती हूँ, पर, शायद ही कभी एक बार को पेट भर खाने को मिलता है। मेरा तो यही मन करता है कि सारा घर-बार छोड़-छोडकर कहीं भाग जाऊँ। ऐसे जीने से तो मरना अच्छा जग्गू की माँ!" कहते-कहते रमिया की आँखों से आँसू बह निकले। जग्गू की माँ बेचारी क्या कहती। रोज़ ही देखती थी कि रमिया का पति रामदीन सुबह घर से जो निकलता, सो दोपहर को रोटी खाने आता और फिर जो जाता, तो कभी रात के पहले घर न लौटता। रात को शराब के नशे में गिरता-पड़ता घर में घुसता, बकता, चिल्लाता, रमिया को मारता और सो जाता। यही उसका जीवन था। इस क्रम में जग्गू की माँ तथा अन्य पड़ोसियों ने कभी कोई व्यतिक्रम नहीं देखा। देखते, तो शायद आश्चर्य ही करते।

रमिया थी बहुत सुन्दर। उसके वर्ग में इतना सौन्दर्य कुछ दुर्लभ-सी ही वस्तु था। सौन्दर्य के सिवा उसकी प्रकृति भी अत्यन्त सौम्य और शान्त थी। शृंगार और प्रसाधन के कृत्रिम आवरणों से परे उसके निर्मल सौन्दर्य में वह शक्ति थी, जो जगत् को मोह लेने का दावा कर सकती थी। आधुनिक सुरुचिसम्पन्न समाज में सर्वोपरि समझे जानेवाले व्यक्तियों के सौन्दर्य, चाल-ढाल और हाव-भावों में कितनी लाग-लपेट और कृत्रिमता है, इसका पता रमिया को देखकर चलता था, किन्तु, उसकी यह सौम्यता और सुन्दरता रामदीन की क्रूर बर्बरता के नीचे दबकर एकदम कुचल गई थी। रमिया का यह सौभाग्य था कि उसके कोई सन्तान न थी। होती, तो न जाने उसे भाग्य की कितनी विडम्बना सहनी पड़ती।

रमिया ने कहा "तुम तो जानती ही हो, जग्गू की माँ, कि वह कभी रात को १२ बजे के पहले नहीं आते। नशे में धुत्त रहते हैं। मैं कुछ कहती हूँ, तो मारने लगते हैं। कसाई के लिए हाँडी-भर खाने के लिए जुटाते-जुटाते मेरी हड्डी-हड्डी निकल आई, पर, उसे अकल नहीं आई, जग्गू की माँ! मर्द की जात हैं। औरत का पेट भरना उनका फर्ज है, पर, वह तो दूर रहा, खुद के खाने के लिए ही जुटा सकते, तब भी समझती कि उनमें मरदानगी है। हर बात में गाली, हर चीज़ पर डंडा! कहाँ तक सहूँ!"

जग्गू की माँ ने रमिया का दुर्भाग्य देखकर एक ठंडी-साँस ली और फिर कहा-'मर्द जात है ही ऐसी रमिया! इन्हींमें दया-धर्म हो, तो ऐसी बातों के लिए औरत को पूछे ही कौन! अब तो जैसा भी है निभाना ही पड़ेगा बहन! यह सब भाग्य की बात है। माँ-बाप ने जिसके पल्ले बाँध दिया, उसे निभाए बिना चारा ही कौन-सा है!"

जग्गू की माँ की बात पर रमिया का मन कड़ुआहट से भर गया। बोली—"निभाने का कोई नियम तो बाप-दादों ने बना नहीं दिया जग्गू की माँ! यह तो मैं ही हूँ कि मरती हूँ, खपती हूँ, फिर भी इस शराबी को सिर-आँखों पर लिए रहती हूँ। दूसरी कोई होती, तो ऐसे की नाक पर सात जूते मारकर बाहर निकल जाती!"

जग्गू की माँ ने आश्चर्य से आँखें फाड़कर घृणा-युक्त स्वर में कहा—"छिः-छिः, यह तू क्या कहती है रमिया! जीते-जी अपने मर्द को छोड़ता भी है कोई? ऐसी बात तो आज तक नहीं सुनी।"

"तो फिर क्या करूँ? इसी तरह लात-जूते खाते-खाते प्राण दे दूँ?"

जग्गू की माँ सिटपिटा गई—"अब तेरी बात का क्या जवाब दूँ रमिया! तू जाने, तेरा काम जाने। चलूँ अब। उनके आने का भी वक्त हो रहा है।' कहकर वह उठ खड़ी हुई। घर से बाहर निकलते हुए वह मन-ही-मन बोली—"बड़ी जबर्दस्त औरत है रमिया। जरूर यह किसी दिन घर से निकल भागेगी। अपना क्या! जिसकी जैसी करनी, उसकी वैसी भरनी!"

जग्गू की माँ के जाने के बाद रमिया ज़मीन पर बिछी हुई चटाई पर पट पड़ गई। आज घर में खाने को कुछ भी न था। जो थोड़े से पैसे उसने बचा रखे थे, उन्हें भी रामदीन छीनकर ले गया था। मार के डर के मारे उसने सुबह तो खुद न खाकर बचा हुआ आटा रामदीन के लिए पो दिया था, किन्तु, शाम की समस्या ज्यों-की त्यों मुँह बाए खड़ी थी। क्या करेगी, कहाँ से अनाज लायगी, इसी उधेड़बुन में पड़े-पड़े उसे सहसा झपकी-सी आ गई। न जाने कितनी देर तक वह यों ही पड़ी रही कि कुंडी खटखटाने की आवाज़ सुनकर वह चैतन्य हुई और दूसरे ही क्षण भय के मारे उसकी साँस जैसे रुकने लगी। रात आधी से अधिक व्यतीत हो चुकी थी। खट-

खटाने वाला रामदीन के सिवा दूसरा कोई हो नहीं सकता था। इसका निश्चित अनुमान लगाकर धकधकाते हृदय से किवाड़ खोलकर रमिया सहमी-सी किवाड़ की आड़में खड़ी हो गई।

लम्बे-चौड़े दैत्य-जैसे काले शरीर को लेकर रामदीन घर में घुसा और जूते उतारकर रमिया के ऊपर फेंकता हुआ गुर्राकर बोला—"रोटी रख!"

रमिया का कंठ सूख गया। रामदीन की बड़ी-बड़ी लाल-सुर्ख आँखों की भयानकता और कंठस्वर की भयंकरता ने उसे ऊपर से नीचे तक कँपा दिया। बिना कुछ बोले भयभीत नेत्रों से वह रामदीन की ओर देखती रह गई।

बंडी आदि खोलने में रामदीन को कुछ समय लग गया। इस बीच अवसर पाकर रमिया भीतर की कोठरी में घुस गई और अन्दर से साँकल लगाने ही वाली थी कि बिजली की तरह लपककर रामदीन ने उसे वैसे ही पकड़ लिया, जैसे बिल्ली झपटकर चूहे को अपने पंजे में दबोच लेती है। रमिया को खींचकर रामदीन ने उसे ज़मीन पर पटक दिया और गरजकर कहा—"जा कहाँ रही है हरामजादी! रोटी लाती है या नहीं।"

रामदीन ने इतने होश में आज तक बात कभी नहीं की थी, इस कारण रमिया को यह समझने में देर नहीं लगी कि आज उसे शराब नहीं मिल सकी है। नशे में होता, तो वह उसे सरलता से भुला सकती थी, पर, पूर्ण होश वाले रामदीन को भुलाने लायक बूता उसमें ज़रा भी न था। रमिया समझ गई कि आज उसकी खैर नहीं है, इसलिए बलिदान किए जाने वाले बकरे के समान अन्तिम आर्त स्वर में बोली—"नहीं है!"

रामदीन ने यह नहीं सुनना चाहा कि क्यों नहीं है। किसी की बेबसी पर क्षण भर के लिए भी सोचनेवाला प्राणी वह था ही नहीं। उसे अपना पेट भरने से मतलब था। भरने के लिए कहाँ से आता है और कब आता है, इसे उसने सोचना नहीं चाहा। रमिया की सहज अस्वीकृति से वह तत्काल ही भयंकर होकर बोला—"नहीं है? मैं जानता हूँ क्यों नहीं है। दिन-रात उस वकील के बच्चे के घर में घुसी रहती है। पराए मर्द का इतना ध्यान और घर के मर्द की बात पर कान ही नहीं देती! ठहर तो सही राँड, अभी तेरी खबर लेता हूँ!" इतना कहकर रामदीन उसपर पिल पड़ा और उसने लातों से मार-मार कर रमिया को अधमरा करके डाल दिया। रमिया रोई, गिड़गिड़ाई, उसने भागने का भी प्रयत्न किया, पर, जब किसी भी प्रकार वह रामदीन के पंजे से न बच सकी, तब ज़मीन पर पड़ी-पड़ी मार खाती रही। उस रात उसने जितनी मार खाई, उससे पहले शायद कभी उतनी बुरी तरह वह नहीं पिटी थी।

(२)

सूजा मुँह और नीलों से भरा हुआ शरीर लेकर दूसरे दिन रमिया काम पर गई। जाते ही वह वकील साहब की बड़ी लड़की रमा के सामने पड़ गई। रमिया का विकृत मुख देखकर रमा ने आश्चर्य से पूछा—"तुझे क्या हुआ है रमिया ?"

दुःख में एक तो वैसे ही रुलाई निकल पड़ने को रहती है, उसपर यदि कोई सहानुभूति दिखाने लगे, तो धैर्य का बाँध एकदम ही टूट जाता है। रमिया ने पहले तो हँसकर कुछ कहने का प्रयत्न किया, पर, इसके बदले उसकी आँखों से आँसू टपक पड़े। बाँध एक बार टूट जाने पर पानी बड़ी कठिनता से रुकता है। रमिया पहले तो एकदम रो पड़ी और फिर छिपाने का प्रयत्न करके बोली—'कुछ नहीं बाई साहब !"

रमा ने विश्वास नहीं किया। सबकी दृष्टि बचाकर वह उसे अपने कमरे में ले गई। बहुत आश्वासन के बाद जब रमिया ने रात की सम्पूर्ण घटना रमा को सुनाई, तब मारे क्रोध के रमा का सारा बदन जलने लगा। पुरुष इतना नीच भी हो सकता है, यह उसने नहीं सोचा था। रमा के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि रामदीन का पालनपोषण ऐसे वर्ग विशेष के मध्य में हुआ था, जिसकी कुप्रवत्तियाँ उसकी मज्जा में मिलकर एकाकार हो चुकी थीं। किन्तु, यह उस वर्ग-विशेष का दोष नहीं, दोष अभिजात समझे जाने वाले समाज के सदस्यों का है। श्रमिक वर्ग को अपने से हीन समझने की भावना के कारण हम न तो उसके सुख-दुख ही पर ध्यान दे सके और न उसकी उचित शिक्षा-दीक्षा ही पर। ये उसी जहरीले वातावरण में बढ़ते रहे, पनपते रहे। पौधा उगता है, क्योंकि बीज उसे उगने के लिए बाध्य करता है, किन्तु बिना देखभाल के उसमें सौन्दर्य नहीं आ पाता। किन्तु, उचित देखभाल द्वारा उसे परिवर्तित किया जा सकता है और किया जाता है।

सब-कुछ सुनकर रमा कुछ समय तक चुप बैठी हुई इस घटना पर गंभीरता-पूर्वक सोचती रही। फिर बोली "रो मत रमिया ! दबने वाले को आततायी सदा से दबाता रहा है। तू अब अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ रामदीन के विरुद्ध तनकर खड़ी हो जा। अत्याचार को दबाने के लिए बुद्धि और बल दोनों से काम लेना पड़ेगा। तू जितनी दबेगी, रामदीन तुझे उतना ही अधिक दबाता जायगा। अपने सम्मान की रक्षा के लिए यदि तुझे अब उसे छोड़ भी देना पड़े, तो हिचकना मत। तेरे समाज में तो इसका चलन है भी और आजकल तो बड़े-बड़े समझे जाने वाले लोगों में भी ऐसा होने लगा है। पति-पत्नी की यदि नहीं बनती, तो वे आपस में सम्बन्ध-विच्छेद कर लेते है। कम से कम जीवन-भर की कुढ़न से तो छटकारा मिल जाता है।"

रमिया ने सुना सब, पर, बातें कुछ समझी, कुछ नहीं समझी। आँखें पोंछकर

धीरे से कमरे के बाहर निकल गई। रात की अमानुषिक मार ने उसे सचमुच बहुत विरक्त कर दिया था। बरसों से ये अत्याचार वह इस आशा के साथ धैर्यपूर्वक सहन करती आ रही थी कि शायद रामदीन सुधर जाय, किन्तु, उसकी आरज़ू-मिन्नत, रोना-धोना, कुछ भी रामदीन की सट्टे और शराब की लत न छुड़वा सका। वह बहुत सह चुकी थी। अब उसमें अधिक सहने की शक्ति नहीं रही थी। अत्याचार की पराकाष्ठा ने उसके हृदय में विद्रोह की ज्वाला धधका दी थी। उसने निश्चय कर लिया कि वह अकेली और स्वतन्त्र रहकर जीवन भर घोर परिश्रम करके जीवन निर्वाह करेगी, किन्तु, पति-नामधारी पशु के अत्याचार और अपमान सहन न करेगी।

घर आकर रमिया ने चुपचाप खाना बनाया और रामदीन के सामने रख दिया। रात की भूख का बदला उसने परात का सारा आटा समाप्त करके ही चुकाया। तृप्ति की डकार लेता हुआ वह बोला—"वह पानी का लोटा तो इधर दे रमिया !"

रमिया भरी बैठी ही थी। सहसा कठिन हो गई। वह बोली—'खुद क्यों नहीं ले लेते ?"

रामदीन ने उससे इस प्रत्युत्तर की आशा नहीं की थी। रमिया का यों मुँह चढ़ाकर बोलने का यह प्रथम ही अवसर था। इस कारण पहले तो वह कुछ चकित हो गया, पर, दूसरे ही क्षण मुँह बिगाड़कर बोला—"क्यों, तू दे देगी, तो क्या घिस जायगी ?"

"तुम उठा लोगे, तो तुम्हारे हाथ भी तो नहीं घिसेंगे।"

रामदीन क्रोध से आगबबूला हो गया। बोला—"कुछ होश भी है कि किससे क्या कह रही है ?"

'होश की दवा तुम करो ! मैं कभी बेहोश नहीं हुई, जो तुम्हें इस बात की मुझे याद दिलाने की जरूरत पड़े !"

रामदीन चिल्लाया—"हरामजादी, जानता हूँ; किसके ऊपर तू इतनी उछल रही है। उस वकील के बच्चे का सिर न काट डाला मैंने, तो मेरा नाम रामदीन नहीं। बदज़ात, कमीनी कहीं की। तभी तो सुबह-सुबह उठकर उसके यहां जा पहुँचती है।"

निर्मल चारित्र्य पर यों अन्यायपूर्ण आक्रमण होते देखकर रमिया और भी विद्रोहिणी हो उठी। उसने तीव्र कंठ से कहा—"मुँह सँभाल कर बात करो। वकील साहब देवता हैं। तुम-जैसे लाखों आदमी उनके पैरों की धूल की भी बराबरी नहीं कर सकते। सट्टेबाज शराबी कहीं के ! न कमा सके न खिला सके। तुम-जैसे आदमी तो इस दुनिया का भार बढ़ाने ही को हैं।"

रामदीन ने उछलकर रमिया का गला पकड़ लिया और मारे क्रोध के मुँह से थूक के फुहारे छोड़ता हुआ बोला—"निकल जा मेरे घर से चुड़ैल! घुस जा उस वकील के घर में जाकर। जा अभी चली जा! नहीं गई, तो याद रख इसी गँड़ासे से तेरा सिर काटकर रख दूँगा।"

रमिया ने घुटते हुए स्वर में कहा—"मुझे खुद नहीं रहना है तुम्हारे घर में। क्या किया है तुमने मेरे लिए अब तक! लात, घूँसे और गाली के सिवा एक बार भी कभी पेट-भर खाने को नहीं दिया। कसाई की तरह सदा मेरे प्राण ही लिए हैं तुमने!"

रामदीन ने जोर से धक्का देकर उसे ज़मीन पर गिरा दिया और लात मारकर कहा—"अच्छा बक-बक मत कर! तू इसी वक्त निकल जा मेरे घर से! फिर किसी दिन जो तुझे देखा, तो मूली की तरह कतर कर रख दूँगा।"

रमिया सचमुच उसी समय उसी दशा में घर से बाहर निकल गई, श्रम और सम्मानपूर्ण जीवन की तलाश में।

(३)

जग्गू की माँ ने रामू की दादी से कहा—"मैं तो जानती थी कि वह औरत ऐसे ही लच्छनों की है। उसका चरित्र भी तो ऐसा ही था। भला देखो तो मर्द को छोड़कर चली गई। अरे, कैसा भी था, आखिर था तो अपना आदमी ही। माँ-बाप ने जिसके पल्ले से बाँध दिया, उसे निभाना तो उसका धर्म था।"

रामू की दादी ने उसकी हाँ में हाँ मिलाई और जिस-जिसने यह बात सुनी, उसीने रमिया को कुलक्षिणी की सनद देते हुए कहा—"हाँ जी, वह दिखती भी ऐसी थी। इतना रूप लेकर भला रामदीन जैसा आदमी उसे कैसे भाता?

किन्तु, असलियत क्या थी इसे रमिया ही जानती थी।

कबीर और तुलसी के राम

— आचार्य सद्गुरुशरण अवस्थी —

किसी राष्ट्र की सबसे बड़ी शक्ति उसकी संस्कृति होती है। संस्कृति के अनेक तत्त्व बड़ी व्यापकता के साथ राष्ट्र की चेतना में घुले-मिले रहते हैं। इन तत्त्वों के स्वरूपों की एक गतानुगति होती है, जिसके साथ प्राणी के रागात्मक सम्बन्ध का इतिहास बनता चलता है। युगों से कुछ विभूतियों, कुछ घटनाओं, कुछ परिस्थितियों तथा कुछ रूप-व्यापारों के साथ एक ऐसा लगाव चलता चला आता है कि उसकी एक परम्परा बन जाती है। परम्परा में बुद्धि और हृदय दोनों को प्रभावित और परिष्कृत करने का बड़ा बल रहता है, अतएव, जो गायक, साहित्यकार, कलाकार और प्रचारक अपने उद्गारों और मंतव्यों को व्यापक रूप देना चाहते हैं, वे उसका आश्रय अवश्य लेते हैं।

राम एक ऐसी ही परम्परा हैं। इतिहास के बहुत पहले से यह परम्परा चल रही है। श्रद्धा और भक्ति, आदर और आदर्श, ममत्व और स्नेह, सभी वृत्तियों का आलंबन राम नाम चिरकाल से बना है। वेदांतियों का अद्वैत ब्रह्म, वैष्णवों का वैकुण्ठवासी हरि, भक्तों का भगवान्, साधकों का नाम तत्त्व, लीलागायकों का साकेत-पति दशरथ-पुत्र-सभी की साध का उत्तर यह 'राम' युगों से चला आ रहा है। यही नहीं, वाल्मीकि के दिए हुए राम, संस्कृत कवियों और नाटककारों के हाथों में पड़कर साहित्य की उत्तम कृतियों के नायक बने और इस प्रकार उनकी लीलाओं और क्रीड़ाओं की जानकारी बढ़ी और लोग उधर झुके। वह काव्यात्मक सहानुभूति से ऊपर उठकर जीवन-प्रवाह में मिल गए। अतएव, इस महान् प्रेरक-केन्द्र का प्रयोग करना साधक कबीर और भक्त तुलसीदास के लिए स्वाभाविक था। कबीर ने इस महत्त्व के केवल नाम का उपयोग किया और तुलसी ने व्यक्ति का। नाम की अरूपता ने कबीर की साधना को निर्गुण की ओर भेज दिया और व्यक्ति की लीलाओं ने तुलसीदास को सगुणोपासना और अवतारवाद की ओर मोड़ दिया। अतएव, भजन, सुमिरन और ऊँकार-भक्ति भी चलती रही और दशरथ-पुत्र राम की लीलाओं में रमण और उनका गान भी चलता रहा। मूल दोनों का एक है।

उत्तम कृति जीवन के श्रेय को प्रेय करने वाली अभिव्यक्ति है। भारतीय काव्य-वाङ्मय में लोक-धर्म और लोक कल्याण की व्यावहारिक अवतारणा के साथ साथ आध्यात्मिक निश्रेयस् की भावना भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। ससीम की असीम के लिए रागात्मक द्रवणशीलता, उसके गुणों एवं महत्त्व तथा उसकी विशाल गरिमा के प्रति भक्ति और श्रद्धा, ससीम का असीम बनने का प्रयास, आध्यात्मिक पक्ष का विस्तार है तथा व्यष्टि का समष्टि से नानारूपात्मक सम्पर्क, लीलाओं के आदर्श में परमतत्त्व देखना और दिखाना, संकट का आ पड़ना और संकट-मोचन की योजना, यह सब लोक-धर्म की टीका है। धर्म की इसी पुष्ट भूमि के भीतर कबीर और तुलसी ने राम के विभेदात्मक रूप की अवतारणा की।

विचारक कबीर अद्वैतवादी भी हैं और रामवादी भी और कहीं-कहीं दोनों ही मिल जाते हैं—

'जल में कुम्भ कुम्भ में जल है, बाहर-भीतर पानी,
फूटा कुम्भ, जल जलहि समाना, यह तत कथैं गियानी।"

ब्रह्म के इस एकतत्त्वात्मक रूप की चर्चा करते-करते कर्मों के लिए उसके अछतेपने की भी व्याख्या करने लगते हैं—

"आदौं गगना, अंते गगना, मध्ये गगना भाई।
कहे कबीर करम केहिं लागै, झूठे संक उपाई॥"

और उधर आराधना और साधना-विहीन केवल जिह्वा से राम नाम रटने को फल-विहीन प्रयास कहा है—

"पंडित वाद बदंते झूठा,
राम कह्या दुनिया गति पावैं खांड़ कह्या मुँह मीठा।"

यदि चीनी के नाम ही से मुँह मीठा हो जाय, तो यह भी सम्भव है कि बिना मन में पैठे राम-नाम की रट से किसी को मुक्ति भी मिल जाय।

तुलसी की जैसे नीचे की पंक्तियों में इस भाव का घोर विरोध ज्ञात होता है—

"भाव कुभाव अनख आलसहूँ, राम जपत मंगल दिस दसहूँ।"

परन्तु, गोस्वामीजी का भाव भजन की अटूट लगन से है। भजन में अनन्यभावना चौबीसों घंटे रहना सम्भव नहीं, फिर भी यदि लगन में अटूट भावना है, तो किसी प्रकार और किसी स्थिति में भी निकला हुआ राम-नाम कल्याण ही करेगा।

कबीर ने जहाँ वेदांत को भावना के रूप में अच्छी प्रकार पकड़ लिया है, वहाँ वह रहस्यवादी हो गए हैं। अन्यथा, केवल विचारक ही रह पाए हैं। उनके

'राम' यहाँ 'उदिक' (जल) के रूप में ब्रह्म की प्रतिष्ठा कर रहे हैं। इस रूपक में उनका चमत्कार देखिए—

"काहे री नलिनी तू कुम्हिलानी ?
तेरेहि नाल सरोवर पानी।
जल में उतपति, जल में वास,
जल में नलिनी तार निवास।
न जल तपत न ऊपर आग।
तोरु हेतु कहु कासन लाग।
कहे कबीर जो उदिक समान।
ते नहिं मूए हमारे जान।"

कबीर के राम निराकार, निर्गुण ब्रह्म हैं। अतएव वह कभी मरते नहीं और अद्वैत के कारण जिसका भ्रम दूर हो गया है, वह भी कबीर की भाँति, 'सोऽहम्' हो गया है और मरता नहीं—

"राम मरै तो हम हूँ मरिहैं, राम न मरै हम काहे क मरिहैं।"

कारण सुनिए—

"हम न मरैं मरिहै संसारा, हम कूँ मिल्या जियावन हारा,
अब न मरौं, मरनै, मन माना, तेई मुए जिन राम न जाना।"

यही जियावनहारा राम है।

दाम्पत्य-प्रेम ही से हमारा आत्मा-परमात्मा-प्रेम उन्होंने सामने रखा है—

"दुलहिनी गाओ मंगलचार हमारे घर आए राजा राम भरतार।
तन रति करि मैं मन रति करि हौं, पाँचों तत्त्व बराती।
रामदेव मोहि ब्याहन आए, मैं जोबन मदमाती।
सरिर सरोवर, बेंदी करिहौं ब्रह्मा वेद उचारा।
रामदेव सँग भाँवरि लैहौं, धन-धन भाग हमारा।
सुर तैतीसों, कौतुक आए, मुनिवर सहस अठासी।
कहैं कबीर मोहिं ब्याह चलेहैं, पुरुष एक अविनासी।"

यह "दुलहिनियाँ" आत्माएँ और "राजा राम" परब्रह्म हैं।

"सुरत सुहागिल सुन्दरी" आत्मा, ब्रह्म भरतार के लिए आशा लगाए बैठी हैं और अपने ही में उस अतीन्द्रिय निखिल सत्ता का स्फुलिंग देखकर कह उठती है—

"सखी सोहाग राम मोहि दीन्हा।"

वास्तव में कबीर ने राम का वैज्ञानिक व्युत्पत्ति वाला अर्थ लिया है। 'रमन्ते योगिनो यस्मिन्' अर्थात् राम आत्मा के रमण का आधार है, उसकी भावना-

का आलम्बन है। इसीलिए उनमें रहस्यवाद की भावनात्मक अनुभूति के अतिरिक्त परब्रह्म से तद्रूप लाभार्थ अनेक साधनात्मक सोपान मिलेंगे। त्रिकुटी, कुंडलियाँ, भँवरगुफा, 'सुन्न', महासुन्न इत्यादि की साधना के आख्यान उनमें भरे पड़े हैं। वह साकार पर ध्यान लगाने वाले नहीं हैं। उनके राम के 'मुहमाथा' नहीं है और न 'चार भुजाएँ' हैं। वह पुहुप वास से पातला एक अनूप तत्व है। वह द्वैत भेंट कर अद्वैत की स्थापना करता है—

'तोहि साहब के लागौं साथा, दुइ कुल मेटि के होऊ सनाथा"

तुलसी के राम ही से नहीं, समस्त अवतारी प्रतीकों से उनका राम भिन्न है—

"ना जसरथ कुल अवतारि आवा, ना लंका का राव सतावा,
पृथ्वीरमन दमन नहिं करिया, पैठियाताल बालि नहिं छलिया"

यह तो अवतारवाद का क्रूर विध्वंस है।

"माया" कबीर के राम की दुलहिन है। वह आत्मा दुलहिन से भिन्न है। वह समग्र संसार में अनाचार करती है। भोली आत्माओं को (सरल पुरुषों को) उनके शाश्वत प्रीतम से विलग रखती है और फिर भी लोग उससे चिपके रहते हैं—

"मीठी मीठी माया तजी न जाय"

'हरि बिन झूठे सब व्यवहार' की घोषणा करते हुए कबीर कहते हैं—

'चेतनि देखै रे जग धंधा'
राम नाम का भरम न जाने माया के रसि अंधा।"

और इसी बात को और बिगड़ कर कहते हैं:—

'रमैया की दुलहिन लूटी बाजार'

तुलसीदासजी ने राम की लीला रूप की व्याख्या से अवकाश पाकर 'माया' अथवा 'भ्रम' की चर्चा करते समय 'रामचरितमानस' और 'विनयपत्रिका' दोनों ही में माया के रामप्रिय होने की पुष्टि की है। यही नहीं, कभी-कभी तुलसी के राम तो स्वयं माया का काम करने लगते हैं।—

"उमा, दारुयोषित की नाईं, सबै नचावत राम गोसाईं"

कबीर के 'गोविन्द', 'राम', 'रहीम' अथवा 'मुरारी' सब एक ही अभेद-सत्ता के पृथक् अभिधान मात्र हैं। 'बाह्यार्थो मात्रास्पर्शो' धर्म के बाह्य स्वरूपों से ध्यान हटाकर अन्तर्यामी ब्रह्म का साक्षात्कार करना उनका लक्ष्य है।

तुलसी के राम अधिकतर बाहर हैं:—

"सियाराममय सब जग जानी, करहुँ प्रनाम जोरि जुगपानी।"

यह वाह्यार्थों ही में मिलते हैं:—

“हम लखि हमहि हमार लख हम हमार के बीच
तुलसी अलखहि का लखसि राम नाम जप नीच ।”

वह धर्म के बाह्य प्रतीकों ही में मिलते हैं:—

‘पैज परे प्रह्लादहु के प्रगटे प्रभु पाहन ते न हिये ते ।’

‘न हिये’ कहकर मानो उन्होंने कबीर का उपहास सा किया है । कबीर राम को निरंजन कहते हैं:—

“राम निरंजन न्यारा रे, अंजन सकल पसारा रे—
अंजन वाणी अंजन वेद, अंजन कीया नाना भेद ।”
“अंजन नाचै, अंजन गावै, अंजन भेष अनंत दिखावै ।”

आगे कहते हैं:—

‘अंजन अलख निरंजन सार, यहै चीन्ह नर करहु विचार’ ।

कबीर के राम शुद्ध तात्त्विक ब्रह्म हैं । वह कारण हैं, कार्य नहीं । इस बात को कबीर ने कितने सांकेतिक ढंग से समझाया है:—

“बाँझ का पूत, बाप बिन जाया, बिन पाउँ तरवर चढ़िया ।
अस-बिन पाषर गूज-बिन गुड़िया बिन षंडै संग्राम लड़िया,
बीज-बिन अंकुर, पेड़ बिन तरवर, बिन साषा तरवर फलिया,
रूप-बिन नारी, पुहुप-बिन परिमल, बिन तीरै सर भरिया ।”

कबीर के राम सगुण निर्गुण से परे समग्र विश्व में प्रसरित हैं ।

“खालिक खलक, खलक में खालिक सब घट रह्यो समाई ।”

गोस्वामी तुलसीदास ने जहाँ नाम और राम की सापेक्षिक तुलना की है, वहाँ उनकी नाम-प्रशंसा कबीर के राम के स्वरूप के बहुत निकट आ गई है और दोनों द्रष्टाओं में कोई अन्तर नहीं मालूम होता । इसी प्रकार ‘गुरु’ को गोविन्द से बड़ा बताने वाली कबीर-प्रतिभा ‘राम ते अधिक राम कर दासा’ वाली तुलसी की वाणी के बहुत निकट आ जाती है ।

कबीर की उलटबासियों की दुरूह अभिव्यंजना में अद्वैत के अनेक आनुषंगिक सिद्धान्तों, प्रतिपत्तियों और व्याख्याओं का उलझा और अटपटा स्वरूप मिलेगा। कहीं-कहीं तो “अहं ब्रह्मास्मि” “सोऽहम्” तथा “सर्वात्मवाद” की पद्यात्मक प्रतिष्ठा-मात्र है । फिर भी, उनकी वाणी में अनुभूति का मार्दव और स्पन्दन है, साक्षात्कार-जन्य विश्वास का गर्व है ।

रहस्यवाद के वैदिक स्वरूप की अवतारणा भी कबीर ने अपने पदों में की है । ऋग्वेद की एक ऋचा में “यो नः पिता जनिता यो विधाता” कहकर परमात्मा का स्मरण किया गया है । वेदों में परमात्मा को माता भी कहा है—“त्वं हि नः पिता

वसो त्वं माता शतक्रतो विभूविय'' कबीर ने भी राम को पिता और माता दोनों कहा है ।—

"बाप राम राया अंबहूँ सरन तिहारी "
"हरि जननी मैं बालक तेरा "

निष्कर्षरूप में हम कह सकते हैं कि कबीर की रामोपासना साधना-मूलक व्यष्टि-प्रधान है । लोक-व्यवहार की उज्ज्वलता व्यष्टि की नैतिकता ही से सम्भव है। अतएव, कबीर-पंथ को लोक-बाह्य कहना उचित नहीं । प्रतीकों और अन्योक्तियों में लोक-व्यवहार का पवित्र उल्लेख भी आ गया है । कबीर के राम साधना के सहारे हैं । तुलसीदास के राम मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं । वह सगुण, साकार, दशरथ-कौशिल्या-नंदन, रावण-निहंता, दुष्टदलन कहने वाले श्रीराम हैं । उनका विश्वास है कि:—

"जब जब होइ धर्म की हानी, बाढ़हिं असुर महा अभिमानी।
तबतब धरि प्रभु विविध सरीरा, हरहिं दयानिधि सज्जन पीरा ॥"

तुलसी की इसी अवतार-भावना ने उन्हें रहस्यवादी नहीं होने दिया । आलंबन की महत्ता, उसका चरम विकसित स्वरूप तुलसी के भक्त में दैन्य का प्रादुर्भाव करता है । उन्हें अपने में उपास्य की अपेक्षा जो मानव-सहज दुर्बलता दीख पड़ी है, उसी को उन्होंने कोसा है ।

"सकुचत हौं अति, राम, कृपानिधि, क्यों करि विनय सुनावौं ।
सकल धरम विपरीत करत केहि भाँति नाथ मन भावौं" ॥

संत की नीचे दी हुई वाणी इस उक्ति के कितने निकट पहुँच जाती है—

"का मुख लै बिनती करौं लाज आवत है मोहि ।
तुम देखत अवगुन करौं, कैसे भावौं तोहि ॥"

उपास्य के प्रति अटूट भक्ति और विश्वास के साथ वह कहते हैं:—

"जानकीजीवन की बलि जैहौं ।
"रोकिहौ नयन विलोकत, औरहि सीस ईस ही नैहौं ।"

और भी—

"जरेगी! जीह जो कहौं और को हौं ।
जानकीजीवन जनम-जनम तिहारे ही कौर को हौं" ।

उनके राम 'गरीबनेवाज' और ''सुसाहिब'' हैं । वह पतितपावन हैं । उन्हें अपने यश-विरद की लाज रखनी है । इसी भावना को व्यक्त करते हुए तुलसी कहते हैं—

"आपनो कबहुँ करि जानि हो ।
राम गरीबनिवाज बिरद लाज उर आनि हौ" ।

"तुलसीदास पतितपावन प्रभु यह भरोस जिय आवै ।"

तुलसी के राम विश्व के उत्कर्ष और अपकर्ष में फँसे हुए व्यक्ति के प्रश्रय हैं। वह तो केवल प्रेम के भूखे हैं, और वह कुछ नहीं चाहते । इसीलिए अपनी भक्ति से तुरन्त प्रसन्न हो जाते हैं—

"राम सनेही सौं तैं न सनेह कियो ।
अगम जो अमरनि हूँ सोतनु तोहिं दियो ।
दूरि सो न हितू हेरि हिए ही है ।
छलहिं छाँड़ि सुमिर छोह किए ही है ।"

"एही दरबार है गरब ने सरब हानि लाभ जोग छेम की गरीबी मिसकीनता ।
मोटो दसकंध सो न दूबरो विभीषन सौं बूझि परी रावरे की प्रेम पराधीनता ।"

अन्यत्र कहते हैं—

"देहि सतसंग निज अंग श्री रंग भव भंग कारन सरन सोकहारी ।
संत संसर्ग त्रयवर्ग पर परमपद प्राप निःप्राप्य गति त्वयि प्रसन्ने ।"

तुलसी ने हमें भावनात्मक अधिरोहण का संसार दिया है । राम वहाँ के अधिनायक हैं, सीता वहाँ की अधिनायिका हैं । जहाँ भक्त अपने उद्धार के लिए माता सीता की प्रार्थना करता है:—

"कबहुँक अम्ब अवसर पाई ।
मेरिहु सुधि द्याईवी कछु करुन कथा चलाई ।"

राम के दरबार में भक्त को यह विश्वास है कि वह उसकी 'विनय-पत्रिका' 'सही' कर बाँचेंगी । तुलसी ने राम में विष्णुत्व तथा सीता में मूल प्रकृतित्व, योगमायात्व और परम-शक्तित्व का अध्याहार किया है । राम अपनी माया का आश्रय लेकर अवतार धारण करते हैं । वैसे वह चिदाचिद्विशिष्ट हैं । संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि कबीर के राम घट-घट-अन्तर्यामी, सर्वव्यापक, निर्गुण ब्रह्म हैं, पर, तुलसी के राम "अन्तर्जामिहु ते बड़ बाहरजामी हैं ।"

जीवन-क्रम

— श्री कृष्णानन्दन 'पीयूष' —

बन्धु, सिन्धु तक जाना मुझको,
किन्तु, बूँद यह एक अनोखी मेरे पथ को रोक रही है !

हम, तुम, सब बुद्बुदे दूर विस्तृत समुद्र के,
चेतनता की लहर दूर उठती, गाती है;
मन का सीप अतल में बैठा सोच रहा है—
देखें कौन आज आकर पथ दिखलाती है !
बन्धु, किन्तु, मैं भोला कुछ भी समझ न पाता—
बार-बार क्यों लहर कूल को टोक रही है ?

सृजन जहाँ है, क्या विनाश भी वहाँ नहीं है ?
इन दोनों से भिन्न विश्वगति यहाँ नहीं है।
हम क्षण के जलविन्दु किस तरह प्रीति लगावें ?
तूफ़ानों का राज्य धरा पर कहाँ नहीं है ?
बन्धु, सतह पर कबसे हम-तुम तैर रहे हैं !
मिलने की पीड़ा ही बन अब शोक रही है !

आओ, कर लें आज कहीं हम गाढ़ालिंगन,
मिलन-नाद से गुंजित कर दें सागर-आँगन;
जाने कब हम मिट जावेंगे छोड़ निशानी,
रह पावेंगे नहीं बुद्बुदे ! होंगे पानी !
बन्धु, क्यों न मिटने के पहले तुम्हें पुकारें !
मन की चिर-बाधा अब बन आलोक रही है !

कृषिविकास और मध्यभारत

— श्री श्रीवल्लभ श्रीवास्तव —

जनतंत्रवाद की परिधि में देश का शासन जनता का शासन होता है। जैसा कि स्पष्ट है, भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है अर्थात् देश की अधिकांश जनता की आजीविका का साधन खेती है और इस प्रकार कृषकों की संख्या सर्वाधिक है और बहुमत के इस तथ्य के आधार पर भारत का वर्त्तमान शासन सिद्धान्ततः, इन्हीं बड़ी संख्यावाले किसानों का माना जाना चाहिए। देश के आधारभूत निर्माता, जिनसे भारत का सर्वांगीण वैभव विद्यमान है, किसान ही हैं। उन्हींके कर्मक्षेत्र की व्यापकता और विशेषता समाज के जीवन-स्तर का मापदण्ड बन सकती है। यह माना जा सकता है कि आज के मशीन-युग में प्रगति की प्रत्येक दिशा में बहुत-कुछ हाथ मशीनों और विज्ञान का है, जो एक हद तक कृषि-सम्वर्द्धन में भी सहायक हुआ है, किन्तु, देश की प्रगति के मेरुदण्ड के निर्माण का श्रेय तो खेती ही को है। भारत राष्ट्र के सर्वांगीण विकास की दृष्टि से उस विकास के मूलाधार कृषि की उन्नति की दिशा में किए जाने वाले प्रत्येक छोटे या बड़े प्रयास को प्रत्येक समाजसेवक तथा विचारक को प्रोत्साहनप्रद सहानुभूति की दृष्टि से देखना चाहिए, अन्यथा, इन अंकुरों के मुरझाने की आशंका है। भारत के प्रत्येक राज्य के ऐसे प्रयत्न जनसेवकों के प्रोत्साहन के पात्र हैं। मध्यभारत भी इस दृष्टि से पिछड़ा हुआ नहीं कहा जा सकता। कृषि के उत्तरोत्तर विकास की दिशा में मध्यभारत-शासन ने भी कुछ विनम्र क़दम उठाए हैं। मध्यभारत के विकास-विभाग ने प्रयोगात्मक दृष्टिकोण रखते हुए राज्य के कृषि-विभाग को सम्बद्ध सचिवालय में समाविष्ट कर नव-निर्माण एवं नवीन, संशोधित तथा जागरूक कार्य-प्रणाली के चयन का प्रयत्न किया है। यहाँ उसपर एक परिचयात्मक दृष्टि डालना अनुपयुक्त न होगा। सेवाओं के एकीकरण और प्रशासकीय पुनर्गठन के सम्बन्ध में विभाग का अन्तिम ढाँचा तथा इसके अन्तर्गत पदों का वेतनमान स्वीकृत हो चुका है, जिसके मुख्य अंग निम्न प्रकार हैं।

(१) कृषि से सम्बद्ध विभाग, जैसे कृषि-विभाग, कृषि-उत्पादन-विभाग, भू-संरक्षण-विभाग आदि का समन्वय;

(२) पौध-संरक्षण, भूमि-संरक्षण, स्टेट-ट्रैक्टर-यूनिट्स आदि विभाग, जिनका आरम्भ अस्थायी रूप से हुआ है और जो स्थायी रूप में अवतरित होते जाते हैं, उनको स्थायी रूप देना;

(३) प्रचलित कार्यालय-कृषि-विभाग का सचिवालय, कृषि-विभाग-संचालक का कार्यालय, कृषि-उत्पादन-आयुक्त-कार्यालय, भू-सुधार-आयुक्त-कार्यालयों की सचिवालय में समाविष्टि;

(४) कालोनाइज़ेशन-(चक्र-निर्माण-व्यवस्था)-विभाग को कृषि-विभाग में पुनः सम्मिलित कर उसके पुनर्गठन के पश्चात् उसे 'भू-विकास-विभाग' के नाम से उद्बोधित करना ।

विभाग के कार्य की दृष्टि से मध्यभारत को दो खण्डों तथा ११ ज़िलों में विभक्त किया गया हैः—

(क) उत्तरी खण्ड	(ख) दक्षिणी खण्ड
(१) गिर्द (ग्वालियर),	(१) उज्जैन,
(२) मुरैना,	(२) इन्दौर,
(३) शिवपुरी,	(३) धार,
(४) गुना,	(४) रतलाम,
(५) शाजापुर,	(५) मन्दसौर,
	(६) निमाड़ ।

कृषि-सम्बन्धी शिक्षा तथा अनुसन्धान-कार्य, कृषि-महाविद्यालय के प्राचार्य के नियन्त्रण में रखा गया है, जिन्हें विभाग का संयुक्त-संचालक भी माना गया है ।

गन्ना, कपास, बाग़वानी आदि की महत्त्वपूर्ण फ़सलों के लिए तथा पौधों के संरक्षण, एग्रीकल्चर इंजीनियरिंग आदि तथा भूमि-संरक्षण की विशेष योजनाओं के हेतु विशेष शाखाओं के निर्माण का आयोजन किया गया है ।

इस प्रकार इस नवनिर्मित विभाग की स्थापना से शासन यह आशा करता है कि अभी तक की कार्यप्रणाली के अनुसार सचिवालय और विभागाध्यक्ष के बीच औपचारिक-विधि में जो विलम्ब हो जाया करता था, उसका शमन होगा तथा कृषि-विशेषज्ञ अधिकारियों का इस भारवाही कार्यालयीन औपचारिक-विधि का काम भी कम हो जायगा, जिसके फलस्वरूप उन्हें अपने निर्दिष्ट कार्य, जिसके वे विशेषज्ञ हैं, की ओर ध्यान केन्द्रित करने के लिए समय मिल सकेगा । इस ढाँचे में ज़िले के अकाउन्ट्स् (हिसाब) की जाँच, आँकड़े एकत्र करना तथा उनकी तुलना करने के कार्य का भी आयोजन है ।

शासन ने कृषि-उद्धार और उसके संरक्षण के लिए जन-जीवन की सुरक्षा की

भाँति कुछ उपयुक्त नियमों एवं विधानों का भी निर्माण किया है। मध्यभारत-विधान-सभा के गत सितम्बर अधिवेशन (सत्र) में भूमि-सुधार-आलेख तथा "'मध्यभारत-कृषि-नाशक कीट, रोग तथा 'खरपतवार' उन्मूलन विधेयक" प्रस्तुत किए गए, जो स्वीकृत हो चुके हैं। प्रथम आलेख भू-संरक्षण तथा भू-सुधार से सम्बद्ध है, जो बहुत कुछ अन्य राज्यों में प्रचलित विधानों पर आधारित है। दूसरा आलेख कृषि-विभाग के अधिकारियों को कृषि-नाशक कीटाणुओं, रोगों एवं 'खरपतवार' आदि को विस्तृत रूप से नष्ट करने के अधिकार प्रदान करता है।

एक आलेख, जिसके अनुसार शकर के कारख़ानों में गन्ना पहुँचाने का आयोजन प्रस्तावित किया गया है, विधान-सभा के आगामी सत्र में प्रस्तुत किए जाने के लिए तैयार किया जा रहा है।

कृषि-सम्बन्धी विकास-योजनाओं की प्रगति एवं कार्यान्विति की दिशा में विकास-सचिवालय ने निम्न-लिखित क़दम उठाने का यत्न किया है:—

(१) **भू-सुधार तथा भू-विकास**—केन्द्रीय ट्रेक्टर-संगठन-योजना द्वारा १९५४ में जनवरी से जून तक ७४ हज़ार एकड़ भूमि काँस-विहीन की गई। इसके अतिरिक्त २८ हज़ार एकड़ भूमि शासकीय तथा अशासकीय ट्रैक्टरों द्वारा और सुधारी गई। ६५ हजार एकड़ भूमि की जुताई हलों तथा अन्य नवीनतम उपलब्ध साधनों द्वारा की गई। १५ हज़ार एकड़ भूमि को बन्धियाँ डालकर 'क्षरण' से बचाया गया।

शासन ने आवश्यकतानुसार किसानों को कुछ ऋण और कुछ आर्थिक सहायता, भूमि को क्षरण से बचाने के लिए देना भी स्वीकृत किया है।

भूमि-संरक्षण के लिए राज्य में भूमि-संरक्षण-परिषद् की भी स्थापना की गई है। कृषकों की अभिरुचि इस ओर हो सके और वे अपने खातों की भूमि के कटाव को रोक सकें, इसके लिए उन्हें शासन द्वारा कुछ ऋण दिया जाना स्वीकृत हुआ है तथा कुल लागत का २५ प्रतिशत तक सहायता के रूप में देना भी स्वीकृत हुआ है।

(२) **सिंचाई-योजना**—भारतीय कृषि-पद्धति ही नहीं, वरन्, संसार की समस्त कृषि-व्यवस्था मूलतः इसी योजना पर क्रियमान है, जिसकी सक्रियता के प्रमाण आज प्रतिदिन के वैज्ञानिक अन्वेषण हैं। इस दिशा में राज्य ने निम्न रूप में सहयोग देने का यत्न किया है:—

(क) कुओं के लिए—३२ लाख रु० की धनराशि ऋण के रूप में तथा ३ लाख रुपए आर्थिक सहायता।

(ख) तालाबों के लिए--६ लाख रु० की धनराशि ऋण के रूप में।

(ग) पम्पों के लिए--९ लाख ८५ हज़ार की धनराशि ऋण के रूप में।

(३) सुधरे हुए बीज, रासायनिक एवं अन्य प्रकार के खादों का वितरण—

१९५४ के अक्टूबर मास के अन्त तक निम्नलिखित वितरण विभिन्न स्थानों पर उत्पन्न होने वाली फ़सलों के लिए निम्न-लिखित मात्रा में हुआ—

धान —१४४ मन,
गेहूँ —१३४१ मन,
चना —१९० मन,
ज्वार—१६० मन,
आलू—३२६२७ मन,

खाद--

रासायनिक खाद —१८११ टन,
हरी खाद – १८६ टन,
खली की खाद – ५३७ टन,
शहरी कम्पोस्ट खाद – २९७६१ टन,
ग्रामीण कम्पोस्ट खाद – ८२११३ टन।

इसी हेतु कृषकों के लिए ऋण-रूप में ३० लाख रु० की धनराशि के लगभग और स्वीकृत हुई है। दो रुपया प्रतिमन के मान से बीज पर तथा कुछ रासायनिक पदार्थों पर २५ प्रतिशत के मान से राज्य से आर्थिक सहायता देने का आयोजन है।

(४) **सामान्य फ़सलों के अतिरिक्त विशेष फ़सलें**—इस दिशा में केन्द्र द्वारा चलाई गई कपास-प्रसार-योजना प्रगति पर समझी जा रही है। अब राज्य में कपास का उत्पादन लगभग १६ लाख एकड़ भूमि के क्षेत्र में होता है। कपास-सुधार के लिए राज्य में एक 'राजकीय-कपास-समिति' का निर्माण किया गया है, जिसमें शासकीय, अशासकीय कपास-उत्पादक एवं व्यापारी सदस्य हैं।

गन्ना-शोधन-कार्य के लिए दो केन्द्र खोले जा रहे हैं, जो शासकीय व्यवस्था में चलाए जावेंगे। इस कार्य के लिए शासन से

५ लाख रु०' की धनराशि "संयुक्त-गन्ना-उत्पादन एवं साख-सहकारी-समिति, सारंगपुर" को ऋण के रूप में दी गई है।

(५) **बाग़वानी**—कृषि से सम्बद्ध यह कार्य भी मानवीय वेशभूषा एवं साज-शृंगार की भाँति इस क्षेत्र में अपना अनिर्वचनीय स्थान रखता है। इसका सांस्कृतिक महत्त्व भी है। प्रकृति का यह अंग उतना ही उपयोगी है, जितना आज वनों का संरक्षण एवं परिपालन। जीवन की हरियाली से इसका अधिक सामीप्य है। इस क्षेत्र में राज्य में १९५४ में एक योजना प्रचलित की गई है, जिसके अन्तर्गत पौधघर का आयोजन है और पौधों का वितरण अल्प मूल्य पर किया जाता है। कार्य-सम्पादनार्थ मध्यभारत-राज्य में ६ केन्द्र भी स्थापित किए गए हैं। आगामी वर्ष इस कार्य को गति देने के हेतु विभाग द्वारा ६ और नए केन्द्र स्थापित किए जाने का आयोजन किया जा रहा है।

कृषि-शिक्षा तथा कृषि-अनुसन्धान की भी व्यवस्था की गई है। मध्यभारत-कृषि-महाविद्यालय, ग्वालियर से ४ स्नातक कृषिशास्त्र और उसकी विशेषताओं की विस्तृत एवं तत्सम्बन्धी उच्चस्तरीय शिक्षाप्राप्ति के हेतु भेजे गए हैं।

राज्य में निम्न-लिखित शोध-योजनाएँ कार्य कर रही हैं—

(१) दाल-सुधार-योजना।
(२) बड़े रेशे वाली कपास की विकास-योजना।
(३) धान-सुधार-योजना।
(४) देशी यन्त्रों की जाँच-पड़ताल की योजना।
(५) निमाड़-कपास-सुधार-योजना।
(६) गन्ने की फ़सल की कटाई की योजना।

राज्य में निम्न-लिखित योजनाओं का निर्माण भी हो रहा है—

(१) **बीज-संरक्षण-योजना**—बीज को सुरक्षित रखने की व्यवस्था के सम्बन्ध में राज्य में बीज-भण्डारों की स्थापना की योजना है। ऐसे आदर्श-भण्डारों का निर्माण जब हो जायगा, तब वह कृषकों की तत्सम्बन्धी एक भारी कमी की पूर्ति करेगा और समय पर बीज उपलब्ध होने में उन्हें सुविधा का भास होगा।

(२) **कृषक-संतति-प्रशिक्षणालय**—इस योजना के अन्तर्गत राज्य में एक कृषि-पाठशाला (एग्रीकल्चर स्कूल) खोली जावेगी, जिसमें राज्य के किसानों के लड़के कृषि-सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त करके अपना कृषि-कर्म सुव्यवस्थित ढंग से करने में समर्थ हो सकेंगे। भाग्य भरोसे खेती होने-

की संभावना का इस प्रकार काफ़ी परिष्कार होने की आशा की जा सकती है।

(३) **माली प्रशिक्षण योजना**—राज्य में मालियों को उचित एवं व्यवस्थित प्रशिक्षण दिए जाने की योजना बनाकर इस दिशा में उल्लेखनीय क़दम उठाया है। इस प्रकार के प्रशिक्षण की देश में आवश्यकता है, जिससे इस भाँति के कार्य योजनाबद्ध हो सकें और उनका प्रतिफल भी सार्थक हो।

देखना है कि ये आयोजन कृषि-विकास की दिशा में जनता के लिए किस हद तक उपयोगी सिद्ध होते हैं।

'भारती' पर सम्मतियाँ

प्रिंसिपल सद्गुरुशरण अवस्थी, कानपुर—

'भारती' अत्यन्त सुन्दर मासिकपत्रिका है। मैं इसे निरन्तर ध्यान से पढ़ता हूँ। ऐसी उत्तम और सुरुचिपूर्ण पत्रिकाएँ हिन्दी में बहुत कम हैं।

श्री 'नीरज', कानपुर—

'भारती' का अन्तरंग और बहिरंग सभी कुछ सुन्दर है। शुरू ही से प्रथम श्रेणी की पत्रिका जैसी लगी। मुझे विश्वास है कि आपके सुयोग्य संपादकत्व में वह शीघ्र ही हिन्दी के मासिक-पत्रों में अपना शीर्षस्थान बना लेगी। इस सफल आयोजन के लिए मेरी हार्दिक बधाई।

श्री कैलाश 'कल्पित', प्रयाग—

आपकी सुन्दर पत्रिका 'भारती' सचमुच उन्नति की ओर है।

श्री शेखर, संपादक, मासिक 'प्रवाह', अकोला (म० प्र०)—

आपके संपादन से पत्रिका के अन्तर्-वाह्य दोनों स्वरूपों में एक मौलिक सौन्दर्य की सृष्टि हुई है। आपके तप से प्रभावित होकर माँ भारती ने जिस सूने प्रदेश में अपनी वीणा के मधुर स्वर भरने की कृपा की है, उसे आप ही जैसे कर्मठ निःस्वार्थ साधकों की आवश्यकता है। आपका प्रयास अभिनंदनीय है।

श्री राजेन्द्रकिशोर, एम० ए०, रिसर्च-स्कॉलर, बेगूसराय (बिहार)—

'भारती' मुझे बहुत पसंद आई। हिन्दी में पत्रिकाएँ तो बहुत हैं, मगर, 'भारती' में एक नवीनता है। 'भारती' गुटबंदी से दूर है। सभी विचारों, सिद्धान्तों और वर्गों के लेखक और कवि 'भारती' में रचनाएँ भेजते हैं। 'भारती' दीर्घजीवी हो और युग की भारती बने।

श्री राजेन्द्रलाल गुप्त, बिलासपुर (म० प्र०)—

'भारती' की सभी सामग्री सुन्दर और रोचक लगी। रचनाएँ ओजपूर्ण और पठनीय हैं। सफ़ाई और छपाई आकर्षक और नयनाभिराम है।

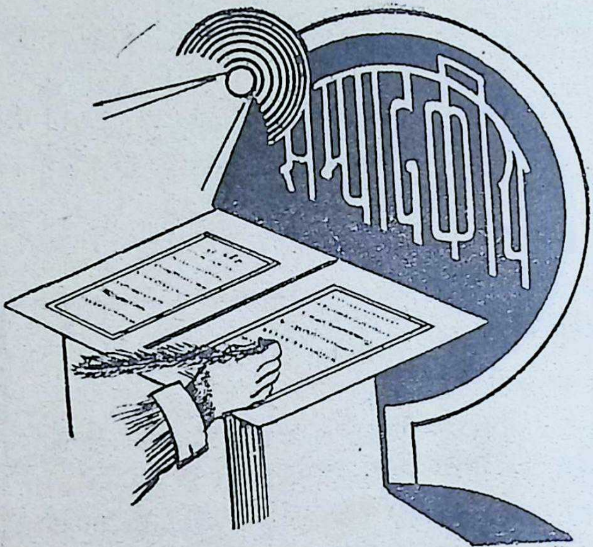

शासकीय साहित्यिक पुरस्कारों का प्रश्न

उत्तर प्रदेश-राज्य के शासन ने कुछ वर्षों से हिन्दी ग्रन्थों के लेखकों को पुरस्कृत करने का उपक्रम कर रखा है। धीरे-धीरे उसके पुरस्कारों की धनराशि लगभग एक लाख रुपया वार्षिक की ओर प्रगति करने लगी थी और आशा होने लगी थी कि उससे हिन्दी में अच्छे ग्रन्थों के निर्माण को कुछ प्रोत्साहन मिलेगा। इधर कुछ दिनों से उस प्रगति में कुछ गतिरोध-सा नज़र आने लगा था, किन्तु, अब डॉ० सम्पूर्णानन्द जैसे साहित्यिक व्यक्ति के उत्तरप्रदेश के मुख्य मंत्री बन जाने से पुनः आशा होने लगी है कि इन पुरस्कारों की व्यवस्था में और भी सुधार होगा। उत्तरप्रदेश संसार के अनेक उन्नत राज्यों से बड़ा राज्य है और कोई कारण नहीं है कि केन्द्र की हिन्दी सम्बन्धी अपेक्षाकृत कम प्रगतिशील नीति का उसपर प्रतिकूल प्रभाव पड़े।

उत्तरप्रदेश राज्य शासन के लिए यह कोई कठिन काम नहीं कि वह प्रारम्भिक क़दम के रूप में कम से कम एक लाख रुपयों की धनराशि प्रति वर्ष हिन्दी के उत्कृष्ट मौलिक ग्रन्थों के रचयिताओं को बिना शर्त तथा बिना प्रतिबन्ध सम्मान स्वरूप देने का प्रबन्ध करे। उसे इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि दो हज़ार रुपयों से कम के पुरस्कार का उत्कृष्ट लेखकों के सम्मान या प्रोत्साहन की दृष्टि से आज की परिस्थिति में कोई महत्त्व नहीं हो सकता। आज स्थिति ऐसी है कि जो मौलिक ग्रन्थ जितना ही अधिक उत्कृष्ट होता है, उसके लिए प्रकाशक मिलने की उतनी ही कम सम्भावना होती है। आज जब देश में समाजवादी व्यवस्था की स्थापना की आवाज़

चारों ओर से सुनाई देने लगी है, तब यह आवश्यक प्रतीत होता है कि श्रेष्ठ कोटि के स्वाभिमानी लेखकों को प्रकाशकों के शोषण अथवा उपेक्षा से बचाने के काम में विभिन्न राज्यों के शासन उचित सहयोग करें। उत्तरप्रदेश-शासन को इस दिशा में उचित पहल करनी चाहिए, क्योंकि उत्तरप्रदेश सबसे बड़ा राज्य है, जिसकी जनता की मातृभाषा राष्ट्रभाषा हिन्दी है। इस नाते उसका सर्वाधिक दायित्व भी है। उत्तरप्रदेश शासन यदि प्रतिवर्ष दो-दो हज़ार रुपयों के पचास पुरस्कार हस्तलिखित तथा मुद्रित ग्रन्थों पर दे और पुरस्कारों की निर्णायक-समिति में निर्विवाद रूप से निष्पक्ष समझे जा सकने वाले उच्चकोटि के मर्मज्ञ विद्वानों ही को रखे, तो कुछ ही वर्षों में हिन्दी में उत्कृष्ट कोटि के मौलिक ग्रन्थों की वह कमी बहुत-कुछ दूर हो सकती है, जिसकी ओर हिन्दी को राष्ट्रभाषा पद दिए जाने के विरोधी लोग आज भी कभी-कभी उँगली उठाने का साहस करते हैं।

यदि बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान, मध्यभारत, विंध्यप्रदेश आदि अन्य हिन्दी-प्रधान राज्य भी मौलिक उत्कृष्ट ग्रन्थों पर अप्रतिबन्ध पुरस्कार देने के लिए प्रतिवर्ष कम से कम एक-एक लाख रुपयों की धनराशि स्वीकार करें, तो इस अभावपूर्ति की गति और भी द्रुत हो सकती है।

पुरस्कार देने के लिए यह सर्वप्रथम आवश्यक होना चाहिए कि ग्रन्थकार की लेखनी पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध लगाने का यत्न न किया जाय। अप्रकाशित ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियों पर भी पुरस्कार दिए जाने चाहिए और प्रत्येक पुरस्कृत ग्रन्थ की कम से कम एक हज़ार प्रतियाँ प्रत्येक राज्य को ख़रीदनी चाहिए।

इससे स्वतन्त्र लेखकों को स्वावलम्बी बनाने का एक अच्छा उपक्रम हो सकेगा। अछूते तथा महत्त्वपूर्ण विषयों पर उच्चकोटि के मौलिक ग्रन्थों का निर्माण भी हो सकेगा, प्रकाशक न मिलने पर भी पुरस्कारों की धनराशियों से लेखक अपने ग्रन्थ स्वयं प्रकाशित कर सकेंगे और पुरस्कृत ग्रन्थों की कम से कम एक-एक हज़ार प्रतियों के क्रय की गारंटी राज्यों की ओर से प्राप्त होने के कारण उनकी प्रारम्भिक खपत की ओर से भी लेखक निश्चिन्त हो सकेंगे।

स्वतंत्र लेखकों को वास्तव में प्रोत्साहन मिले, यदि पुरस्कार देने में उनके विचार-स्वातंत्र्य की पूर्णतया रक्षा की जाय, पुरस्कार केवल योग्यता के आधार ही पर मिलें, उनका स्वरूप सहायता या दान का न होकर बिना-शर्त तथा अप्रतिबन्ध सम्मान का हो और उनपर राज्यशासन के कृपापात्र लेखकों ही का एकाधिकार न समझा जाकर सबके साथ समान न्याय किया जाय।

खेद है कि अभी तक इस दिशा में उत्तरप्रदेश-शासन के एक छोटे-से प्रयत्न के अतिरिक्त किसी अन्य राज्य द्वारा कोई उल्लेखनीय प्रयत्न नहीं किया जा रहा है

और केन्द्रीय शासन द्वारा किया जा रहा प्रयत्न तो उसकी प्रतिष्ठा को देखते हुए उपहासास्पद रूप में लघु है ।

पराड़करजी का देहान्त तथा हिन्दी पत्रकारिता

पत्रकारप्रवर श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर के देहान्त के साथ हिन्दी पत्रकारिता के एक महत्त्वपूर्ण युग का सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि उठ गया । बहुसंख्यक हिन्दी पाठकों के साथ हम भी उनके इस वियोग पर स्वभावतः अत्यन्त दुखी हैं और उनकी स्मृति में अपनी श्रद्धांजलियाँ सादर अर्पित करते हैं ।

आज हिन्दी पत्रकारिता के सम्मुख अनेक समस्याएँ हैं, जिनके समाधान के लिए स्वाधीनचेता पत्रकारों को विशेष साहस का परिचय देने की आवश्यकता है । उस साहस के लिए दिवंगत पराड़करजी बहुत बड़ी जीवित प्रेरक शक्ति थे ।

आज वह नहीं हैं । पर क्या सचमुच वह नहीं हैं ? पत्रकारों की दिन-प्रतिदिन की समस्याओं के समाधान के लिए उनका प्रत्यक्ष परामर्श मिलना अब भले ही बन्द हो गया हो, किन्तु आदर्शों का वह उज्ज्वल ज्योतिःपुंज आज भी प्रज्ज्वलित है, जिसे उन्होंने अपने सारे जीवन, यौवन और सर्वस्व की समिधाएँ अर्पित कर-करके जाग्रत रखा था ।

आज देश के समस्त ऐसे राजनीतिक दल, जो शान्ति और लोकतन्त्र पर विश्वास रखते हैं, देश में समाजवादी व्यवस्था स्थापित करने के लक्ष्य के सम्बन्ध में एकमत हो गए हैं, भले ही उनमें से प्रत्येक की समाजवाद की व्याख्या भिन्न हो । अन्ततोगत्वा समस्त दलों को समाजवाद की वही व्याख्या स्वीकार करनी पड़ेगी, जिसे जनता स्वीकार करेगी और उस समाजवाद की स्थापना की दिशा में होने वाली प्रगति की गति की न्यूनाधिकता के आधार ही पर अब विभिन्न राजनीतिक दल सार्वजनिक निर्वाचनों में असफल या सफल हुआ करेंगे । ऐसी स्थिति में लोकमत के निष्पक्ष शिक्षण तथा स्पष्ट निर्माण का सत्याश्रित कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य है, जो आज के पत्रकारों के सामने है और पत्रकारों के इस कर्त्तव्यभालन पर काफ़ी सीमा तक भारत के समाजवादी जनतंत्र की सफलता निर्भर है । चूँकि हिन्दी इस देश की जनता के बहुत बड़े भाग की भाषा है, इसलिए, हिन्दी भाषा के पत्रकारों का दायित्व इस सम्वन्ध में बहुत अधिक है ।

हमारा विश्वास है कि यदि हिन्दी का प्रत्येक पत्रकार पराड़करजी की ईमानदारी, आदर्शवादिता तथा सिद्धान्तप्रियता को अपनी जीवमज्योति बना ले, तो उसे सत्याश्रित लोकमत के निर्माण के साहसपूर्ण काम में काफ़ी सफलता मिल सकेगी ।

किन्तु, पराड़करजी का जीवनादर्श अपनाना आसान नहीं है । किसी हद तक उनका आदर्श भारत के उन प्राचीन ऋषियों का आदर्श रहा है, जो शासनमोह,

संस्थामोह और ख्यातिमोह से सर्वथा मुक्त रहते हुए समाज, शासक, जनता आदि को निस्स्वार्थ भाव से तथा साहसपूर्वक प्रभावित और प्रेरित करते रहते थे।

पराड़करजी में जो क्षमता और प्रतिभा थी, वह उन्हें, चाहने पर, काफ़ी उच्चपदस्थ राजपुरुष अथवा राजनीतिक नेता का पद दिला सकती थी, किन्तु, धन अथवा ख्याति का लोभ छोड़कर उन्होंने अपने जीवन के लगभग पूरे पचास वर्ष पत्रकारिता ही के तपस्यापूर्ण कार्य में लगा दिए।

यह कहना पूर्ण सत्य नहीं है कि यदि स्वर्गीय शिवप्रसाद गुप्त-जैसा संचालक पराड़करजी को न मिलता, तो वह अपना कर्त्तव्यपालन ही न कर पाते। उन्होंने दैनिक 'आज' के अतिरिक्त अन्य पत्रों में भी कार्य किया था और जहाँ कहीं कार्य किया, अपने सिद्धान्तों और अपनी आत्मा की ध्वनि के अनुसार ही पूरी तेजस्विता के साथ कार्य किया। उन्होंने कभी असत्य और अन्याय के साथ कोई समझौता करने का यत्न नहीं किया। किन्तु, इसमें कोई संदेह नहीं कि स्वर्गीय शिवप्रसाद गुप्त-जैसा उदार पत्र-संचालक पाकर पराड़करजी की इस तेजस्विता ने कुछ सुविधा अवश्य पाई। स्वर्गीय शिवप्रसाद गुप्त तथा उनके दौहित्र श्री सत्येन्द्रकुमार गुप्त धन्यवाद के पात्र हैं कि उन्होंने पराड़कर जी को पूरी स्वतन्त्रता दी।

यद्यपि पराड़करजी का आदर्श आज भी हिन्दी के पत्रकारों के सामने है, तथापि, उनकी आज की परिस्थितियाँ काफ़ी विभिन्न हैं। किन्तु, पराड़करजी के आदर्श की अन्तरात्मा तो यही है कि प्रत्येक पत्रकार को अपने युग की परिस्थितियों के अनुरूप ईमानदारी से अपना कर्त्तव्यपालन करना चाहिए।

पत्रकारों के मन में यह साध जाग्रत होना अस्वाभाविक नहीं है कि वे पत्रकारिता के क्षेत्र के अपने इस महान् नेता के उपयुक्त स्मारक का निर्माण करें।

स्वर्गीय पराड़करजी के उपयुक्त स्मारक तो यही होगा कि उनके आदर्शों के अनुरूप आचरण कर सकने योग्य परिस्थितियों का निर्माण करने के लिए पत्रकार अपना संगठन सुदृढ़ बनावें।

समाजवाद की स्थापना की घोषणाओं के इस युग में स्वभावतः व्यक्तिगत पत्र-संचालन का भविष्य उज्ज्वल नहीं समझा जा सकता। यह संस्था सम्भवतः बहुत दीर्घजीवी न हो सकेगी। यदि शासन समस्त पत्रों का संचालन अपने हाथ में ले ले, तो विचारों के बद्धीकरण (रेजिमेंटेशन) की स्थिति पैदा हो जायगी और शासन अपने ही द्वारा संचालित पत्रों के द्वारा अपनी आलोचना सहन न कर सकेगा। स्वतंत्र, निर्भीक, ईमानदार, स्वस्थ तथा निष्पक्ष आलोचना के अभाव में जनतन्त्र का गतिरोध अवश्यंभावी है। पत्र-पत्रिकाओं का संचालन राजनीतिक दलों या गुटों के हाथों में आ जाने पर भी पत्रकारों का विचारस्वातंत्र्य ख़तरे में पड़ सकता है। ऐसी स्थिति-

में उदार पत्र-संचालकों के आगे आकर पत्रकारों को पूर्ण स्वतन्त्रता देने के पुराने तथा दिन पर दिन दुर्लभ होते जा रहे तरीक़े की प्रतीक्षा में रुके न रहकर पत्रकारों को स्वयं अभिनव प्रयत्न करना पड़ेगा ।

जनतन्त्र के इस युग में जब जनता अपने बड़े-बड़े संगठन बनाकर सहकारिता के आधार पर बड़े-बड़े कार्य चला सकती है, तब जनता का पथ-प्रदर्शन कर सकने वाले पत्रकार स्वयं क्यों नहीं ऐसा कर सकते ?

अब समय आ गया है कि इस देश के पत्रकार व्यापक रूप में पराड़कर जी-जैसे पत्रकारों से प्रेरणा लेकर अपनी अजेय ईमानदारी, सचाई और आदर्शनिष्ठा को उनका पुण्यस्मारक बनावें और अपनी सत्यनिष्ठा को पत्रकारिता के क्षेत्र में अबाध क्रियाशील बनाने के लिए अपने सहकारी-संघ बनाकर उनके द्वारा सामयिक पत्रों का संचालन भी स्वयं ही करें । शासनमोह तथा संस्थामोह से मुक्त सुयोग्य पत्रकारों ही को उनका नीति-संचालन सौंपा जाय ।

जब अप्रत्यक्ष रूप से जनता तथा शासन से धन ले-लेकर व्यक्तिगतव्यवसायी पत्रों के स्वामी और संचालक बन सकते हैं, तब स्वाधीनचेता पत्रकार क्यों नहीं बिना-शर्त तथा बिना-प्रतिबन्ध जनता तथा शासन से प्रत्यक्ष रूप में धन लेकर अपने सहकारी पत्र-संचालन-संघों का निर्माण करें और उनके द्वारा निष्पक्ष तथा निर्भीक भाव से सत्य और जनता की सेवा करें । यदि जनता और शासन इस दिशा में अपना कर्त्तव्य-पालन न करे, तो उनकी डटकर आलोचना की जाय । आशा है, प्रयत्न करने पर अवश्य सफलता मिल सकेगी । ऐसे स्वतन्त्र सामयिक पत्र तथा ऐसे निर्भीक पत्रकार ही पराड़करजी के जीते-जागते तथा उपयुक्त स्मारक हो सकेंगे और वे अपनी सत्यनिष्ठा द्वारा उनकी स्मृति को पीढ़ी-दर-पीढ़ी क़ायम रख सकेंगे ।

प्रो० रंजन का देहावसान

श्री रघुराजसिंह, जिन्हें हिन्दी के पाठकों ने सदा प्रो० रंजन ही के नाम से जाना, सहसा पक्षाघात से पीड़ित होकर चल बसे । उनकी इस असामयिक तथा आकस्मिक मृत्यु से हिन्दी समझने वाली जनता पर भारी आघात हुआ है ।

भारत की क्रान्तिचेष्टा में उन्होंने सक्रिय भाग लिया था । वह बहुत दिनों तक कारागार में तथा अज्ञातवास में रहे थे । उनकी अध्ययनशीलता और परिश्रमशीलता ग्रंथकारों के लिए आदर्श बन सकती है । उन्होंने राजनीतिक आन्दोलनों, शिक्षा-संस्थाओं तथा सामयिकपत्रों के कामों में भाग लेते हुए भी काफ़ी ग्रंथ लिखे थे और बहुत-से स्थानों का भ्रमण किया था । एक साहित्यकार तथा पत्रकार होने के साथ-साथ वह एक अच्छे मानव भी थे और यह उनकी एक विशेष उल्लेखनीय विशेषता थी । शारीरिक श्रम का भी उन्हें बहुत शौक़ था और खेती के भी अनेक प्रयोग उन्होंने किए थे ।

वह एक अच्छे मित्र भी थे। उनके मित्र उन्हें कभी न भूल सकेंगे।

'भारती' पर तो उन्होंने प्रारम्भ ही से अत्यन्त स्नेह प्रकट किया था और उसमें नियमित रूप से लिखते रहने की कृपा की थी।

हम उनकी इस दुःखद मृत्यु पर उनके परिचितों, मित्रों, परिवार के सदस्यों तथा उनके बहुसंख्यक पाठकों के साथ अपनी हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं तथा उनकी स्मृति में अपनी साश्रु श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं।

यदि प्रो० रंजन अधिक जीवित रहते, तो वह न जाने कितने और महत्त्वपूर्ण ग्रंथों से हिन्दी भाषा का भाण्डार भरते ! पर, यह न होना था !

मुख्यमन्त्रियों का साहस

बम्बईराज्य के मुख्यमन्त्री श्री मोरारजी देसाई की मातृ-भाषा गुजराती है। उनके राज्य की शासकीय भाषा भी हिन्दी नहीं है। फिर भी, उन्होंने हिन्दी के राष्ट्रभाषापद की न्याय्यता को स्वीकार करते हुए हाल में काँग्रेस-अधिवेशन के स्थल सत्यमूर्तिनगर में विधान-मण्डल के काँग्रेसी सदस्यों की एक सभा में भाषण देते हुए कहा कि हिन्दी न जाननेवाला व्यक्ति किसी विधान-मण्डल में जाने के योग्य नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि लगभग छह वर्ष पूर्व हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार कर लिया गया है। फिर भी, यदि लोग अभी तक हिन्दी सीखने का यत्न नहीं करते, तो यह बड़े दुःख की बात है।

ऐसे ही स्पष्ट सत्यकथन का साहस यदि अन्य ऐसे उच्चपदस्थ व्यक्ति भी करते रहें, जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है, तो, हिन्दी को विधान द्वारा प्राप्त अधिकार व्यवहार में भी मिल जाय, क्योंकि हिन्दीभाषियों की अपेक्षा अन्यभाषाभाषियों द्वारा हिन्दी का समर्थन किए जाने पर उसे अधिक नैतिक बल प्राप्त होता है।

ऐसा ही एक साहस हाल में उत्तरप्रदेश के मुख्यमन्त्री डा० सम्पूर्णानन्दजी ने प्रकट किया। लखनऊ में होने वाले बंगसाहित्यसम्मेलन में वह एक निमन्त्रित अतिथि के रूप में सम्मिलित हुए थे। ऐसे अवसरों पर सत्यकथन तो प्रायः कम होता है, परस्परप्रशंसा अधिक हुआ करती है। डा० सम्पूर्णानन्दजी को यह अच्छी तरह ज्ञात होगा कि बँगला-भाषाभाषियों को न केवल अपनी भाषा पर, बल्कि, अपनी लिपि पर भी बहुत अभिमान है। फिर भी, उन्होंने उक्त अवसर पर भाषण देते हुए सत्यकथन का साहस प्रकट किया। उन्होंने कहा कि यदि बँगला तथा अन्य भारतीय भाषाओं द्वारा नागरी लिपि ग्रहण करली जाय, तो भारतीय भाषाएँ परस्पर काफ़ी निकट आ जा सकती हैं और देश की एक महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक समस्या का काफ़ी हद तक समाधान हो सकता है।

हम उक्त दोनों मुख्यमन्त्रियों के इस साहस को प्रशंसनीय समझते हैं।

नागरी-तारव्यवस्था

डाक तथा तार-विभाग ने हाल में घोषित किया है कि नागरी-लिपि में दिए जाने वाले तारों को अधिक से अधिक मितव्ययी बनाने का यत्न किया गया है। मात्राओं को अलग अक्षर नहीं माना जाता। दस अक्षरों तक का शब्द एक ही शब्द माना जाता है। दस अक्षरों तक के संपूर्ण क्रियापद को एक शब्द माना जाता है। विभक्ति को अलग शब्द नहीं माना जाता। प्रधानमंत्री, प्रधानसंपादक, सहायकसंपादक-जैसे दस अक्षरों तक के सामासिक शब्दों को एक ही शब्द गिना जाता है। नागरी लिपि में तार भेजने की व्यवस्था ६३२ तारघरों में है। नागरी तारव्यवस्था सन् १९४९ से चल रही है।

इतनी सुविधाएँ दिए जाने तथा इतने वर्षों से चालू होने पर भी नागरी तार-व्यवस्था क्यों लोकप्रिय नहीं हो रही है, यह एक प्रश्न है।

सोचने पर इस प्रश्न का उत्तर जानने में देर न लगेगी।

इस बात को यथोचित रूप में स्पष्ट नहीं किया गया है कि नागरी-तार-प्रणाली न केवल हिन्दी, बल्कि, बँगला, तमिल, मराठी, गुजराती, तेलुगू आदि समस्त भारतीय भाषाओं के लिए समान रूप से उपयोगी हो सकती है।

इस बात की पूर्ण रूप से व्यवस्था नहीं की गई है कि नागरी तार भी रोमन लिपि में दिए जाने वाले तार की भाँति ही शीघ्रता से पहुँच जाय। उदाहरणार्थ, रोमन लिपि के तार लेने के काम के घंटे जितने निर्धारित किए जाते हैं, उतने घंटे नागरीलिपि के तार लेने के लिए निर्धारित नहीं किए जाते।

रोमन की भाँति ही नागरी लिपि के तार भी देश के प्रत्येक तारघर में समान रूप से लिए जाने की व्यवस्था नहीं है, इससे नागरी-तार देने वाला पूर्णतया आश्वस्त नहीं रह पाता। उसे यह शंका रहती है कि उसके अभीष्ट तारघर में ऐसी व्यवस्था है या नहीं।

केन्द्रीय तथा राज्यों के शासन तथा देश के बड़े-बड़े नेता स्वयं रोमन के बदले नागरी-लिपि की तार-व्यवस्था का दृढ़तापूर्वक उपयोग नहीं करते, अतः, उनकी प्रेरणा का जनता पर यह प्रभाव नहीं पड़ पाता कि वह रोमन के बदले नागरी तार व्यवस्था का व्यवहार करे।

आज़ादी प्राप्त करने के लिए तो हजारों प्राणों की आहुतियाँ देना उचित समझा गया, किन्तु, स्वतंत्र भारत में राष्ट्रीय स्वाभिमान की रक्षा के लिए ऐसे मामलों में थोड़ी आर्थिक सुविधा देने में भी संकोच किया जा रहा है। नागरी तार का न्यूनतम शुल्क भी रोमन तार के समान ही रखा गया है। यदि नागरी तार का न्यूनतम शुल्क बारह आने के बदले दस आने कर दिया जाय, तो थोड़े ही समय में नागरी तारों की संख्या बहुत बढ़ जाय। — ज० प्र० मि०

हिन्दचीन व स्याम की यात्रा सम्बन्धी
श्रेष्ठ पठनीय ग्रन्थ

~हमारे पड़ौसी देश~

लेखक
प्रो० रंजन एम० ए०

विषय-सूची

स्याम की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि
बैंकाक के तैरते बाजार
स्याम की कला और रंगमंच
स्याम के ग्राम और ग्रामीण
शिक्षा-व्यवस्था और उद्योग धन्धे
स्याम का महिला समाज
जहां भारत की प्राचीनता बोलती है
कला और सौंदर्य का संगम—चांगमाई
थाई लैण्ड के बच्चे
भिक्षुओं के देश में
स्याम के भारतीय
थाई समाज की एक झलक
स्यामी साहित्य
खमेर राजाओं के देश में
कम्बोडिआ की राजधानी—नामपेन में

अनेक चित्र, सुन्दर छपाई, आकर्षिक जिल्द
मूल्य ४) रुपए डाक व्यय प्रथक
प्रकाशक—विद्यामंदिर प्रकाशन, सराफा, ग्वालियर

× हिन्दी साहित्य में युगान्तर—
× भारतीय जन-जीवन में नई दिशा—
× काम सम्बन्धी सम्वाद एवम् साहित्य—
× काम तथा मनोविज्ञान सम्बन्धी खोज—

एक प्रति ।=) ❀ **मस्ती** ❀ वार्षिक ४)

सम्पादक—नरेन्द्र धीर

—यदि आप ग्राहक नहीं बने हैं तो आज ही ४) भेज कर वार्षिक ग्राहक बनें।
—यदि आपने विज्ञापन इसमें नहीं दिया है तो आज ही विज्ञापन भेजदें।
—यदि आपने एजेन्सी नहीं ली है, तो आज ही एजेन्सी लेलें।

आज ही लिखिए—व्यवस्थापक "मस्ती" खन्ना (पू० पंजाब)

हिन्दी का स्वतंत्र मासिक

नया समाज

संचालक : नया समाज ट्रस्ट * सम्पादक : मोहनसिंह सेंगर

वार्षिक चन्दा ८) : एक प्रति ।।।) : विदेशों में १२) वार्षिक

आप यदि ग्राहक नहीं हैं, तो आज ही बन जाइये। यदि हैं, तो अपने इष्टमित्रों को भी बनाइये। यदि किसी कारण आप ग्राहक नहीं बन सकते, तो चेष्टा कीजिये कि 'नया समाज' आपके पड़ोस के पुस्तकालय में अवश्य मँगाया जाय।

आज ही नमूने के लिए लिखियेः—
व्यवस्थापक, 'नया समाज', ३३. नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता-१

धनवान बनाने वाली पुस्तकें

चित्रकारी पेन्टिंग शिक्षा २।।), धनवान बनने के गुप्त रहस्य २।।), सिलाई कटाई शिक्षा २।।), इलेक्ट्रिक रेडियो गाइड २।।), मोटर ड्राइविंग गाइड ४), मोटर मेकेनिक गाइड ४), घड़ी मरम्मत शिक्षा ३।।), सायकल रिपेयरिंग शिक्षा ३), हर प्रकार के साबुन बनाना २।।), हर प्रकार के सुगंधित इत्र तेल बनाना २।।), ताश का जादू २।।), मेस्मेरेजम (मोहनी) विद्या २।।), प्रत्येक पुस्तक पर डा० खर्च ।।।) अलग.

हिन्दुस्थान ट्रेडर्स एन्ड पबलिशर्स लि०
भरतपुर (राजस्थान)

भारतीय पत्र पत्रिकाएँ तथा विज्ञापनदाता १९५५

भारतीय पत्र-पत्रिकायें तथा विज्ञापनदाता १९५५ पांच हजार, भारतीय, लंका, अफ्रीका, ईराक, मलाया, सिंगापुर के पत्र-पत्रिकाओं के पूरे पते, प्रकाशन संख्या तथा विज्ञापन दर सहित, प्रेस सम्बन्धी पूरी जानकारी, प्रमुख नेताओं के लेख विज्ञापनकर्ता एजेन्सियों तथा बड़े फर्मों के पते सहित, ६०० पृष्ठ मूल्य ६) मनीआर्डर से।

हिन्दुस्थान विज्ञापन मन्दिर, मथुरा

—अपनी उन्नति के लिए पढ़िए—

जीवन संघर्ष में विद्यार्थियों तथा समस्त अन्य व्यक्तियों को सहायता देने के लिए हिन्दी में अपने प्रकार की पहली

मासिक-पत्रिका

सफल जीवन

(६४, बेयर्ड रोड, नई देहली)

मुख्य विषय—

(१) आगामी परीक्षाएं, (२) नवयुवकों और नवयुवतियों को मिल सकने वाली सरकारी और प्राइवेट नौकरियां, (३) रत्न, भूषण. प्रभाकर और साहित्यरत्न परीक्षाओं के लिए साहित्यिक लेख, (४) कहानी–कविता, (५) ज्ञान-विज्ञान, (६) देश, विदेश के समाचार, (७) खेल और सिनेमा।

आज ही ग्राहक बनिए

चन्दा:—वार्षिक ७), छ:माही ४), एक प्रति ।।।)

नमूने की प्रति के लिए १२ आने के टिकट भेजें।

सफल जीवन पुस्तकमाला अमूल्य निधि है। अवश्य पढ़िए।

पुस्तकालय-सन्देश का विशाल विशेषांक

अपने चौथे वर्ष के प्रथम अंक के रूप में

प्रकाशन मास मई—१९५५, मूल्य केवल १।।), पष्ठ संख्या–२००

३१ मार्च १९५५ के पूर्व तक ३) भेजकर वार्षिक ग्राहक बनने वालों को यह विशेषांक मुफ्त मिलेगा।

सम्पादक—श्री कृष्ण खण्डेलवाल

इस विशेषांक के प्रधान सलाहकार होंगे

विश्वविख्यात पुस्तकालय-विज्ञान के विद्वान् डा० शि० रा० रंगनाथन्

यह विशेषांक—

पुस्कालय साहित्य की अनुपम एवं दुर्लभ कृति होगा।

पुस्तकालय-कार्यकर्त्ताओं का पथ-प्रदर्शक होगा।

विश्वपुस्तकालय-आन्दोलन का वर्त्तमान रूप बतलावेगा।

अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, रूस, चीन आदि देशों ने पुस्तकालय के क्षेत्र में क्या प्रगति की है, इसके सम्बन्ध में विस्तृत विवरण देगा।

अभी ही अपनी प्रति सुरक्षित कराने के लिए १।।) भेजिए

अथवा ३) भेजकर ग्राहक बनिए

पता—पुस्तकालय-सन्देश [मासिक]

पो० पटना विश्वविद्यालय, पटना–५

दि गिर्द डिस्ट्रिक्ट को-ऑपरेटिव्ह बैंक लि० लश्कर

स्थापित सन् १९१८

शाखायें—डबरा, भांडेर, उपशाखायें—मुरार, भितरवार.

१. अधिकृत पूंजी	२,००,००० रुपया
२. स्वीकृत पूंजी	१,४०,००० रुपया
३. रक्षित कोष	७४,४०० रुपया
४. अन्य कोष	१,१०,६०० रुपया

५. फिक्स्ड करेन्ट तथा सेविंग अकाउन्ट खाते खोले जाते हैं। डिपाजिटस पर सूद दर निम्न प्रकार है। एक वर्ष से अधिक की फिक्स्ड डिपाजिट पर छै मासिक सूद दिया जाता है।

फिक्स्ड

६ माह	२।।।) प्रतिशत	वार्षिक
१ वर्ष	३) प्रतिशत	,,
२ वर्ष	३।) प्रतिशत	,,
३ वर्ष	३।।) प्रतिशत	,,
सेविंग	२।।) प्रतिशत	,,

६. त्रय-वर्षीय नगद पत्र ९) रु० में १०) रु० का मिलता है।

७. बैंक बहुत मामूली कमीशन पर अपनी शाखाओं पर ड्राफ्ट इश्यू करता है।

८. यह बैंक अनियमित जोखमदारी की ग्रामीण सहकारीं समितियों में रुपया इन्व्हेस्ट करता है। इसलिए इन्व्हेस्टमेन्ट सुरक्षित व बेखतरे है। बैंक के अकाउन्टस का हर साल शासन से एप्रूव्हड आडीटर्स द्वारा आडिट होता है।

कृपया बैंक से सम्बन्ध स्थापित कीजिये।

रामनाथ शर्मा

रामकृष्ण दीक्षित
व्हाइस चैयरमेन

दक्षिण-भारती

(दक्षिण-भारत की सचित्र मासिक पत्रिका)

आप अभी तक इसके ग्राहक न बने तो शीघ्र ही ग्राहक बनें। इसे कल पर छोड़ना एक भूल होगी।

वार्षिक चन्दा ६)
प्रति अंक ।।)

दक्षिण-भारती कार्यालय
अफजलगंज, हैदराबाद (दक्षिण)

तार : हिन्दी
फोन नं० ५४५०

अजन्ता

: मासिक :

प्रकाशक : हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद दक्षिण

मूल्य : ६-०-० आ. मु. वार्षिक

किसी भी मास से ग्राहक बना जा सकता है।

कुछ विशेषताएँ

१. उच्च कोटि का साहित्य
२. सुन्दर और स्वच्छ छपाई
३. कलापूर्ण चित्र

संपादक
श्री वंशीधर विद्यालंकार
श्री श्रीराम शर्मा

कुछ सम्मतियाँ

१. "अजन्ता का अपना व्यक्तित्व है"—श्री बनारसीदास चतुर्वेदी
२. "अजन्ता सुंदर और स्वच्छ पत्रिका है"—श्री दिनकर जी
३. "अजन्ता साहित्य का नया कल्पवृक्ष है"—श्री वासुदेवशरण अग्रवाल
४. "अजन्ता हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिकाओं में से एक है।"
श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी

वार्षिक
६)

राष्ट्रभारती

एक प्रति
॥=)

—:सम्पादक:—

मोहनलाल भट्ट
हृषीकेश शर्मा

(१) यह हिंदी पत्रिकाओं में संबसे अधिक सस्ती, एक सुन्दर साहित्यिक और सांस्कृतिक मासिक पत्रिका है। (२) इस पत्रिका को राष्ट्र-भाषा हिन्दी के तथा लगभग सभी भारतीय साहित्य और संस्कृति को बल व प्रेरणा पहुंचाने वाले प्रान्तीय भाषाओं के श्रेष्ठ लेख, विद्वान साहित्यकारों का सहयोग प्राप्त है। (३) इसमें ज्ञानपोषक और मनोरंजक श्रेष्ठ लेख, कविताएँ, कहानियाँ, एकांकी नाटक, रेखाचित्र और शब्दचित्र रहते हैं। (४) बंगला, मराठी, गुजराती आदि भारतीय भाषाओं के सुन्दर हिन्दी अनुवाद भी इसमें रहते हैं। (५) प्रतिमास पहली तारीख को प्रकाशित होती है।

ग्राहक बना देने वालों को विशेष सुविधा। एजेंसी तथा विज्ञान दर के लिए लिखिये।

"राष्ट्रभारती" हिन्दीनगर, वर्धा [मध्य-प्रदेश]

पश्चिमोत्तर भारत की प्रमुख हिन्दी मासिक पत्रिका

विश्व ज्योति

—:सम्पादक:—

श्री विश्वबन्धु शास्त्री, श्री सन्तराम, बी ए०

संचालक—श्री विश्वेश्वरानन्द

विश्व-हित की साधना के लिए—

(क) शुद्ध सांस्कृतिक साहित्य का सृजन,
(ख) प्राचीन और नवीन ज्ञान-विज्ञान का समन्वय,
(ग) बौद्धिक क्रान्ति और नई चेतना का जागरण,
(घ) अन्यायपूर्ण सामाजिक विषमताओं का दूरीकरण,
(ङ) सभी प्रकार के विचारों का निष्पक्ष अध्ययन और आलोचन।

वार्षिक चन्दा: ८) रुपये

१०) रु० वार्षिक चन्दा देकर विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान के सदस्य बन जाने पर भेंट के रूप में मुफ्त।

पत्र-व्यवहार का पता:—
व्यवस्थापक 'विश्वज्योति', साधु आश्रम
होश्यारपुर (पंजाब)

याद रखिए पत्रिका के लिए—
१. एक निश्चित उद्देश्य चाहिए !
२. उसका अपना व्यक्तित्व चाहिए !

नई धारा

ऐसी ही एक मासिक पत्रिका है जो अशोक प्रेस, पटना से प्रकाशित हो रही है।

कहानियाँ, कविताएँ, शब्द चित्र, संस्मरण, नाटक, आलोचना, निबन्ध।

हिन्दी में नई धारा के प्रतीक श्री रामवृक्ष बेनीपुरी इसका सम्पादन कर रहे हैं।

प्रादेशिक सरकारों के शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत।

जिसकी सहायता के लिए साहित्य महारथियों का सम्पादक मंडल संगठित किया गया है।

डिमाई अठपेजी के १०० पृष्ठ, पक्की जिल्द, आकर्षक कवर, सचित्र, सुसज्जित।

एक अंक १ रु० **वार्षिक १० रु०**

प्रबन्धक नई धारा, अशोक प्रेस, पटना ६

एकमात्र सचित्र पारिवारिक मासिक पत्रिका

आ र सी

जिसमें

कहानी, कविता, लेख, आदि अनेक सुरुचिपूर्ण साहित्यिक स्तम्भों के साथ।

बुनाई, कढ़ाई, सिलाई और पाक पर प्रतिमास सचित्र लेख।

अन्यान्य स्थायी स्तम्भ

मां और शिशुः डाक्टर के पत्रः पुरुष लोकः बालमंदिरः पुस्तक परिचयः चलचित्र जगतः शब्दार्थ और व्याख्या। हिन्दी की प्रमुख वर्ग पहेलियों पर टिप्पणियां।

इतनी उपादेय सामग्री के साथ भी मूल्य केवल ४ रु० वार्षिक।

नोटः—वार्षिक ग्राहक को प्रतिमास एक कढ़ाई ट्रान्सफर मुफ्त भेजा जाता है।

आरसी' अपने स्थानीय एजेण्ट से मांगिए या छै आने के टिकिट भेजकर हमसे नमूना प्राप्त करिए।

व्यवस्थापक (आरसी)
स्वरूपनगर, कानपुर,

जिस साहित्य का जीवन से सम्बन्ध नहीं, वह निरर्थक है।
जो साहित्य मानव-जाति की सेवा की प्रेरणा नहीं देता,
वह निष्प्रयोजनीय है। और

जो साहित्य बुद्धि-भेद उत्पन्न करता है, वह अनिष्टकारी है।

जीवन साहित्य

में जीवन, मानव-जाति की सेवा की प्रेरणा और एकनिष्ट बुद्धि से
अपने मार्ग पर चलने का बल मिलेगा।

एक प्रति अवश्य देखने की कृपा कीजिये।

वार्षिक मूल्य ४)　　एक प्रति ।=)

सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली।

विद्यामंदिर प्रकाशन
की नवीन भेंट
लेखक—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी

मानसिंह और मानकुतूहल—भारत के सांस्कृतिक इतिहास के एक अज्ञात परिच्छेद का प्रथम प्रकाशन। भारतीय संगीत, हिंदी साहित्य तथा कलाओं के विकास पर नवीन शोध।
मध्यभारत कला परिषद द्वारा प्रथम पुरस्कार प्राप्त पुस्तक
मूल्य ५)　डाक व्यय १)

त्रिपुरी—भारत के तीन प्राचीन स्थल, विदिशा, पद्मावती तथा बाघ पर अत्यन्त सुन्दर तथा प्रामाणिक ग्रंथ। मूल्य २)

(यह दोनों पुस्तकें मध्यभारत शिक्षा-विभाग द्वारा राज्य की शिक्षा संस्थाओं के पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत हैं)

प्रबन्धक—विद्यामंदिर प्रकाशन, सराफा, ग्वालियर

कल्पना का कला अंक

इसकी विशेषताएँ—

卐इस अंक में प्रकाशित होने वाले प्रायः सभी रंगीन तथा इकरंगे चित्र अबतक अप्रकाशित रहे हैं।

卐भारत के सर्वश्रेष्ठ ब्लॉक मेकर्स द्वारा तैयार किये गये रंगीन तथा सादे ब्लॉकों की आर्ट पेपर पर भारत में उपलब्ध सर्वश्रेष्ठ छपाई की व्यवस्था इस अंक के लिये की गई है।

इस अंक में ३० रंगीन तथा १०० इकरंगे चित्र रहेंगे।

卐अधिकारी विद्वानों द्वारा लिखे गये निबन्धों की २०० पृष्ठों की पाठ्य सामग्री इस अंक में रहेगी।

卐इसका आकार साधारण अंकों के आकार से बड़ा होगा।

विशेष विवरण के लिये लिखें।

शाखा कार्यालय,
२० हमाम स्ट्रीट, फोर्ट,
बम्बई

व्यवस्थापक
कल्पना मासिक
८३१ बेगम बाजार,
हैदराबाद

स्मृतिदायक ~ केशवर्धक ~ सुगन्धयुक्त

दिनारा
ब्राह्मी आँवला तैल

DINARA BRAHMI ANWLA HAIROIL

JUDICIOUSLY MEDICATED HAIR & BRAIN TONIC WITH De Luxe PERFUME

तिल तैल
भृंगराज
आंवला
ब्राह्मी
अगर
चंदन
कपूर
इलायची
उशीर
केशर
जायपत्री
पुष्करमूल
आदि से निर्मित

आमलकीब्राह्मीभृंगपद्मकागुरुचन्दनैः ।
एलाशैलेयकर्पूरोशीरजातीसुमादिभिः ॥

विधिनापाचयेत्तैलं शटीपुष्करकेशरैः ।
दिव्यगंधहितंमेध्यंशान्तिदंकेशवर्धनम् ॥

दिनारा आरोग्य भवन, ग्वालियर, म. भा.

DINARA AROGYA BHAVAN, GWALIOR, M. B.

सर्वत्र मिलता है

२० औंस शीशी	३ रु० ९ आ०	५ औंस	१ रु० १ आ०
१० औंस	२ रु० १ आ०	१॥ औंस	५ आ०–६ पा०

से अधिक न दें

पुस्तकालयों तथा अध्ययन कक्षों के लिए अनिवार्य—

भारतीय सांस्कृतिक इतिहास का महान् ग्रंथ

भारत की मूर्तिकला

★

लेखक

श्री हरिहरनिवास द्विवेदी

प्राग् ऐतिहासिक काल से वर्तमान काल तक भारतीय मूर्तिकला के विकास का अत्यन्त प्रामाणिक साथ ही सरल और हृदयग्राही शैली में लिखा गया इतिहास। हिन्दी के लिए यह ग्रन्थ अपूर्व देन है।

अत्यन्त सुन्दर छपाई, मनोहर जिल्द, १०० से अधिक आर्टपेपर पर छपे चित्र।

मूल्य ५) रुपया । डाक व्यय पृथक्

आज ही ऑर्डर दें

प्रबन्धक

विद्या मंदिर प्रकाशन, सराफा, ग्वालियर

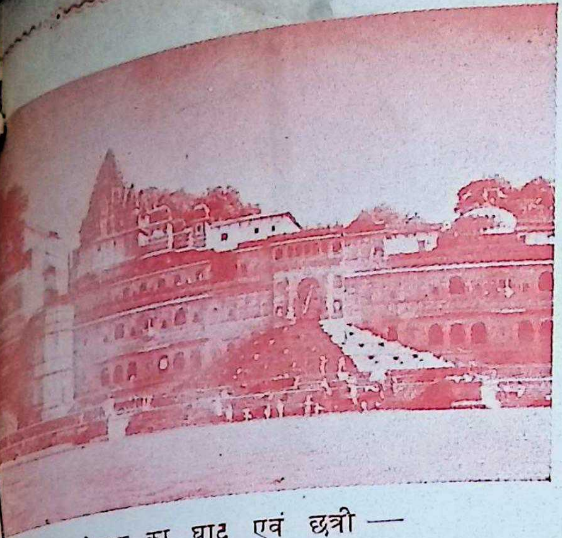

— महेश्वर का घाट एवं छत्री —

'नगर सुन्दर एक महेश्वर'

— कै. राजकवि भा. रा. तांबे

कै. राजकवि भा. रा० तांबे द्वारा वर्णित देवी अहिल्याबाई का

महेश्वर

भ्रमण के लिये सुन्दर स्थान है

उसी प्रकार

महेश्वर की

लुगड़ी

साड़ियां

एवं

खन

का भारतीय महिलाओं के जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है

मंदिर में दर्शनीय स्थापत्य-कला का एक सुन्दर नमूना

गृह उद्योगों को प्रोत्साहन दीजिये

— सहस्रधारा (नर्मदा) —

— सूचना विभाग, मध्यभारत शासन द्वारा प्रकाशित —

Dinara Drakshasav

दिनारा द्राक्षासव

उत्तम काली द्राक्षा से निर्मित नवीन रक्त, बल एवं स्फूर्ति प्रद मधुर पे

दिनारा आरोग्य भवन, ग्वालियर, म.भ

DINARA AROGYA BHAVAN, GWALIOR, M.B

हर जगह मिलता है

श्री भगवानलाल शर्मा द्वारा नवप्रभात प्रेस, ग्वालियर में मुद्रित तथा प्रकाशित।

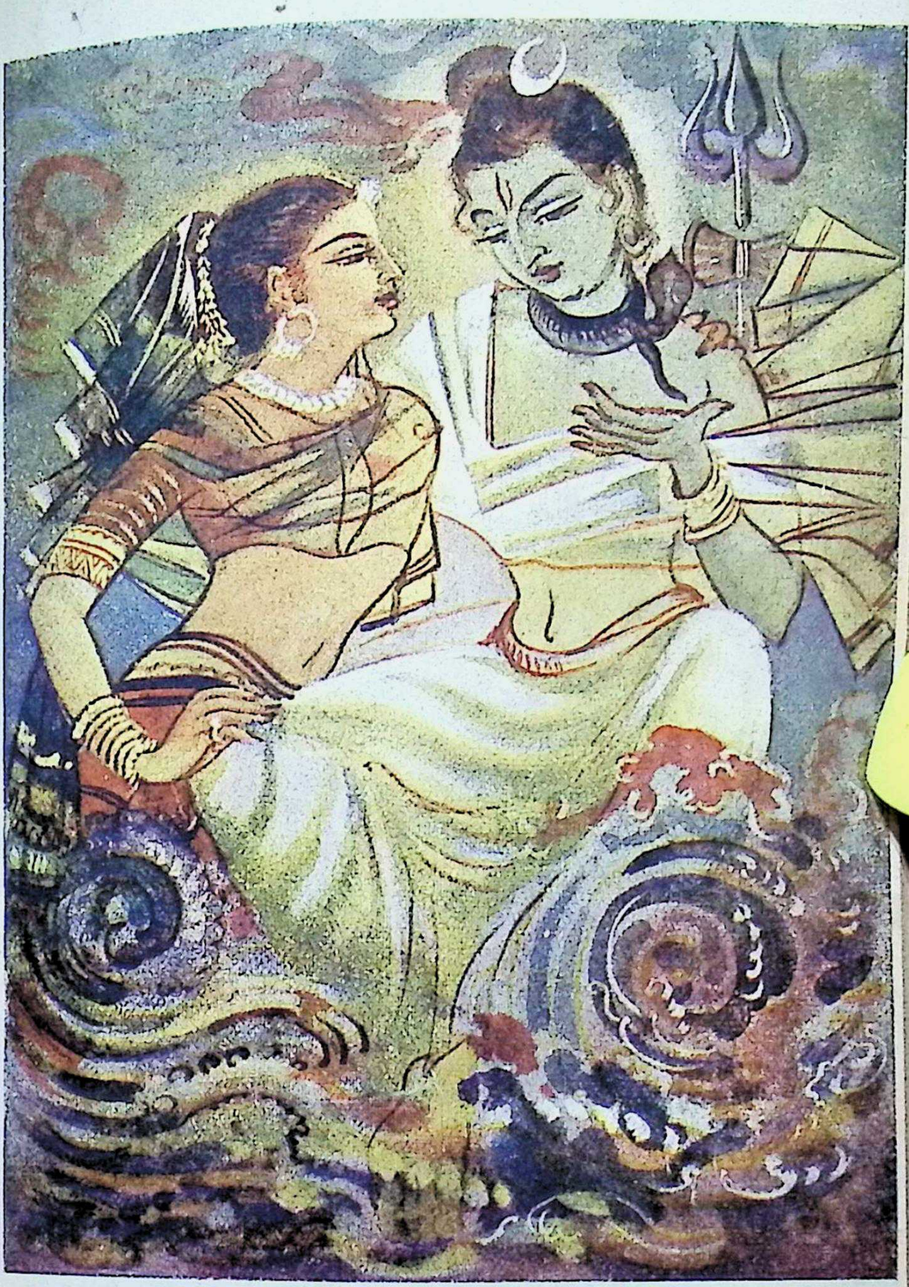

भारती

मार्च १९५५

[illegible] कला की [illegible]

सेहत और ताकत का नुसखा

जे० बी० मंघाराम के

नरिशिंग

बिस्कुट

विटामिनों से पूर्ण

NOURISHING
J.B. MANGHARAM & CO.

J. B. MANGHARAM & CO.
GWALIOR

Agents:--**PRITAM STORES**
JIVAJI CHOWK PATANKAR BAZAR SUBHASH MARKET

मध्यप्रदेश, बम्बई, मध्यभारत तथा अनेक राज्यों की शिक्षासंस्थाओं
एवं पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

भारती

मार्च, १९५५

★

प्रधान-संपादक
हरिहरनिवास द्विवेदी
संपादक
विजय गोविन्द

*

कला-संपादक
भांड-शिल्प-मंदिर
ग्वालियर

*

प्रबन्धक
उदय द्विवेदी

वार्षिक मूल्य ८)
एक अंक का मूल्य ।।।)

भारती-कार्यालय, ग्वालियर

भारती, मार्च १९५५

अनुक्रमणिका

कविता—

१. स्मृति क्रम— श्री सुमित्रानन्दन पंत २०३
२. गीत यदि गा दे— श्री बालकृष्ण राव २१३
३. क्रान्ति— श्री भगवानदास माहौर ... २३५
४. मन की बात बताऊँ— श्री अँचल ... २४४
५. मिट्टी के दीपक— श्री विनोद रस्तोगी २५५
६. गीत— श्री वीरेन्द्र मिश्र २७६
७. मैं निर्झर हूँ — श्री परमेश्वर द्विरेफ ... २८५

कहानी—

१. आनन्द का दुःख— श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी ... २१४
२. और जब बैन्जो टूट गया— श्री शम्भुनाथ सक्सेना ... २२८
३. एक रेखा चित्र— श्री रांगेयराघव ... २४५
४. बोतल— श्रीमती उषादेवी मित्रा ... २५७
५. बड़े नानाजी की बहू— श्री राम जोगलेकर २७८

लेख—

१. हिन्दी का छः शब्द— श्री किशोरीदास वाजपेयी २०५
२. ग्वालियरी हिन्दी का प्राचीनतम ग्रंथ—श्री अगरचन्द्र नाहटा २०८
३. रघुनाथसिंह रंजन— श्री विष्णु प्रभाकर २२०
४. मदरा बजत मेरें सोहरो— श्री शान्तिचन्द्र २३६
५. सागर की पैंदी के कुछ विचित्र शिकारी—श्री ओम्प्रकाश २५१
६. सोवियत भाषाओं में भारतीय साहित्य—श्री ओ० आफानासयेव २८६

गद्य-गीत

१. दो गद्य-गीत— श्री उमानन्दन चतुर्वेदी ... २६५
प्रकाशन-परिचय— ... २८९
संपादकीय— ... २९५

चित्र-सूची

मुखपृष्ठ—कैलाश में वसन्तागम, चित्रकार श्री लक्ष्मण भांड; श्री रघुवीरसिंह रंजन (सपरिवार)।

'भारती'-सम्पादक की प्रार्थनाएँ

कृपया—

१. समस्त रचनाएँ, समालोचनार्थ पुस्तकें, परिवर्तन के सामयिक-पत्र आदि, सम्पादक, 'भारती', सराफ़ा, ग्वालियर के पते पर, पूरे डाक-टिकट लगाकर, भेजें।

२. रचनाएँ सामान्यतः अच्छे कागज़ों पर, एक ही ओर, चारों ओर उचित हाशिया छोड़कर, टाइप की गयी या सुपाठ्य अक्षरों में स्याही से लिखी गई भेजें।

३. केवल वही रचनाएँ भेजें, जो पहले कहीं भी प्रकाशित न हुई हों। 'भारती' में छप चुकने के एक मास बाद रचयिता अपनी रचना चाहे जहाँ छपा सकते हैं।

४. यथासंभव प्रत्येक रचना की प्रतिलिपि अपने पास रख लेने का कष्ट करें। अस्वीकृत रचनाएँ वापस मँगाने के लिए डाक के टिकिट अवश्य भिजवाएँ।

५. चार सप्ताह के अन्दर स्वीकृति की सूचना न मिलने पर यह समझ लें कि रचना 'भारती' में प्रकाशित न हो सकेगी।

६. प्रत्येक रचना के नीचे अपना पूरा नाम और पता स्पष्ट लिखने का कष्ट करें।

७. अनूदित रचना पर उसके अनूदित होने की सूचना लिखें। मूल लेखक की अनुमति लें।

८. समालोचनार्थ पुस्तकों आदि की दो-दो प्रतियाँ भिजवाएँ।

भारती पर पाठकों के अभिमत

* **श्री वंशीधर विद्यालंकार, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, उस्मानिया विश्वविद्यालय, तथा संपादक अजन्ता, हैदराबाद (दक्षिण)—**

—मैं भारती को नियम पूर्वक देख और पढ़ रहा हूँ। पत्रिका बहुत अच्छी है और वह हिन्दी में निश्चित रूप से अपना विशिष्ट स्थान बना लेगी। 'मधुमालती' सम्बन्धी लेख पढ़ा। आपने इसे प्रकाशित कर हिन्दी-जगत् का बड़ा उपकार किया है।

* **श्री शिवगोपाल मिश्र, प्रयाग विश्वविद्यालय, इलाहाबाद—**

—भारती के फरवरी अंक को आद्योपान्त पढ़ गया। 'चतुर्भुजदास की मधुमालती' तथा 'अस्तित्ववाद' नामक लेख अत्यन्त मौलिक तथा हमारे साहित्य के लिए अक्षय भण्डार होंगे। 'भारती' ने जो उत्तरोत्तर उन्नति दिखायी है मैं उसके लिए हार्दिक बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ उसके नित्य प्रति उन्नयन की।

* **मुनि श्री कान्तिसागर, भरतपुर—**

—मधुमालती वाला आपका लेख पढ़ा। आपकी इस नूतन गवेषणा के लिए बधाई।

* **श्री राहुल सांकृत्यायन, मसूरी—**

—यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि 'भारती' रूप और गुणों में आगे बढ़ती जा रही है।

* **श्री संजयकुमार बागची, असिस्टेण्ट कमिश्नर, सागर—**

—आपकी 'भारती' बहुत अच्छी लगी।

भारती पर पाठकों के अभिमत

*** राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त, चिरगांव —**

—'भारती' बहुत सुन्दर निकल रही है। आपके अनुरूप।

*** श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, मंत्री, संपादक-मंडल, 'आजकल' दिल्ली—**

—भारती बहुत श्रेष्ठ मासिक-पत्रिका है। मुझे आशा है कि इस पत्रिका का स्तर क्रमशः अधिकाधिक ऊँचा बनता जायगा और पत्रिका उतनी ही लोकप्रिय भी सिद्ध होगी।

*** प्रो० महेन्द्र भटनागर, धार—**

—'भारती' ने हिन्दी की प्रथमश्रेणी की पत्रिकाओं में, निश्चय ही अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है।

*** श्री अनन्तगोपाल शेवडे, संचालक, नागपुर टाइम्स, नागपुर—**

—'भारती' का स्तर सचमुच ऊँचा है। वह विचार-प्रधान पत्रिका है। उसमें जो रचनाएँ आती हैं वे गम्भीर अध्ययन तथा चिन्तन की निर्देशक हैं। 'भारती' का अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व, स्वतन्त्र आत्मा है। हो सकता है कि ऐसी पत्रिका का प्रचार उतना व्यापक न हो पर उसके प्रभाव से इनकार नहीं किया जा सकता।

*** श्री परमेश्वर द्विरेफ, चिड़ावा, राजस्थान—**

—पत्र पत्रिकाओं का इतिहास 'भारती' के उल्लेख से पुष्ट होगा, ऐसी मेरी धारणा है।

*** श्री रोहिताश्व कुमार, बम्बई**

—विद्वान 'भारती' का आदर करेंगे, पुस्तकालयों में वह रखी जायगी, और सार्वजनिक शिक्षालयों में भी इसका मान होगा।

*** माननीय श्री मोहनलाल सुखाडिया, मुख्य मंत्री, राजस्थान—**

—मुझे विश्वास है कि 'भारती' पहले से भी अधिक साहित्य, संस्कृति और कला की सेवा में सफल होगी। मेरी शुभकामनाएं आपके साथ हैं।

*** श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति, सदस्य विधान परिषद, नई दिल्ली—**

—मैं भारती को प्रतिमास देखता हूँ; उत्तमोत्तम लेखों से सुशोभित होती है। लेखों में विविधता भी है और गम्भीरता भी। 'भारती' की गिनती हिन्दी की उत्कृष्ट पत्रिकाओं में होना चाहिए।

*** श्री विष्णुप्रभाकर, दिल्ली—**

—'भारती' नाम के अनुकूल ही निकल रही है। उसके पीछे परिश्रम और साधना स्पष्ट है। मेरी कामना है कि वह माँ 'भारती' का मुख उज्ज्वल करे।

*** सुश्री उषादेवी मित्रा, जबलपुर—**

—मेरे दृष्टिकोण से भारती प्रथमश्रेणी की पत्रिका है। उसकी विद्वत्तापूर्ण तथा आकर्षक रचनाएँ मन में अपनी प्रतिलिपि छोड़ जाती हैं। कामना केवल यही है कि भारती का जीवन चिरजीवी हो।

*** श्री रांगेय राघव—**

—'भारती' सुन्दर निकल रही है। इसमें पठनीय सामग्री का चयन काफी परिश्रम से किया गया है और पाठकों की रुचि का भी एक अच्छे स्तर पर ध्यान रखा गया है। मैं आपको ऐसी पत्रिका निकालने पर बधाई देता हूँ और चाहता हूँ कि यह दीर्घजीवी हो।

भारती पर पाठकों के अभिमत

*** श्री आरसीप्रसाद, पटना—**

—सुन्दर पत्रिका है, सुरुचि सम्पन्न, विचार-वैभव-प्रफुल्ल।

*** श्रीहरगोविन्द गोरख, मध्यभारत ऐसोसिएशन, कलकत्ता—**

—अहिन्दी भाषी प्रान्तों में हिन्दी साहित्य की लोकप्रियता की वृद्धि के लिए 'भारती' जैसी सुन्दर एवं उच्च-स्तर की पत्रिकाओं की अत्यन्त आवश्यकता है।

*** श्री सुरेशसिंह, सदस्य, विधान परिषद (उ० प्र०), कालाकांकर—**

—'भारती' के अंक मिले—देखकर चित्त प्रसन्न हो गया—बड़ी सुरुचिपूर्ण पत्रिका निकाली आपने। लेखों का चयन गम्भीरतापूर्वक किया गया है और स्तर काफी ऊचा रखा गया है। इसकी गिनती हिन्दी की उत्कृष्ट मासिक-पत्रिकाओं में होना चाहिए। मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें।

*** 'वीणा' मासिक, इन्दौर—**

—इसे प्रतिभाशाली लेखकों का सहयोग प्राप्त है।

*** श्री शंकरदेव विद्यालंकार, गुरुकुल कांगड़ी—**

—पत्रिका का सम्पादन परिश्रम से हो रहा है। हिन्दी की समृद्ध पत्रिकाओं में भारती अपना स्थान बना रही है। पाठ्य सामग्री सुन्दर, सुरुचिपूर्ण और विचार-समृद्ध होती है। आपके इस प्रयत्न का सप्रेम अभिनन्दन है।

*** श्री लालजीराम शुक्ल, काशी मनोविज्ञानशाला, बनारस—**

—'भारती' राष्ट्रभाषा का विचार-स्तर ऊंचा उठा रही है, अतएव वह सभी देशभक्तों द्वारा सराहनीय है। मुझे भारती के लेख अच्छे लगे।

*** श्री खं० के० क्षीरसागर, प्रधानाध्यापक अ० ए० सोसायटी हाईस्कूल, अहमदाबाद—**

—ठोस कार्य करने वाली पत्रिकाओं का हमारे देश में अभाव सा है। आपकी पत्रिका इस कमी को पूरा करने में बहुत सफल हुई है।

भारती–

परिवार को

नववर्ष

की

शुभकामनाएँ

व्यवस्थापक

'भारती'

साहित्य, संस्कृति, कला, शिक्षा, ग्रामविकास तथा समाजसेवा की
मासिकपत्रिका

वर्ष १, खंड ३] ग्वालियर, मार्च, १९५५ [अंक १. पूर्णांक ९

स्मृति क्रम

— श्री सुमित्रानन्दन पन्त —

वनफूलों की तरु डाली में
गाती अब निर्मम गिरि कोयल,
काले कौवों के बीच पली,
मुँहजली, प्राण करती विह्वल!

कोयल का ज्वाला का गायन,
गायन में मर्म-व्यथा गोपन,
उस मूक व्यथा में लिपटी स्मृति,
स्मृति पट में प्रीति कथा पावन!

वह प्रीति,—तुम्हारी ही प्रिय निधि,
निधि चिर शोभा की, (जो अनन्त
मधु मुकुलों के अंगों में खिल
बनती रहती जीवन वसन्त !)

उस शोभा का स्वप्नों का तन—
(जिन स्वप्नों से विस्मित लोचन,—
वे स्वप्न मूर्त हो सके नहीं,
भरते उर में स्वर्णिम गुंजन !)

उस तन की भाव द्रवित आकृति—
(जो धूपछाँह पट पर अंकित)
आकृति की खोई सी रेखा
लहरों में बेला सी मज्जित !

यौवन बेला वह, स्वप्न लिखी
छवि रेखाएँ मन में ओझल,
तुम अन्तर्मुख शोभा धारा
बहतीं अब प्राणों में शीतल !

प्राणों की फूलों की डाली,
स्मृति की छाया मधु की कोयल,
यह गीत-व्यथा अन्तर्मुख-स्वर,
वह प्रीति कथा, धारा निश्छल !

हिन्दी का छः शब्द

— श्री किशोरीदास वाजपेयी

हिन्दी में संख्या-वाचक 'छः' शब्द अबाध-गति से चल रहा है ! परन्तु किसी ने यह न सोचा कि हिन्दी के स्वरूप-गठन में विसर्गों का कहीं कोई स्थान भी है ? विसर्ग एक मात्र संस्कृत की चीज़ है । हिन्दी में संस्कृत के जो तद्रूप (तत्सम) शब्द 'प्रायः' 'मनःस्थिति' 'तेजोराशि' 'प्रायश्चित्त' आदि प्रयुक्त होते हैं, उन्हीं में विसर्ग या तद्विकार देखने को मिलता है, अन्यत्र नहीं ! 'छः' तथा 'छिः' में विसर्ग-प्रयोग प्रामादिक है । यह वस्तुतः 'छह' शब्द है, जिसका समष्टि-रूप 'छहों' होता है, जैसे 'तीन' का 'तीनों' और 'चार' का 'चारों' आदि । विसर्गों का उच्चारण 'ह' जैसा है, इसलिए उच्चारण-साम्य से 'ह' की जगह विसर्ग दिये जाने लगे ! यदि 'छः' विसर्ग से ही लिखना है, तो फिर ग्यारः, बारः, तेरः, चौदः आदि भी लिखिए । लिखेंगे ? तो फिर 'छः' तथा 'छिः' में ही विसर्ग कहाँ से आ कूदे ?

डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या भाषा-विज्ञान के अन्तर-राष्ट्रीय-ख्याति-प्राप्त असाधारण विद्वान हैं । आप की नयी पुस्तक "भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी" अभी हाल ही में 'राजकमल' द्वारा प्रकाशित हुई है ! इस पुस्तक में संख्या-वाचक हिन्दी-शब्दों पर विचार करते-करते लेखक महोदय 'पाँच' से आगे बढ़ते हैं, तो एक दम हतप्रभ हो जाते हैं । वे लिखते हैं:—

"संस्कृत 'षष्' को देखते हिन्दी का 'छः' एक पहेली बन जाता है !"

डा० चाटुर्ज्या इतना लिखकर आगे बढ़ जाते हैं ! जब डा० चाटुर्ज्या का यह हाल है, तब दूसरे लोगों की चर्चा ही क्या ? "जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं, कहहु तूल केहि लेखे माहीं" ?

"भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी" अभी पिछले दिनों, सन् १९५४ के उत्तरार्द्ध में ही प्रकाशित हुई है ।

परन्तु इससे दस-बारह वर्ष पहले 'हिमालय एजेन्सी' (कनखल उ० प्र०) ने 'ब्रजभाषा का व्याकरण' नाम की एक पुस्तक प्रकाशित की थी, जिसमें 'छः' की पहेली सुलझा दी गयी थी । यदि वह पुस्तक डा० चाटुर्ज्या देख लेते, तो सब कुछ समझ जाते । परन्तु वे देखते कैसे ? विश्वविद्यालयों के हिन्दी विभागाध्यक्ष लोग जिस पुस्तक को प्रमाणित न कर दें, एम० ए० जैसी परीक्षाओं का पाठ्य ग्रन्थ जिसे वे न बना दें, खोज-सम्बन्धी विवरणों में जिसका वे नाम न ले दें, उसे गम्भीर अध्ययन की चीज

डा० चाटुर्ज्या जैसे विद्वान कैसे समझें ! उन्हें इतनी फुर्सत कहां कि हिन्दी में प्रकाशित सभी पुस्तकें पढ़ते फिरें ! और विश्वविद्यालयों के हिन्दी विभागाध्यक्ष तथा ‘सम्मेलन’ के पोष्य महामहिम जन ऐसी किसी पुस्तक को वैसा महत्त्व क्यों दें, जिसका लेखक न विभागाध्यक्ष, न ‘डाक्टर’ और न किसी कालेज में प्राध्यापक ही !

खैर, अब देखिए, बारह वर्ष पहले छः पर कैसा विचार हो चुका है। ‘ब्रजभाषा का व्याकरण’ लीजिए और पृष्ठ २८१ निकालिए; लिखा है—

“वस्तुतः यह शब्द **‘छह’ है ‘छः’ नहीं**।

संस्कृत में इस संख्या का वाचक ‘षष्’ शब्द है, जिसके ‘षट्’ आदि रूप वहाँ (संस्कृत में) बनते हैं। हिन्दी के ‘अपने’ या तद्भव शब्द—संज्ञाएँ, क्रियाएँ, विशेषण आदि—व्यञ्जनान्त हैं ही नहीं, सब स्वरान्त हैं। जो बने–बनाए तत्सम शब्द ‘विद्वान्’ ‘बुद्धिमान्’ आदि यहाँ चलते हैं, उनकी बात अलग है।

सो, संस्कृत का ‘षष्’ हिन्दी में पहले तो सस्वर ‘षष’ हो गया और साथ ही मूर्द्धन्यता ने तालव्यता ग्रहण करली–‘सस’। मूर्द्धन्य ‘ष’ हिन्दी में दन्त्य ‘स’ हो ही जाता है–षष्ठि-साठ, वर्षा-बरसा आदि। यों ‘षष्’ का ‘सस’ हो जाने पर अन्तिम ‘स’ बन गया ‘ह’ और आद्य ‘स’ हुआ ‘छ’। यों ‘षष्’ से हुआ **‘छह’**। ‘स’ का ‘ह’ हो जाना हिन्दी में प्रसिद्ध ही है—‘दस’ से दहला और ‘इकसत्तर’ से ‘इकहत्तर’ आदि। ‘स’ का ‘छ’ भी। बच्चों से ‘सब’ बुलवा कर सुनिए।

इसी ‘छह’ को भूल से लोग ‘छः’ लिखने लगे। आप कहेंगे कि विसर्गान्त ‘छः’ लिखने में क्या हानि है ? ‘सस’ के अन्तिम ‘स’ को विसर्ग ही क्यों न मान लें ? उत्तर है—नहीं; ऐसा नहीं माना जा सकता। घर का राज नहीं है कि चाहे जैसा कर लो। ठेठ हिन्दी शब्दों में कहीं विसर्ग नहीं हैं। इसलिए संख्यावाचक इस शब्द में विसर्गों की कल्पना प्रमाण प्राप्त नहीं है, हिन्दी के स्वरूप-गठन के विरुद्ध है। और यदि आप जिद करें ‘ह’ की जगह विसर्ग ही रखने की, तो फिर हम आप से कहेंगे कि इस शब्द का समुच्चय में प्रयोग कीजिए; देखें कैसे करते हैं ! क्या आप ‘**छःओ** आदमी आ गये’ ऐसा लिखेंगे ? जबकि ‘छहो’ में ‘ह’ के बिना काम चलता ही नहीं, तब विसर्गों का बखेड़ा क्यों ?

‘ह’ के स्थान पर विसर्ग देने की प्रवृत्ति इसलिए हुई कि इन दोनों का उच्चारण-स्थान ही नहीं, उच्चारण भी लगभग एक ही है। इसीलिए गलती से ‘ह’ की जगह विसर्ग देने लगे ! पिसे हुए नमक को बूरा समझ कर खीर में छोड़ देने की गलती ! परन्तु ‘छहो’ सब भेद खोल देता है।

‘ह’ को विसर्ग समझ लेने की गलती आज भी की जा रही है, अन्यत्र भी। डा० रमाशंकर शुक्ल ‘रसाल’ की रसअलंकार-सम्बन्धी पुस्तकें सम्मेलन-परीक्षाओं में

चलती हैं। मुझे भी एक छात्र को पढ़ानी पड़ीं। इन पुस्तकों में लक्षण-उदाहरण तो सब गलत हैं, जैसे कि अन्य 'डाक्टर' लोगों की पुस्तकों में; परन्तु भूमिका में संस्कृत के मम्मट आदि आचार्यों पर अच्छा विचार है। सोचा, जिसके लिखे लक्षण-उदाहरण हैं, भूमिका के विचार उसके नहीं हो सकते। आगे बात खुल ही गयी। डाक्टर 'रसाल' ने 'भामह' का नाम सर्वत्र 'भामः' लिखा है। किसी अंग्रेज विवेचक का ग्रन्थ पढ़ा होगा। वहाँ 'भामह' को 'Bhamah' लिखा होगा। उच्चारण-साम्य से आपने 'H' को विसर्ग समझ लिया! लिख दिया 'भामः'! हजारों छात्र 'भामह' को 'भामः' लिख रहे हैं! ठीक यही गति हिन्दी के 'छह' की हुई है—'छः' रूप में चल रहा है!

तो, बारह वर्ष पहले जिस शब्द पर इतनी वैज्ञानिक विवेचना हो चुकी थी, वही आज भी डा० चाटुर्ज्या जैसे विद्वानों के लिए 'पहेली' बना हुआ है? 'ब्रजभाषा का व्याकरण' ऐसी बीसों पहेलियों का समाधान करता है। परन्तु देखे कौन?

सन् १९४२ के अनन्तर तो हिन्दी का इतना अधिक विश्लेषण कर दिया गया है कि क्या कहा जाय! परन्तु वे रत्न-राशियाँ अज्ञात-अवज्ञात अवस्था में पड़ी हैं! किस का दोष?

अनुसन्धान करके अकाट्य तर्कों से समझाया गया कि 'अन्तर्राष्ट्रीय-अन्ताराष्ट्रिय' आदि गलत प्रयोग हैं; क्योंकि यहां (रेफान्त) 'अन्तर' नहीं, 'अन्तर्' शब्द है। 'आज' तथा 'सम्मेलन-पत्रिका' आदि ने ग्रहण भी कर लिया, क्योंकि समालोचनार्थ पुस्तकें भेजी गयी थीं। परन्तु डा० चाटुर्ज्या के प्रस्तुत ग्रन्थ में 'आन्तःप्रान्तीय' जैसे भ्रष्ट प्रयोग मोटे-मोटे टाइप में छपे हैं। इसकी जिम्मेदारी किस पर है? अब तक 'सभायें' 'जायेंगे' 'जायँगे' आदि गलत प्रयोग चल रहे हैं! इसकी भी जिम्मेदारी क्या मौलाना अबुलकलाम आजाद पर है? इस अपराध के एकमात्र अपराधी वे विश्वविद्यालय-विधाता हैं, जो अपने जोर से प्रकाश को रोकते हैं।

ग्वालियरी हिन्दी का प्राचीनतम ग्रन्थ

— श्री अगरचन्द नाहटा —

हिन्दी-साहित्य के अन्वेषण का कार्य गत ५५ वर्षों से निरन्तर होते रहने पर भी अभी बहुत से प्रदेशों में हिन्दी-साहित्य की शोध का कुछ भी प्रयत्न नहीं हो पाया। हिन्दी भाषा मूलतः मध्यदेश की बोली थी। खेद है उस प्रदेश में भी शोध का कार्य अभी तक जैसा चाहिए नहीं हुआ। इसीलिए अपभ्रंश और हिन्दी के बीच की भाषा के साहित्य का हमें कुछ भी पता नहीं है। हिन्दी भाषा के विकास को जानने की कड़ी अभी अज्ञात ही है। मध्यदेश का यद्यपि बहुत सा साहित्य मध्यवर्त्ती मुसलमानी साम्राज्य के समय नष्ट हो गया, फिर भी शोध करने पर कुछ प्राचीन ग्रन्थों का पता अवश्य चलेगा। इस कार्य को शीघ्र ही हाथ में लेना चाहिए।

मध्यदेश में ग्वालियर अपना विशिष्ट स्थान रखता रहा है। इसीलिए इस प्रदेश की भाषा को कुछ विद्वानों ने "ग्वालेरी" भाषा की संज्ञा दी है। उदाहरणार्थ सं० १६८६ में बीकानेर में कविवर समयसुन्दर के प्रशिष्य जयकीर्ति ने सुप्रसिद्ध राजस्थानी काव्य "कृष्ण रुक्मणी वेलि" की भाषा टीका बनायी। उसके प्रारम्भ में अपने से पूर्ववर्त्ती टीकाओं का स्मरण करते हुए उन्होंने लाखो चारण रचित पहली टीका के निर्देश के बाद दूसरी टीका ग्वालेरी भाषा में की गयी इसका उल्लेख इस प्रकार किया है—

ग्वालेरी भाषा गुपिल, मन्द अरथ मति भाव।
बात बन्ध किय भाषवितु, समझन तिय सम भाव॥

इसके पश्चात् सारंग कवि की संस्कृत टीका का उल्लेख किया गया है। उपर्युक्त ग्वालेरी टीका ब्रजभाषा में गोपाल कवि रचित 'वेलि' का पद्यानुवाद है जिसका नाम कवि ने रसविलास दिया है। उसी को लक्ष्य करके जयकीर्त्ति ने यह उल्लेख किया होगा। यह पद्यानुवाद मिर्जाखान की आज्ञा से किया गया था। इसकी एक प्रति जैसलमेर के जैन भण्डार में मुझे प्राप्त हुई थी और दूसरी प्रति का अन्तिम पत्र मेरे संग्रह में है। 'व्रज भारती' में इस रचना का परिचय दे दिया गया था, और अब तो उसे स्वामी नरोत्तमदासजी सम्पादित 'कृष्ण रुक्मणी की री बेलि' ग्रन्थ में मूल के

साथ प्रकाशित कर दिया गया है। गोपाल कवि ने इस पद्यानुवाद की भाषा को "ब्रजभाखा" की संज्ञा दी है।

मरु भाखा निरजल तजि, करि ब्रज भाखा चोज।
अब गोपाल यातें लहे, सरस अनूगम मोज॥

इससे स्पष्ट है कि जिसे गोपाल कवि ने ब्रजभाषा संज्ञा दी है उसे ही जैन विद्वान जयकीर्ति ने "ग्वालेरी भाषा" बतलायी है। अर्थात् ब्रजभाषा को ग्वालेरी भाषा भी कहा जाता रहा है। इससे ग्वालियर की भाषा का महत्त्व स्वयं प्रकट हो जाता है।

हमारे संग्रह में हितोपदेश का हिन्दी गद्यानुवाद है। उसकी भाषा को भी ग्रन्थ के अन्त में 'ग्वालेरी भाषा" की संज्ञा दी गयी है। इस ग्रन्थ का आदि तथा अन्त का कुछ अंश इस प्रकार है।

अथ हितोपदेश, पंचाख्यान ग्रन्थ वार्ता लिख्यते।

दोहा

श्री महादेव प्रताप ते सकल कार्य की सिद्धि।
चन्द्र शीश गंगा बसत जानत लोक प्रसिद्ध॥१॥

वार्ता:—

श्री महादेवजी के प्रसाद तें साधु पुरुष हैं तिनकों सकल काम की सिद्धि होइ। कैसे हैं श्री महादेवजी। जिनके माथे चन्द्रमा की कला है सो गंगाजी के फेन सी लगे है रेखा, अरु यह हितोपदेश सुने ते पुरुष संस्कृत बचन में प्रवीण होय। नीति विद्या कूं जाने।

अन्त:—

यह उपदेश सुनि मगर अपने घर आयो, घर मांडयो, मनोरथ भयो। इहां बिसन सरमा राज पुत्रन कों आसीस दीनी। अरु कही तुम्हारी जय होइ। मित्र को लाभ होइ। ऐसो सुनि गुरु के पाँय लागि अपने नीति मारग में सुख सों राज कियौ। इति श्री हितोपदेश ग्रन्थ। ग्वालेरी भाषा लबध प्रगासाने नाम पंचमो आख्यान। हितोपदेश सम्पूर्ण।

कई वर्षों से मुझे यह "ग्वालेरी भाषा" के उल्लेख प्रेरणा देते रहे हैं कि इस भाषा के केन्द्र-स्थान ग्वालियर और उसके आसपास के प्रदेश में रचित हिन्दी-साहित्य की शोध करना चाहिए। गत आश्विन मास में मेरा ग्वालियर जाना हुआ। वहाँ भारती के सम्पादक महोदय से मिलना हुआ और प्रेमचन्द दिवस के प्रसंग में कुछ कहने का भी मौका मिला। तब मैंने ग्वालेरी भाषा के साहित्य के शोध की ओर सबका ध्यान आकर्षित किया। वहाँ के हिन्दी साहित्य-सेवी व प्राचीन साहित्य के संग्राहक श्री भास्कर रामचन्द्र भालेरावजी से भी मिलना

हुआ। इनके संग्रह में हिन्दी के कई अज्ञात ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियाँ देखने में आयीं। इससे पूर्व भी जब मेरा ग्वालियर जाना हुआ था, 'ग्वालियर नामा' देखने में आया था। 'ग्वालियर नामा' (गोपाचल आख्यान) हिन्दी के प्राचीन ऐतिहासिक काव्यों में महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। भिन्न-भिन्न समय में तीन कवियों ने इसकी रचना की है। इनका परिचय श्री रामचन्द्र भालेरावजी ने जयाजी प्रताप में प्रकाशित अपने लेख में विस्तार से दिया है। कहने का तात्पर्य यह है कि ग्वालियर प्रदेश में रचित बहुत-सा साहित्य अभी अज्ञात अवस्था में पड़ा है, जिसकी जानकारी अविलम्ब प्रकाशित होनी आवश्यक है।

नागरी प्रचारिणी सभा काशी के हीरक जयन्ती महोत्सव पर मेरा बनारस जाना हुआ था तब सभा के प्रदर्शित हस्तलिखित ग्रन्थों में भगवद्गीता भाषा-टीका की प्रति देखने में आयी। भगवद्गीता की अभी तक ज्ञात भाषा-टीकाओं में यह सबसे प्राचीन है। सम्वत् १५५७ में गोपाचलगढ़ में मानसिंह के राज्य में थेघनाथ ने इसकी रचना की है। ग्वालियर में रचित ज्ञात हिन्दी ग्रन्थों में यह सबसे प्राचीन ग्रन्थ होने से विशेष महत्त्व का है। श्री मायाशंकर याज्ञिक के संग्रह से यह प्रति नागरी प्रचारिणी सभा को मिली है जो सम्वत् १७२७ की लिखित है। इसका विवरण सभा से प्राप्त करके यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है।

अथ श्री भागवद्गीता भाषा लिख्यते।

चौपाई

सारद कहुं बन्दौं करि जोर, पुनि सिमरों तेतीस करोर।
रामदास गुरु ध्याऊँ पाई, जा प्रसाद यह कवितु सिराई।
मूढन को है विष वल्लरी, गुनियन को अमृत मञ्जरी।
थेघनाथ अमृत विस्तरै, बिनती गुनी लोग सों करै।
आगि मांहि डारि कै स्वर्न, बुरे भले को लीजै मर्म।
तैसें सन्त लेइ तुम जानि, मैं जु कथा यह कही बखानि।
पन्द्रैसै सत्तावनि आनु, गढु **गोपाचल** उत्तम ठानु।
मानसाहि तिइ दुर्ग्ग निरिंदु, जनु अमरावति सोहै इन्दु।
नीत पुंन सों गुन आगरौ, बसुधा राखन कों अवतरौ।
सवही राजनि माँहि अति भलै, तौ वर सत्य सील ज्या बन्नै।
ताघर "**भान**" महाभरु तिसै, हथनापुर महि भीषम जिसै।
पाप परहरै पुंनहि गहै, निस दिन जपतु कृस्न कहु रहै।
सर्व जीव प्रति पालै दया, मानु निरन्दु करै तिह मया।
ग्यानी पुरषनि में परिधान, एक हीं सदा जस्वसी भानु।

दयावन्त दाता गम्भीरु, निर्मल जनु गंगा कौ नीरु।
जौ ब्रह्मां गरु वैगुन जागु, तौ गुन तंत जोग मनु लागु।
जै रूप मंगद द्रिढ़ बतु लहै, जौ द्रिढु सरु जुधि स्थिर गहै।
स्वायु धर्म यों पारे **भानु**, जा सम भयौ न दूजौ आन।
सबही विद्या आहि बहुत, **कीरतसिंह** नृपति कै पूत।
षट दरसनि के जाने भेव, मानै गुरु अरु ब्रह्मन देव।
सम दस मानि गहरुता हियै, इक व्रत पुन्न बहुत तिह कियै।
भले बुरे कौ जाने मर्म, **भानु** कुवरु जनु दूजौ धर्म।
इह कलजुग में है सब कोई, दिन-दिन लोभ चौगनो होई।
अनु धनु जमुगडित तिन गयौ, पै वै क्यौ हूं साथ न भयौ।
इतौ विचारु **भान** सब कियौ, त्रिभुवन माँहि बहुत जसु लियौ।
भानकुवरु गुन लागहि जिते, मोपै वर्नें जाहिन तिते।
जीभ अनेक जु प्रानी होई, थाकै जसहिं बखानै सोई।
कै आइर्बलु होइब घनै, बरनै गुन शोभा नहि तनै।
कै सारद कौ दरसनु होई, आदि अन्त गुन बरनै सोई।
"थेघु" इनमें एकै लहै, ऊँची बुद्धि करि चह गुन कहै।
कहे **भान** मो भावै राम, जातें ज्यौ पावै विश्राम।
इह संसार न कोऊ रह्यौ। **भान** कुवरु थेघु सों कह्यौ।
माता पिता पुत्र संसारु, यहि सब दीसे माया जारु।
जाहि नाम ना कलजुग रहै, जीवै सदा मुवो को कहै।
कहा बहुत करि कीजै आनु, जो जानै गीता को ग्यानु।
इतनो बचनु कुवरु जब कह्यौ, घरीक मनु धोषें परि रह्यौ।
सायर कों बेरा करि तरै, कोऊ जिन उपहासहि करै।
जो मेरे चित गुरु के पाय, कीऊ जो हिये बसै जदुराइ।
तौ यह मोपै ह्वै है तैसे, कह्यो कृश्न अर्जुन को जैसे।
सुनहि जे प्रानी गीताज्ञान, तिन समान दूजो नहिं आन।
संजय लीनें अन्ध बुलाई, ताकों पूछनि लागे राई।
धर्म क्षेत्र कुरु जंगल जहां, कैरौं पाण्डव मेले तहां।
कैसें जूझ कहा तहाँ होई, मोंसों वरनि सुनावो सोई।

अंत—

अर्जुनोवाच

तो प्रसाद अच्यत बर बीर। गयौ मोहु जु हुतो सरीर।

तेरौ बचनु हिये सब धरौ। भारथ करत न संका करौं।
संजै बचन अन्ध सों कह्यौ।

ग्रन्थान्त में पुष्पिका नहीं दी है तथा अन्तिम अंश से स्पष्ट ज्ञात होता है कि थोड़ा-सा अंश भी लिखने से छूट गया है। परन्तु वह अंश बहुत ही थोड़ा है।

ग्रन्थ के रचयिता थेघनाथ और उसके आश्रयदाता कीरतसिंह के पुत्र भानुसिंह का विशेष परिचय अपेक्षित है।

ग्वालियर के महाराजा का हस्तलिखित संग्रहालय विशेषरूप से अन्वेषणीय है। यहाँ के कई राजा बड़े विद्याप्रेमी रहे हैं। उनके आश्रित कवियों ने संस्कृत एवं हिन्दी भाषा में अवश्य ही उल्लेखनीय साहित्य रचा होगा। राजाओं के अतिरिक्त बड़े बड़े जमींदारों के यहाँ भी काफी हस्तलिखित प्रतियों की जानकारी मिली है। जैन भण्डारों में भी कुछ महत्त्वपूर्ण साहित्य मिलना सम्भव है। यहाँ का "रइधु" नामक अपभ्रंश कवि तो बहुत ही प्रसिद्ध रहा है, जिसके ३०-४० ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं।

ग्वालियर प्रदेश के हस्तलिखित ग्रन्थ इधर कबाड़ियों के हाथों से प्रचुर मात्रा में इधर-उधर बिखर रहे हैं। बहुत-सी सामग्री विदेशों में भी जा रही है, पर सरकार का प्राचीन ग्रन्थों, चित्रों आदि की सुरक्षा के प्रति कुछ भी ध्यान नहीं है। उज्जैन के सिन्धिया इन्स्टीट्यूट को आर्थिक सहायता देकर अथवा अन्य संस्था द्वारा इस प्रदेश के समस्त हस्तलिखित ग्रन्थों को संग्रह करा लेना उचित होगा।

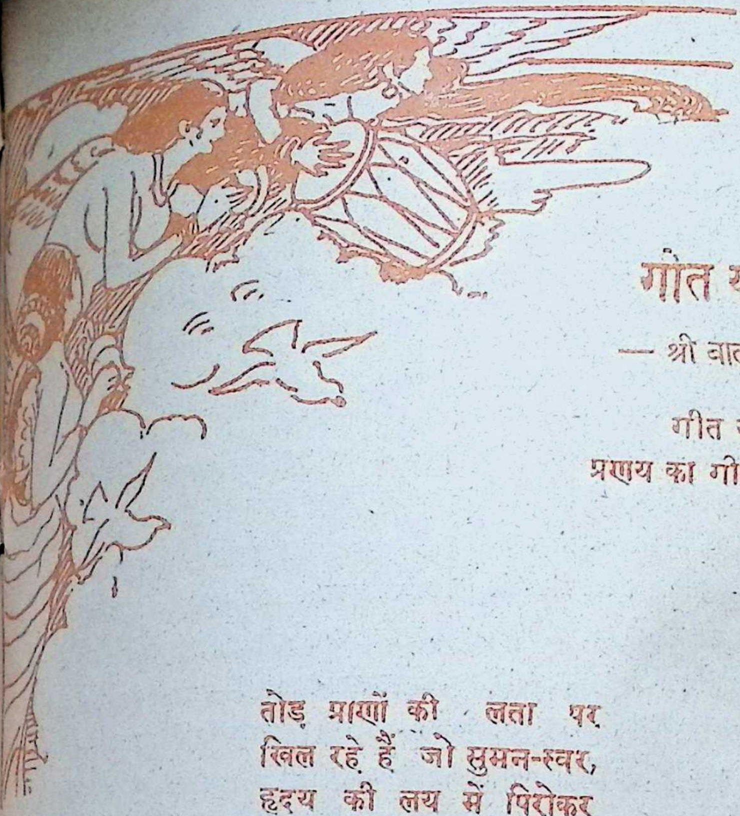

गीत यदि गा दे

— श्री बालकृष्णराव —

गीत यदि गा दे
प्रणय का गीत यदि गा दे !

तोड़ प्राणों की लता पर
खिल रहे हैं जो सुमन-स्वर,
हृदय की लय में पिरोकर
हार पहना दे,
सजीली कल्पना को हार पहना दे,
प्रणय का गीत यदि गा दे ।

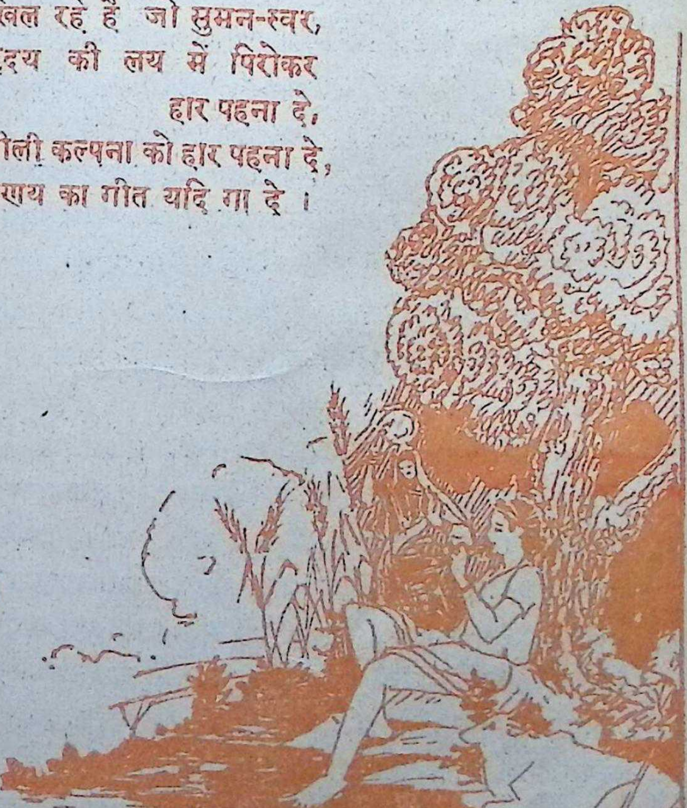

वेदना हो पूर्ति क्षति की,
नीति परिवर्तितनियति की:
प्रेरणा देकर प्रगति को
राह दिखला दे,
सजीली भावना को राह दिखला दे,
समय का गीत यदि गा दे ।

कहानी—

आनंद का दुःख

भगवती प्रसाद वाजपेयी

तार का लिफ़ाफा खोलकर निरंजन ने टेबिल पर रख दिया। पुकार के शब्द उसके कानों में आ रहे थे "अकबरसिंह वल्द फ़तहसिंह हाज़िर हैं ?" सामने लाल फीते की फाइलें रखी थीं। अभी बहुत से काग़ज़ों पर हस्ताक्षर करना शेष था। सरकारी और अभियुक्त-पक्ष के वकील, साक्षी और पैरोकार लोग आपस में कानाफूंसी कर रहे थे। जूरी पार्श्व में आ चुके थे और मुक़दमा प्रारम्भ होने की प्रतीक्षा कर रहे थे। थानेदार गजराजसिंह कोर्ट-इन्स्पेक्टर साहब को उत्तर दे रहे थे—"सभी गवाह हाज़िर हैं साहब।" इतने में निरंजन फ़ाउण्टेनपेन को जेब में रखता हुआ बोल उठा—"मेरी माँ की डेथ हो गयी है कोर्ट साहब ! इसलिए मैं पन्द्रह दिन की छुट्टी पर जा रहा हूँ।" इतना कह कर वह बगल के कमरे में चला गया। वहाँ अभी कुर्सी पर बैठा ही था कि पेशकार साहब जा पहुँचे।

निरंजन बोला—"सभी मामलों में पन्द्रह दिन बाद की तारीख़ पड़ेंगी और जो भी कागज़ात रह गये हों, बंगले पर भेजिए। ताँगा बुलवाइए।" फिर सोचने लगा—"जाड़े के दिन हैं, पत्नी के लिए चेस्टर, बैटक वाले कमरे के लिए कालीन और हीटर और एक ठंढी साँस के साथ सोचता रह गया। सारी योजनाएँ स्थगित करनी पड़ेंगी। पत्नी को साथ न ले जाऊँगा तो भइया क्या कहेंगे। और ले जाऊँगा तो सुरेश यहाँ अकेला कैसे रहेगा। पढ़ाई के यही तो दिन हैं। फिर धीरे-धीरे माँ के जीवन से संलग्न सारी स्मृतियाँ मानस-पट पर चित्रित होकर आने लगीं। चौदह वर्ष की अवस्था पार करके एक दिन वह इसी नगर में आया था। नागरिक जीवन का नया-नया परिचय मिला था। स्कूल की पढ़ाई के अतिरिक्त मित्रों के साथ रहने में दिन पार होते देर न लगती थी। छुट्टियों में वह घर चला जाता था। ताज़ा खोआ उसे कितना प्रिय है, माँ इस बात को अच्छी तरह जानती थी। इसलिए संध्या समय का जलपान वह प्रायः ताज़े खोये से ही करता था। तीस रुपये उसे जेब खर्च के लिए मिलते थे। दस पन्द्रह और कभी-कभी बीस तक वह माँ से झटक लिया करता था। साधारण रूप से ख़ुशामद उसे किसी की पसन्द न थी; किन्तु माँ की सेवा में वह एक प्रकार के रस का अनुभव करता था। बल्कि इसी बात को वह कुछ इस ढंग से सोचता था कि ख़ुशामद की भी एक विशेष कला होती है जो सब को नहीं आती और निरंजन का यह दावा

था कि वह उसे आती है । यह बात दूसरी है कि वह इस सम्बन्ध में पात्र, सुपात्र और कुपात्र का भेदाभेद अवश्य रखता हो ।

चपरासी ने आकर सलाम बजाया और कहा—"हुज़ूर ताँगा हाज़िर है ।" फलतः निरंजन तुरन्त कोर्ट से बाहर हो गया । तांगे के ऊपर क़दम रखते हुए वह सोचने लगा—"प्रतीक्षा तो भइया क्या करेंगे मेरी । माँ का शव वे यमुनाजी को ले गये होंगे । लेकिन अगर मैं आज ही गाँव पहुँच सकता तो ।" अन्त में सोचते-सोचते उसकी आँखें भर आयीं । उसे उस दिन का स्मरण हो आया जब वह पहली बार हाईस्कूल से लौटकर गाँव गया था तो उसी दिन सायंकाल माँ ने उसके लिए खीर बनायी थी और उस दिन उसकी तबियत कुछ ऐसे मोड़ पर आ गयी थी कि उसने मन-ही-मन तय कर लिया था कि आज तो डट कर खीर ही खानी है उसे, और वह बोल उठा था—"जैसी बढ़िया खीर अम्मां तुम बनाती हो, वैसी राजा विराट के यहाँ भीमसेन भी क्या बना पाते होंगे, पाक-विद्या ही जिनके निर्वाह का अवलम्ब थी ।" उसकी इस बात का फल यह हुआ था कि क्षण भर बाद तवे पर रोटी डालती हुई अम्मां बोल उठी थीं—"खीर और ले लेना नीरू ।" इतना सोचते-सोचते निरंजन ने जेब से रूमाल निकाला और आँखों पर लगा लिया ।

ताँगा चला जा रहा था ।

निरंजन जब कभी घर जाता, तब अगर निर्मला के लिए कोई बढ़िया जम्पर या ब्लाउज़, पिता के लिए एक रुपये तोले वाली खुशबूदार तम्बाकू, भाभी के लिए साड़ी ले आता, तो माँ के लिए भी पीतल की बनी आरती, शंकर-पार्वती या गणेश-लक्ष्मी की मूर्ति, भगवान कृष्ण का मनोमोहक चित्र, धूपदानी आदि पूजन-पाठ की वस्तुएँ अवश्य ले आता । उस समय माँ हर्ष से गद्गद् होकर बोल उठती—"यह चीज़ तू बड़ी अच्छी लाया है ।" और जब कभी गाँव की बहू-बेटियाँ और प्रौढ़ा नारियों में से कोई उनसे मिलने आता, तो वे उन सबको वे चीज़ें दिखला-दिखला कर कहतीं—"अबकी बार तुम्हारा नीरू देखो कैसी कैसी बढ़िया चीज़ें ले आया है ?" क्रम-क्रम से वे सारी चीज़ें उन्हें दिखलायी जातीं, जिन्हें देख-देख कर वे उसकी सराहना में अपनी इच्छा भी प्रकट किए बिना न रहतीं और सहसा उनके मुँह से निकल पड़ता—"वाह, जा मूरत तो बहुतई नीकी है । ऐसी एक हमऊं कों मँगाय देव चाची । जित्ते दाम कैहो तित्ते हम दै दीहें ।" इसके उत्तर में माँ बोल उठतीं—"दामों की कोई चिन्ता नहीं । मैं तो तुमको इसलिए दिखला रही थी कि ऐसी-ऐसी चीज़ों में ही सब पैसा उड़ा डालता है तुम्हारा नीरू । पैसा जोड़ने का उसे ज़रा भी लालच नहीं ।" समय-समय पर और घुमा-फिरा कर ये सारी बातें निरंजन को सुनने को मिल जातीं और उसे यही अनुभव होता कि माँ की इन बातों में प्रत्यक्ष रूप से भले ही कुछ

उपालम्भ मालूम पड़े, पर भीतर से वह उनकी एक साध ही पूरी करता है। क्योंकि इन बातों के प्रसंग से जो उत्तर उन्हें मिलते, उनसे वे प्रसन्नता और आनन्द से गद्गद् हो उठतीं। उस दिन तो रामा की माँ ने उनको उत्तर देते हुए कह भी डाला था—"इसको पैसा उड़ाना नहीं कहते चाची, बल्कि यह तो एक बड़े सौभाग्य की बात है कि उसे घर गृहस्थी की मर्यादा का इतना ध्यान तो रहता है !"

अब निरंजन को अपने बचपन के वे दिन भी याद आ रहे थे जब वह गाँव में इधर-उधर निकलता तो सदा और सभी जगह उसका स्वागत होता रहता। वह कहीं जा भी रहा होता, तो लोग उसे पास बुलाने को आतुर हो उठते। यदि कभी वह ठिठुक कर खड़ा भी हो जाता, तो खाली चारपाई पर दरी बिछा दी जाती। कभी बैठे-बैठे उसे यदि प्यास लग आती, तो पानी के साथ-साथ एक कटोरी में चार पेड़े रखे चले आते। वयस्क भाभियाँ उसे अन्तःपुर में निमंत्रित करतीं। अन्तस्सलिला रसवती प्रेरणाएँ मुसकान और परिहास में बदल जातीं। गाँव के वृद्धजन चलते-चलते मार्ग में सहसा रुक जाते और खड़े होकर देखते कि उनके चरणों की धूल को अपने मस्तक से लगानेवाला निरंजन सामने खड़ा है। तब एक प्रौढ़ चौड़े हाथ की छाया निरंजन के सिर पर जा पड़ती। आशीर्वाद-गर्भित मर्मवाणी फूट पड़ती—"जीते रहो बेटा! कब आये ?"

निरंजन जवाब देता—"आज ही आया हूँ दादा।"

दादा पूछते—"अभी तो दो-चार दिन रहोगे न ?"

तो निरंजन यही जवाब दे देता—"हाँ दादा, रहूँगा।"

तब वे वृद्धजन अपना हार्दिक उल्लास प्रकट करते हुए कहने लगते—"तब तो मिलोगे। हम सब लोग तुम्हारी उन्नति से ही गाँव की उन्नति की आशा करते हैं और इस अवसर को अपने लिए एक सौभाग्य की बात समझते हैं।"

निरंजन आज सोचता है कि यह सब उसी माँ की देन है—उसी माँ की।

जब वह बंगले के अन्दर जाने लगा तो सोच रहा था—"पिता पहले ही चल बसे। रहा-सहा माँ का एक सहारा था, वह भी आज से समाप्त हुआ।"

तांगा खड़ा हो गया और ज्योंही निरंजन पोर्टिको में पहुँचा, त्योंही दरवाज़ा खोलते हुए उसकी गृहिणी तिलोत्तमा ने पूछा—"अरे ! आज इतनी जल्दी कैसे आ गये !" उत्तर में निरंजन ने वह तार उसके हाथ में दे दिया।

तिलोत्तमा ने तार पढ़ा तो बैठक में निरंजन के साथ-साथ चलती हुई बोली—"अब क्या होगा ?"

निरंजन ने कोई जवाब नहीं दिया। तिलोत्तमा बोली—"अम्मां मुझे बहुत चाहती थीं। मेरा यह हार उन्हीं ने ज़िद करके बनवाया था। बाबू का तो इरादा

नहीं था, लेकिन फिर उन्होंने ही अपनी नथ और कंठ की जंजीर इसके लिए दे दी थी। अरे, तुम तो बैठे हो; चलोगे नहीं ! दादा प्रतीक्षा कर रहे होंगे !”

निरंजन ने कपड़े उतारते हुए पूछा—“और सुरेश के पढ़ने में हर्ज न होगा ! हाईस्कूल की परीक्षा है, सारा भविष्य जिस पर निर्भर करता है ।” तिलोत्तमा को ध्यान आ गया—वैसे तो वह सदा ही अम्मां के साथ रहा करती थी । लेकिन इस पद पर नियुक्त होते ही अम्मा बोल उठी थीं—“यह सब कुछ न होगा । अब तो बहू को नीरू के साथ भेजना ही होगा । और तभी साल भर के बाद सुरेश पैदा हो गया था !” स्वामी की बात सुनते ही उसने जवाब दिया—“तो तुम्हारा इरादा क्या है ? मैं न जाऊँ ? नहीं-नहीं, मुझे जाना ही होगा । स्वयं मेरा जी ही न मानेगा ।”

तब निरंजन बोला—“यह तो तुम ठीक कह रही हो । लेकिन फिर सवाल उठता है कि सुरेश की पढ़ाई कैसे पूर्ण होगी ?”

तिलोत्तमा बोली—“तुम पहले चलो तो, हम जीजी से सलाह करके सब तय कर लेंगी ।”

गजाधर यह सब बातें चुपचाप सुन रहा था । निरंजन उसकी ओर दृष्टि डालते हुए बोल उठा—“अरे गजाधर, जाओ स्कूल से सुरेश को तो ले आओ । हम उसे यहाँ अकेला नहीं छोड़ेंगे । घबरा जायगा । और देखो, विद्यालय से इन्दिरा को भी ले लेना । जाओ, तांगा खड़ा है ।”

गजाधर चला गया । निरंजन को याद आ गया कि एक बार वह जब घर पहुंचा था उस समय माँ एक चटाई पर बैठी दाल बीन रही थीं । छोटी बहिन निर्मला दांत से लड्डू तोड़ती हुई बैठी जलपान कर रही थी । भाभी ने हाथों और पैरों में मेंहदी लगा रखी थी । बरामदे के अन्दर वे पलँग पर लेटी हुई थीं । पिंजड़े के अन्दर बैठा हुआ तोता मक्का के भुट्टे के दूधिया दानों पर अपनी नुकीली चोंच मार रहा था । वह चटाई पर आकर बैठ गया और बोला—“अम्मा शहर में एक महात्माजी आये हैं । वे कथा बहुत अच्छी कहते हैं । तुम इस बार मेरे साथ ज़रूर चलना, अच्छा ।”

क्षण भर को सिर ऊपर उठाकर अम्मां ने उत्तर दिया था—“तू झूठमूंठ की बातें मत बना मुझ से । आया होगा कोई हारमोनियम पर गानेवाला कथावाचक और मुझ से कहता है, महात्मा जी आये हैं !”

मैंने जब कहा—“नहीं अम्मां, वह तो ब्रह्मचारीजी हैं । सत्रह वर्ष की उम्र से ही साधू हो गये थे ।”

तब दाल बीनना छूट गया था उनका, और वे बोली थीं—“हाय, सचमुच ! तब उन्होंने भला संसार का क्या सुख जाना होगा । मैं ज़रूर चलूँगी नीरू ।”

लेकिन दूसरे दिन जब उसका सामान बैलगाड़ी पर रखा जाने लगा और वह

अम्मां के पास आकर बोला—"लो तुम अभी तैयार ही नहीं हुई और अब जो देरदार हुई तो मेरी गाड़ी भी छूट जायगी।"

तब अम्मां बोल उठी थीं—"तेरी गाड़ी कभी नहीं छूटेगी नीरू। लेकिन मुझे इतनी फुर्सत कहाँ है कि मैं तेरे साथ चल सकूँ। बहू को यहाँ अकेला कैसे छोड़ दूँ। आजकल उससे ज्यादा काम नहीं किया जाता।"

वह पहले से ही जानता था कि माँ साथ न जा सकेगी। अतएव पैर छूते हुए उसने कह दिया था—"अच्छा तो मैं जाता हूँ।"

अम्मां ने आशीर्वाद देते हुए कह दिया था "जा जा, सुखी रह, मैं दरवाज़े पर न जाऊँगी। वहाँ खड़े होकर तुझको जाता हुआ देखने में……।"

बात आधी ही रह गयी थी, क्योंकि उनका कण्ठ भर आया था और आँखों में आँसू छलछला आये थे!

तिलोत्तमा बोल उठी—"अब क्या सोच रहे हो? सामान पैक करना है।" फिर बराण्डे में जाकर उसने माली को पुकारा—"अरे सोने, इधर तो आना।"

सोने पास आ गया। तिलोत्तमा अन्दर आ गयी और बोल उठी—"जो-जो सामान ले जाना हो, सब पैक करवा दो। मैं तब तक अपना सामान ठीक-ठीक करती हूँ।"

इतने में कोर्ट का चपरासी फ़ायलें ले आया। निरंजन उनको देखने लगा। तिलोत्तमा फिर निकट खड़ी होकर बोल उठी "बाबू नहीं रहे थे, तब मुझ को इतना दुःख नहीं हुआ था। लेकिन अम्मा····अम्मां की याद तो जीवन भर न भूलेगी। लो, तांगा आ गया। अभी इन लोगों को अम्मां के स्वर्गवास का समाचार न देना, और तुम भी बीच-बीच में रो न उठना। गाँव पहुँचने पर आप-से-आप सब कुछ जान लेंगे। अभी हम कह देंगे—यों ही दादा ने बुलाया है।"

निरंजन बोला—"तुम तो बिल्कुल पगली हो गयी हो तिलोत्तमा! ऐसा ही था, तो तुमने गजाधर से कह क्यों नहीं दिया कि अभी बच्चों से कुछ प्रकट न करे। दुःख की हो या सुख की, मनुष्य अपनी भावना कभी छिपा नहीं सकता।"

इतने में सुरेश और इन्दिरा दोनों अन्दर आ गये। सुरेश रूमाल आँखों से लगाये हुए था और इन्दिरा माँ से लिपटकर बोल उठी—"अम्मा, अजिया!"

तभी निरंजन बोल उठा—"रोया नहीं करते बेटे। अजिया तेरी बुड्ढी भी तो बहुत हो गयी थीं। अब एक-न-एक दिन उनको मरना ही था। अपना-अपना सामान ठीक तरह से पैक करवा लो झट से।"

तिलोत्तमा कहने लगी—"सुरेश, तुम अपने पढ़ने की सारी किताबें लेते चलो। वैसे तो हम कोशिश करेंगे कि दो-एक दिन में लौट ही आवें, लेकिन यह सब तो वहाँ जाने पर ही तय होगा।"

76031

इधर ये बातें हो रही थीं, उधर गाँव के घर का नौकर रज्जन निरंजन के सामने आकर खड़ा हो गया और बोला—"सरकार !"

निरंजन ने स्वर पहचान कर कह दिया—"चले आओ रज्जन।"

रज्जन हाथ जोड़कर नमस्कार करता हुआ बोला—"तार तो आपको मिल ही गया होगा। ददुआ कहिन है कि उधर से ही सीधे बिठूर आ जायँ। आज नहीं, कल सबेरे। हमको उन्होंने यही समाचार देने के लिये भेजा है।"

निरंजन बोल उठा—"अच्छा तो भैया ने उनके शव को उधर गंगा-तट पर लाना तय किया। चलो यह बहुत उत्तम हुआ। सुना तिलोत्तमा, अब परेशान होने की कोई ज़रूरत नहीं।" और इसके पश्चात् वह दूसरी फ़ायल का फीता खोलने लगा। क्षणभर बाद वह क्या देखता है कि कल की डाक से आया हुआ एक सरकारी पत्र उसमें रखा हुआ है, जिसके अनुसार उसकी नियुक्ति मथुरा में डिस्ट्रिक्ट जज के पद पर हो गयी है। तब यकायक वह बोल उठा—"अरे तिलोत्तमा, इस पत्र को तो ज़रा देखो। तुम्हें स्मरण होगा, मैंने एक दिन अम्मां से कहा था—तुम्हारे चरणों के प्रताप से मैं एक दिन डिस्ट्रिक्ट जज हो जाऊँगा। तुम देखती जाओ ! यह कितने आश्चर्य की बात है कि अम्मां ने अपने प्रस्थान के समय भी हमारी उन्नति का ध्यान रखा ! अब हमें बारह सौ मासिक मिलेंगे, बारह सौ। लेकिन···!" और इसके साथ निरंजन अपने आँसू न रोक सका !

तिलोत्तमा अन्दर जाकर रज्जन के जलपान के लिए लड्डू मिठाई निकालती हुई सोच रही थी—हम लोग बेकार ही उलझन में पड़े हुए थे। अम्मा के किसी काम ने हमको कभी कोई कष्ट नहीं दिया। पर स्वामी की उन्नति का नया नियुक्ति-पत्र देखकर तो वह और भी अवाक् विस्मित हो उठी। दुःख के आँसू आनन्द के रूप में परिणत हो गये। किन्तु तब यह सोचकर वह और भी दुखी हो उठी कि काश, मृत्यु से पूर्व अम्मां को यह सुसमाचार भी सुनने को मिल जाता !

वेदना का यह कैसा विलक्षण गुण है कि सम्बन्धित सौख्य और आनन्द भी अन्त में दुःख के अगाध में ही जा मिलते हैं !

रघुनाथसिंह रंजन

— श्री विष्णु प्रभाकर —

एक दिन घर लौट कर जाना कि वर्धा से रजिस्ट्री द्वारा एक लिफाफा आया हुआ है। उलट-पलट कर देखा, अक्षर अपरिचित, भेजनेवाले का नाम भी अपरिचित। बड़ी उत्सुकता से खोला। खोल चुका तो स्तम्भित रह जाना पड़ा। अन्दर दो सौ रुपये का एक ड्राफ्ट था, और कुछ नहीं, पत्र भी नहीं।

क्षणभर में विचारों का तूफान उमड़ आया। वर्धा से किसने रुपये भेजे, क्यों भेजे, किसी से माँगे नहीं, किसी पर चाहिए नहीं। तभी सहसा बिजली-सी कौंध गयी। अभी दो दिन पूर्व रंजनजी का पत्र मिला था। उसमें कुछ इसी प्रकार का अस्पष्ट-सा संकेत था। अब वह स्पष्ट हो गया। अवश्य ही उन्होंने भिजवाये हैं, पर क्यों ?

सोचने लगा—कुछ दिन पहले उनके एक परिचित मेरे पास आकर ठहरे थे। उन्होंने शायद मेरी तत्कालीन आर्थिक स्थिति की बात उनसे कही, और उन्होंने तुरन्त दो सौ का ड्राफ्ट भिजवा दिया। एक और भी बात थी। अपने परिचित प्रकाशक द्वारा उन्होंने मेरी एक पुस्तक प्रकाशित करवायी थी, और उसमें काफी गड़बड़ घोटाला हो गया था। मन ही मन शायद उन्होंने उसके लिए अपने को दोषी माना हो और इसीलिए वे रुपये भिजवा दिये हों।

कुछ भी हो, इस घटना ने मुझे झकझोर दिया, मैं भर उठा, आज के यांत्रिक युग में ऐसी सहज सहानुभूति, ऐसा विलक्षण मौन, एक शब्द तक नहीं। यही नहीं, जब मैंने धीरे-धीरे वे रुपये लौटाने शुरू किये तो बार-बार उन्होंने लिखा—"भेजने की इतनी जल्दी क्या थी। अभी वही तो अन्तिम साधन नहीं रह गया था। सुविधा और धीरज से भेजने से भी मुझे फिलहाल कोई कष्ट नहीं होता। आप बार बार चैक क्यों भेज रहे हैं। विश्वास रखें, इन पैसों के बिना मेरी किश्ती रुकेगी नहीं।" और जब खेती करने लगे तब और भी मस्ती से लिखा—"आपको तो शहर में पैसों की अधिक आवश्यकता रहती है। मैंने तो दूध पीने को एक भैंस और अण्डे खाने को कुछ मुर्गियाँ ले ली हैं। खुली जंगल की आबहवा है, बिना किराये की झोंपड़ी। पैसे की निर्वाह के लिए अनिवार्य आवश्यकता नहीं रही।"

ये दिन उनके लिए आर्थिक संकट के थे। पत्नी सेनीटोरियम में थी और वह हैदराबाद छोड़ चुके थे। सोचता हूं तो हतप्रभ रह जाता हूं। उनका समूचा व्यक्तित्व

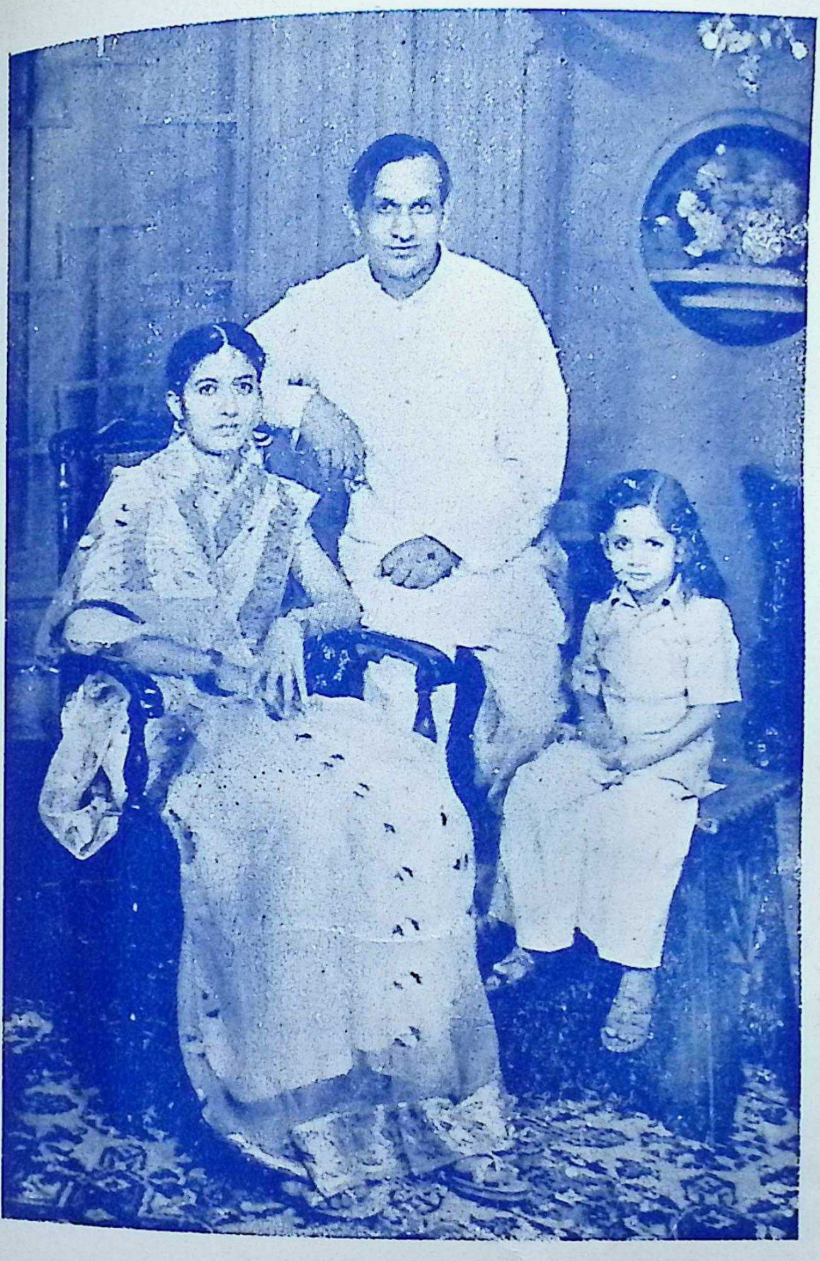

स्वर्गीय प्रो० रघुनाथसिंह रंजन, अपनी पत्नी श्रीमती शान्ता रंजन और पुत्री के साथ।

आँखों में उभर आता है—गठा हुआ शरीर, मुख पर अल्हड़ विश्वास, नयनों में स्नेहिल दीप्ति। कहीं कठोरता नहीं, शंका भी नहीं, जहाँ बैठते वहाँ का वातावरण विनोदमय विवाद से गूँजता रहता। व्यवहार एकदम मुक्त और अनौपचारिक था। वे पहली भेंट में ही मित्र बन जानेवाले व्यक्ति थे और उनकी मित्रता का अर्थ, आज की परिभाषा में, मात्र परिचय ही नहीं था। वे उस व्यक्तित्व के स्वामी थे जो देश, काल, जाति, समाज किसी की भी सीमा नहीं जानता। उसकी सीमा है केवल एक–एक अबाध निर्द्वन्द्व मानवता।

ठेठ उत्तर में फरुखाबाद जिले में वे पैदा हुए और हैदराबाद दक्खिन में उनकी मृत्यु हुई। उन्होंने वनस्थली विद्यापीठ जयपुर, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा तथा हैदराबाद की अनेक शिक्षा संस्थाओं में काम किया। वे एक साथ पत्रकार, लेखक और अध्यापक थे। वे सम्पादक भी रहे और संचालक भी। उन्होंने राजनीतिक आन्दोलनों में सक्रिय भाग लिया। तोड़-फोड़ की और खेती भी की। वे सदा कुछ करने को आतुर रहते थे, कुछ नया, कुछ अनौखा, कुछ साहसिक। और उसके लिए जमी जमायी नौकरी, गृहस्थी सब उखाड़ देना उनके लिए बायें हाथ का खेल था। न जाने कितनी बार उस उड़ते पंछी ने अपना रक्त देकर नीड़ बसाया और एक दिन उसे वैसा ही छोड़ कर वह दूसरी मंजिल की ओर उड़ गया, पीछे मुड़कर देखा भी नहीं। वे इतने निर्मोही थे, फिर भी सच्चे मित्र थे। अनासक्त हो तो मित्र बन सकता है। लेकिन जहाँ एक ओर वे इतने अनासक्त थे वहाँ दूसरी ओर उनमें कमजोरियाँ भी थीं। वे किशमिश खूब खाते थे। वे खीर सामने देखकर सब कुछ भूल जाना उनका स्वभाव था।

रंजनजी अलमस्त थे और निर्मोही भी, पर जो काम वे उठा लेते थे, उसके लिए एक बार तो जान खपा देते थे। वे राष्ट्रीय आन्दोलनों में बार-बार सच्चे सैनिक की भाँति जूझे। जमींदोज रहे। ४२ में तो जेल तक तोड़ डाली और बड़ी शान से तोड़ी। उस तैयारी में वे शिलाएँ उठा-उठाकर बोझ उठाने का अभ्यास किया करते थे। फिर ऐसे गायब हुए कि पुलिस देखती ही रह गयी। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा में रहे तो अपनी कार्य कुशलता की धाक जमा दी। चार-पाँच वर्ष वहाँ रहे। जब तक रहे, उसके स्तर को निरन्तर ऊँचा ही उठाया। बड़े प्रेम और लगन से समिति के नये भवन का निर्माण कराया। अपने रहने के मकान के बनने में ऐसी रुचि ली कि जैसे शेष जीवन उसी में व्यतीत करना है। पर एक दिन मन उचटा तो क्षण भर में सब कुछ छोड़कर पहुँच गये हैदराबाद। वहाँ 'उदय' और 'कल्पना' का सम्पादन किया। चेतना प्रकाशन की नींव जमायी। रायबहादुर सर वंशीलाल बालिका विद्यालय में अध्यापक रहे। लेकिन जो स्वप्न लेकर वहाँ गये थे, वे पूरे नहीं हुए। वे समाजवादी

थे। उस पार्टी में बहुत काम किया, पर शीघ्र ही साथियों के प्रति उन्हें जो विश्वास था वह टूट गया। दुखी दिल से उन्होंने मुझे लिखा, "इस स्थान से एकदम घोर नफ़रत हो गयी है। इस नतीजे पर पहुँचा हूं कि—बच्चा कभी वर्त्तमान अवस्था में न तो समाजवादी हो सकता है और न प्रगतिशील। यह सब उन लोगों का ढोंग है।"

उन दिनों उनकी मानसिक अशान्ति के काफी कारण थे। पत्नी सैनीटोरियम में थी। स्थानीय साथियों से सम्बन्ध बिगड़ गये थे, जीविका का प्रश्न सामने था। फिर भी वे एक क्षण के लिए दूसरे नहीं हुए, वही अलमस्त निर्द्वन्द्व रंजन बने रहे। विद्युत जैसी स्फूर्ति से वहाँ की गृहस्थी समेटी और चल पड़े खेती करने। जमीन की टोह में खूब घूमे, लू खाकर बीमार भी पड़ गये। उस बीमारी में मैंने उन्हें पास से देखा। उनके अभिन्न मित्र यशपाल सपरिवार कहीं चले गये थे। जैनेन्द्रजी के परिवार ने उनकी देखभाल की, पर उनका साहस, दूसरे के प्रति उनकी ममता, उनकी शान्ति देखकर दंग रह जाना पड़ा। आदर भी बढ़ा।

स्वस्थ होते ही वे मध्यप्रान्त के श्योपुर गाँव में जम गये। खेती के काम में वे उसी तन्मयता से कूद पड़े जिस तन्मयता से वे सम्पादन और अध्यापन का काम करते थे। मित्र लोग उनके इस नये प्रयोग को बड़ी उत्सुकता से देख रहे थे कि अचानक एक दिन नागपुर मैडीकल कॉलेज से उनका पत्र आया। बचपन में हुए किसी रोग के कारण उन्हें दिल की बीमारी हो गयी थी, लेकिन यह नादिर रोग भी उस विश्वासी का विश्वास न डिगा पाया। उन्होंने १३-२-५३ के पत्र में मुझे लिखा—"प्रवेश के दिन फी मिनिट १३५ हृदय की अनियमित गति थी और ११५ नाड़ी की। आज ८४ और ८० तक उतर आयी है। मेरे देखते-देखते ही इस वार्ड में तीन केस इसी बीमारी के चल बसे, पर अपने को तो अभी बहुत दिन जीवित रहना है।"

काल उनके इस अल्हड़ विश्वास पर हँस सकता है क्योंकि उसके बाद वे दो वर्ष भी इस संसार में न रहे, लेकिन साथ ही वह यह भी जानता है कि जब तक रहे वे जीते रहे। डॉक्टर ने कहा कि यह राजनीति, यह खेती सब छोड़ दो और ठण्डे स्थान में रहो। सो उन्हें कुछ दिन वर्धा में कैदी बनकर रहना पड़ा—"एक छोटा-सा घर किराये पर ले लिया है, उसी में रहता हूं। चारपाई पर बैठे ८ घण्टे लिखता पढ़ता हूँ। बाकी समय आराम, सोने में जाता है। टण्डनजी का पत्र आया था कि पुनः समिति में काम करने लगो, पर अपना मन नहीं करता। डॉक्टरों ने किसी ठण्डी जगह जाने को कहा है। शायद हैदराबाद या पूना जाऊँ।"

और उन्हें फिर हैदराबाद जाना पड़ा। चक्र उल्टा घूम पड़ा। पर शीघ्र ही सब कुछ भूल कर वे फिर शिक्षा के क्षेत्र में कूद पड़े। नानकराम भगवानदास विज्ञान विद्यालय के प्रिन्सिपल के रूप में उन्होंने जो काम किया वह उनकी प्रतिभा

और मौलिक सूझ-बूझ का परिचायक है । उन्होंने वहाँ के स्कूल विभाग में ऐसा प्रबन्ध किया था कि महीने में एक बार हैडमास्टर से लेकर चपरासी तक का काम विद्यार्थी करें । वहाँ आज भी ऐसा ही होता है और बड़ी कुशलता से होता है । उनके कठिन परिश्रम और गिरते स्वास्थ्य की बात सुन कर मैंने उनसे शिकायत की कि रोग का ध्यान क्यों नहीं रखते । उन्होंने तुरन्त लिखा–"तुम से अब भी अच्छा हूं । आये दिन चारपाई पर रहते हो । मैंने राजरोगी होते हुए भी कुल तीन दिन की छुट्टी ली है" ।

हारना तो वे जानते ही नहीं थे । मृत्यु से भी नहीं हारे । वे जान गये थे कि किसी दिन ऐसे ही चल देना है । कभी-कभी पत्रों में लिखते भी थे । पर जीना उन्होंने नहीं छोड़ा था । कुछ दिन पूर्व हाथ टूट गया था । उसी के कारण मस्तिष्क में कहीं गड़बड़ हो गयी थी । कभी-कभी याद न रहने की शिकायत करते थे पर काम उनका एक क्षण को भी नहीं रुका । अन्त में एक रात को अचानक मस्तिष्क में रक्तस्राव होने के कारण उनके दाहिने अंग पर पक्षाघात का आक्रमण हुआ और वे अचेत हो गये । उस्मानिया अस्पताल में सब कुछ करने पर भी १८ जनवरी के सवेरे वे चले ही गये ।

रंजनजी के मानसिक गठन का व्यक्ति घुमक्कड़ हुए बिना नहीं रह सकता । वे भी घुमक्कड़ थे । वर्मा, मलाया, स्याम आदि सभी स्थानों पर घूम आये थे और इस बीमारी के दिनों में भी कालेज की छुट्टियों में जा पहुँचे लंका । इन यात्राओं का उन्होंने बड़ा रोचक वर्णन लिखा है । उनकी दृष्टि बड़ी पैनी थी । वे समाजवादी थे । पर ये वाद उनकी मानवता में कभी कोई दरार नहीं पैदा कर सके । मित्रों के पत्रों की राह वे बड़ी उत्सुकता से देखा करते थे । जरा देर हुई नहीं कि उन्होंने लिखा-"आप तो जैसे भूल ही गये । एक युग से आपका पत्र नहीं आया । क्या लेखक और किसान में इतनी विषमता होती है कि पूर्व सम्बन्ध भी मृत हो जाएँ" । अभी भी कुछ दिन पूर्व उन्होंने कई बार यही शिकायत की । पर मैं उन्हें कुछ लिख पाता इससे पूर्व ही वे सदा के लिए रूठ गये । अब किसको लिखूँ ? वे दूसरों का कितना ध्यान रखते थे वह बताने की नहीं, अनुभव करने की बात है । कितनी ही बार भाई के से स्नेह से उन्होंने मुझे सुझाव दिये । अपनी-सक्रिय सहानुभूति का वचन दिया ।

दूसरों की कमजोरियों को वे बड़ी सरलता से नजर-अन्दाज कर देना जानते थे । याद है, हैदराबाद में भाई यशपाल उनके एक मित्र से अपना वायदा पूरा न करने पर कुछ नाराज हो गये थे । उन्होंमे कहा कि यह उपेक्षा जान बूझकर दिखायी गयी है । इस पर रंजनजी बोले—"यह तुम्हारे मन की बात है । क्या यह सम्भव नहीं है कि कोई ऐसी बात हो गयी हो जिसके कारण वे वायदा पूरा न कर सके हों । बिना स्पष्ट कारण जाने किसी की निन्दा करना उचित नहीं है" ।

उनकी पत्नी शान्ताजी ने एक बार सेनीटोरियम से लिखा था—"मुझे कितना

महान पति मिला पर मैं उनके योग्य न बन पायी"। और जब यह महान् उन्हें छोड़ ही गया तो वे लिखती हैं–"मुझे कुछ भी समझ में नहीं आता यह सब हो क्या गया। खैर, अब जो कुछ भी होगा देखती जाऊँगी व आगे बढ़ूंगी। मेरी जिन्दगी अब जिन्दगी के रूप में आ गयी। अब मैं दुनिया में हूं। अब तक तो सपने में विचरण करती थी लेकिन अब ठोस दुनिया में हूं"।

ये वाक्य रंजनजी की सहधर्मिणी ही लिख सकती हैं। जो उनके सम्पर्क में आया उसे उनके अदम्य विश्वास और कर्मठ जीवन ने अवश्य छुआ। वह भी विश्वासी और कर्मशील बन कर रहा। क्या यह चकित कर देने वाली बात नहीं है कि उनकी मृत्यु के तीन सप्ताह बाद ही शान्ताजी ने एक स्कूल मे नौकरी कर ली है। उनका शरीर रुग्ण है, उनका प्रिय साथी बिछड़ गया है, पर उसी प्रिय की स्मृति-स्वरूप दो बच्चों का पालन भी तो उन्हें करना है। वर्तमान रूठ गया है, लेकिन उसी कारण भविष्य को भी क्या नष्ट कर देना होगा ?

रंजनजी बड़े पत्रकार थे, सुन्दर लेखक थे, महान शिक्षक थे, सजग सम्पादक थे, राष्ट्रसेवी आन्दोलनकारी भी थे, पर इन सबसे बढ़ कर वे सच्चे मित्र थे और उससे भी बढ़कर सम्वेदनशील मानव। वे उन दुर्लभ गुणों के आगार थे जो इस युग में खो से गये हैं। जिस काम को वे हाथ में लेते थे, उसमें डूब जाते थे; जिस के सम्पर्क में आते थे, उसके हो जाते थे। उन्होंने देश सेवा के लिए सर से कफन बांधा। स्वास्थ्य धोखा न देता तो वे आदर्श किसान बनते। प्रचार और प्रदर्शन के वे शत्रु थे। 'कृतम् मे दक्षिणे हस्ते जयो में सव्य आहत'–मेरे दाहिने हाथ में कर्म और बायें में जय है, इस मन्त्र के वे उपासक थे।

उनका वह छा जाने वाला अदम्य व्यक्तित्व, सुदृढ़ शरीर, आत्मीयता से ओत-प्रोत मुस्कराते नयन, स्नेह से छलछलाता अनासक्त हृदय, सदा कर्मरत शान्त मस्तिष्क, दूसरों की दुर्बलताओं को समझने वाली दृष्टि और अनौपचारिक व्यवहार—वह सब आज कहानी बन गयी है। उनकी पत्नी और उनके बच्चे ही नहीं, उनके मित्रों का एक विशाल परिवार उनके अभाव का अनुभव कर रहा है। आखिर इतनी छोटी आयु में मौत किसी को क्यों ले जाती है ? क्या इसीलिए कि इन्सान दर्द को पहचान सके ? कितनी भयंकर कीमत है इस पहचान की।

क्रान्ति

— श्री भगवानदास माहौर —

विश्व जीवन का अविचल धर्म !
प्रगति का ध्येय ! नियति का मर्म
भूत की आत्मा का नर्तन !
और अभिनव भविष्य सर्जन !

सृष्टि का सतत मनोरंजन
लोक भय का अजस्र भंजन
काल भैरव मृदंग पर धम
प्रगति के नृत्य ताल की सम

दूर कर देवि ! हमारी भ्रान्ति
बता तो दे तू है क्या क्रान्ति ?

युगों की संचित पीड़ा के,
वंचना के प्रतारणा के,
दाह के पुंजीकृत बल से
तोड़ कर बांध रूढ़ि छल के

बहाता उत्पीडन के ग्राम
प्रतिष्ठित स्वार्थ शक्ति के धाम
नचाता तुंग तरंग अथाह
वही तू जीवन सरित्प्रवाह

स्वयं फिर बन जाती जो शान्ति
बता तो दे तू है क्या क्रान्ति ?

हृदय की धड़कन जग-वपु में
कहे कोई क्योंकर न तुम्हें
शुद्ध कर दूषित रक्त प्रसार
करे जो नव शोणित संचार

'सत्य' का कर नितनव्य प्रसार
नये 'शिव' का फैला विस्तार
नयी सुन्दरता का शृङ्गार
सजाती तू नूतन संसार,

हटाती ऊब मिटाती क्लान्ति
बता तो दे तू है क्या क्रान्ति ?

प्रतिष्ठित कर पहले वह योग
खड़ा करती उसका प्रतियोग
इन्हीं का कर संघर्षायोग
स्वयं फिर बन जाती संयोग

पतन उत्थान पद्द्वय में
कलह घुँघरू कस द्रुतलय में
नृत्य करती अदृश्य की ओर
चली तू किस भविष्य की ओर
बनी भीषण आकर्षक क्रान्ति
बता तो दे तू है क्या क्रान्ति ?

देख ओ देवि ! श्रमिक हैं हम
चलाते जग के सब उद्यम
हमीं हैं तो भी बड़ी शरम
कि जीते कूकर-शूकर सम

हमारी महनत के चौपास
खड़े कर जोड़े भोग-विलास
न्याय क्या व्यङ्ग्य नीति उपहास
कि जग है हम को कारावास

शक्ति हम को यह अधिगत है
प्रकृति भी स्वयं पादनत है
नियति का यह कैसा उपहास
शक्ति निज के कि बने हैं दास

अकथ है करुण हमारी दान्ति
बता तो दे तू है क्या क्रान्ति ?

स्वयं अपनी उत्पीडा के
भवन रचते हम क्रीडा के
पोसते रक्तशोषकों को
बिताते हैं हम शतकों को

हुए अब हम नितान्त ही श्रान्त
तड़पते फिरते हैं उद्भ्रान्त
तुम्हारा करते हैं आह्वान
हमें इस जीवन से दो त्राण

प्रवञ्चित क्षुधित हमारी श्रान्ति
लीन करलो निज वपु में क्रान्ति ?

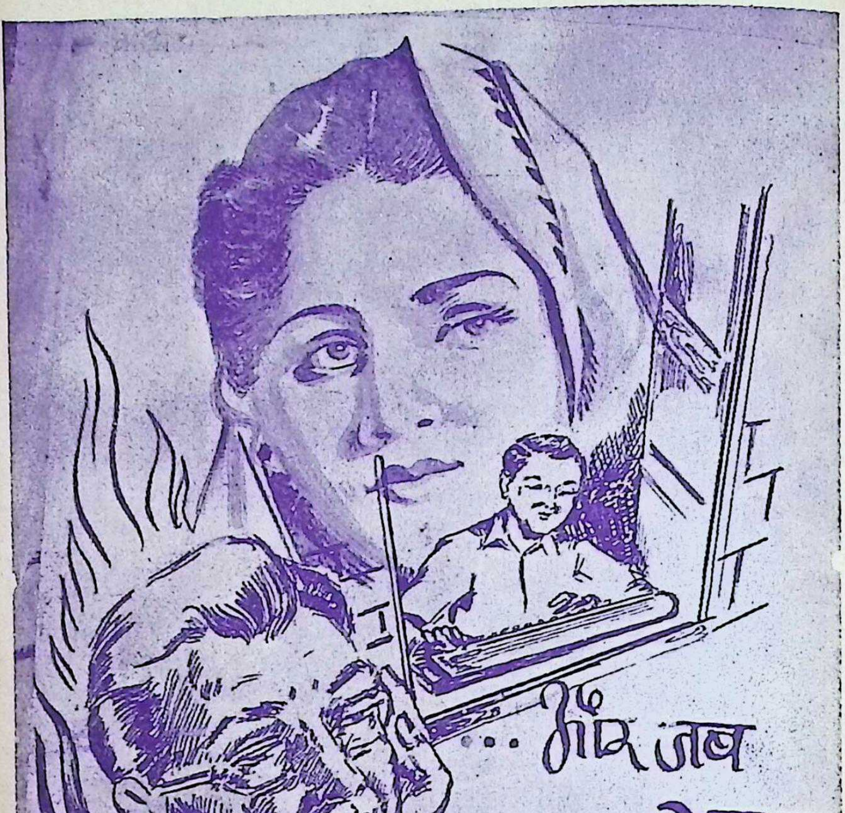

निरंजन के लिए उसने जान की बाजी लगा दी। दोनों के जीवन में तृप्ति हो सकती थी। पर वह बन गया मूर्तिमान हाहाकार साधन का जीवन सुख-मय रहा। लेकिन आज वह उदास है। क्या इस अभिशप्त बैन्जो के वह टुकड़े टुकड़े कर दे?

(१)

— निरंजन —

मैं पचास वर्ष जीवन के पार कर चुका हूं और थोड़ा थक चुका हूं। मेरी सबसे बड़ी लड़की की उम्र १८ वर्ष की है और अगली माघ सुदी पूर्णिमा को उसका पाणि-ग्रहण होनेवाला है। उसकी विवाह की तैंयारियाँ मेरी पत्नी बड़े चाव से कर रही है। मकान पुतवाया जा रहा है और कोने-कोने की सफाई हो रही है। तमाम बेकार सामान कूड़े के साथ बाहर निकाला जा रहा है, कि या तो उसे किसी कबाड़ी के हाथ बेच दिया जावे अथवा उसे घूरे पर फैंक दिया जावे। मानव-जीवन में उन वस्तुओं का मोल ही क्या जो अपनी उपयोगिता खो चुके हों? बाहर आँगन में निकले हुए बेकार सामान में सहसा मेरी दृष्टि एक टूटे हुए, भदरंगे, बिना तार के बैंजो पर गयी। इस बाजे का अब कोई उपयोग नहीं है। उसकी आभा नष्ट हो चुकी है और तार टूट कर गायब

हो चुके हैं। मैं उस बैन्जो को उठा लाया हूँ और उसे मैंने अपने कमरे में बहुत सम्भाल कर रख दिया है।

लगभग तीस वर्ष पुरानी बात है, यह बैन्जो मेरे लिए अत्यन्त प्रिय वस्तु थी। इस बैन्जो पर मैंने अनेक दर्दीले गीत बजाये हैं और अनेक ग़म के तराने गाये हैं। उन दिनों का स्मरण कर एक हल्की-सी गुदगुदी मेरे दिल में आज भी उत्पन्न हो जाती है। यद्यपि आज मैं अपने सामाजिक जीवन में विगत से बहुत आगे निकल आया हूँ, जहाँ से मैं पीछे मुड़कर नहीं देख सकता। मैं अपने परिवार का मुखिया हूँ और परिवार की मर्यादा का प्रश्न मेरे नीति पालन तथा परम्परा के अनुसरण पर निर्भर करता है। मैं चार बच्चों का पिता हूं। सबसे बड़ा लड़का इस समय एम० बी० बी० एस० की फायनल परीक्षा में सम्मिलित हो रहा है, उससे छोटा प्रान्तीय प्रशासन परीक्षा में उत्तीर्ण हो चुका है, तीसरी यह लड़की है जिसने इसी वर्ष बी० ए० की परीक्षा दी है और जिसका पाणिग्रहण अगले बीस दिनों में होने वाला है, चौथा मैट्रिक पास कर चुका है और कॉलेज में प्रवेश कर गया है। तो मेरे ऊपर इन सबकी जिम्मेदारी है। पत्नी मेरी सुशील, मृदुभाषी और विनम्र है। अपने दीर्घ विवाहित जीवन में उसने एक दिन के लिए भी यह अनुभव नहीं करने दिया कि वह मुझ से परे या भिन्न है। उसमें आत्मसात् की अद्भुत क्षमता है। पच्चीस वर्ष के लम्बे विवाहित जीवन में उसने जिस संयम, अनुसरण और समन्वय का परिचय दिया है, उससे मैं कृतार्थ हो गया हूं। उसके द्वारा मुझे निरन्तर प्रेरणा मिली है, भावना मिली है और आवेग मिला है। लेकिन आज इस बैन्जो को अपने सामने देखकर मैं अपने वर्त्तमान से विमुख होकर विगत की तरफ देखने के लिए विवश हो गया हूं। मर्यादा और सामाजिक बन्धन मेरी विचार-धारा को रोक नहीं

पाते । मैं इसे अपने जीवन में अनावृत सत्य मानता हूँ कि विगत कदापि नहीं मरता, उसका अस्तित्व अमर और अक्षुण्ण है ।

मैं इस बैन्जो को देख रहा हूं और मेरे सामने पच्चीस वर्ष पूर्व की घटनाएँ सावन मास में क्षितिज पर एक के बाद एक उठने वाली बदलियों-सी उठती आ रही हैं । इन विचारों के साथ-साथ मेरी अवस्था और उससे प्राप्त संयम की रेखाएँ धूमिल पड़ती जा रही हैं जैसे सूर्य डूब जावे और अन्धकार की पर्त आकाश पर छा जावे ।

मैं पुनः अपने को पच्चीस वर्ष का युवा अनुभव करने लगा हूं । वह अवस्था और वे घटनाएँ मुझे अभी कल की सी बातें मालूम होने लगी हैं । मैं उन दिनों पढ़ता था । जीवन में नई उमगें थीं और अभूतपूर्व उत्साह था । यह अवस्था वह थी जब विचारों में संयम के लिए कोई स्थान न था, प्रबल उद्वेग मैं अपने भीतर अनुभव करता था । इन्हीं दिनों मेरे जीवन में एक ऐसी घटना गुजर गयी, जिसकी अमिट छाप मेरे मानस पर अंकित है । आज चाहे उस घटना को असंयम, उद्वेग और अज्ञान की परिभाषा दे लूँ, लेकिन उस समय वही मेरे जीवन का सबसे बड़ा सत्य था । उन परिस्थितियों में एक क्षण के लिए भी यह नहीं सोचा जा सकता था कि जीवन के इतने लम्बे इतिहास में कभी उसे इतना गौण रूप दे सकूँगा या उसे भुला सकूंगा ।

आज जब मैं इस बैन्जो के सहारे शाहजहाँ का स्मरण कर रहा हूं, मेरा अंग प्रत्यंग स्फूर्ति और रक्त के असाधारण संचरण से रोमांचित हो उठा है । शाहजहाँ से मैंने प्रेम किया था । वह मेरे पड़ोस में रहती थी । वह एक मुसलमान युवती थी । उसके पिता फौज में रिसालदार थे । उसकी सुन्दरता का वास्तविक चित्र शब्दों में बाँधना कठिन था । अपने बाल्य-काल में शहजादियों और परियों की सुन्दरता की मैंने अनेकों मन-गढ़न्त कहानियाँ अपनी दादी और नानी से सुनी थीं । लेकिन यह कभी भी नहीं सोच पाया था कि उस सौन्दर्य की झलक कभी जिन्दगी में देख भी पाऊँगा । शाहजहाँ को जब प्रथमवार मैंने अपने घर के पीछेवाले मकान की खिड़की में खड़ा देखा तो मैं अवाक्-सा, विभ्रमित और किंकर्त्तव्य विमूढ़-सा उसकी ओर देखता रह गया था । आबदार, बड़ी-बड़ी शर्बती आँखें, जैसे बिल्लौरी गिलास में किसी ने आसव उँडेल दिया हो । उसकी नाक उठी हुई थी और माथा चौड़ा था । सिर के बाल घुंघराले थे और कुछ लटें अस्त-व्यस्त हवा की सिहरन से उसके कपोलों पर लहरा रही थीं । उसके पतले-पतले ओठ मुझे सुर्ख गुलाब की पंखुड़ियों का स्मरण दिला रहे थे । उसने मुझे देखा और मन्द-मन्द हास उसके ओठों पर खिल उठा, जैसे अबोध बालक नींद में मुस्करा उठे । मैं निहाल हो गया । लगा कि जैसे ग्रीष्म के मध्याह्न में शीतल जल से नहा कर नयी भावना से और नये विचारों से, दीपक की लौ-सा दीप्त हो उठा हूँ ।

वह खिड़की में विलीन हो गयी । किन्तु मेरे हृदय में जैसे तूफान-सा उठ आया हो, जैसे मैं नदी के तीव्र प्रवाह के बीच में खड़ा हो गया होऊँ, जैसे……। मैं ठीक से अपनी अवस्था बतलाने में असमर्थ हूँ । उस दिन के बाद यह एक क्रम-सा बन गया कि दो-चार बार उसके दर्शन उस खिड़की में हो जाया करते थे और मुझे हर बार उसको देखकर एक अतृप्ति-सी अपने भीतर महसूस होती थी । जिस दिन मैं उसे खिड़की में नहीं देख पाता था, उस दिन एक अभाव-सा, एक टीस-सी और एक खोखलापन-सा मुझे अपने में लगता था । मैं इस आकर्षण के प्रति विमोहित-सा उसकी ओर खिंचा चला जा रहा था । वह मुझे देख कर मुस्कराती थी और मैं उसे देख कर मन ही मन फूला नहीं समाता था ।

रोज़ों के दिन थे । सुबह-सुबह ही वह खिड़की में आयी । मैं खिड़की की तरफ देख रहा था । शायद उसकी प्रतीक्षा करते-करते मुझे बहुत समय हो गया था । यकायक वह खिड़की में आयी और उसने सलाम किया । मैंने प्रत्युत्तर में वैसी ही मुद्रा अंकित की । वह संकोच से सकुचा गयी, जैसे मैंने उसके अंग को स्पर्श कर लिया हो और वह भावना के अतिरेक से विह्वल हो उठी हो । तत्क्षण वह खिड़की में तिरोहित हो गयी । इस तरह दिन चलते गये, महीने जिन्दगी में यात्रा कर आगे बढ़ने लगे और हमारा रोमांस दिन प्रतिदिन परिपक्व होता गया । हम एक-दूसरे के नज़दीक आते गये । उन्हीं दिनों मैंने इस बैन्जो को खरीदा था, जिससे कि मैं अपने भावों को, अपने विचारों को और उसके प्रति अपनी अनुभूति को व्यक्त कर सकूँ । अर्ध-निशा के मौन प्रहरों में मैंने दर्दीली तानें इस बैन्जो पर छेड़ी थीं, अनेक नग़में मैंने मध्यम से सप्तम तक उठाये थे । मैंने यह सब इसलिए किया था कि मैं शाहजहाँ को प्रभावित करना चाहता था । एक रात उसने संकेत से मुझे अपने पास बुलाया था । उस आमन्त्रण में मेरी चरम अभिलाषाओं की सार्थकता मिली थी ।

लेकिन आज मैं सोचता हूं, उन घटनाओं में कहाँ सार है, कहाँ उनमें अर्थवादिता है और कहाँ उनसे फल की आशा की जा सकती है ? वे घटनाएँ बहुत पीछे रह गयीं हैं । रोमांस, जैसे समुद्र में पानी के वक्ष को चीरता हुआ प्रवहमान रहा और फिर उसी में गर्क हो गया । शाहजहाँ मुझे न मिल सकी । हमारा आकर्षण और हमारा मिलन बीच में ही काट दिया गया । शाहजहाँ की शादी हो गयी । और मैं उन घटनाओं से आगे बढ़ गया; उस जीवन में, जहाँ से मेरे वर्त्तमान जीवन की इतिवृत्त रेखाएँ चलतीं हैं । आज यह विना स्वर का, भदरंगा बैन्जो मृत शव-सा मेरे सामने पड़ा हुआ है, और मुझे बार-बार इस बात का स्मरण दिला रहा है, कि वे घटनायें और वे स्मृतियाँ शव के समान निर्जीव और ठण्डी पड़ चुकी हैं ।

(२)

— शाहजहाँ —

जवानी का सारा आलम मेरी आँखों के सामने से गुजर चुका है और डूबते

हुए सूरज की किरणों-सी मेरी जवानी अब वृद्धापन से सिक्त होती जा रही है। मेरी अवस्था इस समय लगभग ४५ वर्ष की है। आज मैं जब अपने पीछे मुड़कर देखती हूं तो जो कुछ गुजर गया उस पर आश्चर्य होता है। जिन्दगी क्या है, तमन्नाएं क्या हैं और उन तमन्नाओं का रूप क्या है, यह मेरी समझ में नहीं आता ? बात-बार मन में बलबले-से उठते हैं, वे आगे बढ़ते हैं और फिर उनका अन्त हो जाता है। लेकिन कभी जो सोचा, जिस चीज की उम्मीद की, जिस चीज के लिए आस लगायी वह कभी भी, किसी को उसी रूप और उसी हद तक, इस जिन्दगी के आगोश में मिल सकी है, यह मैंने नहीं देखा ! दूसरों की बात क्या चलाऊँ, मैंने ही वह कब पाया है, जिसके लिए मैंने अपनी जिन्दगी की भी बाजी लगादी थीं। मैं जिन्दगी में बेहद उदास और गमगीन रही हूँ, लेकिन जिन्दगी चलती रही है।

मेरे खाविन्द एक स्कूल में मुदर्रिस हैं। तीस वर्ष पहले उन्होंने इसी जगह पर काम शुरू किया था और अब तीस वर्ष बाद भी वे इस ही स्कूल में और उसी जगह पर काम कर रहे हैं। मैंने उनमें कभी इस बात को लेकर असन्तोष नहीं पाया कि वे तरक्की न कर सके। उन्हें भाग्य पर अटूट भरोसा है और वे मानते हैं कि भाग्य के सहारे के बिना कुछ नहीं होता। अनेक बार मैंने उन्हें प्रेरणा दी कि वे उद्यम करें और इस मुदर्रिसी की चौखट से पार हो जावें। लेकिन बला का मैंने उन्हें सन्तोषप्रिय पाया है, इस सन्तोष से मैं उन्हें ऊपर नहीं उठा सकी हूँ। वे जानते हैं, मुझे यह जिन्दगी पसन्द नहीं। मैं जिन्दगी के तरीकों में उन्नति चाहती हूँ, आगे बढ़ना चाहती हूँ और आगे बढ़कर जो नहीं है, उसे पा लेना चाहती हूँ। लेकिन अब तो मेरी कल्पना मर चली है और सोचने की शक्ति क्षीण हो चली है। क्या मैं थी, और क्या मैं हो गयी हूँ ? शायद आज पच्चीस वर्ष पहले की शाहजहाँ को कोई पहचान भी न सकेगा।

मेरे दिल में वेदना है, दुःख है, और ऐसी असफलताएँ हैं जो मुझे अब तक रुलाती रही हैं और जिन्दगी के अन्त तक रुलाती रहेंगी। इस जिन्दगी में तारतम्य नहीं है, सब कुछ विशृंखलित है, टूटी हुई तस्बीह के दानों-सा बिखरा पड़ा है। निरंजन कहाँ है, मैं नहीं जानती। दस वर्ष से उसका मुझे कोई पता नहीं है। दस वर्ष पहले मैं अपने अब्बा से मिलने गयी थी, जो सख्त बीमार थे। उसी समय मैंने निरंजन को देखा था। उसका घर भरा-पूरा है। घर में स्त्री और बाल बच्चे हैं, पूरा सरसब्ज बाग है। मैंने उसके बच्चों को, उसकी पत्नी को और उसे दूर से ही देखा था। अब्बा कहते थे—

"बेटी, अपने पड़ोस में जो निरंजन रहता था, मुंशी रोशनलाल का लड़का, वह अब बहुत बड़ा आदमी हो गया है। वह साहब बन गया है। शहर से बाहर उसने बंगला बनवाया है और शहर में उसकी बड़ी धाक है।"

मैं बड़े चाव से अब्बा हुजूर की वह बात सुनती रही थी। झूठ नहीं बोलूंगी,

मैंने चुपके-चुपके निरंजन के घर का पता लगवाया था और एक दिन अपने खाविन्द के साथ तांगे पर बुरखा ओढ़ कर उसके बंगले के सामने से निकली थी। निरंजन ही लॉन पर कुर्सी डाले बैठा अखबार पढ़ रहा था। उसके बाल थोड़े सफेद हो चले थे और उसकी आँखों पर चश्मा था। उसका चौड़ा माथा और उठी हुई नाक ठीक वैसी ही थी, जबकि लगभग पच्चीस वर्ष पूर्व उसने मुझसे प्रेम किया था। मैं एकटक उसकी ओर देखती रह गयी थी। उसके बच्चे बंगले के सामने वाले फूलों के पेड़ों पर उड़ती तितलियों को पकड़ने का यत्न कर रहे थे। मैंने उसकी पत्नी को भी देखा, जो एक दूसरी कुर्सी पर बैठी तन्मयता से बेबी फ्राक बुन रही थी। इस सुखमय परिवार को देख कर मुझे अपने जीवन में कल्पना और भावना के भग्न चिह्न और अवशेष देख कर अपरिमित कष्ट हुआ। मैं वस्तुतः रो पड़ी। यदि समाज और धर्म ने मेरे मार्ग में बाधाएँ उपस्थित न की होतीं, अगर संकुचित विचारों ने और मान-अपमान की भावना ने जीवन को दो धाराओं में न बाँट दिया होता, निरंजन का परिवार मेरा परिवार होता। वे फूल से कोमल बच्चे मेरे बच्चे होते और हम दोनों का जीवन तृप्ति से परिपूर्ण होता। यह अभाव का हा-हाकार जो मैं अपने भीतर अनुभव करती हूं और परिस्थितियों के बीच दबोची हुई, मैं तिल तिल मिटती जा रही हूं, यह सब न होता।

आज भी निरंजन के रसीले नेत्र मेरे दिल में चुभे हैं और मीठे-मीठे तरानों की आवाज मेरे कानों में गूंजती रहती है। जब वह बैन्जो बजाता था तो मैं अपने को रोक नहीं पाती थी। अन्यथा मेरे पैर खिड़की की ओर बढ़ जाते थे, जहाँ से निरंजन का मुस्कराता हुआ चेहरा और बैन्जो के स्वरों पर पड़ती हुई लम्बी-लम्बी गोरी अंगुलियाँ दिखाई देती थीं। घन्टों मैं एकटक निरन्जन की ओर देखती रहती थी और ऐसा महसूस होता रहता था जैसे इन गानों के सहारे मेरी अन्तरात्मा का मिलन उससे हो रहा हो। वे दिन मेरी जिन्दगी के मधुरतम दिन थे। आधी रात में जब सारा संसार नींद के साये में सो जाता था, उस समय टूटे हुए खण्डहर में हम दोनों मिल कर मीठी-मीठी बातें किया करते थे। वे बातें जिनमें भावना थी और जो कल्पना के सहारे भविष्य के कैनवास पर अनेक चित्र बनाती थीं। वे स्मृतियाँ मुझे जिन्दगी भर रुलाती रहेंगी। आज यद्यपि जो कुछ सामने है, उसमें गयी-गुजरी बातों का कोई मोल नहीं हैं। मैं जानती हूं, जो कुछ निकल गया वह बहरहाल इस जिन्दगी में तो वापस आने का नहीं! फिर क्यों न अपने वर्त्तमान को ही साज संवार कर रखा जावे। इन बड़े मियाँ के साथ ही मुझे अपनी जिन्दगी का यह आखरी हिस्सा भी पार करना है। और मैं सोचती हूं कि जहाँ इतनी गुजर गयी, वहाँ बाकी भी गुजर जावेगी।

(३)

— साधना —

मुझे साधना कहते हैं। समृद्ध पिता के यहाँ उत्पन्न हुई। चांदी के चम्मचों से दूध पिया और हाथों-हाथ पली। युवा हुई तो प्रतिभावान पति मिला। उन्होंने बड़े परिश्रम से और बड़ी लगन से अपना भविष्य बनाया। मुझे आते ही उनके घर में ऐसा लगा, जैसे कि मेरा जन्म जन्मान्तर से इस घर में स्थान रहा है और मैं जीवन की परिक्रमा देकर पुनः अपने स्थान पर वापस आ गयी हूँ। बड़ी भाग्यशालिनी हूँ कि ऐसा सच्चरित्र, श्रेष्ठ विचार सम्पन्न और गुणी पति मुझ अकिञ्चन को प्राप्त हुआ जितनी उसकी प्रशंसा की जावे, थोड़ी है। हमारा जीवन सुखमय रहा है। अब तो यह जीवन का गुलदस्ता और अधिक खुशनुमा हो गया है क्योंकि बाल बच्चों के रूप में अनेक कलियाँ और इसमें सम्मिलित हो गयी हैं।

पति मेरे विज्ञ और सुयोग्य हैं। आज शहर में, समाज में और अपने परिवार में उनका सम्मान है। मैं उनकी इस कीर्ति को लेकर फूली नहीं समाती। जब अखबारों में उनके चित्र छपते हैं तो जो सुख मुझे प्राप्त होता है, उसे व्यक्त करना मेरे लिए सम्भव नहीं है। मैं आवागमन में विश्वास करती हूँ और बारम्बार प्रभु से प्रार्थना करती हूँ कि मुझे यह ही पुनः वरण करें और मैं इन्हें फिर पाऊं। लेकिन इधर लगभग एक माह से मैं जब कभी इन्हें उदास देखती हूं, तो सिहर उठती हूं। ऐसा तो मैंने गत पच्चीस वर्षों में कभी नहीं देखा। सदैव ही उन्हें स्फूर्तिपूर्ण और आशावान देखने की आदी रही हूं। किन्तु इन कुछ दिनों में उनमें अद्‌भुत परिवर्तन हुआ है। घंटों अपने कमरे में सर झुकाये बैठे रहना, उदास और प्रेरणा विहीन! मुझ से उनकी उदासी नहीं देखी जाती। शान्ति की शादी के बाद तो उनका यह विराग और अधिक बढ़ गया है। कमरे से बाहर निकलते हैं तो जैसे उलझे रहते हैं। कमरे में वे अधिकतर सोचते रहते हैं।

पुराने टूटे-टाटे सामान में से जो बैन्जो का ढाँचा निकला है, उसे उन्होंने बड़े सम्हाल कर अपने कमरे में रख छोड़ा है। वे उस बैन्जो पर बड़ी मृदुलता से हाथ फेरते हैं, जैसा कि कभी हमारे विवाह के उपरान्त, वे मुझ पर हाथ फेरते थे। उनकी आँखों में स्निग्धता ऐसे उभर आती है, जैसे दूध बिलो कर छाछ के ऊपर लोनी आ गयी हो। इस बैन्जो से एक अपशकुन इस घर में आ गया है। न जाने क्या इसमें मनहूसियत है, जिसने उन्हें इस क़दर अपने कर्त्तव्य-पथ से विमुख कर दिया है। हो सकता है इस बैन्जो से उनका विगत सम्बद्ध हो। लेकिन मैं उनके विगत को उलट-पुलट कर नहीं देखना चाहती। मैंने उन्हें जिस रूप में पाया है, उसमें ही मेरी सार्थकता है, निष्ठा है। लेकिन मैं यह भी तो नहीं देख सकती कि वे कर्त्तव्य का परित्याग कर दें और जो यथार्थ है

उससे विमुख हो जावें। मैंने आज तक उन्हें प्रेरणा और आवेग दिया है, उसे मुझे आजीवन देना है। मैं उससे विमुख नहीं हो सकती। निर्माण में, सृजन में गति देना मेरा उनके प्रति कर्त्तव्य है। यदि इस कर्त्तव्य की पूर्ति में कोई बाधा आती है, तो वह मेरे लिये सह्य नहीं है। मेरे लिए उन क्षणों में यह परम आवश्यक होगा कि उस अवरोध के कारण को दूर करदूँ जो इस बीच में आकर गति को रोक दे।

मैं उस वैन्जो को उनके कमरे से उठा कर फेक दूंगी। मैं उसको टुकड़े-टुकड़े कर डालूंगी। उनके आज के जीवन में अब विगत नहीं आ सकता। मैं उनके विगत से परिचित नहीं होना चाहती। मेरे मन में उद्वेग अथवा कोई ईर्षा का भाव नहीं है। मेरे सामने उनकी पत्नी होने के नाते मात्र एक उद्देश्य है कि वे लोकोत्तर उन्नति करें। उत्तरोत्तर प्रगति के प्रवाह में उन्हें अविराम अपनी शक्तियों का योग-दान देना है। मेरे रहते वे बीच में रुक न सकेंगे, रुक न सकेंगे।

मढ़रा बजत मेरैं सोहरो

श्री शान्तिचन्द्र

लोकजीवन के सौन्दर्य की एवं उसकी तेजस्वी गति की अनुभूति कलाकार सदा से करता आ रहा है। उसका व्यक्तित्त्व इस रूप और विक्रम का दर्शन अपने दृष्किोण से करके लोकरंजनार्थ कलाकृति के रूप में समर्पित करता रहा है। वाल्मीकि से लेकर आधुनिकतम कवि तक इस दिशा में अपना अंशदान करते आये हैं। लिखित एवं मान्य साहित्य जहाँ पिंगल और व्याकरण के तटों से साध-साधकर अपनी रसतरंगिणी को प्रवाहित करता आया है, वहाँ लोककवि अपने उन्मुक्त रस निर्भर के प्रवाह में लोक-मानस की स्वाभाविक रसानुभूतियाँ प्रस्फुट करता रहा है। उसका व्यक्तित्त्व वाल्मीकि और व्यास से कम पूजित भले ही रहा हो, भारतीय परम्परा के अनुसार अपने अहम् की ब्रह्माग्नि में अज्ञात हुति करते हुए इस कलासाधना में योगदान करने में वह कभी पीछे नहीं रहा।

व्यास, कालिदास, दण्डी और भवभूति के वास्तविक शब्द क्या थे, इसकी चिन्ता की गयी, उनकी सुरक्षा की गयी और मूल छन्दों को यथासम्भव उसी रूप में प्राप्त किया गया, जैसा कि वह प्रथम रचना के समय था। इस रूप-संरक्षण की रूढ़िवादिता ने इन सब के महाकवि होते हुए भी लोक-स्मृति से इन्हें परे ही रखा। इधर लोकगीतों का लोककवि रीति से मुक्त था। उन्मुक्त वातावरण में निर्बाध गति से अपनी काव्य-मन्दाकिनी मनचाही दिशा में वह प्रवाहित करता चला। उसके पाठ सार्वजनिक सम्पत्ति थे और उनमें युग-युग में अवसर अवसर पर सौन्दर्य वर्द्धन करने की, अधिक व्यंजना और रसानुभूति प्रदान करने की स्वतन्त्रता प्रत्येक सुघर गायक को प्राप्त रही। लोक-गीतों की लोक-भारती का रूप इस प्रकार समाहित रूप से रुचिर प्रसाधिकाएँ प्राप्त करके रमणीयतर होता रहा। लोककवि ने रसराज शृंगार से लेकर

वीर आदि सभी रसों पर अपनी वाणी को मुखरित किया। उसके गीतों में मसिदोष से हीन आर्षवाणी जैसी निर्मलता, कोमलता, चिरनवीनता रही। जीवन से इनका तादात्म्य होने के कारण इनमें सजीवता रही। वातावरण की उन्मुक्तता के कारण इनमें पद-पद पर ओजस्वी प्रवाह रहा।

यह लोककाव्यधारा साहित्य के महाकाव्यों और खण्डकाव्यों की परम्परा के समानान्तर हो लोकस्मृति के आधार की सीमाओं में प्रवाहित हुई। इन्हें समाज के भूल जाने के अभ्यास के कारण महाकाव्य का विस्तार शक्य नहीं था अतः मुक्तक शैली ही लोककवि ने ग्रहण की।

इन लोकगीतों ने मनुष्य और समाज के सम्पूर्ण अंगों को स्पर्श किया है। जीवन के प्रत्येक सजीव क्षण को ये गीत सस्वर करते आये हैं। स्त्री-पुरुष, बाल-प्रौढ़ सभी के कण्ठ इन्हें लय और गति प्रदान करके सार्थक करते रहे हैं। इस दिशा में स्त्री समाज अपनी सभी वयों में अधिक सक्रिय रहा है। आज समय पूर्वापेक्षा द्रुततर गति से चल रहा है। नवीनता की चमक में प्राचीन का अविवेकपूर्ण त्याग हो रहा है। इसी परम्परा का प्रभाव अज्ञात कालक्रम में विकसित हुई इस लोककाव्य निधि पर भी हुआ है। आज से दस वर्ष पूर्व मधुर कण्ठ से निःसृत जिस गीत पुंज का सुनना सरल था, आज उसकी पुनरावृत्ति सरल नहीं रही हैं। एक शून्य–रिक्त स्थान–उत्पन्न हो रहा है और खेद यह है कि इसका स्थान कुछ निम्नतर वस्तु ले रही है।

अस्तु, 'वात्सल्यः दशमो रसः' का उदाहरण हम यहाँ लेते हैं। भगवान् रामचन्द्र के जन्मोत्सव पर तुलसीदास सोहिले गाते हुए और 'पूत सपूत कौसिला जाये, अचल भये कुल राज' कहते हुए लोकमानस के भावों की ही अभिव्यक्ति करते हैं। आर्थिक भावाभाव, बढ़ती हुई जनसंख्या की समस्याएँ कैसी भी बनी रहें—पुरोगामी महिलाओं के संगठन कैसे भी प्रस्ताव स्वीकार करते रहें—औसत स्त्री अपने शरीर की सार्थकता माता बनने में ही मानती है। बुन्देलखण्ड में पुत्र जन्म पर गाये जाने वाले गीतों में आनन्द और उत्सव के साथ पुत्रवती की सार्थकता और उसके 'सोहरे' का वर्णन हृदयस्पर्शी और सुन्दर होता है।

व्रत और साधना से ही सुन्दर पुत्र प्राप्त होता है। सोहरे में ग्रामीण महिला गाती है—

मेरे अंगना में अमुलवा* कौ बिरछा।
राजा आई फूलन की बास,
मैं नाई जानौं एई गुन हैं।
अँगना में ठाड़े ससुर हँस पूछें,

---

* आम।

हो बहू कौन कौन ब्रत कीन्हे,
ललन बड़े सुन्दर हैं।
कातिक अन्हाए अघन नईं तापे
हो ककाजू करे है बिरत ऐंतवार,
मैं नाईं जानौं, एई गुन हैं।
अँगना में ठाड़े जेठ हँस पूछैं, ददाजू हँस पूछैं,
हो बहू कौन कौन फल खाए,
ललन बड़े सुन्दर हैं।
फल तौ खाए मैंने दाख छुहारे और मखाने,
हो ददाजू नारियर खाए मौर मौर[*],
मैं नाईं जानौं एई गुन हैं।

महाकवि शैले की स्काइलार्क जिन करुणतम क्षणों को चिरस्थायी बनाने वाले मधुरतम गीतों को निनादित करती है, बंध्या के वात्सल्य-तृषित हृदय की वेदना भी लोक कवि की मर्मस्पर्शी अनुभूति के माध्यम से इन्हीं क्षणों को अधिक विकसित रूप में, स्पष्टतर स्वर में उपस्थित करती है। इन सोहरों के ही तारतम्य में आनन्दातिरेक की पृष्ठभूमि में लोक कवि की अभिभाषक ग्राम महिला शिशुहीना की व्यथा का वेदना विह्वलता से मधुरतम हुए स्वर में वर्णन करते हुए गाती है—

काए की निबिया[†] काए कौ पेड़ काए सें निबिया झालरी ?
सोने की निबिया रूपे कौ पेड़ मुतियन निंबिया झालरी।
काए को मदरा[‡] काए की झाँझ काए की खाल मढ़ाइऔ ?
सोने कौ मदरा रूपे की झाँझ मिरग की खाल मढ़ाइऔ।
बज मेरे मदरा मधुर झन्कार तेरे बजत मेरैं सोहरौ।

मृदंग अपने बजने में असमर्थता बताते हुए कहता है—

तेरैं का बजहौं मैं बाँझ की पौर, ना तेरैं बारौ न बेधरौ।
मैं तौ बजहौं बबुल राजापौर जिन घर सुधर कुँअर भए।

इसी गीत में दम्पति की व्यथा मार्मिक है।

रूबरे बिरछ मिल मत जो लेयँ, सेभर बिरछ बिसूरियौ
मेरौ जनम अकारथ जाय।

---

[*] फोड़ फोड़ कर। [†] नीम का पेड़। [‡] मृदंग। पहले उद्धृत गीत की भाँति पृष्ठभूमि के लिए मधुरफलप्रद आमवृक्ष के स्थान पर विरोधी तिक्त रसयुक्त नीम के वृक्ष का उपयोग किया गया है।

ना फुल चढ़ैं देवी देवता, ना फुल राउरै* जायँ।
सबरे पुरस मिल मत जो लेयँ, बाँझ कौ पुरस बिसूरियौ
मेरौ जनम अकारथ जाय।

पियरौ† पहर धना‡ बैठीं न चौक, कुरमा£ उजागर ना भए।
कुरमा के अरछित लगे न लिलार, कुरमा उजागर ना भए।
ल्याग्रौ पिया खोलौ कुची तारौ, मुहरैं तौ काढ़ौ राजा डेढ़ सौ,
चलौ हजारी पिया बादेस जायँ, बारौ¶ मोल बिकाइए।
मोल के गोरी धन मुलुआ कहायँ, रहत के असल गुलाम,
अंस के गोरी धन पुत्र कहायँ, इननैं न दिखाए कल के सोहरे।
मार कछोटा÷ धन समद× में कूदीं सूखे सकोरन हात परे,
ल्याग्रौ छुरी पिया छोलौ मेरी कूँख, जानै न दिखाए कल के सोहरे।
बाँझ कौ लीपौ पोतैं मैलो न होय भरी रे गघर नई रीतियै,
तातौ बासौ धरौ बिलखाय, बारौ न ठिन कै न माँगियै।
चलौ हजारी पिया घर खौं हो जायँ, करम लिखौ सोइ पाइयौ।

ग्राम महिला का संगीत केवल मनोरंजन का साधन ही नहीं है। मनुष्य के हृदय की स्वाभाविक वृत्तियाँ, उच्च अथवा निम्न, उनमें चित्रित होती हैं। पारस्परिक अभाव अभियोग इनमें अभिव्यक्ति प्राप्त करते हैं। जेठानी के यहाँ पुत्र जन्म पर देवरानी बिना बुलाये जाने पर अपमानित होती है—

जेठनियाँ कैं भए नन्दलाल कहौ तो पिया देख आएँ।
धन बिना बुलाईं जिन जाऔ मान घट जायँगे।
पिया कौ कहौ नईं मानौ सखिन संग रिंग चलीं।
सासों खों डारी है पिढ़िया+ ननद खौं बैठकी।
सुन बिछियन झनकार ललन मुख ढक दए।
रानी दिन के सौ सौ जाओ घरईं मुख देखिऔ।
इतनी के सुनतन दुलइया लौट कर आइऔ।

इस अपमान से दुखी होकर वह काशी के पण्डित बुलवाकर अपने पुत्र न होने के कारण और उपाय पूछती है और उनसे जानकर गोदान, भानजी का ब्याह और रविवार के व्रत आदि का साधन करके पुत्र लाभ करती है। जेठानी उसका पुत्र देखने जब आती है तब देवरानी का व्यवहार पुलकित कर देता है—

---

* राजमहल। † पीलावस्त्र। ‡ सुन्दरी। £ वंश। ¶ बालक। ÷ धोती समेटकर बाँधकर। × समुद्र। + छोटे पायों की मूँज से बुनी कुरसी।

सुन बिछियन की झनकार ललन मुख खोल दए।
जीजी ललना हैं तुम्हारे नितई मुख देखिऔ।
जीजी गारीं चाए दै लेतीं बोल नईं बोलतीं।

लोककवि अभ्यास साधित क्षमता से सम्पन्न कवि से कुछ अधिक ही व्यंग्य और विनोद में रुचि लेता है, उसके कोमल क्षणों को लोकस्मृति के आसन पर प्रतिष्ठित करके चिरस्थायी बनाता है। पत्नी जब पति के पास जाती है तो वह महंगा बनता है, इसका उत्तर पुत्रवती होने पर वह कैसा मजेदार देती है—

ऊँचीं अटरियां पानन छाई पवन चलै पुरवाई।
होंईं हजारी पिया सेज़ लगाई, गोरी धन पौढ़न आई।
कौन पठाईं धना तुम चली आईं, को तुमरौ राखैगौ मान।
ज़िठानी पठए पिया हम चले आए, तुम पिया राखौगे मान।
हमरौ तो गोरी सीस धमकै हमें तेरौं कछु न सुहाय।

कुछ साल बीतने पर और 'धना' के पुत्रवती बनने के पश्चात—

ऊँची अटरियाँ पावन छाईं पवन चलै पुरवाई।
होंईं गोरी धन सेज लगाई, हजारी पिया पौढ़न आए।
कौन ने पठए पिया तुम चले आए, को तुमरौ राखैगौ मान।
भवजा पठाए हम चले आए, तुम धन राखौगी मान।
हमरौ तौ राजा पिया ललना रोवै, हमें तेरौ कछु न सुहाय।
चंदा पै राजा पिया खेती करहौं, सूरज पै खिरियान।
ससुर कक्काजू कौं हाकिम कर हौं जेठ बड़े पटवारी।
देवरा ललाजू कौं साना* करहौं, तुमें पिया करहौं किसान।
भरी कचैरिन मार दुआ हौं, रनाहौं अटरिया कें बोल।

पति को बाँधकर सास के सामने चोर पेश करने, जेठानी द्वारा देवर को और कसकर बाँधने की सिफारिश और ननद द्वारा इसके लिए गाली देने का और फिर पति द्वारा मनाने का यह सोहरा कम विनोदपूर्ण नहीं है।

खिरकिन बैठी दुलहिया, सास कौ मन गओ।
नैना हैं रतनारे जोवन दोउ साँवरे,
बेटा बसै वृन्दावन गरभ काँ सें आइओ।

सास के इस आक्षेप का यह उत्तर—

'दिन कैं वृन्दावन रात घर आइओ'

---

* जमींदार का सिपाही।

पर्याप्त नहीं होता है और दुलहिया 'चोर' को 'भभाजू' के न्यायकक्ष में सशरीर उपस्थित करने की व्यवस्था करती है—

मेरे पिछवारैं बढ़इया, तौ मेखैं गढ़ ल्याइऔ।
मेरे पिछवारैं पटवा को, तौ डोर ले आइऔ।
अटरी सैं उतरी भभाजू आँजन मंजन करैं,
उनकौं चोर बताइऔ।

बहू जे तौ हैं बेटा हमारे तौ कस जिन बाँधिऔ,
ढीले बँध बाँधिऔ।

अटरी सैं उतरीं जिठानी देवरत न चित गऔ।
बहू जे तौ हैं लाला हमारे तौ कस बँध बाँधिऔ,
ढीले जिन बाँधिऔ।

अटरी सैं उतरीं ननदिया बीरनत न चित गऔ।
भौजाई जे तौ हैं भइया हमारे तौ कस जिन बाँधिऔ,
ढीले बँध बाँधिऔ।

बाप तेरौ डोम डुमारौ, मतारी तेरी डोमनी,
भैया तेरौ हैं नट बेंड़िया, भौजाई नट बेड़नी।
जिनकी जाईं तुम बिटिया कहाऔ—दुख देखिऔ,
बांधे तुमने हमरे भैया तौ ढीले बँध बाँधिऔ।
इतनीं सुन कैं भौजाई अटरियन चढ़ गईं,
दै लए झाँझन किबार साँकर दै लई लोहे की।

'ननदिया' के रोषपूर्ण आक्षेपों की खीझ 'दुलहिया' अपने चिरचोर 'महाराज' पर उतारती है और 'वीरन' के प्रति बहन के निसर्ग स्नेह से प्रेरित निष्कलुष अपशब्दों का परिमार्जन अभ्यस्त चापलूसी द्वारा 'महाराज' करते हैं—

बाहर सें आये महाराज अटरियन चढ़ गये,
खोल देऔ झाँझन किवार होरिल* मुख देखिऔ।
बाप मेरौ डोम डुमारौ मतारी मेरी डोमनी,
जिनकी जाईं हम बिटिया—कहा मुख देखिऔ।
बाप तेरौ देश कौ राजा मतारी तेरी रानियाँ,
भैया है सूबेदार भौजाई सूबेदारनी,
जिनकी जाईं तुम बेटी होरिल मुख देखिऔ।

---

* पुत्र।

ननद से भाभी नाराज हो जाती है कि न तो वह जब बालक गर्भ में था तब ही ग्रायी ग्रौर न प्रसव के बाद ही ग्रायी; तो नाइन को 'बिल्हा' (भिगोए हुए चने) ग्रौर 'कोंहरी' (उबाले हुए गेहूँ) बाँटते समय ननद के यहाँ न देने की हिदायत देती है। लेकिन नाइन भूल से ननद को दे ग्राती है। नाराजी इस हद तक है कि वह ग्रपने पति को ननद के घर जाकर बिल्हा ग्रौर कोहरी वापस लाने को भेजती है। बहन भाई से कहती है—

भैया लई हैं भनैजा चबाय कहाँ सें ल्याऊँ कौंहरियाँ,
भैया होने दो भनैजा कौ ब्याह, में दूनी ब्रहौरौं कौंहरियाँ।
मैं तौ काए के बिल्हा बनाऊँ काए की राँधौं कौंहरियाँ,
मैं तौ सोने के बिल्हा बनाऊँ मुतियनि की कौहरियाँ।
मैं तौ धर हौं नाइनियाँ के मूँड़ तें लै लै टुचनियऊ कौंहरियाँ।
मेरे तुम भैया मूरख ग्रजान भौजाई बंगालिनिया,
भैया जोरू के ग्रसल ग़ुलाम भौजाई बंगालिनिया।

इसमें लोककवि कैसा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करता है कि बहन भाई को तो सीधा ही बताती है ग्रौर भाभी को टुच्ची ग्रौर बंगाल की जादूगरनी कि जिसके वश में होकर ही भाई मूर्ख बन गया है। भाई तो उसका सहोदर है न।

सांसारिक 'काज परें कछु ग्रौर है, काज सरें कछु ग्रौर' व्यवहार भी उससे ग्रछूता नहीं रह गया है। राजा दशरथ चौसर खेल रहे हैं; रानी का बुलावा ग्राया। राजा हँस कर पूछते हैं कि रानी को क्या तकलीफ है। रानी संकोच कर के भी कहती है—

पींड़रियाँ ग्रधिक पिरायँ, कमर मेरी दूखै, कण्ठ मेरौ सूखै—सुघर दाई चाहिए।

राजा सुघर दाई तलाशने पहुँचते हैं। दाई शर्त्तें तय करती है—

तेरी धन हाथ की गाढ़ी जीभ की पतरी तौ तेरे संग ना चलौं,
लाला बदन बदौं सोइ लैग्रों तौ तेरे संग रिंग चलौं।

राजा उसे प्रत्येक सुविधा ग्रौर पारितोषक का ग्राश्वासन देकर लाते हैं ग्रौर दाई सेवा करके रानी का प्रसव कराती है। ग्रपना काम निपटते ही रानी दाई से रुख बदल लेती है—

दाई कौ हँड़िया सौ मूड़, मथनियां सौ पेट,
खुरपिया से दाँत—हुरिल मेरौ डरपियौ।

ग्रौर जेठ ग्रौर देवर से पिटवाने ग्रौर त्रास देने की धमकी देती है—ग्राँगन में कीच मचाने की कहती है कि जिससे दाई फिसल कर गिर पड़े। इसी बीच समाज के नित्य साधु व्यवहार करने के सत्य को संगीतमय करते हुए वह गाता है—

बाहर सैं आए साहब राजा—दाई सैं को लड़ै,
चाँउरन की मौंट* बँधायहौं, चुनरी उढ़ायहौ,
पलकियाँ बिछायहौं तौ बिदा करायहौं।
दाई मुख भर देत असीस सोहागिल फिर जनै,
रानी पेट ए ऊपर पेट सोहागिल फिर जनै।

लोककवि की अनुभूति का किसी भी लिखित महाकवि से अधिक व्यापक रूप में सम्पूर्ण जगत पर अंकन होता है। पुत्र लाभ का आनन्द मनुष्य एवं मनुष्येतर समाज में वह प्लावित करता है और प्रसूता संसार के 'सातौं' सुख प्राप्त करे ऐसी वह मंगल कामना करता है।

घिस घोर चन्दन लीप आँगन, कौरिन लटकत साँथिए,
कौरें जो धन के साँथिए बिराजैं, आंगन झमकैं कुलबहू।
हतसार धन की हतनी बियानी, बैरी दुसमन जर मरैं,
उटसार धन की उटनी बियानी, छोटौ सौ उटला उर धरौ।
घुड़सार धन की घुड़िया बियानी, अलल बछेरा उर धरौ,
गौसार धन की गैया बियानी, छौटौ सौ बछुला उर धरौ।
सारैं धन की भैंस बियानी, भूरी पड़िया उर धरौ,
छिरसार धन की छिरिया बियानी, मौड़ी मौड़न घर भरौ।
पिंजरा में धन की मोर बियानी, गजमुतियन के पछ करैं,
चितसार धन की बहुआ जनानी, नाती पन्तिन घर भरैं।
ससुरार धन की धिया जनानी, पछ पँजीरी दै घालियौ,
सनसार कौ सुख आज देखौ कुँअर बहू लै कैं आइयौं।
एक नींद भर सखी आज सोई धियर समद दई सासरैं,
एक भूख भर सखी आज जेऔ, बहुआ प्यार परोसिऔ,
सुख सेज साहब, गोद बालक, धन्न घरी दिन आज के।
ऐसौ बधाऔ सखी जान न दै हौं, मोल लै हौं—
एक के दस लाख दै हौं, सबरे शहर में घुमड़ रहौ।

---

* बड़ी पोटली।

मन की बात बताऊँ

— श्री अंचल —

सूखे होठों में घिर आनेवाली मन की बात बताऊँ,
पल भर के छोटे सपने में क्या पाकर मैं प्यास बुझाऊँ ?
पन्थ कहाँ अनमिल जीवन का प्रलय पिपासा को मुड़ जाता ?
यह उन्मत्त लपट तृष्णा की—प्यार किये बिन रहा न जाता।

किन वन फूलों की चन्द्राहत गन्ध लिये आता उजियाला,
ओस भरी किस दुखती चोली की चिनगारी की यह ज्वाला ?
किस मतवाली के मीठे दुःस्वप्न लगे झंझा से गाने,
आज सजल पथ पर सतवन्ती कौन चली चीत्कार बिछाने ?

छूँछी मुस्कानों में किसकी उठते आज कसक के बादल,
कौन पुजारिन फिर अकुलाती रूप भरी कलशी ले प्रतिपल ?
विह्वलता किसकी अतृप्ति की कुहर म्लान छाया कर लाती,
किसकी कजली की तन्मयता उमड़ घुमड़ यों घिरने आती ?

लेकर जलन भरे तारों की सन्ध्या का अवसाद अचेतन
किस निर्झरिणी के आँगन में डूबा जाता है सुधि का मन ?
जीवन के अवरुद्ध पटों का दीन हताश अतिथि भरमाया
किस अतीत से फिर एकान्त क्षणों में अंकित होने आया ?

उस रसवन्ती मायाविन को प्यार किये बिन रहा न जाता,
मानो जन्म मरण के भी उस पार चलेगा उसका नाता।
दूर, क्षितिज के वातायन में प्राणों की वंशी की वाणी
रन्ध्र-रन्ध्र से पूछ रही वह चन्द्रकिरण रेखा पहचानी।

तृषावन्त रोती बयार, यदि रोने का अवकाश न पाती
तो मेरी सुनसान सहेली सी कुछ फूल उमस उफनाती।
कोयल के गीले गीतों-सी हूकभरी पगध्वनि सुन पाता
मन की बात बताऊँ फिर तो प्यार किये बिन रहा न जाता।

जीवन की तीखी दोपहरी में व्याकुल हो उठता ध्यानी,
क्या पाकर मैं प्यास बुझाऊँगा सपनों का चिर सन्धानी ?
चुप बैठूँ भी तो मैं कब तक, गाऊँ भी तो कितना गाऊँ ?
सूखे होठों में घिर आनेवाली मन की बात बताऊँ।

एक रेखा चित्र

— श्री रांगेयराघव

आगरे की बड़ी जेल पर सूरज की शाम की किरनें पेड़ों और टीले की छाया में से छनछन कर गिरतीं हैं और फिर दीवार के विशाल वक्ष पर रेंगती सी ऊपर चढ़ती हैं और अन्ततोगत्वा आकाश में कुछ देर पीली पीली सी झूमती हुई, पश्चिम में डूब जाती हैं। उस समय ऐसा लगता है जैसे सूरज कहीं इन पेड़ों के या बेरियों के झाड़ों के पीछे ही छिप गया है और थिरकता अंधेरा सा आने लगता है। पश्चिम के विशाल गड्ढे में जब बरसात में पानी भर जाता है तब उसमें से निकली काली टहनियों को देख कर लगता है कि दिन में जो अंधेरा सूनी टहनियाँ बनकर रह जाता है, वही अब मौका मिलते ही फैलने लगता है। वहीं मैदान सा पड़ा है। उसमें सिपाही कवायद करते हैं, कभी कभी कोई औरत भेड़ बकरियों को पीपल की छाया में बैठकर चराती है, और अपने बच्चे को बिजली के कुए पर चढ़ने से बरजतीं है, और कभी कभी क़ैदी जेल के डाक्टर के आलीशान बंगले के लहलहे बगीचे में काम करते हैं, या सड़क पार करके क्वार्टरों के सामने के सूखे मैदान में के ऊँचे कुए से पानी उलीचते हैं। जाड़ों की धूप में पुराने कैदी डंडों पर बैठकर डंडाबेड़ी से लैस साथियों के कंधों पर हाथ धरकर आते ज़ातों से बीड़ी या पैसे मांगते हैं, या फिर गाते हैं, और उनकी उस बरबाद ज़िन्दगी की आवाज जब जेल की दूसरी दूर की दीवार से टकराती है तब एकाध साधू भजन गाता है। साधुओं ने जेल की दीवार के बराबर बगीची, मन्दिर बना लिये हैं जहाँ सिपाही अपना भाग्य पूछने आते हैं।

यह जिसके बाहर की तस्वीर है, उस केन्द्रीय कारागार के भीतर ज़िन्दगी का दूसरा ही पहलू है, यह उदयवीर को तब ही पता चला जब वह एक दिन यहाँ मेहमान बनकर आही गया। आने का कारण इतना सीधा सादा था कि उसके बारे में जब उदयवीर सोचता है तो उसे लगता है कि यह सारी दुनिया आज एक झूठ पर कायम है। वह जूतों के कारखानों में काम करने वाले मज़दूरों की यूनियन बनाने गया था। मालिकों ने आजकल चमड़े की जगह गत्ता लगा कर सारी दुनिया में अपने व्यापार की ठिठोली करायी थी, मांग कम हो गयी थी। चुनांचे कारखानों के बन्द होने की नौबत आ गयी थी। मालिक अच्छा माल बनाकर उतनी ही क़ीमत में बेचने को तैयार नहीं थे क्योंकि उसमें नफ़ा कटता था। मज़दूर बेकार होने लगे। उदयवीर ने मज़दूरों की यूनियन

बनायी । सरकार ने उसे बाज़ार से हटाकर जेल में पटका, और सोचा कि यों वह ख़त्म हो जावेगा । पर बग़ावत का तो एक भी नारा एक बीज है जो इन्सान के दिल की उपजाऊ धरती में पैठता है, पर उसकी जड़ें पीढ़ियों में उतरती हैं, फलती फूलती हैं और तब वह बीज विशाल वृक्ष बन जाता है, जैसे एक बूंद का नारा, एक दिन महानद का सा निर्घोष बन जाता हो और तब वह नहीं रुकता, नहीं रुकता ।

परन्तु उदयवीर की व्यापक चेतना को जेल की दीवारें बन्द किये हैं और यह भी जीवन का एक सत्य है । वह गद्दों पर नहीं है । वह सोच रहा है कि इस समय बाहर कदम्बों पर रोंए फूट आये होंगे, हवा में गन्ध होगी, आजकल दिल्ली दरवाज़े के छोटे से ताल पर सतरंगी सांझ उतरती होगी, और वह जेल में बैठा है । यह तो ग़नीमत है कि वह क्वांरा है, घर की उसे कोई चिन्ता नहीं सता रही है । पर जब मिल की हड़ताल हुई थी और मथुरादास की क़ैद के वक्त उसकी बीबी ने चार बच्चों की भूख न सह सकने के कारण पुल पर से कूद कर जमुना को अपनी जान दे दी थी, तब वह जेल की दीवारें उसको पागल बना देती थीं । उदयवीर के पीछे बुद्धि है, अपनी व्यक्तिगत मजबूरी नहीं, जीवन में स्वार्थ नहीं, यश की नीच लालसा नहीं । रंग का काला है, नीचे का होठ कुछ मोटा है । दोनों भौएं पतली हैं, मूछें हैं तलवार-छाप । और हाथों पर बेहद बाल हैं, काले काले जो सीने तक हरहराते हैं और स्याही के छिलने पर भी ठोड़ी और गालों पर स्लेटी रंग छोड़ जाते हैं ।

उदयवीर की रूमानी दुनिया अपने आप को कपड़ों की तरह बनाती जा रही है, और ज़िन्दगी की असलियत घाट पर कपड़े धोने वाले धोबी की तरह, उन कपड़ों को पटक पटक कर धो रही है । जितनी ही तकलीफ़ों के झटके लगते हैं उतनी ही वह रूमानियत अपनी गन्दगी छोड़ती जाती है, और विचारों के वस्त्र साफ़ होते जाते हैं, जिन्हें जब तरतीब की इस्त्री के नीचे से निकाल कर पेश किया जायेगा, इन्सानियत पहनते में गौरव का अनुभव करेगी ।

और जब से उदयवीर यहाँ आया है, सुबह शाम आज़ाद हिन्दुस्तान का झंडा चढ़ता-उतरता सूरज को सलामी देता रहा है । इतवारों के लिए सनीचर को ही मिलने वालों की भीड़ केन्द्रीय कारागार के सामने बनी तिदरी में, या तिदरी के सामने पड़ी रही है, वहीं एक काना आदमी बक्स में से बटन, कंघे बेचता रहा है, वहीं एक सेठ की आलीशान कोठी की बिजलियां रात रात जलती रही हैं, और सब कुछ देखने को ऐसा चलता चला जा रहा है, जैसे कुछ नहीं, सब ठीक है, पर उदयवीर समय के कुठार की तेज़ लपलपाती धार को देख रहा है और अनुभव कर रहा है कि एक नयी दुनियाँ आने वाली है और वह जब आयेगी तब यह सारी मुसीबत भी चली जायेगी ।

पर आज उसका मन क्यों नहीं लग रहा है । जब से वह आया है, वह काली

बरौनियों का मज़बूत आदमी जो जब हँसता है तो डर लगता है, उसे बार बार याद आ रहा है। उस आदमी के हाथों की नसें उफनी हुई हैं और नाख़ून देखने में ऐसे चौड़े और सख़्त हैं कि वे शायद तसले में छेद कर देंगे। उसके गाल पिचके हुए हैं और जब वह उकरू बैठ कर कंधों पर हाथ रख कर हाथों की, सीने पर, सलीब सी बना लेता है तब ऐसा लगता है जैसे कोई चीता झपटने वाला है। पहले ही दिन उसने उदयवीर को देखा तो हँसा। उसकी हँसी में उदयवीर के लिए दर्द था या वह उसका मज़ाक उड़ा रहा था, यह वह आज तक नहीं जान पाया था। उसके साथ पांच आदमी और थे। एक सुस्त, दूसरा मस्त, तीसरा चुस्त, चौथा पस्त, और पांचवा कुछ नहीं। ये छह आदमी एक मज़बूत पंजे की छह उंगलियों की तरह सुबह खुलते और तब प्रकारान्तर से हर एक का उंगलियों की ही भांति बल भेद प्रगट हो जाता, पर जब शाम को वे सब आकर एकत्र होते और मुट्ठी बन्द हो जाती तो उदयवीर को ऐसा लगता कि यह जीवन एक लाचारी है, क्योंकि इसमें वेदना के अतिरिक्त और कुछ नहीं। आदर्शों की छाया में यथार्थ पलता है, पर यथार्थ की छाया में आदर्श बढ़ता है। उदयवीर ने एक दिन उस मजबूत आदमी को जीत लेने का निश्चय किया। वह स्वयं चतुर था। और मज़बूत आदमी के दाँत व्यंग्य से चमके—"बाबू! अब कौन से देश के लिए जेल आये हो? पहले तो कांग्रेस वाले आया करते थे।"

उदयवीर ने उसके कन्धे पकड़कर कहा—"तो तुम सब तब से जेल में हो?"

इस एक वाक्य में कितनी समवेदना थी कि उस मज़बूत आदमी ने अपने साथियों की ओर देखा जो चुपचाप खड़े थे। उनके हाथ ऐसे लटके हुए थे जैसे गिद्धों के पंख खुल जाते हैं। वे चौंके थे, पर चुप थे। ऐसा लगता था जैसे विजली की तरह कड़क कर, हुमस कर, बरस जाने के पहले, बादल टकराने को तैयार हो रहे हों।

"हर आदमी" उदयवीर ने मुड़कर किसी ओर न देख कर कहा—"शरीफ होता है, लेकिन जिन्दगी की मजबूरी उसे गुण्डा और बदमाश बनाती है। बनाती है क्योंकि जिनके हाथ में कानून है, वह उनसे टक्कर नहीं खाता।"

"शराफत" पस्त आदमी ने फुफकार कर कहा—"शराफ़त!"

उसमें व्यंग्य था। और मस्त आदमी ने कहा—"हमने गुनाह किया है, उसकी सज़ा हमें मिलनी ही चाहिए। क्यों किया है हमनें पाप, क्योंकि हम भले बन कर नहीं रह सके?"

"भले बनकर?" मज़बूत आदमी ठठा कर हँसा और उसने अँगड़ाई ली। हड्डियों के चटचटाने की आवाज़ आई और फिर कोई नहीं बोला। वे सब चुप होगये।

उदयवीर ने कहा—"चोरी और बेईमानी का पैमाना जेल ही है तो बाहर जो सफ़ेदपोश चोर और डाकू हैं उनका कौन जिम्मेदार है?"

पस्त आदमी ने कहा—"जिन्दगी तड़पने के लिए है ।"

"झूठ है ।" उदयवीर ने कहा ।

"अभी तुम लड़के हो बाबू ।" चुस्त आदमी ने कहा—"सहना सहज नहीं होता ।"

और तब उस सुस्त आदमी ने और भी सुस्ती से कहा—"जो है सो तो है ही । और कुछ नहीं हो सकता ।"

और उदयवीर ने देखा कि उनके सामने मजबूत आदमी ऐसा दिखाई दिया, जैसे रेल के खाली डिब्बों के सामने एक इंजिन, जिसकी भाप गरम नहीं है, जिसमें जिन्दगी का कोयला दहक दहक कर जल चुका है, राख हो गया है ।

उदयवीर सोच रहा है, सोच रहा है । जिन्दगी एक सहज रास्ता है, उनके लिए ही, जो चाहते हैं कि अपने बोझे को ढोते समय, केवल सुख का अनुभव करें । और सुस्त आदमी की आखिरी बात उसके कानों में गूंज रही है ।

'आदमी का मौत पर कोई बस नहीं । वह जब चाहे मर सकता है । कोई आदमी भी मौत के लिए फुर्सत नहीं पाता, क्योंकि उसे हमेशा काम बने रहते हैं । जिन कामों से घबरा कर वह मौत को बुलाता है, वे भी उसे बहुत प्यारे होते हैं । मौत को बुलाना सिर्फ एक कहने का तरीका है कि वह जीते जी ही सब काम करने का आसान रास्ता क्यों नहीं निकाल पाता' ।

तब मस्त आदमी ने कहा था—"तू सोचता क्यों है ? अगर तुझे जीने में मजा नहीं आता, तो मर क्यों नहीं जाता ?"

चुस्त आदमी की आँखें चमक उठी थीं—उसने कहा था—"अपने आप मरना खुदकुशी है और वह गुनाह है । पाप है ।"

चौथा आदमी अपनी दर्दंदिल पस्ती को लेकर शायद पहली बार मुस्कराया और उसने अपनी अंगुलियों को चटका कर कहा था—'खुदकुशी पाप है । क्यों ? क्योंकि जिनके हाथों में जिन्दगी की लगाम है वे हम जैसे घोड़ों का मर जाना ठीक नहीं समझते, क्योंकि उनकी गाड़ी फिर चलैगी कैसे ?"

पाँचवा आदमी कुछ नहीं बोला क्योंकि उसका जैसे कोई व्यक्तित्व ही नहीं था । उसने बारी-बारी से सबकी ओर देखा फिर ऊपर के अनगढ़ दाँतों को दिखाकर नीचे के खुरदुरे दाँतों पर जमाकर पलकें झुकालीं । मजबूत आदमी ने उदयवीर की आँखों में झांक कर देखा, जैसे वह उसके भीतर के उस इन्सान को देखना चाहता था, जिस पर कोई आवरण नहीं थे, जो इन समस्त आदर्शों का पिता था, जो इस घुमड़न में नयी भोर की चाहना थी, जो दूर तक के फैले आस्मान में विद्रोह के फटफटाते पंखों के सहारे तैरती आशा का प्रतीक था, जो समुद्र में कभी अचल अट्टहास

करता था, कभी मोतियों को सीपों की हथेलियाँ खोल खोल कर बिखरा देता था। वह वही इन्सान था जो सबमें एक था, और एक दूसरे के पास आना चाहता था, जिसे सब तरह वे छोटेपन और कमीनेपन से नफरत थी। वह इतना महान था, जैसे हजारों फूलों की गन्ध से महकता हुआ जंगल जिसमे सदा ही आशा का मोर, स्नेह के बादल की गरज सुन कर सिर उठा कर कूका करता है। उदयवीर के मन में अनेक विचार उठे। मज़बूत आदमी ने दीवार से सिर टेक कर छत की ओर देखते हुए कहा "तुम समझे बाबू! इसने क्या कहा? वह कहता है कि आदमी एक दूसरे के लिए जिन्दगी चाहता है। नहीं, वह झूठ कहता है।" उसका स्वर उठा—"वह अपने लिए जीता है। अपने लिए। मुझे जेल में पन्द्रह साल हो गये, मगर मैं फिर भी जी रहा हूँ। क्यों? मौत आयेगी और मुझे अचानक ही ले जायेगी। तब तक मैं इस मिट्टी से मुहब्बत करके अड़ रहा हूं और यह कहता है कि हमको जिलाया जा रहा है। पर तू जीता क्यों है?"

मस्त आदमी जैसे तैयार था। उसने कहा "क्योंकि यह धोखा, धोखा देने वाले के भीतर से उतर कर, धोखा खाने वाले में उतर आया है।"

उदयवीर सोच रहा है। राजनीतिक भाषा में पस्त आदमी कहता है—"जिनके हाथ में वर्ग स्वार्थ है, वे दरिद्र और दीनों को जीवित रखना चाहते हैं, ताकि वे उनके शोषणों को स्वीकार करते रहें। वह कह रहा है कि आत्महत्या भी उनके सामाजिक नियमों, धर्मों और शोषण प्रक्रम के प्रति विद्रोह है। क्या वह ठीक है?"

"तू बोलता क्यों नहीं?" मज़बूत आदमी ने व्यक्तित्वहीन पुरुष से कहा, जिसके दांत अब होठों में से कुछ कुछ दिखने लगे थे।

"नहीं बोलता", उसने धीरे से कहा, "क्योंकि तुम दोनों ठीक कहते हो। जिन्दगी अपने आप में अच्छी है, प्यारी है, और आदमी ज़िन्दा रहना चाहता है। उसकी इस कमजोरी या ताकत का फायदा वे लोग उठाते हैं जो उसे जोतते हैं।"

उदयवीर ने सुना। वह चुप हो गया। सच कहा है। क्या उसमें व्यक्तित्व की हीनता है? बात से तो ऐसी नहीं लगती। घड़ा खाली लगता है जरूर, पर जब उसे औंधा किया गया है तो उसमें से तो प्यास बुझाने लायक पानी निकला है। पर अब वह मुस्कराया। ऐसे, जैसे वह कुछ नहीं है, वह तो कभी भी कुछ नहीं था, शायद होगा भी नहीं। और यही उसका कुछ नहीं का रहस्य है।

मजबूत आदमी इस समय अत्यन्त निर्बल सा दिखाई दे रहा है। वह घूम रहा है, बार-बार। जैसे सर्प अपनी मणि के पास डोल रहा है, जैसे चीता अपने पास मरे पड़े मृग के पास घूम रहा है। यह क्या है? वह इतना कमज़ोर क्यों दिख रहा है?

उदयवीर ने कहा—"तुम विश्वास नहीं करते, तभी तुममें जीवन डाँवाडोल हो उठा है। मुसीबतों में आदमी को कौन जिन्दा रखता है? आशा!" उदयवीर ने सिर

उठाया और पस्त आदमी ने और भी सिर उठा कर कहा—"छलावा। आज नहीं कल, कल नहीं परसों, जमी है कभी भी हथेली पै सरसों ?"

बाकी लोग हँसे। वह हँसी नहीं थी, क्योंकि बेड़ियाँ झनझनाईं। और फिर जेल की कड़ी दीवारें उनकी काया के नीचे कुलबुलाने लगी थीं। उदयवीर का सिर झुक आया। मजबूत आदमी की पलकें भीग गयी थीं। उसने अन्त में कहा—"वे हमें इस्तैमाल करते हैं, पर हम होते भी तो हैं।"

उदयवीर के होठों पर मुस्कराहट दिखाई दी।

उस दिन फिर वे नहीं बोले। आज उदयवीर का मन फिर छटपटाया है और वे फिर इकट्ठे हुए हैं। आज आकाश में घटा गरजी है। आज हवा जेल, और जेल के बाहर के सूनेपन को एक किये दे रही है। जेल के बराबर के गढ़े में लबालब पानी भर गया है और मेंढ़क और झिल्ली अपनी अनवरत टर्र-टर्र और झनकार से अँधेरे को भारी किये दे रहे हैं, और भी स्याह किये दे रहे हैं। सामने जो सन्तरी घूम रहे हैं वे भी आश्वस्त हैं. क्योंकि यह पाँचों और वह व्यक्तित्वहीन छठा, कभी भागे नहीं, और भागेंगे भी नहीं। हाँ यह नया जो आया है, वह नया है। भारी जूतों की पगध्वनि उसकी अबाध गति को रोक देने के लिए काफी है। आकाश में कभी-कभी बिजली चमक उठती है, काँपती है और जेल में शमशीर-सी चमचमा कर बादलों की म्यान में छिप जाती है।

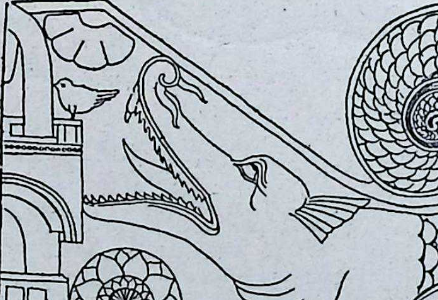

सागर की पैंदी के कुछ विचित्र शिकारी

— श्री ओम्प्रकाश

सागर की पैंदी को सुनकर ही कुछ लोग चौंक पड़ेंगे। आजतक किसने सागर की पैंदी को देखा है ? पर यह बात सही है कि सागर की तलहटी है और उसकी इस पैंदी पर पाये जाने वाले जलजीव भी हैं। हाँ, यह सच है कि मानव ने अपने नेत्रों से सागर की छह मील गहराई पर स्थित तलहटी को नहीं देखा है, किन्तु वैज्ञानिक ने अपने सूक्ष्म और कोमल यन्त्रों द्वारा सागर की तलहटी तथा वहाँ पर पाये जाने वाले चित्र विचित्र जीवों के चित्र भी ले लिये हैं। इनके व्यवहार को देखकर अपने आप ही मुख से निकल पड़ता है कि वास्तव में सागर के ये जलजीव बड़े ही विचित्र हैं।

सागर की तलहटी ही में क्या, जल की सारी सतह और गहराइयों पर जो भी जलजीव पाये जाते हैं वे मांसाहारी हैं। इन्हें खाने के लिए सागर में सिवाय जल के और कुछ नहीं मिलने के कारण ये अपना पेट भरने के लिए आपस में ही एक दूसरे का शिकार करते हैं। इसीलिए सागर का प्रत्येक जीव भोज्य और भोजक साथ-साथ ही है। जहाँ वह अपने खाने के लिए अपने से किसी दुर्बल जलजीव को शिकार बनाता है वहाँ वह अपने से किसी बड़े जलजीव का शिकार बनता भी है। इस प्रकार वह शिकारी भी है और शिकार भी, फिर चाहे वह ६० फीट लम्बा ह्वेल जैसा जीव हो या एक चौथाई इंच के छोटे आकार का कोपपोड।

यह जानकर और भी आश्चर्य होता है कि इतने विशाल एवं प्रबल लहरोंवाले भयंकर सागर में भी बहुत ही धीमी-धीमी चाल से चलने वाले या रेंगनेवाले जीव भी 'शिकार' करते हैं। इनमें से कुछ जीव तो चल भी नहीं पाते, परन्तु शिकार वे फिर भी करते हैं। इन जीवों से सागर की सारी तलहटी ही भरी पड़ी है। इसका कारण भी स्पष्ट है। सागर की तलहटी में इतना अधिक खाद्य पदार्थ भरा रहता है कि वहाँ के जीवों को हाथ-पैर चलाने की आवश्यकता नहीं होती—मुख खोला और खाद्य पदार्थ अपने आप उनके मुख के अन्दर चला गया। कुछ जीव तो इतने आलसी होते हैं कि वे अपना मुख खोलना भी पसन्द नहीं करते अथवा उनके मुख होता ही नहीं है। वे अपने वाह्य शरीर के आवरण द्वारा ही अपने चारों ओर इकट्ठे खाद्य को पचाते रहते हैं।

सागर की तलहटी में जल में लवण और खनिज सघन हो जाते हैं। कीचड़ और रेत में द्विपरमाणु नामक वनस्पति होती है। एक वर्ग इंच में लगभग ७ करोड़

द्विपरमाणु या डाइएटम आते हैं। इनको खाकर सागर की तलहटी के अधिकांश जीव-समूह जीवन यात्रा चलाते हैं। इन जलजीवों को देखकर कोई भी यह नहीं कह सकता कि यह किसी प्रकार के प्राणी हैं। उनको देख कर तो यही प्रतीत होता है कि ये रंग-बिरंगे फूल हैं। पर इनकी क्रियाओं को सूक्ष्मता से देखने पर ही इनके जंगम होने का रहस्योद्घाटन होता है।

सागर की पेंदी में गतिवान होने की या चलने-फिरने की आवश्यकता नहीं के बराबर होती है। इसीलिए सागर की पेंदी के जीव गतिहीन और शान्त जीवन व्यतीत करते हैं। वे इसी प्रतीक्षा में पड़े रहते हैं कि कब भोजन उनके मुख के सामने उनके प्रभाव-क्षेत्र में आवे और वे उसे हड़प लें। इस प्रकार के जीवों में ओक्टोपस नाम का एक जलजीव भी है। यह केंकड़े को बड़ी रुचि से खाता है। ओक्टोपस की लम्बाई प्रायः तीन फीट तक होती है। इसके आठ पाँव होने के कारण इसे अष्टपाद कहा जा सकता है। केंकड़ा जब कभी भी अष्टपाद को देख लेता है, वह अपने को समुद्र की रेत में छिपाने का प्रयत्न करता है और रेत के नीचे को घुसकर कुछ दूर जाकर पुनः जल में निकल आता है। इस प्रकार कुछ समय के लिए वह अष्टपाद से अपना जीवन बचाने में सफल हो जाता है। किन्तु बकरे की माँ कब तक खैर मना सकती है। अष्टपाद उसका पीछा करता है और उसे पकड़ लेता है। इस छीना-झपटी में बहुधा केंकड़े के एक जोड़ वाले पैर कट कर गिर जाते हैं। अष्टपाद अपनी कुछ भुजाओं से केंकड़े को इस प्रकार जकड़कर पकड़ लेता है कि उसका हिलना-डुलना भी कठिन हो जाता है। यदि आवश्यकता होती है अथवा अष्टपाद को कुछ जल्दी होती है तो वह पूर्ण केंकड़े को एक बार में ही अपने मुख में डाल कर चट कर जाता है। किन्तु जब अष्टपाद आराम में होता है, वह केंकड़े को धीरे-धीरे अपने मुख की ओर खींचता है। यद्यपि इसके दांतेदार मज़बूत चोंच होती है जो सरलता से केंकड़े के सख्त खोल को तोड़ सकती है, किन्तु आराम में वह केंकड़े के खोल में छिद्र करके उसके द्वारा उसका रक्त चूसना पसन्द करता है। इसका पूरा रक्त चूस चुकने पर वह इसके रक्तहीन शरीर को अपनी भुजाओं के बीच जकड़ लेता है और अपनी नुकीली दाँतेदार चोंच से उसके शरीर का माँस छुटा-छुटाकर खाता है और लगभग दो घण्टे के पश्चात् केंकड़े का केवल ऊपर का खाली खोल ही रह जाता है।

सर्पाकार सितारे भी एक प्रकार की मछलियाँ होती हैं। इनका आकार सितारे की तरह होता है। इनके पाँच पैर होते हैं और ये पाँचों पैर सर्प के आकार के होते हैं। इसीलिये इनको सर्पाकार सितारा कहा जाता है। ये भी मांसाहारी जीव हैं और सागर की पेंदी के निवासी हैं। शंख सीपियों की खोज में ये इधर उधर घूमा करते हैं। जिनको हम साधारण भाषा में शंख या सीपी कहते हैं वे वास्तव में शंख और सीप

नामक जीवों के खोल मात्र ही हैं। जब इनके भीतर के जीव मर जाते हैं और वे अन्य जलजीवों द्वारा खा लिये जाते हैं, ये खोल शेष बच जाते हैं जो सागर, नदियों या तालाबों के किनारे पाये जाते हैं। इन्हीं शंख-सीपियों को ये सर्पाकार सितारे खोजते फिरते हैं। इनका मुख नीचे की ओर होता है और जब इनको कोई सीप या घोंघा नहीं मिलता, ये सागर की तलहटी के निकम्मे पदार्थों और द्विपरमाणुओं को खाकर ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं। यदि कभी ये सर्पाकार सितारे किसी घटनावश या आक्रमणकारियों द्वारा कटकर दो भागों में बट जाते हैं, ये दोनों भाग कुछ समय पश्चात् स्वयं ही अलग-अलग पूर्ण सर्पाकार सितारों में परिवर्तित हो जाते हैं। इसी तरह जब कभी सर्पाकार सितारा कटकर टुकड़े-टुकड़े हो जाता है, इसके सभी टुकड़े बढ़कर स्वयं पूर्ण सितारे बन जाते हैं। प्रकृति का यह रहस्य कितना अद्भुत है कि इस सर्पाकार सितारे के टुकड़े होकर भी इसमें इतनी शक्ति शेष रहती है कि इनमें से प्रत्येक कालान्तर में एक पूरा जीव ही बन जाता है। इसकी गति प्राप्त करने की विधि भी विचित्र ही है। जब यह जल में आगे बढ़ता है, अपने आगे के दो पादों को सिकोड़ता है और पीछे के तीन पादों को फैलाता है।

सागरीय सूरजमुखी या सी-एनीमोन भी एक जल-जीव ही है। किन्तु देखने में वह सूरजमुखी के फूल जैसा लगता है। साधारणतया इसकी लम्बाई तीन इंच होती है, किन्तु यह अपने से कहीं अधिक बड़े जल-जीवों को पकड़ सकता है, मार सकता है और उनको पचा सकता है। इसके शरीर का नीचे का भाग तश्तरी जैसे आकार का होता है। यह बड़ा गिजगिजा सा होता है और इसी के द्वारा एनीमोन अपने को किसी चट्टान से चिपटाये रहता है। यह चल फिर नहीं सकता। एक स्थान पर बैठा बैठा यह अपने शिकार की प्रतीक्षा में रहता है। जैसे ही कोई जीव उसके समीप आता है, यह उसे अपने जाल में फँसा लेता है। एक छोटी मोटी मछली को भी यह अपना शिकार बनाने की क्षमता रखता है। यह बहुपाद वाला जीव है। इसके सैकड़ों पाद होते हैं जो देखने में फूल की पंखुड़ियों जैसे लगते हैं। इन पादों की सम्पूर्ण लम्बाई में नोकदार सुइयाँ जैसी होती हैं। जब कोई जीव इसके समीप आता है और इसके पंखुड़ियों रूपी पादों पर से निकलता है, इसकी पंखुड़ियाँ अपने आप धीरे धीरे मुड़ती हुई पूरी तरह से उस जीव को अपने काबू में कर लेती हैं। ज्यों ज्यों इन पादों के जकड़ने की सख्ती बढ़ती जाती है, इन पादों में लगी नुकीली सुइयाँ शिकार के शरीर में घुसती चली जाती हैं और कुछ देर बाद उसको बेधती हुई पूर्ण रूप से मार देती हैं। मृत शिकार को अपने मुँह तक लाने के लिए भी यह इन्हीं पंखुड़ियों की सहायता लेता है। एनीमोन एक छोटी मछली हाइडिंग फिश या छिपने वाली मछली की सहायता से अपने शिकार को बड़ी आसानी से फँसा लेता है। छिपने वाली मछली अपने आक्रमण-

कारियों से बचने के लिए एनीमोन की पंखड़ियों में आकर छिप रहती है । वह अपने को एनीमोन की इन पंखड़ियों से इस प्रकार चिपकाये रहती है कि वह इनमें फँसने से बच जाती है । एक एनीमोन पर इस प्रकार दो तीन छिपने वाली मछलियां तक पायी जाती हैं । ये अपने रंग बिरंगे और सूक्ष्म आकार के कारण दूसरी मछलियों को अपनी ओर आकर्षित करने में सफल हो जाती हैं और ज्योंही आक्रमणकारी मछलियां हाइडिंग फिश पर आकर टूटती हैं, एनीमोन की पंखड़ियों से टकरा जाती हैं । एनीमोन इसी ताक में बैठा रहता है और इन आक्रमणकारी मछलियों को अपनी पंखड़ियों में जकड़ लेता है । एनीमोन इन मछलियों के शरीर में अपने नुकीले सुईदार कांटे घुसा कर मार डालता है और फिर हाइडिंग फिश तथा एनीमोन दोनों अपने शिकार को बांट कर खाते हैं ।

एक दूसरा आलसी और प्रमादी जीव जो सागर में रहता है, सी-अरचिन के नाम से जाना जाता है । इसका रंग लगभग गुलाबी होता है । दूर से देखने पर यही प्रतीत होता है कि सागर की पैंदी में एक गुलाब का फूल खिला हुआ है । गुलाब की पांच बड़ी बड़ी पंखुड़ियाँ भी दिखाई देती हैं । परन्तु न तो यह गुलाब का फूल ही है और न वे पंखुड़ियाँ ही । जो पंखुड़ियाँ सी लगती हैं वे वस्तुतः सी-अरचिन के पांच दाँत होते हैं । यह भी मांसाहारी जीव है और शंख तथा सीप जैसे जीवों का शिकार सरलता से कर लेता है । इसके दाँत इतने दृढ़ और कठोर होते हैं कि यह शंख को पूरा का पूरा दाँतों के बीच रखता है और चूर चूर कर देता है । फिर इसे धीरे-धीरे पचाता रहता है । यह बहुत धीरे धीरे इधर उधर रेंगता फिरता है और जब कभी इसे कोई शंख या सीपी नहीं मिलती, चट्टानों से लगी सागरी घास ही खुरच खुरच कर खाया करता है । शैवाल इसका भोजन है । इसके दाँत मुख में भीतर की ओर होते हैं ।

मिट्टी के दीपक

—श्री विनोद रस्तोगी

मुझको मिट्टी के दीपक प्यारे हैं।

आकाशी दीपों का मेला भ्रम है;
उनमें कब जलने-बुझने का क्रम है;
तुम मानो अथवा मत मानो, उनको—
मिलती पूँजी की थाती बिन श्रम है;

वे नित सूरज की ज्योति चुराते हैं;
भोले मानव-मन को भरमाते हैं;
जलते हैं खुद जो मिट्टी के जुगनू—

वे ही धरती के चाँद-सितारे हैं!
मुझको मिट्टी के दीपक प्यारे हैं!!

माना इनकी ज़िन्दगी बहुत सस्ती;
पर छोटे दीपों की भारी हस्ती;
लाखों झोपड़ियों के ये साथी हैं;
इनसे आबाद ग़रीबों की बस्ती;

जलते हैं, जग को राह दिखाते हैं;
बुझते हैं, पर सूरज दे जाते हैं;
जो मरकर देते ऊषा को जीवन—

वे नयी सुबह के नये इशारे हैं!
मुझको मिट्टी के दीपक प्यारे हैं!!

इस मिट्टी का जादू सब पर छाये;
हर कवि मिट्टी के गीत सरल गाये;
हर एक अमावस पूनम बन चमके,
हर दीप करोड़ों सूरज बन जाये;

ये ज्योति-कुसुम तम में मुस्काते हैं;
हमको जीने की कला सिखाते हैं;
तम-सागर में डूबे मानव-मन को—

निश्चय ही ये अनमोल सहारे हैं!
मुझको मिट्टी के दीपक प्यारे हैं!!

बोतल

श्री उषादेवी मित्रा

(१)

“बोतल का क़ाग खुल गया तो वाक गुल हुआ”—बाईजी भाव-भंगिमा के साथ गा रही थीं। तबलची, सारंगीवादक झुक-झुक पड़ते। सेठ जमनादास के एक मात्र पुत्र का अन्नप्राशन था। बड़ी कठिनाई से, अधिक उमर में पाया था यह लड़का। आमन्त्रित धनी-मानी सेठ-साहूकार से लेकर डिप्टी कमिश्नर, कलाकार, वैज्ञानिक आदि प्रत्येक प्रकार एवं विचारधारा के लोग एकत्रित थे उस समारोह में। कांचन बाई के संगीत से ‘वाह-वाह’ की ध्वनि हॉल के वायुकम्प को आन्दोलित करने लग गयी और तब वास्तविक रूप में भी व्हिस्की की बोतलें खुल रही थीं। उस वातावरण में गीत का यह बोल मानों गुलाब के इत्र का छिड़काव कर रहा था।

कौने में बैठा मनोवैज्ञानिक डॉक्टर नागर न जाने विचार के किस गहरे कूप में गोता लगाये कुछ ढूँढ़ता फिर रहा था। कभी वह घर के व्यक्तियों को गम्भीर विस्मय से देखता, कभी खुली और बन्द व्हिस्की की बोतलों को, और फिर नत मस्तक होकर चिन्तन में मग्न हो जाता। देखते-देखते मदिरा के नशे ने वहाँ ताण्डव नृत्य प्रारम्भ कर दिया। कोई झूमता हुआ बाईजी के निकट जाकर बैठता और मुँह फैला कर विचित्र भाव-भंगिमा से गाने लगता था —“बोतल का क़ाग खुल गया तो वाक गुल हुआ।” उस स्वर में न लालित्य होता था, न मिठास। कोई किसी पर उलटी कर देता था, कोई कुछ। अन्य लोग जिन्होंने मदिरा पान नहीं किया था वे अवाक् और विस्मित उस दृश्य को देख रहे थे। कभी कोई उठ कर चल भी देता था।

इसी स्थिति में घर के भीतर से नौकरानी हाँफती-दौड़ती आयी—“मालिक, लल्लन भया की हालत ज्यादा खराब हो गयी है।” सेठ जमनादास ने अधखुले नेत्र उसकी आकृति पर केवल टिका भर दिये। उसकी दशा उस समय कदाचित् कुछ देखने समझने योग्य न रही थी। डॉक्टर नागर तब भी चुपका बैठा कुछ सोच रहा था और उसकी दृष्टि कभी उन बोतलों पर और कभी मदिरापान के भयानक प्रभाव में आये मनुष्यों पर स्थिर हो जाती थी।

न जाने क्या सोचता-सोचता वह एक दम उठ कर खड़ा हो गया। हाथों की मुट्ठियाँ बँध गयी थीं। मन में उठे हुए एक प्रश्न को वह अब तक सुलझा नहीं पाया

था। विरक्त भाव से उसने अपने मन को टटोला और प्रश्न के उत्तर में वहाँ कदाचित् शून्य ही पाया।

उसके मन का प्रश्न ! वह प्रश्न था—मदिरा पान करके जब जीव उछलने-कूदने लगता है, तो बोतल क्यों नहीं उछलती ? बोतल में भी तो वही मदिरा है न, और उस मदिरा को अपनी काया में भरे वह शान्त, धीर एवं स्थिर रहती है। यह क्यों ? नौकर रोता हुआ पहुँचा—"मालिक, लल्लन भैया के अन्तिम क्षण समीप हैं।"

इतनी देर के बाद सेठ जमनादास कुछ समझा। एक मित्र के कन्धे पर हाथ रख कर लड़खड़ाता घर के भीतर को चला। डॉक्टर बुलाने की जरूरत नहीं थी। वहाँ नगर का प्रसिद्ध डॉक्टर बैठा था। और नागर ने दो मिनिट पहले जहाँ नग्न उच्छृंखलता थी वहाँ पूर्ण नीरवता देखी। बाईजी साजबाज समेट कर चल दीं। अधिकांश लोग चल दिये, कुछ घनिष्ठ व्यक्ति घर के भीतर पहुँचे, और अपने आप खिंचता हुआ नागर भी भीतर पहुँचा।

विशाल सुसज्जित हॉल में गृहणी एक वर्ष के शिशु के सिरहाने बैठी आँसू बहा रही थी। मृत्यु की नीरवता वहाँ छाई थी। परन्तु गृहणी को देख कर ऐसा लगता था कि इस वातावरण के योग्य वह नहीं है। सुश्री, सुमार्जित नवयुवती, केवल नागर के ही मन को नहीं, कदाचित् प्रत्येक के मन को यह एक ही प्रश्न उत्पन्न करके उलझन में डाल रही थी—इस प्रौढ़ मद्यप के घर में यह आयी कैसे ?

नागर हॉल में एक तरफ खड़ा रह गया। उस स्त्री पर दृष्टि पड़ते ही सुरेश चकित हो उठा—"तुम-तुम नीला ? यूरोप से लौट कर तुम को ढूँढ़ता फिरा। तुम यहाँ ?"

और नीला ने आकुलता से कहा—"मेरा बच्चा, लल्लन को जिलाइये डॉक्टर।"

सुरेश ने बच्चे की परीक्षा करके विस्मय से कहा—"बच्चे को डबल निमोनियाँ हो गया है, और घर में इसी बच्चे के अन्नप्राशन का समारोह हो रहा है ! किसका इलाज है ?'

"वैद्यराज का।"

डॉक्टर स्तम्भित रह गया।

"डॉक्टर, देखिए, देखिए, देखिए, यह कैसा कर रहा है।"

इंजेक्शन डॉक्टर के हाथ में ही रह गया। नीला हाहाकार करके शिशु पर पछाड़ें खाने लगी।

दूसरे विवाह की पत्नी नीला से सेठ को सन्तान का मुख देखने को मिला था। लल्लन उसे अत्यन्त प्रिय था, परन्तु नागर को उसके मुख पर तत्काल हुई सन्तान

की मृत्यु के शोक के स्थान पर ईर्ष्या जलती देख कर विस्मय हुआ । उसकी निस्तेज आँखें पत्नी नीला और सुरेश को घूर रही थीं । नागर धीरे से बाहर आया और एक मदिरा से पूर्ण बोतल लेकर कार में बैठ गया ।

(२)

मनोवैज्ञानिक डॉक्टर नागर के भव्य एवं एकान्त कमरे में चारों ओर की अलमारियों में मोटी-पतली पुस्तकें भरी हैं । मेज और जमीन पर बिछे हुए गलीचे पर पुस्तकों का ढेर लगा है और इस सब के बीच मेज पर एक अशोभनीय व्हिस्की की बन्द बोतल रखी है । उसकी डिस्पैन्सरी में भीड़ लगी है । रोगी अधिकतर नारियाँ हैं । कुछ पुरुष और शिशु भी हैं । नौकर बार-बार दरवाजे पर आकर लौट जाता है । मालिक को बुलाने का उसे साहस नहीं होता । रोगीगण प्रतीक्षा में अधीरता से समय व्यतीत कर रहे हैं । नागर का स्नान का समय भी निकल गया । वैसे ही भोजन का समय भी आया और सरकता हुआ चल दिया । रोगियों की अधीरता सहनशीलता की सीमा को लाँघना चाहती है ।

नौकर धीर गति से कमरे में पहुँचा । मालिक की एकाग्रता पर वह हिचका और नागर की दृष्टि का अनुसरण करते हुए उसने वह बन्द व्हिस्की की बोतल देखी । वह ऐसा चकित हुआ कि हाथ का सन्तरे के रस से भरा गिलास जमीन पर गिर कर टुकड़ों में परिवर्तित हो गया । हाँ, इस घर में काम करते हुए उसको दो वर्ष व्यतीत हो गये, किन्तु मदिरा की बोतल यहाँ कभी नहीं देखी थी । उसने पुनः विस्मय से आँखें फाड़ते हुए देखा कि मदिरा की बोतल पर उसके मालिक की दृष्टि स्थिर है ।

गिलास टूटने की आवाज से नागर की लुप्तप्राय चेतना लौटी । पूछा—"क्या है, दलीपसिंह ?"

"मालिक, दवाखाने में मरीजों की भीड़ लगी है और आपके नहाने का पानी तैयार है ।"

"क्या बजा है ?"

"सरकार, बारह बज कर पन्द्रह मिनिट हैं ।"

"अरे, बारह बज चुके ?" और डॉक्टर उठ कर सीढ़ियाँ तय करता हुआ वृहत् हॉल में पहुँचा । पुरुष रोगी बैठे थे, उनसे देर होने के लिए क्षमा माँग कर परदा हटाता हुआ वह दूसरे कमरे में गया । दो महिलायें तब भी उसकी प्रतीक्षा में बैठी थीं, शेष हताश होकर जा चुकी थीं । उन्हें बैठाकर वह बाहर हॉल में आया । उसने कहा—"महाशयगण, आज बहुत देर हो गयी है, आप लोग शाम को आवें । अन्दर एक स्त्री रोगिणी को देखना बहुत ही जरूरी है । नारी का स्थान सर्वप्रथम होता ही है, क्यों ?" कहकर डॉक्टर हँसा । रोगिणी का भाई बोला—"हाँ डॉक्टर साहब, मेरी बहन की दशा बहुत ही खराब है । आपका नाम सुनकर बड़ी आशा से यहाँ लाया हूँ ।"

"घबराइए नहीं, चलिए उस कमरे में।"

दोनों उठ कर रेवा के निकट पहुँचे। कुर्सी पर बैठकर नागर गम्भीर मनोयोग से उस रूपवती युवती का अध्ययन करने लगा। देर के बाद नागर ने पूछा—"आखिर इनको तकलीफ़ क्या है?" भाई अखिल बोला—"सायंकाल से ही दरवाजा बन्द कर लेती है। जब माँ की बार-बार पुकार से दरवाजा खोलती है तब यह झूमती, गिरती, पड़ती हुई होती है। बातचीत भी इसकी स्वाभाविक नहीं होती और जबान भी इसकी लटपटाती हुई होती है।"

"हूँ"—नागर ने बस "हूँ" ही कहा।

घड़ी के काँटे टिकटिकाते हुए आगे बढ़ते चले जा रहे थे। नागर के भाव गम्भीरतर होते जा रहे थे।

सहसा एक बार उसने पूछा—"यह भाई-बहन दोनों विवाहित हैं?"

"नहीं जी," माता कहने लगीं—"यही तो मेरा रोना है डॉक्टर! नीरोद विवाह का बचन देकर विलायत चला गया, फिर वहाँ से नहीं लौटा। अब तो चिट्ठी तक बन्द है। लिखें तो जवाब नहीं देता। इधर मेरे पति करोड़ों रुपये रखकर चल बसे, और छोड़ गये इस बेटा अखिल को—है, यह मेरे कुल का कलंक ही तो है, बस शराब—"

माता की बात के मध्य में ही अखिल का अविनीत स्वर ध्वनित हो उठा—"माँ"!

"आप शान्त रहें अखिलजी, मैं मनोविज्ञान का विशेषज्ञ हूँ। मुझ से सब साफ साफ कहना चाहिए। हाँ, श्रीमतीजी, क्या यह घर में बैठ कर शराब पीते हैं?"

"हाँ डॉक्टर, शराब की पचासों बोतलें रेवा की अलमारी में रखवाता है कि कहीं माँ फिकवा न देवे। और बाईजियों का मुजरा, मुसाहबों की संगत यह तो नित की बातें हैं।"

"हूँ। जरा मैं एकान्त में कुमारीजी से कुछ पूछना चाहता हूँ। अच्छा, आज रहने दीजिए।"

"क्या रेवा अच्छी न होगी?"—माँ ने अकुलाकर पूछा।

मुस्कराकर डॉक्टर बोला—"जरूर होगी।"

"कब तक।"

"थोड़े ही दिन में।"

(३)

मदिरा और बोतल, बोतल और मदिरा—रात्रि की एकान्त वेला में बैठा सोच रहा था डाक्टर और देख रहा था उस मदिरा से भरी बोतल को। एकाग्र था उसका मन और एकान्तिक दृष्टि।

खट-खट-खट, दरवाजे पर आघात हुआ। नागर ने दरवाजा खोला। रेवा की माता खड़ी थी। घर के सब लोगों के बिना जाने आपको लेने के लिए आयी हूँ। आपके साथ घर लौट कर मैं रेवा का दरवाजा खुलवाऊँगी, आपने कहा था न कि दरवाजा खुलने से पहले आप पहुँचेंगे।"

लज्जित स्वर से डाक्टर ने कहा—"मैं भूल गया था श्रीमती।"

"कोई बात नहीं, कार साथ में है। जल्दी चलिए।"

शीघ्रता से वे दोनों कार में बैठे।

सुविस्तृत उद्यान के मध्य में स्थित प्रासाद तुल्य भवन के आगे दोनों कार से उतरे। बैठक से नारीकण्ठ की गीत ध्वनि, तबला आदि के साथ नाना प्रकार के कण्ठ-स्वरों की 'वाहवा' ध्वनि स्पष्ट सुन पड़ रही थी। माता ने कहा—"आप बैठक से मत जाइए। चलिए दूसरे रास्ते से।"

एक बन्द दरवाजे के सामने पहुँच कर माता ने जोर-जोर से दरवाजा खटखटाया, धक्का दिया। और तब गिरती-पड़ती हुई आकर रेवा ने दरवाजा खोला। तब? तब उसके दोनों नेत्र फटे से हो रहे थे और कपोल रक्त।

अन्तर्भेदी दृष्टि से उसकी ओर देखता हुआ नागर अचानक मुस्करा पड़ा और लौटकर बोला—"कल इनके दरवाजा बन्द करने से पहिले मैं यहाँ आ जाऊँगा, इससे पहिले आप दरवाजे पर मजबूत ताला डाल दीजिए। यानी इनको इस कमरे में मेरे आने से पहले मत जाने दीजिए और सबेरे अखिल को मेरे पास भेज दीजिए। अच्छा नमस्कार।"

"लड़की का इलाज तो आपने कुछ नहीं किया डॉक्टर।"

"इलाज ही कर रहा हूँ श्रीमती। कल से यह अच्छी हो जावेंगी।"

दूसरे दिन प्रातःकाल प्रायः घण्टे भर तक अखिल से नागर की बातें होती रहीं। और इसके बाद अखिल की माता देखकर विस्मित हुई कि लड़का व्हिस्की की भरी हुई बोतलों को खिड़की से फेंकता जा रहा है। माँ ने चुपके-चुपके देखा और चलदी। प्रसन्नता से जी भर उठा। प्रश्न मन में मँडराने लगा—क्या यह डॉक्टर की चिकित्सा की सफलता है? परन्तु लड़की पर तो कोई असर नहीं हुआ।

सायंकाल डॉक्टर नागर पहुँचा और एकान्त कमरे में रेवा के साथ बातें करने लगा। रेवा और नागर के अतिरिक्त वहाँ केवल घड़ी टिकटिका रही थी। नागर की अन्तर्भेदी दृष्टि के सामने रेवा न जाने क्यों सकपका उठी।

एक बार वह सहसा उठ खड़ी हुई और कहा—"मैं पाँच मिनिट में आती हूँ, और तब जो कुछ पूछना हो पूछ लीजिए।"

डॉक्टर मुस्कराया—"व्यर्थ जा रही हैं। आपके कमरे में तो ताला पड़ा हुआ है।"

"ताला—ताला ? किन्तु किसने डाला ? क्यों डाला ?"

"मैंने डाला है।"

"क्यों ?"

"उस कमरे के आकर्षण से आपको बचाने के लिए। आप भूली न होंगीं कि आपकी चिकित्सा के लिए मुझे नियुक्त किया गया है और आपके अच्छे होने न होने का दायित्व मेरे ऊपर ही है।"

रेवा के कानों तक शायद ही डॉक्टर की बातें पहुँची हों। वह गुनगुनाकर कदाचित अपने ही आप को सुना रही थी—"कमरे का आकर्षण, कमरे का आकर्षण।"

"कुमारी रेवा, आप शान्त हों। मेरे प्रश्नों का सही और सच उत्तर देती जाइये। क्या आज से हम दोनों मित्र नहीं हो सकते ?"

"जरूर डॉक्टर। यह तो मेरा सौभाग्य है कि आप जैसे प्रसिद्ध डॉक्टर को मैं मित्र के रूप में पा रही हूँ।" तब रेवा संयत होने के लिए पूर्ण शक्ति लगा रही थी, परन्तु होने नहीं पा रही थी। न जाने एक कैसी तीव्र शक्ति उसे उस अपने रुद्ध द्वार की ओर आकर्षित कर रही थी।

पल भर में डॉक्टर ने रेवा के हृदय का प्रतिबिम्ब मानो स्वच्छ दर्पण में देख लिया। उसकी तात्कालिक मनोदशा की छाया देखकर डॉक्टर मन ही मन हँसा।

"तो आपने सन्ध्या समय नित्य मदिरा पान करना कब से शुरू किया है रेवा रानी ?"

वह पहले चौंकी, चिहुँकी; परन्तु मन्त्रमुग्ध की भाँति उत्तर दिया—"जब से मेरे वाक्दत्त पति ने मुझे पत्र लिखना बन्द किया। क्यों पीती हूँ ? अपनी दर्दीली आह को भूलने के लिए।"

"गलत, कमजोर दिल का आदमी नशे के वशीभूत हुआ करता है। आप जैसी विदुषी नहीं हो सकती हैं। क्या आप एक मिथ्यावादी, लम्पट के लिए अपने मनुष्यत्व को धूल में मिलाना चाहती हैं ? ऐसा नहीं हो सकता। सुरा को आज से विष समझें। यों आपके भाई ने भी उसे त्याग कर दिया है। अब घर में वह चीज आयेगी ही नहीं।"

"क्या आप व्हिस्की कभी नहीं पीते ?"

"नहीं। पूछ रही हो क्यों ? क्योंकि वह मनुष्य की छिपी हुई नग्नता को बाहर लाती है—वह भी अत्यन्त कुत्सित रूप से। और आप नीरोज को भूल जाइए। वह विवाहित है। यूरोपियन महिला उसकी पत्नी है। आज से सुरा आपको छोड़ना

ही है। कल से आप मेरे घर नित्य आया करें, आप मेरी मित्र हैं। वह घर आपका ही है। अच्छा अब चल रहा हूँ।"

उसके बाद नित्य प्रति रेवा डॉक्टर के घर पहुँचती। दोनों की मित्रता कब गाढ़तर हुई सो शायद वे जान तक न सके।

(४)

रेवा रोज नागर की डिस्पैन्सरी में पहुंचती और रोगियों के रोग की कथा सुनती, उन्हें अच्छे होते देखती। रोगियों के प्रति डॉक्टर के अद्भुत उपचार और छान-बीन को देख-देखकर वह स्तम्भित रह जाती। न कभी वह दवा देता न कुछ। केवल रोगियों की चित्तवृत्तियों का सूक्ष्म पर्यालोचन करके वह उन्हें आरोग्य करता था।

रेवा अब स्वस्थ थी। उसका भाई भी मदिरा का त्याग कर चुका था। रेवा डॉक्टर के भोजन आदि की व्यवस्था करके घर लौटा करती थी। उस गृह में सर्वत्र उसका एकाधिकार स्थापित हो चुका था। केवल उस लाइब्रेरी में, जहाँ बन्द दरवाजे के भीतर नागर घण्टों बैठा रहा करता था, वहाँ केवल उसी का नहीं, सभी का प्रवेश निषिद्ध था। और रेवा की अत्यधिक इच्छा थी उसी कमरे में प्रवेश करने की।

उस दिन दोपहरी में नागर का नौकर दौड़ता आया—"बाई साहब, दो पहर दिन चढ़ गया है, अब तक न तो साहब कमरे से निकले और न पुकारने पर जवाब ही देते हैं।"

"ऐसा ? चलो, मैं चल रही हूँ।"

रेवा पहुँची, नागर के दरवाजे पर जोर-जोर से धक्का देने लगी। देर के बाद दरवाजा खुला। उस समय डॉक्टर के मुख पर जय की खुशी का दीपक जल रहा था। वैसी अद्भुत प्रसन्नता रेवा ने इससे पहले डॉक्टर में नहीं पायी थी।

"अभी तक स्नान, भोजन की सुध नहीं ?"—कहती हुई रेवा अत्यन्त आग्रह से कमरे में प्रवेश कर गयी।

नागर कुर्सी पर बैठ गया, कहा—"भोजन ? किन्तु पेट तो भर चुका है, रेवा रानी।"

पुस्तकों की अलमारियों को देखती हुई वह विस्मय से बोली—"तो इस बन्द कोठरी में आपको किस किन्नरी ने आकर भोजन दिया ?"

'मेरे अनुसन्धान ने, मेरी जिज्ञासा के उत्तर ने भोजन दिया है न।"

"ऐसा।" और रेवा सामने की कुर्सी पर जमकर बैठ गयी और सहसा उसकी दृष्टि आकर्षित की सामने की मदिरा से पूर्ण बोतल ने। वह सिहरी और दूसरे ही क्षण डॉक्टर के प्रति विरक्ति तथा अश्रद्धा से उसका चित्त परिपूर्ण हो गया—यही है नागर का वास्तविक रूप ? प्रश्न उठा रेवा के मन में—दूसरों को मदिरा पान करने

से रोके और उपदेश दे, और स्वयं तीन बजे तक बैठकर मदिरा पान करे ? झूठा, दगाबाज।

रेवा को उठते देखकर विस्मित डॉक्टर ने पूछा—"इतनी जल्दी जा रही हो ? और मुझे स्नान-भोजन न कराओगी ?"

"आप शराब पीकर पेट भरें, बस।"

इतनी देर के बाद नागर समझा और उच्च स्वर से हँस पड़ा-उदार, सरल वह हँसी।

रेवा का हाथ पकड़ कर अपने निकट बैठाया। कहने लगा डॉक्टर—"शराब पीना ? यदि सचमुच पी सकता तो इसके विश्लेषण करने में, सही और सत्य को खोजकर निकालने में इतनी देर, ऐसी परेशानी न उठानी पड़ती।"

"भरी हुई बोतल टेबिल पर रखी है तो भी आप कहते हैं शराब नहीं पीते ?"

'धीरज धरो रेवारानी। यह बोतल ? इसे जमनादास के घर से उठा लाया था। क्यों ? वही तो एक बात है।"

"पहेली मत बूझिए डॉक्टर।"

'परन्तु यह पहेली ही तो है न ?"

"पहेली ? आप क्या कह रहे हैं ?"

"यही कि बोतल में रहते हुए शराब उछल कूद क्यों नहीं मचाती ? शराब से भरी बोतल शान्त क्यों रहती है ? और इसे पीकर आदमी क्यों सुध-बुध बिसर जाता है ?"

"क्यों क्यों ?" रेवा ने अपना हाथ नागर के हाथ में रख कर उतावली से पूछा—"क्यों ?"

"मैंने जो कुछ सही उत्तर अपने मन से पाया है वह है—मदिरा जीवित प्राणी में ही अपनी कृपा का प्रशस्त स्थान पाता है। परन्तु निर्जीव में नहीं, क्यों ? क्योंकि इसे पीने के बाद आदमी के मन का दरवाजा खुल जाता है। तीसरा है—साइकॉलाजीकल एफेक्ट। इसे पीकर हम सोचने लगते हैं कि हम नशे में हैं। इसे पीकर प्राणी के स्नायु शिथिल हो जाते हैं, और उस शिथिलता में मदिरा अपना काम करती है।"

रेवा कब उठकर खड़ी हुई थी एवं कब डॉक्टर के कन्धे से टिककर उसके मुख पर झुक पड़ी थी—वह स्वयं भी नहीं जान सका।

व्याकुल स्वर से वह बोली—'मेरे प्रश्न का उत्तर दो डॉक्टर। क्या ? हाँ, मैं नीरोज को क्यों भूल रही हूँ, प्रायः भूल ही गयी हूँ। किन्तु क्यों ?"

बड़े स्नेह से डॉक्टर ने रेवा का हाथ पकड़ कर बैठाया, कहा—"मृत की स्मृति कब तक जागृत रह सकती है ? एक हिसाब से वह तो तुम्हारे निकट मृत ही है न ?

और ? और प्रेम के लिए चाहिए एक आधार। वह चुम्बक की भाँति अपने मनोनीत आधार के प्रति खिचता जाता है।”

“तो मेरा अब वह आधार कौन-सा है ?” शिशु की भाँति रेवा ने पूछा।

डॉक्टर हँसा—मधुर थी वह मुस्कान—“जब उसकी स्मृति सम्पूर्ण रूप से तुम्हारे मन से लुप्त हो जायगी, तब शायद वह नवीन आधार स्वयं ही तुम्हारे प्रेम को अपने में समेट ले—रेवारानी।”

और तब भी एक अनजान बालिका की भाँति रेवा डॉक्टर को निहारती ही रह गयी।

दो गद्य-गीत

— श्री उमानन्दन चतुर्वेदी

(१)

झर-झर, झर-झर, जब पाटल की सफेद-सफेद. गुलाबी-गुलाबी पलकें बरसती थीं; बादलों की रोई-रोई आँखों को जब अंशुमाली बार-बार हाथ बढ़ाकर अपनी कोमल किरण अँगुलियों से पोंछ देता था; बहुत रोकने पर भी जब साँवली सन्ध्या के आँसू बरबस एक, दो, तीन, चार—अन्धकार के विशाल वक्ष पर ढुलक-ढुलक कर जम जाते थे; और जब तुम अपनी करुणा के भार से काँपती हुई हथेली पर मेरा चिबुक थामे मेरी आँखों में छाया चित्रों की भाँति बनने और मिटने वाले आर्द्र संकेतों को पढ़ रहे थे उस दिन मैंने प्रथम बार देखा कि तुम्हारी आँखों में भी आँसू छलछलाने लगे थे।

(२)

सो गए क्या ? अभी तो मुझे पुकारा ही था तुमने ! देखो मेरे प्राणों में तो अभी तक भी प्रतिध्वनि सजीव बनी हुई है।

मेरे धन ! प्राणों के पारावार की तरंगें तुम्हारा आकर्षण ही तो हैं। प्रियतम, अब तो छोड़ दिया है किनारा मेरे गान की तरी ने, चेतना की पतवार मेरे हाथ से छूटी जाती है प्राणेश !

पतवार फेंक कर ही तो मझधार में आऊँगा मैं, तुम्हारे सबल-साकार इंगित की ओर ! बराबर खींचते रहो मुझे अपनी रागारुण चितवन के आकर्षण से ! सोओ मत, आँखें न झपने दो।

आधुनिक हिन्दी कविता में

वासन्ती-प्रकृति-चित्रण

— श्री कादम्बरी यामा

मानव और प्रकृति को किसी भी रूप में, किसी भी जगह और किसी भी समय अलग-अलग नहीं रखा जा सकता। दोनों का सम्बन्ध आदि काल से है। मानव-मन को प्रकृति ने दो रूपों में प्रभावित किया है और वे दो रूप हैं उद्दीपन और आलम्बन।

वसन्त प्रकृति के उल्लास का प्रतीक है। वसन्त के अवसर पर प्रकृति नव वधू सी सज जाती है। वासन्ती प्रकृति मानव मन को सहजही प्रभावित कर लेती है। वासन्ती प्रकृति के मनोहर दृश्यों का आधुनिक हिन्दी कविता में उद्दीपन और आलम्बन दोनों रूपों में चित्रण हुआ है, पर इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि हमारे आधुनिक साहित्य में प्रकृति के सौन्दर्य का शुद्ध या स्वतंत्र वर्णन बहुत कम मिलता है। मानव हृदय के घात प्रतिघात को स्पष्ट करने के लिए ही प्रकृति का सहारा लिया गया है। प्रकृति और मानव का कुछ ऐसा सम्बन्ध है कि जब जब प्रकृति में परिवर्तन होता है, मानव-मन में भी परिवर्तन होता है। वसन्त के अवसर पर जब प्रकृति विविध प्रकार से सजती है, चारों ओर रंगीन पुष्पों का बाजार-सा लग जाता है, वृक्षों में नये पल्लव आ जाते हैं, कोयल अपनी कूक सुनाने लगती है, उस समय मानव-मन भी शान्त नहीं रहने पाता। अन्य ऋतुओं की अपेक्षा वसन्त में प्रकृति के सौन्दर्य में एक प्रकार की नूतनता उत्पन्न होती है और यह नूतनता ऐसी होती है जो तीव्र मादक सौन्दर्य युक्त होती है। इसी कारण साहित्य भी वासन्ती प्रकृति से काफी अधिक प्रभावित हुआ है। आधुनिक हिन्दी कविता में प्रकृति का ऐसा सच्चा और हृदयग्राही चित्र अंकित किया गया है कि उसकी सत्यता से इन्कार नहीं किया जा सकता। वासन्ती प्रकृति का दृश्य आँखों के सामने छा जाता है और हृदय झूमने लगता है।

वसन्तागमन होते ही वातावरण अपने आप कुछ बदल सा जाता है, फूल खिल जाते हैं, कलियाँ चिटक जाती हैं, भ्रमरों का समूह मँडराने लगता है, आम्र बौरा जाते हैं आदि बहुत सी बातें हैं जो प्रकृति के उल्लास की सूचक हैं। साथ ही ऐसा भी जान पड़ता है मानों प्रकृति ने वसन्त के स्वागत में ही यह सब साज सजा हो। वसन्त

के आगमन पर प्रकृति के स्वागत का एक कवि ने बड़े ही सुन्दर शब्दों में चित्रण किया है—

वासन्ती है मोल बिक रही, फागुन के बाजार में
अलि की बोली बढ़ी-चढ़ी है फूलों के व्यापार में
कमलों के हैं नयन लजीले, ऊषा का मुँह लाल है
पंचम है हर स्वर कोयल का, हरी-भरी हर डाल है
वन सुहाग अमराई का लो, यह आया मधुमास है
मधुपों की मधु-गुंज मीन सी, फंसी फूल का जाल है
चार चाँद लग रहे प्रणय के, रती काम के द्वार में
वासन्ती है मोल बिक रही, फागुन के बाजार में !

यह नूपुर की रुनन-झुनन है, मन का मुखरित गान है
बजती, सांसों की सितार पर, नये स्वरों की तान है
अलि का गुंजन अर्ध्य-चढ़ाती कमलों के चहुँ ओर है
आज फगुनिया मेला में, पुजता गुलाब भगवान है
स्नेह-दीप हर जगह जल रहा, क्या कुसुमों क्या खार में
वासन्ती है मोल बिक रही, फागुन के बाजार में !

कितना स्वाभाविक और हृदय को छूने वाला चित्रण है ! सीधे-सादे और सरल शब्दों में मानों वसन्त की सारी माधुरी यहाँ मुखरित हो उठी है । हिन्दी कवियों के वसन्त सम्बन्धी गीतों में इस गीत का अपना अलग ही रंग है । देवप्रकाश गुप्त 'अंगार' ने भी कुछ इसी प्रकार का वर्णन किया है । जान पड़ता है वसन्त के स्वागत में ही प्रकृति ने निम्न साज सजाया है—

खिले मटर के फूल सज रही सपनों की शेफाली
मोती बरसे मेरे आंगन छन्दों में है लाली
मुस्कानों के लुटे सितारे प्रिय अलमस्त गगन से
हरसिंगार से भाव झर रहे नयनों के नन्दन से

केसर कुमकुम नीलम लहरे मौलसिरी लहरायी
सोनकली है छुई मुई सी छाँव छाँव मुस्कायी
दीपों की लग रही आरती शलभ हुए मतवारे
रस की गगरी भरी केतकी ये लोचन रतनारे
चली शराबी हवा सुरभि पी जवाकुसुम अलबेले
हे सुधियों का आघात कोइलिया बोली !
यह फागुन की रात कोइलिया बोली !!

मध्यप्रदेश के कवि नर्मदाप्रसाद खरे ने सीधी एवं सरल भाषायुक्त दो त्रिपदियों में वसन्त का दृश्य उपस्थित किया है, जो बड़ा ही सुन्दर है—

मलय मन्द बहता मनभाया
किंशुक किसलय से वन छाया
किसने अरुण रंग बिखराया ?

स्वर्णिम आम्र मंजरी आयी
उसने यौवन राशि लुटायी
मधुपों ने जग की निधि पायी

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान की 'वीरों का वसन्त' कविता बहुत लोकप्रिय हुई है। इसमें एक छन्द में उनने वासन्ती प्रकृति का भी चित्रण किया है, जो इस प्रकार है—

फूली सरसों ने दिया रंग
मधु लेकर आ पहुँचा अनंग
वसु-वसुधा पुलकित अंग अंग
                है वीर वेश में किन्तु कन्त
                वीरों का कैसा हो वसन्त ?

द्विवेदी युग के कवि ठाकुर गोपालशरणसिंह अपनी सीधी और सरल भाषा के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं। उनकी कविता में न तो बेपर की सूझ मिलती है और न उसे समझने के लिए दिमाग को ही झकझोरने व माथापच्ची करने की आवश्यकता होती हैं। वसन्त का आगमन होते ही प्रकृति में एकाएक जो परिवर्तन हो जाता है, उसका निम्न शब्दों में कितना सरल और स्वाभाविक वर्णन है—

बदल गयी है प्रकृति, समय ने
                भी अब पलटा खाया है।
फिर से सभी वनस्पतियों में,
                नवजीवन सा आया है ॥
....
चलकर शीतल सुमन-सुवासित
                पवन हृदय अब हरती हूँ
करस्पर्श के सदृश प्रिया के
                तन अति पुलकित करती है।
फूलों के मिस लतिकाएँ सब
                मन्द-मन्द मुस्काती हैं

पल्लव रूपी पाणि हिलाकर
मन के भाव बताती हैं ॥

कोकिल कूक कूक कर बरबस
देखो चित्त चुराते हैं

वन उपवन में सुधा-स्रोत की
निर्मल धार बहाते हैं ।

सुखसे भ्रमर कमल-कानन में
भ्रमरी सहित विचरते हैं

खिले हुए शतदल स्वागत-सा
उनका हँस हँस करते हैं ॥

इसी प्रकार के भावों का कवि अंचल ने भी मुक्त छन्द पर प्रवाहमय भाषा में बड़ी सफलता से अंकन किया है । उन्होंने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से वासन्ती प्रकृति का काफी दूर तक पर्यवेक्षण किया है । यही कारण है कि वे छोटी-छोटी पंक्तियों में भी प्रकृति के विविध रंग उपस्थित कर सके हैं—

मंजरित मधुमास
आ गया बहता कहीं से
चीर शिशिराकाश;
आज छवि की स्वर्ण-
परियों का हरित मधुमास ।
द्रुमों में चित्रित सुरभि का हास ।
पल्लवित हो फूलता
वन वल्लरी का गात;
नीम में नव बौर आये
ले वसन्ती रात ।
जाल परिमल के बुने
गूंथे सिरिस ने मौर
केतकी से मांगता मधु-
दान अलि, दो और
कह रहा तट आज सरि से
आ तनिक तो पास
कह रहा जल से समीरण
मदिर तेरा पाश !

चूम लेगा आज जैसे
अवनि को आकाश
उड़ रही भू के कुसुम्मी
चीर सी बातास।

बिहार के कवि 'अशेष' नयी धारा के कवि माने जाते हैं। उन्होंने वसन्त के प्राकृतिक चित्रण में अपनी स्वतंत्र भाषा और भावों का सहारा लिया है। उनकी भाषा हमें वसन्त के समान ही मस्ती से शराबोर कर देती है और उसमें हमारे हृदय को छूने की इतनी अधिक शक्ति है कि हम उनकी कविता पढ़ते-पढ़ते इतने उत्कंठित हो जाते हैं कि आगे और भी पढ़ने की इच्छा होती है—

मदहोश आमकी बाँहों में
बेसुध मदमाती मंजरियाँ !
छूकर अमराई का अंचल
बेहोश हवा लो बहक गयी
अग-जग के कण कण में नूतन
सौरभ की ज्वाला दहक गयी
होकर अलमस्ती में अधीर
सौ-सौ बल खाती मंजरियाँ
मदहोश आम की बाँहों में········
पागल पिक के पंचम स्वर से
छा गयी मधुरिमा मधुवन में
सुमनों के मादक तीरों से
उन्माद भर गया तन-मन में
सुधियों के कुंकुम-कण बिखेर
मधुपर्व मनाती मंजरियाँ
मदहोश आम की बाँहों में·······

इसके वाद हमारी इच्छा और भी कुछ पढ़ने की होती है, जिसकी पूर्त्ति नरेन्द्र शर्मा 'पलाशवन' से करते हैं। वासन्ती प्रकृति के स्वाभाविक दृश्यों का अकन उन्होंने एक नये ही ढंग से किया है जिसे पढ़ते-पढ़ते न तो ऊब ही आती है और न मन ही थकता है। पहली पंक्ति ही आगे पढ़ने की उत्सुकता प्रबल करने के साथ ही वसन्त के जयघोष की सूचना देती है—

पतझर की सूखी शाखों में लग गयी आग, शोले लहके
चिनगी सी कलियाँ खिलीं और हर फुनगी लाल फूल दहके

सूखी सी नसें, बहा उनमें फिर बूँद बूँद कर नया खून
भर नया उजाला डालों में खिल उठे नये जीवन प्रसून
अब हुई सुबह, चमकी कलगी, दमके मखमली लाल शोले
फूले टेसू—बस इतना ही समझे पर देहाती भोले
लो डाल डाल से उठी लपट, लो डाल डाल फूले पलाश
यह है वसन्त की आग, लगा दे आग जिसे छू ले पलाश
लग गयी आग, वन में पलाश, नभ पर पलाश, भू पर पलाश
लो चली फाग, हो गयी हवा भी रंग भरी छूकर पलाश
आते यों आएँगे फिर भी वन मधु-ऋतु पतझार कई
मरकत-प्रवाल की छाया में होगी सब दिन गुंजार नई

अतुकान्त छन्दों में सफल रचना करने वाले स्व० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध' जी ने भी प्रियप्रवास के सोलहवें सर्ग में वासन्ती प्रकृति का संस्कृत गर्भित भाषा में बड़ा ही गम्भीर वर्णन किया है। उनका वर्णन यद्यपि रूढ़िग्रस्त है फिर भी आधुनिक कविता में विरल ही है। वासन्ती प्रकृति के वर्णन में उन्होंने प्रकृति के विविध रंगों के समान ही चुन चुन कर ऐसे-ऐसे शब्दों से काम लिया है जो उनकी विद्वत्ता एवं पाण्डित्य के द्योतक हैं। उनका संस्कृत ज्ञान उनसे अच्छी तरह प्रकट होता है—

विमुग्धकारी मधु मंजु मास था
वसुंधरा थी कमनीयता-मयी।
विचित्रता-साथ विराजिता रही
वसन्त वासन्तिकता वनान्त में॥

नवांकुरों में, कलिका-प्रलाप में,
नितान्त प्यारे फल-पत्र-पुञ्ज में।
निसर्ग-द्वारा सु-प्रसूत-पुष्प में
प्रभूत पुंजी-कृत थी प्रफुल्लता॥

विमुग्धता की वर-रंग-भूमि सी
प्रलुब्धता केलि-वसुन्धरोपमा।
मनोहरा थीं तरु-वृन्द-डालियाँ
नयी कली मंजुल-मंजरीमयी॥

वसंत - माधुर्य - विकाश - वर्द्धिनी
क्रिया-मयी मार-महोत्सवांकिता।
सु-कोंपलें थीं तरु-अंक में लसी
स-अंगरागा अनुराग-रंजिता॥

नये नये पल्लववान पेड़ में
प्रसून में आगत थी अपूर्वता।
वसन्त में थी अधिकांश शोभिता
विकाशिता-वेलि प्रफुल्लिता-लता ।।

कवि पन्त का जन्म और विकास प्रकृति की गोद में ही हुआ है। यही कारण है कि प्रकृति ने उन्हें बराबर प्रभावित किया है और उनके काव्य से प्रकृति अलग नहीं की जा सकती। वे प्रकृति के कवि हैं। प्रकृतिपरी अपने सम्पूर्ण वैभव के साथ उनके मानस-देश में नाचती है। वासन्ती प्रकृति के चित्रण में पन्तजी की मादकता अपने आप स्पष्ट हो उठी है—

आज छाया वन-वन मधुमास
मुग्ध मुकुलों में गंधोच्छ्वास
लुढ़कता तृण तृण में उल्लास
डोलता पुलकाकुल बातास
फूटता नभ में स्वर्ण बिहान
आज मेरे प्राणों में गान

पर एक आलोचक का यह कथन हमें नहीं भूलना चाहिए कि वसन्त की जो कुछ भी सौन्दर्य राशि है, वह पन्तजी की 'रूप रानी' की ही देन है। उनकी रूपरानी के चरण के स्पर्श से अशोक मंजरित होते हैं, उसकी मंजुल मूर्ति को देखकर मधु के वन में ज्वाल लग जाती है और—

'प्रिये, कलि-कुसुम-कुसुम में आज
मधुरिमा मधु, सुखमा सुविकास
तुम्हारी रोम-रोम छवि व्याज
छा गया मधुवन में मधुमास'

वसन्तागमन का स्वागत करने के लिए प्रकृति क्या क्या साज सजाती है, इसे आनन्दकुमारजी ने अपनी 'सारिका' में अच्छी तरह बतलाया है। पशु-पक्षी और पेड़-पौधों के हर्षोन्माद का उन्होंने बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन किया है और ऐसा जान पड़ता है मानों वे हमारे सामाजिक जीवन के अंग हों। उनकी वसन्त सम्बन्धी निम्न पंक्तियाँ पढ़कर हमारी आँखों के सामने सहसा किसी बारात का सा दृश्य उपस्थित हो जाता है—

कोकिल, चकोर, शुक मोर आदि चारणों ने
आज अभिनन्दन में नये गीत गाये हैं।

इस अमरावती के सकल निवासियों ने
नये तोरणों से निज सदन सजाये हैं।
केतकी ने, माधवी ने, कामिनी ने, मालती ने
स्वागत में नये फूल पाँवड़े बिछाये हैं
सुनता हूँ रम्य विपिन स्थली के मन्दिर में
परम सनेही ऋतुराज आज आये हैं।

बिहार के तरुण कवि श्री रमेशचन्द्र झा ने भी अपने खण्ड-काव्य "प्रियम्वदा" के पंचम सर्ग में वसन्त की प्राकृतिक श्री का वर्णन किया है। निरालाजी के 'तुलसीदास' के सुप्रसिद्ध एवं लोकप्रिय छन्द में उनका यह प्रयास बड़ा ही सफल बन पड़ा है। वासन्ती प्रकृति का वर्णन करते हुए वे कहते हैं—

धीमे-धीमे आ रहा पवन
छूकर वन-वन का मन-उन्मन
धीमे आता कानों में मृदु-स्वर-मर्मर !
चुपके से आकर बह जाता
जैसे कोई कुछ कह जाता
चल देता मुस्का कर जीवन के पथ पर !
... ...

वन भूमि सुविस्तृत लता भवन
पलता प्रतिक्षण मृदु-सूनापन
हिल रहे पात, बह रहा मदिर मलयानिल !
हिल रहे हरित पल्लव केवल
हिल रहे कलित किसलय कोमल
हिल रही धरा पर तरु की छाया स्वप्निल !

बहुत कम पाठक जानते होंगे कि आचार्य महावीरप्रसादजी द्विवेदी सफल कवि भी थे। उन्होंने बहुत-सी कविताएँ लिखी थीं जो तत्कालीन पत्रों में प्रकाशित हुई थीं। आचार्य द्विवेदीजी ने वसन्त सम्बन्धी फुटकर कविताएँ तो लिखी ही हैं, पर वसन्त का वर्णन विस्तार से 'ऋतुतरंगिणी' में किया है। फुटकर कविताओं में भाषा बोलचाल की, अत्यन्त सरल और सीधी है तो ऋतुतरंगिणी' में गठी हुई, संस्कृतनिष्ठ एवं कुछ गाम्भीर्य की सूचक है। दोनों प्रकार के उदाहरण दे देना अनुचित न होगा—

नव वसन्त बहार भई जबै
सब कली वन की विकसी तबै।

सुखद शीतल मन्द सुहावनी
विमल वायु बही मनभावनी ।।
जहँ लखौं तहँ पेड़न पैं चहूं
सुमन लाल कहूँ, पियरे कहूँ ।
खिलि रहे सुषमा सरसावहीं
महक मोहक मञ्जु उड़ावहीं ।।

दूसरे प्रकार का उदाहरण है—

आयो वसन्त सुखकारक सर्व भायो
फूले प्रसून चहुँ ओर सुगन्ध छायो ।
झौरैं मदान्ध अलियूथ सुवास माते
उत्फुल्ल कंज सर मध्य न हैं समाते ।।
उत्फुल्ल अम्भोज जलानि निर्मला
रसालशाखास्थ कलोल कोकिला
सुपुष्प संकीर्ण नवीन निर्गता
मह महा सुन्दर माधवी लता
नीले सरोज सहकार निवार फूला
पीले दिवाकर मुखी सुमुखी दुकूला
सरारविन्दाम्र प्रसून लागी
जपा नभस्वान पराग पागी ।
समीर चित्त स्थिर को विदारे
न काहि कन्दर्प कृशानु जारे ।।

सुप्रसिद्ध कवि देवनाथ पाण्डेय 'रसाल' ने वसन्त वर्णन में अपने नाम को सार्थक किया है । उन्होंने अपने 'वसन्त' शीर्षक गीत में वसन्त का प्रतीक एक-एक उपकरण यों सजाकर रख दिया है कि पाठक को गीत के शीर्षक का पता लगाने में कोई दिक्कत या परेशानी नहीं होती—

फूली सरसों लहलहा रही, सुमनों भर भृंगों का मृदंग ।
बजता अमन्द, आता वसन्त, अलि मूर्त्तिमान ही है अनंग ।।
हँसती रसाल की डाल-डाल, कोमल किसलय मय लाल-लाल
लगता अलि ज्यों मंजुल प्रवाल, शोभित जिससे तरु अन्तराल
कूकती कोकिला बाल मधुर पंचम स्वर की छहरा तरंग ।......

खेतों में लहराता समीर, आता सन-सन ज्यों तीक्ष्ण तीर
कर हिल्लोलित सरि-लहर-नीर, बढ़ता गिरि कानन गहन चीर
रच रास-रंग बढ़ रहा चपल, तन-मन में छायी नव उमंग।........
लो, खुले कली के नयन द्वार, कोरों में शोभा भर अपार
अलि सजी किये सोलह सिंगार, बनती हँस-हँस प्रिय-कण्ठ-हार
यह दिक्-दिगन्त मादक वसन्त के हँसता रहता संग-संग।........

एक अन्य कवि सरस्वतीकुमार 'दीपक' ने भी 'वसन्तोत्सव' का बड़ा ही मनोरम चित्र खींचा है। वसन्त का आगमन उनकी दृष्टि में स्वयं एक महोत्सव है। एक ऐसा महोत्सव जिसकी तैयारी, सजावट आदि प्रकृति स्वयं करती है, मानव-सहायता की उसे अपेक्षा नहीं—

सरिता सर, निर्झर के तीरे
लहरों के बज रहे मंजीरे।

आया है ऋतुओं का स्वामी, वनस्थली ने ली अँगड़ाई
कोकिल ने छेड़ा है पंचम, कलियों के मुख पर अरुणाई
रसवन्ती कलि दुलहिन बनकर खोल रही पट धीरे-धीरे।

ललित लवंग लता लजवन्ती झूम रही, इठलाती गाती
नील कमलिनी कमल नगर में लहर-लहर पर दीप जलाती
आज मगन हो नन्दन वन से बहती आयी मलय समीरें।

सुमनों ने ऋतुपति स्वागत में वन श्री का सिंगार सजाया
पलक पाँवड़े बिछा दिये हैं, सूरज ने सोना बरसाया
आज अनंग सुरंग धनुष पर तान रहा कलि तीर कहीं रे।

इस प्रकार और बहुत से कवियों ने अपनी कविताओं में वासन्ती प्रकृति का जी खोलकर वर्णन किया है। और हम गर्व से कह सकते हैं कि जिस प्रकार विश्व की समस्त भाषाओं के काव्य में वसन्त का स्वागत किया गया है, आधुनिक हिन्दी काव्य भी इस दिशा में पीछे नहीं है। उसकी रसस्विनी वाणी ने निसर्ग के वासन्तिक उल्लास की अनुभूति को स्वर दिया है, उसके विविध ललित पार्श्वों के चपल सौन्दर्य को अनपायित्व प्रदान किया है।

गीत

— श्री वीरेन्द्र मिश्र —

पीता हुआ अंधेरा बढ़ता जाता हूँ
मैं पर्वत पर पर्वत चढ़ता जाता हूँ

जला गीत के दिये
मीत के लिये
चाँद, तू नेह चाँदनी ढाल रे!

—१—

मैं तीरथ को निकल पड़ा हूँ राह पर
मन की धूप खिली है तन की छाँह पर
चुपके-चुपके पूज रहा हूँ देवता
मिलन छोड़ आया हूँ बिछुड़ी बांह पर
सावन पर तो बहुत लगाए आशा हूँ
पर यह कहना कठिन कि कितना प्यासा हूँ
भरी घटा की नदी
लहर से लदी
तीर पर है मछुए का जाल रे!

—२—

गुज़र चुकी है धूप सुबह की, शाम की
थमी हुई हलचल जीवन-संग्राम की
समय मिला चिन्तन सुख-दुख-इतिहास का
रोएँ गाएँ मर्ज़ी अपने राम की
चला सफर में दिया जला तो पवन हिला
निहार जुगनू उड़ा, शलभ की तरह मिला
उसे रोशनी मिली
ध्वजा-सी खुली
नाव पर उड़ा सलोना पाल रे!

—३—

तुझे पता क्या मन के हाहाकार का
गीत नही है कर्ज़ किसी के प्यार का
मरते-खपते जीवन का परिणाम ये
स्वाद कभी मिल सका नहीं त्यौहार का
यह दीपक है इसको जलते जाना है
मैं पंथी हूँ मुझको चलते जाना है
प्रकट जहाँ मंज़िलें
सम्हल कर चलें
वहीं पर कहीं छिपा है काल रे !

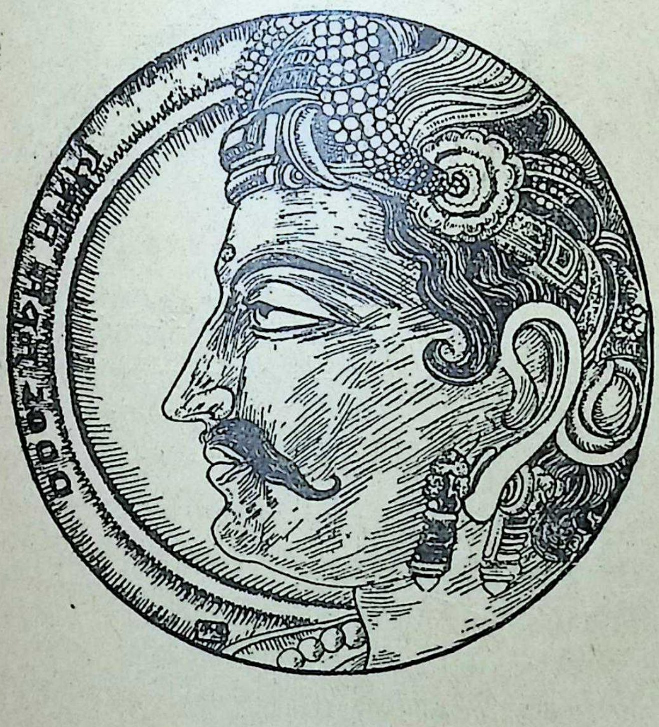

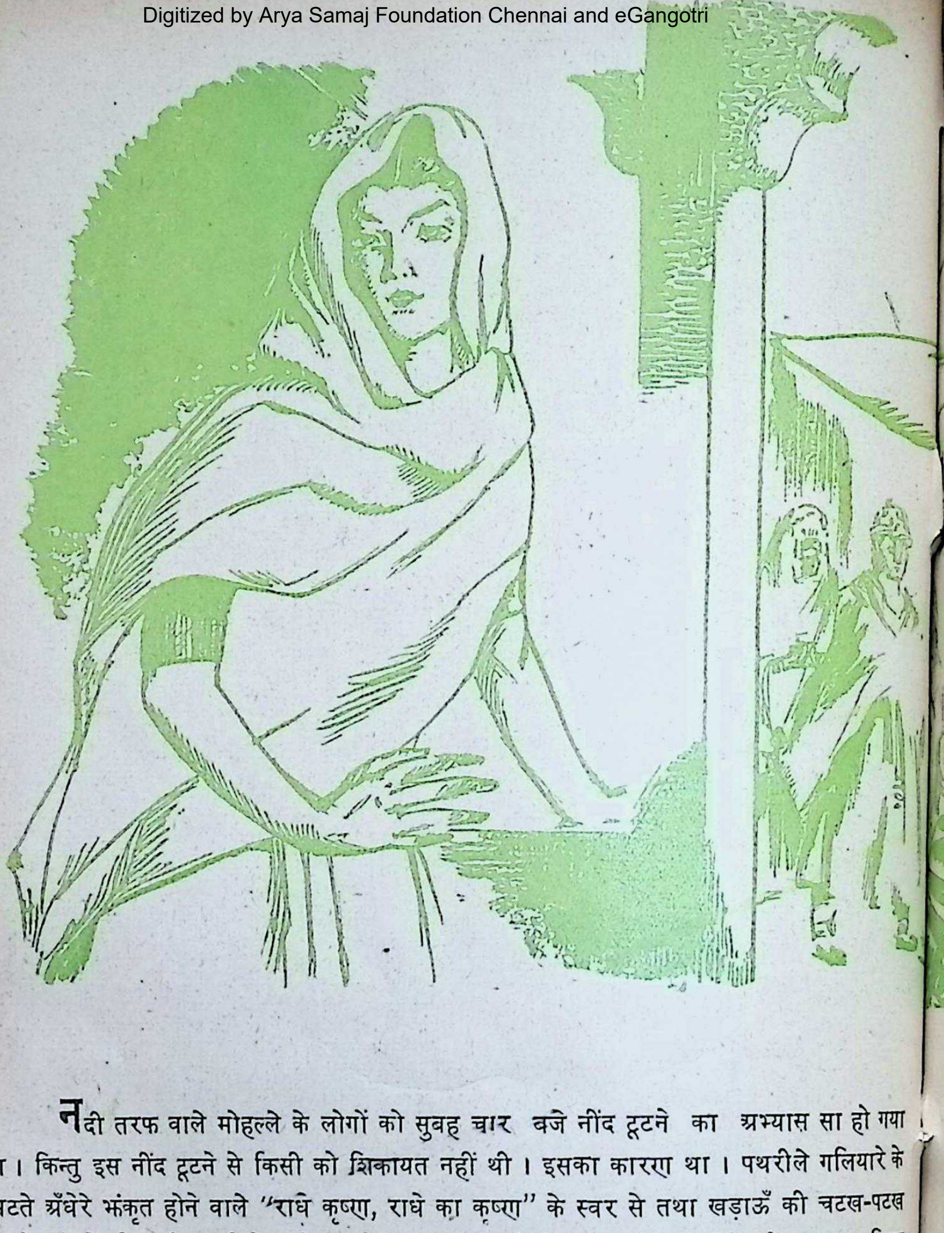

नदी तरफ वाले मोहल्ले के लोगों को सुबह चार बजे नींद टूटने का अभ्यास सा हो गया था। किन्तु इस नींद टूटने से किसी को शिकायत नहीं थी। इसका कारण था। पथरीले गलियारे के मिटते अँधेरे झंकृत होने वाले "राधे कृष्ण, राधे का कृष्ण" के स्वर से तथा खड़ाऊँ की चटख-पटख से मोहल्ले के निवासी सुपरिचित थे। वे समझ जाते थे कि गाँव के शास्त्री जी नाना पण्डित नदी की तरफ जा रहे हैं। आहट से जागे निकम्मे छोकरे तो करवट बदल कर "ओफ़! तो चार बज गये!" कहकर गुदगुदी रजाइयाँ चदरे पर ओढ़ कर मीठी-मीठी नींद में डुबकी मार जाते और काम काज वाले लोग लम्बी-लम्बी सन्दूकों से फटे मुँह के सामने चुटकियाँ बजाते और आँखें मलते ओढ़े हुए वस्त्र दूर फेंक कर उठ खड़े होते।

सूरज की पहली किरणों में गाँव के ऊँचे वृक्षों की चोटियों के कोमल पल्लव जब मधु-विन्दु जैसी पीली लाल आभा से दमकने लगते तब चौराहे पर बन्टू की चक्की 'पक्क-पुक् पक्क-पुक्' का लय-बद्ध नाद कर उठती। फिर इस सुर-वेला में ग्वाले घुटनों में छोटे बड़े बर्तन अटका कर दूध निकालते जिसकी धाराएँ 'चांई-चुर्र चांई-चुर्र' बोल उठतीं। चरवाहे चरने निकली भेड़-बकरियों को 'फिस्स-फिस्स' करके बटोरते, बैलों के गले की घंटियाँ 'टिन-टिन' बोलने लगतीं और यह सारा कोलाहल सगीतमय मालूम पड़ता। अब बूढ़े और बुढ़ियाँ 'उठो रे उठो' चिल्लाने और

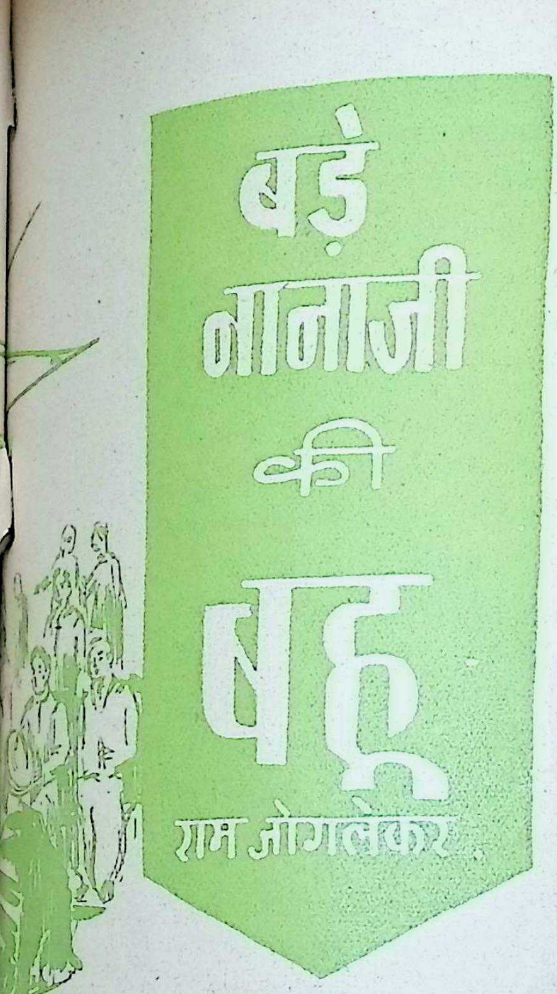

बड़े नानाजी की बहू

राम जोगलेकर

आलसी लड़कों की रजाइयाँ खींचने लगतीं, तब 'आंऽऽ ऽऽऊं' करते आँखें खोलने वाले लड़के गाँव की कुल वधुओं को गोमय के जल से आंगन सींचते देखते।

छिड़का गोमय देहात के शीतल अनिल में घुलकर महक उठता तब शुचिर्भूत नानाजी ग्राम-गंगा मनीषा के तट से उसका पुण्योदक लेकर लौटते। सचेत वातावरण में गीले वस्त्रों सहित अपने आह्निकों की पूर्ति के लिए नत मस्तक बढ़ने वाले उस मूर्तिमान मांगल्य को देखकर वधुएँ अवाक् स्तंभित हो जातीं और अनूठी श्रद्धा से विनम्र हो त्रिवार वन्दना करतीं। शास्त्रीजी की अर्हता थी भी वैसी ही। उनकी प्रगाढ़ विद्वत्ता एवं प्रगल्भ कर्मठता की कीर्ति पुण्य सलिला मनीषा के दोनों तटों पर संगम तक फली थी। सुबह जब वे नदी तट से लौटते, तबतक उनके मन्दिर के ओसारे में पाठशाला लग जाती और शिक्षार्थियों के भिन्न भिन्न गुटों में कहीं "अमरा निर्जरा देवा" और कहीं "रामो–हरिः–करिन्–भूमृत्" का निनाद गूँज कर ऐसा अलौकिक वातावरण उत्पन्न कर देता जिसमें मन्द-मन्द पदन्यास के साथ प्रवेश करते शास्त्रीजी को देखकर यह आभास हो उठता मानों विश्वतारणी माता जाह्नवी की पालकी परिक्रमा पूरी करके मन्दिर के गर्भगृह में पुनः प्रवेश कर रही हैं।

साढ़े सात बजे गाँव से चलकर शहर जाने वाली कासम की मोटर जब तैयार होकर सवारियाँ लेने निकल पड़ती तब नानाजी अर्चना से मुक्त हो पाठशाला में आते और कहते "बेटी, मैं अब आ गया।" यह सुनकर पाठशाला के बालकों को छुटपुट पाठों में व्यस्त रखने वाली एक सत्रह-अठारह वर्ष की युवती वायु के झोंके के समान हल्के, दबे पैरों से झट से मकान के भीतर चली जाती। उसका नाम था मेघना। वह नानाजी के लड़के वागेश की बहू थी। कोई दस-बारह वर्ष पहले एक सुनहरी शाम को जगमगाती गैस की हंडियों और अब्बामियाँ के बाजे के साथ आनन्द से फूले नानाजी डोला लेकर आये थे। धुले चरणों से देहरी लांघते वागेश और उसकी नन्ही सी दुलहन को देखकर नानाजी की बूढ़ी नानी माँ बलैयां लेती बोल पड़ी थीं "अरे वागेश तू कैसी सुन्दर गुड़िया लेकर आया है!" बस, ठीक तभी से मेघना गाँव में वागेश की गुड़िया कहलाती थी। वह भी ठीक दो साल तक, उस दिन तक जब सावन की हरयाली में लालाजी के बगीचे में गुल्ली-डण्डा खेलता वागेश सांप काटने से मर गया।

घटना के पन्द्रह दिन के भीतर-भीतर नानाजी सालों बूढ़े दिखने लगे । दागेश को भूले गाँव के लोग नानाजी के सफेद लम्बे बालों को देख कर उन्हें 'बड़े नानाजी' और मेघना को 'बड़े नानाजी की बहू' कहने लगे ।

फिर एक दिन गाँव वालों ने देखा कि पाठशाला के विद्यार्थियों में बैठी गीले कुन्तल पीठ पर छोड़े श्वेत आवरणों में आवेष्टित बड़े नानाजी की बहू मस्तिष्क को झटके दे-देकर देववाणी की रट लगा रही है । गाँव में कानाफूंसी शुरू हुई । और एक दिन सुबह लालाजी दो बगल-बच्चों के साथ बड़े नानाजी के मन्दिर की सीढ़ियाँ चढ़े । थोड़ी देर बाद सरौते से सुपारी के बारीक-बारीक कतरे करते हुए लालाजी ने कनखियों से बड़े नानाजी की बहू की तरफ देखा और वे धीरे से बोले—"नानाजी ! बहू तो बड़ी ही होशियार है !" बड़े नानाजी की बहू ने झुके सर नजर उठाकर लालाजी को ढीली धोती की कनोतियाँ खींचकर कसते देखा और वह—"सहस्रऽशीऽऽईऽऽर्षा पुरुऽऽषऽ" की ध्वनि अधूरी छोड़ कर घर में चली गयी । अब लालाजी ढाढ़स बाँधकर बोले "नानाजी ! सुना है वेदवाणी स्त्रियों को—मेरा मतलब है खासकर विधवाओं को—" और हकलाकर रुक गये । बड़े नानाजी धीमेंसे मुस्कराये और बोले "पुराणों में मैत्रेयी, गार्गेयी के नाम तो सुने होंगे आपने—?" लालाजी बौखलाये "हाँ-हाँ, क्यों नहीं, क्यों नहीं !" और अपना अज्ञान छिपाये चुप हो गये ।

इस अनावश्यक प्रसंग का परिणाम अच्छा ही हुआ । गाँववालों ने बड़े नानाजी और उनकी बहू का किया हुआ प्रमाण मानना प्रारम्भ किया । समय के साथ बहू स्यानी हुई । किन्तु यौवन की बहार उभरने से पहले ही बाल्यकाल से ही अनुशीलित कठोर कर्मिष्ठता एवं व्रत साधना की आग में जलकर उसके कोमल और कृश शरीर पर चर्चित विभूति की सतेज शान्ति बन गयी । प्रगाढ़ अध्ययन से उसके नेत्र स्थिर हो गये । विचारों की प्रगल्भता से उसका मस्तक तो सदा ही उन्नत रहता, फिर भी परम्परागत कुल-मर्यादा और नैसर्गिक संस्कारों से सीमित उसकी दृष्टि उसके चरणों के अंगूठे तक ही पुरःसर रहती । गाँव में बड़े नानाजी की विद्वत्ता के साथ उनकी बहू की शुचिता की भी धाक जम गयी । रहवास के मकान तथा मन्दिर की सीढ़ियाँ तो बहू कभी उतरी ही नहीं; ओसारे की पाठशाला में ही उसकी संयमित नीरव गति उसके व्यक्तित्व का प्रभाव चारों ओर फैलाने के लिए पर्याप्त होती । पाठशाला के सामने पीपल के तले बने चबूतरे पर बैठे गाँव के मनस्वी नवयुवकों को बड़े नानाजी की बहू के कहीं निकट होने की आशंका ही संयमित कर देती । शंका मात्र से ही, उनके उबलते खून का फेन बनकर उछलते प्रेम गीत हृदय के गर्त में दफन हो जाते । खांसियां गले में ही हजम हो जातीं । सीटियाँ होठों का छज्जा कूद नहीं पातीं । उनकी काजल

भरी आँखों पर पलकें मनों भारी होकर झुक पड़तीं। ऐसी थी बड़े नानाजी की बहू! सुन्दरी, विदुषी और संयमवती।

अभी-अभी की बात है। गाँव से उठकर शहर में जा बसे बड़े नानाजी के यजमान जयनारायण के घर विवाह आ गया। स्वयं जयनारायण बड़े नानाजी को शहर ले जाने के लिए लिवाने आये। आदर आतिथ्य हुआ, आखिर यजमान जो ठहरे! जब जयनारायण ने शहर चलने की बात कहीं, बड़े नानाजी ने असमर्थता प्रकट की। और करते भी क्या—उनने ग्राम सीमा नहीं छोड़ने का व्रत जो ले रखा था। तव यह मार्ग निकाला गया कि भाई, आना तो बड़े नानाजी को ही चाहिए था, लेकिन जब व्रत ही है, तब कौन क्या कहे! बड़े नानाजी नहीं, तो बड़े नानाजी की बहू ही सही। उसे ही ले जाया जाय। वह भी तो गाँव की प्रतिष्ठा है।

इस तरह बरसों बाद बड़े नानाजी की बहू पहली बार मन्दिर की सीढ़ियाँ उतरी और पहली बार कासम की मोटर में बैठकर श्वेत पल्लू में ढँके उन्मुक्त रूखे केश वाले गाँव का गौरव बने उन्नत ललाट को लिये शहर को गयी।

विवाह तो वैसे ही आनन्दमय अवसर होता है। खासकर जब वह किसी धनवान के घर हो तो फिर क्या कहना है। जयनारायण के इकलौते बेटे के विवाह में तो उत्साह और आनन्द शुरू से ही अनिरुद्ध था। उनके बड़े बाड़े में दिनों से बराती जगह-जगह डेरा डाले पड़े थे। आये अतिथियों के मुँह से उछली सम्पूर्ण अपेक्षा-इच्छाओं को तत्परता से पूरा करने का प्रबन्ध था। बाड़े में प्रवेश करते ही शुरू होनेवाले ओसारे में वर की मित्र मण्डली ने अड्डा जमा रखा था और वहाँ चौबीसों घण्टे, आठों पहर सिगरेट की धूनी जलाये, चाय के प्यालों का अर्घ्य देते हुए मित्र प्रेम की साधना चल रही थी। ताश खेलने वालों का तो अखण्ड सप्ताह ही जैसे बैठ गया था।

जयनारायण नानाजी की बहू को लेकर आये तब घर में जानेवाली बहू उनके पीछे-पीछे ओसारे के सामने से ही गुजरी। उसके अर्ध आवृत सिर के रूखे कुछ भूरे और मृदु केश; उसके जागृत विचारों का प्रदर्शक विस्तीर्ण किन्तु अनलंकृत भाल प्रदेश; सतत शास्त्र चिन्तन से तनी भौंहें, नीरव गतिमान चरणों के अँगूठों पर सदा से गड़ी कजरारी पलकें, इन सबको आवृत करता कर्मिष्ठता का तेज तथा उसके श्वेत आवरणों से अवगुण्ठित आकृति की आभा का समाहित प्रभाव क्षणार्ध में ओसारे में बैठे युवकों पर फैल गया। वे सब निःशब्द, नतनयन उसकी ओर देखते रह गये। बड़े नानाजी की बहू के गृह भाग में अन्तर्धान हो जाने पर वे युवक चौंक कर जागे और सलज्जहो एक दूसरे से नेत्र चुराने लगे। आखिर जयनारायण के पुत्र मनोज का स्नेही प्रशान्त संकेत से पूछ ही बैठा कि वह कौन थी? मनोज ने दबे स्वर में बताया कि वह उसके

कुलोपाध्याय बड़े नानाजी की बहू थी और यह भी कि वह विधवा है, जिसे सुनकर प्रशान्त निःशब्द देखता रह गया।

दूसरे ही दिन बरात शहर में ही बधू के घर के लिए प्रस्थान करने वाली थी। सारे अतिथि एकत्र हो चुके थे। घर भर में धूम-धाम मची थी। रात को काफी देर से मण्डली भोजन करने बैठी। मनोज और उसके युवक मित्रों की पंगत अलग से बन गयी थी। ये लोग रसोई की दीवार के पास पंगत जमाये थे। भोजन करते समय पास बैठा प्रशान्त मनोज से कानाफूंसी करके कहने लगा—"यह कैसा अन्याय है?"

"अन्याय! कैसा अन्याय? मैं नहीं समझा।"—मनोज ने उत्तर दिया।

"मैं तुम्हारे बड़े नानाजी की बहू के बारे में कह रहा था। देखो न, इतनी सुन्दर, शालीन युवती का जीवन राख हो गया"। प्रशान्त बोला "लोग यह सोचते क्यों नहीं?"

"कौन कहता है नहीं सोचते? बड़े नानाजी ने बड़े सोच विचार के बाद ही उनके वागेश का विवाह निश्चित किया था। जन्मपत्री देखी थी। लड़की का कुलशील देखा था। वागेश और मेघना की जन्म-पत्रियों के तो छत्तीस गुण मिले थे भैया, तब कहीं जाकर विवाह निश्चित हुआ था।"

"कैसे छत्तीस गुण? क्या यह उन मिले हुए छत्तीस गुणों का ही प्रभाव है कि नानाजी की निरपराध बहू जीवन भर विरागिणी बन बैठने को छोड़ दी गयी?" बोलते-बोलते प्रशान्त की आवाज अनजाने ऊँची हो उठी। पंगत के बाकी लोग भी चुप होकर इन दोनों की बात सुनने लगे। प्रशान्त आवेश में आगे बोल उठा "हम लोग भी अजीब हैं कि निरपराधियों को बिना किये का दण्ड देते ही रहते हैं। क्यों नहीं हम आगे बढ़ते और इन आकस्मिक आघातों के अन्यायपूर्ण परिणामों को मिटाने का प्रयास करते? बस अन्धेपन से अपनी गलतियों को दैवायत्त-दैवायत्त कहते रहते हैं—" इस सम्भाषण के अपूर्व स्रोत ने उस परम्परावादी समुदाय में वैमनस्यता उत्पन्न करदी। मनोज के पिता कहीं से आकर खड़े हो गये थे। उनने इस बहुतों को अप्रिय लगनेवाले विषय का रुख देखने के लिए चौकन्नी नजर दौड़ायी। रसोड़े के दरवाजे के पीछे एक श्वेत आकृति का आभास पाकर वे चिल्लाये "मनोज! क्या लपालप जीभ चल रही है? सुनने वालों का भी कोई ख्याल है"—पंगत में निस्तब्धता फैल गयी और रंगभंग से हतोत्साह युवक धीरे-धीरे अपराधी मानस से हाथ धोने और खिसकने लगे।

रात को बड़े बूढ़े तो चट से निद्रा में डूब गये किन्तु मनोज और उसके मित्रों को नींद कहाँ? हँसी मजाक करते हुए किसीने गीत सुनाने की सुझायी थी जो तत्काल मान ली गयी। गीत सुनाने का भार बहुधा प्रशान्त पर ही था, कारण कि सहपाठियों में

उसके काव्य के अध्ययन तथा मधुर स्वर की धूम थी। शान्त रात्रि में उसका गम्भीर ललित स्वर गीतसुधा बरसाने लगा। उसके गीत का भाव था—

"हे प्रिय, देखो, यह मोहमयी निशा कैसी सुहावनी है! मैं तो तुम्हारी बाट जोहते थक गयी हूँ। फिर भी न जाने क्यों मेरी क्लान्त पलकें झुकना ही नहीं चाहतीं। आओ, प्रिय आओ। एक ही बार अपनी मनोहारिणी छवि में मेरे नयनों में आओ और अपनी कोमल हथेली मेरी थकी आंखों पर बिछादो जिससे तुम्हारी मनोहर परछाईं अपने पलकों में छिपाकर मैं सो जाऊँ!"

उत्तर रात्रि में गीत गानेवाले और गीत सुनने की इच्छा रखनेवाले सो गये। किन्तु अनचाहे वे गीत जिसके कानों पर पड़े थे, ऐसा एक व्यक्ति मकान के भीतर वाले भाग में अपलक करवटें बदल रहा था। उसके श्वेत वस्त्र से आवृत चेहरे पर अठारह वर्ष की आयु में पहली बार द्विविधा झलक रही थी। कानों में गूंजता— "अन्याय है—क्या मिलाये गये छत्तीस गुणों का यह प्रभाव है—! क्यों नहीं इनमें से कोई आगे बढ़ता" और "हे प्रिय, आओ, प्रिय आओ!!" का संमिश्र कोलाहल उसके मनः पटलकर पुनः पुनः आघात कर रहा था। और लाख प्रयत्न करने पर भी उन अपलक नेत्रों के सामने उसे युगों से बिछुड़े प्रिय का चेहरा याद नहीं आ पाता था जिसे वह पलकों में कैद कर सके। और न उन हाथों का आभास वह प्राप्त कर पाती थी जिन्हें आंखों पर बिछाये वह ढलती रात्रि में सो सके। वह मुखाकृति बड़े नानाजी की बहू की थी। उस मेघना की थी जो व्रत-वैकल्प के आडम्बर की दीवार के पीछे वास्तविकता को दृष्टि से ओझल किये आयु के अठारह वर्ष व्यतीत कर चुकी थी।

दूसरे दिन विवाह की विधियाँ प्रारम्भ हुई। वधू वर पल्लू से पल्लू बाँधे फेरे फिरने लगे। नारियों के समुदाय में मेघना फेरे देखते-देखते भूली-सी हो गयी और, उसका हाथ उसकी अनजाने विशुभ्र साड़ी के किनारे किनारे सरकता छोर तक आया और छोर पर उसकी अंगुलियां स्वयंचालितसी कुछ ढूँढ़ते ढूँढ़ते जब वहां दूसरे पल्लू से बँधने की गांठ नहीं पा सकीं, मेघना ने चौंक कर हाथ हटाया और सहम कर चारों ओर देखने लगी—किसी ने देखा तो नहीं! हां किसी ने जरूर देख लिया था। शायद बरातियों में सबसे आगे खड़े प्रशान्त ने।

विवाह सम्पन्न होने के पश्चात् रात को मेघना ने जयनारायण से किवाड़ की ओट से धीरे से कहा कि वह दूसरे ही दिन सुबह गांव वापस जाना चाहती है। पहले तो जयनारायण देखते ही रह गये। फिर कुछ सोच कर बोले "ठीक इन्तजाम कर दिया जायगा।" व्यवस्था वास्तव में कर दी गयी और दूसरे दिन सुबह मोटर बस मेघना को लिये गांव की तरफ भागने लगी। ड्रायवर के पीछे खास दर्जे में मेघना खोई भूली बैठी थी। मोटर की गतिमती मशीन की घरघराहट में "आओ प्रिय आओ!" का स्वर

उसके कानों में गूंज रहा था। उसका हाथ पुन: पुन: धोती के किनारे किनारे पल्लू के छोर तक आ रहा था। गांव आते आते बहुत से यात्री उतर चुके थे। खास दर्जे में तो मेघना के सिवाय कोई था नहीं। गाँव के मोड़ पर सामने एक बैलगाड़ी आ जाने से मोटर एक दम रुकी कि धक्के से मेघना आगे उछल पड़ी। उसनें सामने की सीट से टकराने से बचने के लिए हाथ बढ़ाया। सीट के पीछे की लकड़ी पर से उसका हाथ फिसलकर सामने ड्रायवर के सर में जा लगा और उसकी अंगुलियाँ तेल और रास्ते की धूल से सने बालों में घुस पड़ीं। ड्रायवर ने पीछे देखा और वह मेधना की ओर देख कर मुस्कराया। आग में जले के समान मेधना नें हाथ पीछे खींच लिया और अपराधी आशंका से थर्राती अंगुलियाँ साड़ी पर मलदीं। श्वेत साड़ी पर काले धब्बे चमक उठे। मोटर के पिछले भाग से कडण्क्टर ने सारा हाल भाँप लिया। गांव में मोटर रुकने पर वह खास दर्जे का फाटक खोल कर खड़ा हो गया। जब मेघना उतरी, उसका शंकाकुल चेहरा और साड़ी पर के काले धब्बे देख कर वह हँस दिया। मेघना लज्जा से सर झुकाये साड़ी का धव्वा छिपाने की कोशिश करते मंदिर की ओर बढ़ी। सड़े मांस के लिए ताकते कौओं की तरह गांव के गुण्डे कण्डक्टर से लपक कर बोले "क्या मामला है!" कण्डक्टर आंख मारते हुए सीटी बजाकर बोला "गुल खिलने लगे प्यारे!" तीखी सीटी मेघना का कलेजा चीरती आर-पार निकल गयी। लाज से लाल पड़ा झुका सर, एक हाथ छोर में छिपाये, अनजाने अपराध के भय से डगमगाते पैरों से और सफेद साड़ी के धब्बे छिपाते मेघना मन्दिर की सीढ़ियां चढ़ने लगी। उन्नत उज्ज्वल मस्तक लिये शहर गयी बहू को झुके सर वापस आयी देखकर बड़े नानाजी कुछ नहीं कह सके। उन्होंने एक लम्बी और ठण्डी सांस ली, और बड़े नानाजी की बहू उनकी नज़र बचाते हुए भारी डगों से मकान के भीतर चली गयी।

मैं निर्झर हूँ

— श्री परमेश्वर द्विरेफ —

मैं निर्झर हूँ, ये चट्टानें मुझको कुछ रोक न पायेंगी
चलने वाले का दुनियाँ में कोई पंथ न रोक सका
जलने वाले की ओर कभी कोई भी तम न विलोक सका
दिनकर की आँखें खुलते ही जग में प्रकाश हो जाता है
काला भयावना अन्धकार सूना बन कर सो जाता है

तारापति की अँगड़ाई पर तारे लुक जाया करते हैं
चपला की तीखी भृकुटी पर बादल झुक आया करते हैं
जिस ओर कूदता सिंहराज हाथी चर्राया करते हैं
ज्योंही थोड़ा भू-कंप हुआ नगपति थर्राया करते हैं

कूलों के तुंग कगार कभी धारा पर क्या टिक सकते हैं ?
सच्चे अन्तर्दृष्टा कवि क्या मुद्राओं पर बिक सकते हैं ?
झंझा को धूल न रोक सके, वह स्वयं साथ उड़ जाती है
छाती को फैला देने पर बाधा पीछे मुड़ जाती है

जो बढ़ने वाले होते हैं वे तो बढ़ जाया करते हैं
हेमाचल के शिखरों पर वे सीधे चढ़ जाया करते हैं
सागर की सीमा में ज्वाला चुपचाप शान्त हो जाती है
नभ के अन्तर में झंझा भी दिग्भ्रान्त क्लान्त हो आती है

मेरे आगे आने वाली दीवार भग्न हो जायेगी
चट्टानों की अभिलाषायें जल-बीच मग्न हो जायेंगी
मेरे पथ का बाधक कोई गिरि-शृंग न रहने पायेगा
जो जो भी आगे आयेगा उसको प्रवाह ले जायेगा।

मैं तो इन पाषाणों में ही कलकल संगीत सुनाता हूँ
अवरोधों को कर नष्ट भ्रष्ट अपना पथ आप बनाता हूँ
कोई भी भीमाकर शिला धारा का टोक न पायेगी
मैं निर्झर हूँ, ये चट्टानें मुझको कुछ रोक न पायेंगी

सोवियत भाषाओं में भारतीय साहित्य

— श्री ओ० आफानासयेव

सोवियत संघ में बसने वाली जातियों ने हमेशा भारत की समृद्ध एवं प्राचीन संस्कृति में, विशेषकर उसके साहित्य में गहरी अभिरुचि दिखलायी है।

१९ वीं शती में ही भारत के प्राचीन साहित्य की अनेक कृतियाँ संस्कृत से रूसी में अनूदित हो चुकी थीं। लेबेदेव, श्चेरबात्स्की, ओल्डेनबुर्ग, बारान्निकोव, पेत्रोव एवं अन्य संस्कृत-विशेषज्ञों एवं भारत-विद्याविदों के अध्ययन ने रूसी भारत विद्या को संसार में अग्रणी स्थान पर पहुँचा दिया। १८०१ में रूस में प्रथम हिन्दी व्याकरण प्रकाशित हुआ। इसके प्रणयनकर्त्ता रूसी सांस्कृतिक क्षेत्र के प्रमुख व्यक्ति गेरासिम लेबेदेव थे जिन्होंने भारत मे बारह साल बिताये थे। १८३५ में प्रसिद्ध रूसी संस्कृतज्ञ पेत्रोव ने "महाभारत" से "नल-विलाप" का रूसी अनुवाद प्रकाशित किया। इसके बाद "महाभारत" के पृथक खंडों के अनुवाद प्रकाशित हुए जिनमें प्रख्यात रूसी कवि वासिली भुकोवस्की (१८४४) द्वारा अनूदित "नल-दमयन्ती उपाख्यान" भी शामिल था। रूस में संस्कृत शब्दकोषों के प्रकाशन का श्रीगणेश छठे दशक में हुआ। १९ वीं शती के अन्त तथा वर्त्तमान शती के आरम्भ में भारत के प्राचीन साहित्यकारों की, जिनमें कालिदास भी हैं, समस्त मुख्य कृतियाँ तथा बौद्ध-साहित्य की कृतियाँ (अकादमिशियन ओल्डेनबुर्ग द्वारा सम्पादित) रूसी भाषा में प्रकाशित हो गयीं।

महान् अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति के बाद रूसी तथा सोवियत संघ की अन्य जातियों की भाषाओं में भारतीय लेखकों की कृतियों के अनुवाद तेज़ी से बढ़ने लगे। जहाँ पहले भारतीय लेखकों की कृतियाँ बुद्धिजीवियों की अपेक्षाकृत सीमित मंडली को उपलब्ध थीं, इस समय जब राष्ट्रीय एवं विश्व-संस्कृति की समस्त निधियाँ श्रमिक जनता के हवाले हैं, भारतीय पुस्तकों को रूस, बेलोरूस, यूक्रेन, मध्यएशिया एवं ट्रान्स-काकेशिया के सोवियत जनतन्त्रों में व्यापक पाठक मंडली प्राप्त है। टैगोर, प्रेमचन्द, कृष्णचन्द्र, मुल्कराज आनन्द तथा अन्य लेखकों की कृतियाँ रूसी के साथ-साथ सोवियत संघ की जातियों की अन्य भाषाओं में अनूदित हो चुकी है। उनकी पुस्तकों के अनुवाद यूक्रेनी, बेलोरूसी तथा जार्जियाई भाषाओं मे निकल चुके हैं। पाठकों की मंडली का अपरिमित विस्तार हुआ है।

भारत के महान् लेखक रवीन्द्रनाथ टैगोर की कृतियाँ रूसी तथा सोवियत संघ की जातियों की अन्य भाषाओं में सर्वाधिक व्यापक एवं विस्तृत रूप में अनूदित हुई हैं। टैगोर की चालीस से ऊपर कृतियों की कुल मिलाकर लाखों प्रतियाँ सोवियत संघ में

प्रकाशित हो चुकी हैं । टैगोर की बहुत सी कृतियों के कई संस्करण निकल चुके हैं । उदाहरणार्थ १९२४ और १९२६ के बीच उनके "गोरा" उपन्यास के तीन संस्करण निकल गये । १९२३ और १९२५ के बीच उनके "रेक" (नौका डूबी) नामक उपन्यास के तीन संस्करण प्रकाशित हुए । "फोर" (चतुरंग) के कई सस्करण प्रकाशित हुए हैं । "इन फोर वर्सेज" (चार अध्याय) के एक संस्करण की भूमिका प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखक रोमैं रोलाँ ने लिखी थी जो स्वयं टैगोर के प्रशंसक थे । टैगोर की जिन कृतियों से सोवियत लेखक परिचित हैं उनमें कुछ ये हैं- "गीतांजलि", "स्ट्रे बर्ड्स" (खाप छाड़ा) "लिरिक्स ऑफ लव ऐंड लाइफ" (कोड़ी ओकमल) "सैंक्रिफाइस" (नैवेद्य)। ये अनुवाद बंगला और अंग्रेज़ी से हुए हैं । टैगोर की कहानियों का एक संग्रह प्रकाशित हुआ है जिसमें "रिवील्ड सिक्रेट" (प्रकट रहस्य), "हैपी नाइट" (शुभरात्रि), "दी रपचर" (विच्छिन्नता), "ऑन दी सीशोर" (समुद्रतट पर), "माई चाइल्ड्स वर्ल्ड" (मेरे बच्चे का संसार), "पेपरबोट्स" (कागजेर नाव), "माई ट्रीटी" (मेरी सन्धि), "हीरो इन ड्रीम्स" (स्वप्नलोक में राजा), आदि कहानियाँ हैं । "हंगरी स्टोन्स" (क्षुधित पाषाण) का तातारी भाषा में, तथा 'गार्डेनर" (गोतिमात्य) का बेलोरूसी भाषा में अनुवाद हुआ है ।

मुल्कराज आनन्द की कृतियाँ सोवियत संघ में अत्यन्त लोकप्रिय है । उदहरणार्थ 'दो कुली' नामक उनके उपन्यास की ५०,००० प्रतियाँ प्रकाशित हुई हैं । यह पुस्तक स्कूली पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत है । युद्ध के बाद के वर्षों में भारतीय गद्य एवं पद्य साहित्य के अनुवाद विशेष रूप में बड़ी संख्या में प्रकाशित हुए हैं । बालाथोल, चट्टोपाध्याय, कैफी आज़मी आदि की कविताएँ सोवियत संघ में बसने वाली जातियों की विभिन्न भाषाओं में अनूदित हो रही हैं । कृष्णचन्द्र की "शादी", "जब खेत जागे', "आग और फूल" आदि कहानियों के अनुवाद प्रकाशित हो रहे हैं ।

सोवियत पाठक अन्ना भाऊ साठे की "सुल्तान" तथा "बार्बाया कान्दारी" आदि कृतियों से परिचित हैं । सज्जाद ज़हीर, ख्वाजा अहमद अब्बास, अली सरदार जाफरी, यशपाल, भवानी भट्टाचार्य, अहमद नादिम काजमी, गुरुबख्शसिंह, महीन्द्रनाथ, फैज अहमद फैज, बलवन्त गार्गी तथा कई अन्य भारतीय एवं पाकिस्तानी लेखकों की कृतियाँ भी सोवियत संघ में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी हैं ।

रजिया सज्जाद जहीर की 'नीली गठरी", तथा ख्वाजा अहमद अब्बास की "अजन्ता" और "इनकलाब" नाम की कहानियों का रूसी में अनुवाद हो चुका है । भवानी भट्टाचार्य के "अकाल" नामक उपन्यास के रूसी संस्करण की सोवियत पत्र-पत्रिकाओं में व्यापक रूप में समीक्षा हुई है । इन समीक्षाओं में उपन्यास का अत्यन्त उच्च मूल्यांकन किया गया है ।

ये हैं कुछ मनोरंजक तथ्य और आँकड़े। सिर्फ युद्धोत्तर-कालीन वर्षों में भारतीय लेखकों की १०० से ऊपर कृतियों की कुल मिलाकर १५० ००० प्रतियाँ सोवियत संघ में बसने वाली जातियों की विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित हुई हैं। बच्चों के लिए भी भारतीय लेखकों की कृतियों के संस्करण प्रकाशित हुए हैं। उदाहरणार्थ, भारत की प्राचीन लोककथाओं का भव्य संस्करण १९५१ में स्तालिनाबाद में ताजिक भाषा में प्रकाशित हुआ, जिसकी भूमिका लब्धप्रतिष्ठ ताजिक लेखक सद्रीद्दीन ऐनी ने लिखी थी और उन्होंने उस पुस्तक का सम्पादन किया था। पिछले साल सोवियत संघ के साहित्यिक जीवन की उल्लेखनीय घटना थी भारतीय एवं पाकिस्तानी लघुकथाओं के संग्रह का रूसी में प्रकाशन।

सोवियत संघ में भारत का बहुत अधिक क्लासिकल साहित्य अनूदित एवं प्रकाशित हो चुका है। इस क्षेत्र में अकादमिशियन बारान्निकोव और काल्यानोव, बेस्क्रोवनी तथा अन्य प्रमुख सोवियत भारत-विद्याविदों ने बहुत काम किया है। १९५० में सोवियत संघ की विज्ञान अकादमी के प्रकाशन-गृह ने (काल्यानोव द्वारा अनूदित) "महाभारत" प्रकाशित किया। इससे पहले के प्रकाशनों में "बैताल पंचविंशति" (१९३९) लल्लूलालजी लिखित "कृष्ण लीला" (१९३७) तथा "रामायण" शामिल हैं। तबिलिसी से जार्जियाई भाषा में "रामायण" की ९००० प्रतियाँ प्रकाशित हुई हैं। भारत के क्लासिकल साहित्य का संस्कृत से रूसी भाषा में अनुवाद करने की दिशा में बहुत अधिक काम हुआ है। ऊर्ध्व-लिखित समस्त संस्करणों में विस्तृत भाष्य और टीकाएँ दी हुई हैं।

इस समय सोवियत विज्ञान-मन्दिर का प्रकाशन-गृह भारतीय साहित्य की क्लासिकल कृति "अर्थशास्त्र" का रूसी संस्करण छापने की तैयारी कर रहा है।

इस समय जिन आधुनिक कृतियों का रूसी में अनुवाद हो रहा है उनमें एक है प्रेमचन्द का "गोदान"। भारतीय लेखकों की कृतियों का मूल भाषाओं में अध्ययन करने की इच्छा रखने वाले सोवियत पाठकों के लिए भारतीय-रूसी शब्दकोषों का प्रकाशन हुआ है। हिन्दी-रूसी तथा उर्दू-रूसी शब्दकोष तो पहले ही प्रकाशित हो चुके हैं, रूसी-हिन्दी, बंगाली-रूसी तथा पंजाबी-रूसी शब्दकोषों का प्रणयन हो रहा है।

विख्यात सोवियत लेखक निकोलाई तिखोनोव ने सोवियत लेखकों के द्वितीय अखिल संघीय सम्मेलन में विश्व के आधुनिक प्रगतिशील साहित्य के ऊपर पेश की गयी अपनी रिपोर्ट में कहा है कि 'भारतीय साहित्य हमारे सामने उत्तरोत्तर व्यापक रूप में प्रकट हो रहा है। हम देखते हैं कि यह किस तरह एशिया में साम्राज्यवादी औपनिवेशिक नीति का पर्दाफाश कर रहा है, किस तरह अतीत के अवशेषों के विरुद्ध संघर्ष कर रहा है, किस प्रकार जन-समुदाय के जीवन का यथार्थवादी चित्रण करने की दिशा में प्रयत्नशील है।"

प्रकाशन-परिचय

राजस्थानी कहावताँ [दो भाग]

सम्पादक—प्रो० नरोत्तमदास स्वामी तथा पं० मुरलीधर व्यास
प्रकाशक—राजस्थानी-साहित्य-परिषद्, कलकत्ता
मूल्य—प्रति-भाग ३)

राजस्थानी बोली हिन्दी की अत्यन्त समृद्ध एवं प्रमुख बोली है। राजस्थानी का साहित्य प्राचीनता और गरिमा की दृष्टि से ग्वालियरी, बुन्देलखण्डी, व्रज तथा अवधी की टक्कर का है। राजस्थानी के प्राचीन साहित्य के प्रकाशन से हिन्दी का प्राचीन गौरव अपने पुष्ट रूप में सामने आ रहा है। यह कार्य राजस्थान में तथा राजस्थान के बाहर भी राजस्थान के कुछ सपूतों द्वारा अत्यन्त यशस्वी रूप में हो रहा है।

किसी भी बोली अथवा भाषा की व्यंजनाशक्ति उसकी लोकोक्तियों और कहावतों द्वारा प्रकट होती है। वास्तव में ये लोकवाणी का प्रधान रूप हैं और उच्च साहित्य तथा लोक साहित्य की धमनियों में समान रूप से प्रवाहित होती हैं। इनके द्वारा हमारे सामाजिक जीवन पर बहुत विस्तृत प्रकाश पड़ता है।

कुछ कहावतों का रूप कभी-कभी भिन्न-भिन्न भाषाओं में एक-सा मिलता है, फिर, एक ही मातृकुल की बोलियों में तो यह समानता बहुत अनुपात में दृष्टिगोचर होती है। इस दृष्टि से राजस्थानी-साहित्य-परिषद्, कलकत्ता द्वारा राजस्थानी कहावतों के ये दो संग्रह अत्यन्त स्तुत्य एवं संग्रहणीय प्रकाशन हैं। इनके द्वारा राजस्थानी साहित्य की प्रौढ़ता का प्रदर्शन हुआ है और भाषा-शास्त्र की दृष्टि से उसके अध्ययन में सरलता हो गयी है।

यह एक स्पष्ट तथ्य है कि भारतीय लोक-मानस में सदा समान विचारधारा प्रवाहित होती रही है। इसका एक प्रमाण ये कहावतें हैं। यदि भारत की विभिन्न बोलियों और भाषाओं की कहावतों का तुलनात्मक अध्ययन किया जावे, तो यह तथ्य बहुत प्रभावशाली रूप में प्रतिभासित हो।

इस ग्रन्थ के विद्वान् लेखकद्वय ने जो सत्प्रयास किया है, वह अत्यन्त प्रशंसनीय एवं स्वागत-योग्य है।

भारतीय संस्कृति को गोस्वामी तुलसीदास का योगदान

लेखक—डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्र
प्रकाशक—नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर
मूल्य—दो रुपया

डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्र ने गोस्वामी तुलसीदास के साहित्य का बहुत गंभीर

अध्ययन किया है। 'तुलसीदर्शन' के रूप में वह हिन्दी संसार के सामने आ भी चुका है। उनके द्वारा सन् १९५२ में नागपुर-विश्वविद्यालय में श्री बापूराव-दादा-किनखेडे-व्याख्यान माला में 'भारतीय संस्कृति में तुलसीदास का योगदान' विषय पर दिये गये चार भाषणों का यह संग्रह नागपुर-विश्वविद्यालय ने प्रकाशित किया है।

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने अमर साहित्य द्वारा न केवल भारतीय वाङ्मय की श्री वृद्धि की है, वरन्, भारतीय समाज को भी गत अनेक शताब्दियों से प्रभावित किया है। उनके ग्रन्थों के अध्ययन और मनन से भारतीय समाज को आध्यात्मिक चेतना के साथ ही सुपुष्ट सामाजिक आधार भी प्राप्त हुआ है। राम तथा राम-परिवार के आदर्श ने हमारी संस्कृति को अनुप्राणित किया है।

यद्यपि यह पुस्तक भाषणों का संग्रहमात्र है और भाषण की शैली तथा संक्षेप की भावना इस पुस्तक में यत्रतत्र विद्यमान होना प्राकृतिक है, तथापि, इस पुस्तक के द्वारा विद्वान् लेखक ने गोस्वामीजी के साहित्य का भारतीय संस्कृति पर जो उन्नायक एवं गम्भीर प्रभाव पड़ा है, उस पर सम्यक् प्रकाश डाला है। साथ ही, तुलसी-साहित्य के विषय में अत्यन्त प्रामाणिक जानकारी इस पुस्तक द्वारा मिलती है जो गोस्वामीजी के साहित्य के जिज्ञासुओं के लिए उपयोगी है।

इस प्रकाशन द्वारा नागपुर विश्वविद्यालय ने हिन्दी-साहित्य की श्री वृद्धि की है। पुस्तक का मुद्रण इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस के अनुरूप ही हुआ है, परन्तु, कहीं-कहीं छपाई में अक्षरों के टूट जाने से पढ़ने में कठिनाई होती है।

राजस्थानो

संपादक—श्री नरोत्तम स्वामी
प्रकाशक—राजस्थानी-साहित्य-परिषद्, कलकत्ता
मूल्य—प्रत्येक भाग का २॥), चारों भागों का १०)

राजस्थानी-साहित्य-परिषद्, कलकत्ता ने राजस्थानी भाषा, साहित्य, इतिहास और कला की शोध-सम्बन्धी निबन्धमाला 'राजस्थानी' के नाम से चार भागों में प्रकाशित करने की योजना की है। उसके दो भाग हमारे सामने हैं।

राजस्थान का भारतीय इतिहास में विशेष महत्त्व है। इस मरुभूमि में भारत का शौर्य पनपा है और उसका अत्यन्त जाज्वल्यमान रूप विश्व के इतिहास में अंकित है। इसके अनुरूप ही इस प्रदेश का मध्यकालीन साहित्य है। हिन्द के इस गौरवपूर्ण स्थल और हिन्दी की इस महिमामयी बोली के अध्ययन के इस प्रयास से इस देश की संस्कृति का अत्यन्त उज्ज्वल स्वरूप प्रत्यक्ष हो रहा है।

ऐतिहासिक परम्परा में राजस्थानी मध्यप्रदेश की बोली का पश्चिमी रूप है।

यह मध्यप्रदेश की बोली भी प्राचीन हिन्दी का ही एक रूप है। परन्तु इस निबन्धमाला के संयोजकों के मस्तिष्क में राजस्थानी को हिन्दी की एक बोली न मानकर उसे स्वतंत्र भाषा के रूप में स्वीकार करने की जो वृत्ति इस संग्रह में दिखाई दे रही है, वह स्थानीय प्रेमातिरेक का द्योतक भले ही हो, ऐतिहासिक परम्परा के अनुकूल नहीं है। श्री नरोत्तम स्वामी ने अपने 'राजस्थानी भाषा और साहित्य'-शीर्षक लेख में राजस्थानी भाषा के क्षेत्र की सीमाएँ बताते हुए दक्षिण-पूर्व तथा पूर्व में हिन्दी की बुन्देली तथा व्रज नामक उपभाषाओं का क्षेत्र तथा उत्तरपूर्व में हिन्दी की बाँगड़ू उपभाषा का क्षेत्र बतलाया है। राजस्थानी को हिन्दी से भिन्न कैसे माना जा सकता है और किस प्रकार "हिन्दी (बिहारी-सहित)" के बोलनेवालों की संख्या ११ करोड़ और राजस्थानी बोलनेवालों की पृथक संख्या १।। करोड़ कही जा सकती है? ये आँकड़े यदि सही हैं, तो केवल यह कहा जा सकता है कि हिन्दी बोलनेवालों की संख्या १२।। करोड़ हैं, जिसकी राजस्थानी बोली का व्यवहार १।। करोड़ व्यक्ति करते हैं।

परन्तु, इस दृष्टिक्षेत्र के अतिरिक्त राजस्थान और उसकी बोली के सम्बन्ध में बहुत अधिक जानकारी हिन्दी-संसार को इस संग्रह से मिलती है। यह संग्रह प्रत्येक हिन्दी-साहित्य-प्रेमी के लिए अध्ययन और संग्रह के योग्य है।

हिन्दी काव्य की अन्तश्चेतना

लेखक—प्रो० राजाराम रस्तोगी
प्रकाशक—केदारनाथ रामनाथ, शिक्षा-साहित्य-प्रकाशक, मेरठ
मूल्य—पाँच रुपया

प्रस्तुत पुस्तक के विद्वान् लेखक ने हिन्दी काव्य साहित्य के विकास से सम्बद्ध १६ निबन्ध लिखकर उसके विभिन्न अंगों पर अत्यन्त सुन्दर शैली में प्रकाश डाला है। ११ निबन्धों में हिन्दी के आदिकाल से लेकर वर्त्तमान प्रगतिवाद तक का विकास दिखाया गया है और शेष ५ निबन्धों में हिन्दी काव्य में विरह. नारी, प्रकृति-चित्रण, गीत तथा प्रतीक पर लेखक ने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। डॉ० विश्वनाथप्रसाद ने प्राक्कथन में इस पुस्तक के विषय में लिखा है कि "यह काव्य के गत्यात्मक जीवन के क्रमिक विकास की विवेचनात्मक रूप-रेखा है। इस पुस्तक में युग-जीवन की सतह पर फैले हुए विविध रंग और रेखाओं की सूक्ष्म परख एवं संतुलित विचार-शैली के व्यास में विषय का सुन्दर मौलिक ढंग से स्पष्टीकरण हुआ है। काव्य-साहित्य का इतिहास ही नहीं, अपितु, काव्य-चेतना के जो अनेक नये मोड़ और घुमाव हैं, प्रायः उन सबका आलोचनात्मक अध्ययन लेखक ने इस कृति में विद्वत्ता के साथ प्रस्तुत किया है।"

विषय-प्रतिपादन तथा मौलिक शैली, दोनों दृष्टियों से पुस्तक पठनीय है।

हिन्दी-साहित्य के विद्वानों के लिए यह एक नवीन दृष्टिकोण की परिचायक पुस्तक है तथा हिन्दी-साहित्य के विद्यार्थियों के लिए प्रचुर उपयोगी सामग्री एक स्थल पर देती है।

चन्द्रसखी और उनका काव्य

लेखिका—श्रीमती पद्मावती शबनम
प्रकाशक—लोकसेवक-प्रकाशन, बुलानाला, बनारस
मूल्य—दो रुपया

हिन्दी की अनन्य भक्त कवयित्री मीराँबाई सम्बन्धी दो पुस्तकें लिखकर श्रीमती शबनम अपने काव्यप्रेम और विद्वत्ता का परिचय दे चुकी है। उनके द्वारा संपादित होकर राजस्थान की लोकप्रिय कवयित्री चन्द्रसखी के ये पद प्रकाशित किये गये हैं।

चन्द्रसखी के पद मीराँबाई के पदों के समान ही समस्त मध्यप्रदेश में प्रचलित हैं। आज के बुन्देलखण्ड, व्रज और राजस्थान में उनके पद गाये जाते हैं। अभी तक इसी गेय-परम्परा ही में वे मिलते हैं। उनके सम्बन्ध में कुछ परिचय इसके पूर्व भी प्रकाशित हुए, परन्तु, उनमें इन पदों का राजस्थानी रूप ही दिखाई दिया है। चन्द्रसखी सम्बन्धी प्रस्तुत विवेचन में अथवा इसके पूर्व के विवेचनों में उनका कोई व्यक्तिगत परिचय नहीं मिलता। जो हो, चन्द्रसखी के पद हमारी लोक-गीत-परम्परा की अत्यन्त बहुमूल्य सामग्री हैं और श्रीमती शबनम द्वारा उनके संपादन से हिन्दी-साहित्य की इस अज्ञात किन्तु लोक-मानस में निवास करनेवाली कवयित्री (या कवि ?) की रचना को स्थायित्व मिलेगा। श्रीमती शबनम का यह प्रयास अभिनन्दनीय और यह पुस्तक संग्रहणीय है।

ज़िन्दगी के गीत

कवि—श्री विनोद रस्तोगी
प्रकाशक—कमला-प्रकाशन, कानपुर
मूल्य—एक रुपया

'जिन्दगी के गीत' श्री विनोद रस्तोगी का पहला कविता-संग्रह है। वह नवीन प्रगतिवादी धारा के कवि हैं और उनके विचार, शैली तथा भाषा परिमार्जित तथा आकर्षक हैं। श्री विनोद का अपना मत है कि "कवि या लेखक होने से पहले मैं इन्सान हूँ। इसलिए मैं इन्सानियत से प्यार करता हूँ, उसके गीत गाता हूं। साहित्य को मैं केवल जीवन की कसौटी ही नहीं मानता, वरन्, मेरे मत में, अन्य धर्मों के साथ उसका यह धर्म भी है कि वह हमें जीने की कला सिखाये।"

संग्रह के अनेक गीत ओजस्वी हैं तथा अनेक समकालीन घटनाओं पर मार्मिक प्रकाश डालते हैं। शरणार्थियों के सम्बन्ध में लिखी उनकी रचना 'आजादी और हम', 'स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् की दशा का सिंहावलोकन' 'पाँच वर्ष', तथा 'कुम्भ-दुर्घटना' हृदयस्पर्शी रचनाएँ हैं।

कवि की भाषा को हिन्दुस्तानी ही कहिए। अंग्रेजी तथा फारसी के प्रचलित शब्दों का प्रचुर प्रयोग किया गया है। साम्यवादी समाज के आदर्श को लेकर कवि चला है। एक बात निश्चित है कि श्री रस्तोगी में कवित्व-प्रतिभा है। उनका यह कविता-संग्रह युवक कविता-प्रेमियों में लोकप्रिय होगा, इसमें सन्देह नहीं। हम यहाँ कवि ही की एक रुबाई उनके लिए प्रस्तुत करते हैं—

तुम हवा सा सदा चलना सीखो।
और हिम श्रृंग सा गलना सीखो॥
नाम की ज्योति स्वयं फैलेगी।
पहले तुम दीप सा जलना सीखो॥

कविता-संग्रह में अशुद्धियों की सूची अखरती है, परन्तु वह तो हिन्दी-मुद्रण का आज एक राजरोग बन गया है।

रवीन्द्र-कविता-कानन

लेखक—श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
प्रकाशक—हिन्दी-प्रचारक-पुस्तकालय, ज्ञानवापी, बनारस
मूल्य—चौदह आने

हम इस पुस्तक के प्रकाशक महोदय को हार्दिक बधाई का पात्र समझते हैं। उनके द्वारा हिन्दी के एक महाकवि द्वारा लिखी गयी विश्ववंद्य कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के काव्य-परिचय की इस सुन्दर पुस्तक का दूसरा संस्करण अत्यन्त उचित मूल्य पर प्रकाशित किया गया है। १७५ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य केवल चौदह आने रखा गया है। हिन्दी साहित्य में इस पुस्तक का महत्त्व इसलिए बहुत अधिक है कि यह महाकवि निराला की प्रथम गद्य पुस्तक है। इस दूसरे संस्करण के अन्त के परिशिष्ट में कवीन्द्र रवीन्द्र की अद्यतन ग्रन्थ-सूची देकर इसकी उपयोगिता बढ़ा दी गयी है।

हमें विश्वास है कि इस पुस्तक द्वारा प्रत्येक कविता-प्रेमी भारतवासी हिन्दी के (उस समय) भावी महाकवि द्वारा भारत के महाकवि की वाणी के मर्म को समझने में समर्थ हो सकेगा।

—मधुसूदन

प्राप्ति-स्वीकार

हिन्दी काव्य-शैली का विकास—लेखक श्री दा० दा० चतुर्वेदी, प्रकाशक ज्ञान-मन्दिर, ग्वालियर। परीक्षार्थियों के लिए लिखी गयी पुस्तक। पृष्ठ-संख्या ६४, मूल्य बारह आने।

स्वदेश और साहित्य—मूल लेखक स्व० शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय, अनुवादक डॉ० महादेव साहा, प्रकाशक हिन्दी-प्रचार-पुस्तकालय, ज्ञानवापी, बनारस। पृष्ठ संख्या १८०। मूल्य चौदह आने।

मेरा जीवन सर्वोदय की ओर—लेखक श्री भगवानदासजी केला। प्रकाशक भारतीय ग्रन्थमाला, दारागंज प्रयाग। पृष्ठ संख्या ३६। मूल्य पाँच आने।

समाजवाद, साम्यवाद और सर्वोदय—लेखक श्री भगवानदास जी केला। प्रकाशक भारतीय ग्रन्थमाला, दारागंज, प्रयाग। पृष्ठ संख्या १०३। मूल्य बारह आने।

सर्वोदय राज, क्यों और कैसे ?—लेखक तथा प्रकाशक वही। पृष्ठ संख्या ७१। मूल्य दस आने।

सर्वोदय दैनिक जीवन में—लेखक तथा प्रकाशक वही। पृष्ठ संख्या ४२। मूल्य छः आने।

सर्वोदय अर्थशास्त्र—लेखक तथा प्रकाशक वही। पृष्ठ संख्या ३५२, पक्की जिल्द। मूल्य चार रुपये।

कांग्रेस ग्राम पंचायत कमेटी की रिपोर्ट—प्रकाशक अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी, नई दिल्ली। पृष्ठ संख्या ६४। मूल्य १।)

आर्थिक समीक्षा—प्रधान-सम्पादक श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल। काँग्रेस-हीरक-जयन्ती-अधिवेशनांक। अखिल-भारतीय काँग्रेस-कमेटी के आर्थिकराजनैतिक अनुसन्धान-विभाग का पाक्षिक पत्र। प्रकाशक अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी, नई दिल्ली। वार्षिक मूल्य पाँच रुपया। इस विशेषांक का आठ आना।

विज्ञान प्रगति—कौन्सिल आफ साइन्टिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च, ओल्ड मिल रोड, नई दिल्ली-२ द्वारा प्रकाशित मासिक। वार्षिक मूल्य पाँच रुपए। एक प्रति का आठ आने।

भारत की राष्ट्रभाषा

२६ जनवरी १९५० को देश की संविधान सभा ने भारत को सम्पूर्ण-प्रभुत्त्व-सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए भारतीय संविधान अंगीकृत किया। संविधान द्वारा भारत की लोक-भाषा हिन्दी को संघ की राजभाषा और देवनागरी लिपि को राष्ट्रलिपि स्वीकार किया। परन्तु साथ ही आगामी पन्द्रह वर्षों के लिए राजकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी को भी स्थान दे दिया। संविधान में यह भी निर्देश है कि पाँच वर्ष की समाप्ति पर राष्ट्रपति एक ऐसे आयोग का गठन करेंगे जो राजकीय प्रयोजनों के लिए हिन्दी के उत्तरोत्तर अधिक प्रयोग के लिए तथा अन्य सम्बन्धित विषयों के लिए अपना मत देगा।

२६ जनवरी १९५५ को ये पाँच वर्ष बीत गये। राष्ट्रपति शीघ्र ही राष्ट्रभाषा आयोग का गठन भी करेंगे। परन्तु वास्तविक रूप में जब राजकीय कार्यों में अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी करने की गति पर दृष्टिपात करते हैं तब यह दिखाई देता है कि वह बहुत मन्द है। हिन्दी भाषी राज्यों मे केवल मध्यप्रदेश ही ऐसा है जिसमें हिन्दी को राजकीय कार्यों में पर्याप्त गति मिली है। उत्तर-प्रदेश हिन्दी का गढ़ रहा है, परन्तु वहाँ भी अंग्रेजी बहुत जल्दी हिन्दी के लिए स्थान छोड़ती दिखाई नहीं दे रही। मध्यभारत ने निश्चय ही इस दिशा में संविधान के पश्चात कोई विशेष प्रगति नहीं दिखाई। हिन्दी भाषी राज्यों में राजभाषा और लोकभाषा में किसी भी सीमा तक पन्द्रह वर्ष अथवा इससे भी कम समय तक व्यवधान रहना सहनीय नहीं है। उनके लिए इस

लम्बे समय तक अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी के प्रयोग का स्थगन संविधान की उस छूट का दुरुपयोग करना है ।

अहिन्दी भाषी राज्यों में तो हिन्दी की प्रगति अत्यन्त चिन्तनीय है । पश्चिमी बंगाल, आँध्र तथा कुछ अन्य राज्यों में अभी तक माध्यमिक शालाओं में हिन्दी का शिक्षण अनिवार्य नहीं बना है । इससे न केवल संविधान-सम्मत भाषा के शीघ्र प्रचलन में कठिनाई होगी, साथ ही उन राज्यों के युवकों को केन्द्रीय सेवाओं की परीक्षाओं में अपेक्षित स्तर प्राप्त करने में भी कठिनाई होगी । अनेक राज्यों में हिन्दी विरोधी आन्दोलन चलाने जैसे हास्यास्पद कार्य भी कुछ वर्गों द्वारा किये जा रहे हैं । हिन्दी का प्रचार आज किसी प्रदेश विशेष की भाषा के प्रचार के रूप में नहीं करना है । यदि किसी भाषा के प्रयोग करने वालों की संख्या की दृष्टि से उसकी महत्ता गिनी जाती हो तो हिन्दी को मातृ-भाषा मानने वालों की संख्या भी कम नहीं है । प्रश्न है भारत की राष्ट्रभाषा का । उसका अवतरण जितने शीघ्र हो सकेगा उतने अनुपात में ही भारत के राष्ट्र-मानव की इच्छा शक्ति का अनुमान लगाया जा सकेगा । अंग्रेजों की दासता से मुक्ति पा जाने के बाद भी अंग्रेजी की दासता से हम मुक्ति नहीं पा सके हैं । उससे मुक्ति पाने के हमारे प्रयास में वह गति और विकलता नहीं है जो राजनीतिक मुक्ति पाने के प्रयास में थी ।

भारत का केन्द्रीय शासन इस दिशा में बहुत कुछ कर रहा है, परन्तु पर्याप्त कर रहा है और सब सही कर रहा है, यह कहना कठिन है । सन् १९५२ से केन्द्रीय शिक्षा विभाग ने अहिन्दी भाषी राजकीय सेवकों के लिए निःशुल्क हिन्दी शिक्षा की व्यवस्था कर दी है । उस हिन्दी-प्रबोध परीक्षा में सन १९५३ में ३६ व्यक्ति उत्तीर्ण हुए और १९५४ में ६५० । केन्द्रीय शासन में अहिन्दी भाषी राजकीय सेवकों की संख्या को देखते हुए यह संख्या नगण्य है । फिर हिन्दी-प्रबोध परीक्षा का स्तर बहुत नीचा है । उसे उत्तीर्ण करने के लिए बहुत थोड़ा हिन्दी-ज्ञान अपेक्षित है । राजकीय कार्यालयों में हिन्दी के प्रयोग में सबसे बड़े बाधक उच्चपदासीन राजकीय सेवक हैं । वे हिन्दी का प्रयोग कर सकें इसके लिए उन्हें हिन्दी का विशेष ज्ञान अपेक्षित है । परन्तु उन्हें इस दिशा में विवश किया जा रहा है, ऐसा ज्ञात नहीं होता । ख श्रेणी राज्यों में जो केन्द्र की ओर से अधिकारी आते हैं उनका हिन्दी-ज्ञान नगण्य होने के कारण इन राज्यों की अनेक राजकीय कार्यवाहियाँ अंग्रेजी में, केवल उनकी सुविधा के लिए, की जाती हैं । मध्यभारत और राजस्थान में इसका फल प्रत्यक्ष दिखाई दिया है । मध्यभारत और राजस्थान के निर्माण के समय से यहाँ एक को छोड़ कर सभी मुख्य-सचिव के पद पर केन्द्र से ऐसे सज्जन भेजे गये जो हिन्दी से नितान्त अपरिचित रहे हैं । ये मुख्य सचिव

केन्द्र और राज्य के बीच राजकीय कार्यों की मुख्य कड़ी होने के कारण यहाँ अंग्रेजी का व्यवहार बढ़ता ही गया है।

हिन्दी के निर्माण के विषय में केन्द्र ने जो नीति अपनायी है वह बहुत स्तुत्य नहीं है। इस दिशा में मुख्य कार्य कोष-निर्माण का किया जा रहा है। ये कोष बालू की भीत हैं। संसार में सदा से नियम यह रहा है कि पहले ग्रन्थों की रचना होती है, फिर उनके आधार पर कोष और व्याकरण बनते हैं। परन्तु यहाँ उलटा हो रहा है। पहले शब्दावलियाँ बन रही हैं। फिर इनके आधार पर ग्रन्थों की रचना होगी, यह कल्पना की जा रही है। मध्यभारत बनने के पूर्व भूतपूर्व ग्वालियर राज्य में सभी राजनियम शुद्ध हिन्दी में लिखे गये थे। उस समय डाक्टर रघुवीर ने राजनियमों के लिए हिन्दी शब्द नहीं गढ़े थे। वे जब उसका प्रस्ताव लेकर ग्वालियर आये थे तब हमने यही निवेदन उनसे किया कि जिस विषय के शब्दों को वे हिन्दी में चाहते हों उन पर पुस्तकें लिखें तथा समर्थ लेखकों से लिखाएँ। इस प्रकार अनायास प्राकृतिक रूप में शब्दों का अवतरण होगा। कोष निर्माण पर जिस श्रम और धन का अपव्यय हो रहा है वह यदि उन विषयों के ग्रन्थ-निर्माण पर किया जाय तो ऐसे शब्दों का संचय और सृजन हो सकेगा जो कुछ समय टिकेंगे। उन ग्रन्थों के सहारे हिन्दी को राष्ट्र भाषा का गौरव भी मिलेगा। ये कोष कुछ समय पश्चात् हमारी भारी भूल की स्मृति स्वरूप रखे रह जाएँगे और भाषा अपनी प्राकृतिक गति से आगे बढ़ेगी। राजकीय सेवा सम्बन्धी परीक्षाओं के लिए ही यदि हिन्दी का उपयोग रहना है तो वह राष्ट्रभाषा पद भी कोरा और तथ्यहीन ही है। जब तक हिन्दी में ऐसे ग्रन्थ न हों जिनके लिए न केवल भारतवासी अहिन्दी भाषी वरन् विश्व के अहिन्दी भाषी हिन्दी पढ़ें तब तक भारत की राष्ट्रभाषा बनने से हिन्दी का कोई विशेष लाभ नहीं।

यह उत्तरदायित्व विश्वविद्यालयों का है। प्रत्येक विषय पर उच्चतम कक्षाओं तक के लिए हिन्दी में ग्रन्थ उपलब्ध किये जाना आवश्यक है। गत पाँच वर्षों में इस दिशा में कुछ कह सकने योग्य कार्य नहीं हुआ है। विश्वविद्यालयों में आज अंग्रेजी राज्य की परम्परा के व्यक्तियों का प्रभाव है। जब तक उन्हें विवश न किया जाय उनसे बहुत आशा नहीं है।

हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में पूर्णतः प्रयुक्त किये जाने के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा हमारे उच्च न्यायालय हैं। दुर्भाग्य से आज उच्चतम न्यायालय अथवा उच्च-न्यायालयों में बहुत थोड़े ऐसे न्यायाधीश हैं जो हिन्दी में विचार व्यक्त कर सकते हैं। उनकी वर्त्तमान पीढ़ी से आशा करना भी व्यर्थ है। परन्तु भविष्य के लिए भी इस दिशा में अभी तक कोई पग नहीं उठाया गया है। पहली आवश्यकता यह है कि राजनियमों का जो पाठ्यक्रम है उसे हिन्दी में लिखाया जाय। फिर कुछ विश्वविद्यालय

उन परीक्षाओं को हिन्दी में प्रारम्भ करदें। तब उन भावी न्यायाधीशों की पीढ़ी तैयार हो सकेगी जो उच्च न्यायालयों के निर्णयों के पेचीदा भावों को हिन्दी में सफलता और सरलता पूर्वक व्यक्त कर सकें। इसके लिए वर्त्तमान उच्चतम न्यायालय के निर्णयों को केन्द्रीय शासन की ओर से हिन्दी में प्रकाशित किये जाने की व्यवस्था करना तुरन्त परमावश्यक है।

राष्ट्रभाषा का प्रश्न उतना क्रियात्मक कठिनाई का नहीं है जितना मानसिक दासता तथा दौर्बल्य से पीछा छुड़ा सकने का है।

शासन और कलाकार

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व भारत में कलाकारों के मुख्य आश्रय राजा, रईस और पूँजीपति रहे हैं। उनके प्रयोजनों और मनोवृत्तियों के अनुरूप ही कलाओं की दिशाएँ भी रहीं। लोकतन्त्रात्मक भारत में कलाओं के ये आश्रयदाता उखड़ गये, उखड़ रहे हैं और एक दिन बिलकुल ही उखड़ जाएँगे। परन्तु क्या उनके साथ ही हम अपने कलाकारों को अथवा कला सृष्टियों को उखड़ जाने दें? अभी हाल में ही ग्वालियर में मध्यभारत कला-वीथिका का उद्घाटन करते हुए भारत के राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने जो उद्गार व्यक्त किये उससे वर्त्तमान शासनों के उत्तरदायित्व पर प्रकाश पड़ता है। राष्ट्रपति ने एक सत्य को ही दोहराया जब उन्होंने कहा कि किसी व्यक्ति, जाति या राष्ट्र की उन्नति तब तक पूर्ण नहीं कही जा सकती जब तक कि कला की भी पूर्ण उन्नति न हो। आगे राष्ट्रपति ने कहा कि प्राचीन काल में कलाकारों को राजे-रजवाड़े, धनीमानी और व्यापारियों से प्रोत्साहन मिला करता था। आज भी उन्हें वही प्रोत्साहन मिलना चाहिए। जो शासन प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति करने का दावा करता है, उन्नति करना चाहता है, उस पर कलाकारों को प्रोत्साहित करने का भी विशेष भार है। शासन को अपना कर्त्तव्य-पालन करने का संकेत कर आगे राष्ट्रपति ने भारत के कलाकारों से शाश्वत सौन्दर्यमयी कृतियों का निर्माण करने का आग्रह किया। अत्यन्त कवित्वपूर्ण शैली में राष्ट्रपति ने कहा—आज के कलाकार, प्राचीन और अर्वाचीन कला पर समान दृष्टिपात करते हुए भविष्य की ओर दृष्टि लगाये हुए स्वतन्त्र भाव से ऊपर आकाश पर तैरें और अपनी कलाकृतियों में ऐसे सितारों को जड़ दें जिनसे कला की भव्यता और सुन्दरता में अधिकाधिक वृद्धि हो।

किसी भी युग की कलाकृतियाँ उसके सांस्कृतिक उत्थान की प्रतीक होती हैं। आशा है भारतीय शासन और भारत के कलाकार राष्ट्रपति के इन विचारों को मूर्त्त रूप दे सकेंगे।

भारत के हृदयस्थल में कला-वीथिका

इस अवसर पर मध्यभारत के शिक्षा-मंत्री श्री मनोहरसिंह मेहता ने अपने स्वागत-भाषण में मध्यभारत के प्राचीन गौरव का उल्लेख करने के पश्चात् मध्यभारत कला-वीथिका का उद्देश्य बतलाते हुए कहा—

"यदि हमें अपने गणराज्य का विकास भारतीय परम्परा के अनुरूप करना है तो यह आवश्यक है कि जनमानस में अपनी प्राचीन कला-निधियों के प्रति अनुराग उत्पन्न किया जाय एवं प्रदेश के प्रतिभाशाली साहित्यकारों तथा कलाकारों को अपनी मौलिक सृजनात्मक प्रवृत्तियों को मूर्त्त रूप देने के लिए सुविधाएँ प्रदान की जाएँ। जहाँ हमारे कलाकारों को परम्परागत कलाकृतियों से प्रेरणा लेनी है वहाँ यह भी आवश्यक है कि उनकी अभिव्यक्ति प्राचीन का अनुकरण मात्र होकर ही न रह जाय। युगधर्म के अनुरूप आज के राष्ट्र की आकांक्षाओं और नवचेतना का आभास उनकी रचनाओं में आना चाहिए। मध्यभारत कला-परिषद् का विचार है कि ललित कला-क्षेत्र में यह कार्य इस कला-वीथिका द्वारा सम्पन्न हो सकेगा। प्रसन्नता की बात है कि इस प्रदेश में कई ख्यातिप्राप्त तथा उदीयमान कलाकार मौलिक रचनाएँ प्रस्तुत कर रहे हैं। उनकी कृतियाँ परिषद् द्वारा समय-समय पर क्रय की गयीं। यह उचित प्रतीत हुआ कि एक कला-वीथिका में ऐसे चित्र-संग्रह का सूत्रपात किया जावे जिसमें यहां के चित्रकारों की प्रतिनिधि कृतियाँ रह सकें और देश के अन्य कलाकारों का कार्य प्रदर्शित हो सके। उद्देश्य यह है कि एक ही स्थान पर प्राचीन परिपाटियों के सन्दर्भ में आधुनिक कला-प्रवृत्तियों का अध्ययन हो और जन-साधारण में कला के प्रति अभिरुचि विकसित हो। हमारी आकांक्षा है कि चित्र-संग्रह के अतिरिक्त इस वीथिका के संलग्न एक अध्ययन-कक्ष, पुस्तकालय तथा कला-सम्बन्धी व्याख्यानों के लिए उपयुक्त स्थान हो।"

मध्यभारत का यह प्रयास वास्तव में अभिनन्दनीय है। किन्तु आवश्यकता इस बात की है कि इसे एक जीवित संस्था के रूप में चलाया जाता रहे। वह लाल-फीते में बँधकर न रह जावे।

ग्वालियरी भाषा

हम मध्यभारत के शिक्षा-मंत्री का ध्यान इस अंक में प्रकाशित श्री अगरचन्द नाहटा के लेख की ओर आकर्षित करना चाहते हैं। अपभ्रंश और ब्रज-अवधी-राजस्थानी-बुन्देली-मालवी के बीच के समय में हिन्दी का पोषण मध्यभारत के ही एक नगर ग्वालियर में हुआ था और उस समय वह 'मध्यदेश की बोली' अथवा 'ग्वालियरी हिन्दी' कहलाती थी। राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास का इतिहास जो अब तक लिखा गया वह अधूरा और भ्रष्ट है—केवल इस कारण कि इस 'ग्वालियरी हिन्दी' का अभी

तक अध्ययन नहीं हो सका। भारती के गतांक में 'मध्यदेश और उसकी बोली' शीर्षक लेख में हम इस पर प्रकाश डाल चुके हैं। इस काल का इस प्रदेश का साहित्य अभी तक अप्रकाशित पड़ा है और धीरे-धीरे नष्ट-भ्रष्ट हो रहा है, अथवा ऐसे हाथों में जा रहा है जहाँ उसका कोई उपयोग नहीं हो सकता।

वे राष्ट्र भाषा हिन्दी और अपने राज्य के साथ अपने कर्तव्य का पालन कर सकेंगे यदि इस ग्वालियरी हिन्दी के साहित्य की खोज, उसके सम्पादन और प्रकाशन की व्यवस्था वे कर सकें। यह कार्य बहुत अधिक व्यय साध्य नहीं है, केवल संकल्प-साध्य है, और थोड़ी सी सुविधा की अपेक्षा करता है।

नागरी प्रचारिणी सभा से—

काशी की नागरी प्रचारिणी सभा ने हिन्दी की अद्वितीय सेवा की है। दस भागों में वह एक विशाल हिन्दी साहित्य का इतिहास भी प्रकाशित कर रही है। खोज के अभाव में मध्यदेश की बोली अथवा ग्वालियरी-हिन्दी के साहित्य पर अब तक प्रकाश नहीं पड़ सका और हिन्दी के विकास के इतिहास में अनेक ऊटपटांग कथन प्रवेश कर गये। उन्हें ठीक कराना सभा का कर्त्तव्य है। कार्य कुछ कठिन है केवल इस कारण हिन्दी-साहित्य के इतिहास के इस भाग पर पर्दा डाल देने से काम नहीं चल सकता। इसके पूर्व कि उसके द्वारा प्रकाशित हिन्दी साहित्य के इतिहास का तेरहवीं, चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी का भाग प्रकाशित हो, वह मध्यदेश के तत्कालीन साहित्य की पर्याप्त खोज और उसका विवेचन करा ले तो उसका वह इतिहास पूर्ण हो सकेगा, अन्यथा वह केवल परिहास मात्र रह जायगा। थेघनाथ का गीता का अनुवाद तो सभा के संग्रहालय में ही रखा है। अन्य ग्रन्थ भी उपलब्ध हो सकते हैं। पद्मनाभ कायस्थ, रइधू, नयचन्द्र सूरि, गुणभद्र सूरि की परम्परा यहाँ अनेक शताब्दियों तक चली है। देखने की इच्छा चाहिए।

ये बिखरते फूल

इस अंक में अन्यत्र प्रकाशित 'मदरा बजत मेरे सोहरौ" लेख में सांस्कृतिक जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घटना की ओर संकेत किया गया है। लोक गीत किसी भी समाज की अमूल्य सांस्कृतिक निधि हैं। उनमें लोक मानस की अभिरुचि, विकास एवं कल्पना शक्ति की जहाँ अभिव्यक्ति होती है वहाँ समाज के गम्भीरतम स्तर की समस्याओं का सूक्ष्मतम एवं विशदतम चित्र उपलब्ध होता है।

यह सत्य है कि समय द्रुत गति से परिवर्तित हो रहा है। इस परिवर्तन से दो प्रकार की समस्याएं इस क्षेत्र में उत्पन्न होती हैं। पहली समस्या का दिग्दर्शन उक्त लेख में किया गया है कि पुरातन के परित्याग की विवेकहीन परिपाटी चली है और

यह कलानिधि बिना लेखी रूप में आये, बिना उच्च स्तर पर समीक्षित हुए विस्मृति की गहनता में विलीन हो रही है । आज के साक्षर युग में—अक्षर, अक्षर, अक्षर के युग में, शताब्दियों के मानसिक, सामाजिक एवं कला सम्बन्धी इतिहास की अमूल्य सामग्री केवल स्मृति-पट पर अंकित होने के कारण जिसका आधार द्रुत गति से बदलने वाला मनुष्य शरीर मात्र है, सदा के लिए काल कवलित हो रही है ।

दूसरे प्रकार की समस्या जो इस युग परिवर्तन के कारण उत्पन्न हुई है वह कलासृष्टि के भावुक और भावक की है । रीति काल का साहित्यशास्त्र की तुली नपी सीमाओं में कलासाधना करनेवाला भावुक और नायिका भेद, अलंकार एवं छंदों की वारीकियों पर अदा के साथ दाद देने वाला भावुक—दोनों ही अब रंगमंच से तिरोहित हो रहे हैं । आज की प्रगतिवादी कविता का सृजन और उसकी पुष्ट एवं ओजस्वी धारा का रसास्वादन करनेवाला भावक आगामी दिशा के संकेत हैं ।

पहले प्रकार की समस्या का समाधान जहाँ इस कलानिधि के संकलन, प्रकाशन एवं विमर्श से स्पष्ट रूप में होता है वहाँ दूसरे प्रकार की समस्या के लिए भी यह अपरिहार्य है ।

काव्य कला है । काव्य के सृजन में जहाँ कलाकार की व्यक्तिगत प्रतिभा, तत्कालीन वातावरण आदि का महत्त्वपूर्ण स्थान है, वहाँ कलाकार द्वारा बरण की गयी शैली तथा माध्यम के आश्रय पर उससे पहले कैसा सृजन हुआ है इसका अध्ययन उसकी कला सिद्धि में सहायक होता है । अतः इन लोकगीतों के संकलन, प्रकाशन एवं विमर्श की ओर जागरूक साहित्यकारों को अग्रसर होना चाहिए । कागज, छपाई और पाठकों के मनोयोग का व्यय अत्यन्त सस्ती पाठ्य सामग्री के लिए हो रहा है । आज वस्तुतः व्यापक सांस्कृतिक नवोन्मेष में यह महत्त्वपूर्ण दिशा उपेक्षित नहीं रहना चाहिए । अन्यथा दिव्य सुगन्ध वाले ये लोक काव्य के फूल बिखर रहे हैं, बिखर जाएँगे और महाकाल के भीषण आतप में इनकी गन्ध का लेश भी प्राप्त होना असम्भव हो जायगा ।

(विजय)

प्रतिभा और पसीना

मध्यभारत राज्य के शिक्षा-सचिव श्री युधिष्ठिर भार्गव ने गत ११ फरवरी को माधव कॉलेज, उज्जैन में दीक्षान्त भाषण दिया । अपने इस भाषण में श्री भार्गव ने कुछ बहुत ही उपयोगी बातें कही हैं । उनके इस कथन में आज की एक बहुत बड़ी कमी की ओर संकेत किया गया है । हमारे देश में काम की उतनी कमी नहीं है जितनी काम को निभा ले जाने वाले कर्मठ व्यक्तियों की । श्री भार्गव ने कहा—

"स्वतंत्र भारत में आर्थिक विकास के नये मार्ग खुल रहे हैं। इनके द्वारा युवकों को नये अवसर मिलेंगे-निश्चय ही मिलेंगे। प्रत्येक कार्य-क्षेत्र में पहली कुछ श्रेणियों में काफी स्थान खाली हैं और मेरा अनुभव यह है कि शिक्षा के प्रसार तथा बेकारी की पुकार के बावजूद अनुभवी तथा उपयुक्त व्यक्ति मिलना कठिन हो गया है। इसका कारण मेरी समझ में यह है कि एक बार किसी व्यवसाय या ओहदे पर पहुँचकर अधिकांश लोग निष्क्रिय हो जाते हैं, विद्यार्थी जीवन की प्रवृत्तियों को विदा दे देते हैं। बकौल मौलाना अकबर के उनका दृष्टिकोण हो जाता है:—

चार दिन की जिन्दगी है कोफ्त से क्या फायदा।
खा डबलरोटी, किलर्की कर, खुशी से फूल जा॥

महत्त्वाकांक्षा का लोप जीवन की सबसे बड़ी दुर्घटना है। प्रगतिशील होने के लिए लगातार मेहनत करने व सावधान रहने की आवश्यकता है। बौद्धिक चेतना को जंग न लगने देना चाहिए। साथ ही प्रगति केवल प्रतिभा से ही नहीं होती। प्रतिभा तथा पसीने का साथ होना ही चाहिए। श्रम-सीकरों के सिंचन से प्रतिभा का अंकुर विकसित होकर जीवन के उपहार फलरूप में देता है। जीवन-यात्रा में सदावर्त अधिक नहीं हैं जहां तीर्थ-यात्रियों को हाथ पसारते ही सुविधाएँ उपलब्ध हो जावें। विद्यार्थी-काल की सुरक्षा के पश्चात् यदि जीवन के प्रवेश-द्वार से संघर्ष की चिनगारियों और स्पर्द्धा के कोलाहल का आभास हो तो विचलित होने की आवश्यकता नहीं है। यह जान लेना चाहिए कि इस पथ पर मलयानिल तो चलती ही हैं, पर झंझावात भी कम नहीं है। फुलवारियाँ अवश्य हैं, पर कटीली झाड़ियाँ भी हैं। पर यदि यात्री हतोत्साह न हो, यदि वह ईश्वर में और स्वयं में विश्वास रखकर अग्रसर होता जाय तो विश्वास रखिए कि स्वयंवरा जीवन-लक्ष्मी जयमाला लिये धनुष तोड़ने वाले राम की प्रतीक्षा कर रही है। और इसी पृष्ठभूमि के कारण मेरा यह भी तर्क-सिद्ध मत है कि जो छात्र अपने पठन-काल में देवी सरस्वती की एकनिष्ठ उपासना कर अन्ततः जीवन-लक्ष्मी की कृपाकोर के अभिलाषी हैं उन्हें राजनीति जैसी चंचला-प्रेयसी से अभिसार करने की ओर ध्यान न देना चाहिए। आज के शिक्षित नवयुवक से जो शिकायतें हैं उनमें से अधिकाँश की जड़ यह है कि विभिन्न राजनीतिक दल, उनमें स्वार्थनिहित दिलचस्पी लेकर, उन्हें अपने इशारों की डोरी से अभिनय करने वाली कठपुतली बना लेते हैं। "वीणा:पुस्तकरंजितहस्त।" देवी सरस्वती को इन तमाशों से दिलचस्पी नहीं है, वे रूठ जाती हैं।"

विद्यामंदिर-प्रकाशन, ग्वालियर

के

तीन अभिनव प्रकाशन—

वे अनुपम ग्रंथ हैं—

हमारे पड़ौसी देश—

लेखक—स्वर्गीय प्रो० रंजन

प्रस्तावना लेखक—डॉ० वासुदेवशरण

प्रसिद्ध देश भक्त विद्वान तथा घुमक्कड स्व० श्री प्रो० श्री रघुनाथ सिंह रंजन ने इस में अपनी हिन्द चीन, स्याम आदि की यात्राओं का सुन्दर एवं सजीव वर्णन किया है। इसे पढ़ते समय आप अपने आपको भूल वर्णित देशों में ही पहुँच जाएँगे। उपन्यास की भाँति रोचक तथा भूगोल एवं इतिहास की भाँति शिक्षाप्रद। अनेक चित्र तथा कला पूर्ण तिरंगे सजिल्द आवरण सहित मूल्य २॥)

मधुमालती—

सम्पादक—श्री हरिहर निवास द्विवेदी

१५ वीं शताब्दी में लिखित यह हिन्दी प्रेमकाव्य उस समय की मध्यदेशीय भाषा एवं समाज का उत्कृष्ट दर्पण है। विद्वान सम्पादक ने इस की भाषा, रचनाकाक एवं काव्य सौंदर्य का सुन्दर एवं रोचक विवेचन किया है। इसका मूल पाठ २० हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर अत्यन्त परिश्रम पूर्वक तैयार किया गया है। प्रत्येक पुस्तकालय के लिये गौरव देने वाला ग्रंथ। मूल्य ५)

काश्मीर की घाटियों में—

लेखक—श्री अग्रवाल

काश्मीर पर निर्मम पाकिस्तानी आक्रमण, बेकारी की समस्या आदि आज के राष्ट्रीय प्रत्याघातों का सजीव वर्णन लिये हुए ५ एकांकी नाटकों का संग्रह। इसका प्रत्येक एकांकी सफलता पूर्वक अभिनीत किया जाकर सहस्त्रशः दर्शकों की स्मृति पर स्थायी छाप छोड़ गया है। मूल्य २)

अपने पुस्तकालय के लिये आज ही मंगाकर उसे समृद्ध करिये।

अपना ऑर्डर आज ही दें —

व्यवस्थापक
विद्यामन्दिर प्रकाशन
सराफा, ग्वालियर।

❋ श्वेतकुष्ट से दुःखी क्यों ❋

प्रिय सज्जनों ! औरों की भाँति मैं अधिक प्रशंसा करना नहीं चाहता। यदि इसके ३ दिन के लेप से सफेदी के दाग जड़ से आराम न हों तो मूल्य वापस की शर्त लिखा लें। मूल्य ३) रु०, साथ २ खाने वाली दवा का मूल्य ३॥)। गलित कुष्ट (सोन-बहरी) की अचूक दवा। खानेवाली का मूल्य ५), लगानेवाली का मूल्य २)।

पं० पी० डी० ज्योतिषी पो० ऑ० कोरारी (पटना)

❋ सफेद बाल काला ❋

इस अनौखे तेल से बालों का पकना रुक कर, पका बाल जड़ से काला पैदा होकर ६० वर्ष तक काला स्थायी रहेगा। सिर का दर्द व चक्कर आना दूर कर, आँख की ज्योति को बढ़ाता है। एकाध बाल पका हो तो ३॥), एकत्र ३ का ९), आधा पका हो तो ५), एकत्र ३ का १२) और कुल पका हो तो ७), एकत्र ३ का १८)। बेफायदा साबित करने पर ५००) इनाम।

हिमकल्याण औषधालय
पो० ऑ० कोरारी (पटना)

कल्पना

'कल्पना' के छठे वर्ष-प्रवेश पर हम अपने लेखकों, पाठकों, ग्राहकों, विक्रेताओं विज्ञापकों, सहयोगियों तथा अन्य हितैषियों का अभिवादन करते हैं, और भविष्य में भी उनकी शुभकामना तथा अमूल्य सहयोग की अपेक्षा रखते हैं।

व्यवस्थापक 'कल्पना'
८९३ बेगम बाजार
हैदराबाद

स्मृतिदायक ❧ केशवर्धक ❧ सुगन्धयुक्त

दिनारा

ब्राह्मी आँवला तैल

DINARA BRAHMI ANWLA HAIROIL

JUDICIOUSLY MEDICATED HAIR & BRAIN TONIC WITH De Luxe PERFUME

आमलकीब्राह्मीभृङ्गपद्मकागुरुचन्दनैः ।
एलाशैलेयकर्पूरोशीरजातीसुमादिभिः ॥

विपिनापाचयेत्तैलं शटीपुष्करकेशरैः ।
दिव्यगंधहितंमेध्यंशान्तिदंकेशवर्धनम् ॥

तिल तैल
भृंगराज
आंवला
ब्राह्मी
अगर
चंदन
कपूर
इलायची
उशीर
केशर
जायपत्री
पुष्करमूल
आदि से निर्मित

दिनारा आरोग्य भवन, ग्वालियर, म० भा०

DINARA AROGYA BHAVAN, GWALIOR, M. B.

सर्वत्र मिलता है

२० औंस शीशी	३ रु० ६ आ०	५ औंस	१ रु० १ आ०
१० औंस	२ रु० १ आ०	१॥ औंस	५ आ०-६ पा०

से अधिक न दें

दक्षिण-भारती

(दक्षिण-भारत की सचित्र मासिक पत्रिका)

आप अभी तक इसके ग्राहक न बने तो शीघ्र ही ग्राहक बनें। इसे कल पर छोड़ना एक भूल होगी।

वार्षिक चन्दा ६)   प्रति अंक ।।)

दक्षिण-भारती कार्यालय
अफजलगंज, हैदराबाद (दक्षिण)

तार : हिन्दी   फोन नं० ५४५०

अजन्ता

: मासिक :

प्रकाशक : हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद दक्षिण

मूल्य : ६-०-० आ. सु. वार्षिक

किसी भी मास से ग्राहक बना जा सकता है।

कुछ विशेषताएँ

१. उच्च कोटि का साहित्य
२. सुन्दर और स्वच्छ छपाई
३. कलापूर्ण चित्र

संपादक
श्री वंशीधर विद्यालंकार
श्री श्रीराम शर्मा

कुछ सम्मतियाँ

१. "अजन्ता का अपना व्यक्तित्व है"—श्री बनारसीदास चतुर्वेदी
२. "अजन्ता सुंदर और स्वच्छ पत्रिका है"—श्री दिनकर जी
३. "अजन्ता साहित्य का नया कल्पवृक्ष है"—श्री वासुदेवशरण अग्रवाल
४. "अजन्ता हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिकाओं में से एक है।"

श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी

× हिन्दी साहित्य में युगान्तर—
× भारतीय जन-जीवन में नई दिशा—
× काम सम्बन्धी सम्वाद एवम् साहित्य—
× काम तथा मनोविज्ञान सम्बन्धी खोज—

एक प्रति ।=) ❀ **मस्ती** ❀ वार्षिक ४)

सम्पादक—नरेन्द्र धीर

—यदि आप ग्राहक नहीं बने हैं तो आज ही ४) भेज कर वार्षिक ग्राहक बनें।
—यदि आपने विज्ञापन इसमें नहीं दिया है तो आज ही विज्ञापन भेजदें।
—यदि आपने एजेन्सी नहीं ली है, तो आज ही एजेन्सी लेलें।

आज ही लिखिए—व्यवस्थापक "मस्ती" खन्ना (पू० पंजाब)

हिन्दी का स्वतंत्र मासिक

नया समाज

संचालक : नया समाज ट्रस्ट * सम्पादक : मोहनसिंह सेंगर
वार्षिक चन्दा ८) : एक प्रति ।।।) : विदेशों में १२) वार्षिक

आप यदि ग्राहक नहीं हैं, तो आज ही बन जाइये। यदि हैं, तो अपने इष्टमित्रों को भी बनाइये। यदि किसी कारण आप ग्राहक नहीं बन सकते, तो चेष्टा कीजिये कि 'नया समाज' आपके पड़ोस के पुस्तकालय में अवश्य मँगाया जाय।

आज ही नमूने के लिए लिखिये:—
व्यवस्थापक, 'नया समाज', ३३, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता-१

ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान कराने वाला
मासिक पत्र

"भविष्य"

वार्षिक मूल्य २) .... नमूना (टिकिट भेजें) ≡)

जिसमें आपको प्रति माह विश्व के ज्योतिष मर्मज्ञों के विचार पढ़ने को मिलेंगे। आपको प्रति माह पहिली तारीख को ही अपना भविष्य पढ़ने को मिलेगा जिससे आप होने वाली हानियों से बचकर आप लाभ प्राप्त कर सकेंगे। यदि आप ज्योतिष का कुछ भी ज्ञान प्राप्त करना चाहते है तो यह आपके मार्ग प्रदर्शक का काम करेगा। आपकी ज्योतिष सम्बन्धी प्रत्येक कठिनाई को "आपके प्रश्न" नामक स्तम्भ से हल करेगा। आपको ज्योतिष शास्त्र से सम्बन्धित पुस्तकों की समालोचना पढ़ाकर ज्योतिष साहित्य के अपूर्व संग्रह में सहायता करेगा।

हमारा यह विश्वास है कि आप ६ माह में पूरे ज्योतिषी बन जायेंगे। स्त्रियों के लिये 'रसोई घर' तथा बच्चों के लिये 'हमारे खेल' आदि स्तम्भ प्रति माह पढ़िये।

मंगा कर देखिये तो!

पता—
सम्पादक "भविष्य
मिश्रबन्धु कार्यालय

वार्षिक
६)

राष्ट्रभारती

एक प्रति
।।=)

—:सम्पादक:—

मोहनलाल भट्ट

हृषीकेश शर्मा

(१) यह हिन्दी पत्रिकाओं में सबसे अधिक सस्ती, एक सुन्दर साहित्यिक और सांस्कृतिक मासिक पत्रिका है। (२) इस पत्रिका को राष्ट्र-भाषा हिन्दी के तथा लगभग सभी भारतीय साहित्य और संस्कृति को बल व प्रेरणा पहुंचाने वाले प्रान्तीय भाषाओं के श्रेष्ठ लेख, विद्वान साहित्यकारों का सहयोग प्राप्त है। (३) इसमें ज्ञानपोषक और मनोरंजक श्रेष्ठ लेख, कविताएँ, कहानियाँ, एकांकी नाटक, रेखाचित्र और शब्दचित्र रहते हैं। (४) बंगला, मराठी, गुजराती आदि भारतीय भाषाओं के सुन्दर हिन्दी अनुवाद भी इसमें रहते हैं। (५) प्रतिमास पहली तारीख को प्रकाशित होती है।

ग्राहक बना देने वालों को विशेष सुविधा । एजेंसी तथा विज्ञापद रन के लिए लिखिये।

"राष्ट्रभारती" हिन्दीनगर, वर्धा [मध्य-प्रदेश]

पश्चिमोत्तर भारत की प्रमुख हिन्दी मासिक पत्रिका

विश्व ज्योति

—:सम्पादक:—

श्री विश्वबन्धु शास्त्री, श्री सन्तराम, बी ए०

संचालक—श्री विश्वेश्वरानन्द

विश्व-हित की साधना के लिए—

(क) शुद्ध सांस्कृतिक साहित्य का सृजन,
(ख) प्राचीन और नवीन ज्ञान-विज्ञान का समन्वय,
(ग) बौद्धिक क्रान्ति और नई चेतना का जागरण,
(घ) अन्यायपूर्ण सामाजिक विषमताओं का दूरीकरण,
(ङ) सभी प्रकार के विचारों का निष्पक्ष अध्ययन और आलोचन।

वार्षिक चन्दा: ८) रुपये

१०) रु० वार्षिक चन्दा देकर विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान के सदस्य बन जाने पर भेंट के रूप में मुफ्त।

पत्र-व्यवहार का पता:—

व्यवस्थापक 'विश्वज्योति', साधु आश्रम
होश्यारपुर (पंजाब)

जिस साहित्य का जीवन से सम्बन्ध नहीं, वह निरर्थक है।
जो साहित्य मानव-जाति की सेवा की प्रेरणा नहीं देता,
वह निष्प्रयोजनीय है। और

जो साहित्य बुद्धि-भेद उत्पन्न करता है, वह अनिष्टकारी है।

जीवन साहित्य

में जीवन, मानव-जाति की सेवा की प्रेरणा और एकनिष्ट बुद्धि से
अपने मार्ग पर चलने का बल मिलेगा।

एक प्रति अवश्य देखने की कृपा कीजिये।

वार्षिक मूल्य ४) एक प्रति ।=)

सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली।

विद्यामंदिर प्रकाशन
की नवीन भेंट
लेखक—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी

मानसिंह और मानकुतूहल—भारत के सांस्कृतिक इतिहास के एक अज्ञात परिच्छेद का प्रथम प्रकाशन। भारतीय संगीत, हिंदी साहित्य तथा कलाओं के विकास पर नवीन शोध।
मध्यभारत कला परिषद द्वारा प्रथम पुरस्कार प्राप्त पुस्तक
मूल्य ५) डाक व्यय १)

त्रिपुरी—भारत के तीन प्राचीन स्थल, विदिशा, पद्मावती तथा बाघ पर अत्यन्त सुन्दर तथा प्रामाणिक ग्रंथ। मूल्य २)

(यह दोनों पुस्तकें मध्यभारत शिक्षा-विभाग द्वारा राज्य की शिक्षा संस्थाओं के पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत हैं)

प्रबन्धक—विद्यामंदिर प्रकाशन, सराफा, ग्वालियर

—अपनी उन्नति के लिए पढ़िए—

जीवन संघर्ष में विद्यार्थियों तथा समस्त अन्य व्यक्तियों को सहायता देने के लिए हिन्दी में अपने प्रकार की पहली मासिक-पत्रिका

सफल जीवन

(६४, बेयर्ड रोड, नई देहली)

मुख्य विषय—

(१) आगामी परीक्षाएं, (२) नवयुवकों और नवयुवतियों को मिल सकने वाली सरकारी और प्राइवेट नौकरियां, (३) रत्न, भूषण. प्रभाकर और साहित्यरत्न परीक्षाओं के लिए साहित्यिक लेख, (४) कहानी-कविता, (५) ज्ञान-विज्ञान, (६) देश, विदेश के समाचार, (७) खेल और सिनेमा।

आज ही ग्राहक बनिए

चन्दा:—वार्षिक ७), छ:माही ४), एक प्रति ।।।)

नमूने की प्रति के लिए १२ आने के टिकट भेजें।

सफल जीवन पुस्तकमाला अमूल्य निधि है। अवश्य पढ़िए।

पुस्तकालय-सन्देश का विशाल विशेषांक

अपने चौथे वर्ष क प्रथम अंक के रूप में

प्रकाशन मास मई—१९५५, मूल्य केवल १।।), पष्ठ संख्या-२००

३१ मार्च १९५५ के पूर्व तक ३) भेजकर वार्षिक ग्राहक बनने वालों को यह विशेषांक मुफ्त मिलेगा।

सम्पादक—श्री कृष्ण खण्डेलवाल

इस विशेषांक के प्रधान सलाहकार होंगे

विश्वविख्यात पुस्तकालय-विज्ञान के विद्वान् डा० शि० रा० रंगनाथन

यह विशेषांक—

पुस्कालय साहित्य की अनुपम एवं दुर्लभ कृति होगा।

पुस्तकालय-कार्यकर्त्ताओं का पथ-प्रदर्शक होगा।

विश्वपुस्तकालय-आन्दोलन का वर्त्तमान रूप बतलावेगा।

अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, रूस, चीन आदि देशों ने पुस्तकालय के क्षेत्र में क्या प्रगति की है, इसके सम्बन्ध में विस्तृत बिवरण देगा।

अभी ही अपनो प्रति सुरक्षित कराने के लिए १।।) भेजिए

अथवा ३) भेजकर ग्राहक बनिए

पता—पुस्तकालय-सन्देश [मासिक]

पो० पटना विश्वविद्यालय, पटना-५

याद रखिए पत्रिका के लिए—
१. एक निश्चित उद्देश्य चाहिए !
२. उसका अपना व्यक्तित्व चाहिए !

नई धारा

ऐसी ही एक मासिक पत्रिका है जो अशोक प्रेस, पटना से प्रकाशित हो रही है। कहानियाँ, कविताएँ, शब्द चित्र, संस्मरण, नाटक, आलोचना, निबन्ध।

हिन्दी में नई धारा के प्रतीक श्री रामवृक्ष बेनीपुरी इसका सम्पादन कर रहे हैं।

प्रादेशिक सरकारों के शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत।

जिसकी सहायता के लिए साहित्य महारथियों का सम्पादक मंडल संगठित किया गया है।

डिमाई अठपेजी के १०० पृष्ठ, पक्की जिल्द, आकर्षक कवर, सचित्र, सुसज्जित।

एक अंक १ रु० **वार्षिक १० रु०**

प्रबन्धक नई धारा, अशोक प्रेस, पटना ६

एकमात्र सचित्र पारिवारिक मासिक पत्रिका!

आरसी

जिसमें

कहानी, कविता, लेख, आदि अनेक सुरुचिपूर्ण साहित्यिक स्तम्भों के साथ।

बुनाई, कढ़ाई, सिलाई और पाक पर प्रतिमास सचित्र लेख।

अन्यान्य स्थायी स्तम्भ

मां और शिशु: डाक्टर के पत्र: पुरुष लोक: बालमंदिर: पुस्तक परिचय: चलचित्र जगत: शब्दार्थ और व्याख्या। हिन्दी की प्रमुख वर्ग पहेलियों पर टिप्पणियां।

इतनी उपादेय सामग्री के साथ भी मूल्य केवल ४ रु० वार्षिक।

नोट:—वार्षिक ग्राहक को प्रतिमास एक कढ़ाई ट्रान्सफर मुफ्त भेजा जाता है।

'आरसी' अपने स्थानीय एजेण्ट से मांगिए या छै आने के टिकिट भेजकर हमसे नमूना प्राप्त करिए।

व्यवस्थापक (आरसी)
स्वरूपनगर, कानपुर

दि गिर्द डिस्ट्रिक्ट को-ऑपरेटिव्ह बैंक लि० लश्कर

स्थापित सन् १९१८

शाखायें—डबरा, भांडेर, उपशाखायें—मुरार, भितरवार

१. अधिकृत पूंजी	२,००,००० रुपया
२. स्वीकृत पूंजी	१,४०,००० रुपया
३. रक्षित कोष	७४,४०० रुपया
४. अन्य कोष	१,१०,९०० रुपया

५. फिक्स्ड करेन्ट तथा सेविंग अकाउन्ट खाते खोले जाते हैं। डिपाजिट्स पर सूद दर निम्न प्रकार है। एक वर्ष से अधिक की फिक्स्ड डिपाजिट पर छै मासिक सूद दिया जाता है।

फिक्स्ड		
६ माह	२।।।) प्रतिशत	वार्षिक
१ वर्ष	३) प्रतिशत	,,
२ वर्ष	३।) प्रतिशत	,,
३ वर्ष	३।।) प्रतिशत	,,
सेविंग	२।।) प्रतिशत	,

६. त्रय-वर्षीय नगद पत्र ९) रु० में १०) रु० का मिलता है।

७. बैंक बहुत मामूली कमीशन पर अपनी शाखाओं पर ड्राफ्ट इश्यू करता है।

८. यह बैंक अनियमित जोखमदारी की ग्रामीण सहकारी समितियों में रुपया इन्व्हेस्ट करता है। इसलिए इन्व्हेस्टमेन्ट सुरक्षित व बेखतरे है। बैंक के अकाउन्ट्स का हर साल शासन से एप्रूव्हड आडीटर्स द्वारा आडिट होता है।

कृपया बैंक से सम्बन्ध स्थापित कीजिये।

रामनाथ शर्मा

रामकृष्ण दीक्षित
व्हाइस चैयरमैन

पुस्तकालयों तथा अध्ययन कक्षों के लिए अनिवार्य—

भारतीय सांस्कृतिक इतिहास का महान् ग्रंथ

❀ भारत की मूर्तिकला ❀

★

लेखक

श्री हरिहरनिवास द्विवेदी

प्राग् ऐतिहासिक काल से वर्तमान काल तक भारतीय मूर्तिकला के विकास का अत्यन्त प्रामाणिक साथ ही सरल और हृदयग्राही शैली में लिखा गया इतिहास। हिन्दी के लिए यह ग्रन्थ अपूर्व देन है।

अत्यन्त सुन्दर छपाई, मनोहर जिल्द, १०० से अधिक आर्टपेपर पर छपे चित्र।

मूल्य ५) रुपया। डाक व्यय पृथक्

आज ही ऑर्डर दें

प्रबन्धक

विद्या मंदिर प्रकाशन, सराफा, ग्वालियर

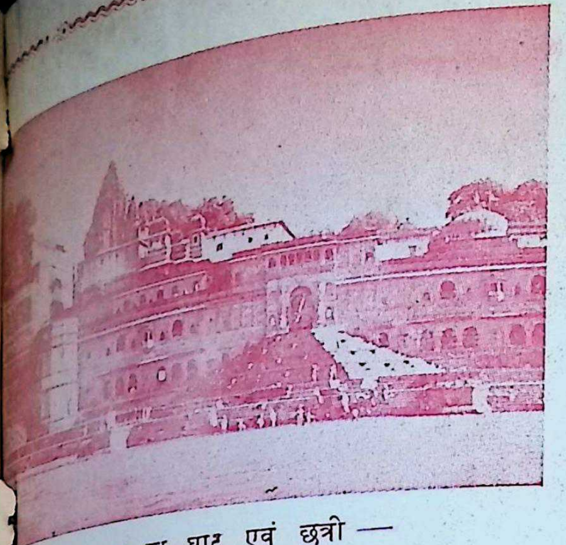

— महेश्वर का घाट एवं छत्री —

'नगर सुन्दर एक महेश्वर'

— कै. राजकवि भा. रा. तांबे

कै. राजकवि भा. रा० तांबे द्वारा वर्णित देवी अहिल्याबाई का

महेश्वर

भ्रमण के लिये सुन्दर स्थान है

उसी प्रकार

महेश्वर की

लुगड़ी

साड़ियां

एवं

खन

का भारतीय महिलाओं के जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है

मंदिर में दर्शनीय स्थापत्य-कला का एक सुन्दर नमूना

गृह उद्योगों

को

प्रोत्साहन

दीजिये

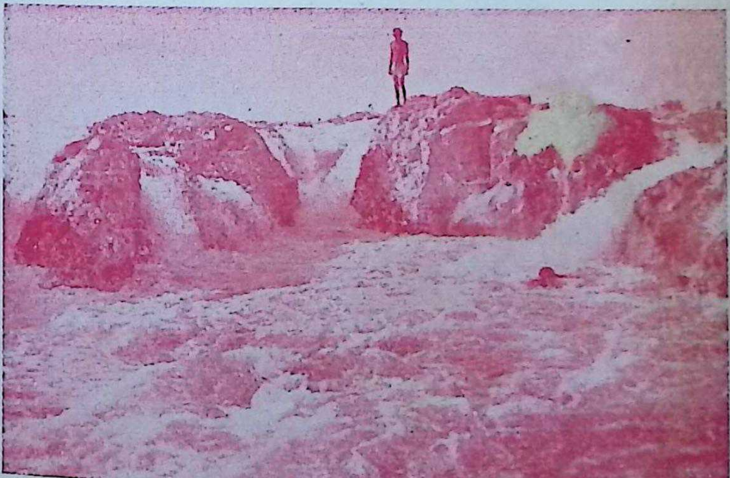

— सहस्त्रधारा (नर्मदा) —

— सूचना विभाग, मध्यभारत शासन द्वारा प्रकाशित —

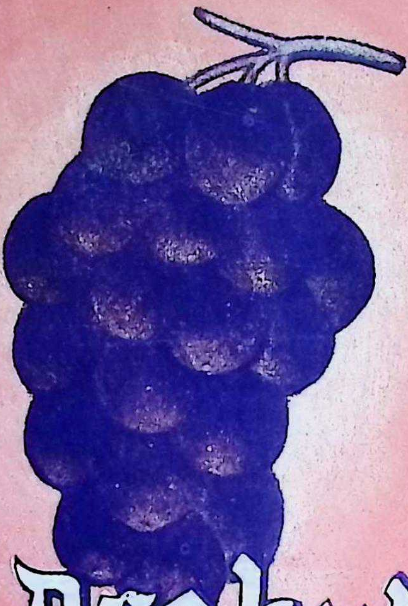

Dinara Drakshasav

दिनारा द्राक्षासव

उत्तम काली द्राक्षा से निर्मित नवीन रक्त, बल एवं स्फूर्ति प्रद मधुर

दिनारा आरोग्य भवन, ग्वालियर, म.भा

DINARA AROGYA BHAVAN, GWALIOR, M.B

हर जगह मिलता है

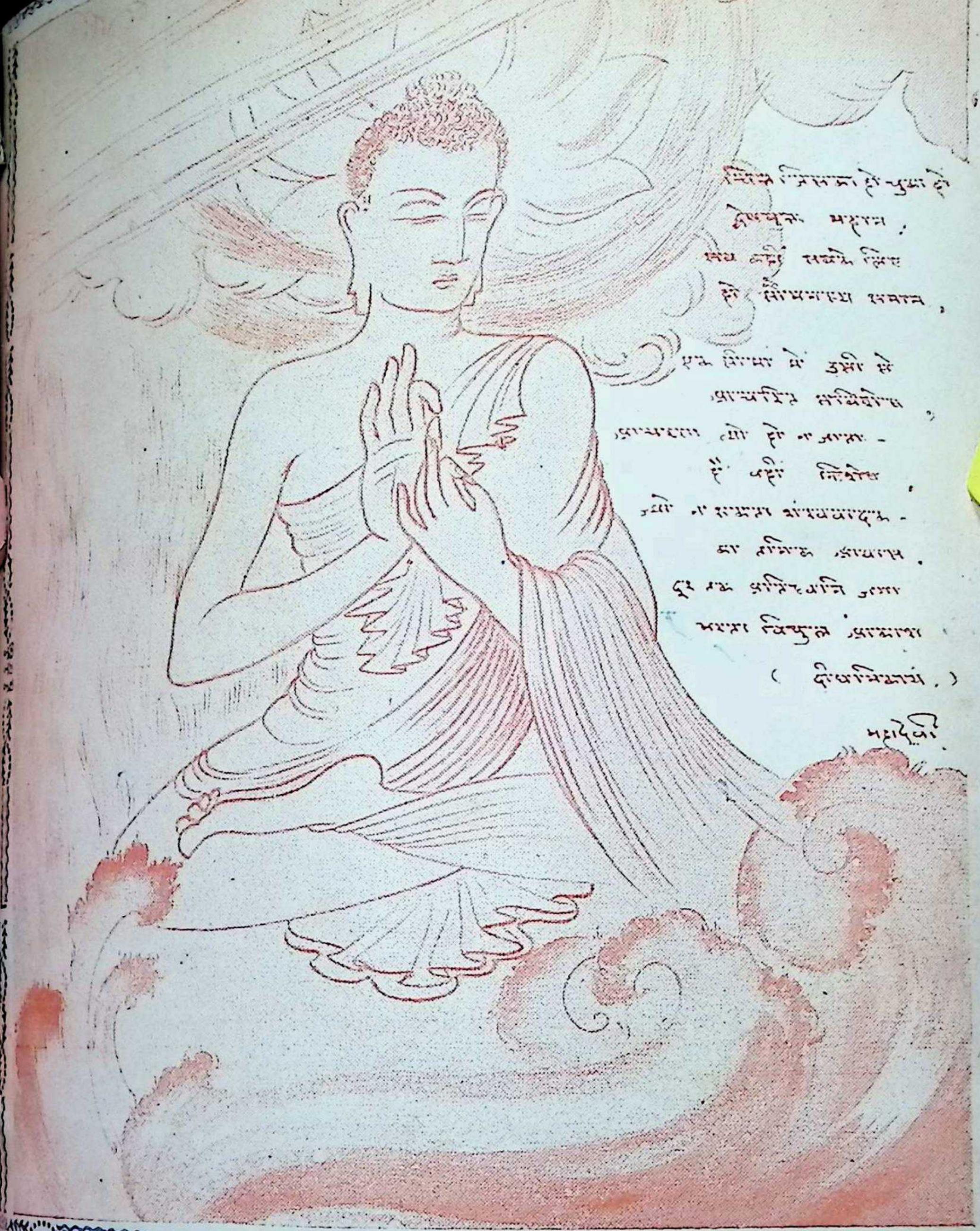

[illegible] [illegible] हो चुका है
[illegible] [illegible],
जब नहीं सकते मिल
तो सीमाओं [illegible],

एक सीमा में उसी से
[illegible] [illegible],
[illegible] जो हैं न [illegible] -
हैं यहीं निःशेष,
जो न [illegible] [illegible] -
का [illegible] आयाम.
दूर तक [illegible] [illegible]
मेरा विपुल आकाश

(दीपशिखा.)

महादेवी

भारती

जून, १९५५

साहित्य, संस्कृति एवं कला की मासिकपत्रि

सेहत और ताकत का नुसखा

जे० बी० मंघाराम के

नरिशिंग

बिस्कुट

विटामिनों से पूर्ण

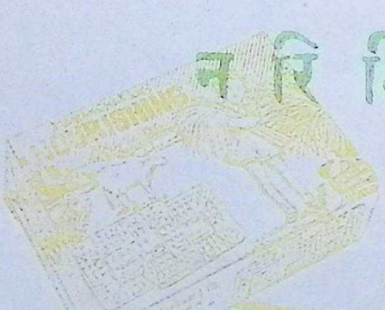

J. B. MANGHARAM & CO.

GWALIOR

Agents:—PRITAM STORES

IVAJI CHOWK PATANKAR BAZAR SUBHASH MARKET

[illegible]
२२-६-५५

गुलाबसिंह एण्ड सन्स के समस्त रेल्वे-स्टालों पर प्राप्त
मध्यप्रदेश, बम्बई, मध्यभारत तथा अनेक राज्यों की शिक्षासंस्थाओं
एवं पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

भारती

मई-जून, १९५५

★

प्रधान-संपादक
हरिहरनिवास द्विवेदी
संपादक
विजय गोविन्द

*

कला-संपादक
भांड-शिल्प-मंदिर
ग्वालियर

*

प्रबन्धक
उदय द्विवेदी

वार्षिक मूल्य ८)

एक अंक का मूल्य ।।।)

भारती-कार्यालय, ग्वालियर

भारती, मई-जून १९५५

अनुक्रमणिका

कविता—

शान्ति दूत—	श्री महादेवी वर्मा	मुख पृष्ठ
गीत—	श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ...	४०९
घड़ी की सुइयाँ—	श्री बालकृष्ण राव	४२४
कोई होगा तो !—	श्री अधीर	४४२
धरती का शृंगार—	श्री विनोद रस्तोगी ...	४६१
मेरा जीवन ध्रुव सा अविचल—	डॉ० रामानंद	४६७
गीत—	श्री सुन्दर लोहिया ...	४७५

कहानी—

ज्वार भाटा—	श्री देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' ...	४३२
उस्ताद बुन्देखाँ—	श्री शम्भुनाथ सक्सेना ...	४४३
अंजली—	श्री परदेशी ...	४५६
रेणु की गुड़िया—	श्री राजेन्द्रकिशोर	४६८

लेख—

विद्यापति की सौन्दर्य सृष्टि—	प्रो० रमाशंकर तिवारी ...	४१०
सपनों में क्या सार है—	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	४२५
यशस्वी और सफल खेती—	श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार	४५०
लौकिक प्रेमाख्यान धारा—	श्री हरिहरनिवास द्विवेदी ...	४६२
सहचिंतन सह-अनुभूति—	आचार्य विनोबा भावे	४७५

गद्य-गीत—

माँझी !—	श्री उमानन्दन चतुर्वेदी	४८४

प्रकाशन-परिचय

'दिनकर' के चार संग्रह—	श्री रामकुमार चतुर्वेदी	४८५
संपादकीय—		४९७

मुख पृष्ठ—शान्तिदूत, चित्रकार श्री महादेवी वर्मा

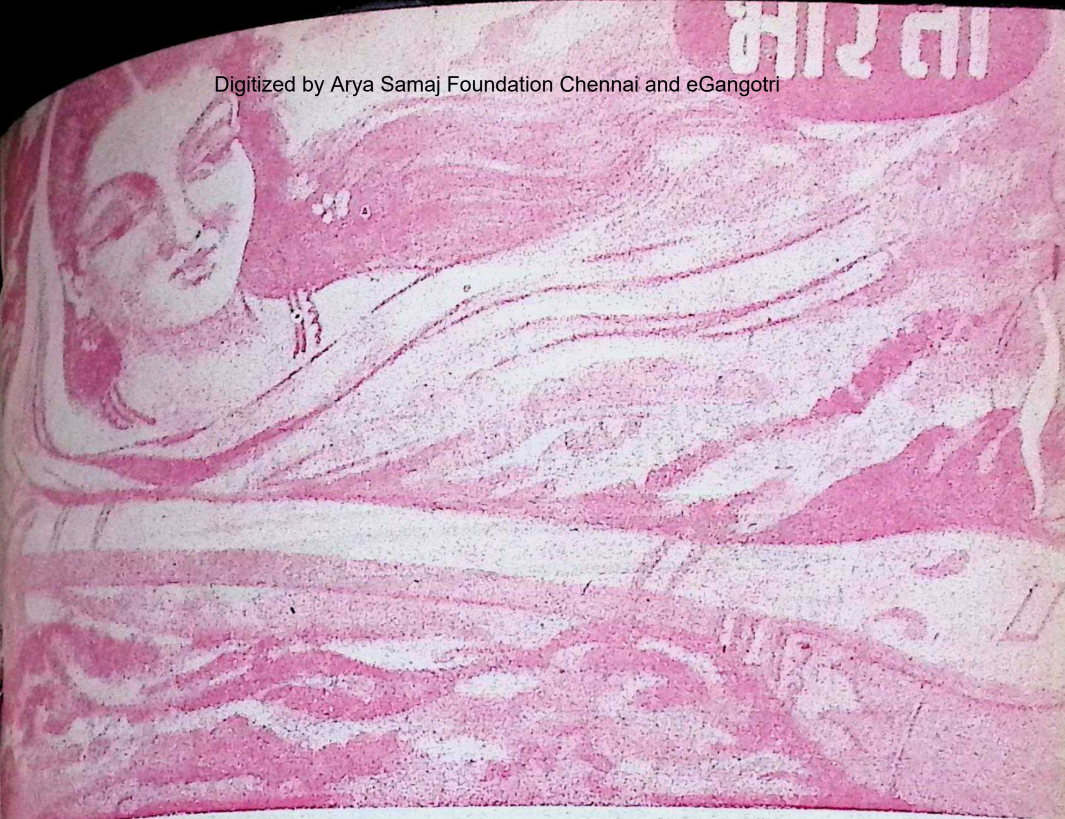

गीत

— श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' —

स्वर में छायानट भर दो;
पावन प्राणों को कर दो।

अनियारे दृग चपल उपान्तों.
झरी रेणुओं, क्लान्तों प्रान्तों,
खसे खेल उपवन के शान्तों,
सीमाओं को नव वर दो।

आलिङ्गित बान्धवता आये,
वैभव विपुल पराङ्मुख जाये,
जीवन को यौवन नहलाये,
कोई अविनश्वर सर दो।

विद्यापति की सौन्दर्य सृष्टि

प्रो. रमाशंकर तिवारी

"गीतगोविन्द" के रचयिता जयदेव ने अपनी शृंगाररस-गर्भित रचना की प्रशंसा में कहा था—"हे माध्वी ! तेरी अपनी मिठास की चिन्ता व्यर्थ है। हे शर्करे ! तू मेरी कविता की तुलना में कर्कश है। हे द्राक्षे ! तुझे इसके सामने कौन देखेगा ? हे अमृत ! तू इसके सम्मुख मृत-तुल्य है। हे क्षीर ! तेरा स्वाद इसकी तुलना में पानी के समान है। हे माकन्द ! तुझे इसके कारण रोना ही अभीष्ट है। हे मनोरमा रमणी के अधर ! तेरे लिए भी पाताल में चले जाना वांछनीय होगा।"* कहने की आवश्यकता नहीं कि विद्यापति की पदावली के माधुर्य के लिए भी उक्त संस्तवन सर्वांशतः समीचीन है। वास्तव में, जिस कामिनी का चित्रण "मैथिल-कोकिल" ने अपने रसपेशल गीतों में किया है, वह वास्तविक जीवन में प्रायः उतनी सुन्दर एवं मधुर नहीं होती जितनी वह इस "मधुजीवी" कलाकार की सृष्टि में अवतरित हुई है। "अतिशय कथन" के द्वारा सिद्धसरस्वतीक कवियों ने रसविहीन जीवन को अखण्ड माधुरी से भरने का निरन्तर सदुद्योग किया है। विद्यापति, निश्चय ही, ऐसे कवियों में श्रेष्ठ एवं वरेण्य हैं।

विद्यापति का अभीप्सित सौन्दर्य यौवनाश्रित है। इस अस्थिर जीवन में यौवन अत्यन्त अल्पकालिक है। अतः कवि का अनुरोध है कि इस विभव का पूर्ण उपभोग होना चाहिए, अन्यथा उसकी कसक सर्वदा हृदय को कष्ट देती रहेगी। कवि प्रेमिका को यह प्रिय उपदेश देता है—"तुमने यौवन के प्रथम उभार में अपने उरोजों के गर्व से अनेक गुणग्राहकों का अपमान किया। यह उचित नहीं था। गया यौवन फिर वापस नहीं आता। यौवनश्री तभी तक शोभाशालिनी रहती है जब तक उस पर कामदेव का अधिकार होता है। अभी लक्ष-लक्ष युवतियाँ तुम्हारे रूप-वैभव के आगे हतप्रभ हैं। किन्तु, थोड़े ही दिनों बाद तुम ग्वालिन के छाँछ के समान व्यर्थ हो जाओगी।' †

---

* "साध्वी माध्वीकचिन्ता न भवति भवतः शर्करे कर्कशासि,
द्राक्षे द्रक्ष्यन्ति के त्वाममृत मृतमसि क्षीर नीरं रसस्ते।
माकन्द क्रन्द कान्ताधर धरणितलं गच्छ यच्छान्ति भावं
यावच्छृंगारसारस्वतमिह जयदेवस्य विष्वग्वचांसि ॥—" गीतगोविन्द, सर्ग १२

[माध्वीक=महुवा। शर्करा=चीनी। द्राक्षा=अंगूर। माकन्द=मीठा फल।]

† "विद्यापति-गीत-संग्रह" (सुभद्र झा)—पद ११६।

इस प्रकार जीवन के सारभूत यौवन की सार्थकता विद्यापति "सुपुरुष-संग" में ही मानते हैं*। किन्तु यह सौन्दर्य-सम्पदा सामान्य बालाओं के अधिकार की वस्तु नहीं है। जैसे संसार में कोटि-कोटि लताएँ तथा विटप हैं, वैसे ही अनेकानेक युवतियाँ हैं। इन युवतियों के रूप-मधु की विभिन्न जातियाँ हैं, जैसे चित्र-विचित्र कुसुमों में भिन्न-भिन्न प्रकार का रस वर्त्तमान रहता है†। विद्यापति की प्रेमिका उस यौवन-रस की धनी है जिसके एक बार के आस्वादन से लुब्ध होकर, प्रेमी-भ्रमर बार-बार उसके संसर्ग की कामना से अनुप्राणित रहते हैं—

"जे मधु भमर निन्दहु सुमर बासि बिसरए न पार।
एलि मधुकर जाहि उड़िपल सेहे संसारक सार॥"

कवि की दृष्टि में यह मधुशाली सौन्दर्य सर्वगुणों से श्रेष्ठ है तथा इसके मूल्य की कोई सीमा नहीं, अथच उसके उपभोग में ही उसकी सफलता गर्भित है—

"ओ मधुजीवी तएँ मधुरासि।
साँचि धरसि मधु तएँ न लजासि॥
अपने मने बुझ अवगाहि।
तोहर दुषन बध लागत काहि॥"

ऊपर जिस सौन्दर्य का स्वरूप दरसाया गया है, उसकी सामान्यतया शब्दों में व्याख्या नहीं हो सकती। केवल इतना ही निश्चित है कि वह उपभोग्य है, चर्वणीय है। किन्तु, फिर भी, विद्यापति सौन्दर्य का मूल उत्स उसकी मांसलता वा शरीरजता में भी सन्निहित मानते हैं। कबीर की तरह वे "राम-रसायन" के पान से ही सन्तुष्ट नहीं होते, अपितु व्यवहार-निष्ठ प्रेमियों के समान उनने चक्षुग्राह्य रूप का भूरिशः वर्णन किया है।

इस सम्बन्ध में यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि विद्यापति प्राचीन काव्य-परम्परा में दीक्षित अत्यन्त पण्डित कवि हैं। नारी-रूप की जो कल्पना युग-युग से भारतीय सौन्दर्य-भावना ने कर रखी है, आज तक उसमें कोई नवीन परिवर्तन या संशोधन नहीं हो सका है—दो-चार नए उपमानों की खोज हमने भले ही की हो। विद्यापति नारी के परम्परानुमोदित स्वरूप के ही उपासक हैं। यही कारण है कि सभी प्राचीन उपमानों का समाश्रयण कर उन्होंने कोमल, मादक एव आकर्षक सुन्दरी की अवतारणा अपने पदों में की है। उनकी नायिका का चित्र कोई भी कुशल चित्रकार यथेष्ठ सावधानी से निर्मित कर सकता है—"चतुर चितेरों" को पंगुमति होने की

---

* विद्यापति-गीत-संग्रह (सुभद्र झा) पद १०८।

† वही, पद २१।

नौबत नहीं आएगी* । "पदावली" की प्रेमिका अनिन्द्य गौरवर्णा तन्वंगी है । जान पड़ता है जैसे वह कनक-लता, द्रोणलता अथवा हेममंजरी हो । उसकी काया सिरिस कुसुम के समान अत्यन्त कोमल है । जब मन्दिर से बाहर निकलती है, तब ऐसा प्रतीत होता है मानो नीले अम्बर में बिजली की रेखा चमक गई । उसके मुख की द्युति निष्कलंक चन्द्रमा की प्रभा से स्पर्द्धा करती है । अधर प्रवाल, बिंबफल, या बन्धूक पुष्प के समान रक्ताभ हैं तथा नवकिसलय की नाईं पतले एवं कोमल हैं । दाँत अनार के दानों के समान छोटे-छोटे, एक में एक सटे हुए हैं और चमक में गजमुक्ता एवं मणियों को मात करते हैं । चिकुर अत्यन्त काले, सघन, लम्बे तथा लहरदार हैं जिनकी समता मानवेतर जगत् में भृंग, सर्प, शैवाल, चमरी, तिमिर, जलधर, राहु तथा यमुना की धार से ही की जा सकती है । नेत्र कमल, भृंग, तथा मीन, खंजन, चकोर और कुरंगिनी की आँखों के समान सुन्दर, काले, चंचल एवं चमकीले हैं । वाणी कोयल की काकली की तरह मीठी है तथा उससे अमृत की अजस्र धार बहती रहती है । नासिका पतली एवं नुकीली है मानो सुग्गे या गरुड़ की चोंच हो । भौंहें भौंरे की तरह काली, लता की नाई सघन, तथा सर्पिणी या धनुष के समान वक्र हैं । उसके कटाक्ष मदन के शरों की भाँति तीक्ष्ण घाव करते हैं । भुजाएँ कनक-मृणाल या स्वर्ण-कमल के सदृश सुडौल, चिकनी एवं कोमल हैं । प्रेमिका के उरोज कमल, श्रीफल, स्वर्ण-घट, कनक-महेश, उलटे कनक-कटोरे अथवा वयःसन्धि-काल में नारंगी या बड़े नीबू के समान गोल, पीन एवं स्निग्ध हैं तथा कनक-गिरि की तरह उन्नत एवं कठोर हैं । रोमावली काली, सघन, तथा सर्पिणी की भाँति टेढ़ी है । त्रिबली यमुना-तरंग के सदृश लहराती है तथा नाभि बिवर या सरोवर की नाईं गहरी है । कमर शिव के डमरू या सिंह की कटि के समान पतली, और नितम्ब गजकुम्भ की तरह पुष्ट एवं मांसल हैं । जंघे सुडौल एवं सुचिक्कन हैं मानो कनक-कदली के उलटे हुए वृक्ष हों । चरण-युगल कमल के समान सुन्दर हैं तथा नख अनार के बीज, शशि अथवा रत्नों के समान चमकीले हैं । इस प्रकार के रूप-विभव से सम्पन्न विद्यापति की "कनक-पुतली" अपनी गम्भीर गति से गजराज और राजहंस को भी पराजित करती है ।

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात है कि विद्यापति ने नव-नायिका की रूप-सृष्टि में उन्हीं वस्तुओं का नियोजन किया है जो अत्यन्त प्राचीन काल से, अपनी भिन्न-भिन्न विशेषताओं के कारण, हमारे लिए रमणीयता की आदर्श बन गई हैं । वस्तुतः वैभव एवं ऐश्वर्य के गायक कवि की दृष्टि इन समयसिद्ध प्रतीकों के परिवेश का अतिक्रमण कर ही कैसे सकती थी ? तथापि, विद्यापति की सौन्दर्य-चेतना नितान्त रसलिप्सु है

---

* "भए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर ।"—बिहारी ।

और उन्होंने अपने रूपलोक में सौन्दर्य-आसव की जो कनक-कटोरियाँ भर रखी हैं, उनसे सहृदयों को अपार तृप्ति मिलती है ।

विद्यापति की अपूर्व रमणी का मोहक चित्र निम्नोद्धृत पद में अवतरित हुआ है—

"सजनि, अपुरुब पेखल रामा ।
कनक-लता अवलंबन ऊअल हरिनहीन हिमधामा ॥
नयन नलिनि दओ अंजने रंजइ भौंह बिभंग बिलासा ।
चकित चकोर-जोर विधि बाँधल केवल काजर-पासा ॥
गिरिवर गरुअ पयोधर-परमित गिम गजमोतिक हारा ।
काम कंबु भरि कनक-संभु परि ढारत सुरधुनि-धारा ॥
पयसि पयागे जाग सत जागइ सोइ पाबए बहुभागी ।
विद्यापति कह गोकुल-नायक गोपीजन अनुरागी ॥"

—"विद्यापति" (मजुमदार)—पद ६२९ ।

—"हे सजनी ! आज मैंने उस अपूर्ण सुन्दरी को देखा । ऐसा जान पड़ा मानों स्वर्ण-वल्लरी के ऊपर कलंकहीन कलाधर उदय हुआ हो । उसके कमल-समान सुन्दर दोनों नेत्र अंजन से रंजित थे तथा उनके ऊपर कुटिल भौहों का अत्यन्त भावपूर्ण नृत्य हो रहा था । उनकी चपलता को देखकर ऐसा भान होता था कि जैसे विधाता ने चकोरों के एक युग्म को काजल के पाश में बाँध लिया हो । कण्ठ में पड़ी गज-मोतियों की माला गिरिवर-तुल्य उरोजों को स्पर्श कर रही थी जिससे ऐसा प्रतीत होता था मानों कामदेव कण्ठ-रूपी शंख में भर कर स्वर्ण-शंभुओं (कुचों) के ऊपर गंगा की जल धार ढार रहा हो । इस रमणी को वही भाग्यशाली पुरुष प्राप्त करेगा जिसने तीर्थराज प्रयाग में जाकर सैंकड़ों यज्ञों का उद्यापन किया हो ।"

उपर्युल्लिखित पद में विद्यापति की रूपभावना का मनोरम उन्मलिन हुआ है । नारी-शरीर में तीन अंगों या स्थलों ने कवि को विशेष आकर्षित किया है—मुख, नेत्र तथा उरोज । सौन्दर्य-विषयक समस्त पदों में इन्हीं तीनों के प्रति उसकी रसलिप्सा अत्यधिक उद्दीप्त हुई है । 'चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख है,' इतने कथन-मात्र से मुख में कोई विशेषता नहीं आती । 'उसका मुख निष्कलंक कलाधर है,' इससे भी व्यंजना में कोई वृद्धि नहीं होती । कवि नायिका की अनुपम मुखद्युति से विस्मित हो गया है, उसके मानस-सरोवर में एक अत्यन्त नव्य अनुभूति उर्मिल हो उठी है । सुतरां, कवि अनायास कह उठता है—'स्वर्ण-लता पर हरिणहीन चन्द्रमा उग गया !' जान पड़ता है, उस रूप-दर्शन के पूर्व कवि के सम्मुख तिमिर का राज्य व्याप्त था और अब उस मुख-कान्ति के आकस्मिक प्रस्फुटन से चतुर्दिक् नवीन आलोक विकीर्ण हो गया । यह

अभिनव छवि सहृदय भावकों की अन्तर्वीणा के रस-निर्भर तारों को भी छूने से बाज नहीं आती।

नेत्रों के लिए कमल एवं चकोर, दोनों की योजना हुई है। किन्तु, चंचल नयनों में जो काजल की गहरी रेखा लगी है, उससे शोभा कुछ और ही हो उठी है। कवि उस रमणीय अनुभव की यों व्यंजना कर रहा है—'विधाता ने चकोरों के जोड़े को काजल के पाश में बाँध दिया है !' अर्थात्, नयन उड़ने के लिए छटपटा रहे हैं, किन्तु काजल-रेख के बन्धन में पड़कर वे अशक्य बन गए हैं। सूर ने चकोर के बदले खंजन की योजना कर यही भाव व्यक्त किया है*।

उसी प्रकार, उरोजों के औन्नत्य एवं काठिन्य तथा सुस्निग्ध सुडौलपन के लिए गिरिवर तथा कनक-शंभुओं (सोने की बनी महादेव की लिंगमूर्ति) की अवतारणा हुई है। लेकिन, हिलता हुआ मौक्तिक-हार कवि की सौन्दर्य-स्निग्ध चेतना को उद्दीप्त कर देता है, और तब, गंगाजल की निर्मल धारा शिव-प्रतिमाओं पर ढरने लग गई है ! गर्मी के महीनों में मन्दिरों में शिव के ऊपर जल से परिपूर्ण कलश रख दिया जाता है जिसके पेंदे मे किए गए एक छिद्र से पानी धारा चूती रहती है। विद्यापति ने उस चिराचरित लोक-प्रथा को अपनी सौन्दर्य-सृष्टि में उतार कर अत्यन्त हृदयग्राही चित्र प्रस्तुत किया है।

उपर्युक्त विश्लेषण से ज्ञात होता है कि विद्यापति की कविता में अनुभूति तथा कल्पना दूध-चीनी की तरह, एक में एक, घुलमिल गई हैं। कवि की सहृदयता का सोना कल्पना की मिठाई में मिश्रित होकर, हमारे अन्तःकरण में एक मधुर गुदगुदी उत्पन्न कर देता है। उसकी रूप-सृष्टि की यही सबसे बड़ी विशेषता है।

ऊपर "हरिणहीन हिमधामा" के उगने का चित्र देखा गया है। किन्तु, इसी से कवि की मौखिक प्रभा-विषयक अनुभूति की पूर्ण व्यंजना नहीं हो पाती। अतएव, अन्यत्र वह दूसरा चित्र नियोजित करता है—

चाँद-सार लए मुख घटना करू लोचन चकित चकोरे।
अमिय धोय आँचेर धनि पोछल दह दिश भेल उजोरे।।"

—नायिका का मुख चन्द्रमा के सार-भाग से निर्मित है तथा उसके नयन चकोर के नेत्रों के समान चकित एवं विस्मयपूर्ण दीखते हैं। उस नव बाला ने आँचल

---

* "खंजन नैन रूप-रस माते।
अतिशय चारु चपल अनियारे पल पिंजरा न समाते।।
चल चल जात निकट स्रवनन के उलट पलट तोटंक फँदाते।
सूरदास अंजन गन अँटके नातरु अबही उड़ जाते।।"—सूरदास।

से अपने मुख को पोंछा। उससे जो अमृत का प्रवाह बह निकला, उससे दसों दिशाएँ आलोकमय हो उठीं ! कल्पना नितान्त रमणीय है। नारियों का आँचल से मुँह पोंछना स्वभावसिद्ध तथ्य है। नायिका ने जैसे ही अपने मुख-मयंक पर आँचल घुमाया वैसे ही मुखमंडल की कान्ति में अत्यधिक दीप्ति का उद्रेक हो गया और उसके फल-स्वरूप सम्पूर्ण दिशाओं में ज्योत्सना की प्रभा खेलने लगी। स्पष्ट है कि कवि-कल्पना के प्रति थोड़ी "आस्तिक बुद्धि" रखने से मौखिक आभा की एक विस्मयजनक चेतना हमारे मानस को अभिभूत कर लेती है।

आँचल से मुँह के पोंछे जाने में कवि विशेष आकर्षण का अनुभव करता है। देखिए, स्नानोपरान्त नायिका ने मुँह पोंछा और वह यत्नपूर्वक माँजे गये स्वर्ण-दर्पण की दीप्ति से जगमग हो उठा—

"बदन पोछल परचूरे, माँजि धएल जनि कनक-मुकूरे।"

—माँजे गए कनक-मुकुर में मौखिक कान्ति की अनुपम व्यंजना गर्भित है। दर्पण केवल चमकता नहीं, प्रत्युत प्रेक्षक की आकृति भी प्रतिबिंबित करता है। रक्त-मांस से गठित मुख-मंडल दर्पण का सहधर्मी बन जाय—यह सौन्दर्य की अत्यन्त हृदय-ग्राही कल्पना है।

विद्यापति की कामिनियाँ अद्भुत एवं विस्मयजनक सौन्दर्य की धनी हैं। गठनात्मक सौष्ठव के साथ-साथ देहज कान्ति ने उन्हें विशेष आकर्षित किया है। इसकी व्यंजना के लिए उन्होंने स्वर्ण और चन्द्रमा, मुख्यतया इन दो वस्तुओं का नियोजन किया है। दीप्ति की प्रखरता एवं मृदुलता के लिए इन दोनों से बढ़ कर अन्य कोई पदार्थ नहीं हो सकते। विद्यापति ने एक गीत में प्रेमिका के अपूर्व रूप-निर्माण का यों वर्णन किया है—

"हे कामिनी ! ऐसा जान पड़ता है मानो कामदेव ने तुम्हारे रूप के माध्यम से अपनी सेना सजाई हो। पूर्णिमा का शशि लाकर उसने उसे सोने पर कसा और इस मंजुल मिश्रण से तुम्हारे श्रेष्ठ मुख की रचना की। चन्द्रमा का जो अंश मुख-निर्माण से बच गया, उसे उसने काट कर फेंक दिया जो गगन में असंख्य ताराओं के रूप में चमकता है। स्वर्ण की जो मात्रा अवशेष रही, उसे औंटाया गया (पिघलाया गया), फिर जमाया गया और तब उससे तुम्हारे पयोधरों की सृष्टि हुई। रसिकजनों ने इन उरोजों के संस्पर्श से जो सुख पाया, उसकी तुलना में ग्रीष्म के ताप से दग्ध पथिक को शीतल छाया से मिलने वाला सुख भी नगण्य था, अतएव अब रसपिपासुओं ने छांह का परित्याग कर दिया है।"*

---

* 'विद्यापति' (मजुमदार), पद २३४।

इस उद्धरण से सहृदय समझ सकते हैं कि मुख और कुचों के प्रति कवि कितनी ममता रखता है। पयोधरों के निर्माण में कितनी सावधानी बरती गई है! पिघलाए जाने और तब जमाए जाने से जिन कनक-शंभुओं की रचना होगी, वे अवश्य ही अखण्ड सौन्दर्य एवं मार्दव के प्रतिमान होंगे। शीतल छाँह से मिलने वाले सुख का उल्लेख कर कवि ने अपूर्व मादकता का सन्निवेश कर दिया है।

कुच-निर्मिति की दूसरी विधि भी कुछ इसी प्रकार दी गई है—विधाता ने घट निर्माण की कला सीखी। तदनन्तर उसने श्रीफल के दो साँचे बनाए। उनमें कच्चा सोना भर दिया। तब उन्हें सोने के कटोरों में रखा, और तब, अत्यन्त निपुणता एवं सावधानी से पयोधरों-रूपी दो कनक-कलशों की रचना की—

"घटक बिहि बिधाता जानि।
काचे कंचने छाडलि आनि॥
कुच सिरिफल संचा पूरि।
कुन्दि बइसाओल कनक-कटोरि॥"

स्पष्ट है कि कवि की शृंगार-साधना की मादक एवं उत्तेजक दृष्टिभंगी का अपह्नव अथवा अशृंगारिक अनुवचन (interpretation) करना कठिन कार्य होगा। अलंकार-शास्त्र के निष्णात पंडित होने के कारण विद्यापति ने अनुपम वाग्विच्छित्ति तथा विविध अलंकारों का आश्रय ग्रहण कर, नारी-सौन्दर्य के आकर्षक चित्र अंकित किए हैं। उनकी नायिका त्रैलोक्य-विजयी मदन-महीपति की विश्व-विजय की जाज्वल्यमान प्रतीक है जिसकी रचना, न जाने, किस निपुण विधाता के द्वारा सम्पन्न हुई है। उसके नेत्र, नाभि, रोमावली इत्यादि का कवि ने यों चित्रण किया है—

"सुधामुखि को बिहि निरमिल बाला।
अपरूप रूप मनोभव-मंगल त्रिभुवन विजयी माला॥
× × ×
कनक-कमल माँझे काल-भुजंगिनि श्रीयुत खंजन खेला॥
नाभि-विवर सञ् लोम-लतावलि भुजगि निश्वास-पियासा।
नासा खगपति-चंचु भरम भए कुचगिरि-संधि निवासा॥
तिन बाने मदन जितल तिनभुवने अवधि रहल दउ बानो।
विधि बड़ दारुन बधिते रसिकजन सौंपल ताहारि नयाने॥"

—मजुमदार, पद २२।

—सुन्दर मुख एवं कज्जल-कलित नयनों को देखकर ऐसा भान होता है मानो स्वर्ण के कमल में कालसर्पिणी बास करती हो तथा उसके पास शोभाशाली खंजन क्रीड़ा कर रहे हों। नाभि-रूपी विवर से रोमावली निकली हुई है और कुचों के बीच तक

प्रसरणशील है। ऐसा जान पड़ता है मानो काली भुजंगिनी नायिका के सुरभित श्वासों की प्यास में आगे बढ़ी हो किन्तु उसकी नुकीली नाक को पक्षीराज गरुड़ की चोंच समझ कर भयग्रस्त हो गई हो और कुच-द्वय रूपी दो गिरिवरों के मध्यवर्ती संकीर्ण प्रदेश में आकर छिप गई हो। कामदेव ने अपने तीन वाणों से तीन लोकों को जीत लिया तथा शेष दो वाण* निष्ठुर विधाता के द्वारा इस रूपसी के दोनों नेत्रों को समर्पित कर दिए गए हैं जिनसे वह रसिक नागरों का निर्मम बध करती है।

इसी प्रकार कवि की पांडित्य-प्रिय कल्पना कभी नारी के अभिराम नव-यौवन में हरिण, इन्दु, अरविन्द, हस्तिनी, स्वर्ण और कोयल— इन छह पदार्थों को एकत्र संकलित कर देती है†। तथा कभी गगन-चारी कलाधर तथा पृथिवी-सेवी कमल को एक साथ स्थित करा देती है‡। कभी कामिनी की चिकुरराजि की कृष्ण छटा से भयभीत होकर चवरी गाय पर्वत की कन्दरा में, तथा नयनों की विशालता से त्रस्त होकर हरिण, मधुर स्वर से लज्जित होकर कोयल और मतवाली गति से पराजित होकर गजराज वनों में छिप जाते हैं। कभी उरोजों की अनुपम शोभा देखकर कमल-कोरक जल के भीतर डूब जाते हैं, घट अग्नि में प्रवेश कर जाता है, दाड़िम और श्रीफल आकाश में चले जाते हैं तथा शिव उरस्यों की चिकनाई एवं गोलाई से लज्जित होकर भयंकर कालकूट का पान कर लेते हैं£। और कभी उसकी सुन्दर भुजाओं के भय से कमलनाल पंक में धस जाते हैं तथा कोमलकरों के भय से नव-किसलय प्रकंपित हो उठते हैं।¶

तथापि यह समझना प्रमाद होगा कि विद्यापति ने केवल पांडित्य-प्रदर्शन के निमित्त ही अपनी नवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा का उपयोग किया है। सचाई यह है कि उनकी कल्पना रमणी-सौन्दर्य के सरोवर में सराबोर डुबकी लगा कर रूप-रस की यथेष्ट चर्वणा करती है। निम्नोदधृत पदांश इस कथन का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं—

१ "कुच जुग परसि चिकुर फुजि पसरल ता अरुझाएल हारा।
जनि सुमेरु ऊपर मिलि ऊगल चाँद बिहिनु सब तारा॥"
२ "मेरु ऊपर दुइ कमल फुलाएल नाल बिना रुचि पाई।
मनिमय हार धार बहु सुरसरि तओ नहिं कमल सुखाई॥"
३ "यमुनातीर युवति केलि कर उठि उगल सानन्दा।
चिकुर सेमार हार अरुझाएल जूथे जूथे उग चन्दा॥"

---

* कामदेव के पाँच वाण कहे गये हैं-प्रवण, शोषण, तापन, मोहन एवं उन्मादन —लेखक।

† विद्यापति (मजुमदार) पं० २१६. ‡ वही, पं० २४. £ वही, पं० ६२६.
¶ वही, पं० ६२६.

४ "फूजलि कबरि अवनत आनन कुच परसए परचारि।
कामे कमल लए कनक-संभु जनि पूजल चामर ढारि ॥"

× × ×

"सामरा लोमलता कालिन्दी हारा सुरसरि धारा।
मंजन कए माधवे वर माँगल पुनु दरसन एक बेरा ॥"

ऊपर के इन पदांशों में उरोज, हार, खुले केश तथा लोमलता के जटिल ग्रंथि-बन्धनों के चित्र अंकित किए गए हैं। नीचे की पंक्तियों में क्षीण कटि एवं रोमराजि का अत्यन्त आकर्षक चित्रण हुआ है—

"माँझ खमि तनु भरे भाँगि जाय जनु विधि अनुसए भेल साजि।
नील पटोर आनि अति से सुदृढ़ जानि जतने सिरिजु रोमराजि ॥"

—बाला की क्षीण कटि (माँझ खमि) शरीर के भार से दब कर टूट न जाय, इसी आशंका से विधाता ने उसे दृढ़ नीले रेशमी धागे से निपुणता-पूर्वक कस कर बाँध दिया है। यही नीला धागा यत्न-सहित सर्जित की गई रमणी की रोमावली है। इस चित्र में, या कहीं भी किसी चित्र में विद्यापति ने हास्यास्पद ऊहाओं का आश्रय ग्रहण नहीं किया है जैसा रीतिकालीन कवियों की कृतियों में ये निस्संकोच प्रविष्ट हुई है। अतएव, यह समझा जा सकता है कि क्यों कर विद्यापति की पण्डित-प्रतिभा का स्रोत अलंकारों की आकर्षक उपत्यका में बहता हुआ भी, निस्सार चमत्कार की सिकता-राशि में सूखने नहीं पाया है।

कई पदों में कवि ने रूप-सौन्दर्य की विशद चित्रणा की है, उसी त्वरा के साथ—यद्यपि वहाँ भी भिन्न-भिन्न अवयवों की कोरी अनुसूची नहीं तैयार की गई है—जैसे छोटे बच्चे कभी-कभी अध्यापकों के सम्मुख, एक से सौ तक की गिनती एक ही साँस में गिन जाते हैं*। और कभी-कभी, कवि, जैसे थक कर प्रेमिका की मुख-श्री के साथ, विनोद-भाव में खेलवाड़ करने लग जाता है। नीचे के चित्र में कवि की विनोदशीलता का विद्योतन हुआ है—

"आंचरे बदन झपावह गोरि, राज सुनैच्छिअ चाँदक चोरि।
घर-घरे पे हरि गेलच्छ जोंहि एषने दूषण लागत तोंहि ॥
बाहुर सुतह हेरह जनु काहु, चाँन भरमे मुख गरसत राहु।
निरभि निहारि फाँस गुन तोलि, बाँधि हलत तोहँ खंजन बोलि ॥
भनहि विद्यापति होहु निशंक, चाँदहुँ काँ किछु लागु कलंक ॥"

—"हे गोरी! वस्त्र से बदन ढक कर रखो। राजा ने सुना है कि चाँद चोरी

---

*'विद्यापति' (मजुमदार), पद ३०८.

चला गया है। घर-घर पहरेदार घूमते और उसकी खोज कर रहे हैं। इसमें तुम्हीं पर दोष मढ़ा जायगा (कि तुम्हीं ने चाँद की चोरी की है, अन्यथा तुम्हारा मुख चाँद के समान कैसे हुआ ?) बाहर सोती हो, कोई इस तरह तुम्हें देख न ले; नहीं तो राहु के समान तुम्हारे मुखचन्द्र को ग्रसित कर लेगा। शिकारी जाल लेकर घूम रहा है; तुम्हारे चपल नेत्रों को खंजन-नेत्र समझ कर तुम्हें फन्दे में बाँध लेगा। किन्तु, फिर भी विद्यापति कहते हैं, निर्भय रहो, चाँद में भी कुछ कलंक है। (अर्थात्, व्यंग्य यह है कि तुम्हारा मुख तो निर्मल, सर्वथा निष्कलंक है, अतएव ध्यान से देखने पर ज्ञात हो जायगा कि तुमने चाँद की चोरी नहीं की है, अपितु चाँद तुम्हारी ही मुख-द्युति का अपहरण कर कुछ चाँद बना हुआ है।"

इस चित्र की शोभा कोई भी सहृदय भुला नहीं सकता। नायिका को दी गई मृदुल सलाह में उसकी रूप-दीप्ति की कितनी विदिग्धता के साथ, मधुर व्यंजना की गई है! अन्य कवियों ने भी नारियों के रूप की स्तुति की है। किन्तु, वे तटस्थ द्रष्टा ही रह जाते हैं; उनकी अन्तरात्मा खुल कर उस रूप-सुषमा का आस्वादन नहीं कर पाती है। किन्तु, विद्यापति सौन्दर्य के तटस्थ प्रेक्षक नहीं हैं। उलटे, वे यह समझ लेते हैं कि वह रूपसी उनकी अपनी ही है जिसके रूप-रस की चर्वणा में वे तन्मय हो जाते हैं, और कभी उसे भुलवाते-डराते हैं, तथा कभी आश्वस्त कर देते हैं। "लोलुअ वदन-सिरी अछि धनि तोरि" वाले पद में भी ऐसी ही व्याज-स्तुति की गई है।

नारी-सौन्दर्य के अन्वेषकों को वयःसंधि में विशेष रमणीयता की प्रतीति हुई है। वास्तव में, यह अवस्था शारीरिक एवं मानसिक, दोनों प्रकार के परिवर्तनों की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। सफल, श्रेष्ठ कवियों ने दोनों कोटि के रूपान्तरों के वर्णन में अपनी पैनी प्रतिभा का मनोरम उपयोग किया है। विद्यापति ने उस संक्रान्ति-काल के चित्रण में शैशव एवं यौवन के मध्य, नव-बाला के शरीर-राज्य-पर आधिपत्य स्थापित करने के लिए एक कुतूहलजनक, किन्तु सर्वथा सत्य, संघर्ष की उद्भावना की है। नवयौवना के चरणों की चपलता नयनों में समा गई; नवप्रस्फुटित उरोज "बदरि" और "नवरंग" से बढ़ कर अन्ततः "कनक-महेश" बनने की चेष्टा कर रहे हैं तथा सघन, सचिक्कन चिकुर-रूपी चवँर से आच्छादित हो गए हैं; अथच वह बाला कामकेलि-विषयक वार्ता उसी तन्मयता से सुनने लगी है "जइसे कुरंगिनि सुनए संगीत।" यौवन के उदय-काल में नवतरुणी के स्वाभाविक व्यवहार में परिवर्तन घटित होते हैं। शैशव-कालीन व्यवहारों पर उसे लज्जा प्रतीत होती है तथा तारुण्योचित व्यवहार करते समय उसका आचरण अनायास शैशव-सुलभ स्वच्छन्द व्यवहारों की ओर मुड़ जाता है। उस सत्य का हृदयग्राही चित्र निम्नस्थ पद में यों अंकित हुआ है—

"खने खन नयन कोन अनुसरई ।
खने खन बसन धूलि तनु भरई ॥
खने खन दसन-छटा छुट हास ।
खने खन अधर आगे करु बास ॥
चउकि चलए खने खने चलु मन्द ।
मन्मथ-पाठ पहिल अनुबन्ध ॥
हिरदय-मुकल हेरि हेरि थोर ।
खने आँचर दए खने होय भोर ॥"—मजुमदार, ६१६.

इन पंक्तियों में कवि के सूक्ष्म निरीक्षरण एवं सौन्दर्य-संकलन के लिए उसकी अभीप्सित सहृदयता का सुन्दर उन्मीलन हुआ है।

ऊपर के पद की नवबाला संक्रान्ति ('ट्रांजीशन') के प्रथम चरण में है, अतएव उसके व्यवहार में सजगता ('कॉन्शसनेस') की अपेक्षा विभोरता अधिक है। किन्तु, जब वह उस चरण को पार कर जाती और दूसरे चरण में प्रवेश करती है तो वह अपने आचरण में अधिक सजग हो जाती है, तथा इस सजगता के कारण उसके सौन्दर्य में और भी आकर्षण चला आता है। इस अधिक स्पष्ट परिवर्तन वाली अवस्था से विद्यापति विस्मयविमुग्ध हो जाते हैं—

"आज देखलिसि कालि देखलिसि आजि कालि कत भेद ।
सैसव वापुड़े सीमा छाड़ल जउवने बाँधल फेद ॥
सुन्दरि कनक केआ मुति गोरी ।
दिने दिने चाँद कला सओं बाढ़लि जउवन शोभा तोरी ॥

× × ×

मन्द हासे बंकिम कए दरसए, चंगिम भउंह विभंगे ।
लाजे बेआकुलि सामु न हेरए, आउल नयन तरंगे ॥"-मजु०, १८.

—"हे कनकवर्णा गोरी। चन्द्रकला के समान दिन-दिन तुम्हारी यौवन-शोभा बढ़ रही है। मृदुमन्द हास करती हो और वक्र-भ्रू भंग से कुटिल कटाक्ष फेंकती हो। लज्जा से इतनी व्याकुल हो कि सामने देख नहीं सकतीं; तो भी नयन-तरंगों के द्वारा प्राण आकुल कर देती हो!"—इसी कारण, कवि विस्मय-विभोर हो उठा है और अनायास उसके मुँह से उसके प्राण बोल उठते हैं—'आज भी देखा, कल भी देखा। आज और कल में कितना अन्तर आ गया है।" जैसा हमने ऊपर कहा है, विद्यापति सौन्दर्य के तटस्थ द्रष्टा नहीं हैं। यही कारण है कि जब-जब कोई नवीन छवि दृष्टि-गोचर होती है, तब-तब उनकी अन्तर्वीणा झंकृत हो जाती है और उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही

विचलित हो उठता है। बिहारी की वय:संधि वाली नवतरुणी+ में चकमक अधिक है, कदाचित् क्षणे-क्षणे नवता को प्राप्त होने वाली रमणीयता× भी उसमें अधिक हो, किन्तु, जो सचाई, सहृदयता एवं प्राणों का मुखरण विद्यापति के वय:संधि-चित्रण में उपलब्ध है, वह, बिहारी क्या, सम्पूर्ण हिन्दी शृंगार-साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है।

इसी प्रकार, मार्ग में जाती हुई और माधव-मन को मदन-शरों से व्यथित करती हुई नव-यौवना का भी सूक्ष्म मादक चित्रण विद्यापति के गीतों में उपलब्ध है। कभी दीप्तिमती विद्युत की क्षणिक रेखा के समान नायिका की कनकलता-सी देह, नीली साड़ी के पवन-स्पर्श से खिसक जाने के कारण अचानक दिखाई पड़ जाती है,* कभी वह गोरी चकित दृष्टि से माधव की ओर निहार कर 'चमक' कर चली जाती है,† कभी उस कामिनी के कृष्ण भौंहों से खचित नयन प्रिय-मूर्त्ति का दर्शन करने के निमित्त किंचित् विस्फारित-से ऐसे लुभावने प्रतीत होते हैं जैसे—

"पंकज-मधु पिबि मधुकर रे, उड़ए पसारए पाँखि।"

अथच, प्रेमिका के चले जाने पर नायक के आशा-लुब्ध नयन उसी असमर्थ कातरता से उसकी ओर ताकते रह जाते हैं जैसे किसी कृपण की दया के लिए कोई भिखारी—

"आसा-लुबुधल न तेजए रे, कृपनक पाछु भिखारि।"‡

—अन्तिम दोनों चित्रों की सचाई सहृदयों से कथमपि ओझल नहीं हो सकती। पुन: प्रेमिका नायक के चित्त को 'डगमग' करने के निमित्त अपना आकर्षण-जाल किस कलात्मक चातुरी से प्रक्षिप्त करती है तथा स्वयं विद्यापति को उस रूपसी का कौन-सा पार्श्व सर्वाधिक आकृष्ट करता है, उसका अत्यन्त मनोभिराम चित्र यों अंकित हुआ है—

"आध आँचर खसि आध बदन हसि आधहि नयन-तरंग।
आध उरज हेरि आध आँचर भरि तब धरि दगधे अनंग।।"

—मजु०, प० ६३०

—यह 'आधी' क्रिया कितनी पूर्णता से प्रभाव डालती है, किसी अनुभवी व्यक्ति से छिपा नहीं है।

विद्यापति विलासी एवं उत्तेजक सौन्दर्य के विशेषज्ञ हैं। अतएव, अपने

+ "छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यौ जोबनु अंग।
दीपति देह दुहून मिलि, दिपति ताफता रंग।।"—बिहारी

× देखिए सम्मेलन-पत्रिका', भाग ४०, संख्या ३, में लेखक का "बिहारी की सौन्दर्य-सृष्टि" शीर्षक निबन्ध।

* विद्यापति' (मजुमदार), पद ५. † वही, पद २३५. ‡ वही, पद ३८.

विशिष्ट क्षेत्र में प्राप्य लगभग सभी सौन्दर्य-स्थितियों का उन्होंने मनोरम उन्मीलन किया है। समागम के समय की शोभा *समागम के पूर्व की शोभा, † समागम के बाद की शोभा, ‡अभिसार-शृंगार की शोभा, £और तो और, विपरीत रति¶ की शोभा तक का अत्यन्त सजीव, सच्चा एवं तन्मयतापूर्ण चित्रण उनके गीतों में उपलब्ध है। सद्यः-स्नाता रूपसियों में वर्णन में भी कवि ने प्रचुर अनुराग दिखाया है। ऐसा करते समय उसकी दृष्टि भींगे केशों से अपस्रवित होने वाली जलधारा तथा नायिका के वक्षोदेश पर चिपकने वाले चीर की ही ओर अधिक गई है।× ऐसे स्थलों में जान पड़ता है कि बिहारी, देव इत्यादि रीतिकालीन कवियों की दृष्टि अधिक व्यापक, अधिक लोकनिष्ठ हैं।÷

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम निम्न-लिखित निष्कर्षों पर पहुँचते हैं—

विद्यापति की सौन्दर्य-सृष्टि में गोरी, तन्वंगी रमणियों का ही राज्य है जो अधिकतर चन्द्रमा, बिजली, या कनक की कान्ति से रसिकों का हृदय-हरण करती हैं तथा स्वयं निरन्तर मदन-महीपति की संकेत-सेविका बनी रहती हैं। बार-बार वे ही सौन्दर्य-प्रतीक नव्य-नवीन शिल्प से सजाए गए हैं, वे ही कमनीय कल्पना-कुसुम कुशल एवं रस-लिप्सु माली द्वारा चित्र-विचित्र क्यारियों में विन्यस्त होकर मादक छवियों की सृष्टि करते हैं। कमल, सोना तथा चन्द्रमा मानव-चेतना के स्फुरण-काल से आज तक सुषमा के आदर्श रहे हैं। विद्यापति उस सौन्दर्य के मर्म-पारखी हैं जिनसे पहले दो मनों का मेल होता है तथा बाद को उसकी परिणति शरीरों के मेल में भी हो जाती है।+ अतएव, व्यावहारिक बुद्धि रखने के कारण, वे स्वर्ण एवं चन्द्रमा की नित्य-नवल

---

* 'विद्यापति-गीत-संग्रह' (झा), पद २०१।

†, ‡ 'विद्यापति' (मजुमदार), ३,६८ ६९,७०,५०१।

£ वही, पद ९५,९६,९७,१०१,४८३ इत्यादि।

¶ वही, पद ५००, ५०१, ५०२ इत्यादि।

× वही, पद ६३२, ६३३।

÷ निम्न चित्र विद्यापति में नहीं मिलते—

(१) "मुँह पखारि, मुड़हरु भिजै, सीस सजल कर छ्वाइ।
मौरु उचै, घूटेनु तैं, नारि सरोवर न्हाइ॥"—बिहारी

(२) "बिहँसति, सकुचति सी-दिए कुच-आँचर-बिच बाँहि।
भीजैं पट तट कौं चली, न्हाइ सरोवर माँहि॥"—बिहारी

+ "अकथ कहानी प्रेम की, जानत लैली खूब।
दो तनहूँ जहँ एक भे, मन मिलाइ महबूब॥"

कान्ति से ही प्रभावित रहे हैं तथा अपनी प्रेमिकाओं के रूप सजाने में उन्होंने इन्हीं को विशेष नियोजित किया है। मांसल. आकर्षण-प्रधान सौन्दर्य के उन्मीलन में वे किसी प्रकार की मानसिक कुण्ठा या अवरोध से प्रभावित नहीं रहे हैं। निश्छल, निष्कपट भाव से वे रूपश्री की अनावृति करते चले गए हैं तथा स्पष्ट शब्दों में यौवन-विभव की उपभोग्यता का निरूपण किया है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता उनकी निःशेष एवं निर्व्याज शृंगारिकता है जिसके अपह्नव का कहीं कोई प्रयत्न नहीं किया गया है। आप उन्हें भक्त कहलें, रहस्यवादी साधक कहलें—इसमें उन्हें या किसी को क्या आपत्ति हो सकती है ? कौन है जो किसी अलौकिक सत्ता की रमणीयता या रहस्यपूर्णता की भावना से कभी रंचमात्र भी प्रभावित नहीं होता ? सम्भव है, विद्यापति आस्तिक ब्राह्मण होने के नाते भक्त भी रहे होंगे। किन्तु, उनके गीतों में, विशेषतया उनकी सौन्दर्य-सृष्टि में साधारण "मधुजीवी" मनुष्य के स्वरूप का ही अनावरण हुआ। विद्यापति अपने सौन्दर्य-संसार के वैसे प्रजापति हैं जिसे अपने सहज ऐश्वर्यशील धरातल से लेशमात्र की भी विच्युति असह्य प्रतीत होती है। उनकी प्रेमिकाओं के रूपज आकर्षण में कहीं कोई अन्तर कोई वैविध्य दृष्टिगोचर नहीं होता। सभी सर्वत्र सदैव आदर्श सुन्दरी हैं जो एक ही विधाता द्वारा, एक ही साँच में, एक ही योजनानुसार रची गई हैं। सभी एक ही समान मोहक, मधुर एवं विस्मयपूर्ण हैं। विद्यापति का सौन्दर्य-लोक वह श्रेष्ठवरीय बनारसी मिठाई की दूकान है जहाँ सभी सुस्वादु पदार्थ मूलतः खोएं अथवा छेनें से ही, अन्य उपादानों के मिश्रण से बने रहते हैं तथा, इसी कारण अत्यन्त क्षुधाकुल व्यक्ति भी दो चार मिठाइयों से ही पूर्णतया परितृप्त हो जाता है। कभी-कभी मिठास की समृद्धि भी मिठाई के प्रति कुछ अरुचि उत्पन्न कर देती है। अतएव, इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि विद्यापति की सौन्दर्य-सृष्टि का आस्वादन करते-करते पाठक शेक्सपियर के ड्यूक के स्वर में स्वर मिला कर कभी-कभी कहता-सा जान पड़ता है—

> "............ enough; no more :
> Tis not so sweet now as it was before."
>
> ---Twelfth Night, Act 1, Scene I

तथापि, विद्यापति विशुद्ध मधुर-भाव के निर्व्याज गायक हैं तथा हमारी अन्तर्वीणा के उन तारों को छूते हैं जो मनुष्य को सर्वत्र एवं सदैव अत्यन्त प्रिय र हैं। अतएव, भारतीय काव्य में उनका महत्त्व अप्रतिम तथा अखण्ड है।

दो मन इक होते सुन्यौ, पै वह प्रेम न आहि।
होइ जबै द्वै तनहुँ इक, सोई प्रेम कहाहि॥

—रसखानि—'प्रेमवाटिका'।

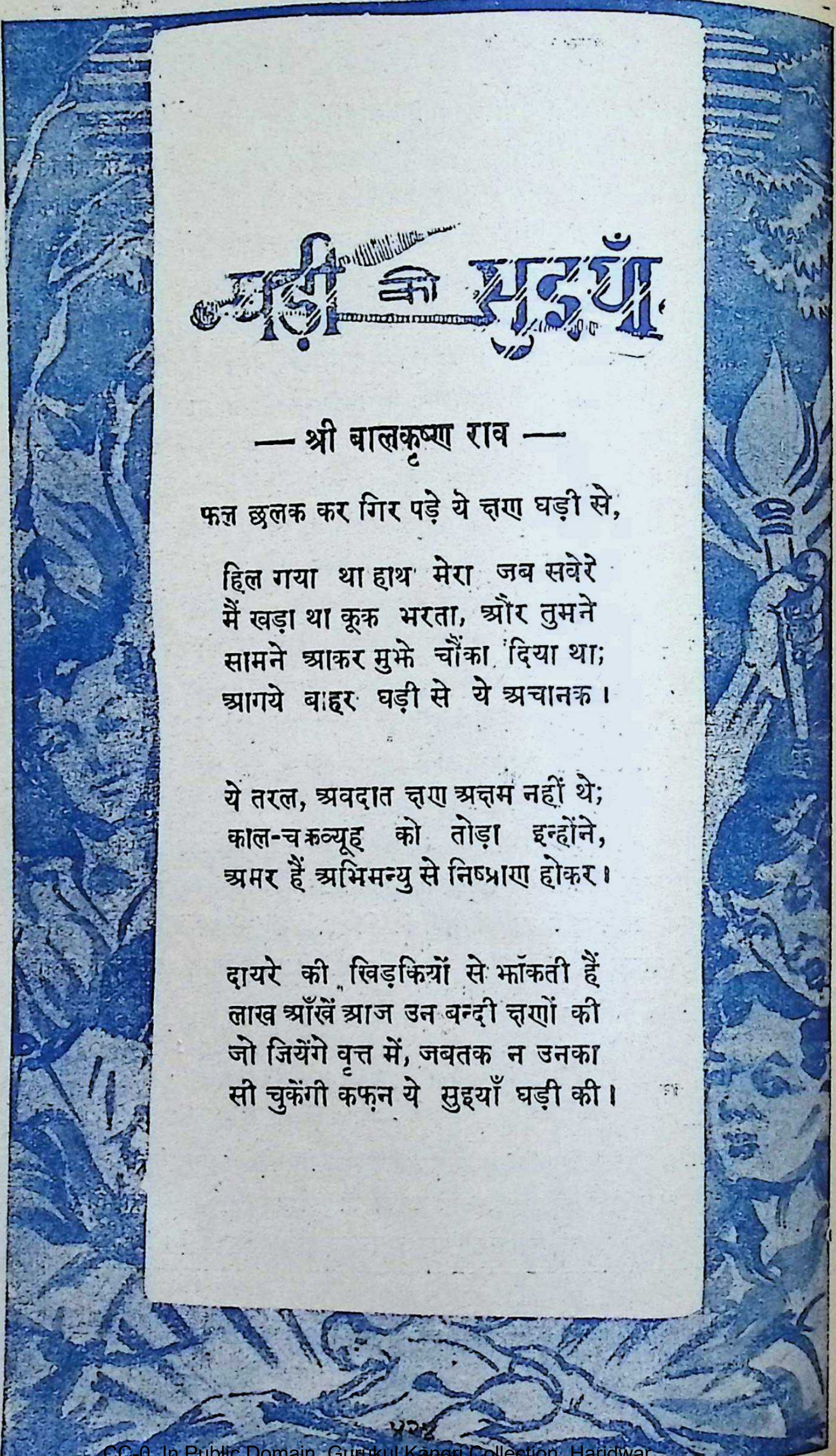

घड़ी की सुइयाँ

— श्री बालकृष्ण राव —

फल छलक कर गिर पड़े ये क्षण घड़ी से,

हिल गया था हाथ मेरा जब सवेरे
मैं खड़ा था कूक भरता, और तुमने
सामने आकर मुझे चौंका दिया था;
आगये बाहर घड़ी से ये अचानक।

ये तरल, अवदात क्षण अक्षम नहीं थे;
काल-चक्रव्यूह को तोड़ा इन्होंने,
अमर हैं अभिमन्यु से निष्प्राण होकर।

दायरे की खिड़कियों से झाँकती हैं
लाख आँखें आज उन बन्दी क्षणों की
जो जियेंगे वृत्त में, जबतक न उनका
सी चुकेंगी कफ़न ये सुइयाँ घड़ी की।

सपनों में क्या सार है

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

प्रत्येक मनुष्य थोड़े या बहुत सपने देखता है। प्रायः उन पर उसका ध्यान नहीं जाता। "सपने तो आया ही करते हैं" यह सोचकर हम उन्हें भूल जाते हैं। परन्तु कभी-कभी कोई सपना ऐसा आ जाता है कि वह हमें सोचने पर मजबूर कर देता है। किसी चिरकाल से बिछुड़े हुए का मिलाप, किसी प्रियजन की या अपनी ही मृत्यु, धन की अत्यन्त प्राप्ति या अत्यन्त हानि—ये सब दृश्य हैं, जो मनुष्य के सपने को झटका देकर तोड़ देते हैं, और मनुष्य को उन पर सोचने के लिए बाधित कर देते हैं।

क्या सब सपने निर्मूल होते हैं? या उनका कोई आधार भी होता है? यह एक मनोवैज्ञानिक प्रश्न है जिसका उत्तर देने का वर्त्तमान मनोविज्ञान यत्न करता है। वह बहुत से सपनों को उपचेतना (subconscious mind) के परिणाम मानता है। हमारे कुछ स्मृति ग्रन्थों में स्वप्नों के फल बतलाकर ही सन्तोष कर लिया गया है, और दर्शन ग्रन्थों में जागृत जीवन की स्मृतियों को स्वप्नों का कारण बतलाया गया है।

मेरा ऐसा अनुभव है कि यदि हम अपने विशेष सपनों पर स्वयं गम्भीरता से विचार करते रहें, तो हम उनका रहस्य बहुत कुछ समझ सकते हैं। मैं यहाँ जो कुछ लिखूँगा, उसका आधार न कोई मनोविज्ञान का ग्रन्थ है और न स्मृति ग्रन्थ। उसका आधार केवल मेरे सपने और उन पर किया हुआ अपना ऊहापोह है। मुझ में छात्रावस्था से ही अपने सपनों को याद रखने, नोट करने और उन पर विचार करने की आदत रही है। मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि सपनों के दो प्रकार हैं। एक वह जो विविध स्मृतियों और उपचेतना पर आश्रित होते हैं, और दूसरे वह जिन्हें मैं निर्देशक स्वप्न कहता हूँ। वे मनुष्य को कुछ विशेष सूचना देने के लिए आते हैं। निर्देशक स्वप्नों की प्रेरणा संसार की नियामिका शक्ति की ओर से होती है। यह ठीक है कि निर्देशक स्वप्नों में भी स्मृति और उपचेतना का मिश्रण रहता है, कभी-कभी तो उनकी पूरी पृष्ठभूमि ही स्मृतियों पर अवलम्बित होती है, परन्तु उनके निर्देशक भाग की भौतिक व्याख्या नहीं हो सकती। उस भाग का प्रेरक कारण तो आध्यात्मिक शक्ति को ही मानना पड़ेगा।

पहले मैं स्मृति और उपचेतना पर आश्रित स्वप्नों को लेता हूँ। स्मृतियों को

हम दो भागों में बाँट सकते हैं। (१) पूर्व जन्म की स्मृतियाँ, और (२) इस जन्म की स्मृतियाँ। जो लोग पुनर्जन्म को नहीं मानते, वे मेरे इस विभाजन को स्वीकार नहीं करेंगे, परन्तु यदि वे निष्पक्षपात रीति से गम्भीर विचार करेंगे तो उन्हें अनुभव हो जायगा कि स्वयं स्वप्न ही इस बात को सिद्ध कर देते हैं कि मनुष्य पूर्व जन्म की स्मृतियों को लेकर उत्पन्न होता है।

बच्चा सोते हुए कभी-कभी खिलखिला कर हँसता या अकारण रोता है। वह उस आयु में भी नींद में हँसने लगता है, जिसमें जागृत दशा में वह केवल मुस्कराना सीख रहा होता है। वह हँसी अथवा सोते-सोते अकस्मात् रोना, बच्चे की पूर्व जन्म की स्मृतियों का परिणाम होता है।

ज्यों ज्यों मनुष्य बड़ा होता जाता है, त्यों-त्यों जागृत दशा में उसकी पूर्व जन्म की स्मृतियाँ लुप्त होती जाती हैं। जागृत दशा में मनुष्य के मन पर नये जीवन के अनुभवों और उनकी स्मृतियों की इतनी भीड़ इकट्ठी हो जाती है कि पूर्व जन्म की स्मृतियाँ दूर धकेल दी जाती हैं, परन्तु स्वप्नावस्था में, बाहर के द्वार बन्द हो जाने के कारण मन के पटल पर पूर्व जन्म की स्मृतियों की छाया पड़ने लगती है और मनुष्य कुछ ऐसे दृश्य देखने लगता है, जिन्हें वर्त्तमान जीवन की पृष्ठभूमि पर रखकर समझना तक कठिन हो जाता है। हम अपने स्वप्नों पर बारीकी से ध्यान दें तो हमें प्रतीत होगा कि कुछ दृश्य ऐसे हैं, जो बार-बार हमारे सपनों में दिखाई देते हैं, यद्यपि वर्त्तमान जीवन में हमने उन्हें कभी नहीं देखा। वह किसी पर्वत की चोटी का दृश्य हो सकता है, या कि सुन्दर नगर का मनोहर चित्र हो सकता है। वह बार-बार सपनों में दिखाई देता है और उस समय ऐसा अनुभव होने लगता है, कि वह सब कुछ हमारा कई बार देखा हुआ है। मेरा विचार है कि उस प्रकार के दृश्यों को हम पूर्व जन्म की स्मृतियों का अवशिष्ट भाग मान सकते हैं।

इस जीवन की स्मृतियों के साथ स्वप्न में जो खिलवाड़ होती है उसे सभी लोग जानते हैं। बाल्यकाल से लेकर बड़ी आयु तक की स्मृतियों के टुकड़े मिलजुल कर कभी-कभी एक सम्बद्ध कथा, और प्रायः भानमती का तमाशा इकट्ठा कर देते हैं। तमाशा भी ऐसा कि जिसका न सिर न पैर। इन स्मृतियों में एक और वस्तु भी प्रायः मिश्रित हो जाती है और वह है अपूर्ण इच्छा। मनुष्य के मन में जितनी इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं, सब पूरी नहीं होतीं। बचपन से लेकर बुढ़ापे तक उसकी अनेक अभिलाषाएँ अपूर्ण रहती हैं। यह कहना अनुचित न होगा कि उसकी ९० फीसदी इच्छाएं अधूरी या अस्पष्ट ही रहती हैं। "मनोरथानामाप्तिर्न ने विद्यते।" मनोरथों का कोई अन्त नहीं है। मनुष्य का जीवन है छोटा, और शक्ति उससे भी छोटी, तब सब इच्छाएँ पूरी हों तो कैसे? परन्तु एक अद्भुत बात देखी जाती है कि जो अभिलाषा एक बार मन में

उत्पन्न हो गयी, फिर चाहे वह कैसी ही ऊँची, कैसी ही नीची, कैसी ही असम्भव और कैसी ही उपाहासास्पद क्यों न हो, मन के किसी कोने में दबी पड़ी रहती है। वह उपचेतना का भाग बन जाती है और अवसर पाते ही उभर उठने को तयार रहती है।

दृष्टान्त रूप में आप आकाश में उड़ने की अभिलाषा को ले लीजिए। प्रायः बचपन में, मनुष्य के हृदय में, आकाश में उड़ने की अभिलाषा उत्पन्न होती है। पूरी न होकर वह चित्त के किसी कोने में सोई रहती है। अवसर मिलते ही वह जाग उठती है। कभी मनुष्य झूले पर झूलना चाहता है, तो कभी मैरी गोराडण्ड पर। वह चाह आकाश में उड़ने की चाह का ही रूपान्तर होती है। वह तथा वैसी ही अन्य अपूर्ण इच्छाएँ भी अवसर पाकर स्वप्न के समय सक्रिय हो जाती हैं, और चलते हुए सपने में भाग कर घुस बैठती हैं। आकाश में चलता-चलता मन आकाश में उड़ने लगता है। मनुष्य कभी-कभी क्रोध में आकर सोच बैठता है कि यदि मौका मिले तो अमुक व्यक्ति को मार डालूँ। सम्भव है वह जागृत अवस्था में चींटी को भी न मार सके, परन्तु स्वप्न में बड़े-बड़े चोर डाकुओं और पहलवानों को मार डालता है। किसी व्यक्ति के मन में, किसी अन्य के प्रति अनुचित या असम्भव प्रेम की वासना उत्पन्न हो जाती है, और अपूर्ण होने के कारण हृदय के किसी कोने में लटकती रह जाती है। अवकाश पाते हो वह स्वप्न में मिश्रित होकर पूर्ण होने का प्रयत्न करती है। कभी-कभी हो भी जाती है। इस प्रकार पुरानी स्मृतियाँ और अपूर्ण इच्छाएँ मिलकर स्वप्नों में विविधता और रोचकता उत्पन्न कर देती हैं। भिन्न-भिन्न रसों का परिपाक भी इस मिश्रण का ही परिणाम होता है।

कुछ विचारकों का मत है कि शयनावस्था में मनुष्य की जैसी शारीरिक स्थिति होती है, उसका भी स्वप्नों पर प्रभाव पड़ता है। उनका विचार है कि नींद में मनुष्य के पाँव का तला आकाश में रहता है (भूमि पर लगा नहीं रहता), इस कारण वह आकाश में उड़ने के स्वप्न देखता है। जब कहीं दूर का प्रकाश हठात् बन्द आँखों पर प्रभाव डालता है तो आग लगने के स्वप्न दिखाई देने लगते हैं।

कुछ मनोवैज्ञानिकों की धारणा है कि स्वप्न में जो वस्तु दिखाई देती हैं, वह वस्तुतः किन्हीं अन्य वस्तुओं की प्रतीक अथवा प्रतिनिधि होती हैं। पशु, रोग के सूचक हैं। पशु हाथी हो, सूअर हो या सांड हो, वह किसी शारीरिक उत्पात को सूचित करता है। उन लोगों का यह भी विचार है कि साँप, छुरा, मछली और पक्षी पुरुष की लिंगेन्द्रिय के सूचक हैं। हरियाली, फलफूल, सफेद वस्तु, या चाँदी आदि को सुख और प्राप्ति का सूचक माना जा सकता है।

इस विचार परम्परा का अन्तिम छोर हमें निर्देशक स्वप्नों तक पहुंचा देता है। निर्देशक स्वप्नों से मेरा अभिप्राय उन स्वप्नों से है, जो किसी ऐसी वर्त्तमान घटना को,

जिससे हम सर्वथा अनभिज्ञ हैं, प्रत्यक्ष दिखला दें, अथवा भविष्य में होने वाली घटना की सूचना दे दें। ऐसे सपने चेतावनी के रूप में भी हो सकते हैं, और मार्गदर्शक के रूप में भी।

सम्भव है, भौतिक वाद के अनुयायी स्वप्नों की निर्देशकता पर विश्वास न करें परन्तु दूसरों के और अपने अनुभव के आधार पर मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि मनुष्य को परोक्ष की सूचना देने वाले स्वप्नों का अस्तित्व वास्तविक है। ऐसे स्वप्नों के विवरण और अनुभव प्रायः समाचार-पत्रों में प्रकाशित होते रहते हैं, उन्हें उद्धृत करके मैं कुछ अपने अनुभव लिखता हूं। इन अनुभवों ने मुझे निश्चय करा दिया है कि मनुष्य को चेतावनी देने तथा मार्ग प्रदर्शन कराने के लिए समय समय पर स्वप्न आया करते हैं। मनुष्य उन पर ध्यान दे या न दे, या उनका उपयोग करे या न करे यह उसकी मर्जी है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य से ऊंची कोई ऐसी शक्ति अवश्य है जो उसके कल्याण के लिये निर्देशक स्वप्नों द्वारा उसे सावधान करती रहती है।

निर्देशक स्वप्नों की दो विशेषताएँ हैं। एक तो वह प्रायः प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में (३ और ५ बजे के मध्य में) आते हैं, और उनके पश्चात जाग जाने पर फिर नींद नहीं आती, वही स्वप्न मन में घूमते रहते हैं।

में स्वयं अनुभूत सपनों के कुछ दृष्टान्त यहां देता हूं।

यह लगभग ३५ वर्षों की बात है। उन दिनों मैं गुरुकुल-काँगड़ी में उपाध्याय का कार्य करता था। १८१९ में दिल्ली में सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ होने के समय में सत्याग्रह समिति का सदस्य चुना गया था, परन्तु सत्याग्रह के स्थगित होने पर गुरुकुल चला गया था। जब आन्दोलन फिर से गरम हुआ तो मेरे हृदय में यह भावना उत्पन्न हुई कि मुझे शिक्षण कार्य छोड़ कर सत्याग्रह-संग्राम में भाग लेना चाहिए। गुरुकुल के अधिकारी मुझे छोड़ना नहीं चाहते थे। मैं दुविधा में पड़ गया। एक ओर हृदय की पुकार, दूसरी ओर गुरुजनों का आग्रह। निश्चय करना कठिन हो रहा था। तब एक दिन ब्राह्ममुहूर्त में स्वप्न आया कि मैं एक खुले मैदान में खड़ा हूँ। पूर्व दिशा से एक काला बादल उठा, जो सारे अन्तरिक्ष में छा गया। कुछ समय पश्चात् उसमें से घड़घड़ाहट की ध्वनि सुनाई दी, जिसने मेरा ध्यान उधर खींच दिया। क्या देखता हूँ कि उसमें एक प्रकाश का गोला सा उत्पन्न हुआ जो चक्राकार होकर फैलता-फैलता एक विशाल तेजपुंज बन गया। उस तेज के पुंज के केन्द्र में से गम्भीर ध्वनि सुनाई दी—"अधिक विचार मत करो! बाहर जाकर राजनीति में भाग लो" इस वाक्य के पूर्ण होने पर ध्वनि शान्त हो गई, और तेज का पुंज भी विलुप्त हो गया।

तब सपना टूट गया। मेरे लिये वह वाक्य निर्णायक बन गया। मन में संशय शेष न रहा। मैं गुरुकुल छोड़कर दिल्ली चला आया और राजनीति में पड़ गया।

दूसरी घटना कई वर्ष पीछे की है। वीर अर्जुन की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिए एक रोटरी प्रिन्टिग मशीन खरीदी गयी, जो विलायत से आकर प्रेस में फिट हो गयी। यह काम तो हो गया, परन्तु उसे चलाने के लिए जितनी बिजली चाहिए थी, उसका मिलना कठिन हो गया। जिससे बात करें, वही मुँह फैलाता था। जब मैं मुँह में कुछ डालने को तैयार न हुआ तो बिजली के कार्यालय में ऐसा अड़गा लगाया गया कि नौ महीने तक बिजली का मामला ही तय न हुआ। केन्द्रीय सरकार के मन्त्री से लेकर दिल्ली के चीफ कमिश्नर की सिफारिशें होने पर भी बिजली का स्वीकृति-पत्र प्राप्त न हुआ। तब मैं सोचने लगा कि इस प्रकार बिजली की भीख मांगने से तो रोटरी मशीन को बेच देना अच्छा है। जिन दिनों मशीन को बेचा जाय या नहीं, यह प्रश्न मेरे मन में चक्कर काट रहा था, एक रात्रि के अन्तिम प्रहर में सपना आया कि मैं किसी लम्बे रास्ते पर चला जा रहा हूँ, अकस्मात् मेरे सामने ऐसा स्थान आ गया, जहाँ दो रास्ते फूटते थे। एक रास्ता पहाड़ पर से होकर जाता था, और दूसरा मैदान में से होकर। मैंने थोड़ी देर ठहर कर सोचा कि किधर से जाना चाहिए? निश्चय किया कि आसान रास्ते से जाना चाहिए, और मैदान के रास्ते से चल पड़ा। थोड़ी दूर जाकर देखा कि वह रास्ता बन्द है, आगे दीवार आ गयी है। तब मैं पीछे लौटा और पहाड़ी के रास्ते से जाने लगा। चढ़ाई सख्त थी। बहुत सी चढ़ाई चढ़ जाने पर थकान अनुभव होने लगी। तब विचारने लगा कि वापिस लौट जाऊं। इतने में चोटी पर से शब्द सुनाई दिया।

"अब चोटी पास ही है। ऊपर चले जाओ, नीचे मत उतरो" और मेरी नींद खुल गयी। प्रातःकाल के लगभग ४ बजे थे। मेरे मन से निराशा निकल गयी और मैंने बिजली के लिए काम फिर से चालू कर दिया। लगभग दो सप्ताह में बिजली का कनेक्शन प्राप्त हो गया।

कुछ सपने अप्रिय सूचक होते हैं। उनके दो प्रकार हैं। एक मानसिक कठिनाई के सूचक, और दूसरे शारीरिक अस्वस्थता के सूचक। आने वाली कठिनाई के सूचक स्वप्न कुछ इस प्रकार के होते हैं—हम रेल की यात्रा कर रहे हैं। रास्ते में कि स्टेशन पर गाड़ी बदलने के लिए उतरते हैं। सामान प्लेटफार्म पर रख कर दूस गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहे हैं। प्लेटफार्म पर अँधेरा है। हम गाड़ी की प्रतीक्षा ए प्लेटफार्म पर करते रहे, गाड़ी दूसरे प्लेटफार्म पर से चली गयी, अथवा सामान गाड़ी में रखा गया, और हम रह गये। कभी-कभी टिकटघर की तलाश में ही गा निकल गयी।

कुछ स्वप्न इस प्रकार के होते हैं कि हम जिस रास्ते पर आ रहे हैं, वह आगे रुक गया है। या तो आगे दीवार आ जाती है अथवा ऐसी सीढ़ियाँ आ जाती हैं, जिनमें से निकलने का मार्ग नहीं मिलता।

शारीरिक रोग की सूचना देने वाले स्वप्नों का जितना मुझे अनुभव है वह पशु पक्षियों के रूप में है। मैं जा रहा हूँ, सामने से एक मरखना बैल मुझ पर सींगों से प्रहार करता है। अथवा दो जंगली सूअर दो ओर से आक्रमण करते हैं। दो तीन बार हाथी या शेर द्वारा आक्रमण के भी स्वप्न आये हैं। एक बार मुझे स्वप्न आया कि मैं गंगा के किनारे पर गोल पत्थरों के चबूतरे पर बैठा हुआ हूँ। चबूतरे के नीचे से रेल निकल जाती है, और मैं पानी में गिर जाता हूं। ऐसे सब स्वप्नों के पश्चात् मुझ पर या परिवार के अन्य किसी प्राणी पर रोग का आक्रमण हुआ है। एक बार मुझे सपना आया कि घर के एक बच्चे को बन्दर लिपट गया। उसके पश्चात् कई दिनों तक वह बच्चा बीमार रहा।

एक बार परिवार के एक व्यक्ति के विषय में यह स्वप्न आया कि उसे दूसरे व्यक्ति ने पानी में धक्का दे दिया है, और वह डूब गया है। कुछ महीनों के पश्चात् उसका देहान्त हो गया। घर में या पास के जंगल में आग लगने का परिणाम भी अच्छा नहीं होता।

अब कुछ प्रियसूचक सपनों के भी उदाहरण लीजिए। एक बार मैं बहुत रोगी हो गया। रोग के दिनों में मुझे ऐसे स्वप्न आया करते थे कि किसी पशु ने रास्ता रोक लिया या आक्रमण किया। लगभग आठ मास तक रोगी रहने के पश्चात् एक प्रातः काल स्वप्न आया कि एक बहुत बड़ा और तेज घोड़ा मेरे पास से गुजर कर दूर तक भागता चला गया और अन्त में थक कर भूमि पर गिर कर मर गया। उसके बाद एक सप्ताह भर में मेरा रोग बिदा होने लगा। रोग से सर्वथा मुक्त होने में तो समय लगा पर रोग में मोड़ उसी समय आ गया।

एक और मनोरंजक दृष्टान्त लीजिए। यह स्वप्न तब आया जब मैं अपनी पुत्री के विवाह की चिन्ता में था। बेटी के लिए योग्य वर मिलने की कितनी चिन्ता होती है, यह बेटियों के बाप ही जानते हैं। कई नाम सामने थे। निश्चय करना कठिन हो रहा था। एक रात को सपना आया कि मैं अपने परिवार के साथ एक नौका पर बैठ कर नदी के पार जाना चाहता हूँ। माँझी किनारे पर पहुँचने का बहुत यत्न कर रहे हैं, परन्तु नौका घाट से पार ही नहीं होती। अन्त में एक लम्बे कद का व्यक्ति पानी में दिखाई दिया। वह धकेल कर नौका को किनारे पर लगा देता है। किनारे पर पहुँच कर हम लोग भूमि पर उतर जाते हैं। जहाँ हम उतरे हैं, वहाँ हरा-भरा जंगल

है, परन्तु जरा अन्दर जाने पर आबादी के चिह्न प्रकट होने लगते हैं; और देखते-देखते एक सुन्दर शहर बस जाता है । उस नगर के एक उत्तम से घर में हम रहने लगते हैं ।

इस स्वप्न के पश्चात् मैं दो तीन दिन में ही निश्चय पर पहुंच गया । किश्ती किनारे लग गयी, और थोड़े ही दिनों में मैं गृहस्थ के कन्या के विवाह रूपी परम कर्त्तव्य से मुक्त हो गया ।

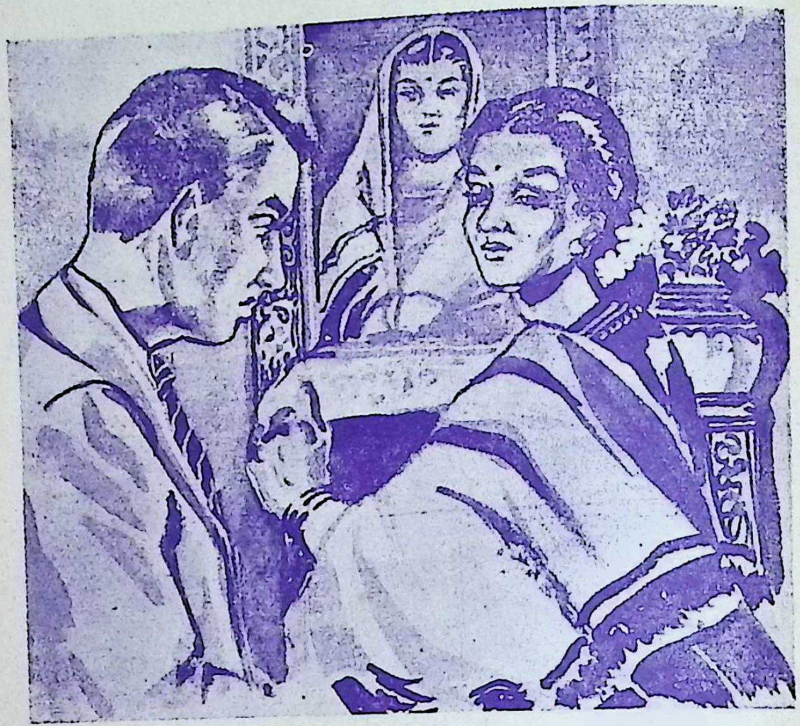

सुमित्रा ने देखा प्रफुल्ल अपनी पत्नी के चित्र के समक्ष पहुँचकर न केवल अत्यन्त गंभीर हो उठा, प्रत्युत उसकी आँखें भी सहसा गीली हो उठी।

ज्वार भाटा

— श्री देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'

हवा से बातें करती—सनसनाती हुई कार कुछ ही मिनटों में प्रफुल्ल की हवेली में जा पहुँची। कार के रुकते ही प्रतीक्षारत प्रफुल्ल ने स्वयं हवेली के बाहरी बरामदे से बाहर आकर सुमित्रा का स्वागत किया। सुमित्रा चुपचाप प्रफुल्ल का अनुसरण करते हुए एक बड़े कमरे में जा पहुँची।

कमरा काफी लम्बा-चौड़ा और आधुनिक रुचि का प्रतिबिम्ब था। बीचोंबीच संगमर्मर की चमचमाती एक नेत्ररंजक मेज पड़ी थी, जिसके चारों ओर एक-एक कुर्सी मानो किसी आगन्तुक को आसी करने की प्रतीक्षा में ललक रही थी। इ मेज के निकट पहुँचते ही प्रफुल्ल ने कहा—"बैठिए सुमित्राजी! मैं अभी आ रहा हूँ तब तक आप मेरी इन बहनों से बा कीजिए।" और मुसकराता हुआ प्रफुल्ल उस कमरे से बाहर चला गया।

उस संगमर्मर की मेज के सामने पड़ी एक कुर्सी पर बैठकर सुमित्रा उस कमरे को एक सरसरी दृष्टि से देखने लगी। कमरे की दीवारें हल्के नीले रंग से रँगी हुई थीं। बीच-बीच में काफी अन्तर पर कुछ तैलचित्र इन दीवारों की शोभा में चार चाँद लगा रहे थे। चित्रों को देखकर सुमित्रा को लगा कि प्राकृतिक सौन्दर्य की पूजा करनेवाले प्रफुल्लजी भारतीय विभूतियों के भी भक्त हैं।

दीवारों पर लटकते चित्रों से हटकर सुमित्रा की दृष्टि अब कमरे के फर्श पर रखी वस्तुओं पर दौड़ने लगी। प्रत्येक द्वार पर तरह-तरह की धातुओं के नेत्ररंजक दो-दो पात्र सुन्दर तिपाइयों पर रखे हुए थे। कहीं-कहीं पुष्पित पौधे भी मुसकरा रहे थे और अपनी भीनी-भीनी सुगन्ध से उस कमरे के वातावरण में एक मस्ती घोल रहे थे।

उत्तर की ओर जो दीवार थी, उसके बीचोंबीच नीचे फर्श पर अत्यन्त सुन्दर शीशम की एक मेज रखी थी, जिस पर श्वेत खादी का दूध-सा मेजपोश फैला हुआ था। इसी मेज पर किसी तरुणी का एक अत्यन्त नयनाभिराम चित्र देखकर सुमित्रा क्षण-भर के लिए ठगी-सी रह गयी! मन-ही-मन उसने अनुमान किया कि यह चित्र प्रफुल्लजी की पत्नी का होगा। परन्तु उसकी जिज्ञासा बाँध तोड़ रही थी। एक बार उसने कमरे में चारों तरफ दृष्टि फेंककर देखा कि प्रफुल्लजी वहाँ कहीं नहीं हैं। उसने आश्वस्त होकर कजला से प्रश्न किया—"कजला, यह चित्र किसका है?"

कजला ने गम्भीर होते हुए कहा—"वह मेरी भाभी का चित्र है, आचार्याजी।"

"तुम्हारी भाभी का!" सुमित्रा ने मन-ही-मन जो अनुमान कर रखा था, उसकी सत्यता पर जाने क्यों सहसा चौंकते हुए उसने कहा—"चलो, तनिक निकट से देख लूं उन्हें।"

लेखक

"अवश्य देखिए, सुमित्राजी!" सहसा प्रफुल्ल ने उस कमरे में आकर कहा और स्वयं उस चित्र की ओर चल पड़ा।

सुमित्रा एक अप्रकट संकोच और लज्जा से भर उठी। क्या सोचते होंगे प्रफुल्लजी! कहते होंगे, दूसरे की पत्नी को देखने की इतनी उत्सुकता क्यों? लेकिन दूसरे ही क्षण सुमित्रा ने स्वीकार किया कि प्रफुल्लजी यह अवश्य समझते होंगे कि नारी की यह उत्कण्ठा सर्वथा स्वभाविक होती है। राजमार्ग पर जाती हुई किसी बारात का दृश्य अथवा नव-वधू की एक झाँकी देख लेने के लिए नारियाँ

अपने हाथ का काम छोड़कर, घर-द्वार से बाहर निकल पड़ती हैं। फिर, मैं तो इतनी निकट आ चुकी हूँ। भला, मैं कैसे अपनी उत्सुकता दबा सकती हूँ।

दो-चार पग ही सुमित्रा ने उस चित्र की ओर बढ़ाये होंगे कि वह सहसा ठिठक कर खड़ी हो गयी। किसी अप्रत्याशित-सी दुर्घटना से मानो वह आहत हो उठी। तो प्रफुल्ल को लेकर उसने अब तक जो हवाई महल तैयार किये थे, जिन सुनहरी किरणों की झाँकी देखने की उसने आशा बाँध रखी थी, वह सब मृगजल था क्या ?

सुमित्रा को लगा, वह सचमुच अभागिन है। उसके पिता की अन्तिम इच्छा शायद ही कभी पूरी हो। इस प्रफुल्ल को लेकर अब तक उसने जो ताना-बाना बुना है वह सब उसे टूटता-सा प्रतीत हुआ। जब प्रफुल्लजी की पत्नी इस दुनियाँ में है, तब यह कैसे हो सकता है कि किसी अन्य नारी को इस गृह में……! और, सम्भव भी हो, तो स्वयं सुमित्रा इसे कदापि पसन्द न करेगी।

तभी सुमित्रा की चिन्ता-धारा में सहसा एक अवरोध उत्पन्न हो गया। उसने देखा, प्रफुल्लजी अपनी पत्नी के समक्ष पहुँच कर न केवल अत्यन्त गम्भीर हो उठे हैं, प्रत्युत उनकी आँखें भी सहसा गीली हो उठी हैं। मौन-मूक श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए प्रफुल्ल ने ओठों ही ओठों में कुछ कहा, लेकिन सुमित्रा कुछ सुन-समझ न सकी।

सुमित्रा अपनी विचार-धारा से छिटककर मानो बहुत दूर जा पड़ी। उसने सहानुभूति के स्वर में कहा—"आप इतने गम्भीर क्यों हो उठे, प्रफुल्लजी ?"

"भाभी का स्मरण आ जाने पर, दादा ऐसे ही गम्भीर हो उठते हैं, आचार्याजी !" यह कजला का स्वर था।

"मेरी भाभी बड़ी अच्छी थीं।" यह रेणुका की अभिव्यक्ति थी।

"ओह !" सुमित्रा ने कुछ भरे गले से कहा—"तो इस घर की शोभा अब इस दुनियाँ में नहीं रही ?"

"नहीं सुमित्राजी !" प्रफुल्ल ने अवरुद्ध कण्ठ से कहा—"शैल हम सबको छोड़ किसी दूसरी दुनियाँ में चली गयी। ईश्वरेच्छा !"

"वास्तव में ईश्वरेच्छा के आगे मानव का कोई वश नहीं चलता।" सुमित्रा ने कहा—"यही समझकर अन्त में हमें सन्तोष करना पड़ता है। हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश विधि हाथ।" और सुमित्रा के मन में जहाँ प्रफुल्ल की पत्नी का निधन-समाचार सुन प्रफुल्ल के प्रति एक सहानुभूति का स्रोत उमड़ पड़ा, वहीं उसके मन की वह शंका-चिन्ता भी तिरोहित हो गयी, जो कभी भी कुछ क्षण पूर्व उसके मानस में उद्वेलित हो उठी थी। "प्रफुल्ल की पत्नी जब इस दुनियाँ में है तब ……!" तो उसने जो ताना-बाना बुन रखा है, वह मृगजल

नहीं है। जिन सुनहरी किरणों को देखने को उसने आशा बाँध रखी है, वह कौशल के साथ पग बढ़ाने पर सत्य भी हो सकती है।

"हाँ, सुमित्राजी !" प्रफुल्ल ने कहा—"ईश्वर का अस्तित्व ऐसे ही स्थलों पर आकर मानव को स्वीकार करना पड़ता है। आज के वैज्ञानिक युग में मानव ने जाने किन-किन रहस्यों का पता लगा लिया है और समुद्र के अगम तल से लेकर हिमालय की चोटी तक वह पहुँच चुका है, बल्कि चन्द्र-मंगल आदि ग्रहों में भी पहुँचने के प्रयत्न में वह सफलता का छोर छू रहा है, परन्तु मृत्यु पर विजय प्राप्त करने में उसे तनिक भी सफलता नहीं मिल सकी।" फिर एक क्षण रुक कर उसने यह प्रसंग बदलते हुए कहा—"अच्छा चलिए, चाय पिएँ हम लोग।" और घूम कर वह संगमर्मर की मेज की ओर चल पड़ा।

सुमित्रा भी कजला और रेणुका के साथ, कमरे के बीचोंबीच पड़ी उस संगमर्मर की मेज की ओर बढ़ गयी, जिस पर इस बीच प्रफुल्ल के नौकरों ने बंगाली मिठाइयों और नमकीन खाद्य सामग्री की तश्तरियाँ सजाकर रख छोड़ी थीं। फलों और चाय की भी व्यवस्था थी।

मेज के निकट पहुँच कर सुमित्रा ने कहा—"ओह ! आपने तो मुझे चाय पिलाने के बहाने पूरा भोजन कराने की ही व्यवस्था कर रखी है।"

संकेत से सुमित्रा को कुर्सी पर बैठने की व्यावहारिकता दिखलाते हुए और स्वयं मेज की दूसरी ओर एक कुर्सी पर बैठ कर प्रफुल्ल ने कहा—"भोजन तो इसे आप किसी भी दशा में नहीं कह सकतीं, सुमित्राजी ! है तो यह चाय-पान ही।"

"तो किसी दूसरे दिन हमारी आचार्याजी को भोजन का भी निमन्त्रण दे दिया जाय, दादा ?" कजला ने प्रश्नसूचक दृष्टि से प्रफुल्ल की ओर देखते हुए कहा।

"तुम्हारी आचार्याजी स्वीकार करें, तब न ?" प्रफुल्ल ने सुमित्रा की ओर मुस्कराते हुए देखकर कहा।

"जिसे आप चाय-पान अथवा जलपान कह रहे हैं, उसे तो मैं भोजन समझ रही हूँ।" सुमित्रा ने भी मुस्कराते हुए कह दिया।

"इसका अर्थ यही हुआ कि कजला का अनुरोध आप अस्वीकार कर रही हैं।" प्रफुल्ल ने कहा—"अच्छा, चाय-नाश्ता शुरू कीजिए। यह बातचीत तो चलती ही रहेगी।"

सुमित्रा ने चाय-पान प्रारम्भ करते हुए कहा—"आप लोगों का निमन्त्रण जिस आत्मीयता से भरा हुआ मुझे मिला और मिल रहा है, उसे अस्वीकार करने की धृष्टता मैं स्वप्न में भी नहीं कर सकती। परन्तु इस प्रकार घने घने निमंत्रण··· ।"

"दुनियाँ की नजरों में उचित प्रतीत नहीं होते ।" प्रफुल्ल ने सुमित्रा को बीच में ही टोकते हुए कह दिया ।

सिर हिलाते हुए सुमित्रा ने मानो कह दिया कि हाँ, यही बात है ।

"परन्तु दुनिया की नजरों और आलोचनाओं का हमें वहीं तक ध्यान रखना चाहिए सुमित्राजी, जहाँ तक हमारा अहित होने की सम्भावना न हो ।" प्रफुल्ल का दार्शनिक मुखर हो उठा—"मैं इस बात का कायल नहीं कि दुनियाँ की नजरों का ख्याल रख कर हम स्वयं अपना अहित कर बैठें । हो सकता है, आप यह तर्क कर बैठें कि हम लोगों का आमन्त्रण-निमन्त्रण अस्वीकार कर देने से आपका आखिर क्या अहित हो सकता है ?"

"लेकिन मैंने तो यह तर्क किया नहीं, प्रफुल्लजी ।" सुमित्रा ने कह दिया ।

"मैंने भी यह नहीं कहा सुमित्राजी, कि आप यह तर्क कर रही हैं । मेरे शब्दों पर तनिक ध्यान दीजिए । मैंने तो सम्भावना ही दर्शायी है । हाँ, तो मैं कह रहा था कि आप सहर्ष हम लोगों का आमन्त्रण अस्वीकार कर सकती हैं, परन्तु दुनियाँ की नजरों के ख्याल से अथवा भय से ऐसा न कीजिए । हाँ आपकी अन्तरात्मा ऐसा करना चाहे तो आप निःसंकोच ऐसा कर सकती हैं । मैं आत्मा को ही सर्वोपरि समझता हूँ । आत्मा अक्षय है, सुमित्राजी ! आत्मा का अस्तित्व हमारा शरीरान्त हो जाने पर भी बना रहता है । शैल का निधन हो जाने पर मैंने परलोकवाद का थोड़ा-बहुत जो अध्ययन किया है, उससे आत्मा के अक्षय रहने के सम्बन्ध में मेरे विचार और भी दृढ़ हो गये हैं ।"

"आत्मा!" सुमित्रा ने कुछ अवरुद्ध गले से कहा—"मैं भी यही मानती हूँ कि आत्मा अक्षय है । और इसलिए हमें दिवंगत आत्मा की इच्छा-अनिच्छा तथा सन्तोष का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए ।"

सुमित्रा को अपने दिवंगत पिता की अन्तिम और अधूरी इच्छा का सहसा ध्यान आ गया—"दुनियाँ में जब तक तुझे दुनियादारी के सभी उपकरणों और सुखों के बीच में न देख लूँगा, तब तक मेरी आत्मा को सन्तोष न मिल सकेगा ।" और अपने पिता की इस अन्तिम इच्छा की पूर्त्ति के लिए ही सुमित्रा इस प्रफुल्ल की ओर इतनी आकर्षित हो उठी है । उसके इस आकर्षण का रहस्य उसकी अपनी अन्तरात्मा के अतिरिक्त अन्य कोई क्या समझ सकता है ? समझ ही कैसे सकता है ?

प्रफुल्ल भी सुमित्रा की इस बात का रहस्य नहीं समझ सका । उसने केवल यही समझा कि आत्मा के अक्षय रहने की जो बात उसने कही है, उसका समर्थन-मात्र कर रही है सुमित्रा । इसीलिए प्रफुल्ल ने कहा "हाँ, सुमित्राजी, दिवंगत आत्मा की इच्छा-अनिच्छा और सन्तोष का हमें पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए ।"

परन्तु यह क्या ? प्रफुल्ल ने आँख उठा कर सुमित्रा के मुख की ओर देखा, तो पाया कि उसकी बड़ी-बड़ी आँखों की काली-काली पुतलियाँ अश्रु-मोतियों की माला पिरो रही हैं।

"क्या बात है, सुमित्राजी ?" प्रफुल्ल ने आश्चर्य एवं करुणा से भरकर पूछा—"आपकी आँखें सजल क्यों हो उठीं ?"

सुमित्रा ने रूमाल से अपनी गीली आँखें पोंछ लीं, फिर कुछ प्रकृतिस्थ होने की चेष्टा करते हुए कहा—"कुछ नहीं, प्रफुल्लजी ! मानव के मानस में कब कैसा ज्वार-भाटा आ जाता है, इसे सदा शब्दों द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता।" और उसने कजला तथा रेणुका की ओर अपनी दृष्टि फेंकी।

प्रफुल्ल शायद सुमित्रा का मनोभाव समझ गया, इसीलिए उसने कहा—"कजला, तुम रेणुका के साथ अब अपने कमरे में जाओ। मैं अभी तुम्हारी आचार्याजी के साथ वहाँ आऊँगा।"

"जी, अच्छा !" कहकर कजला खड़ी हो गयी और रेणुका के साथ उस कमरे से बाहर चली गयी।

"यह आपने ठीक नहीं किया।" सुमित्रा ने कहा—"कजला और रेणुका को यहाँ से चले जाने का आदेश देने की आवश्यकता ही क्या थी ?"

"यह आप स्वयं अपनी आत्मा से पूछ देखिए।" प्रफुल्ल ने एक सिगरेट सुलगाते हुए कहा।

"तो यह कहिए कि परलोकवाद का अध्ययन करके आप दूसरों के मन की बात भी समझने लगे हैं ?"

"कुछ-कुछ।" प्रफुल्ल ने कहा—"अच्छा, सुमित्राजी, क्या मैं जान सकता हूँ कि आपके मानस में अभी चन्द मिनटों पहले कौन-सा ज्वार-भाटा आया था ?"

"क्या करेंगे यह सब जानकर ?"

"कुछ कर सकूंगा या नहीं, यह निश्चय तो तभी किया जा सकेगा न, जब मैं आपकी बात अच्छी तरह सुन-समझ लूंगा।"

"आप शायद मेरी कहानी पहले ही सुन चुके होंगे।" सुमित्रा ने गम्भीर होते हुए कहा—"मेरा अब तक का जीवन एक ज्वारभाटा ही है।"

"हाँ, यह मुझे मालूम हो चुका है कि आप कुमारी हैं और दुर्दिन की मारी हैं। भारत-विभाजन के समय पंजाब से दिल्ली आने के सिलसिले में आप अपने पिताजी को भी खो चुकी हैं। लेकिन मैं आपसे यही कहना चाहता हूँ कि अब वीतराग बनने की आवश्यकता नहीं है। जीवन-संग्राम के घात-प्रतिघातों से विचलित हो जाना अपने अस्तित्व को मिटा देना ही समझिए। जो हो चुका, उसे धीरे-धीरे भूलने की चेष्टा

करना और सुखी जीवन का रहस्य समझ लेने की दिशा में प्रवृत्त होना ही बुद्धिमानी है।"

"यह कैसे हो सकता है, प्रफुल्लजी ?"

"हो सकता है, सुमित्राजी ! यदि मैं गलत नहीं समझ सका हूँ, तो कह सकता हूँ कि दिवंगत आत्मा की इच्छा-अनिच्छा की बात छिड़ते ही आप बहुत गम्भीर हो उठी थीं। इसका अर्थ यही है कि आपके पिता की कोई इच्छा अधूरी रह गयी है।"

सुमित्रा ने आश्चर्य से भरकर आँखें फैलाकर प्रफुल्ल की ओर देखा। उसे इस तरुण की असाधारण बुद्धि पर ईर्ष्या हो उठी। आखिर यह कैसे समझ गया कि सुमित्रा सचमुच अपने पिता की अन्तिम और अधूरी इच्छा को लेकर ही आजकल परेशान है। तो क्या प्रफुल्ल यह भी समझ गया होगा कि सुमित्रा अपने पिता की अन्तिम इच्छा को पूरा करने के लिए ही प्रफुल्ल की ओर······? नहीं-नहीं, यह असम्भव है। पिता की अन्तिम इच्छा अधूरी रह जाने का आभास पा जाना तो सम्भाषण के सिलसिले में ही सम्भव हो सका है। परन्तु मेरे मन के अन्तराल का गोपनीय निश्चय समझ सकना आसान नहीं।

सुमित्रा को इस प्रकार मौन-मूक देख, प्रफुल्ल ने कहा—"क्या मैं जान सकता हूँ सुमित्राजी, आपके पिता की अन्तिम इच्छा क्या थी ?"

सुमित्रा के अन्तर की नारी गहरे संकोच से भर उठी। नारी की जन्मजात लज्जा एक पुरुष के समक्ष निरावरण होने का दुस्साहस कैसे कर सकती थी ? उसने चतुराई से काम लेते हुए कहा—"ये सब व्यक्तिगत बातें हैं, प्रफुल्लजी ! इनकी गहराई में जाना·······।"

"सबके लिए उचित नहीं।" प्रफुल्ल ने अधीरता के साथ सुमित्रा की बात पूरी होने के पहले ही कह दिया—"सबको इसका अधिकार भी नहीं शायद। यही आप कहना चाहती हैं न, सुमित्राजी ?"

"पूरी बात सुने बिना ही आप मुझे गलत समझने की चेष्टा न किया करें, तो मुझे हार्दिक प्रसन्नता होगी।" सुमित्रा ने अपनी बात पूरी करते हुए कहा—"मैं यह कह रही थी कि व्यक्तिगत बातों की गहराई में जाना अपने-आपको व्यर्थ परेशान करना है।"

"तो यह कहिए कि आप मुझे परेशान नहीं करना चाहतीं ?"

"कभी नहीं।"

"अर्थात् आप अपने सुख-दुख से मुझे बहुत दूर रखना चाहती हैं ?"

"यह भी नहीं।"

"तब यह कहिए कि आप जिस रोग से पीड़ित हैं, जिस चिन्ता से अभिभूत हैं, उसका कोई उपचार भी नहीं करना चाहतीं ?"

"ऊँहुँ !" सुमित्रा ने सिर हिला, मुस्कराते हुए कह दिया।

"यह भी नहीं, वह भी नहीं, तब आखिर बात क्या है ?" प्रफुल्ल ने कुछ खीझते हुए कहा—"सुना था, नारी एक पहेली होती है। पुरुष उसकी गहराई तक कभी पहुँच नहीं सकता। परन्तु इस तथ्य को कभी प्रत्यक्ष नहीं देखा था। आज यह भी देख लिया।"

सुमित्रा अपनी इस अप्रत्याशित विजय पर गर्व का अनुभव करने लगी। उस पुरुष को, जिसे सुमित्रा मन-ही-मन अपनी आराधना के आसन पर आसीन करने का निश्चय कर चुकी है, इस प्रकार वाग्जाल में फँसते देख, वह एक अव्यक्त प्रसन्नता से भर उठी। उसे लगा कि जब प्रफुल्ल इतनी आत्मीयता से उसके सुख-दुख की बात पूछ रहा है, तब उससे कोई दुराव रखना उचित न होगा। तो क्या वह अपने पिता की अन्तिम इच्छा इस प्रफुल्ल को बतला दे ? आखिर हानि क्या है बतला देने में ? उसने निश्चय कर लिया कि यह बात वह बतला अवश्य देगी; किन्तु अभी नहीं। क्यों न वह प्रफुल्ल को स्वयं अपने निवास-स्थान पर चाय पीने के लिए आमन्त्रित करे और वहीं यह बात बतलायी जाय ? तभी सुमित्रा ने कहा—"आप मुझे फिर गलत समझ रहे हैं, प्रफुल्लजी ! नारी गम्भीर होती होगी, परन्तु यह सुमित्रा अभी पूरी नारी नहीं है—अधूरी नारी है। इस दशा में नारी की गहराई मुझ में कहाँ हो सकती है ?"

"अधूरी नारी।" प्रफुल्ल ने दोहराते हुए कहा—"ओह। आपका आशय यह है कि जब तक आप कुमारी हैं, आपको नारी नहीं कहा जा सकता ?"

सुमित्रा कुछ न बोलते हुए भी सिर हिलाकर मानो कह बैठी कि हाँ, यही बात है।

"लेकिन यह तो आपके हाथ की बात है।" प्रफुल्ल ने मुसकराते हुए कहा—"आप जब चाहें, पूरी नारी हो सकती हैं।"

सुमित्रा के गालों पर जो स्वाभाविक लालिमा दमक रही थी, वह बहुत गहरी हो उठी। उसने गम्भीर वाणी में कहा—"जिस परिणय को आप इतना सरल समझते हैं—आप ही नहीं, आम तौर पर सारा पुरुष-वर्ग एक खेल समझता है, वह नारी के लिए खेल नहीं, बल्कि जीवन-मरण का सौदा होता है, प्रफुल्लजी!"

"मैं इसे कब अस्वीकार करता हूँ, सुमित्राजी ?"

"तब आप कैसे कह रहे हैं कि मैं जब चाहूँ, पूरी नारी हो सकती हूँ ?"

"इसलिए कि आप साधारण नारी से बहुत ऊँचे स्तर पर हैं। आप एक महिला-विद्यालय की आचार्या हैं। दुनियाँ के अनेक संघर्षों का सामना आप कर चुकी

हैं। इस दशा में या तो आप किसी पुरुष को अपना जीवन-साथी बनाने का निश्चय कर ही चुकी होंगी या अब कर सकती हैं।"

सुमित्रा को फिर एक बार लगा कि प्रफुल्ल सम्भवतः उसके आकर्षण को बहुत-कुछ भाँप चुका है। यदि यह बात न होती, तो साधारण सम्भाषण के सिलसिले में न तो इतनी आत्मीयता ही प्रकट कर सकता, न उसके पिता की अन्तिम इच्छा जानने का गहरा आग्रह कर सकता और न इस प्रकार अन्त में परिणय की बात उठा सकता। सुमित्रा को बड़ा मायावी प्रतीत हुआ यह प्रफुल्ल !

सुमित्रा के इस मौन को भंग करते हुए प्रफुल्ल ने कहा—"अच्छा सुमित्राजी, इस प्रसंग को बदल देना ही अब ठीक होगा। आप तो खुलकर बात भी नहीं कर रही हैं ?"

"हाँ, मैं भी यही चाहती हूँ।" सुमित्रा ने कुर्सी से खड़े होते हुए कहा—"एक अनुरोध करना चाहती हूँ। कल रात्रि में आठ बजे आप मेरे निवास-स्थान पर आकर चाय पीने की कृपा कीजिए।"

"एक शर्त पर आ सकूंगा।"

"वह क्या ?" सुमित्रा ने उत्सुकता से पूछा।

"यदि आप अपने पिता जी की अन्तिम इच्छा मुझे बतला दें ?"

"बतला दूँगी।" सुमित्रा ने कहा—"अच्छा, कजला और रेणुका का कमरा कहाँ है ? आपने कहा था न मुझे लेकर आप वहां चलेंगे ?"

"अरे ! मैं यह भूल ही गया।" प्रफुल्ल ने आगे-आगे पग बढ़ाते हुए कहा—"अवश्य चलिए।"

कजला और रेणुका के कमरे में पहुँचकर सुमित्रा उनसे बातें करने लगी, तो प्रफुल्ल ने कहा—"मैं तब तक ड्राइवर से तैयार रहने को कह दूँ।"

"हाँ, मैं अभी पाँच-सात मिनट यहाँ बैठूँगी।"

प्रफुल्ल ने जाकर ड्राइवर को आदेश दिया कि आचार्या सुमित्राजी को गांधी महिला-विद्यालय के छात्रावास में उनके निवास-स्थान पर वह छोड़ आवे।

ड्राइवर तत्काल मोटरखाने से कार लाने चला गया।

जब तक ड्राइवर कार लाया, सुमित्रा भी कजला और रेणुका के कमरे से बाहरी बरामदे में आ चुकी थी। उसने कार तैयार देख, प्रफुल्ल को दोनों हाथ जोड़ अभिवादन करते हुए कहा—"अब आज्ञा दीजिए।"

"आज्ञा न दूं, तो क्या आप रुक सकेंगी ?"

"शायद रुकना पड़े।" मुसकराते हुए सुमित्रा ने कहा।

"नहीं, दुनियाँ की नजरों का और व्यावहारिकता का ख्याल हमें रखना ही

होगा।" फिर एक क्षण रुककर कहा—"कजला या रेणुका को भेजूँ आपके साथ?"

'नहीं, अब रात में उन्हें भेजने की आवश्यकता नहीं।" सुमित्रा ने कहा—"कार किसी बेगाने की तो है नहीं।" और कार में बैठकर सुमित्रा चली गयी।

प्रफुल्ल कई क्षणों तक उसी दिशा की ओर देखता रहा, जिस दिशा में सुमित्रा को लेकर कार चली गयी थी। राजपथ एक दम सुनसान था। रात्रि का अन्धकार सघन होता जा रहा था। शुभ्र नीलाकाश में अगणित तारे टिमटिमा रहे थे। इन टिमटिमाते तारों को ही प्रफुल्ल बहुत देर तक देखता रहा और उस रहस्यमयी सुमित्रा के सम्बन्ध में जाने क्या-क्या सोचता रहा, जो अपने-आपको अधूरी नारी समझती है; किन्तु बौद्धिक प्रतिभा जिसके रोम-रोम में व्याप्त है। उसकी समझ में न आ सका कि यह सुमित्रा आखिर अपने आपको क्यों अधूरी नारी समझती है। यदि परिणय हो जाने से ही कोई नारी अपने-आपमें पूर्णता का अनुभव करने लगती है और सुमित्रा भी यही चाहती है, तो फिर परिणय का प्रसंग छिड़ते ही वह मौन क्यों हो गयी थी? कैसी रहस्यमयी है यह सुमित्रा!

प्रफुल्ल का दिमाग भन्ना उठा। उसने अपने सिर को एक हल्का-सा झटका दिया और बाहरी बरामदे से अपनी बैठक में जाकर एक आरामकुर्सी पर फैल गया।

कोई होगा तो !

— श्री अधीर

मेरे गीतों का गाहक कोई होगा तो !

कैसे जानूँ दुनियाँ मुझ पर है हँसती,
कैसे मानूँ लख मुझे किनारा कसती,
मेरी शबनम सी खुशी किरन चुन लेती

मेरे भावों का चाहक कोई होगा तो !

सुधि मेरी काँटों से फूलों को चुनती,
मेरी आँखें जब आँसू के पट बुनती,
पुरुवइया देती पोंछ पलक से बूँदें

मेरे शब्दों का वाहक कोई होगा तो !

बड़वानल जलता लहरों की ढेरी पर,
दावानल चलता झंझा की फेरी पर,
मावस की छाती पर जलते हैं तारे

मेरे दुर्दिन का दाहक कोई होगा तो !

कहानी—

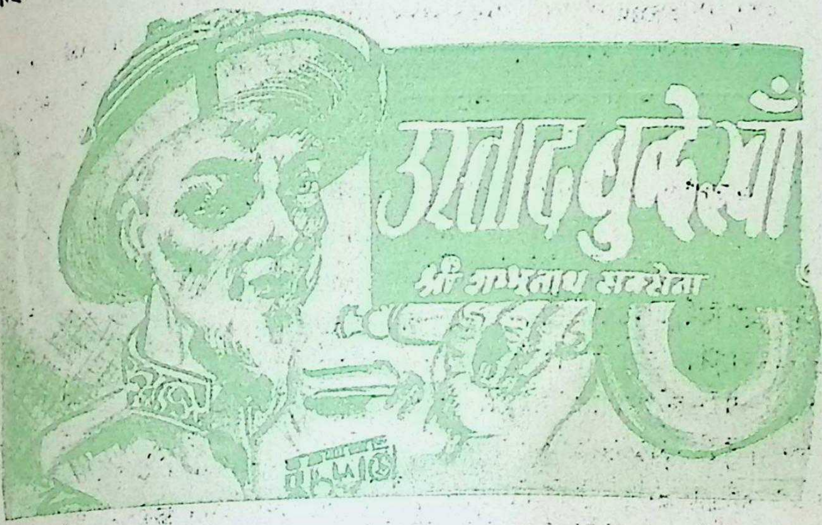

उस्ताद बुन्देखाँ

श्री अभयनाथ सक्सेना

शहर की सड़क पर बरात के आगे आगे उल्फतसिंह का मशहूर बैण्ड बजता चला जा रहा था। बैण्ड के साथ उस्ताद बुन्देखां भी थे, जो अन्य बाजों के साथ अपने हाथ के ताशों को बजाकर लय और स्वर मिला रहे थे। एक गति के साथ उनके हाथ काम कर रहे थे और उन पीतल के ताशों से स्वर ध्वनित हो रहा था, वह बँधा हुआ था। उस्ताद बुन्देखाँ उस बैण्ड में प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति माने जाते थे। वे समय पड़ने पर बिगुल बजा सकते थे, ढोल पीट सकते थे और केवल बांसुरी की ध्वनि पर सारे बाजों का स्वर सधवा सकते थे।

उस्ताद बुन्देखाँ—उम्र लगभग ४० वर्ष। चेहरा सूखा हुआ और उस पर शीतला माता के अभिन्न चिह्न। वे सारे संसार को मात्र एक दृष्टि से देखते थे क्योंकि शीतला माँ की अनुकम्पा ने उनके एक नेत्र का अपहरण बाल्यकाल में ही कर लिया था। एक नेत्र से सारी दुनियाँ देखने वाले उस्ताद बुन्देखाँ एक विचित्र जीव हैं। अनुभव उनका व्यापक है और कर्मठता उनकी अद्भुत। हाथ पैर से क्षीणकाय होते हुए उन्होंने जीवन के इस आवर्त्त में ऐसे कर्तब और उनमें प्राप्त की सफलता सजा दी, जैसे किसी होशियार माली ने बड़े परिश्रम से गुलदस्ता विभिन्न रंगों के फूलो सजाया हो। लेकिन फिर भी वे सन्तोष को या तुष्टि को अपने में नहीं पा सके और इस कारण ही वे अपने मन में जहाँ एक ओर विगत में प्राप्त की हुई सफलत पर दृष्टिक्षेप कर थोड़ा उल्लास अनुभव करते हैं वहाँ उनके जीवन की एक भयंक पराजय, जिसने उन्हें बैण्ड मास्टर बनने के लिए बाध्य किया, उन्हें उदासीनता से भ देती है।

आज तो उस्ताद बुन्देखाँ मास्टर उल्फतसिंह के बैण्ड बाजे के मात्र ताशे बजाने वाले हैं, लेकिन विगत उनका ऐसा नहीं रहा है। हारमोनियम बजाने में और बकौल उनके गाने में भी उन्होंने दक्षता प्राप्त की है। इन दो गुणों के आधार पर वे इस शहर की रंगीन दुनियाँ में, जहाँ पाँव के घुंघरू नृत्य के सम पर बोल उठते हैं और जहाँ एक एक भ्रूक्षेप पर वासना साकार हो उठती है, उस समाज में उस्ताद बुन्देखाँ की कला ने बड़े जौहर दिखाये हैं। अनेक नाचने वालियों को उन्होंने तालीम दी है और उन्हें नचवा कर हजारों की महफिल में "वाह-वाह" से लदवा दिया है। अनेक दास्तानें इस वर्ग की उनके जीवन से इस प्रकार संयुक्त हो गयी हैं, जिस प्रकार शहद की मक्खियाँ अपने छत्ते से विमोहित व चिपटी रहती हैं। कम उम्र की, जवानी के प्रवेश द्वार पर खड़ी, जवान, यहाँ तक कि अधेड़ों को उन्होंने स्वर और राग का परिचय कराया है। उनके कण्ठों के बेसुरे अलापों को ठीक करवाने में उन्होंने एड़ी और चोटी की कोशिश की है और रियाज के आधार पर उन्हें अपने फ़न में यकसाँ बना दिया है।

उस्ताद बुन्देखाँ लेफ्ट-राइट करते हुए बैण्ड के साथ चले जा रहे थे और अनेक विचार उनके मस्तिष्क में धारोष्ण दुग्ध के ऊपर एकत्रित हुए झाग-से इकट्ठे हो गये थे। वे उदास थे और उन्हें क्षण-क्षण पर अनुभव हो रहा था कि उनके हाथ ठीक से काम नहीं कर रहे हैं। उनमें शिथिलता आ गयी है और जो गति वे अपने हाथों को देना चाहते हैं, उसे वे देने में असमर्थ हैं। भावना का वेग उनके भीतर प्रवाहित था और उस वेग को रोकने में वे अपने को असमर्थ सा पा रहे थे। एक घटना, मात्र एक घटना ने उस्ताद बुन्देखाँ को अपने जीवन की धारा को पलटने के लिए विवश कर दिया था। नृत्य, गायन और वादन के उस्ताद, जैसा कि वे एक समाज में, एक वर्ग में समझे जाते थे और जिस गौरव के पद पर वे हर्षोल्लास से फूले नहीं समाते थे, उससे उन्हें तिलाञ्जलि दे देना पड़ी थी।

इस बात को आज अनेक वर्ष गुजर गये हैं। रामकुँवरि का इस शहर में अब कहीं पता नहीं है। एक मुद्दत हुई उसने यह शहर छोड़ दिया। कोई नहीं जानता कि अब वह कहाँ है? उस्ताद बुन्देखां के जीवन में यह रामकुँवरि एक बहार बन कर आयी और खिजां बन कर चली गयी। लेकिन उस्ताद बुन्देखां को तोड़ गयी। आज उन्हें देखकर तरस आता है। ऐसा लगता है जैसे उनके अरमान पीस दिये गये हैं और तमन्नाएं खजेली बिल्ली के रुओं-सी झड़ चुकी हैं। अब उनमें आवेग नहीं है, उत्साह नहीं है और वह रंगीन कल्पनाएँ नहीं हैं, जिनसे व्यक्ति को अपने भविष्य के निर्माण के लिए प्रेरणा मिलती है। उस्ताद बुन्देखां महसूस करते हैं कि अब उनकी जिन्दगी में कुछ भी ऐसा शेष नहीं बचा है जिसके लिए आने वाले कल के सम्बन्ध में सोचा

जाय, विचारा जाय और स्फूर्ति ग्रहण की जाय। रामकुँवरि ने उनके जीवन को अपंग बना दिया, उन्हें ऐसी अवस्था में ला खड़ा किया है जहाँ से गम का तराना शुरू होता है, भावना मिटती है और कल्पना तिरोहित होती है। वे ताशे बजा रहे थे और सोच रहे थे—"मैं क्या था और क्या हो गया ?"

उनकी दृष्टि यकायक अपनी वर्दी पर गयी, सिर पर एक बड़ा-सा हैट, जो कि भदरंगा होने के कारण खड़िया से पुता हुआ था, एक लाल ऊनी हण्टिंग कोट, कुछ जोधपुरी बनावट का, जिस पर अनेक तमगे टके हुए थे और नकली कलाबत्तू का काम कोट पर किया हुआ था। उसके नीचे काली ब्रिजेस और उस पर आधी पिंडलियों तक कसे हुए खाकी फ़ीते ! उस्ताद बुन्देखाँ एक फटा-सा जूता पहने हुए थे। उन्होंने अपने सम्बन्ध में सोचा और एक क्षीण मुस्कराहट, ट्यूब-लाइट में दौड़ी हुई प्रथम विद्युत-किरण-सी, उनके चहरे पर दौड़ गयी। शायद यह उनका अपने प्रति ही एक व्यंग था। वे सोच रहे थे, यह सब क्या हो गया ? कहाँ चिकन का कुर्ता, गरारेदार अलीगढ़ी पैजामा और पैरों में सलीमशाही मखमली जूतियाँ। बालों में कामिनियां आॅयल और कान में खस की फुरेरी ! जेब में कीमती सिगरेट का पैकिट····और आज ?

उस्ताद बुन्देखां बरात के साथ बढ़ते जा रहे थे। लेकिन विगत की घटनाएँ उनके मन को पीछे घसीटे ले जा रही थीं, जैसे किसी मरे हुए पशु की लाश को घसीट कर ले जाया जा रहा हो। बैण्ड से ध्वनि निःसृत हो रही थी—"जाना ही पड़ा।" उस्ताद बुन्देखां ने अपने ताशे में मरोड़ पैदा की; क्योंकि वे कुछ बेसुरे होने लगे थे। लेकिन वे अधिक समय तक अपने को सचेतन और तत्पर नहीं रख सके। उनकी विचारधारा ने पुनः उनके कार्य में गत्यवरोध पैदा किया और वे सोचने लगे—"मैं क्या बन गया ? एक ताशे बजाने वाला, जो कि बैण्ड में सबसे ज्यादा गिरी हुई नजर से देखा जाता है, वक्त पड़ने पर जिसे बैण्ड के सारे सामान को लाद कर कुलीगीरी करना पड़ती है, कार्नेट मास्टर की खुशामदें करना पड़ती हैं और मास्टर उल्फतसिंह की चिलमें भरना पड़ती हैं।" एक गलाजत-सी उसके मन में भरने लगी, जैसे यह पेशा बड़ा गिरा हुआ पेशा है, जिसमें न इज्जत है और न इतने साधन ही जुट पाते हैं कि शरीर की तड़क-भड़क या ढंग की पोशाक बनवायी जा सके। आज उन्हें अपने गुजरे हुए जमाने की बड़ी याद आ रही थी। वे एक बरात को बिदा कराकर ला रहे थे। उनके पीछे दूल्हा घोड़े पर सवार था और उसके पीछे पालकी में नवपरिणीता वधू थी जो अपनी अभिरुचि से शृंगार किये हुए बैठी हुई थी। पालकी में उसके बैठते समय उस्ताद बुन्देखाँ ने एक बार एक झलक उसकी देखी थी। गोरी-गोरी लम्बी-लम्बी अँगुलियाँ, कुन्दन-सा रंग और बड़ी-बड़ी सम्मोहनसिक्त-सी आँखें ! और उसके साज शृंगार को देखकर रामकुँवरि की याद आ गयी, जिसे उन्होंने बचपन

से ही गाना और नृत्य करना सिखलाया था और जब वह प्रथम बार अपने सोलहों श्रृंगार कर मेहफिल में नाचने के लिए गयी थी। बुन्देखाँ के सामने उसका कमसिन चेहरा आ गया, वह चेहरा जबकि रामकुँवरि दुनियाँदारी और अपने पेशे से अनभिज्ञ थी और जब वह उस्ताद बुन्देखाँ के चारों तरफ़ चक्कर लगाया करती थी। खाना, पीना और रहना सभी कुछ एक साथ था। जब वह गाया करती थी तो समा-सा बँध जाता था। रामकुँवरि की माँ ने एक तरह से उस लड़की को उस्ताद बुन्देखाँ के हाथों ही सौंप दिया था और उस्ताद बुन्देखाँ उसे अपनी धरोहर समझने लगे थे। साये की तरह वे उसके आगे और पीछे रहते थे। न जाने क्यों उनके मन में यह अविश्वास पैदा हो गया था कि कहीं यह रामकुँवरि उन्हें धोखा न दे जाय।

रामकुँवरि की माँ ने गांव से आकर उस्ताद बुन्देखां का ही सहारा पकड़ा था। वह जाति की बेड़नी थी, वह समाज जिसमें लड़कियों से नाचने, गाने और शरीर बेचने का धन्धा कराया जाता है। रामकुँवरि की माँ अधेड़ थी। वह गाना बजाना नहीं जानती थी और उसने अपनी जिन्दगी का एक बड़ा हिस्सा शरीर बेच कर आजीविका कमाने में ही व्यतीत किया था। उसे अपने पेशे से ठीक इसी तरह नफरत थी, जैसी कि उस्ताद बुन्देखां को आज इस वर्दी में ताशे बजाते हुए हो रही थी। लेकिन वह विवश थी, क्यों कि जिस समाज में वह पैदा हुई थी उस मे रोजी कमाने का मात्र एक यहीं साधन था। लेकिन उसकी हार्दिक इच्छा थी कि उसकी लड़की इस गिरे हुए पेशे से ऊपर उठे और नृत्य तथा गायन को अपनी आजीविका का प्रमुख साधन बनाये। उस्ताद बुन्देखां ने उसे आश्वासन दिया था कि वह उसकी लड़की को गाने व नाचने में पारंगत कर देगा।

रामकुँवरि की माँ धनकुँवरि उस्ताद बुन्देखां का बड़ा ध्यान रखती थी और उस्ताद उस घर को अपना ही घर समझने लगे थे। लेकिन ज्यों-ज्यों रामकुँवरि सयानी होती गयी, उस्ताद उसके प्रति उतने ही अधिक आसक्त होते गये। रामकुँवरि को उस्ताद के साथ चुहल करने में आनन्द आता था। उस्ताद जब मात्र अपनी एक दृष्टि से उसकी ओर देखते रह जाते, तो रामकुँवरि भी अपने उल्टे हाथ से अपनी एक आँख बन्द कर लेती थी। उस समय उस्ताद बुन्देखाँ को अपने बनाने वाले पर बड़ा क्रोध आता। उन्होंने अनेक बार अपने बारे में सोचा था और उन्हें इस एक आँख का अभाव बुरी तरह खटकता था। इस अभाव की पूर्ति के लिए उन्होंने अपनी आँख के खाली कोए में एक काँच की आँख लगवा ली थी। लेकिन उसका जोड़ ठीक नहीं बैठता था। रामकुँवरि के लिए उन्होंने बड़ा परिश्रम किया था। दिन-रात वे अपनी हथेली पर "तक···थई····था" किया करते थे। आरोहण-अवरोहण के साथ

वे बोल मुखरित किया करते थे और रामकुँवरि उनका अपने पैरों के घुघुँरुओं से साथ देती थी। उस्ताद बुन्देखाँ सोच रहे थे—

"रामकुँवरि ने मुझे तबाह कर दिया। उसके लिए मैंने क्या नहीं किया? लेकिन फिर भी उसे मैं अपना न बना सका। बड़ी बेवफा थी।"

उनके सामने कुँवर सुरेन्द्रसिंह का चेहरा आ गया। यह वह चेहरा था जिसे उस्ताद बुन्देखाँ दिल से नफरत करते थे। और यदि खुदा ने उन्हें कद्दावर व शक्तिशाली पैदा किया होता तो बकौल उनके उन्होंने कभी का कुँवर सुरेन्द्रसिंह को ठिकाने लगा दिया होता। लेकिन जो उनकी आज हालत है और जो शरीर लेकर वे पैदा हुए हैं, उसमें कहाँ यह सम्भव है? सुरेन्द्रसिंह एक हसीन नौ-जवान, उठा हुआ सीना, भरी हुई गर्दन और कसी हुई पिंडलियाँ। मांसल भुजाओं पर उभरी हुई मछलियाँ, आँखों में जवानी का सरूर और गेंहुआ रंग! बाल उसके घुँघराले थे और नाक उसकी उठी हुई थी। आँखों में उसके पैत्रिक गौरव की चमक थी। जिस दिन से यह सुरेन्द्रसिंह रामकुँवरि के सम्पर्क में आया, उस्ताद बुन्देखाँ की खुशियाँ, उनकी कल्पना, उनकी तमन्नाएँ सभी कुछ बालू की दीवारों-सी धूल-धूसरित हो गयीं। सुरेन्द्रसिंह पहली बार रामकुँवरि का नृत्य देखने आया था। रामकुँवरि जिस समय नाच रही थी, उस

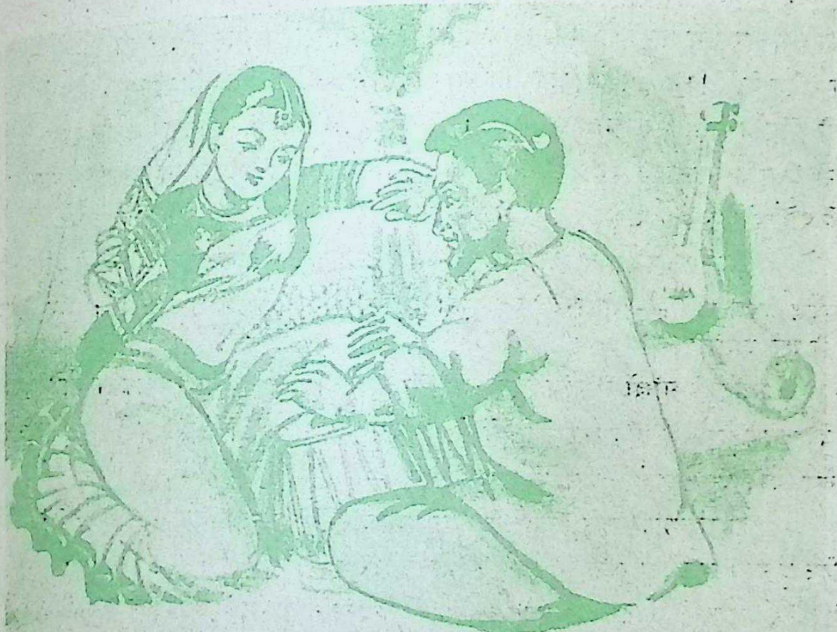
रामकुँवरि उनका अपने पैरों के घुँघुरुओं से साथ देती थी।

समय उस्ताद बुन्देखाँ हारमोनियम पर विहाग का राग छेड़ रहे थे। उसी दिन उन्होंने अपने एक नेत्र से इस व्यक्ति को घूरा था और रामकुँवरि को उसके हाव-भाव से पहचान लिया था कि दोनों एक दूसरे के नजदीक आते जा रहे हैं। उस्ताद बुन्देखाँ के लिए यह असह्य था। वे रामकुँवरि को अब तक एक मात्र अपनी पूँजी समझते चले आ रहे थे।

धीरे-धीरे दिन निकलते गये और सुरेन्द्रसिंह रामकुँवरि पर तथा उसकी माँ पर छा गया। पैसे को उसने धनकुँवरि की ओर रेल दिया था और रामकुँवरि की भावनाओं पर वह विजय प्राप्त कर चुका था। उस्ताद बुन्देखाँ ने अनेक प्रयत्न किये कि किसी प्रकार उन दोनों में मन-मुटाव पैदा हो जाय, या कि धनकुँवरि ही उसे अपने घर से खदेड़ दे, लेकिन उनके प्रयत्न निष्फल गये। उन्होंने सारी दुनियाँ एक आँख से देखी थी और वे अब एक आँख से सुरेन्द्रसिंह को देख रहे थे, जो कि उनके इश्क और मोहब्बत के साम्राज्य पर बुरी तरह हावी हो गया था। वे परेशान थे। वे बेहाल थे। वे रामकुँवरि को देखकर सर्द आहें भरते थे। लेकिन कर कुछ भी न पाते थे।

एक दिन की बात है, क्रोध के वशीभूत होकर उन्होंने रामकुँवरि को एकान्त में पकड़ लिया, बोले—"मैं तेरा खून कर डालूँगा। मैं तुझे मार डालूँगा। और मैं खुद भी मर जाऊँगा।"

उनकी आँखों में उस दिन वहशीपन उभर आया था। क्रोध के मारे उनका वुरा हाल था। वे सम्हलना चाहते थे, लेकिन भावनाओं ने उन्हें बुरी तरह उद्वेलित कर दिया था। उन्होंने कुछ सम्भल कर कहा—

"हरामजादी तुझे मारने से क्या फायदा ? मैं उस ठाकुर के बच्चे को ही खत्म कर दूँगा। न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी।"

रामकुँवरि इस अचानक स्थिति से घबरा गयी थी। वह चीख पड़ी। सुरेन्द्रसिंह धनकुँवरि के पास बैठा रामकुँवरि के लिए तयार करवाया हुआ गले का हार दिखला रहा था। चीख सुनकर वह ऊपर दौड़ा। उसने देखा, उस्ताद बुन्देखाँ पागलों की सी अवस्था में रामकुँवरि के गले को अपने दोनों हाथों से पकड़े हुए भींचे जा रहे हैं। उसने लपक कर उस्ताद बुन्देखाँ में एक हाथ दिया। बाद को दोनों हाथों से एक बित्ता ऊपर उठा कर जमीन पर दे मारा। धनकुँवरि उस समय तक ऊपर आ गयी थी। उसने भी उस्ताद को बुरी-भली सुनाना शुरू की। उस्ताद जमीन पर पड़े कराह रहे थे।

उस्ताद बुन्देखाँ को उसी दिन घर से बाहर कर दिया ।रामकुँवरि, उसकी माँ और कुँवर सुरेन्द्रसिंह इस घटना के कुछ दिन बाद ही उस शहर से बाहर चले गये और फिर उनका कोई पता न लगा।

× × ×

उस्ताद बुन्देखाँ के ताशे बे-सुरे बज रहे थे। वे अपने को विगत की स्मृतियों के कारण सम्हाल नहीं पा रहे थे। मास्टर उल्फतसिंह ने, जो बैण्ड के आगे-आगे चाँदी की मूठ की छड़ी को घुमाता हुआ चला जा रहा था, इस बे-सुरी झनझनाहट को, जो ताशों से निकल रही थी, सुना और लपक कर पीछे आकर उसने एक तमाचा उस्ताद बुन्देखाँ में दिया। उस्ताद बुन्देखाँ सचेत हो गये थे। विगत उनका बैण्ड की ध्वनि में विलीन हो गया था और बिना कुछ हिचकिचाहट के लेफ्ट-राइट करते हुए उनके हाथ के ताशे बैण्ड की ध्वनि में स्वर मिलाने लगे थे। रामकुँवरि की स्मृति से उन क्षणों में वे बहुत आगे निकल आये थे जहाँ मानापमान का प्रश्न नहीं था, प्रश्न था मात्र आजीविका का, अपने भरण-पोषण का।

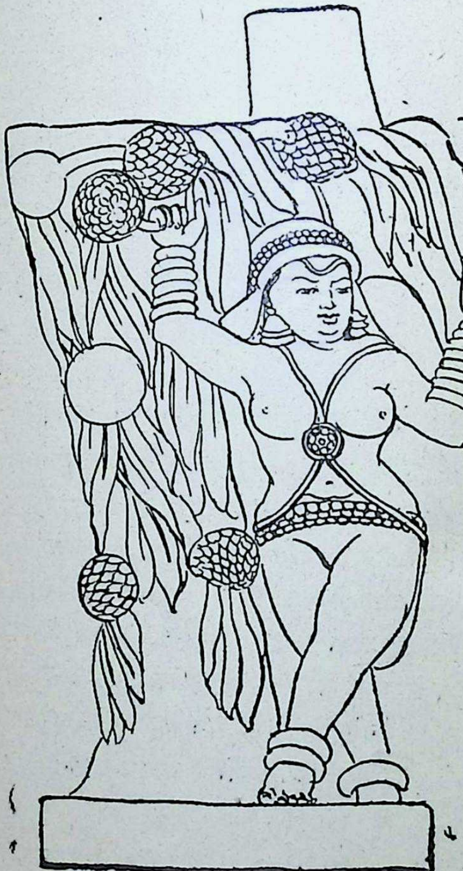

यशस्वी और सफल खेती

श्री अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार

यशस्वी और सफल खेती का सरल मार्ग

अन्न-धान्य की पैदावार की दृष्टि से भारत स्वाश्रयी और आत्म निर्भर हो गया है और चावल को यह देश ब्रिटेन को निर्यात करने लगा है। किन्तु अन्न-संकट का भय सर्वथा दूर नहीं हुआ है, वह कभी भी उपस्थित हो सकता है। यदि ठीक समय पर वर्षा न हुई, या फसल को पाला मार जाय, और लगातार दो तीन साल यह होता रहे, तो अन्न-संकट उत्पन्न होना सम्भव है। दूसरे हमारी आबादी तेजी से बढ़ रही है। आज भी प्रति व्यक्ति खाद्यान्न की खपत डाक्टरों द्वारा निर्धारित प्रमाप के अनुसार नही है। इसलिए आज भी हमारी यह समस्या बनी हुई है, कि अन्न धान्य की पैदावार और अधिक कैसे बढ़ावें? "अधिक अन्न उपजाओ" का आन्दोलन अभी जारी है। इस आन्दोलन का जारी रहना ही बताता है कि अन्न-संकट के भय से देश सर्वथा मुक्त नहीं हुआ है।

ट्रैक्टर उपयोगी है

पहली बात यह है कि ट्रैक्टरों का उपयोग और अधिक बढ़ाना चाहिए। ट्रैक्टरों का व्यवहार सहकारी पद्धति से होना उचित है। विभिन्न खेतों को जोतने के लिए हलों की जगह इनका उपयोग बढ़ाना चाहिए। प्रत्येक गाँव में ट्रैक्टर होना आवश्यक है, व किसान सहकारी समिति को अपने जोत के हिस्से के मुताबिक फसल होने के बाद पैसे दे देगा। खेत जोतने का काम महत्व का है, और उसी प्रकार कष्टकर भी है। इसके लिए यांत्रिक हल अधिक उपयोगी सिद्ध होंगे। कटी फसल की दलाई करने, खेतों में चरस से पानी देने, आदि के काम में बैल अधिक उपयोगी सिद्ध होंगे। हमारे बैल दुर्बल, अशक्त और खराब हैं। उनसे खेती का सब काम लेना न सम्भव है और न उचित है। खेत जोतने के लिये ट्रैक्टर अधिक उपयोगी और श्रेयस्कर है।

उत्तम बीज का संग्रह करणीय

खेत जोतने के बाद बीज का महत्त्व सर्वाधिक है। गाँव वाले अपने गाँव में ही अच्छे बीज का संग्रह करें, और बुआई के समय बाजार न दौड़े जावें, यह देखना आवश्यक है। गाँव में ही अच्छे बीज का संग्रह करने की व्यवस्था न होने से किसान

को ठीक समय पर मँहगा बीज खरीदना पड़ता है। ट्रैक्टर देने वाली सहकारी समिति इसमें गाँव वालों की सहायता कर सकती है। ग्राम पंचायतें भी इसकी व्यवस्था कर सकती हैं। परन्तु गांव वालों में यह आदत डालने की आवश्यकता है कि वे अपने ही गाँव में अच्छे बीज का संग्रह करके रखें।

खाद आवश्यक

बीजों के समान ही खाद की भी बात है। रासायनिक खाद तो जरूर किसानों को बाजार से खरीदना होगा, पर प्राकृतिक खाद वे अपने ही गाँव में मिल-जुल कर तैयार कर सकते हैं। यदि प्रत्येक गांव में मल-मूत्र का गोबर और कूड़े के समान खाद बनाने की व्यवस्था हो और ग्राम पंचायतें इसको उत्साहित करें, तो खाद की समस्या सरलता से हल हो सकती है। जो किसान जितनी खाद ले, उसके मुताबिक उससे बाद में पैसे ले लिए जाँय। किन्तु खाद तैयार करने का काम एक जगह ही होना चाहिए, हर किसान के घर अलग-अलग नहीं। गो-मूत्र के संग्रह की भी व्यवस्था रहनी चाहिए। इससे किसान का घर भी स्वच्छ रहेगा, मच्छरों से वह मुक्त रहेगा, नीरोगिता और स्वास्थ्य में वृद्धि होगी। इसलिए खाद की व्यवस्था सामुदायिक रूप से ही होना चाहिए।

रासायनिक खाद

सब जमीन एक किस्म की नहीं होती। जमीनों की किस्मों का पृथक्करण और वर्गीकरण आवश्यक है। यह करने के बाद नत्रजन (नायट्रोजन), फास्फोट, पोटेशियम, आदि चीजें जमीन में यथायोग्य प्रमाण में डालनी चाहिए। जिस जमीन में जिस द्रव्य की जिस प्रमाण में कमी हो, वही द्रव्य उस जमीन में डालना उचित है। रासायनिक खाद डालने से पैदावार में बहुत वृद्धि होती है। पश्चिम की खेती का यह अनुभव है। वहाँ पैदावार प्रति एकड़ अधिक होने का यह भी एक कारण है।

फसलों की अदला-बदली

जिरायती जमीन हमारे पास अधिक है। इस दृष्टि से फसलों की बुआई में अदला-बदली होती रहनी चाहिए। चना, मूंगफली, उड़द, मूंग आदि द्विदल जाति के धान्यों में अदला-बदली करने से उत्पादन बढ़ता है। किस प्रकार की अदला-बदली करने से पैदावार बढ़ेगी, इस विषय में परीक्षण होना उचित है।

पड़ती जमीन को जोत में लाना आवश्यक है। खेती लायक जमीन पड़ती पड़ी रहे, यह न होना चाहिए। यदि मालिक स्वतः खेती नहीं करता, और न खुशी-खुशी दूसरे को खेती के लिए देता है, तो कानून द्वारा उससे जमीन ले लेनी चाहिए। खेती योग्य जमीन का पड़ती रखना अपराध घोषित किया जाना चाहिये।

यातायात की सुविधा

यूरोप और अमरीका में गावों तक जाने वाली सड़कें भी पक्की हैं, इसलिए पैदावार को बाजार तक पहुँचाने में कोई कठिनाई नहीं होती। हमारे यहाँ सड़कें पक्की नहीं हैं। गाँव से हाट, पेठ व मण्डी तक पैदावार पहुँचाने के मार्ग में अनेक अड़चनें हैं। पक्की सड़क बनाने का काम गाँव वाले मिल-जुलकर कर सकते हैं। जहाँ गाँव वाले स्वेच्छा से श्रम देने को तैयार होते हैं, वहाँ इस देश में भी अब स्थानीय सरकारें सड़क बनाने के लिए आवश्यक सामग्री देती हैं। आवश्यकता है कि किसान मिल-जुलकर सहकारी वृत्ति से अपने लाभ के लिए ही काम करना सीखें।

इंग्लैण्ड में खेती की सफलता का रहस्य यही है। वहाँ किसानों की "नेशनल फार्म्स ऐसोसियेशन" एक बड़ी संस्था है। इसके दो लाख सदस्य हैं। प्रत्येक किसान से प्रति एकड़ आधा शिलिंग (लगभग छः आना) चन्दा लिया जाता है। संस्था को चन्दे में २३ लाख रु० मिलता है। यह संस्था किसानों के लिए उपयोगी विविध कामों पर २० लाख रु० खर्च करती है।

सहकारी वृत्ति आवश्यक है

खेती की सफलता के लिए किसानों में सहकारी-वृत्ति का होना आवश्यक है। इसके लिए जनता, सरकार और किसानों के मध्य सहकार वांछनीय है। इंग्लैण्ड, अमरीका, डेन्मार्क आदि में खेती के सफल होने का मूल कारण सहकार है। इन देशों की सरकार और जनता दोनों ही इस दिशा में जागरूक और प्रयत्नशील हैं। यूरोप के सामने वर्षा की समस्या नहीं है। वहाँ बारहों मास "रिमझिम" वर्षा होती रहती है। इस वर्षा से जमीन की मिट्टी बह नहीं जाती। हमारे देश में मूसलाधार वर्षा पड़ने से खेतों की ऊपरली सतह की मिट्टी बह जाती है। वहाँ यह नहीं होता। दूसरी बात यह कि रिम-झिम और बूँदा-बाँदी का सारा पानी जमीन को मिलता है। मूसलाधार वर्षा के पानी का अधिकांश भाग बह जाता है, और उसका लाभ फसल को नहीं मिलता। भारत के समान वहाँ प्रचण्ड आतप और घाम भी नहीं पड़ता, अतः जमीन की आर्द्रता सदा कायम रहती है। प्रकृति इस प्रकार वहाँ फसल को बढ़ाने में सहायक है। इसके साथ अद्यतन यांत्रिक सुधारों और यांत्रिक प्रगति का लाभ भी खेती को मिला है। यांत्रिक खेती के कारण समय, श्रम और खर्च की बचत होती है।

इटली, फ्रान्स, स्विटजरलैण्ड और डेन्मार्क में आज भी घोड़ों द्वारा खेती होती है, परन्तु वहाँ के घोड़े सशक्त हैं इसलिए उनसे खेती को अच्छी तरह जोता जा सकता है। परन्तु इसमें खर्च, श्रम और समय अधिक लगता है, इसलिए इन देशों में भी घोड़ों की जगह यन्त्र ले रहे हैं।

डेन्मार्क में

फ्रान्स में अंगूर (द्राक्षा) की खेती बहुत बड़े पैमाने पर होती है। अंगूर से वहाँ शराब (शैम्पेन) तैयार की जाती है। अंगूर की पूर्ति करने वाली किसानों की सहकारी संस्था है। डेन्मार्क तो सहकारी समितियों के लिए प्रसिद्ध ही है। वहाँ डेरी (दुग्धालय) की १४०० सहकारी संस्थाएँ हैं। सुअर का माँस बेचने वाली संस्थाएँ ६० हैं। मक्खन, अण्डा, पनीर, मुर्गी और अन्य चीजें बेचने वाली सहकारी संस्थाओं की संख्या अलग है। सहकारी संस्थाओं के डेन्मार्क में २ लाख ५६ हजार सदस्य हैं। डेन्मार्क में एकमात्र खेती पर अवलम्बित रहने वाले लोगों की संख्या १० लाख है। और डेन्मार्क की कुल जनसंख्या ४१ लाख है। यदि चार जनों का एक कुटुम्ब मानें, तो डेन्मार्क के प्रत्येक परिवार का एक न एक व्यक्ति सहकारी संस्था का सदस्य है।

सहायक उद्योग

यूरोप में खेती के साथ-साथ खेती के सहायक धन्धों का भी बहुत प्रचार है। प्रत्येक किसान कोई न कोई सहायक धन्धा करता है। मुख्य सहायक धन्धा गौ-पालन है। अन्य सहायक धन्धों में सुअर और मुर्गियाँ पालना है। ये धन्धे वहाँ के किसानों की समृद्धि के कारण हैं। इंग्लैण्ड में खेती की आधी जमीन में चारा बोया जाता है और अधिकांश किसान गायें पालते हैं। हमारे देश में भी किसान गाय या भैंस पालते हैं, किन्तु यह वे अपनी घर-गृहस्थी की आवश्यकता की पूर्ति के लिए करते हैं। यदि जरूरत से अधिक हुआ तो वे घी बेचते हैं। गाय-भैंस यहाँ के किसान व्यावसायिक ढंग पर और व्यवसाय के लिए नहीं पालते। फलतः गायों का दूध बढ़े, इसके लिए कोशिश भी नहीं की जाती।

प्रत्येक व्यक्ति को दूध पीने के लिए भरपूर मिलना चाहिए इस विचार से जनता और सरकार दोनों का गाय पालने की ओर ध्यान रहता है। सारे सालभर वर्षा पड़ने से यूरोप, अमरीका में हरा चारा गायों को खूब मिलता है। शस्त्रोक्त रीति से वर्णसंकर करके गायों की अनेक जातियाँ बनायी गयी हैं और उनका परिष्कार एवं संस्कार किया गया है। अर्सी, गर्सी, फ्रीशन, डोनिश जाति की गायों को दूध देने के लिए पाला जाता है। शॉटहार्न, डेला, सरोक्स, हरफोर्ड, कॉवरडीन आदि जाति की गायों को माँस के लिए पाला जाता है। साउथ डेवन, रेडपोल, लिंकन, रेड आदि जाति की गाएँ दूध और माँस दोनों के लिए पाली जाती हैं। वहाँ गाय का साधारणतः ३० वें महीने रेतन होता है। हमारे देश में गायें आयु के चौथे साल में ब्या ही जाती हैं। यदि गाय से जल्दी बच्चा ले लिया जाय तो गाय का संगोपन और पालन करना आर्थिक दृष्टि से लाभदायक होता है। अमरीका में १३ वें मास भी गर्भिणी हो जाने वाली एक जाति पायी जाती है। हमारे देश के महाराष्ट्र प्रान्त के पन्ढरपुर

में भी १३ वें मास में गर्भिणी हो जाने वाली गाय की एक जाति पाई जाती है पर वह अपवाद ही मानना चाहिए। यूरोप और अमरीका में गाय साधारणतः एक साल में १० से १०॥ मास दूध देती है। डेढ़-दो मास बाद वे एक अच्छा बैल देती हैं। जो गाय दूध नहीं देती, उसको छोड़ नहीं देते। उसका पालन भी भली प्रकार करते हैं। उनको दूध (क्रीम निकाला हुआ) पिलाते हैं, जिससे वे सशक्त और हृष्ट-पुष्ट रहें। दूध यन्त्र की सहायता से निकाला जाता है। दूध दुहने से पहले थनों को भली प्रकार धो लिया जाता है। वहाँ गायें प्रतिदिन १२ से ३३ सेर तक दूध देती हैं। साउड डेवन आदि जाति की अनेक गायें ६० सेर तक दूध देती हैं। भारत के महान राष्ट्रकवि कालिदास ने अपने महाकाव्य "रघुवंश" में घटोघ्नी गायों की चर्चा की है—

"अथैकधेनोरपराध चण्डाद् गुरोः
कृशानुप्रतिमा [illegible] द्विभेषि।
शक्योऽस्य मन्यु र्भवता विनेतु
गाःकोटिशः स्पर्शयता घटोघ्नीः ॥"

इसलिए अमरीका और यूरोप की गायों को इस परिमाण में दूध देते देखकर आश्चर्य न होना चाहिए। वहाँ एक गाय १ से २ हजार रुपये और बैल २ हजार से ६००० रु० में बिकता है।

दूध बिक्री की संस्थाएँ

इंग्लैण्ड में "मिल्क मार्केटिंग बोर्ड" की स्थापना की गयी है। इसका काम दूध का वितरण, उसकी कीमत और ग्रेड आदि की परीक्षा करना है। वे दूध खरीद कर उसको "पाश्चराइज" करते हैं अर्थात् मशीन द्वारा एक निश्चित तापमान पर दूध को गरम कर उसको कृमिहीन बना देते हैं। दूध बेचने का काम वहाँ बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ करती हैं। प्रसंगवश यहाँ यह उल्लेख करना अनुचित न होगा कि इंग्लैण्ड में दूध ६-८ आना सेर बिकता है, जबकि नई दिल्ली में १२ आना सेर बिकता है। दूध बेचने की कीमतों में प्रतियोगिता नहीं होती। दूध की किस्म और उसका अधिकतम मूल्य निश्चित कर दिया जाता है। उससे अधिक दाम पर बेचने वाले का लाइसेन्स जब्त कर लिया जाता है। किसान को आज से पाँच साल पहले १ सेर दूध के बदले ७ आने मिलते थे। दूध बोतलों में बन्द करके ग्राहकों के घर प्रातःकाल पहुँचा दिया जाता है। १९५० में ग्राहकों को १० आना सेर दूध मिलता था।

कृत्रिम गर्भधारण

गायों पर कृत्रिम गर्भधारण के प्रयोग किये गये हैं, और वे सफल सिद्ध हुए

है। पहले-पहले १९३१ में रूस ने इस प्रयोग को आरम्भ किया। डेन्मार्क ने १९३६ में उसको अपनाया। इंग्लैण्ड ने १९४२ में इस पद्धति को स्वीकार किया। कृत्रिम गर्भ धारण का उपयोग व्यापक रूप से हो रहा है। डेन्मार्क में इस रीति से पशुओं की सन्तान को सुधारने के लिए १०० सहकारी संस्थाएँ हैं। उनके पास ६५० साँड हैं। १९४७ में एक साँड से इस प्रयोग के अनुसार ७०० गायों को गर्भ धारण कराया गया। नैसर्गिक तरीके से एक साँड द्वारा वर्ष में केवल ७५ गायें गर्भिणी हो सकती हैं। इस प्रकार गाय को गर्भ धारण कराने में ६-७ रुपये लगते हैं। सन् १९४८ में अमरीका में १० लाख ४३ हजार, डेन्मार्क में ६ लाख ४५ हजार, इंग्लैण्ड में २ लाख ५०६, स्वीडन में १ लाख १० हजार, इंग्लैण्ड में १ लाख २० हजार गायों को कृत्रिम रीति से गर्भ धारण कराया गया। हमारे देश के इज्जतनगर (बरेली के पास) में इस तरह के सफल प्रयोग हुए हैं। किन्तु ये प्रयोग अभी तक भेड़, बकरी पर किये गये हैं। गाय और भैंसों पर भी ये प्रयोग किये जा सकते हैं।

भारत की उत्तम जाति की गायें

भारत में सिन्धी, महिवाल, और गीर जातियों की गायें श्रेष्ठ मानी जाती हैं। हमें खेती के लिए बैल भी चाहिए। अतः हमारी गायें इस किस्म की होनी चाहिए जो दूध भी खूब दें और उसके साथ-साथ अच्छे बैल भी दें। इस प्रकार की जाति की गायों का सम्वर्द्धन और विकास होना उचित है। भारत में गायों का दूध बढ़ाने के तथा सूखे की अवधि कम करने के परीक्षण चल रहे हैं। इन परीक्षणों के फलस्वरूप महिवाल गाय ५ सेर दूध देने के बदले १० सेर दूध देने लगी है। पहले बच्चा देने की वय ४१ मास थी। अब यह घटकर २९।। मास रह गयी है। पहले ७ मास गाय दूध नहीं देती थी। अब यह अवधि घटकर ४।। मास रह गयी है। इसलिए यदि संशोधन और परीक्षण का काम चालू रहे, तो यहाँ की गायें भी पहले के समान घटोघ्नी हो सकती है और अमरीका और यूरोप के समान दूध दे सकती है।

आवश्यकता है कि भारत में भी सहकारी वृत्ति से खेती और पशु-पालन का कार्य किया जाय और आधुनिक विज्ञान की सहायता इस कार्य में ली जाय। यदि ऐसा किया गया तो हमारे देश को फिर कभी अन्न-संकट का स्वप्न में भी सामना न करना पड़ेगा। आवश्यकता इस बात की है कि हम इस सत्य को अनुभव करें।

कहानी—

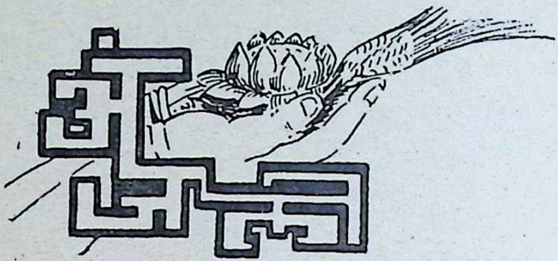

श्री परदेशी

दशपुर के राजप्रांगण में चैत मास की उन्मादिनी चाँदनी नववधू जैसी चुपचाप खड़ी थी। सघन अमराइयों-सी उसकी अलस श्याम बरौनियों पर सहस्र-सहस्र स्वप्न तैर रहे थे। बाहर-बाहर वह हिमवती थी पर भीतर-भीतर ज्वाला जलाये थी। समीप के उद्यान में पल्लव-शैया पर कोकिल-कन्याएँ अपने बालापन की खुमारी में बेसुध थीं। निशि-कामिनी की अनियारी आँखें उनींदी थीं, परन्तु वह कहीं-कहीं, वियोगिनी के रतनारे नयनों में जाग रही थी।

और सेनगुप्त बेचैन थे। मालव-जनपद की कुबेर-मोहिनी सम्पदा उनके चरणों में समर्पित थी। किन्तु, उन्हें सम्पदा सागर की नहीं, मात्र एक अंजली की चाह थी। वे उसी के लिए बेकल थे। उसी के लिए अस्त-व्यस्त थे। मालव-राजकुमार, जिसके चरणों में अस्रस्तावरणा राजलक्ष्मी लोट रही थी, एक दासी पुत्री के द्वार का भिखारी था, याचक था।

अंजली पन्द्रह की नहीं, तो, सोलह की होगी। वह अंकुरित यौवना थी, पर अज्ञात-यौवना नहीं। कुमार ने जब से उसे देखा—वही दीख रही है।

सेनगुप्त ने साहस किया, बढ़े। रुक कर देखा—किशोरी के कक्ष-द्वार अधखुले थे। वह अकेली थी।

गम्भीर निद्रा में अंजली सोयी थी! उसके गोरे मुख बिम्ब के आसपास कृष्ण केशराशि बिखरी थी। बड़े २ लोचन निमीलित थे। अधरों पर मन्द स्मिति थी। अवश्य सपने में वह राजरानी बनी है। दोनों करतलों के संपुट का वह तकिया बनाये थी, जिससे उसकी निर्बन्ध नीली चोली में उन्मत्त उरोज स्वर्ण-सरोज से उभर आये थे, और उनकी पारदर्शी पंखुड़ियों में अवरुद्ध भ्रमर कुमार को दृष्टिगोचर हो रहे थे। उसका अन्तरीय तनिक ऊपर खिसक गया था और उसके कंचन पायल पिंडलियों तक ऊपर चढ़ आए थे। उसकी असूर्यपश्या जंघाएं देखकर कुमार मतवाले हो गये जैसे कदली-कांड पाकर ऐरावत झूम उठता है।

अंजली कुछ न बोली। अपने स्वप्न को साकार निरख कर भी उसे विस्मय न हुआ।

जब सारी दुनियाँ सोई थी, लुटी कपोतिनी की एक रसभरी गहगही सिसकी से वियोगिनी रात की आँखों में आँसू भर आये!

फिर तारे उड़ गये!

भोर हुई!

और कुमार चले गये!

+ × ×

राजपरिषद में भूकम्प आ गया। पार्षदों ने स्पष्ट शब्दों में अस्वीकार किया। कुमार ने साम से, दाम से, उत्कोच से और क्रोध से काम लिया पर पार्षदों ने न सुना।

"कहाँ दासी-पुत्री, कहाँ मालव-युवराज।"

—वे यही कहते रहे। और एक संवत्सर व्यतीत हो गया।

अंजली सोलह की नहीं, तो सत्रह की होगी। उसकी तन्वंगी देह सीमा में रस का रत्नाकर लहरा रहा था। उसे देखकर अप्सराओं को ईर्ष्या होती थी, नागरियों की बात ही क्या?

पहले कुमार अब अंजली बेचैन थी। चर्चा नगर में फैल गयी थी।

एक रात अंजली ने पूछा—"कुमार······अब कितने दिन?"

"अंजु! तीन मास और, और मैं बालिग हो जाऊंगा! मेरे राज्यारोहण के दूसरे दिन तुम रानी बनोगी।"

अंजली बार-बार पूछती, बार-बार यही उत्तर मिलता। भूल कर दूसरे-तीसरे दिन फिर पूछ लेती और फिर यही उत्तर मिलता।

कुमार आते थे। प्रति रात आते थे।

अंजली का अंग-अंग भर गया था। मुख पीला पड़ गया था। कटि-प्रदेश शनै-शनै बढ़ रहा था, वक्षों में स्पन्दन था।

एक दिन जब कुमार ने उसे सिर से पैर तक देखा तो, पहले वह मुस्कराई, फिर कुछ-कुछ लजाई और उसने अपनी आँखें नीची करलीं।

उसकी आँखों में कुमार को अपना ही प्रतिबिम्ब दिखाई दिया।

+ + +

अंजली रानी बन गयी। पहले वह दासी थी। अब उसके लिए सहस्रों दास-दासी प्रतीक्षा करते! उसके एक इंगित पर सहस्रों योद्धा तलवारें खींच लेते! जिन

पार्षदों ने उसके विवाह का विरोध किया था, वे अब उसकी कृपा-कोर के भिखारी थे ।

अंजली की गोद भरी थी । उसके तन, मन, प्राण परिपूर्ण थे ।

सेनगुप्त पर अब भी वही नशा था, जो अंजली को देखने पर पहले दिन चढ़ा था । वरन, उसका मद दिन-दिन बढ़ता जा रहा था ।

अंजली राज्यकार्य में भी राजा की सहचरी बनी । उसने कृषकों को विविध सुविधाएँ दीं । कई प्रकार के राजस्व करों में कमी की । दासों ने उसे साक्षात स्वतन्त्रता और मुक्ति के रूप में देखा ।

+ \+ \+

दिन बीत रहे थे ।

सेनगुप्त के जन्म-दिवस पर सदा की तरह इस बार भी मंगल-आयोजन मनाये गये । वसन्तोत्सव की वेला थी । राजधानी उत्साह और उल्लास की तरंगों पर झूल रही थी ।

जनपद कल्याणी का नाच था ।

राजरानी और पार्षदों ने देखा । गुणियों और ज्ञानियों ने उसे मुक्त-कंठ से सराहा । सचमुच, कल्याणी योजनगंधा की पद-गति ऐसी ही थी । जिधर जाती थी, पद-पद पर पद्म पुष्प खिलाती थी ! उसकी अस्थिर देह में वक्ष की स्थिरता दर्शनीय थी । पदांगुलियों पर स्वयं नाचती थी तथा संसार को नचाती थी ! और इन सबसे परे, और इन सबसे अलग थी उसके यौवन की उन्मादकता, जो सम्पूर्ण जनपद में अलभ्य थी । उसके रूप, रस, तन-यौवन की उन्मद गंध एक योजन तक जाती थी,—इसी से उसका नाम योजनगंधा था ।

नृत्य की समाप्ति पर महाराज प्रसन्न थे । योजनगंधा प्रसन्न थी । सभी प्रसन्न थे । अकेली अंजली के मन में अनजानी आशंका का दाह था । महाराज सेनगुप्त की दृष्टि अपनी सीमा से बाहर गयी, मर्यादा की धर्म-रेखा का उल्लंघन कर चली यह कोई न जान पाया, पर अंजली जान गयी ।

वह न जानती तो कौन जानता ?

और उस रात्रि अपने शिशु को छाती से चिपटाए वह रात भर रोती रही । और महाराज पूरी रात बाहर रहे । उसके आँसू न थमे ।—

वह रानी नहीं, दासी नहीं, मानवी है, नारी है, माँ है । आज उसे ज्ञात हुआ, कोई राजा बनकर कोई रानी बनकर भी कितनी दुखी हो सकती है !

अंजली ने मन को समझाया—राजा की दृष्टि योजनगंधा पर नहीं, उसकी

कला पर होगी। कुमार ऐसे नहीं हो सकते। उसके 'कुमार' जिनका सपना उसने देखा था। उसका सपना, जो साकार हो गया था!

चार वर्ष पूर्व का कुमार उसकी स्मृति में आया। कितना निरीह और भोला! सरल और उदार! प्रेम के लिए प्राणों को तृण समझने वाला! सुन्दर और सरस··· और वैसा ही, वैसा ही है शिशु—कुमार का, अंजली का बेटा, मालव गणराज्य का युवराज···'राजा बनेगा तू···राजा बनेगा तू···?'····

रानी भावी के सपनों में खो गयी। सो गयी।

× × × ×

दिन सूने और बोझिल हो गये। कल जो रुई के गोलों से उड़ते जाते थे, आज वे भीगी राख की तरह भारी हो गये!

अंजली अकेली पड़ती गयी। महाराज से उसकी दूरी बढ़ती गयी।

सेनगुप्त विक्षिप्त थे। उनके मनमें एक ही पुकार थी—योजनगंधा!

योजनगंधा का प्रभाव एक योजन था। सेनगुप्त को समस्त सृष्टि में वही दृष्टि आती थी।

अंजली उनके मनसे उतर गयी। पुरुष की आँख और मन का क्या भरोसा? कहाँ अंजली, कहाँ योजनगंधा! कहाँ दासी कन्या, कहाँ जनपद-कल्याणी! एक कुम्हलाया हुआ फूल, दूसरी अछूती अनखिली कली!

अंजली भी महाराज को भूल गयी। भौतिक देहधारी सेनगुप्त से अब उसका कोई सम्बन्ध न रहा। लेकिन, चार वर्ष पूर्व मन में जो मूरत बसायी थी, वह अब भी वैसी ही थी। चाह कर वह बहुत कुछ कर सकती थी! पार्षद, सेनापति, मांडलिक, प्रजाजन सभी उसके इंगित पर विद्रोह कर सकते थे। किन्तु, किससे वह विद्रोह करे। मन में आज तक जिसकी प्रतिमा को पूजा है, अश्रुमुक्ताओं से जिसके चरणों की अर्चना की है, उसी सेनगुप्त से?

एक दिन उससे न रहा गया। कह दिया—"यदि चाहो तो कल्याणी को यहीं रखलो, मैं कुछ न कहूँगी। तुम अब भी मेरे लिए वही कुमार हो।"

"लेकिन तुम मेरे लिए राजरानी नहीं हो।"

"फिर कौन हूं?"—अंजली की भौंहे तन गयीं।

"दासी—दासी की पुत्री।"

सेनगुप्त की पुरुष की पाषाणी कठोरता देखकर अंजली को बड़ी लज्जा आयी।

"यह तो तुम्हें मालूम था कि मैं दासी-पुत्री हूं। प्रथम परिचय के पल ही तुमने यह क्यों नहीं कह दिया था? उसी दिन तुम मेरा तिरस्कार करते तो मैं तुम्हें जानती! और कुमार·······क्या दास मनुष्य नहीं होते? क्या गुप्त वंश के व्यभिचरित

सामन्त और आभिजात्य श्रेष्ठियों की जन-कल्याणी कुल कन्याएँ ही 'मनुष्य' हैं ? क्या तुमने हमें मात्र सेवा, भोग और विलास की वस्तु माना है ?

"जानती हो, किससे बात कर रही हो ?"

"एक तस्कर से, छलिया और उचक्के से ! जो एक रात अपनी विधवा दासी की अबोध कन्या के कक्ष में चोर की भाँति प्रविष्ट हुआ था, पर उस निरीह ने कुमार मानकर ही उसका स्वागत किया था !···

···"मैं नहीं जानती थी, गुप्त कुल के चन्दन-वृक्ष पर भुजंग लिपटे हैं। मैं आज दासी नहीं हूं, मालव-गणराज्य की महारानी हूँ। युवराज की जननी हूँ। कुमार अपने स्वार्थ में अन्धे बन रहे हो। तुम मुझे बाहर निकाल दो, पर दासी कहकर मनुष्यत्व का अपमान मत करो। मैं तुम्हें दिखा सकती हूँ कि दासी पुत्री क्या कर सकती है, परन्तु, अपने मन के महाराज, कुमार के विरुद्ध मैं कैसे जाऊं ? सेनगुप्त····सेनगुप्त तुम पछताओगे··तुम्हारे मन में जागा यह स्वार्थ और अभिमान का विनाशक नाग गुप्त-वंश को डस जायगा।"····

"मैं जाती हूं। नहीं नहीं, अपने शिशु को दासी-पुत्र को मैं इस नरक में नहीं रहने दूंगी। उसे मत छूओ।····तुम्हारी परछाई भी उसके लिए कालिख है। इतना याद रखना कि जिसने तुम्हें सर्वस्व दिया था उसे एक वैश्या के चंगुल में फँसकर तुमने "दासी" कहकर दूर कर दिया था ?"···

फिर महारानी अंजली अपने शिशु को लिए अन्धकार में ओझल हो गयीं।

+ + +

और एक दिन, सूने कक्ष में उदास बैठा सेनगुप्त अपने पिता के कागज-पत्र पढ़ रहा था। मन्त्रियों, दण्ड-धारियों, अधिवक्ताओं और विविध प्रकार के विचित्र व्यक्तियों के रहस्यमय पत्र थे। फिर लाल चीनांशुक में लिपटा एक पुर्जा हाथ लगा। स्वर्गीय महाराज के नाम था—

'प्रिय, मेरा अन्त निकट है। मैं यह जानकर प्रसन्नता-पूर्वक मर रही हूँ कि मेरा बेटा सेनगुप्त महामालव की गरिमामयी गद्दी पर आसीन होगा। देखना, उस पर कभी यह प्रकट न हो कि वह राजमहल की एक सेविका का—दीन-दरिद्र दासी का पुत्र है।···"

सेनगुप्त चौंक कर उछल पड़ा। उसके हृदय का स्पन्दन बढ़ चला। वातायन में आकर खड़ा हुआ। उसे लगा कि जैसे, सामने अन्धकार में तैरती अंजली अट्टहास कर रही है !

धरती का श्रृंगार

प्रो० विनोद रस्तोगी

करना है श्रृंगार यार इस धरती का !

कुचल रहे विज्ञान-ज्ञान के क्रूर कदम,
शल्य-क्रिया से प्रकृति-अंग कुत्सित सारे।
गिरि-गह्वर, नद-निर्झर-सागर, वन-उपवन,
अपनी छवि खो चुके आज हैं बेचारे !!
फूलों का रस-रंग-राग लौटाना है;
फूलों से धरती का रूप सजाना है;
आसमान के तारे उन्हें मुबारक जो—
समझ न पाते प्यार यार इस धरती का !!

राज्य धर्म-वर्णों की तीखी चोंचों से
बाजों ने धरती को नोचा-काटा है।
गिद्धों के लालच ने इसे कुरूप किया,
बटमारों ने मिलकर इसको बाँटा है !
हम इन झूठी सीमाओं को तोड़ेंगे;
हम खूनी तूफानों का रुख मोड़ेंगे;
'मानव-संस्कृति है अभिन्न अविभाज्य अरे !'
यह सच्चा अधिकार यार इस धरती का !!

उद्जन बम कर सकते नष्ट न युग युग तक
इस धरती की मिट्टी का गुरु आकर्षण।
धरती आज नहीं वीरों की, सबकी है,
फूले और फलेगा इस पर जन-जीवन ॥
दानव के पंजों से इसे बचाना है;
मानव की धरती को स्वर्ग बनाना है;
युद्ध-श्रमा के बाद शान्ति-सुख की शीतल—
पूनम ही आधार यार इस धरती का ॥

लौकिक प्रेमाख्यान धारा

श्री हरिहरनिवास द्विवेदी

हिन्दी के प्रेमाख्यानों पर जब विचार करते हैं, उनके मोटे रूप से दो वर्ग दिखाई देते हैं। पहले वर्ग में साम्प्रदायिक अथवा धार्मिकता सापेक्ष प्रेमाख्यान आते हैं और दूसरे वर्ग में साम्प्रदायिक निरपेक्ष प्रेमाख्यान हैं। प्रथम वर्ग की स्पष्टत: दो धाराएँ हैं। पहली धारा में भारतीय भक्तिपद्धति के आधार पर लिखे गये प्रेमाख्यान हैं जिनकी प्रतिनिधि रचना नन्ददास की रूपमंजरी है। दूसरी धारा में सूफियों के अभारतीय साधना-मूलक प्रेमाख्यान हैं जिनका प्रतिनिधि ग्रन्थ मलिक मुहम्मद जायसी का पद्मावत है। दूसरे वर्ग में भी दो धाराएँ दिखाई देती हैं। साम्प्रदाय निरपेक्ष प्रेमाख्यान की एक धारा वह है जिसमें पौराणिक अथवा ऐतिहासिक व्यक्तियों के सम्बन्ध में प्रेमाख्यान रचे गये हैं। इस प्रकार के प्रेमाख्यान ऊषा-अनिरुद्ध, ढोला मारवणी, गोरा बादल-पद्मिनी की अनुश्रुतियों को लेकर रची गये हैं। सम्प्रदाय निरपेक्ष प्रेमाख्यान की दूसरी धारा वह है जिसे हम लौकिक प्रेमाख्यान कहते हैं। इस धारा में वे प्रेमकथाएँ आती हैं जो काल्पनिक कथानकों के आधार पर लिखी गयी हैं। प्रेमाख्यान काव्यों का यह वर्गीकरण संक्षेप में निम्न प्रकार से है—

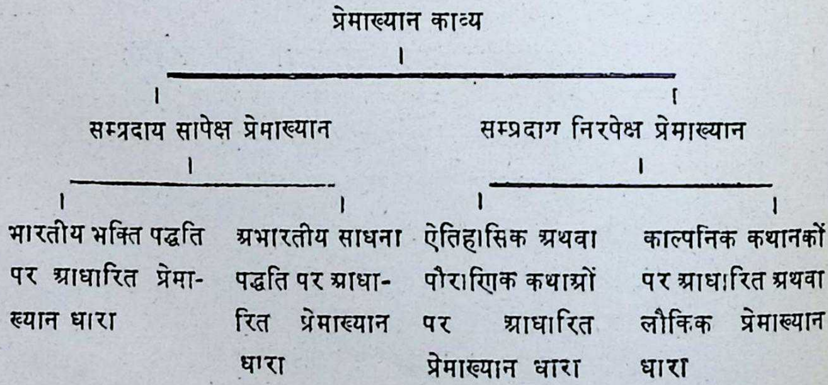

- प्रेमाख्यान काव्य
  - सम्प्रदाय सापेक्ष प्रेमाख्यान
    - भारतीय भक्ति पद्धति पर आधारित प्रेमाख्यान धारा
    - अभारतीय साधना पद्धति पर आधारित प्रेमाख्यान धारा
  - सम्प्रदाग निरपेक्ष प्रेमाख्यान
    - ऐतिहासिक अथवा पौराणिक कथाओं पर आधारित प्रेमाख्यान धारा
    - काल्पनिक कथानकों पर आधारित अथवा लौकिक प्रेमाख्यान धारा

इस वर्गीकरण में यह बात स्मरणीय है कि इनकी हदबन्दी पूर्ण नहीं है, न हो सकती है। सूफ़ी प्रेमाख्यानों में ऐतिहासिक व्यक्तियों की कथाओं को भी आधार बनाया गया है। सम्प्रदाय निरपेक्ष प्रेमाख्यानों से ऐतिहासिक और लौकिक प्रेमाख्यानों का अन्तर कभी-कभी केवल शीर्षक, नायक, नायिका एवं पात्रों के नामों का ही रह

जाता है । ऊषा-अनिरुद्ध, ढोला-मारवणी, गोरा-बादल, पद्मिनी लक्ष्मणसेन प्रेमाख्यानों में केवल पौराणिक अथवा ऐतिहासिक नाम मात्र रह जाते हैं, उनका रूप कथा में नितान्त काल्पनिक बन जाता है । इसके विपरीत विशुद्ध लौकिक प्रेमाख्यानों में भी अवतारवाद की पुट आ जाती है । चतुर्भुजदास की मधुमालती के प्रेमाख्यान में भी मनोहर और मालती को काम का अंश बनाकर उसे प्रद्युम्न की कथा कह दिया गया है, केवल उसमें पूज्य भावना अथवा लोकोत्तरता लाने के आशय से । वास्तव में हिन्दी में सम्प्रदाय निरपेक्ष प्रेमाख्यानों में ऐतिहासिक प्रेमाख्यान भी लौकिक प्रेमाख्यानों के रूप में ही अधिक लिखे गये हैं । उनके नामों और कुछ मोटी मोटी घटनाओं के अतिरिक्त अन्य विस्तार में ऐतिहासिकता तलाशना व्यर्थ-प्रयास ही होगा । जो इतिहास को प्रमुखता देकर प्रबन्ध काव्य लिखे गये हैं, वे प्रेमाख्यान न होकर हम्मीर हठ आदि के समान ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्य बन गये हैं, न कि प्रेमाख्यान ।

यह प्रकार लौकिक प्रेमाख्यानों की धारा—जिसमें वह धारा भी सम्मिलित है जिसमें नाम केवल इतिहास के हैं, शेष सब काल्पनिक है—हिन्दी साहित्य में बहुत प्राचीन काल से चल रही है । इसका मूल हमें जैन साहित्य की प्रेम कथाओं में मिलता है और हिन्दी में भी वह जैनाचार्यों द्वारा बहुत अधिक पोषित हुई है ।

यह लौकिक प्रेमाख्यान-धारा हिन्दी-साहित्य के इतिहास में बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण है । ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्यों के समान कुछ राजाओं की जीवन कथा की शृंखलाएँ इस धारा की रचनाओं में भले ही न हों, परन्तु इनमें उस समय के समाज का सच्चा एवं खरा इतिहास अवश्य मिलेगा । ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्य लिखने वाले राजाश्रित कवियों के मार्ग में अनेक बाधाएँ थीं । उनका चित्र वास्तविक मान लेने से कभी बड़ी भूल हो सकती है । इसी प्रकार सम्प्रदाय सापेक्ष प्रबन्ध काव्य भी समाज का सही चित्र रखने में असमर्थ ही रहते हैं । तुलसी के राम चरित मानस में तत्कालीन लोक जीवन और सामाजिक स्थिति खोजने के प्रयास अधिक सफल नहीं हो सकते । उनके सामने उस आदर्श समाज की कल्पना थी जिस पर वे समाज को चलाना चाहते थे । तुलसी ने नारी और शूद्र को निम्न स्थान न दिया होता यदि उनके आदर्श समाज में उनका वह स्थान न होता । जो समाज-व्यवहार उन्हें पसन्द नहीं थे उनको वे कलिकाल का प्रभाव बतला कर भर्त्सना ही कर सकते थे, यह उनका साम्प्रदायिक कर्त्तव्य था । लौकिक प्रेमाख्यानकार के सामने ऐसा कोई बन्धन नहीं था । उसकी रचना में तो सामाजिक रूढ़ियाँ, विश्वास या अन्ध विश्वास अनायास ही आये हैं । इस प्रकार तत्कालीन समाज के मानस की वास्तविक जानकारी, समाज का सच्चा इतिहास इसी लौकिक प्रेमाख्यान-धारा में मिल सकता हैं ।

हिन्दी भाषा के विकास के अध्ययन की दृष्टि से भी इस लौकिक प्रेमाख्यान-

धारा का अध्ययन बहुत महत्त्वपूर्ण है। इनकी रचना मध्यदेश की बोली में हुई है। ईसवी चौदहवीं शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी तक मध्यदेश की बोली ने हिन्दी के सभी रूपों को प्रभावित किया। कबीर का साहित्य इसी बोली में है। इसका परिमार्जन इसी लौकिक प्रेमाख्यान-धारा में हुआ। आगे चलकर इसके ही पश्चिमी रूप को राजस्थानी कहा गया। यही मालवे में मालवी कही गयी। उत्तर में इसको ब्रज कहा गया। पूर्व में बिलकुल ठेठ देशज अवधी को छोड़कर साहित्यिक अवधी पर इसकी छाप स्पष्ट है। चित्रकूट में रमने वाले गोस्वामी तुलसीदास के रामचरित मानस में "अवध भुआल" की महिमा होने के कारण कुछ क्रियापद अवधी के भले ही हों, परन्तु उस पर मध्यदेश की बोली की छाप प्रत्यक्ष है। इसके राजस्थानी, मालवी, ब्रज और किसी सीमा तक अवधी रूप बनाकर आज बुन्देली नाम से सीमित कर दिया गया है और उसका विवेचन आज के बुन्देलखण्ड के देशज शब्दों के एवं उच्चारणों के आधार पर किया जाता है। वास्तव में ईसवी चौदहवीं से सोलहवीं शताब्दी तक का वह काल है जब हिन्दी की (श्री चन्द्रबली पांडे के शब्दों में*) टकसाल ग्वालियर मानी जाती थी जो (फकीरुल्ला सैदखाँ के शब्दों में†) सुदेश का केन्द्र था और जिसके उत्तर में मथुरा तक का प्रदेश था, अथवा (केशवदास के शब्दों में‡) जो देशों की मणि था और जहाँ के लोगों के मुख में "सुभाषा" रहती थी। इस लौकिक प्रेमाख्यान-धारा की भाषा के अध्ययन के अभाव में ही केवल सुविधा की दृष्टि से तथा भगवान् कृष्ण की लीला-भूमि को महत्त्व देने के साम्प्रदायिक आग्रह के कारण मध्यदेश की बोली को ब्रज भाषा की संज्ञा दी गयी। कबीर और तुलसी-केशव-सूर की भाषा के बीच की कड़ी मध्यदेश की इसी लौकिक प्रेमाख्यान-धारा में है, जिसके अत्यधिक प्रचार को देखकर गोस्वामी तुलसीदास को लिखना पड़ा था—

कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना।
सिर धुनि गिरा लागि पछताना।।

सम्प्रदाय सापेक्ष प्रेमाख्यानों की दोनों धाराओं का ही आज तक सम्यक अध्ययन और प्रकाशन हुआ है। परन्तु यह कुछ आश्चर्यजनक ही है कि सम्प्रदाय निरपेक्ष प्रेमाख्यानों में से अधिकांश हस्तलिखित ग्रन्थों के संग्रहालयों में ही बन्द हैं। जायसी की प्रतिभा एवं कवित्वशक्ति सूफी प्रेमाख्यानों की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट करने में अधिक सहायक हुई, साथ ही उनकी पुस्तकों की प्रतियों एवं उनके

---

* अनुराग बाँसुरी (चन्द्रबली पाँडे) पृष्ठ ६।
† मानसिंह और मानकुतूहल (हरिहरनिवास द्विवेदी) पृष्ठ १५६
‡ वहीं, पृष्ठ १५४

पाठों का संरक्षण उनके सम्प्रदायों अथवा शिष्य परम्पराओं ने किया। लौकिक प्रेमाख्यानों में जो रचना जितनी अधिक लोकप्रिय हुई उसके पाठ के साथ प्रतिलिपिकारों ने उतनी ही स्वच्छन्दता बरती। जिस प्रकार लोक कथाएँ लोक सम्पत्ति होती हैं, लगभग वैसा ही व्यवहार इन लौकिक प्रेमाख्यान-धारा की रचनाओं के साथ हुआ। चतुर्भुजदास की मधुमालती में मूल रूप में ६७० छन्द थे, परन्तु उसमें अनेक उपकथाएँ जोड़कर उसमें २००० से ऊपर तक छन्द कर दिये गये। शब्दों को भी अपनी रुचि के अनुसार तोड़-मरोड़ दिया और कहीं-कहीं तो व्यक्तिगत विश्वासों के अनुसार कुछ अंश लुप्त ही कर दिये। जहाँ चतुर्भुजदास ने मधुमालती की कथा की श्रेष्ठता बतलाते हुए लिखा है—"चारि वरन में विप्र ज्यों"—वह चरण कुछ जैन प्रतिलिपिकारों ने लिखा ही नहीं और केवल तीन चरण ही उतार दिये। तात्पर्य यह कि इस प्रकार के पाठों में से मूल पाठ निकाल लेना भी सरल नहीं है।

कार्य कठिन भले ही हो, परन्तु उसे किये बिना हिन्दी साहित्य के विकास का इतिहास अधूरा ही रहेगा इसमें सन्देह नहीं। जिस साहित्य-धारा ने चार-पाँच शताब्दियों तक निरन्तर जनमन रंजन किया और जिसका मूल पिछली एक-डेढ़ सहस्राब्दी की परम्परा में है, वह भले ही राम-चरित-मानस अथवा पद्मावत की कोटि की न हो, परन्तु अध्ययन की दृष्टि से वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उसको समझे बिना इन महान् प्रबन्ध काव्यों की विचार-धारा, पुष्ट शैली और परिमार्जित भाषा की कोटि को प्राप्त होने के विकास-क्रम को पूर्ण रूपेण हृदयंगम कर सकना सम्भव नहीं है।

हिन्दी की लौकिक प्रेमाख्यान-धारा की रचनाएँ कबीर के रचना काल के लगभग ही प्रारम्भ हो गयी थीं।

लौकिक प्रेमाख्यान धारा की जिन रचनाओं की सूचनाएँ अब तक मिली हैं वे अधिकांश में (एक दो को छोड़कर) हस्तलिखित रूप में ही यत्रतत्र संग्रहीत हैं। इनमें से सबसे प्राचीन, ईसवी पन्द्रहवीं शताब्दी की दामो कृत लक्ष्मणसेन पद्मावती कथा (वि० सं० १५१६), परमानन्द कृत ऊषाहरण (वि० सं० १५१२) तथा चतुर्भुजदास कृत मधुमालती हैं। इसके पश्चात् ईसवी सोलहवीं शताब्दी की रचनाओं में हरराम कृत ढोला मारवणी चौपाई (वि० सं० १६०७), हरिराम कृत माधवानल-कामकन्दला (वि० सं० १६४०), ईश्वरदास कृत सत्यवती की कथा, कृष्णदास कृत मैनासत के उत्तर (वि० सं० १६२८), हेमरतन कृत गोराबादल पद्मिनी चौपाई (वि० सं० १६४५), कुशललाभ कृत माधवानल-कामकन्दला (वि० सं० १६१६) तथा ढोला मारवणी हैं।

ईसवी सत्रहवीं शताब्दी के लौकिक प्रेमाख्यानों में लक्ष्योदय या लालचन्द का पद्मिनी चरित्र (वि० सं० १७०२), मेघराज प्रधान कृत मृगावती की कथा (वि०

सं० १७२३) तथा मकरध्वज की कथा; जटमल नाहर कृत प्रेमविलास प्रेमलता कथा
(वि० सं० १६९३) तथा गोराबादल की बात; समर सुन्दर कृत मृगावती (वि० सं०
१६६८); हरिसेवक कृत कामरूप की कथा; जान कृत रत्नावती; कनकावती तथा पुहप·
बरखा; पुहकर कवि कृत रसरतन; रतनरंग कृत छिताई की कथा; रेडमुनि कृत सुर·
सुन्दरी चरित्र; लालचन्द कृत पद्मावती चरित्र; अज्ञात कवि कृत सारंगा सदैवृक्षरा दूहा
हैं। बीजों कृत सोरठरा दूहा और दात कृत मदनसतक भी इसी समय के ज्ञात होते हैं।
ईसवी अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी में राजस्थान में लौकिक प्रेमाख्यान
'बात' नामक अनेक रचनाओं के रूप में दिखाई दीं।
इस विशाल हस्तलिखित साहित्य-धारा का एक स्थान पर एक व्यक्ति द्वारा
अध्ययन एवं सम्पादन कल्पना से परे है। इनमें से दो-एक ग्रन्थ ही प्रकाशित हुए हैं
और कुछ के विषय में कुछ लेख भी लिखे गये हैं। इससे आगे अभी कोई कार्य
नहीं हुआ।

इन समस्त रचनाओं में पिछली शताब्दियों में सबसे अधिक प्रचार चतुर्भुजदास निगम की मधुमालती का रहा है। वह मध्यदेश की बोली की इस धारा की प्रतिनिधि रचना भी है।

मेरा जीवन ध्रुव सा अविचल

डा० रामानन्द

मेरा जीवन ध्रुव-सा अविचल।

सोने का रवि ओ' रजत सोम,
नक्षत्र भरा वह अखिल व्योम,
करते प्रदक्षिणा-सी प्रतिपल।

वह वर्तमान पल का प्रतीत,
बनता भविष्य रहता अतीत,
वह सदा दूर का माया-जल।

रजनी का दिन, दिन की रजनी,
बनता प्रियतम, बनती सजनी,
चिर मिलन-हीन अभिसार नवल।

प्रातः संध्या के क्षणिक लास,
करते रहते छाया-प्रकाश,
चिर आँखमिचौनी-सी चंचल।

मैं शाश्वत आत्मा-सा विशुद्ध,
चिर ज्योतिरूप ओ' चिर प्रबुद्ध,
पथहीन स्वयं, जग-पथ-उज्ज्वल।

रेणु की गुड़िया

— राजेन्द्र किशोर —

१

अभी दफ्तर से लौट कर कपड़े उतार ही रहा था कि दरवाजे पर किन्हीं नन्हे हाथों की थपकियाँ सुन कर दरवाजा खोल देना पड़ा। देखा, रेणु दरवाजे के पास एकदम उदास, मुँह लटकाये खड़ी है। मुझे उसकी इस मुद्रा पर जोर की हँसी आई किन्तु इस डर से कि कहीं उसकी यह मुद्रा टूट न जाय, मैंने अपनी हँसी को भरसक दबाने की कोशिश करते हुए पूछा—"क्या बात है, रेणु? आज फिर पुराना दुख जाग उठा है?"

रेणु ने कोई जवाब नहीं दिया। उसी तरह मुँह लटकाये खड़ी रही। कुछ बोली नहीं। आज वह और दिनों से कुछ अधिक गंभीर मालूम पड़ती थी।

एकाएक रेणु जाने के लिए मुड़ी। मैंने टोका नहीं, चुपचाप कनखियों से देखता रहा। पर वह गयी नहीं, खड़ी रही। थोड़ी देर प्रतीक्षा करने के बाद मौन को तोड़ते हुए मुझे धीरे से पुकारा- "राज दादा"!

"क्या है री?" मैंने पूछा।

"मैं आज से आप से एकदम नहीं बोलूंगी। कुट्टी!"

मुझे हँसी आ गयी। दौड़कर उसे गोद में उठा लिया। पूछा-"क्या बात है? आज अपने राज दादा से एकदम कुट्टी कर लेने का इरादा कर लिया है?"

"हाँ!" उसने उसी तरह मुँह लटकाये हुए कहा—"क्यों बोलूंगी आपसे? नहीं बोलूँगी! कभी नहीं बोलूँगी! एकदम नहीं बोलूँगी!"

"मगर आखिर कोई बात भी हो।" मैंने हँसते हुए कहा।

"बात कैसे नहीं है भला? मैंने आपसे लाख बार कहा कि मेरी गुड़िया स्यानी हो गयी। उसके लिए एक अच्छा सा दूल्हा ढूँढ दीजिए। मगर आप रोज भूल जाते हैं। फिर आपके साथ दोस्ती कैसी? एँ?"

"ओफ्-ओ! अब समझा!" मैंने भी गंभीर बनने की कोशिश करते हुए कहा-"ठीक। यह तो मैं भूल ही जाता हूँ कि तुम्हारी गुड़िया स्यानी हो गयी और मुझे इसके लिए कोई दूल्हा ढूँढ देना चाहिए। अच्छा, कल जरूर उसके लिए कोई दूल्हा ढूँढ दूँगा। अब तो दोस्ती करोगी न?"

"नहीं! नहीं! नहीं! हजार बार नहीं!!" उसने गोद से उतरते हुए कहा-

"आपका क्या ? आप कल फिर भूल जाएँगे।" और इससे पहले कि मैं उसे पकड़ूँ, वह दौड़ कर भाग गयी।

और सचमुच यह एक बड़ी समस्या है। रेणु की गुड़िया सयानी हो गयी है। उसके लिए कोई योग्य दूल्हा ढूँढना ही पड़ेगा। और यह दूल्हा रेणु के राज दादा को ही ढूँढना पड़ेगा। दूसरों का क्या भरोसा ? कहीं काना-कुबड़ा ढूँढ़ दें तो ? रेणु की गुड़िया सयानी हो गयी है—इसकी फिक्र उसकी माँ को भी है और उसके मामा को भी। दूल्हा ढूँढा भी गया मगर रेणु को पसन्द नहीं आया। वह दूल्हा अच्छा हो ही कैसे सकता है जिसे रेणु के राज दादा ने नहीं ढूँढ़ा ?

किन्तु सबसे बड़ी समस्या तो यह है कि रेणु की गुड़िया के लिए दूल्हा ढूँढ़ा कहाँ से जाय ? अपने राम के मित्रों में ऐसा एक भी खुश-किस्मत नहीं है, जिस के यहाँ रेणु की 'सयानी' गुड़िया के लिए योग्य वर उपस्थित हो। सच तो यह है कि रेणु के राज दादा के सारे मित्र क्वांरे हैं !

खैर, इस समस्या पर फिर कल विचार करने का निश्चय कर मैं अपने काम में लग गया। रात हो गयी थी और दफ्तर के बहुत सारे कागजों को देखना था। उन्हीं में उलझ गया। कब रात को नौ बज गये, पता नहीं चला। ध्यान तब टूटा जब दरवाजे पर फिर नन्हे हाथों की थपकियाँ सुन पड़ीं। उठकर दरवाजा खोल दिया। देखा, रेणु खड़ी है। मैं कुछ बोला नहीं। लौट कर फिर कुर्सी पर जम गया। रेणु कुछ क्षण दरवाजे पर खड़ी रही, फिर आकर मेरी कुर्सी से लगकर खड़ी हो गयी। मुझे आहिस्ता से पुकारा—"राज दादा !" परन्तु मैंने कोई जवाब नहीं दिया। उठती हुई हँसी को जबरन दबाये बैठा रहा। रेणु और पास सरक आयी। मेरे बालों को उँगलियों में लपेटकर कुछ-कुछ खींचते हुए फिर पुकारा—"राज दादा !" और कोई जवाब न पाकर बालों को खींचते हुए चीख उठी "सुनते हैं राज दादा ? हजार घण्टे से पुकार रही हूँ। माँ बुलाती हैं।"

मैंने अपने को खूब गंभीर बनाये रख कर भारी स्वर में जवाब दिया—'नहीं जाऊँगा, जाओ।"

"क्यों नहीं जाइएगा भला ?"

"नहीं जाऊँगा, नहीं जाऊँगा ! मेरा मन। नहीं जाऊँगा।"

रेणु इस बार एकदम खामोश हो गयी। मैं अपने को कागजों में उलझाये रखने का प्रयत्न करता रहा। एकाएक मेरा ध्यान कुछ थोड़ी-सी सिसकियों ने तोड़ दिया। अब मैं अपने को और अधिक न रोक सका। उठकर उसे गोद में उठा लिया। जोर से सिसक उठी।

मैंने समझाने की कोशिश की- 'चलो चलो। रोने लगी ? बस ? अभी तो कुट्टी करके गयी थी न ?"

रेणु की सिसकियाँ स्वर में फूट पड़ीं–"मैंने कुट्टी सचमुच थोड़े ही की थी।" "ओह"- मुझे हँसी आ गयी "अच्छा, तो अब दोस्ती कर लो।" और उसे गोद में उठाये हुए उसकी माँ के पास चल पड़ा।

२

यह रेणु मेरे जीवन में इस तरह घुल-मिल गयी है कि लगता है, अब इसके बिना मैं जीवित नहीं रह सकूंगा। मैं हूँ, इसलिए कि रेणु का राज दादा हूँ। पर आज से दो साल पहले तो मेरे लिए रेणु नहीं थी। तब ऐसा नहीं लगता था कि मेरे व्यक्तित्व का कोई अंग शून्य है। परन्तु आज जब रेणु है तो लगता है कि यदि यह नहीं होगी तो मेरे व्यक्तित्व का कोई अंग अवश्य शून्य हो जायगा।

यह रेणु मेरी अपनी बहन नहीं है और न मैं रेणु का अपना भाई हूँ। मगर रेणु मेरी अपनी बहन से अधिक मेरी बहन है। वह पड़ोस की एक विधवा मास्टरनी की बेटी है, जो अपने भाई के साथ रहकर रेणु की जिन्दगी बनाने की फिक्र में डूबी रहती है। आज से आठ साल पहले जब रेणु पैदा हुई थी, तभी उसके पिता उसे सदा-सर्वदा के लिए छोड़ कर चले गये। बहुधा रेणु मुझसे अपने पिता के बारे में पूछती है– "वे कहाँ हैं राज दादा ? माँ कहती हैं, वे बहुत दूर चले गये हे। मगर वह एक न एक दिन जरूर आयेंगे। वे कब आएंगे राज दादा ?" और मैं प्रयत्न करके भी जवाब नहीं दे पाता। रेणु बार-बार पूछती है, पर उत्तर नहीं पाती। तब वह मुझ से कुट्टी कर लेती है और भाग जाती है।

३

एक दिन संध्या समय मैं अपने मित्रों के साथ घूमने के लिए कमरे से निकला ही था कि दरवाजे पर ही रेणु मिल गयी। उसने दौड़कर पकड़ लिया और खींचते हुए बोली–"राजदादा, मेरी बड़ी गुड़िया है न, उसको लड़का हुआ है। उफ ! कितना सुन्दर है !!"

मैंने हँसते हुए उसकी पीठ थपथपा कर कहा—"चलो, छुट्टी हुई। अब तक तो तुम केवल गुड़ियों की माँ ही थीं, अब एक नाती की नानी भी हो गयीं।"

रेणु ने शर्माते हुए कहा—"धत् !" और भाग गयी। मैं मित्रों के साथ बढ़ा। मगर अभी दो-चार कदम ही गया होऊंगा कि रेणु "राज दादा ? राज दादा ?" पुकारती फिर आ पहुँची। हाँफती हुई बोली- "राजदादा, पहले चल कर गुड़िया के बच्चे को देख लीजिए, फिर कहीं जाइएगा।"

मैंने लाखों बहाने किये और अपने को छुड़ाने का प्रयत्न किया, मगर हार गया। समझाया भी कि मुझे बहुत-से जरूरी काम हैं, मेरा जाना जरूरी है। रात को आकर गुड़िया के बच्चे को जरूर देखेंगे। मगर तब कुट्टी की धमकी दे दी गयी और मुझे अपने सारे कार्यक्रम को रद्द कर देना पड़ा और उसकी सहेलियों के साथ बैठ कर सोहरा गाना पड़ा, तब कहीं फुर्सत मिली।

किन्तु तब भी फुर्सत कहाँ मिली? वहाँ से आकर कमरे में बैठा ही था कि वह फिर आ पहुँची। आते ही बोली—"एक बात कहूँ राज दादा?"

"कहो।" मैंने उसे गोद में खींचते हुए कहा।

"पहले कहिए कि आप जरूर कीजिएगा।"

"करेंगे भाई, करेंगे। जरूर करेंगे।" उसके कहने के अन्दाज का आनन्द लेते हुए मैंने कहा।

"मेरी गुड़िया को जो बच्चा हुआ है न, उसके लिए थोड़ा कपड़ा ला दीजिए।"

"ला दूँगा।" मैं आश्वासन के स्वर में कहा।

"नहीं, अभी ला दीजिए।" रेणु ने ठुनकते हुए कहा।

"बाप रे! इस रात को तो अब तुम्हारी गुड़िया के बच्चे के लिए कपड़ा लाने में नहीं जाऊँगा।" मैंने समझाया—"कल जरूर ला दूँगा।"

मगर रेणु ने जिद पकड़ ली—"नहीं, अभी ला दीजिए। रात को उसे जाड़ा नहीं लगेगा?"

"लगेगा बाबू, जरूर लगेगा। मगर आज मैं जाने का नहीं। आज माँ से कोई कपड़ा माँग लो। कल जरूर ला दूँगा।" मैंने थोड़ा झुँझला कर कहा।

रेणु ने फिर आग्रह नहीं किया। उठी और चल पड़ी। दरवाजे पर जाकर उसने मेरी तरफ देखा और "जाइए, आपसे कुट्टी" कहती भाग गयी।

और मेरे सिर एक नयी समस्या आ पड़ी। अब उसे मनाने की तरकीब सोचनी पड़ेगी। मैं इसी सोच में पड़ा था कि रेणु की माँ मेरे कमरे में आ उपस्थित हुईं। मुस्कराते हुए पूछा—"आज रेणु की अपने राज दादा से फिर लड़ाई हो गयी है क्या?"

"नहीं तो। क्यों?" मैंने उठते हुए प्रश्न किया।

"देखती हूँ कि रेणु बिस्तर पर पड़ी-पड़ी रो रही है। पूछने गयी तो कहती है, हम किसी से नहीं बोलेंगे, हमने सबसे कुट्टी कर ली है। यह बीमारी तो आपकी ही लगायी हुई है न, इसीलिए खबर देने चली आयी।" रेणु की माँ ने मुस्कराते हुए कहा।

रेणु की माँ के साथ जाकर मैंने देखा, रेणु बिस्तर पर पड़ी-पड़ी रो रही थी बहुत मनाया, समझाया, मगर वह दोस्ती करने को तैयार नहीं हुई। हार कर मु

अन्तिम तीर चलाना पड़ा—"अच्छा, मत बोलो। आज से हम भी कुट्टी किये लेते हैं।"

रेणु झट उठ बैठी। वह सब कुछ सह सकती है, मगर यह नहीं सह सकती कि उसके राज दादा उससे कुट्टी करलें। वह कुट्टी करती है, ठीक करती है। उसे अपने राज दादा से कुट्टी करने का अधिकार है। मगर राज दादा उससे कुट्टी नहीं कर सकते, कभी नहीं कर सकते।

और तब मुझे रात को रेणु की गुड़िया के बच्चे के लिए कपड़े लाकर देने पड़े, क्योंकि जब तक रेणु की उसके राज दादा से दोस्ती नहीं हो जाती, वह अपने आप से भी रूठी रहेगी।

४

कभी-कभी मैं रात-रात भर इस रेणु के बारे में सोचता हूँ। यह कौन है? कौन है यह जो मेरे जीवन में इस तरह समा गयी है कि मुझे अपने आपको भी ढूँढ़ना पड़ता है?

परन्तु आज से दो साल पहले तो ऐसा नहीं था। मैं यहाँ नया-नया आया था। जिस मकान में रहता हूँ, उसी की बगल में रेणु रहती है। महीनों गुजर गये किंतु मैं अकेला का अकेला रहा। बस एक दिन जब मैं दफ्तर से वापस आ रहा था, अपने मकान के बरामदे पर एक छः सात साल की लड़की को बैठे देख आश्चर्य हुआ। समीप पहुँच कर देखा तो उसकी मुद्रा से एकाएक हँसी आ गयी। मालूम पड़ता था कि वह किसी से अत्यंत रूठ गयी है। मैंने और समीप जाकर पूछा—"क्या नाम है तुम्हारा?"

उसने कोई जवाब न देकर अपना मुंह दूसरी ओर फेर लिया।

मैंने उसके समीप ही बैठते हुए फिर सवाल किया—"क्यों, बताते लाज लगती है क्या? तुम्हारा नाम क्या है?"

इस बार उसने अपनी मुद्रा को थोड़ा और गम्भीर बनाते हुए कहा—"नहीं, लाज क्यों लगेगी भला? मगर हम किसी से भी नहीं बोलेंगे। हमने सब से कुट्टी कर ली है।"

मुझे एकाएक जोर की हँसी आ गयी। उसे गोद में उठाते हुए मैंने कहा—"अच्छा, यह बात हैं? तो एक काम करो। केवल हमसे बोला करो। हाँ, हमसे तो कुट्टी नहीं हुई है न?"

मगर वह तुरन्त मेरी गोद से उतर गयी। बोली—"नहीं, हम किसी से नहीं बोलेंगे। हमने सबसे कुट्टी कर ली है।"

मगर दूसरे दिन जब हम मिले तो हम दोनों में दोस्ती हो गयी। बात-ही-बात

में मैं उसका राज दादा हो गया। कुछ देर तक इधर उधर की बातें करने के बाद मैंने उससे पूछा--"क्यों जी, तुमने सबसे कुट्टी क्यों कर ली है ?"

उसनें बड़े गम्भीर लहजे में जवाब दिया—"कुट्टी नहीं करती ? माँ से कई बार कहा कि मेरी गुड़िया के लिए एक अच्छा-सा दूल्हा ढूँढ़ दो, मगर वह रोज भूल जाती हैं। तब मैं क्यों किसी से बोलूँगी ? कभी नहीं बोलूँगी। एकदम नहीं बोलूँगी। आखिर मेरी गुड़िया सयानी हो गयी है कि नहीं ?"

मुझे हँसी आ गयी। यह रेणु जो खुद एक गुड़िया से ज्यादा नहीं, किस कदर बूढ़ियों-सी बातें करती है। हँसते हुए कहा---"अच्छा, मैं तुम्हारी गुड़िया के लिए दूल्हा जरूर ढूँढ दूँगा।"

"सच राज दादा ?"

"सच।"

और वह उछलती-कूदती अपने घर चली गयीं थी।

५

किन्तु आज फिर वही समस्या उठ खड़ी हुई है। रेणु मुझसे कुट्टी करके चली गयी है--एकदम, हमेशा के लिए। उसकी माँ आकर मेरे दरवाजे पर खड़ी हैं। रेणु ने दिन-भर कुछ खाया-पीया नहीं है। केवल बिस्तर पर पड़ी रोती रही है। किसी से बोलती भी नहीं। मनाने जाने पर अपना वही पुराना वाक्य दुहरा देती है-- "हम किसी से नहीं बोलेंगे। हमने सबसे कुट्टी कर ली है।"

किंतु समस्या तो यह है कि मैं उसकी गुड़िया के लिए दूल्हा कहाँ से लाऊँ ? गुड्डा तो कई बार ला चुका हूँ। मगर रेणु का कहना है कि उसे किसी अच्छे बाप का बेटा भी होना चाहिए। लावारिसों को वह अपना दामाद बनाने को तैयार नहीं।

उसकी माँ कहती है—"तो आप शादी कर लीजिए न। रेणु की गुड़िया के दूल्हे की समस्या आप ही हल हो जाएगी।"

मेरा कहना है कि समस्या का हल उतना आसान नहीं। यह ठीक है कि यदि मैं ब्याह कर लूँ तो रेणु की गुड़िया के दूल्हे की समस्या का समाधान किसी दिन उपस्थित हो जायगा अवश्य, परन्तु तब तक तो रेणु के लिए ही दूल्हा ढूंढ़ने के लिए मुझे दर-दर भटकना पड़ेगा। आज तो मैं बहाने करके उसे मना लेता हूँ, पर उस दिन मैं उससे कोई बहाना नहीं कर सकूँगा। और यदि कोई गलती हो गयी तो रेणु सचमुच हमेशा के लिए मुझसे कुट्टी कर लेगी और मैं उसे किसी भी तरह मना नहीं सकूँगा।

खैर, आज तो मैं उसे फिर मना लूंगा। मगर इससे समस्या हल नहीं हो जाती। सम्भव है, रेणु कल फिर कुट्टी कर ले।

गीत

— श्री सुन्दर लोहिया

आज मेरी भावनाओं का सितारा डूबता है ।

देखता हूँ आज नभ में पूर्णिमा का चाँद पूरा;
देखता हूँ आज मन में गीत मेरा है अधूरा,
आज मेरी कल्पनाओं का सहारा डूबता है ।

आज लहरें खेलती हैं चांद की गल बाँहियों में,
और चन्दा खेलता है लहर की गहराइयों में,
आज मेरी नाव से अब यह किनारा छूटता है ।

चाहता हूँ मैं किसी का प्यार पाकर जी सकूंगा,
चाहता हूँ मिलन के उपरान्त विष भी पी सकूंगा,
किन्तु मेरी कामना का बालशशि ही डूबता है ।

सहचिंतन सह अनुभूति

— आचार्य श्री विनोबा भावे —

[ता० २६ मार्च १९५५ को रात में पुरी में विनोबाजी की उपस्थिति में सर्वोदय-सम्मेलन में आये हुए साहित्यिकों व पत्रकारों की एक गोष्ठी का आयोजन किया गया था। प्रारम्भ में इस आयोजन की भूमिका श्री लक्ष्मीनारायण भारतीय ने स्पष्ट की एवं साहित्य क्षेत्र की गत्यवरोध की स्थिति प्रस्तुत करते हुए हिन्दी के ख्यातनामा साहित्यिक श्री रामवृक्ष बेनीपुरी से भाषण करने की प्रार्थना की। श्री बेनीपुरीजी ने साहित्यिकों के सहयोग के प्रश्न को लेकर ओजस्वी भाषण दिया और अन्त में कहा, "यहाँ आते समय मैंने दिनकर से सम्मेलन में चलने को कहते हुए सुनाया कि अरे भाई, चल विनोबा के पास। यही तो एक ऐसा आदमी है, जो हमको इतनी इज्जत देकर पूछता है और हमारी सही कीमत भी आँकता है!"

श्री बेनीपुरीजी के भाषण के बाद विनोबाजी ने 'साहित्यिकों से सहयोग' के प्रश्न को लेकर चिरन्तन स्वरूप का प्रभावशाली भाषण दिया, जो यहाँ पूरा का पूरा प्रस्तुत किया जा रहा है। —सं०]

साहित्यिकों की महिमा

तुकाराम का एक वचन है। परमेश्वर को सम्बोधित करके वह कहता
"तेरे नाम की महिमा तू नहीं जानता, हम जानते हैं।" वैसे ही साहित्यिकों की महि
साहित्यिक नहीं जानते। जो अपने लिए अभिमान रखने वाले साहित्यिक होते हैं
साहित्य का भी अभिमान तो रखते होंगे, परन्तु उसकी महिमा नहीं जानते। वे य
साहित्य की महिमा जानते होते, तो अभिमान न रखते। साहित्य की महिमा विशा
है। मुझे साहित्य की महिमा का भान इसलिए है कि मैं साहित्यिक नहीं हूँ। साहित्यि
न होने भर से उसकी महिमा का भान होता है, ऐसी बात नहीं। एक अवसर होता है
किसी को हासिल होता है, किसी को नहीं हासिल होता। मुझे वह अवसर हासि
हुआ—अनेक भाषाओं के साहित्य का आस्वादन करने का। हर एक भाषा का उ
विशेष साहित्य है, वही मेरे पढ़ने में आया है। उसका असर भी मुझ पर बहुत हुअ
है। इसलिए बेनीपुरीजी ने बिहार में जो बात कही--जहाँ मैं जाऊँ, वहाँ के साहित्यि
को बुलाने की—वह मुझे सहज ही हृदयग्राह्य हुई।

साहित्य याने अहिंसा

मैं अपने मन में जब साहित्य की व्याख्या करने जाता हूँ; व्याख्या करने व

मुझे शौक भी है, तब उसकी व्याख्या करता हूँ। 'साहित्य याने अहिंसा।" अब यह सुनकर लोग कहेंगे कि यह तो खब्ती है, हर जगह अहिंसा लाता है। परन्तु साहित्यकारों ने भी उसकी व्याख्या की है कि सर्वोत्तम साहित्य 'सूचक' होता है। "सूचक साहित्य" को सर्वोत्तम क्यों माना जाता है ? इसलिए कि वह सुनने वालों पर आक्रमण नहीं करता। किसी पर अगर उपदेश का प्रहार होने लगे, तो यद्यपि वह उपदेश हितकर हो, फिर भी उसका स्पर्श शीतल नहीं होता। बचपन में हम ईसप की नीतिकथाएँ पढ़ते थे, तो उनका तात्पर्य नीचे लिखा हुआ होता था। तात्पर्य याने न पढ़ने का अंश, ऐसा हम समझते थे। कथा का तात्पर्य अगर चन्द शब्दों में लिखा जा सका, तो मैं तो समझूँगा कि कथा लिखने वाले में कोई कला नहीं है। अभी बेनीपुरीजी ने कहा कि 'भूदान-यज्ञ शब्द किसके साहित्य में कितनी दफ़ा आया, इस पर से लोग हिसाब लगाते हैं कि यह साहित्य भूदान-यज्ञ का सहायक है या नहीं ?" इसके साहित्य में पचास बार भूदान-शब्द आया, उसके साहित्य में पाँच सौ बार आया, ऐसी सूची बनाते हैं और गिनती करते हैं !

साहित्य-बोध का अर्थ

उत्तम कृति का लक्षण यही है कि जैसे रामचन्द्र को देखने पर अनेक लोगों ने अनेक कल्पनाएँ अपनी-अपनी भावना के अनुसार कीं, वैसे ही जिस बोध से अनेकविध तात्पर्य निकलते हैं, वही साहित्य-बोध है। कानून की किताब में इससे बिल्कुल उलटी बात होती है। एक वाक्य में से एक ही अर्थ निकलना चाहिए, दूसरा नहीं निकलना चाहिए। अगर एक वाक्य से दो अर्थ निकले, तो वकीलों की कम्बख्ती आ जाती है। पर साहित्य की प्रकृति इससे बिल्कुल उलटी होती है। गीता उत्तम साहित्य है, रामायण उत्तम साहित्य है, क्योंकि उनके तात्पर्य के विषय में मतभेद है। जिस साहित्य के तात्पर्य के विषय में मतभेद न हो और तात्पर्य निश्चित कहा जा सके, तो उसमें साहित्य-शक्ति कम प्रकट होती है।

प्रसिद्ध ऋषि वाक्य है—परोक्षप्रियाः इव हि देवाः, प्रत्यक्ष-द्विषः। देव परोक्षप्रिय होते हैं। उन्हें परोक्षवाणी पसन्द आती है, प्रत्यक्षवाणी पसन्द नहीं आती। इसका मर्म भी यही है कि प्रत्यक्ष उपदेश में कुछ चुभने का माद्दा होता है। वाल्मीकि की रामायण जब हम पढ़ते हैं, तो उसमें बहुत ज्यादा उपदेश के वचन नहीं आते; कथा गंगा बहती जाती है, मनुष्य उसके साथ-साथ बहता जाता है। अनेक मनुष्यों को अनेकविध तात्पर्य हासिल होते हैं और एक ही मनुष्य को समयानुसार अनेकविध तात्पर्य हासिल होते हैं। साहित्य की विशेषता इस विविधता में है। इसलिए जब हम साहित्यिकों से कुछ अपेक्षा रखते हैं, तो इसका मतलब यह नहीं कि वे अपनी विशेषताओं

को छोड़ कर हमारा काम करें। उनकी विशेषता यही है कि साहित्य से विविध बोध मिलते हैं।

वाल्मीकि की प्रेरणा

ईश्वर के प्रेम के बारे में भक्तजन कहते हैं कि वह प्रेम अहेतुक होता है, उसमें हेतु नहीं होता। प्रेम करना ईश्वर का स्वभाव है। वैसे ही साहित्य में भी कोई हेतु नहीं होता। साहित्य एक स्वयम्भू वस्तु है। लेकिन हेतु रखने से जो नहीं सध सकता, वह साहित्य में बिना हेतु रखकर सधता है, यह साहित्य की खूबी है। गीता भी मुझे इसीलिए प्यारी है कि वह हेतु न रखना सिखाती हैं। वह एक ऐसा ग्रन्थ है, जो यहाँ तक कहने का साहस करता है कि निष्फल कार्य करो। निष्फल कार्य की प्रेरणा देनेवाला ऐसा दूसरा ग्रन्थ दुनियाँ में मैंने नहीं देखा। साथ ही साथ वह (गीता) जानती है कि जिसने फल की आशा छोड़ी, उसे अनन्त फल हासिल होता है। वाल्मीकि रामायण के आरम्भ की ऐसी ही कहानी है। शोकःश्लोकत्वमागतः। यत्क्रौंच मिथुनादेकम्-क्रौंचमिथुन का वियोग वाल्मीकि को सहन नहीं हुआ, शोक हुआ और उसकी वाणी से सहज ही श्लोक निकल पड़ा। उसे मालूम भी नहीं था कि उसका शोक श्लोकाकार बना। बाद मे नारद ने आकर कहा कि 'तेरे मुँह से यह श्लोक निकला है। इसी अनुष्टुभ् छन्द में रामायण गाओ।' फिर सारी रामायण अनुष्टुभ् छन्द में गायी गयी। सहानुभूति की प्रेरणा से काव्य पैदा हुआ और शोक का श्लोक बना।

शम और श्रम का संयोग

मैंने साहित्य की जो व्याख्या की, उसमें भी यही विशेषता है। साहित्य में ऐसी शक्ति है कि उससे श्रम का शम बन जाता है। बिना श्रम के कोई भी महत्त्व की चीज नहीं बनती, लेकिन साहित्य में श्रम को शम का रूप आता है। दूसरी चीजों में मनुष्य को आराम की भी आवश्यकता होती है। वहाँ श्रम और आराम परस्पर विरोधी होते हैं। मनुष्य श्रम से थकता है, तो उसके बाद आराम लेता है और आराम से थकता है—आराम की भी थकान होती है—तो उसके बाद फिर श्रम करने लगता है। लेकिन साहित्य की यह खूबी है कि उसमें श्रम के साथ-साथ शम चलता है। चौबीसों घंटे काम और चौबीसों घंटे आराम, यह है साहित्य की खूबी। साहित्य का कोई बोझ नहीं होता चित्त पर।

साहित्य की सर्वोत्तम संज्ञा

साहित्य की सर्वोत्तम संज्ञा, उसका सर्वोत्तम संकेत मुझे आकाश में दीखता है। आकाश-दर्शन की किसी को कभी थकान नहीं होती। खुला आसमान निरन्तर आपकी आँख के सामने होता हैं। फिर भी आँख थक गयी, ऐसा कभी मालूम नहीं होता। आकाश के समान व्यापक, अविरोधी और गति देनेवाला होता है साहित्य। फिर भी

ठोस भरा हुआ। यह आकाश का ही वर्णन है। ऐसी कोई जगह नहीं है, जहाँ आकाश न हो। जहाँ कोई ठोस वस्तु नहीं है, वहाँ भी आकाश है और जहाँ ठोस वस्तु है, वहाँ भी आकाश है। ठोस वस्तु नापने का वही मापक है। ट्रेन में जब हम बैठने जाते हैं तो भीतर के पैसेन्जर कहते हैं, यहाँ जगह नहीं है। इसका मतलब यह होता है कि यहाँ जगह तो है, परन्तु वह व्याप्त है। तो आकाश ऐसी व्यापक वस्तु है। जहाँ कोई चीज नहीं है, वहाँ भी वह है और जहाँ कोई चीज है, वहाँ भी वह है। साहित्य का स्वरूप भी आकाश के जैसा ही व्यापक है। इसलिए आकाश ही साहित्य की सर्वोत्तम संज्ञा है।

साहित्य-सेवन की थकान नहीं आनी चाहिए। हम सुन्दर-मधुर संगीत सुनते हैं, तो 'अब बस!' नहीं कहते। जहाँ 'अब बस' आ गया, वहाँ समझना चाहिए कि वह चीज मनुष्य को थकान देनेवाली है। साहित्य के लिए भी जहाँ 'अब बस' आ गया, वहाँ समझना चाहिए कि साहित्य की शक्ति कम है, वह पूरी प्रकट नहीं हुई है।

बहुत से लोगों को खुशबू बहुत अच्छी मालूम होती है और बदबू तकलीफ देती है, परन्तु मुझे खुशबू की भी तकलीफ होती है। कोई बू ही अगर न रहे, तो चित्त प्रसन्न रहता है। यह बात बहुतों को विचित्र सी लगेगी; परन्तु जिस बगीचे में खूब सारे सुगन्धी पुष्प होते हैं, वहाँ पर कुछ क्लोरोफॉर्म जैसा इफैक्ट, असर होता है, चिन्तन अस्पष्ट हो जाता है, मन्द पड़ जाता है। ब्रेन को, दिमाग को थकान आती है। खुशबू के परमाणु नाक के अन्दर चले जाते हैं। उस जगह जो पर्दा होता है, वह ब्रेन के साथ जुड़ा हुआ होता है। वहाँ पर वे बैठ जाते हैं तो उनके स्पर्श से चिन्तन में एक प्रकार की मन्दता आ जाती है। अगर निर्गन्ध जगह हो, तो उसकी कोई थकान नहीं आती। रंग का भी यही हाल है। कुछ रंग कुछ लोगों को प्रिय होते हैं, लेकिन वे सदा सर्वदा आपके सामने हों, तो भी थकान आती है। मगर आसमान के रंग की कभी थकान नहीं आती, इसलिए प्रभु को नीलवर्ण कहा जाता है। आसमान के नीलवर्ण को कभी थकान नहीं आती।

अनुकूल ही परिणाम

साहित्य की एक व्याख्या यह है कि उसका हमेशा अनुकूल ही परिणाम होता है। पर यह तो तब बन सकता है, जब प्रतिक्षण नया अर्थ देने की क्षमता उसमें हो। जिसको दूध प्रिय है, उसे गाय प्रिय होती है, पर बिना दूध की गाय प्रिय नहीं होती। जिसे दूध प्रिय नहीं, उसे दूध देने वाली गाय भी प्रिय नहीं होती। लेकिन ऐसी कोई कामधेनु हो, जो हर चीज देती हो तो वह सबको सदा सर्वदा प्रिय होती है। साहित्य ऐसी कामधेनु है। उसमें से अपनी इच्छा के अनुसार बहुत कुछ मिल जाता है।

'द' का मेरा अपना अर्थ !

उपनिषद् में 'द' की कहानी आती है। एक ही 'द' अक्षर का दम, दान और दया; ऐसा तीन तरह का अर्थ किया है। देव, मनुष्य और असुर, तीनों ने अपनी भूमिका के अनुसार बोध लिया। फिर मैंने सोचा 'द' का मैं क्या अर्थ लूँ ? यद्यपि मैं हिन्दी में बोल रहा हूँ. फिर भी मेरा मन मराठी है, इसलिए मैं मराठी में सोचता हूँ। तो मैंने सोचा कि विन्या के लिए 'द' का अर्थ क्या हो सकता है ? असुरों के लिए उसका अर्थ दया होता है, देवों के लिए दमन होता है, तो विन्या के लिए 'द' याने 'दगड़' ! दगड़ से मतलब है, पत्थर ! अब यह अर्थ न देवों को मालूम था, न असुरों को मालूम था, न उपनिषद्कारों को ही। यह शुद्ध मराठी अर्थ है—'द' याने दगड़। मैं दगड़, पत्थर के समान बन जाऊँ। कोई पचास प्रहार करे, तो भी हर्ज नहीं। वह मूर्ति भी बन सकता है और ठोकर भी दे सकता है। इतना सारा 'द' का अर्थ मुझे मालूम था। और जब यह अर्थ मुझे सूझा, तो मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

स्वल्पाक्षर साहित्यिक

उत्तम साहित्यिक शब्द-स्वल्पाक्षर होते हैं। बहुत पानी डालकर फैलाए हुए नहीं होते। स्वल्पाक्षर होते हैं, याने थोड़े में अधिक सूचकता होती है और उनमें अनाक्रमणशीलता होती है, जिससे सहज ही बोध मिले। व्यक्ति बोध लेना चाहे. तो ले सकता है और न लेना चाहे, तो नहीं भी ले सकता। हर वक्त बोध लेना पड़े तो मुश्किल होगी, इसलिए जब बोध लेना चाहे. तभी ले सकता है। समयानुकूल बोध मिले और बोध न भी मिले, तो भी जो प्रिय हो, वही अच्छा साहित्य है।

कवि की व्याख्या

एक दफा मैं बहुत बीमार था। कभी-कभी रामजी का नाम लेता था, कभी माँ का। अब मेरी माँ तो उस समय जिन्दा नहीं थी। मैं मन में सोचने लगा कि उस माँ का मुझे क्या उपयोग है, जो जिन्दा नहीं है और मुझे कितनी भी तकलीफ क्यों न हों, उसे मिटाने के लिए नहीं आ सकती। फिर भी मैंने उस शब्द का उपयोग किया। माँ के मरने पर भी "मा" शब्द के उच्चारण से उसके पुत्र को बीमारी में प्रसन्नता होती है और उस शब्द से ही उसे अपना अभीष्ट प्राप्त हो जाता है। यह ऐसा शब्द है, जिसमें काव्य की सीमा होती है। ऐसे शब्द हमारे देश में, हमारी भाषाओं में बहुत हैं। इसलिए इस देश में लोग अनिच्छा से भी कवि बनते हैं। वे शब्द ही ऐसे होते हैं, जो अनेकविध प्रेरणा देते हैं। इसलिए मनुष्य चाहे या न चाहे, वह कवि बन जाता है। मेरा ख्याल है कि भारतीय भाषाओं में जितनी काव्य शक्ति है उसकी तुलना में दुनियाँ की दूसरी भाषाओं में कम है। हाँ, अरबी और लेटिन में है। संस्कृत में यह सामर्थ्य बहुत ज्याद

है, क्योंकि वह भाषा काफी प्राचीन काल में निर्माण हुई है। इसलिए मनुष्य आज जिस तरह स्पष्ट रूप में सोचता है, वैसा उस समय नहीं सोचता था, अस्पष्ट रूप में सोचता था। जहाँ मनुष्य अस्पष्ट रूप में सोचता है, वहाँ बहुत ज्यादा सोचता है। जहाँ स्पष्ट सोचता है, वहाँ विशिष्टता आ जाती है और व्यापकता कम हो जाती है, जैसे स्वप्न में स्पष्टता नहीं होती। परन्तु स्वप्न में जो विविधता होती है, वह दुनियां में जो विविधता है, उससे भी ज्यादा होती है। सृष्टि में जो है, वह सब स्वप्न में है और सृष्टि में जो नहीं है, वह भी स्वप्न में है। स्वप्न के पेट में जागृति होती है। कवि की सारी सृष्टि स्वप्नमय होती है। उसका चिन्तन सूक्ष्म, अव्यक्त और इसलिए अस्पष्ट होता है। व्यावहारिक भाषा में कवि याने मूर्ख। कुरान में भी मुहम्मद पैगम्बर कई दफा बोले हैं, "मैं कवि थोड़ा ही हूँ!" मेरी समझ में नहीं आता था कि उन्होंने ऐसा क्यों कहा होगा। फिर एक जगह उनका एक वचन मिला कि "मैं कवि थोड़ा ही हूं, जो बोले एक और करे एक!" कहा जाता है कि कुरान में बहुत काव्य है। अरबी साहित्य में उसे साहित्य की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक माना जाता है। यह कोई केवल काल्पनिक गौरव की बात नहीं है। कुरान धार्मिक पुस्तक है, इसलिए ऐसा कहा होगा, सो बात नहीं। आधुनिक अरबी साहित्य को कुरान से सारी स्फूर्ति मिलती है। इतना होने पर भी उन्होंने कहा कि "मैं कवि थोड़ा ही हूँ, जो बोले एक और करे एक!" इसका एक मतलब यह है कि मैं जो बोलूँगा, वह करूँगा, इसलिए मैं कवि नहीं हूँ। इसे कोई उपालम्भ मानने के बजाय हमने अधिक सुन्दर अर्थ निकाला है। उसका अर्थ यह है कि, "आप लोगों के सामने मैं एक स्पष्ट चिन्तन रखने वाला हूँ, जिससे कि आपको हिदायत मिले।" कवि का चिन्तन तो हमेशा अस्पष्ट होता है। उसके काव्य की गहराई को वह खुद नहीं जानता। उस पर परस्पर विरोधी भाष्य किया जा सकता है। अगर किसी कवि ने अपनी कविता पर कोई भाष्य लिखा, तो मैं उससे बिलकुल विरुद्ध भाष्य लिख सकता हूँ और सम्भव है कि लोग मेरा भाष्य कबूल करें और शायद वह खुद भी कबूल करे! कवि को जो सूझता है, वह उसके स्पष्ट चिन्तन के बाहर की चीज है। कोई चीज उसे प्राप्त होती है। वह कुछ बनाता नहीं, कुछ रचना नहीं करता। सहज ही उसको चीज मिल जाती है, उसकी झाँकी मिल जाती है। कवि को क्रान्तदर्शी कहा है। कविः क्रान्तदर्शी। कवि दूर का देखता है, ऐसा कुछ लोग उसका अर्थ लगाते हैं। हाँ, वह भी हो सकता है। परन्तु उसका एक अर्थ यह भी है कि कवि बहुत ही अस्पष्ट में देखता है। जो स्पष्ट वस्तु है, उसे तो हर कोई देखता है, पशु भी देखता है। पशु का मतलब यही है कि जो देखता है, वह पशु है। पश्यति इति पशुः। जो देखता है, बिना देखे जिसे भरोसा नहीं होता है, चिन्तन से कोई बात नहीं मानता है, कहता है, सबूत दिखाओ। ऐसे सबूत से ही मानने वाले

कुछ होते हैं। वह पशुत्व है। कवि में पशुत्व नहीं होता, इसलिए उसकी वाणी में विविध दर्शन होता है।

अभी बेनीपुरीजी ने बताया कि हम भूदान-यज्ञ में मदद करना चाहते हैं। कोई साहित्यिक वास्तव में मदद करेगा, तो मालूम ही नहीं होगा। अगर फलाने उपन्यास में विनोबा को मदद की गयी है, ऐसा मालूम हो गया, तो वह फेल्युअर है, असफल है। जिसमें पता ही न लगे, वही उत्तम मदद है। जैसे ईश्वर की स्थिति है; वह मदद देता है, तो उसका भान ही नहीं होता। वह बिना हाथ के देगा, बिना आँख के देखेगा, बिना कान के सुनेगा, बिना लेखनी के लिखेगा। सर्वोत्तम कवि वह हो सकता है, जिसने कुछ भी न लिखा हो! जिसने कुछ रद्दी लिखा हो, वह कवि ही नहीं है। महाकवि वह हो सकता है, जिसके हृदय में इतना काव्य भर गया है कि वह प्रकट ही नहीं कर सकता।

'साहित्य' प्रकाशित नहीं होता है

इसका अर्थ यह नहीं कि जिसने कुछ भी नहीं लिखा, वह कवि होता है। एक महाकवि ऐसा हो सकता है, जिसकी काव्य-शक्ति बहुत गहरी होने के कारण प्रकाश में नहीं आ सकती—वाणी में और प्रकाशन में नहीं आ सकती। जब हम इस दृष्टि से देखते हैं, तो लगता है कि साहित्य का एक लक्षण यह है कि साहित्य प्रकाशित नहीं हो सकता। आजकल तो हर कोई साहित्य को प्रकाशित करने की बात सोचता है, परन्तु यह प्रकाशन की बात नहीं है। साहित्य हमेशा अप्रकाशित होता है।

आप 'रसिक' हैं, इसलिए सहचिन्तन कीजिए

इन दिनों तो साहित्यिकों को इनाम भी दिया जाता है। हमको भी इनाम मिला है। हमको याने हमारे प्रकाशक को! इन दिनों किसके सिर पर इनाम आकर गिरेगा, कुछ भरोसा नहीं। इसलिए जब कभी हम साहित्यिकों की मदद के लिए अपील करते हैं, उनके पास पहुँचते हैं, तो हम इतना ही चाहते हैं कि आप हमारे साथ सहचिन्तन कीजिए। हम जैसा चिन्तन करते हैं, उसमें आप शरीक हो जाइए, यही हमारी माँग है। मानव के लिए यह बात सहज है, उसका यह स्वभाव है। हम आम खाते हैं, तो पास बैठे हुए मनुष्य को दिये बगैर नहीं खा सकते। इतना ही नहीं, पड़ोसी को बुला कर खिलाते हैं। जो दूसरे को बिना बुलाये खायेगा, वह रसिक नहीं है। जो अपने रस में दूसरे को शरीक करता है, वही रसिक है। इसलिए जब हम साहित्यिकों को बुलाते हैं, तो हम कहते हैं कि हम जो रस लेते हैं, वह हम अकेले ही लेते जाएँ, यह अच्छा नहीं। आप रसिक हैं, इसलिए आप भी शरीक हो जाइए। शरीक होने पर आप चाहे काव्य लिखिए या न लिखिए, हमें बहुत मदद होगी।

मेरा तो मानना है कि जिन्होंने उत्तम काव्य लिखे वे उतने उत्तम

कवि नहीं थे, जितने कि वे हैं, जिन्होंने कुछ नहीं लिखा । जो महापुरुष दुनियाँ को मालूम हैं, वे उतने बड़े नहीं हैं । उनसे भी बड़े वे महापुरुष हैं, जो दुनियाँ को मालूम नहीं हैं । अव्यक्तलिंगा: अव्यक्ताचारा: । ज्ञानी का आचार अव्यक्त होता है, वह प्रकट नहीं होता । मालूम ही नहीं होता कि वह ज्ञानी है । आप हमारे अनुभव में शरीक हो जाइए, इतनी ही हमारी मांग है । शरीक हो जाने पर उसका प्रकाशन हो या न हो, शब्दों में हो या कृति में हो, एक प्रकार के शब्द में हो या दूसरे प्रकार के शब्द में हों, एक प्रकार की कृति में हों या दूसरे प्रकार की कृति में हो, इतने सारे प्रकार के प्रकाशन हो या अप्रकाशन भी हो तो उन सबसे हमें मदद मिलेगी, अप्रकाशन से ज्यादा मदद मिलेगी । हम इतना ही चाहते हैं कि आप हमारे साथ, हमारे अनुभव में समभोगी, रसभोगी हो जाइए । फिर वह शब्द में या कृति में प्रकट न हो सका, तो हमें सबसे ज्यादा मदद मिलेगी । वह चीज आपके सकल्प में रहेगी और आप हमारे अत्यन्त निकट रहेंगे ।

आवाहन का भार नहीं

इसलिए जब हम साहित्यिकों का आवाहन करते हैं, तो साहित्यिकों पर हमारे आवाहन का कोई भार नहीं है । अगर किसी को महसूस हुआ कि विनोबा ने हम पर बड़ी भारी जिम्मेदारी डाली है, तो वह क्या साहित्य लिखेगा ? साहित्यिक बोझ नहीं उठा सकता और हम किसी पर बोझ नहीं डालेंगे । हम इतना ही कह रहे हैं कि हमारे साथ शरीक होने में, उस रस की अनुभूति में आनन्द है । हम चाहते हैं कि आपको भी यह आनन्द प्राप्त हो ! इसी का नाम है, साहित्यिकों का आवाहन और साहित्यिकों की मदद ।

बलरामपुर में बंगाल के साहित्यिक इकट्ठा हुए थे । कभी-कभी मेरी समाधि लग जाती है । उस समय ऐसी योजना की गयी थी कि हमारे सामने दीपक रखे गये थे—पाँच, सात, नौ, इस तरह से । मैं उनकी ओर देख रहा था । मैं मन में सोच रहा था कि पांच दीपक हैं, तो पंचप्राण हो गये । सात हैं, तो सप्तछिद्र । नौ हैं, तो नवद्वार । ग्यारह हैं, तो एकादश इन्द्रियाँ । इस तरह मैं कल्पना कर रहा था, तो कल्पना-तरंग में हमारी समाधि लग गयी । उस दिन के हमारे भाषण का साहित्यिकों पर बहुत असर पड़ा, वे तन्मय हो गये, ऐसा हमने सुना । उन्होंने कहा कि आपके इस आन्दोलन से हमें नवजीवन मिला है । बंगाल के साहित्य की देश भर में प्रतिष्ठा है, परन्तु बीच में कुछ मन्दता आ गयी थी । अब फिर से जोर आयेगा । हमने सुना कि ताराशंकर बन्द्योपाध्याय इस विषय पर एक उपन्यास भी लिख रहे हैं । लेकिन हम उसकी ताक में नहीं हैं । हम किसी से कुछ आशा नहीं रखते । एक अव्यक्त असर हो जाता है ।

साहित्य वीणा की तरह है

तो साहित्य के लिए हमारी इतनी सूक्षम भावना है। साहित्य एक वीणा की तरह है। कुछ लोग समझते हैं कि वीणा बजाने वाला जोर से बजाये, तभी श्रोताओं पर असर होता है। परन्तु जो उत्तम कलाविद् होते हैं, वे बिलकुल बारीक आवाज से बजाते हैं, जैसे हृदय-वीणा पर बजा रहे हों। एक दफ़ा में ऐसा ही वीणा-वादन सुन रहा था। धीमी शांत आवाज, जैसे ॐकार की ध्वनि सुनायी दे रही थी। जिनमें रस-ग्रहकता नहीं थी, वे कहते थे कि यह कुछ बजा भी रहा है या नहीं ! हमें तो कुछ सुनाई नहीं दे रहा है। परन्तु मुझे जरा संगीत का ज्ञान है, इसलिए मुझे आनन्द आ रहा था। कुछ लोग तो समझते हैं कि बजाने वाला पसीना-पसीना हो जाय, तभी उसने अच्छा बजाया ! लेकिन वह तो इस तरह बजा रहा था कि ज़रा थोड़ी-सी तान छेड़ी, फिर शांत रहा। फिर एक तान छेड़ी।

हृदय-संमीलन की माँग

एक दफ़ा एक गुरु के पास एक शिष्य पहुँचा। शिष्य ने कहा, "आत्मा क्या है, हम जानना चाहते हैं," तो गुरु शांत रहे। शिष्य ने दुबारा पूछा, फिर भी गुरु शांत ही रहे। इस तरह तीन बार पूछा गया और तीनों बार गुरु शांत ही रहे, तो चौथी बार शिष्य ने कहा. "हमने तीन-तीन बार पूछा और आप उत्तर नहीं देते हैं !" तो गुरु ने कहा, "हमने तीन दफ़ा उत्तर दिया और ऐसे उत्तम तरीके से दिया कि इससे बेहतर तरीक़ा नहीं हो सकता, जो भी तू नहीं समझा। जो न बोलने से भी नहीं समझता, वह बोलने से कैसे समझेगा ?" उसी तरह साहित्यरसिक से भी हम कहेंगे कि' 'अरे कम्बख्त ! न लिखने पर भी तू नहीं समझ सकता है, तो लिखने पर कैसे समझेगा !" इसलिए हमने जो साहित्यिकों से मदद माँगी है, वह केवल सहानुभूति माँगी है, हृदय की सहानुभूति माँगी है। इसलिए उसका बोझ या भार नहीं महसूस होना चाहिए। फिर इनाम-विनाम देने की जिम्मेवारीं हम पर मत डालना। हम यही चाहते हैं कि सहज भाव से हृदय के साथ हृदय जोड़ दिया जाय।

माँझी !

— श्री उमानन्दन चतुर्वेदी —

माँझी, मेरी ओर देखों और देखो, यह नदी किनारे का घोर तमसावृत्त सुनसान। मैंने अपने जीवन का न जाने कितना समय इस अन्तर-बाह्य के संयोजक सागर में डूब-डूब कर अपने रिक्त कोष को अमूल्य मणि-मुक्ताओं से सम्पन्न् करने में व्यतीत किया है। पर मेरी अतृप्त पिपासा तो युगों से तीव्रतर होती जा रही है। बस, इस संचय के पूर्ण होने तक की ही तो प्रतीक्षा थी ! अब तो मैं इस प्यास का भार वहन करने में अक्षम हूँ, माँझी । मेरे निर्वास की अवधि समाप्त हो चुकी है, मैं पार जाऊंगा !

जल्दी करो तुम, कब से तुम्हारे डाँडों की छप-छप, थप-थप सुन रहा हूँ; अभी तो दृष्टि से भी ओझल हो ।

वह देखो, उस पार दूरवर्ती शैल-शृंग के पीछे से कितना स्निग्ध आलोक किरण-किरण में थिरकता हुआ चपल उडु बालाओं को गुदगुदा रहा है । कितनी चित्ताकर्षक है मेरे प्रिय की मुसकान ! लाओ अपनी पतवार मुझे दो, ये लहरें कितना प्रिय सन्देश लायी हैं। मेरे प्रियतम का बुलावा जो गूँज रहा है इनमें !

माँझी, कहीं विलम्ब न हो जाए, उनके रथ को रोकना है मुझे। अपने प्राणों के कौस्तुभ का इस अमूल्य संचय के बीचों बीच गुम्फन कर उन्हें पहनाऊँगा और उनके आलिगन में छिप जाऊँगा अपनी तड़पती हुई चेतना के अल्प अस्तित्व को लेकर। मेरे मधुर मिलन की बेला न टलने दो, माँझी !.

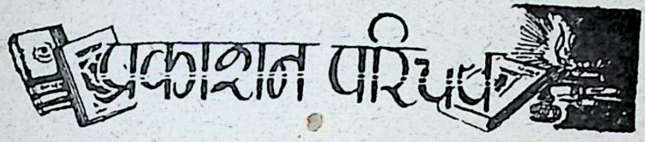

प्रकाशन परिचय

'दिनकर' के चार संग्रह

— श्री रामकुमार चतुर्वेदी

हिन्दी काव्य के क्षितिज से उठकर 'दिनकर' इस समय मध्याकाश में पहुँच चुके हैं। काव्य-रसिकों के हृदय की उर्वरा भूमि उनकी प्रतिभा के तेजपुंज का अनुभव कर रही है। उनकी रचनाओं में अपूर्व ओजस्विता है। क्या भाषा में, क्या भावों में, क्या छंदों में, क्या अभिव्यक्ति में, सर्वत्र वही ओज! सर्वत्र वही किरणें! ये किरणें माँ भारती के मन्दिर के स्वर्णकलशों पर बल खाती हुई, देश की मिट्टी से संपर्क स्थापित कर रही हैं। इन किरणों में नयी प्रेरणा, नयी चेतना, नयी गर्मी और नया जीवन है।

इस समय हमारे सामने 'उदयाचल' पटना से १९५४ ई० में प्रकाशित दिनकर जी के निम्न-लिखित चार संग्रह हैं—

(१) रेणुका (अभिनव संस्करण) (२) नीम के पत्ते (३) दिल्ली और
(४) नीलकुसुम।

(१) रेणुका—

'रेणुका' दिनकरजी का प्रथम कविता-संग्रह है। इसके कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं, किन्तु इधर कुछ वर्षों से यह संग्रह अप्राप्य था। 'उदयाचल', पटना से प्रकाशित 'रेणुका' के इस नवीनतम संस्करण में कुल ३९ रचनाएँ हैं। इस संग्रह में कवि ने कुछ पुरानी रचनाओं के स्थान पर १२ नयी रचनाएँ जोड़दी हैं, जिनमें कुछ अनूदित रचनाएँ भी हैं।

'दिनकर' को इतिहास से अटूट प्रेम है। उनकी रचनाओं में स्वर्णिम अतीत के चलचित्र प्रतिबिंबित होते दिखाई देते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि वे केवल अतीत तक ही सीमित रहे हैं। उन्होंने देश के गौरवमय अतीत के तेजस्वी चित्र दिखाकर, वर्त्तमान की अधोगति से उठने की क्रान्तिकारी प्रेरणा देते हुए, मंगलमय भविष्य के लिए शुभकामनाएं प्रकट की हैं। उन्हीं के शब्दों में—

प्रियदर्शन इतिहास कंठ में आज ध्वनित हो काव्य बने,
वर्त्तमान की चित्रपटी पर भूतकाल संभाव्य बने!

'हिमालय के प्रति', 'बोधिसत्व', 'मिथिला', 'पाटलीपुत्र की गंगा से', 'समाधि

के प्रदीप से' और 'वैभव की समाधि पर' शीर्षक रचनाओं की प्रेरणा इतिहास से ही ली गयी है। 'हिमालय' शीर्षक रचना में कवि का हृदय राम, कृष्ण, गौतम और चन्द्रगुप्त के देश की अधोगति पर शोकाकुल होकर कराह उठता है—

तू पूछ अवध से, राम कहाँ ?
वृन्दा ! बोलो, घनश्याम कहाँ ?
ओ मगध ! कहाँ मेरे अशोक ?
वह चन्द्रगुप्त बलधाम कहाँ ?

ऋषियों, तपस्वियों, महाकवियों, मेधावी सम्राटों और महान दार्शनिकों की इस भूमि की वर्त्तमान दुर्दशा ने कवि के भावुक हृदय को बारंबार झकझोरा है। फलतः कभी तो वह निराश और विरक्त होकर 'वैभव की समाधि पर' रोया है और कभी आवेश में आकर क्रांति का शंख फूंक उठा है। गांधीवाद से प्रभावित होते हुए भी वह सशस्त्र क्रांति का आह्वान करने से नहीं चूका है—

रे, रोक युधिष्ठिर को न यहाँ, जाने दे उनको स्वर्ग धीर !
पर, फिरा हमें गांडीव-गदा, लौटा दे अर्जुन भीम वीर !

('हिमालय' से)

देश की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक दुरवस्था ने उनकी कल्पना को आकाशचारी होने से रोका है। मिट्टी से उन्हें नैसर्गिक मोह है। वे स्वयम् अपनी कल्पना-परी को मिट्टी पर उतरने के लिए ललकारते हैं—

व्योम कुंजों की परी, अयि कल्पने ! भूमि को निज स्वर्ग पर ललचा नहीं !
उड़ न सकते हम धुमैले स्वप्न तक, शक्ति हो तो आ, बसा अलका यहीं !

'दिनकर' जी ने कवि के सामाजिक उत्तरदायित्व का सदैव ही ध्यान रखा है। यही कारण है कि सामाजिक-चेतना उनके काव्य का एक अनिवार्य अंग बन गयी है। सामाजिक विषमता उन्हें एक क्षण के लिए स्वीकार नहीं है। 'कस्मैदेवाय' शीर्षक रचना में 'दिनकर' कहते हैं—

'विद्युत की इस चकाचौंध में देख, दीप की लौ रोती है,
अरी, हृदय को थाम, महल के लिए झोंपड़ी बलि होती है !'

कवि के हृदय में वर्त्तमान सामाजिक विषमता के प्रति इतना तीव्र आक्रोश छिपा हुआ है कि इतिहास से सम्बन्धित रचनाओं में भी वह प्रतिध्वनित हुए बिना नहीं रहा है। यथा—

धन-पिशाच की विजय, धर्म की पावन ज्योति अदृश्य हुई,
दौड़ो बोधिसत्त्व ! भारत में मानवता अस्पृश्य हुई !'

('बोधिसत्त्व' से)

'रेणुका' में 'दिनकर' का प्रकृतिवादी स्वरूप भी दर्शनीय है। बिहार की सुरम्य प्रकृति ने उनके सुकुमार हृदय में एक अजीब सी रंगीनी भरदी है! 'कविता की पुकार', 'मिथिला', 'जागरण', 'राजारानी', 'निर्झरिणी', 'कोयल', 'मिथिला में शरत्' 'अमा-संध्या' एवम् 'फूल' शीर्षक रचनाओं में 'दिनकर' का प्रकृति प्रेम बरबस बिखर पड़ा है। प्रकृति के कुछ सजीव एवम् रंगीन चित्र देखिम—

(१) मृदु चाँदनी-बीच थी खेल रही वन-फूलों से शून्य में इन्द्रपरी !
कविता बन शैल-महाटवि के उर से मैं तभी अनजान झरी !
('निर्झरिणी' से)

(२) रोमन्थन करती मृगी कहीं, कूदते श्रंग पर मृदु कुमार !
अवगाहन कर निर्झर-तट पर लेते हैं कुछ मृग पद पसार !
('कोयल' से)

(३) ऊपर निरभ्र नभ नील-नील, नीचे घन बिम्बित झील-झील !
उत्तर किरीट पर कनक-किरण, पदतल मन्दाकिनि रजत-वरण !
है बिछी दूर तक दूब हरी, हरियाली ओढ़े लता खड़ी !
काँसों के हिलते श्वेत फूल, फूली छतरी ताने बँबूल !
शारद सन्ध्या, यह उगा सोम, बन गया सरित में एक व्योम !
('मिथिला में शरत्' से)

(४) मुक्ता कुन्तल में गूँथ, शुक्र का पहन कुसुम-कर्णाभूषण,
दिग्वधू क्षितिज पर बजा रही मन्जीर, चपल कँप रहे चरण !
('अमा-सन्ध्या' से)

(५) अवनी के नक्षत्र ! प्रकृति के उज्ज्वल मुक्ताहार,
उपवन-दीप ! दिवा के जुगनू ! वन के दृग सुकुमार !
('फूल' से)

कहना न होगा कि 'दिनकर' के इस प्रकृति-प्रेम की तह में भी उनकी राष्ट्रीय-भावना छिपी हुई है। उन्हें इस भूमि की हर वस्तु प्यारी है। उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि प्रकृति सम्बन्धी रचनाओं में 'दिनकर' पन्तजी की शैली से कुछ-कुछ प्रभावित अवश्य हुए हैं।

'प्लेग', 'राजकुमारी और बाँसुरी', 'गोपाल का चुम्बन', 'विपक्षिणी' एवम् 'सुन्दरता और काल' शीर्षक रचनाएँ विभिन्न विदेशी कवियों की रचनाओं से अनूदित हैं। ये अनुवाद बड़े सुन्दर बन पड़े हैं। लेकिन मौलिक रचनाओं के संग्रह में अनूदित रचनाओं को स्थान देना कुछ असंगत-सा लगता है। अनूदित रचनाओं का एक संग्रह

अलग छपवाया जा सकता है। अनुवाद के साथ-साथ मूल-रचनाओं का प्रकाशित करना भी पाठकों की सुविधा की दृष्टि से आवश्यक है।

कहीं-कहीं कुछ पलायनवादी भावनाएँ भी मिल जाती हैं। यथा:—

मैं न रुकूँगा इस भूतल पर जीवन, यौवन, प्रेम गँवाकर !
वायु, उड़ाकर ले चल मुझको, जहाँ कहीं इस जग से बाहर !

लेकिन ऐसे स्थल कम ही है। पूरे संग्रह में कवि के हृदय के ओज की ही प्रधानता है।

(२) नीम के पत्ते:—

इस छोटे से संग्रह में कवि की १५ रचनाए संग्रहीत हुई हैं। इनमें से अधिकांश रचनाओं में कवि के हृदय का क्षोभ ध्वनित हुआ है। स्वाधीन देश की गिरी हुई समाज व्यवस्था एवम् अर्थ-व्यवस्था कवि के हृदय में एक असह्य वेदना उत्पन्न करती है। राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ-साथ हमें आर्थिक स्वतंत्रता के लिए भी और संघर्ष करना है। कवि को चिन्ता है कि कहीं ये भुखमरे आजादी को ही बेचकर न खा जायें क्यों कि भूख ईमान की जड़ों को बड़ी जल्दी खोखला कर दिया करती है। 'रोटी और स्वाधीनता' शीर्षक रचना में कवि कहते हैं:—

आजादी तो मिल गयी, मगर, यह गौरव कहाँ जुगायेगा ?
मरभुखे ! इसे घबराहट में तू बेच न तो खा जायेगा ?

स्वतंत्र देश में भी यदि मनुष्य को विचार-स्वातंत्र्य न हो, तो कहाँ होगा ? कला, विज्ञान, दर्शन एवम् सभ्यता के विकास के लिए बौद्धिक स्वतंत्रता परमावश्यक है। एक कलाकार के नाते 'दिनकर' अपना जन्म सिद्ध अधिकार माँगते हुए कहते हैं:—

नर के स्वतंत्र चिन्तन से जो डरता, कदर्य अविचारी है,
बेड़ियाँ बुद्धि को जो देता, जुल्मी है, अत्याचारी है !

शासन की ढिलमिल नीतियों पर कवि ने निर्भय हो कर तीखे व्यंग्यबाण छोड़े हैं। रोटी और रोजी की समस्या को लेकर कवि ने विक्षोभ प्रकट किया है।

१९४५ में उत्तर बिहार में हैजा और मलेरिया का प्रकोप हुआ था। जनता मर रही थी और सरकार आराम फरमा रही थी। वक्रोक्ति का प्रयोग करते हुए 'दिनकर' एक मरणशील व्यक्ति से कहते हैं :—

अरे ओ मुमूर्षु, मरने से जरा पहले,
एक सीधी बात का जवाब मुझे करले !
नेता परीशान, परीशान सरकार है,
बोल मरने का तुझे कौन अधिकार है ?

वर्तमान नेताओं के दंभ, उनकी अकर्मण्यता एवम् उनकी मुनाफाखोरी पर कवि

ने घातक प्रहार किये हैं। निस्सन्देह इस संग्रह में 'दिनकर' ने व्यंग्य के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा की प्रखरता का परिचय देते हुए अन्य कवियों के सामने एक उदाहरण उपस्थित किया है। व्यंग्य के कुछ सुन्दर नमूने देखिए:—

(१) आजादी खादी के कुरते की एक बटन,
आजादी टोपी एक नुकीली तनी हुई।
(२) टोपी कहती है, मैं थैली बन सकती हुं !
कुरता कहता है, मुझे बोरिया ही करलां !
(३) बिक रही आग के मोल यहाँ पर जिन्स मगर,
अफसोस आदमियत की कुछ कीमत न रही !
(४) सावधान, जनभूमि किसी का चारागाह नहीं है !
घास यहाँ की पहुँच पेट में काँटा बन जाती है !
(५) हवा देश की बदल गयी है,
चाँद और सूरज ये भी अब,
छिपकर नोट जमा करते हैं !

लेकिन 'दिनकर' केवल आलोचना तक ही सीमित नहीं रहे हैं, उन्होंने देश को स्वावलंबी बनने की प्रेरणा भी दी है। कुछ रचनात्मक सुझाव भी दिये हैं। यद्यपि उनका स्वर कहीं समाजवादी और कहीं साम्यवादी सा दिखाई देता हैं किन्तु वस्तुतः वे हैं राष्ट्रवादी ही। गांधी और जवाहर पर उनकी आस्था है। तभी तो वे कहते हैं:—

नाजां है हिन्दुस्तान, एशिया को अभिमान जवाहर पर,
करुणा की छाया किये रहें, पल-पल भगवान जवाहर पर ?

'दिनकर' देश की स्वाधीनता के अभिमानी हैं। उनकी वाणी देश को पराक्रम की ओर प्रेरित करती है। वे कहते हैं कि:—

गौरव की भाषा नयी सीख, भिखमंगों की आवाज बदल,
सिमिटी बाँहों को खोल गरुड़, उड़ने का अब अन्दाज बदल ?

(३) दिल्ली—

इस संग्रह में कुल चार कविताएँ संग्रहीत हैं। ये चारों रचनाएँ विभिन्न अवसरों पर लिखी गयी हैं और दिल्ली के प्रति कवि के बदलते हुए दृष्टिकोणों को उपस्थित करती हैं। कवि के ही शब्दों में:—

"दिल्ली का वर्त्तमान रूप भी विलासिनी का रूप है, जिससे कर्मठता को प्रेरणा नहीं मिलती, उलटे, बाधा पड़ती है।.......गाँवों में वज्र गिरें या बाढ़ आवे, मगर, दिल्ली के आराम का पारा चढ़ता-उतरता नहीं। वह ज्यों का त्यों स्थित है। इस स्थिति से जो क्षोभ उठता है, वही इन कविताओं का मूल भाव है।"

दिल्ली के विषय में लिखी गयीं चार रचनाओं के शीर्षक हैं—दिल्ली (सन् १९३३ में लिखित) (२) दिल्ली और मास्को (सन् १९४५ में लिखित) (३) हक की पुकार (सन् १९५२ में लिखित) तथा (४) भारत का यह रेशमी नगर (सन् १९५४ में लिखित)। स्वतन्त्रता से पहले की लिखी हुई दोनों रचनाओं में देश की परतन्त्रता के कारण कवि की वाणी विक्षुब्ध हुई है। किन्तु आजादी के बाद की दो रचनाओं में कवि देश की ढिलमिल शासन-व्यवस्था का कटु आलोचक बन गया है। १९३३ में कवि दिल्ली को सम्बोधित करते हुए कहता है:—

यह कैसी चाँदनी अमा के मलिन तमिस्र गगन में !
कूक रही क्यों नियति व्यंग्य से इस गोधूलि लगन में !
मरघट में तू साज रही, दिल्ली कैसे शृंगार !
यह बहार का स्वांग, अरी, इस उजड़े हुए चमन में !

गत महायुद्ध के अन्तिम दौर में देश के कवियों में मास्को की जय बोलने का एक फेशन-सा चल पड़ा था। सन् १९४५ में 'दिनकर' 'मास्को और दिल्ली' शीर्षक रचना में क्षुब्ध होकर कहते हैं:—

चिल्लाते हैं "विश्व, विश्व" कह जहाँ चतुर नर ज्ञानी,
बुद्धि-भीरु सकते न डाल जलते स्वदेश पर पानी !
जहाँ मास्को के रणधीरों के गुण गाए जाते,
दिल्ली के रुधिराक्त वीर को देख लोग सकुचाते !

लेकिन स्वतन्त्रता के बाद जब कवि देश की दुरवस्था देखता है तो उसका हृदय क्षोभ और निराशा से भर जाता है। 'हक की पुकार' (सन् १९५२) शीर्षक रचना में देश के बदकिस्मत इन्सान का चित्र अंकित करते हुए कवि कहता है:—

पतझड़ के बरगद के समान सूखी हड्डी पर तना हुआ,
वह कौन खड़ा है धरती की किस्मत पर शंका बना हुआ,

नेताओं पर व्यंग्य करते हुए कवि कहता है:—

है खुशी तुम्हें, जंजीर गुलामी की पाँवों से छूट गई,
मुझको गम है, पहलेवाली तावीज़ तुम्हारी टूट गई !

'भारत का यह रेशमी नगर' (सन १९५४) शीर्षक रचना में कवि भविष्य में आर्थिक-स्वतन्त्रता के लिए होनेवाली क्रान्ति की ओर संकेत करता हुआ दिल्लीवालों को सावधान करता है:—

ऐसा टूटेगा मोह एक दिन के भीतर,
इस राग-रंग की पूरी बर्बादी होगी।
जब तक न देश के घर-घर में रेशम होगा,
तब तक दिल्ली के भी तन पर खादी होगी।

दिल्ली का वर्त्तमान स्वरूप जन-ग्राह्य नहीं है। कवि चाहता है कि दिल्ली 'वेतनभोगिनी विलासमयी देवपुरी' न रहकर भारत की सभ्यता एवम् संस्कृतिके अनुरूप महान् बने। उसकी देश के नेताओं से यही माँग है कि:—

दो परी नहीं, मानवी हमें, माता जो भारत भर की हो!
जो नहीं खूबसूरत प्रतिमा बेजान संगमरमर की हो!

(४) नील कुसुम—

इस संग्रह में दिनकर' की ४० कविताएँ संग्रहीत हैं। ये अधिकतर उनकी पिछले ४-५ वर्षों की रचनाएँ हैं। कुछ ऐसी रचनाएँ भी हैं जो उनके अन्य संग्रहों में प्रकाशित हो चुकी हैं, किन्तु भाव-साम्य की दृष्टि से इस संग्रह में लेली गयी हैं। कवि की अवस्था के साथ ही साथ उसकी रचनाएँ भी प्रौढ़ से प्रौढ़तर होती गयी हैं। 'नील कुसुम' की रचनाओं में कवि का आत्म-मन्थन मुखरित हो उठा है। भाषा और अभिव्यक्ति की सफाई भी देखने लायक है।

हिन्दी की नयी प्रतिभाओं के प्रति कवि का दृष्टिकोण बड़ा आशावादी है। नये क्षितिज पर नयी सुबह की बिखरती हुई लालिमा का अभिनन्दन करता हुआ कवि कहता है कि:—

झाँकी उस नयी परिधि की जो है दीख रही कुछ थोड़ी-सी,
क्षितिजों के पास पड़ी पतली चमचम सोने की डोरी-सी,
छिलके उठते जा रहे, नया अंकुर मुख दिखलाने को है,
यह जीर्ण तनोवा सिमट रहा, आकाश नया आने को है।

हिन्दी के मठाधीशों की उपेक्षावादी नीति का खण्डन करते हुए 'दिनकर' ने नयी पीढ़ी के कवियों का जो अभिनन्दन किया है वह बड़ा शुभ एवम् उत्साहवर्धक है। उन्हीं के शब्दों में:—"हिन्दी-कविता में जो नवीनतम क्षितिज झलकने लगा है, उसे लेकर संभ्रान्त आलोचकों में काफी मतभेद है। किन्तु मैं बड़े उत्साह में हूँ"...... हिन्दी-कविता का आकाश बदल रहा है। जो नया क्षितिज सामने चमक रहा है, उसी की ओर खड़ा होकर मैं स्वागत में 'नील कुसुम' बिखेरता हूँ। ये आशीर्वाद के अक्षत नहीं, सचमुच ही, जवानी की पूजा के फूल हैं।" भूमिका में कवि ने प्रतीकवादी काव्य के प्रति आशावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए स्पष्ट कहा है कि "विचित्र बात है कि 'नीलकुसुम' के रचयिता के सहज बन्धु 'रेणुका' और 'हुंकार' के रचयिता नहीं, वरन् वे लोग हैं जिन्हें, सही नाम के अभाव में, हम प्रयोगवादी कहने लगे हैं। किन्तु, मैं प्रयोगवाद का अगुआ नहीं, पिछलगुआ कवि हूँ, क्योंकि 'नीलकुसुम' की कविताओं की रचना के बहुत पहले ही 'तारसप्तक' की गूँज देश में खूब छा चुकी थी।"

नये काव्य और नयी शैलियों के समर्थन की बात से तो हम भी सहमत हैं.

लेकिन जहाँ काव्य काव्य न रहकर केवल शैलीगत प्रयोग मात्र रह जाता है, वहाँ हम उसका समर्थन नहीं करते। नवीनता के प्रति हमें आँख भी नही मूँदनी है और इस हद तक आँख भी नहीं फाड़नी है कि छोटी चीज बहुत बड़ी नजर आवे। 'प्रयोगवाद' अभी एक छोटा-सा बालक है। वह 'होनहार बिरवा' है या नहीं, उसके 'पात चीकने' हैं या नहीं, अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। कहीं ऐसा न हो कि 'बारे उजियारो करै' और 'बढ़े अँधेरो होय'! फिर भी काव्य का यह नया मोड़ दर्शनीय है। इसका भविष्य उज्ज्वल हो, इसके लिए हमें मंगल कामना करनी चाहिए।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'नीलकुसुम' की रचनाएँ बड़ी सशक्त, साफ और सुलझी हुई हैं। कवि की वाणी परिपक्वता को प्राप्त हो चुकी है। भीतर ही भीतर 'दिनकर' भी इसका अनुभव करते हैं। यथा:—

वर्षा का मौसिम गया, बाढ़ भी साथ गई
जो बचा शेष, वह स्वच्छ नीर का सोता है!
अब चाँद और तारे इसमें निज को देखें
आसिन का जल बिलकुल दर्पण-सा होता है!

'दिनकर' जी चाहे जो कुछ सोचें, किन्तु, हम तो यही कहेंगे कि उन्होंने इस बीते हुए 'वर्षा के मौसिम' में जो कुछ दिया है, उसे वे भुला सकते हैं, मगर हिन्दी नहीं भुला सकती। 'दिनकर' जी की इन रचनाओं को हम उनके क्रमिक-विकास की शृंखला से अलग ले जाकर, प्रयोगवाद का मुकुट पहनाने के लिए तैयार नहीं हैं। ये रचनाएँ 'दिनकर' के सहज विकास से उद्भूत हैं। प्रयोगवादी काव्य जैसी दुरूहता और अस्पष्टता की कुहेलिका कहीं भी तो नहीं दिखाई देती! सब कुछ दिन के प्रकाश की तरह साफ है।

इस संग्रह में 'चाँद और कवि', 'व्याल विजय' 'स्वप्न और सत्य', 'नर्तकी', 'कवि की मृत्यु', 'तुम क्यों लिखते हो', 'गृह-रचना', 'शबनम की जंजीर' तथा 'कवि और समाज' शीर्षक रचनाएं हमें अत्यन्त प्रभावशालिनी लगीं। 'नीलकुसुम' में कवि विचारक बन गया है। वह भीतर भी देखता है और बाहर भी। उसकी दृष्टि बड़ी पैनी है, और पकड़ बड़ी अनोखी।

आज का कवि कल्पनाजीवी मात्र न होकर कल्पनाओं को साकार करने वाला भी है। 'चाँद और कवि' शीर्षक कविता में कवि की रागिनी चाँद को उत्तर देती है—

मनु नहीं, मनुपुत्र है यह सामने, जिसकी
कल्पना की जीभ में भी धार होती है.

बाण ही होते विचारों के नहीं केवल,
स्वप्न के भी हाथ में तलवार होती है!

'दिनकर' जीवन की बुनियाद ठोस धरती पर डालना चाहते हैं। उनका संकल्प यथार्थोन्मुख है। जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण देखिए:—

बड़ी कविता कि जो इस भूमि को सुन्दर बनाती है,
बड़ा वह ज्ञान जिससे व्यर्थ की चिन्ता नहीं होती,
बड़ा वह आदमी जो जिन्दगी भर काम करता है,
बड़ी वह रूह जो रोये बिना तन से निकलती है!

'नर्तकी' शीर्षक रचना में कवि ने कला के शोषण के विरुद्ध बड़ी मार्मिक भावनाएँ प्रकट की हैं। यह कविता हृदय को छूती ही नहीं, झकझोर भी देती है। देखिए:—

क्षुधा से तृप्त कर सबको स्वयम् जब लौटती घर को
तुम्हारे भी हृदय के कूप से आवाज उठती है!
"लगा लाई नया फिर एक धब्बा आज भी तन में
मरण के हाथ फिर थोड़ी अमरता बेच आई है!"

कलाकारों को भी कवि ठोस धरती पर उतरने की सलाह देता है। अब आकाश में विचरने वालों का गुजारा नहीं है:—

धुओं का देश है नादान! वह छलना बड़ी है
नई अनुभूतियों की खान वह नीचे पड़ी है!

नयी जिन्दगी और नयी चेतना कुछ ऐसी कसमसा रही है कि छिपाये नहीं छिपती। एक अजीब सी सुगबुगी है:—

पत्थरों में भी कहीं कुछ सुगबुगी है?
दूब यह चट्टान पर कैसे उगी है?

राजनीतिक रंग की रचनाओं में कवि का दृष्टिकोण क्रान्तिकारी रहा है। वह जनवादी है। इसलिए उसकी रचनाओं में जनहित की पुकार है। यथा:—

(१) कांपती है वज्र की दीवार,
नींव में से आ रहा है क्षीण हाहाकार!

(२) दो राह, समय के रथ का घर्घर नाद सुनो
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है!
फावड़े और हल राजदंड होने को हैं,
धूसरता सोने से श्रृंगार सजाती है!

'दिनकर' के हृदय पर विभिन्न राजनीतिक विचारों का प्रभाव है। कहीं वे

समाजवादी हैं और कहीं गान्धीवादी। वास्तव में वे गुणग्राही हैं। हर राजनीतिक 'वाद'में जो अच्छाइयाँ हैं, उन्हें एकत्रित करके 'दिनकर' समवन्य स्थापित करना चाहते हैं। इधर वे विनोबा के सर्वोदयी कार्यक्रम से भी काफी प्रभावित हुए हैं। यथा:—

(१) कृष्ण दूत बनकर आया है, सन्धि करो सम्राट!
मच जायेगा प्रलय, कहीं वामन हो पड़ा विराट!
(भूदान)

(२) हठी! तुम्हारे पापों से फिर एक प्रलय छाने वाला है,
गान्धी ने भूचाल किया, तूफान वही लाने वाला है!
(काँटों का गीत)

'राष्ट्र देवता का विसर्जन', 'लोहे के पेड़ हरे होंगे' तथा हिमालय का सन्देश' शीर्षक रचनाओं में कवि सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चलकर विश्व शान्ति की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देता है। 'शबनम की जंजीर' शीर्षक रचना बड़ी सुन्दर है। 'दिनकर' मानवतावादी हैं। उनका मानव प्रेम निम्न-लिखित पंक्तियों में देखिये:—

(१) मानव-मन को बेधते फूल के दल केवल,
आदमी नहीं कटता बरछों से, तीरों से,
लोहे की कड़ियों की साजिश बेकार हुई,
बाँधो मनुष्य को शबनम की जंजीरों से!

(२) मही मुक्ति का स्वाद जान पायेगी कैसे,
मनुज स्वयम् निज शंकाओं का दास अगर है!

(३) लोहे के पेड़ हरे होंगे, तू गान प्रेम के गाता चल,
नम होगी यह मिट्टी जरूर, आँसू के कण बरसाता चल!

(४) शील मुकुट नरता का, सबसे बड़ी भव्यता का है,
नहीं धर्म से बढ़कर कोई मीत सभ्यता का है!

कवि और समाज का सम्बन्ध युग-युग से अक्षुण्ण रहा है। समाज को सम्बोधित करते हुए 'दिनकर' अपने व्यक्तित्व और कृतित्व को समाज के लिए अर्पित करते हुए कहते हैं:—

शंपाओं की हूँ कड़क तुम्हारे ही नभ की,
गर्जन में तुम में छिपे हुए बादल का हूँ!
जो आग खेत की पगडंडी पर दौड़ रही,
सुरपुर में उसकी लपट छोड़ने आया हूँ!

कला की दृष्टि से 'दिनकर' जी के ये चारों संग्रह काफी ऊँचे हैं। ओज, यथार्थता और सादगी 'दिनकर' के प्रारम्भिक गुण हैं। रेणुका' से लेकर 'नीलकुसुम' तक इन तीनों गुणों का उत्तरोत्तर विकास देखने को मिलता है। 'दिनकर' ने, छंदों का चुनाव बड़ी कुशलता से किया है। उनका झुकाव लम्बी रचनाओं की ओर है। अत: लम्बे चरणों वाले छंद ही उन्होंने चुने हैं। ऐसे छंदों में वर्णन की बड़ी सुविधा रहती है। गीति-तत्व दिनकर' में बहुत कम है। दिनकर के छंद-चयन ने उनकी अभिव्यक्ति में चार चाँद लगा दिये हैं। अलंकारों के पीछे वे दौड़े नहीं हैं, अलंकार ही स्वाभाविक गति से उनकी रचनाओं में आ गये हैं। 'रेणुका' की कुछ रचनाओं की भाषा संस्कृतगर्भित अवश्य थी, किन्तु, 'रेणुका' में भी 'सादा जुबान' की ओर 'दिनकर' का झुकाव छिपा नहीं रहा है। यह एक सर्वमान्य सत्य है कि भाषा की दुरूहता काव्य-रसन में बाधक होती है। किसी ने कहा भी है कि---

"अगर इनका कहा ये आप समझे भी तो क्या समझे !
मजा कहने का तब है, इक कहे तो दूसरा समझे !"

उदाहरण के लिए 'रेणुका' की ही कुछ पंक्तियाँ लीजिए:—

(१) आदि लास, अविगत अनादि स्वन,
अमर नृत्य गति, ताल चिरंतन,
अंग-भंग हुंकृति-झंकृति कर थिरक-थिरक हे विश्वंभर !
नाचो हे, नाचो नटवर !
(तांडव)

(२) कुछ नई पैदा रगों में जाँ करे,
कुछ अजब पैदा सरो सामाँ करे !
बे सरो सामाँ रहे, कुछ ग़म नहीं,
कुछ नहीं जिसको, उसे कुछ कम नहीं !
(प्रेम का सौदा)

पहला उदाहरण क्लिष्ट भाषा का है। दूसरे उदाहरण में सादगी सादगी न रह कर उर्दू की सीमा तक पहुँच गयी है। 'दिनकर' पर उर्दू भाषा और उर्दू शायरों की अभिव्यक्ति का गहरा प्रभाव पड़ा है। इसी प्रभाव के कारण उनकी इधर की रचनाओं में मनोहर 'सादगी' के दर्शन होते हैं। गजल और रुबाई का उन पर विशेष प्रभाव दिखाई देता है। यथा:—

(१) पत्थरों में भी कहीं कुछ सुगबुगी है,
दूब यह चट्टान पर कैसे उगी है?
(२) राजा वसन्त, वर्षा ऋतुओं की रानी,
लेकिन दोनों की कितनी भिन्न कहानी,

राजा के मुख में हँसी, कंठ में माला,
रानी का अंतर विकल दृगों में पानी !
(३) हमारा व्यय ! हवा के खेत में कुछ स्वप्न बो देना।
हमारी आय ! अम्बर में हजारों फूल खिलते हैं !

इस भाषा एवम् शैली सम्बन्धी समन्वय ने 'दिनकर' के काव्य में एक अपूर्व चुस्ती पैदा करदी है। उनकी भाषा अत्यंत प्रवाहमय एवम् ओजस्विनी है। वह अर्थ को कहीं भी अंधकार में नहीं रखती। सादा होने पर भी उनकी भाषा ने लक्षणा और व्यंजना के बड़े सुन्दर चमत्कारिक उदाहरण उपस्थित किये हैं। 'नीम के पत्ते' में व्यंग्य के क्षेत्र में 'दिनकर' ने कमाल दिखलाया है। उनकी भाषा भावों की अनुगामिनी होकर चली है।

हम 'दिनकर' को 'प्रगतिवाद' या 'प्रतीकवाद' की संकीर्ण सीमाओं में न बाँधकर उन्हें केवल एक महान् मानवतावादी कवि ही कहेंगे। उनका व्यक्तित्व भावुकता एवम् उदारता को लेकर चला है। 'दिनकर' की तेजस्वी किरणें तो मुक्ताकाश में एक छोर से दूसरे छोर तक फैलने की अधिकारिणी हैं। उनके आसपास किसी 'वाद' विशेष का परकोटा खींचना उपहासास्पद होगा। हमारे लिए यही पर्याप्त है कि वे 'सत्यम्' की वीणा पर 'सुन्दरम्' की मिज़राब के सहारे 'शिवम्' की झंकार निकाल रहे हैं।

संपादकीय

बुद्धजयंती

आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व की बात है। यही बुद्ध-जयन्ती का दिन था। महाराज शुद्धोदन का राज-प्रासाद दिव्य ज्योति से प्रकाशित हो उठा। नवजात शिशु की दिव्य दृष्टि ने सप्रयास संचित राजवैभव में अंतर्हित लोक-वेदना का दर्शन किया। उसने अपने आपको अनंत दुःखमाला से घिरा पाया और वह 'कहाँ कहाँ' प्रश्न-सूचक रुदन करने लगा। महाराज का अर्थ सिद्ध हुआ। वे पुत्रवान् बने। अतः नवजात शिशु को भी अर्थसिद्धि हो, इस वस्तुस्थिति एवं मंगल कामना के समन्वित वाच्य के रूप में राजकुमार का नामकरण सिद्धार्थ हुआ। भूतल का ग्रीष्म-ताप निवारण के हेतु सत्वर हुए वसंत-किसलयों से प्रतिस्पर्धा करते कुमार विकसित होने लगे। शैशव, बाल्य एवं कैशोर्य की सीढ़ियों पर पग रखते हुए कुमार ने यौवन की देहरी पर चरण रखा। रमणीरत्न यशोधरा के जलजातकान्त लावण्य ने यहाँ स्वागत किया। राजकुमारी यशोधरा का रमणीत्व सफल हुआ। रत्नदीप की ज्योति में लक्षित भावी आनंद ज्योति से नवजात राहुल के अधरों पर चन्द्रिका शुभ्र स्मिति बिखर गयी। कपिलवस्तु के राजप्रासाद में वासव के वैजयंत का विभ्रम उत्पन्न करने वाले शतशः पृथिवी-प्रसूत देवदूतों और देवाङ्गनाओं में वह प्रतिबिम्बित हुई। शिशु के कंठ से निःसृत कलनाद ने प्रासाद को आनंदविभोर बना दिया।

कपिलवस्तु के प्रमदवन में राजकुमार सिद्धार्थ के निष्कलुष नेत्रों ने एक हंस युग्म की पर्याकुलता का अवलोकन किया, उनके करुण क्रन्दन ने उसके ऋजु हृदय को विद्ध किया। विश्व की निष्ठुरता से पीड़ित सुखापेक्षी प्राणी का आर्तनाद कुमार के अन्तस्तल में चिरनीड़ित हुआ। वह दुखी भूतग्राम के दुःख निवारण के लिए व्याकुल हो उठा। घटना क्रम इस आकुलता में योग ही देता चला। उसकी वर्धमान आकुलता का निवारण कैसे हो, वह कैसे सुखी हो, इस ज्वलंत प्रश्न ने महाराज शुद्धोदन द्वारा संयोजित जीवन को निस्तुष सुख देने वाला सुरदुर्लभ वैभव नहीं-सा कर दिया। महाराज की कल्याणकामना, गौतमी का वात्सल्य, कपिलवस्तु का राजप्रासाद, इंगित-प्रतीक्षक मनोज्ञ भृत्यकुल, सुरबाला शंकनीय परिचारिकाएँ, कमल मुकुल सा नवजात राहुल और सर्वोपरि रमणीरत्न यशोधरा कोई भी स्वसुखेच्छा की जन-जन को आवृत करने वाली परिधि में कुमार को अर्गलित न कर सका। अन्यसुखेच्छा उत्पन्न हुई। निर्भर यौवन में वेदना विह्वल जीवलोक की

व्यथा के अभेद्य व्यूह को भंग करने कीं उत्कटता के साथ कुमार ने प्रवृज्या ग्रहण की।

'अन्य सुखेच्छा' का इतिहास नया नहीं है। मनुष्य समाज जितना ही प्राचीन है यह। फिर भी कुसुम-कोमल सिद्धार्थ प्रवृज्या लेने को बाध्य हुए। सामगान तब भी चल रहा था। ऋचाओं के स्वर संघात से अन्तरिक्ष प्रतिध्वनित हो रहा था। वनस्थली और अट्टालिकाएँ यज्ञ-धूम से मसि-मंडित हो रही थीं। बहुमेध यज्ञों के समाहित 'स्वाहा' घोष में उपनिषत् की तत्त्व-वाणी विलीन हो गयी थी। भगवान् वेदव्यास और वासुदेव कृष्ण द्वारा प्रज्वलित ज्ञानाग्नि पर कालात्यय के नैसर्गिक क्रम से कर्मकाण्ड की राख की मोटी-मोटी तहें जम गयी थीं। धर्म सीमित वर्गविशेष की सम्पत्तिं हो गया था। उसका आत्मा मर गया था। बाह्याडंबर का कंकाल मात्र अवशिष्ट था। स्वसुखेच्छा के दु:ख में जीव समूह कराह रहा था। अत: सिद्धार्थ प्रवृज्या में प्रवृत्त हुए।

आज वुद्धजयंती के ही दिन सिद्धार्थ बुद्ध हुए। विश्व के कष्टों के निवारण का द्वार उन्हें अपावृत मिला। 'ये केचित् सुखिता लोके ते सर्वेऽन्य सुखेच्छया' का मार्ग जन-जन को दिखाने वे निकल पड़े। जहाँ प्रत्येक को 'अन्य सुखेच्छा' हो वहाँ दु:ख किसे ? राजा-प्रजा, धनी-निर्धन, ऊंच-नीच, स्त्री-पुरुष, वृद्ध-युवा 'धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि, बुद्धं शरणं गच्छामि' के समाहित गान के साथ समस्तर पर विश्व को दु:ख मुक्त करने चल दिये तथागत बुद्ध के मार्ग पर। सहस्राब्दियों से धूमिल हुए वातावरण का संस्कार हुआ। सर्वत्र दया, अहिंसा, लोकमैत्री का प्रसार हुआ। मानव जीवन पर, कवि की वाणी पर, गायक के कंठ पर, चित्रकार की तूली पर, मूर्तिकार की छैनी पर, वास्तुकार की भवन योजना पर, और सर्वोपरि जगती के मानस पर भगवान् बुद्ध का आलोकपूर्ण व्यक्तित्व, लोकार्ति से मुक्ति का महामंत्र छा गया। सर्वत्र क्रान्ति हुई। क्रान्ति के इस महानद ने राजनीति की कायापलटी, राज्यों की सीमाएँ लुप्त करदीं, समुद्रों और पर्वतों की अर्गलाएं खोल दीं, भाषा और संस्कृति के भेद भुला दिये और एक बार संपूर्ण बोधनीय विश्व बुद्ध जयन्ती के दिन विस्फूर्त महाप्रकाश की ज्योति में जगमगा उठा। भगवान् गौत्तमबुद्ध ने प्रवृत्त धर्मचक्र की दिव्य प्रभा का नयन भर अवलोकन किया और इसी बुद्ध जयन्ती के दिन महा निर्वाण प्राप्त किया।

इस आलोक-विप्लव की स्मृति में, जिसकी विश्व को बार-बार अपेक्षा होती है और आज जो सर्वाधिक अपेक्षित है, उसकी पुनरावृत्ति की कामना से, विभिन्न वाद और सीमाओं में विभाजित निरंतर विनाशातंकित विश्व की कल्याणेषणा से हम बुद्ध जयन्ती के मंगलकारी दिन का अभिनंदन करते हैं।

बांडुंग सम्मेलन

एशिया एवं अफ्रीका के २९ राष्ट्रों के १५०० प्रतिनिधियों का बांडुंग में हुआ सम्मेलन इतिहास के परिवर्तन का सूचक है। इस सम्मेलन में विश्व की आधी से अधिक जन संख्या के वैधानिक प्रतिनिधि अपनी विचारधाराओं, पारस्परिक संधियों और राजनीतिक गठबन्धनों की भिन्नता की विद्यमानता में भी एक धरातल पर विचार विनिमय करने के लिए एकत्र हुए। इस प्रकार के शासकीय स्तर पर हुए योरोपीय नेतृत्व से मुक्त व्यापक अन्तर्राष्ट्रीय मिलन की इस युग की यह पहली घटना है।

इस सम्मेलन की योजना की पृष्ठ भूमि में पंचशील के सिद्धान्त रहे। ये सात और पाँच विचारणीय बिषयों के रूप में तथा विश्व शान्ति वर्धन एवं सहयोग के स्वीकृत दस सिद्धान्तों के रूप में सामने आये। परन्तु स्वीकृत सिद्धान्तों की अपेक्षा इस सम्मेलन में बाहर भीतर प्रकट किये गये उद्‌गारों का और इसके सम्पन्न होने की घटना का अधिक-महत्त्व है जो वस्तुत; विश्व के भावी राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास की रूप रेखा के प्रशस्त परिवर्तन की सूचक हैं।

यह सम्मेलन गत १८ अप्रैल को हिन्देशिया के प्रधान मन्त्री डॉ० सुकार्नो की अध्यक्षता में वहाँ के अध्यक्ष डॉ० अली के उद्‌घाटन के पश्चात् प्रारम्भ हुआ। सूत्रपात से लेकर इस सम्मेलन के छह दिन के अधिवेशन भर श्री नेहरू और चीन के प्रधान मन्त्री श्री चाऊ-एन-लाई मानों किसी भी प्रकार इसे सफल बनाने में संलग्न रहे।

इस सम्मेलन में जहाँ जातिवाद तथा उपनिवेशवाद के आज भी चल रहे आर्थिक, बौद्धिक एवं शारीरिक नियन्त्रण के प्रति, पराधीन राष्ट्रों की विवशता के प्रति जागृत एशिया का रोष-घोष सुनाई दिया, एशिया और अफ्रीका की निर्धनता में विश्व-शान्ति को भय देखा गया, एशिया के भौतिक दृष्टि से विकासोन्मुख संस्कृतिकप्रवण देशों ने सह-अस्तित्व के परीक्षण द्वारा, पारस्परिक सांस्कृतिक एवं आर्थिक सहयोग द्वारा तथा मानव अधिकारों को एवं आत्म निर्णय के अधिकारों को मान्यता प्रदान करके सच्ची विश्व-शान्ति की स्थापना का संकल्प व्यक्त किया, वहीं शताब्दियों पुराने दासता के दुरछेद्य संस्कारों के वाचाल बनने के प्रसंग भी आये। योरोप और अमेरिका के संरक्षण में बने रक्षा संगठनों के प्रति आस्था फूट-फूट पड़ी।

इस सब के साथ बांडुंग सम्मेलन कलहप्रिय विश्व के लिए, दूसरे के कन्धे पर रखकर गोली चलाने वाले तत्त्वों के लिए चुनौती के रूप में अधिविष्ट हुआ, एशिया और अफ्रीका के राष्ट्र समीपतर आये, विश्व के चित्रफलक पर ये महाद्वीप

अग्र पंक्ति पर प्रतिष्ठित हुए, अनेक पारस्परिक भ्रान्त धारणाएं दूर हुईं, आशा अभिलाषाएं व्यक्त हुईं, और युग-युग से बहुविध शोषण एवं उत्पीड़न से आहत राष्ट्रों को "संगच्छध्वं संवदध्वं सहवीर्यं करवावहै" के हेतु समान आधार भूमि प्राप्त हुई। एशिया एवं अफ्रीका के देशों के इस सम्मेलन ने विश्व के देशों के तनाव पर अचूक आघात किया और इन दोनों महाद्वीपों के शान्तिप्रिय नागरिकों के हृदय में बांडुंग में प्रारम्भ हुई इस परम्परा की सफल आवृत्ति की कामना उत्पन्न की।

रेडियो स्टेशन

मध्यभारत में रेडियो स्टेशन का कार्यारंभ इस मास में अत्यन्त हर्ष का विषय रहा। रेडियो आज के युग की माँग है। यह शासन का प्रवक्ता होने की अपेक्षा सांस्कृतिक उन्मेषों के प्रसार का माध्यम अधिक है। वैसे सत्प्रवृत्ति के साथ साथ दुष्प्रवृत्तियों का वर्तन भी परिलक्षित होता ही है और इस प्रकार सभी क्षेत्रों में राजनीति का राहु सांस्कृतिक चन्द्र को छायामलिन करता दिखाई देता है, भले ही ये क्षेत्र राज्य की अधिकार सीमा में हों अथवा संवाद-पत्रों की भाँति लोक संचालित हों। परन्तु यह तथ्य अनुपेक्षणीय नहीं है कि राजनीति अपने मूल रूप में कुछ भी हो, उसका सत्ता की अपेक्षा से बना प्रत्यक्ष शरीर असंस्कृति का प्रतीक ही है और उसके मौलिक तत्त्व भी साधन मात्र हैं, साध्य कदापि नहीं हैं। इस दृष्टि से अपेक्षा यह की जाती है कि यह रेडियो स्टेशन मध्यभारत के अंचल में विद्यमान एवं वर्धिष्णु संस्कृतियों को वाणी प्रदान करे। आज का मध्यभारत विभिन्न प्रादेशिक संस्कृतियों की रंग भूमि बना है और इसका रेडियो इन सभी संस्कृतियों का, इनके कला वैभव का वास्तविक प्रतिनिधि बने, यह आवश्यक है।

मध्यभारत दिवस

मध्यभारत निर्माण-दिवस के रूप में २८ मई का हम अभिनंदन करते हैं। आज से ७ वर्ष पूर्व २८ मई के दिन हमारे दुर्दिनों के साक्षीभूत स्वेच्छाचारी निरंकुशता से शासित, सामंतशाही की समस्त अनैतिकताओं से अभिशप्त २२ राज्यों के मंगलकारी अवसान एवं उनकी सीमाओं के एकीकरण द्वारा इस राज्य का उद्भव हुआ था। अश्वसनीय बोझिल वायु वाली और संपूर्ण प्रकाश का वर्जन करने वाली दोहरी तिहरी गुलामी से निकल कर इन राज्यों के निवासियों ने उन्मुक्त वायुमंडल में निर्बाध श्वास प्रश्वास आज ग्रहण किये थे और संसार के स्वतंत्र नागरिक की श्रेणी में उन्नत सिर खड़े होकर क्षितिजान्त धरा का अबाध पर्यालोचन उनने किया था। १९५५ की २८ मई का स्वागत करते हुए और इस दिन प्राप्त हुई अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता की ओर अचिर काल में ही अर्जनीय जन जन की बौद्धिक, आर्थिक एवं सामाजिक स्वतंत्रता की अनंत चिरजीविता की हम कामना करते हैं।

संपादकीय

मध्यभारत विश्व विद्यालय

मध्यभारत की विधान सभा ने मध्यभारत विश्व विद्यालय विधान स्वीकार कर लिया है और इस ज्ञानपीठ का संगठन अब आसन्न है। विश्वविद्यालय का गठन राजनीतिक समस्या नहीं है। यह विशुद्ध सांस्कृतिक आवश्यकताओं वा राजनीतिक व्यवस्था द्वारा सांस्कृतिक हल है। राजनीतिक व्यवस्थाएँ न्यूनाधिक्य के साथ सामयिक आवश्यकताओं की पूर्ति के दृष्टिकोण से अथवा कुछ उद्घोषों को शमन करने के अभिप्राय से अपेक्षाकृत उथले पानी में सम्पादित की जा सकती हैं। विश्वविद्यालय के गठन में प्रयास कुछ भिन्न प्रकार का होना आवश्यक है। उसके लिए सौभाग्य से अनुकूल राजनीतिक परिस्थिति भी राज्य में उपस्थित हुई हैं।

विश्वविद्यालय नाम का महत्त्व नहीं है। ज्ञान की प्राप्ति ने नये मान स्थापित किये हैं। इस दृष्टि से हमारे नूतन विश्वविद्यालय का स्तर उससे ज्ञान-लाभ की सम्भावनाओं एवं सर्वांगीणता की दृष्टि से उच्चतर अपेक्षित है। इसकी पूर्ति में व्यवस्थापकों द्वारा योग्यतम व्यक्ति ही चुनने का सरल मार्ग ग्रहण करने से सुकरता आयेगी। दलगत अथवा व्यक्तिगत भावनाएँ इस पवित्र कार्य से इसकी सर्वांगीणता के हेतु दूर ही रहें। ज्ञान-लाभ राष्ट्र भाषा हिन्दी के माध्यम से हो, यह आज प्रश्न नहीं रह गया है। पहले से कार्य कर रहे विश्वविद्यालयों के सामने माध्यम में परिवर्तन करने की समस्या है। इस विश्वविद्यालय का प्रारम्भ हो रहा है। राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम से ही कार्यारम्भ करने की इसे सुविधा है। इसके व्यवस्थापकों को अन्य आधारभूत तैयारियों में राष्ट्रभाषा के पाठ्य ग्रन्थ निर्मित कराने के कार्य को जोड़ देना चाहिए। इसमें कठिनाई हो सकती है, किन्तु यह मार्ग एकाकी यात्रा करने की तैयारी का नहीं है। नागपुर विश्वविद्यालय के साहसपूर्ण प्रयास से उत्साह अर्जित किया जा सकता है। उसके संचालकों का दृढ़ संकल्प साकार हो रहा है। मध्यभारत में राष्ट्रभाषा के सक्षम विद्वानों का अभाव नहीं है। हम भी प्राप्त सभी साधनों का सहयोग संगठित करके विश्वविद्यालय की रचना के साथ राष्ट्रभाषा में अपने पाठ्यक्रम का निर्माण करें। हमारा प्रयास अनायास ही शुभ प्रारम्भ के कारण महान् निर्माण बनेगा। उसके लिए आज विशाल स्वप्न देखने वाले और संकल्प शक्ति वाले मस्तिष्क का भी अभाव नहीं है। मध्यभारत विश्वविद्यालय की जब कल्पना हो रही है, हम इसके ज्ञान-आलोक से युक्त महान् उद्भव के लिए शुभ कामना करते हैं।

दृष्टा आइन्स्टीन

प्रकृति के अंतरंग के दृष्टा अल्बर्ट आइन्स्टीन ने ७६ वर्ष की आयु में गत १८ अप्रेल को यहाँ से विदा ली। विश्व की पान्थशाला को अगणित पथिक अविश्रृंखल

रूप से अपनी क्रीड़ाभूमि बनाते आये हैं। उनमें से प्रत्येक इसे देखता है, अपनी आवश्यकताओं की अपेक्षा से इसके मर्म समझने का प्रयास करता है और अपने ऊहापोह का प्रतिपादन अपनी जीवन निष्ठा के अनुरूप करता है। कुछ व्यक्तियों की ये आवश्यकताएँ मनुष्यलोक की आवश्यकताएँ बनती हैं, सारा विश्व उनके स्व में समाविष्ट होता है। उनके जन्म में, जीवन में और मरण में लोककल्याण का–केवल लोककल्याण का–उद्देश्य निहित रहता है। उनकी जिज्ञासा अप्रतिहत होती है और उनकी नैसर्गिक प्रतिभा लोकैषणा-प्रवणता के कारण निसर्ग के गूढ़ रहस्यों का, शतशत बाधाओं का तिरस्कार करते हुए भेदन करती है। मनुष्य के प्रतिकूल आचरित प्रकृति की प्रवृत्तियाँ इस रहस्य भेद से निगडित ही नहीं होती हैं, वनकरी के वाहन के रूप में विनियोजित होने के समान इनका उपयोग समाज की सेवा के लिए होता है।

विश्व का लम्बा इतिहास इस प्रकार की विभूतियों के अवतरण से निरन्तर प्रत्येक युग में आलोकित होता रहा है। महामानव आइन्स्टीन इनमें से एक रहे हैं। युवावस्था के प्रारम्भ में ही सापेक्षवाद के विशिष्ट सिद्धान्त का और उसके पश्चात् सापेक्षवाद के साधारण सिद्धान्त का प्रतिपादन करके इनने विज्ञान को नवीन दृष्टिकोण दिया। अपने समय में विश्व को इनने सर्वतोधिक जाना। भस्मासुर के वरदान के तुल्य अणुबम को जन्म देकर भगवान् शंकर की भाँति ये अनुतप्त हुए, हिरोशिमा और नागासाकी के नरसंहार ने इन्हें करुणाप्लुत किया। राजनीतिक और आर्थिक निस्पृहता के साथ विश्व कल्याण की भावना इनमें ओतप्रोत रही। वर्त्तमान का यह महानतम वैज्ञानिक **और** विचारक जीवन भर बालक-सा सरल और पर्वत सा अडिग रहा। पृथ्वी जिसे पाकर धन्य हुई, कृतघ्न समाज से उसे उत्पीडन मिला; मनीषियों ने जिसे विश्व का प्रथम महापुरुष कहा, जन्मभूमि से उसे निर्वासन मिला और जिस विश्व सम्मान का लेश भी प्राप्त करके कोई भी मनुष्य विभूति कहलाता उसी के आवरण में प्राप्त हुई वेदना से वह स्वतन्त्र लुहार या पत्थर फोड़ा बनने के लिए तड़प उठा। संस्कृति के इस उपासक के अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्तित्व और विश्ववन्द्यता पर संसृति की छाया नहीं पड़ी। ज्ञान की अपनी अनन्त तृषा की उसने सम्पूर्ण जगत् में अनुभूति की और उसके अवशेष भी विश्व के सत्यों की अन्वेषण-साधना को अर्पित हुए। वह जितने दिन यहाँ रहा उससे कहीं अधिक यहाँ के ज्ञान भण्डार पर अपनी छाप छोड़ गया और छोड़ गया विश्वहित में संलग्न हृदयों में यह अभिलाषा कि महान् आइन्स्टीन फिर-फिर आवें।

विद्यामंदिर-प्रकाशन, ग्वालियर

के

तीन अभिनव प्रकाशन—

वे अनुपम ग्रंथ हैं—

हमारे पड़ौसी देश—

लेखक—स्वर्गीय प्रो० रंजन

प्रस्तावना लेखक—डॉ० वासुदेवशरण

प्रसिद्ध देश भक्त विद्वान तथा घुमक्कड स्व० श्री प्रो० श्री रघुनाथ सिंह रंजन ने इस में अपनी हिन्द चीन, स्याम आदि की यात्राओं का सुन्दर एवं सजीव वर्णन किया है। इसे पढ़ते समय आप अपने आपको भूल वर्णित देशों में ही पहुँच जाएँगे। उपन्यास की भाँति रोचक तथा भूगोल एवं इतिहास की भाँति शिक्षाप्रद। अनेक चित्र तथा कला पूर्ण तिरंगे सजिल्द आवरण सहित मूल्य २॥)

मधुमालती—

सम्पादक—श्री हरिहर निवास द्विवेदी

१५ वीं शताब्दी में लिखित यह हिन्दी प्रेमकाव्य उस समय की मध्यदेशीय भाषा एवं समाज का उत्कृष्ट दर्पण है। विद्वान सम्पादक ने इस की भाषा, रचनाकाक एवं काव्य सौंदर्य का सुन्दर एवं रोचक विवेचन किया है। इसका मूल पाठ २० हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर अत्यन्त परिश्रम पूर्वक तैयार किया गया है। प्रत्येक पुस्तकालय के लिये गौरव देने वाला ग्रंथ। मूल्य ५)

काश्मीर की घाटियों में—

लेखक—श्री लक्ष्मीनारायण अग्रवाल

काश्मीर पर निर्मम पाकिस्तानी आक्रमण, बेकारी की समस्या आदि आज के राष्ट्रीय प्रत्याघातों का सजीव वर्णन लिये हुए ५ एकांकी नाटकों का संग्रह। इसका प्रत्येक एकांकी सफलता पूर्वक अभिनीत किया जाकर सहस्त्रशः दर्शकों की स्मृति पर स्थायी छाप छोड़ गया है। मूल्य २)

अपने पुस्तकालय के लिये आज ही मंगाकर उसे समृद्ध करिये।

अपना ऑर्डर आज ही दें—

व्यवस्थापक

विद्यामन्दिर प्रकाशन

सराफा, ग्वालियर।

उत्तर प्रदेश शासन द्वारा पुरस्कृत—

मध्यभारत शासन द्वारा शिक्षा संस्थाओं को स्वीकृत—

पुरातात्विक शोध का रोचक ग्रन्थ

त्रिपुरी

लेखक—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी
भारत के तीन प्राचीन वैभवशाली नगरों का इतिहास—

विदिशा—जो अत्यन्त प्राचीन काल से भारत का सांस्कृतिक केन्द्र रही है—

पद्मावती—जहाँ नाग, गुप्त और पूर्व मध्यकालीन प्रतापी राजवंशों ने साहित्य एवं कला की उपासना की—

बाघ—जहाँ की मूर्त्तिकला और चित्रकला भारत की श्रेष्ठतम कृतियों में है—

की हृदयग्राही गाथा की रोचक शोध—

प्राचीन साहित्य, पुराणों, शिलालेखों तथा अवशेषों पर से लिखा गया वर्णन।
सुन्दर जिल्द, अनेक चित्र। मूल्य २)

कुछ सम्मतियाँ—

सामग्री अत्यन्त श्रेष्ठ तथा शैली हृदयग्राहक है—

—श्री व्ही० पी० अग्निहोत्री
भारत शासन के अण्डर सेक्रेटरी,
शिक्षा विभाग

यह हिन्दी साहित्य और इतिहास के वैभव की दिशा है—

—डॉ० रामकुमार वर्मा

इतिहास के विद्यार्थियों के लिये यह पुस्तक बड़े काम की है—

—"नई धारा"

विद्या मन्दिर प्रकाशन, सराफा, ग्वालियर

वार्षिक
६)

राष्ट्रभारती

एक प्रति
।।=)

—:सम्पादकः—

मोहनलाल भट्ट
हृषीकेश शर्मा

(१) यह हिन्दी पत्रिकाओं में सबसे अधिक सस्ती, एक सुन्दर साहित्यिक और सांस्कृतिक मासिक पत्रिका है। (२) इस पत्रिका को राष्ट्र-भाषा हिन्दी के तथा लगभग सभी भारतीय साहित्य और संस्कृति को बल व प्रेरणा पहुंचाने वाले प्रान्तीय भाषाओं के श्रेष्ठ लेख, विद्वान साहित्यकारों का सहयोग प्राप्त है। (३) इसमें ज्ञानपोषक और मनोरंजक श्रेष्ठ लेख, कविताएँ, कहानियाँ, एकांकी नाटक, रेखाचित्र और शब्दचित्र रहते हैं। (४) बंगला, मराठी, गुजराती आदि भारतीय भाषाओं के सुन्दर हिन्दी अनुवाद भी इसमें रहते हैं। (५) प्रतिमास पहली तारीख को प्रकाशित होती है।

ग्राहक बना देने वालों को विशेष सुविधा। एजेंसी तथा विज्ञापन दर के लिए लिखिये।

"राष्ट्रभारती" हिन्दीनगर, वर्धा [मध्य-प्रदेश]

पश्चिमोत्तर भारत की प्रमुख हिन्दी मासिक पत्रिका

विश्व ज्योति

—:सम्पादकः—

श्री विश्वबन्धु शास्त्री, श्री सन्तराम, बी ए०

संचालक—श्री विश्वेश्वरानन्द

विश्व-हित की साधना के लिए—

(क) शुद्ध सांस्कृतिक साहित्य का सृजन,
(ख) प्राचीन और नवीन ज्ञान-विज्ञान का समन्वय,
(ग) बौद्धिक क्रान्ति और नई चेतना का जागरण,
(घ) अन्यायपूर्ण सामाजिक विषमताओं का दूरीकरण,
(ङ) सभी प्रकार के विचारों का निष्पक्ष अध्ययन और आलोचन।

वार्षिक चन्दा: ८) रुपये

१०) रु० वार्षिक चन्दा देकर विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान के सदस्य बन जाने पर भेंट के रूप में मुफ्त।

पत्र-व्यवहार का पताः—

व्यवस्थापक 'विश्वज्योति', साधु आश्रम
होशियारपुर (पंजाब)

× हिन्दी साहित्य में युगान्तर—
× भारतीय जन-जीवन में नई दिशा—
× काम सम्बन्धी सम्वाद एवम् साहित्य—
× काम तथा मनोविज्ञान सम्बन्धी खोज—

एक प्रति ।=) ❀ मस्ती ❀ वार्षिक ४)

सम्पादक—नरेन्द्र धीर

—यदि आप ग्राहक नहीं बने हैं तो आज ही ४) भेज कर वार्षिक ग्राहक बनें।
—यदि आपने विज्ञापन इसमें नहीं दिया है तो आज ही विज्ञापन भेजदें।
—यदि आपने एजेन्सी नहीं ली है, तो आज ही एजेन्सी लेलें।

आज ही लिखिए—व्यवस्थापक "मस्ती" खन्ना (पू० पंजाब)

हिन्दी का स्वतंत्र मासिक
नया समाज

संचालक : नया समाज ट्रस्ट * सम्पादक : मोहनसिंह सेंगर

वार्षिक चन्दा ८) : एक प्रति ।।।) : विदेशों में १२) वार्षिक

आप यदि ग्राहक नहीं हैं, तो आज ही बन जाइये। यदि हैं, तो अपने इष्टमित्रों को भी बनाइये। यदि किसी कारण आप ग्राहक नहीं बन सकते, तो चेष्टा कीजिये कि 'नया समाज' आपके पड़ोस के पुस्तकालय में अवश्य मँगाया जाय।

आज ही नमूने के लिए लिखियेः—
व्यवस्थापक, 'नया समाज', ३३, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता-१

जिस साहित्य का जीवन से सम्बन्ध नहीं, वह निरर्थक है।
जो साहित्य मानव-जाति की सेवा की प्रेरणा नहीं देता,
वह निष्प्रयोजनीय है। और

जो साहित्य बुद्धि-भेद उत्पन्न करता है, वह अनिष्टकारी है।

जीवन साहित्य

में जीवन, मानव-जाति की सेवा की प्रेरणा और एकनिष्ठ बुद्धि से अपने मार्ग पर चलने का बल मिलेगा।

एक प्रति अवश्य देखने की कृपा कीजिये।

वार्षिक मूल्य ४) एक प्रति ।=)

सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली।

याद रखिए पत्रिका के लिए— { १. एक निश्चित उद्देश्य चाहिए !
२. उसका अपना व्यक्तित्व चाहिए !

नई धारा

ऐसी ही एक मासिक पत्रिका है जो अशोक प्रेस, पटना से प्रकाशित हो रही है। कहानियाँ, कविताएँ, शब्द चित्र, संस्मरण, नाटक, आलोचना, निबन्ध।

हिन्दी में नई धारा के प्रतीक श्री रामवृक्ष बेनीपुरी इसका सम्पादन कर रहे हैं।

प्रादेशिक सरकारों के शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत।

जिसकी सहायता के लिए साहित्य महारथियों का सम्पादक मंडल संगटित किया गया है।

डिमाई अठपेजी के १०० पृष्ठ, पक्की जिल्द, आकर्षक कवर, सचित्र, सुसज्जित।

एक अंक १ रु० **वार्षिक १० रु०**

प्रबन्धक नई धारा, अशोक प्रेस, पटना ६

एकमात्र सचित्र पारिवारिक मासिक पत्रिका

आरसी

जिसमें

कहानी, कविता, लेख, आदि अनेक सुरुचिपूर्ण साहित्यिक स्तम्भों के साथ।

बुनाई, कढ़ाई, सिलाई और पाक पर प्रतिमास सचित्र लेख।

अन्यान्य स्थायी स्तम्भ

मां और शिशु : डाक्टर के पत्र : पुरुष लोक : बालमंदिर : पुस्तक परिचय: चलचित्र जगत: शब्दार्थ और व्याख्या। हिन्दी की प्रमुख वर्ग पहेलियों पर टिप्पणियां।

इतनी उपादेय सामग्री के साथ भी मूल्य केवल ४ रु० वार्षिक।

नोट:—वार्षिक ग्राहक को प्रतिमास एक कढ़ाई ट्रान्सफर मुफ्त भेजा जाता है।

'आरसी' अपने स्थानीय एजेण्ट से मांगिए या छै आने के टिकिट भेजकर हमसे नमूना प्राप्त करिए।

व्यवस्थापक (आरसी)
स्वरूपनगर, कानपुर

दक्षिण-भारती

(दक्षिण-भारत की सचित्र मासिक पत्रिका)

आप अभी तक इसके ग्राहक न बने हों तो शीघ्र ही ग्राहक बनें। इसे कल पर छोड़ना एक भूल होगी।

वार्षिक चन्दा ६) प्रति अंक ॥)

दक्षिण-भारती कार्यालय
अफजलगंज, हैदराबाद (दक्षिण)

तार : हिन्दी फोन नं० ५४५०

अजन्ता

: मासिक :

प्रकाशक : हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद [दक्षिण]

मूल्य : ६-०-० भा. मु. वार्षिक

किसी भी मास से ग्राहक बना जा सकता है।

कुछ विशेषताएँ

१. उच्च कोटि का साहित्य
२. सुन्दर और स्वच्छ छपाई
३. कलापूर्ण चित्र

संपादक
श्री वंशीधर विद्यालंकार
श्री श्रीराम शर्मा

कुछ सम्मतियाँ

१. "अजन्ता का अपना व्यक्तित्व है"—श्री बनारसीदास चतुर्वेदी
२. "अजन्ता सुंदर और स्वच्छ पत्रिका है"—श्री दिनकर जी
३. "अजन्ता साहित्य का नया कल्पवृक्ष है"—श्री वासुदेवशरण अग्रवाल
४. "अजन्ता हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिकाओं में से एक है।"
—श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी

विद्यामन्दिर प्रकाशन

की

नवीन भेंट

मानसिंह और मानकुतूहल

लेखक—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी

मध्यभारत कला-परिषद ने जिस पर वर्ष का
प्रथम पुरस्कार दिया—

उत्तर प्रदेश सरकार ने जिसके लेखक को ६००) रु०
पुरस्कार देकर सम्मानित किया है—

भारत के सांस्कृतिक इतिहास के एक अज्ञात परिच्छेद का प्रथम प्रकाशन—

भारतीय संगीत, हिन्दी साहित्य तथा कलाओं के विकास पर नवीन शोध—

(मध्यभारत शिक्षा विभाग द्वारा राज्य की शिक्षा संस्थाओं तथा पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत)

मूल्य ५)

कुछ सम्मतियाँ

—श्री नारायणस्वरूप शर्मा, एम० ए०, मंत्री, हिन्दी परिषद, लन्दन—पुस्तक कला-परिषद के प्रथम पुरस्कार की अधिकारी है। हिन्दी साहित्य को इस खोजपूर्ण देन के लिये आप मेरी हार्दिक बधाई लेखक तक पहुँचा दें।

—श्री सियारामशरण गुप्त—"मानसिंह और मानकुतूहल का प्रकाशन हिन्दी के स्वस्थ और विस्तृत दृष्टि कोण का परिचायक है। ऐसे प्रकाशन से आपकी पूर्व परम्परा का गौरव और बढ़ गया है।"

विद्या मंदिर प्रकाशन, सराफा, ग्वालियर

पुस्तकालयों तथा अध्ययन कक्षों के लिए अनिवार्य—

भारतीय सांस्कृतिक इतिहास का महान् ग्रंथ

जिसकी छपते ही सैकड़ों प्रतियाँ बिक गईं—

❀ भारत की मूर्तिकला ❀

★

लेखक

श्री हरिहरनिवास द्विवेदी

प्राग् ऐतिहासिक काल से वर्तमान काल तक भारतीय मूर्तिकला के विकास का अत्यन्त प्रामाणिक साथ ही सरल और हृदयग्राही शैली में लिखा गया इतिहास। हिन्दी के लिए यह ग्रन्थ अपूर्व देन है।

अत्यन्त सुन्दर छपाई, मनोहर जिल्द, १०० से अधिक आर्टपेपर पर छपे चित्र।

मूल्य १०) रुपया। डाक व्यय पृथक्।

आज ही ऑर्डर दें

प्रबन्धक

विद्या मंदिर प्रकाशन, सराफा, ग्वालियर

※ श्वेतकुष्ट से दुःखी क्यों ※

प्रिय सज्जनो ! औरों की भाँति मैं अधिक प्रशंसा करना नहीं चाहता। यदि इसके ३ दिन के लेप से सफेदी के दाग जड़ से आराम न हों तो मूल्य वापस की शर्त लिखा लें। मूल्य ३) रु०, साथ २ खाने वाली दवा का मूल्य ३॥)। गलित कुष्ट (सोन-बहरी) की अचूक दवा। खानेवाली का मूल्य ५), लगानेवाली का मूल्य २)।

पं० पी० डी० ज्योतिषी पो० ऑ० कोरारी (पटना)

※ सफेद बाल काला ※

इस अनौखे तेल से बालों का पकना रुक कर, पका बाल जड़ से काला पैदा होकर ६० वर्ष तक काला स्थायी रहेगा। सिर का दर्द व चक्कर आना दूर कर, आँख की ज्योति को बढ़ाता है। एकाध बाल पका हो तो ३॥), एकत्र ३ का ९), आधा पका हो तो ५), एकत्र ३ का १२) और कुल पका हो तो ७), एकत्र ३ का १८)। बेफायदा साबित करने पर ५००) इनाम।

हिमकल्याण औषधालय
पो० ऑ० कोरारी (पटना)

स्मृतिदायक ~ केशवर्धक ~ सुगन्धयुक्त

दिनारा

ब्राह्मी आँवला तैल

DINARA BRAHMI ANWLA HAIROIL

JUDICIOUSLY MEDICATED HAIR & BRAIN TONIC WITH De Luxe PERFUME

तिल तैल
भृंगराज
आंवला
ब्राह्मी
अगर
चंदन
कपूर
इलायची
उशीर
केशर
जावित्री
पुष्करमूल
आदि से निर्मित

आमलकीब्राह्मीभृंगपत्रकागुरुचन्दनैः ।
एलाश्रीलेवकर्पूरोशीरजातीसुधादिभिः ॥

विपिनापाचयेत्तैलं अटीपुष्करकेशरैः ।
दिव्यगंधंहितंमेध्यंभ्रान्तिदंकेशवर्धनम् ॥

दिनारा आरोग्य भवन, ग्वालियर, म. भा.

DINARA AROGYA BHAVAN, GWALIOR, M. B.

सर्वत्र मिलता है

२० औंस शीशी	३ रु० ६ आ०	५ औंस	१ रु० १ आ०
१० औंस	२ रु० १ आ०	१॥ औंस	५ आ०-६ पा०

से अधिक न दें

'नई दिशा'

[त्रैमासिक साहित्य संकलन]

युगान्तरकारी साहित्य के नये चरण !

सम्पादक

श्रीकान्त वर्मा, रामकृष्ण श्रीवास्तव

सह-संपादक

राजेन्द्र गुप्त

सलाहकार—गजानन माधव मुक्तिबोध, प्रभाकर माचवे, नरेश मेहता।

नये साहित्य को स्वस्थ दृष्टिकोण प्रदान करने वाली 'नई दिशा' के खुले द्वार, नई प्रतिभाओं का स्वागत करेंगे।

प्रथम अंक मई के द्वितीय सप्ताह में प्रकाशित होगा।

वार्षिक शुल्क ४)   एक प्रति १)

पृष्ठ संख्या १००

'नई दिशा' कार्यालय, बिलासपुर (मध्यप्रदेश)

धनवान बनाने वाली पुस्तकें

चित्रकारी, पेन्टिंग शिक्षा २॥), धनवान बनने के गुप्त रहस्य २॥), सिलाई कटाई शिक्षा २॥), इलैक्ट्रिक रेडिओ गाइड २॥), मोटर ड्राइविंग गाइड ४), मोटर मैकैनिक गाइड ४), घड़ी मरम्मत शिक्षा ३॥), सायकिल रिपेयरिंग शिक्षा ३), हर प्रकार के साबुन बनाना २॥), हर प्रकार के सुगंधित इत्र तेल बनाना २॥), ताश का जादू २॥), मेस्मेरेजम (मोहिनी) विद्या २॥)।

प्रत्येक पुस्तक पर डाकखर्च ॥।) अलग।

हिन्दुस्थान ट्रेडर्स एण्ड पब्लिशर्स लि०
भरतपुर (राजस्थान)

कल्पना

साहित्य, संस्कृति और कला की मासिक-पत्रिका

जिसने

हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता का एक नया प्रतिमान स्थापित किया है।

कृतियाँ, निबन्ध, कविता, कहानी, एकांकी स्तंभ, संपादकीय, पाठकों के पत्र, समालोचना तथा पुस्तक-परिचय, साहित्य-धारा।

पृष्ठ संख्या १००   वार्षिक शुल्क १२ रु०

एक प्रति १ रु०

'कल्पना' कार्यालय,
८३१, बेगम बाजार, हैदराबाद-द०

—अपनी उन्नति के लिए पढ़िए—

जीवन संघर्ष में विद्यार्थियों तथा समस्त अन्य व्यक्तियों को सहायता देने के लिए हिन्दी में अपने प्रकार की पहली

मासिक-पत्रिका

सफल जीवन

(६४, बेयर्ड रोड, नई देहली)

मुख्य विषय—

(१) आगामी परीक्षाएं, (२) नवयुवकों और नवयुवतियों को मिल सकने वाली सरकारी और प्राइवेट नौकरियां, (३) रत्न, भूषण, प्रभाकर और साहित्यरत्न परीक्षाओं के लिए साहित्यिक लेख, (४) कहानी-कविता, (५) ज्ञान-विज्ञान, (६) देश, विदेश के समाचार, (७) खेल और सिनेमा।

आज ही ग्राहक बनिए

चन्दा:—वार्षिक ७), छ:माही ४), एक प्रति ।।।)

नमूने की प्रति के लिए १२ आने के टिकट भेजें।

सफल जीवन पुस्तकमाला अमूल्य निधि है। अवश्य पढ़िए।

पुस्तकालय-सन्देश का विशाल विशेषांक

अपने चौथे वर्ष के प्रथम अंक के रूप में

प्रकाशन मास मई—१९५५, मूल्य केवल १।।), पृष्ठ संख्या—२००

३१ मार्च १९५५ के पूर्व तक ३) भेजकर वार्षिक ग्राहक बनने वालों को यह विशेषांक मुफ्त मिलेगा।

सम्पादक—श्री कृष्ण खण्डेलवाल

इस विशेषांक के प्रधान सलाहकार होंगे

विश्वविख्यात पुस्तकालय-विज्ञान के विद्वान् डा० शि० रा० रंगनाथन

यह विशेषांक—

पुस्तकालय साहित्य की अनुपम एवं दुर्लभ कृति होगा।

पुस्तकालय-कार्यकर्त्ताओं का पथ-प्रदर्शक होगा।

विश्वपुस्तकालय-आन्दोलन का वर्त्तमान रूप बतलावेगा।

अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, रूस, चीन आदि देशों ने पुस्तकालय के क्षेत्र में क्या प्रगति की है, इसके सम्बन्ध में विस्तृत विवरण देगा।

अभी ही अपनी प्रति सुरक्षित कराने के लिए १।।) भेजिए—

अथवा ३) भेजकर ग्राहक बनिए

पता—पुस्तकालय सन्देश [मासिक]

पो० पटना विश्वविद्यालय, पटना-५

सिनेमा प्रोजेक्टर (सिनेमा की छोटी मशीन)

यह मशीन धातु की बनी हुई है। इससे आप पर्दे पर अपने पसन्द के ऐक्टर तथा ऐक्ट्रेसों की तरह तरह की रंगीन फिल्मी तस्वीरें चलती, फिरती, नाचती, कूदती उतनी ही बड़ी जितनी आप सिनेमा में देखते हैं, देखकर परिवार सहित घर पर सिनेमा का आनन्द प्राप्त करेंगे। यह मशीन हाथ से टोर्च (बैटरी) या बिजली (ए. सी. या डी. सी.) दोनों से चलाई जा सकती है। ५ गज फिल्म तस्वीरों की रील मुफ्त तथा (सचित्र) चलाने की प्रयोग विधि सहित मू० १२।।)। पोस्टेज पैंकिंग ३) रु० अलग। फिल्म तस्वीरों की रील मू० ।।) आ० प्रति गज, सिनेमा के लिये पर्दा मू० ३)।

ग्लोब ट्रेडर्स [बी० जी०] रंगमहल, अलीगढ़

स्वास्थ्य रक्षा तथा आयुर्वेद प्रचार का मासिक पत्र

"स्वास्थ्य"

कृष्ण गोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय की ओर से प्रकाशित इस पत्र में योग्य विद्वानों के लिखे हुए स्वास्थ्य तथा आयुर्वेद सम्बन्धी मौलिक लेखों के अतिरिक्त होमियोपैथी यूनानी, प्राकृतिक चिकित्सा, मनोविज्ञान. योगासन, महिला जगत्, स्वास्थ्य प्रश्नोत्तरी आदि लेख प्रकाशित होते रहते हैं। प्रोफेसर, जज, वकील, अध्यापक, विद्यार्थी, व्यापारी, क्लर्क तथा मजदूर किसान वर्ग सबके लिये उपयोगी है। इसका प्रचार अफ्रीका, इंगलैण्ड आदि देशों में भी हुआ है। पुरुषों का पौरुष, स्त्रियों की कमनीयता, रोगों से बचाव इनके लिये सब प्रकार के वैज्ञानिक साधन जानना चाहें तो "स्वास्थ्य" अवश्य पढ़ें।

वार्षिक मूल्य ३) रु०। विदेशों में ५ शिलिंग।

व्यवस्थापक "स्वास्थ्य"

पो० कालेड़ा—कृष्ण गोपाल

(अजमेर)

सफेद कोढ़

हजारों के नष्ट हुए और सैकड़ों के प्रशंसा पत्र मिल चुके हैं दवा का मूल्य ५ रु० डा० व्य० १ रु० अधिक विवरण मुफ्त मंगाकर देखिये।

वैद्य के० आर० बोरकर

मु० पो० मंगरूलपीर जि० आकोला

(मध्यप्रदेश)

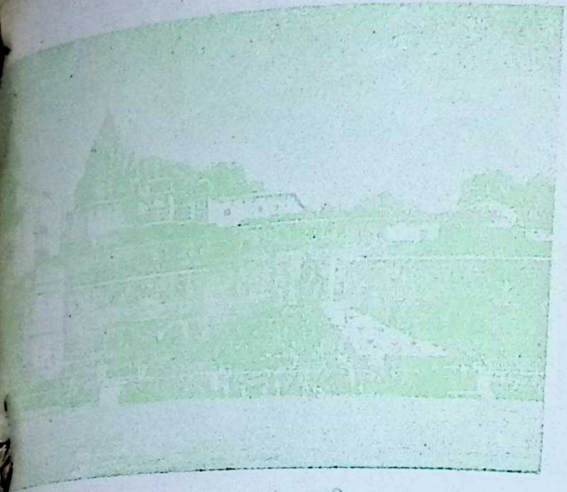

— महेश्वर का घाट एवं छत्री —

'नगर सुन्दर एक महेश्वर'

— कै. राजकवि भा. रा. तांबे

कै. राजकवि भा. रा० तांबे द्वारा वर्णित देवी अहिल्याबाई का

महेश्वर

भ्रमण के लिये सुन्दर स्थान है

इसी प्रकार

महेश्वर की

लुगड़ी

साड़ियां

एवं

खन

का भारतीय महिलाओं के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है

मंदिर में दर्शनीय स्थापत्य-कला का एक सुन्दर नमूना

गृह उद्योगों

को

प्रोत्साहन

दीजिये

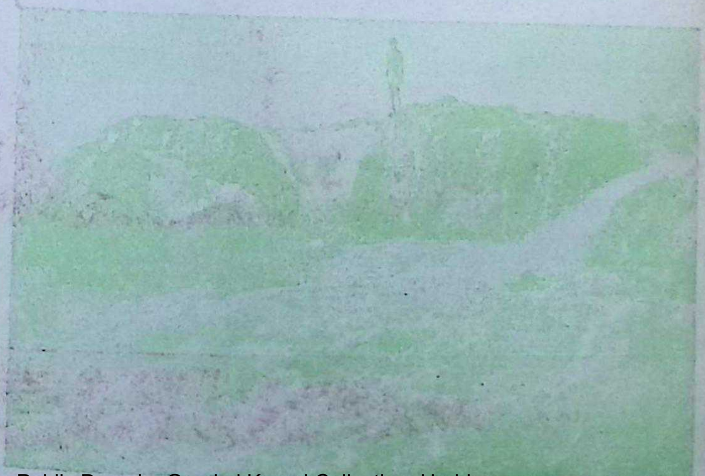

— सहस्रधारा (नर्मदा) —

[illegible] विभाग, मध्यभारत शासन द्वारा प्रकाशित —

Dinara Drakshasa

दिनारा द्राक्षासव

उत्तम काली द्राक्षा से निर्मित नवीन रक्त, बल एवं स्फूर्ति प्रद मधुर

दिनारा आरोग्य भवन, ग्वालियर, म.

DINARA AROGYA BHAVAN, GWALIOR, M.

हर जगह मिलता है

श्री [illegible] शर्मा द्वारा [illegible] प्रेस, ग्वालियर में मुद्रित [illegible]

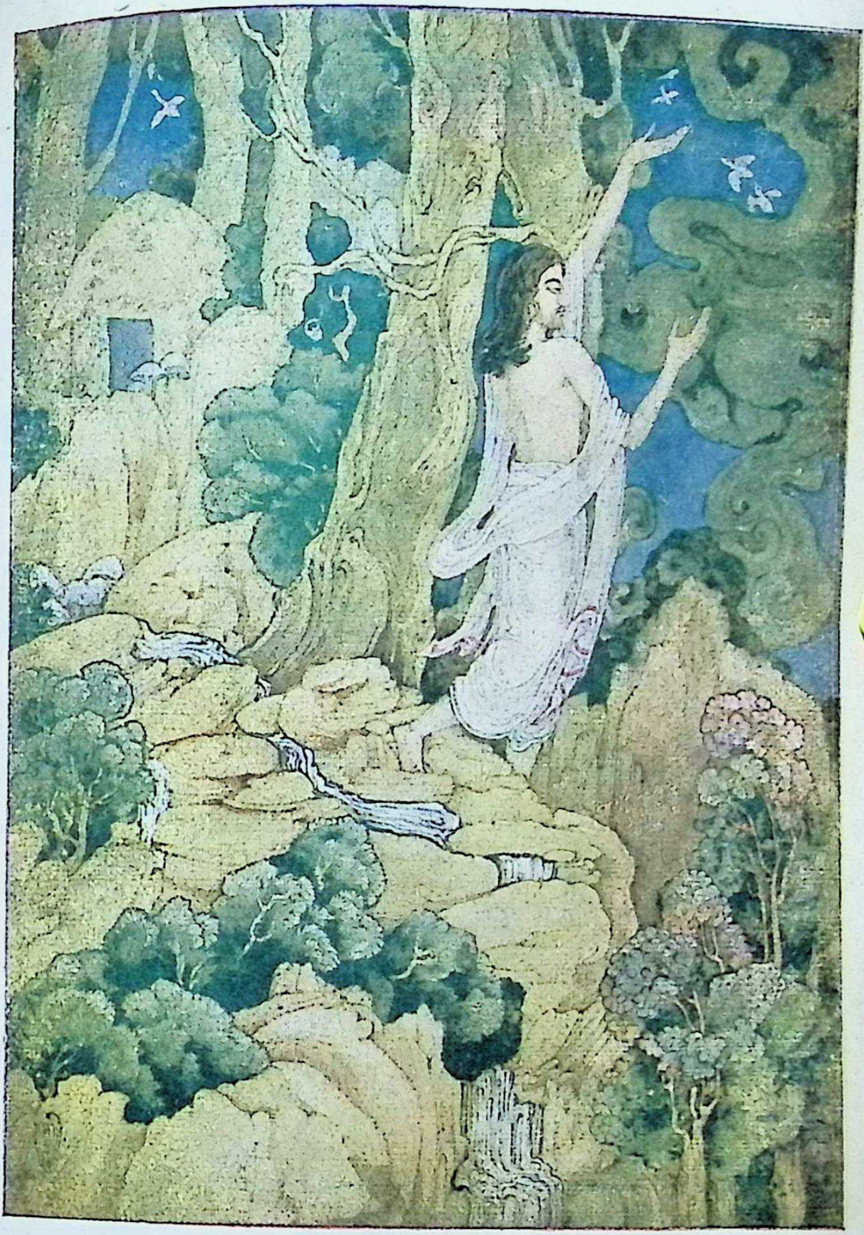

ारती

जुलाई १९५५

ाहित्य संस्कृति एवं कला की मासिक पत्रिका

सन् १९५५ के हिन्दी के नवरत्न

हमारे नये प्रकाशन

[प्रेस में]

रंगीन डोरे (कहानी संग्रह)—लेखक श्री देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त', सम्पादक सरस्वती।

हमारी मंगल यात्रा—हिन्दी में प्रथम मौलिक वैज्ञानिक उपन्यास। मंगल ग्रह की रोमांचकारी यात्रा का विवरण। लेखक—श्री ओम्प्रकाश।

बोस्तां—शेखसादी की अमरकृति का हिन्दी अनुवाद। अनुवादक श्री जहूरबख्श, हिन्दीकोविद। प्रत्येक पृष्ठ सुन्दर अलंकरणों से विभूषित।

धूल का परिचय—श्री रामकुमार 'चंचल' की प्राणपूर्ण एव श्रेष्ठतम कविताओं का संग्रह।

घर की देवी—गृहस्थी, समाज और महिलाजागृति पर श्रीमती हीरादेवी चतुर्वेदी के निबन्ध।

बैसाखी—नवोदित लेखिका कुमारी उर्मिला बनर्जी के दो अत्यन्त हृदयग्राही लघु उपन्यास।

मध्यकालीन सांस्कृतिक नवोन्मेष—ईसवी १५ वीं शताब्दी में भाषा, साहित्य, संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला एवं स्थापत्य में हुए क्रान्तिकारी नवोन्मेष का ऐतिहासिक विवेचन। इस पुस्तक में भारतीय संस्कृति के इतिहास के एक अज्ञात अंश पर प्रथम बार प्रकाश डाला गया है। लेखक—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी।

चतुर्भुजदास की मधुमालती—हिन्दी के एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ वा का अनेक हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर तैयार किया गया संस्करण। विस्तृत विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना सहित। संपादक—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी।

उत्सर्ग—काश्मीर की मुक्ति में भारतीय वीरों द्वारा आत्मोत्सर्ग के सम्बन्ध में अत्यन्त ओजस्वी खंडकाव्य। रचयिता—श्री विजयगोविन्द द्विवेदी।

विद्यामंदिर प्रकाशन, ग्वालियर

गुलाबसिंह एण्ड सन्स के समस्त रेल्वे-स्टालों पर प्राप्त

मध्यप्रदेश, बम्बई, मध्यभारत तथा अनेक राज्यों की शिक्षासंस्थाओं
एवं पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

भारती

वर्ष २ खंड १] जुलाई, १९५५ [अंक १ पूर्णांक १३

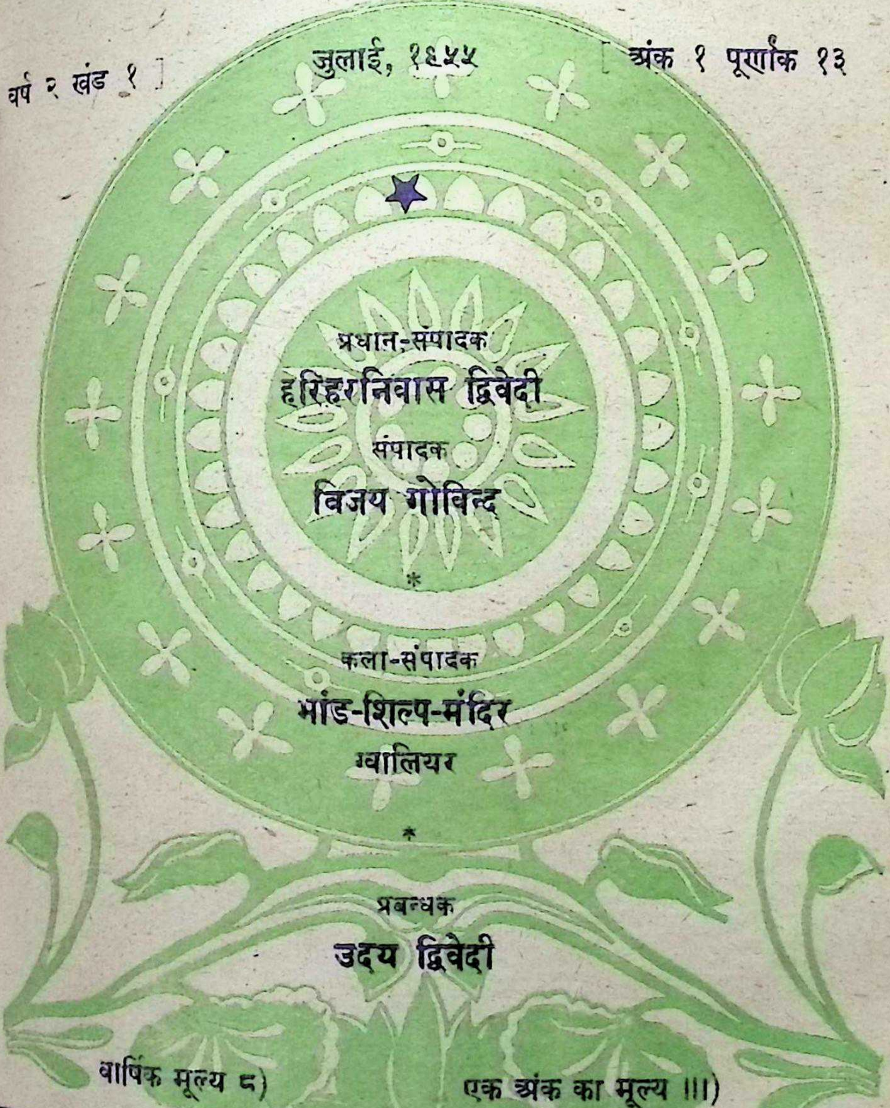

प्रधान-संपादक
हरिहरनिवास द्विवेदी
संपादक
विजय गोविन्द

*

कला-संपादक
भांड-शिल्प-मंदिर
ग्वालियर

*

प्रबन्धक
उदय द्विवेदी

वार्षिक मूल्य ८) एक अंक का मूल्य ॥।)

भारती-कार्यालय, ग्वालियर

इस अंक के लेखक

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी—बेनीपुरी प्रकाशन, पटना ६

श्री किशोरीदास बाजपेयी—कनखल, हरिद्वार (उ० प्र०)

श्री शान्तिचन्द्र—रमानिवासोद्यान, दिनारा (ग्वालियर)

श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'—राबर्ट्‌सन कॉलेज, जबलपुर (म० प्र०)

श्री ऊषादेवी मित्रा—११५, ब्यौहार बाग, जबलपुर

श्री नटवरलाल स्नेही—पर्णकुटी प्रकाशन, नागदा (म० भा०)

श्री रामचरण महेन्द्र—नयापुरा, कोटा (राजस्थान)

श्री विमला बाँठिया—२००, भाटापाड़ा, कोटा (राजस्थान)

श्री शेखर—पोस्ट बॉक्स नं० ३२, अकोला (मध्यप्रदेश)

श्री रतनलाल बंसल—फीरोजाबाद (आगरा)

प्रो० श्रीकान्त जोशी—शारदा सदन कॉलेज, मुकुन्दगढ़ (राजस्थान)

श्री कृष्णप्रसाद सक्सेना—शिन्दे की छावनी, लश्कर (ग्वालियर)

श्री वीरेन्द्र मिश्र—आँग्रे की गोठ, लश्कर (ग्वालियर)

श्री जहूरबख्श—मछरियाही, सागर (मध्यप्रदेश)

श्री राम जोगलेकर—११, सिख मुहल्ला, इन्दौर

श्री कोमलसिंह सोलंकी—ग्वालियर (म० भा०)

श्री अनन्तकुमार पाषाण—चन्दन निवास, कुर्ला रोड, अन्धेरी, बम्बई

श्री उमानन्दन चतुर्वेदी—बजाज खाना, घण्टाघर, कोटा (राजस्थान)

श्री लेव उस्पेंस्की—द्वारा तास समाचार समिति, देहली

'भारती'-सम्पादक की प्रार्थनाएँ

कृपया—

१. समस्त रचनाएँ, समालोचनार्थ पुस्तकें, परिवर्तन के सामयिक-पत्र आदि, सम्पादक, 'भारती', सराफ़ा, ग्वालियर के पते पर पूरे डाक-टिकट लगाकर, भेजें।

२. रचनाएँ सामान्यतः अच्छे काग़ज़ों पर, एक ही ओर, चारों ओर उचित हाशिया छोड़कर, टाइप की गयी या सुपाठ्य अक्षरों में स्याही से लिखी गयी भेजें।

३. केवल वही रचनाएँ भेजें, जो पहले कहीं भी प्रकाशित न हुई हों। 'भारती' में छप चुकने के एक मास बाद रचयिता अपनी रचना चाहे जहाँ छपा सकते हैं।

४. यथासंभव प्रत्येक रचना की प्रतिलिपि अपने पास रख लेने का कष्ट करें। अस्वीकृत रचनाएँ वापस मँगाने के लिए डाक के टिकिट अवश्य भिजवाएँ।

५. चार सप्ताह के अन्दर स्वीकृति की सूचना न मिलने पर यह समझ लें कि रचना 'भारती' में प्रकाशित न हो सकेगी।

६. प्रत्येक रचना के नीचे अपना पूरा नाम और पता स्पष्ट लिखने का कष्ट करें।

७. अनूदित रचना पर उसके अनूदित होने की सूचना लिखें। मूल लेखक की अनुमति लें।

८. समालोचनार्थ पुस्तकों आदि की दो-दो प्रतियाँ भिजवाएँ।

भारती पर पाठकों के

अभिमत

हिन्दी की सर्व श्रेष्ठ पत्रिका

● **श्री विन्ध्येश्वरी प्रसाद मिश्र, मुंगेर—**

—इस सुन्दर प्रयास के लिए आप अवश्य ही धन्यवाद के पात्र हैं। आपने साहित्य-क्षेत्र में ठोस कदम उठाकर हिन्दी साहित्य के भण्डार को पूर्ण करने के लिए अभिनन्दनीय प्रयास किया है।

● **श्री देवप्रकाश गुप्त, अंगार, सहसम्पादक 'जिन्दगी और व्यापार', जमालपुर (बिहार)—**

—भारती तो प्रत्येक स्थिति में युगान्तरकारी लगी।

● **श्री रामनारायण उपाध्याय, कालमुखी (खंडवा)—**

—'भारती' का अंक देखा। बहुत ही पसन्द आया। पत्रिका अन्तरंग और बहिरंग दोनों दृष्टियों से बहुत ही सुन्दर निकल रही है। एक वर्ष से भी कम समय में उसने हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिकाओं में अपना स्थान बना लिया है। बधाई।

● **श्री पन्नालाल गुप्त, भवानी मंडी, कोटा—**

—भारती एक उच्चकोटि की पत्रिका है। मैं इसकी उन्नति की कामना करता हूँ।

● **श्री हरिकृष्ण प्रेमी, इन्दौर—**

—भारती निश्चय ही उन्नति की सीढ़ियाँ चढ़ रही है। अपने प्रकार की वह अलग ही पत्रिका है। उसकी पठन सामग्री सुरुचिपूर्ण एवं ज्ञानवर्धक होती है। मैं पत्रिका का मंगल चाहता हूँ।

महाकवि निराला का आशीर्वाद

"सचमुच ही तुम्हारा प्रयास सफल है"

—भारती की उत्तरोत्तर उन्नति देख कर प्रसन्न हूँ। वाह्य एवं आन्तरिक अनेक सुधार दिखे। सचमुच ही तुम्हारा प्रयास सफल है। मेरी सारी सेवाएँ मा भारती के लिए थीं और बनी रहें यही कामना है। फिर यों तो अस्वस्थ हूँ। बुढ़ापा है।

'आर्थिक समीक्षा'—वर्ष ४, संख्या १८, दिनांक ७ जुलाई ५८।

—मासिक-पत्रिका 'भारती' में विभिन्न विषयों के गम्भीर लेख, रुचिकर कहानियों और कविताओं का चयन हुआ है। फरवरी अंक के लेखों में प्रो० रमाशंकर तिवारी का लेख "अस्तित्ववाद", आचार्य अवस्थी का "कबीर और तुलसी के राम" और श्री हरिहरनिवास द्विवेदी का "चतुर्भुजदास की मधुमालती का सौन्दर्य वर्णन" अत्यन्त ज्ञानप्रद सामग्री से युक्त हैं। कविताएँ भी उच्चकोटि के कवियों की हैं। "किलकिलानो द्वीप के कौवे" सुन्दर व्यंगपूर्ण एकांकी है। इसी प्रकार मार्च अंक में कविताएं, कहानियां, लेख और गद्यगीत दिये गये हैं जो विभिन्न प्रकार की रुचियों को सन्तुष्ट करने में समर्थ हैं। पत्रिका के मुख-पृष्ठ पर आकर्षक चित्र भी है। इस प्रकार यह आन्तरिक और बाह्य, दोनों ही सौंदर्य से युक्त है। अन्त में सम्पादकीय स्तम्भ के अन्तर्गत भी सम्पादक के दृष्टिकोण से सामयिक विषयों पर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया गया है। इस उच्चकोटि की पत्रिका के सफल सम्पादन के लिए सम्पादक महोदय बधाई के पात्र हैं।

श्री महेन्द्र भटनागर, धार, [म० भा०]—

—मुद्रण और सम्पादन दोनों दृष्टियों से 'भारती' ने प्रगति के लम्बे डग भरे हैं। आज वह हिन्दी की प्रमुख पत्रिकाओं में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। वर्तमान हिन्दी-साहित्य की प्रगति जानने के लिए 'भारती' के अंक आगे चल कर बड़े उपयोगी प्रामाणित होंगे। अनुसंधान-पूर्ण लेखों के प्रकाशन से भी 'भारती' की गौरववृद्धि हुई है। हम आपके साथ हैं।

भारती, जुलाई १९५५

अनुक्रमणिका

		पृष्ठ
कविता—		
विजयिनी—	कवीन्द्र रवीन्द्र अनु०—श्री रामवृक्ष बेनीपुरी …	१
ओ मेरे मन के अविनाशी—	श्री अंचल ….	१९
विगत यौवना—	श्री नटवरलाल स्नेही …	२५
मठ के द्वार—	श्री शेखर ….	३८
गीत—	प्रो० श्रीकान्त जोशी …	४५
गीत—	श्री वीरेन्द्र मिश्र ….	५२
गीत—	श्री कोमलसिंह सोलंकी ….	६७
कहानी—		
टेसू भी फूले—	श्री उषादेवी मित्रा …	२०
उभरता चित्र—	श्री विमला बाँठिया ….	३३
ताजमहल—	श्री कृष्णप्रसाद सक्सेना ….	४६
धरती हँसती है—	श्री राम जोगलेकर ….	६१
एकांकी—		
गद के गुम्बद —	श्री अनंतकुमार पाषाण ….	६८
लेख—		
भारत, भारती और सरस्वती—	श्री किशोरीदास वाजपेयी …	६
ठाड़ी जरें मथुरावली—	श्री शान्तिचन्द्र ….	९
हिन्दी कविता में साम्प्रदायिक समस्या—	श्री रामचरण महेन्द्र …	२६
मलवार के प्राचीन प्रजातंत्र—	श्री रतनलाल बंसल …	३९
ऊषा अनिरुद्ध कथा—	श्री हरिहरनिवास द्विवेदी ….	७७
युगों पुराने सम्बन्ध—	श्री लेव उरोस्की …	८६
संस्मरण—		
पंडित रघुवरप्रसाद द्विवेदी—	श्री जहूरबख़्श ….	५४
गद्य-गीत -		
आज भी	श्री उमानंदन चतुर्वेदी …	७६
संपादकीय—		
भारत रत्न—राज भाषा आयोग—निर्धनता का वितरण—सूर्योदय नहीं होगा—महामानव निराला—अर्थ का अनर्थ—ये कैसे शिक्षाविज्ञ हैं ?—वाणी-मंदिर की पावनता बचाएँ—शिक्षा मंत्रालय और हिन्दी—भारती का प्रथम वर्ष—		९१

मुख पृष्ठ—आषाढस्य प्रथम दिवसे चित्रकार श्री रामगोपाल विजयवर्गीय

आगामी अगस्त अंक

के

आकर्षण

६ कविताएँ—

- 'रस की बूँदे बरसो'
- मेरी बाँसुरी बजी
- जाम के ये उजड़े से बाग
- उठ क्रान्ति सुन्दरी आदि

५ कहानियाँ—

- पूनों की साँझ
- सोने का पिंजड़ा
- ग्वालिन आदि

६ लेख—

- आधुनिक कथा साहित्य में अश्लील चित्रण
- साहित्य में शून्यवाद
- मेघदूत : एक दृष्टि
- छत्तीसगढ़ के लोक-काव्य आदि

एकांकी, प्रकाशन-परिचय, सम्पादकीय

—कुछ लेखक—

- श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'
- प्रो० प्रतापसिंह चौहान
- श्री विद्यावती मिश्र
- कुमारी प्रभा जोशी
- श्री वीरेन्द्रकुमार जैन
- श्री हीरादेवी चतुर्वेदी
- श्री रामप्रसाद एम० ए०
- श्री ओमप्रकाश
- श्री अनवर आगेवान

रवीन्द्र भारती

विजयिनी

कवीन्द्र रवीन्द्र

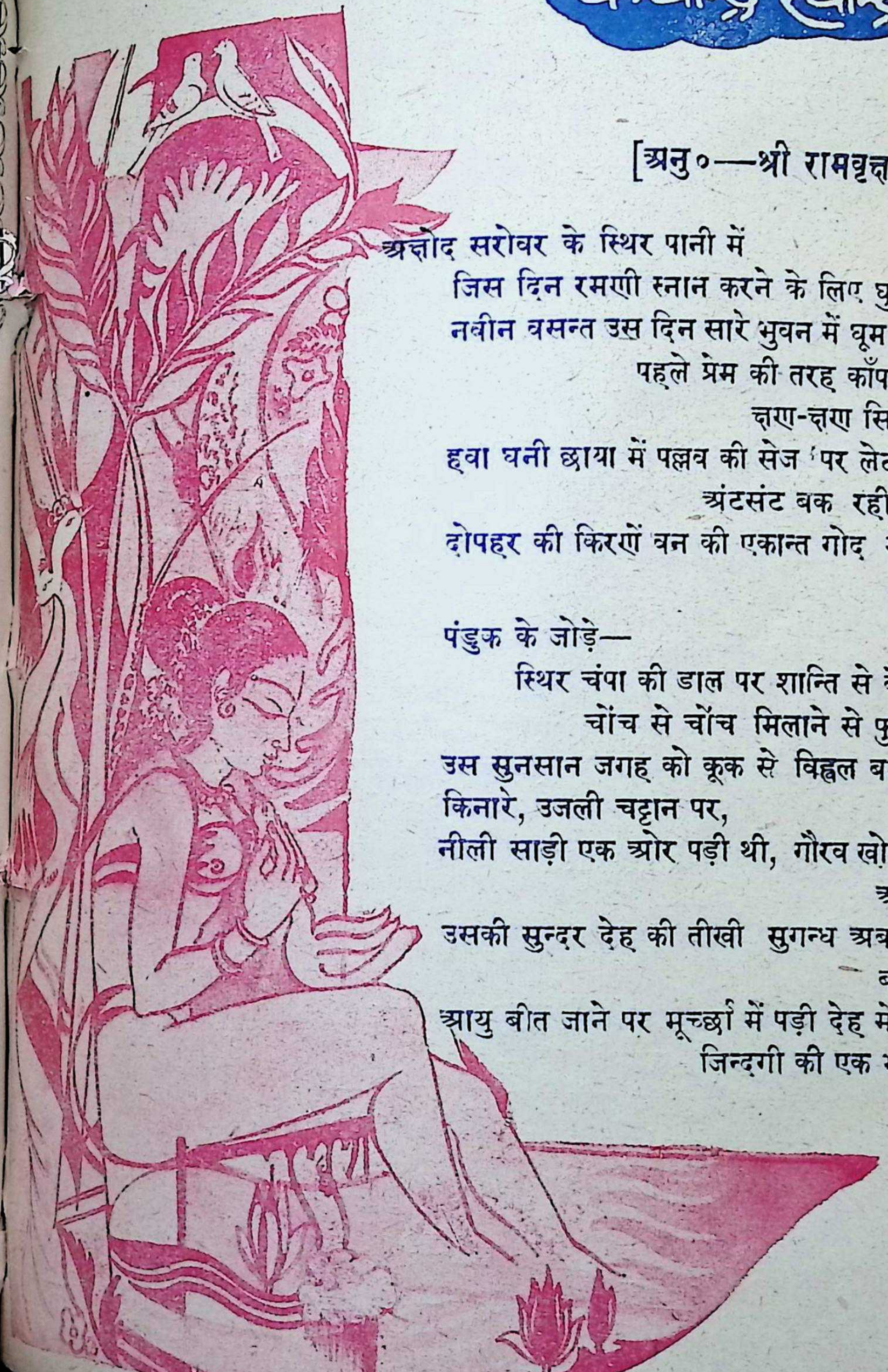

[अनु०—श्री रामवृक्ष बेनीपुरी]

अच्छोद सरोवर के स्थिर पानी में
जिस दिन रमणी स्नान करने के लिए घुसी,
नवीन वसन्त उस दिन सारे भुवन में घूम रहा था—
पहले प्रेम की तरह काँपता-काँपता,
क्षण-क्षण सिहरता।
हवा घनी छाया में पल्लव की सेज पर लेटी
अंटसंट बक रही थी।
दोपहर की किरणें वन की एकान्त गोद में मूर्च्छित
सोई थीं।

पंडुक के जोड़े—
स्थिर चंपा की डाल पर शान्ति से बैठे
चोंच से चोंच मिलाने से फुर्सत पाकर
उस सुनसान जगह को कूक से विह्वल बना रहे थे।
किनारे, उजली चट्टान पर,
नीली साड़ी एक ओर पड़ी थी, गौरव खोकर,
अनादर से,
उसकी सुन्दर देह की तीखी सुगन्ध अब भी उसमें
बसी थी—
आयु बीत जाने पर मूर्च्छा में पड़ी देह में
जिन्दगी की एक झलकसी।

कमर से हटकर करधनी लोट रही थी, अपमान में चुपचाप,
नूपुर भी पड़े हुए थे; कंचुकी गड़ी जा रही थी—
दो स्वर्गों से हटकर, कठिन पत्थर में,
सोने का दर्पण आसमान की ओर टकटकी लगाये हुए था
किसके चेहरे की याद करके !

सोने के कटोरे में रखा था चन्दन और कुंकुम का लेप;
फेंके हुए, शर्माये हुए, दो लाल कमल; ताजा सुन्दर उजली जूही की माला !
धोया हुआ उजला कपड़ा—छोटा दपादप,
पूर्णिमा के आकाश की तरह !
लबालब नीला पानी—स्थिर, आघात हीन !
किनारे-किनारे फैल रहे थे सहृदय आलिंगन ।
तालाब के एक तरफ मौलश्री की घनी छाया में—
छाती तक पानी में डुबोये सुन्दरी बैठी थी
उजले पत्थर की पटिया पर,
अपनी काँपती छाया स्वच्छ जल में फैलाती हुई !
जतन से पाले उजले राजहंस को वह प्यार कर रही थी,
खींच कर छाती से लगाती ।
नंगी बाहों के पाश में घिरे थे उसके कोमल दोनों डैने
उसकी लंबी गर्दन कंधे पर रख कर वह बार बार कह रही थी
प्रेम की प्रलाप भरी बातें
और अपने कोमल गाल सहला रही थी हंस की पीठ पर—
स्पर्श-विभोर होकर ।

चारों तरफ उठ रही थी मधुर रागिनी—
जल में, थल में, आकाश में
सुन्दर कहानी न जाने कौन रच रहा था—
धूप-छाँह में, जंगल के सन्नाटे में, पत्तों के मर्मर में,
वसन्त के दिनों के कितने स्पन्दन में, कंपन में,
उसाँस में, उच्छ्वास में, ज़बान में, इशारे में, गुंजार में, चमक में, झलक में।
मानो आकाश-वीणा की सूर्य-किरणों के तार पर

देव-बालिका की चंपे-सी अंगुलियों का आघात पा कर
संगीत झंकार के रूप में रो उठा हो—
मौन स्तब्धता में, वेदना से पीड़ित होकर, मूर्च्छित होकर।
पेड़ के नीचे खिलकर, खुल कर गिर रहे थे चुपचाप
विरल-विरल, बेबस, मौलश्री के फूल,
कोयल बे-थकी सिर्फ गाये जा रही थी, उसकी असफल 'कुहू' रोती
फिरती थी—
उदास प्रतिध्वनि वन वन में मारी फिर रही थी।
छाया के निकट ही, सरोवर की बगल में ही,
छोटी-सी निर्झरणी नाच के ताल पर बजाती मणियों की करधनी,
कल्लोल में मिल रही थी!
घास भरे किनारे पर जल के कलकल में, दुपहरिया की हवा में,
सारस अपनी लंबी गर्दन भाव-भंगी से टेढ़ी कर
उसे धुमैले डैनों के बीच अपनी पीठ पर ले जाकर सोया हुआ था।

राजहंसों के झुंड के झुंड पाँत बनाकर
तेजी से, चंचलता से किसी दूर नदी तट के
बालू पर का विचरना छोड़कर
उड़ कर जा रहे थे कैलास की ओर—
जहाँ बर्फ गल चुकी होगी!
जंगल की तरह-तरह की गंध के बोझ से थकी हवा
उत्तप्त आग्रह से लोट पड़ी थी लंबी उसाँसें लेती
मुग्ध बने तालाब की छाती पर
ठंडी बाहों से लिपट कर।

कामदेव, बसन्त सखा,
व्यग्र कुतूहल में, छिपकर बैठा था, मौलश्री के नीचे,
फूलों के आसन पर, पेड़ के तने से मस्ती में उठँगा,
पसार कर अपने दोनों पैरों को नयी घास पर।
पीला दुपट्टा ज़मीन पर लेट रहा था।
लिपटी थी मालती की माला उसके घुँघराले बालों में,
उसकी गोरी गर्दन में।

हँसी-भरी टेढ़ी चितवन से कौतुक में देख रहा था
उस मोहिनी सुन्दरी तरुणी की स्नान लीला!
अधीर हुई, चंचल बनी उसकी उत्सुक उँगलियां,
नारी के निर्मल कोमल वक्षस्थल को लक्ष्यकर
फूलों का तीर लिए अपने मौके की ताक में थीं!

लाखों भौंरे गुंजार करते फिरते थे फूल-फूल पर,
छाया के नीचे सोई हरिनी को क्षण-क्षण चाट रहा था
धीरे-धीरे विमुग्ध नेत्रों से, हरिन,
वसन्त के स्पर्श से वन की छाया भरी हुई थी
आलस और लालसा से।

जल के किनारे क्षुब्ध, क्षुण्ण कंपन रखकर,
भींगे पैरों के चिह्न अंकित करती सीढ़ी-सीढ़ी पर,
किनारे पर आ खड़ी हुई सुन्दरी।
खुले बाल पीठ पर लटक पड़े!

अंग-अंग में जवानी की चंचल तरंगें—
शोभा के माया-मंत्र से स्थिर और अचंचल,
बन्दिनी बनी थीं;

शिखर-शिखर पर पड़ी दुपहरिया की धूप—
ललाट पर, अधर पर, जांघों पर, कमर पर;
स्तनों के अगले ऊँचे भाग पर,
दोनों बाहों पर,
भींगी देह की रेखा-रेखा पर वह झलमल-झलमल कर उठी!
चारों ओर से घेरकर अखिल पवन और अनन्त आकाश ने,
मानो एक जगह आकर, आग्रह से सिर झुकाकर,
अंग-अंग को चूम लिया।
गुलाम की तरह भींगे शरीर को पोंछ दिया धूप ने अंचल से
जतन के साथ;
छाया लाल पैरों के नीचे, गिरे कपड़े की तरह,
पड़ी हुई थी,
जंगल सन्नाटे में खड़ा अचरज में मरा जा रहा था।
मौलश्री के मूल को छोड़, मृदु-मंद हँसता,
कामदेव उठा—

सामने आ, अचानक रुककर, खड़ा हुआ,
चेहरे की ओर देखा, अपलक, निश्चल नयनों से, थोड़ी देर,
दूसरे ही क्षण ज़मीन पर घुटने टेक कर बैठ गया,—
चुपचाप, अचरज भरा, सिर झुकाये,
फूल का धनुष, फूल के बाण, समर्पित किये चरणों में—
पूजा के उपचार की तरह, तरकस ख़ाली करके !

अस्त्रों से हीन कामदेव की ओर
देखा सुन्दरी ने शान्त, प्रसन्न मुख से !

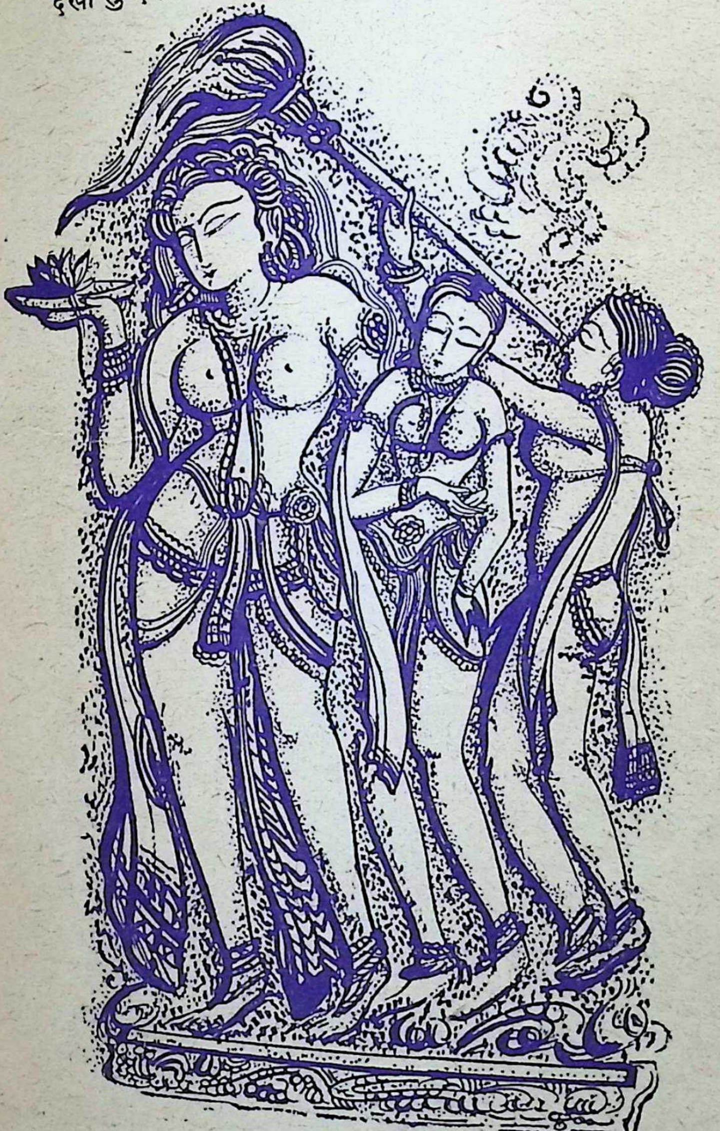

शब्द-चिन्तन----

भारत, भारती और सरस्वती

श्री किशोरी दास वाजपेयी

अपने देश का नाम 'भारत' है—'भा'-'रत', ज्ञानरत। इस देश की ज्ञानोपासना सर्व विदित है। जब धरती के अन्य देश प्रगाढ़ अन्धकार में पड़े पशु-जीवन बिता रहे थे, इस देश के ऋषि-जन विविध क्षेत्रों में ज्ञान की किरणें फैला रहे थे। अन्यत्र जहाँ ज्ञान को लौकिक सुख-समृद्धि का साधन समझा गया, इस देश के ऋषियों ने उसे ही साध्य समझा! आजन्म ज्ञान के उपार्जन-प्रसारण में लगे रहना ही उन महामनीषियों का ध्येय रहता था। इसीलिए इस देश का नाम 'भारत' पड़ा और इसीलिए सरस्वती को भी 'भारती' कहने लगे। सरस्वती एक नदी का नाम है, जो अब लुप्त है। पंजाब के एक विस्तृत भू-भाग का सिञ्चन करती हुई यह नदी उधर कहीं समुद्र की खाड़ी में जा गिरती थी, जहाँ आज मरु-प्रदेश (मारवाड़) आबाद है। यह नदी कुरजनपद (मेरठ डिवीजन) से भी परे 'कुरुजाङ्गल' (वर्तमान पंजाब प्रदेश से अम्बाला-डिवीजन) के आगे (पूरब की ओर) कभी भी नहीं बढ़ी। प्रयाग (इलाहाबाद) में गंगा-यमुना से सरस्वती के मिलने की बात भ्रमात्मक है। वहाँ केवल गंगा-यमुना का संगम है। वाल्मीकि तथा कालिदास आदि ने भी गंगा-यमुना का ही संगम बतलाया है, सरस्वती का उल्लेख नहीं किया है। 'त्रिवेणी' का अर्थ है–तीन धाराओं का समाहार। दो नदियों की तीन धाराएँ एक धारा गंगा की, दूसरी यमुना की और तीसरी दोनों की संयुक्त। यदि तीन नदियों का संगम होता तो, 'चतुर्वेणी' बन जाती। 'वेणी' शब्द 'प्रवाह' का वाचक है, 'नदी' का नहीं। परन्तु 'वेणी' शब्द स्त्रीलिङ्ग है, इसलिए भ्रम से नदी का वाचक समझा जाने लगा। तीसरी नदी कहाँ गयी? इस जिज्ञासा में कहा गया कि वह लुप्त हो गयी! उस समय से बहुत पहले सरस्वती लुप्त हो चुकी थी–उस लुप्त हो जाने की बात सब जान गये थे, इसलिए कह दिया गया कि सरस्वती लुप्त हो गयी है!

ध्यान रखने की बात है कि 'प्रयाग' शब्द का भी अर्थ संगम' ही है। 'यज' का अर्थ 'संगतिकरण' या 'संगम' भी है। प्रकृष्ट संगम–'प्रयाग'। जब लोग 'प्रयाग' का अर्थ दूसरा करने-समझने लगे, तब 'संगम' की जरूरत पड़ी।

यह प्रासंगिक चर्चा है। हम कह रहे थे कि भारत या ज्ञानोपासक जनों का अधिष्ठान होने के कारण यह देश 'भारत' कहलाने लगा, और ज्ञानप्रकाशक वाणी 'भारती' कहलाने लगी। भारती को सरस्वती भी कहने लगे; क्यों कि सब से पहले सरस्वती के तट पर ही उस अनन्यसाधारण वैदिक ज्ञान का प्रस्फुटन हुआ था। विद्या

का अधिष्ठान सरस्वती-क्षेत्र था; इसलिए उस (सरस्वती) को विद्या की अधिष्ठात्री देवता कहा गया—एक लाक्षणिक प्रयोग। अब भी 'लन्दन संसार को हिला रहा है' जैसे प्रयोग होते हैं—लन्दन के राजनीतिज्ञों के लिए 'लन्दन' का प्रयोग। इसी तरह सरस्वतीतट-वासी ऋषिजनों के लिए 'सरस्वती' का प्रयोग होने लगा। संसार में कहा जाने लगा—'सरस्वती' की कृपा हो जाएगी, तो हम लोग भी कुछ सीख-समझ जाएँगे—'सरस्वती की कृपा' सरस्वतीतट-वासी ऋषियों की कृपा। आगे चल कर 'सरस्वती' शब्द वाणी तथा विद्या का पर्याय बन गया।

'भारत' शब्द महर्षि यास्क के 'निरुक्त' में आया है। वहाँ ऋत्विजों के नामों में 'भारत' तथा 'कुरु' शब्द हैं। वेद के कर्मठ विद्वानों को ऋत्विज कहते थे। तब वे 'भारत' हुए ही। कुरु का अर्थ है, कर्मकाण्ड में निपुण। वे ज्ञानी (भारत) भी थे और कर्मठ (कुरु) भी। ये 'भारत' तथा 'कुरु' विद्वान सरस्वती-तट पर जहाँ प्रधान रूप से रहते थे, वह (प्रदेश) आगे चल कर 'भारत' तथा 'कुरुजनपद' कहलाने लगा। वहाँ के शासकों को भी 'भारत' तथा 'कौरव' कहा जाने लगा। 'भारत' फिर सम्पूर्ण देश बन गया। 'सिन्ध' का 'हिन्द' जैसे सम्पूर्ण देश का वाचक आगे बना, उसी तरह।

यह प्रवाद गलत जान पड़ता है कि शकुन्तला-पुत्र 'भरत' के नाम पर इस देश का नाम 'भारत' पड़ा। ये राजा भरत कुछ ऐसे राजनीति-निपुण, विजयी तथा प्रजा-वत्सल नहीं चित्रित किये गये हैं कि सर्वातिशायी समझ कर लोग इनके नाम से ही देश को अभिहित करने लगते! इन से बहुत अधिक प्रतापी और प्रजावत्सल अनेक राजा हो गये हैं। बचपन में सिंहशावकों से खेलने के अतिरिक्त और कोई चीज वैसी आकर्षक सामने नहीं है। ऋषियों के आश्रमों में सिंह और गौओं का साथ-साथ रहना भी वर्णित हुआ है। वहां यदि कोई बच्चा सिंह शावकों से खेलने लगे, तो इससे आश्रम का महत्त्व ही प्रकट होता है, यदि वह बच्चा आगे चल कर कोई वैसा पराक्रम न प्रकट करे। और एक व्यक्ति के नाम पर किसी एक देश का नाम पड़ जाना कुछ जँचता भी नहीं है।

'धर्म के पुत्र'—'वायु के पुत्र'

पौराणिक आख्यानों में किसी महान धर्मात्मा को 'धर्म-पुत्र' और बलवान को 'वायु-पुत्र' कहने की परिपाटी है। तेजस्वी को 'सूर्य-पुत्र' और शासन-पटु को 'इन्द्र-पुत्र' भी कहा गया है। किसी समय 'पुत्र' या 'सुत' का प्रयोग सादृश्यबोधन के लिए होता था। 'सब्रह्मचारी', 'सहोदर' आदि के लाक्षणिक प्रयोग अब भी होते हैं। 'बाप' का भी प्रयोग बोल-चाल की भाषा में होता है 'यह आम गुलाबजामुन का भी बाप है'। किसी समय इसी तरह 'पुत्र'-'सुत' आदि का लाक्षणिक प्रयोग सादृश्य प्रकट करने के लिए होता था। इसीलिए युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन तथा कर्ण को धर्म, वायु इन्द्र और सूर्य का पुत्र कहा गया है। महावीर हनुमान भी वायुपुत्र हैं। आगे चल कर लोग इन

लाक्षणिक प्रयोगों को भूल बैठे और अभिधा से 'पुत्र' तथा 'सुत' का वाच्य अर्थ ही प्रकृत में लगाने लगे ! तब वैसी-वैसी कहानियाँ गढ़ी गयीं ! यहाँ तक कि इस युग के महान समाज-निर्माताओं ने भी अपने ग्रन्थों में 'नियोग' को मान्यता दी !

सीता की अग्नि-परीक्षा

'अग्नि-परीक्षा' का लाक्षणिक प्रयोग तो आज भी होता है। सीताजी उस अग्नि-परीक्षा में शुद्ध निकलीं—वैसी परिस्थिति में भी दाग नहीं लगने दिया ! सीधी बात है। परन्तु इस 'अग्नि-परीक्षा' का भी लाक्षणिक अर्थ छोड़कर लोग वाच्य अर्थ लेने लगे ! कहते हैं—आग प्रज्वलित हुई और सीताजी उस धधकती हुई आग में कूद कर भी जलीं नहीं—उनका पाञ्चभौतिक शरीर उस भौतिक अग्नि में भस्म न हुआ ! यह है 'अग्नि-परीक्षा' का हाल !

इसी तरह अन्य शब्दों की भी दुर्गति हुई है।

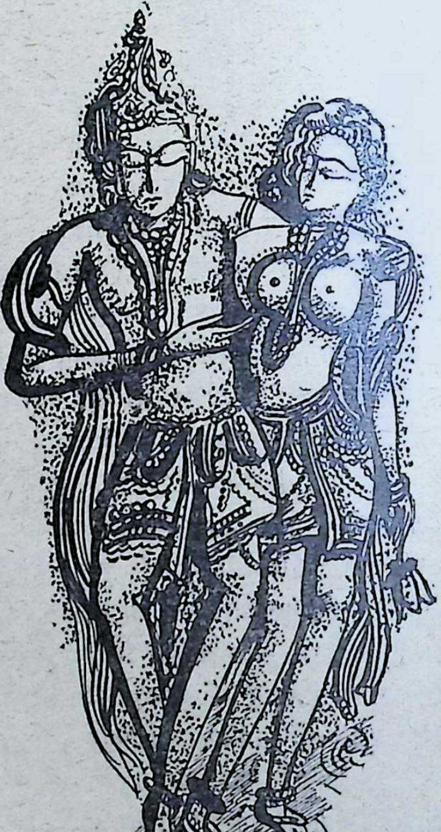

एक लोक-गीत—

ठाढ़ी भईं मधुरावली

श्री शान्ति चन्द्र

बुन्देलखण्ड की कँकरीली-पथरीली भूमि में निसर्ग की संकुचित उदारता पद-पद पर जीवन की प्रगति को झकझोरती चलती है। जन-जीवन इन बाधाओं में अपना मार्ग प्रशस्त करता चलता है। कठिनाइयों से उसकी जूझ उसके स्वाभाविक रसोद्रेक से ओतप्रोत है। मध्यकाल का राजनीतिक और सामाजिक संघर्षपूर्ण वातावरण परिस्थितियों के आगे न झुकने वाले बुन्देले रक्त के उबाल की पुण्य-कथाओं से झंकृत है। दिल्ली पर अनेक झंडे चढ़े और उतरे, परन्तु अंग्रेजों के सर्वग्रासी राज्यकाल के पूर्व तक बुन्देलखण्ड की दुराधर्ष भूमि सांसारिक असम्पन्नता में स्वतन्त्रता के स्वच्छन्द समीर का आनन्द लेती रही है।

कन्या के साथ सम्पूर्ण पावनता एवं मांगल्य की भावनाओं का समन्वय इस प्रदेश में हुआ है। किसी भी कार्य के प्रारम्भ के लिए बहन का, भानजी का, किसी भी कन्या का मंगल-स्पर्श उसकी शिव परिणति की अचूक पूर्व सूचना देता है। कन्या की कल्पना यहाँ स्वयं पूत रूप में हुई है और उसकी पावनता की रक्षा बुन्देलखण्ड ने प्राणपण से की है। कन्या मात्र के प्रति उद्भूत माधुर्य एवं उत्कटता की दृष्टि से वात्सल्यपूर्ण हृदय के भावों में दिव्य सात्विकता का समावेश हुआ है और बुन्देलखण्ड की संस्कृति की रग-रग में यह सात्विकता ओतप्रोत है। अपनी अथवा गाँव की पुत्री, बहन, भानजी अथवा भतीजी के चरण इस प्रदेश में वन्दनीय स्वीकार किये गये हैं, जिस भावना का प्रतिरूप अन्यत्र भारतवर्ष में किंवा विश्व के किसी अंचल में प्राप्त नहीं है। इस प्रदेश की बाला अथवा महिला जो अन्त तक अपने ग्राम की पुत्री या कन्या ही रहती है, अपने में न्यस्त इस गौरव और सम्मान की प्रतिष्ठा के प्रति निरन्तर सचेष्ट रहती है। उसमें एक सहज मर्यादा की भावना उत्पन्न होती है। इस प्रदेश के लिए विशिष्ट इस पुण्य परम्परा की रक्षा में उसके प्राणों का मूल्य अधिक नहीं रह जाता है।

ऐसे प्रदेश में प्रकृति के वर्षा के वैभव से परिप्लुत जल एवं हरियाली के सौन्दर्य से झलमलाते वातावरण में ग्राम-ललनाएँ बलिदानों की प्रतीक बनी कभी की ऐतिहासिक "मधुरावली" की प्रशस्ति श्रावण के घर घर में व्याप्त झूले के समारोह में गाकर अपने को समाज द्वारा दिये गये विशेष सम्मान की और आत्म-गौरव की रक्षा आत्माहुति देकर भी करने के संकल्प की कथा का पारायण ही करती हैं। मध्य युग

के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक फलक पर स्त्री समाज इस गीत द्वारा रूपशालीनता-युक्त अपने स्वयं के ही सम्मान पर मर मिटने के सम्मोहक एवं वन्दनीय चित्र की परिकल्पना करता है।

मध्यकाल के इतिहास में जयचन्दों की कहीं कमी नहीं रही है। पिता का भाई ही वैमनयस्यवश यवनों को चढ़ाकर ले आता है—

सगौ री कका वैरीं भओ,
ल्याओ तुरकिया चढ़ाय,
बन्द परी हैं मथुरावली।

भारतीय संस्कृति से अनभिज्ञ विदेशी आक्रान्ता को यहाँ के संचित वैभव के साथ-साथ भारतीय ललना का सौन्दर्य भी अदम्य आकर्षण की वस्तु रहा है, और मात्र वस्तु ही रहा है। इस युद्ध में आक्रान्ता तुर्क को सबसे मूल्यवान लूट मथुरावली के लम्बे-लम्बे केश, कटीली भौहें और रसभरे "लागने" नयना ही प्राप्त होते हैं। मथुरावली को वह बन्दी बनाकर अपने शिविर में ले जाता है।

मथुरावली अपनी मुक्ति के लिए व्याकुल है। आकाश में उड़ती एक चील दिखती है। उसके द्वारा घरवालों तक अपना सन्देश पहुँचाने की वह इच्छा करती है। लोकगीतों के गुंजरण की प्रेरणा को अनुभव करने वाली उद्गायिका की पक्षी द्वारा सन्देश-वहन की मृदु कल्पना मेघदूत के लोकमान्य काव्य वैभव के उद्गमस्तर का आभास देती है। उसकी ओज़स्वी अभिव्यक्ति, स्वाभाविक वेग एवं तलस्पर्शी अनुभूति स्वयंमुद्भूत हैं। चील की "आधे सरग" ऊँची उड़ान से उसके सन्देश वहन के सामर्थ्य पर उसे विश्वास होता है और वह "बन्द परी हैं मथुरावलीं" यह सन्देश मार्मिक संक्षिप्तता से भेजती है। उसके सन्देश से "मथुरावली" के व्यक्तित्व का महत्त्व, उस व्यक्तित्व के आक्रान्ता के द्वारा बन्दीं बना लिये जाने की गर्ह्य गम्भीरता और मथुरावली के हृदय की निरुपाय तड़प अत्यन्त व्यंजनात्मक एवं प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्त होती है—

सरग उड़न्ती एक चीलरी
आधे सरग मड़राय,
जाय जो कहियो राजा ससुर सें,
सास सें कहियो समझाय,
बन्द परी हैं मथुरावली।
जाय जो कहियो राजजेठ सें,
जिठानी सें कहियो समझाय,

बन्द परी हैं मथुरावली।
जाय जो कहियो राजा देवर सें
देवरानी सें कहियो समझाय,
बन्द परी हैं मथुरावली।
जाय जो कहियो राजा साहिब सें
प्यारी के बन्द छुड़ाओ,
बन्द परी हैं मथुरावली।
जाय जो कहियो राजा वीरन सें
भौजाई सें कहियो समझाय,
बन्द परी हैं मथुरावली।

मथुरावली का आतुर सन्देश प्राप्त होता है और उसे आक्रान्ता से—जिसे सुघर गायिका मुगल कहती है—वापस लाने के लिए सभी अपनी-अपनी कल्पना के अनुसार यत्न करते हैं—

ससुर मिलाऔ हो लै चले,
लै चले हथिया हजार,
लैरे मुगल के जे हथिया,
बहू जो छोड़ौ मथुरावली।

लेकिन मुगल तो मथुरावली के रूपलावण्य पर मुग्ध हो गया है। हजार हाथी का प्रलोभन भी उसे मथुरावली वापस करने को प्रवृत्त न कर सका।

तेरे हथियन को मैं का करों,
मेरें हैं उटला हजार,
एक न छोड़ों मथुरावली।
जाके हैं लम्बे लम्बे केस,
भौहें कटीली, नैना रस भरे,
लै जाऊँ काबुल देस,
बीबी बनाऊँ मथुरावली।

और राजा ससुर निराश होकर लौट जाते हैं।

उनके निराश होकर लौटने पर मथुरावली के राजा जेठ हजार घोड़े देकर मथुरावली को मुक्त कराने का प्रयास करते हैं—

जेठ मिलाऔ हो लै चले,
लै चले घुड़ला हजार,

लै रे मुगल के जे घुड़ला,
बहू जो छोड़ौ मथुरावली।

परन्तु मुगल उनको भी उसी प्रकार का उत्तर देता है—

तेरे घोड़लन कौ मैं का करों,
मेरें हैं गदहा हजार,
एक न छोड़ों मथुरावली।
जाके हैं लम्बे लम्बे केस,
भौहें कटीली, नैना लागने,
लै जाऊँ काबुल देस,
बीबी बनाऊँ मथुरावली।

जेठ के पराङ्मुख होने पर मथुरावली का देवर हजार मुद्राएँ देकर अपनी "भौजाई" को छुड़ाने का प्रयास करता है—

देवर मिलाओ हो लै चले,
लै चले मोहरें हजार,
लै रें मुगल के जे मोहरें,
भौजाई जो छोड़ौ मथुरावली।

परन्तु मुगल इसका उपायन भी अस्वीकार कर देता है। मथुरावली के सामने इन सब उपहारों को वह तुच्छ मानता है और उसे यह कह-कर कि उसकी हजार मुहरों के अभाव की पूर्ति के लिए उसके पास हजारों रुपये मौजूद हैं, निराश लौटा देता है।

तेरी मोहरिन कौ मैं का करों,
मेरें हैं रुपया हजार,
एक न छोड़ों मथुरावली।
जाके हैं लम्बे लम्बे केस,
भौहें कटीली, नैना रस भरे,
लै जाऊँ काबुल देस,
बीबी बनाऊँ मथुरावली।

मथुरावली का पति मुगल के स्त्रीपरायण होने की कल्पना करता है और एक हजार वेश्याएँ उपहार स्वरूप ले जाता है—

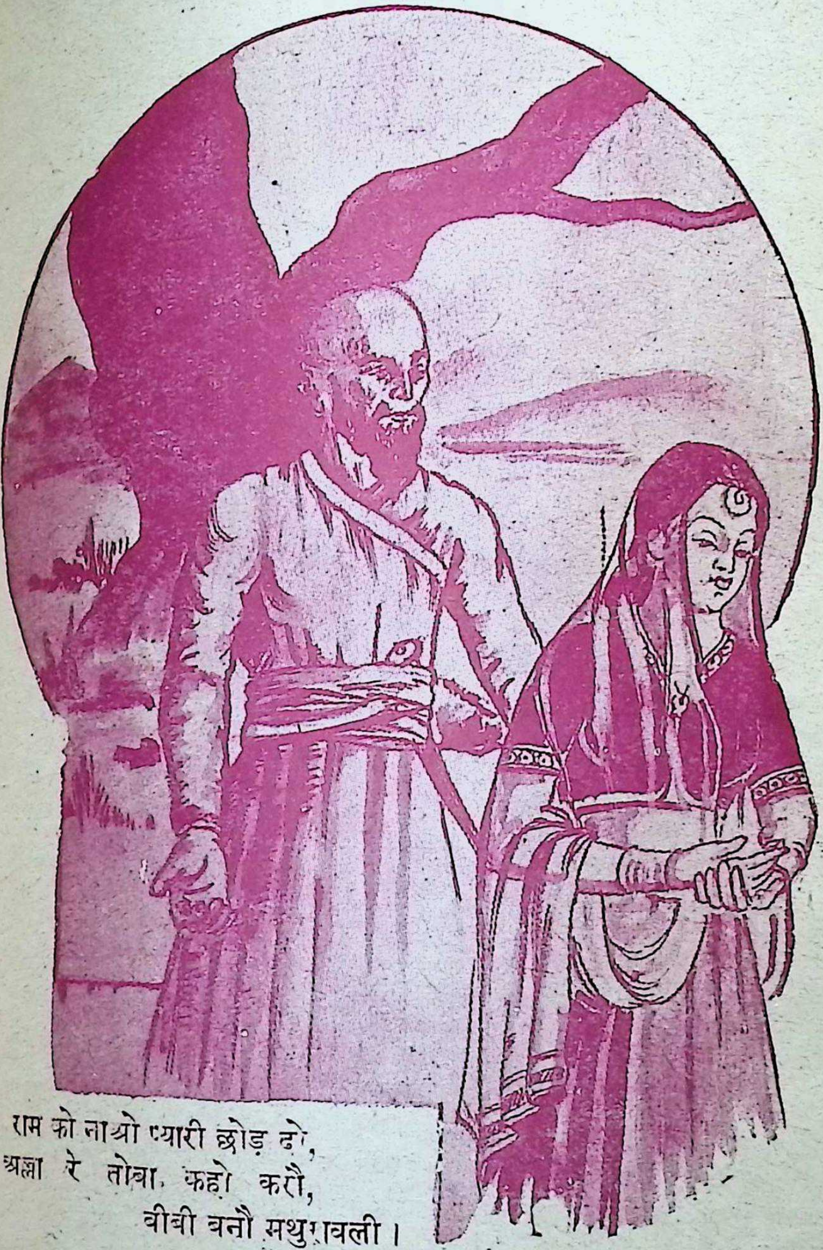

राम को नाओ प्यारी छोड़ दो,
अल्ला रे तोबा कहो करौ,
बीबी बनौ मथुरावली।

लहँगा रे लुँगरा प्यारी छोड़ दो,
पहरौ तिलक इजार,
बीबी बनौ मथुरावली।

साहिब मिलाऔ हो लै चले,
लै चले रंडी हजार,
लैरे मुगल के जे रंडियाँ,
प्यारी जो छोड़ौ मथुरावली ।

परन्तु मथुरावली के नैसर्गिक रूपवैभव के सामने वह इन्हें भी अस्वीकृत ही कर देता है । जता देता है कि उसके हरम में हजारों बीबियाँ पहले से विद्यमान हैं—

तेरी रंडिन कौ मैं का करों,
मेरें हैं बीबी हजार,
एक न छोड़ों मथुरावली,
जाके हैं लम्बे लम्बे केस,
भौंहें कटीली नैना लागने,
लै जाऊँ काबुल देस,
बीबी बनाऊं मथुरावली ।

मथुरावली के भाई का रक्त बहन के अपहरण के ग्लानिपूर्ण समाचार से उबल पड़ा । वह हजारों रणबाँकुरों को सन्नद्ध कर युद्ध भूमि में अन्तिम निर्णय के लिए उतर आया । अव्याहतगति मुस्लिम विजयवाहिनी के अपरिमेय बल से वह विचलित नहीं हुआ । उसके सामने दूसरे विकल्प की—सामक्रिया की—कल्पना को अवकाश ही नहीं था । सहोदरा के सतीत्व के प्रश्न का समाधान आत्माहुति के अतिरिक्त उसकी बुद्धि में दूसरा सम्भव ही नहीं था । हजारों उज्ज्वल खड्गलताओं में विंध्य की पर्वत शृंखलाओं के शिखर प्रतिबिंबित हो उठे और सूर्य का प्रकाश कौंध उठा—

बीरन मिलाऔ हो लै चले,
लै चले तेगा हजार,
बंद परीं हैं मथुरावली ।

मथुरावली समझ लेती है कि अब पुनः शंकापूर्ण परिणामयुक्त भयंकर रक्तपात आसन्न हैं । इस बार-बार के रक्तपात की अपेक्षा आत्मोत्सर्ग के मार्ग को वह स्वाधीन और सुगम मानती है । उसे यह भी भासित हुआ प्रतीत होता है कि इस अनुर्वर एवम् स्वतंत्रता के हेतु पद-पद पर निरंतर संघर्षशील प्रदेश पर स्थायी प्रभुत्व एवं आधिपत्य रखने की अभिलाषा आक्रांता की नहीं है, मात्र उसके शरीर का प्रलोभन ही उसे यहाँ तक खींच लाया है और उसकी अद्भुत् युक्ति से यह झगड़ा समाप्त हो जायगा।

ठाड़ी जरैं मथुराबली

जौनौ तुरक पनियां गओ,
बंगला में दै लई आग,
ठाड़ी जरैं मथुरावली ।

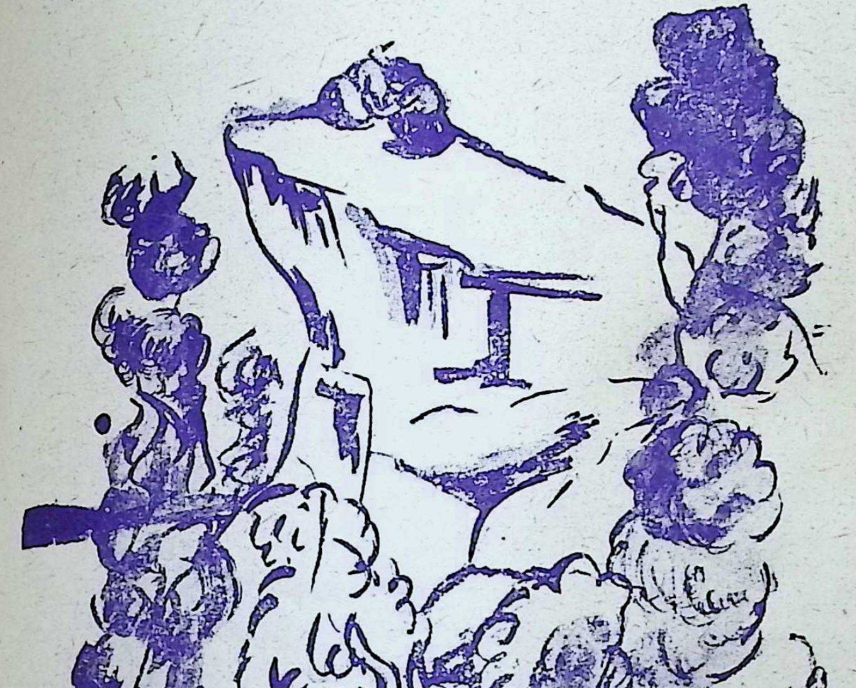

ऊँचे चढ़ ढोल बजाओ
ठाड़ी जरैं मथुरावली ।

भाई को वापस लौटने का संदेश वह भेजती है, और उसका सम्मान रखने का वचन देती है। अपनी बहन की प्रत्युत्पन्नमति पर, उसके दृढ़ निश्चय पर और बुन्देलखंड के नारीत्व, प्रदेश, समाज एवं संस्कृति की परंपराओं के अचल प्रहरीत्व पर उसे विश्वास होता है। वह आश्वस्त होता है कि वह उसकी पगड़ी की लाज नहीं जाने देगी।

जाओ बीरन घर आपने,
राखोंगी पगड़ी की लाज,
बंद परी हैं मथुरावली।

इस सब के पश्चात मुगल को भी भास होता है कि अब मथुरावली उसकी होती है और उसके सामने रामनाम का परित्याग करने का, बुंदेलखंडी वेशभूषा लहंगा लुंगरा छोड़कर उसके हरम के अनुरूप 'तिलक इजार' धारण करने का प्रस्ताव रखता है—

राम कौ नाओ प्यारी छोड़ दो,
अल्ला रे तोबा कहबू करौ,
बीबी बनौ मथुरावली।
लहंगा रे लुंगरा प्यारी छोड़ दो,
पहरौ तिलक इजार,
बीबी बनौ मथुरावली।

मथुरावली मुगल की कामांध वृत्ति को समझती है और वह उससे लाभ उठा कर उसे अपनी सेवा में प्रवृत्त करके एकांत प्राप्त करना चाहती है। वह उससे पीने के लिए पानी मांगती है—

जा रे मुगल के पानी भर लिया,
प्यासी मरैं मथुरावली।

तुर्क अपनी व्यवस्था के अनुकूल और कदाचित मथुरावली को अपनी दृष्टि परिधि से बाहर न होने देने की इच्छा से भिश्ती को पानी लाने का आदेश देता है। मथुरावली इसका वर्जन करती है—

भिश्ती के हाथ कौ पानी ना पियों,
मेरौ धरम घट जाय,
प्यासी मरैं मथुरावली।

मथुरावली का आदेश पाकर उधर मुगल पानी लेने जाता है, इधर मथुरावली अपने भाई की पगड़ी की लाज रखने के लिए भारतीय नारी के उज्ज्वल चरित्र की पताका फहराती हुई स्वयं को अग्नि के समर्पित कर अग्नि से भी अधिक तेजवान हो

जाती है। आदर्शों के सम्मुख देह की अति तुच्छता के भारतीय आदर्श को वह तेजस्वीतम रूप में क्रियान्वित करती है। वह शिविर में आग लगा लेती है और उसमें खड़ी-खड़ी वासना के तिमिर को तिरोहित करने वाली नारी के उज्ज्वल चरित्र की उल्का की भांति जल उठती है—

जौनौ तुरक पनियां गओ,
बंगला में दै लई आग,
ठाड़ी जरैं मथुरावली।

ढोलिये को अपना नाक का स्वर्णाभूषण पारितोषक में देकर वह उससे उसके जीवित अग्निसमर्पण की घोषणा ऊंचे स्थान पर चढ़ कर जन-जन को सुना देने को कहती है—

नाक की बेसर ढोलिया तोय दऊं,
ऊंचे चढ़ ढोल बजाओ,
ठाड़ी जरैं मथुरावली।

तुर्क भी अवाक है, मन मसोस कर कहता है कि भारतीय नारी की रूपमाधुरी भी-कितनी विचित्र है। वह उसकी (तुर्क की) परंपरा के अनुकूल 'जर' के साथ संलग्न होने वाली 'जन' कदापि नहीं है। शाही महलों का दुर्लभ वैभव भी उसके लिए प्रलोभन की वस्तु नहीं है। उसकी लावण्यशिखा में अंतर्हित चारित्र्य-अग्नि के साक्षात दर्शन कर वह हतमनोरथ होता है। वह कल्पना भी नहीं कर सकता कि इतना अपार रूपवैभव मुगल को तुच्छ दिखने वाले आदर्शों पर तृण-काष्ठवत भस्म हो सकता है—

हाड़ जरैं जैसे लाकड़ी,
केस जरैं जैसे घास,
ठाड़ी जरैं मथुरावली।
अल्ला रे तोबा मुगल करै,
हिंदू की जोय महा बुरी;
ठाड़ी भसम हो जाय,
ठाढ़ी जरैं मथुरावली।

मथुरावली की आत्माहुति की प्रतिक्रिया में बहुविधता दिखाई देती है। उसके पति के लिए तो यह वियोग-विह्वलता का ही प्रसंग होता है। वह उसके लिए जीवन संगिनी ही तो है। और वह आंसू बहाता चल देता है। 'राजा बीर' की अनुभूति बहन के लोकोत्तर बलिदान के प्रति अनेक भावनाओं से परिपुष्ट भिन्न प्रकार की परिलक्षित होती है। मथुरावली की सहोदरता, उसके व्यक्तित्व के प्रति अनपायि पावनता की उस

की भावना, और आनबान की रक्षा के लिए ही कदाचित इसके जन्म, जीवन और मरण की मान्यता उसके बिहँस चलने में मुखरित होती है। संपूर्ण मधुरता, समरक्त का करुण विछोह 'बहना' के 'पगड़ी की लाज' रखने के हास में निमज्जित हो जाते हैं। वह प्रसन्न होता चल देता है—

रोय चले बाके साहिबा,
बिहँस चले राजा बीर,
राखी बहना पगड़ी की लाज,
ठाड़ी जरैं मथुरावली।

आज भी बुंदेलखंड की पर्वत मालाओं के प्रत्येक शिखर पर चढ़ कर भारतीय नारी के उच्च आदर्श का उद्‌घोष करते हुए ढोलिये का तुमुल स्वर हमारे कानों में गूँजता है—

'ठाड़ी जरैं मथुरावली'

और प्रत्येक बुन्देलखण्ड वासी आश्वस्त है कि उसकी बहन के हाथों में उसका गौरव चिरंतन काल तक सुरक्षित हैं।

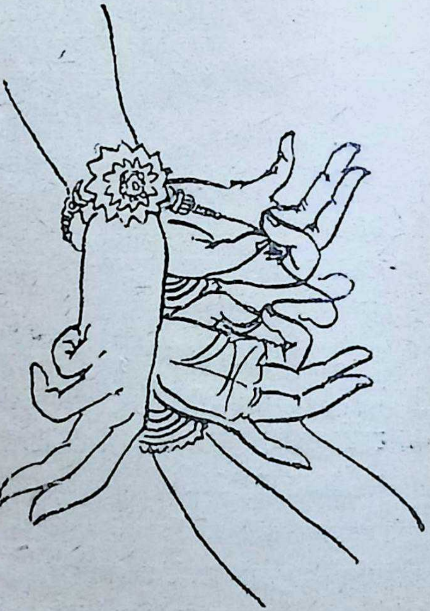

ओ मेरे मन के अविनाशी

—श्री अंचल

मेरे विश्वासों में उतरो ओ मेरे मन के अविनाशी !
मेरे पतझड़ के कूलों में उतरो सब दिन के मधुमासी !!

तुमने मेरी उत्कंठा में यह कैसी मादक लौ धर दी ?
अकुलाये याद भरे मन में गीतों की तन्मयता भर दी,
कब सीख भली विधि पाया था मैं प्राण जलाना तिलतिल कर,
कवि की सौन्दर्य-पिपासा तुमने पूजा में परिणत कर दी,

इस मरु की धरती पर बरसो, बरसो, ओ मेरे आकाशी !
मेरे विश्वासों में उतरो ओ मेरे मन के अविनाशी !!

मैं ढूँढ रहा अपने दिल में बहती तृष्णा का छोर यहाँ,
पहचान न अब तक पाया मैं खोये मन का विश्राम जहाँ,
भटकी भटकी सी फिरती हैं ये कैसी बिछुड़न की छाँहें,
प्यासी मेरी लघुता प्यासी, प्यासे जीवन का छोर कहाँ ?

मेरे अवशेषों में उतरो ओ उज्ज्वलता के अधिवासी !
मेरे विश्वासों में उतरो ओ मेरे मन के अविनाशी !!

मेरे संशय संशय में तुम अपना संकल्प जगा जाते,
सुख दुख की इन अनुहारों को कितनी रंगीन बना जाते,
पूरी न अभी तक हो पाई अधगूँथी आँसू की माला,
मेरे मन में उमड़े जल को क्यों इतना निष्फल कर जाते ?

मेरी जलधारों में गूँजो ओ रस के जलधर अविलासी !
मेरे विश्वासों में उतरो ओ मेरे मन के अविनाशी !!

मेरी आसक्ति बने निष्ठा, ममता अर्पित हो भक्ति बने,
दिन जाने बिन अनुमाने जीवन की सीमा ही शक्ति बने,
तुम पूर्ण अमरता में अपनी—है मुग्ध अधूरापन मेरा,
मेरी चंचलता की उल्का तुम तक पहुंची अनुरक्ति बने,

बँध जाओ मेरे सपने में ओ मेरे रागी सन्यासी !
मेरे विश्वासों में उतरो ओ मेरे मन के अविनाशी !!

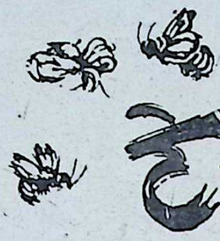

टेसू भी फूल

श्री उषा देवी मित्रा

(१)

इस रूप-रस-गन्ध भरी दुनियाँ में देवी जब जन्मी तब पास-पड़ौसिनों को उस अत्मद्युत रूप-माधुरी को देखकर विधाता की भूल की आलोचना करना कदाचित अस्वाभाविक न रहा हो।

रूप ? और ऐसा रूप ? वह भी एक भिखारी के घर में ? और साथ ही उस नवशिशु के अदृष्ट को धिक्कारना, यह भी कदाचित् उनकी प्रतिदिन की चर्चा का अंग-विशेष रहा हो। "अरे भाई, विधाता ने भूल की तो की, वे तो विधाता ही ठहरे, उनके तो सात खून माफ हैं, परन्तु इस निगोड़ी लड़की ने माँ के गर्भ में तीन मास रहकर ही--पिता के जीवन को समाप्त कर दिया और माँकी आँखों में आँसू बहा दिये।" किसी ने मन्तव्य प्रकट किया—"इस कुलक्षरणा को नदी में बहा देना चाहिए।" किसी ने कुछ। परन्तु फिर भी राधा ने लड़की पर दुलार करके नाम रखा "देवी।" क्या उसकी पुत्री देवीदुर्गा से सुन्दरता में कम है ?

भिखारिणी माता के विस्मय की यह देखकर सीमा न रहती कि अत्यन्त अल्प अवस्था में देवी को रंगों का, गन्ध का तथा स्पर्श का इतना अधिक ज्ञान और रुचि है। वह तो जीवित पहेली ही उसे लगती। उस पर लड़की की तीक्ष्ण स्मरण शक्ति। मलिन या काली वस्तु तथा व्यक्ति से वह दूर भागती, फटे चीथड़ों से दूर हटकर वह जमीन पर सोती। गन्दे कपड़ों को वह शरीर से निकाल कर फेंक देती। एक दिन की बात माता कभी भूल न सकी। टेसू के वृक्ष तले जब झोली लिये क्लान्त-सी देवी बैठ गयी थी, तब वह घन्टों उस वृक्ष को, पुष्पों को देखती रह गयी। माँ की बार-बार पुकार से वह चेतना प्राप्त सी होकर बोली थी—'माँ इसे क्या कहते हैं ? टेसू ? ठहरो, उस छोटे से पौधे को मैं उखाड़ लूँ, अपने आँगन में लगाऊँगी।" और उस छोटी-सी लड़की ने माँ के सन्देह प्रकट करने पर कहा था— 'देखती नहीं हो, यह टेसू ही है। इसकी पत्तियों की गन्ध सूंघो न।" और पौधे को लाकर आँगन में लगा दिया था।

और एक दिन जब वह रूप-परी सहसा दृष्टिशक्ति खो बैठी तब राधा का दुःख

सीमा को पार कर गया। बात छोटी थी, लड़की की आँखें लाल हुई थीं, उसने पड़ोस से दवा माँग कर लगा दी थी, उसके बाद फिर देवी की दृष्टि शक्ति न लौटी, न लौटी। देवी ने करुण आर्तनाद किया—"माँ-माँ, यह तुमने क्या लगा दिया? अरी माँ, मेरे सामने सब अँधियारा हो गया। न मैं तुम्हें देख पा रही हूँ न अपने टेसू को।"

माँ का प्रत्येक रोम सिहर कर अकड़ गया—मनमोहन भाई की पत्नी ने यह क्या दे दिया? पश्चात्ताप से उसका मन भर उठा—माँ होकर आज उसने अपने ही हाथों लड़की को अन्धी बना दी। माँ ने दोनों हाथों से मुँह ढाँक लिया। वह किस तरह उस सन्तान के सामने जाएगी, जिसे अपने हाथों उसने अन्धा कर दिया अनजान में? परन्तु जान से हो चाहे अनजान से, आज का सत्य तो यहीं है न?

इसके बाद दिन-रात राधा ने परिश्रम कर दुगना अर्थ उपार्जित किया। यथासाध्य देवी की आँखों की चिकित्सा करायी। परन्तु उसका अन्धत्व नहीं गया, नहीं गया।

(२)

शीत की बर्फीली वायु, उस पर ज्वर, परन्तु काँपती-ठिठुरती राधा लड़की का हाथ पकड़े सरजू के उस पार सुविशाल मठ में पहुँची एवं मठाधीश शंकरदेव के चरणों पर लोट गयी, कहा—"प्रभु स्वर्गीय वृद्ध योगीराज मठाधीश मुझे पहचानते थे। उनने मुझे वचन दिया था कि मेरी इस अन्धी लड़की देवी को वे मठ में स्थान देंगे। मेरा अन्तिम समय है, इस दुखिया को आपके चरणों में सौंप कर मैं अन्तिम श्वास लेना चाहती हूँ।"

शान्त शंकरदेव मुसकराया—"माता, यह सब कहने की आवश्यकता नहीं थी। पूर्व मठाधीश पिताजी यदि वचनबद्ध न भी होते, तो भी इन्हें मठ में स्थान दिया जाता। मानव को महामानवता का सन्देश देने के ही लिए इस मठ की प्रतिष्ठा हुई है। मैं तो केवल सेवक मात्र हूँ। आप निश्चिन्त रहिए।"

माँ ने वहीं पड़े-पड़े अन्तिम श्वास लेते हुए कहा—"देव, दुःखिया की एक और अभिलाषा पूर्ण करें। देवी ने टेसू का एक पौधा आँगन में लगाया था, उस वृक्ष को मठ में स्थान दें, वह वृक्ष इसका जीवन है।" किशोरी देवी क्रमशः मातृशोक को हृदय में समाहित कर उन मठवासी सन्यासी और सन्यासिनियों की अपनी और अभिन्न बन गयी थी और कब उसके किशोरीत्व को यौवन ने अपने केसर गन्धित अंक में समेट लिया था—सो न तो मठाधीश ही जान पाये और न मठवासी सन्यासी-सन्यासिनियों का समूह और न स्वयं देवी ही। पूजा-पाठ, व्रत-नियम एक-सा चलता। कभी सरजू तीर से लौटते समय शंकरदेव देखता—वह अन्ध रूपसी सरजू से कलस भर-भरकर मठ

के उद्यान के प्रत्येक वृक्ष के मूल में जल डाल रही है और कभी देखता—देवी निपुणता के साथ वृक्षों की जड़ों को गोड़ रही है।

उस दिन ऊषाकाल में अपनी कुटी में प्रवेश कर शंकरदेव विस्मित हुआ। कुटिया को लीप-पोत कर, मृगछाला आदि बिछा कर तथा पुष्प-चन्दन से लेकर प्रत्येक पूजा का उपकरण सुचारु रूप से सजाकर देवी एक ओर बैठी गुलाब की माला गूँथ रही है, हाँ, शंकरदेव की देव-आराधना के लिए। आश्चर्य से शंकर ने पूछा—"आज विमला देवी कहाँ गयीं देवी ? और तुम, तुम यहाँ क्यों ?"

"माता पार्वती देवी की आज्ञा से और आज से देव, आपका काम मुझे ही सौंपा गया है।"

"यह सब किसने किया ?"

विनीत स्वर से वह बोली—"मैंने ही देव।"

मठाधीश को अपने साथ बातें करते पाकर वह मानो कृतार्थ हो गयी। वह था उसके हृदय के उद्दीप्त प्रदीप का प्रथम प्रकाश।

"क्या तुम थोड़ा बहुत देख पाती हो, देवी रानी ?"

"नहीं देव।"

"फिर यह सब कैसे करती हो ?"

"स्पर्श और घ्राण से। पैर तले की मिट्टी से जान जाती हूँ कि कहाँ पर हूँ। घ्राण से समझ जाती हूँ कि यह कौनसी वस्तु है। इस कुटिया में जो पवित्रता का घ्राण है—उसी घ्राण ने मुझे सब कुछ समझा दिया कि कहाँ क्या है और मुझे क्या-क्या करना है।"

विस्मय से हतवाक शंकरदेव ने कदाचित यह प्रथम बार ही देवी को दृष्टि गड़ाकर देखा और देखते-देखते सहसा उसने मुंह फेर लिया, एवं हठात ही उठकर आसन पर जाकर बैठ गया।

देवी अस्फुट आर्तनाद कर उठी। शंकरदेव का वेद मन्त्र गले में अटक कर रह गया। लौट कर देखा,—देवी पीड़ा से व्याकुल हो रही है। मठाधीश उठकर उसके निकट पहुँचा। कहा—'गुलाब के काँटे चुभे हुए हैं। ठहरो मैं निकाले देता हूँ।" और शंकर ने उसका हाथ अपनी गोद में रखकर धीरे धीरे काँटे निकाल दिये। थोड़ा-सा दूब का रस क्षत स्थान में लगाया और उस माला को लेकर उसने पुनः आराधना में मनोनिवेश किया।

स्पर्श—पुरुष का स्पर्श, उस अन्ध युवती के लिए कदाचित वह प्रथम बार ही रहा हो। मानव का स्पर्श मानवी को। वह बार-बार सिहर उठी। उस स्पर्श से ? हाँ,—वह स्पर्श था उसके प्राणों में दीप का द्वितीय उज्ज्वल प्रकाश।

(३)

वसन्त के दोलायमान हिण्डोले में तब पवन ने मृदु-मृदु मुस्कान की खुमारी भरना आरम्भ कर दी थी, एवं मुक्त समीरण हरीतिमाच्छादित वन प्रान्त से कभी उन्माद प्रेम से उन्मत्त की भाँति आकर हिण्डोले को झकझोर जाती और गमन पथ पर रख जाती अपनी उन्मत्तता की मादक प्याली भर उन्मादना।

नित्य की भाँति अर्द्धरात्रि तक शंकरदेव उद्यान के एकान्त में वृद्ध पीपल के नीचे साधना कर कुटी को लौटता हुआ पुष्पित टेसू वृक्ष से कुछ दूर आकर चित्रवत खड़ा हो गया। उसके सर्वत्यागी, पवित्र मन में सहसा ही प्रश्न उटा—टेसू के नीचे बैठी हुई वह अन्ध युवती अपने अंग-प्रत्यंग में चन्द्रमा की स्निग्ध सुषमा लपेटकर बैठी टेसू के फूलों से खेल रही है, रात्रि के गम्भीर एकान्त में निद्राहीन बैठी अपनी पुष्प-राशि से आपूरित गोद के प्रति निष्पलक नेत्रों से निहार रही है। यह किसकी प्रतीक्षा में? किस पथिक की प्रतीक्षा में उसके दृष्टिहीन नेत्र गोद में आबद्ध हैं? अरे किस-किस-किस पथिक के लिए? और मठाधीश के मन के प्रश्न दुर्निवार हो उठे।

एक बार वह मार्गच्युत पथिक-सा उद्भ्रान्त गति से चल पड़ा—मानो एक निरुद्देश्य यात्रा के पथ पर।

उस पूर्णिमा के दिन की है यह कथा। रात्रि के निस्तब्ध किन्तु गंभीर सपने में दुनिया जैसे अभिसारिका की भाँति, हाँ, अर्द्ध अवगुण्ठित अवस्था में, अर्द्ध चेतना में स्तब्ध थी। मठवासी निद्रा की गोद में अचेत पड़े थे। कभी कोई मठवासी सुप्त अवस्था में स्तवन के कुछ चरण बड़बड़ाते। वृक्षों के पत्र शाखा प्रशाखाओं के साथ पवन मृदु-मृदु—कभी खेलता, पत्र-शाखाएँ मुसकरा उठतीं—सिर-सिर, झिर-झिर। दूर पथ पर कोई बैलगाड़ी का पहिया कभी घरघराता, बैलों की घण्टियाँ टिनटिनातीं। कोई विकृत स्वर से बिरहा गा उठता और टेसू के फूल झर पड़ते उस देवी के ऊपर—झर-झर-झर-झर।

साधना समाप्त कर तब शंकरदेव कुटी को लौट रहा था और नित्य की भाँति उसकी दृष्टि टेसू वृक्ष की ओर जाकर विस्मय-बिस्फारित हो रही। अपनी तपस्या-उज्ज्वल खुली आँखों के सामने वह आज कैसा दृश्य देख रहा है? साक्षात दुर्गा प्रतिमा-सी रूपसी देवी टेसू के पुष्पों को दोनों हाथों से मसल-मसल कर फेंक रही है, उसका वस्त्र टेसू के फूलों के रंग से रंगीन हो रहा है। कभी वह अपने लम्बे घने बिखरे बालों को नोचती, कभी पुष्पों को मसलती और कभी नख द्वारा आपने आपको नोचती। देखते देखते लगा शंकरदेव को कि जैसे वह अन्ध युवती केवल उस मठ को ही नहीं, किन्तु संसार तक को छिन्न-भिन्न कर डालेगी—अपने यौवन की उन्मादना से।

धीर गति से शंकर उसके निकट आकर खड़ा हो गया। पुकारा—"देवी।"

उस पुकार से देवी सिहरकर निश्चेष्ट सी हो रही । वह शंकरदेव को देखने लगी और देखती ही रह गयी। उसकी आँखों में कटाक्ष देख कर शंकर ऐसा विस्मित हुआ कि देवी के निकट आकर अपना खड़ा होना वह जान तक नहीं पाया।

शंकर ने पूछा—"क्या तुम देख पा रही हो देवी ?"

"हाँ देव।"

उत्तर सुनकर शंकर धीरे धीरे कहने लगा, इस तरह जैसे वह अपने-आपको सुना रहा हो। और वसन्त के पवन में उन्माद था—वह तो विरही-विरहिणी के लिए। और वसन्त में टेसू भी फूले—वे हैं अपूर्ण यौवन को पूर्णता प्राप्त कराने के लिए। वस्त्रों को रंगने के लिए नहीं, यौवन को अतिरंजित करने के लिए। किन्तु-किन्तु अन्ध आँखों की दृष्टि ?"

उत्तर ? परन्तु शंकर के मन ने उत्तर नहीं दिया उसके इस प्रश्न का। वरन उत्तर दिया देवी ने—"यदि टेसू यौवन को रंगता है, अपूर्ण यौवन को पूर्णता प्राप्त कराता है, तो उसी पूर्ण यौवन की चिनगारियों की और पुष्पित टेसू की देन क्यों नहीं हो सकती है अन्धत्व को दृष्टि दान करना ? क्या यह उसकी शक्ति से बाहर है ?"

और जब मठाधीश से कोई उत्तर नहीं मिला, तब उन्मादिनी की भाँति शंकर का हाथ पकड़ कर देवी पूछने लगी—"टेसू ने तो यौवन को रंग दिया, और यौवन के उस केसरिया रंग ने दी मेरी आँखों की दृष्टि। और, तुम्हारे उस एक दिन के स्पर्श ने भर दी मेरी नसों में एक अदभुत सिहरन; जिस सिहरन को मैं रात की चुप्पी में टेसू के नीचे बैठ कर सँवारती, सँजोती रहती हूँ। अब इस यौवन को और आँखों की दृष्टि को मैं किसके घर धरोहर रखूँ ? कहो देव, कहो-कहो। ये टेसू के फूल ? वसन्त तो फूलों को साथ लेकर लुप्त हो जाएगा न, फिर मेरी गोद में फूलों के बदले कौन खेला करेगा ? और उस स्पर्श के नित्य नवीनत्व को मैं रखूँ तो रखूँ कहाँ ? कहो देव, उत्तर दो।" और शँकरदेव ? वह जड़ की भाँति टेसू के नीचे देवी के सामने खड़ा रह गया।

विगत यौवना

—श्री नटवरलाल स्नेही

वह जो बढ़ी जा रही पथ पर विमन नयन पथराए,
जीवन के अनन्त सुख-दुख की स्मृति का भार उठाए,
विभवशालिनी रही कभी वह, आज बनी है दीना,
कभी पूर-सी उमड़ी थी वह, आज हुई गति हीना।

काल-चोर ने चुरा लिया उसके शोभा के धन को,
पतझड़ ने ग्रस लिया राहु-सा मदमाते उपवन को,
है वह आज उदास, कभी जो खिली कली से खेली,
आज चन्द्रिका ने ओढ़ी घन की चादर मट-मैली।

आज न उसके पथ पर मधुकर-दल पलकें पथराता,
कोई नहीं नयन की भाषा को पढ़ने को आता।
गयी अधर की तृषा, नहीं वह आज स्वयं भी प्यासी,
आज उसी की भीगीं पलकें बनीं मेघ-माला-सी।

हत्वीणा के शिथिल स्वरों की वह लय हीन प्रभाती,
चुका स्नेह जिसके जीवन का, वह बुझती-सी बाती।
है जिससे सुकुमार भाव की भ्रमरी आँख चुराती,
वह वसन्त के विगत विभव के बुझे प्रणय की पाती।

कविता में साम्प्रदायिक समस्या

श्री राम चरण महेन्द्र

(१)

भारत में साम्प्रदायिक समस्या का प्रमुख स्थान रहा है । नाना विचारकों, कवियों तथा सन्तों ने साम्प्रदायिकता के विषय में सोचा है तथा पर्याप्त विचार मन्थन के पश्चात उसकी निःसारता सिद्ध की है । सन्त साहित्य में अनेक महात्माओं ने हिन्दू-मुस्लिम एकता के विषय में अपने विचार प्रकट किये हैं । हिन्दू-मुसलमानों के झगड़ों की आलोचनाएं हुई हैं । अनेक सन्तों (जैसे कबीर) ने हिन्दुओं तथा मुसलमानों दोनों को पृथक-पृथक फटकारा है तथा एकता और मेल की पवित्र भावनाओं को मुखरित किया है ।

कबीर क्रान्तिकारी विचारक थे । उनकी कविता में उच्चकोटि के चिन्तन तथा छायावाद के दर्शन होते हैं । कबीर ने हिन्दुओं के धर्म की कृत्रिमता, झूठे रस्म-रिवाज तथा प्रचलित रूढियों का निर्भयता से खण्डन किया है । इसी प्रकार मुसलमानों को फटकारा है । जिस निष्कर्ष पर वे आये हैं, वह इस प्रकार है--

“कहहिं कबीर वे दोनों भूले, रामहिं किन्हहूँ न पाया ।”

वे राम-रहीम की एकता का मन्त्र उच्चारण करते रहे; ब्रह्म और अल्लाह के नाम भेद पर मूलतः तदाकार होने की भावना जन-जन तक पहुँचाते रहे—

“भाई रे दुई जगदीश कहाँ ते आया,
कहु कवने भरमाया ।
अल्लाह, राम करीमा कैसो,
हरि हजरत नाम धराया ।”

दोनों मतावलम्बी लड़ते रहें और अपनी शक्ति का ह्रास करलें, यह उन्हें कभी पसन्द न आया । विग्रह में वे प्रेम धर्म की स्थापना द्वारा एकता उत्पन्न करना चाहते थे । साम्प्रदायिकता के वे कट्टर शत्रु थे । एक स्थान पर उन्होंने कहा है—

“बाबा वह दरबार हमारा,
हिन्दू-मुसलमान से न्यारा ।
जहाँ जनेऊ सुनत न होई,
पण्डित मुल्ला बसै न कोई ।” आदि

दूसरे सन्त दादूदयाल थे, जिन्होंने साम्प्रदायिक एकता का स्वर राजस्थान से लेकर समग्र देश में अपनी कविता द्वारा पूरित किया। नानक ने इस भावना को और भी मज़बूत किया। प्रेम से परिपूर्ण वाणी में इन सन्तों ने दोनों फिरकों को मिल जुलकर रहने का दिव्य सन्देश दिया था। दादू की आध्यात्मिक भावना के पीछे हिन्दू-मुसलमान दोनों के हृदयों को मिला देने की भावना भी थी। वे कहते हैं—

"दादू दोनों भाई हाथ पग, दोनों भाई कान।
दोनों भाई नैन हैं, हिन्दू मुसलमान॥"

दादू की शिष्य मण्डली में हिन्दू-मुसलमान दोनों समान रूप से रस लेते थे। वे प्रायः कहा करते थे—"दादू एकै आत्मा, बैरी नहिं कोई।" राम-रहीम एक हैं। दोनों धर्मों के मूल सिद्धान्त प्रेम शान्ति सौजन्यता के हैं; संसार के रोम-रोम में राम बसा हुआ है, फिर वैभिन्य कैसे हो सकता है?

"सब हम देख्या सोधि कर, दूजा नाहीं आन,
सब घट एकै आत्मा, क्या हिन्दू-मुसलमान।"

सन्त रज्जबजी ने एकता की भावना को आगे बढ़ाया, राम-रहीम की एकता का व्यापक सन्देश दिया, जाति संकीर्णता को दूर करने का कार्य किया। मुसलमान होने के कारण उन्होंने मुसलमान धर्म की त्रुटियों की ओर भी संकेत किया है, किन्तु मूल भावना साम्प्रदायिक एकता की है। रज्जब एक स्थान पर कहते हैं—

"रज्जब राम रहीम रत, मिला सु निर्मल मत।
नाम अनेकों एक है, तू भणि राम रहीम।"

एक विचारक का कथन है, "पंजाब तथा पूर्वी राजस्थान में एकता की पुनरावृत्ति करनेवाले थे सन्त बाबा लालदासजी। उनकी प्रेमहाला को पीकर एक बार दारा शिकोह भी पागल हो गया था और वह उसी पागलपन का खुमार था, उसी एकता की शराब थी, उसी प्रेम मस्ती का नशा था, जिसके फलस्वरूप औरंगजेब ने दारा को काफिर कहा था। बाबा लालदासजी का मत और सिद्धान्त संक्षेप में प्रेम और सेवा का सिद्धान्त था। उन्होंने सभी धर्मों के लक्ष्य की एकता का प्रतिपादन किया है।"

सन्त बुल्लेशाह ने पंजाब में पुनः साम्प्रदायिक एकता की आवश्यकता पर जोर दिया। उन्होंने कहा—

"बुल्ला चल्ला सुन्यार रे,
जित्थे गहना घड़िये लाख।
सूरत आपो आपनी,
तूं एको रूप ये आँख॥"

१८ वीं शताब्दी में सन्त दूलनदास ने इसी विचारधारा का प्रचार किया। उन्होंने प्रेम के अटल नियम का प्रचार करते हुए उच्च स्वर से घोषित किया—

"दूलन छोटे वे बड़े, मुसलमान वा हिन्दू।
भूखे देवैं भौरियाँ, सेवैं गुरू गोविन्द ॥"

तात्पर्य यह है कि हिन्दू-मुसलिम ऐक्य भावना सम्पूर्ण भारत में कवियों के विचार का एक लक्ष्य रही है। चैतन्य महाप्रभु, सन्त तुकाराम, गुरु नानक आदि प्रेम धर्म के प्रकाश में दोनों फिरकों में एकता स्थापित करने के स्वप्न देखते रहे। उन्होंने समता और सहिष्णुता उत्पन्न करने का पर्याप्त प्रयत्न किया। प्रो० रंजन के शब्दों में, 'सन्तों की इस विचारधारा ने साथ में प्रेम तथा सौहार्द का ऐसा सुन्दर सम्मिश्रण तैयार किया कि बहुत दिनों तक सन्तों के मन-मानस से प्रवाहित शान्ति और एकता के इस झरने ने द्वेष और कलह के भयंकर रोग को पास भी न फटकने दिया। एकता के इस काल में हिन्दू सन्तों की चरण सेवा करते हुए मुस्लिम मुरीद और पीरों की इश्क़हाला को पीकर मस्त हो गए। आज भी सन्त-हृदय से निःसरित इस प्रेम वीणा की रागिनी जिसे सुननी हो वह भारत के उन गाँवों में जाकर सुने जहाँ साम्प्रदायिकता का प्लेग अभी तक नहीं पहुँचा है।"

(२)

साम्प्रदायिक समस्या के अन्तर्गत आज की हिन्दी कविता में एकता के स्वर ऊँचे उठ रहे हैं, यद्यपि धार्मिक रूढ़ियों और अन्धविश्वासों के विरोध में भी यत्र-तत्र लिखा मिलता है। गोरखनाथ के अनुयायी हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों के लिए अन्तस साधना के सामान्य मार्ग का उपदेश देते आ रहे थे। नामदेव ने एक स्थान पर लिखा है—

"हिन्दू अन्धा तुरुकै काना।
दुवौ ने ज्ञानों सयाना ॥
हिन्दू पूजै देहरा, मुसलमान मसीद।
नामा सोई सेविया, जहं देहरा न मसीद ॥"

भारतीय राजनीति में सन् १९०६ विशेष महत्त्व रखता है क्योंकि इसी वर्ष देश में फूट, कलह और वैमनस्यता का बीज बोने वाली मुसलिम लीग का जन्म हुआ। इस संस्था ने मुसलमानों की धर्मान्धता को भड़काया और दोनों धर्मावलम्बियों में वैमनस्य फैलाया। देश की शान्ति खो गयी; स्थान स्थान पर साम्प्रदायिक झगड़े दिखाई देने लगे। मुसलमानों में कट्टरता और निर्दयता है ही, मूढ़ता और अशिक्षा भी कम नहीं है। अंग्रेज कूटनीतिज्ञों ने इस कमजोरी से फायदा उठाया और उन्हें प्रोत्साहन

देना प्रारम्भ किया। अलीगढ़ विश्वविद्यालय ने साम्प्रदायिकता के विष को फैलाने में महत्त्वपूर्ण हिस्सा लिया। कुछ देशी रियासतों जैसे हैदराबाद, भोपाल आदि ने भी मुसलिम द्वेष को उकसाने में कोई कसर न रखी। हिन्दुओं की ओर से भी ऐसा ही हुआ। राष्ट्रीय सेवा संघ, हिन्दू महासभा, पटियाला रियासत आदि ने हिन्दुओं को भड़काया। नतीजा यह हुआ कि देश में वैमनेस्य फैला और अनेक दुर्घटनाएं हुईं। इन सब देशव्यापी हलचलों के स्वर हिन्दी-कविता में आये हैं।

जहाँ एक ओर वैमनस्य का प्रचार हो रहा था, वहाँ कुछ ऐसे विवेकशील व्यक्ति भी थे जो साम्प्रदायिक एकता के लिए प्रेरणा-स्रोत बन रहे थे। सन्त कवियों का उल्लेख हो चुका है। उनके अतिरिक्त काँग्रेस, विशेष रूप से महात्मा गाँधीजी, प्रेमचन्द की समाजवादी एवम् साम्यवादी भावनाएँ, गणेशशंकर विद्यार्थी, सीमान्त और लालकुर्त्ती दल आदि साम्प्रदायिक एकता के लिए प्रयत्नशील थे।

हिन्दी के नये कवियों में साम्प्रदायिक एकता के प्रचारकों में हम सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त दिनकर, नरेन्द्र शर्मा और महेन्द्र भटनागर आदि को ले सकते हैं। इन्होंने भिन्न-भिन्न रूपों में इस समस्या पर लिखा है। हिन्दू-मुसलिम ऐक्य भी भारत की वर्त्तमान समस्या है। उसकी स्थापना के लिए न जाने कितने प्रयत्न हुए हैं और हो रहे हैं, पर आये दिन दोनों जातियों के पारस्परिक झगड़ों तथा दंगों की घटनाएँ भी घटित होती रहती हैं। "गुरुकुल" में गुप्तजी का नम्र निवेदन है—

"हिन्दू-मुसलमान दोनों अब
छोड़ें वह विग्रह की रीति।"

"सिद्धराज" में गुप्तजी ने एक घटना का उल्लेख किया है, जिसमें मुसलमानों की मसजिदें गिरा दी गयी थीं और उन्हें मारा गया था। उनके खतीब ने आकर राजा जयसिंह को अपनी करुण कथा सुनाई थी। राजा ने अपराधियों को दण्ड दिया और खतीब को निर्भय करते हुए कहा—

"जाओ, डर छोड़ तुम अपनी अजान दो,
और गा-बजा कर उतारें हम आरती।
ईश्वर के नाम पर कलह भला नहीं,
देखता है भाव मात्र वह निज भक्त का।"

श्री सियारामशरण गुप्त की नोआखाली पुस्तक इसी समस्या पर है। "दिनकर" जी ने इस विषय पर स्थान-स्थान पर लिखा है। हिन्दू मुसलमानों की संकुचितता पर उन्हें बड़ा क्षोभ है। ये दंगे हिन्दुस्तान की आजादी के लिए कलंक रूप हैं। एक स्थान पर कवि की आत्मा इतनी दुःखी होती है कि वह कह उठता है—

धार्मिक एकता की ओर संकेत करते हुए महेन्द्र भटनागर लिखते हैं—

"कर्बला प्रयाग है
प्रयाग कर्बला !
कुरान, वेद की नसीहतों से
व्यक्ति का करो भला !
....

कि जाति-द्वेष छोड़कर उठो,
कि धर्म-द्वेष छोड़कर उठो,
वतन की एकता के वास्ते,
वतन की नव-स्वतंत्रता के वास्ते ! (पृ० ३० "ब० युग" एकता)

अथवा

"एक है सबका खुदा
जिसने बनाये जीव सारे !
एक होकर ही रहेंगे
हिन्द तेरे जब सितारे" ("हिन्दू-मुसलमान" पृ० ३१)

"बदलता युग" में देश में व्याप्त साम्प्रदायिक दंगों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ा है। "साम्प्रदायिक दंगे" शीर्षक कविता (पृ० १९-२०) की "नगर नगर······गदर" (२० पंक्तियाँ) दंगों की वीभत्सता चित्रित करती हैं। इसी प्रकार "आजाद मस्तक को उठा लेता" शीर्षक कविता में पृष्ठ २१ पर "आग की लपटें····हनुमान का गीत" बहुत ही मार्मिक हैं। अन्त में मंगलकामना भी की है, जैसे—

कि मेल से रहो यही करीम और श्याम की पुकार है।
कि एक हिन्द हो यही रहीम और राम की पुकार है॥ (पृ० २०)

अथवा

विवशता की असह्य उन मूक घड़ियों में
गगन को चीरती आएँ
तुम्हारे प्यार की किरणें !
....

बहा ले जा घृणा के तृण
अरी झेलम, अरी गंगा ! (पृ० ३६)

सिन्धु-घाटी की संस्कृति भारतीय है। कविवर महेन्द्र भटनागर का ऐसा विश्वास है कि भविष्य में हिन्दुस्तान और पाकिस्तान निश्चय ही संयुक्त होंगे। इस

"जलते हैं हिन्दू-मुसलमान
भारत की आँखें जलती हैं।
आने वाली आज़ादी की,
लो दोनों आँखें जलती हैं।।" (सामधेनी पृष्ठ २६)

कविवर नरेन्द्र शर्मा की कुछ पंक्तियाँ देखिए, जिसमें उन्होंने साम्प्रदायिक समस्या के मूल पर प्रहार किया है और झगड़ों की निःसारता दिखाई है—

"मैं हिन्दू हूँ तुम मुसलमान
पर क्या दोनों इन्सान नहीं ?
मैं तुम्हें समझता रहा म्लेच्छ
तुम मुझे वणिक औ दहकानी,
सदियों हम दोनों साथ रहे
पर बात न अब तक पहचानी
दोनों ही धरती के जाए
हम अनचाहे मेहमान नहीं।
मैं हिन्दू हूँ, तुम मुसलमान
पर, क्या दोनों इन्सान नहीं ?" (नरेन्द्र शर्मा "हंसमाला")

श्री सोहनलाल द्विवेदी, "नवीन", माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान आदि की कविताओं में भी यत्र-तत्र इस पर विचार प्रकट किये गये हैं किन्तु श्री महेन्द्र भटनागर ने इस विषय के सभी पहलुओं पर बहुत लिखा है। उनकी कुछ कविताएँ (१) धार्मिक दीवानेपन के विरोध में हैं (२) कुछ दंगों की वीभत्सता बतातीहैं (३) कुछ में सांस्कृतिक एकता के आधार पर अखण्ड भारत की कल्पना है (४) कुछ में साम्प्रदायिक वैमनस्य के कारण तथा (५) कुछ में दंगों से उत्पन्न करुणा, विवशता, तथा शर्म की अभिव्यक्ति है।

श्री महेन्द्र भटनागर की कुछ लोकप्रिय कविताएँ ये हैं (१) विकल है देश (२) साम्प्रदायिक दंगे (३) आजाद मस्तक को उठा लेते (४) दमित नारी (५) साम्प्रदायिक विष (६) हम एक हैं (७) एकता (८) हिन्दू-मुसलमान (९) संयुक्त बनो (१०) विवशता में (११) नौ सैनिक विद्रोह (१२) परम्परा आदि। कुछ मार्मिक उद्धरण लीजिए—

"दशा युग की करुण है आज वाणी में नहीं बँधती,
नहीं बँधती, विषम है, साधना स्वर में नहीं सधती।
पड़ी कटु फूट आपस में नहीं है मेल किंचित् भी
निरन्तर बढ़ रहे नव दल, विभाजन है नवीन अभी। (विकल है देश)

एकता की भावना के पीछे उनका मानवतावादी गान्धीवादी दृष्टिकोण रहा है। इसलिए इनकी कविताओं में गान्धी, नेहरू, पटेल, खान गफ्फारखां, गनी आदि के नाम स्थान-स्थान पर आए हैं। हिन्दू-मुसलिम ऐक्य के साथ नये भारत की कल्पना भटनागरजी ने इस प्रकार की है—

"फिर हम देंगे जग को अपनी
नूतन संस्कृति का ज्योतिदान,
सत्य अहिंसा औ' चर्खे का
गाएंगे हम उन्मुक्त गान! (पृ० ३४)

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि हिन्दी कवियों ने साम्प्रदायिक एकता के स्वर निरन्तर ऊँचे किये हैं।

कहानी—

उभरता चित्र

विमला आंठिया

१

ललाट पर बिखर आई बालों की एक लट को नीरेन्द्र ने जैसे ही हटाने का प्रयत्न किया, शिवा ने नेत्र खोल दिये। अपने पर झुके, एकटक ताकते नीरेन्द्र को देख कर वह धीरे से मुस्करा दी और बोली—"चित्र पूरा हो गया?"

नीरेन्द्र ने अनमने भाव से कहा—"नहीं।"

"तो फिर तुम इधर क्यों आये? अभी-अभी तो कहा था कि पहले लगकर चित्र पूरा कर भेज दो, फिर मेरी चिन्ता करना। पर तुम कुछ भी तो नहीं सुनते। जाओ न।"

नीरेन्द्र कुछ न बोला, उसी प्रकार शिवा के मस्तक पर बिखरी बालों की लट सुलझाता-उलझाता रहा।

शिवा भी कुछ क्षण चुप पड़ी रही, फिर आच्छन्न भाव को बलपूर्वक जैसे झाड़कर बोली—"चित्र प्रेषित करने की अन्तिम तिथि कौन सी है?"

"अठारह मार्च।"

"ओह", तब तो केवल आठ दिन और रह गये हैं। ना ना, तुम पहले उसे पूरा कर भेज दो। मेरे पास बैठे-बैठे बेकार समय नष्ट कर रहे हो। मैं तो अब अच्छी हूँ। विश्वास करो, तुम्हारी यह कृति देश की सर्व-श्रेष्ठ कृति घोषित की जायेगी। तुम एक महान कलाकार के रूप में समादृत किये जाओगे। देश तुम्हें, तुम्हारी कला को सम्मानित करेगा,……हा……जाओ……इस चित्र को पूरा करो प्रिय।" कहते-कहते सीपी में भरा पानी जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश में झिलमिला उठता है, उसी प्रकार शिवा के रुग्ण, पीले किन्तु सुश्री मुख पर एक मधुर मुस्कान खिल उठी। नीरेन्द्र का हाथ अपने हाथ में लेकर वह असीम स्नेह से फिर मुस्कराई। नीरेन्द्र के नेत्रों से टप से आंसू की एक बूंद शिवा के मस्तक पर चू पड़ी। शिवा के नेत्र भी भर आये। सजल किन्तु विहँसते स्वर में बोली—"मेरे कलाकार, तुम्हारी कला में कितनी अगाध शक्ति छिपी पड़ी है, इसे संसार को एक बार देखने तो दो। कल्पना को साकार कर देने वाली कला के मूर्ति रूप तुम! तुम अपने को प्रकट कर दो, छिपाओ नहीं। मुझे भी अपने प्रियतम के यश की भागिनी होने दो प्रिय। उठो चित्र पूरा कर भेज दो।"

नीरेन्द्र ने झुककर शिवा का मस्तक चूम लिया और भग्न स्वर में बोला—

मेरी प्रेरणा तो तू है शिवा। तू स्वस्थ हो जा, मैं ऐसे सैकड़ों चित्र बना कर तेरे चरणों में बिखेर दूंगा। पर तू स्वस्थ हो, तू रुक। तू मुझे छोड़ कर कहां जाने की सोच रही है निष्ठुरा। रह सकेगी मेरे बिना? मेरी कला को छीनकर चली जायेगी? मैं अकेला, पंख कटे पक्षी के समान अपना नीड़ कैसे बसाऊंगा शिवा? तू रुक, या मुझे भी अपने साथ ले चल।" कहते हुए नीरेन्द्र शिवा के वक्ष पर मुख रख बच्चों की भाँति बिलख उठा।

नीरेन्द्र आज तक शिवा के सामने इतना कातर न हुआ था, किन्तु जब से डॉक्टर ने बताया था कि शिवा के जीवन का कोई भी भरोसा नहीं है, मृत्यु किसी भी समय उसे अपने में विलीन कर सकती है, तभी से नीरेन्द्र के प्राण रह-रह कर बाहर निकलने की तैयारी कर रहे थे। रुदन का हाहाकार उसके हृदयमें उमड़-उमड़ पड़ता था। आपद में, अभाव में शिवा कभी उससे विलग नहीं हुई थी! सदा अपने मुस्कराते मुख से उसका उत्साह बढ़ाती रही और अब जबकि वह विपत्तियों से उबर कर उन्नति की सीढ़ी पर चढ़ने लगा है, वह उसे छोड़कर निकल भागने की तैयारी कर रही है। जीवन की एकमात्र संगिनी का यह अभाव कितना कठोर और हृदयदाहक है, इसे नीरेन्द्र के अतिरिक्त शायद कोई भी नहीं समझ सकता।

शिवा के नेत्रों से झर-झर कर आँसू चू पड़े। नीरेन्द्रके आंसू जितना ही उसका वक्ष भिगोने लगे उतना ही शिवा का हृदय रोने लगा, "हे भगवान, यह क्या अन्याय कर रहे हो। मुझे कहाँ बुला रहे हो। रहने दो, मुझे इन्हीं के पास रहने दो। एक दिन भी जिसका मुख देखे बिना नहीं बिता सकती, उसे छोड़कर मुझे कहां जाने की आज्ञा दे रहे हो। जीने दो, मुझे जीने दो, प्रभो। अपने कलाकार को कला की अन्तिम सीढ़ी पर पहुँचने तक के लिए तो मुझे रहने दो।" और शिवा के मुख से सहसा एक आर्त-स्वर निकल पड़ा—"हे भगवान।"

नीरेन्द्र का गला रुँध गया। लगा, जैसे किसी ने दोनों हाथों में उसका गला दबाकर उसका दम घोंट दिया हो, न सांस ले सकता हो, न बोल सकता हो।

उन्नति और प्रणय की सम्मिलित अन्तिम सीढ़ी को पारकर प्राप्य को पा लेने वाले व्यक्ति दुनियाँ में हैं कितने? उत्थान और पतन के क्रम को आज तक रोक कौन सका है? अमरत्व भी किसने पाया है? जो उत्पन्न हुआ है, उसका मरण ही तो सृष्टि का क्रम है और नीरेन्द्र के समान जीवन राह में चलते-चलते अपने साथी से बिछुड़ जाने वाले अभागों का रुदन देख कर उन्हें सांत्वना प्रदान करने वाला भी इस सृष्टि में कौन है? कितने हैं, क्यों हैं, कौन हैं, इन प्रश्नों का समाधान आज तक कोई भी नहीं कर सका है। प्रश्न उठता है और हृदय को तोड़ता सा मानों चिरकाल तक साँस का द्वार रुद्ध कर खड़ा हो जाता है। चाह उठती है, पर पूरी नहीं होती। इस अपूर्णता

की तड़पन और अभाव की घुटन ही आज नीरेन्द्र के जीवन में बरसाती बादल के समान उमड़-घुमड़ कर उठ रही है। बरसात का वह प्रलयंकर रूप जो भयंकर बाढ़ के रूप में न जाने कितने जीवन अपने में समेट स्वयं भी हाहाकार कर बहता चला जाता है, क्षण क्षण में नीरेन्द्र के नेत्रों के आगे मानो तांडव नृत्य कर उठता है।

सच, क्या मृत्यु को आकांक्षाओं से आलोडित जीवन अपने में समेट लेने में दुख: नहीं होता ? क्या उसका हृदय हाहाकार नहीं करता ? अपने कृत्य पर शायद उसे स्वयं मर जाने की इच्छा होती होगी, पर मृत्यु स्वयं बन्दी है। सृष्टि के क्रम का आदेशोल्लंघन करने की शक्ति शायद उसमें भी नहीं है। होती तो शायद नीरेन्द्र की साकार प्रेरणा को अपने में समेट लेने जैसा अकर्म करने में वह कदाचित प्रवृत्त न होती। पर उसे अपना कर्त्तव्य करना है और मानो कर्त्तव्य के उस कठोर भार ने ही उसके चरण शिथिल कर दिये हैं। चाहते हुए भी वह शायद इस कर्त्तव्य से शीघ्र मुक्त नहीं हो पा रही है।

नीरेन्द्र का मुख झुकता-झुकता उसकी छाती से आ लगा। शिवा ने क्षीण स्वर में कहा—"अपने को यों न भूलो प्रिय। उठो, चित्र पूरा कर दो। देखो, तुम्हें समादृत देखने की आकांक्षा लिए ही मैं कहीं चली न जाऊं। मेरी बात सुनो, चित्र पूरा करके भेज दो।"

पत्नी के आकांक्षित मुख को देख, हृदय का हाहाकार रोक कर नीरेन्द्र को उठना पड़ा।

२

समय की गति पर मानव यदि रोक लगा सकता तो शायद वह सुख और दुख की अनुभूति से परे हटकर स्वयं भी शून्य सा बनकर रह जाता। तब उसमें भाव न उठते, भावनायें न मचलतीं। न रुदन होता, न हास्य होता। सृष्टि के सुन्दर और कटुतम सत्य, जन्म और मरण को भी उसकी चेरी बनकर रह जाना पड़ता। पर समय की गति पर वह रोक कहां लगा सका है। समय सत्य है, उसकी गति तीव्र है। सुख हो, दुख हो, वह गति निरंतर क्रियाशील है।

नीरेन्द्र के ओठ एक दूसरे से चिपक कर रह गये हैं। चित्रफलक उसने शिवा के सामने ला रखा है। शिवा ने आंखें भर उसे देखा और नीरेन्द्र को अपने पर झुका कर अत्यंत क्षीण स्वर में कहा—"बहुत सुन्दर प्रिय। जरा, मृत्यु, यौवन और शैशव के इन विभिन्न भावों का एकत्रीकरण चित्र रूप में उतार कर रख देने की क्षमता तुम्हारे सिवा किसी में नहीं। तुम महान हो मेरे कलाकार, मेरी आकांक्षा पूर्ण हुई। चित्र आज ही भेज दो।" कहकर वह एकदम शिथिल हो गयी।

नीरेन्द्र ने और भी झुककर उसके नेत्रों में देखना चाहा, पर शिवा के डूबते से

अर्धोन्मीलित नेत्रों में वह कुछ भी न पा सका। उसका गला रुँध गया। नेत्रों से आंसुओं की कुछ बूंदें शिवा की पलकों पर चू पड़ीं पर वे नेत्र वैसे ही भावहीन से, डूबे से बने रहे। उन पलकों को अपनी कोमल हथेली से पूर्णतया बन्द कर नीरेन्द्र चला आया।

३

आनन्द और समादरपूर्ण करतल ध्वनि से गूँजते विशाल हॉल के दक्षिण पार्श्व में निर्मित मंच की ओर बढ़ते नीरेन्द्र की आंखें सहसा सजल हो उठीं। मन ही मन वह बुदबुदा सा उठा—"मेरे पंख कट गये हैं शिवा। देख आज मैं देश का सर्वश्रेष्ठ चित्रकार हूँ, समादृत हूँ, पुरस्कृत हूँ, पर तू कहाँ है? मुझे अकेला छोड़कर तू क्यों चली गयी है शिवा? मेरी प्रेरणा, तू आ, मेरे पास लौट आ।"

मस्तक को एक झटका देकर नीरेन्द्र सीधा हो गया। मंच पर चढ़कर वह 'माइक' के सामने खड़ा हो गया और सभापति एवं जन समुदाय का अभिवादन कर बोला—"कला का सम्मान करना, स्वय एक कला है। मैं कलाकार हूँ, यह मेरा दम्भ नहीं, किन्तु कला का उपासक अवश्य हूँ। कला की समृद्धि और चेतनता के लिए जिस वातावरण और प्रेरणा की आवश्यकता होती है वह मुझे मिली है और वही प्रेरणा इस चित्र की जन्मदात्री है। जीवन को मैंने कला के रूप में गुनना सीखा है। आत्मा को अपनी सृष्टि में प्रतिबिम्बित करने का प्रयत्न किया है। कल्पित और यथार्थ का सम्मिलन ही मेरा स्वप्न रहा है। अपने उद्देश्य में मैं कहां तक सफल हूँ यह आप बतायेंगे। आपके इस आदर और सहयोग के लिए मैं हृदय से आभारी हूँ और आशा करता हूँ कि हमारा देश सदा इसी प्रकार कला को प्रोत्साहन व कलाकार को योगदान देता रहेगा।"

विशालकाय हॉल एक बार फिर करतल ध्वनि से गूंज उठा। वह गूँजता रव मूर्छित सा होकर नीरेन्द्र के मानस में उभरती शिवा की मूर्ति के बीच मानों सो-सा गया। उसकी निमीलित दृष्टि के समक्ष घने बादलों के बीच अनायास ही चमक उठने वाली बिजली के समान घने केशों से आच्छादित शिवा का स्निग्ध मुख खिल उठा। हां, यह शिवा ही तो है, उसकी प्रियतमा पत्नी, उसकी जीवन सहचरी। दूर होकर भी कितनी निकट। शरीर से परे, पर मन के कितने समीप। स्मृतियों के सहारे, सदा सर्वदा के लिए जीवित शिवा का आकांक्षापूर्ण मुख नीरेन्द्र के मानस में नृत्य कर उठा, लगा जैसे वह कह रही हो—"इस चिर प्रतीक्षित अवसर पर प्रसन्न न होकर मुख पर सावन के से ये मेघ क्यों? यह उदासी क्यों?"

और नीरेन्द्र ने मानों उत्तर दिया—"नहीं तो, उदास तो नहीं हूँ।" शिवा मानों मुस्करा दी। नीरेन्द्र को सावधान करती हुई सी बोली—"अपने को यों प्रताड़ित न करो प्रिय। तुम समझते हो मैं चली गयी, जलकर राख हो गयी! पर यह तुम्हारा भ्रम है। तुम ध्यान से देखो, मैं सदा तुम्हारे पास हूँ। तुम्हारी कल्पना में, तुम्हारी कला में

मैं सदा जीवित हूँ। शरीर तो नश्वर है प्रिय, पर आत्मा अमर है। मेरी आत्मा तुम्हारी आत्मा में मिलकर एकाकार हो गयी है, फिर मैं तुमसे दूर कहां हूँ ? मैं कहीं खोई नहीं प्रिय।

नीरेन्द्र ने नेत्र खोलकर ताका। शिवा नहीं थी, विशाल हॉल था, वह था, जन समुदाय की करतल ध्वनि थी। सब था, पर जैसे उसकी आत्मा नहीं थी। नीरेन्द्र के हाथ सभापति द्वारा प्रदत्त पदक एवं पुरस्कार राशि ग्रहण करते हुए काँप गये और आंसू की कुछ बूँदें उस राशि पर चू पड़ीं। एक आह सी उसके अन्तर को मथ गयी और उसके हृदय को हिलोड़ती हुई एक कातर क्षीण ध्वनि मंच पर मुखरित हो उठी—"तू कहां चली गयी शिवा ?"

मठ के द्वार

—श्री शेखर—

बंद न कर अरमान अधूरे इन पत्थर की दीवारों में—
क्षण भर तो ओ निठुर पुजारी, मठ के द्वार खुले रहने दे !

चुन-चुन कर मन की पांखुरियां गूंथ-गूंथ कर हार बनाये,
प्रतिमा के पद धोने भर को नयनों में आंसू भर आये,
अनगिन गीत लिये अधरों पर मैं तो पूजा को आया हूँ—
जीवन के टूटे सपनों के एक बार फिर दीप जगाये।

पल भर को आवरण हटादे, विरही प्राण बहुत व्याकुल हैं—
जीवन बांध, मगर जीने के कुछ अधिकार खुले रहने दे !

चंदन की मधुरिम सुगंध में सब संस्मरण बसा लाया हूँ,
अगरु-धूम्र में आशाओं के चिर संचरण जगा लाया हूँ,
तोड़-तोड़ कर ले आया हूँ सावों की मुरझाई कलियां—
देख, पुजापा की थाली में सब उपकरण सजा लाया हूँ !

तनिक ठहरजा, क्षण भर में ही अपना अर्घ्य चढ़ा लूँगा मैं—
मिलन बाँध ले, किन्तु विरह के कुछ उपचार खुले रहने दे !

आहत की आकुल आहों से निर्दय वज्र पिघल जाते हैं,
बिजली वाले मेघ धरा के क्रंदन पर मधु बरसाते हैं,
मेरे गीतों की प्रति-ध्वनि में जड़ का मौन मुखर हो जाता—
देखूँ, इस पाषाण-शिला में कैसे प्राण नहीं आते हैं ?

बीत न जाये कहीं अचानक यह पूजा की पूरनमासी—
सागर बांध, मगर सागर के विह्वल ज्वार खुले रहने दे !

एक बार ही तो आती यह प्रिय-प्रेमार्चन की वेला है,
जाकर लौट नहीं पाती जो, वह आकर्षण की वेला है,
जनम-जनम की साध समेटे मुझे समर्पित हो जाने दे—
सम्भव है तू नहीं जानता, आज समर्पण की वेला है !

युग-युग का इतिहास अधूरा पल में पूरा हो जायेगा—
सत्य बाँध, लेकिन सपनों के कुछ आधार खुले रहने दे !

मलवार के प्राचीन प्रजातन्त्र

—श्री रतनलाल बंसल

प्रजातन्त्रीय शासन प्रणाली से भारत का कुछ नया परिचय नहीं है। इस देश के अनेक भागों में भिन्न-भिन्न युगों के बीच प्रजातन्त्र के आधार पर संगठित शासन संस्थाएँ रही हैं और प्राय: ऐसा भी हुआ है कि शासन का रूप ऊपर से एकतन्त्रीय होने पर भी और राजसिंहासन पर परम्परा या सैनिक बल के आधार पर किसी व्यक्ति विशेष के आसीन रहने पर भी शासन की आन्तरिक व्यवस्था प्रजातन्त्रीय ही रही है। मलवार के इतिहास में हमें इसका उत्कृष्ट उदाहरण प्राप्त है।

मलवार के प्राचीन काल के विषय में वहाँ की जनता के बीच जो मान्यताएँ प्रचलित हैं, उससे यह आभास मिलता है कि मलवार में जनतन्त्रीय शासन प्रणाली की जड़ें प्रागऐतिहासिक काल को स्पर्श करती हैं। प्राचीन मलयाली साहित्य के अनुसार भगवान परशुराम ने समुद्र को पीछे धकेल कर वहाँ की नवोत्पन्न भूमि पर मलवार प्रदेश को बसाया था। इसके पश्चात् जब वहाँ शासन व्यवस्था की आवश्यकता अनुभव होने लगी तो सम्पूर्ण मलवार को सोलह भागों में विभाजित किया गया। प्रत्येक भाग में चार ग्राम थे जिसके निवासी अपने में से ही किसी एक व्यक्ति को शासक निर्वाचित कर लेते थे। यह निर्वाचन तीन वर्ष के लिए होता था और इस अवधि में निर्वाचित व्यक्ति को सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त होते थे। शनैः शनैः इस प्रथा के कारण यह विकृति उत्पन्न हुई कि जो व्यक्ति भी निर्वाचित हो जाता, वह तीन वर्ष में ही अधिक से अधिक सम्पत्ति उपार्जित करने का प्रयास करता, कारण कि वह जानता था कि वह चाहे कुछ भी करे, इन तीन वर्षों के भीतर उसे कोई भी अपदस्थ नहीं कर सकता। शासन का व्यय चलाने के लिए पृथ्वी से उत्पन्न होने वाले पदार्थों का षष्ठांश कर के रूप में लिया जाता था।

उपरोक्त परिस्थिति से विवश होकर जनता को अपने इस नियम में संशोधन करने के प्रश्न पर विचार करने के लिए विवश होना पड़ा। कहा जाता है कि मलवार के समस्त भागों की जनता वल्लुवनाड परगने में स्थित तिरुनावायी नामक ग्राम में एकत्रित हुई। वहाँ निश्चय हुआ कि भविष्य में भिन्न-भिन्न भागों का पृथक-पृथक शासक नहीं चुना जायगा, बल्कि सभी भागों का एक शासक होगा और उसके शासन काल की अवधि तीन वर्ष के स्थान पर बारह वर्ष होगी। इस शासक की संज्ञा 'पेरुमाल' थी जिसका अर्थ 'सब से बड़ा' होता है। 'पेरुमाल' त्रांगानूर में रहता था और वहीं से

सम्पूर्ण मलवार का शासन चलाता था। इस प्रकार ऊपर से देखने पर तो यह परिवर्तन प्रजातन्त्र से एकतन्त्र की ओर बढ़ना था, किन्तु पेरुमाल के अधिकार अत्यधिक सीमित थे और सम्पूर्ण शासन व्यवस्था स्थानीय निर्वाचित पंचायतों के नियन्त्रण में रखी गयी, इसलिए जनता के हित की दृष्टि से यह शासन व्यवस्था पहले की अपेक्षा अधिक सुविधाजनक और उसके अधिकारों की पुष्टि करने वाली थी।

यह परिवर्तन किस काल में हुआ इसकी कोई प्रामाणिक तिथि तो निश्चित नहीं की जा सकी है, फिर भी इतिहासज्ञों का अनुमान है कि सन २१६ ई० में यह नयी शासन व्यवस्था प्रचलित हुई होगी। एक विशेष बात यह है कि अशोक के कतिपय शिलालेखों में भी 'पेरुमाल' शब्द का इसी अर्थ में व्यवहार किया गया है, अतः ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवतः जब प्रत्येक चार ग्राम अपना एक शासक निर्वाचित करते थे तब उस निर्वाचित अधिकारी की भी संज्ञा 'पेरुमाल' ही रही होगी।

आन्तरिक व्यवस्था

इस परिवर्तित शासन प्रणाली में सबसे उल्लेखनीय और चमत्कारपूर्ण आन्तरिक व्यवस्था थी जो सर्वांशतः प्रजातन्त्रीय आधार पर संगठित थी। यह संगठन नीचे से प्रारम्भ होता था, जिसकी पहली इकाई 'तर' थी। एक 'तर' में चार घर होते थे और उनका राजकीय व्यवस्थापक, जो इन चार घरों के निवासियों द्वारा निर्वाचित होता था, 'कर्णवर' कहलाता था। इससे ऊपर जो संगठन था, उसकी संज्ञा 'नाड' थी। एक 'नाड' में छह सौ घर होते थे और प्रत्येक घर का एक-एक प्रतिनिधि लेकर 'षट्शत सभा' का निर्माण होता था, जिसकी सदस्य सख्या छह सौ होती थी। 'नाड' की सम्पूर्ण व्यवस्था, यथा सरकारी कर वसूल करना, पारस्परिक झगड़ों को निपटाना, राज्य की रक्षा के लिए फौज रखना और दूसरे आन्तरिक प्रबन्ध 'षट्शत सभा' ही करती थी। सभा का प्रत्येक निर्णय बहुमत के आधार पर होता था और यद्यपि उसके निर्णयों पर पेरुमाल' के भी हस्ताक्षर होते थे, किन्तु 'पेरुमाल' सभा के निर्णयों में किंचित् भी संशोधन परिवर्तन नहीं कर सकता था।

'नाड' से ऊपर जो शासन संस्था थी, उसका नाम 'कुट्टं' था। 'कुट्टं' में सभी 'नाडों' के प्रतिनिधि होते थे और वह मलवार की केन्द्रीय सभा की भाँति थी। युद्ध-सन्धि जैसे सम्पूर्ण मलवार पर प्रभाव डालने वाले प्रश्नों पर 'कुट्टं' को ही निर्णय देने का अधिकार प्राप्त था, इसीलिए मलवार के प्राचीन इतिहास पर खोज शोध करने वाले विद्वान श्री लोगन ने अपने ग्रन्थों में 'कुट्टं' का उल्लेख मलवार की पार्लियामेन्ट के नाम से किया है।

विभिन्न जातियों के समूह

मलवार की इस शासन व्यवस्था में जातियों के आधार पर पथक-पृथक समूह

बने हुए थे। इतिहास से ऐसा प्रतीत होता है कि मलवार में यह जातिगत व्यवस्था सातवीं शताब्दी के पश्चात् प्रारम्भ हुई। इससे पूर्व वहाँ नायर जाति ही प्रायः बसी हुई थी। नायर का शब्दार्थ है नायक और 'नाड' का अर्थ है नायरों द्वारा अधिकृत भूमि। नायर आर्य नहीं हैं और इतिहासज्ञों का अनुमान है कि सन ३८९ ई० के आस-पास दक्षिण से ये लोग मलवार में आए और इन्होंने मलवार को आपस में बाँट लिया। दक्षिण में 'तमिलनाड', 'एरनाड', 'वल्लुवनाड' आदि प्रदेशों के नाम आज भी प्रचलित हैं और यह नायर जाति के प्रभुत्व-कालीन इतिहास की सूचना देते हैं। ऊपर जिस प्रजातन्त्रीय शासन व्यवस्था की चर्चा की गयी है, उसे नायरों से पूर्ण पोषण मिला था। वास्तव में नायरों ने राज्य की जनसत्तात्मक आन्तरिक शासन संस्थाओं का ऐसा सुदृढ़ संगठन स्थापित कर रखा था कि पहले पल्लव, फिर चालुक्य और फिर राष्ट्रकूट राजाओं के आक्रमण तथा उनके दीर्घकालीन शासन भी उसे नष्ट नहीं कर सके और उनको भी इन संस्थाओं को मान्यता देनी ही पड़ी। अंग्रेजों के आने के समय तक यह नायर जाति मलवार की राजनीति में कितना प्रमुख स्थान रखती थी, इसका प्रमाण तेलिचरी में स्थापित अंग्रेजों की कोठी के एक कर्मचारी की डायरी से मिलता है। यह कर्मचारी दुभाषिया के पद पर प्रतिष्ठित था और उसकी 'डायरी' से मलवार की तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था के विषय में महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ मिलती हैं। ता० २८ मई सन १७४६ ई० के दिन उसने नायरों के विषय में लिखा है—"ये नायर कालीकट की प्रजा के मुख्तार हैं। इन मुख्तारों का समूह अपने यहाँ की (इंगलैण्ड की) पार्लियामेन्ट की भाँति है। यह बात नहीं है कि यह समूह राजाओं की आज्ञाओं का मूकभाव से पालन करते हैं, बल्कि राजा के अफसर अगर अत्याचार या अन्याय करें तो उनको दण्ड देने का अधिकार भी इन समूहों को प्राप्त है।"

इन नायरों की यह विशेषता थी कि इन्होंने अपनी स्त्रियों को लगभग समानता के अधिकार दिये हुए थे। वे सार्वजनिक उत्सवों, मेलों और पंचायतों में पुरुषों के समान ही भाग लेती थीं और कन्याएँ स्वयं अपना पति निश्चित करती थीं।

सैनिक दृष्टि से भी नायर मलवार की सभी जातियों में प्रमुख थे। प्रत्येक नायर बालक सात वर्ष की आयु में अनिवार्य रूप से सार्वजनिक व्यायामशाला में जाना प्रारम्भ कर देता था और वहाँ उसे केवल व्यायाम ही नहीं कराया जाता था बल्कि शस्त्र विद्या भी सिखाई जाती थी। नायर प्रायः हथियार लेकर ही घर से निकलते थे और पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त के पठानों की भाँति उनमें भी यह प्रथा प्रचलित थी कि यदि किसी परिवार का व्यक्ति किसी अन्य परिवार के व्यक्ति द्वारा मार दिया जाता था तो मारे जाने वाले व्यक्ति का परिवार हत्याकारी और उसके परिवार से अवश्य

ही बदला लेता था । युद्ध के समय नायरों द्वारा दिखाई गयी वीरता की तेजस्वी गाथाएँ मलवार के इतिहास में भरी पड़ी हैं । पुर्तगालियों के विरुद्ध सर्वाधिक संघर्ष करनेवाले नायर ही थे और वे उस समय केवल इसलिए विजय प्राप्त नहीं कर सके कि उनके पास पुर्तगालियों की भाँति आग्नेय अस्त्र नहीं थे । नायरों की इसी विशेषता के कारण मलवार में उनको प्रमुखता प्राप्त थी और उनके 'नाड' शासन संस्था की सबसे महत्त्वपूर्ण कड़ी थे ।

कहा जाता है कि मलवार में ब्राह्मणों का प्रवेश आठवीं शताब्दी में हुआ । मलवार में प्रविष्ट होने वाले ब्राह्मण प्रायः नम्बूद्री कहलाये और उन्होंने ही वहाँ सर्व प्रथम चातुर्वर्ण्य की स्थापना की । इन ब्राह्मणों की दस शाखाएँ थीं, जिनकी संज्ञा 'ग्राम' थी । प्रत्येक 'ग्राम' की एक लोक सभा होती थी, जिसके छह अधिकारी होते थे । सभा का अध्यक्ष 'स्मार्त' और सभासद 'मीमांसक' कहलाते थे । ब्राह्मण जाति के आन्तरिक झगड़ों में यही सभा निर्णय दिया करती थी, केवल 'पेरुमाल' की स्वीकृति सभा के निर्णय पर लेनी पड़ती थी । इस प्रकार नायरों की भाँति ही ब्राह्मणों का भी एक पृथक संघ था ।

धर्मनिरपेक्षता

मलवार की यह प्रजातन्त्रीय शासन प्रणाली पूर्णतः धर्म निरपेक्ष थी । इसके पुष्ट प्रमाण मलवार के इतिहास में मिलते हैं । आर्येतर नायरों के संघ और वैदिक धर्माभिमानी नम्बूद्रीपाद ब्राह्मणों के संघ समान रूप से शासन कार्य में भाग लेते थे, यह तो ऊपर बताया ही जा चुका है, इसके अतिरिक्त ईसाई और यहूदियों के भी संघ थे और उनको भी नायर और ब्राह्मणों के संघों के समान ही अधिकार प्राप्त थे । यह उल्लेखनीय है कि मलवार में ईसाइयों का प्रवेश हजरत ईसा के स्वर्ग प्रयाण के एक सौ वर्ष के भीतर ही हो गया था । शनैः-शनैः उनकी संख्या बढ़ती गयी और तब वे भी राजकीय कार्यों में भागीदार बनाये गये । इस विषय में समय-समय पर राज्य की ओर से इन भिन्न धर्मावलम्बियों को जो अधिकार-पत्र दिये गये थे, उनमें से तीन अधिकार-पत्र आज से लगभग आधी शती पूर्व कुछ पुरातत्त्व शोधकों को प्राप्त हुए थे । ये तीनों अधिकार-पत्र मलयाली भाषा में हैं और इन पर भिन्न-भिन्न जातियों के संघों की स्वीकृति अंकित है । इनमें से प्रथम अधिकार-पत्र सन ७०० ई० में राजा भास्कर रवि वर्मा द्वारा प्रदान किया गया है और दूसरा सन ७७४ ई० में राजा वीर राघव चक्रवर्ती तथा तीसरा सन ८२४ ई० में राजा स्थाणु रविगुप्त नामक राजा द्वारा दिया गया है । ये तीनों ही राजा अपने समय में "पेरुमाल" पद पर प्रतिष्ठित थे और इनमें से स्थाणु रविगुप्त तो सम्भवतः अन्तिम पेरुमाल था जो 'चेरामण

पेरुमाल" के नाम से विख्यात है जो अन्त में मुसलमान होकर मक्का चला गया और वहीं मर गया।

इन अधिकार-पत्रों में से प्रथम में यहूदियों को, दूसरे में उत्तर के ईसाइयों को और तीसरे में दक्षिण के ईसाइयों को नायरों के समान अधिकार दिये गये हैं। इन अधिकार-पत्रों से यह भी ज्ञात होता है कि राजा राज्य में बसी हुई जातियों के संघों की स्वीकृति के बिना इस प्रकार के अधिकार-पत्र भी जारी नहीं कर सकता था।

अधिकार-पत्रों में यहूदी तथा ईसाइयों को अपना पृथक "नाड" बना कर एक प्रकार का स्वायत्त शासन प्रदान किया गया है। 'नाड' के अधिकारी को छत्र, मशाल, पालकी, नरसिंहा, नौबत आदि बहत्तर प्रकार के राजकीय चिह्न प्रयोग में लाने की भी अनुमति प्रदान की गयी है। इतिहास से यह भी ज्ञात होता है कि यहूदी तथा ईसाइयों की भी नायरों की भाँति 'षट्शत सभा' थी और उस सभा को आन्तरिक व्यवस्था सम्बन्धी सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त थे।

सन् ८५१ ई० के आसपास मलवार में इस्लामधर्म का प्रवेश हुआ। इससे बहुत पूर्व ही समुद्री तटों पर अरब निवासियों की बस्तियाँ तो थीं ही, जो अपने जहाजों में भारत का माल विदेशों को ले जाते थे। जब अरब में इस्लाम धर्म का प्रसार हुआ तब उसका सन्देश मलवार में बसे हुए इन अरब व्यापारियों तक पहुँचाने के लिए अरब के कुछ धार्मिक व्यक्ति भारत में भी आए और वे क्रांगानूर पहुँच कर तत्कालीन पेरुमाल से भी मिले। ऊपर बताया जा चुका है कि यही पेरुमाल अन्त में मुसलमान होकर मक्का चला गया था। यह यात्रा उसने गोपनीय रूप से की थी। इससे यह भी सन्देह होता है कि कहीं इसका कोई दूसरा कारण तो नहीं था? कुछ इतिहासज्ञों का मत है कि उस समय मलवार में यह नियम प्रचलित था कि बारह वर्ष पश्चात् जब नया पेरुमाल निर्वाचित होता था, उससे पूर्व अपदस्थ होने वाले पेरुमाल को अनिवार्य रूप से आत्महत्या करनी पड़ती थी। अतः सम्भव है कि इस प्रथा के कारण ही चेरामण पेरुमाल भाग गया हो। इसी चेरामण पेरुमाल ने मक्के से मलिक इब्न दीनार नामक एक मुसलिम प्रचारक को अपने राज्य में भेजा था। इसी मलिक ने मलवार के क्रांगानूर, कोलक आदि स्थानों में मस्जिदें बनवायीं और राज्य की ओर से उन मस्जिदों को जागीरें दी गयीं। मलिक को राज्य की ओर से बड़े काजी के पद पर भी नियुक्त कर दिया गया था और इस प्रकार मुसलमानों को भी यहूदियों-ईसाइयों की भाँति अपना संघ बना कर अपनी आन्तरिक व्यवस्था करने का अधिकार मिल गया था। बाद में इन मुसलमानों ने मलवार की स्त्रियों से विवाह करके वहीं के जीवन में और भी विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया। मलवार की प्रसिद्ध मोपला जाति उन मुसलिम अरब व्यापारियों द्वारा भारतीय स्त्रियों से उत्पन्न

व्यक्तियों की ही सन्तति है जो आज भी अपनी दुराघर्ष युद्धप्रियता और वीरता के लिए प्रसिद्ध है।

इस प्रकार मलवार में नायर, ब्राह्मण, ईसाई और मुसलमान ये चार मुख्य जातियाँ थीं जिनको राज्य की ओर से लगभग समान अधिकार प्राप्त थे। सभी को अपनी आन्तरिक व्यवस्था करने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी और राज्य कार्य के संचालन में भी सभी समान रूप से भागीदार थे। निर्वाचन-प्रणाली के द्वारा सभी अपने प्रतिनिधियों को चुनते थे और फिर वे चुने हुए प्रतिनिधि शासकीय कार्य में अपने अधिकारों तथा कर्तव्यों का उपयोग और पालन करते थे। अनेक बार राज्य क्रान्ति हुई, भिन्न-भिन्न राजाओं के शासन स्थापित हुए और नष्ट हो गये, किन्तु इस आन्तरिक व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। कहा जाता है कि सर्वप्रथम हैदरअली ने इसमें किंचित हस्तक्षेप किया, किन्तु वह इस व्यवस्था को समाप्त करने में सफल हुआ प्रतीत नहीं होता, कारण कि सन १७९१ ई० में जब मलवार में अंग्रेजी राज्य की स्थापना हुई, उस समय तक यही व्यवस्था किसी न किसी रूप में प्रचलित थी। अंग्रेजी कानून कायदे लागू होने पर तो इनको नष्ट होना ही पड़ा और इस प्रकार भारत के एक आदर्श प्राचीन प्रजातन्त्र का अन्त हुआ।

गीत

—प्रो० श्रीकान्त जोशी—

दिनमणि सोये, सांझ सुलाने चली गयी,
घर सूना, प्रिय नहीं फिरे, फिर छली गयी।

दिन दिन पूरब-मुखर-झरोखा
किरणों से गृह धोता,
दिन दिन अपरा की बाहों में
थका पथिक नभ सोता।

दिन दिन जुड़ कर बरस बरस की घड़ी गयी।
घर सूना, प्रिय नहीं फिरे, फिर छली गयी॥

दिन दिन तम का कागज पढ़ती
नभ के दीप बुझाती,
रात रात भर जाग जाग कर
गाती रही प्रभाती।

दिन दिन मेरे स्वर की ऊष्मा गली गयी,
घर सूना, प्रिय नहीं फिरे, फिर छली गयी।

कहानी —

ताज महल

कृष्णप्रसाद सक्सेना

लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व, एक दिन की बात है। उस दिन आगरे में बाल, वृद्ध, नारी सभी जानते थे—'बादशाह शाहजहाँ, आज सायंकाल, नव-निर्मित ताजमहल देखने जायँगे'।

संध्या होते-होते ताजमहल के बाहर मैदान में विशाल जन समूह एकत्र हो गया। एकाएक समूह के अग्र भाग में हलचल हुई। सबने देखा, बिना किसी साज सज्जा के बादशाह शाहजहाँ को आते। ऊँचा पूरा मांसल शरीर, विशाल नेत्र, चौड़ा मस्तक, पीछे को कढ़े हुए लम्बे केश, बनी हुई छोटी दाढ़ी, विशाल वक्षस्थल पर मलमल का कुर्ता, मलमल की टोपी, चूड़ीदार पाजामा, नंगे पैर बादशाह शाहजहाँ को प्रत्येक व्यक्ति ने अपने जीवन में पहली बार देखा था। मुख पर अनुपम शांति. नीची दृष्टि किये आते बादशाह को देख लोगों का हृदय भर आया, नेत्र छलछला उठे। बादशाह के साथ था उनका मंत्री, उनके जीवन का अभिन्न अंग। समस्त जन समूह, बादशाह के आते ही नत मस्तक हुआ। दोनों हाथ उठाकर प्रणाम करते शाहजहाँ ताजमहल के परकोटे के विशाल द्वार पर चढ़ते चले गये।

द्वार पर पहुँचते ही उनकी दृष्टि पड़ी स्फटिक शुभ्र प्रासाद पर जिसके शीश पर था स्वर्णिम ताज। हीरे जवाहरात शरीर पर मणि जटित आभूषणों के सदृश चमक रहे थे। ताजमहल के प्रत्येक कण में देखा शाह ने अपनी ताज—मुमताज महल को शाहजहाँ 'ताज' कहता था—को मुस्कराते, हँसते, खिलखिलाते।

उन्हें लगा, मानों सदा की भाँति महल की सीढ़ी से उतर कर ताज हँसती उनकी ओर आ रही है. कर पल्लव में गुलाब का विकसित पुष्प लिये। इकहरा शरीर, ऊँचा कद, गौर वर्ण, बड़े-बड़े काजल युक्त नेत्र, बंकिम भौहें, कृष्ण सर्प-सी उन्मुक्त कुटिल अलकावली, चूड़ीदार पाजामा, घुटने तक कुर्ता, रेशमी दुपट्टा—यह थी उसकी वेश भूषा।

नेत्रों के कोने से देख, पुष्प बादशाह की ओर बढ़ाते हुए उसने कहा--"रिआया के लिए जान देने वाले बादशाह, इस नाचीज को इस कदर भूल जायँ यह कितनी बड़ी बेइन्साफी है शाह !"

जैसे ही कर उठा, स्वर्णिम कंगन ने चूड़ियों से टकराकर अनुपम अलौकिक संगीत छेड़ा, मादक नयनों ने ताल दी, अधरों पर स्मिति नाच उठी, जिसको देखा ताज के शाह ने और जिसने पवन के साथ थिरकते हुए, उद्यान के कोने-कोने को गुंजित कर दिया।

पुष्प लेने के लिए ज्यों ही बादशाह ने हाथ बढ़ाया, ताज विद्युत की गति से मखमली दूबा पर जा, खिलखिला कर हँसने लगी। उसकी दृष्टि एवम् हँसी में ऐसी मादकता थी जिसने शाहजहां को बेचैन कर दिया। बादशाह चिल्ला उठा—'ताज !"

मंत्री ने बादशाह को सहारा देते हुए सविनय कहा—"हिम्मत से काम लीजिए, जहाँपनाह !"

भर्राये हुए स्वर में शाहजहाँ ने पूछा—"तुमने ताज को अभी देखा था, सादुल्ला ?" "जहाँपनाह ! बेगम साहिबा को देखने के लिए मेरी आँखों में रोशनी नहीं है।" नतमस्तक हो मंत्री ने उत्तर दिया। बादशाह आगे बढ़े।

ताजमहल के चारों ओर निर्मित ऊँचे चबूतरे पर जाने के हेतु संगमरमर की सीढ़ी पर पैर रखते ही शाहजहाँ ने देखा—कोयले से खिंची सर्प सदृश काली रेखा को।

एक पल में ही स्मृति-पटल पर एक चित्र अंकित हो गया। कई वर्ष पूर्व चाँदनी रात थी। शाहजहाँ और ताज जनानखाने के उद्यान की सीढ़ी चढ़ रहे थे। शाह आगे थे, ताज उनके पीछे।

सहसा ताज चिल्ला उठी।

घबरा कर शाह ने पूछा—"क्या हुआ ?"

कृत्रिम घबराहट के साथ, एक ओर हटते हुए, ताज ने कहा—"साँप !"

शाह ने देखा, साँप काला था, लम्बा भी था। उन्हें आश्चर्य हुआ, उनकी दृष्टि उस पर नहीं पड़ी। ताज ने अपना दाहिना हाथ साँप पकड़ने को बढ़ाया। जब तक शाह ने उसे रोका, साँप की पूँछ ताज के हाथ में आ चुकी थी।

"क्या करती हो ताज ?" शाह चिल्ला उठे।

उनके शब्दों में व्याकुलता थी, झिड़की थी, क्रोध था, चिन्ता थी, और दूसरे ही क्षण उन्होंने ताज के हाथ से साँप छीन कर एक ओर फेंक दिया।

ताज इतनी जोर से खिलखिला कर हँसी कि समस्त उद्यान गूँज उठा। शाह उसके व्यवहार से हैरान थे। उन्होंने देखा, सर्प बिना हिले डुले शान्त पड़ा था। परिस्थिति समझने में उन्हें देर न लगी। सर्प कृत्रिम था।

खिलखिलाती ताज पूछ रही थी—"इस नाचीज के लिए आपने खुद को खतरे में क्यों डाला ?"

लज्जित शाह ने कहा—"बिना 'ताज' के शाह 'शाह' न रहता।"

विजयिनी ताज को पराजित शाह ने वक्षस्थल से लगा लिया। इसी समय कोयल ने कूक कर शाह के स्वप्निल संसार को नष्ट कर दिया। शाह सचेत हुए। ताजमहल के चबूतरे की सीढ़ी चढ़ते हुए शाहजहाँ ने दीर्घ निःश्वास ली और आगे बढ़ गये।

ताजमहल के मुख्य द्वार पर, शाहजहाँ ने जैसे ही कदम रखे, सादुल्ला रुक गया। बादशाह के नेत्र, जिनमें हृदय की करुण वेदना छलक रही थी, प्रश्न लिए मंत्री की ओर उठे।

नतमस्तक हो मंत्री ने उत्तर दिया—"जहाँपनाह! अब मेरी मौजूदगी बेगम साहिबा की रूह और आपके जज्बात को बाहर आने में रुकावट का बायस होगी।"

बादशाह ने तीव्र दृष्टि से मंत्री को देखा और आगे कदम बढ़ा दिये।

जिस प्रकोष्ठ में ताज का मजार था उसमें भयंकर नीरवता थी, ऐसी नीरवता जैसी कि बीस वर्ष पूर्व ताज के महल में उस दिन थी जिस दिन ताज ने अंतिम साँस ली।

रात केवल एक पहर व्यतीत हुई थी। जलती हुई मशालें ज्योतिहीन सी दिख रही थीं। जनानखाने से कोई भी परिचारिका आती, सबकी दृष्टि उस ओर घूम जाती। सबके मुख पर एक ही प्रश्न होता—'बेगम ने आँखें खोलीं?'

इतने में हरकारों ने बादशाह के आने की सूचना धीरे से दी।

विशाल प्रकोष्ठ में गद्देदार पलंग पर भारत की सम्राज्ञी अन्तिम सांसें ले रही थी। परिचारिकाएँ खड़ी थीं। नेत्रों से अश्रु बह रहे थे।

अस्त व्यस्त केश, मुख पर उदासी एवं चिन्ता, नेत्रों में हृदय-विदारक करुणा एवं निराशा लिये बादशाह ने दबे पैर प्रकोष्ठ में प्रवेश किया। ताज के सिरहाने बैठ शाहजहां ने देखा—श्रान्त पथिक को निश्चल विश्राम लेते। उन्हें लगा, ताज सो रही है।

क्षीण आर्द्र स्वर में शाह ने पुकारा—"ताज!"

भयंकर नीरवता से भयभीत शब्द प्रकोष्ठ के अन्तराल में विलीन हो गये। ताज के नेत्र नहीं खुले। कितनी बार इसी भाँति सोती ताज को, उसने सहसा छेड़कर, डरा दिया था। परन्तु आज वही क्रीड़ा करने का उसे साहस न हुआ।

पाषाणवत नेत्रों से देखते, निश्चल बैठे शाहजहाँ को देख, एक ओर खड़े हकीमों के हृदय, भयंकर आशंका से कांप उठे।

समस्त साहस जुटा कर एक वृद्ध हकीम ने धीरे से पुकारा—"जहाँपनाह!"

उसके शब्द शाहजहाँ के कानों को न छू सके।

उसने फिर कहा—"जहाँपनाह की सेहत ठीक नहीं है, आराम की ज़रूरत है।"

शाहजहाँ ने ऊपर सिर उठाया। नेत्र लाल थे, गीले थे। आर्द्र कंठ से भीगे हुए दो अक्षर फिर निकले—"ताज !" शब्दों के साथ नेत्रों से अश्रुधारा बह चली।

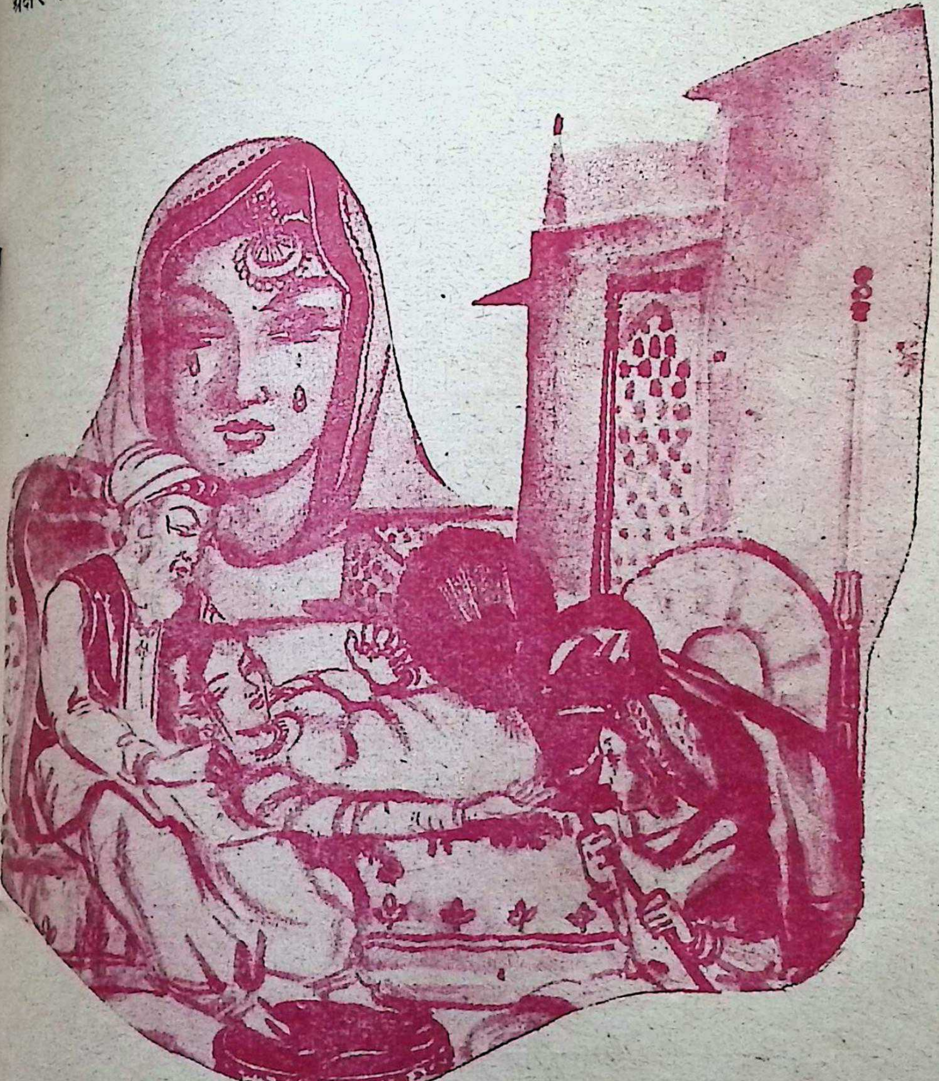

ताज के सिराहने बैठे शाह ने देखा श्रान्त पथिक को निश्चल विश्राम लेते।

बाँध के टूटते ही नदियों में बाढ़ आयी। दासियां सिसकने लगीं। शाहजहां के नेत्रों से गिरी अश्रुबूंदों ने जादू का काम किया। जिस कार्य को हकीमों की समस्त औषधियाँ न

कर सकीं वह अश्रु की कुछ बूंदों ने करके दिखा दिया। ताज के श्वेत कपोलों पर, बूंदों के गिरते हीं, लाली दौड़ गयी, नेत्र खुल गये।

शाहजहाँ ने प्रेमपूर्ण स्वर में धीरे से पुनः कहा—"ताज।"

ताज ने धूमिल दृष्टि से देखा. शाहजहाँ के नेत्रों में अश्रु छलक रहे थे। धीरे से उसने कहा—"शाह!" दोनों की दृष्टि ने एक दूसरे को बाँध लिया। शाहजहाँ ने परिचारिकाओं एवं हकीमों को बाहर जाने का संकेत करके, ताज की ओर करुण दृष्टि से देखते हुए तथा उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"घबराओ नहीं, ताज, तुम अच्छी हो जाओगी। लाहौर से हकीम बुलवाया है। शाम होने से पहले आ जायेगा।"

'इतना समय नहीं है, शाह।" शब्दों से निराशा टपक रही थी। "ऐसा न कहो। तुम्हारे बिना मैं······।" कंठावरोध के कारण शब्द निकल न सके।

ताज ने एक एक शब्द मानों तोलते हुए कहा—"शाह, मेरी एक ख्वाहिश है, पूरी कर सकोगे?"

"कहो, ताज।" अनुपम स्फूर्ति के साथ शाहजहाँ ने कहा।

"मेरे इन्तकाल के बाद मेरी यादगार में ऐसा मक़बरा बनवाना जो दुनियाँ को एक मिसाल हो।" अटकते हुए ताज ने कहा—"और मुझे.......भूलने........की कोशिश·······करना······मु ······झे·······मा······फ·······।" इसके उपरान्त शब्द अधरों के बाहर न आ सके। दीपक बुझ गया।

शाहजहाँ के करुण क्रन्दन के साथ "ताज" शब्द इतने जोरों से निकला जिससे बीस वर्ष पूर्व वह महल गूँज गया था और बीस वर्ष के उपरान्त 'ताजमहल"। शाह के मुख से निकले इन दो शब्दों में इतनी करुणा थी जिससे ताजमहल के चारों ओर एकत्रित जनसमूह में वृद्धों के नेत्र छलछला उठे, युवकों के मुख उदास हो गये, स्त्रियाँ सिसकने लगीं, बालक बिलख उठें।

ताज की मजार पर हाथ रखकर शाह खड़े हो गये। उन्हें लगा मानों मजार के अन्दर से कोई कह रहा है—"मुझे खुशी है शाह, तुमने मेरी ख्वाहिश पूरी कर दी। मुझे भूलने की कोशिश करो।"

पर न जाने क्यों, शाह का हृदय उन्हें धिक्कारने लगा। उसने शाह से प्रश्न किया—"क्या ताज की ख्वाहिश तुमने यही पूरी की है? क्या यही मकबरा दुनियाँ को मिसाल होगा? क्या तुम्हारे खजाने में दौलत की कमी थी जो इससे अच्छा मकबरा न बनवा सके? क्या तुम्हारे लिए दौलत 'ताज" से बढ़कर थी? या ताज के लिए तुम्हारी मुहब्बत सिर्फ एक दिखावा था?"

अन्तिम प्रश्न शाह पर सबसे बड़ा प्रहार था जिसे सुन शाह ने तिलमिला कर कहा—"नहीं, हर्गिज नहीं। दुनियाँ की कोई हस्ती मेरी मोहब्बत को दिखावा नहीं

कह सकती । यह मैं मानता हूं ताज, कि मैं तुझे कुछ न दे सका । जमाना कहता है कि शाहजहाँ ने ताज को सब कुछ दे दिया, पर दिल कहता है कि तू कुछ न दे सका। यह दिल तुझे जो देना चहता है, उसे दे सकने में मेरी दौलत ने, मेरी शान ने, मेरी सल्तनत ने, मेरी हुकूमत ने इस दिल के सामने घुटने टेक दिये हैं, वे खुद को मजबूर पाते हैं। आज हिन्दुस्तान जैसी सल्तनत का बादशाह शाहजहाँ तेरे सामने भिखारी से बढ़कर नहीं। वह और कुछ देने में मजबूर है, सिवाय इन चन्द आँसुओं के ।"

शाहजहाँ का सिर झुक गया । अश्रुधारा ने ताज की मजार को धोने का प्रयत्न किया ।

इसी समय यमुना की जलधारा पर कोई मानव-बुद्धि का उपहास कर रहा था । उस बुद्धि का जो प्रिय को कुछ देकर सन्तुष्ट होने का साहस करती है ।

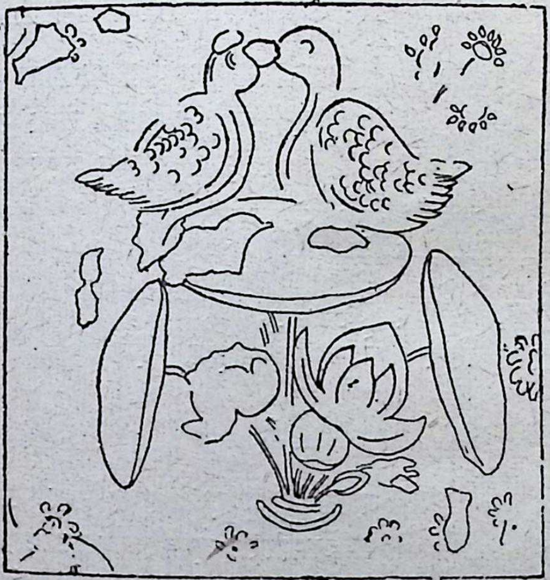

गीत

—श्री वीरेन्द्र मिश्र—

हमें दे चुके एक अनमोल मन तुम,
उसे हम हृदय के हृदय में रखेंगे,
किसी के लिए प्राण दें या न दें हम,
तुम्हारे लिए ज़िन्दगी होम देंगे।

(१)

हमें याद है तुम नदी की तरह थे,
समन्दर बहुत दूर था तब हमारा।
इधर भी लहर थीं, उधर भी लहर थी,
लहर में न हम जान पाये किनारा।

हमारे लिए बन गये तुम मरुस्थल,
कि अब हम स्वयम् बर्फ बन कर गलेंगे।
सुनो, रेत से कह रहीं हिम शिखाएँ,
तुम्हारे लिए ज़िन्दगी होम देंगे।

(२)

नयन में तुम्हारे लगा नैश काजल,
अमावस हमारे निकट आगयी थी,
मगर वह अचानक किसी आरती की
धुली ज्योति को देख पथरागयी थी।

बने तुम नयन के गगन में सितारे,
कि अब हम स्वयम् चाँद बन कर चलेंगे।
डगर की हवा कह रही मंज़िलों से—
तुम्हारे लिए ज़िन्दगी होम देंगे।

(३)

तुम्हारे विना था अधूरा अधूरा
नयन का इशारा, पवन का तराना,
भटकते भटकते तुम्हें ढूँढ़ पाया
मिला तब तुम्हारी नज़र का खज़ाना।

मिला एक घर-आँगना आँसुओं को,
कि अब हम स्वयम् दीप बन कर जलेंगे,
दिया कह रहा द्वार से, देहरी से—
तुम्हारे लिए ज़िन्दगी होम देंगे।

(४)

कि जब मन्दिरों में पुजारी नहीं थे
हमें एक मूरत सलौनी दिखी थी,
छुआ जो उसे तो समय ने बताया
कि वह तो हमारे करों में बिकी थी।

लगे गूँजने बीन के तार से तुम,
कि अब हम स्वयम् मीड़ बन कर उठेंगे,
निरख एक मीरा चहकता कबीरा—
तुम्हारे लिए ज़िन्दगी होम देंगे।

(५)

चमन के महल में खिली रात रानी,
दरद के गगन में उड़ी पतझरों में,
सुबह-शाम उलझी रही शबनमों से,
सुनाती रही गीत बोझिल स्वरों में।

हमारे लिए धूल बन कर उड़े तुम,
कि अब हम स्वयम् फूल बन कर बिछेंगे,
कि जो गीत भी हम लिखेंगे, कहेंगे—
तुम्हारे लिए ज़िन्दगी होम देंगे।

संस्मरण—

पंडित रघुवर प्रसाद द्विवेदी

श्री जहूर बख्श

स्वर्गीय पण्डित रघुवरप्रसाद द्विवेदी, बी० ए०, साहित्य-रत्न के नाम से हिन्दी-ससार की पिछली पीढ़ी भली भाँति परिचित थी। आप हिन्दी-संसार के उन महारथियों में से थे, जिन्होंने उसकी ठोस सेवा ही नहीं की थी उसकी प्रगति को भी बड़ा सहारा दिया था। द्विवेदीजी के अथक उद्योग और उत्साह से मध्यप्रदेश में हिन्दी-साहित्य की ऐतिहासिक जागृति हुई थी। उनकी कृपा से कितने ही लोग हिन्दी-प्रेमी हो गये थे और कितने ही लोग हिन्दी लिखना सीख गये थे। इसलिए मध्यप्रदेश के हिन्दी-सेवियों में द्विवेदीजी का पवित्र नाम सदा आदरणीय-स्मरणीय रहेगा।

सन १९२७ ई० में, एक बार मुझे उनके चरणों के निकट बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस दिन को मैं आज तक भूल नहीं सका हूँ, और जीवन-भर भूल भी नहीं सकूँगा। उस दिन मई महीने की शायद दसवीं या ग्यारहवीं तारीख थी। मैं जबलपुर गया था और स्वर्गीय भाई मंगलप्रसाद विश्वकर्मा के 'प्रेम-कुटीर' में ठहरा हुआ था। कोई दो बजे का समय होगा कि स्वर्गीय भाई सूरजप्रसाद शुक्ल पधारे। इधर-उधर की बातचीत के बाद उन्होंने मुझ से प्रश्न किया— आपने द्विवेदी जी के दर्शन किये ?'

सहसा मेरे मस्तिष्क में सन १९१३ ई० के अप्रैल मास का वह दिन घूम गया, जब मैं राबर्टसन कॉलेज के विशाल हॉल में बैठा-बैठा टीचर्स परीक्षा के पहले प्रश्न-पत्र के उत्तर लिख रहा था और द्विवेदीजी मेरे निकट विद्यमान थे—श्यामलवर्ण, स्वस्थ, सुपुष्ट, विशाल शरीर तथा फौजी कोट-ब्रीचेज धारण किये हुए। इस प्रकार द्विवेदीजी के दर्शन मैं चौदह वर्ष पूर्व ही कर चुका था, परन्तु शुक्लजी का अभिप्राय जिस दर्शन से था, वह तो मुझे अब तक प्राप्त नहीं हो सका था। इसलिए मैंने शुक्लजी को पश्चात्ताप-पूर्ण स्वर में उत्तर दिया—'नहीं तो !'

शुक्लजी बोले—'तीर्थ-स्थान में आकर भी आपने देवता के दर्शन नहीं किये—आश्चर्य की बात है ! इस समय चिलचिलाती हुई धूप पड़ रही है, गर्मी का भी जोर है। सम्भवतः द्विवेदीजी आराम कर रहे होंगे, नहीं तो मैं आपको अभी उनके पास ले चलता।'

इसमें सन्देह नहीं कि द्विवेदीजी के जीवन से जबलपुर हिन्दी-साहित्य का तीर्थ था। आज जबलपुर में हिन्दी-साहित्य के अपूर्व पाण्डित्य की वह प्रतिभा नहीं है—

जबलपुर की वह गरिमा द्विवेदीजी के साथ ही चली गयी है। वास्तव में वे इतने महान थे कि मध्यप्रदेश के लिए एक विराट संस्था के समान महत्त्व रखते थे। उनके निधन से मध्यप्रदेश के हिन्दी-संसार तथा शिक्षा-विभाग को जो अपरिमित क्षति पहुँची थी, वह अब तक पूर्ण नहीं हुई है, और भविष्य में भी उसके पूर्ण होने की कोई सम्भावना नहीं है। अस्तु।

चार बजते-बजते सूर्य-किरणों का उत्ताप कुछ कम हुआ। मैं शुक्ल जी के साथ द्विवेदीजी के बँगले की ओर चल पड़ा। हृदय में असीम संकोच की उद्भावना हो रही थी—कौतूहल की लहरावलि प्रचण्ड वेग से उठ रही थी। उस समय तक मैं कई प्रसिद्ध हिन्दी-सेवकों से मिल चुका था, परन्तु उनमें से कदाचित कोई भी द्विवेदीजी के समान प्रतिष्ठित न था। प्रतिष्ठा तो जैसे द्विवेदीजी की दासी थी। उच्च-से-उच्च सरकारी अधिकारी और बड़े-से-बड़े रईस अत्यन्त नम्रतापूर्वक उनका सम्मान करते थे। फिर वे विद्या-वयोवृद्ध भी थे। ऐसे कीर्ति-कान्त द्विवेदीजी के सम्मुख, मुझ जैसा तुच्छ एवं अल्पवयस्क नवयुवक, बिलकुल अपरिचित होने पर भी जाने की धृष्टता कर रहा था। उनके सम्मुख पहुँच कर क्या कहूँगा, और वे स्वयं मुझ से किस प्रकार पेश आएगे–यही सब बातें थीं, जो बार-बार हृदय पर संकोच और कौतूहल के हल्के-हल्के थपेड़े मार रही थीं।

कोई पाँच मिनट बाद ही हम द्विवेदीजी के बँगले के सामने पहुँच गये। फाटक पर उनका नौकर बैठा हुआ था। वह हमें बैठक-गृह में ले गया। मैंने एक ही दृष्टि में बैठक-गृह की सैर कर ली। कहीं सजावट का चिह्न भी न था–चारों ओर अत्यन्त सादगी थी। चार-पाँच साधारण कुर्सियाँ और काठ का एक छोटा-सा तख्त; बस, यही उस देवता के मन्दिर की सजावट थी। ज्योंही नौकर ने सूचना दी, त्योंही सामनेवाले द्वार की चिक उठाकर द्विवेदीजी ने बैठक-गृह में प्रवेश किया। मैंने नत-शिर होकर उनको प्रणाम किया। द्विवेदीजी आशीर्वाद देकर 'बैठो भैया' कहते हुए तख्त पर विराजमान हो गये। मैं भी उनके निकट जा बैठा।

द्विवेदीजी के दिव्य दर्शन प्राप्त होते ही, मेरे हृदय पर उनके जिस गुण का गम्भीर प्रभाव पड़ा, वह उनकी अत्यन्त सादगी थी। खाली सिर, उघरा हुआ शरीर, जिस पर यज्ञोपवीत के उजले धागे शोभायमान हो रहे थे। उस समय द्विवेदीजी तिरेसठ वर्ष पार कर चुके थे और थोड़े ही दिन पूर्व कई मास की कठिन बीमारी भोगकर उन्होंने स्वास्थ्य-लाभ किया था। फिर भी उनका शरीर अत्यन्त पुष्ट और कान्तिमान दीख पड़ता था। जीवन-भर का पवित्र आचार-विचार और संयम उनके शरीर से आभा के साथ फूटा पड़ता था। मुझे तो ऐसा बोध हुआ, जैसे मैं किसी प्राचीन-कालीन तपोनिष्ठ ऋषि के पास बैठा हुआ हूँ।

मैं सोच ही रहा था कि क्या कहकर इस देवता से वार्तालाप की शृंखला जोड़ूँ, इतने में "कहो भैया, कब आये—प्रसन्न तो रहे ?" कहते हुए उन्होंने अपना 'मैगनीफाइङ्ग-ट्यूब' मेरी ओर बढ़ा दिया। द्विवेदीजी पहले से ही कुछ ऊँचा सुनते थे, परन्तु बाद में उनकी यह व्याधि अधिक बढ़ गयी थी, अतः वे सदा अपने पास 'मैगनीफाइङ्ग-ट्यूब' रखने लगे थे। अस्तु।

द्विवेदीजी मुझे बहुत पहले से जानते थे—जब उनके सम्पादन में 'हितकारिणी' नामक मासिक-पत्रिका प्रकाशित हुआ करती थी, और उसमें कभी-कभी मेरी कहानियाँ निकलती रहती थीं। उनके कण्ठ की माधुरी से मुझे ऐसा जान पड़ा, जैसे मुझे देखकर वे बहुत प्रसन्न, बहुत सन्तुष्ट हुए हों। पाँच मिनट की बातचीत से ही मुझे भली-भाँति यह विदित हो गया कि द्विवेदीजी मध्यप्रदेश के अत्यन्त गौरवशाली नर-रत्नों में से हैं तो क्या हुआ, उनका हृदय अत्यन्त सरल तथा विशाल है और उसमें साधारण लोगों के लिए भी पूर्ण स्थान है। देखते-ही-देखते मैं उनके सामने उसी प्रकार निस्संकोच हो गया, जिस प्रकार पिता के सामने पुत्र। फिर तो मैं उन्मुक्त हृदय से वार्तालाप करने लगा और लगभग डेढ़ घण्टे तक उनके मुँह लगा रहा—अपनी आयु, स्थिति और योग्यता से बिलकुल बेख़बर होकर।

इतनी देर के वार्तालाप में मुझ जैसे अनुभवहीन युवक से अवश्य ही कई त्रुटियाँ हुई होंगी; पर द्विवेदीजी की सरलता और प्रसन्नता में व्यतिरेक का कोई चिह्न दिखाई नहीं दिया। मैंने उनकी बातें सुनीं, उनको अपनी बातें सुनाईं, पर, उन्होंने एक बार भी यह कहने की कृपा नहीं की कि ऐसा नहीं—ऐसा! द्विवेदीजी अत्यन्त विनोद-प्रिय थे। उनके बहुत से लेख उनकी इस प्रकृति का परिचय देते हैं। परन्तु डेढ़ घण्टे के उस वार्तालाप में मुझे उनकी इस विनोद-प्रियता से वञ्चित हीं रहना पड़ा। उनके उस वार्तालाप में सरलता थी, सरसता थी, स्नेह था, पाण्डित्य था, उपदेश था, अनुभव-शीलता थी, आलोचना थी, उत्साह था, उद्योग था, परन्तु केवल विनोद नहीं था। शायद इसका कारण यही रहा होगा कि बच्चों के सामने वृद्धों को विनोद-प्रिय न होना चाहिए, और यह है भी उचित।

द्विवेदीजी उच्च-कोटि के आदर्श अध्यापक थे। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन विद्या-दान करते हुए बिताया था। उनके जीवन का मुख्य अंश जबलपुर के सुप्रसिद्ध हितकारिणी हाईस्कूल की सेवा में ही व्यतीत हुआ था। वे लगभग पच्चीस वर्ष तक इस स्कूल के प्रधान अध्यापक रहे थे, और सो भी साधारण से वेतन पर। कहना तो चाहिए कि यही स्कूल उनका प्रधान लीला-केन्द्र था। इस स्कूल को उन्नतावस्था में देखने को, द्विवेदीजी की बलवती लालसा रहती थी और अपनी इस लालसा की पूर्ति के लिए वे अधिक से अधिक जो कुछ कर सकते थे, उसे करने में कभी पश्चात्पद

न होते थे । परिणाम यह हुआ था कि उस समय हितकारिणी हाईस्कूल, मध्यप्रदेशीय हाईस्कूलों में अत्यन्त प्रसिद्ध हो गया था। वह एक आदर्श हाईस्कूल समझा जाता था और कई हाईस्कूलों में उसकी गति-विधि का अनुकरण भी होने लगा था।

द्विवेदीजी ने हितकारिणी हाईस्कूल के उत्थान और पतन से सम्बन्ध रखने वाली जो बातें सुनाईं, उनसे मुझे स्पष्ट प्रतीत हुआ कि वे महात्मा गोखले को अपना आदर्श मानते थे। महात्मा गोखले थोड़े से वेतन पर ही आजीवन पूना के फर्ग्यूसन कॉलेज की सेवा करते रहे थे। यही बात द्विवेदीजी और हितकारिणी हाईस्कूल के सम्बन्ध में भी थी। कारण यह था कि द्विवेदीजी जनता के साथ रहते हुए ही उसकी सेवा करने के व्रती हो चुके थे। यदि वे चाहते तो उनको सहज ही कोई उच्च सरकारी पद प्राप्त हो सकता था, और वे कई सौ रुपये की पेन्शन प्राप्त कर अपना जीवन आनन्दपूर्वक बिता सकते थे। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। वे केवल हितकारिणी हाईस्कूल के लिए जिये, और हितकारिणी हाईस्कूल के लिए ही मरे। क्या उनके इस आदर्श से हमें उनकी स्वाधीन प्रकृति का परिचय प्राप्त नहीं होता? उनकी बातों से मुझे यही पता चला कि वे केवल सत्य के पुजारी थे। वे न तो सरकार की गुलामी बर्दाश्त कर सकते थे, और न जनता की। उन्हें न तो सरकार की अनुचित निन्दा ही भाती थी, और न जनता की 'हाँ में हाँ' मिलाने से ही कोई दिलचस्पी थी।

हितकारिणी हाई स्कूल से 'हितकारिणी' नामक मासिक-पत्रिका का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध था। द्विवेदीजी 'हितकारिणी' के सर्वस्व थे। उन्हीं के प्रयत्न से उसका प्रकाशन आरम्भ हुआ था। 'हितकारिणी' ही उन दिनों मध्यप्रदेश की एक ऐसी मासिक-पत्रिका थी, जिसका प्रचार लगभग ढाई हजार प्रतियों तक जा पहुँचा था। प्रान्तीय सरकार भी उसकी कई सौ प्रतियाँ खरीदा करती थी। 'हितकारिणी' की इस सफलता का एक-मात्र आधार द्विवेदीजी का महान् व्यक्तित्व था। 'हितकारिणी' के द्वारा उन्होंने हिन्दी-साहित्य और मध्यप्रदेश की स्वर्णाक्षरों में लिखी जाने योग्य सेवा की थी।

'हितकारिणी' हिन्दी-संसार में अपने ढङ्ग की अकेली पत्रिका थी। उसमें सर्व-साधारण के मनोरञ्जन की सामग्री तो रहती ही थी; परन्तु उसका प्रधान उद्देश्य मध्यप्रदेश के शिक्षकों एवं विद्यार्थियों में साहित्याभिरुचि की वृद्धि करना था। द्विवेदीजी 'हितकारिणी' में जहाँ एक ओर हिन्दी के धुरन्धर लेखकों की रचनाएँ प्रकाशित किया करते थे, वहां दूसरी ओर मध्यप्रदेश के हिन्दी-शिक्षकों तथा विद्यार्थियों की साधारण रचनाओं को भी स्थान देते थे। इन पंक्तियों के लेखक को भली भाँति मालूम है कि ऐसी रचनाओं को प्रकाशन-योग्य बनाने के लिए द्विवेदीजी को घोर परिश्रम करना पड़ता था। बहुत सी रचनाएँ तो उन्हें बहुधा नये सिरे से ही लिखनी पड़ती

थीं। परन्तु इस कष्टदायक कार्य से वे कभी विरत नहीं होते थे। यह उन्हीं की कृपा, उदारता और परिश्रम-शीलता का परिणाम है, जो आज मध्यप्रदेश में हिन्दी-लेखक अच्छी संख्या में दिखाई देने लगे हैं, और उनमें से बहुत से 'लब्ध-प्रतिष्ठ' भी हो चुके हैं। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को छोड़ कर, कदाचित हिन्दी-संसार में ऐसा कोई महारथी नहीं हुआ, जिसने द्विवेदीजी के समान लेखक-निर्माण करने का कार्य इतने ऊँचे पैमाने पर किया हो। मध्यप्रदेश तो उनके इस ऋण से भी उऋण नहीं हो सकता।

'हितकारिणी' लगभग बारह वर्ष तक जीवित रही। परन्तु असहयोग-युग में 'हितकारिणी' हाई स्कूल का काया-पलट होने के साथ ही सहसा उसका भी अवसान हो गया। वह द्विवेदीजी की प्राण-प्रिय वस्तु थी। उसके अवसान से उन्हें सदा किसी अत्यन्त प्रिय आत्मीय जन से वियोग होने जैसी पीड़ा पहुँचती रहती थी। सन १९२६ ईस्वी में उन्होंने एक बार फिर उसे जीवित करने की चेष्टा की थी, परन्तु इस बार उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हुई। 'हितकारिणी' की चर्चा उठते ही उन्होंने कहा—"क्या बताएँ भैया, 'हितकरिणी' बन्द नहीं हुई—बन्द करा दी गयी।" उन्होंने यह वाक्य जिस स्वर में कहा था, उसमें एक आह थी और उससे उनके हृदय की वेदना एकबारगी फूटी पड़ती थी। 'हितकारिणी' पर मेरा भी अत्यन्त स्नेह रहा है, क्योंकि उसकी दया-दृष्टि के एक बड़े अंश से मैं लेखक बन पाया हूँ। अतः उनकी इस वेदना ने मेरे हृदय पर एक तीव्र आघात किया। जब मैंने व्याकुल होकर उनसे 'हितकारिणी' के बन्द हो जाने का कारण पूछा, तो उन्होंने उत्तर दिया—'सरस्वती, माधुरी आदि पत्रिकाएँ उच्च कोटि के पाठकों के लिए हैं। उनमें प्रसिद्ध विद्वान लेखकों के ही लेख प्रकाशित हुआ करते हैं। परन्तु साधारण शिक्षकों तथा विद्यार्थियों के काम की भी कुछ बातें होनी चाहिए—उनका उत्साह बढ़ाने के लिए भी कुछ साधन होना चाहिए; यही सब सोच कर 'हितकारिणी' को फिर से निकालने का निश्चय किया था। परन्तु जब हमारे अधिकार-पिपासु भाई अपने शिक्षकों तथा विद्यार्थियों के लिए ऐसी बातों की आवश्यकता समझें, तब!' वास्तव में 'हितकारिणी' बन्द हो जाने से मध्यप्रदेश और विशेषतया उसके शिक्षकों तथा विद्यार्थियों को जो असीम हानि पहुँची थी, वह अब तक चल रही है। अस्तु।

इन बातों के बाद कुछ साहित्य-चर्चा भी चली। द्विवेदीजी ने वर्त्तमान-कालीन उच्छृङ्खल लेखकों, विशेषतया नवीन कवियों की धमा-चौकड़ी पर खेद प्रकट किया। उस समय 'सरस्वती' में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी लिखित छायावाद की आधुनिक कविता से सम्बन्ध रखने वाला वह क्रान्तिकारी लेख निकल चुका था, जो उन्होंने 'सुकवि-किंकर' के नाम से लिखा था, और जिसने कुछ समय के लिए हिन्दी-संसार

में हलचल उत्पन्न कर दी थी। द्विवेदीजी ने भी आचार्यजी का वह लेख पढ़ा था। वे उसकी चर्चा करते हुए बोले—'भैया, हम बूढ़े तो कितना ही दिमाग पचाते हैं; पर, छायावाद की यह कविता नहीं समझ पाते। तुम भी कुछ समझते हो या नहीं? भला तुम्हारा दिमाग तो अभी नया है।'

मुझे विवश होकर कहना पड़ा—'भगवन, जो बात आप जैसे विद्या-बुद्धि-निधान नहीं समझ पाते, वह हम जैसे कच्ची बुद्धिवाले बच्चे कैसे समझ सकते हैं!'

इस पर द्विवेदीजी हँसे और बोले—'भैया, इन कविताओं का रहस्य यही है कि इनका तात्पर्य स्वयं इनके रचयिता नहीं समझ पाते, इसीलिए ये अत्यन्त उच्चकोटि की होती हैं, समझे? मैंने छायावाद-सम्बन्धी कविताओं का अर्थ, एक बार नहीं, अनेक बार उन्हीं के रचयिताओं से पूछा है। परन्तु किसी ने कहा कि ऐसी कविताएँ समझने के लिए बुद्धि की जरूरत होती है, किसी ने कहा कि इन कविताओं का तात्पर्य हृदयङ्गम करने के लिए दिमाग चाहिए और किसी ने उत्तर दिया कि क्या कहें, अभी समय नहीं है, फिर देखा जाएगा।'

द्विवेदीजी को दूसरों की कठिनाइयों का बहुत ख्याल रहता था। उन्होंने 'साधारणज्ञान' नामक एक पुस्तक का सम्पादन किया था। यह पुस्तक दो भागों में थी और प्राइमरी कक्षाओं में पढ़ायी जाती थी। इस पर द्विवेदीजी ने मेरी राय जाननी चाही। मैंने उनको उत्तर दिया—'पुस्तक उपयोगी तो अवश्य है; पर, उसका अधिकांश भाग बालकों की बुद्धि और वय को देखते हुए अत्यन्त क्लिष्ट है। आवश्यकता इस बात की है कि इस पुस्तक पर पुनः विचार किया जाय और जितना विषय बालक हृदयङ्गम कर सकें, उतना ही उसमें रखा जाय।'

द्विवेदीजी ने मेरी राय पसन्द की। उन्होंने पुस्तक कठिन होने के सभी कारण बताये और कहा—'मैं तुम्हारी बातें शिक्षा-विभाग के उच्च अधिकारियों तक पहुँचा दूंगा और यथाशक्ति इस पुस्तक को सरल कराने की चेष्टा करूँगा।'

वार्तालाप करते-करते लगभग डेढ़ घण्टे का समय व्यतीत हो चुका था, अतः मैं द्विवेदीजी से आज्ञा लेकर चलने को उद्यत हुआ। बूढ़े द्विवेदीजी सम्मानार्थ उठकर खड़े हो गये और बोले—'भैया, कभी-कभी यात्रार्थ निकला करो। इससे बहुत लाभ होता है। हम तो बूढ़े हो गये—कहीं आने-जाने से रहे।'

मैं उनको प्रणाम कर बाहर निकला। उन्होंने मेरे साथ जैसा स्नेह-मय वार्तालाप किया था, जैसा सम्मानपूर्ण व्यवहार किया था; वैसा, उनके समान अन्य प्रतिष्ठित जन, साधारण लोगों से शायद ही करते होंगे। उनके व्यवहार से मेरे हृदय में भावों का जो तूफान उत्थित हुआ था, उसका वर्णन कर सकना असम्भव है। उनके आदर्श व्यवहार की सुखद स्मृति तो अब तक मेरे हृदय में ताजा बनी हुई है।

इस दिव्य-दर्शन के बाद साल-भर के भीतर ही समाचार-पत्रों में द्विवेदीजी के अवसान के सम्वाद दिखाई दिये। हृदय को बड़ी ही वेदना हुई। यद्यपि वे वृद्ध हो गये थे, तथापि उनका स्वास्थ्य देखकर यह आशंका न होती थी कि वे इतने शीघ्र मध्य-प्रदेश के हिन्दी-संसार को शून्य कर चल देंगे। वास्तव में उनके देहावसान से मध्य-प्रदेश को ऐसी हानि पहुँची थी, जिसकी पूर्ति अब तक नहीं हुई, और न निकट भविष्य में होने की आशा ही है।

द्विवेदीजी ने पाठशालाओं में आचार-नीति की शिक्षा का अभाव देखकर 'सदाचार-दर्पण' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। हिन्दी में आचार-नीति की शिक्षा का यह सर्व प्रथम और सर्वाङ्ग-सम्पन्न ग्रन्थ है। द्विवेदीजी का दूसरा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'भारत-इतिहास' है। उन्होंने इसकी रचना हाईस्कूल की कक्षाओं के लिए की थी। यद्यपि कहने को तो यह स्कूली ग्रन्थ है, तथापि सभी लोग इससे समान रूप से लाभ उठा सकते हैं। इसकी शैली आलोचनात्मक है। केवल सात सौ पृष्ठों में द्विवेदीजी ने भारत के विशाल इतिहास का सङ्कलन बड़े ही कौशल से किया है। लिखने का ढङ्ग तो इतना आकर्षक है कि यह उपन्यास के समान मनोरञ्जक हो गया है। वास्तव में द्विवेदीजी इतिहास के धुरन्धर पण्डित थे और यह ग्रन्थ उनके इस पाण्डित्य से मण्डित है। 'शाहज़ादा और फ़कीर' और 'स्वदेश की बलि-वेदिका' द्विवेदीजी की अन्य पुस्तकें हैं। इनमें अत्यन्त रोचक ऐतिहासिक कहानियाँ लिखी गयी हैं।

इनके अतिरिक्त हितकारिणी, सरस्वती, श्रीशारदा, माधुरी आदि पत्रिकाओं में भी द्विवेदीजी ने ऐसे बहुत-से लेख लिखे थे, जो सदा ताजा रहेंगे। यदि उनके ये सब लेख सङ्कलित किये जाएँ और विषय-विभिन्नता के विचार से पुस्तकाकार प्रकाशित हो जाएँ, तो सचमुच एक बहुत बड़ा कार्य सम्पन्न हो जाय। परन्तु हिन्दी-संसार में रहते हुए ऐसी आशा करना व्यर्थ है। यहाँ तो लिखते-लिखते मर मिटो, तो भी कोई पूछने वाला नहीं, और लिखते-लिखते मिट्टी में मिल जाओ, तो भी कोई याद करने वाला नहीं! वास्तव में हिन्दी का लेखक बड़ा अभागा होता है।

कहानी—

धरती हँसती है

श्री राम जागलेकर

मेरा नाम बाँके; पिता नामालूम, जाति नामालूम, आयु केवल २३ वर्ष, व्यवसाय कुछ नहीं, निवास का कोई ठिकाना नहीं। यह मैं अच्छी तरह समझता हूँ कि जो कुछ मैं कहूँगा वह मेरे विरुद्ध सबूत के काम में लिया जायगा और उस पर से मुझे सजा दी जा सकेगी। हो सकता है कि वह सजा सजाए मौत हो! जी, मैंने कोई नशा-पानी नहीं किया है। मैं जानता हूँ कि मेरे विरुद्ध बीबी-बच्चों का कत्ल करना बता कर दफा ३०२ कायम की गयी है। नहीं, इससे मुझे न कोई सदमा पहुँचा है, न मेरी दिमागी हालत बिगड़ी है। बिना किसी के कहे सुने मैं रोना रोने आया हूँ—जिसे शायद बयान-इकबाली कहते हैं।

मेरी कहलाने वाली झोंपड़ी के नीचे दबी लाशों में जो मासूम नन्हे-मुन्ने थे वे मेरे अपने बच्चे थे, जिनका मैं बाप हूँ और कातिल भी हूँ। और वह औरत जिसका नाम मकतूल लाखी, मर्द बाँके लिखा गया है, वह मेरे कुछ बच्चों की माँ थी। यह सच है कि माँग में सिन्दूर भरते समय एक जमाने में वह मेरा नाम जरूर लेलेती थी, किन्तु उसने कभी पण्डितों की गिडगिड के साथ मेरे दुपट्टे से अपनी ओढ़नी का छोर बंधवा कर रसूम के कोल्हू के चारों ओर रिवाज के अन्धे बैल की तरह मेरे पीछे-पीछे गोल-गोल चक्कर नहीं काटे थे। तो फिर उसके मेरे रिश्ते को क्या कहा जाय, यह बिल्कुल कानूनी सवाल है, जिसे मैं नहीं समझा और न अब समझने की आवश्यकता अनुभव करता हूँ। वह मेरे कुछ बच्चों की माँ थी, इतना मेरे लिए पर्याप्त है। उसने मेरा साथ बुरे ही दिनों में प्रारम्भ किया था और ठीक मेरे कन्धे से कन्धा लगाये दुर्भाग्य के घाव वह उन अच्छे दिनों की आशाओं में सहती रही जो कभी नहीं आये। उन दिनों में मैं उस सड़क पर रहता था जो इमामबाड़े से होती हुई ठेठ चौक चली जाती है। वहाँ झोंपड़ियों में कुछ ऐसे लोग बसते हैं जो दूसरों के उतरे, फटे और मैले कपड़ों को टाट एवं दरी तक के टुकड़ों से जोड़ लगाये कड़ी सर्दी और धूप से मरी खाल बनी अपनी चमड़ी को ढँकते हैं और दो बालिश्त पेट की बिना तल की खाई में घुने ज्वार और जौ के मिले जुले आटे के टुकड़े झोंक कर उस कला को शताब्दियों से

जीवित रखते आये हैं, जिसके लिए उस शहर का नाम दुनियाँ के कोने-कोने में गूँजता है। उनके जले खून और टपके पसीने के बदले कुछ गज महीन कपड़े की कीमत पर कई बिंदियाँ चढ़ जाती हैं, जिससे नामी बाजारों और गुमनाम महिलाओं की शोभा तो बढ़ जाती है, लेकिन इनके जीवन के अन्धकार में एक लौ तक टिमटिमा नहीं पाती। ये लोग सोने के तार से काढ़ने का क़ाम करते हैं; वह चमत्कारपूर्ण काम जिसे देखने को, हर हरा दिल जिसे चूमने को उछल पड़े। किन्तु रेशम-सोने के ख्वाब के इन कलाकारों को यह अनुमति नहीं होती कि अपनी कलाकृति को हाथ से भी छू लें। कारण कि दिव्य वस्तुओं के अधिकारी देवदूतों को डर लगता है कि इनके हाथों में युग-युग से परम्परित दरिद्रता का धब्बा कहीं कपड़ा न ले उठे और भुखमरी की महक से मनचलों को बेचैन न करदे।

मैं इन लोगों के साथ सालों व्यतीत करके भूखे पेट, उस स्वप्निल संसार में उस दिन तक पड़ा रहा जब मेरे दो बच्चे बाप के निकम्मेपन से ऊबकर दुनियाँ से मुँह मोड़ गये। मेरी हालत बहुत ही खराब थी। छेदवाला एक पैसा भी कई दिनों से नहीं दिखा था। बच्चों ने भूखे-प्यासे रो-रोकर कई दिन बिता दिये, तो मेरी पत्नी विकल होकर बाजार चल पड़ी और बड़ी रात में एक पोटली बाँधकर वापस आयी। उसने घण्टों बिताकर, एक आटे की चक्की के सामने रास्ते पर चक्की बन्द होते समय झाड़कर फेंका गया कुछ आटा, मट्टी और चक्की के पाटों को टाँकने में उड़े कणों की मिलवाँ धूल में से अँगुलियों को बारबार गीली करके उठा लेने की कोशिश की थी। उसकी घण्टों की महनत से एक पतली-सी रोटी सेकी गयी, जो दोनों बच्चों ने आधी-आधी खाली। परिणाम यह हुआ कि सुबह होते-होते दोनों बच्चों ने खून की कै और दस्त करके हाथ पैर ठण्डे करना आरम्भ किये। सरकारी गरीबखाने में डॉक्टरों ने घण्टों बच्चों को उल्टा-पुल्टा किया, किन्तु वे बीमारी नहीं समझ पाये। वे भी बेचारे क्या करते! बदहजमी के इलाजों के विशेषज्ञ उन आचार्यों को भरे पेट डकारें देने पर लिखीं इंग्लिश्तानी किताबों में इस अनोखी बीमारी का पता भी कैसे मिल पाता! उन्होंने मेरे बच्चों के अधमुँदे पलकों पर सफेद चादर ढँकते मेरे हाथ में पाँच रुपये के नोट थमाये और कहा—"इनको यहीं रख जाओ; हम और छान-बीन करना चाहते हैं"। जो समस्या समझने के लिए डॉक्टर पाँच रुपये खर्च कर रहे थे, वह मैं तो मुफ्त ही जान गया था। मुझे मालूम था कि रात के आटे में घुली मिट्टी और चक्की के बारीक-बारीक कतरों ने मेरे बच्चों की भुखमरी से कमजोर बनी आँतों की चिन्दियां काट दी थीं। मेरी हथेली पर फैले नोट देख कर मेरा दिल बोल उठा "वाह रे मेरे शेर! नादान बाप से कफन-दफन तक का खर्च नहीं लिया तुमने! जाते दम ऐसी खैरात की कि तुम्हारी साल दो साल की जिन्दगी में मैंने

तुम्हारे लिए जो कुछ खर्च किया हो, उसका कई गुना वापस कर गये। सारा कर्ज चुका गये और अमानत ही मेरे जिम्मे कर गये।

फिर हम उसी दम शहर छोड़ कर चल दिये। न कुछ सोचा, न कुछ जाँचा। बस, चल ही दिये। आगे-आगे मैं और पीछे-पीछे लाखी।

रास्ते में एक कस्बे के कुछ बाहर एक आसमान को फाड़ने वाली ऊँची हवेली की देहली पर—केवल स्मृति बनी गुजरी नवाबी का एक पिछड़ा कण—शागिर्दपेशा आदमी बैठा था। कान में अंगुली अटका कर उसे जोर से हिलाते हुए बची खुची एक आँख की खिड़की मूँदते उसने एक लम्बी नजर दौड़ायी। शायद मेरे पीछे दूर तक, बहुत दूर तक। और मुझे कोई पहाड़ी समझ कर बोला "कहाँ जा रहे हो साथी? काम ढूँढने? भाई काम तो यहाँ तुम्हारा ही इन्तजार कर रहा है।" हम दोनों के हक्के-बक्के मुँह से कुछ निकले, इससे पहले हम नौकर करार दे दिये गये। काम था "जो पड़े सो!"

आठ पन्द्रह दिन बड़े चैन से कटे। आसमान से फट पड़ी रोटी ने बहुत ही जल्दी असर जमाया। पेट भरने की निश्चिन्तता में भाग्य की यह शतरंज के ऊँट की तरह की तिरछी चाल समझने का प्रयास ही नहीं किया हमने। फिर एक दिन हुक्म मिला "साथी, शाम को मालिक आ रहे हैं। जरा नदी पर जाकर शिकार ले आओ।" हम दोनों सारे दिन नदी पर रहे और शाम को लौटे। मैं बतख के अण्डे लिये आगे था और लाखी मछलियाँ लिये पीछे। दियों के प्रकाश में दमकती हवेली के आगे तकिये पर लुढ़के मालिक फुलवारी का आनन्द ले रहे थे। कांच के गिलास में छलकते सुनहरे पानी से नजर हटाते हुए लाल-लाल आँखों से घूरते बोले "ओह, तो तुम हो लाखी! तुम बांके हो?" शागिर्द बोला "गरीब परवर, अपने ही हैं। बिलकुल अपने ही।" "ठीक, लाखी खाना यहीं से ले जाये।" मालिक ने हुक्म दिया। रात को ग्यारह बजे बाद लाखी हवेली में गयी। थोड़ी देर बाद शागिर्द खुद आकर ढेर सारी रोटियाँ और कटोरा भर शोरबेदार मछली लाया। भरी बोतल भी थी। मैंने पूछा "लाखी?" बोला "उसने अन्दर ही निबट लिया।" और ही-ही करते चल दिया। मुझे बड़ा क्रोध आया। क्या औरत है! खाना उमदा था, माना, लेकिन झोंपड़ी में लौटकर खाने तक रुक नहीं सकी! मैंने ताव में सारी बोतल गले के नीचे उतार दी। सर बहुत जोर से भन्नाने लगा तो रोटी-मछलियों का सफाया करने जुट गया। धीरे-धीरे रोटी-मछली का मजा लेने और उँगलियाँ चाटने में एक बार लाखी की चीख सुनी ऐसी शंका हुई, लेकिन—रोटी और शोरबेदार मछली! क्या खूब बनी थी!

सुबह पौ-फटते आँख खुली तो सिसकियाँ लेती लाखी को मैंने पूछा— "देर तक हवेली में क्या करती रही?" थर्राते होठों से लाखी बोली "अब पूछते हो?

तब कहाँ थे जब मैं जी-जान से चीख पड़ी थी ?" मैं बेजबान मूर्ति की तरह देखता रहा। क्या उत्तर देता ? क्या मैं कह सकता था कि रोटियों की ओट में अटका था।

उस दिन के बाद लाखी ने कभी माँग में सिन्दूर नहीं भरा। हम दिन निकलने से पहले ही मीलों दूर निकल गये। बहुत दिन तक दुर्भाग्य से टक्कर मारते रहे। कभी मैं कुछ कमा पाता। लाखी भी रुपया पैसा बटोर लाती। फिर भी हम वही रहे जो पहले थे। बेबस, निरुपाय और अकिंचन। हम—हम सब, मैं, लाखी और बच्चे। अब लाखी के बच्चे !

अभी-अभी मोहताजों की बाढ़ में बहते हम भी पहाड़ियों में चले आये। कोई बाँध बन रहा था। वहाँ रात-दिन पत्थरों पर चलते छैनी-हथौड़े की आवाज ललकारें मार रही थी कि "आओ, आओ, मुल्क के मोहताजो, बेबसो, मुफलिसो, आओ, पेट के मारो, आओ, आओ ! अपने खून-कलेजे के गारे से अपनी हड्डियाँ चिन कर नींवें भर दो, जिन पर तक़दीरवालों की दीवारें खड़ी हो सकें !" लाखी का हाथ पकड़ कर रजिस्टर पर अंगूठा चिपकाते हुए सर से पैर तक सड़ा मुकद्दम लार टपकाते बोला "ही-ही, ठीक है, ठीक है !" यहां पर भी रंग पुराना ही था, लेकिन ढंग नया था। बिना किये अपराधों की सजा थी और मनगढ़न्त भूलों पर जुर्माना था जो सब अदा करते करते सिर्फ इतना बच पाता था कि हड्डी पर चमड़ा चिपका रहे। हम सब लोगों ने सरकारी ही सामान उठा-उठा कर साया खड़ी की। मिट्टी काटी जाने से बने गड्ढे में नदी की रेती की दीवार बनायी। कुछ खम्बे गाड़कर ऊपर पत्रे बिछा दिये थे। पत्रों के ऊपर बड़े-बड़े पत्थर रख दिये थे ताकि आँधी में वे उड़ नहीं जाएँ। झोंपड़ी के भीतर बीचों बीच एक सड़ी बल्ली पर सब कुछ सधा था।

वर्षा का प्रारंभ होते ही काम धीमा कर दिया गया और मजदूर हटाये जाने लगे। मेरा नाम तो शुरू-शुरू में ही कट गया। लेकिन लाखी काम पर चालू रही, इसलिए हम और कहीं जा भी नहीं सकते थे। लाखी अकेली कमाने वाली और हम तीनों बैठे-बैठे खाने वाले। कटी कटाई मजदूरी में से किसी एक का भी पेट नहीं भर पाता था। बच्चे सूख कर लकड़ी हो गये। उनके होंठों पर से चमड़ी पपड़ी जैसी सूख-सूख कर निकल आयी। लोहू लुहान होठों पर पानी के लगने पर वे तिलमिलाने लगते थे। मैं उनके खाली पेटों के नगाड़ों पर हाथ रखे उन्हे सूजन भरी जीभ से फटे होठों को गीला करते ओर रोते-रोते दिन गुजारते बैठा-बैठा देखा करता था। चारों ओर कड़ी धूप में कड़क-कड़क कर छाती फाड़ कर जमीन धाँय-धाँय करने लगी। कहीं हरा पत्ता भी दिखाई नहीं देता था। जिधर आँख दौड़े उधर दूर-दूर तक वीरान सुनसान कब्रिस्तान की शोकाकुलता थी। सारी धरती रोती रुलाती थी। आखिर उस रात आँधी प्रारंभ

हुई, आकाश में धने बादल मँडराने लगे । पागलों की भाँति चिल्लाते हवा से डर कर बच्चे मुझ से चिपट गये । बाहर कोई आवाज होना मालूम हुआ, देखा तो मुकद्दम ने लाखी का हाथ पकड़ा था और लाखी उसके सड़े पीव भरे चेहरे पर तमाचे मारती थी । मुझे देख कर मुकद्दम भन्नाया । गालियों की फुलझड़ी छोड़ते बोला "अफसर पर हाथ उठाने वाले कमीनो; सरकारी माल चुरा चुरा कर महल खड़ा कर दिया है ।" फिर झोपड़ी में घुसकर छत का सहारा बनी बल्ली खींचते बोला "निकालो, निकालो सरकारी सामान ।" खींचतान में बल्ली फिसल पड़ी । मैंने छत को हाथों पर सँभाला । बोझ से छत धँसती देख कर मुकद्दम भाग निकला और चिल्लाया-"याद रखना, सुबह होते पुलिस के हवाले नहीं किया तो नाम बदलवा देना ।"

मुझसे बोझ नहीं सँभल रहा था । लाखी दौड़ी और आँधी तूफान मे ठोकरें खाते एक बाँस ढूँढकर ले आई । बाँस फटा पिचका था, लेकिन कुछ बोझ सँभाल सकता था । मैंने पसीना पोंछते घूम कर देखा तो लाखी पेट के बल जमीन पर औंधी पड़ी थी । हाय, मालिक ! यह अभागी रात—यह आँधी तूफान—बगल की बस्तियां भी उजड़ी हैं, इस वक्त—मैं धम कर जमीन पर बैठ गया ।

रात बढ़ रही थी । बाहर आंधी-तूफ़ान और घने बादलों में होड़ चल रही थी जैसे कि सारी दुनियाँ को धूल में मिला कर ही मानेंगे । आधी रात के पश्चात धुआँधार पानी भी बरसने लगा । फटा टूटा पिचका बाँस पानी की मार से हार कर छुट्टी माँगने लगा । मैं सारी ताकत मुट्ठियों में जमाकर बाँस को खड़ा रखने पर तुल गया । एकाएक मेरी दृष्टि उन नन्ने नन्ने चेहरों पर गयी जिनको नींद दूभर थी और कमजोरी में बेखबर पड़े थे । उनकी रुकते घुटते चलती साँस में एक ही कूक थी—"भूख,-भूख, रोटी रोटी ।" और इधर मेरे पैरों में सर थामे घुटने के बल औंधी होकर लाखी पेट के बिलखते दर्द को सहने का प्रयास कर रही थी और मैंने उसके सिरको देखा । लाखी की माँग उजड़ी थी । मैं जिन्दा होते हुए भी उजड़ी, बाँस चटका । मैं जोर से बांस को चिपटा कि बांस टूट न सके और छत के नीचे रात गुजार कर लाखी और बच्चो आने वाले दिन का प्रकाश देख सकें । लेकिन किसलिए ? उसी दुख:-दर्द, बेबसी और भुखमरी के लिए ? मेरे मस्तिष्क ने चक्कर खाया और हाथों की ताकत चल बसी ।

सुबह की इठलाती ठंडी हवा में मैंने देखा कि मुकद्दम ने अपना वचन निभाया था । पुलिस आगयी थी । मुकद्दम कह रहा था । "सूबेदार साहब, मैंने आँखों से देखा । इसने पहले बीबी बच्चों को मारा और बादमें झोंपड़ी गिरा दी । लाखी मर गयी । बेचारी ठीक थी, ठीक थी ।" मैंने गौर से देखा, हां लाखी वास्तव में मर गयी थी । उसके सिर में खून जमकर माँग सिन्दूर से भरी जैसी रंग गयी थी । तो आखिर मौत ने लाखी की माँग भरी ! लाखी और बच्चों के चहरों पर मैंने देखा—भूख, दर्द, चिन्ता का

चिह्न भी शेष नहीं था ! और मैं, मैंने भी पाया कि मेरा भी मस्तिष्क वर्षा से धुलें नीले आकाश कीं तरह साफ, ठण्डा और हलका हो गया है। आंखे उठायीं और देखा कि पिछली रात की प्रलय के पश्चात् रोती रुलाती धरती अब बहती नदी की कल-कल में सुर मिलाये हँस रही है। धरती हँसती है, यह देख कर मैं भी हंस पड़ा। कानों में अजीब गूँज थी—न भूख, न प्यास, न दुःख, न दर्द—

मैं सिर्फ इतना ही कह सका "चलिये सूबेदार साहब— !"

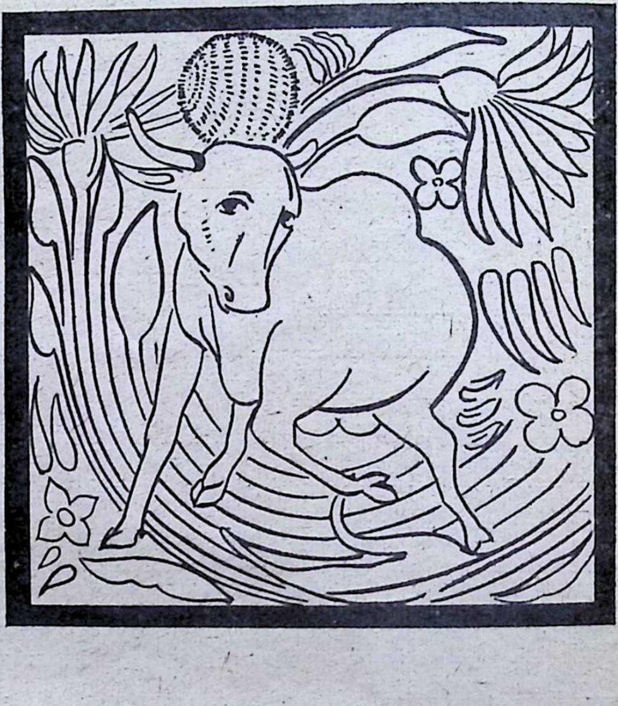

गीत

---श्री कोमलसिंह सोलंकी---

आज सफल होगयी भावना।

(१)

सुख-दुख खो चेतना सिन्धु में,
सुध-बुध खो कल्पना बिन्दु में,
कम्पन मौन मुखर भावों में

श्रद्धानत होगयी कामना।
आज सफल होगयी भावना।

(२)

सोते, जगते, पुलक-विहसते,
उठते, गिरते, पुनः सम्हलते,
तालों के उस सम पर नचते

भाव विनत होगयी साधना।
आज सफल होगयी भावना।

(३)

तुम आये अधरों में रस भर,
रस में प्राण, प्राण में मधु रव,
अधरों को अधरों पर पाकर

वाणीमय होगयी कल्पना।
आज सफल होगयी भावना।

एकांकी—

गर्द के गुम्बद

श्री अनन्तकुमार पाषाण

पात्र

भरत

माया—भरत की पत्नी

लाल

लाल का नौकर।

[एक मध्यवर्गीय ढंग का कमरा। वैसे कुछ आवश्यकता से अधिक ध्यान देकर सजाया गया है। मेज़ पर एक लकड़ी के फूलदान में फीके पड़े हुए कागज के फूल रखे हैं। दीवार पर कृष्णजी का एक बहुत बड़ा और भद्दा-सा चित्र लगा है। खिड़की-दरवाज़ों पर पर्दे हैं और फर्श पर कार्पेट है। मेज़ पर अखबारों का ढेर रखा है, जो एक भारी भरकम ऐश-ट्रे से दबा है। ऐश-ट्रे में से धुआ उठ रहा है। एक पुराने ढंग का दकियानूसी सोफ़ा सेट है, जिस पर टाँगें फैलाये भरत लेटा है। वह सिल्क की शर्ट पहने है और काले रंग का एक ऊनी पतलून। पाँव में चप्पल हैं। बहुत तन्मय होकर वह एक चिट्ठी पढ़ रहा है। देखने में काफ़ी खूबसूरत है, आयु लगभग २५ वर्ष। एक १८-१९ वर्ष की युवती का प्रवेश। युवती अधिक सुन्दर अवश्य नहीं है, किन्तु उसमें काफ़ी सेक्स-अपील है। गोरी चिट्टी, मृगनयना। उसके हाथ में गुलाबी रंग की सलाइयाँ हैं, और वह खाकी रंग का कुछ बुन रही है। यह भरत की पत्नी माया है।]

माया—(भरत के पास आकर बैठते हुए प्यार से)— कोई चिट्ठी आई है ?

भरत—(मुँह ऊपर कर अन्यमनस्क-सा देखता है, और फिर चिट्ठी बन्द करते हुए) हाँ, आयी है !

माया—(हाथ बढ़ाकर) लाओ देखूं, किस की है ?

भरत—किसी की नहीं ! (चिट्ठी बन्द करके जेब में रख लेता है।)

माया—क्यों ? मुझे देखने दो न ! इतने उदास क्यों हो गये तुम उसे पढ़कर ?

भरत—(खड़ा होकर ठंडी आवाज में) वह चिट्ठी तुम्हारे नाम है।

माया—तो इसमें उदास होने की क्या बात है ? मैं अपने फ्रेंड्स से कह दूँगी कि वे मेरी चिट्ठियाँ भी तुम्हारे नाम भेजा करें !

भरत—क्या तुम मेरा मजाक उड़ा रही हो ?

माया—(गंभीर होकर) हाँ !

भरत—बुरा कर रही हो ! (सीने पर हाथ रखके) इससे मेरा दिल दुखता है !

माया—तो मेरी चिट्ठी मुझे क्यों नहीं देते ? (रोते हुए) क्या इससे मेरा दिल नहीं दुखता ?

भरत—(चिट्ठी निकाल कर देते हुए) लो ! (सोफे पर बैठते हुए) जोर से पढ़ो।

माया—(चिट्ठी खोल कर देखती है और प्रसन्नता से उछल पड़ती है) ओः ! आः ! हा ! हा ! ही ! ही ! (नाचने लगती है)

भरत—(गंभीर आहत स्वर में) नाचो मत माया ! तुम्हारे नाचने से मेरा दिल दुखता है ! लाल की चिट्ठी पाकर तुम इतनी खुश हो ? बुरा कर रही हो। (खड़े होकर उत्तेजित स्वर में) बहुत बुरा कर रही हो। (जाकर माया का हाथ हाथ में लेते हुए) माया ! गृहलक्ष्मी ! अन्नपूर्णा ! तुम·······तुमने तो कहा था कि लाल ने वायदा किया है, वह शादी के बाद कभी तुम्हें पत्र नहीं लिखेगा ?

माया—(उसका हाथ पकड़कर सोफे पर बिठाते हुए) तुम तो बुद्धिवादी हो भरत ! दकियानूसी पुरानी बातों को नहीं मानते। जरा ठंडे दिल से सोचो, हमारी शादी को कितने दिन हुए हैं अभी ? चार महीने ! और लाल मुझे कितने दिन से प्रेम करता है ? चार साल का प्रेम चार महीने में मिट जाय तो वह प्रेम नही है भरत ! (अनुनय के स्वर में) लाल बहुत भावुक है भरत ! और फिर उसका प्रेम आध्यात्मिक है। (फीकी हँसी हँसकर) चार महीने में तुम क्या उस लाल से ज्यादा प्रेम करने लगे मुझे, जो चार साल तक मेरे पीछे छाया की तरह घूमता था ? प्रेम एक आदत है भरत ! जितनी पुरानी हो जाती है, उसे छोड़ने में उतनी ही कठिनाई होती है।

भरत—बुद्धिवाद क्वाँरों का शगल है माया ! शादीशुदा आदमी शादी जैसी मूर्खता करके बुद्धि का नाम ही कैसे ले सकता है !

माया—ठीक कह रहे हो भरत ! लाल अभी तक बुद्धिवादी है, क्योंकि उसने मुझसे शादी नहीं की। अब तुमने, जब शादी करने की मूर्खता कर ली है तो पछताने की क्या बात है ? मैं तो हमेशा ठंडे दिल से सोचना पसन्द करती हूँ। लाल क्वाँरा है, बुद्धिवादी है, तुम शादीशुदा हो तुम्हारी बुद्धि को बादी है।

भारती

अर्थात माई डियर भरत, तुम मूर्ख हो ! राइट ? अब बची मैं। मेरी वही हालत है जो एक मूर्ख और एक बुद्धिवादी के बीच किसी भी नारी की हो सकती है। (भरे कंठ से) गुप्तजी ने ठीक ही कहा है—"अबला जीवन हाय, तुम्हारी यही कहानी ! आँचल में है दूध और आँखों में पानी !" (आँसू पोंछते हुए) मराठी में अनुवाद हुआ "स्त्री जन्मा ही तुझी कहाणी !"

भरत—मुझे मराळी नहीं आती।

माया—मुझे भी कहाँ आती है !

भरत—तो फिर मराठी में अनुवाद करके क्यों सुना रही हो ?

माया—इस नाम की ऐक पिक्चर आयी थी भरत ! पिक्चर का नाम था—"स्त्री जन्मा हो तुझो कहाणी !" इतना ही मुझे मालूम है।

भरत—(आहत स्वर में) क्या तुम मेरा मजाक उड़ा रही हो ?

माया—हाँ !

भरत—बुरा कर रही हो ! (सीने पर हाथ रख कर) इससे मेरा दिल दुखता है !

माया—तो मेरी चिट्ठी तुमने क्यों पढ़ी ? (रोते हुए) क्या इससे मेरा दिल नहीं दुखता ?

भरत—(घबरा कर) लो, (सोफे पर बैठते हुए) जो कुछ मैंने तुम्हारी चिट्ठी में पढ़ा था, मैं सब भूल गया !

माया—(उसको पकड़ कर उठाते हुए उल्लास से) सच ?

भरत—सच ! बाय गॉड !

माया—ओः ! आः ! हा ! हा ! ही ! ही ! सचमुच भरत तुम मेरे पति होने के काबिल हो ! मूर्ख हो तो क्या हुआ ? सब पति मूर्ख होते हैं !

भरत—और पत्नियाँ ?

माया—वे भी मूर्ख ही होती हैं, नहीं तो मूर्ख पतियों को बुद्धिमान बनाने की कोशिश ही क्यों करतीं ? (कुछ सोच कर) अच्छा, तुम सचमुच सब कुछ भूल गये जो तुमने इस चिट्ठी में पढ़ा था ?

भरत—एक दम सब ! बाय गॉड !

माया—मैं तुम्हारा इम्तिहान लेकर देखूँ ?

भरत—खुशी से !

माया—(चिट्ठी दिखाते हुए) यह किसकी चिट्ठी है ?

भरत—(आश्चर्य से) चिट्ठी ! कहाँ ? चिट्ठी आयी है माया ?

माया—हाँ ! चिट्ठी आयी है भरत ! बताओ किसकी है ?

भरत—(सोचकर) किसी की तो जरूर है !

माया—बिलकुल ठीक, किसी की तो जरूर है, मगर किसकी है ?

भरत—किसी ऐसे आदमी की है, जो तुम्हें जानता है !

माया—वंडरफुल ! कैसे मालूम हुआ तुम्हें ? जरूर तुमने मेरी चिट्ठी खोल कर पढ़ी है !

भरत—(अनजाने) पढ़ी तो जरूर थी, मगर उससे तुम्हारा दिल दुख गया। बस, मैं पढ़ा-पढ़ाया सब भूल गया।

माया—भूल गये, तो तुम्हें यह कैसे मालूम हुआ कि यह एक ऐसे आदमी की है, जो मुझे अच्छी तरह जानता है ?

भरत—(घुटनों पर बैठते हुए) ठीक कहती हो माया ! मैं अपने शब्द वापिस लेता हूँ ! यह एक ऐसे आदमी की है, जो तुम्हें बिल्कुल नहीं जानता !

माया—(कूद कर नटखटपन से) गलत ! यह चिट्ठी लाल की है भरत ! उसने लिखा है—(चिट्ठी खोल कर पढ़ती है) माई सोल अर्थात मेरी आत्मा, मैं बम्बई आ रहा हूँ और तुम्हारे यहाँ ही ठहरूँगा। पहले सोचा था कि तुम्हारे विवाहित जीवन में हलचल पैदा न करूँ। फिर सोचा कि हल तो चलता ही रहता है। अगर तुम्हें मालूम होगा कि मैं बम्बई आकर भी तुमसे नहीं मिला, तो शायद दुख से तुम आत्महत्या कर लो ! इसका प्रभाव मेरे बचपन के दोस्त भरत पर क्या होगा ? कोई और लड़की तो उससे विवाह करेगी नहीं ! इसलिए भूली हुई रागिनी-सी मीठी मेरी चन्दा की चाँदनी, कल शाम तक मैं तुम लोगों के साथ होऊँगा। तुम्हारा जो कभी था और अब जो अभागा कोई नहीं है—लालसिंह—तुम्हारे प्रेम का भिखारी !

भरत—नहीं हो सकता ! लाल यहाँ नहीं ठहर सकता !

माया—क्यों ?

भरत—शहर में सैकड़ों होटल हैं।

माया—कुछ अक्ल से काम लो भरत, वहाँ पैसे लगते हैं।

भरत—पैसे मैं दे दूँगा।

माया—वह क्या भिखारी है जो तुमसे पैसे ले ?

भरत—उसने लिखा तो है—तुम्हारे प्रेम का भिखारी !

माया—प्रेम का भिखारी होना और बात है, पैसों का भिखारी होना और !

भरत—फरक क्या है ?

माया—फरक क्या है ! (हँसती है) पैसे की भिक्षा दरवाजे के बाहर खड़े होकर माँगी जाती है, प्रेम की भिक्षा दरवाजे के भीतर घुस कर।

भरत—यह कोई इतनी बड़ी मुश्किल नहीं। पैसे की भिक्षा भी दरवाजे के भीतर घुस कर माँगी जा सकती है।

माया—तब उसे भिक्षा माँगना नहीं, चंदा माँगना कहते हैं !

भरत—और प्रेम की भिक्षा भी दरवाजे के बाहर से माँगी जा सकती है !

माया—वह विवाहित लोग घर का दरवाजा बन्द पाकर अपनी पत्नी से माँगते हैं।

भरत—तो फिर फरक क्या है ?

माया—(हँस कर) फरक ! पैसे की भिक्षा घर के भीतर घुस कर जब माँगी जाये, तो रसीद देनी पड़ती है, और प्रेम की भिक्षा घर के बाहर से माँगी जाये तो सफाई देनी पड़ती है।

भरत—मैं कुछ नहीं जानता। तुम क्या मजाक कर रही हो ?

माया—हाँ !

भरत—बुरा कर रही हो ! (सीने पर हाथ रख कर) इससे मेरा दिल दुखता है !

माया—तो लाल को तुमने भिखारी क्यों कहा ? (रोते हुए) इससे मेरा दिल दुखता है !

भरत—मैंने तो उसे भिखारी नहीं कहा !

माया—फिर क्या कहा ?

भरत—मैंने तो उसे कुछ नहीं कहा !

माया—कहा, जरूर कहा !

भरत—नहीं कहा माया ! गृह लक्ष्मी ! अर्द्धांगी ! अन्नपूर्णा ! गृहदेवी ! सहचरी ! (कुछ रुक कर) संगिनी ! रंगिनी ! भंगिनी ! दंगिनी ! नहीं कहा।

माया—कहा, जरूर कहा ! भरत ! स्वामी ! नाथ ! देवता ! प्रियतम ! सहचर ! वनचर ! (कुछ रुक कर) संगी ! रंगी ! भंगी ! दंगी ! कहा !

भरत—(पैंट के बाहर शर्ट निकाल कर उसके दामन से आँसू पोंछते हुए) माया ! लालसिंह बचपन में मेरा एक ही दोस्त था ! आज उस बात को बीस साल हो गये। मगर हर महीने एक चिट्ठी लिख कर वह मुझे याद दिलाता रहा है, कि वह मेरा बचपन का दोस्त है। यह जरूर है, कि अब में उसे देखूँ तो पहचानूँ भी नहीं ! मगर फिर भी वह मेरा बचपन का दोस्त है। अगर उसने तुम से प्रेम नहीं किया होता, तो वह जरूर आकर यहाँ ठहर सकता था !

माया—(जो पर्स में बड़ी बेचैनी से कुछ ढूँढ़ रही है) तो क्या जो मुझ से प्रेम करे, वह इस घर में नहीं ठहर सकता ? मुझसे प्रेम करने वालों से तुम्हें इतनी नफ़रत है ? (पर्स में अधीरता से खोजते हुए) यह तो मेरा रूमाल नहीं मिल रहा है, नहीं तो मैं इतना रोती, इतना रोती कि तुम्हें लाल को यहाँ ठहराना पड़ता !

भरत मगर माया, तुम्हीं सोचो ! क्या यह ठीक है ? हमारे विवाहित होने के बाद तुम्हारा प्रेमी यहाँ आकर ठहरे ?

माया—तो उसमें क्या हुआ ? तुम भी तो यहीं हो ! अगर वह अब भी मुझे प्रेम करने की कोशिश करे, तो तुम उसे रोकना !

भरत—नहीं, नही, वह यहाँ नहीं ठहर सकता ! कभी नहीं ठहर सकता !

[एक साथ बाँयी विंग में से एक मोटे आदमी का कुर्ता, धोती पहने प्रवेश। कुर्ता रेशम का है, धोती भी मर्सिराइज्ड है। मूँछ-दाढ़ी सफ़ाचट। उसके पीछे उसका नौकर सामान लिये है ! नौकर बनियान और जाँघिया पहने है—बहुत लम्बा, बहुत काला, बहुत लम्बी मूँछों वाला। यह ३०-३५ वर्ष का मोटा आदमी ही लालसिंह है।]

लाल—(नौकर से) सामान रखदे यहीं और कुछ सुस्ता ले ! (माया की ओर देख कर) अरे माया, बड़ी दुबली हो गयीं तुम ! (नौकर इस बीच सामान रख कर सोफे पर ही लेट जाता है और अख़बारों के एक ढेर में से अख़बार निकाल कर हवा करने लगता है। लाल झपट कर भरत के पास जा कर एक हाथ कस कर उसकी पीठ पर मारता है) क्यों बे भरत ! भूल गया बे अपने दोस्त लाल को ! ऐसा क्या अकड़ के खड़ा है ?

भरत—(हँसने की चेष्टा करते हुए) अरे नहीं, नहीं !……मैं बिलकुल नहीं अकड़ा हूँ, (झुक कर दोनों हाथ जोड़ कर नमस्कार करते हुए) बिलकुल नहीं अकड़ा हूँ !

लाल—(दूसरा हाथ भरत के दूसरे कन्धे पर मारते हुए) तो फिर बात कर ना कुछ ! आज बीस साल बाद मिले हैं !

भरत—हाँ, मैं बात कर रहा हूँ ! (कुछ सोच कर) आज बीस साल बाद मिले हैं।

लाल—(माया की ओर देख कर) तेरा भाग्य है माया, जो तेरी शादी भरत से हुई ! मैं हमेशा सोचा करता था कि मेरी माया की शादी मालूम नहीं किससे हो ! भरत मेरा प्यारा दोस्त है माया ! उसके हाथों तुझे सौंप कर अब मैं मर सकता हूँ !

नौकर—(सोफे पर से एक दम उठ कर) मालिक ! मरने का इरादा कर लिया है क्या ? (एक दम रोते-रोते लाल के पैरों पर गिर कर) मत मरो मालिक, मत मरो !

लाल—(उसे उठाते हुए) नहीं मरूँगा ! तेरे जैसे नौकर के होते कोई मर सकता है चिमटू ! मरते तो वे लोग हैं, कि जिनके नौकर बार-बार भाग जाते है !

नौकर—अच्छा तो मालिक वायदा ? मैं फिर आराम पूरा कर लूं ?

(जाकर फिर पाँव लम्बे कर सोफे पर लेट जाता है)

लाल—(दूसरे सोफे पर बैठते हुए) बैठ ना माया ! यह भरत तुझसे काम तो बहुत नहीं करवाता है ?

माया—करवाता है ! बहुत काम करवाता है !

लाल—तो अब इसे मजे मालूम होंगे ! इसकी दवा तो मेरे पास है ! क्यों बे भरतू ! स्कूल में तो तू कहा करता था कि मैं अपनी 'वाइफ' को बिलकुल काम नहीं करने दूंगा ?

[माया, जिसे एक दम अपने ब्लाउज़ में खुँसा रूमाल मिल गया है, उसे निकाल कर आँखों से लगाती है और रोने लगती है]

लाल—क्या हुआ माया, माई सोल अर्थात मेरी आत्मा ?

माया—मुझे रूमाल मिल गया ! अगर इतनी देर से मैं रोयी नहीं, तो इसकी यही वजह थी कि मेरा रूमाल खो गया था। मेरा रूमाल छीन लो लाल, नहीं तो मैं रोती ही रहूँगी ! (बेहोश होकर गिर पड़ती है)

लाल—माया, बेहोश मत हो ! मुझे बताओ, मुझे बताओ तुम्हें क्या चाहिए ?

माया—(एक पल आँख खोल कर चिल्ला कर) चाय ! (फिर आँख बन्द कर लेती है)

लाल—अरे वाह यार भरतू, तू भरतू का भरतू ही रहा ! देख क्या रहा है ऐसा चुप हो कर ? (चिल्ला कर) अबे, यह मेरी प्रिया है तो तेरी भी तो पत्नी है !

भरत—तो क्या करूँ लाल ? क्या करूँ, तू ही बता ?

लाल—अबे करेगा क्या ! एक दिन तेरी पत्नी बेहोश हो गयी, तो तू चाय भी नहीं बना सकता ?

भरत—एक दिन क्यों, मैं तो रोज ही बनाता हूँ।

लाल—तो फिर किस बात का इन्तज़ार कर रहा है ? (भरत जाने लगता है तो लाल आवाज़ देता है) भरत !

भरत—हाँ, मेरे बचपन के दोस्त !

लाल—पापड़ हैं ?

भरत—हैं !

लाल—तल लेना। (रुक कर) आलू हैं ?

भरत—हैं।

लाल—आलू की पकौड़ियां बना लेना।

भरत—अच्छा मेरे बचपन के दोस्त ! जिसके सामने मैं कभी नहीं अकड़ूंगा, जिससे मैं हमेशा बात करूँगा। (जाता है)

माया—(आँख खोल कर) लाल !

लाल—माया !

माया—मुझे ताजी हवा की ज़रूरत है लाल ! बिना उसके चाय से भी मुझे कोई फ़ायदा नहीं होगा !

लाल—(सहारा दे कर उसे उठाते हुए) तो चलो, ज़रा बाग़ में टहल आयें, जब तक चाय आये !

माया—चलो लाल ! मगर याद रखना, अब तुम्हें मुझसे प्रेम नहीं करना है ! वायदा याद है ? मैं हिन्दू नारी हूँ ! धर्म नहीं छोड़ सकती !

लाल—हाँ, हाँ, माया, अब हम प्रेम करेंगे, मगर भाई बहिन की तरह !

[दोनों हाथ में हाथ डाल कर चले जाते हैं। स्टेज पर सिर्फ लाल का नौकर रह गया है, सोफे पर लेटा खुर्राटे ले रहा है।]

गद्य-गीत—

आज भी

—श्री उमानंदन चतुर्वेदी—

मैं आज भी वही हूँ जो तुमने कल देखा और कल भी वही था जो परसों। फिर भी मेरी एकरसता में तुम्हारे सभी रंग कितनी सफलतापूर्वक बनते और मिटते चलते हैं। अनादि काल से बैठा हूँ मैं, अपलक, आत्म विस्मृत, तुम्हारा चिर परिचित, प्रेमी, पुजारी ! पर तुम शास्वत हो मेरे चिर-सुन्दर, आनन्दमय !

मेरे इस 'पलक-पल्लव-प्रच्छाय' मंच पर कभी चाँद की रेशमी विभा में बिछलते से, कभी अरुणोदय की कुंकुम-रंजित हेम फुहारों में भींगते हुए, तो कभी क्षणिक यौवन सी रागमयी सन्ध्या के मदिर चुम्बनों से अनुप्राणित तुम्हारे असंख्य चित्र तथा तुम्हारी सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की अनेकानेक भाव-भंगियाँ युगों से खेलती चली आ रही हैं। किन्तु, क्या मैं बदला या तुम बदले ?

मेरे जीवन की एकरसता में तुम्हीं तो रमते आ रहे हो मेरे नित्य-नवीन ! तभी तो तुमने मुझे अमर कर दिया और जीवन को नितनूतन।

विश्व मेरी भिन्न-भिन्न मुद्राओं का जिज्ञासु की भाँति अध्ययन करता रहा है। वह मुझे देखकर बोल उठा, सुन्दर ! पर वह तो मैं नहीं. तुम हो मेरे सुन्दरतम !

मैं तो आज भी वही प्याला लिये बैठा हूँ जो कल था और आज भी वही प्यास है, उतनी ही, जिसने प्रथम प्याले का चुम्बन किया; फिर दुनिया चाहे लाल कहे, चाहे अंगूरी, चाहे बैंजनी ! पर मेरे लालायित अधर और आकुल कंठ की सधी हुई व्यापक एकरसता में तुम एक अमर पेय हो, नित्य नई बहार लिये, नित्य नया रंग !

रामदास नीमा कृत

ऊषा-अनिरुद्ध कथा

श्री हरिहर निवास द्विवेदी

हिन्दी में प्रेम-कथाओं का प्रारम्भ सूफी कवियों ने नहीं किया, प्रेम-कथाओं को आध्यात्मिक रूप देने की कल्पना करने का श्रेय भी मंझन, कुतबन, जायसी आदि सूफी सन्तों को नहीं है, जैसा कि हिन्दी-साहित्य में प्रवाद चल पड़ा है। प्रेम-कथाओं की परम्परा संस्कृत के विशाल वाङ्मय में तो मिलती ही है, उनका उपयोग साम्प्रदायिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन के लिए करने का प्रयास भी भारतवर्ष में बहुत पुराना है। जैन लेखकों ने ईसवी सन की प्रारम्भिक शताब्दियों में ही यह अनुभव कर लिया था कि जनरुचि रस-कथाओं की ओर सरलता से आकृष्ट होती है और विशुद्ध धर्म-कथाएँ लोकप्रिय नहीं होतीं। अतएव संकल्प पूर्वक उनके द्वारा साम्प्रदायिक सिद्धान्त काम-कथाओं अथवा रस-कथाओं की चाशनी में पाग कर प्रस्तुत किये जाने लगे। यह परम्परा अपभ्रंश के माध्यम से हिन्दी को भी मिली।

हिन्दू-साहित्य में भी महाकाव्यों एवं पुराणों में इस प्रकार की अनेक कथाओं का संग्रह हिन्दी को दाय के रूप में मिला। उनके पात्र राग-द्वेष से झगड़ते हुए–अर्थ और काम से संघर्ष करते हुए धर्म और मोक्ष की ओर प्रवृत्त होते हैं। देव-दानव योनियाँ भी मानव मनोभावों से प्रभावित होकर लौकिक व्यवहार करती हैं। उनके वर्णन द्वारा जीवन के सत्य को हमारे विचारकों ने समाज के सम्मुख रखा है। इस विषय का विवेचन हम अन्यत्र कर चुके हैं। यहाँ तो उस प्रेम-कथा की परम्परा के एक नवीन ग्रन्थ का परिचय देना मात्र अभीष्ट है जिसकी रचना चतुर्भुजदास की काम-कथा, मधुमालती की परम्परा में वि० सं० १७४१ (ई० स० १६८४) में मध्यदेश की भाषा में रामदास नीमा ने की। हिन्दी की पौराणिक प्रेम-कथाओं में इसका विशिष्ट स्थान है।

ऊषा-अनिरुद्ध की कथा का मूल बहुत प्राचीन है। हिन्दी में अन्य कथाओं में इसके उल्लेख बहुत मिलते हैं, परन्तु उसके विषय में प्रबन्ध काव्य हिन्दी में ईसवी सत्रहवीं शताब्दी के ही ज्ञात हुए हैं। काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा हस्त लिखित हिन्दी पुस्तकों का जो विवरण सं० १६८० में प्रकाशित हुआ है उसमें रामदास, लालदास, भारतशाह और कुंजदास कृत ऊपा-अनिरुद्ध की कथा पर ग्रन्थों के उल्लेख

हैं। उस विवरण में इनमें से केवल दो का निर्माण काल दिया हुआ है। भारतशाह कृत ऊषा-अनिरुद्ध की कथा का रचना काल वि० सं० १७९७ तथा कुंजदास कृत ऊषा-चरित्र का निर्माण सं० १८३१ है। रामदास तथा लालदास कृत ऊषा-अनिरुद्ध की कथा तथा ऊषा कथा के रचना काल नहीं दिये गये। ज्ञात यह होता है कि लालदास ने अपनी पुस्तक रामदास के भी पूर्व लिखी, क्योंकि उसका उल्लेख रामदास ने अपने ग्रन्थ में किया है। वह लिखता है--

लालदास लालच कथ्यो सोधि भागवत सार।
रामदास की बुद्धि लघु पण्डित बिनु आधार॥

लालदास ने किस प्रकार की कथा कही थी यह हमें ज्ञात नहीं, क्योंकि लालदास कृत ऊषा कथा हमें मिल नहीं सकी और आज भी हिन्दी में हस्तलिखित पुस्तकों की प्रतिलिपि या फोटो प्राप्त करना सरल नहीं है। हमें तो ग्वालियर में रामदास नीमा कृत ऊषा-अनिरुद्ध की कथा की प्रति ही प्राप्त हो सकी है। लालच से तात्पर्य रामदास का लालचदास से हो सकता है जिसने वि० सं० १५८७ (ई० सन १५३०) में "भागवत दशम स्कन्ध भाषा" लिखा था। लालचदास राय बरेली के थे। उनने अपने ग्रन्थ के विषय में लिखा है—

पन्द्रह सौ सत्तासी जहिया। समय विलम्बित बरनौ तहिया॥
मास असाढ़ कथा अनुसारी। हरिवासर रजनी उजियारी॥
सकल सन्त कहं नावों माथा। बलि-बलि जैहों जादव नाथा॥
राय बरेली बरनि अवासा। लालच राम नाम कै आसा॥

सभा के उक्त खोज विवरण में रामदास कृत ऊषा-अनिरुद्ध कथा की विक्रम सं० १८६१, १८४३ तथा १९५६ में की गयीं प्रतिलिपियों का उल्लेख है। हमें जो प्रति प्राप्त हुई है उसका लिपि काल संवत १८५९ है। अतएंव यह कहा जा सकत है कि इसका प्रचार इसके रचना काल वि० सं० १७४१ से १९५६ तक तो रहा ही है। ईसवी बीसवीं शताब्दी में भारतीय साहित्य और परम्पराओं का विनाश ही हुआ है। मध्यकालीन हिन्दी-साहित्य का विनाश भी इसी शताब्दी में हुआ। हिन्दी-साहित्य के विविध इतिहासों में जिन ग्रन्थों का उल्लेख हो सका वे महासमुद्र के एक अंश मात्र हैं।

दो शताब्दियों तक जनता में प्रचलित रह सकने की सामर्थ्य के अतिरिक्त भी रामदास नीमा की ऊषा-अनिरुद्ध की कथा का हिन्दी-भाषा और साहित्य के इतिहास में अनेक कारणों से महत्त्वपूर्ण स्थान है। थेघनाघ के ईसवी सन १५०० में ग्वालियर में किये गये गीता के पद्यानुवाद की भाषा—मध्यदेश की भाषा की परम्परा—चतुर्भुजदास,

केशवदास, आगरे के लालदास तथा बनारसीदास आदि के हाथों सँवारी जाकर रामदास नीमा की इस ऊषा-अनिरुद्ध की कथा में भी दिखाई दी। कृष्ण-भक्ति की जो धारा समस्त भारत में मध्यकाल में व्याप्त हुई उसका रूप इस ग्रन्थ में मिलता है और यदुनाथ कृष्ण इसमें नारायण विष्णु के पूर्ण प्रतीक हैं। भारतीय प्रेम-कथाओं का पौराणिक अथवा दैवी रूप भी इसमें दिखाई दिया। चतुर्भुजदास ने मधुमालती में अपनी काम-कथा को लौकिक रूप दिया है। इसके मनोहर और मालती कामदेव के अवतार अवश्य हैं, पर हैं वे इसी लोक के प्राणी। रामदास नीमा के ऊषा और अनिरुद्ध यद्यपि प्रेम-व्यापार इसी पार्थिव जगत के प्राणी के रूप में करते हैं. परन्तु मूलत: वे देवयोनि के हैं। उनकी कथा 'हरि रस अमृत' का पान कराती है। रामदास ने लिखा है—

दोहरा

ऊषा अनुरध की कथा
सुनै चतुर चितु लाई।
हरि रस अमृत तैं मधुर
पीवत न संत अधाई॥

चौपही

जो फल जमुना जू के न्हायै। तीरथ सकल परस घर आयै॥
जो फल सप्त पुरी के दरसै। जो फल गया नरवदा परसै॥
ऊषा कथा सुनै परवाना। बाढै धर्म पुत्र कल्याना॥
ऊषा कथा सुनत सुखहोई। व्यास कहै सुष मुनि सौं सोई॥
आदि कथा मुनि नारद गाई। राज हैं प्रति सुखदेव सुनाई॥
सुनि राजा आनंदित भयेऊ। श्राप वियोग सुनत ही गयेऊ॥
जो यह कथा सुनत चितुलाई। बाढ़ै धर्म पाप छै जाई॥
पुत्र की इच्छा करै जो कोई। ताकै पुत्र जु निश्चय होई॥
जो धन की मन इच्छा रावै। मिलै सदा धन सुष मुनि भावै॥
जो विद्या की इच्छा करै। विद्या हेत चित्त में धरै॥
जो पुनि मोछहिं चाहै लोई। वह पुनि जाय बैकुण्ठहिं सोई॥

ग्रन्थ के प्रारम्भ में रामदास ने अपना परिचय भी दिया है। मालवा देश में सिरोंज नामक शहर के पास मालिनी ग्राम में उसका जन्म हुआ था। उसके पिता मनोहरदास थे और माता का नाम वीरावती था। ये किसी चतुरभुंजराय के आश्रय में आए। यह चतुर्भुजराय किस नगर का सामन्त या राजा था यह उल्लेख लेखक ने

नहीं किया । उसके नगर की शाला में धर्मकथाओं का पाठ होता था और उसे सुनाने के लिए ही रामदास ने यह ऊषा अनिरुद्ध की कथा लिखी थी । ग्रन्थ एवं ग्रन्थ के सम्बन्ध में ये सब ज्ञातव्य बातें ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही दी गयी हैं, उन्हें उद्धृत करना उपयोगी होगा—

श्री गणेशाय नमः ।। श्री सरस्वतीयोभे नमाः ।।
अथ ऊषा अनुरध की कथा लिषते ।।

चौपही

श्री गनपति दास चरन चित लाऊँ । करहु कृपा हरि के गुन गाऊँ ।।
सुमिरौं गुरु गोविन्द मुरारी । सुमिरौं सकल भक्त सुषकारी ।।
सुमिरौं आदि सरसुती माता । सुमिरौं श्री गणपति बुधिदाता ।।
विवि. कर जोरि चरन चितलाऊँ । करहु कृपा हरि के गुन गाऊँ ।।
सुमिरौं मात पिता बड़ भाई । सुमिरौं श्री रघुपति के पाई ।।
संकर सुमिर दंडवत करौं । अरु मैं कृस्न चरन चित धरौं ।।

दोहरा

आठ साठ तीरथ सुमिरि देव कोरि तेतीस ।
रासदास कृपा करि बुधि देऊ जगदीस ।।

चौपही

संवतु सत्रह सै इकताला । वाचहि धर्म नग्र की साला ।।
तहाँ चतुरभुज राइ विराजा । प्रैम सहित तिहुपुर कौ राजा ।।
ताकै धर्म कथा अधिकाई । दान जुद्ध की बहुत बड़ाई ।।
षट दरसन पूजा सुषभानै । गौ विप्र की सेवा जानै ।।
नारद उचित व्यास कहि दीन्हा । दस्मस्कंध भागवत कीन्हा ।।
व्यास पुरान कहत सब साषी । रिषि सुषदेव राइ सौ भाषी ।।

दोहरा

चितु दै सुनियै निर्पत जू धंनि परीछत राइ ।
व्यास हृदय सीतल भयौ, हरि रस पियौ अघाई ।।

चौपही

अमर कोष पिंगल नहिं देषा । पंच संधि तहँ सार विसेषा ।।
रामदास सत संगति पाई । भाषा करि हरि कीरत गाई ।।
परम सयानै बूझत बाता । तुम सौं परसन भये विधाता ।।
आदि देस तुम्हरौ कह होई । सो मोसों कहिए निज सोई ।।

नेमा कहतु राम कौ दासा। देसु मालवा अति सुख बासा ॥
सहर सिरौंज निकट सो ठाऊँ। जनम भूमि मालिनी गाऊँ ॥
पिता मनोहरदास विधाता। वीरावति नाम दियौ मुहि माता ॥
रामदास सुतनि कौ आही। क्रिस्न नाम की भक्ति है ताही ॥

दोहरा

लालदास लालच कथ्यो सोधि भागवत सार।
रामदास की बुद्धि लघु पंडित बिनु आधार ॥
नृप पूछै सुषदेव कों, मुनि सनाथ करि मोहि।
ऊवा अनुारध हरन की कथा सुनाऊ मोहि ॥

चौपही

कैसे चित्रा हरि लै गई। कैसै सुरति कुंवर कौ भई ॥
कौन पुन्य वांनांसु(र) कीयौ। घर बैठे हरि दरसन दीयौ ॥

रामदास ने अपने ग्रन्थ को दस अध्यायों में विभाजित किया है—१. हिरण्य कश्यप बध, २. समुद्र मंथन, ३. बलि बन्धन, ४. रुक्मिणी विवाह, ५. प्रद्युम्न विवाह, ६. ऊषा पार्वती वर, ७. द्वारिका शोभा वर्णन, ८. दशावतार वर्णन, ९. वाणासुर बध वर्णन तथा ११. ऊषा विवाह वर्णन। कथा का आधार श्रीभद् भागवत का दशम स्कंध बनाया गया है, जैसा कि प्रथम अध्याय के अन्त की निम्न पंक्तियों से प्रकट है—

षंम्ह फारि प्रभ प्रगटीयौ
मारे असुर प्रचारि।
सकलदेव अस्तुति करै
जन रामदास बलिहार ॥

येते श्री हरि चरित्रे दस्मस्कन्घे श्री भागवते महापुराने हिरनाकुस बध वर्णनो नाँम प्रथमोध्याय ॥१॥

लेखक का मूल प्रेरक तत्त्व भक्ति है। ग्रन्थ में एकाधिक बार निम्न पंक्तियाँ दुहराई गयी हैं—

सीस सोई जो हरि कौ नावै। रसना सोई जो हरि गुन गावै ॥
श्रवन भले जो सुनहिं पुराना। कर सोई सुफल देई दुज दाना ॥
नैन सोई निरखै हरि सोभा। जैसे भंवर कमल रस लोभा ॥
चरन सोई जो तीरथ जाई। अरु हरि आगे नृत कराई ॥

रामदास नीमा की कवित्त्व की दृष्टि से तुलसी-केशव-सूर से तुलना करना व्यर्थ है। वे उसे कोटि के नही हैं, परन्तु फिर भी उनकी शैली अत्यन्त रोचक और

सरल है, उनके शब्दों में शक्ति है और अनेक स्थल पर उनके वर्णन अत्यन्त हृदय ग्राही तथा चमत्कारपूर्ण हैं। ऊषा का रूप वर्णन करते हुए कवि लिखता है—

ऊषा अंग अंग छबि बाढ़ी। मानौ रूप उदधि मथि काढ़ी॥
उषा उज्यारी चन्द्र समाना। सीस फूल सिर दमकत भाना॥
वेनी सरस फुलेल सम्हारी। मनौ भुजंगिनि बैठी कारी॥
कनक फूल करनौटी न्यारी। ससि मंडल सोभा अधिकारी॥
मोती माँग जु गुहे सुढारा। मानौ गंग धँसी द्वै धारा॥
खुटिला कान तरौना राजै। कंठ श्री उरहार बिराजै॥
नखसिख रूप कहौ नहिं जाई। मनौ गयंद चलौ अधिकाई॥
जल सुत अधिक नासिका राजै। मनौ असुर गुरु की छबि छाजै॥
चुभके चीर मोति बहुलाये। कमल निकट अलि सुत सो आये॥
सारी सुरंग कुसुम रंग छीनी। कनक जराब सुगंधनि भीनी॥
जरद कसब कौ लहंगा राजै। नील कंचुकी बहुत बिराजै॥
स्याम पाट तायत छबि छाये। मानौ भवर कमल ढ़िग आये॥
मँहदी हाथनि सखिनि रचाई। मानौ अरुन कमल छबि छाई॥
काजर दियौ द्रगनि भरि सोई। चितबत चौप मदन बस होई॥

दोहरा

नखसिख आभूषन सजे अंगहिं अंग सुधारि।
मंडप तन ठाढ़ी भई दुलहिन राजकुमारि॥

रामदास नीमा ने अन्य दो चार स्थानों पर रूप वर्णन किया है, परन्तु उनमें पुनरुक्तियाँ बहुधा मिलती हैं। ग्रन्थ में उद्यान, सरोवर, हाट-बाजार आदि के बड़े सुन्दर और सजीव वर्णन दिये गये हैं। युद्ध के भी दो चार स्थानों पर वर्णन हैं। ये बड़े सजीव हैं। एक स्थल पर कवि ने लिखा है—

तब ससिपाल काल सम धायो। इतै बीर बलभद्र रिसायौ॥
मारु मारु करि अस्त्र संभारा। उठै लोह अगनी की झारा॥
बरसत बान दुहू विधि ऐसे। मानो मेघ प्रलय के जैसे॥
रुंड मुंड कटि परहिं अपारा। बाढ़ी नदी रुधिर की धारा॥
श्रोनित की सरिता अति बाढ़ी। गावहिं योगिनि मंगल ठाढ़ी॥
मैगल परे सुंडि धर टूटे। श्रोनित मनो भभूका छूटे॥
नाचत भैरौं और बेताला। मंगल करहिं गीध की माला॥
भूत प्रेत खप्पर लै धावहिं। ....

ऐसो जूझ भयो अधिकाई। ताकी उपमा कही न जाई ॥
चूरैलिनि घर बजत बधाई। ....
बान अनेक चहूँ दिसि धाये। हल मूसल लै हलधर आये ॥
हर सों खेंचि मूसर सौं मारै। गूदा मास यकै करि डारै ॥
भाजे जरासिन्ध महिपाला। लाजि छांडि भाजे भूपाला ॥
हाथी ऊँटनि पारि प्रवाना। बाढ़ी नदी रुधिर असमाना ॥
करस सिखर संख गजदंता। छुरी कटारी मीन अनंता ॥
सुंडि मगर अनलेखन आये। कुंडिल चक्र भौंर अधिकाये ॥
फैंटा पाग फैन मनो आही। चंवर फैन चहु दिसि उतराहीं ॥

रामदास नीमा की कथा बहुत द्रुत गति से चलतो है। दस अध्यायों में हिरण्यकश्यप से ऊषा-अनिरुद्ध विवाह तक की कथा उसे कहना थी। परन्तु उस संक्षेप में भी रस-भंग नहीं होने पाता। उदाहरण के लिए यहाँ रुक्मिणी हरण की कथा उद्धृत की जाती है—

दोहरा

सखी सहस दस संग लै मंडफ पहुंची जाय।
रुकमिनि आप सरूप निधि सोभा बरनि न जाय ॥

चौपही

परिकमाँ करि फूल चढ़ाये। सखिनि ब्याह विधि मंगल गाये ॥
एक सखी ससिपालहिं गावै। भौंह चढाई बहुत दुख पावै ॥
पूजि गौरि तब जोरे हाथा। देवी वर दै श्री जदुनाथा ॥
एक चरन रुकिमिनि भै ठाढ़ी। सोभा सिन्धु महाछवि बाढ़ी ॥
मैं तव सेवा करी भवानी। आजु मिलावहु सारंगपानी ॥
बेगि गौरि बरु दीजै मोही। नातरु सीस चढ़ावति तोही ॥
तब देवी बोली बहसाई। अबहीं मिलि हैं श्री जदुराई ॥
जरासिन्धु नृप मन पछतैहै। पुनि ससिपाल उलटि घर जैहै ॥
देवी हरषि दिये तब पाना। अबहीं मिलिहैं श्री भगवाना ॥
तब देवी रुकमिनि पालागी। मैं तुव चरनन भई सभागी ॥
पूजि गौरि तब बाहर आई। मनहु कनक की बेलि सुहाई ॥
मंडप द्वार सखिनि संग ठाढ़ी। सोभासिंधु महा छवि बाढ़ी ॥
दुरगा मठ घेरैं बहु दाने। रुकमिनि रूप देख मुरझाने ॥
इतवित चितवत नैन निहारी। अजहूं न आये गिरवरधारी ॥

ऊँचे चढ़ि देखत अकुलानी। रथ की धजा आई फहरानी॥
देखी धजा भयौ सुख भारी। अवधि वचन आये वनवारी॥
एक लाख रथ हरि रथ संगा। वरन वरन के रंग सुरंगा॥
कृपा नाथ तहँ पहुंचे आई। लई रुकमिनि रथहिं चढ़ाई॥
लै चले स्याम सखी सब संगा। महा रूप रस बाढ़े रंगा॥
नैन बैन सुख कह्यो न जाई। घूंघट पट उपमा छवि छाई॥
कनक बेलि रतननि खचि काढ़ीं। अंग अंग भूषन छबि बाढ़ी॥
देखि रूप वृजनाथ बिहारी। यह सीता सतवंती नारी॥
देखि रुकमिनी हंसे कन्हाई। प्रीति तुम्हारी पहुंचे आई॥
तब सो बहसि कहौ श्री बाला। दयासिन्ध प्रभु दीन दयाला॥

दोहरा

चरनि लागि रुकमिनि रही प्रभुजू लई उठाइ॥
परम भावती होउगी कहे बचन जदुराइ॥

इन पंक्तियों में कथा का प्रवाह बहुत सपाटे से चला है, परन्तु लेखक ने यत्र-तत्र चमत्कार दिखाया है। रुक्मिणी कृष्ण के लिए उत्सुक है, परन्तु उसकी एक सखी शिशुपाल से उसके विवाह के गीत गा उठती है; रुक्मिणी भौंहें चढ़ा कर क्रुद्ध होती है (दुख शब्द का प्रयोग क्रोध के अर्थ में है); रुक्मिणी का रूप देख कर दानव-सैनिक मूर्छित होते हैं; "इतबित चितवत नैन निहारी" "ऊँचे चढ़ि देखत अकुलानी" में उत्सुकता का सजीव वर्णन किया गया है।

वर्णन संक्षिप्त भले ही हों, परन्तु कभी-कभी अत्यन्त सजीव चित्र आँखों के सामने आ जाता है। नृत्य का वर्णन करते हुए एक स्थल पर लिखा है—

निर्तत नारि महा रस रंगा। भौंरी लेत न सूझै अंगा॥

थोड़े से शब्दों में अत्यन्त गतिशील नृत्य का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया गया है।

कहीं-कहीं दोहों में अत्यन्त सुन्दर उक्तियाँ आगयी हैं। एक स्थान पर कवि लिखता है—

खर मैगल सों बल करै, सिंघ समान कि स्यार।
बादर चाटै भों परौ, लूलौ चढ़े पहार॥

रामदास नीमा ने अपने ग्रन्थ की रचना करने का स्थान नहीं लिखा है। परन्तु उसकी भाषा निर्विवाद रूप से कहती है कि मालवे के इस नीमा ने मध्यदेश की बोली, अथवा आधुनिक भाषा शास्त्रियों के मत के अनुसार बुन्देलखण्डी में रचना की है। इसके द्वारा वर्णित विवाहों की रीतियाँ और अनेक शब्द तथा वाक्य हमें दतिया

और झाँसी का स्मरण दिला देते हैं। बाल्यकाल में अपने ग्राम-समाज में जिन शब्दों को सुनते और व्यवहार करते थे (हमारा ग्राम झाँसी से १६ मील पश्चिम में है), वही शब्दावली और वाक्य-विन्यास इस मालवी नीमा की रचना में मिलता है। देवपूजा में हवन के लिए प्रयुक्त अग्नि को "वैसांदर" कहा जाता है। ईसवी सन् १६८४ में नीमा रामदास ने लिखा है—"मानौ घृत बैसान्दर परौ।" आज भी उपाय के लिए 'बिदी' ठेठ बुन्देलखण्ड में प्रयुक्त होता है, नीमा लिखता है "दई धजा अरु बिदी बताई।" स्यार की बोली को 'फिकरना' आज भी दतिया-झाँसी में प्रयुक्त होता है, रामदास ने भी लिखा है "फिकरत स्यार भूत बेताला।" 'रमतूरा' आज भी बुन्देलखंड में बजता है, और नीमा भी लिखता है "संख सबद रमतूरा बाजा।"

रामदास नीमा जैसे न जाने कितने हिन्दी के निर्माण करने वालों के प्रयास आज उपेक्षित हैं। मध्यदेश के साहित्य का सम्यक अध्ययन न करने के कारण ही आज दोहा-चौपाइयों में रचना करने की प्रथा पूर्वी प्रदेशों की बतलाई जाती है, समस्त मध्यदेश की भाषा ब्रजभाषा कही जाती है और प्रेमाख्यानों के जनक सूफी कवि मंझन, कुतबन, जायसी आदि बतलाए जाते हैं। आज हिन्दी के नाम पर बहुत कुछ किया जा रहा है, परन्तु अभी भी यह संकल्प किसी सभा, सम्मेलन अथवा शासन ने नहीं किया कि १५ वीं शताब्दी से १९ वीं शताब्दी तक के मध्यदेश के ग्रंथों का अध्ययन कराकर हिन्दी भाषा और साहित्य के इतिहास में फैली हुई भ्रामक धारणाओं को ठीक करलें। विश्वविद्यालय इस दिशा में बहुत कुछ कर सकते हैं। आज जो अत्यन्त सस्ती पी एच० डी० और डी० लिट्० की उपाधियाँ बँट रही है, उनके इच्छुक विद्यार्थियों को एक-एक शताब्दी के दो दो चार चार हस्तलिखित ग्रंथ देकर उनका अध्ययन कराया जाय तो विद्यार्थियों को भी कुछ वास्तविक ज्ञान हो सके और हिन्दी भाषा तथा साहित्य के इतिहास का नवनिर्माण भी सही आधारों पर हो जाय।

युगों पुराने सम्बन्ध

श्री लेव उस्पेंस्की

रूसी लोग भारत से बहुत समय से परिचित हैं। यह सच है कि बहुत से लोग यह नहीं जानते कि हमारी ये दो जातियाँ जिन सम्बन्ध सूत्रों में बँधी हैं वे कितने प्रचीन और दृढ़ हैं। यह विषय विचार करने योग्य है।

एक हज़ार वर्ष पहले साँवले रंग के साहसी भारतीय सौदागर स्वतंत्रता-प्रेमी स्लाव जनतंत्र के वृहत्तर नोवोगोरोद के बाज़ारों में उत्तरी देशों की सुन्दरियों के प्रशंसा भरे नेत्रों के सामने पूर्वी देशों के रंग-बिरंगे कपड़ों के थान खोलते थे। पाटदार वोल्गा नदी पर स्थित इटिल नाम ख़ाज़ार शहर से होकर रूसी माल—शहद, मोम, काला समूर और बाल्टिक समुद्र तट की स्वच्छ तृणमणि—जलमार्ग के द्वारा कैस्पियन तक आता था और वहां से शान्तिपूर्ण व्यापार मार्गों के द्वारा हिमालय के पार भारत जाता था।

उस समय से रूसी लोकगीतों, कहानियों और कथाओं में उस प्रकाशमय सुदूर देश से सम्बन्धित, विलक्षण ख़ज़ानों और श्यामवर्ण के लोगों वाले देश "समृद्ध भारत" से सम्बन्धित चित्र मिलते हैं।

चंगेज़खां की फौजों ने उस समय की दुनियाँ को दो हिस्सों में बाँट दिया और उत्तर तथा दक्षिण के शान्तिपूर्ण सम्बन्धों को भंग कर दिया। पर रूसी भारत को नहीं भूले, भारत के साथ अपने सम्बन्धों को दुबारा स्थापित करने का दृढ़ निश्चय उनमें बना रहा।

१५वीं शताब्दी में, उस समय से तीस वर्ष पहले जब कि पुर्तगाली गीधों ने पहली बार मालाबार तट की स्वर्णिम बालू पर अपने पंजे जमाये, एक रूसी भारत आया। वह यहां थल-मार्ग और समुद्र-मार्ग के द्वारा पहुँचा था, उसका नाम आफ़ानासी निकितिन था, वह सौदागर और यात्री था। वह बहुत बुद्धिमान और दयालु आदमी था। वह कई बरस तक भारतीय बाज़ारों और मन्दिरों में घूमता-फिरता रहा, शहरों और गाँवों में रहा और अपनी पैनी तथा सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि से एक अपरिचित जगत का अध्ययन करता रहा। दंभ या श्रेष्ठता की लेशमात्र भावना के बिना बड़ी श्रद्धा के साथ उसने एक सच्चे मित्र की तरह जो कुछ देखा उस पर ध्यान दिया और उसे लिखता गया। बाद में कई शताब्दियों तक उसकी हिमाच्छादित जन्मभूमि में उसके लेख बार-बार पढ़े गये और उन्होंने दक्षिण के इस गरम देश के प्रति एक

अमिट रुचि पैदा की । वर्ष बीतते गये, दशक गुजरते गये, शताब्दियाँ समाप्त हो गयीं । केवल जनता ही नहीं बल्कि मास्को सरकार भी अपने सुदूर दक्षिणी पड़ोसियों के जीवन में दूरदर्शिता के साथ दिलचस्पी दिखाने लगी । रूसी इतिहास का वह महान मोड़, जिसका सम्बन्ध पीटर प्रथम से है, अभी आरम्भ ही हुआ था, कि सेमयोन मालेन्की का राजदूत-मंडल भारत के लिए रवाना हुआ । शाह औरंगजेब ने 'मास्को-वासियों" का स्वागत किया । पाँच वर्ष तक ये रूसी भारत में रहे और भारत के नीले आकाश की छाया में शान्तिपूर्वक व्यापार करते रहे । अपने देश को वापस जाते समय वे इस मित्रतापूर्ण देश से अपने साथ एक विचित्र उपहार ले गये—एक हाथी, अब से पहले यह पशु उत्तर में कभी नहीं देखा गया था ।

एक बार फिर भारतीय सौदागर रूस में दिखाई दिये । १७ वीं शताब्दी के आरम्भ तक कैस्पियन सागर के तट-स्थित आस्त्रख़ान नगर में भारतीयों की पूरी-पूरी बस्तियां आबाद हो गयी थीं । वोल्गा के रास्ते भारतीय लोग मास्को पहुँचे और वहां से भी आगे चलकर यारोस्लाव्ल तक गये ।

परन्तु ये सब इन दो महान तथा शक्तिशाली जातियों की इक्का-दुक्का तथा बहुत समय के बाद होने वाली मुलाकातें थीं ।

१८ वीं शताब्दी में ये मुलाकातें अधिक जल्दी-जल्दी होने लगीं । पिछले जमाने की तरह इस जमाने में भी बहादुर उत्तरवासी पूर्व के आकर्षक देशों में पहुँचे । फिलिप एफ़ीमोव, आतानासोव-बन्धु तथा राफ़ाएल दोलोबेगोव ने इस दिशा में नये मार्गों का पता लगाया । हमारे विद्वानों के बीच भारतीय भाषाओं तथा उस देश की संस्कृति, कला और साहित्य के प्रति एक गहरी दिलचस्पी पैदा हुई और लगातार बढ़ती गयी ।

उस शताब्दी के अन्त में उस समय के एक प्रख्यात रूसी इतिहासज्ञ कारामज़िन ने "शाकुन्तल" के कुछ दृश्यों का अनुवाद करके हमारे साहित्य को भारतीय साहित्य की अमूल्य निधि से समृद्ध बनाया । कारामजिन ने कालिदास की अमर-कृति में बिखरे हुए उन कविता के मोतियों का प्रशंसापूर्वक उल्लेख किया जो किसी भी प्रकार होमर की कविता से कम नहीं हैं । लगभग उसी समय पुरानी पाण्डुलिपियों के एक भंडार में उन्होंने तीन शताब्दी पहले लिखी गयी आफ़ानासी निकितन की एक रचना ढूँढ़ निकाली—उनकी "तीन समुद्रों के पार यात्रा" । कारामज़िन ने न्यायोचित गर्व के साथ लिखा, "पुर्तगाल, हालैंड या इंगलैंड को जानने से पहले भारतीय लोगों ने रूस के बारे में सुना ।"

अन्ततः, आधुनिक काल में आकर १९ वीं शताब्दी के दौरान में रूसियों को विदेशी आधिपत्य के असह्य बोझ से दबी हुई परिश्रमी तथा स्वतंत्रता-प्रेमी भारतीय जनता के जीवन और उनके सुख-दुःख के बारे में और अधिक जानकारी प्राप्त हुई । हमारे बच्चों ने झुकोव्स्की के प्रतिभायुक्त अनुवाद में जब पहली बार नल और दमयन्ती

के प्रेम की मर्मस्पर्शी तथा बुद्धिमत्तापूर्ण कथा पढ़ी थी उस समय से अब तक सौ वर्ष बीत चुके हैं। ओडेस्सी और इलियड की तरह हम प्राचीन काल की एक सर्वोत्कृष्ट रचना के रूप में महाभारत से भी परिचित हो चुके हैं।

इन सौ वर्षों में वोल्गा और गंगा में बहुत ज्यादा पानी बह चुका है, लेकिन हमारी आंखें आज तक बड़ी उत्सुकता से भारतीय कला के आश्चर्यजनक स्मारकों के सौन्दर्य का—अजन्ता के गुफा-मन्दिरों से लेकर उस सर्वश्रेष्ठ चमत्कार ताजमहल तक के सौन्दर्य का—रसपान करती हैं और हम अपने मन में सोचते हैं—भारतीय स्थापत्य-कला और प्राचीन रूसी स्थापत्य-कला की सर्वश्रेष्ठ रचनाओं में, गारे और चूने की बनी हुई भारतीय इमारतों में कल्पना की उड़ान और मास्को के एक सबसे सुन्दर पुराने गिरजाघर सेन्ट बेसिल के कैथेड्रल की विलक्षण नक्काशी और पच्चीकारी के बीच कोई ऐसी समानता है जिसे हम समझ नहीं पाते।

हम जब ध्यान से संस्कृत काव्यों का भव्य संगीत सुनते हैं तो हमारे रूसी कानों को बहुत सी परिचित ध्वनियाँ सुनाई देती है और मध्य एशिया तथा ट्रांस-काकेशस के निवासियों को तो कुछ शब्दों के मूल रूपों में भी समानता प्रतीत होती है। मदुरा के नक्काशीदार मन्दिरों की शिल्पकला, रामायण की संगीतमय चौपाइयां और कोंडानाचैत्य के प्रवेश-द्वार की शानदार महराबें हमें अधिकाधिक प्रिय लगने लगी हैं। परन्तु जिन लोगों ने यह शिल्पकारी की और इन ग्रन्थों को लिखा, यह सब कुछ बनाया और खड़ा किया, जिन्होंने प्राचीन काल के गम्भीर मुद्रा वाले देवताओं की वेदियों के लिए खानों से लाल-मणि और नीलम खोदकर निकाले, उनके साथ हमारी मित्रता, अनथक परिश्रम करने वाले स्थापत्य-कलाकार, किसान, गीतकार, विद्वान और योद्धा के साथ हमारे बुद्धिमान और उदात्त भाइयों—भारत के साधारण निवासियों के साथ हमारी मित्रता संगमरमर तथा अन्य पत्थरों के बने हुए इन मकबरों से अधिक प्रिय है, बंगाल के गुलाबों और लम्बे-लम्बे ताड़ के वृक्षों से अधिक चित्ताकर्षक है।

वर्षों तक हमारे लड़कों और लड़कियों ने भारतीय जनता के दुःखों को अनुभव किया है। जूल्स वर्ने के समस्त पात्रों में से हमारे बच्चों ने कैप्टेन नेमो को अपना प्रिय पात्र चुना है, क्योंकि वह भारत की आजादी के लिए लड़ा।

रूसियों की कई पीढ़ियों ने हमारे चित्रकार वेरेश्चागिन के उस शानदार चित्र को क्रोध और रोष के साथ देखा है जिसमें अंग्रेजों की तोपों को १८५७ के वीर सिपाहियों की पीठ का निशाना लिए हुए दिखाया गया है। इस चित्र को देखते समय औरतों की आँखों में व्यथा उमड़ आती है, और मर्दों की मुट्ठिया भिच जाती हैं।

१९ वीं शताब्दी में हमने भारत के बारे में बहुत कुछ सुना, पर वह सब हमने विदेशियों के मुंह से सुना। २० वीं शताब्दी के आरम्भ में महान टैगोर के द्वारा भारत

ने पहली बार हमें अपनी वाणी से संबोधित किया । उनकी वाणी ने हमारी भावनाओं को छुआ और हमें मंत्रमुग्ध कर लिया । परन्तु हाल के कुछ वर्षों में ही हमें और आपको मानवता के शान्तिपूर्ण प्रयासों में कन्धे से कन्धा मिला कर खड़ा होने का अवसर मिला ।

और अपने हाथ बढ़ाकर, एक दूसरे की आँखों में आँखें डालकर यह कहने का अवसर मिला—भाई, अभिवादन ।

पिछले कुछ वर्षों में सोवियत जनता को बहुत हर्ष प्राप्त हुआ है: भारत हमसे मिलने आया है ।

मास्को, लेनिनग्राड और कीव में लोगों ने भारत के कलाकारों की कला देखने के लिए प्रातः काल से रात तक प्रतीक्षा की । वे सिनेमाघर दर्शकों से खचाखच भरे रहे जहां "दो बीघा जमीन" के अभागे मालिकों को थकावट से गिर पड़ते, "आवारा" में राजकपूर को संघर्ष करके विजय प्राप्त करते और "आंधियाँ" में उत्पीड़ित पात्रों को मरते हुए दिखाया गया । गोपीनाथ की युगों पुरानी कला को देखकर सोवियत नर-नारी प्रसन्न हुए और उन्होंने तारा चौधरी की सुकोमल स्फूर्तिमयता को सराहा, एकाग्र-चित्त होकर उन्होंने आपके किसानों की आवाज और उन वाद्ययंत्रों की ध्वनि सुनी जिनसे हम परिचित नहीं थे । इन सब चीजों में उन्होंने निरन्तर उस चीज को ढूँढ़ा जो सब से महत्त्वपूर्ण है: एक महान जाति का जीवन, उसके सुख और उसकी आशाएँ ।

इस बात को जानने में भी कितना हर्ष है कि यद्यपि हमारे दोनों देशों के बीच हजारों किलोमीटर और दर्जनों देशान्तरों की दूरी है, यद्यपि हमारे दोनों देशों के इतिहास इतने भिन्न हैं और हमारी संस्कृतियाँ भी अलग-अलग हैं, फिर भी आपके कलाकारों की कला देखकर हमारी आँखों में आँसू छलक आते हैं, आपके गीत हमारे हृदय को छू लेते हैं। हम भाई हैं । यदि हम इस बात को सचमुच समझ लें तो दुनियाँ की कोई भी दुष्ट शक्ति हमारा विरोध नहीं कर सकती ।

जब हमारे कुंजों में भूर्ज-वृक्ष की कोंपलें फूटने लगती हैं, और दिग-दिगन्त को हरित वर्ण के शीतल, निर्मल तथा अति सुवासयुक्त धूमिल आवरण से ढक लेती हैं, उस समय आपका तपता हुआ सूरज उन वृक्षों और घास के मैदानों पर अपनी किरणें बिखेरता है, जिनसे हम सर्वथा अपरिचित हैं ।

हमारे दोनों देशों की हर चीज भिन्न है. अपने-अपने ढंग से निराली है। परन्तु दोनों ही जगह, यहां भी और वहां भी, जनता एक ही है, कुमारी अन्तरीप पर भी बिलकुल वैसी ही जनता है जैसी चेत्युस्कीन अन्तरीप पर, वही जीवित रहने की इच्छा-

मरने की नहीं, वही ग्रानन्द मनाने की इच्छा–विपदाएँ सहने की नहीं, उन्मुक्त मानव-सुख के वातावरण में स्वच्छन्द रूप से श्वास लेने की वही इच्छा।

यही कारण है कि वही मानव विचार, ग्राशाएँ ग्रौर ग्राकांक्षाएँ मद्रास के जंगलों में भी पाई जाती हैं ग्रौर साइबेरिया के टैगा वन-प्रदेश में भी, बम्बई में भी पाई जाती हैं ग्रौर लेनिनग्राड में भी, ग्रौर वही उत्साह-भरे शब्द—शान्ति, उल्लास, राष्ट्रों की मित्रता, स्वतंत्रता--दोनों जगह गूँजते हैं।

मनुष्य निर्बल तभी होता है जब वह रणक्षेत्र में ग्रकेला जाता है। परन्तु ग्रपने मित्रों के साथ मिलकर वह समस्त शत्रुग्रों पर विजय प्राप्त कर सकता है। एक होकर दुनियाँ की जातियाँ कुछ भी कर सकती हैं, शान्ति के संघर्ष में वे ग्रजेय हैं, कोई भी शक्ति उनका मुकाबला करने की क्षमता नहीं रखती।

संपादकीय

भारत रत्न !

शान्ति शाश्वत सत्य है और भारतवर्ष की परम्परा इसी शान्ति के पुरस्करण की रही हैं। सभ्य संसार का दृष्टिकोण पशुबल की विजय अथवा जिगीषा को असत् ही मानता रहा है और हमारा देश युग-युग से शान्तिपूर्ण सांस्कृतिक अभियान करके विश्व के कोने-कोने में अपना जयध्वज स्थापित करता रहा है। शताब्दियों की विवशता की धूल का परिमार्जन करके आज भारतवर्ष अपने उज्ज्वल इतिहास की पुनरावृत्ति करने खड़ा हुआ है। सौभाग्य से पंडित नेहरू का भारतवर्ष की गरिमा के अनुरूप ही नेतृत्व आज हमें मिला है। बांडुंग में प्रारम्भ हुई अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर शान्ति के प्रयत्नों की परम्परा पंडित नेहरू की रूस, यूगोस्लाविया, वैटिकन रोम आदि की यात्रा में अपनी चरम उत्कटता तक पहुँची है।

अपनी छह सप्ताह की विदेश यात्रा में रूस में और सर्वत्र हमारे प्रधान मन्त्री का, भारतवर्ष द्वारा किये गये अब तक के महान शान्ति-प्रयासों के फलस्वरूप शासन और जनता द्वारा हार्दिक स्वागत किया गया, रूस का अब तक अभेद्य लौह आवरण भी उनके लिए मुक्त कर दिया गया, वह किसी भी भारतवासी को प्रसन्नता का कारण है, परन्तु उससे अधिक विशाल है हुआ सारे विश्व के लिए आतंक और भय का कारण बने हुए विश्व की महान सामरिक शक्तियों के तनाव के वातावरण पर अमोघ प्रहार।

भारत और रूस पण्डित नेहरू की इस यात्रा से समीपतर आये हैं। मास्को से दिये गये दोनों देशों के प्रधान मन्त्रियों के संयुक्त वक्तव्य से यह स्पष्ट है कि विश्व शान्ति से सम्बन्ध रखने वाले मामलों में रूस और भारत के बीच मतैक्य है। इस वक्तव्य में सह अस्तित्व के लिए पंचशील के सिद्धान्तों की पुष्टि की गयी है। घोषणा की गयी है कि दोनों देशों के सम्बन्ध (१) प्रत्येक देश की सम्पूर्ण प्रभुता एवं अखण्डता का दूसरे द्वारा सम्मान, (२) अनाक्रमण, (आर्थिक, राजनीतिक अथवा सैद्धान्तिक कारणों से किसी दूसरे देश के आन्तरिक मामलों में अहस्तक्षेप) (४) समानता और पारस्परिक लाभ और (५) शान्तिपूर्ण सह अस्तित्त्व से संचालित होते रहेंगे। रूस और भारत के पारस्परिक सम्बन्धों में ही नहीं, पंचशील का व्यवहार अधिकाधिक व्यापक क्षेत्र में स्वीकार किया गया है।

सामरिक शक्ति के दंभ के साथ सीमित स्वार्थपरता से किये गये विश्व

समस्याओं के हल करने के प्रयासों के अवशेष के रूप में संघर्ष के कारण वर्तमान हैं, परन्तु इस संयुक्त वक्तव्य में फारमोसा और हिन्द-चीन जैसी उलझनों को शान्तिपूर्ण प्रयासों द्वारा सरल करने की आशा प्रकट की गयी है। शस्त्रों के निर्माण की स्पर्धा से राष्ट्रों की शक्ति का जनोत्थान के रचनात्मक कार्यों से विपथ होकर अपव्यय होता है। शंका और भय का वातावरण मिटाकर विश्व शान्ति की स्थापना की दृष्टि से आणविक तथा अन्य सामरिक शस्त्रों के उत्पादन, परीक्षण और प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगाना और निःशस्त्रीकरण की व्यवस्था प्रभावशाली अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण में की जाना आवश्यक स्वीकार किया गया है।

दोनों देशों के प्रधान मन्त्रियों ने पंचशील के अनुसार आर्थिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक एवं प्रोद्यौगिक अनुसंधानों के क्षेत्र में रूस और भारत के सम्बन्धों को और अधिक दृढ़ करने का संकल्प व्यक्त किया है।

इस प्रकार भारतवर्ष, रूस और चीन के इस मैत्री सम्बन्ध से एक नवीन महान शक्ति का उदय हुआ है। शान्ति का घोष स्वयं एक शक्ति है और जब उसका उद्गम स्थान शक्तिशाली हो, विश्व की बहुत बड़ी संयुक्त शक्ति हो. तब उसके प्रभाव अमोघ ही हो सकते हैं। सामरिक शक्ति को और कूटनीतिक दावपेचों को ही सभी रोगों की औषधि समझने वाली विश्व की शक्तियों की कुटिल गतिविधियों पर शान्तिप्रिय राष्ट्रों के इस सम्मेलन से पक्षाघात हुआ है, इन शक्तियों का बलार्ध हुआ है, यद्यपि जेनेवा सम्मेलन में पुरानी लीक पीटने के विसंवादी स्वर आज भी सुने जा सकते हैं।

यूगोस्लाविया में

विगत वर्षों से विश्व की रस्सा खिचाई में प्रमुख स्थान रखने वाले मार्शल टीटो के भारत आगमन के पश्चात पण्डित नेहरू की यूगोस्लाविया की यात्रा, उनका हार्दिक स्वागत और बेलग्रेड की नागरिकता प्रदान करके किये गये उनके अभूतपूर्व सम्मान की पूर्व पीठिका के रूप में रूस और यूगोस्लाविथा के सम्बन्धों में, दोनों देशों की रीतिनीति में हुआ नाटकीय परिवर्तन पिछले शान्तिप्रयासों का ही सुफल है।

वेटिकन रोम में

हमारे इस शान्ति-दूत ने योरोप की इस यात्रा में पवित्र पोप से भी भेंट की। गोआ में चल रहे पुर्तगाली शक्तिपरीक्षण के प्रति धर्म संस्था की सहानुभूति की भ्रान्ति का निराकरण इस भेंट के पश्चात ही पोप ने किया है।

जेनेवा सम्मेलन

इस बीच जेनेवा सम्मेलन में सम्मिलित होना रूस ने स्वीकार किया है इस स्वीकृति में पण्डित नेहरू की रूस यात्रा झलकती है, यह उनके उस वक्तव्य से

प्रकट है जिसमें उनने यह स्पष्ट किया है कि रूस की इस स्वीकृति का कारण उसकी शक्ति की कोई न्यूनता न होकर वास्तविक शान्ति-स्थापना की इच्छा ही है ।

भारत आगमन

इस प्रकार शस्त्रास्त्र, शक्तिसन्तुलन, सामरिक दलबन्दी, युद्ध, नरसंहार, साम्राज्य, उपनिवेश स्थापन आदि में ही अपना क्षेम देखने वाली विश्व की भौतिकतावादी शक्तियों को शान्ति का शाश्वत घोष सुनाकर, उन्हें आश्चर्यचकित और हतप्रभ करके, आत्म निरीक्षण के लिए बाध्य करके और शान्ति के इच्छुकों की विराट शक्तियों को एक धरातल पर लाकर शान्तिदूत नेहरू भारत आये और भारतवर्ष ने उन्हें 'भारत रत्न' की उपाधि से विभूषित किया । वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय विस्तार में महाराज अशोक के पश्चात किया गया नैतिकता के प्रसार का यह पहला और महान प्रभावपूर्ण प्रयास हुआ । इस प्रयास को जिस महानता के साथ पण्डित नेहरू ने निबाहा, उसमें भारत के राष्ट्रपति द्वारा किये गये इस सम्मान की अर्हता है और प्रबुद्ध भारत यह अनुभव करता है कि प्रधान मन्त्री का यह सम्मान करके हमारे राष्ट्रपति ने वही किया है जो उसके राष्ट्र की अभिलाषा है ।

राजभाषा आयोग

सविधान के अनुसार राजभाषा आयोग श्री बालासाहब खेर की अध्यक्षता में राष्ट्रपति ने नियुक्त कर दिया है और इस आयोग ने अपनी एक प्रश्नावली प्रकाशित करके अपना कार्य भी प्रारम्भ कर दिया है । यह प्रश्नावली अंग्रेज़ी में ही छापी गयी है और अंग्रेजी में ही इन प्रश्नों के उत्तर चाहे गये हैं ।

प्रश्नावली का केवल अंग्रेजी में छापा जाना शासकीय गतिविधि की वर्तमान परम्परा के भी अनुकूल नहीं है । शासन ने इस वर्ष अपना बजट भी अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी में भी संसद के सम्मुख प्रस्तुत किया था । हमें प्रसन्नता हुई थी । परन्तु राष्ट्रभाषा जैसे प्रश्न पर, जिसका प्रभाव बजट से—जो केवल वर्ष भर के लिए होता है और जिसका प्रभाव मात्र आर्थिक है—अधिक व्यापक और दीर्घकालीन होगा, केवल न मात्र अंग्रेजी पढ़ सकने वालों का ही मत जानना चाहा है, वरन् इस अंग्रेजी में छपी प्रश्नावली के प्रश्नों के उत्तर भी अंग्रेजी में ही देने की बाध्यता रख कर केवल भारतवर्ष के उन्हीं नागरिकों का मत सुनने की सीमा बनायी गयी है जो अंग्रेजी में अपने विचार भी व्यक्त कर सकें ।

आयोग में बड़े-बड़े विद्वानों के नाम हैं । परन्तु यह व्यवस्था देख कर स्तम्भित हो जाना पड़ता है । क्या भारत की राष्ट्रभाषा भी अंग्रेजी की प्रणाली में होकर आने वाली है ?

निर्धनता का वितरण

कभी-कभी कुछ समझदार लोग भी ऐसी बात कह देते हैं कि लोकहित में उसके विषय में मौन नहीं ही रहा जा सकता, और जब ऐसी बात कहने वाला कोई प्रतिष्ठित व्यक्ति हो, तो उसकी उपेक्षा भी नहीं की जा सकती। बम्बई के राज्यपाल पद पर आरूढ़ श्री हरेकृष्ण महताब ने आचार्य विनोबा के भू-दान आन्दोलन की आलोचना करने में जिस अनुत्तरदायित्व का परिचय दिया है वह अत्यन्त चिन्तनीय है।

यह प्रसन्नता की बात है कि काँग्रेस के महामन्त्री श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल ने इस दुर्भाग्यपूर्ण वक्तव्य का समय पर ही प्रतिवाद कर दिया है।

आचार्य विनोबा के भू-दान आन्दोलन के सम्बन्ध में शासन द्वारा किये गये व्यय का उल्लेख श्री मेहताब ने अपने वक्तव्य में किया है। श्री मेहताब यह भूल गये कि शासन ने जो भी व्यय भार उठाया है वह केवल भू-दान आन्दोलन के लोकव्यापी प्रभाव का श्रेय लेने के लिए उठाया है। आज काँग्रेस के पास शासकीय स्तर पर किये जाने वाले कार्यों के अतिरिक्त ऐसा कोई कार्य-क्रम शेष नहीं रह गया है जिसके द्वारा वह जनता से सम्पर्क स्थापित रख सके अथवा उसकी सहानुभूति पा सके। काँग्रेस शासन के कार्य, श्री नेहरू का व्यक्तित्व और सन्त विनोबा का भू-दान यज्ञ ये दो-चार निधियाँ हैं जिनके सहारे इस संस्था का अस्तित्व धकेला जा रहा है।

भू-दान आन्दोलन को 'निर्धनता वितरण' का आन्दोलन नाम देना, परिस्थिति को उल्टे चश्मे से देखना मात्र है। समाज में धन के समान वितरण करने की चेष्टा को उलटी ओर से देखने पर निर्धनता का वितरण भी कहा जा सकता है और सही दृष्टि से देखने पर यह कहा जा सकता है कि यह देश की आर्थिक सम्पत्ति से सब को समान लाभ उठाने का अवसर देने का प्रयास है। जागीरदारी और जमींदारी प्रथाओं की समाप्ति के विषय में भी यह कहा जा सकता है कि बेचारे (?) जमींदार और जागीरदारों का विनाश किया जा रहा है। सही मस्तिष्क से विचार करने वाले के लिए यह भूमि पर श्रम करने वाले को अधिकार देना है। मध्यभारत में डाकुओं के विनाश के अभियान को श्री मेहताब के तर्क के अनुसार 'शौर्य' के विनाश का अभियान' कहा जा सकता है और साधारण बुद्धि वाले उसे शान्ति और सुख के वितरण की व्यवस्था कहते हैं। इसी प्रकार श्री मेहताब के विचित्र दृष्टिकोण से भू-दान आन्दोलन निर्धनता का वितरण हो सकता हे, परन्तु स्वस्थ दृष्टि से देखने पर वह जो कुछ भी हमारे घर में है उसे बाँट कर उपभोग करने की व्यवस्था है। श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल ने ठीक ही कहा है कि 'भारत जैसे निर्धन देश में, जहाँ कुछ लोगों को जीवन की अत्यधिक सुविधाएँ हैं तथा वे विलासपूर्ण जीवन विता रहे हैं, वहाँ करोड़ों व्यक्ति एक समय भोजन भी कठिनाई से जुटा पाते हैं, यदि निर्धनता बितरित की जाय तो कोई हानि नहीं।'

आचार्य विनोबा के इस पावन यज्ञ का मर्म समझे बिना अथवा समझ कर भी अनसमझे बन कर श्री मेहताब ने जो वक्तव्य दिया है उससे विनोबा के इस महान क्रान्तिकारी एवं शान्ति स्थापक कार्य की महत्ता तो कम नहीं होती, श्री मेहताब का यह प्रयास चन्द्रमा पर धूल फेंकने जैसा अवश्य है।

सूर्योदय नहीं होगा

इसी परम्परा में समर स्कूल ऑफ लिंग्विस्टिक्स में भाषण करते हुए श्री मेहताब ने अंग्रेजी के महत्व के सम्बन्ध में, मातृभाषा के माध्यम से शिक्षण के सम्बन्ध में और राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में विचित्र स्थापनाएं की हैं। इनकी धारणा है कि (१) कुछ लोग अंग्रेजी को इश देस से बिलकुल निकाल देना चाहते हैं, जो सम्भव नहीं है। (२) यह असम्भव है कि प्रत्येक को अपनी मातृ-भाषा के द्वारा शिक्षा प्रदान की जा सके। (३) वे इस बात से सहमत नहीं हैं कि किसी एक भाषा को समस्त लोगों की राष्ट्रभाषा बनायी जाय। (४) एक ऐसा अनुसंधान चल रहा है जिसके परिणामस्वरूप यह सम्भव हो सकेगा कि एक ऐसी भाषा का विकास हो सके जिसे सब स्वीकार कर लें।

इनकी पहली धारणा के सम्बन्ध में यही कहना पर्याप्त है कि अंग्रेजी जिस रूप में भारतवर्ष में आयी थी—शासकीय भाषा के रूप में—वह सुगमता उसे अब प्राप्त नहीं है। अंग्रेजी मातृभाषा वाले शासक चले गये और सौभाग्य या दुर्भाग्यवश वे भारतवर्ष की दृष्टि से अंग्रेज़ी का वह सौभाग्य भी अपने साथ लेते गये। अब शासकीय भाषा के रूप में वह यहाँ नहीं रह सकती अधिक काल तक। दूसरी धारणा भी वस्तुस्थिति और अनुभव के विपरीत है। राष्ट्र की अमित प्रतिभा तथा अध्ययन शक्ति का विदेशी भाषा के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करने में अत्यधिक अपव्यय हो चुका किसी जमाने में। समय की गति के साथ मात-भाषाओं के माध्यम से ही शिक्षण की व्यवस्था सर्वत्र हो रही है और भारतवर्ष में भी होकर रहेगी।

तीसरी धारणा विचित्र है और चौथी का सम्बन्ध भी इसी से है। किसी वर्तमान भाषा को वे समस्त लोगों की राष्ट्रभाषा बनाने से असहमत हैं और अनुसंधान द्वारा विकसित किसी भावी भाषा को राष्ट्र भाषा बनाने की आपकी कल्पना है। भाषा—हिन्दी भाषा के इतिहास को देखते हुए—शताब्दियों की परम्पराओं और स्वाभाविक विकास का फल होती है। अनुसंधान द्वारा उसका निर्माण सम्भव नहीं है, कल्पना मात्र की जा सकती है। फिर राष्ट्र भाषा वर्तमान भाषाओं में से ही एक होगी। तथ्यों के अनुसार शासकीय और अशासकीय प्रयासों के फलस्वरूप हिन्दी राष्ट्र भाषा हो चुकी है। शेष रह गया है केवल राष्ट्रभाषा के रूप में उसका उपयोग, जो होकर

रहेगा। किसी भ्रान्ति के कारण निषेधात्मक 'सूर्योदय नहीं होगा' घोष करने से उसके प्रकाश का प्रसार नहीं रुकेगा।

महामानव निराला

महाकवि निराला ने वर्तमान हिन्दी की शालीनता का निर्माण किया है। यदि आधुनिक काव्य साहित्य में से निराला का साहित्य, प्रसाद की कामायनी, महादेवी के कविता-संग्रह और गुप्तजी के साकेत, यशोधरा तथा कुछ अन्य ग्रन्थ निकाल दिये जायँ तब जो कुछ शेष रहेगा वह बाल-प्रयास होगा, वह इस योग्य न होगा कि उसे भारत की राष्ट्र भाषा की गरिमा के योग्य काव्य-साहित्य कहा जा सके।

प्रसाद चले गये, अपने जीवनकाल में बिना कोई उपयुक्त सम्मान तथा आदर प्राप्त किये। जो हमारे बीच आज हैं उनकी ओर भी हम अवकाश के क्षणों में केवल आदर की दृष्टि से देख भर लेते हैं और इतने से ही अपने कर्तव्य की इति श्री समझ लेते हैं।

आज महाकवि निराला अस्वस्थ हैं—लम्बे समय से अस्वस्थ हैं। औपचारिक रूप से उनके विषय में यत्रतत्र चर्चाएँ भी हो लेती हैं, परन्तु आज तक कोई ठोस कार्य इस महाकवि के उपकार का बदला उसके जीवनकाल में देने के लिए हुआ हो ऐसा ज्ञात नहीं होता। देश के लाखों हिन्दी विद्वानों के मस्तिष्क और हृदय को निराला के काव्य ने स्फूर्ति एवं बल दिया है, परन्तु हमारा मूर्ति पूजक समाज तो केवल विगत की पूजा करता है, वर्त्तमान के प्रति कर्तव्य निर्वाह करने की जैसे हमारी परम्परा ही नहीं है।

अभी निरालाजी से श्री रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' के साथ कुछ साहित्यकार मिले थे। यह पूछे जाने पर कि क्या श्री निराला अपने स्वास्थ्य सुधार के लिए विदेश जाना स्वीकार करेंगे, उनका उत्तर यह था "मैं जीते जी कभी विदेश नहीं जाऊँगा। जिस देश की मिट्टी से मैं बना हूँ, उस देश की मिट्टी में मिल जाना मैं अपना गौरव समझता हूँ।" साधारण दृष्टि से तो यह कथन केवल भावुकता मात्र ज्ञात होता है, परन्तु एक ओर तो इसमें जीवन के प्रति निराशा झलकती है, दूसरी ओर महाकवि की महामानवता भी प्रकट होती है। वे दारागंज भी छोड़ने को तैयार नहीं। जिस देश के लिए उनके स्व का श्रेष्ठतम अंश अर्पित हुआ, उसके प्रति उनका ममत्व स्वाभाविक है। यह तो महाकवि की महामानवता का ही द्योतक है।

परन्तु जो साधन विदेशों में अथवा दारागंज के बाहर उपलब्ध हो सकते हैं, क्या वे दारागंज नहीं जा सकते ?

अर्थ का अनर्थ

काशी के 'प्रसाद' मासिक पत्र में श्री मैथिलीशरण गुप्त ने स्वर्गीय जयशंकर प्रसाद के विषय में एक अत्यन्त मार्मिक और सहृदयता एवं ममत्वपूर्ण संस्मरण लिखा है। हिन्दी के दो महान् निर्माताओं के निर्मल हृदयों के मिलन की वह पवित्र झाँकी है।

अभी 'दीदी' के जुलाई अंक में हमने उस संस्मरण की जो दुर्दशा देखी, उससे हृदय को बड़ी वेदना हुई। श्री गुप्तजी के उक्त लेख में से कुछ पंक्तियाँ संदर्भ से हटा कर और उनमें कुछ पंक्तियाँ अपनी ओर से जोड़ कर अर्थ का अनर्थ करने की चेष्टा 'दीदी' की इस टिप्पणी में की गयी है।

'दीदी' की इस टिप्पणी के लेखक ने लिखा है कि गुप्तजी का यह लेख लेखक के अपने उस निजी अनुभव की पुष्टि करता है जिसके द्वारा यह स्थापना की थी, कि श्री मैथिलीशरण गुप्त स्वर्गीय प्रसाद के जीवनकाल में उनके प्रति ईर्षालु थे और उन्हें नीचा दिखाना चाहते थे। जिस प्रकार इस स्थापना की पुष्टि गुप्तजी के उक्त लेख से कराई गयी है वह अत्यन्त चिन्तनीय है।

श्री गुप्तजी ने अपने लेख में एक घटना का वर्णन किया है, जिसके कारण प्रसादजी उनसे खिंचे रहे थे। वे अपने लेख में लिखते हैं—

'केवल एक बार ही उन्हें मेरे विषय में सन्देह हुआ था। फल स्वरूप कुछ दिन वे मुझसे खिचे रहे। एक समीक्षक ने उनके विरुद्ध बहुत कुछ लिखा। लिखनेवाले मुझसे सम्बन्धित थे। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक ही था कि उस कार्य में उन्हें मेरा हाथ जान पड़ा। इसके लिए मैं कैसे उन्हें दोष दूँ। मैंने आलोचक से कहा भी था कि इसका दोष मुझ पर आएगा। वे बोले— आप कहिए तो अपना निबन्ध मैं न छपाऊँ, परन्तु इससे मेरे अन्तरात्मा को कष्ट होगा और मैं अपने को कर्तव्यच्युत समझूँगा। मैंने कहा—ऐसी बात है तो मैं आपको कैसे रोकूँ, मेरा जो होना होगा, होगा।'

श्री गुप्तजी के लेख में इस अप्रिय गलत फहमी के अन्त का भी वर्णन किया गया है। गुप्तजी ने लिखा है—

'पाठक जी (श्री वाचस्पति पाठक) तब तक काशी से प्रयाग नहीं गये थे और समय-समय पर इस भ्रम के निवारण की चेष्टा भी वे करते रहे होंगे। अन्त में उनका प्रयास सफल हुआ। मैं फिर काशी गया और पाठकजी के उद्योग से हम पुनः शान्ति-कुटीर में मिले। आवेग से मेरे आँसू आ गये और धृष्टता क्षमा हो, यह कहते हुए कि तुमने मेरे साथ न्याय नहीं किया, मैंने उन्हें एक थप्पड़ मारी और उनसे लिपट गया

वे मुझे थपथपाते रहे। पाठकजी के अनुग्रह से मैंने इस बार अपने को पहले से भी अधिक प्रसादजी के निकट अनुभव किया।"

इन उद्धरणों को तथा लेख को पूरा पढ़ने से 'दीदी' की स्थापना पुष्ट न होकर नष्ट होती है। परन्तु जिस आलोचना के प्रकाशन में गुप्तजी ने अपना कोई हाथ नहीं बतलाया तथा उसके प्रकाशन पर आपत्ति की, उसके विषय में 'दीदी' ने गुप्तजी के वाक्यों का उद्धरण देकर उसमें निश्चयात्मक रूप से कोष्टक में ठीक इसका उलटा लिख दिया।

"(अपने एक सम्बन्धी से प्रसाद की कड़ी आलोचनाएँ लिखवाने के) कुछ दिन पश्चात मैं काशी गया।"

गुप्तजी ने अपने लेख में लिखा है कि "मैंने ललक कर उनसे कहा—आओ तुम भी स्नान कर लो।" यहाँ गुप्तजी की 'ललक' 'दीदी' ने 'ललकार' पढ़ी।

हम नहीं समझते कि यह सब अर्थ का अनर्थ भ्रमवश अथवा अज्ञतावश किया गया है। यदि वास्तव में 'दीदी' का यह मत है कि श्री गुप्तजी के लेख से उसकी किसी कलुषित स्थापना की पुष्टि होती है, तब हम यही कहेंगे कि अन्धकार को प्रकाश और प्रकाश को अन्धकार समझने वालों का हिन्दी में अभी अभाव नहीं है।

ये कैसे शिक्षाविज्ञ हैं?

मध्यभारत माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा नियुक्त ६ शिक्षाविज्ञों की एक समिति ने सिफारिश की है कि हायर सेकेण्डरी स्कूलों में अंग्रेजी अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाई जाय। हमारे सामने अभी वह पूरी रिपोर्ट नहीं आई है, परन्तु उसके शासकीय- विवरण से ज्ञात होता है कि इस सम्बन्ध में हमारे शिक्षाविज्ञों का यह कथन है कि "बोर्ड द्वारा स्वीकृत सभी संस्थाओं में, बल्कि दरअसल ११ से १७ वर्ष तक की आयु के लड़के-लड़कियों को शिक्षा देने वाली सभी संस्थाओं में अंग्रेजी अनिवार्य विषय के तौर पर पढ़ाई जानी चाहिए। मिथ्या देश-भक्ति की भावनाएँ हमारे लड़के-लड़कियों के, जिन्हें अन्तर्राष्ट्रीय और विश्व सहयोग के इस जमाने में पिछड़ना नहीं चाहिए स्वाभाविक विकास में बाधक नहीं बननी चाहिए।"

जिन सज्जनों ने अपना समस्त ज्ञान अंग्रेजी के मार्फत ही प्राप्त किया है और जिनमें इतनी कल्पना शक्ति नहीं कि वे अपनी सीमित परिस्थितियों के बाहर देख सकें, वे ही यह कल्पना कर सकते हैं कि आज के विश्व से अंग्रेजी द्वारा ही सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। हम "देशभक्ति" का नाम तो नहीं लेंगे, क्योंकि वह तो इन विज्ञों के तर्क के अनुसार मिथ्या बन जायगी, परन्तु हम कुछ तथ्य अवश्य सामने लाना चाहते हैं। इन शिक्षाविज्ञों के तर्क को यदि नकारात्मक रूप से लें, तब उसका यह अर्थ

होगा कि पृथ्वी के जिन राष्ट्रों में ११ से १७ तक के बालक अंग्रेजी नहीं पढ़ते वहाँ के नागरिकों को न तो अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का ज्ञान हो सकता है और न वे विश्व सहयोग की बात ही समझ सकते हैं। रूस, फ्रान्स, स्पेन, जर्मनी, इटली, चीन जैसे देशों में ११ से १७ तक के किशोर-किशोरियों को अनिवार्य रूप से अंग्रेजी नहीं सिखाई जाती, तब हमारे इन शिक्षाविज्ञों के मतानुसार वहाँ के नागरिकों को न तो अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का ज्ञान होना चाहिए और न वे विश्व के सहयोग की बात ही समझ सकते हैं। इस प्रकार की बातें केवल शिक्षाविज्ञ ही कह सकते हैं, साधारण मस्तिष्क के व्यक्ति के लिए तो ये प्रलाप मात्र हैं।

हमारे क्षिक्षाविज्ञों का सम्भवतः यह मत भी होगा कि देश की समस्त जनता को अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ सुलझाने के लिए ही साक्षर बनाया जा रहा है और साधारण नागरिक के लिए जितने अन्तर्राष्ट्रीय ज्ञान की आवश्यकता है वह न तो आज हिन्दी के पत्रों से मिल सकता है और न पुस्तकों से; और न कभी हिन्दी में इस प्रकार के साहित्य की सर्जना हो सकती है ?

११ से १७ वर्ष की वय के बालक-बालिकाओं को कम से कम समय में अधिक से अधिक व्यापक ज्ञान देने की आवश्यकता है, क्योंकि इस वय के पश्चात भारत जैसे निर्धन देश में, उनमें से अधिकांश जीविकोपार्जन में लग जाते हैं। कम समय में यह कार्य उनकी मातृभाषा द्वारा ही हो सकता है। इन शिक्षाविज्ञों को सम्भवतः यह ज्ञात नहीं कि अब हिन्दी तथा अन्य प्रान्तीय भाषाओं में ऐसा साहित्य भी प्रचुर मात्रा में प्रकाशित हो चुका है तथा प्रकाशित हो रहा है कि साधारण ज्ञान के लिए अंग्रेजी का मुँह देखने की आवश्यकता न हो। और यदि कहीं कोई कमी है तो उसे पूरा करने में वे अपनी विज्ञता दिखावें। इस प्रकार के 'मिथ्या' तर्कों पर आधारित बातें लिखने और कहने में तो केवल अज्ञता का प्रदर्शन होता है। आज के युग में सही तर्क को "मिथ्या देशभक्ति" की बात कहकर हवा में उड़ाया नहीं जा सकता। आज जब श्री नेहरू रूस में हिन्दी में भाषण देकर काम चला सकते है, तब इस प्रकार की बातें केवल बुद्धि की जड़ता की सूचक हैं।

वाणी-मंदिर की पावनता बचाएँ

मध्यभारत कला परिषद द्वारा इस वर्ष भी साहित्यिक कृतियों पर पुरस्कार घोषित कर दिये गये। उनके विषय में स्थानीय पत्रों में एवं साहित्यिक संस्थाओं में चर्चाएँ भी हुईं। जो कुछ भी हुआ वह इस राज्य की प्रतिष्ठा के अनुकूल नहीं हुआ।

सबसे बड़ा आक्षेप तो उस धनराशि पर है जो इस कार्य के लिए नियत की गयी है। आठ साहित्यिकारों में ३१००) रुपए बाँटे गये हैं! अभी उत्तर प्रदेश के पुर-

स्कारों की घोषणा हुई थी। उस राज्य की धनराशि लाखों में थी। मध्यभारत राज्य इतना दरिद्री तो नहीं है जितना इस धनराशि द्वारा प्रकट किया गया है, हाँ साहित्य की उपेक्षा की द्योतक यह धनराशि अवश्य है। इससे तो यही अच्छा है कि इन पुरस्कारों को चार पाँच वर्षों में एक बार दिया जाय अथवा तब तक के लिए इसे बन्द कर दिया जाय जब तक कि राज्य इसके लिए किसी शोभन धन का प्रबन्ध न करदे।

लोगों की दूसरी आपत्ति कुछ अधिक गंभीर है। कुछ वर्षों से यह रवैया रहा है कि कला परिषद के अत्यन्त उच्च पदाधिकारी इस प्रतियोगिता के लिए अपनी पुस्तकें भेजते हैं। अधिक संभावना तो यह है कि निर्णायकों पर इसका प्रभाव नहीं पड़ सकता, परन्तु किसी संशय अथवा सन्देह के लिए स्थान रखने की आवश्यकता ही क्यों हो? कला परिषद के सदस्य एवं पदाधिकारी ऐसे व्यक्ति रखे जा सकते हैं जिनकी प्रतियोगिता की हौंस समाप्त हो चुकी हो और जो साहित्य-जगत में इतने प्रतिष्ठित हो चुके हों जिन्हें अब किसी प्रतियोगिता में अपनी रचनाएँ रखने की आवश्यकता न हो। हम इस प्रतियोगिता के निर्णायकों के ऊपर निर्णायक बन कर नहीं बैठना चाहते, परन्तु इतना अवश्य समझ सके हैं कि जिन पुस्तकों के लेखक को सर्वाधिक धनराशि प्रदान की गयी है, वे पुस्तकें तीसरी श्रेणी की हैं—उनके लेखक अपनी अन्य रचनाओं की तुलना में इन कृतियों में कुछ कदम पीछे ही हटे हैं, हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि तो इन पुस्तकों से किसी दशा में भी नहीं हुई। किस कसौटी पर इन पुस्तकों को अन्य पुस्तकों से श्रेष्ठ समझा गया यह रहस्य गोपनीय है और गोपनीय ही रहे, इसी में कला परिषद के इस 'मखौल' की कुशल है।

तीसरी अत्यन्त आपत्तिजनक बात इस वर्ष हुई है "प्रोत्साहन" नामक नवीन शीर्षक का आविष्कार! अन्य पुरस्कार यदि प्रोत्साहन नहीं तो क्या हैं? फिर यह नया प्रोत्साहन क्या है? संभावना यह दिखती है कि परिवरिश या, साहित्य संघ के शब्दों में 'पीठ थपथपाने' का गलत अनुवाद ही यह नया 'प्रोत्साहन' है।

हमें विश्वास है कि मध्यभारत शासन इस अत्यन्त सद्भावना से प्रारंभ की गयी वाणी-मंदिर की उपासना को भ्रष्ट न होने देगा और शीघ्र ही कोई ऐसी योजना बनायेगा जिससे इस पर लोगों को अविश्वास और संदेह न हो तथा इसका वास्तविक उद्देश्य पूरा हो सके।

शिक्षा मंत्रालय और हिन्दी

हिन्दी के विकास और प्रसार का कार्य-क्रम अभी भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय से प्रकाशित होकर प्राप्त हुआ है। भारतीय संविधान ने भारत की केन्द्रीय सरकार का सारा काम अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी में किया जाने लगे, इसके लिए पंद्रह वर्ष की अवधि निश्चित कर दी है। संविधान के इस आदेश की पूर्ति के लिए राष्ट्र

की आवश्यकताओं के अनुसार विज्ञान, टैक्नोलॉजी और प्रशासन की शब्दावली प्रस्तुत करने और अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी का प्रसार करने के उद्देश्य से शिक्षा मंत्रालय ने पन्द्रह वर्ष का कार्य-क्रम बनाया है और इस कार्य-क्रम को पाँच-पाँच साल के तीन भागों में बाँट दिया है।

पहले पाँच वर्ष में हिन्दी की पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण कर लिया जायगा। सभी अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के माध्यमिक विद्यालयों में हिन्दी को अनिवार्य विषय बनाने का आन्दोलन किया जायगा और अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी का प्रसार किया जायगा।

दूसरे पाँच वर्ष में हिन्दी की पारिभाषिक शब्दावली तैयार हो जायगी, अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के विद्यार्थियों को हिन्दी का ज्ञान कराया जायगा और इन क्षेत्रों में प्रौढ़ों को हिन्दी पढ़ाने का कार्य-क्रम चलाया जायगा।

पहले और दूसरे कार्य-क्रमों की पूर्ति की पृष्ठ भूमि तैयार होने पर तीसरे कार्य-क्रम के अनुसार केन्द्रीय सरकार के प्रशासन कार्यों में और केन्द्र तथा राज्यों के बीच पत्र व्यवहार में अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी को माध्यम के रूप में चालू कर दिया जायगा। इसमें उद्देश्य यह रखा गया है कि शासन की भाषा के रूप में हिन्दी के विकास का निरीक्षण करने और इस विकासक्रम की त्रुटियों को दूर करने के लिए पाँच वर्ष का समय मिलेगा। इस प्रकार शिक्षा स्तर भी नहीं गिरेगा और प्रशासन के कार्य में भी बाधा नहीं आएगी।

इस कार्य क्रम के अन्तर्गत अब तक २६४०० वैज्ञानिक, तकनीकी और प्रशासन सम्बन्धी शब्दों की सूची तैयार की जा चुकी है। हिन्दी की श्रेष्ठ रचनाओं पर पुरस्कार दिये गये हैं; दस खण्डों में, १०००० पृष्ठ के, औसत भारतीय की क्रयशक्ति में समावेश्य मूल्य के हिन्दी विश्व कोष की रचना का कार्य काशी की नागरी प्रचारिणी सभा को सौंपा गया है; प्रौढ़ोपयोगी साहित्य को प्रोत्साहन देने की योजना बनायी गयी है; शिशु साहित्य की पुस्तकें तैयार करायी जा रही हैं; एक लोक विश्वकोष का निर्माण हो रहा है; हिन्दी के गौरव ग्रन्थों के सुलभ संस्करण प्रकाशित कराये जा रहे हैं; भारत के हिन्दी-इतर साहित्यों के इतिहासों की रचना के लिए अनुदान दिये गये हैं; आर्थिक संकटग्रस्त लेखकों को सहायता दी गयी है; हिन्दी के शब्द-सागर के परिवर्द्धित संस्करण के लिए, संक्षिप्त हिन्दी-कोष तथा हिन्दी-अंग्रेजी कोष तैयार करने के लिए धन दिया गया है; हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में समान रूप से प्राप्त शब्दों के कोष का कार्य प्रारम्भ हो गया है और हिन्दी भाषा के व्याकरण की रचना का कार्य एक समिति को सौंप दिया गया है; अनेक अहिन्दी भाषी क्षेत्रों की प्रारम्भिक और माध्यमिक पाठशालाओं में हिन्दी का अध्यापन प्रारम्भ हो गया है तथा हिन्दी की उच्च शिक्षा के लिए

विश्वविद्यालयों को सहायता दी गयी हैं। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने उच्च शिक्षा के माध्यम के लिए संस्कृतेतर किसी भारतीय भाषा का व्यवहार प्रारम्भ किया जाना स्वीकार किया है; ऊँची माध्यमिक कक्षाओं के और विश्वविद्यालयों के छात्रों को प्रादेशिक भाषा, संघ भाषा और अंग्रेजी, इन तीन भाषाओं का सिखाना उचित बताया है; उच्च शिक्षा का माध्यम प्रादेशिक भाषा अथवा स्वेच्छया संघ-भाषा हो और संघ भाषा की लिपि सुधार के साथ देवनागरी हो, यह स्वीकार किया है। हिन्दी की परीक्षाएँ चलानेवाली संस्थाओं को मान्यता देने का उपक्रम एक समिति के द्वारा चलाया गया है।

हिन्दी के प्रसार के लिए प्रतिनिधित्वपूर्ण एक शिक्षा समिति बनाई गयी है। इसके परामर्श के अनुसार हिन्दी अध्यापकों के शिक्षण के लिए आगरा में विद्यालय प्रारम्भ करने के हेतु धन दिया गया है, पूर्व और दक्षिण के राज्यों में अशासकीय संस्थाओं को हिन्दी प्रचार के लिए सहायता के अनुदान दिये गये हैं, अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के विद्यार्थियों को हिन्दी की उच्च शिक्षा के लिए छात्रवृत्तियाँ देने का निश्चय किया गया है, अहिन्दी भाषी राज्यों के शासनों को भी हिन्दी प्रसार के लिए अनुदान दिये गये हैं तथा केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों को हिन्दी सिखाने की कक्षाएँ और उसकी परीक्षाएँ चलाई जा रही हैं। राष्ट्रभाषा की दृष्टि से हिन्दी की संकेत लिपि और टाइप राइटिंग में सुधार की योजना चल रही है और हिन्दी प्रसार के लिए संस्थाओं को तदर्थ अनुदान भी दिये गये हैं।

सरकार ने विदेशों में हिन्दी शिक्षा के प्रसार के लिए भी प्रयास किया है। ब्रिटिश वेस्टइंडीज, ब्रिटिशगायना, जमैका, फिजी तथा मारीशस की पाठशालाओं और पुस्तकालयों को हिन्दी की पुस्तकें भेजी गयी हैं और श्रीलंका के विश्वविद्यालय के दो सर्वोत्तम हिन्दी छात्रों को छात्रवृत्तियाँ स्वीकृत की गयी हैं। जर्मनी और इटली की शिक्षा संस्थाओं को हिन्दी के प्राध्यापक भेजने के कार्य में सरकार ने सहायता की है और रोम विश्वविद्यालय के हिन्दी के दो सर्वोत्तम छात्रों को पुरस्कृत किया है। नेपाल के स्कूलों को तथा ऑक्सफोर्ड, डरहम और केम्ब्रिज विश्वविद्यालयों को हिन्दी पुस्तकें भेंट की गयी हैं। सरकार का एक हिन्दी प्रदर्शिनी आयोजित करने का प्रस्ताव भी है।

मौन से भ्रान्तियाँ उत्पन्न होती हैं और भ्रान्ति दुःखद होती है। शिक्षा मंत्रालय के मौन से, कभी कभी घटित होने वाली असंगतियों के कारण केन्द्र के इस शिक्षा मंत्रालय के प्रति एक व्यापक असंतोष रहा है। क्या होने जा रहा है, इसकी स्पष्ट कल्पना देश के सामने नहीं थी और मंत्रालय क्या और किस दृष्टि में करना चाहता है इसका भी संकेत नहीं था।

जहाँ तक इस कार्यक्रम का प्रश्न है, वह अच्छा है। उसकी पूर्ति से राष्ट्रभाषा

की आवश्यकता पूरी हो जाती है। जितना हो चुका है, या हो रहा है, उसके सम्बन्ध में दो मत हो सकते हैं। उदाहरणार्थ आर्थिक संकट ग्रस्त लेखकों को शासकीय सहायता का आकार किसी भी हृदयवान साहित्य प्रेमी को चुभ सकता है। जिसने अपना बाजार जमा लिया है, उसके लिए इस सहायता की आवश्यकता नहीं हो सकती और गंभीर अध्ययन पूर्ण साहित्य के सृजन में जिसने स्वयं को डुबा दिया है, जिसका बाजार कभी अर्थंकर नहीं होता, उसके लिए यह सहायता कृपणतापूर्ण ही है, करुणोत्पादक है।

अनेक क्षेत्रों में प्रगति हुई है, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि उससे अधिक प्रगति अपेक्षित नहीं थी अथवा संभव नहीं थी। पहले पाँच वर्षों में जो हुआ है, उसमें अवांछनीय शिथिलता, झिझक और अनुत्साह का साक्षात्कार होता है। फिर भी शिक्षा मंत्रालय मुखर हुआ है, उसने योजना बताई है, वह श्लाघ्य है।

भारती का प्रथम वर्ष

भारती के द्वितीय वर्ष का यह प्रथम अङ्क आपकी सेवा में जा रहा है। जन्म लेकर किसी प्रकार जीवन ढोते रहने के हम पक्षपाती नहीं हैं। भारती के प्रथम वर्ष में हमने निरंतर यह प्रयास किया कि उसका प्रत्येक अगला अंक गत अंकों से सुन्दरतर हो। अपनी परिस्थितियों के अनुसार हम इस संकल्प को पूरा करने का प्रयास करते भी रहे। इस दिशा में हमें कितनी सफलता मिली इसका निर्णय करने का कार्य हम अपने ऊपर नहीं लेना चाहते, यह निर्णय तो इसके पाठक ही कर सकेंगे।

'भारती' प्रारंभ करने के संकल्प को जब हमने मूर्त रूप देना चाहा तब इस क्षेत्र के अनेक अनुभवी मित्रों ने इस मार्ग की कठिनाइयों से हमें अवगत कराया था। हम भी उनके विषय में सशंक तो थे ही। हिन्दी की अनेक साहित्यिक पत्रिकाओं का इतिहास हम अपनी आँखों देख चुके थे। परन्तु कठिनाइयों के भय से पीछे हटने का स्वभाव हमने कभी जमने नहीं दिया, उसके कारण अनेक संकटों को निमंत्रण भी हम दे चुके हैं, साथ ही बहुत कुछ कर भी सके हैं। भारती' ने भी हमें वे अनुभव पुनः कराये जो कभी दैनिक और साप्ताहिक पत्रों में हम कर चुके थे। हमारे साथियों ने हमारे पैर लड़खड़ाते देख बीच मँझधार में हमें छोड़ दिया—बिना यह सोचे कि हम डगमगा सकते हैं, परन्तु इतनी जीवन शक्ति हम में है कि अपने लगाए हुए पादप को हम सूखने नहीं दें!

कठिनाइयों और परेशानियों के काले बादलों के किनारों पर इस प्रयास में अनेक आकर्षक स्वर्णिम प्रकाश रेखाएं भी हमारा मार्ग दर्शन करती रहीं और हमें आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करती रहीं। उनमें सबसे बहुमूल्य रहा है भारती के लेखकों का

सहयोग । हम अत्यन्त लज्जा का अनुभव करते रहे कि हम अपने लेखकों का पारिश्रमिक समय पर न भेज सके, परन्तु उसमें इच्छा का अभाव न होकर विवशताएँ ही प्रधान कारण रहीं । हम जितने घाटे का अनुमान करके चले थे, वह उसमें कहीं अधिक हुआ और यह केवल हमारे लेखकों के धैर्य और कृपा का ही परिणाम है कि भारती असमय में दिवंगत नहीं हो गयी और हम उसके 'भूतपूर्व' प्रकाशक और प्रधान या प्रबन्ध सम्पादक का पद पाने से रह गये । जब यह कुघड़ी पहले वर्ष टल गयी, तब दिखता यह है कि अब बहुत समय के लिए टल गयी ।

हमारा दूसरा सहारा रहा है हमारे पाठकों का भारती के प्रति स्नेह । उनके द्वारा न केवल हमें ठोस आर्थिक सहयोग मिला, वरन् समय समय पर उनकी सराहना भी इसे प्राप्त हुई, और हमें विश्वास हो गया कि हम वास्तव में भारत और भारती की सेवा कर रहे हैं ।

भारत के अनेक राज्यों के शासन ने भारती पर प्रारंभ से ही कृपा की है । मध्यप्रदेश, मध्यभारत तथा बम्बई राज्यों ने भारती को अपनी शिक्षा संस्थाओं के लिए मान्यता प्रदान की । राजस्थान, भूपाल, हैदराबाद, पंजाब, पेप्सू, उत्तरप्रदेश, बिहार तथा विन्ध्यप्रदेश राज्यों ने विचार करना स्वीकार कर लिया है । अन्य राज्यों ने यदि प्रथम वर्ष में हमारी ओर ध्यान नहीं दिया तो हम उन्हें कोई दोष नहीं दे सकते । शासकीय यंत्र यदि कुछ राज्यों में जल्दी घूम गया तो इसका यह अर्थ नहीं कि सभी जगह उसी गति से चले । संरक्षण प्राप्त करने के लिए धैर्य के साथ उसकी योग्यता सिद्ध करनी पड़ेगी ।

भारती के स्तर की अनेक अधिकारी विद्वानों ने सराहना की है, साथ ही अनेक मित्रों ने उसे लोकरुचि के अनुरूप बनाने का, हमारे हित में ही, आग्रह किया है । 'भारती' एक विशेष उद्देश्य को लेकर चली है । लोकरुचि तो बदलती रहती है, उसके साथ बहने के स्थान पर उसे ऊपर उठाने का प्रयास ही श्रेयस्कर है । सस्ती लोकप्रियता प्राप्त करना जिस दिन अनिवार्य हो जायगा, उस दिन 'भारती' बन्द कर देने में हमें कोई हिचक न होगी । वैसे हमें तो आत्मविश्वास है कि उच्चस्तर की सांस्कृतिक एवं साहित्यिक पत्रिकाओं के संरक्षक भारत जैसे विशाल देश में लाख पचास हजार व्यक्ति तो मिल ही जाएँगे, उन तक पहुँचने में समय लग सकता है ।

आज के युग में जब पत्रकारिता के सभी अंगों पर पूँजी का एकाधिपत्य है, केवल लेखनी के बल पर जीवित रहने वालों को इस प्रकार के प्रयास सफल बना सकना कठिन अवश्य है, परन्तु असंभव नहीं है । हम जानते हैं कि 'भारती' इस प्रकार की एकाकी पत्रिका नहीं है और इससे हमें अत्यधिक बल प्राप्त होता है ।

इससे अधिक अपनी कथा कहने का प्रयास कर हम पाठकों का और अधिक समय नहीं लेना चाहते। एक बार हम पुनः भारती के लेखकों एवं पाठकों को उनके सहयोग के लिए आभार प्रकट करते हैं और निवेदन करते हैं कि वे हमें इसी प्रकार सहयोग देते रहें। जिन्हें हमारा यह प्रयास रुचिकर एवं उपयोगी ज्ञात हुआ है, उनसे हमारा यही निवेदन है, कि उनके सामयिक एवं समुचित सहयोग के सहारे ही इस की जीवन यात्रा चल रही है तथा यशस्वी रूप में चलती रहेगी।

विद्यामन्दिर प्रकाशन

की

नवीन भेंट

मानसिंह और मानकुतहल

लेखक—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी

मध्यभारत कला-परिषद ने जिस पर वर्ष का
प्रथम पुरस्कार दिया—

उत्तर प्रदेश सरकार ने जिसके लेखक को ६००) रु०
पुरस्कार देकर सम्मानित किया है—

भारत के सांस्कृतिक इतिहास के एक अज्ञात परिच्छेद का प्रथम प्रकाशन—

भारतीय संगीत, हिन्दी साहित्य तथा कलाओं के विकास पर नवीन शोध—

(मध्यभारत शिक्षा विभाग द्वारा राज्य की शिक्षा संस्थाओं तथा पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत)

मूल्य ५)

कुछ सम्मतियाँ

—श्री नारायणस्वरूप शर्मा, एम० ए०, मंत्री, हिन्दी परिषद, लन्दन—पुस्तक कला-परिषद के प्रथम पुरस्कार की अधिकारी है। हिन्दी साहित्य को इस खोजपूर्ण देन के लिये आप मेरी हार्दिक बधाई लेखक तक पहुँचा दें।

—श्री सियारामशरण गुप्त—"मानसिंह और मानकुतूहल का प्रकाशन हिन्दी के स्वस्थ और विस्तृत दृष्टि कोण का परिचायक है। ऐसे प्रकाशन से आपकी पूर्व परम्परा का गौरव और बढ़ गया है।"

विद्या मंदिर प्रकाशन, सराफा, ग्वालियर

विद्यामंदिर-प्रकाशन, ग्वालियर

के

तीन अभिनव प्रकाशन—

वे अनुपम ग्रंथ हैं—

हमारे पड़ौसी देश—

लेखक—स्वर्गीय प्रो० रंजन

प्रस्तावना लेखक—डॉ० वासुदेवशरण

उत्तर प्रदेश की पंचायत पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत।

प्रसिद्ध देश भक्त विद्वान तथा घुमक्कड़ स्व० प्रो० श्री रघुनाथ सिंह रंजन ने इस में अपनी हिन्दचीन, स्याम आदि की यात्राओं का सुन्दर एवं सजीव वर्णन किया है। इसे पढ़ते समय आप अपने आपको भूल वर्णित देशों में ही पहुँच जाएँगे। उपन्यास की भाँति रोचक तथा भूगोल एवं इतिहास की भाँति शिक्षाप्रद। अनेक चित्र तथा कला पूर्ण तिरंगे सजिल्द आवरण सहित मूल्य २॥)

हृदयहीन—

भूमिका लेखिका—महादेवी वर्मा

लेखिका—कुमारी उर्मिला बनर्जी

हिन्दी की सफल कहानी लेखिका कुमारी बनर्जी की ७ सुन्दर हृदयग्राही तथा मर्मस्पर्शी कहानियों का इस संग्रह में संकलन है। हजारों प्रतियाँ हाथों-हाथ बिक चुकी हैं। आज ही मगाएँ। मूल्य १)

काश्मीर की घाटियों में—

लेखक—श्री लक्ष्मीनारायण अग्रवाल

मध्यभारत शासन द्वारा पुरस्कृत एवं प्रोत्साहित

काश्मीर पर निर्मम पाकिस्तानी आक्रमण, बेकारी की समस्या आदि आज के राष्ट्रीय प्रत्याघातों का सजीव वर्णन लिये हुए ५ एकांकी नाटकों का संग्रह। इसका प्रत्येक एकांकी सफलता पूर्वक अभिनीत किया जाकर सहस्त्रशः दर्शकों की स्मृति पर स्थायी छाप छोड़ गया है। मूल्य २)

अपने पुस्तकालय के लिये आज ही मंगाकर उसे समृद्ध करिये।

तीनों पुस्तकें एक साथ मँगाने पर डाक व्यय नहीं लिया जावेगा।

अपना ऑर्डर आज ही दें—

व्यवस्थापक

विद्यामन्दिर प्रकाशन

सराफा, ग्वालियर।

वार्षिक
६)

राष्ट्रभारती

एक प्रति
॥=)

—:सम्पादकः—

मोहनलाल भट्ट
हृषीकेश शर्मा

(१) यह हिन्दी पत्रिकाओं में सबसे अधिक सस्ती, एक सुन्दर साहित्यिक और सांस्कृतिक मासिक पत्रिका है। (२) इस पत्रिका को राष्ट्र-भाषा हिन्दी के तथा लगभग सभी भारतीय साहित्य और संस्कृति को बल व प्रेरणा पहुंचाने वाले प्रान्तीय भाषाओं के श्रेष्ठ लेख, विद्वान साहित्यकारों का सहयोग प्राप्त है। (३) इसमें ज्ञानपोषक और मनोरंजक श्रेष्ठ लेख, कविताएँ, कहानियाँ, एकांकी नाटक, रेखाचित्र और शब्दचित्र रहते हैं। (४) बंगला, मराठी, गुजराती आदि भारतीय भाषाओं के सुन्दर हिन्दी अनुवाद भी इसमें रहते हैं। (५) प्रतिमास पहली तारीख को प्रकाशित होती है।

ग्राहक बना देने वालों को विशेष सुविधा। एजेंसी तथा विज्ञापन दर के लिए लिखिये।

"राष्ट्रभारती" हिन्दीनगर, वर्धा [मध्य-प्रदेश]

पश्चिमोत्तर भारत की प्रमुख हिन्दी मासिक पत्रिका

विश्व ज्योति

—:सम्पादकः—

श्री विश्वबन्धु शास्त्री, श्री सन्तराम, बी ए०

संचालक—श्री विश्वेश्वरानन्द

विश्व-हित की साधना के लिए—

(क) शुद्ध सांस्कृतिक साहित्य का सृजन,
(ख) प्राचीन और नवीन ज्ञान-विज्ञान का समन्वय,
(ग) बौद्धिक क्रान्ति और नई चेतना का जागरण,
(घ) अन्यायपूर्ण सामाजिक विषमताओं का दूरीकरण,
(ङ) सभी प्रकार के विचारों का निष्पक्ष अध्ययन और आलोचन।

वार्षिक चन्दा: ८) रुपये

१०) रु० वार्षिक चन्दा देकर विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान के सदस्य बन जाने पर भेंट के रूप में मुफ्त।

पत्र-व्यवहार का पता:—

व्यवस्थापक 'विश्वज्योति', साधु आश्रम
होश्यारपुर (पंजाब)

दि गिर्द डिस्ट्रिक्ट को-ऑपरेटिव्ह बैंक लि० लश्कर

स्थापित सन् १९१८

शाखायें—डबरा, भांडेर, उपशाखायें—मुरार, भितरवार

१.	अधिकृत पूंजी	२,००,००० रुपया
२.	स्वीकृत पूंजी	१,४०,००० रुपया
३.	रक्षित कोष	७४,४०० रुपया
४.	अन्य कोष	१,१०,९०० रुपया

५. फिक्स्ड करेन्ट तथा सेविंग अकाउन्ट खाते खोले जाते हैं। डिपाजिट्स पर सूद दर निम्न प्रकार है ।-एक वर्ष से अधिक की फ़िक्स्ड डिपाजिट पर छै मासिक सूद दिया जाता है ।

फिक्स्ड		
६ माह	२।।।) प्रतिशत	वार्षिक
१ वर्ष	३) प्रतिशत	,,
२ वर्ष	३।) प्रतिशत	,,
३ वर्ष	३।।) प्रतिशत	,,
सेविंग	२।।) प्रतिशत	,,

६. त्रय-वर्षीय नगद पत्र ९) रु० में १०) रु० का मिलता है ।

७. बैंक बहुत मामूली कमीशन पर अपनी शाखाओं पर ड्राफ्ट इश्यू करता है ।

८. यह बैंक अनियमित जोखमदारी की ग्रामीण सहकारी समितियों में रुपया इन्व्हेस्ट करता है । इसलिए इन्व्हेस्टमेन्ट सुरक्षित व बेखतरे है । बैंक के अकाउन्ट्स का हर साल शासन से एप्रूव्हड आडीटर्स द्वारा आडिट होता है ।

कृपया बैंक से सम्बन्ध स्थापित कीजिये ।

रामनाथ शर्मा

रामकृष्ण दीक्षित
व्हाइस चैयरमैन

दक्षिणा-भारती

(दक्षिण-भारत की सचित्र मासिक पत्रिका)

आप अभी तक इसके ग्राहक न बने हों तो शीघ्र ही ग्राहक बनें। इसे कल पर छोड़ना एक भूल होगी।

प्रति अंक ॥)

वार्षिक चन्दा ६)

दक्षिण-भारती कार्यालय
अफजलगंज, हैदराबाद (दक्षिण)

फोन नं० ५४५०

तार : हिन्दी

अजन्ता

: मासिक :

प्रकाशक : हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद [दक्षिण]

मूल्य : ६-०-० भा. मु. वार्षिक

किसी भी मास से ग्राहक बना जा सकता है।

कुछ विशेषताएँ

१. उच्च कोटि का साहित्य
२. सुन्दर और स्वच्छ छपाई
३. कलापूर्ण चित्र

संपादक

श्री वंशीधर विद्यालंकार
श्री श्रीराम शर्मा

कुछ सम्मतियाँ

१. "अजन्ता का अपना व्यक्तित्व है"—श्री बनारसीदास चतुर्वेदी
२. "अजन्ता सुंदर और स्वच्छ पत्रिका है"—श्री दिनकर जी
३. "अजन्ता साहित्य का नया कल्पवृक्ष है"—श्री वासुदेवशरण अग्रवाल
४. "अजन्ता हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिकाओं में से एक है।"

श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी

याद रखिए पत्रिका के लिए—
१. एक निश्चित उद्देश्य चाहिए !
२. उसका अपना व्यक्तित्व चाहिए !

नई धारा

ऐसी ही एक मासिक पत्रिका है जो अशोक प्रेस, पटना से प्रकाशित हो रही है। कहानियाँ, कविताएँ, शब्द चित्र, संस्मरण, नाटक, आलोचना, निबन्ध।

हिन्दी में नई धारा के प्रतीक श्री रामवृक्ष बेनीपुरी इसका सम्पादन कर रहे हैं।

प्रादेशिक सरकारों के शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत।

जिसकी सहायता के लिए साहित्य महारथियों का सम्पादक मंडल संगठित किया गया है।

डिमाई अठपेजी के १०० पृष्ठ, पक्की जिल्द, आकर्षक कवर, सचित्र, सुसज्जित।

एक अंक १ रु०   वार्षिक १० रु०

प्रबन्धक नई धारा, अशोक प्रेस, पटना ६

—अपनी उन्नति के लिए पढ़िए—

जीवन संघर्ष में विद्यार्थियों तथा समस्त अन्य व्यक्तियों को
सहायता देने के लिए हिन्दी में अपने प्रकार की पहली
मासिक-पत्रिका

सफल जीवन

(६४, बेयर्ड रोड, नई देहली)

मुख्य विषय——

(१) आगामी परीक्षाएं, (२) नवयुवकों और नवयुवतियों को मिल सकने वाली सरकारी और प्राइवेट नौकरियां, (३) रत्न, भूषण, प्रभाकर और साहित्यरत्न परीक्षाओं के लिए साहित्यिक लेख, (४) कहानी-कविता, (५) ज्ञान-विज्ञान, (६) देश, विदेश के समाचार, (७) खेल और सिनेमा।

आज ही ग्राहक बनिए

चन्दा:—वार्षिक ७), छ:माही ४), एक प्रति ।।।)

नमूने की प्रति के लिए १२ आने के टिकट भेजें।

सफल जीवन पुस्तकमाला अमूल्य निधि है। अवश्य पढ़िए।

पंचायत—सन्देश

[बिहार राज्य पंचायत परिषद् द्वारा संचालित मासिक पत्र]

जिसके प्रत्येक अंक में

पंचायत सम्बन्धी उत्कृष्ट मौलिक कई रचनाओं के साथ-साथ कहानी, कविता एकांकी, निबन्ध तथा अनेक स्थायी स्तम्भों के अन्तर्गगत महत्त्वपूर्ण तथा उपादेय सामग्रियाँ अनिवार्य रूप से प्रकाशित की जाती हैं। पंचायतों के लिए विशेष रूप से संग्रहणीय।

चन्दा

वार्षिक—साढ़े चार रुपये ● एक अंक का—छः आने

प्रधान सम्पादक
पं० विनोदानन्द झा

सम्पादक
परमानन्द दोषी

कार्यालयः—
पंचायत-सन्देश
पटना लॉ टाइम्स बिल्डिंग्स, कदमकुआँ, पटना-३

स्मृतिदायक केशवर्धक सुगन्धयुक्त

दिनारा ब्राह्मी आँवला तैल

DINARA BRAHMI ANWLA HAIROIL

JUDICIOUSLY MEDICATED HAIR & BRAIN TONIC WITH De Luxe PERFUME

तिल तैल
भृंगराज
आंवला
ब्राह्मी
अगर
चंदन
कपूर
इलायची
उशीर
केशर
जायपत्री
पुष्करमूल
आदि से निर्मित

आमलकीब्राह्मीभृंगपत्रकागुरुचन्दनैः ।
एलाशैलेयकर्पूरोशीरजातीसुमादिभिः ॥
विधिनापाचयेत्तैलं शटीपुष्करकेशरैः ।
दिव्यगंधंहितंमेध्यंशान्तिदंकेशवर्धनम् ॥

दिनारा आरोग्य भवन, ग्वालियर, म. भा.

DINARA AROGYA BHAVAN, GWALIOR, M. B.

सर्वत्र मिलता है

२० औंस शीशी	३ रु० ९ आ०	५ औंस	१ रु० १ आ०
१० औंस	२ रु० १ आ०	१॥ औंस	५ आ० ६ पा०

से अधिक न दें

डाक से आपके घर तक भेजने की व्यवस्था।

तीन पैकिंगों पर डाक खर्च माफ।

दीपावली

के पुनीत अवसर पर

‘नया समाज’

की

नई भेंट

● कहानी अंक ●

‘नया समाज’ के विशेषांकों की हिन्दी-संसार में अब तक इसलिए धाक नहीं रही है कि वे बड़े भारी भरकम और तड़क-भड़क वाले होते हैं; बल्कि इसलिए कि वे सुरुचिपूर्ण उद्देश्यपूर्ण और शिक्षापूर्ण होते हैं। इसके नवनिर्माण-अंक, सस्कृति-अंक, स्वास्थ्य-अंक, जनतंत्र-अंक, परिवार-नियोजन-अंक, साहित्यांक आदि को जनता ने इतना पसन्द किया कि आज तक भी उनकी माँग बराबर बनी हुई है। हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि इसका अगला विशेषांक

● कहानी अंक ●

इसी परम्परा की रक्षा करने वाला होगा। इसमें देश-विदेश की चुनी हुई सुरुचिपूर्ण और उद्देश्यपरक कहानियाँ रहेंगी, जैसी आजकल के पत्र-पत्रिकाओं में प्रायः कम ही सुलभ होती हैं।

आप यदि ग्राहक नहीं बने हैं, तो आज ही ८) भेजकर ग्राहक बन जायँ। अपनी प्रति पहले से सुरक्षित करवा लें।

व्यवस्थापक,
‘नया समाज’
३३, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता-१

सिनेमा प्रोजेक्टर (सिनेमा की छोटी मशीन)

यह मशीन धातु की बनी हुई है। इससे आप पर्दे पर अपने पसन्द के ऐक्टर तथा ऐक्ट्रेसों की तरह तरह की रंगीन फिल्मी तस्वीरें चलती, फिरती, नाचती, कूदती उतनी ही बड़ी जितनी आप सिनेमा मे देखते है, देखकर परिवार सहित घर पर सिनेमा का आनन्द प्राप्त करेंगे। यह मशीन हाथ से टॉर्च (बैटरी) या बिजली (ए. सी. या डी. सी.) दोनों से चलाई जा सकती है। ५ गज फिल्म तस्वीरों की रील मुफ्त तथा (सचित्र) चलाने की प्रयोग विधि सहित मू० १२।।)। पोस्टेज पैकिंग ३) रु० अलग। फिल्म तस्वीरों की रील मू० ।।) आ० प्रति गज, सिनेमा के लिये पर्दा मू० ३)।

ग्लोब ट्रेडर्स [बी० जी०] रंगमहल, अलीगढ़

सहस्रों रुपयों के पुरस्कार दिलाने वाला पाक्षिक

'पहेली घर'

(सम्पादिका—कल्पना कुमारी)

हिन्दी-अंग्रेजी की प्रमुख पहेलियों की विवेचनाएं धारावाहिक उपन्यास एवं अन्य रोचक और उपयोगी सामग्री से भरपूर। वर्ष में २४ अङ्क, अतिरिक्ताङ्क अलग। एक प्रति चार आना। वार्षिक ४।।) रुपये भेजकर बनने पर ३)रु० के मूल्य की पुस्तक 'पहेली सहायक' बिल्कुल मुफ्त। नमूना मँगाने के लिए चार आने का टिकट या १० पढ़े-लिखे सज्जनों के पूरे पते भेजकर प्राप्त करें।

व्यवस्थापकः—

'पहेली घर' कार्यालय
गली रावलिया, मथुरा (उ० प्र०)

सफेद कोढ़

हजारों के नष्ट हुए और सैकड़ों के प्रशंसा पत्र मिल चुके हैं दवा का मूल्य ५ रु० डा० व्य० १ रु० अधिक विवरण मुफ्त मंगाकर देखिये।

वैद्य बी० आर० बोरकर
मु० पो० मंगरूलपीर जि० अकोला
(मध्यप्रदेश)

'नई दिशा'

[त्रैमासिक साहित्य संकलन]

युगान्तरकारी साहित्य के नये चरण !

संपादक

श्रीकान्त वर्मा, रामकृष्ण श्रीवास्तव

सह-संपादक

राजेन्द्र गुप्त

सलाहकार—गजानन माधव मुक्तिबोध, प्रभाकर माचवे, नरेश मेहता ।

नये साहित्य को स्वस्थ दृष्टिकोण प्रदान करने वाली 'नई दिशा' के खुले द्वार, नई प्रतिभाओं का स्वागत करेंगे ।

प्रथम अंक मई के द्वितीय सप्ताह में प्रकाशित होगा ।

वार्षिक शुल्क ४) एक प्रति १)

पृष्ठ संख्या १००

'नई दिशा' कार्यालय, विलासपुर (मध्यप्रदेश)

धनवान बनाने वाला पुस्तकें

चित्रकारी, पेन्टिंग शिक्षा २।।), धनवान बनने के गुप्त रहस्य २।।), सिलाई कटाई शिक्षा २।।), इलैक्ट्रिक रेडिओ गाइड २।।), मोटर ड्राइविंग गाइड ४), मोटर मैकेनिक गाइड ४), घड़ी मरम्मत शिक्षा ३।।), सायकिल रिपेयरिंग शिक्षा ३), हर प्रकार के साबुन बनाना २।।), हर प्रकार के सुगंधित इत्र तेल बनाना २।।), ताश का जादू २।।), मेस्मेरेजम (मोहिनी) विद्या २।।) ।

प्रत्येक पुस्तक पर डाकखर्च ।।।) अलग ।

हिन्दुस्थान ट्रेडर्स एण्ड पब्लिशर्स लि०
भरतपुर (राजस्थान)

कल्पना

साहित्य, संस्कृति और कला की मासिक-पत्रिका

जिसने

हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता का एक नया प्रतिमान स्थापित किया है ।

कृतियाँ, निबन्ध, कविता, कहानी, एकांकी स्तंभ, संपादकीय, पाठकों के पत्र, समालोचना तथा पुस्तक-परिचय, साहित्य-धारा ।

पृष्ठ संख्या १००

वार्षिक शुल्क १२ रु०

एक प्रति १ रु०

'कल्पना' कार्यालय,
८३१, बेगम बाजार, हैदराबाद-द०

पुस्तकालयों तथा अध्ययन कक्षों के लिए अनिवार्य—

भारतीय सांस्कृतिक इतिहास का महान् ग्रंथ

जिसकी छपते ही सैकड़ों प्रतियाँ बिक गईं—

❀ भारत की मूर्तिकला ❀

★

लेखक

श्री हरिहरनिवास द्विवेदी

प्राग् ऐतिहासिक काल से वर्तमान काल तक भारतीय मूर्तिकला के विकास का अत्यन्त प्रामाणिक साथ ही सरल और हृदयग्राही शैली में लिखा गया इतिहास। हिन्दी के लिए यह ग्रन्थ अपूर्व देन है।

अत्यन्त सुन्दर छपाई, मनोहर जिल्द, १०० से अधिक आर्टपेपर पर छपे चित्र।

मूल्य १०) रुपया। डाक व्यय पृथक्।

आज ही ऑर्डर दें

प्रबन्धक

विद्या मंदिर प्रकाशन, सराफा, ग्वालियर

× हिन्दी साहित्य में युगान्तर—
× भारतीय जन-जीवन में नई दिशा—
× काम सम्बन्धी सम्वाद एवम् साहित्य—
× काम तथा मनोविज्ञान सम्बन्धी खोज—

एक प्रति ।=) **❀ मस्ती ❀** वार्षिक ४)

सम्पादक—नरेन्द्र धीर

—यदि आप ग्राहक नहीं बने हैं तो आज ही ४) भेज कर वार्षिक ग्राहक बनें।
—यदि आपने विज्ञापन इसमें नहीं दिया है तो आज ही विज्ञापन भेजदें।
—यदि आपने एजेन्सी नहीं ली है, तो आज ही एजेन्सी लेलें।

आज ही लिखिए—व्यवस्थापक "मस्ती" खन्ना (पू० पंजाब)

रूस, अमेरिका, चीन, चेकोस्लोवाकिया तथा पूर्वीय एशियायी देशों तक अपना व्यापार, देश तथा विदेशों तक फैलाने के लिये,

भारती में

विज्ञापन दीजिये।

दरों के लिये आज ही लिखें,

व्यवस्थापक,
'भारती'

जिस साहित्य का जीवन से सम्बन्ध नहीं, वह निरर्थक है। जो साहित्य मानव-जाति की सेवा की प्रेरणा नहीं देता, वह निष्प्रयोजनीय है। और

जो साहित्य बुद्धि-भेद उत्पन्न करता है, वह अनिष्टकारी है।

जीवन साहित्य

में जीवन, मानव-जाति की सेवा की प्रेरणा और एकनिष्ट बुद्धि से अपने मार्ग पर चलने का बल मिलेगा।

एक प्रति अवश्य देखने की कृपा कीजिये।

वार्षिक मूल्य ४) एक प्रति ।=)

सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली।

उत्तर प्रदेश शासन द्वारा पुरस्कृत—

मध्यभारत शासन द्वारा शिक्षा संस्थाओं को स्वीकृत—

पुरातात्विक शोध का रोचक ग्रन्थ

त्रिपुरी

लेखक—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी
भारत के तीन प्राचीन वैभवशाली नगरों का इतिहास—

विदिशा—जो अत्यन्त प्राचीन काल से भारत का सांस्कृतिक केन्द्र रही है—
पद्मावती—जहाँ नाग, गुप्त और पूर्व मध्यकालीन प्रतापी राजवंशों ने साहित्य एवं कला की उपासना की—
बाघ—जहाँ की मूर्त्तिकला और चित्रकला भारत की श्रेष्ठतम कृतियों में है—

की हृदयग्राही गाथा की रोचक शोध—

प्राचीन साहित्य, पुराणों, शिलालेखों तथा अवशेषों पर से लिखा गया वर्णन।
सुन्दर जिल्द, अनेक चित्र। मूल्य २)

कुछ सम्मतियाँ—

सामग्री अत्यन्त श्रेष्ठ तथा शैली हृदयग्राहक है—

—श्री व्ही० पी० अग्निहोत्री
भारत शासन के अण्डर सेक्रेटरी,
शिक्षा विभाग

यह हिन्दी साहित्य और इतिहास के वैभव की दिशा है—

—डॉ० रामकुमार वर्मा

इतिहास के विद्यार्थियों के लिये यह पुस्तक बड़े काम की है—

—"नई धारा"

विद्या मंदिर प्रकाशन, सराफा, ग्वालियर

भारती

रचना-सूची

वर्ष १, खंड २ [अंक ७ से १२ तक]

शीर्षक — रचयिता — पृष्ठ संख्या

अगली दशाब्दी की वैज्ञानिक कहानी (कहानी)—श्री ओम्प्रकाश २५
अंजली (कहानी)—श्री परदेशी ४५६
अनुकम्पा (कविता)—श्री आरसीप्रसादसिंह ... ३०३
अस्तित्ववाद (लेख)—प्रो० रमाशंकर तिवारी १०५
आनंद (लेख)—आचार्य गुरुदयाल मल्लिक ३
आनंद का दुःख (कहानी)—श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी २१४
आशावती मरियम का गीत (कविता)—श्री वीरेन्द्रकुमार जैन १४
उस्ताद बुन्देखाँ (कहानी)—श्री शम्भुनाथ सक्सेना ४४३
एक रेखा चित्र (कहानी)—श्री रांगेय राघव ... २४५
और जब बेंजो टूट गया (कहानी)—श्री शम्भुनाथ सक्सेना २२८
कबीर और तुलसी के राम (लेख)—आचार्य सद्गुरुशरण अवस्थी १८२
कर्म विजय है (कविता)—श्री विद्यावती मिश्र ... ३७४
कला और समाज (लेख)—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी ३६१
किलकिलानो द्वीप के कौवे (एकांकी)—श्री अनंतकुमार पाषाण ... १३६
कुबेर (लेख)—डॉ० मोतीचंद्र ... ३०५
कृषि विकास और मध्यभारत (लेख)—श्री श्रीवल्लभ श्रीवास्तव १६०
कोई होगा तो ! (कविता)—श्री अधीर ४४२
क्रांति (कविता)—श्री भगवानदास माहौर २३५
गाय की रक्षा और सम्वर्धन (लेख)—श्री बैजनाथ महोदय ३३

गीत (कविता)—श्री जितेन्द्रकुमार १५५
गीत (कविता)—श्री वीरेन्द्र मिश्र ... २७६
गीत (कविता)—श्री सुन्दर लोहिया ४७५
गीत (कविता)—श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ... ४०६
गीत (कविता)—डॉ० हरिवंशराय 'बच्चन' ... ३०३
गीत (कविता)—डॉ० हरिवंशराय 'बच्चन' ... १०३
गीत मेरे प्यार के (कविता)—श्री राजेन्द्र किशोर ४३
गीत यदि गा दे (कविता)—श्री बालकृष्णराव ... २१३
ग्वालियरी हिन्दी का प्राचीनतम ग्रंथ (लेख)—श्री अगरचंद नाहटा २०८
घड़ी की सुइयाँ (कविता)—श्री बालकृष्णराव ... ४२४
घर का घेरा (कविता)—श्रीमती हीरादेवी चतुर्वेदी ३१८
चतुर्भुजदास की मधुमालती का सौन्दर्य वर्णन (लेख)—
श्री हरिहरनिवास द्विवेदी १५७
जागेगी एक बार (कविता)—श्री राधेलाल चतुर्वेदी ७२
जीवन-क्रम (कविता)—श्री कृष्णनंदन 'पीयूष' १८९
जैन इतिहास में धारा-नगरी (लेख)--श्री अगरचंद नाहटा ... ११६
ज्ञान-दीप (कविता)—श्री दिवाकर १२८
ज्वारभाटा (कहानी)—श्री देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' ४३२
ताड़ना (कहानी)—श्री विमला बाँठिया ३४४
तुम (गद्य-गीत)—श्री अशोक वाजपेयी ... २७२
तुमने मेरी पीर न जानी (कविता)—श्री कान्ता ३६०
दिनकर की कृति रश्मिरथी (लेख)—श्री कालिकाप्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर' १४७
दिनकर के चार संग्रह (लेख)—श्री रामकुमार चतुर्वेदी ४८५
दुनियाँ से मैं प्यार नहीं माँगूगा (कविता)—श्री नर्मदाप्रसाद खरे ... ३१६
दो गद्य-गीत (गद्य-गीत)—श्री उमानंदन चतुर्वेदी ... २६५
धरती का शृंगार (कविता)—श्री विनोद रस्तोगी ४६१
नयन मिलन (कविता;—श्री आरसीप्रसादसिंह १६६
नवभारत का निर्माण (लेख)—राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ... ३८४
नाम विलोपन (कहानी)—श्री धूमकेतु ३३२
निमाड़ के गरबा गीत (लेख)—श्री प्रभाकर जोशी ३५२
नीम चमेली (कहानी)—श्री परदेशी ६५
पतझर में भी मधुमास (कविता)—श्री रामकुमार चतुर्वेदी 'चंचल' ... ३५०

रचना-सूची

पत्नी का विद्रोह (कहानी)—श्री विमला बाँठिया १७६
प्रकाशन परिचय— २८९
बड़े नानाजी की बहू (कहानी)—श्रीराम जोगलेकर २७८
बेकारों की बैठक (एकांकी)—श्री लक्ष्मीनारायण अग्रवाल — ४९
बोतल (कहानी)—श्री उषादेवी मित्रा ... २५७
भदावर के इतिहास की कठिनाइयाँ (लेख)—
न्यायमूर्त्ति श्री ब्रजकिशोर चतुर्वेदी ... ८४
भारतीय शिक्षा की समस्या (लेख)—श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार १२९
मदरा बजत मैरें सोहरौ (लेख)—श्री शान्तिचन्द्र २३६
मध्यदेश और उसकी बोली (लेख)—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी ... ४४
मध्यभारत की पंचवर्षीय योजना (लेख)—श्री दयानारायण गुप्त ७३
मन की बात बताऊँ (कविता)—श्री अंचल २४४
माँझी ! (गद्य-गीत)—श्री उमानंदन चतुर्वेदी ४८४
मिट्टी के दीपक (कविता)—श्री विनोद रस्तोगी २५५
मीराँबाई की परिचयी (लेख)—श्री अगरचंद नाहटा ४
मृत्यु के पश्चात (कहानी)—श्री कोमलसिंह सोलंकी ... ३५७
मेरा जीवन ध्रुव सा अविचल (कविता)—डॉ० रामानंद ... ४६७
मैं निर्झर हूँ (कविता)—श्री परमेश्वर द्विरेफ ... २८५
यशस्वी और सफल खेती (लेख)—श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार ... ४५०
यह भी जीवन है ! (कहानी)—श्री राजेन्द्रप्रसाद मिश्र ... ३६७
रघुनाथसिंह रंजन (लेख)—श्री विष्णु प्रभाकर २२०
रश्मिरथी में विदेशी शब्द (लेख)—श्री रामधारीसिंह दिनकर ... ३९१
रेणु की गुड़िया (कहानी)—श्री राजेन्द्रकिशोर ४६८
लोकतंत्र में हिन्दी की समस्याएँ (लेख)—
श्री ब्रिजलाल बियाणी, वित्त मंत्री, मध्यप्रदेश ... १६८
लौकिक प्रेमाख्यान धारा (लेख)—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी ... ४६२
वरुणदेव मानव की सेवा में (लेख)—श्री ओम्प्रकाश ... ३३९
वासुदेव बलवन्त फड़के (लेख)—श्री रतनलाल बंसल ... ३२५
विद्यापति की सौन्दर्य सृष्टि (लेख)—प्रो० रमाशंकर ... ४१०
शान्तिदूत (कविता)—श्री महादेवी वर्मा मुख पृष्ठ, मई जून ...
शान्तिदूत भारत(लेख)—श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल ... ३७१
सपनों में क्या सार है (लेख)—श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति ४२५

समृद्धि के लिए विद्युत्-शक्ति (लेख)—
श्री चौधरी लहरीसिंह, सिंचन तथा विद्युत्-मंत्री पंजाब ८०
सम्पादकीय टिप्पणियाँ— ९५, १९६, २९५, ३९३, ४९७
सहचिंतन सहअनुभूति (लेख)—आचार्य श्री विनोबा भावे ४७५
सागर की पेंदी के कुछ विचित्र शिकारी (लेख)—श्री ओमप्रकाश ... २५१
साधना के स्वर (कविता)—डॉ० रामकुमार वर्मा ... १
सांध्यगीत (कविता)—श्री शिवनारायणसिंह 'सुयोगी' ६४
सुन्दर शृंगार की भाषा (लेख)—श्री अगरचंद नाहटा ... ३१२
सेवा का मूल्य (कहानी)—श्री विजयकुमार गुप्त ... ३७५
सोवियत भाषाओं में भारतीय साहित्य (लेख)—
श्री ओ० अफानसियेव २८६
स्कन्दगुप्त (लेख)—डॉ० भगवत्शरण उपाध्याय १६
स्मृतिक्रम (कविता)—श्री सुमित्रानंदन पंत ... २०३
स्व० प्रो० रंजन और उनका 'हमारे पड़ोसी देश' (लेख)—
डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ३८८
हिन्दी का छः शब्द (लेख)—श्री किशोरीदास बाजपेयी २७५
हिम्मत न हारो (कविता)—श्री महेन्द्र भटनागर ३९८
होइ हैं शिला सब चंद्रमुखी (लेख)—श्री विद्यानिवास मिश्र ... ५८

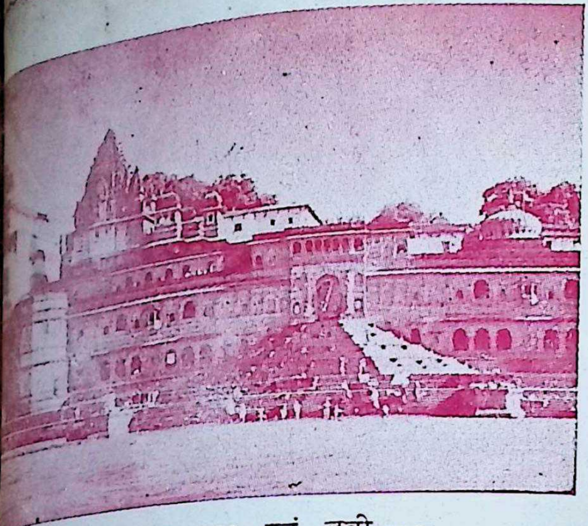

— महेश्वर का घाट एवं छत्री —

'नगर सुन्दर एक महेश्वर'

— कै. राजकवि भा. रा. तांबे

कै. राजकवि भा. रा० तांबे द्वारा वर्णित देवी अहिल्याबाई का

महेश्वर

भ्रमण के लिये सुन्दर स्थान है

उसी प्रकार

महेश्वर की

लुगड़ी

साड़ियां

एवं

खन

का भारतीय महिलाओं के जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है

मंदिर में दर्शनीय स्थापत्य-कला का एक सुन्दर नमूना

गृह उद्योगों को प्रोत्साहन दीजिये

— सहस्त्रधारा (नर्मदा) —

— सूचना विभाग, मध्यभारत शासन द्वारा प्रकाशित —

सेहत और ताकत का नुसखा

जे० बी० मंघाराम के

इतने स्वादिष्ट
जे.बी. मंघाराम के नरिशिंग बिस्कुट खस्ता एवं स्वादिष्ट हैं इसलिये हमें अच्छे लगते हैं। इसके अलावा ये हमें ताकतवर एवं स्वास्थ्य बनाते हैं।
J. B. MANGHARAM'S
NOURISHING
Biscuits
NOURISHING

नरिशिंग

बिस्कुट

विटामिनों से पूर्ण

Agents:--**PRITAM STORES**
JIVAJI CHOWK PATANKAR BAZAR SUBHASH MARKET

ारती

अगस्त १९५५

ाहित्य, संस्कृति एवं कला की मासिक पत्रिव

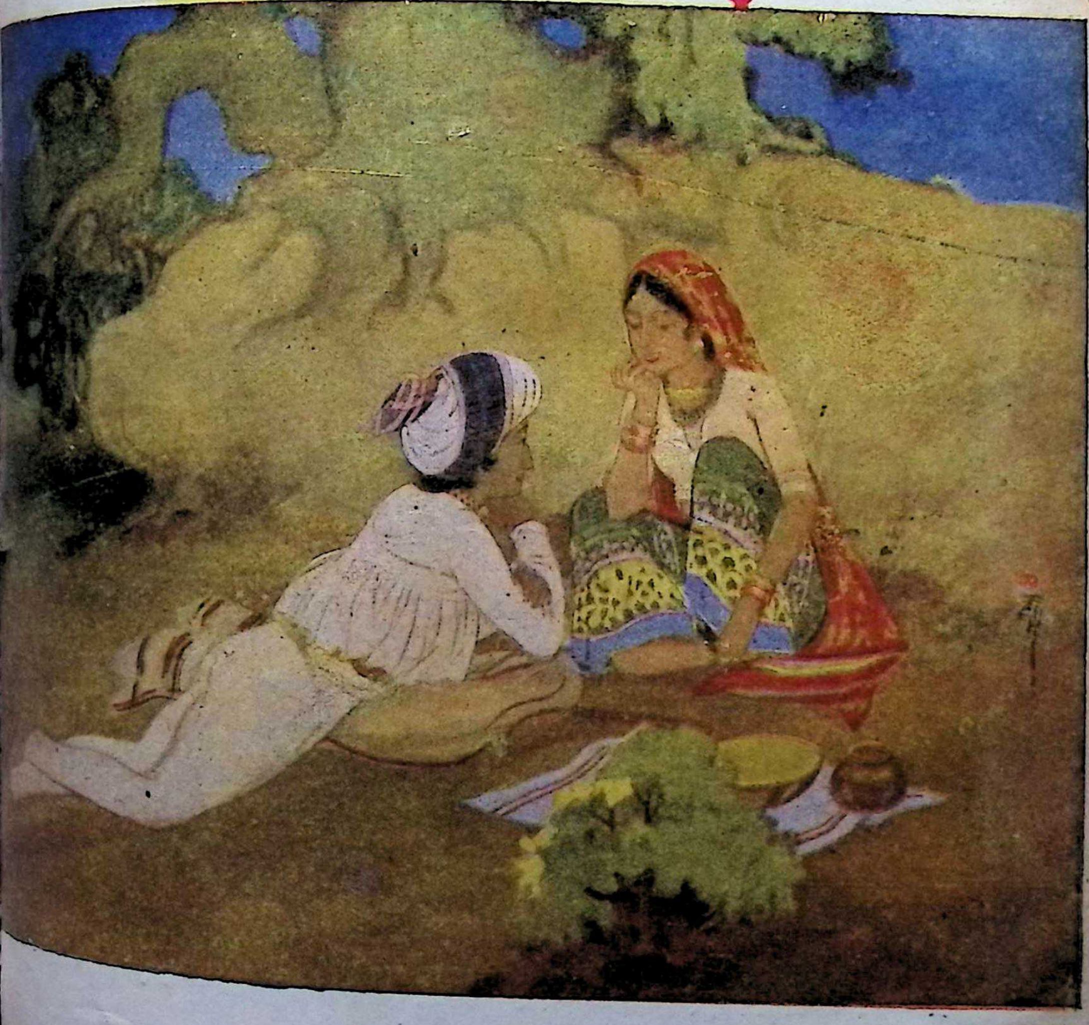

सन् १९५५ के हिन्दी के नवरत्न

हमारे नये प्रकाशन

[प्रेस में]

रंगीन डोरे (कहानी संग्रह)—लेखक श्री देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त', सम्पादक सरस्वती ।

हमारी मंगल यात्रा—हिन्दी में प्रथम मौलिक वैज्ञानिक उपन्यास । मंगल ग्रह की रोमांचकारी यात्रा का विवरण । लेखक—श्री ओम्प्रकाश ।

बोस्तां—शेखसादी की अमरकृति का हिन्दी अनुवाद । अनुवादक श्री जहूरबख्श, हिन्दीकोविद । प्रत्येक पृष्ठ सुन्दर अलंकरणों से विभूषित ।

धूल का परिचय—श्री रामकुमार 'चंचल' की प्राणपूर्ण एव श्रेष्ठतम कविताओं का संग्रह ।

घर की देवी—गृहस्थी, समाज और महिलाजागृति पर श्रीमती हीरादेवी चतुर्वेदी के निबन्ध ।

बैसाखी—नवोदित लेखिका कुमारी उर्मिला बनर्जी के दो अत्यन्त हृदयग्राही लघु उपन्यास ।

मध्यकालीन सांस्कृतिक नवोन्मेष—ईसवी १५ वीं शताब्दी में भाषा, साहित्य संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला एवं स्थापत्य में हुए क्रान्तिकारी नवोन्मेष का ऐतिहासिक विवेचन । इस पुस्तक में भारतीय संस्कृति के इतिहास के एक अज्ञात अंश पर प्रथम बार प्रकाश डाला गया है । लेखक—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी ।

चतुर्भुजदास की मधुमालती—हिन्दी के एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का अनेक हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर तैयार किया गया संस्करण । विस्तृत विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना सहित । संपादक—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी ।

उत्सर्ग—काश्मीर की मुक्ति में भारतीय वीरों द्वारा आत्मोत्सर्ग के सम्बन्ध में अत्यन्त ओजस्वी खंडकाव्य । रचयिता—श्री विजयगोविन्द द्विवेदी ।

विद्यामंदिर प्रकाशन, ग्वालियर

गुलाबसिंह एण्ड संस के समस्त रेल्वे-स्टालों पर प्राप्त

मध्यप्रदेश, बम्बई, मध्यभारत तथा अनेक राज्यों की शिक्षासंस्थाओं
एवं पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

भारती

वर्ष २ खंड १]   अगस्त, १९५५   [अंक १ पूर्णांक १४

★

प्रधान-संपादक
हरिहरनिवास द्विवेदी
संपादक
विजय गोविन्द

*

कला-संपादक
भांड-शिल्प-मंदिर
ग्वालियर

*

प्रबन्धक
उदय द्विवेदी

वार्षिक मूल्य ८)   एक अंक का मूल्य ।।।)

भारती-कार्यालय ग्वालियर

इस अंक के लेखक

श्री सोहनलाल द्विवेदी—पो० बिन्दकी (उ० प्र०)
श्री रामप्रसाद प्रजापति—पचखोरा, रतसर, बलिया
श्री अरविन्द जोशी 'पुष्प'—चैतन्य कुटी, अहमदाबाद, १४
श्रीमती विद्यावती मिश्र—दुर्विजयगंज धानमण्डी, लखनऊ
श्री भगवानदास माहौर—६६/१, टौरिया नरसिंहराव, झाँसी
प्रो० गजानन शर्मा—महाविद्यालय, बिलासपुर
श्री परदेशी –साहित्य रत्न, ओरलेम, मलाड, बम्बई
प्रो० उत्तमचन्द जैन 'गोयल'—महाविद्यालय, बिलासपुर
श्री ओमप्रकाश—७ डी, गवर्नमेंट क्वार्टर्स, नयी दिल्ली
श्री राजेन्द्र किशोर—द्वारा डॉ० एच० के० सिनहा, सिविल हॉस्पिटल बेगूसराय, बिहार
कुमारी प्रभा जोशी—बड़वानी (म० भा०)
श्री शकुन्त माथुर—द्वारा श्री गिरिजाकुमार माथुर, आकाशवाणी, नयी दिल्ली
श्री अनवर आगेवान—शिराजगढ़, गोंडल, काठियावाड़
श्री हीरादेवी चतुर्वेदी—६४, कर्नलगंज, इलाहाबाद
श्री राहुल सांकृत्यायन—हॅपी वॅली, मसूरी
श्री भगवती प्रसाद वाजपेयी—८६/३३५ चन्द्रिकादेवी रोड, देवनगर, कानपुर
माननीय श्री तख्तमल जैन मुख्यमंत्री मध्यभारत भेलसा
श्री वीरेन्द्रकुमार जैन—गोविन्दनिवास, सरोजिनी रोड विलेपार्ले (पश्चिम), बम्बई २४

'भारती'–सम्पादक की प्रार्थनाएँ

कृपया—

१. समस्त रचनाएँ, समालोचनार्थ पुस्तकें, परिवर्तन के सामयिक-पत्र आदि, सम्पादक, 'भारती', सराफ़ा, ग्वालियर के पते पर, पूरे डाक-टिकट लगाकर, भेजें।

२. रचनाएँ सामान्यतः अच्छे कागज़ों पर, एक ही ओर, चारों ओर उचित हाशिया छोड़कर, टाइप की गयी या सुपाठ्य अक्षरों में स्याही से लिखी गयी भेजें।

३. केवल वही रचनाएँ भेजें, जो पहले कहीं भी प्रकाशित न हुई हों। 'भारती' में छप चुकने के एक मास बाद रचयिता अपनी रचना चाहे जहाँ छपा सकते हैं।

४. यथासंभव प्रत्येक रचना की प्रतिलिपि अपने पास रख लेने का कष्ट करें। अस्वीकृत रचनाएँ वापस मँगाने के लिए डाक के टिकिट अवश्य भिजवाएँ।

५. चार सप्ताह के अन्दर स्वीकृति की सूचना न मिलने पर यह समझ लें कि रचना 'भारती' में प्रकाशित न हो सकेगी।

६. प्रत्येक रचना के नीचे अपना पूरा नाम और पता स्पष्ट लिखने का कष्ट करें।

७. अनूदित रचना पर उसके अनूदित होने की सूचना लिखें। मूल लेखक की अनुमति लें।

८. समालोचनार्थ पुस्तकों आदि की दो-दो प्रतियाँ भिजवाएँ।

भारती पर पाठकों के

अभिमत

हिन्दी की सर्व श्रेष्ठ पत्रिका

● **श्री किशोरीदास वाजपेयी, कनखल—**

—भारती की प्रगति से भारत की प्रगति है। आपकी यह सुन्दर पत्रिका सभी दलदलों से दूर रहकर स्वस्थ सामग्री देती है, जो कि राष्ट्र को चाहिए। आगे सब बाधाएँ दूर हो जाएँगीं।

● **श्री मोहनसिंह सेंगर, सम्पादक 'नया समाज' कलकत्ता—**

—सचमुच इसका सम्पादन बड़े परिश्रम, लगन और सूझ-बूझ से किया जाता है। जिस क्षेत्र में आपने इसका झण्डा गाड़ा है और जिस आत्म त्याग एवं परिश्रम से इसे चलाया है, वह तो और भी स्तुत्य है।

● **श्री देवराज दिनेश, देहली—**

—हर रूप में पत्रिका सुन्दर है। वास्तव में ही आपका प्रयास सराहनीय है। अल्प समय में ही हिन्दी की श्रेष्ठ पत्रिकाओं में भारती ने अपना विशेष स्थान बना लिया है। मेरी शुभ कामनाएँ भारती के साथ हैं।

● **श्री अनन्तकुमार पाषाण, बम्बई—**

—आज पद-पद पर जिस प्रकार का द्वैत है उससे ऊपर 'भारती' साहित्य के अद्वैत रूप की सिद्धि में सन्नद्ध रही है। न केवल खोजपूर्ण साहित्य उसमें प्रकाशित हुआ है, अपितु साधारण जन के मनोरंजन की दृष्टि भी उससे सार्थक हुई है।

महाकवि सोहनलाल द्विवेदी का अभिमत

"सभी दृष्टियों से भारती बेजोड़ है"

—भारती हिन्दी की प्रथमश्रेणी की पत्रिका है। जिस लगन और श्रम के साथ भारती का प्रकाशन हो रहा है, उसकी होड़ में कम ही मासिक पत्र टिक सकेंगे।

क्या सुपाठ्य सामग्री, क्या सुप्रकाशन—सभी दृष्टियों से भारती बेजोड़ है। मै भारती की उत्तरोत्तर उन्नति चाहता हूँ।

श्री अवनीन्द्र विद्यालंकार, इतिहास सदन, नई दिल्ली—

—आपका उद्योग स्तुत्य और प्रशंसनीय है। मंगलमय भगवान से आपके इस महान साहित्यक उद्योग की सफलता चाहता हूँ। परम प्रभु आपके प्रयत्नों को सफल करें।

डॉ० मोतीचन्द, बम्बई

—आप सब कठिनाइयां होते हुए भी भारती निकाल ले जाएँगे इसमें मुझे सन्देह नहीं।

सुश्री विमला बाँठिया, कोटा—

—'भारती' से परिचय आदरणीय बाँठिया साहब के कारण हुआ। पत्रिका मुझे आरम्भ से ही काफी अच्छी लगी है। इसके शोधपूर्ण लेखों, निबन्धों एवं उच्च स्तरीय कहानियों ने इसे निश्चय ही सर्वश्रेष्ठ पत्रिकाओं की टक्कर का बना दिया है। इतनी श्रेष्ठ सामग्री के प्रकाशन के लिए आप बधाई के पात्र हैं।

श्री वृन्दावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झांसी—

—भारती में बराबर अच्छी सामग्री प्रकाशित होती आ रही है। भविष्य के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

कविवर अंचल, जबलपुर—

—'भारती' का नया रूप अत्यन्त आकर्षक और सारगर्भित है। पाठ्य सामग्री का चयन और मुद्रण सुन्दर है। बधाई। 'भारती' की साहितियक श्रेष्ठता असंदिग्ध है।

श्री बालकृष्णराव, इलाहबाद—

—आप 'भारती' का प्रकाशन जिस लगन के साथ कर रहे हैं वह प्रशंसनीय है, अंक अच्छे निकल रहे हैं। आशा है पत्रिका उत्तरोत्तर उत्तमतर होती जाएगी।

श्री शेखर, संपादक 'प्रवाह' अकोला—

—आप लोगों के परिश्रम एवं अनुभव के संयोग से 'भारती' विगत दो-तीन अंकों से जिस प्रगति और सफलता का परिचय दे रही है, वह इस मशीन युग के संप्राप्तिकाल में अपना एक ऐतिहासिक महत्व रखती है। मेरी समस्त शुभकामनाएँ, स्नेह एवं सहयोग आपके साथ ही हैं।

अनुक्रमणिका

कविता—

पृष्ठ

पूजा-गीत— श्री सोहनलाल द्विवेदी १०७
गीत— श्रीमती विद्यावती मिश्र ... १३०
उठ क्रान्ति सुन्दरी जाग जाग !— प्रो० गजानन शर्मा ... १३५
नवयुग का आह्वान— प्रो० उत्तमचंद जैन १४६
मेरी बाँसुरी बजी— श्री राजेन्द्रकिशोर ... १५१
शब्द-चित्र— श्री शकुंत माथुर १५८
गीत— श्री कुमार प्रियदर्शन १६६
जाम के ये उजड़े से बाग— श्री वीरेन्द्रकुमार जैन ... १८३

कहानी—

ग्वालिन— स्व० श्री मलयानिल
अनु० श्री अरविन्द जोशी 'पुष्प' १२२
हार या जीत— श्री परदेशी ... १२७
पूनों की साँझ— कुमारी प्रभा जोशी १५३
सोने का पिंजड़ा— श्री हीरादेवी चतुर्वेदी ... १६१

लेख—

साहित्य में शून्यवाद— श्री रामप्रसाद एम० ए० ... १०८
राकेट स्टेज और उसका चालक— श्री ओमप्रकाश १४७
कालिदास का वर्षा मंगल— श्री अनवर आगेवान १५९
ग्वालियर और हिन्दी कविता— श्री राहुल साकृत्यायन १६७
नवनिर्माण और हमारा कर्त्तव्य— श्री तख्तमल जैन मुख्य मंत्री मध्य भारत १८७

संस्मरण—

अमर शहीद आज़ाद का भूतों से
सामना— श्री भगवानदास माहौर १३१

एकांकी—

दो नायक— श्री बालजीलगड
अनु० श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी १७०

संपादकीय—

जय स्वतंत्रते—गोवा में—चिंतन भी—काश्मीर—राष्ट्रलिपि की ओर—निंदनीय—अमिट घाव—अंतक का अंत—पृथ्वीपुत्र संगठित हों १९२

मुख पृष्ठ का चित्र—मधुगोष्ठी - चित्रकार श्री सोमालाल शाह

आगामी सितम्बर अंक
के
आकर्षण

६ कविताएँ—

- मिलन-माधुरी
- इमली का पेड़
- आकुलता
- विजन और में आदि

६ कहानियाँ—

- विमाता
- हृदय दर्शन
- विश्वासघात आदि

६ लेख —

- बौद्ध मत पर पुराणों के आक्रमण
- पचमढ़ी : एक दर्शनीय स्थान
- लोक-साहित्य का महत्त्व
- धूमकेतु आदि

रूपक कथा, प्रकाशन-परिचय, सम्पादकीय

—कुछ लेखक—

- श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
- श्री आरसीप्रसाद सिंह
- श्री शिवमंगल सिंह सुमन
- श्री बालकृष्ण राव
- श्री वीरेन्द्र मिश्र
- श्री शान्ति आँकडियाकर
- श्री लीलाप्रकाश
- माननीय श्री ब्रिजलाल बियाणी
- श्री अगरचन्द नाहटा
- श्री महेन्द्र राजा

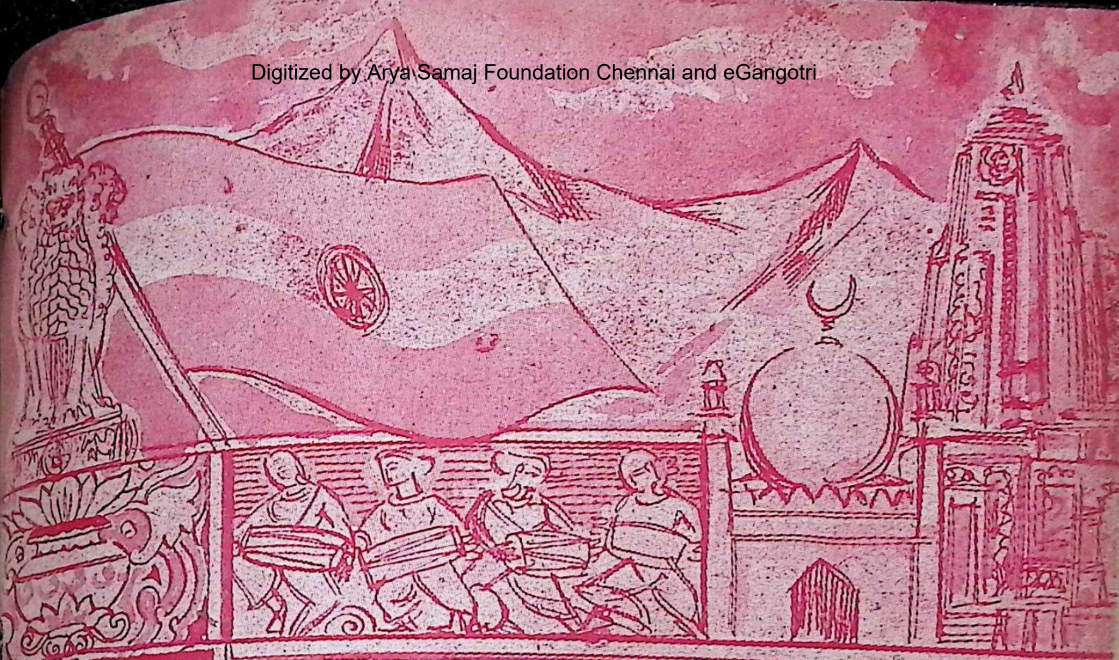

पूजा-गीत

— श्री सोहनलाल द्विवेदी —

जय स्वतंत्र भारत, जय जननी, जय नव भारत हे !

जय नवीन आकाश धरा नव,
चंचल अंचल हर्ष भरा भव,
जय विमुक्त विहँगों के कलरव,
नवजीवनमय, नवचेतनमय, जय नव जाग्रत हे !

जय नवीन ऊषा नवसन्ध्या,
नव स्वप्नों की रजनी गन्धा,
जय हिमाद्रि नव, जय नव विन्ध्या,
जय नवीन रथ, जय नवीन पथ, जय नव गतिरत हे !

जय नव स्वर की नवल गर्जना,
जय नव कर की नवल सर्जना,
जय नव शिर की नवल अर्चना,
जय नव जन मन, जय नव पलक्षण, जीवन उन्नत हे !
जय स्वतंत्र भारत, जय जननी, जय नव भारत हे !

साहित्य में शून्यवाद

—श्री रामप्रसाद एम० ए०

यह दृश्य जगत् किसी विराट् के क्रिया-कलाप का एक विस्तृत रङ्गमञ्च है। किसी की बलवती माया—प्रकृति—विश्व के सम्पूर्ण स्थूल पदार्थों को विरूपित करने का हेतु बनी है। साहित्यकार देखता है कि संसार की सभी दृश्यमाण पार्थिव वस्तुएँ अशाश्वत हैं, असत्य हैं; सभी विनष्ट और विसृष्ट होती रहती हैं। तब उसके हृदय में किसी परोक्ष शाश्वत सत्य की अनुभूति उसे व्यापक, शाश्वत सत्य में निमग्न करने लगती है। साहित्य-सृजन में मानव-अभाव की पूर्ति का अदम्य उत्साह भी एक निश्चित प्रयोजन दिखलाई पड़ता है। मानव को उसके सभी अभावों की पूर्ति की प्रतीति इस स्थूल जगत् में नहीं है, ऐसा मानकर वह सूक्ष्म में विचरण करने लगता है—दूसरे शब्दों में अस्थूल सत्ता से एकाकार-स्थापना उसका उद्देश्य हो जाता है। अपनी अपूर्णता का लक्ष्य करके मानव आदिकाल से व्यस्त दिखलाई पड़ता है, किन्तु इस असार, तत्त्वविहीन, नश्वर, शून्य जगत् में उसके अभाव की पूर्ति कहाँ से सम्भव है। इस छायाजगत् का नियामक ब्रह्म भी तो दृश्य नहीं है और इस शून्य जगत् के परे जगताधार ब्रह्म भी तो महाशून्य ही ठहरा। प्रलय काल में यह शून्य महाशून्य में, शक्ति शिव में, जीव ब्रह्म में विलीन हो जाते हैं और पंचभूतात्मक तत्त्व जिन से सृष्टि का निर्माण हुआ है, अपने महातत्त्वों में मिल जाते हैं। शून्य महाशून्य के सम्बन्ध की यह विचार-बहुरूपता ही साहित्य में शून्यवाद की संज्ञा से अभिहित होगी।

शून्य का अर्थ बहुत व्यापक होता है। शब्दकोष के अनुसार शून्य का अर्थ—रिक्त, रीता, जनशून्य, असम्पूर्ण, असमस्त, आकाश, विन्दु, रिक्तस्थान, एकान्त स्थान, स्वर्ग, परमेश्वर, विष्णु और निराकार है। और सभी अर्थ पाँच—विन्दु, आकाश, रिक्त, स्वर्ग और निराकार ब्रह्म—के अन्तर्गत आते हैं, कुछ इन्हीं के पूरक या पर्याय हैं। अब विचारणीय यह है कि साहित्य में शून्य की चर्चा क्या इन्हीं रूपों या इन सभी रूपों में हुई है? साहित्य कला है, यद्यपि विज्ञान का भी साहित्य होता है और उसे विज्ञान-साहित्य कहते हैं। पर कला अभिव्यक्ति है जहाँ सत्य विज्ञान के सत्य रूप में व्यक्त नहीं किया जाता। साहित्य में तो अर्थ—प्रत्यक्ष, अनुमित, आत्मोपलब्ध और

कल्पित—चार होते हैं, जहाँ विज्ञान में केवल प्रत्यक्ष ही । विज्ञान-विषय गणित में शून्य का बड़ा महत्त्व है । अंकों के मान में इस शून्य या विन्दु के कारण महान् हेर-फेर हो जाते हैं । जोड़ और घटाने की क्रिया में रिक्त स्थान पर शून्य मान लिया जाता है । दृश्य जगत् के परे भी तो रिक्त स्थान शून्य—वायुमण्डल—ही है । किसी संख्या के आगे शून्य बढ़ा देने से गणित में उस अंक का मान दसगुना बढ़ जाता है; किन्तु कला के क्षेत्र में यह शून्य ससीम से असीम हो जाता है । कलाकार एवं गणितज्ञ श्री बिहारीलाल की उक्ति:—

कहत सबै बेंदी दिये, आँक दसगुनो होत ।
तिय ललाट बेंदी दिये, अगणित बढ़त उदोत ॥

शून्य या विन्दु के मान को अगणित कर देती है । कथन में कितनी विचित्रता है और कला एवं विज्ञान के समन्वय से विन्दु-माहात्मय का कितना सुन्दर चित्र अंकित किया गया है !

शून्य में विजन एकान्त स्थान का भी भाव है । जीवन में ऐसे क्षण आते हैं, जब शून्य—विजन या एकान्त स्थान—बहुत अच्छा लगता है । एकान्त की चाह के कई कारण होते हैं । संसार से ऊब कर, उसके दुःखों से आकुल होकर हम उससे दूर भागना चाहते हैं । वस्तुतः प्रसादजी का कथन—

ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे-धीरे
जिस निर्जन में सागर लहरी, अम्बर के कानों में गहरी
निश्छल प्रेमकथा कहती हो, तज कोलाहल की अवनी रे ।

निर्जन में जाने का कारण संसार का दुख या आक्रोश बतलाता है । विजन प्रान्त में जाने की यह प्रेरणा—संसार से दूर जाने का यह विचार—साहित्य में पलायनवादी मनोवृत्ति से प्रख्यात है । कभी-कभी प्रेम के स्फुलिङ्ग भी जागृत होकर ऐसे विजन में चलने को प्रेरित करते हैं, जहाँ कल्पना को अवरोध न प्राप्त हो । गुप्तजी 'सिद्धराज' में 'रानकदे' के प्रति कहते हैं—

जीवन में एक क्षण ऐसा भी आता है
पल में मुग्धा मध्या बन जाती है
भाता है रहना तब जन को विजन ही ।

विजन या शून्य के प्रति रुचि का यह जागरण मुग्धा में वासना के उन्नयन के साथ होता है । इस प्रकार प्रेमी-प्रेमिकाओं में शून्य या निर्जन के प्रति विशेष ममत्व देखा जाता है जिसकी चर्चा साहित्य में बहुलता से प्राप्त है ।

शून्य निराकार, अक्षर, अविनाशी और विष्णु के लिए भी प्रयुक्त है । उड़िया वैष्णव चरित 'धर्मगीता' में सृष्टि की रचना का प्रारम्भ बतलाते हुए महाप्रभु को

शून्य में अवस्थित माना गया है। उस समय सूर्य, चन्द्र आदि नहीं थे। तब तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि महाप्रभु भी शून्य ही हैं। पूर्वी भारत के वङ्ग देशीय साहित्य का एक ग्रन्थ 'शून्य पुराण' शून्य के आध्यात्मिक पक्ष की व्याख्या का एक ग्रन्थ है, जिसमें महाशून्य से ही देश, काल एवं तत्वों का आविर्भाव माना गया है; तत्पश्चात् सृष्टि का वर्णन है। गीता में अक्षर, अव्यक्त, परमपद उसी शून्य का प्रतिपादन करते हैं—

> अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।
> यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

तैत्तिरीय उपनिषद में ब्रह्म का साक्षात उपलब्धि-स्थान हृदयाकाश को बतलाया गया है। इस प्रकार शून्य आकाश अर्थ में व्यवहृत है। यह आकाश—हृदयाकाश ही ब्रह्म का प्राप्तिस्थान और ब्रह्म भी है—

> यस्य ता अंकभूतास्तस्यै तस्य ब्रह्मणः
> साक्षादुपलब्ध्यर्थमुपासनार्थंच हृदयाकाशः
> स्थानमुच्यते शालग्राम इव विष्णोः।

आगे इसी हृदयाकाश की स्थिति में मनोमय अमृतस्वरूप हिरण्यपुरुष का वास कहा गया है—'स य एषोऽन्तर्हृदय आकाशः। तस्मिन्नयं पुरुषो मनोमयः। अमृतहिरण्मयः।'

शून्यवाद संसार को शून्य मानने का एक विचार या सिद्धान्त भी है। शून्यवादी ईश्वर या जीव में विश्वास नहीं रखते। नागार्जुन शून्यवाद के प्रवर्तक थे। 'बुद्धचरित' के प्रणेता अश्वघोष भी शून्यवादी ही थे। नागार्जुन रचित 'माध्यमिक शास्त्र' में शून्यवाद का विशद विवेचन है। बौद्धेतर दार्शनिक शून्यवाद से संसार की शून्यता का अर्थ ग्रहण करते हैं। उनके विचार से संसार की सभी वस्तुएँ अस्तित्व विहीन हैं। श्री माधवाचार्य ने भी इसी विचार का प्रतिपादन किया है। उनके अनुसार ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान परस्पर आश्रित हैं। इस विचार से रस्सी में साँप का भ्रम होने की दशा में साँप के अनस्तित्व के कारण वह ज्ञान, ज्ञेय तथा ज्ञाता असत् ठहरे। इस दृष्टान्त के अनुसार जगत् की भाँति अभ्यन्तर या बाह्य किसी प्रकार की सत्ता नहीं, और संसार पूर्णतः शून्य है।*

यह ऐन्द्रिय ज्ञान के आधार पर दृश्य जगत् को शून्य मानना हुआ, किन्तु इस दृश्य जगत् के परे परमार्थिक सत्ता है और वह अवर्णनीय है, महान् है। यह सम्पूर्ण दृश्य जगत् उस विराट का चतुर्थांश कहा गया है—'आश्चर्यस्य पादोऽयम्।' वह आश्चर्य, सूक्ष्म, महाशून्य, विराट् वर्णनातीत है। उसके विषय में कुछ भी कहा जाना सम्भव नहीं। सत्य तो निरपेक्ष है और अपने अस्तित्व के लिए वह अन्य वस्तु पर निर्भर नहीं।

---

* भारतीय दर्शन।

पर जगत् की इन दृश्यमाण वस्तुओं के अस्तित्व की तथा उनके आधार की अस्वीकृति भी ग्राह्य नहीं। सम्भवतः इसीलिए जगत् के सत्यासत्य सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। इस जगत् का आधार शून्य ही सही, पर है अवश्य और इसीलिए आश्चर्यमय—रहस्यमय—है। गो० तुलसीदास अपनी विनय-पत्रिका के १११ वें पद में कहते हैं—

'शून्य भीति पर चित्र, रङ्ग नहिं, तनु बिनु लिखी चितेरे।' इस प्रकार वे ब्रह्म की सृष्टि को अद्भुत जान उसके विषय में कुछ न कहना अलम् मानते हैं। अपनी इसी पुस्तक के ५४वें पद में वे प्रकृति, महत्तत्व, व्योम शब्दादि को 'सर्वमेवात्र तद्रूप भूपाल मनि' मानते हैं। इसी प्रकार महाकवि सूर भी 'अविगत की गति कहत न आवे' के द्वारा उस ब्रह्म को 'रूप रेख गुणहीन' मानते हैं। कबीर के अनुसार भी उसका उनवान—अनुमान या विषय—कुछ कहा नहीं जा सकता। वह कहने में शोभा नहीं पाता। उसका साक्षात्कार करना ही प्रमाणीभूत है:—

पार ब्रह्म के तेज का कैसा है उनवान,
कहिवे को शोभा नहीं देख्या ही परवान।

इन विचारों से हम एक ही तथ्य पर पहुँचते हैं कि इस जगत् के परे कोई संचालिका परोक्ष सत्ता है और उसको हम देख नहीं सकते। कम-से-कम लौकिक चक्षु का तो वह विषय है ही नहीं। इस वर्णनातीत सत्ता को हम आकार के अभाव में शून्य या महाशून्य कह सकते हैं। साहित्य में इस शून्य की चर्चा प्रकारान्तर से हुई है। उसके अस्तित्व की, हमें जगत् की वस्तुओं की भाँति, प्रतीति नहीं होती, वस्तुतः वह हमें रहस्यमय रह गया। साधारण वस्तुओं के अस्तित्व की भी हमें प्रतीति होती है, पर जब हम उनके तात्त्विक स्वरूप का विवेचन करना चाहते हैं, हमारी बुद्धि चक्कर में पड़ जाती है और हम निश्चय नहीं कर पाते कि वस्तुओं का यथार्थ स्वरूप सत्य है, असत्य है, सत्यासत्य दोनों है या न सत्य है न असत्य। पुनश्च इन चारों कोटियों से रहित होने की दशा में हम उसे भी शून्य मानते हैं। शून्य की यह चर्चा दर्शन-साहित्य की वस्तु है और वहाँ इसकी व्यापक व्याख्या की गयी है। साहित्य में शून्यवाद दार्शनिक विवेचन ही है और है रहस्यवाद का रूप।

रहस्यवाद भी काव्यान्तर्गत आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति की मुख्य धारा को कहा गया है। रहस्यवाद को भी कुछ विद्वान् भारत से इतर की धारा मानते हैं। प्रसादजी के अनुसार शाम देश के यहूदी ईश्वर को उपास्य और अपने को उसका उपासक मानते हैं। दो जातियों के सम्पर्क में आने पर विचारों का आदान-प्रदान सम्भव है। पर भारतीय रहस्यवाद को विदेशी भावना स्वीकार करना तो भ्रमोत्पादक होगा। रहस्यवाद में आनन्द की भावना निहित है और भारतीय आर्य आदर्शवाद के पोषक होते हुए अपनी सभी क्रियाओं में अध्यात्म चिन्तन एवं श्रौत यज्ञ आदि में आनन्द

देखना चाहते थे। आत्मवाद और याज्ञिक विचारधारा की विशेष प्रधानता वैदिक आर्यों में रही। कालान्तर में दार्शनिक दृष्टिकोण से अनेक तर्क-वितर्क हुए। तर्क ने बुद्धिवाद का विकास किया, जिसके अनुसार संसार दुःख का कारण माना गया। दुःख से निवृत्ति का उपाय दुःखवाद हुआ जो रहस्यमयी भावना ही रही। बुद्धिवाद की एक धारा ने ईश्वर-भक्ति के स्वरूप में देवी-देवताओं की पूजा प्रचलित की। तात्पर्य यह कि विविधता से ईश्वर के अस्तित्व को सबने माना, सदा माना, क्योंकि उपनिषदों तक में 'किं कारणं ब्रह्म कुतस्म जाता जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठा' द्वारा ऋषियों के सम्मुख ब्रह्म विषयक प्रश्न उपस्थित है। वस्तुतः रहस्यमय ब्रह्म हमारा चिन्त्य विषय सर्वदा रहा। बुद्धिवाद अथवा दार्शनिक उद्भूति के पश्चात भी देवी-देवताओं की पूजा की प्रथा चल ही पड़ी। वैदिक और बौद्धिक दोनों धर्मावलम्बी समन्वयात्मक प्रयत्नों द्वारा शून्यवाद से प्रभावित रहे। बाद में वह बौद्ध धर्म जिसमें शून्य की प्रधानता थी, सहज आनन्द की खोज में लग गया, और फिर तो शून्यवाद से भी ऊबकर अनेक मन्त्रों की साधना में प्रवृत्त हुआ। इन बौद्धों का प्रभाव कबीर पर भी पड़ा। पिण्ड एवं ब्रह्माण्ड की एकता का प्रतिपादन श्रुतियों में भी है। उन्हीं का अनुकरण सन्तमत में किया गया। फिर तो कबीर की अधोलिखित उक्ति में पिण्ड ब्रह्माण्ड की एकता भारतीय ठहरी और उनके द्वारा शून्य महलिया की चर्चा भी शाम देश की सौगात नहीं *अपितु भारतीय विचार-धारा का एक टूटा हुआ स्रोत है जो काल क्रमानुसार कबीर के बाद सन्त सम्प्रदाय में अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित हुआ—

खेल ब्रह्माण्ड का पिण्ड में देखिया,
जगत की भरमना दूर भागी।
बाहरा भीतरा एक आकाशवत, सुष्मना डारे तँह उलटि लागी।
पवन को उलट कर शून्य में घर किया, अधर में नूर भरपूर देख्या।
कहैं कब्बीर गुरु पूर की मेहर से, घट हैं माँहि दीदार देखा॥

चाणक्य ने जिस समय शक्ति-पूजा के प्रचलन का समारम्भ किया, उस समय साम्राज्य में उसके कारण दृढ़ता आयी। शक्ति-पूजा के प्रसार के साथ बौद्ध धर्म के प्राबल्य को धक्का लगा। शक्ति-पूजा की यह भावना कालिदास के काव्यों में भी झलकती हैं। वाकाटकों के द्वारा अश्वमेध-यज्ञ का होना सिद्ध है और अश्वमेध-यज्ञ का होना शक्ति-पूजा को सत्य ठहराता है। किन्तु जिस शून्यवादिता से शक्ति-पूजा के प्राबल्य का ह्रास हुआ, उस शून्यवादिता तथा वैराग्य की धारा हिन्दुत्व के शरीर में अविच्छिन्न रही। पूर्वोत्तर प्रदेश में—बिहार, उत्कल प्रान्तों में—व्याप्त हिन्दूधर्म का बुद्ध धर्म के पराभव के पश्चात् भी जो स्वरूप रह गया था, वह धर्म शून्यवाद की

---

* प्रसाद की 'काव्य कला और अन्य निबन्ध'।

स्पष्ट छाप युक्त वैष्णव सम्प्रदाय ही था। किसी बलरामदास कवि ने अपनी पुस्तक विराग गीता में अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण को अर्जुन द्वारा 'शून्यपुरुष', 'शून्यदेहं' कहलवाया है —

तोहोर रूप रेख नाहीं, शून्य पुरुष शून्य देही।
बोइले शून्य तोर देही, आवर नाम थिर काहीं।
शून्यरे ब्रह्मसिना थाहि, सेठारे नाम थिव राही॥—*

पण्डित परशुराम चतुर्वेदी की उसी महान्कृति के आधार पर यह विदित होता है कि उत्कल प्रान्त का वह वैष्णव धर्म, बौद्धधर्म का ही विस्मृत रूप था और बौद्धधर्म का कोई न कोई रूप कबीर साहब के समय में और उसके बाद भी रहा। वस्तुतः तत्कालीन धर्माडम्बर में कबीर को जगत् के परे की परोक्ष सत्ता को शून्य मानना समीचीन प्रतीत हुआ। उनका यह शून्य ब्रह्म शरीर से पृथक् साकार अस्तित्व नहीं रखता।

महात्मा कबीर सन्त परम्परा में आते हैं और हमारी समझ से वे ही इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। सम्भव है कि इसका कोई अन्य रूप इनके पूर्व भी हो, पर उनके साथ ही सन्तों की एक अविच्छिन्न धारा चली जिसकी अनेक शाखाएँ उप-शाखाएँ चल पड़ीं। इन्होंने शून्य की चर्चा अनेक रूपों में की। इनके द्वारा पिण्ड और ब्रह्माण्ड की आकाशवत् देखने की सूचक उक्तियाँ प्राप्त होती हैं। यह भी ज्ञात है कि वे अलख, निरंजन, सत्, तत्, परमतत्, शून्य, महाशून्य आदि इसी सूक्ष्मसत्ता ब्रह्म को कहते हैं। शून्य को आकाश, गगन भी कहते हैं; और कबीर ने भी कहा है, किन्तु कबीर द्वारा ऐसे प्रयोग साधनात्मक रूप धारण कर लेते हैं। कभी-कभी तो वे कहते हैं कि वह सूक्ष्म व स्थूल कुछ नहीं हैं और इस अविगत की गति क्या बतलाऊँ कहकर मौन साध लेते हैं। कबीर द्वारा नीचे लिखी पंक्तियों में शून्य के विभिन्न स्वरूपों की चर्चा देखिए—

आदैं गगना मध्ये गगना, अन्तै गगना भाई।
कहै कबीर करम किस लागै, झूठी संक उपाई॥
(क० ग्र०–४४ वाँ पद)

× × ×

आकास गगन पाताल गगन, दसौ दिसा गगन रहाई ले।
आनन्द मूल सदा परसोतम, घट विनसे गगन न जाइले॥
(क० ग्र०–२६३ वाँ पद)

---

* उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा।

'जल में कुम्भ कुम्भ में जल' की भाँति 'हरि में तन और तन में हरि' वाला कथन उसी परमतत्त्व की अनश्वरता तथा व्यापकता का संकेत देता है। कबीर का शून्य महल या शून्य लोक—उनके साधनात्मक अवस्थान सूरतिकमल या सहस्रार चक्र—ही जीव का वास-स्थान है। कुण्डलिनी के जगाने की क्रिया द्वारा आज्ञा चक्र के बाद गगन चक्र में पहुँचने की क्रिया को ही हद से बेहद जाना, या ससीम से असीम में जाना कहा गया है:—

हद छाड़ि बेहद गया किया सून्नि असन्नान,
मुनिजन महल पावई तहाँ किया विश्राम।

कबीरदास ने पिण्ड-ब्रह्माण्ड का खेल, षट्देही का क्रमानुसार षट् अवस्थाओं में वर्णन करके यह बतलाया है कि इसी हेर-फेर में जीव पड़ा रहता है। जब वह सद्गुरु को पा लेता है तब अपने स्वरूप को पहचान लेता है—वह शून्य में मिल जाता है—

जैसे कंचन के भूषन ये कहि गालि तवावहिंगे।
ऐसे हम लोक वेद के बिछुरै, सुन्नहि माहि समावहिंगे।।

हंसदेही के रहस्यात्मक वर्णन में भी हमें शून्य-मिलन का ही संकेत मिलता है। हंसदेही मुक्तावस्था है, अस्तु शून्य के अधिक निकट है। हंसदेही का क्रमागत वर्णन नीचे लिखे पद में देखें—

साधो सुनो हंस तन व्याना।
अवरण वरण रूप नहिं रेखा, ज्ञान रहित विज्ञाना।।
नहिं उपजे नहिं विनसे कबहूँ, नहिं आवे नहिं जाहीं।
इच्छ अनिच्छ नहिं दृष्टि अदृष्टि नहिं, नहिं बाहर नहिं माहीं।।
मैं तू रहित न कर्त्ता भोक्ता, नहीं मान अपमानी।
नहीं जीव नहिं ब्रह्म न माया, ज्यों की त्यों वह जानी।।
मन बुद्धि इन्द्रिहुँ नहिं जानी, अलख अकह निर्वानी।
अकह अनीह अनादि अभेदा, निगम नेति फिर जानी।।
तत्त्व रहित रवि चन्द्र न तारा, नहिं देवी नहिं देवा।
स्वयं सिद्ध प्रकाश कह्यौ है, नहिं स्वामी नहिं सेवा।।
हंस देह विज्ञान भाव यह, सकल वासना त्यागे।
नहिं आगे नहिं पीछे कोई, निज प्रकाश में पागे।।
निज प्रकाश में आप अपुनपौ, भूलि गये विज्ञानी।
उन्मत्त, मूक, पिशाच, वाल, जड़ दशा पंच पे लानी।।

पुनि कैवल्य, महाकारण, कारण सूक्ष्म स्थूल बखाना।
स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण, कैवल पुनि विज्ञाना।।
भये नष्ट एहि हेर-फेर में, कतहुँ नहीं कल्याना।।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, खोज करो गुरु ऐसा।
जाते आप अपुनपौ दरसे, मेटे खटकार ऐसा।।

इस प्रकार जीव क्रमशः जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुर्या, तुर्यातीत, और विज्ञान या आप्त अवस्थाओं में क्रमशः स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण, कैवल्य और हंसदेही में भ्रमण करता है। साधक भी इन्हीं अवस्थाओं में रहते हैं। हंसदेही मूर्त्तावस्था नहीं, सूक्ष्म है। साधनाओं द्वारा शरीर में ही स्थित मूलाधार, स्वाधिष्ठान आदि अष्ट चक्रों को संत लोग सिद्ध करते हैं। गगनचक्र से बढ़कर सूरतिकमल तक बढ़ना ही महाशून्य में तद्रूप होना, पुनः अधोगति को न अवतरित होना मानते हैं। प्रकाश स्वरूप यह ब्रह्म इस्लाम के अनुसार भी सातवें आसमान पर अवस्थित माना गया है। सम्भवतः रूह को वहीं जाना होता है। सूफी सन्तों की यह भावना भी साधनात्मक ही प्रतीत होती है। जायसी आदि प्रेममार्गी सन्त कवियों ने शरीयत, तरीकत, हकीकत और मार्फत चार अवस्थाओं का वर्णन किया है। वस्तुतः मार्फत अवस्था मोक्ष अवस्था है। इस मोक्ष अवस्था को हम शरीर के अस्तित्व का नष्ट हो जाना, सूक्ष्म तत्व या शून्य में मिल जाना ही मानते हैं। जीव अक्षर है, ब्रह्म अक्षर है। अक्षर या शून्य ब्रह्म को भी कहते हैं, अक्षर आकाश को भी कहते है और अक्षर ही मोक्ष है। इस प्रकार, 'यदक्षरं वेदविदो वदन्ति' वाली उक्ति भी ब्रह्म की व्यापकता और अनश्वरता की सूचक है। ब्रह्म एक, गगन एक, दोनों व्यापक और अनश्वर या अक्षर हैं और प्रकारान्तर से शून्य हैं।

वैदिक ऋषियों की भाँति संत कबीर ने भी अपने निरंजन की चर्चा करते हुए उसकी प्राथमिकता पर विवाद उठाया है। प्रथम कौन है और जहाँ निरंजन का वास है. वहाँ क्या है: —

प्रथमे गगन कि पुहुमि प्रथमे प्रभु प्रथमे पवन कि पाणीं।
कहै कबीर जहाँ वसहु निरंजन तहाँ कुछ आहि कि शून्ये।।

अन्यत्र इस आकाश रूपी कुएँ का पानी किसी हंस द्वारा पीना सम्भव बतलाकर शून्य की पहुँच का काठिन्य प्रतिपादित करते हैं:—

आकाशे मुख औंधा कुआँ पाताले पनिहारी,
ताका पाणी कोई हंसा पीवे विरला आदि विचारी।

संत कवियों के साधनात्मक रहस्यवाद में इस शून्य का विशद विवेचन है। कभी-कभी शून्य लोक को वे सन्तों का देश मानते हैं जहाँ सर्वदा ज्योति जलती रहती है। कबीरदास ने—

अरध उरध बीच लाइले अंकास
तहुवाँ ज्योति जरे परगास—

के द्वारा उस लोक में ज्योति का निरन्तर वास माना गया है। संत धरनीदास ने अपने रहस्यात्मक 'एक' के पहाड़े में गगन-गुफा में लोक दृष्टि होने पर आत्म-परमात्म स्वरूप का परिचय पाना तथा सन्तों के उस शून्य लोक में ज्योति का बराबर जलना बतलाया हैं। सन्तों को अपनी इस समाधिस्थ मनोदशा में सहज आनन्द की अनुभूति होती है। इस सम्बन्ध में यह पद उल्लेखनीय है—

कायावन फूलि रहे कोई लोरहिं संत सुजान ॥

एकाएक मिले गुरु पूरा, मूल मंत्र जो पावे।
सब संतन की वाणी बूझै मन परतीत बढ़ावे॥
दूवें दूरि तजो नर दुविधा, रजगुन तमगुन त्यागो।
सतगुर मारग उरधरि निरखो, तबहिं सोय उठि जागो॥
तीयें तीति त्रिवेणी संगम, एक एव स्थाना।
तामस तृष्णा दूरि करो, सोई नर करे स्नाना॥
चौथे चारि चतुर नर सोधो, चौथे पद को लागो।
चढ़ि कै प्रेम-हिंडोला झूलो, चितवत दिल अनुरागो॥
पँचवे पाँच पचीसो बस करि, साँच हियें ठहरावो।
इंगला पिंगला सुषुमनि सोधो, गगन-मण्डल मठ छावो॥
छठवें छः षट चक्रहिं बेधो, शून्य-महल मन लावे।
धीर चित्त अचल करु काया, परिचय बिनु सतगुरु नालखावे॥
सँतवे संत जहाज धुनि उपजे, सुनि मन आनन्द होई।
सहजे दीनदयाल दयाकरि, बूड़त भव जल काढ़े सोई॥
अठवें आठ गगन गोफा में, लोक दृष्टि जब होई।
आतम चिन्हि परमातम चिन्हा, तहँ विच वरजे न कोई॥
नवें नवो द्वार होई निरखो वरे, बराबर ज्योती।
दामिनि दमकें अमृत बरसे, झरे झराझर मोती॥
दसवें दहाई देह धरे नर, पहिला एक पहाड़ा।
धरनीदास ताहि पद वन्दौं, निसिदिन बारम्बारा॥*

कबीर की भाँति सन्त धरनीदास के प्रस्तुत पद में भी हमने शून्य महल में मन रमने की बात देखी। गगन-मण्डल, शून्य-महल तथा गगन गुफा तीनों ही प्रकारान्तर से ब्रह्माण्ड या शरीरस्थ गगन चक्र या सहस्रार चक्र ही हैं। सन्तों ने अपना

---

* हस्तलिखित ग्रन्थ।

लोक भी सबसे ऊपर पृथक् ही माना है। वे साधकों को उसी सन्त देश में चलने का संकेत देते हैं। सभी कर्मों का परित्याग कर आत्म चिन्तन द्वारा ही सम्भवतः उस लोक को जाया जा सकता है। 'करत विचार मनहिं मन उपजा, ना कहुँ गया न आया' द्वारा कबीर उस सत्यलोक की प्राप्ति को आत्म-चिन्तन ही बतलाते हैं। सन्तों का वह देश भी दृश्य नहीं, वहाँ तो सार शब्द ही प्रकाश स्वरूप है। अपने 'सन्त विलास' ग्रन्थ में शिवनारायण साहब उस देश का परिचय देते हुए कहते हैं:—

मोहरम हो सोई पहचाने, ऐसो देश हमारा है।
बिनु बादर जहँ बिजली चमके, बिनु सूरज उजियारा है॥
छाँह नहिं धूप तात नहिं, शीतल सार शब्द उजियारा है।
तहँवा जाई ब्रह्म होई बैठे, खोजन पूछन से न्यारा है॥

× × ×

गगन-मण्डल विच नौबत बाजे, मुरली बेनु सितारा है।

× × ×

शिव नारायन संत देस को, पहुँचत पिव को प्यारा है॥*

सन्तों के अनुसार उनके सत्यलोक—शून्यलोक को पहुँचना अन्य के लिए कठिन है। 'जेई सन्त सेई पावत देसा।' गुरुन्यास में भी वे सन्त देस के विषय में कहते हैं:—

रचि-रचि ज्ञान गगन घर छाया। मूल संखा के वृक्ष बनाया॥
संखा भयेउत जीवक आही। फूल जब होत देत तब ताही॥
फल रहे फूल देखि मन भूला। अविगत वृक्ष रहा सम तूला॥

कबीर के अनुसार उस देश में 'जरा-मरन' नहीं, बल्कि वहाँ विधाता ही वैंद्य होता है। जान पड़ता है कि 'तहवाँ जाई ब्रह्म होई बैठे' द्वारा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के बाद स्वयं ज्ञानस्वरूप, ब्रह्ममय हो जाना वस्तुतः शून्य में मिलना कहा गया है। सन्त, साधक, ज्ञानी, योगी उस शून्य लोक में एक अनहदनाद-ध्वनि सुनते हैं। उन्होंने चौथे पद की बड़ी महत्ता प्रतिपादित की है। वहाँ पहुँचकर वे प्रेम के हिंडोले में झूलते हैं। ब्रह्म की झाँकी—चितवन—से अनुराग हो जाता है। गगन में हिंडोला डालना, झूला झूलना, अनहदनाद या मधुरी नौबत बजना, साधकों का शून्य में अवस्थित होने की वह रहस्यमयी अवस्था है जब वे अपनी साधना की उच्चता में उस ज्योति से तादात्म्य स्थापित होने के साथ अपनी सत्ता को खो बैठते हैं और महाशून्य में मिल जाते हैं। वे उस समय स्वयं ब्रह्ममय हो जाते हैं। धरनीदास के 'चितवत दिल अनुरागे' की भाँति पलटूदास की 'चितवनि' की मनोमुग्धता दर्शनीय है:—

---

* हस्तलिखित ग्रन्थ 'सतविलास'।

गगन में सिगिया बजाइन्ह हो, ताकिन्ह हमरी ओर।
चितवन में मन हरि लियो हो, योगिया बड़ चोर॥
गंग-जमुन के विचवा हो, बहे झिरिहिर नीर।
तेहि ठइयाँ जोरल सनेहिया हो, हरि ले गयो पीर॥*

प्रस्तुत में 'गगन में सिगिया बजाना' शून्य में अनहद-नाद सुनना ही है। बूला साहब ने भी सतगुरु के द्वारा शून्य में हिंडोला डालना और उस पर झूला डालना तथा साधना की सफलता का वर्णन किया है:—

सतगुरु नावल अधर हिंडोलना, हम धनि झूलब सुन्दर हिंडोलना,
झूलत-झूलत गइलूँ गगनहिं तटना, तहँवा साधन का देखलूँ अखरना।

कबीर भी माया मोह से निवृत्त हो उसी शून्य-गगन में आसन जमाये प्रतीत होते हैं—

कबीर हरि चरणौं, माया मोह थे टूटि।
गगन मंडल आँसण किया, काल गया सिर कूटि।

साहित्य में शून्य की चर्चा सर्वदा वैविध्य द्वारा रहस्य के रूप में ही हुई है। चाहे वैष्णव सम्प्रदाय में, चाहे बौद्ध या बौद्धेतर दर्शन में अथवा संतकाव्यों में सर्वत्र शून्य का प्रतिपादन ब्रह्मोन्मुख ही मिलता है। ऐसा ज्ञात होता है कि हम इस रहस्य को सुलझाना चाहते हैं कि पहले अण्डा हुआ या पक्षी, प्रथम पिण्ड या ब्रह्माण्ड। वास्तव में जीव का इस लोक में आना दृश्य रूप में हमारी समझ के परे की वस्तु है। जीव का स्वरूप क्या है, कैसे आता है, कैसे जाता है, कहाँ से आता है, और कहाँ जाता है यह बतलाने वाला भी कोई नहीं। फलतः यह रहस्य आज तक खुला ही नहीं। फिर तो शून्य की प्रतीति में या उसकी वैसी चर्चा में अनौचित्य नहीं है। हमने उस लोक को ही स्वर्ग नाम दिया है। स्वर्ग में सुख है, आनन्द है। साधक जीव के वासस्थान शून्य में जाकर इस पहुँच को असमस्त में समस्तता-सम्पूर्णता लाना मानता है। और वही स्थिति उसकी सहजानन्द की स्थिति है। आत्मा-परमात्मा का जीव ब्रह्म का स्वरूप निस्सन्देह रहस्यमय है। 'प्रथमे गगन कि पुहुमि प्रथमे प्रभु' में जीव के इसी रहस्य की बात कबीर ने कही है। नीचे लिखा पद भी विचारणीय है:—

वा घर की सुधि कोई न वतावे; जाइर ते जीव आया हो।
धरती अकास पताल नहीं है, नहीं ज्योति नहीं माया हो।
ब्रह्मा, विष्णु के जन्म नही है, तब जीव कहाँ से आया हो।
पानी, पवन के दही जमायो, अगिनि के जोरन डाला हो।

---

* कबीर पंथी सन्तों के मुख से सुने पद हैं।

चाँद-सूरज दुनो भये रखवारा, मखन सहित दधि खाया हो।
सूर पर सूर, सूर पर ससियाँ, साँसनि मण्डप छाया हो।
'दुखहरन' गुरु शब्द बतायो, शिवनारायण पाया हो॥'*

इस प्रकार हमने देखा कि कबीरदास, दुखहरनदास, धरनीदास, बूला साहब तथा पलटू साहब, शिवनारायण साहब प्रभृति सन्तों ने जीव और ब्रह्म सम्बन्धी रहस्यात्मक उद्भूति द्वारा उनके स्वरूप की अनेक कल्पनाएँ की हैं। पर ध्यान रहे, उनकी ये कल्पनाएँ हमारे लिए कोरी कल्पनाएँ हों, उनकी तो निजी अनुभूति हैं। लौकिक चक्षु की पहुँच ही क्या, उसकी बिसात ही क्या जो इस रहस्य को समझ सके, देख सुन सके। फिर भी रहस्य रहस्य ही है, तभी तो आज भी हम उसके उद्घाटन में प्रवृत्त हैं। अस्तु, हम इसी निष्कर्ष पर पहूँचते हैं कि जीव ज्ञान स्वरूप है, निर्विकार है, ज्योतिर्मय हैं। जीव ब्रह्म का मिलन ज्योति का ज्योति में मिलना है और ब्रह्म का वह स्वरूप वर्णनगम्य नहीं, अनुभवगम्य है। अस्तु, आकार के अभाव में शून्य मानना समीचीन युक्ति-युक्त ही है।

आधुनिक युग के रहस्यवादी कवियों में भी शून्य में मिलने की रुचि दिखलाई पड़ती है। छायावाद में भी पलायनवादी भावना की झलक शून्य की ओर प्रवृत्त जान पड़ती है। छायावादी कल्पना के पंख लगाकर शून्य गगन में ही तो विहग-बाला के गीत गाते हैं। वास्तव में छायावादी की भावना में भी अतृप्ति रहती है। यह अतृप्ति या अभाव सर्वकालीन है। जगत जो दृश्यमाण है, ससीम है, और गगन का शून्य सूक्ष्म होने से असीम है। कवि अपने अभाव की पूर्ति ससीम में दुष्कर जान असीम की ओर दौड़ता है। अभाव की पूर्ति की यह कामना ही साहित्य का सृजन कराती है। यह अतृप्ति छायावादी को निवृत्ति की ओर उन्मुख करती है। अभाव प्रगतिवादी में भी रहता है। पर प्रगतिवादी का अभाव उसे प्रवृत्ति की ओर ले जाता है। यही अभाव रहस्यवादी को अतीन्द्रिय जगत की ओर ले जाता है क्यों कि वह भी अपने अभाव की पूर्ति पार्थिव जगत में सम्भव नहीं मानता। वह सूक्ष्म जगत में पहुँच कर निर्विकार महाशून्य—ब्रह्म-सत्ता—से तादात्म्य स्थापित करना चाहता है। साहित्य में इस भावना ने ही शून्य के महत्त्व को बढ़ा दिया है। आज के छायावाद एवं रहस्यवाद अथवा प्रगतिवाद एवं दुःखवाद तक में वेदना की व्याप्ति दृष्टिगोचर होती है। इस वेदना के मूल में वह पूर्वोक्त अभाव ही कारण है। अभाव जन्य यह पीड़ा—कसक या वेदना जो नाम दें—मानव के अभ्यन्तर में आदि काल से व्याप्त रही है। कबीर में भी, महादेवी में ही नहीं, यह दुःख था, तभी तो उन्होंने कहा था:—

---

* कबीर पंथी संतों के मुख से सुने पद हैं।

सुखिया सब संसार है खावै और सोवै ।
दुखिया दास कबीर है जागे और रोवै ।।

पुनः दुःखवाद की प्रवर्त्तक आधुनिक युग की रहस्यवादी कवियित्री महादेवी की वेदना हमें साहित्य-जगत में पूर्णतया नवीन वस्तु नहीं है । महादेवी का प्रियतम भी असीम लोक में रहता है और निर्गुण होने के कारण शून्य ही है । वह एकदेशीय नहीं सर्वदेशीय, सर्वकालीन और सर्व व्याप्त ब्रह्म ही है । कबीर की भाँति देवीजी भी उसे ज्योति स्वरूप मानती हैं । एक स्थल पर वे कहती हैं:—

चुभते ही तेरा अरुण बाण
बहते कण कण से फूट फूट मधु के निर्भर-से सजल गान ।

इस उक्ति से तो यही भान होता है कि योगी साधना के द्वारा जिस मनोदशा—समाधिस्थिति—में ब्रह्मानन्द का अनुभव करते हैं, अपने चिन्तन की गहराई में डूबी हुई देवीजी उसी आनन्द को प्राप्त करती हैं । उस ज्योति से साक्षात्कार होने पर शरीर के सहस्र रोम-कूपों से 'ॐकार' और 'ररंकार' जैसी ध्वनि का प्रस्फुटित होना योगी भी मानते हैं । 'नीरजा' में एक जगह कहती हैं:—

प्रिय तेरे नभ मन्दिर के मणि दीपक बुझ बुझ जाते,
जिनका कण कण विद्युत है, मैं ऐसे दीप जलाऊँ ।

× × ×

नभ में उनके दीप, स्नेह जलता है पर मेरा उनमें,
मेरा है यह प्राण, कहानी पर उसकी हर कम्पन में ।

'निराला' की उक्तियों में भी शून्य की चर्चा दार्शनिक रहस्य के रूप में प्राप्य है । इन साहित्यिकों से हटकर आज के कतिपय साधकों में भी शून्य की चर्चा मिलती है । उनकी वाणी भी साधना की उसी उच्च भाव भूमि पर ले जाती है जहाँ से कबीरदास कथन करते प्रतीत होते हैं । तुलना के लिए एक उदाहरण पर्याप्त होगा :—

गड़ा निस्सान जहँ सुन्न के मध्य में, उलटि के सूरति फिर नाहीं आवे,
दूध को मत्थ के घृत न्यारा किया, बहुरि फिर तत्त में न समावे ।
माड़ि मत्थान तहँ पांच उलटा किया, नाम नौनीत ले सुरति फेरी,
कहें कबीर यों सन्त निर्भय हुआ,
जन्म और मरन की मिटी फेरी ।

— कबीरदास

इसी भाव का पद आज के साधक का देखें—

निज दर्शन जब करता हूँ, मतवाला हो जाता हूँ ।
देखता ज्योति को अपने, भरपूर सकल पाता हूँ ॥

× × ×

जब पवन पलट कर अपना, करता घर शून्य अपारा ।
तब अधर देश में विस्तृत, पाता अपनापन सारा ॥

—आधुनिक साधक प० रा० च० पाण्डेय

अन्ततोगत्वा हमने देखा कि साहित्य में शून्यवाद की चर्चा दार्शनिकों द्वारा जगत की शून्यता के रूप में; बौद्धों द्वारा ईश्वर की शून्यता के रूप में; वैष्णवों द्वारा ब्रह्मा की सूक्ष्मता, व्यापकता, अनश्वरता के रूप में; साधकों की यौगिक क्रियाओं द्वारा शरीर में ही शून्य या गगन लोक की अनुभूति जन्य रहस्यमयी भावना के रूप में, छायावादियों द्वारा दृश्य जगत के परे सूक्ष्म लोक की निवृत्ति या विचारों के आरोप-रूप में एवं रहस्यवादियों द्वारा अपार्थिव जगत की सूक्ष्म ब्रह्म सत्ता से एकाकार स्थापना के रूप में की गयी है । वस्तुतः सभी कथन रहस्यमयी भावना का उद्भव करते हैं ।

गुजराती कहानी—

ग्वालिन

स्व० श्री मलयानिल

किसी की पन्द्रह वर्ष की आयु में अधरों पर गुलाब खिलता है तो किसी के सत्रहवें और अठारवें वर्ष में नयनों में ज्योति चमकती है और सोलहवें शरद में कण्ठ में कोयल की कुहुक बोलती है! किशोर अवस्था सौन्दर्य को स्थान दे रही थी और सरल अबोध जीवन अब बिदा ही लेना चाहता था। खिलती हुई कली चिटक रही थी! वह पूर्ण यौवना थी।

वह शिक्षित नहीं थी, अन्यथा अत्यन्त चंचल होती। वह शहरी नहीं थी, तथापि शिष्ट प्रतीत होती थी। उच्च-वर्ण की वह नहीं थी, फिर भी थी गोरी। आँखों में तो भ्रमर ही आकर बैठ गये थे। नयनों के बीच - पुतिलियों में तीर-सी धार थी। कपोलों पर मानो गुलाब बिखर गये थे।

माथे पर पीतल की चमकती हुई तामड़ी रख, गाँव की सीमा से गाँव में घुसती, तो ऐसा लगता मानो स्वयं लक्ष्मी ने ही प्रवेश किया हो। उसकी—"दूध-लो-दूध"—की ध्वनि वीथियों में सुनाई पड़ती थी और दाँत साफ करते हुए सभी लोग उसकी ओर दृष्टिपात करते थे। पुरुषों को शुभ संकेत होता और स्त्रियों को ईर्ष्या!

यह थी गुजरात की ग्वालिन! सबेरे-सबेरे अपने गाँव से निकलती! ताजा निकाला हुआ दूध भर कर हमारे गाँव में आती। सभी का मन इससे दूध लेने को ललचाता। इसका "दूध-लो-दूध" का स्वर सुनते ही स्त्रियाँ छज्जों में खड़ी हो जातीं।

यह हमेशा लाल रंग की मोटी साड़ी, किन्तु स्वच्छ, नयी की नयी, सुरक्षित रख कर पहनती। साड़ी की किनारी पर पीली पट्टी और काले रंग का पल्ला! हाथों में हाथी दाँत की चूड़ियाँ। पाँव में मोटे कल्ले। नाक में नथनी, कान में नखली, उँगलियों में चाँदी के वेढ। गले में टूँपिया और कीडियासर। यह थे इसके सौन्दर्यवर्धक आभूषण। माथे पर छोटा-सा घूंघट निकालती थी: अतः किसी को यह ज्ञात होना

कठिन था कि इसके कुन्तल कैसे होंगे ? यह उन्हें व्यवस्थित करती होगी ? माँग में कुंकुम भरती होगी ? आदि कल्पनाएँ ही इसकी सुन्दरता में वृद्धि करती थीं ।

इसके आने के समय ही मैं दाँत साफ करने के निमित्त चबूतरे पर बैठता और जब वह सामने से दिखाई देती तब निर्लज्ज की भाँति निर्निमेष इसकी ओर देखता ही रहता !

बेचारी शर्मा जाती और लाज से पलकें झुका लेती । परन्तु अन्य नव-वधुओं की भाँति इसकी चाल में कोई अन्तर नहीं आता था ! किसी प्रकार की धड़कन नहीं होती थी, और न हाथ ही बाँके-तिरछे पड़ते थे । शान्त और गम्भीर होकर सदा की भाँति—"दूध–लो–दूध" की ध्वनि करती रहती !

मैं अपनी पत्नी से नित्य ही कहता कि—"तू इस ग्वालिन से ही दूध क्यों नहीं लेती ? हमेशा—'बहन दूध लेना है क्या ?' कह-कहकर इसका मुँह दुख आता है और तुझ पर तनिक भी इसका प्रभाव नहीं पड़ता ?"

कौन जाने क्यों, परन्तु जब से इसे देखा था तभी से मेरे हृदय में इसके प्रति विचित्र अपनत्व की भावना घर कर गयी थी । अवश्य ही मैं अपने घर भी इससे दूध लेने की योजना करता । इसे थोड़ी देर के लिए आँगन में बैठाता और अवसर पाकर इसकी दृष्टि अपनी ओर आकर्षित करता ! ऐसी कोमलांगना और फिर ग्वालिन ! कैसे जन्म लिया ? अत्यन्त कोमलांगिनी पर ऐसा मोटा वस्त्र कैसे सधता होगा ? ईश्वर भी बिना देखे ही जन्म दे देता है न ?

उस दिन मुझे ऐसा लगा कि मैं भी भड़वाड़ जाति में ही जन्मा होता तो ठीक होता । मैं सरोवर के किनारे खड़ा रह कर मुरली बजाने में रस लेता तो उपयुक्त होता ! हाँकते-हाँकते गाँव की सीमा पर, ढोरों के बीच, लकड़ी पर शरीर का बोझा डाल, माथे पर बड़ा-सा फैंटा बाँध, गीत की ध्वनि करता तो कितना अच्छा लगता । यह ग्रामीण किन्तु कन्हैया का जीवन था । पागल बनाने वाले ने ग्वालिन बनाई, पर वह भी राधा की जाति वाली !

बार-बार इसके सौन्दर्य-दर्शन से मेरे मन पर बुरा प्रभाव पड़ा । इसकी गम्भीर किन्तु कजरारी चितवन पर मेरा मन लालायित हो गया । हृदय में यह भाव उठने लगा कि पीछे-पीछे वीथियों में भटकूँ और यह देखूँ कि यह कहाँ जाती है ?

एक दिन तो आठ का घंटा बजते ही मैं उठा और इधर-उधर न जाते हुए सीधे गाँव के द्वार पर जाकर खड़ा हो गया । सोचा—दूध बेचकर घर जाने के लिए अभी आवेगी ही, तब अनजान की भाँति इसके पीछे-पीछे जाऊँगा । मौका पाते ही तुरन्त पूछूँगा—'तुम कौन हो ? तुम्हारी आँखों में यह क्या है ? तुम्हारी ग्वालिन जाति में भी ऐसी मुग्ध करने वाली परियाँ हैं क्या ?" आदि प्रश्नों की सूची लेकर मैं

दरवाजे के पास खड़ा हो गया। इतने में ही, दोनों हाथों में पैसे गिनती हुई, खाली दूध की ताँबड़ी माथे पर रख, सीधा सिर किए पर दृष्टि नीचे झुकाकर, दरवाजे के बाहर वह निकली। मैं भी पीछे-पीछे चलने लगा!

गाड़ी का रास्ता था। ऊपर चढ़ाव वाली भूमि में से रास्ता निकला होने से आसपास मिट्टी की भीतें जैसी हो गयी थीं। और ऊपर केर के वृक्ष तथा गुंजा की बेलें लगी थीं। यह चल रही थी जल्दी-जल्दी, रास्ते से बीच की धूल उड़ाती हुई। सूर्य सामने का होने से एक हाथ से आँखों पर ओट किये थी और दूसरे हाथ से ताँबड़ी सँभाल रखी थी। कदाचित अचानक ही पीछे देखते हुए इसने मुझे एकाधबार देख भी लिया था, और यह शंका भी की कि मैं उसी के पीछे तो नहीं चल रहा हूँ? इसीलिए यह कभी धीरे चलती और कभी तेजी से। यही नहीं, मैं भी उसी प्रमाण से अपनी गति परिवर्तित करता जाता था। मुझे ज्ञात नहीं कि इस ठगोरी का भ्रम सत्य है या मिथ्या! निस्सन्देह, मैं इसकी पवित्रता या इसके चरित्र को दूषित करने के लिए इसके पीछे नहीं भाग रहा था! मैं तो इसके सौन्दर्य को देख कर चकाचौंध हो गया था। मन से मैं भ्रष्ट तो हो चुका था, फिर भी मानसिक शक्ति कुछ क्रियाशील थी; और फिर बेसुध होकर चाहे जैसा व्यवहार करूँ, इतना पागल नहीं बना था!

इसी गति से हम लगभग आधा मील चले होंगे कि यहाँ वह रुक गयी! वटवृक्ष की घनी छाया थी और नीचे ही पथिकों को बैठने के लिए कुटिया भी। ऊपर कोयल कुहुकती और नीचे गाय, भैंस, बछड़े, बकरे, इधर-उधर घूमते। स्थान रमणीय था!

कुटिया के बाहर इसने दूध के रिक्त पात्र सिर से उतारे और रास्ते के एक ओर, घास की हरियाली पर 'हाय राम' कहते हुए, दो पैरों पर जैसे ग्वालिनें बैठती हैं, उसी तरह बैठ गयी।

इधर मेरी स्थिति विचित्र हो गयी। आगे बढ़ूँ या रुक जाऊँ? बातें करने का विचार आते ही हृदय धड़कने लगा। मुँह पर खून उतर आया। बड़ी हिम्मत से मैं यहाँ तक आया था। इस गौरवर्णा ग्वालिन ने सारी शक्ति शिथिल करदी थी। निश्चय करके मैं मार्ग पर आगे चलने लगा! इसके आगे दो कदम बढ़ा ही था कि एकाएक इसने पूछा—"सन्दन भाई, इधर कहाँ जा रहे हो?" मेरे यहाँ नित्य प्रति आने से यह मुझे अच्छी तरह से पहचानती थी। किन्तु एकाएक इस तरह यह मेरे साथ बात करेगी ऐसा अनुमान न था। तो क्या यह इस बात को जान गयी कि मैं इसके पीछे आ रहा था? मेरे विषय में यह क्या धारणा रखती होगी? ऐसे कई प्रश्न मन में उठने लगे। और फिर इसके प्रश्न का उत्तर तो देना ही चाहिए। पर उत्तर क्या दूँ? मैं तो घबराहट में ही बोल उठा—"तुम्हारा गाँव देखने।"

कह देने के पश्चात् विचार आया कि यह मैंने क्या कह दिया ? इसका गाँव देखने से मेरा क्या प्रयोजन ? और अब तो अवश्य ही यह मेरे हृदय की बात जान गयी होगी । शायद इसकी इच्छा विपरीत होगी और किसी से कहेगी कि—"सन्दन भाई मेरा गाँव देखने आये थे ।" तब ? किन्तु इतने में ही इसने प्रश्न किया, —"तो इसमें क्या देखना है ? कहीं आपके गाँव जैसा तो है नहीं । लो, यहाँ आओ ! थोड़ा दूध पियो, बांखरी भैंस का है, मुँह में ही स्वाद रह जायगा ।"

मेरी उलझनका अन्त आया । मेरे इस प्रकार के व्यवहार से उसे किसी प्रकार का बुरा नहीं लग रहा था, बल्कि स्वयं वही मुझे निमन्त्रण दे रही थी ! अतः अपमानित होने की आशंका नहीं थी । गुलाब ही बुलबुल को बुलाए, तो इसमें बुलबुल का क्या गुनाह ? जब नाग ही मुरली के पास आकर बैठे, तो वादक का क्या दोष ? अब जो भी हो ! मैं अपनी आकांक्षाओं को किसी भी प्रकार पूरी होने देना चाहता था ।

मैंने कहा—"नहीं-नहीं, इस प्रकार दूध कैसे पिया जाय ? कल घर पर ही दे जाना ।" पीने को तो मन लालायित था, किन्तु ऐसे पहली बार कहने से ही पी लेना मूर्खता में शामिल होता है न ?

उसने कहा—"अब घर लोगे तब तो लोगे ही, परन्तु यहाँ तो पियो । वहाँ कहाँ वृक्ष की रमणीय छाया और पक्षियों का मधुर-संगीत होगा ? और कहाँ मेरे हाथों दूध ही मिलेगा ? वहाँ तो मेरी बहिन को मालूम होते ही एक लेगी और दो देगी ।"

वास्तव में कोई इसे यदि अज्ञान कहे तो इसका इतना ही अर्थ होगा कि इसे अक्षर-ज्ञान नहीं । कोई कहे कि इसका बोलना अच्छा नहीं लगता, तो इसका अर्थ इतना ही होगा कि इसकी बोली, शहरी टीम-टाम वाली बोली नहीं । प्रकृति की गोद में यह पल रही थी । प्रकृति का आनन्द यही जान सकती थी, और स्वयं के ग्रामीण किन्तु मधुर-स्वर में इसका ज्ञान मुझे करा सकती थी । मैं तो प्रतिक्षण बेड़ियों में बँधा जा रहा था !

मैंने कहा—"अच्छा, दूध तो पी लूँगा, किन्तु पैसे लोगी तो ?"

"क्या पागल हो गये हो ? इस प्रकार पैसे भी लिये जाते हैं ? अभी पियो तो"—कहते हुए, कुछ झुक कर दूध का प्याला मेरे सामने रख दिया, मैं पास ही खड़ा था । मैंने सोचा—अधिक खींचा-तानी छोड़ दूँ, नहीं-हाँ और बहानेबाजी करूँगा तो कमल मुरझा जायगा । मैंने प्याला लिया और दूध पी गया !

यद्यपि दूध में शकर नहीं थी, गरम भी नहीं था, फिर भी मुझे स्वादिष्ट लगा । वैसे दूध प्रकृति से ही स्वादिष्ट होता है और यह तो सुन्दर नारी के हाथों दिया हुआ, आग्रह के साथ, वह भी मुझ जैसे बेहोश को ।

'ग्वालिन ! तुम्हारी जाति ?"—मैंनें दूध पीते हुए बात शुरू की ।

"लो, आप तो जाति भ्रष्ट हो गये ।"—उसने कहा ।

' नहीं-नहीं, मैं इसके लिए नहीं पूछ रहा हूँ । केवल जानने के लिए ही पूछ रहा हूँ । कहो न सही, तुम किस जाति की हो ?"

उसने कहा—"हम तो ढोरों को चराने वाले रबारी लोग हैं ।"

"तो तुम ब्याही हो या कुँआरी ?"—मेरा पागलपन धीरे धीरे बढ़ता ही जा रहा था ।

थोड़ा लजाते हुए धीमे स्वर में उसने संक्षिप्त उत्तर दिया—"ब्याही ।"

"किसके साथ"—मैंने पूछा ।

उसने कहा—"अरे संदन भाई, क्या इस प्रकार नाम भी लिया जाता है ? ब्याह हुआ है मुझ जैसे रबारी के साथ ही !"

मैंने पूछा—"प्रेम क्या है, इसे तुम समझती हो ?" मैं तो अपना होश खो चुका था । क्या पूछना चाहिए और क्या नहीं, इसका ख्याल ही नहीं रहा ! कदाचित् यह समझ न सकी कि मैंने क्या पूछा ।

उसने कहा—"क्या ?"

मैंने कहा—"स्नेह क्या है, इसे तुम जानती हो ? तुम्हारा पति तुम्हें चाहता है ?"

"संदन भाई, पागल तो नहीं हो गये हो ?"—विस्मय से उसने कहा ।

हठ करते हुए मैंने कहा—"नहीं, बस, मुझे बता ही दो ! मैं तुम्हारे ही पीछे इतनी दूर तक आया हूँ । गली में बात करने में भय लगता था । बोलो, अब अगर तुम मुझसे बात न करो तो तुम्हें मेरी कसम"—कहते हुए मैं उसके सम्मुख बैठ गया । बीच में दूध के रिक्त पात्र थे ।

एकाएक वह बोली—'हा—य, मैं टोकनी कहाँ भूली ! हाय...हाय !' सुनकर मैं भी चौंक गया । वह खड़ी हो गयी । उसने कहा—"सन्दन भाई, मेरे बर्तनों को देखते रहोगे ? मैं बाँस की टोकनी कहीं भूल आई हूँ । अभी खड़े पाँव लौटती हूँ ।"

मैंने सोचा—"क्यों नहीं ? यह पूरा दिन धूप में बैठने को कहे तो भी मैं तैयार था, तो फिर थोड़ी देर में क्या ? मैंने कहा—"हाँ-हाँ जाओ, आओ । मैं इस कुटिया में बैठा हूँ ।"

कोई रास्ते में बैठा देखेगा तो कहेग'—किसलिए बैठा है ? इसी आशंका से कुटिया के भीतर जा बैठा । साथ में बर्तन भी उठा लिए । भीतर किसी ने घास डाल कर बिस्तर किया हुआ था । ऊपर बाँस का छप्पर डाल कर बबूल की डालों से छत बनायी थी । पीछे की ओर दीवाल में खिड़की थी । दीवाल की ओर, लम्बे पैर कर मैं

बैठ गया । सोचने लगा—'वाह री गोरी ग्वालिन ! तेरी ग्रामीण बोली में कितनी मधुरता ! बस, आज इसे जाने ही न दूँगा । बातों में इसे भी इसका घर भुला दूँगा । देखूँ, मुझे यह गायें चराना सिखलाती है या नहीं ? अगर यह महीन साड़ी, भड़कीली चोली और रेशमी परकर पहने होती तो कैसी लगती ? जूड़े में गुलाब लगाया होता, गले में मोतियों की माला होती और इसी मदमाती चाल से चलती तो किसे आकर्षित न करती ?' इस प्रकार कल्पनाओं की शृंखला बनाकर मैं इसके सौन्दर्य को और भी अधिक मोहक बना रहा था और इन्हीं कल्पित-चित्रों के साथ स्वयं भी अधिकाधिक मोहित हो रहा था । बर्तनों पर कुछ लिखा था, जिसे मैं देखने लगा ! अस्पष्ट अक्षरों में—"दली" इतना ही पढ़ा जा सकता था । इसी आधार पर मैंने मान लिया कि "दली" इसी का नाम होगा । 'लेकिन स्त्री का नाम कैसे ? शायद मायके से पति के घर जाते समय इसे ये बर्तन इसके माता-पिता ने दिये होंगे । भीतर बाहर दोनों ओर से कितने स्वच्छ रखती है । निस्सन्देह, ऐसी दशा में दूध की शोभा बढ़ना स्वाभाविक ही है । लेकिन यह माथे पर रखने की कुँडरी साथ में क्यों नहीं ले गयी ? जब सिर पर ताँबड़ी रख कर यह गाँव में आती है तब क्या उषा-काल में प्रभाती जैसी मधुर प्रतीत होती है, उसी प्रकार इसका स्वर भी मीठा लगता है । इससे अर्ध-जागृत अवस्था में प्रातःकाल का शुभ सूचक स्वप्न आता और सारा दिन आनन्द विभोर होकर बीतता । पूरे गाँव के लिए यह आशीर्वाद रूपिणी देवी थी ।' कल्पना-चित्रों को सँवारते हुए लगभग बीस मिनट व्यतीत हुए होंगे कि वह आई और पूछा—"बैठे हो ?"

"क्यों टोकनी नहीं मिली क्या ?"—मैंने कहा ।

"नहीं जी, चार-पाँच घर पूछ आई, किन्तु कहीं पता नहीं चला । कौन जाने किसके यहाँ रख आई हूँ । इस चढ़ी धूप में इतना भटकूँ"—कहते हुए मानो निराश होकर बैठ गयी ।

"दली !" मैंने कहा । सुनते ही जरा यह चौंकी और कहा—"गाँव के लोग मुझे दूध वाली कहते हैं ।"

मैंने कहा—"देखो, यह तुम्हारी ताँबड़ी पर लिखा है । ऐसा लगता है , तुम्हारे ब्याह के समय मायके से मिली होगी । ठीक है न ?"

मैं तो इसमें इतना तन्मय हो गया था कि नाना प्रकार की कल्पनाएँ कर रखी हों तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं ! गले में शोक-पगला* देख कर मैंने पूछा—"तुमने

---

* एक प्रकार का गहना, जो गले में पहना जाता है । यह इस बात का प्रतीक होता है कि स्त्री ने दूसरी शादी की है, अथवा पुरुष ने दूसरी शादी की है । और यह इसलिए पहना जाता है कि किसी प्रकार का शोक न हो ।

दूसरी शादी की है क्या।" मेरी दृष्टि उसके श्वेत अंग पर पड़ते ही, उसने सामने देखा और आँचल खींच कर ऊपर कर लिया। "तुम और तुम्हारा पति सारा दिन क्या करते हो ?"—मैंने पूछा।

"बड़े शरारती आदमी हो"—कहते हुए मुँह फिरा कर मुस्कराई। और साड़ी के आँचल में कलियों से सुन्दर दांतों को छिपाकर हँसी।

"नहीं-नहीं, कहो तो सही, सुबह से शाम तक तुम लोग क्या करते हो ?"—मैंने फिर पूछा।

"और क्या करते होंगे ? ढोरों का काम ! सबेरे से उठकर, नित्य-कर्म के बाद बछड़े को दूध पिलाना। वे गायों को दुहते हैं और मैं बकरी को दुहती हूँ। इस दरवाजे से उस हाथ की ओर वे जाते हैं और मैं तुम्हारी ओर आती हूँ। दूध देने के बाद मैं तब तक यहाँ बैठती हूँ, जब तक वे आ जाते हैं।" एक ही साथ उसने सब कह दिया ! लेकिन मुझे भय लगा, कहीं इसका स्वामी आता न हो। मुझे साथ में बैठा देख कर नाराज होगा और इज्जत चली जायगी। अपमानित होऊँगा, और ऊपर से मार पड़ेगी सो अलग ! विचार आते ही मुँह पर भय और चिन्ता की रेखाएँ खिंच गयीं। सोचा यहाँ से चल दूँ। और इसी इच्छा से टोपी हाथ में उठाने लगा। लेकिन बीच ही में उसने कहा—

"आप चिन्ता न करें। आज तो मैं अकेली ही आयी हूँ। वे तो आज घी बेचने गये हैं।"

मैंने निश्चिन्त होकर बातचीत करना आरम्भ किया ! मैंने कहा, "तुम्हारा पति बाँसुरी में ऐसा क्या बजाता है जिससे तुम सब वहाँ मुग्ध से खड़े हो जाते हो ? मैं भी सरोवर के किनारे खड़ा होकर बाँसुरी बजाऊँ तो मुझे भी अवश्य अच्छा लगेगा ?"

"हाँ—हाँ, क्यों नहीं ? लेकिन आपको हमारी तरह बनना क्यों अच्छा लगता है ?"—उसने पूछा।

"सिर्फ तुम्हारे लिए ही दली ! तुम जो खाओ, वही मैं भी खाऊँ। तुम्हारी मोटी रोटी पचाऊँ। तुम्हारी गायों को चराने जाऊँ। सच कहता हूँ, कुछ ऐसा ही मन में हो गया है। तुम्हारा गाँव अभी और कितनी दूर है ?"—मैंने प्रश्न किया !

"यही चार-पाँच खेत की दूरी पर। वे-झोंपड़ियाँ दिखाई दे रहीं हैं। आप मेरे घर रहोगे क्या ? हम तो गूदड़ी पर सो रहते हैं। खुले मैदान में खाट डाल देते हैं। पावों के पास ढोर बँधते हैं, जो सारी रात चिल्लाया करते हैं। आप जैसों को वहाँ अच्छा नहीं लगेगा।"

"मुझे तो यह बहुत अच्छा लगता है। और उसमें भी तुम्हारे जैसी कोई मेरे साथ हो, तब तो मैं घर जाने का नाम भी न लूँ।"

वार्तालाप के आधार पर मेरी यही धारणा बनी थी कि यह मुझ पर आसक्त है। इसके हृदय को मैं जीत सकता हूँ। और धीरे-धीरे यह स्वयं की मनोकामना कहने लगेगी। जिस प्रकार फूल खिलता है उसी प्रकार मेरा हृदय आशा से खिला जा रहा था। जिस प्रकार झरना बहता है, उसी प्रकार मेरी कल्पना प्रवाहित होने लगी थी। जिस भाँति केतकी का फूल झूम-झूम उठता है, उसी भाँति आत्मा उमड़-घुमड़ कर झूम उठी थी। हाथ में तिनका लेकर जमीन पर रेखाएँ खींचती, तिनके को मोड़ कर कमान बनाती और कभी तोड़ कर टुकड़े कर देती। इस प्रकार यह खेल रही थी। और घबराहट, भय या शर्म बिना ही परिचित होकर मित्र की भाँति मेरे साथ बातें कर रही थी।

कुछ क्षण के लिए हम दोनों ने शान्ति धारण की। इतने में ही जैसे बिजली कड़कती है और बालक के हृदय में धड़कन होती है, आनन्द की बातों में जैसे शोक प्रविष्ट होता है, वैसे ही एकाएक खिड़की में से मेरी पत्नी ने सिर निकाला और मेरे सामने क्रोध की मुद्रा में निर्निमेष देखने लगी।

पत्नी का भयंकर रूप देखते ही मेरा शरीर थर-थर काँपने लगा। क्रोध के कारण उसकी आँखों में पानी आ गया था। वह इसी विचार में डूब गयी थी कि क्या बोलूँ और क्या न बोलूँ? कितना कह डालने का उभार इसके मन में उठा था और फिर एक शब्द भी वह बोली नहीं। केवल मेरी ओर देखती ही रही। मैंने पलकें झुका लीं। और दली, धोखेबाज दली, आँचल में मुह छिपाए हँस रही थी।

चित्रकार को यहाँ तीन चित्र अंकित करने थे— एक कालिका, दूसरा जादूगरनी और तीसरा बेवकूफ !

अनुवादक—श्री अरविन्द जोशी 'पुष्प'

गीत

श्रीमती विद्यावती मिश्र

भले बुरे की उलझन में पद करो न रोधित !

मुक्त-सरित का वेग सतह की ऊँच-नीच में
फँस कर लहरों की तत्परता खो देता है,
प्रति बुद्-बुद को एक सबल चट्टान समझने-
वाला माँझी निर्भय नाव नहीं खेता है,
सीमा-बंध अमृत को भी विष कर देते हैं,
सतत प्रवाहित पवन नहीं हो पाता दूषित !

कोसा जाता नहीं शूल के आवरणों से
फूलों को बाहर ले जाने वाला साधक,
छेद-छेद कर अंतर, माला बना-बना कर
नश्वर को अक्षर करने वाला आराधक,
जय-श्री के मंदिर के सब पट खुले पड़े हैं,
कर्म-अर्चना से कर दो प्रतिमा आलोकित !

समाधान शंका का बुद्धि नहीं कर पाती
भ्रम से तो भगवान भूत समझे जाते हैं,
किन्तु आत्म-विश्वासी संसृति के सागर से
कर्मों के द्वारा फल के मोती लाते हैं,
युग-युग तक के अंधकारमय जीवन-पथ को
'अहं ब्रह्म' के आप्त वाक्य से कर दो ज्योतित !

संस्मरण—

अमर शहीद आज़ाद
का
भूतों से सामना

— श्री भगवानदास माहौर

अमर शहीद चंद्रशेखर आज़ाद

सन १९२८ की जुलाई में अमर शहीद चन्द्रशेखर आजाद ने अपने क्रान्तिकारी दल की एक शाखा ग्वालियर में स्थापित करने के लिए तथा वहाँ पर जो कुछ क्रान्तिकारी नवयुवक दल से असम्बद्ध अलग से थे, उनसे सम्पर्क स्थापित करके उनको दल से सम्बद्ध करने के उद्देश्य से मुझे भेजा था। मैं वहाँ विक्टोरिया कॉलेज में बी० ए० का विद्यार्थी होकर डिग्री होस्टल में रहता था जो उस समय कॉलेज के पास ही खुली जगह में था। कुल १०-१२ कमरे ही तो थे। होस्टल के विद्यार्थियों का एक साधारण-सा विनोद यह भी था कि जब कोई नवागन्तुक विद्यार्थी या किसी का कोई अतिथि वहाँ आता था, उसे वे भूत से डराया करते थे। इण्टर के विद्यार्थी दूर, अलग होस्टल में रहा करते थे। उन्हें 'भूत-प्रोग्राम' की खबर दे दी जाती थी और वे रात के लगभग १०-११ बजे "भूत" बनकर लोगों को डराने का बहुत सा सामान लेकर डिग्री होस्टल के पास पहुँच जाते थे और वहाँ तरह-तरह के भयोत्पादक दृश्य उपस्थित करते थे— पेड़ पर से अंगारे बरसना, दूर पर लम्बे-लम्बे भूतों का नाच, तरह तरह की रोशनियाँ, तरह तरह की चीखें-चीत्कार आदि। इस भूत प्रोग्राम के लिए हम डिग्री होस्टल के छात्र पहले से ही भूमिका तैयार कर रखते थे। अतिथियों और नवागत छात्रों से बड़े भय के प्रदर्शन के साथ यह कह रखा जाता था कि 'हम लोगों के होस्टल में सब सुविधाएँ हैं, बड़ा सुन्दर स्थान है, खुली हवा है, अच्छा वातावरण है, बस एक ही बड़ी खराब बात है कि यहाँ कभी-कभी भूत दिखाई दे जाते हैं। यद्यपि भूतों से होस्टल के किसी भी छात्र को कोई नुक्सान, कोई बाधा अभी तक नहीं पहुँची, किन्तु

इससे क्या, डर तो लगता ही है। एक बार एक महाशय, जो जरा तीसमारखाँ बनते थे, ज़रा उधर को चले गये, बस फिर तो उन्हें इतने जोर का बुखार चढ़ा कि मरते मरते बचे। तब से यद्यपि भूत यहाँ आए कई बार, किन्तु हम होस्टल के छात्रों में से उन्होंने कभी किसी को नहीं छेड़ा, किन्तु है यह जगह भुतहा।' ऐसी-ऐसी बातें हम लोग सीधे कभी अपने भूत प्रोग्राम के शिकार से या उसके सुनते हुए आपस में ही सरसरी तौर पर कर जाते थे। कोई यों ही भूतों के प्रति उपेक्षा का भाव रखता, कोई चिन्ता प्रकट करता, कोई "होगा कुछ, हमें क्या ?" की लापरवाही का भाव रखता। इस प्रकार हमारे 'भूत-प्रोग्राम' के शिकार के मन में भय की भूमिका डाल दी जाती थी। रात को यथा समय 'भूत-प्रोग्राम' शुरू होता और हम लोग भयभीत होने का प्रदर्शन करते और अतिथियों और नवागन्तुकों के भयभीत होने का आनन्द लेते।

आज़ाद मुझ से मिलने होस्टल में आए, तो यार लोगों को इनको भी 'भूत-प्रोग्राम' का शिकार बनाने की सूझी। अब मैं बड़े संकट में पड़ गया। मैं न तो अपने साथी छात्रों से ही कह सकता था कि इनके लिए 'भूत-प्रोग्राम' ऐसी कोई चीज नहीं होनी चाहिए और न आज़ाद से ही कह सकता था कि ये लोग इस प्रकार 'भूत-प्रोग्राम करते हैं। क्यों कि यदि 'भूत-प्रोग्राम' विफल हो जाए तो साथी छात्र मुझ से बिगड़ते कि तुमने 'गद्दारी' की, तुमने पहले से अतिथि को बता दिया और फिर साथी छात्र मेरी बुरी गत बनाते। इधर यह भी डर लग रहा था कि कहीं आज़ाद को कुछ डर सा वास्तव में लगा और कहीं वे पिस्तौल चला बैठे, जो सदा उनकी जेब में तैयार रहता ही था तो कहीं कोई छात्र वास्तव में 'भूत' न हो जाए। फिर यह भी झूठ नहीं है कि मुझे भी कुछ कुतूहल था ही कि देखें 'हर प्रकार के संकट का सामना हौसले से करने वाला यह वीर 'भूतों' से कैसे निपटता है।' अतएव मैंने आज़ाद से कहा: "पण्डितजी, इधर एक बड़ी खराब बात है। आप जरा सावधान रहिएगा। ऐसी-वैसी चीज ऊपर न रखियेगा। ये होस्टल के लड़के बड़े शरीर हैं। अक्सर मजाक-मजाक में ये लोग एक दूसरे की जेब में हाथ डाल बैठते हैं और अतिथियों के साथ भी निहायत बे-तकल्लुफ हो जाते हैं। आप पिस्तौल बाहर जेब में न रखिए। यहाँ वैसे कोई भय की बात भी नहीं। मैं समझता हूँ, पिस्तौल बक्स में बन्द करके ही रख दीजिए तो अच्छा रहेगा। आपकी जेब में कहीं किसी ने यों ही टटोल-टटाल लिया या हाथ ही डाल दिया तो मामला गड़बड़ हो जायगा।" आज़ाद बहुत बिगड़े—"यह सब क्या बदतमीजी है ? और ऐसे में कुछ हो जाए तो मैं यों ही निहत्था बिना कुछ किए पकड़ लिया जाऊँ ! तू छोड़ यह होस्टल, कहीं अलग मकान लेकर रह।" मैंने कहा—"अब अलग मकान जब लिया जायगा, तब लिया जायगा, आज तो परिस्थिति के अनुसार

काम करना ही पड़ेगा ।'' लाचार आज़ाद ने पिस्तौल मुझे दे दी और मैंने उसे बक्स में बन्द करके चाबी आज़ाद के सुपुर्द कर दी ।

यथा समय 'भूत-प्रोग्राम' शुरू हुआ । पेड़ पर से अंगारे बरसना प्रारंभ हुए । कालेज के दुमंजिले पर एक अस्थि-कंकाल सा कुछ धीमे प्रकाश में चलता हुआ नजर आया, कभी दिखता कभी ओझल हो जाता । रसायनशाला की पानी की टंकी पर एक तेज प्रकाश रह रह कर होने लगा । गैस प्लान्ट के पास भी ज्वालाएँ सहसा धधकीं और शान्त हो गयीं और फिर जलने लगीं और इधर हम लोगों ने भी भयभीत होने का अभिनय किया ।

गरमी थी । सब लोग बाहर मैदान में खुले में चारपायी डाले पड़े सो रहे थे । आजाद भी वहीं पड़े थे । पहले तो वे चुपचाप पड़े रहे । जब एक साहब 'डर' कर उनकी चारपायी पर ही गिर पड़े और काँपने लगे और उनकी घिग्घी ही बँध गयी, तब तो आज़ाद को उठना ही पड़ा । वे उठे और उन्होंने इधर उधर देखा । मुझसे और झाँसी के दो एक और जाने हुए साथियों से, जो वहाँ थे, उन्होंने पूछ ताछ की ''यह सब क्या है ?'' हम लोग बड़ी मुसीबत में पड़ गये । आज़ाद को क्या उत्तर दें । यदि हम लोग भयभीत होकर दिखाएँ, तो आज़ाद हमें बुजदिल समझें और फिर हम लोग उनकी नज़रों में गिर जाएँ । मैंने अपने आपको भयभीत तो नहीं, उत्तेजित अवश्य बहुत दिखाया और उनके सवालों का कि ऐसा कब होता है ? क्यों होता है ? पड़ोस में कुछ बदमाश मर्द या औरतें रहती हैं क्या ? आदि का टालमटूल उत्तर देता रहा । आज़ाद बोले—'अबे चल, क्या पिन-पिन पिन-पिन करता है, यहाँ जरूर कुछ बदमाशी है । इसकी खबर तुम लोग अधिकारियों को क्यों नहीं कर देते । यह भूत-बूत कुछ नहीं, किसी की शरारत-बदमाशी है ।'' वे उठ खड़े हुए । उन्होंने सिरहाने से अपना कोट उठाकर पहना, उसकी जेब में पत्थर भर लिए और मुझ से बोले ''चल, देखूँ कौन है ?'' मैंने समझा—लो अब किसी भूत का सर फूटता है, किसी का हाथ पैर टूटता है । मैंने कहा ''रहने दीजिए, होगा कुछ, अपने को क्या पड़ी है, लोग बताते हैं ऐसा तो यहाँ होता ही रहता है ।'' आज़ाद बिगड़ कर बोले ''अबे चल, क्या खाक होता रहता है । देख, बेचारे लड़के कितने डर रहे हैं । इन भूतों की असलियत खुल ही जानी चाहिए । क्यों, क्या तुम्हारे भी घुटने काँप रहे हैं ? अबे चल ।'' अब अगर आज़ाद की नजरों में बुजदिल न बनना हो तो सिवाय उनके साथ चलने के, मैं और कर ही क्या सकता था ।

दूर एक पेड़ से अंगारे रह रह कर बरस रहे थे । आज़ाद बीच फील्ड में खड़े दूसरी ओर देखते रहे । जैसे ही अंगारे फिर बरसना शुरू हुआ, उन्होंने लगातार दो तीन पत्थर उस पेड़ पर सन्ना दिये । अंगारे बरसाने का रासायनिक द्रव पदार्थ एक साथ नीचे आ गिरा ।

कुए के ऊपर, टंकी के पास, जो भूत ने भड़ाका किया, उधर के भूत के कान के पास से सन् से एक पत्थर सन्नाता निकल गया और फिर 'भूत' ने वहीं दुबक कर लेट जाने में ही खैर समझी।

जो सनन सनन सन्नाते दो चार पत्थर सर पर से, अगल बगल से निकल गये समझ लिया भूतों ने किसी विकट से सामना पड़ गया है। कालेज के दुमंजिले में जो भूत ने भड़ाका किया और नर-कंकाल चलता नज़र आया तो दो चार पत्थर उधर भी सनसनाते चले गये। फिर तो कंकाल जो पहले बड़ी गजमन्थर गति से ठाठ से चल रहा था, भागता नजर आया। ग़रज यह कि पाँच दस मिनिट में ही सब भूत भाग गये। पेड़ पर का भूत कूद कर भागा। बेचारे टंकी पर चढ़े भूत की बुरी हालत थी। वह करीब ३०-३५ फीट ऊपर टँगा था और उसे लोहे की सकड़ी सीढ़ी पर से उतर कर भागना था, वह वहीं दुबक रहा। होस्टल के छात्र कहते ही रहे "अरे क्या गजब कर रहे हैं, उधर मत जाइए, यह उपद्रव मत कीजिए, बड़ा खतरा है, बड़ा खतरा है" मगर आज़ाद ने मारे पत्थरों की वर्षा के भूतों को भगा कर ही छोड़ा।

हम लोगों के पास अब इसके सिवा कोई और चारा न था कि तुरन्त सब रहस्य प्रकट कर दें, नहीं तो एक दो भागते हुए 'भूतों' की खोपड़ी की खैर नहीं। हम सब खिलखिला कर हँस पड़े, आज़ाद को मैंने हँसते हुए पकड़ लिया—"अरे जाने दीजिए, मारिये मत, अपने ही लोग हैं।" आज़ाद भी हँसने लगे और लौट आए। फिर तो सभी 'भूत' होस्टल में ही आ गए और भूत-विजेता आजाद से मिलकर बहुत खुश हुए। हम लोगों ने टंकी वाले भूत को भी जाकर उतारा, बुरी स्थिति थी बेचारे की।

आज़ाद ने हम लोगों के भूत-प्रोग्राम की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की और होस्टल के छात्रों को अपना प्रोग्राम विफल होने की खीझ और चिढ़ न होने दी। आपने कहा "वाह कमाल है, भाई तुम लोग बड़ा सुन्दर अभिनय करते हो। और इससे लाभ भी होता है। वैसे कुछ कहते रहो, लोगों का भूत का मिथ्या डर भागता थोड़े ही है, मगर तुम लोगों का यह भूत-प्रदर्शन भूत की असलियत बड़ी अच्छी तरह दिल में ठसा देता है। जो एक बार तुम लोगों का भूत-प्रदर्शन देख ले, फिर उसे कभी भूत का मिथ्या भय नहीं रहेगा।......" आज़ाद के प्रति किसी को चिढ़ या खीझ न रही।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि हमारे ये होस्टल के साथी लोग (हम दो तीन को छोड़कर जो क्रान्तिकारी पार्टी के सदस्य हो चुके थे आजाद का सही परिचय तो जानते ही न थे। वे उन्हें मेरे एक मित्र, झाँसी के हरिशंकर के ही नाम से जानते थे। इस भूत विजय के बाद होस्टल में हरिशंकर का अच्छा सम्मान हो गया। किन्तु आज़ाद के आदेशानुसार मुझे फिर होस्टल छोड़कर पास ही में नाका चन्द्रवदनी में एक मकान किराये से लेकर रहना पड़ा।

उठ क्रान्ति सुन्दरी जाग जाग !

—प्रो० गजानन शर्मा—

है अम्बर में अब रंग लाल,
तम्रचुर बोले ले शिख-मशाल,
फिर भी सोई तू, ले सँभाल—
निज शस्त्र और ये स्रस्त बाल,
रिपु शोणित से अब खेल फाग;
उठ क्रान्ति सुन्दरी जाग जाग !

विध्वंस वह्नि का पहन चीर,
रक्त का लगा सिन्दूर वीर,
झलका ललाट पर स्वेद-नीर,
आभूषण कर में धनुष-तीर,
कर चिता-भस्म नव अंगराग;
उठ क्रान्ति सुन्दरी जाग जाग !

मानव की दलित कराहों की—
भूखे-नंगों की आहों की
मृत-वत्साओं के रोदन की
कृषकों के करुणा-क्रंदन की
तू विस्फोटित हो आज आग
उठ क्रान्ति सुन्दरी जाग जाग !

फिर छूम-छनन कर दिखा नृत्य,
सम हों जिससे सब स्वामि भृत्य,
त्यागे नृशंस जन क्रूर कृत्य,
शिव सुन्दर हो आदर्श सत्य,
तू शान्ति प्रदात्री वर सुहाग;
उठ क्रान्ति सुन्दरी जाग जाग !

न्यौछावर तुझ पर नव युवान,
करने को प्रस्तुत आज प्रान,
अतएव सुना वह वीर गान,
गूँजे जिसकी सब ओर तान,
जाग्रत कर दे वह सुप्त भाग;
उठ क्रान्ति सुन्दरी जाग जाग !

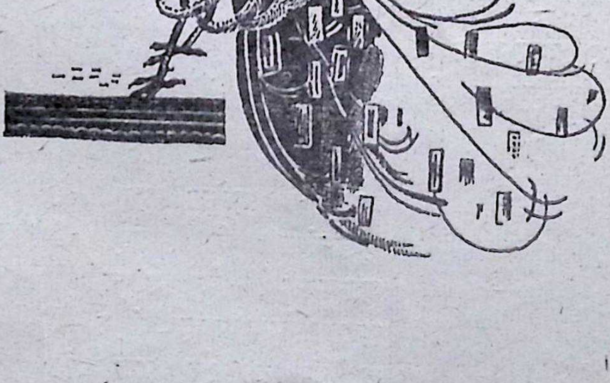

कहानी—

हार
या
जीत
LAXMAN

— श्री परदेशी

यदि करीम बबूल का पेड़ था तो, सईदा अंगूर की बेल थी। करीम का जीवन आपदा और कष्ट-सहन की कहानी था। पर, सईदा का यौवन अमोद-विलास के समुद्र की लहर था, जो अपनी मस्ती के उभार में इतरा कर उठती, और बेहोशी में इठलाकर गिरती थी।

करीम दिन-भर खेत में काम करता; सईदा दिन भर सपने देखती—प्यार और मुहब्बत के सपने, भरी पूरी गृहस्थी के सपने, अच्छी पोशाक और बढ़िया भोजन के सपने! करीम बीज बोता और फसल काटता; सईदा गोटा मँगाती, किनारियाँ मगाती और दुपट्टे पर फूल सीती, तारे लगाती। करीम काला पड़ता जा रहा था, सईदा गोरी होती जा रही थी।

करीम और सईदा दोनों अकेले थे, अतः एक थे। जीवन के आकाश से दिनों के तारे तोड़ते जा रहे थे। कब दिन ढला और कब दिन निकला—इसका हिसाब न करीम ने रखा, न सईदा ने। और सईदा भला रखती भी क्यों? वह तो करीम के गले का हार थी। हार का काम है अपने जीवन की गोलाई के घेरे में सौरभ उड़ाना! सो, सईदा में सौरभ था और सौरभ का अतिरेक था जिससे सारा गाँव सुगंधित था और जिसकी मस्ती में करीम दीन-दुनिया को भूलकर, रात दिन एक कर रहा था,

अपना खून सुखा रहा था, पसीना बहा रहा था, हड्डियाँ गला रहा था और इस तरह सईदा की हर एक माँग और अभिलाषा पूरी कर रहा था !

पर, सईदा की माँगे विचित्र थीं और अभिलाषाओं का अन्त नहीं था। पिछले चार सालों में, जब से ब्याह हुआ, वह प्रतिदिन उसी तरह बन-ठनकर रही है, जिस तरह ब्याह के दिनों रही थी। उसे यह समझ में नहीं आता था कि ब्याह आठ दिनों में कैसे पूरा हो सकता है। सारा जीवन ब्याह की खुशियों की अभिव्यक्ति है। और जब कोई प्रसन्न है और उसके मन में चैन की सम्पत्ति और सपनों का सुन्दर कोष है, तो क्यों न अच्छे कपड़े पहने, क्यों न बन-सँवर कर रहे ? आंख में काजल और हाथ में मेंहदी क्यों न रचाए ?

सईदा सुन्दर थी, बहुत सुन्दर। और सुन्दर स्त्री मर्द की दुर्बलता है। और जब तक ऐसी स्त्री साथ रहती है, वह दुर्बलताओं में जीता है और रूप के शासन की सीमा से परे नहीं जा पाता। अपनी आँख उसे दुर्बल बना देती हैं और अपना मन उसे परवश बना देता है।

सईदा की आँख में जादू था, एक रस था जो बराबर बरस रहा था। उसकी काया दुबली-पतली और तीर की तरह थी, तीखी और नुकीली ! जब वह चलती, तारे उसकी परछाईं बन जाते और उसे देखने चाँद धरती पर उतर आता ! उसकी आभा परियों-सी थी।

सईदा एक हिरनी थी। बोलती तो शब्दों से शहद चूता। उसके बायें गाल पर एक छोटा-सा तिल था, जिसने उसके रूप के शासन की अप्रतिहतता को बढ़ा दिया था। पर, करीम कहता—"अगर, यह तिल न होता तो तू रानी बन जाती।"

"अब भी क्या किसी रानी से कम हूं ?"—वह अपनी अस्वीकृति में पूछती।

"नहीं, नहीं"—बाजरे की मोटी रोटी का कौर मुँह में रखते करीम को कहना पड़ता।

वह सईदा के मन में यह सन्देह भी पैदा नहीं होने देना चाहता था कि उसे रूप की पहचान नहीं है और उसके दिल में अपनी मोहिनी के लिए सोने का सिंहासन नहीं है।

सईदा का मुँह देखते दो-एक रोटी खा लेने पर करीम का श्रम कम हो जाता और थकान थम जाती। तब आती सईदा की फरमाइश। सईदा करीम के चैन और राहत का भेद जानती थी और जहाँ उसका मन अपनी डाल पर बैठकर उनींदा हुआ कि सईदा चहचहा उठती—"परसों दीवाली है !"

"हाँ, है।"

"बुध के बाजार से सौदा लाना है।"

"पर दीवाली तो हिन्दुओं का परब है।"

"हिन्दुओं का हुआ तो क्या हुआ ? दीवाली खुशी का त्यौहार है और खुशी हिन्दुओं की 'अनामत' नहीं है। खुदा सबको खुश देखना चाहता है।"

"ठीक है, क्या-क्या लाना है ?"

"मेंहदी, बेंदी, चूड़ियाँ, हल्दी, उबटन गुड़ और दो ओढ़नियाँ....." सईदा गुलाबी अँगुलियों के पोरों पर एक-एक कर सारा सामान गिनाती और करीम की ऊपरी साँस ऊपर और नीचे की साँस नीचे रह जाती।

और एक दिन दीप-किरनों पर पग धरती चिर प्रतीक्षित दीपावली गाँव की गैल उतर आती। सईदा सबेरे से ही उसके स्वागत की तैयारी में लग जाती। वह दिन-भर नहाती। साँझ कज्जल, बेंदी और मेंहदी में कट जाती। और जब थका हुआ करीम घर लौट आता तो उसे रोटी के बजाय सजी सजाई दुलहन मिलती ! बैलों को चारा-पानी दे, मियाँ मिट्ठू को भीगे चने डाल, वह चौपाल में पड़ रहता और उसकी "दीपावली" उसकी काया को पार कर, बिछौना तजकर, सखियों में जा मिलती, जहाँ वे उसके अल्हड़ यौवन के हरेक उभार की सराहना करतीं। गाँव की उन मैली-गन्दी औरतों ने इस प्रकार का बनाव और सिंगार कम ही देखा था।

दीपावली के बाद, अगहन, पूस और माघ के महीने सईदा के लिए अभिशाप बन जाते। कारण, इन दिनों वह न तो नदी के जल में तैर पाती, न उसे फुर्सत ही मिलती। खलिहान में तरह-तरह की फसलों के ढेर लग जाते, जिनमें उदास सईदा काम तो करती, पर उसका मन यह गिनती लगाता रहता कि अब फागुन में कितने दिन शेष रहे हैं और होली ठीक कौन से दिन आएगी। सईदा की इस असावधानी से करीम को नुक्सान होता। खेत में मजूर ऊँघ जाते और खलिहान में मवेशी एकत्र होकर पेट भर धान खाते। करीम आता, क्रुद्ध होता, पर पके सेव-सी तड़क-तड़क सईदा से आँख मिलते ही चुप होकर हट जाता। ढोरों को भगाकर मजूरों को उलहना देता।

होली पर सईदा की खुशी का ठिकाना न रहता। गुलाल, अबीर, हल्दी और टेसू के रंगों से वह तर-बतर रहती। पड़ोसिनें जुड़ आतीं। सुकुलानी और चौधरानी के अलावा मेघा अहीर की मैंना, चम्पा तेली की सोना और लल्ला लुहार की रूपा सईदा की सेना का निर्माण करती। और जैसे ये सब मिलकर होली को अपनी काया के पनघट पर उतारतीं और सिकन्दर सईदा की यह सेना गाँव में जिस ओर जाती, इक्के दुक्के मर्दों और देवरों को सूली चढ़ना पड़ता। आगे आगे सईदा लम्बी पिचकारी लिए चलती। सारी देह तरह'तरह के रंगों से रँगी देखकर लगता, मानो उसके अंग-अंग से रंग की पिचकारियाँ फूट रही हैं।

सिकन्दर की यह सेना गाँव भर में भारी कुहराम मचा देती। चारों ओर भागदौड़ और हो-हल्ला भर जाता। रस का पारावार उमड़ता। कुँवारी लड़कियों की खिलखिलाहट और विवाहिता तरुणियों की उल्लासमयी हँसी जीवन की आग और चमक को और तेज कर देती।

करीम जुलाहे के पास इस चढ़ाई के सारे समाचार समय-समय पर पहुँचते रहते। बड़े-बूढ़े उसे जोरू का गुलाम कहते और हमजोली उसके सुख से ईर्षा करते। दोनों वर्गों के बीच करीम जैसे एक कैदी की तरह था।

उसका मन चाहता कि वह सईदा को कुछ समझा दे। क्या समझा दे, यह वह खुद भी नहीं जानता था। पर कुछ चाहता अवश्य। एक कमी-सी उसे महसूस हो रही थी जो जाने सईदा में थी, जाने उसमें थी—इसी उलझन में वह भटक रहा था।

करीम ठण्डा था। पूस की नम हवा की तरह, उसका मन खामोश था। जीवन में उसे न कोई चाह थी, न कोई जरूरत। जो सब चाहते, वही उसकी पसन्द थी, जो सब कहते वही उसका कहना था। जो सब खाते वही उसका भोजन था, जो सब करते वही उसका काम था। फिर भला, सईदा के अलवेलेपन को वह कैसे छू पाता!

सईदा तो सब की तरह नहीं थी। वह सब में मिली थी, सबसे अलग थी। सईदा गाँव में एक थी और गाँव में ही नहीं आसपास के बीस गाँव की वह रौनक थी, इसलिए अकेली थी। उसकी नवीनता शहरी बहुओं में भी पाना आसान न था। वह कानपुर से काजल मँगाती। पंजाब से गोटा-किनारी आता। बम्बई से "मसाले की चूड़ियाँ" आतीं। गंगाजी जाते यात्री उसके लिए काशी की चुनरिया लाते। हज को जाते हाजी यह पूछना न भूलते कि उसे क्या चाहिए। गाँव के हिन्दू मुसलिम सब जगह बेमेल थे, सईदा ही एक ऐसी जगह थी जहाँ दोनों मिल जाते।

नजाकत और नफासत की दुनियाँ में बसने वाली ऐसी चिड़िया को भला करीम जैसा सीधा-सादा गँवई क्या बाँध पाता? वह क्या प्रेम से बँधती? वह क्या सेवा से बँधती? वह क्या पुचकार से पसीजती? वह क्या मनुहार से मानती?

इस चिन्ता में परेशान करीम भला क्या करे? सईदा बीमार तो थी नहीं कि वह किसी हकीम से इलाज कराता! और हकीम सईदा का इलाज करता तो खुद बीमार न पड़ जाता? वह मुजरिम तो थी नहीं कि हाकिम के पास जाता! और हाकिम सईदा का फैसला करता तो खुद हुक्म बजाने वाला बन जाता!

करीम उसाँस भर कर रह जाता। वह हारता आया है और हारेगा। सईदा जीतती रही है और जीतेगी।

पर वह उसे बाँध कैसे ले ? "एक बार अपने बस में कर ले तो, वह आजीवन दासी बनी रहेगी ।"—पाँच नीम के मन्दर वाले जतीजी ने मंतर देते उसे यही कहा था ।

पिछले चार बरसों में तो वह एक भी बार बस में नहीं हुई । अगले चार बरसों में कोई आशा नहीं और आठ से बारहवें बरस में शायद बस में आ जाय, इसी उम्मीद पर करीम जी रहा था और इसी की पूर्ति के लिए वह हनुमानजी के सिन्दूर चढ़वाता और पीर की दरगाहों पर फूल !

लेकिन, सिन्दूर लगाने और फूल चढ़ाने से औरतें बस में आ जातीं तो, दुनिया की सारी औरतें गुलाम हो जातीं !

इस तरह सईदा—कल की छोकरी सईदा, करीम के जीवन की एक कहानी बन गयी । कहानी इसलिए कि करीम उसे दूसरे से सुनता, दूसरों के जरिए उसे जानता ! वह तो कोशिश कर उसे जान न पाया । शायद, लोग जानते हैं, तभी तो कुछ कहते हैं । सईदा गाँव के कथक्कों की कहानियों की नायिका बनती जा रही थी, कव्वालों की पहली कड़ी बन रही थी । इस तरह उसका नाम किसी परी से कम सम्मान से नहीं लिया जाता था ।

करीम करे तो क्या करे ? न करे तो क्या न करे ? सईदा तो जो करती आई है, वही करती है । जो न करती आई, उसे सीख रही है । पहेली में उलझन समा गयी थी, जो करीम और सईदा के बीच एक गाँठ बनती जा रही थी ।

बड़ी मस्जिद का मुल्ला बड़ा नाराज था । वह आए दिन करीम को फटकारता "लौंडिया तेज तर्रार है । करीम, समझ से काम ले, वरना वह किसी काफिर के साथ भाग जाएगी ।……"

बात यहाँ तक आ गयी । सईदा की कहानी गाँव की जबान से उठकर, मुल्ला के बाँग देने वाले बड़े गले की हिमाकत बन बैठी ।

रूपमाधुर्य ने खुदा के बंदों की इबादत के खलल डाली ।

"सईदा भाग जाएगी ।……"

और क्यों न भाग जाएगी—वह रोजा नमाज छोड़कर दीवाली मनाती है । रास गाती है । कमबख्त हिन्दुओं का धरम भी शोर गुल और मौज मजे के सिवा कुछ नहीं । हर तीसरे दिन त्योहार और प्रति पाँचवे दिन परब ? क्या इनके देवता जनमते रहते हैं, मरते नहीं ?—करीम सोचता है—देवता के मरने का दिन ये नहीं मानते ?

करीम क्या जाने, हिन्दू मजहब मजबूरी और मनहूसियत नहीं सिखाता !

धीरे-धीरे जतीजी से उसके विश्वास का फुग्गा फट गया । इधर मौलवी उसकी जान की दौलत पर साँप की तरह सवार था । बड़ी बी की दरगाह वाले फकीर की

करामातों और नियामतों की इन दिनों धूम थी । करीम भी जुमे की नमाज पढ़, नये कपड़े पहन जियारत को चला । मौलवी ने कहा,—"मेरा नाम ले लेना, वे ऐसा ताबीज देंगे कि इंशा अल्ला, सईदा बकरी की तरह तेरे पीछे लगी रहेगी ।"

पर, सईदा यह सब सुन-सुन कर सुलग उठी। यह उसके स्वाभिमान को चुनौती थी। सईदा की फुफकार से करीम के मंत्रों की करामातें छू हो गयीं।

× × ×

फिर एक दिन गाँव में अनहोनी घटना हो गयी । सभी ने विस्मय से जिसकी चर्चा को सुना और दूसरों को सुनाया । इस प्रकार यह चर्चा एक से दूसरे कानों में पहुँच कर कहानी बन गयी और सारे गाँव में फैल गयी ।

सबसे अधिक अचम्भा औरतों को हुआ—उन औरतों को जिन्होंने अपनी पूरी उमर मर्दों की गालियाँ, लात, और घूंसे खाए थे और पिटाई के बदले में उन्हें ताजा गरम रोटियाँ और छोटे मासूम वच्चे दिये थे । बचपन में देखे लहराते जीवन के सपने जिनके आँसुओं में बह निकले थे और—जिनकी जवानियाँ प्रतिदिन की परेशानियाँ बन कर ढल गयी थीं ।

बात यह थी कि पिछली रात शैतान चौकी के चौकीदार अहमद के साथ सईदा गायब हो गयी थी। और जब उसके भाग जाने की बात सच्ची साबित हुई तो करीम इस तरह फूट-फूट कर रोया कि उसका रोना बेमिसाल कहानी बन गया !

और इससे गाँव की औरतों की अबोध आँखों में विस्मय की बेलें फूटने लगीं। उन्हें अचम्भा इस कारण नहीं था कि सईदा भाग गयी थी, क्योंकि लड़कियों का किसी खुशनुमा मर्द के साथ भाग जाना, गाँव की एक अभंग परम्परा बन गयी थी और हर सप्ताह, हाट के पहले या दूसरे दिन, गाँव की एक न एक लड़की किसी की बाँह थामे खुदा की राह पर चल देती ! इसलिए, उन औरतों के विस्मय का विषय तो करीम था—जो औरत के लिए रो रहा था, नामर्द ! एक ऐसी औरत के लिए जिसे चाहे तो उसका मर्द कभी भी पीट सकता है, भूखा रख सकता है, गाय बैल और गधा की तरह जिससे काम और मजूरी ले सकता है। उन बेबस और बेसमझ ग्राम्याओं की यही धारणा थी और इस धारणा और विश्वास को वे किसी भी मूल्य पर नहीं छोड़ सकती थीं—यही धारणा उनका धर्म और यही विश्वास उनका सतीत्त्व था । शताब्दियों की पुरुष की गुलामी के कारण, उनकी नाड़ियों में बहने वाला दासत्व का विष उन्हे अमरित लगता था ! अन्धकार में जीते-जीते उनकी आँखें प्रकाश से चौंधियाने लग गयी थीं और नये प्रकाश को देखना और ग्रहण करना, उनके बस से बाहर था ।

"सो, यह करीम कैसा मनहूस मर्द है ? औरत के लिए—पैर की जूती के लिए रोता है। जूती चली गयी, तो दूसरी ला सकता है !"

और यह चर्चा प्रेत या जिन्न के साए की तरह कई दिनों तक पूरे गाँव पर मँडराती रही !

× × ×

सईदा और अहमद को गये कोई पन्द्रह दिन हुए होंगे। एक दिन सईदा ने अपने नये प्रेमी से कहा—"देखो, घर में सामन कुछ नहीं है।" फिर अहमद के पूछने पर उसने सारी सूची सुना दी—"मेंहदी, बेंदी,···चूड़ियाँ, हल्दी, उबटन,···राई और तीन ओढ़नियाँ······"

बीस रुपये का चौकीदार अहमद इन चीजों का सपना भी नहीं देख सकता था। उसने सईदा का मोल आँकने में गलती की थी। करीम की बात अलग थी, उसने सोचा—वह एक छोटा-मोटा जमींदार आदमी, मैं एक अदना चौकीदार······

अहमद को पछतावा हुआ कि उसने अपनी कुटिया में हाथी बाँध लिया है !

फिर, दो दिन तक, जब अहमद ने सरकारी काम का बहाना बनाकर मुँह नहीं दिखाया तो, सईदा का गरम और आजाद लहू आपे से बाहर हो गया। तीसरे दिन अहमद को देखते ही सईदा बरस पड़ी। अहमद भी तना बैठा था, सईदा की फरमाइशें डण्डे के जोर पर पूरी करना चाहीं। सईदा ने पूरा जवाब दिया, अहमद की प्रत्येक गाली को उसने, अपना शरीर छू सकने के पहले ही लौटा दिया, अपनी बुलन्द आवाज में उसने वह शोर मचाया कि पास-पड़ोस के लोग जमा हो गये—"देखो न, मर्दुआ पेट भर खाना नहीं दे सकता तो मुझे यहाँ लाया ही क्यों,···जारे जा, बड़ा आया····मुझे कोई मामूली औरत मत समझना········"

अहमद की नीवें हिल गयीं।

साधारण मनुष्य हाथी को खिला-पिला न सकता हो, पर अपने आँगन में हाथी बँधा देखकर उसे गौरव का अनुभव तो होगा ही। उस गौरव और स्वाभाविक अहम्मन्यता को वह सहज ही छोड़ना नहीं चाहेगा। यही हाल सईदा को लेकर अहमद का था। नयी जगह के सभी लोग उसका भाग सराहते थे और अहमद के कानों, गाँव के जवानों की यह बात पड़ गयी थी कि इस साल ईद का चाँद न दिखा तो न सही, अहमद मियाँ के घर जाकर देख आएँगे और इस पर बीस रुपए के चौकीदार को जितना गर्व होना चाहिए था, हुआ !

सईदा की कीर्ति जब बहुत फैल गयी तो एक दिन खुद दारोगाजी अहमद के यहाँ मेहमान हुए। उनके आने के दो घंटे पहले एक नौकर आया और जरी की दो साड़ियाँ, काँच के गिलास, सिंगारदान और प्लास्टिक की चूड़ियाँ, बेंदी और बहुत-सा सामान रख गया और चलते-चलते सईदा के भाग सराह गया। पर, न जाने

क्यों, अपनी मन चाही चीजें पाकर भी सईदा को कुछ अच्छा न लगा और मन में एक उदासी घिर आई।

साँझ ढलने पर दारोगा जी आए। अहमद आगे-आगे दौड़ रहा था। बरामदे में खाट बिछाकर दोनों बैठे। और जब नीची नजर किये सईदा हुक्का ले गयी, तो उसे देखकर दारोगा जी की आँखें निकल आईं—

"ओफ्...गजब है, अहमद !"

"हुजूर, मोती चुगती है"—अहमद ने सईदा के विषय में रपट कर देना जरूरी समझा।

"मोती भी चुगवाएँगे रे, डरता क्यों है ?"

"मिजाज जरा तेज है"—अहमद ने सुर धीमा कर, कहा।

"मिजाज की तेजी ही जवानी की निशानी है।"—दारोगाजी की बात से, अहमद को जैसे सईदा के स्वभाव का भेद समझ में आ गया। बोला—

"हुजूर जानें, मैंने तो अपना काम पूरा किया। अब ठहरूँ या जाऊँ ?"

"जाकर क्या करेगा, यहीं बरामदे में पड़ रहना।"—पैर की जूती का गाहक बोला।

पैर की जूती किवाड़ की ओट में खड़ी सब सुन रही थी।

× × ×

सईदा रात भर ऊबड़ खाबड़ खेतों, मेड़ों और पगडंडियों को पार करती रही। पैर—जिन पर उसने कभी धूल भी न लगने दी थी, कीचड़ से सने, लहू-लुहान हो गये थे। आँखों से आँसू बह रहे थे। हाथों की दोनों मुट्ठियाँ कसी थीं और वह एक सपाटे की चाल से बढ़ी जा रही थी। दारोगा और दोगले अहमद की बातें उसके मन में गूंज रही थीं। उन पर उपजे क्रोध और घृणा के आवेश में, रास्ते के कंकड़-पत्थरों को ठेलती वह चली जा रही थी।

आज उसने अपनी उछृङ्खल इच्छाओं की निर्बलता जान ली थी। और ज्यों-ज्यों वह उनके खोखलेपन को देखती थी, उसका मन हल्का होता जाता था।

जब उसने गाँव में प्रवेश किया, सूरज ऊगने वाला था। सीधा रास्ता छोड़, वह घरों के पीछे-पीछे चली। जिस समय उसने अपने द्वार पर थपकी दी, वह लड़खड़ा रही थी।

"कौन है....कौन...." कहता, दीया उठाए करीम आया।

द्वार खोला तो एक सिसकती परछाईं उसके पैरों पर गिर पड़ी—"मेरे करीम...."

करीम जैसे सीधे-सादे आदमी को यह गौरव पहली बार मिला था, अतः

उसके मुँह से एक शब्द न निकला। आँसू थाम, बोला—"रोती क्यों है, पगली, मैं जानता था, तू मुझे छोड़कर नहीं जाएगी !....जरीं देख तो सईदा, मैं तेरे गम में रो-रोकर कैसा हो गया हूँ ?"

सईदा ने नजर उठाकर देखा—सचमुच !

'ठहर, मैं अभी मोदी से चाय का पाकिट लेकर आया।"—और करीम बाहर दौड़ गया।

गली में—जिसने भी उसे दौड़ता देखा, आश्चर्य हुआ। विस्मित व्यक्तियों को वह—"सईदा आई है...." कहता गया।

जब तक वह लौटा सुकुलानी, मैंना, सोना और रूपा के अतिरिक्त अन्य पड़ोसियों से उसकी कोठरी भर गयी थी। मैंना चूल्हा सुलगा रही थी। रूपा भाभी के गले लिपटी थी। चौधरानी बैठी करीम की कहानी कह रही थी।

और इन सब के बीच, सईदा का मन—जैसे फिर से अपना खोया राज पाकर खिल उटा !

नवयुग का आह्वान

—प्रो० उत्तमचन्द जैन—

ओ कलाकार नवयुग के, प्राणों का स्फुरण सजा कर।
कवि-वाणी से युग युग की कर निर्मित मूर्ति विभा भर।
कर वर्ष मास पृष्ठों पर अंकित स्वर गीत अनश्वर।
स्वर्णिम विहान नवयुग का झाँके पुलकित अवनी पर।।

रच कवि, सुन्दर भावों से गीतों को मधु लड़ियों में।
युग स्वयं मुखर हो तेरी कविता की इन कड़ियों में।।
युग बोल रहा तू गा, गा, युग स्वर अपनी वाणी में।
निशि दिवस विश्व यह प्रतिक्षण, गुंजित हो कल्याणी में।।

कवि वर्षा के ये आँसू, देखो वसंत मुसकाता।
यह तरु मर्मर पतझड़ का, नवयुग यौवन इठलाता।।
सरिता की कलकल ध्वनि यह जीवन में अलख जगाती।
द्रुम द्रुम की हिलती डाली प्राणों को आज बुलाती।।

सब प्राण-प्राण जीवन में नव अमर सुधा सरसाकर।
ऐसा कर दो हे युग कवि, आ जाये स्वर्ग धरा पर।।
नवयुग, नवसृष्टि, स्वरों में जाग्रति, प्रभात नव झलका।
जागे जगमग द्युति मन में, आह्वान करें नवयुग का।।

वैज्ञानिक निबंध--

राकेट स्लेज और उसका चालक

-- श्री ओमप्रकाश

विज्ञान के क्षेत्र में नित्य ही अद्भुत और नवीन खोजें होती रहती हैं। इन खोजों के कारण ही हमारे संचार-साधनों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गये हैं। ऐसे पथों का निर्माण कर लिया गया है जिन पर मोटरें बिना चालक के स्वतः चलती हैं। उनकी गति, आगे बढ़ने, पीछे हटने और रोकने पर पूरा नियन्त्रण इन पथों के नीचे बिछे हुए बिजली के कुछ तार करते हैं। जब एक मोटर दूसरी मोटर के निकट आती है, उनका प्रकाश अपने आप ही मन्द हो जाता है। राकेट विमान आकाश के हृदय को विदीर्ण करते हुए हजारों मील प्रति घंटे की गति से उड़ाये जा रहे हैं। स्थल पर भी राकेट पद्धति का उपयोग करके कुछ इस प्रकार के वाहन बना लिये गये हैं जो धरती पर ७५० मील प्रति प्रति घंटा की गति से चल सकते हैं। इनको राकेट स्लेज कहते हैं। ऐसे एक वाहन पर अमरीकी वायु सेना के लेफ्टीनेंट कर्नल डॉ० जान पी स्टेप ने २७ बार बैठकर यात्रा की है। पृथ्वी पर वे ही सबसे प्रथम मानव हैं जो अब तक स्थल पर सबसे अधिक तेज चलने वाले वाहन पर बैठे हैं। इस पर बैठकर एक बार उन्होंने ४२१ मील प्रति घंटा की गति से भी यात्रा की है और ऐसा करने में अनेक बार उनको अपनी जान की बाजी लगानी पड़ी है। अनेक बार उनके हाथ और पैरों की जगह जगह की हड्डियाँ टूटी हैं। एक बार उनका सर फूटा है, एक बार इतनी तेज गति के वाहन पर बैठने के कारण कुछ दिनों के लिए उनको दिखना बन्द हो गया था। इतने पर भी वे इन राकेट स्लेजों पर बैठ कर यात्रा करने के परीक्षणों में बराबर लगे हुए हैं। वायुयानों के युग में ४२१ मील प्रति घंटा की गति पढ़ते समय कोई बड़ी रफ्तार मालूम नहीं पड़ती। पर हम यदि इस पर गंभीरता से विचार करें, हमें पता चलेगा कि स्थल पर इतनी गति से चलना लगभग असम्भव ही है। ४०-५० मील की गति से चलने वाली रेलगाड़ी या मोटर की गति को देखकर ही हमारा दिल काँप उठता है। और ८०-१०० मील प्रति घंटा की गति से चलने वाली कोई गाड़ी हमने सड़कों या रेल की पटरियों पर चलती हुई अपने जीवन में देखी नहीं हैं। इसी से

अनुमान लगाया जा सकता है कि इतनी भारी गति से चलने वाली गाड़ी में बैठना कितना भयानक होगा।

इस प्रकार का वाहन वास्तव में सड़कों या रेल की पटरियों पर चलाया भी नही जा सकता, क्योंकि ऐसा करने से सड़क फट जायगी और रेल की पटरी टूट जायगी। इसके लिए एक विशेष प्रकार का पथ निर्माण किया गया है। इतनी तेजी से चलने पर वाहन के पहिये स्वतः ही अलग होकर इधर-उधर जा पड़ेंगे, इसलिए इन राकेट स्लेजों में पहिये नहीं होते। वे बरफ पर फिसलने वाली स्लेजों की भाँति बिना पहिये की होती हैं। सिवाय राकेट यन्त्रों के विश्व में और कोई ऐसा यन्त्र नहीं है जो स्थल पर चलने वाले वाहनों को चलने के तुरन्त बाद ही इतनी अधिक गति दे सके। इसीलिए इसमें राकेट मोटरें या गामक यन्त्र उपयोग किये गये हैं।

विश्व में स्थल पर चलने वाला सबसे तीव्रगामी वाहन ये राकेट स्लेज कैलीफोर्निया की एक बड़ी वायुयान निर्माता कम्पनी, नार्थ रोप एयर क्रैफ्ट इन्क ने बनाये हैं। इस कम्पनी ने ऐसी स्लेजों को बनाने का काम द्वितीय विश्व युद्ध के समय हाथ में लिया था। १९४६ में अमरीका की वायुसेना ने यह निश्चय किया कि कुछ परीक्षण करके यह देखना चाहिए कि अत्यधिक गति का मानव शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है। तब उक्त कम्पनी ने प्रथम चार राकेटों की एक स्लेज बनाकर वायुसेना को दी। इसमें एक हजार पौण्ड का उछाल देने वाले चार राकेट इंजिन लगे हुए थे। स्लेज की अत्यधिक गति २०० मील प्रति घंटा थी। इसका चलने का पथ २००० फीट लम्बा था। इस स्लेज पर स्टेप और उसके साथियों ने परीक्षण के लिए ७३ यात्राएँ की। १९५१ में यह अनुभव किया गया कि इससे भी तेज गति से चलने वाली स्लेज बनाई जाय। तदनुसार एक नई राकेट स्लेज बनाई गयी। इसमें ४॥ हजार पौण्ड का उछाल देने वाले १२ राकेट इंजिन लगाए गये। इसकी अधिकतम गति ७५० मील प्रति घंटा थी। वास्तव में राकेट स्लेज के दो भाग होते हैं। आगे के भाग में चालक के बैठने का स्थान होता है, उसके पीछे एक वायु निरोधक बक्स लगा रहता है। इसके कारण इतनी गति से चलने पर भी वायु का प्रभाव बहुत कम पड़ता है। इसी वायु निरोधक बक्स के भीतर कुछ यन्त्र यथास्थान लगे रहते हैं। इनमें से एक यन्त्र उन प्रभावों को अंकित करता है जो इतनी तेज गति से चलने वाले वाहन को अचानक एकदम रोकने से उत्पन्न होते हैं। एक विशेष प्रकार का कैमरा होता है जो अत्यधिक तीव्र गति से चालक के चलचित्र ले सके। पीछे के भाग में गामक यन्त्र या राकेट इंजिन होते हैं। अब तक इन १२ राकेट यन्त्रों में से केवल छह को ही उपयोग में लाया गया है। इन छह राकेट इंजिनों को चलाने से ही राकेट स्लेज चलने के पाँच सैकण्ड बाद ही ४०० मील प्रति घंटे की गति प्राप्त कर लेती है। एक राकेट इंजिन

उतना ही दबाव पैदा कर सकता है जितना कि जेट उड़ाकू वायुयान का इंजिन।

यह राकेट स्लेज ३५०० फीट लम्बे मार्ग पर चलाई जाती है। यह मार्ग भी एक विशेष प्रकार का बना हुआ है। ७॥ फीट के अन्तर पर रेल की पटरी जैसे भारी-भारी इस्पात के गार्टर दोनों ओर बिछाए गये हैं। उनके बीच के रिक्त स्थान में एक खाई खोदी गयी है। इस खाई को और इस्पात के इन गार्टरों को सीमेन्ट कंक्रीट और इस्पात की छड़ों की मदद से प्लास्टर किया गया है। इस खाई में एक निश्चित ऊँचाई तक पानी भरा रहता है। यह पानी ही इस राकेट स्लेज के लिए ब्रेक का काम करता है। स्लेज के पिछले भाग का एक अंग नीचे की ओर लटका रहता है। यह जब पानी को स्पर्श करता है तो स्लेज का आगे का भाग पिछले भाग से अलग हो जाता है, आगे का भाग अपने आप आगे बढ़ जाता है और पिछला भाग वहीं पर रुक जाता है। वायुसेना यह जानना चाहती है कि यदि ४०० मील प्रति घंटा की रफ्तार से वायुयान किसी निकट की वस्तु से टकराए, तो उसके अन्दर बैठे व्यक्तियों पर उसका क्या प्रभाव पड़ता है, इसीलिए राकेट स्लेज में ब्रेक लगाने की व्यवस्था रखी गयी है।

डॉ० जान पी स्टेप न्यू मैक्सिको की होलोमेन डेवलपमेंट सेन्टर की वायुसेना की ऐरो मैडीकल फील्ड प्रयोगशाला के प्रमुख हैं। जब वे प्रथम बार इस नयी राकेट स्लेज पर बैठे, जिसको वायुसेना ने 'डिसलेटर' नाम दिया है और डॉ० स्टैप स्वयं 'फायर इंजिन नम्बर १' कहते हैं, तो उनको देखने के लिए वायुसेना के बड़े-बड़े पदाधिकारी आए। अधिकारीवर्ग एक घंटे पूर्व ही पहुँच गये थे। उन्होंने देखा, राकेट स्लेज का रंग चमकीला लाल था। बहुत सारे शिल्पी राकेट स्लेज की अन्तिम बार बारीकी से परीक्षा कर रहे थे, क्योंकि एक बार के ही स्लेज चलाने में पर्याप्त व्यय होता है और चालक की जान तो संकट में होती ही है।

शून्य से ३० मिनट पूर्व एक घंटा बजा कर चेतावनी दी गयी। शिल्पी कर्मियों ने स्लेज के पथ का बारीकी से निरीक्षण किया। स्लेज के वायु निरोधक बक्स में रखे यन्त्रों और कैमरे की परीक्षा की गयी। अभी तक भी डॉ० स्टैप नहीं आये थे। निकट में ही भू-गर्भ में एक ब्लाक हाऊस बना हुआ था। इससे राकेट स्लेज को चलते हुए देखा जा सकता था। दुर्घटना के समय सुरक्षा पाने के लिए यह बनाया गया था। जब शून्य में (राकेट स्लेज के चलने में) केवल १६ मिनट रह गये, तो नीली वर्दी में डॉ० स्टेप पधारे, इससे ३ मास पूर्व की राकेट स्लेज यात्रा, जिसमें वे कुछ समय के लिए अन्धे हो गये थे, अब भी उन्हें याद थी। वे इन्हीं भावनाओं को लिये हुए राकेट स्लेज पर चढ़े। कर्मियों ने उनके शरीर को चमड़े के पट्टे और पेटियों द्वारा सीट से बाँध दिया, एक नाइलोन प्लास्टिक की पेटी उनकी कमर में लपेटी गयी, फिर

उनकी जाँघों में एक पेटी बाँधी गयी। दोनों को सम्बन्धित कर दिया गया। इसके बाद कन्धे और छाती को पेटियों द्वारा लपेटा गया। इतने में ही लाउड स्पीकर बोला 'शून्य में १० मिनट' और सभी लोग ब्लाक हाउस की ओर चलने लगे। कुछ लोग राकेट स्लेज जहाँ पर रुकती, उससे एक गज के फासले पर खड़े हो गये। लाउड-स्पीकर पुन: बोला 'शून्य में दो मिनट' और आखरी दो शिल्पी भी जो स्लेज के पास खड़े थे, ब्लाक हाउस में सुरक्षा पाने के उद्देश्य से चले गये। और इसके बाद लाउड-स्पीकर बोल उठा 'शून्य'।

और तभी स्लेज के पिछले भाग से धुआँ ऊपर को उठा, आग की एक चिनगारी दिखाई दी और राकेट का २७००० पौण्ड का उछाल एकदम काम करने लगा। शोर मचाते हुए राकेटों के साथ ही साथ स्लेज अत्यधिक वेग से अपने पथ पर आगे बढ़ने लगी। इस बात की कल्पना भी करना कठिन था कि धुआँ, लपटों और एक भयानक शोर के बीच में कोई मानव भी होगा। और तभी यह देखा गया कि लगभग १८०० फीट चलकर स्लेज एकदम रुकी। स्लेज के एकदम रुकने से देखने वालों को ऐसा लगा जैसे डॉ० स्टेप अवश्य ही मर गये होंगे। लोग दौड़कर उनको देखने के लिए पहुँचे। और उन्होंने देखा कि डॉ० स्टेप शान्त भाव से अपने शरीर से पेटियों को खोल रहे हैं। बाद में यन्त्रों से पता चला कि स्लेज केवल ५ सैकण्ड में १८०० फीट चली थी, अर्थात् ४२१ मील प्रति घंटा।

डॉ० स्टेप अपनी इस नयी गति से ही सन्तुष्ट नहीं हुआ है। यद्यपि उसने स्लेज के एकदम रुकने से अनेक बार इस प्रकार के दबाव सहन किये हैं जैसा एक १२० मील प्रति घंटा की गति से चलती हुई मोटर को अचानक ईंट की दीवार से टकराने पर होता है अथवा ६० मील की गति से चलती हुई मोटर को ३ फीट के अन्दर ही रोकने से जो दबाव पड़ता है। वह चाहता है कि वह इसी राकेट स्लेज पर ७५० मील प्रति घंटा की गति से भी चलने का अनुभव करे। अर्थात जिस गति से ध्वनि की तरंगे चलती हैं, उससे भी अधिक तेज। वायु में ध्वनि की गति ११०० फीट प्रति सैकण्ड अर्थात ७५० मील प्रति घंटा के लगभग होती है। डॉ० स्टेप यह चाहते हैं कि वे इसी राकेट स्लेज की मदद से ध्वनि की गति से चल सकें, ताकि वे यह जान सकें कि इस प्रकार के वाहन में बैठने से मानव पर क्या असर पड़ता है। जब कोई वाहन उसी गति से चलेगा, तो इसके कारण वायु बहुत ही वेगवान हो जायगी। उसके थपेड़े को खाकर जीवित रहना भी शायद ही सम्भव हो।

इस कार्य के लिए पहले वे सियरासैन नामक एक डमी का उपयोग करेंगे। यह मानव की शक्ल से मिलती-जुलती लकड़ी के बुरादे की डमी कोई साधारण मूर्ति नहीं है। इसको बनाने में २० हजार रुपये खर्च हुए हैं। इसका बोझ १९० पौण्ड है।

(शेष पृष्ठ १५२ पर देखिए)

मेरी बाँसुरी बजी

—श्री राजेन्द्र किशोर—

आधी-आधी रात मेरी बाँसुरी बज़ी !
बाँसुरी की तानों में गूँज उठा उर,

तेरा देश बहुत दूर········
मेरा पहुँचेगा स्वर, कभी पहुँचेगा ?
तेरा देश·······
जहाँ काले-काले कागों के गोरे-गोरे बैन,
जहाँ चाँदनी की पलकों में खोई-खोई रैन,
तेरा देश····वही देश····बहुत दूर········
मेरा पहुँचेगा स्वर, कभी पहुँचेगा ?

सखि, मेरी बाँसुरी के गीतों में कंपन भरा,········
उसी कंपन से
तेरा आँचल
जिसका पीला-पीला रंग,
जैसे रात की अँजोरिया में भीग गया हो,
कभी डोलेगा ?

वही आँचल········
जिसकी ठंडी-ठंडी छाँह, जैसे बरगद की छाँह,
जिसमें आकर पखेरू बसेरा करे
और दुनिया से दूर····बहुत दूर····बहुत दूर········
आँख सपनों से धोकर सबेरा करे,
कभी डोलेगा ?········कौन जाने !
तूने भेद कभी खोला है ?

मेरी बाँसुरी के गीतों में खोया तेरा मन कभी बोला है ?
सखि, मेरी बाँसुरी के गीतों में
मेरे बावरे दुलार कीं जुदाई भरी,
तेरा देश बहुत दूर···मेरा पहुँचेगा स्वर,
जिसमें जाने कितने युग की रुलाई भरी ?

आज आधी-आधी रात
कटा चाँद गया झाँक,
उठा परदा झरोखे पर होने लगी रात,
हवा रोने लगी,
चाँद रोने लगा,
रात रोने लगी।

लगी घिरने अमावस की काली घटा,
जिसमें आँसुओं की धार की निशानियाँ बनीं,
मेरे मन का मरम कोई छू-सा गया,
जिससे होठों पर गीतों की बेकली सजी !
आधी-आधी रात मेरी बाँसुरी बजी !!

(पृष्ठ १५० से आगे)

और यह बोझ उसी अनुपात में इसके सम्पूर्ण शरीर में फैला हुआ है जैसा कि मानव के होता है। इसके भीतर मांस के स्थान पर झागीले रबर का उपयोग किया गया है। इसके घुटने और कोहनी के जोड़ ठीक मानव की भाँति ही बनाए गये हैं। जब राकेट स्लेज पर कोई यात्रा करनी होती है, उससे पूर्व सियरासैम डमी द्वारा एक बार यात्रा करवा ली जाती है, ताकि यदि असावधानी से कोई कमी रह गयी हो तो उसका पता लग जाय।

डॉ० स्टेप यद्यपि विश्व के प्रथम व्यक्ति हैं जिन्होंने स्थान पर चलने वाले सबसे वेगवान वाहन पर यात्रा की है, पर इस यात्रा का उद्देश्य दुःसाहस मात्र नहीं है। वरन इन यात्राओं का उद्देश्य वायुयान और मोटरों की सवारियों की यात्रा सरल, सुखद और संकट रहित बनाना है। दुर्घटना होने पर भी व्यक्ति के चोट न लगे और यदि लगे तो कम से कम, इन परीक्षणों से प्राप्त फलों के आधार पर वायुय न और मोटरों की रचना इस प्रकार की हो सकेगी, अमरीका की वायुसेना और डॉ० स्टेप इसी इच्छा से ये परीक्षण कर रहे हैं।

कहानी--

पूनों की सांझ

कुमारी प्रभा जोशी

"कौन है रूपा ?" दिनेश ने भीतर के कक्ष से पुकारा।

"कोई नहीं भैय्या, ये तो हैं आपके दोस्त डॉक्टर" कहती हुई रूपा उसके सामने आने लगी। वह कह उठा "डॉक्टर और तेर कक्ष में · !"

"नहीं भैय्या, उन्होंने बाहर से पुकारा, तो मैं देखने चली गयी कि कौन हैं ? देखा तो ये थे।"

"हूँ···समझा" कह कर दिनेश चुप हो गया, उसका दोस्त अजय सामने ही जो आ पहुँचा था। उसने अनमने स्वर से कहा "आओ अजय, बैठो।" अजयकुमार आकर बैठ गया। रूपा दरवाजे पर एक हाथ से परदे को पकड़े खड़ी थी—स्तम्भित सी—'भइया को यह एकाएकी नाराजी क्यों हो आई····?' दृष्टि उसकी डॉक्टर के मुख पर थी—गौर वर्ण, उन्नत ललाट, विशाल नेत्र, तेजस्वी आकृति। अजय भी रूपा की ओर देख रहा था, "अनायास"। दिनेश ने यह देखा। वह खीझ उठा—"रूपा···।" उसका स्वर कठोर था।

"भइया !"

"तू मुझे भइया न कहा कर रूपा, जा चली जा यहाँ से, आज तुझे कॉलेज नहीं जाना है ?"

"आज तो भइया, राखी है न ? छुट्टी है।"

"फिर भइया···। जा, चली जा यहाँ से···।" वह बहुत ही खीझ उठा था। रूपा एक बार अजयकुमार की ओर देखकर चली गयी। वह अभी भी उसी की ओर देख रहा था।

"कैसे आये ?" दिनेश ने आव किया न आदर और पूछ लिया। अजय चौंक पड़ा। अब उसे अपनी स्थिति का भान हुआ। वह एकदम लज्जित हो गया कि उसके दोस्त ने न जाने क्या सोचा होगा। एक क्षण बाद उसने स्वस्थ होकर—"ऐसे ही, हॉस्पिटल में आज काम अधिक न था। मैंने सोचा, चलो तुम्हारे यहाँ ही चलूँ, थोड़े समय गप्पें ही लड़ाऊँ।" दिनेश ने मन में ही कहा—'हाँ, आओगे ही, मन बहलाने का साधन रूपा जो यहाँ है।' लेकिन ऊपर से उसने कहा—"अच्छा हुआ आ गये।" कुछ क्षण दोनों चुप रहे, फिर न जाने क्या सोचकर उसने पुकारा "रूपा····"

"आई भइया…" कहती हुई षोड़शी रूपा उल्लसित सी हँसती हुई दौड़ कर आ गयी।

"तू मुझे भइया न कहा कर, कितनी बार कहा,…अच्छा सुन, जा शारदा स्टोर्स से वह दवाई तो ले आ, जो इन्होंने भाभी के लिए लिखी है।"

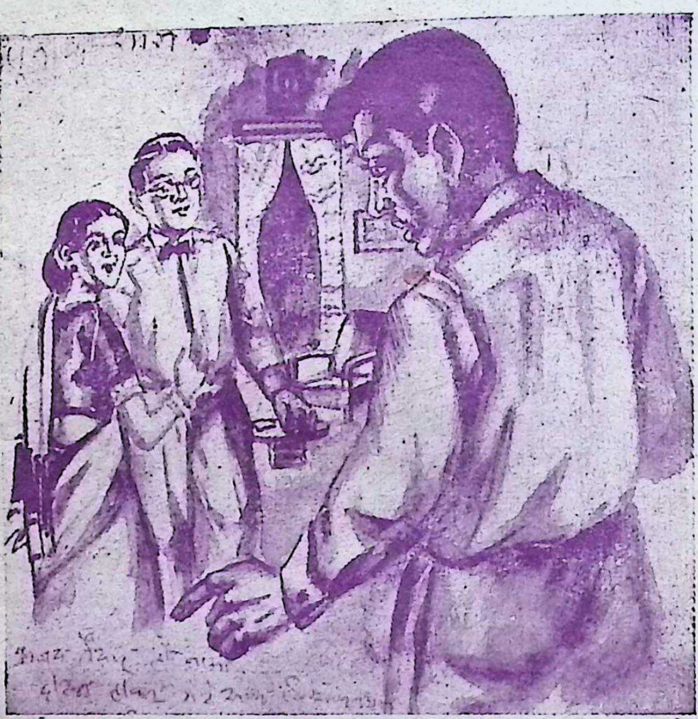

अजयकुमार ने कहा—"मैं खुश हूँ दिनेश, यह तुम्हारी बहिन नहीं, कोई और है, लेकिन अब मुझे उससे मतलब है।"

"अच्छा…" और रूपा मुँह लटका कर चली गयी। अजय के हृदय पर मानों आघात सा हुआ। उसे लगा—"रूपा ने 'आई भइया' कितने उत्साह से कहा था और बेचारी को जाना पड़ा मुँह लटका कर, डाँट पड़ी सो अलग। इस पारिजात के अमल कुसुम सी रूपा से दिनेश ऐसा व्यवहार न जाने क्यों करता है?' उसने कहा—'रूपा को भइया कहने से रोकते हो दिनेश, आखिर वह तुम्हारी बहिन ही तो है,…आज राखी के दिन कहते हो कि वह तुम्हें भाई न कहे। कितना आघात पहुँचा होगा उसके नन्हे दिल पर…?"

"आघात पहुँचा होगा तुम्हें, वह ऐसी नहीं है। वह मुझे कितना प्यार करती है, जानते हो?" यह बात उसने जान बूझ कर कही।

"वाह, क्यों नहीं, हर एक बहिन अपने भाई को प्यार करती ही है।"

"लेकिन वह मेरी बहन नहीं।" दिनेश ने कहा।

"क्या कहा ? वह तुम्हारी बहिन नहीं है, तो...तो फिर वह तुम्हारी क्या है····?"

"वह मेरी कोई भी हो, लेकिन बहिन नहीं है। पर तुम्हें इससे क्या ?" अजयकुमार का मस्तक घूमने लगा····वह···रूपा····इसकी बहन नहीं है,···कोई है···अर्थात्···अर्थात्····। वह नहीं बैठ सका।

"अच्छा चलूँ" कहकर वह रवाना होगया।

दिनेश के मुख पर एक क्रूर मुस्कुराहट छा गयी। वह उसकी विजय की मुस्कान थी।

× × ×

दिनेश चिन्तित-सा बैठा था। रूपा अभी तक नहीं आई। क्या बात होगी ? कहीं उसे कुछ हो न गया हो ? कहीं एक्सीडेन्ट····वह सोच न सका। फौरन पुलिस स्टेशन को फोन किया, लेकिन नहीं···कुछ पता न चला ! वह व्यग्र हो गया। उसने उसकी सहेलियों के यहाँ पुछवाया, लेकिन रूपा का पता न चला। वह पागल सा सड़कों पर सायकल दौड़ाने लगा। दौड़ते-दौड़ते एक घंटा बीता, दो घंटे बीते,···· तीन घंटे हुए····लेकिन कहीं पता नहीं। वह हताश सा गांधी रोड से जा रहा था। उसने बिना कुछ सोचे समझे एक दूकान वाले से पूछा—"क्योंजी, तुमने १२८ नंबर की सायकल को इस रोड पर देखा है ?" दूकानदार देखता ही रहा····'आदमी तो सभ्य दिखता है लेकिन बात गँवारों सी पूछता है। क्या मैं सबकी सायकलें देखता रहता हूँ ? लेकिन उसने कहा "आप इतने घबरा क्यों रहे हैं बाबूजी, मैंने १२८ नंबर की सायकल नहीं देखी।"

"तो तुमने १२८ नंबर की सायकल नहीं देखी ?" रीती आँखों से दिनेश ने देखते हुए पूछा।

पास वाला दूकानदार १२८ बार-बार सुन बाहर आया और उसने पूछा—"क्या बात है, बाबूजी।" बात जानने पर उसने कहा—"३०४८ नम्बर की कार में इस नम्बर की सायकल वाली लड़की गयी है।" दिनेश सुनते ही लौट पड़ा। इस नम्बर की कार किसकी है····? उसकी सहेलियों में से किसी की नहीं, न मेरे मिलने जुलने वालों में से किसी की है ?····तब····तब···क्या····रूपा चली गयी, चुरायी गयी····? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता····किसी ने उसे···ओह····रूपा····मैं तुझे····। इतने नम्बर की गाड़ी का मालिक कौन है, जानने के लिए उसने म्युनिसिपल कार्यालय में फोन किया। आध घंटे में फोन मिला 'डा० अजयकुमार पब्लिक हॉस्पिटल' ऐं···अजय ? ····तुम्हारी कार का नम्बर····हाँ, हाँ, सचमुच, यह तुम्हारी ही कार का तो नम्बर

है,''''तो''''तो क्या''''तुम''''विश्वासघात—दोस्त होकर तुमने विश्वासघात किया''''? अजय,''''अजय, या तो तुम ही रूपा को पाओगे या मैं''''बस आज फैसला होने दो। कल की ऊषा का प्रकाश या तो रूपा सहित तुम ही देखो या मैं ही''''। और वह पागल सा चल पड़ा।

× × ×

दिनेश के यहाँ से रवाना होकर अजय, घूमते हुए मस्तिष्क को लेकर, बेतहाशा कार चला रहा था। जब वह गांधी रोड से चला जा रहा था, उसे सामने से आती हुई रूपा दिखी थी। उसने खट से ठीक रूपा की सायकल के पास ब्रेक लगाया और उससे अपने घर चलने का आग्रह किया। रूपा उसके स्नेहमय आग्रह को न टाल सकी। जहाँ उसे एक ओर अपने भइया का भय था, वहाँ दूसरी ओर अजय का घर छोड़ आने का आश्वासन था। वह चली गयी। अजय अकेला था। अपने नौकर से उसने खाना बनवाया। खाना खाने के पश्चात् रूपा और अजयकुमार फिर ड्राइंग रूम में आगये। रूपा ने सोचा था कि डाक्टर जब खुद घर रखने चलेंगे, तो भइया नाराज न होंगे। इसी से वह अब तक बेफिक्र थी। लेकिन अब वह घर जाने को घबरा उठी। इन तीन चार घंटों में डाक्टर ने उससे कुछ बातें नहीं की थीं। केवल वह उसकी ओर देखता रहा था, जैसे आज दोपहर को देख रहा था। रूपा डाक्टर के इस व्यवहार से अब कुछ संकुचित सी हो रही थी। उसने कहा—"तो डाक्टर साहब, अब पहुँचा आइए।"

अजय चौंक पड़ा''''। "ठीक है, लेकिन एक बात कहो रूपा !"

"क्या ?"

"यही कि. तुम कौन हो ?"

"आप मुझे नहीं जानते डाक्टर साहब ?" हसते हुए रूपा ने कहा—'वाह डाक्टर साहब, आप जानते हैं, तभी तो आपके यहाँ आई, नहीं तो''''।"

"नही, आज तक जानता था, लेकिन अब नहीं जानता, बताओ ?" डाक्टर ने उसके (रूपा के) ठुड्डी के नीचे के गहरे तिल को और बायें गाल में हँसते समय पड़े हुए गढ़े को देखते हुए कहा।

मैं''''मैं आपके दोस्त दिनेश की बहिन''''। बीच में ही डाक्टर ने उसके दोनों कन्धे पकड़ लिये और उसकी आँखों में दृष्टि डालकर पूछा—"नहीं सच-सच बताओ, तुम कौन हो ? मेरा हृदय नहीं मानता।" रूपा घबरा गयी, डाक्टर ऐसा क्या कर रहे हैं ? उसने कहा—"डाक्टर साहब, यह क्या,''''आपको आज क्या होगया है ?"

"सच बताओ?" डाक्टर को कुछ समझ नहीं पड़ रहा था। रूपा ने धीमे

से कहा—"अच्छा बताती हूँ"। डाक्टर ने उसके कंधे छोड़ दिये और अपने समीप बैठाया। रूपा ने कहा—"जब मैं दो बरस की थी, तब जैसा मुझे याद है, एक बड़ी भारी नदी के घाट पर बैठी अपने भाई की राह देख रही थी। मेरा भाई देर तक न आया, तो मैं रोने लगी थी। उसी समय एक व्यक्ति ने मुझे गोदी में उठा लिया और तब से मैं उन्हीं के पास रही। वे व्यक्ति दिनेश भैया के पिताजी थे। उन्होंने ही मुझे इतनी बातें बताई हैं, इसके अतिरिक्त मैं नहीं जानती कि मैं कौन हूँ?" रूपा की आँखों में कहते-कहते आँसू आ गये, शायद उसके नन्हें हृदय में भाई की स्मृति तीव्र हो आई थी। डाक्टर ने "भय्या के पिताजी थे" इसके बाद कुछ नहीं सुना। उसकी स्मृति में यमुना का वह घाट घूम गया, जहाँ वह और उसकी बहिन—नन्हीं सी—आज से चौदह वर्ष पूर्व शरणार्थी बन आए थे और वह भीख माँगने गया और उसकी बहिन उससे बिछुड़ गयी। आज वह डाक्टर है और····रूपा ने द्वार में घुसते ही पूछा था "डाक्टर साहब आप क्या अकेले हैं?" उसने कहा था "हाँ, नहीं तो और कौन होगा?" रूपा ने अनायास पूछा था, "क्यों, आपकी बहिन?" "वह नहीं है।" अजय का मुख पीला पड़ गया,····उसकी बहिन,····क्या वह सचमुच नहीं है····? उसे याद आया अपनी बहिन का मुख, चहरा तो वही है—बाएँ गाल में हँसते समय गढ़ा, ठुड्डी का गहरा तिल,····तो····तब क्या! वह अपने पर काबू न पा सका और उसने "मेरी किरण····" कहते हुए रूपा को अङ्क में भर लिया।

रूपा चीख उठी, छोड़िये डाक्टर साहब। डाक्टर ने उस भयभीत को छोड़ दिया। उसने कहा—"मेरी किरण, मैंने तुम्हें आज के दिन पा ही लिया।" डाक्टर खड़ा था। रूपा भी चुप खड़ी थी। उसे वे दिन याद आ रहे थे, जब उसके नये पिताजी एवं सब रूपा कहते और वह किरण कहलाने के लिए रोती थी। वह ध्यान से अजय की ओर ही देख रही थी, मानो अपने बालमन पर खिंची हुई किसी धुँधली तस्वीर को स्पष्ट कर रही हो! "हाँ, सूरत तो वही है, पर नाम वही न···।" ठीक इसी समय दिनेश ने प्रवेश किया। उसके हाथ में रिवाल्वर था। उसने आते ही कहा—"अजय, तैयार हो जाओ, तुमने सभ्य होकर रूपा के जीवन से खिलवाड़ क्यों किया? दोस्त होकर मेरे साथ विश्वासघात किया सो अलग। अब तैयार हो जाओ, तुम अपने प्राणों से हाथ धोओ और रूपा अपने सुखी जीवन से,····आज से रूपा मेरी कोई नहीं।" अजय के हृदय को आघात पहुँचाते हुए दिनेश ने कहा। उसके हाथ से बलपूर्व रिवाल्वर छीनते हुए अजय ने कहा—'धीरज रखो दिनेश, कोई अपनी बहिन जीवन से खिलवाड़ करेगा भला? और दोस्त से विश्वासघात की बात तो दूर ही रही।'

"अर्थात्?" उसे वह नाम याद आ गया जो रूपा ने बहुत छुटपन में अपने भाई का बताया था।

"अर्थात् मैं ही किरण का अविनाछ भय्या हूँ ।"

रूपा दौड़कर डाक्टर के वक्ष में मुँह छिपाकर बच्चों की तरह रो पड़ी ।

"भइया''''।" अजय ने उसके सिर पर हाथ फेर कर शान्त किया ।

दिनेश चकित-सा खड़ा था । अजयकुमार ने कहा—"मैं खुर्श हूँ दिनेश, यह तुम्हारी बहिन नहीं, कोई और है, लेकिन अब मुझे उससे मतलब है ।"

रूपा बोली—"आज तो राखी है, भइया !"

"हाँ-हाँ, किरण, आज चौदह वर्षों बाद मैं तुझसे राखी बँधाऊँगा ।"

अपने भइया को पाकर और दिनेश की डाँट को याद कर वह उसे भइया कहना अपने आप भूल गयी ।

शब्द चित्र

—श्री शकुंत माथुर—

यह कथा बहुत पुरानी है
बासी है
इस रोटी के टुकड़े सी सूखी
कड़ी
जो मेरे गले में अड़ी ।
कालिदास की कल्पना
कण्व ऋषि का आश्रम
भँवरा,
फूलों की सुगंध
मौसम बसंत
समय है मिलन दुष्यंत शकुंत का ।

मेरी छोटी अल्पना
सूखा काला फूँस बखेरे
बालों का
सन की रस्सी से बटे केश
कहाँ शीतल चंदन का तन पर लेप ?
हाँ—
बैठी होगी
कहीं—लिए राख का ढेर
और आस पास
मखियाते, भिनभिनाते, जूठे बर्तन
खाली बर्तन ।

कालिदास का वर्षा मंगल

—श्री अनवर आगेवान

संस्कृत के सभी कवि प्रकृति और उसके विविधतापूर्ण ऋतु-सौन्दर्य के उपासक हैं, भावुक भक्त हैं। इनमें बसन्त और वर्षा के वर्णन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। निसर्ग के गायकों में जो स्थान महाकवि कालिदास को प्राप्त है वह कदाचित किसी भी अन्य कवि को प्राप्त नहीं है। कवि-कुल-शिरोमणि कालिदास ने तो सभी ऋतुओं का, प्रकृति के समस्त रूपों और रहस्यों का अपनी सौन्दर्य ग्राहिणी दृष्टि से इतना सूक्ष्म अध्ययन किया है और अपनी रसवती वाणी से उनका इतना सजीव वर्णन किया है कि, उसकी एक-एक उपमा, एक-एक उपमेय और उपमान कल्पना-चक्षुओं के सम्मुख अनूठे चित्र उपस्थित कर देते हैं—

आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श॥

आषाढ़ की प्रतिपदा आई और सामने एक टेकरी के शिखर-प्रदेश का आलिंगन करते वर्षा के पहले बादल का सौन्दर्य देखा। प्रतीत यह होता था जैसे कोई क्रीड़ामनस्क हाथी किसी टीले से टक्कर लेने के लिए झुक गया हो। अद्भुत सुहावना दृश्य था!

आकाश में काली-काली घटाएँ जैसे ही घिर आती हैं, धरती पर भावुक कवि-हृदय उन्हें देखते ही उमड़ आता है—

नितान्तनीलोत्पलपत्रकांतिभिः क्वचित्प्रभिन्नाञ्जनराशिसन्निभैः।
क्वचित्सगर्भप्रमदास्तनप्रभैः समाचितं व्योम घनैः समन्ततः॥

कहीं अत्यन्त नीले कमल की पंखुड़ियों की कांति वाले, कहीं बिखरे हुए काजल के ढेर जैसे, कहीं सगर्भा प्रमदा के स्तनों की शोभा वाले बादलों से आकाश सब तरफ से छा गया।

वर्षा वैभव का वर्णन अपूर्व है। देखिए—

मुदित इव कदम्बैर्जातपुष्पैः समन्ता—
त्पवनचलितशाखैः शाखिभिर्नृत्यतीव।
हसितमिव विधत्ते सूचिभिः केतकीनां
नवसलिलनिषेकच्छिन्नतापो वनान्तः॥
शिरसि बकुलमालां मालतीभिः समेतां
विकसितनवपुष्पैर्यूथिका कुड्मलैश्च।

विकचनवकदम्बैः कर्णपूरं वधूनां
रचयति जलदौघः कांतवत्काल एषः ॥

नई वर्षा की फुहार से तापमुक्त होकर वन-प्रदेश कहीं नये खिले कदम्ब के फूलों से मुदित, कहीं पवन से डोलती शाखाओं वाले वृक्षों के द्वारा नर्तित, कहीं केतकी की कलियों के द्वारा हँसता हुआ प्रतीत होता है।

पावस प्रेमी की भाँति वधूजनों के सिर पर बकुल और मालती पुष्पों की माला, तथा यूथिका के नव विकसित फूल और कलियां और कानों में नये खिले कदम्ब के पुष्प के कर्णपूर सजा रहा है।

आगे चलकर महाकवि ने प्रेम व्यापार में लिप्त सुखी हृदयों को भी वर्षा-आगमन से आकुल-व्याकुल होते हुए बताया है—

मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ॥

बादलों को देखकर तो सामान्यतया सुखी मनुष्य का हृदय भी चञ्चल हो उठता है। जब प्रेयसी के गले से लिपटने को उत्सुक प्रेमी उससे दूर हो, तब वही जाने उस पर क्या बीतती होगी!

कवि ने वर्षा की जल-धाराओं को मोतियों से गुँथी अलकों की उपमा दी है। देखिए—

या वः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना
मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम् ॥

वर्षा की ऋतु में अलका की गगनचुम्बी अट्टालिकाओं पर छाये हुए मेघों से बरसते हुए जल-कण ऐसे लगेंगे मानो किसी 'शान्त-मन्यु' कामिनी के उन्नत मस्तक पर मोतियों से गुँथी अलकें हों।

इस प्रकार कालिदास का वर्षा-वर्णन सर्वथा अलंकृत, सजीव और सुन्दर है। अन्त में, वर्षा को वह मांगल्य की मूर्ति के रूप में उपस्थित करता है—

बहुगुणरमणीयः कामिनीचित्तहारी
तरुविटपलतानां बान्धवो निर्विकारः ।
जलदसमय एष प्राणिनां प्राणभूतो
दिशतु तवहितानि प्रायशो वाञ्छितानि ॥

अपने अनेक गुणों के कारण रमणीय, कामिनियों का चित्त हरने वाला, तरु-लताओं का निर्विकार बन्धु, प्राणियों का प्राण-सा यह वर्षाकाल तुम्हारी अभिलाषाओं को पूर्ण करे!

कहानी—

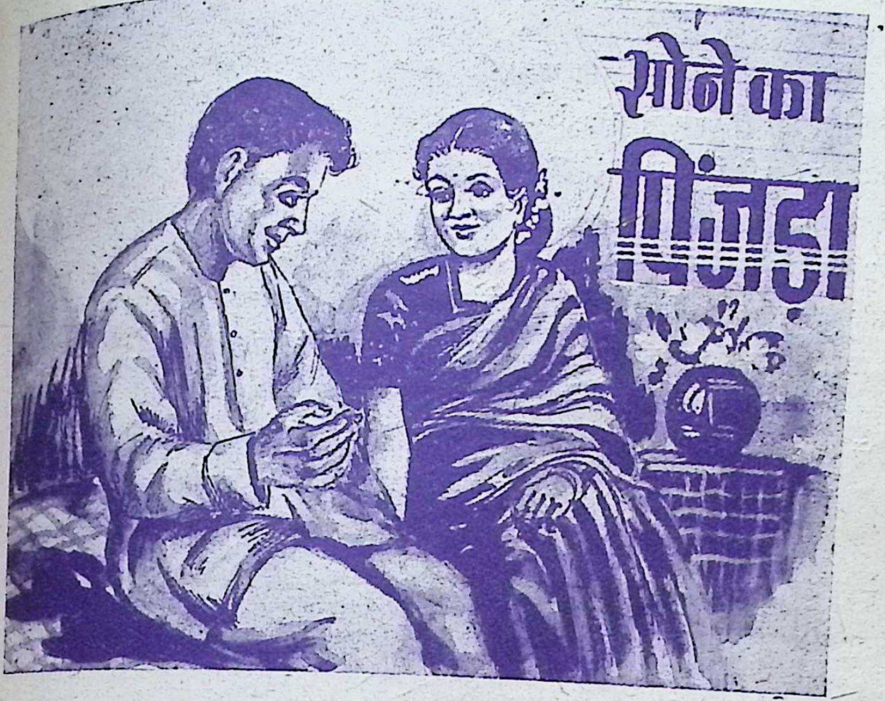

सोने का पिंजड़ा

—श्री हीरादेवी चतुर्वेदी

सन्ध्या के झुटपुटे में रूपा अपने घर की खुली छत पर अकेली बैठी है। देखते ही देखते सूरज की पीली किरणें क्षितिज के पार जाकर अदृश्य हो गयीं। अब रहा-सहा धूमिल प्रकाश भी धीरे-धीरे गायब होता जा रहा है। नीलाकाश में कितने ही पंछी समानान्तर उड़ते हुए कहीं तेजी से भागे चले जा रहे हैं। घर के पार्श्व में खड़े हुए नीम के ऊँचे और सघन वृक्ष पर कितने ही पंछी चहचहा रहे हैं—शायद रैनबसेरा करने की तैयारी कर रहे हैं। दूर किसी अमराई में कोयल चिल्ला रही है—कुहू-कुहू मुहू-मुहू।

रूपा के अन्तर्मन ने कहा—इस कोयल को कभी चैन नहीं। जब देखो तभी चिल्लाती रहती है। फिर भी मानव की अपेक्षा यह कोयल कहीं अधिक स्वतंत्र है और अधिक सुखी। वह अपने मन की पीर चिल्ला-चिल्ला कर हलकी तो कर लेती है। लेकिन मानव तो यह भी नहीं कर सकता। उसे अपने पास-पड़ोस की दुनिया का, समाज की मर्यादा का, और दुनियादारी का कितना ध्यान रखना पड़ता है। मानव अपने मन की पीर व्यक्त नहीं कर सकता। बहुत हुआ तो आँसुओं की माला के मनके बिखरा दिये और गीली आँखों की दोनों कोरों को चुपचुप पोंछ लिया। उसकी उलझी लड़ियाँ कभी सुलझ नहीं पातीं।

मानव और पंछी ! कितना अन्तर है दोनों में ! दिन भर कहीं भी रहें, लेकिन सन्ध्या का अन्धकार सिमटते ही, किसी भी वृक्ष की एक डाल पर ये पंछी रैनबसेरा करने एकत्र हो जाते हैं और दिन भर का सारा अवसाद भूल जाते हैं। परन्तु मानव ? वह तो वर्षों से दूर रहा करता है। कमाने-खाने की चिन्ता में मिलने-जुलने की भावना भी दूर छिटक कर बिखर जाती है। रूपा दूसरों के लिए क्या कहे ? वह स्वयं आज यही सब अनुभव कर रही है। आठ महीने बीत चुके, लेकिन रूपा के साजन ने, इस बीच आकर उससे मिलने की शायद आवश्यकता ही नहीं समझी।

साजन की स्मृति के सुनहरे तारों से रूपा उलझ रही थी कि सामने के आलीशान बंगले में ग्रामोफोन का रिकार्ड बज उठा—"पिया-मिलन को जाना···।"

पूरा गीत रूपा ने ध्यान पूर्वक सुना। रिकार्ड जब बज चुका तो रूपा को लगा कि यह गीत कल्पना-मात्र नहीं है। यह तो वास्तविक अनुभूति है। प्रत्येक नारी के जीवन में ऐसा अवसर आता है, जब वह पिया-मिलन की डगर पर अपने पग बढ़ाती, उल्लास और उमंग की सरिता बहाती और सुख व जीवन का स्पर्श कर पुलक-विभोर हो जाती है।

रूपा के जीवन में अब तक ऐसे अनेक अवसर आ चुके हैं। जब उसने स्वयं इसका अनुभव किया है। उस चाँदनी रात को रूपा कभी भूल नहीं सकती, जब अपने साजन के साथ नर्मदा की फेनिल लहरों पर नौका बिहार करते हुए वह बन्दर-कूदनी देखने गयी थी।

नीले आकाश में तारे झिलमिला रहे थे। सोलहों कलाओं से युक्त पूर्णिमा का चाँद खिलखिला रहा था। और, रूपा भी अपनी तरुणाई के प्रवाह में बहती जा रही थी। इस तरुणाई के प्रवाह का उसे स्वयं पता नहीं था। इसका पता शायद कभी चलता भी नहीं, लेकिन नाव जब नर्मदा की पावन लहरों पर बहते-बहते उस स्थल पर पहुँची, जहां दोनों तटों पर संगमर्मर की श्वेत चट्टानें आकाश को छूने का प्रयत्न कर रही हैं, तब रूपा के साजन ने कहा था—"रूपा, दूध जैसी श्वेत चट्टानें इस चाँदनी में कितनी आकर्षक प्रतीत हो रही हैं।"

"क्यों न हो !" रूपा ने कहा—"एक तो इन चट्टानों ने रूप ही सुन्दर पाया है, दूसरे इस चाँदनी का स्पर्श पाकर इनका यह रूप और भी अधिक निखर उठा है।"

"बिना स्पर्श के किसी का रूप नहीं निखरता, रूपा।" कहा था रूपा के साजन शरद ने—"हीरा कितना प्रकाशमान और मूल्यवान रत्न है, लेकिन उसका आकर्षक रूप भी किसी स्पर्श-विशेष के बाद ही बन पाता है।" फिर एक क्षण रुककर कहा—"दूसरों की बातें जाने दो, रूपा ! तुम्हारा अपना रूप भी तो किसी के स्पर्श से ही इतना निखर सका है कि तरुणाई का योग पाकर उसमें एक ऐसा प्रवाह दीख पड़ता

है, जो अत्यन्त क्षिप्र और आकर्षक बन गया है । तुम्हारे रोम-रोम से यह प्रवाह फूटा पड़ता है।"

"बस भी करो यह तारीफ ।" रूपा ने गम्भीर दृष्टि से शरद को देखते हुए कहा था—"वह मल्लाह क्या कहेगा यह सब सुन कर ?"

"वह तो अपनी धुन में मस्त है, रूपा !" शरद ने धीमे स्वर में कहा—"देखो न, वह अपने आप कुछ गुनगुना रहा है । फिर, नाव के दूसरे छोर पर वह बैठा है और पतवार चला रहा है। उसे क्या पड़ी है तुम्हारी बातें सुनने से ।"

"लेकिन, मेरी तरुणाई का प्रवाह जो तुम्हारा स्पर्श पाकर गतिमान् हो उठा है, कोई अनहोनी बात तो नहीं है ।" रूपा ने बन्द होते हुए प्रकरण को शायद फिर जारी करना चाहा।

"यह कौन कहता है कि अनहोनी बात है।" शरद ने अपनी बात की पुष्टि करते हुए कहा—"मैं कह रहा था कि स्पर्श का प्रभाव अनोखा होता है।"

"एक बात है," रूपा ने कुछ गम्भीरता के आवरण में कहा—"इस स्पर्श का प्रभाव स्थायी नहीं होता । इन चट्टानों में जो आकर्षण चाँदनी के आलोक में है, वही दिन में अथवा अमावस की काली रात में कदापि नहीं रहता होगा।"

"तुम ठीक कह रही हो, रूपा ! लेकिन उस समय इनका अपना सौन्दर्य भी कम आकर्षक नहीं रहता । फिर, यह तो प्रकृति का नियम है कि सदा एक-सा रूप किसी का नहीं रहता। और, यह परिवर्तन आवश्यक भी है । बिना परिवर्त्तन के इस दुनिया में कोई आकर्षण भी तो न रह जायगा। तब शायद सुन्दर और असुन्दर की पहचान भी न रह जाएगी, रूपा।"

"परिवर्त्तन" रूपा ने मन-ही-मन दोहराया था उस दिन नाव पर । इसके आगे वह कुछ न कह सकी। परिवर्त्तन की भावना ने उसे ऐसा कुछ परेशान कर दिया था कि फिर प्रयत्न करने पर भी वह पहले जैसी मुखर नहीं हो सकी थी । बन्दर-कूदनी देखकर शरद के साथ जब वह घर लौट रही थी, तब शरद ने कहा भी था, "रूपा, तुम क्या सोच रही हो ?"

"कोई खास बात नहीं।" रूपा ने कह दिया था और परिवर्त्तन की आशंका को साफ छिपा लिया था।

"तो, क्या नींद सताने लगी है ?"

"हाँ !" रूपा ने अपने मन की यथार्थ बात छिपाते हुए कह दिया था। अपनी डावाँडोल-सी मनोदशा को रूपा ने न केवल उस दिन छिपाया था अपने साजन से, बल्कि आज तक उसने कभी यह बात प्रकट नहीं होने दी। एक सर्वथा नवीन-सी बात

उस दिन रूपा को ज्ञात होगयी थी न । रात दिन वह यही सोचती थी कि बिना परिवर्त्तन के इस दुनिया में कोई आकर्षण भी तो नहीं रह जाएगा।

और, सचमुच एक परिर्त्तवन आ गया है रूपा के जीवन में भी । उस दिन जब शरद इस शहर से दूर और रूपा से भी दूर जा रहा था, तब ऐसी ही सन्ध्या बेला में, इसी खुली छत पर आकर कहा था उसने—"रूपा, मैं कलकत्ता जा रहा हूँ ।"

"कलकत्ता !" आश्चर्य हुआ था रूपा को सुनकर।

"हाँ रूपा !"

"क्या करोगे वहाँ जाकर ?"

"नौकरी, और क्या ?"

"तो अब पत्रकार न रह कर किसी दूसरी नौकरी की धुन सवार हुई है ?"

"नहीं !" शरद ने कहा था—"पत्रकार भी रहूँगा । वहाँ के एक दैनिक पत्र में भरपूर वेतन मिल रहा है । सोचता हूँ, रात-दिन की परेशानियों से मुक्ति पाने का यह मौका हाथ से न जाने दूं।" और, कलकत्ते से आया हुआ नियुक्ति-पत्र रूपा के हाथ पर घर दिया था शरद ने ।

नियुक्ति-पत्र देखकर रूपा को भी जैसे दो सौ रुपये मासिक के लालच ने प्रभावित कर दिया । यहाँ रह कर केवल अस्सी रुपये पर शरद को दिन भर अपनी सेवाएँ देनी पड़ती हैं। कार्यालय से आने पर घर में नित्य ही सुबह-शाम दूसरे पत्रों के लिए लिखते रहना पड़ता है, तब कहीं गृहस्थी का खर्च चल पाता है । रूपा को लगा कि अच्छा है, एक ही पत्र में काम करने से उसके साजन की मानसिक चिन्ताएँ कम हो जाएँगी ।

एक क्षण के बाद कहा रूपा ने—"लेकिन एक बात है ।'

"वह क्या ?" बीच में ही टोक दिया शरद ने ।

"कलकत्ते में दो सौ रुपये भी शायद पर्याप्त न हों । "

'होंगे क्यों नहीं ?" शरद ने कहा—"प्रारम्भ में तुम्हें अपने साथ न ले चलूँगा। अकेला ही रहूँगा वहाँ । प्रतिमास तुम्हें सवा सौ रुपये भेजता रहूँगा । मन्नू के साथ इतने में तुम बहुत मजे में यहाँ रह सकोगी । मैं वहाँ पचहत्तर रुपये में अपना खर्च अवश्य चला लूँगा।'

रूपा को यह सुन आश्चर्य हुआ । वह एक बार कलकत्ता स्वयं देख आई है। यों ही घूमने के लिए गयी थी । पाँच-सात होटलों के दरवाजे खटखटाने पर मुश्किल से एक होटल में छोटा-सा कमरा मिल सका था, सो भी सात रुपये दैनिक किराये पर । एक कप दूध आठ आने में मिलता था मन्नू के लिए । ऐसी दशा में एक व्यक्ति पचहत्तर रुपये में कैसे अपना खर्च चला सकेगा वहाँ ? कहा उसने—"लेकिन पचहत्तर

रुपये में तुम अपना खर्च चलाओगे वहाँ ? उस होटल की बात भूल गये क्या ? सात रुपये दिन पर तो एक कमरा मिला था हमें। एक वार के खाने को दो थालियों के चार रुपये देना पड़ते थे।"

"तुम भूल रही हो, रूपा ! वह होटल था। मैं जब वहाँ नौकरी करूँगा, तो किसी होटल में इतना महँगा कमरा थोड़े ही लूँगा। किशोर को तो तुम जानती हो न ! वही जो बहुधा होटल में हम लोगों से मिलने आ जाया करते थे। वे जिस कमरे में रहते हैं, उसका पच्चीस रुपये महीना किराया देते हैं। मैं भी ऐसा ही कमरा खोज लूंगा। और फिलहाल तो किसी मित्र के साथ ही रहने की चेष्टा करूँगा, उसका भी बोझ हलका हो जायगा और मेरा भी।"

और अपनी मानसिक चिन्ताओं की परवाह न कर रूपा ने स्वीकृति दे दी थी कलकत्ता जाने के लिए, लेकिन उसने यह कल्पना भी न की थी कि आठ महीने गुजर जाने पर भी, शरद उसे अपने पास बुलाने का नाम न लेगा। अब तो जब कभी रूपा ने स्वयं यह बात लिखी है, तो शरद का उत्तर नकारात्मक ही आया है। शरद लिख देता हैं, तुम तो काफी समझदार हो, रूपा। स्वयं कलकत्ता देख भी चुकी हो। अब तक कोई मकान मुझे नहीं मिल सका। एक मित्र के साथ रात को सो रहता हूँ, उसके कमरे में। सिर्फ सोने के पन्द्रह रुपये देता हूँ महीने में। युद्ध समाप्त हो चुका है, लेकिन युद्ध-जन्य अभिशापों से हम लोगों को अब तक मुक्ति नहीं मिल सकी है। सुनते हैं, मकान बहुत जल्दी खाली होंगे, और तभी तुम्हें तथा मन्नू को यहाँ ले आना सम्भव होगा। धीरज के साथ समय बिताओ, रूपा ! यों तुम जब कहो, तुम्हें और मन्नू को यहाँ ला सकता हूँ. लेकिन दस पाँच दिन भी घूमने का जो खर्च पड़ेगा, वह तुमसे छिपा नहीं है।

अँधेरा काफी झुक आया था, लेकिन रूपा इन्हीं सब बातों में उलझी-सी बैठी है। वह सोच रही है कि कलकत्ता जाने की बात जिस दिन उसने अपने साजन से कही थी, उस दिन शायद बहुत बड़ी गलती उसने कर डाली थी। गलती जब हो चुकी है, तब उसका प्रायश्चित्त भी उसे ही करना होगा—करना ही पड़ रहा है। उसे लगा कि उसने जानबूझ कर अपने सुख को दुःख में परिणत कर लिया है। सोने के पिंजड़े में बन्द पक्षी दूसरों के आकर्षण का केन्द्र रहता है, लेकिन यह पक्षी स्वयं कितना परेशान और दुःखी रहता है, इसका किसी को पता नहीं रहता। आज वह ठीक उस मैंना की तरह है, जो किसी सोने के पिंजड़े में बन्द हो चुकी हो और अपने सारे सुख और सन्तोष से हाथ धो चुकी हो। रुपयों का जहाँ तक सम्बन्ध है, उसे भरपूर मिल जाते हैं प्रतिमास, लेकिन साजन से मिलने और उनके समीप रहने की बात तो एकदम सपना हो चुकी है। हाँ, सपना !

(शेष पृष्ठ १६६ के नीचे)

गीत

—श्री कुमार प्रियदर्शन—

अभी बरसात आई है,
गगन की पालकी में यह नई बारात आई है ।।

चमक कर छिप गयी बिजली,
कि दुलहन ने नयी उजली
उठा कर वह पलक कजली न जाने क्यों गिराई है ।।
अभी बरसात आई है ।।

किसी की छम हुई पायल,
किसी का धुल गया काजल,
किसी की आँख में आँसू कहीं जलजात लाई है ।।
अभी बरसात आई है ।।

उठी हहरी हुई वदली,
किसी की याद-सी मचली,
बड़ी नादान है पगली, अँधेरी रात आई है ।।
अभी बरसात आई है ।।

(पृष्ठ १६५ का शेष)

रूपा अब भी अपने इसी ताने-बाने को बुनती रहती, लेकिन मन्नू ने आकर उसका ध्यान भंग कर दिया । अचानक आकर उसने, रूपा की पीठ पर अपने दोनों हाथ थपथपाते हुए कहा—"माँ, अँधेरा होगया है । तुमने लालटेन भी नहीं जलाई ?"

"अभी जलाती हूँ, बेटा !" रूपा ने कहा और उठकर लालटेन जलाने चली गयी ।

लालटेन का जगमग प्रकाश सारे घर में चमक उठा, लेकिन रूपा के अन्तस्तल का अन्धकार अब भी सघन था । उसकी उलझी लड़ियाँ अब भी जैसी की तैसी थीं । दूर किसी अमराई से अब भी कोयल कुहू-कुहू. मुहू-मुहू चिल्ला रही थी ।

ग्वालियर और हिन्दी कविता

—— श्री राहुल सांकृत्यायन

मार्च १९५५ की "भारती" में प्राचीन ग्रन्थों के प्रसिद्ध खोजी श्री अगरचन्द नाहटा ने 'ग्वालियरी हिन्दी का प्राचीनतम ग्रन्थ' के नाम से एक लेख लिखा था। उसमें उन्होंने कृष्ण रुक्मणीरी बेलि पर १६८६ संवत् (१६१९ ई०) में जयकीर्ति रचित टीका का निम्न वाक्य उद्धृत जिया है—

ग्वालेरी भाषा गुपिल, मन्द अरथ मति भाव।
बात वन्ध किय भाषवितु, समझन तिय सम भाव॥

इससे मालूम होता है, कि गोस्वामी तुलसीदास के काल में "ग्वालेरी भाषा" में भी कविता होती थी। उसी लेख में, उससे सौ वर्ष पहले संवत १५५७ (ई० १५००) में ग्वालियर में ही थेघनाथ ने भगवद्गीता की एक भाषा टीका राजा मानसिंह के शासन काल में लिखी थी, इसका भी उल्लेख है। इसमें ग्वालेरी भाषा होने का उल्लेख नहीं है, पर भाषा से लेखक के वास-स्थान की भाषा अर्थात् "ग्वालेरी" ही उसे होना चाहिए। जयकीर्ति ने जिस ग्वालेरी भाषा वाली टीका के बारे में कहा है, उसका कर्ता गोपाल कवि है, जो अपनी पुस्तक की भाषा को 'ब्रज भाषा' कहता है अर्थात् ब्रजभाषा और ग्वालेरी भाषा को एक समय पर्याय माना जाता था। वस्तुत: बुन्देली और ब्रज की भाषाएँ एक दूसरे से इतनी समानता रखती हैं, कि अभी भी कितने ही ब्रज-भाषा-भाषी बुन्देली को ब्रज की एक बोली कहते हैं, और जिसे आज के बुन्देले पसन्द नहीं करते। जब आज इतनी समानता है, तो आज से साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व तो वह और भी अधिक रही होगी। अस्तु, यह तो निश्चित है कि सूर और तुलसी के समय और पहले भी ग्वालेरी भाषा में कविता होती थी। जान पड़ता है, तुगलकों के शासन के अन्त में दिल्ली की सल्तनत के कमजोर पड़ने पर ब्रज-ग्वालेरी भाषा के क्षेत्र में जो राज्य कायम हुआ, उसका केन्द्र ग्वालियर था, इसीलिए ब्रज-बुन्देलखंडी का नाम ग्वालेरी भाषा भी कहा जाने लगा।

ग्वालेरी का उल्लेख जयकीर्ति आदि ही ने नहीं किया, बल्कि सुदूर दक्षिण में स्थापित बहमनी-उत्तराधिकारिणी रियासतों के साहित्यकार भी ग्वालेरी कविता का बड़ी श्रद्धा के साथ उल्लेख करते हैं। तुलसीदास के समय में ही दक्षिणी हिन्दी का महान् कवि वजही हुआ था। इसका जन्म १५५० ई० और मृत्यु १६३१ ई०

(तुलसी की मृत्यु से आठ साल बाद) हुई थी। इसने दखिनी हिन्दी में एक गद्य काव्य 'सबरस' लिखा है, जो हाल में नागरी अक्षरों में हैदराबाद से छपा है। 'सबरस' हिन्दी के सबसे पुराने गद्य ग्रन्थों में है। इस ग्रन्थ में वजही ने छह दोहरे (दोहे) उद्धृत किये हैं, जिनमें निम्न तीन ग्वालेरी के कहे हैं, जैसे—

होर ग्वालेर के चातुरां गुन के गुरां····यों बोले हैं:—
पोथी थी सो खोटी भई, पंडित भया न कोय।
एकै अच्छर पेम का, पढ़ै सो पंडित होइ॥ (पृष्ठ १)

ग्वालियर के कवियों को यह महाकवि चातुर और गुण के गुरु या आगर कहता है। दूसरी जगह वह फिर कहता है—

होर ग्वालेर के सुजान यों बोलते हैं जान, दोहरा—
धरती म्याने बीज धर, बीज बिखर कर बोय।
माली सींचे सिर खड़ा, रुत आये फल होय॥
(पृष्ठ १८१, अंजुमन तरक्की उर्दू प्रकाशन)

ग्वालियर के सुजान कमाल के दोहरे बोलते थे, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। तीसरे स्थान पर वह कहता है—

जहां लगन ग्वालेर के हैं गुनी, उनोंते बी यो बात गई है सुनी।
जिनको दरसन इत्त है, तिनको दरसन उत्त।
जिनको दरसन इत नहीं, तिनको इत ना उत॥ (पृष्ठ २४१)

वजही ने निम्न दोहरों को उद्धृत करते ग्वालेर का नाम नहीं लिखा है, पर इनकी भाषा ग्वालियर के टकसाल की हैं, इसमें सन्देह नहीं—

सात सहेली एक पिउ, चउंधर पिउ-पिउ होय।
जिस पर पिउका प्यार है, सो धनि बिरली कोय॥ (पृष्ठ २२),
सीउ सत्त ना छाड़िये, सत छाड़े पत जाय।
लछमी सतकी दासि है, पग लागै घर आय॥ (पृष्ठ १६६)

निम्न दोहरे को उसने 'दखिनी दोहरा' कहा है—

तेरे करतब कारने, मैं चुप होइ बदनाम।
मैं म्याने ते उठ गई, तूं जाने तेरा काम॥ (पृष्ठ २२६)

बाकी बचे एक के बारे में वजही कहता है—

ज्यों खुसरो कहता है, बैत—
पंखा होकर मैं झली, साती तेरा चाव।
मुंज जलती (के) जन्म ग्या, तेरे लेखन बाव॥ (पृष्ठ २१८)

खुसरो—फारसी के महान् कवि—ने हिन्दी में भी कविताएँ की थीं, इसमें सन्देह नहीं है, पर खुसरो के नाम से जितनी पहेलियाँ मुकरनियाँ बतलाई जाती हैं, उनके खुसरो के होने में सन्देह है। खास कर उनके उच्चारण तो बिल्कुल पीछे के हैं। खुसरो का जन्म जिस पटियाली में हुआ था, वह ब्रजभाषा-ग्वालेरी क्षेत्र में है। यह बिल्कुल सम्भव है, सूर के पहले, अर्थात् कृष्ण-भक्त कवियों के ब्रजभाषा पर छा जाने के पहले, कविता की उस भाषा को राजनीतिक-सांस्कृतिक केन्द्र होने के कारण ग्वालेरी कहा जाता था। पीछे ग्वालेरी कहने की आवश्यकता नहीं रही, जब ग्वालियर का हिन्दू राज्य खतम होकर मुगलों के राज्य में मिल गया।

यह भी उल्लेखनीय बात है, कि जिस कविराज स्वयंभू रचित (अपभ्रंश) रामायण के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए 'रामचरित मानस' के अन्त में 'यत् पूर्व प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशंभुना' कहकर याद किया है, उसकी एक दुर्लभ कृति संवत् १५२१ ज्येष्ठ सुदी १० बुधवार (सन् १४६४ ई०) में इसी गोपाचल (गोपालगिरि, ग्वालियर) में लिखी गयी थी। जीवित भाषा के तौर पर समाप्त हो जाने के साढ़े तीन सौ वर्ष बाद* इस अनुपम कृति का लिपिबद्ध कराना बतलाता है, कि ग्वालियर में कितनी गुणग्राहकता थी।

---

* उस समय अपभ्रंश-साहित्य की अन्तिम ज्योति रइधू अपने आश्रयदाता कीर्तिसिंह तोमर के समय में विद्यमान थे। प्रसिद्ध जैन भट्टारक गुणभद्र ने इसी समय १५० ग्रन्थों की रचना की थी। प्रसिद्ध जैन कवि स्वयंभू के ग्रन्थों की ग्वालियर में उस समय प्रतिलिपि होना प्राकृतिक है।—[सं०

एकांकी—

दो नायक

— श्री वालजीलगड

पात्र

हिटलर तथा उसका सहकारी
नेपोलियन
छह बालक आत्माएँ जिनमें एक बारह वर्षीय आत्मा हिटलर की बाल्यावस्था की पोशाक में।

समय—रात्रि
स्थान—पेरिस में नेपोलियन की समाधि

[हिटलर अपने सहकारी के साथ पेरिस में बनी हुई नेपोलियन की समाधि पर आता है]

हिटलर—हूँ···तो यह समाधि है?

सहकारी—हाँ, श्रीमान्!

हिटलर—यह तो बड़ी विशाल है!

सहकारी—हाँ श्रीमान्! इसका यह स्तम्भ रूसी स्फटिक शिला को काटकर बनाया गया है।

हिटलर—(चकित) रूसी स्फटिक शिला? शत्रुओं के द्वारा उसका इतना बड़ा सम्मान! और वह भी मृत्यु के बाद। सेंट हेलेना में अंग्रेजों ने इतनी बड़ी समाधि बनायी और उसे इतना सम्मान दिया रूसियों ने! आश्चर्य!

सहकारी—(समर्थन का भाव) आपने बिलकुल ठीक समझा श्रीमान।

हिटलर—(प्रभावित) वास्तव में महान् था इटली निवासी बोनापार्ट—हाँ, इटली निवासी—क्योंकि फ्रान्सीसियों ने तो उसे अपना इसलिए बनाया कि वह एक महान् सेनापति था, न्याय शास्त्र का जन्मदाता और एक दुर्जय योद्धा।

सहकारी—(अत्यधिक विनम्र) लेकिन आपसे पहले श्रीमान्।

हिटलर—(गौरवपूर्ण) उसने भी योरोप में एक संघीय शासन की कल्पना की थी—उसने भी एक नयी व्यवस्था को जन्म देना चाहा था।

सहकारी—लेकिन वह असफल रहा, श्रीमान्।

हिटलर—(गर्व से) बिलकुल उसी तरह जिस तरह मैं सफल होऊँगा। (घृणा से) बोनापार्ट की हार का उत्तरदायित्व इन अंग्रेजों और रूसियों पर है। मैं उसका प्रतिकार करके रहूँगा। प्रतिहिंसा की आग में जल-जलकर जो अपनी वीरता का परिचय नहीं देता उसे मैं मनुष्य नहीं शूकर समझता हूँ, श्वान, शृगाल।

सहकारी—निश्चय ही श्रीमान्।

हिटलर—(आज्ञा भरे स्वर में) जाओ, आध घंटे बाद लौटना।

सहकारी—जाऊँ, और आपको अकेला छोड़ जाऊँ! यह मेरा कर्त्तव्य नहीं है श्रीमान्।

हिटलर—(क्रोध से) जाओ। यह मेरी आज्ञा है और मेरी आज्ञा का क्या अर्थ होता है जानते हो?

सहकारी—(भय से) जानता हूँ श्री मान्! पालन या मृत्यु।

हिटलर—(गर्व से) हाँ, जाओ।

[सैनिक अभिवादन का ध्वनि संकेत—जाती हुई पग ध्वनि—फिर कुछ क्षणों के लिए शांति का स्वर—नेपोलियन की मृतात्मा के आगमन का ध्वनि-संकेत]

हिटलर—(गौरव पूर्ण स्वर में) नेपोलियन बोनापार्ट, मैं तुम्हारा अभिवादन करता हूँ। [अभिवादन करने का ध्वनि-संकेत—दो बूटों की खटाक की आवाज]

नेपोलियन—यह किसका स्वर है?

हिटलर—अडॉल्फ हिटलर का।

नेपोलियन—(निरादर के स्वर में) हिटलर—गली-गली फिरने वाला एक साधारण गृह-शिल्पी—आस्ट्रिया की सेना का एक मामूली सा नायक—क्यों?

हिटलर—(गर्व से) नहीं। विशाल जर्मन साम्राज्य का निर्माता और वर्तमान योरप का भाग्य-विधाता। प्रारम्भ में सभी मनुष्य हीन, तुच्छ, नंगे और मल-मूत्र में लिपटे हुए जन्म लेते हैं, लेकिन कितने हैं इस संसार में जो मेरी तरह मनुष्य और उसके भाग्य के सृष्टा और नियामक बनते हैं?

नेपोलियन—(मस्ती के स्वर में) बुरा लग गया! मैं भी तो एक मामूली-सा नायक ही था। मैं भी तो सड़कों पर मटरगश्ती भरे हृदय से खंभों पर हाथ मारता और उनकी संख्या गिनता घूमा करता था! हैं हैं हैं हैं!

हिटलर—(गर्व से) ठीक है, लेकिन मैं एक सम्राट, एक विश्व-विजेता को अभिवादन करने आया हूँ।

नेपोलियन—मेरी सेना के सिपाही छोटे नायक के लिए ही अपने प्राणों की आहुति देना अपना कर्त्तव्य समझते थे।

हिटलर—लेकिन मेरी प्रलय-वाहिनी के सामने मेरा स्वरूप और मेरा आदर्श रहता है।

नेपोलियन—उनका भी समय आयेगा! वही होगा, हिटलर, जो सदा से होता आया है और सदा होता रहेगा! लेकिन तुम कहते हो कि तुमने सम्पूर्ण योरप पर बिजय प्राप्त कर ली है? संकल्प तो तुम्हारा बड़ा महान है।

हिटलर—मेरा कोई संकल्प कभी अपूर्ण नहीं रहा। आज तुम्हारा प्यारा पेरिस मेरे चरणों पर पड़ा कराह रहा है।

नेपोलियन—तुम्हें याद नहीं कि मैंने प्रसिया के महान फ्रेडेरिक को परास्त करके उसका खड्ग छीन लिया था। उसका सारा अहंकार, दंभ मिट्टी में मिला दिया था?

हिटलर—हँ हँ हँ, मैंने पोलैण्ड को तीन सप्ताह में कुचल कर निर्जीव बना दिया।

नेपोलियन—(हँसी उड़ाता हुआ) शायद तुम्हारा मतलब उसी पोलैण्ड से है जिसने मेरे लिए अपना खून बहाया था।

हिटलर—(दम्भ से) आज मेरे लिए भी इटली जैसा राष्ट्र अपना रक्तदान करने के लिए तत्पर है।

नेपोलियन—(दम्भ से) हँ हँ हँ, तुम्हें मालूम नहीं, मेरा सौतेला लड़का इटली का वायसराय था?

हिटरलर—(उतनी ही तेजी से) और शायद तुम्हें भी मालूम नहीं कि एक नार्वे क्या, अन्य छोटे मोटे राष्ट्र, बल्कि सारा योरप आज मेरा है—मेरी दया का भिखारी।

नेपोलियन—(शिक्षा देता हुआ सा) मगर तुम यह भूल गये कि स्पेन में पेनिनसुला के युद्ध ने मेरा सारा गर्व कुछ समय के लिए चूर-चूर कर डाला था।

हिटलर—(गौरव पूर्ण स्वर में) मुझे याद है और इसीलिए मैंने अपनी विजय-बैजयन्ती का शुभारम्भ स्पेन से ही किया था।

नेपोलियन—(अपने को सात्वना सा देता हुआ) फिर भी……फिर भी…… फिर भी स्पेन निवासी मुझे युग-युग तक याद करेंगे। और इंगलैण्ड ?

हिटलर (बड़े आत्मविश्वास से) हँ हँ, इंगलैण्ड तो अब कुछ हफ्तों का ही मेहमान है।

नेपोलियन—(पछतावे से) मुझे वे दिन नहीं भूलते जब मेरे जलयान गतिशील पानी न पाकर अंग्रेजों के गतिरोध के भय से आतंकित हो उठते थे। अगर ब्रिटेन की सामुद्रिक शक्ति दुर्जेय न होती तो मैंने कब्र का उसे समाप्त कर दिया होता।

हिटलर—यह तुम्हारा दुर्भाग्य था नेपोलियन! तुम्हारे पास वायुयानों का विशाल समूह भी नहीं था जिसके बल पर तुम लंदन का विध्वंस कर सकते।

नेपोलियन—(पछतावे से) काश कि केवल ३६ घंटे के लिए इंगलिश चैनेल मेरे अधिकार में आ जाती और केन्ट या ससेक्स में मेरे केवल दस हजार सैनिक प्रवेश कर पाते ।

हिटलर—(दम्भ से) मगर अब इसकी आवश्यकता नहीं रह गयी । जर्मनी की वायु-शक्ति आज इस विश्व भर में अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं रखती।

नेपोलियन—(उपेक्षा से) भ्रम है । एक दिन तुम्हारा यह भ्रम दूर होकर रहेगा । मैं पूछता हूँ, तुम कजाकियों को बेस्टुला के बाहर रोक सकते हो ?

हिटलर—हँ हँ हँ, तुम को मालूम नहीं, मैंने रूस के साथ समझौता कर लिया है ?

नेपोलियन—(गर्व से) उसी तरह जिस तरह मैंने तिलसित पर उससे समझौता किया था ।

हिटलर—(गौरव पूर्ण स्वर में) पर तुमको विदित होना चाहिए कि यदि आवश्यकता हुई तो मैं स्तालिन से भी निपट लेने को तयार हूँ !

नेपोलियन—उसी तरह जिस तरह मैंने प्रथम जार सिकन्दर का गर्व-खर्व कर दिया था ।

हिटलर—अगर ब्रिटेन इतना दुर्दमनीय है, जैसा कि तुम्हारे कथन से प्रतीत हुआ, तो मुझे मास्को की ओर अपनी सेना का अभियान करना पड़ेगा । विजय की यात्रा में पड़ोसी धर्म, मित्रता और संकोच का कोई महत्व नहीं होता !

नेपोलियन—हा हा हा हा, मास्को की ओर ?

हिटलर—हाँ, मास्को की ओर । ब्रिटेन के विरुद्ध सारे योरप के साथ आगे खड़ा होना मेरा सब से बड़ा स्वप्न है और यह स्वप्न पूरा होकर रहेगा, नेपोलियन, पूरा होकर ।

नेपोलियन—(शान्तिपूर्ण स्वर में)जीवन के सारे सपने कभी पूर्ण नहीं होते, हिटलर । मेरा भी एक स्वप्न था । मेरा भी यही विचार था ।

हिटलर—(समर्थन के स्वर में) तब तुम्हारे विचार में कोई भूल न थी, कोई भ्रम न था ।

नेपोलियन—भूल और भ्रम तो न था, पर यह तो मानना ही पड़ेगा कि उस समय मेरा वैसा सोचना व्यावहारिक न था । समय की गति का मुझे ध्यान नहीं रह गया था । विजयोल्लास ने मुझे अन्धा बना दिया था । मेरा विवेक मर गया था ।

हिटलर—मगर तुम करते भी क्या ? सेना ले जाने के लिए तुम्हारे पास रेल न थी । रूस के लम्बायमान क्षेत्रों और राजपथों हर दौड़ने वाले टैंक न थे ।

आधुनिक युद्ध कला के अनुरूप तुम्हारे पास कोई तयारी नहीं थी और पड़ोस का कोई अवलंब न था।

नेपोलियन—(सचेत करने के स्वर में) भूल रहे हो हिटलर, कि मेरे पास अपने समय की सर्वश्रेठ प्रलय-बाहिनी थी। मेरे पास म्योरत जैसा महान योद्धा था। एक म्योरत ही क्यों, एक से एक बढ़कर गार्द, बर्थियेर, देवात् और ने जैसे महारथी थे। मैं जानना चाहता हूँ कि ऐसे कितने महारथियों का तुमने निर्माण किया ?

हिटलर—(उद्दंडता से) मगर तुम्हारे पश्चात विशाल जर्मन साम्राज्य के हमारे सभी सेनानी…

नेपोलियन—(बीच में टोकता हुआ) ठहरो। पूरी बात सुनलो। उस प्रसियन सेना के जो उस समय योरप में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती थी, मैंने जेना के युद्ध में छक्के छुड़ा दिये थे।

हिटलर—(क्रोध से) सुनिए! वह दिन दूर नहीं, जब छः हफ्ते के भीतर मास्को मेरी मुट्ठी में होगा।

नेपोलियन—मैंने भी तो मास्को में प्रवेश किया था। (हँसता है)

हिटलर—प्रवेश करने से क्या होता है, तुमने रूसी सेना का बाल भी बाँका नहीं कर पाया।

नेपोलियन—तुम भूल रहे हो हिटलर, बोरोडिनों युद्ध का विजेता मैं ही था।

हिटलर—(मखौल उड़ाता हुआ) हँ हँ, युद्ध-विजेता! वह भी कोई विजय थी ? और विजय का श्रेय भी तुमको न था। उसका विजेता था गार्द जैसा सेनानी। उस समय तुम्हारा साहस उसके सामने पानी भर रहा था।

नेपोलियन—(एक लम्बी साँस लेकर) तुम परिस्थिति पर ध्यान नहीं देते हिटलर। यह परिस्थिति का ही परिणाम था कि मैं पैरिस से दो हजार मील दूर था। मैं पागल नहीं था कि सेना की अन्तिम रसद भी वहीं समाप्त कर देता।

हिटलर—(जोश में) युद्ध के समय जो पागल बनना नहीं जानता उसे वीर कहलाने का कोई अधिकार नहीं। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि विजय प्राप्त करने के लिए मैं एक-एक सैनिक को प्रलय की अग्नि में झोंक देता हूँ।

नेपोलियन—मैंने सब करके देख लिया है हिटलर। बको मत। बेटेसिना नदी पार करते समय मैंने यही किया था। लेकिन उस समय की भयानक सर्दी ने मेरे सारे दुस्साहस को निर्जीव और ज़ड़ बना दिया था।

हिटलर—(आक्षेप से) मगर आजकल के युद्ध में सर्दी और गर्मी का कोई महत्व

नहीं होता। उसके महत्व पर तो तब विचार किया जाता है जब असंफलता मुँह पर कालिख पोत देती हैं।

नेपोलियन—हूँ···तो तुम्हें अपनी सफलता पर पूरा भरोसा है। एक बार मैंने भी भाग्य पर भरोसा किया था।

हिटलर—मनुष्य पर नहीं। इन्सान पर नहीं।

नेपोलियन—(कठोरता से) नहीं। और इसलिए नहीं कि मनुष्य बहुत बुरा है, लेकिन समय पर और वही मनुष्य बहुत भला भी है, लेकिन समय पर। तुमको ज्ञात नहीं, मनुष्य जंगली भी होता है, मूर्ख भी। लेकिन वही मनुष्य मेरे लिए बड़ी चीज थी। सच पूछिए तो मेरी महानता का सम्बल एक मनुष्ता ही थी।

हिटलर—(विरोधी स्वर में) होगी, लेकिन मेरे लिए नहीं। मैं अपनी कल्पना का इन्सान बनाता और खड़ा करता हूं। मैं उसका सृष्टा हूँ। और ऐसा भी समय आता है जब मैं उस बनें बनाये इन्सान को नष्ट कर डालता हूँ।

नेपोलियन—(घृणा से) मैं ऐसे निर्जीव खिलौनों और गुलामों पर शासन करने का इच्छुक नहीं था। अगर मैं अपनी योजना में सफल होगया होता तो आज समस्त योरप में मेरा वैसा ही समर्थ और प्रभावशाली शासन होता जिसकी पृष्ठ-भूमि मैंने फ्रांस के लिए विधान के रूप में बनाकर दी और जिसके लिए मेरा नाम युग-युग तक कल्प-शत-कल्पों तक स्मरणीय रहेगा। मनुष्य मात्र को सर्वथा प्रसन्न और उन्नतिशील बनाना मेरा स्वप्न था। मुझे दुःख है कि मेरा वह स्वप्न पूरा न हुआ और सारी मानवता इस सौभाग्य से वंचित रह गयी। मुझे बहुत दुःख है कि आज ऐसी मानवता पल रही है जो स्वतंत्रता के नाम पर उच्छृंखलता, नैतिक हीनता और मतविभिन्नता को महत्व देने लगी है। मैं उस नयी रौशनी को पसन्द नहीं करता जो नव जागरण के नाम पर तानाशाही को जन्म देने और पनपने का अवसर देती है।

हिटलर—(अप्रतिभ स्वर में) अपना-अपना विचार है। मगर मेरे देश के निवासी अधिक समझदार हैं।

नेपोलियन—(गंभीरता से) उसको परखने का भी अवसर आएगा। अब यह बताओ, तुम यहाँ आये क्यों हो?

हिटलर—(गर्व से) तुम्हारे पोट्सडम-प्रवेश का बदला चुकाने के लिए। तुमको मालूम होना चाहिए कि मेरी सेडान की विजय ने तुम्हारी जेना की विजय

• का महत्व धोकर साफ कर दिया है । सोचता हूँ, कि अब में तुमसे उऋण होगया हूँ । तुम्हारा क्या विचार है ?

नेपोलियन—मगर मेरे विचार से तुम्हारा सम्बन्ध ?

हिटलर—सम्बन्ध बड़ा घनिष्ठ है । एक दिन तुम्हारे चरित्र ने मुझे प्रेरणा दी थी ।

नेपोलियन—तब मैंने ठीक ही सुना था कि तुम्हारी शिक्षा–दीक्षा बड़ी गलत हुई है ।

हिटलर—(उपेक्षा से) सुनी-सुनायी बातें ऐसी ही हुआ करती हैं । मुझे अपने गरीब परिवार में जन्म लेने का अभिमान है ।

नेपोलियन— हा हा हा हा, जिसके होने न होने पर तुम्हारा कोई बस नहीं, जिसके उच्च या निकृष्ट होने पर तुम्हारा कोई जोर नहीं, उस पर तुम अभिमान करते हो । छिह,…मैं भी जानता था कि गरीबी किसे कहते हैं । मगर मैं उसको अभिमान की वस्तु नहीं मानता ।

हिटलर— अपना-अपना ख्याल है ।…तुम यह भूल जाते हो कि गरीबी वह अग्नि है जिसमें तपकर इन्सान सोना बन कर निकलता है ।

नेपोलियन—यह सब बकवास है । संसार के सारे दरिद्र लोग जब अपने जीवन में सफल नहीं हो पाते, तो वे यह समझ कर अपने को धोखा देते हैं कि ऐश्वर्य और धन-सम्पत्ति सारी बुराइयों की जड़ है, यद्यपि वे पालने में झूलने के दिन से लेकर चिता जलने के दिन तक उसी धन और दौलत, ऐश्वर्य और सफलता के पीछे पागल और दीवाने बने रहते हैं ।

हिटलर— (गर्व से) मैं तो केवल जर्मनी क विजयी के लिए जीवित हूँ ।

नेपोलियन - (हँसी उड़ाता हुआ) हा हा हा हा, तुम जीवित हो ? तुम्हें जीवित कहता कौन है ? आदमी हो तुम ? तुम्हारे अन्दर मनुष्य का जीवन है, जब कि तुम शराब नहीं पीते, किसी से प्यार नहीं करते ?

हिटलर—(हँसता हुआ) मैं जानता हूँ कि स्त्रियाँ किसलिए होती हैं और उनकी क्या उपयोगिता है ।

नेपोलियन—(सहसा) अपने बच्चे मुझे दिखलाओगे ?

हिटलर—योरप के सारे बच्चों को मैं अपना मानता हूँ ।

× × ×

[शांति का वाद्य—कुछ लड़के और लड़कियों की आत्माओं के आगभन सूचक ध्वनि-पाँच एक तरफ और एक उनसे कुछ दूर जो हिटलर की बाल्यावस्था की पोशाक में है]

पहला लड़का—मैं वारसा मे अखबार बेचा करता था, लेकिन तुम्हारे बमबाजों ने मुझे मार डाला ।

लड़की— मैं तो रोटरड्म में खेलती थी। तुम्हारे बमबाजों ने मेरा दम घोंट डाला।

दूसरा लड़का—मैं बालग्रेड में रहता था, लेकिन तुम्हारे बमबाजों ने मेरी आखें फोड़ डालीं।

तीसरा लड़का—मैं ओडेसा की एक मिल में काम करता था, लेकिन तुम्हारे सिपाहियों ने मुझे चीर कर फेंक दिया।

चौथा लड़का—में लन्दन में संवाद-वाहक-बालक था, लेकिन तुम्हारे बमबाजों ने मुझे भून डाला।

[शांति वाद्य-ध्वनि]

नेपोलियन—बोलो क्या कहते हो, अडॉल्फ हिटलर !

हिटलर—मामूली सी बात है। युद्ध के समय तो ऐसी दुर्घटनाओं का होना स्वाभाविक है। अंडे को फोड़े बिना कहीं आमलेट तैयार किया जा सकता है। बालक हिटलर से पूछो, वह मेरे पक्ष में कुछ कहेगा।

नेपोलियन—बोलो बेटे तुम्हें कुछ कहना है ?

बालक हिटलर उत्तर देने की आज्ञा है, मेरे फ्यूहरर ?

हिटलर—मैं आज्ञा देता हूँ।

बालक हिटलर—(विनय और दृढ़ता के साथ)फ्यूहरर के विरुद्ध भाषण करने के अपराध में मैंने स्वयं अपने माता पिता को गेस्टापो के हवाले कर दिया था और परिणाम-स्वरूप वधस्थान में ही उनका प्राणान्त हुआ।

[बालक हिटलर के अन्तर्धान होने का संकेत]

नेपोलियन—बोलो अडॉल्फ हिटलर ! तुम्हारे बच्चे तो सब कुछ कह चुके, अब तुम क्या कहते हो ?

हिटलर—(गौरव पूर्ण स्वर में) अपनी वाणी पर संयम रखो, नेपोलियन। इस तरह सम्बोधित न करो जैसे कोई अपराधी को करता है। वह दिन भूल गये जब अंग्रेज बच्चों को डरवाने के लिए तुन्हारे नाम का प्रयोग किया जाता था ? तुन्हारा नाम सुनकर बच्चे काँप उठते थे ? तुम्हारे 'बोनी' और 'कार्सिकन ओग्रे' नाम बदमाश बच्चों को डरवाने के लिए अंग्रेज माताओं की जवान पर रहा करते थे ? शर्म करो, नेपोलियन, शर्म करो।

नेपोलियन—(उसी के स्वर में) शर्म तुमको आनी चाहिए हिटलर, तुम्हें। ऐसे राक्षस को जिसका भय केवल बच्चों को ही नहीं, प्रोढ़ों और बुड्ढों को भी रात दिन बना रहता है, जो काल की तरह नित्य है और मृत्यु की तरह सत्य। मैं तो केवल काल्पनिक कहानियों में ही डरावना बतलाया गया था।

हिटलप—(गर्व से) मैं स्वप्न और कल्पना पर विश्वास नहीं करता। नेपोलियन, मैं जो सोचता हूँ वह प्रत्यक्ष और सत्य होकर रहता है। मैं झूटे सपने देखना पसन्द नहीं करता। स्वप्न को सत्य बनाने वाला इस सारी पृथ्वी पर अकेला मैं उत्पन्न हुआ हूँ। जब कि मेरा कोई घर नहीं था, मेरे आगे कोई कार्य नहीं था और मेरा कोई मित्र भी नहीं था। तुम भूल रहे हो नेपोलियन कि एक दिन मैं वियना की सड़कों पर पोस्टकार्ड बेचा करता था। (घृणा से) ये मोटी चर्बी वाले यहूदी मेरा अपमान करते थे; मुझे जलील किया करते थे। मैं मामूली पुलिस-जासूस था, लेकिन तब मैं सोचता यही था कि जर्मनी को शर्म और पराजय के दलदल से निकालने के लिए (दाँत पीसकर) फ्रांस को समूल उखाड़ फेंकने के लिए, यहूदियों को सदा-सदा के लिए समाप्त करने के लिए और (गर्व से) जर्मन जाति को प्रभुता और स्वामित्व प्रदान कर समस्त विश्व पर अपनी वैभव की पताका फहराने के लिए ही मेरा जन्म हुआ है। अपने भाग्य का विधाता मैं हूँ, निर्माता मैं हूँ जैसा कि कारागार की काल-कोठरी में बैठकर लिखी हुई अपनी आत्म-कथा में मैं बतला भी चुका हूँ।

नेपोलियन—(एक ठंडी साँस के साथ) मैं भी समस्त योरप पर शासन करना चाहता था, मगर जल सेना के एक अंग्रेज अफसर ने एकर के युद्ध में मेरी भाग्य-लिपि पर कालिख पोत दी। (आशंका से) और अभी तुमने बताया कि इंगलैंड के साथ तुम्हारा भी युद्ध चल रहा है। मैं जानना चाहता हूँ कि तुमने अपना भविष्य देखा है?

हिटलर—(हँसता है) अपने बचपन से ही मैं अपना भविष्य देखता चला आया हूँ। आज कोई नई बात नहीं है नेपोलियन। रही इंगलैंड के साथ युद्ध की बात, सो वे भले ही आज यह अनुभव न करें कि वे मुझसे मात खा रहे हैं, लेकिन वह दिन दूर नहीं जब वे अनुभव करेंगे।

नेपोलियन अंग्रेज जाति का यही सबसे बड़ा गुण है अडॉल्फ हिटलर। जरा समझो इस बात को। वह अपनी हार का कभी अनुभव नहीं करती। मैंने कोरुन्ना पर उन्हें जहाज की शरण लेने को विवश तो कर दिया था, जैसा कि तुमने भी डनकर्क पर किया, लेकिन वह फ़ौज फिर लौट आयी थी और अडॉल्फ हिटलर, यही उसकी बुद्धिमानी की निशानी है। जब वह अवसर देखती है तब सदा ऐसे ही लौट आती है क्योंकि वह युद्ध की गति-विधि पहचानती है। बुसाको की पराजय के बाद साउल्त ने मुझे समाचार दिया कि उनकी बायी और मध्य की सेना-पंक्ति बुरी तरह छिन्न-भिन्न कर डाली गयी है, लेकिन उस जाति

ने यह अनुभव नहीं किया कि यह उसकी पराजय है और जानते हो इसका परिणाम क्या हुआ ? परिणाम यह हुआ कि एक भी सिपाही मैदान छोड़कर नहीं भागा।

हिटलर—(उपेक्षा और दर्प के साथ) जानता हूं, समझता हूँ, मगर इसके साथ ही तुमको यह भी बतलाना चाहता हूँ नेपोलियन, कि जब तक रूस के साथ मेरा निबटारा नहीं हो जाता तब तक इंगलैण्ड मेरी प्रतीक्षा करने को मजबूर है, विवश है, लाचार है।

नेपोलियन—(शांत गंभीर स्वर में) यहीं तुम भूल रहे हो अडॉल्फ हिटलर, यहीं। रूस एक अजेय राष्ट्र है। उससे निपटने में तुम कभी सफल नहीं हो सकते। मैंने भी तो सोचा था, इंगलैण्ड पर विजय प्राप्त करने का पथ तब प्रशस्त होगा जब मैं मास्को को हस्तगत कर लूंगा। जानते हो उसका क्या परिणाम हुआ ? मेरी सारी योजना बेरेसिना नदी की बर्फ में जम गयी और ग्रांड आर्मी का गरुड़ध्वज वहीं विलीन होगया।....मैं तुम्हें चेतावनी देता हूँ हिटलर। मेरी असफलता से शिक्षा ग्रहण करो, सफलता से नहीं।...कीर्ति की अदम्य लालसा से मेरा युवक सेनानी हृदय जब उबल पड़ा तो मेरी सेना के नौजवान सिपाही मनुष्यता को स्वतंत्र करने की भावना के लिए ही आगे बढ़ते चले गये। मुझे जो बराबर विजय-श्री वरण करती गयी, उसके मूल में एक मात्र मनुष्यता को स्वतंत्र करने की भावना ही थी। लेकिन जब मैंने रूस पर आक्रमण किया, तब मेरा गरुड़ध्वज मेरी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा और तानाशाही का प्रतीक था। मैं मानता हूँ कि यनुष्य की स्वतंत्रता की भावना ने ही मुझे महान बनाया, लेकिन साथ ही मैं यह भी मानता हूँ कि मुझको नीचा दिखाने का श्रेय भी उसी भावना को है।...इंगलिश चैनल की छोटी सी खाई का मेरे भी सामने कोई महत्व न था और रूस के ये लम्बे चौड़े मैदान भी मेरी महत्वाकांक्षाओं के समक्ष कोई महत्व नहीं रखते थे, लेकिन मानव मात्र की स्वतंत्रता की भावना मेरी इस महत्वाकांक्षा से ऊपर थी।...इसीलिए मैं तुम्हें चेतावनी देता हूँ अडॉल्फ़ हिटलर, अब भी तुम सँभल जाओ। अब तुम मुझसे मिलने ही आये हो, तो मेरे जीवन से कुछ पाठ भी लेते जाओ।

हिटलर तुम मुझसे चाहते क्या हो नेपोलियन ?

नेपोलियन—(गंभीरता-पूर्वक) मैं ? तुम मेरी चाह की बात पूछते हो ? मैं अपना हृदय खोलकर दिखलाऊँ तुमको कि मैं क्या चाहता हूँ ? मैं तुम्हारा रक्षा चाहता हूँ, क्योंकि अब तुम सर्वथा अरक्षित हो गये हो। काल तुम्हारे चारों ओर चक्कर काट रहा है।... वह दिन दूर नहीं जब तुम उसके मुँह के ग्रास

बन जाओगे। कोई शक्ति तुम्हें उससे न बचा पाएगी।…कहा मानो हिटलर, रूस की सीमा से अपनी सेनाएँ हटा लो। रक्तपात बन्द करो और शान्ति के उपासक बनो।…बहुत हो चुका हिटलर, बहुत हो चुका। एकमात्र शान्ति ही अब तुम्हारी रक्षा कर सकती है।…योरोप पर तुमने जो दैन्य और भुखमरी फैला रखी है, उसे रोको हिटलर। जिन देशों को तुमने दासता की श्रृंखलाओं से जकड़ रखा है, उन्हें स्वतन्त्र कर दो।…मानवता को स्वतन्त्र वायु में साँस लेने का अवसर दो, हिटलर! आज उसका दम घुट रहा है।

हिटलर—(आश्चर्य एवं उपेक्षा से) आज मैं यह क्या सुन रहा हूँ? क्या ये विश्व-विजेता के शब्द हैं? क्या यह महान नेपोलियन की मर्म-वाणी का स्वर है?

नेपोलियन—हाँ, हाँ। यह नेपोलियन की अन्तरात्मा का स्वर है। एक दो दिन में इस तरह का स्वर नहीं फूटता। हिटलर! मुझे अपनी विजय यात्रा की सम्भावनाओं पर विचार करने के लिए छह वर्ष का समय मिला था—छह वर्ष का, जबकि मेरे साथ मेरी इन्हीं आँखों के सामने, लाल वर्दीधारी अंग्रेज सैनिक मेरे शयन-कक्ष के चारों ओर पहरा देते थे और छोटे-छोटे युद्ध-पोत मेरे कारागार के चारों ओर महासमुद्रों के प्रशान्त वातावरण में मेरी ओर सतर्कता की दृष्टि गड़ाये देखा करते थे।…कितना अधिक समय मुझे सोचने को मिला था। लेकिन केवल एक दम्भ था जिसने मुझे सीखने का अवसर नहीं दिया। एक अहंकार था जिसने मेरा अन्त कर डाला। अगर तुम मेरे जीवन से सबक नहीं सीख सकते तो मेरी मृत्यु से ही कुछ शिक्षा ग्रहण करो।

हिटलर—अब मुझको देने के लिए तुम्हारे पास शिक्षा क्या है?

नेपोलियन—यही कि इस संसार में ऐसा महान पुरुष कोई उत्पन्न ही नही हुआ, और हो भी नहीं सकता, जो कभी किसी के शिकंजे में न आवे; क्योंकि अगर वह किसी के शिकंजे में नहीं आता तो वह अपनी ही चाल से मात खा जाता है। प्रत्येक सेनापति जो पराजय की मौत मरता है उसे दूसरा कोई नहीं मारता, उसकी अपनी भूल उसे मार डालती है।

हिटलर—और इसके बाद?

नेपोलियन—और इसके बाद? इसके बाद यह कि अपनी भूलों से शिक्षा न ग्रहण करने वाला व्यक्ति ईश्वर और मनुष्य दोनों के लिए समान रूप से दुखदायी और भयावह बन जाता है। वह अपना सर्वनाश स्वयं कर लेता है। मैं तुमको सजग कर देना चाहता हूँ अडॉल्फ हिटलर!

हिटलर—हा हा हा हा,···तुम मुझे क्या सजग करोगे जब कि तुम्हारा अस्तित्व स्वयं निर्जीव है। तुम मुझसे उस ईश्वर की बात करते हो, जिस पर मैं स्वयं विश्वास नहीं करता ? तुम मुझे वह मनुष्यत्व सिखलाते हो, जो मेरे हाथ का खिलौना है ! तुम मुझे वह धर्म और कर्त्तव्य सिखलाना चाहते हो, जिसकी मैंने निरन्तर अवहेलना की है !····इंसान ! इंसान !! हुँह, इंसान को बनाना और बिगाड़ना मेरे हाथ में है। तुम इसलिए असफल रहे नेपोलियन, क्योंकि तुम्हारा हृदय बोरजुआ था।···तुम्हें तो कुटुम्ब की आवश्यकता थी न। तुम तो सदा स्त्री जाति के माधुर्य के सामने घुटने टेकते रहे।···जेना के युद्ध में तुमने प्रसिया को जो बिलकुल नष्ट नहीं कर दिया, इसी कारण तुम विश्व-विजेता होते-होते रह गये। लेकिन मैं ? मैंने जिन देशों पर विजय प्राप्त की, कुचल-कुचलकर उन्हें श्मशान बना डाला। अब वहाँ आदमी नहीं, मुर्दे निवास करते हैं।···तुम्हारी तरह उनकी आवाज भी मेरे कानों में आया करती है। तुम अपने आपको क्यों नहीं देखते ?····जब तक तुम्हारे सेनानायकों ने तुम्हें धोखा नहीं दिया, तब तक तुमने उनको बराबर अपना प्रेम-पात्र बनाये रखा। ···लेकिन मैंने उसे उसके जन्म के क्षण ही नष्ट कर डाला।····मैं जानता हूँ, तुम कम ईर्षालु नहीं हो कोर्सिकन, क्योंकि तुम इतना तो समझते ही हो कि जहाँ तुम असफल रहे, मैं वहाँ भी सफल होके मानूँगा।····इतना मैं समझता हूँ कि तुम इसीलिए मुझे मास्को पर धावा बोलने से टोक रहे हो।

× × ×

[आत्मा की गमन-सूचक ध्वनि—शान्ति—फिर सैनिक के आगमन और अभिवादन की सूचक ध्वनि]

सहकारी—आपने मुझे याद किया श्रीमान ?

हिटलर—(पहले आश्चर्य से) नहीं तो (फिर साधारण स्तर पर) हाँ, हाँ, ठीक, ठीक तो है, मुझे काफी समय हो गया।

सहकारी—हाँ, काफी समय हो गया श्रीमान।

हिटलर—मुझे तो ऐसा कुछ नहीं लगता कि नेपोलियन इतना महान था जितना कि वह माना जाता है।

सहकारी—नहीं स्वामी, कभी नहीं।

हिटलर—(सामान्य स्वर) इस समाधि पर मुझे वह वातावरण और प्रेरणा भी नहीं मिली जिसकी आशा मुझे यहाँ तक खींच लायी। सर्दी भी बहुत है।

सहकारी—हाँ श्रीमान् ! बहुत अधिक है ।

हिटलर—(जोश से) मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया । तुम मेरी आज्ञा अभी-अभी मेरे सेनापतियों तक पहुँचा दो । अड़तालीस घंटों के अन्दर-अन्दर रूस पर आक्रमण हो जाना चाहिए ।

सहकारी—जो आज्ञा, श्रीमान ।

हिटलर—नेपोलियन देखेगा कि वह जहाँ असफल हुआ है, वहाँ मैं सफल होकर रहूँगा । तब मैं एक बार फिर यहाँ आऊँगा ।

सहकारी—वह कौनसा दिन होगा स्वामी ?

हिटलर—(गर्व से) जब मैं क्रेमिनल की विशाल अट्टालिका पर फहराते हुए लाल झण्डे के टुकड़े-टुकड़े करके हवा में यूँ उड़ा दूँगा ।

[गमन-सूचक ध्वनि । कुछ क्षण बाद शान्ति-सूचक ध्वनि ।
आत्मा के पुनरागमन की सूचक ध्वनि]

नेपोलियन—(धीरे से) कितना मनहूस, साधारण और तुच्छ प्रकृति का यह आदमी है । मुझे यह सन्तोष और प्रसन्नता है कि उसे पुनः मेरे पास आने का अवसर न मिलेगा ।

अनुवादक—श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी

जाम के ये उजड़े से बाग

एक गीति-संस्मरण—

— श्री वीरेन्द्रकुमार जैन

जाम के ये उजड़े-से बाग,
कभी तोतों के हरित विहार;
किसी मदभरी अलस दोपहर
कि वह मालिन-किशोरि सुकुमार
झूमती होगी बाँहें गूँथ
कभी रे इन जामों की डाल,
थाम डलिया कुहनी-कटि बीच,
गान गाती होगी वह बाल !
आज उस बाग तले वह पड़ी
कत्थई जामों की पतझार;
मर्मराकुल हो उठते गान
सरल कन्या के मन के सार ।
आह, टूटी डलिया वह पड़ी
भरे कुहनी के अनगिन परस,
उसी में गूँथे लगते मुझे
निखिल मन-मत के हर्ष-विमर्ष !
तुम्हारा पालित कदली-कुंज
पड़ा है मन मारे वह सुन्न;
तुम्हारे जघन-परस से स्निग्ध
तनों का पुंज रहा है शेष;
तुम्हारे अंगों की चिकनास
मिटा पाया क्या नहीं विनाश ?
अभी भी वे कदली के मूल
लिये हैं उन बाँहों की याद;
भरे भुज-पाशों का वह निबिड़
उभड़ता रस का सिन्धु अगाध !

लहरिये के लहँगे की शालें
मोह-लहरों के माया-जाल—
सिकुड़ते किसी तने की त्वचा—
नाश के ऊपर रही उछाल !
और वे घन कनेर के कुंज,
उपेक्षित जो हरियाते रहे;
जंगली, वे भोले निर्बोध,
अभी भी हरयाते हँस रहे।
तुरंजी पीले हुलसे फूल,
तुम्हारे बचपन की मृदु भूल,
याद बन आज रहे हैं झूल
तुम्हारी दुपहरिया के शयन।
कि इन कुंजों की गलियों सरल,
विचरती तुम एकाकी विकल,
शुभे, निपटा कर घर का काम
दुपहरी के उस व्याकुल पहर,
यहीं तुम आजाती चुपचाप
खोजती मन का चरम विराम।
खेल के मित्र वे हरे कनेर
तोड़ भर लेती आँचल ढेर,
और फिर देती वहीं बिखेर;
कि इस चञ्चल लीला से परे
खेलता था कोई चित-चोर;
कसमसा उठता वक्ष अधीर
कंचुकी-बन्ध तोड़ती पीर,
बाँह देता था कोई मरोर,
वहीं उस शीली-शीतल छाँह
तड़प कर तुम जाती थीं लोट,
भुजाओं में लेती मुख भींच,
झाँकता कौन तनों की ओट ?
एक भीनी सौरभ की लहर
अनिल में रह-रह जाती सिहर।

तुम्हारे नयन-रोम के जाल,
निबिड़ कस्तूरे-बसे अलिन्द,
खेलता कौन साँवला चोर,
कि जी में उठती कौन मरोर,
कि विह्वल अँगड़ाई में बाल,
तुम्हारी बाँहों के धनु तान,
छोड़ता कौन कुसुम के बाण,
कि तुम ही बिंध रह जाती, प्राण,
समझ ना पाती हाय अजान !
खोजती थीं तुम अपनापन,
किन्तु अपना ही रहा न मन,
अरे बरबस कोई बरजोर,
तोड़ता 'मैं' के सारे मान,
कि 'उन अनदेखे चरणों' लुढ़क,
सरल, तुम होजातीं बेभान !
कनेरों की इस शीतल छाँह,
दुपहरी के वे बेसुध शयन !
आह, अनकही रही वह कथा,
आज कवि ने रे जग को कही !
और वह ध्वस्त झोंपड़ा खड़ा,
उसी के आँगन में कुछ दूर
एक लकड़ी का तोरण पड़ा,
मिट रहे उस पर मंगल-चित्र;
अरे, किसके परिणय का चिह्न,
अरे, किसके सुहाग का मान,
पड़ा यह भग्नदूत हो विफल ?
न जाने कब किस मधुर प्रभात
ठुमकते घोड़े चढ़ वरराज,
केशरी अंगा-पगड़ी साज,
कि कलगी-तुर्रे का धर ताज,
यहाँ आई होगी बारात !
मखमली म्यान, रजत की मूठ,

तने काधे पर धर तलवार;
इसी घर के नव-चित्रित द्वार
टँगा होगा तोरण रंगीन;
छुआ अपने खाँडे की नोक
दिया था क्या यह कोरण मार ?
और फिर रेशम-फुंदा-डोर
झुलन्ती चली पालकी दौड़,
कि डोली ढोये चले कहार;
शुभे, उस दिन जो पी के साथ
गयीं तुम दूर देश ससुराल,
कभी क्या फिर न लौट कर, हाय,
यहाँ का पूछा कुछ भी हाल ?
पास की ये गुल मौरें खड़ीं
लुटाती अब भी केशर-धूल !
खेलता अब भी कवि से फाग
तुम्हारा चिर क्वाँरा अनुराग !
न जाने कहाँ खो गयीं, सरल,
तुम्हारे ये किशोर अवशेष
विकल व्याकुल करते हैं प्राण,
तुम्हारा कौन अजाना देश ?
तुम्हारी मुख-हेमाभा, शुभे,
काल-पलकों में हुई न लीन !
तुम्हारे अस्फुट भोले गान,
कर न हा, सका व्योम भी लीन !
जाम के ओ उजड़े-से बाग,
सुखों की कथा-शेष ओ विजन !
तुम्हारे नाश-ध्वंस के पार
अनाहत जीवन-सिन्धु अपार,
उसी की लहरों पर उत्तुंग
निरन्तर कवि का है अभियान,
अनन्तों में नित नूतन सृष्टि;
हमें पल-पल नव स्वर्ण-विहान !

नवनिर्माण
और
हमारा कर्तव्य

—श्री तख्तमल जैन, मुख्यमंत्री, (मध्यभारत)

हमें १५ अगस्त का यह दिन सदा याद रहेगा जब आज से आठ वर्ष पूर्व शताब्दियों की पराधीनता की बेड़ियों को तोड़कर हमारा प्यारा देश स्वतंत्र हुआ था। आज के ही दिन हमारे नेताओं ने प्रतापी ब्रिटिश साम्राज्य को अपने अपूर्व बलिदान और सत्य तथा अहिंसा के अमोघ अस्त्र से पराजित करके सदा के लिए विदा कर दिया था और हमारे देश में स्वाधीनता के सूर्योदय के साथ-साथ एक नये युग का आरम्भ हुआ। किन्तु विभाजन और उससे उत्पन्न समस्याओं ने प्रातःकालीन मेघ-माला के समान स्वाधीनता के बाल सूर्य को मानों थोड़ी देर के लिए ढक लिया और हमारी बहुत बड़ी शक्ति जो देश के नव-निर्माण में लगती, उन समस्याओं को हल करने में लग गयी। लाखों की संख्या में अपने घर बारको छोड़ कर पश्चिमी और पूर्वी पाकिस्तान से आने वाले हमारे पुरुषार्थी भाइयों को बसाने की समस्या हमारी सबसे बड़ी समस्या थी, और जिस कौशल, लगन और उत्साह के साथ उस प्रश्न को हल किया गया वह वास्तव में संसार के इतिहास में एक अपूर्व घटना है। किन्तु इस समस्या ने देश के नव निर्माण के उस महत्त्वपूर्ण कार्य को योजनापूर्वक आरम्भ होने

में अवश्य बाधा उपस्थित की और देश की प्रथम पंचवर्षीय योजना का प्रारम्भ जो अन्यथा कुछ पहले हो सकता था, १९५० में हुआ। हमारे नेताओं के मस्तिष्क में देश के नव निर्माण की रूपरेखा स्वाधीनता प्राप्ति के अनन्तर नहीं आई अपितु वह पहले से ही विद्यमान थी। देश को सुखी, समृद्ध और बलवान बनाने के उद्देश्य से स्वाधीनता प्राप्ति के ९ वर्ष पूर्व १९३८ में हमारे प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक योजना समिति का निर्माण हुआ था और उन्हीं के नेतृत्व में इस समिति ने १९४० में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस अवसर पर इस घटना का उल्लेख करने का एक मात्र आशय यही है कि हमारे नेताओं के सामने देश को सुखी, समृद्ध और उन्नत बनाने की भावना अत्यन्त प्रबल रही है और स्वाधीनता प्राप्ति के प्रयत्नों के साथ-साथ उनके हृदय और मस्तिष्क में सदा यह भावना काम करती रही कि योजनाबद्ध रूप से देश के नव-निर्माण का कार्य सम्पन्न किया जाय जिससे निश्चित अवधि के भीतर अधिक से अधिक काम हो सके। कहना न होगा कि हमारी प्रथम पंचवर्षीय योजना उसी भावना का मूर्त रूप है और आगामी द्वितीय पंचवर्षीय योजना के पीछे वही भावना काम कर रही है। प्रथम पंचवर्षीय योजना अपनी समाप्ति पर है और यह सत्य किसी को इंगित करके बताने की वस्तु नहीं है कि इसके अन्तर्गत कृषि, उद्योग, शिक्षा, स्वास्थ्य, गृह-निर्माण, यातायात के साधनों की वृद्धि आदि की दिशा में होने वाले देश व्यापी प्रयत्नों के साथ-साथ अनेक बड़ी योजनाएँ जैसे भाखरा नांगल योजना, दामोदर घाटी योजना, हीराकुंड बाँध योजना, तुंगभद्रा योजना, चम्बल घाटी योजना पूर्ण हो चुकी हैं अथवा पूर्ण हो रही हैं। रेल के इंजनों के तैयार करने के लिए निर्मित चित्तरंजन का कारखाना, खाद उत्पादन के लिए-निर्मित सिंदरी का बड़ा कारखाना, तथा विशाखापत्तनम् का जहाज बनाने का कारखाना स्वाधीनता प्राप्ति के अनन्तर हमारे नव निर्माण कार्य की सफलता के ज्वलन्त उदाहरण हैं। देश के विभिन्न भागों में वैज्ञानिक अनुसन्धान और खोज के लिए निर्मित प्रयोगशालाओं का जाल हमारी भावी योजना के विस्तार और महत्त्व की ओर संकेत करता है। प्रथम पंचवर्षीय योजना की सफलता को देख कर देश-विदेश के लोग विस्मित हैं और द्वितीय पंचवर्षीय योजना का सूत्रपात्र हमारी उसी सफलता के अनुरूप ही बड़े पैमाने पर होने जा रहा है। यह बात भूलने की नहीं है कि हमारी ये योजनाएँ जनता की योजनाएँ हैं, इनका मूल आधार जनता है और इनका संचालन भी जन सहयोग से किया जा रहा है। देश भर की जनता का अद्भुत सहयोग और समर्थन ही पंचवर्षीय योजना की सफलता की कुंजी है। किन्तु हमारी यह सफलता हमारी लगन और कार्यक्षमता के लिए सन्तोष का विषय न होकर प्रेरणा और स्फूर्ति का विषय होना चाहिए क्योंकि हमें यह सदैव ध्यान में रखना है कि सर्व साधारण जनता के जीवन स्तर को उन्नत बना

कर उसे संसार के अन्य उन्नत देशों के नागरिकों की तुलना में गर्व के साथ खड़े होने के योग्य बनाने के लिए हमें अत्यन्त परिश्रम और लगन से काम करना है और यह तभी सम्भव है जब देश के प्रत्येक वर्ग के लोग अपनी शक्ति के अनुसार इस कार्य में पूर्ण योगदान दें।

देश की छोटी-बड़ी योजनाओं के संचालन के लिए धनराशि तथा प्रशासकीय व्यवस्था का मुख्य कार्य शासन की ओर है, और वह कार्य अपने ढंग पर किया जा रहा है, किन्तु जैसा कि कहा जा चुका है विभिन्न क्षेत्रों में जन सहयोग की मात्रा और विस्तार पर हमें अत्यधिक जोर देना है। हमें इस कार्य को नये युगधर्म के रूप में ग्रहण करके उसके प्रचार और प्रसार का कार्य करना है। राष्ट्रीयता के महान धर्म के अनुरूप ही देश के नव-निर्माण का महान कार्य आज का युग धर्म है और देश के प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह उसे सफल करने के लिए पूर्ण रूप से कटिबद्ध होकर आगे बढ़े। इस कर्म-युग में आलस्य और उदासीनता को तिलांजलि देनी होगी और अपने कर्तव्य की पहचान करके क्रियाशील होना होगा। पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत होने वाले शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग, सड़क-भवन-जलाशय निर्माण आदि के कार्यों में पर्याप्त सामूहिक रूप से सहयोग देने के साथ ही यह परम आवश्यक है कि उसके लिए भूमि और अनुकूल वातावरण तैयार किया जाय। इस दिशा में सबसे महत्वपूर्ण योगदान विद्यार्थियों का हो सकता है। देश के स्वाधीनता आन्दोलन में हमारे छात्रों ने मूल्यवान सहयोग दिया है और किसी भी देश के छात्रों के लिए उनका त्याग और बलिदान आदर्श बन सकता है। टोलियाँ बना कर ग्रामों में पहुँच कर ग्रामीण जनता की सेवा के और उसके पथ प्रदर्शन के लिए पूर्णरूप से तैयार होकर उन्हें अपना काम करना चाहिए। विभिन्न वर्गों के युवक-युवतियों की टोलियाँ जब ग्रामों में पहुँचेंगी तो उनकी उपस्थिति मात्र से हमारे ग्रामीण भाइयों में उत्साह का सृजन होगा और वे देश में हो रहे महान नव-निर्माण के कार्य का महत्व समझेंगे। गाँवों में पहुँचकर शिक्षा-प्रसार, सफाई आदि के कार्यों में उनका सहयोग अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। जहाँ भी इस प्रकार के कार्य हुए हैं, उनके परिणाम उत्साहवर्द्धक रहे हैं।

हमारी कोई भी योजना तब तक वास्तविक रूप में सफल नहीं कही जा सकती जब तक उसमें महिलाओं का पूर्ण सयोग प्राप्त न हो और महिलाओं को उसका पूर्ण लाभ न पहुँचे। संविधान में महिलाओं को बराबरी का दर्जा प्रदान किया गया है और उन्नति के सभी मार्ग उनके लिए खुले हुए हैं। आज की महिला के लिए घर की चहार दीवारी तक अपने कार्यक्षेत्र को समित करना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता। उसे तो भारत की प्रचीन नारियों के महान आदर्श को सामने रखकर प्रत्येक

कार्यक्षेत्र में चाहे वह खेत हो या खलिहान, कारखाना हो या शिक्षणालय या चिकित्सालय, सर्वत्र ही उसे पुरूषों के साथ कन्धे से कन्धा और कदम से कदम मिला कर आगे बढ़ना हैं। एक सामान्य से प्रश्न—अपने चिकित्सालयों में नर्सों के प्रश्न को ही लीजिए। महिला नर्सों के अभाव में वहां पुरुष नर्सों की नियुक्ति करनी पड़ती है। शिक्षा, स्वास्थ्य आदि के क्षेत्रों के अतिरिक्त कितने ही ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें महिलाएँ बड़ी संख्या में प्रवेश कर के महत्वपूर्ण कार्य कर सकती हैं. किन्तु आजीविका के इन साधनों के अतिरिक्त समाज सेवा के अन्य क्षेत्रों में पहुंच कर वे और भी अधिक प्रभावपूर्व कार्य कर सकती हैं। अशिक्षित रहने, घरेलू काम-धंधों तक अपने आपको सीमित रखने के फलस्वरूप उनमें रुढ़िवाद, अन्ध विश्वास, भीरुता आदि दुर्गुणों ने घर कर लिया है। शिक्षित महिलाएँ अपनी अशिक्षित और पिछड़ी हुई बहिनों से संपर्क कर के उन्हें शिक्षित बनाने, उनके विचार उन्नत करने, गृहोद्योग, दस्तकारी आदि सिखाकर उनमें आत्म-विश्वास बढ़ाने का कार्य तो वे सहज ही कर सकती हैं। उहें वे बता सकती हैं कि अमेरिका, रूस, चीन आदि देशों में महिलाएँ किस प्रकार निर्माण के कार्य में लगी हुई हैं और वे समाज के लिए समस्या न बनकर समाज की समस्याओं को हल करने में पूर्ण रूप से संलग्न हैं।

पंचवर्षीय योजना में देश के उत्पादन को बढ़ाने और बेकारी दूर करने के प्रश्न को बहुत महत्व दिया गया है। इस कार्य में जितनी जिम्मेदारी श्रमिक वर्ग की है उसमे कहीं अधिक जम्मेदारी उद्योगपतियों की है। नये नये उद्योगों को खोलने में शासन द्वारा सहायता देने का जो कार्य हो रहा है उससे पूरा लाभ उठाना उद्योगपतियों का कार्य है। उनके सामने उद्योग-संचालन का आज नया आदर्श होना चाहिए। उद्योगों द्वारा लाभ-प्राप्ति के स्थान पर उद्योगों के विकास द्वारा अधिक से अधिक उत्पादन बढ़ाकर देश को समृद्ध करना तथा अधिक से अधिक लोगों को रोजगार देकर काम पर लगाने में उनकी सहायता अनमोल सिद्ध हो सकती है। किन्तु इसके साथ ही दूसरा पक्ष भी है। शासन द्वारा मजदूरों को समुचित मजदूरी दिला कर उनकी सुख सुविधा की सम्यक व्यवस्था की जा रही है। श्रमिक-बीमा-योजना, गृह-निर्माण-योजना, क्षतिपूर्ति आदि के नियम इस बात के प्रमाण हैं कि शासन मजदूरों के हितों की रक्षा में पूर्ण रूप से सतर्क और क्रियाशील है, परन्तु श्रमिक वर्ग को आदान-प्रदान की भावना से ऊपर उठकर आज देश के उत्पादन में अधिक से अधिक वृद्धि करने के लिए कटिबद्ध होने की आवश्यकता है। उन्नत देशों के बड़े-बड़े नगरों के निर्माण, बड़े बड़े कारखानों की सफलता उन देशों के कर्तव्य परायण, परिश्रमी और दूरदर्शी मजदूरों के परिश्रम का ही फल है। हमारे देश में भी बड़े बड़े निर्माण कार्यों को सफल बनाने और उत्पादन को बढ़ाने में श्रमिक वर्ग ने वास्तविक सहायता प्रदान की है। आवश्यकता इस बात

की है कि इस कार्य में और भी गति आये और हमारी नयी योजनाएं समय पर ही नहीं, समय के पूर्व संपन्न हो सकें और हम नये नये काम हाथ में लेते जावें ।

स्वाधीनता के अनन्तर शासकीय कार्यों के विस्तार के साथ साथ देश में शासकीय अधिकारियों और कर्मचारियों की संख्या नित्यप्रति बढ़ती जा रही है । उनसे यह आशा की जाती है कि शासन द्वारा शासकीय व्यवस्था के संचालन का कार्य वे सुचारू रूप से करते जाएँ और वे अपना काम बड़े परिश्रम, लगन और उत्तरदायित्व के साथ कर भी रहे हैं । ब्रिटिश प्रभुत्व के जमाने में युद्ध के दिनों में कार्य का जो विस्तार देश में हुआ था उससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण और विस्तृत कार्यक्षेत्र आज हमारे सामने है । देश के नव-निर्माण से संबंधित कार्यक्रम का यह क्षेत्र अभी और बढ़ता ही जायगा । संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि शासकीय अधिकारियों और कर्मचारियों का बहुत बड़ा वर्ग देश में तैयार हो गया है । शासन-यन्त्र के रूप में उसकी शैक्षणिक योग्यता, दक्षता आदि का जो लाभ देश को संगठित रूप में मिल रहा है उसके अतिरिक्त समाज के चिन्तनशील वर्ग के रूप में समाज को उन्नत बनाने में भी उसका सहयोग देश को प्राप्त होना चाहिए । उनकी प्रतिभा देश के कला-कौशल, संगीत, साहित्य, विज्ञान के पोषण और अभिवृद्धि में बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो सकती है । किन्तु उनके संबंध में जो बड़ी और आवश्यक बात मुझे कहनी है वह यह कि वे देश और समाज की स्थिति तथा उसकी परम्परा के अनुरूप अपने जीवन को सादगी और मर्यादा से पूर्ण बनाने का प्रयत्न वे अवश्य करें और एक ऐसा मानदंड निर्धारित करें जिसको छोटे बड़े सभी अपना सकते हों । इससे हमारे समाज में स्थिरता, दृढ़ता और आत्मविश्वास की वृद्धि होगी ।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि आज का प्रत्येक नागरिक यदि इस भावना से प्रेरित होकर कार्य करे कि वह इस महान भारतीय गणतन्त्र के विशाल परिवार का एक सदस्य है और देश में प्राप्त सुख-सुविधा के उपयोग का जो अधिकार उसे प्राप्त है उसके साथ ही देश की उन्नति मे उसे अपनी पूर्ण शक्ति लगा देनी है तो निस्सन्देह राष्ट्रपिता महात्मा गांधी तथा अन्यान्य नेताओं द्वारा देखे गये महान भारतीय राष्ट्र की कल्पना का स्वप्न सहज ही पूर्ण हो सकेगा ।

संपादकीय

जय स्वतंत्रते !

१५ अगस्त का पुण्य पर्व स्वतन्त्र भारत की ओजवाहिनियों में सदा नवजीवन का संचार करता रहेगा। देश की स्वतन्त्रता के यज्ञ में आत्महुति करने वाले पुण्यश्लोक देश-भक्तों की आलोककथा राष्ट्र के मन-मन को मानव स्वतन्त्रता की आस्था में नयी दृढ़ता देती रहेगी। इस प्रेरणा की प्राप्ति के प्रतीक के रूप में ही इस दिन की कल्पना हुई है कि सामूहिक रूप से केवल विगत के बलिदानों का श्रद्धा के साथ स्मरण ही नहीं, आवश्यकता पड़ने पर उनकी पुनरावृत्तियों की भी राष्ट्र की तैयारी रहे। और यह आवश्यकता पद-पद पर लक्षित है। जब तक साम्राज्यों की सीमाएँ खड़ी हैं, उपनिवेशवाद का दर्प बना है, साधन और शक्ति को अभाव और विवशता पर इठलाने में संकोच नहीं हुआ है, तब तक इस प्रकार के न जाने कितने बलिदान होना हैं. इस १५ अगस्त के पर्व की भास्वरता में न जाने कितने ज्योति-पिंडों का प्रकाश समाविष्ट होना है।

गोवा में

और इस १५ अगस्त के महत्त्व को राष्ट्र के प्रत्येक अंचल ने अनुभव किया। गोवा में—भारत की पावन सीमाओं में—निर्लज्जतापूर्वक गुर्राते पुर्तगाली हिंस्र पशु ने, उपनिवेशवाद के शव के नीचे सिसकती गोवा की भारतीय जनता की वेदना ने आजादी के मतवालों को निमन्त्रण दिया। वे चल दिये देश के कोने-कोने से गोवा की मुक्ति के संघर्ष में प्राणों के मूल्य पर जूझने—निहत्थे, शान्त अहिंसक सत्याग्रही। और पुर्तगालियों की बर्बरता ने नैतिकता का मान किया इन वीरों को गोली से भूनकर। सभ्य संसार सालाजार शासन के इस कृत्य से लज्जा का अनुभव कर रहा है, उसे धिक्कार रहा है और स्वतन्त्रता-प्रेमी विश्व हमारे साथ इन स्वातन्त्र्य वीरों को श्रद्धांजलि अर्पित कर रहा है इस कामना के साथ कि स्वतन्त्रता के लिए मरणान्त साधना का मार्ग दृष्टि से ओझल न हो और जब तक किसी वाद या मत के कारण गोवा क्या, एक भी मनुष्य नैतिक एवं भौतिक विकास के मार्ग में परवशता का अनुभव करे. सीमित विशिष्ट हित की दृष्टि से विवश किया जाए, तब तक मनुष्य के हृदय में धर्षण और उत्पीड़न के विरुद्ध जूझने की प्रेरणा बलवती रहे।

प्रधान मंत्री पंडित नेहरू ने गोवा के सम्बन्ध में पिछले दिनों घोषणा की थी

कि गोवा भारत का राजनीतिक, भौगोलिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से अविभाज्य अंग है। पुर्तगाल द्वारा उस पर अधिकार जमाए रखना भारतीय संप्रभुता में हस्तक्षेप करना है। पंडित नेहरू की इस घोषणा ने उत्तरोत्तर गहनतर हो रहे गोवा के मुक्ति आन्दोलन में संघर्षशील भारतीय जनतत्त्व को अपार बल दिया। जहाँ तक गोवा की पुर्तगाल के साम्राज्यवादी पंजे से मुक्ति का प्रश्न है, भारत के हर क्षेत्र की जनता दल और क्षेत्र की सीमाओं के ऊपर उठकर अमानुषिक पुर्तगाली क्रूरताओं को चुनौती देती हुई सत्याग्रहियों के दिन-प्रतिदिन गोवाभिमुख दलों में अहिंसा के अनुशासन में बँधी एक सेना के रूप में अग्रसर हो रही है। सम्पूर्ण भारत पर स्वतन्त्रता-सूर्य का प्रकाश फैल चुका है। पुर्तगाली शासन की बदली अधिक समय तक उसके उन्मुक्त प्रकाश को रोके नहीं रह सकती। योरोप की हठधर्मी जब एशिया की बाध्यता थी, उस युग का स्वप्न देखना अब उपहासास्पद है। पुर्तगाल के पास गोवा को अपने पंजे में दबोचे रखने के लिए कोई नैतिक आधार भी नहीं है। यहाँ के रोमन कैथोलिक ईसाइयों का अभिभावक बनकर भी वह पोप के गत अंक में उल्लिखित वक्तव्य के पश्चात् नहीं रह सकता जिसमें कहा गया है कि गोवा की समस्या धार्मिक न होकर शुद्ध राजनीतिक है। इधर अब उसके पास, वही, युग-युग से, सदा से पराभूत होता रहा दमन, उत्पीड़न और प्रलोभन का निस्तेज शस्त्र रह गया है, जिसका वह अप्रतिभ प्रयोग कर रहा है। उसके उद्घोषित राजनीतिक सुधार उसी प्रकार की पैंतरेबाजी थे, जिसका युग बीत गया, जिसकी चमक सर्व-प्रभुत्व-सम्पन्न स्वतन्त्रता का उपभोग करने वाली भारतीय जनता को आकर्षित नहीं कर सकती। गोवा और भारत की जनता अपनी स्वतन्त्रता का मूल्य समझती है और लोक-मानस के स्वतन्त्रता-प्राप्ति के दृढ़ संकल्प में वैकल्पिक परिणामों की आशंका नहीं होती। दमन, उत्पीड़न और गर्ह्य उपनिवेश-लिप्सा जन-शक्ति के आगे सदैव पराभूत होती रही है, आत्ममुक्ति के लिए संघर्षरत जनता सदा विजयिनी रही है और गोवा की समस्या की परिणति भी अन्यथा होनेवाली नहीं है।

गोवा के शासन ने सभ्यता की मान्य सीमाओं का उल्लंघन किया है, यह कहकर भारत सरकार ने पुर्तगाल से राजनीतिक सम्बन्ध तोड़े थे। अभी व्यापारिक सम्बन्धों का भी अन्त किया है। परन्तु परिस्थिति भीषणतर हुई है और वह सरकार के राष्ट्र की भावनाओं के अनुकूल किसी प्रभावशाली एवं निर्णायक पग की अपेक्षा करती है।

चिन्तन भी

गोवा मुक्ति के संघर्ष में जिन्हें सहानुभूति है, उनकी भावना का सभी सम्मान करेंगे। परन्तु सहानुभूति में सन्तुलन खो देना उचित नहीं है। बम्बई और कलकत्ता में हुई घटनाएँ किसी भी प्रकार गोवा की मुक्ति में सहायक नहीं हैं। गोवा में अहिंसक

लड़ाई हो रही है। बम्बई और कलकत्ता में कैसी भी नहीं हो रही है। अहिंसक शहीदों की स्मृति में उपद्रव और गोवा की मुक्ति की दृष्टि से भी भारत के नैतिक बल को आघात पहुँचाना हानिकारक है। पुर्तगालियों को एक कंकड़ भी बिना मारे उनकी गोली से मरने वाले वीरों के भक्त थोड़ा चिन्तन भी करें और उन्हीं के दिखाए पथ पर कम से कम घर बैठे ही चलें।

काश्मीर

गृह मन्त्री पं० गोविन्तवल्लभ पन्त ने पिछले दिनों काश्मीर की स्थिति के सम्बन्ध में घोषणा की है। उनने कहा है कि भारतीय काश्मीर के भारत-विलय सम्बन्धी मत को जानने की आवश्यकता अब नहीं रही है। अब मत जानना है पाकिस्तान द्वारा अपहृत काश्मीर में निवास करने वाली जनता का कि वह आक्रामक पाकिस्तान में समाना चाहती है अथवा अपने मूल राज्य की जनता के साथ भारतवर्ष का अंग बनना चाहती है। माननीय गृह मन्त्री की इस घोषणा में वह दृढ़ता है जिसकी काश्मीर के मामले में अत्यन्त आवश्यकता थी और जो भारत और काश्मीर के लोकमानस में कसमसा रही थी। भारत में सम्मिलित काश्मीर की संविधान सभा का निर्वाचन भारतविलय के प्रश्न पर हो चुका है और किसी बाह्य-हस्तक्षेप-सहित मत-प्रकाशन की आवश्यकता शेष नहीं रह गयी है। अब पाकिस्तान को इस भाग की चिन्ता छोड़ कर उसके द्वारा धर्षित काश्मीर की जनता को आत्मनिर्णय का अवसर देने की तत्परता दिखाना चाहिए।

इसी तारतम्य में बख्शी गुलाम मुहम्मद की सरकार से मतभेद रखने वालों को अपना भिन्न मत और विरोध उपस्थित करते हुए राष्ट्रीयता की सीमाओं का उल्लंघन करने से विरत होना चाहिए। इतिहास व्यक्तियों की प्रतीक्षा नहीं करता। व्यक्ति थक कर बैठ जाते हैं, पथभ्रष्ट हो जाते हैं और राष्ट्र के गौरवनिर्माण की कथा का प्रवाह आगे बढ़ जाता है। मिर्जा अफजल बेग की आवाज उसे पीछे को नहीं खींच सकती। तब के उनके साथी शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में भारतविलय के प्रश्न पर काश्मीर की जिस विधान सभा का निर्माण करने में श्री बेग सम्मिलित थे, आज उसकी अवैधता की उन्हीं के द्वारा कष्ट-कल्पना करना राष्ट्र के प्रति आस्था की सीमाओं का अतिक्रमण मात्र है। श्री बेग ने अपनी इस मान्यता की निष्पत्ति का यदि आकलन कर लिया है, अर्थात् वे जानते हैं कि काश्मीर की विधान सभा की अवैधता का अर्थ है जागीरदारी-जमींदारी-उन्मूलन की अवैधता, काश्मीर की सामन्तशाही की समाप्ति की अवैधता, तब अवश्य ही कहना पड़ेगा कि उनके मस्तिष्क में शैतान की उद्योगशाला अत्यधिक उत्पादनशक्ति के साथ क्रियाशील है और वे जन-जन

की सुरक्षा, समृद्धि और स्वतन्त्रता के मूल्य पर भी अपनी और अपने गुट की पदाधिकार की महत्वाकांक्षाएँ पूरी कर लेना चाहते हैं।

राष्ट्रलिपि की ओर

असम की प्रदेश कांग्रेस समिति की कार्यकारिणी ने मंतव्य किया है कि असमिया भाषा के लेखन के लिए वहाँ की प्रचलित लिपि के स्थान पर देवनागरी लिपि का व्यवहार किया जाय यह शुभ समाचार राष्ट्रीय चेतना ने प्रफुल्लताकारक रूप में प्राप्त किया है। भारतवर्ष की राजनीतिक एकता की संप्राप्ति का भारतीय मानस जिन कारणों से स्वागत करता है, जिन हेतुओं से उसकी रक्षा वह प्राणपण से करने को तत्पर है, उनमें भारत के अंग-अंग में समाई हमारी अविच्छिन्न सांस्कृतिक परंपरा प्रमुख है जो उसे पृथ्वी पर जो कुछ भी है, उससे अधिक महत्त्व देता है। इस परंपरा की एकता का लाभ अपरिचय के होते हुए पूरा नहीं मिल सकता। एक क्षेत्र की भावनाओं तक दूसरे क्षेत्र की पहुँच सुगम होना चाहिए। जहाँ हिन्दी राष्ट्रभाषा होने पर हम व्यवहार में समीपतर आएँगे, वहाँ विविध क्षेत्रों की भाषाओं के साहित्य के अवगाहन से उस प्रदेश की आत्मा का हमें साक्षात्कार होगा, एक प्रदेश की सांस्कृतिक समृद्धि दूसरे प्रदेश का उन्नयन करेगी। भिन्न-भाषा-भाषी प्रदेश के संस्कृति-वैभव के दर्पण साहित्य में गति प्राप्त करने के मार्ग में दो कठिनाइयाँ होती हैं, एक तो लिपि सीखने की और दूसरी भाषा सीखने की। संपूर्ण भारत की दृष्टि से लिपि सीखने की बाधा के निराकरण का नेतृत्व असम करने जा रहा है। मराठी पहले से ही देवनागरी में लिखी जाती है। गुजराती, बँगला, गुरुमुखी आदि लिपियाँ भी देवनागरी के समीप हैं। इन लिपियों के क्षेत्र भी दृढ़ पग से इस दिशा में अग्रसर हो सकते हैं। भारत की प्रमुख भाषाओं में, दो एक को छोड़कर, एक उद्गम होने से दूसरी भाषा जानने वालों के लिए सीखने में सौकर्य है ही। इस प्रकार हम सांस्कृतिक उत्थान के मार्ग पर समवेत प्रगति कर सकेंगे।

निन्दनीय

तुलसी जयन्ती के पुण्यपर्व पर प्रयाग के साहित्य सेवियों ने इस सन्त को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए एक सभा का आयोजन किया था। उसका विवरण सम्वादपत्रों में पढ़ कर चित्त ग्लानि से भर गया। इस प्रकार की घटना सांस्कृतिक दृष्टि से अपेक्षाकृत घटिया स्तर पर रहने वाले राजनीतिजीवियों द्वारा आचरित होती, तब इतने मनस्ताप का कारण नहीं था। किन्तु बात साहित्य-सेवियों की है जिनके द्वारा हमें—भारतीय लोक-समूह को—सारा विश्व जानता है और जिनने इस प्रसंग पर मनुष्य-हृदय के दुर्लभ छिछलेपन को फेन सा ऊपर ला दिया है। घटना इस प्रकार बताई जाती

है कि उक्त सभा का नेतृत्व करने के लिए श्रीमती महादेवी वर्मा का नाम प्रस्तावित हुआ और सर्व सम्मति से स्वीकृत हुआ। तत्पश्चात् महादेवी आसन ग्रहण करें, इसके पूर्व ही एक अन्य नाम एक साहित्य सेवी द्वारा सभापतित्व के लिए प्रस्तावित हुआ और प्रस्तावित महोदय आसन ग्रहण करने चले। सभा में अशान्ति होने पर ही प्रस्तावक महोदय ने अपना प्रस्ताव वापस लिया।

सरस्वती की आराधना के क्षेत्र में इस प्रकार की कुचेष्टाएँ होना अत्यन्त चिन्तनीय है, निन्दनीय है। इस प्रकार कें कुप्रयास जहाँ हमारे तथाकथित साहित्य-सृष्टाओं की दूषित और घृणित मनोवृत्ति के परिचायक है, वहाँ इनके कारण किसी भी साहित्य प्रेमी का सिर लज्जा से झुक जाता है।

राष्ट्रध्वज का सम्मान करें

बिहार से राष्ट्रध्वज के अपमान के जो समाचार मिले हैं, वे हमारे नये भारत के मस्तिष्क के असन्तुलन के द्योतक हैं। हमारे आपसी मतभेद, हमारा घटनाओं को लेकर उभरा हुआ रोष कितना भी गहरा क्यों न हो, परन्तु सामान्यतया-मान्य सीमाओं का अतिक्रमण किसी होनहारता का सूचक नहीं कहा जा सकता। राष्ट्रध्वज दूसरे देश का भी सम्माननीय ही होता है। भारतीय राष्ट्रध्वज किसी शासन का चिह्न न होकर अपने पीछे अनन्त बलिदानों की कथा लिये है और वह आज समूचे राष्ट्र की भावनाओं का प्रतीक है। जनतन्त्र में अपना विरोध—जनता का असन्तोष—व्यक्त करना स्वाभाविक है, वह राष्ट्र के जीवन की सूचना देता है। साधारण स्थिति में यह उद्धत जीवन समृद्ध रचना में अनूदित होता है, परन्तु सम्पूर्ण विश्व में भारत की उज्ज्वल परम्पराओं का प्रतिनिधित्व करने वाले राष्ट्रध्वज के प्रति असम्मान की यह भावना किधर जाएगी ? हमारे कुछ भी विश्वास हों, हमारा कोई भी वाद हो, हम किसी भी दल के प्रति आस्था रखें, हम में से प्रत्येक का यह कर्तव्य है कि हमारी भक्ति सबसे पहले राष्ट्रीय झण्डे के प्रति हो और हमारी कल्पनाओं, सिद्धान्तों और विश्वासों के भारत की रचना सम्भव हो एतदर्थ भी हम राष्ट्रध्वज का सम्मान करें।

अमिट घाव

कुछ हानियाँ हो जाती हैं और कालान्तर में उनकी क्षति भी पूर्ण हो जाती है। भारत के तीन सौ वर्ष के अंग्रेजी शासन के इतिहास में जो बहुविध हानि देश को उठानी पड़ी, उसका राजनीतिक उत्पीडन हुआ, देशभक्ति का निर्ममतापूर्वक दमन किया गया और अनन्त आर्थिक शोषण किया गया, उसकी मार्मिक चोट भी कुछ कालात्यय के कारण और कुछ देश के सामूहिक प्रयास के फलस्वरूप कदाचित भुलाई जा सकेगी। परन्तु इस काल में भारतवर्ष की राजनीतिक विवशता से अनुचित अवसर

प्राप्त करके अंग्रेज अधिकारियों, योरोपीय एवं अमरीकन व्यापारियों और यात्रियों ने देश की संस्कृति के उज्ज्वल इतिहास के अवशेषों का जो अपहरण किया है और जो इंग्लैण्ड एवं अमरीका के संग्रहालयों, पुस्तकालयों आदि में संग्रहीत हैं, उसका घाव बिना उनके पुनः भारत में आये भरा नहीं जा सकता। भारतीय जनता कोहनूर को भुला सकती है, उस पुंजीभूत महर्घता का स्थान कालान्तर में आनेवाली जन-जन की विकेन्द्रित समृद्धि ले सकती है, परन्तु भारतीय वाङ्मय की अलभ्य पांडुलिपियों का, भारतीय कला के प्रतिनिधि अवशेषों का अभाव किसी प्रकार पूर्ण नहीं हो सकता। भारतीय साहित्य की दस हजार पाण्डुलिपियाँ, जिनमें अनेक अनुपलब्ध हैं, आज इंग्लैण्ड के अनेक शासकीय और व्यक्तिगत संग्रहों में हमारी ऐतिहासिक विवशता की लज्जाजनक कहानी कह रही हैं। गुप्तकालीन मूर्तिकला के उत्कर्ष की गौरव कथा कहनेवाली विदिशा की गंगा की मूर्ति अमेरिका से अपने विवश नेत्र स्वतन्त्र भारत की ओर लगाये है, महाराज भोज परिहार के भारती भवन से अपहृत ग्यारहवीं शताब्दी के भारत की वाणीसाधना का मूर्त निदर्शन करने वाली वाग्देवी की मूर्ति ब्रिटिश म्यूजियम से हमारी राष्ट्रीय चेतना को प्रताड़ित कर रही है। तेरहवीं शताब्दी की उत्कृष्ट धातु-मूर्ति-कला की अद्वितीय प्रतिनिधि कृति नटराज की मूर्ति अमेरिका के वैभव के हाथ बिकी पड़ी है और भारतीय चित्रकला के विशाल उदीयमान अध्याय रागमाला-चित्रावली में अंकित जीवन की प्रेरणा देने वाले राग और रागनियों के चित्र बोस्टन संग्रहालय में हमारी विवशता पर अश्रुपात कर रहे हैं।

कुछ समय तक भारतीय मानस में एक प्रतीक्षा थी, हमारे शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आजाद की योरोप यात्रा के तारतम्य में इंग्लैण्ड में प्रवास कर रहे भारतीय सांस्कृतिक अवशेषों के भारत लौटने की आशा जाग्रत हुई थी। परन्तु मौलाना आजाद के इंग्लैण्ड पहुँचने के ठीक पूर्व, वहाँ के शासन द्वारा की गयी एक घोषणा ने वह स्वप्न भंग कर दिया और इन संग्रहों की वर्तमान स्थिति से उत्पन्न अपमानजनक अवस्था यथावत वेदनापूर्ण रह गयी है।

इंग्लैण्ड में रुकी हुई इस भारतीय सांस्कृतिक निधि के पाण्डुलिपियों के अंश का विवरण अपने एक लेख में प्रोफेसर फूलचन्द्र पाण्डेय एम० ए० ने बड़े मार्मिक शब्दों में देते हुए बताया है—

"लन्दन-स्थित संग्रहालयों को हम तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं—सरकारी संग्रहालय, शिक्षा-विभागीय संग्रहालय तथा व्यक्तिगत पुस्तकालय। सरकारी संग्रहालय के अन्तर्गत इंडिया आॅफिस पुस्तकालय, ब्रिटिश म्यूजियम, विक्टोरिया एवं अलबर्ट म्यूजियम का भारतीय विभाग आते हैं, जहाँ भारतीय हस्तलिखित पुस्तकालय, लन्दन का ही नहीं वरन् विश्व का सबसे बड़ा पुस्तकालय है, जिसमें लगभग ५००० हस्त-

लिखित पुस्तक हैं, जिनकी भाषा संस्कृत, पाली, अपभ्रंश, अर्द्धमागधी. तिब्बती, नेपाली, अरबी तथा फारसी है तथा जिनकी लिपियाँ भी ब्राह्मी, खरोष्ठी, शारदा लिपि तथा फारसी लिपि में से एक है। इंडिया आॅफिस पुस्तकालय में हिन्दी एवं संस्कृत की पुस्तकों की संख्या लगभग २००० के आसपास होगी। वस्तुतः संस्कृत की पुस्तकें अब ब्रिटिश म्यूजियम को दे दी गयी हैं, जिनमें आज भी लगभग ७० अनुपलब्ध पुस्तकों की हस्तलिखित प्रतियाँ सुरक्षित हैं, जिनमें वल्लभाचार्य का जीवन-चरित्र, लीलावती, वैद्य मनोत्सव, कोक मंजरी, कोकसार विधि, संगीत दर्पण, संगीत रत्नाकर, साहित्य प्रकाश, काव्य कल्पद्रुम, साहित्य सिद्धान्त, तत्व दर्शन, पाणिनि, महाव्याकरण, भरत का नाट्यशास्त्र, योग वाशिष्ठ, उपनिषद आदि पुस्तकें उल्लेखनीय हैं, जिनका सम्बन्ध दर्शन, धर्म, संगीत, वैद्यक, काव्यशास्त्र, व्याकरण तथा नाट्य शास्त्र से है।

"हिन्दी की पुस्तकों की संख्या लगभग ६००-७०० के आसपास होगी, जिनमें पृथ्वीराज रासो, हमीर रासो, बीसलदेव रासो, कबीर वचनावली, रामचन्द्रिका, कविप्रिया, बिहारी सतसई, सूरसागर के कुछ पद, हरिदास के पद आदि पोथियाँ उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त संस्कृत मूल ग्रंथों पर की गयी टीकाओं, भाषाओं एवं अनुवादों में रामायण, राम विनोद वचनिका, उपनिषद. छान्दोग्य उपनिषद, योग वाशिष्ठ, २३ उपनिषद संग्रह, आध्यात्म रामायण, शाहीनामा. राठौर वंशावली, सोमवंश की वंशावली, भागवत पुराण भाषा तथा लीलावती प्रमुख हैं। इनमें पृथ्वीराज रासो की कई पूर्ण तथा अपूर्ण प्रतियाँ हैं। इसी प्रकार रामचरित मानस की कई एक प्रतियाँ हैं। इसमें एक प्रति इस प्रकार की है जिसमें अब केवल २०-२२ पृष्ठ शेष रह गये हैं, जिसे राजापुर की प्रति कहा जाता है। एक प्रति के नीचे जैसा उल्लेख है, उसके अनुसार उसे सोरों अथवा काशी से सम्बन्धित बतलाया जाता है। सूरसागर के भी कुछ छिन्न-भिन्न पद संग्रहीत हैं, जिसका लिपिकाल लोग १७ वीं शताब्दी बतलाते हैं। इन्हीं के साथ भारतीय संग्रहालय में लगाये हुए कल्पसूत्र के पृष्ठों का भी उल्लेख किया जा सकता है, जिसकी लेखनपद्धति जैन स्कूल की लेखन प्रणाली है। जैन स्कूल की लेखनप्रणाली की विशेषता यही है कि किसी भी कथन का विश्लेषण चित्रों के माध्यम से किया जाता है। इन पुस्तकों के अतिरिक्त एक विशेष पुस्तक की हस्तलिखित प्रति का उल्लेख करना आवश्यक है, जिसे लार्ड कर्जन ने नेपाल राज्य पुस्तकालय की कुछ अन्य पुस्तकों के साथ इंग्लैंड भेज दिया था। वह पुस्तक है "वंशचित्रलक्षण।" यह पुस्तक मुझे देखने को नही मिल सकी, किसी खोज के विद्यार्थी द्वारा पुस्तकालय से उधार ली गयी थी।

"उपर्युक्त पुस्तकालयों के अतिरिक्त इसी वर्ग में आने वाला एक और संग्रहालय है—रायल एशियाटिक सोसायटी। इस सोसायटी के सक्रिय सहयोग की प्रशंसा करना

आवश्यक है; क्योंकि शोध-कार्य के साथ-साथ प्रकाशन तथा सम्पादन भी इसके द्वारा किया गया है।

"सामूहिक एवं सरकारी संग्रहालयों के अतिरिक्त दूसरे वर्ग के संग्रह शिक्षा संस्थाओं द्वारा किये गये हैं, जिनमें लन्दन, ऑक्सफर्ड तथा कैम्ब्रिज ओरियण्टल विभागों के पुस्तकालयों की गणना की जा सकती है। ऐसे संग्रहों में अधिकांशतः साहित्य एवं इतिहास सम्बन्धी उन पुस्तकों की अतिरिक्त प्रतियाँ हैं जो या तो इंडिया ऑफिस पुस्तकालय या ब्रिटिश म्यूजियम में सुरक्षित हैं। (ब्रिटिश म्यूजियम में इतिहास सम्बन्धी शिलालेख एवं ताम्रपत्र भी सुरक्षित हैं।) मेडिकल कॉलेज में भी वैद्यक की कुछ पुरानी प्रतियाँ मिलती है, जिनके विषय मे अनुमान लगाया जाता है कि ये प्रतियाँ १२ वीं शताब्दी के लगभग की होंगी।

"तीसरे प्रकार के संग्रह वे हैं जो व्यक्तिगत रूप में किये गये हैं। इनमें सबसे बड़ा संग्रह एक डॉक्टर परिवार का है, जिसमें तीन चार सौ वैद्यक शास्त्र सम्बन्धी पुस्तकें होंगीं और जिन्हें देखने का सौभाग्य डॉक्टर राघवन (मद्रास विश्वविद्यालय) की सूचना से मिल गया था। इन्हीं में निघंटु तथा रोगनिदान नामक दो ऐसी पोथियाँ देखने को मिलीं, जो सम्भवतः ८ वीं शताब्दी के आसपास लिखी गयी होंगी।

"इसी प्रकार पूरे लन्दन तथा उसके आसपास के शहरों में, सामूहिक तथा व्यक्तिगत रूप में, ये भारतीय निधियाँ लगभग १०,००० की संख्या में बिलख रही है। हतभाग्य भारतीय को अभी भी अपने पैरों तले अंधेरा दिखाई दे रहा है। काश, इन पुस्तकों के धिक्कार भरे स्वर भारत के आने वाले सतर्क साहित्यकारों के कानों तक पहुँच पाते और उन्हें इनके उद्धार के लिए क्रियाशील बना पाते।"

क्या हम विश्वास करें कि राजनीतिक सद्भावनाओं के आदान-प्रदान की राजनीतिक नेताओं को तुष्ट करने वाली अन्तर्राष्ट्रीय विमर्श की बड़ी-बड़ी बातों के तारतम्य में देश की जनता के इतिहास के इन अवशेषों के प्रश्न को मन्दस्वर नहीं कर दिया जाएगा? हमारी सद्भावना की जो राष्ट्र आज अपेक्षा करते हैं, क्या उन्हें दृढ़ता-पूर्वक यह बताया जा सकेगा कि इन अपहरणों का प्रत्यर्पण उनकी ओर से इस सद्भावना का पहला संकेत होना चाहिए?

अन्तक का अंत

अधिक समय से राजनियम की सीमाओं के बाहर अपनी समाज-विरोधी अंतक-सी क्रूर गतिविधियों द्वारा मध्यभारत, दक्षिण-पश्चिम उत्तर प्रदेश, राजस्थान और विन्ध्यप्रदेश की शान्तिप्रिय जनता को आतंकित रखने वाले डाकुओं के दल के नेता मानसिंह के हाल ही में पुलिस द्वारा मारे जाने का शुभ संवाद मिला है। उसके साथ

उसका कुख्यात पुत्र सूबेदारसिंह भी मारा गया है। यह घटना इन क्षेत्रों के निवासियों को भय और असुरक्षा के एक लम्बे काल के पश्चात सुख की सांस लेने का अवसर देगी। राज्यपुलिस की इस तत्परता और प्रतीक्षित सफलता के लिए माननीय मुख्यमंत्री श्री तख्तमल जैन, माननीय गृहमंत्री श्री नरसिंहराव दीक्षित, पुलिस इंस्पेक्टर जनरल श्री गोपालसहाय और इनके सहायक श्री पुत्तूसिंह अपने सहयोगियों के साथ जनता के धन्यवाद और बधाई के अधिकारी हैं। इस मुठभेड़ में आरक्षी दल के कुछ वीरों को अपने प्राणों की बलि देनी पड़ी है। जनरक्षा की प्राप्ति के लिए अपने प्राणों का मूल्य चुकाने वाले इन वीरों के प्रति कृतज्ञ नागरिकों की शत-शत श्रद्धांजलियाँ अर्पित हैं। इस विजय से इन आतंकों से प्रभावित राज्यों की जनरक्षा को निरापद बनाने के प्रयास में सतत संघर्षरत आरक्षी दलों को सुख की साँस लेने का अवसर मिलेगा। इनके दीर्घकालीन प्रयासों की पूर्ति पर सभी को हर्ष है।

पृथ्वी-पुत्र संगठित हों

गत वसन्त ऋतु में केन्द्रीय कृषि मंत्री श्री देशमुख के प्रोत्साहन से तथा उनके मार्ग निर्देश में समस्त भारत के किसानों का एक सम्मेलन बुलाया गया था। सारे देश के सभी वर्गों के कृषक उक्त सम्मेलन में एकत्र हुए थे तथा भारत-व्यापी आधार पर एक अराजनीतिक संगठन करने का उनने संकल्प किया था। उस संगठन को देश के किसानों के आर्थिक हितों के संरक्षण तथा परस्पर विचार एवं विमर्श के ध्येय को लेकर बनाने का निश्चय हुआ था। किंतु संयोग से अथवा प्रयासपूर्वक उस योजना को उतना प्रकाशन प्राप्त नहीं हुआ जितना उसका महत्व था। उसके पश्चात् भी उसकी प्रगति के सम्बन्ध में अन्धकार ही है।

आज के युग में असंगठित रूप से किये गये प्रयासों की कार्य-कारिता सम्भव नहीं है। कृषि जैसे मूलभूत उद्योग के कर्ताधर्ता अन्धकार में एकाकी प्रयास करें यह देश की आर्थिक उन्नति में बड़ी बाधा है। यह अत्यन्त आवश्यक है कि कृषि सम्बन्धी जानकारी का संचय और विकिरण, आदान-प्रदान अखिल भारतीय विस्तार में हो। ऊपर उल्लिखित योजना आज की आर्थिक अस्थिरता की स्थिति में किसान के जीवन की निश्चय ही अनिवार्य आवश्यकता है। यह आवश्यक है कि राज्य सरकारें तथा देश के पत्रकार इस दिशा में किसानों की सहानुभूति जाग्रत करके इस योजना को क्रियान्वित कराने में सहयोग दें।

विद्यामंदिर-प्रकाशन, ग्वालियर

के

तीन अभिनव प्रकाशन—

वे अनुपम ग्रंथ हैं—

हमारे पड़ौसी देश—

लेखक—स्वर्गीय प्रो० रंजन

प्रस्तावना लेखक—डॉ० वासुदेवशरण

उत्तर प्रदेश की पंचायत पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत।

प्रसिद्ध देश भक्त विद्वान तथा घुमक्कड़ स्व० प्रो० श्री रघुनाथ सिंह रंजन ने इस में अपनी हिन्दचीन, स्याम आदि की यात्राओं का सुन्दर एवं सजीव वर्णन किया है। इसे पढ़ते समय आप अपने आपको भूल वर्णित देशों में ही पहुँच जाऐंगे। उपन्यास की भाँति रोचक तथा भूगोल एवं इतिहास की भाँति शिक्षाप्रद। अनेक चित्र तथा कला पूर्ण तिरंगे सजिल्द आवरण सहित मूल्य २॥)

लक्ष्यहीन—

भूमिका लेखिका—महादेवी वर्मा

लेखिका—कुमारी उर्मिला बनर्जी

हिन्दी की सफल कहानी लेखिका कुमारी बनर्जी की ७ सुन्दर हृदयग्राही तथा मर्मस्पर्शी कहानियों का इस संग्रह में संकलन है। हजारों प्रतियाँ हाथों-हाथ बिक चुकी है। आज ही मगाएँ। मूल्य १)

काश्मीर की घाटियों में—

लेखक—श्री लक्ष्मीनारायण अग्रवाल

मध्यभारत शासन द्वारा पुरस्कृत एवं प्रोत्साहित

काश्मीर पर निर्मम पाकिस्तानी आक्रमण, बेकारी की समस्या आदि आज के राष्ट्रीय प्रत्यांघातों का सजीव वर्णन लिये हुए ५ एकांकी नाटकों का संग्रह। इसका प्रत्येक एकांकी सफलता पूर्वक अभिनीत किया जाकर सहस्त्रशः दर्शकों की स्मृति पर स्थायी छाप छोड़ गया है। मूल्य २)

अपने पुस्तकालय के लिये आज ही मंगाकर उसे समृद्ध करिये।

तीनों पुस्तकें एक साथ मँगाने पर डाक व्यय नहीं लिया जावेगा।

अपना ऑर्डर आज ही दें—

व्यवस्थापक
विद्यामन्दिर प्रकाशन
सराफा, ग्वालियर।

दीपावली

के पुनीत अवसर पर

'नया समाज'

की

नई भेंट

● कहानी अंक ●

'नया समाज' के विशेषांकों की हिन्दी-संसार में अब तक इसलिए धाक नहीं रही है कि वे बड़े भारी भरकम और तड़क-भड़क वाले होते हैं; बल्कि इसलिए कि वे सुरुचिपूर्ण, उद्देश्यपूर्ण और शिक्षापूर्ण होते हैं। इसके नवनिर्माण-अंक, संस्कृति-अंक, स्वास्थ्य-अंक, जनतंत्र-अंक, परिवार-नियोजन-अंक, साहित्यांक आदि को जनता ने इतना पसन्द किया कि आज तक भी उनकी माँग बराबर बनी हुई है। हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि इसका अगला विशेषांक

● कहानी अंक ●

इसी परम्परा की रक्षा करने वाला होगा। इसमें देश-विदेश की चुनी हुई सुरुचिपूर्ण और उद्देश्यपरक कहानियाँ रहेंगी, जैसी आजकल के पत्र-पत्रिकाओं में प्रायः कम ही सुलभ होती हैं।

आप यदि ग्राहक नहीं बने हैं, तो आज ही ८) भेजकर ग्राहक बन जायँ।
अपनी प्रति पहले से सुरक्षित करवा लें।

व्यवस्थापक,
'नया समाज'
३३, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता-१

पुस्तकालयों तथा अध्ययन कर्त्ताओं के लिए अनिवार्य—

भारतीय सांस्कृतिक इतिहास का महान् ग्रंथ

जिसकी छपते ही सैकड़ों प्रतियाँ बिक गईं—

भारत की मूर्तिकला

★

लेखक

श्री हरिहरनिवास द्विवेदी

प्राग् ऐतिहासिक काल से वर्तमान काल तक भारतीय मूर्तिकला के विकास का अत्यन्त प्रामाणिक साथ ही सरल और हृदयग्राही शैली में लिखा गया इतिहास। हिन्दी के लिए यह ग्रन्थ अपूर्व देन है।

अत्यन्त सुन्दर छपाई, मनोहर जिल्द, १०० से अधिक आर्टपेपर पर छपे चित्र।

मूल्य १०) रुपया। डाक व्यय पृथक्।

आज ही ऑर्डर दें

प्रबन्धक

विद्या मंदिर प्रकाशन, सराफा, ग्वालियर

पंचायत—सन्देश

[बिहार राज्य पंचायत परिषद् द्वारा संचालित मासिक पत्र]

जिसके प्रत्येक अंक में

पंचायत सम्बन्धी उत्कृष्ट मौलिक कई रचनाओं के साथ-साथ कहानी, कविता एकांकी, निबन्ध तथा अनेक स्थायी स्तम्भों के अन्तर्गत महत्त्वपूर्ण तथा उपादेय सामग्रियाँ अनिवार्य रूप से प्रकाशित की जाती हैं। पंचायतों के लिए विशेष रूप से संग्रहणीय।

चन्दा

वार्षिक—साढ़े चार रुपये ● एक अंक का—छः आने

प्रधान सम्पादक
पं० विनोदानन्द झा

सम्पादक
परमानन्द दोषी

कार्यालयः—
पंचायत-सन्देश
पटना लॉ टाइम्स विल्डिंग्स. कदमकुआँ, पटना-३

स्मृतिदायक ❧ केशवर्धक ❧ सुगन्धयुक्त

दिनारा
ब्राह्मी आँवला तैल

DINARA BRAHMI ANWLA HAIROIL

JUDICIOUSLY MEDICATED HAIR & BRAIN TONIC WITH De Luxe PERFUME

तिल तैल
भृंगराज
आंवला
ब्राह्मी
अगर
चंदन
कपूर
इलायची
उशीर
केशर
जावत्री
पुष्करमूल
आदि से निर्मित

आमलकीब्राह्मीभृंगपत्रकागुरुचन्दनैः ।
एलाशैलेयकर्पूरोशीरजातीसुमादिभिः ॥

विधिनापाचयेत्तैलं शटीपुष्करकेशरैः ।
दिव्यगंधंहितंमेध्यंशान्तिदंकेशवर्धनम् ॥

दिनारा आरोग्य भवन, ग्वालियर, म. भा.

DINARA AROGYA BHAVAN, GWALIOR, M. B.

सर्वत्र मिलता है

२० औंस शीशी ३ रु० ९ आ० ५ औंस १ रु० १ आ०
१० औंस २ रु० १ आ० ३॥ औंस ५ आ० ६ पा०

से अधिक न दें

डाक से आपके घर तक भेजने की व्यवस्था।

तीन पैकिंगों पर डाक खर्च माफ।

दि गिर्द डिस्ट्रिक्ट को-ऑपरेटिव्ह बैंक लि० लश्कर

स्थापित सन् १९१८.

शाखायें—डबरा, भांडेर, उपशाखायें—मुरार, भितरवार,

१. अधिकृत पूंजी	२,००,००० रुपया
२. स्वीकृत पूंजी	१,४०,००० रुपया
३. रक्षित कोष	७४,४०० रुपया
४. अन्य कोष	१,१०,९०० रुपया

५. फिक्स्ड करेन्ट तथा सेविंग अकाउन्ट खाते खोले जाते हैं। डिपाजिट्स पर सूद दर निम्न प्रकार है। एक वर्ष सें अधिक की फिक्स्ड डिपाजिट पर छै मासिक सूद दिया जाता है।

फिक्स्ड		
६ माह	२।।।) प्रतिशत	वार्षिक
१ वर्ष	३) प्रतिशत	,,
२ वर्ष	३।) प्रतिशत	,,
३ वर्ष	३।।) प्रतिशत	,,
सेविंग	२।।) प्रतिशत	,,

६. त्रय-वर्षीय नगद पत्र ९) रु० में १०) रु० का मिलता है।

७. बैंक बहुत मामूली कमीशन पर अपनी शाखाओं पर ड्राफ्ट इश्यू करता है।

८. यह बैंक अनियमित जोखमदारी की ग्रामीण सहकारी समितियों में रुपया इन्व्हेस्ट करता है। इसलिए इन्व्हेस्टमेन्ट सुरक्षित व बेखतरे है। बैंक के अकाउन्ट्स का हर साल शासन से एप्रूव्हड आडीटर्स द्वारा आडिट होता है।

कृपया बैंक से सम्बन्ध स्थापित कीजिये।

रामनाथ शर्मा

रामकृष्ण दीक्षित
व्हाइस चैयरमैन

× हिन्दी साहित्य में युगान्तर—
× भारतीय जन-जीवन में नई दिशा—
× काम सम्बन्धी सम्वाद एवम् साहित्य—
× काम तथा मनोविज्ञान सम्बन्धी खोज—

एक प्रति ।=) **❀ मस्ती ❀** वार्षिक ४)

सम्पादक—नरेन्द्र धीर

—यदि आप ग्राहक नहीं बने हैं तो आज ही ४) भेज कर वार्षिक ग्राहक बनें।
—यदि आपने विज्ञापन इसमें नहीं दिया है तो आज ही विज्ञापन भेजदें।
—यदि आपने एजेन्सी नहीं ली है, तो आज ही एजेन्सी लेलें।

आज ही लिखिए—व्यवस्थापक "मस्ती" खन्ना (पू० पंजाब)

रूस, अमेरिका, चीन, चेकोस्लोवाकिया तथा पूर्वीय एशियायी देशों तक अपना व्यापार, देश तथा विदेशों तक फैलाने के लिये,

भारती में

विज्ञापन दीजिये।

दरों के लिये आज ही लिखें,

व्यवस्थापक,
'भारती'

जिस साहित्य का जीवन से सम्बन्ध नहीं, वह निरर्थक है। जो साहित्य मानव-जाति की सेवा की प्रेरणा नहीं देता, वह निष्प्रयोजनीय है। और

जो साहित्य बुद्धि-भेद उत्पन्न करता है, वह अनिष्टकारी है।

जीवन साहित्य

में जीवन, मानव-जाति की सेवा की प्रेरणा और एकनिष्ट बुद्धि से अपने मार्ग पर चलने का बल मिलेगा।

एक प्रति अवश्य देखने की कृपा कीजिये।

वार्षिक मूल्य ४) एक प्रति ।=)

सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली।

उत्तर प्रदेश शासन द्वारा पुरस्कृत—

मध्यभारत शासन द्वारा शिक्षा संस्थाओं को स्वीकृत—

पुरातात्विक शोध का रोचक ग्रन्थ

त्रिपुरी

लेखक—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी
भारत के तीन प्राचीन वैभवशाली नगरों का इतिहास—

विदिशा—जो अत्यन्त प्राचीन काल से भारत का सांस्कृतिक केन्द्र रही है—

पद्मावती—जहाँ नाग, गुप्त और पूर्व मध्यकालीन प्रतापी राजवंशों ने साहित्य एवं कला की उपासना की—

बाघ–जहाँ की मूर्त्तिकला और चित्रकला भारत की श्रेष्ठतम कृतियों में है—

की हृदयग्राही गाथा की रोचक शोध—

प्राचीन साहित्य, पुराणों, शिलालेखों तथा अवशेषों पर से लिखा गया वर्णन।
सुन्दर जिल्द, अनेक चित्र। मूल्य २)

कुछ सम्मतियाँ—

सामग्री अत्यन्त श्रेष्ठ तथा शैली हृदयग्राहक है—

—श्री व्ही० पी० अग्निहोत्री
भारत शासन के अण्डर सेक्रेटरी,
शिक्षा विभाग

यह हिन्दी साहित्य और इतिहास के वैभव की दिशा है—

—डॉ० रामकुमार वर्मा

इतिहास के विद्यार्थियों के लिये यह पुस्तक बड़े काम की है—

—"नई धारा"

विद्या मंदिर प्रकाशन, सराफा, ग्वालियर

दक्षिण-भारती

•(दक्षिण-भारत की सचित्र मासिक पत्रिका)

आप अभी तक इसके ग्राहक न बने हों तो शीघ्र ही ग्राहक बनें। इसे कल पर छोड़ना एक भूल होगी।

वार्षिक चन्दा ६) प्रति अंक ॥)

दक्षिण-भारती कार्यालय
अफजलगंज, हैदराबाद (दक्षिण)

तार : हिन्दी फ़ोन नं० ५४५०

अजन्ता

: मासिक :

प्रकाशक : हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद [दक्षिण]

मूल्य : ६-०-० भा. मु. वार्षिक

किसी भी मास से ग्राहक बना जा सकता है।

कुछ विशेषताएँ

१. उच्च कोटि का साहित्य
२. सुन्दर और स्वच्छ छपाई
३. कलापूर्ण चित्र

संपादक
श्री वंशीधर विद्यालंकार
श्री श्रीराम शर्मा

कुछ सम्मतियाँ

१. "अजन्ता का अपना व्यक्तित्व है"—श्री बनारसीदास चतुर्वेदी
२. "अजन्ता सुंदर और स्वच्छ पत्रिका है"—श्री दिनकर जी
३. "अजन्ता साहित्य का नया कल्पवृक्ष है"—श्री वासुदेवशरण अग्रवाल
४. "अजन्ता हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिकाओं में से एक है।"
श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी

'नई दिशा'

[त्रैमासिक साहित्य संकलन]

युगान्तरकारी साहित्य के नये चरण !

संपादक

श्रीकान्त वर्मा, रामकृष्ण श्रीवास्तव

सह-संपादक

राजेन्द्र गुप्त

सलाहकार—गजानंन माधव मुक्तिबोध, प्रभाकर माचवे, नरेश मेहता।

नये साहित्य को स्वस्थ दृष्टिकोण प्रदान करने वाली 'नई दिशा' के खुले द्वार, नई प्रतिभाओं का स्वागत करेंगे।

प्रथम अंक मई के द्वितीय सप्ताह में प्रकाशित होगा।

वार्षिक शुल्क ४) एक प्रति १)

पृष्ठ संख्या १००

'नई दिशा' कार्यालय, विलासपुर (मध्यप्रदेश)

तार—हिन्दी फोन नं० ४८०९

हिन्दी-वाणी

: मासिक :

प्रकाशक—मैसूर हिन्दी साहित्य परिषद, फर्स्ट मेन रोड, चामराजपेट, बैंगलोर-२

मूल्य—३-०-० वार्षिक

१. उच्चकोटि का साहित्य २. उच्चकोटि का कन्नड़ साहित्य ३. सुन्दर तथा स्वच्छ छपाई।

संपादक—पी० आर० श्रीनिवास शास्त्री

आप शीघ्र ही ग्राहक बनिये। कर्नाटक की एक मात्र हिन्दी मासिक पत्रिका।

कल्पना

साहित्य, संस्कृति और कला की मासिक-पत्रिका

जिसने

हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता का एक नया प्रतिमान स्थापित किया है।

कृतियाँ, निबन्ध, कविता, कहानी, एकांकी स्तंभ, संपादकीय, पाठकों के पत्र, समालोचना तथा पुस्तक-परिचय, साहित्य-धारा।

पृष्ठ संख्या १००

वार्षिक शुल्क १२ रु०

एक प्रति १ रु०

'कल्पना' कार्यालय,

८३१, बेगम बाजार, हैदराबाद-द०

'देशबन्धु' मासिक का

कहानी-विशेषांक

प्रकाशन—मास अक्टूबर, १९५५

विशेषांक की एक प्रति का मूल्य बारह आना और पृष्ठ सं० १२५

(३० अक्टूबर सन ५५ तक) ३) रु० भेजकर ग्राहक

बनने वालों को यह विशेषांक मुफ्त मिलेगा !

इसके प्रधान सम्पादक होंगे—

हिन्दी-जगत के माने हुए विद्वान एवं प्रसिद्ध लेखक

श्रीकृष्णदत्त वाजपेयी एम० ए०, विद्यालंकार

आज ही ग्राहक बनिये अथवा ।।।) भेजकर विशेषांक की प्रति सुरक्षित कराइये।

एजेन्ट अपनी प्रतियाँ तथा विज्ञापनदाता अपना स्थान

शीघ्र ही सुरक्षित करायें।

'देशबन्धु' कार्यालय, मथुरा

सभी कहते हैं इतना अनोखा पत्र नहीं देखा

'जिन्दगी और व्यापार'

(जीवनोपयोगी मासिक पत्र)

पो० जमालपुर : बिहार (भारत)

शुभकामनाएं

जीवन को शक्ति प्रदान करता है—अनोखा:—"आज" विचार नए, योजनायें नई, शैली अनूठी—प्रो० **रामचरण महेन्द्र**, तथ्यवादी दृष्टिकोण—डॉ० **बच्चन** एम० ए०, पी० एच० डी०, हिन्दी-संसार को अच्छी चीज मिल रही है—श्री **रामवृक्ष बेनीपुरी**, मनोवैज्ञानिक एवं सत्य भावों से पूर्ण—श्री **जयगोपाल मिश्र** एम० ए०, प्रवृत्ति बड़प्पन की दिशा में है—श्री **वृन्दावनलाल वर्मा**, अपने ढंग का इतना अनोखा पत्र देखा नहीं—श्री **केशवचन्द्र वर्मा**, जीवनोपयोगी स्वस्थ दृष्टिकोण—श्री **अनन्तगोपाल शेवड़े**, सुपाच्य, सुपाठ्य, सुरुचिपूर्ण—श्री **मोरेश्वरराम पल्लीवार**, रोचक, मनोरंजक—'अजन्ता' हैदराबाद।

सम्पादक—

श्री राजेन्द्रप्रसाद

सहसम्पादक—

श्री देवप्रकाश गुप्त 'अंगार'

(द्विवार्षिक शुल्क २।।) वार्षिक १।।) एक प्रति =) पृष्ठ संख्या १६)

आज ही मनीआॅर्डर भेजे,

—:नवीन योजना 'शक्ति विशेषांक' अक्टूबर में ही:—

वार्षिक
६)

राष्ट्रभारती

एक प्रति
।।=)

—:सम्पादकः—

मोहनलाल भट्ट
हृषीकेश शर्मा

(१) यह हिन्दी पत्रिकाओं में सबसे अधिक सस्ती, एक सुन्दर साहित्यिक और सांस्कृतिक मासिक पत्रिका है। (२) इस पत्रिका को राष्ट्र-भाषा हिन्दी के तथा लगभग सभी भारतीय साहित्य और संस्कृति को बल व प्रेरणा पहुंचाने वाले प्रान्तीय भाषाओं के श्रेष्ठ लेख, विद्वान साहित्यकारों का सहयोग प्राप्त है। (३) इसमें ज्ञानपोषक और मनोरंजक श्रेष्ठ लेख, कविताएँ, कहानियाँ, एकांकी नाटक, रेखाचित्र और शब्दचित्र रहते हैं। (४) बंगला, मराठी, गुजराती आदि भारतीय भाषाओं के सुन्दर हिन्दी अनुवाद भी इसमें रहते हैं। (५) प्रतिमास पहली तारीख को प्रकाशित होती है।

ग्राहक बना देने वालों को विशेष सुविधा। एजेंसी तथा विज्ञापन दर के लिए लिखिये।

"राष्ट्रभारती" हिन्दीनगर, वर्धा [मध्य-प्रदेश]

पश्चिमोत्तर भारत की प्रमुख हिन्दी मासिक पत्रिका

विश्व ज्योति

—:सम्पादकः—

श्री विश्वबन्धु शास्त्री, श्री सन्तराम, बी ए०

संचालक—श्री विश्वेश्वरानन्द

विश्व-हित की साधना के लिए—

(क) शुद्ध सांस्कृतिक साहित्य का सृजन,
(ख) प्राचीन और नवीन ज्ञान-विज्ञान का समन्वय,
(ग) बौद्धिक क्रान्ति और नई चेतना का जागरण,
(घ) अन्यायपूर्ण सामाजिक विषमताओं का दूरीकरण,
(ङ) सभी प्रकार के विचारों का निष्पक्ष अध्ययन और आलोचन।

वार्षिक चन्दा: ८) रुपये

१०) रु० वार्षिक चन्दा देकर विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान के सदस्य बन जाने पर भेंट के रूप में मुफ्त।

पत्र-व्यवहार का पता:—
व्यवस्थापक 'विश्वज्योति', साधु आश्रम
होश्यारपुर (पंजाब)

याद रखिए पत्रिका के लिए—
१. एक निश्चित उद्देश्य चाहिए !
२. उसका अपना व्यक्तित्व चाहिए !

नई धारा

ऐसी ही एक मासिक पत्रिका है जो अशोक प्रेस, पटना से प्रकाशित हो रही है। कहानियाँ, कविताएँ, शब्द चित्र, संस्मरण, नाटक, आलोचना, निबन्ध।

हिन्दी में नई धारा के प्रतीक श्री रामवृक्ष बेनीपुरी इसका सम्पादन कर रहे हैं।

प्रादेशिक सरकारों के शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत।

जिसकी सहायता के लिए साहित्य महारथियों का सम्पादक मंडल संगठित किया गया है।

डिमाई अठपेजी के १०० पृष्ठ, पक्की जिल्द, आकर्षक कवर, सचित्र, सुसज्जित।

एक अंक १ रु० **वार्षिक १० रु०**

प्रबन्धक नई धारा, अशोक प्रेस, पटना ६

उच्चकोटि की साहित्यिक एवं शिक्षाप्रद रचनाओं के साथ ही साथ राष्ट्रद्रोही फिल्मों के विरुद्ध खुला युद्ध छेड़ने वाला भारत का प्रथम पत्र

सचित्र मासिक

● ऊषा ●

मध्यभारत एवं मध्यप्रदेश राज्य सरकार के
शिक्षा विभागों द्वारा स्वीकृत।

- जिसके सुरुचिपूर्ण साहित्य की सभी प्रशंसा करते हैं।
- कालेज, लायब्रेरियों तथा सार्वजनिक बाचनालयों में जिसे पढ़ने के लिए लोग झूम जाते हैं।
- स्वस्थ मनोरंजन के साथ-साथ चरित्र निर्माण के लिए प्रोत्साहन देना ही जिसका मुख्य उद्देश्य है।

वार्षिक सदस्यता शुल्क ४), एक प्रति ।≈)
पूरे विवरण के लिए सम्पर्क कीजिए।
व्यवस्थापक—भोज प्रकाशन, धार [म० भा०]

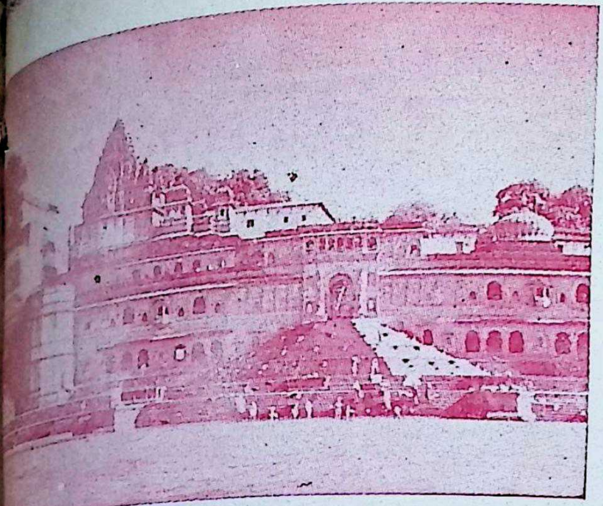

— महेश्वर का घाट एवं छत्री —

'नगर सुन्दर एक महेश्वर'

— कै. राजकवि भा. रा. तांबे

कै. राजकवि भा. रा० तांबे द्वारा वर्णित देवी अहिल्याबाई का

महेश्वर

भ्रमण के लिये सुन्दर स्थान है

उसी प्रकार

महेश्वर की

लुगड़ी

साड़ियां

एवं

खन

का भारतीय महिलाओं के जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है

मंदिर में दर्शनीय स्थापत्य-कला का एक सुन्दर नमूना

गृह उद्योगों

को

प्रोत्साहन

दीजिये

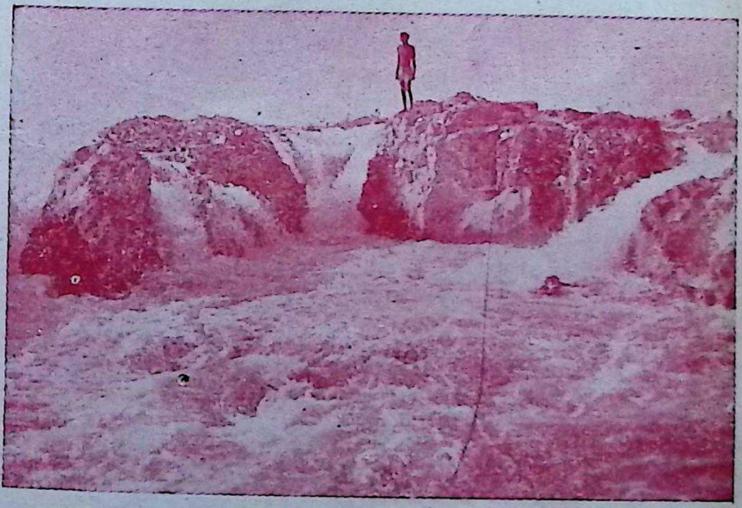

— सहस्रधारा (नर्मदा) —

— सूचना विभाग, मध्यभारत शासन द्वारा प्रकाशित —

सेहत और ताकत का नुसखा

जे० बी० मंघाराम के

इतने स्वादिष्ट
जे.बी.मंघाराम के नरिशिंग बिस्कुट
स्वादिष्ट हैं इसलिये हमें अच्छे लगते
खस्ता एवं इसके अलावा ये हमें ताकतवर एवं
स्वास्थ बनाते हैं।
J. B. MANGHARAM'S
NOURISHING
Biscuits
NOURISHING

नरिशिंग

बिस्कुट

विटामिनों से पूर्ण

Agents:--**PRITAM STORES**

JIVAJI CHOWK, PATANKAR BAZAR, SUBHASH MARKET

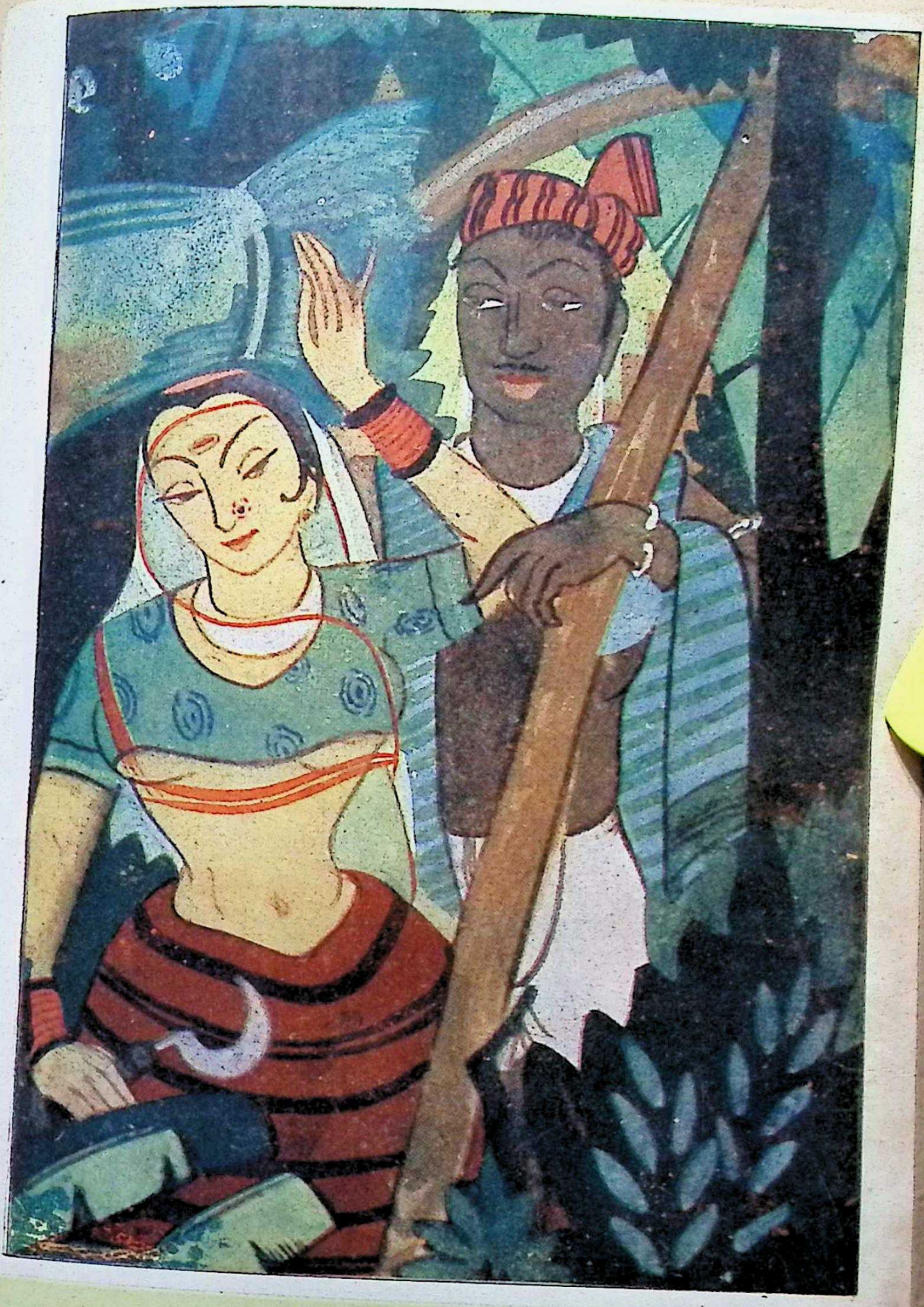

ारती

सितम्बर १९५५

त्य, संस्कृति एवं कला की मासिक पत्रिका

सन् १९५५ के हिन्दी के नवरत्न

● हमारे नये प्रकाशन ●

[प्रेस में]

रंगीन डोरे (कहानीं संग्रह)—लेखक श्री देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त', सम्पादक सरस्वती।

हमारी मंगल यात्रा—हिन्दी में प्रथम मौलिक वैज्ञानिक उपन्यास। मंगल ग्रह की रोमांचकारी यात्रा का विवरण। लेखक—श्री ओम्प्रकाश।

बोस्तां—शेखसादी की अमरकृति का हिन्दी अनुवाद। अनुवादक श्री ज़हूरबख्श, हिन्दीकोविद। प्रत्येक पृष्ठ सुन्दर अलंकरणों से विभूषित।

धूल का परिचय—श्री रामकुमार 'चंचल' की प्राणपूर्ण एव श्रेष्ठतम कविताओं का संग्रह।

घर की देवी—गृहस्थी, समाज और महिलाजागृति पर श्रीमती हीरादेवी चतुर्वेदी के निबन्ध।

बैसाखी—नवोदित लेखिका कुमारी उर्मिला बनर्जी के दो अत्यन्त हृदयग्राही लघु उपन्यास।

मध्यकालीन सांस्कृतिक नवोन्मेष—ईसवी १५ वीं शताब्दी में भाषा, साहित्य संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला एवं स्थापत्य में हुए क्रान्तिकारी नवोन्मेष का ऐतिहासिक विवेचन। इस पुस्तक में भारतीय संस्कृति के इतिहास के एक अज्ञात अंश पर प्रथम बार प्रकाश डाला गया है। लेखक—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी।

चतुर्भुजदास की मधुमालती—हिन्दी के एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ वा का अनेक हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर तैयार किया गया संस्करण। विस्तृत विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना सहित। संपादक—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी।

उत्सर्ग—काश्मीर की मुक्ति में भारतीय वीरों द्वारा आत्मोत्सर्ग के सम्बन्ध में अत्यन्त ओजस्वी खंडकाव्य। रचयिता—श्री विजयगोविन्द द्विवेदी।

विद्यामंदिर प्रकाशन, ग्वालियर

गुलाबसिंह एण्ड संस के समस्त रेल्वे-स्टालों पर प्राप्त
मध्यप्रदेश, बम्बई, पंजाब, मध्यभारत तथा अनेक राज्यों की शिक्षा-
संस्थाओं, पंचायतों एवं पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

भारती

वर्ष २ खंड १]   सितम्बर, १९५५   [अंक १ पूर्णांक १५

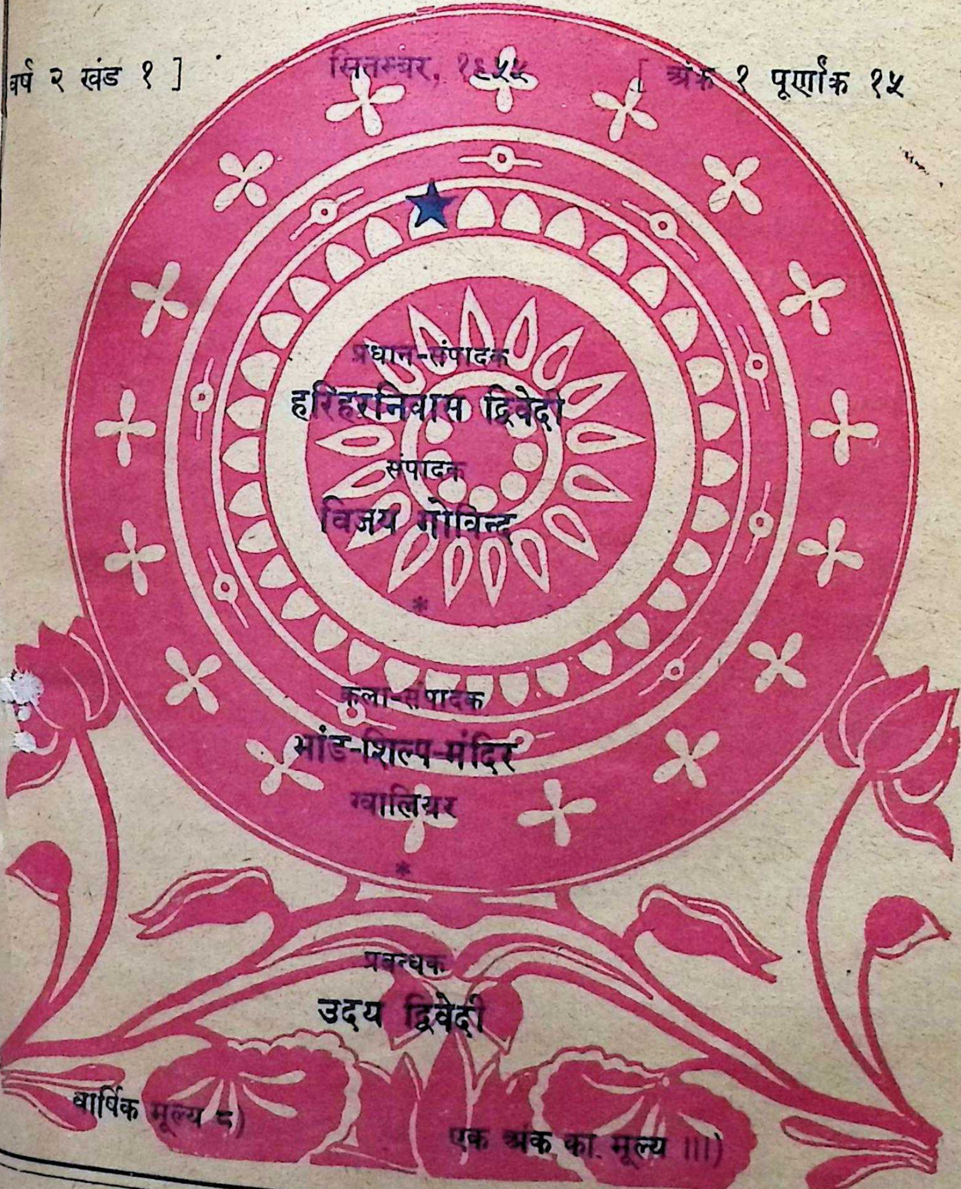

प्रधान-संपादक
हरिहरनिवास द्विवेदी

संपादक
विजय गोविन्द

*

कला-संपादक
भांड-शिल्प-मंदिर
ग्वालियर

*

प्रबन्धक
उदय द्विवेदी

वार्षिक मूल्य ८)   एक अंक का मूल्य ॥।)

भारती-कार्यालय, ग्वालियर

इस अंक के लेखक

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—२१, शहराराबाग, इलाहाबाद
श्री रामकुमार चतुर्वेदी 'चंचल'—फालके का बाजार, लश्कर
श्री रामधारीसिंह 'दिनकर'—चौधरी टोला, पटना, ६
श्री रमेशचन्द्र बख्शी—३, व्यासफला, इन्दौर
श्री आरसीप्रसाद सिंह—तारामंडल, राजेन्द्रपथ, पटना, १
माननीय श्री ब्रिजलाल बियाणी—३६/१, सिविल लाइन्स नागपुर
श्री बालकृष्ण राव—१८/बी, टॅगौर टाउन, इलाहाबाद
श्री शोभाराम श्रीवास्तव—परकोटा हिल्स, सागर (म० प्र०)
श्री वीरेन्द्र मिश्र—आंग्रे की गोठ, मामा का बाजार लश्कर (म० भा०)
श्री अगरचन्द नाहटा —नाहटों की गवाड़ बीकानेर (राजस्थान)
श्री रमाकान्त श्रीवास्तव– १०६/१, सीसामहू, कानपुर,
श्री शान्ति आँकडियाकर —ट्रेनिंग कॉलेज, मोरवी (सौराष्ट्र)
श्री महेन्द्र भटनागर—रास मंडल, धार (म० भा०)
श्री राजेन्द्र गुप्त—राघवेन्द्रनगर बिलासपुर (म० प्र०)
श्री अरविन्द (एस० आर०)—भारतीय साहित्य सदन, नवाबगंज, कानपुर
श्री लीला प्रकाश—द्वारा आरसी, स्वरूपनगर, कानपुर
श्री मनोहर प्रभाकर—'अमर ज्योति' साप्ताहिक, जयपुर (राजस्थान)
श्री चिदानन्द---राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, कटक (उड़ीसा)
श्री चन्द्रप्रकाश दुबे– प्रकाश कुटीर. मुगार (म० भा०)
श्री अम्बाप्रसाद श्रीवास्तव– सूचना एवं प्रचार विभाग, नौगाँव (विन्ध्यप्रदेश)
श्री राम जोगलेकर—११, सिख मुहल्ला, इन्दौर
श्री रामेश्वर 'त्रिवेणी'—पीर मोहानी, कदम कुआँ, पटना
कुमारी सुन्दर बापट—उपरहटी, रीवाँ
श्री मोहनलाल अवस्थी 'मोहन'—११०, हीरकजयन्ती छात्रावास, प्रयाग
श्री अनन्तकुमार 'पाषाण'—चन्दनानिवास, कुर्लारोड, बम्बई

साहित्यरथी श्री गुरुदयाल मल्लिक द्वारा अभिनन्दन

"भारत 'भारती' बिना बंजर"

—'भारती' के सारथी और सेवक हैं कलाकार, साहित्यकार और वे सब व्यक्ति जो सत्य का आविष्कार करते हैं और समाज का सुधार करते हैं।

तब जय हो भारती की। जय! जय!! जय!!! हाँ, पहले भारती की जय, फिर भारत की जय। भारत भारती बिना बंजर!

● श्री सोहनलाल द्विवेदी—

—भारती की सभी रचनाएँ एक से एक उत्कृष्ट हैं। प्रकाशन भी नयनाभिराम है। श्री वीरेन्द्रकुमार का संस्मरण गीत इस अंक की विशिष्ट रचना है। उन्हें मेरी ओर से बधाई दीजिएगा।

● श्री विनोद रस्तोगी—

—'भारती' निस्सन्देह अपने ढंग की निराली पत्रिका है। माँ 'भारती' के भण्डार की श्रीवृद्धि में आपकी 'भारती' जो योग दे रही है वह निश्चय ही स्तुत्य है। पत्रिका दिन दूनी रात चौगुनी फूले-फले, यही कामना है।

● श्री अनन्त गोपाल शेवड़े

—'भारती' के अंक मुझे मिल रहे हैं उसका साहित्यिक एवं सांस्कृतिक स्तर सचमुच बहुत ऊँचा है। उसका दृष्टिकोण सर्वथा स्वस्थ और विधायक रहता है, और सारी सामग्री का चयन सुरुचिपूर्ण रहता है। हिन्दी की इनी गिनी सर्वश्रेष्ठ पत्रिकाओं में इसकी गणना हो सकती है।

● श्री शान्तिप्रसाद वर्मा—

—'भारती' के प्रथम वर्ष के लगभग सभी अंक समय पर मिलते रहे हैं और मनोयोग के साथ में उनका अनुशीलन करता रहा हूँ। मध्यभारत में इस प्रकार की उत्कृष्ट साहित्यिक पत्रिका निकालने के लिए आप हम सभी मध्यभारतीयों के धन्यवाद के पात्र हैं। प्रान्त के साहित्यिक स्तर को ऊँचा उठाने में 'भारती' का निस्सन्देह सक्रिय योग रहा है। लेख, कहानियाँ और कविता का चयन केवल सुरुचिपूर्ण ही नहीं, कला की मार्मिक परख का परिचायक रहा है। पत्रिका के भविष्य के लिए मेरी शुभकामनाएँ स्वीकार कीजिए।

अनुक्रमणिका

कविता—

पृष्ठ
बरसो नवघन— श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' २०१
चन्द्र-किरण— श्री रामकुमार चतुर्वेदी 'चंचल' २०२
मिलन-माधुरी— श्री आरसीप्रसाद सिंह ... २१३
इमली का पेड़— श्री बालकृष्ण राव २२०
गीत— श्री वीरेन्द्र मिश्र ... २२४
विजन और मैं— श्री रमाकांत श्रीवास्तव ... २३३
नींद— श्री महेन्द्र भटनागर २४३
जीवन गीत— श्री अरविंद २५१
मैं कैसे कहदूँ वसुधा पर विहँसा
स्वर्ण विहान—श्री मनोहर प्रभाकर ... २५५
गीत— श्री चन्द्रप्रकाश दुबे २६४
आकुलता— श्री अम्बाप्रसाद श्रीवास्तव ... २६५
मेघ-गीत— श्री रामेश्वर 'त्रिवेणी' २७४
अवतार— श्री मोहनलाल अवस्थी 'मोहन' २८२

लेख—

बौद्धमत पर पुराणों के आक्रमण—श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' २०४
पचमढ़ी : एक दर्शनीय स्थान — माननीय श्री ब्रिजलाल बियाणी २१५
समयसुंदर का मृगावती रास— श्री अगरचंद नाहटा २२६
छत्तीसगढ़ का लोक-काव्य— श्री राजेन्द्र गुप्त २४४
मेघदूत : एक दृष्टि— श्री चिदानन्द २५७
मध्यकालीन हिन्दी— श्री हरिहरनिवास द्विवेदी ... २८४

कहानी—

बड़ा भारी काम— श्री रमेशचंद्र बख्शी ... २०९
दो अंत— श्री शोभाराम श्रीवास्तव ... २२१
हृदय-दर्शन— श्री धूमकेतु
अनुवादक—श्री शांति आँकड़ियाकर २३५

भारती

विमाता— श्री लीला प्रकाश २५२
हमदर्द— श्री राम जोगलेकर ... २६६
मातृत्व की भूख— कुमारी सुन्दर बापट २७५

रूपक-कथा—

बेल का बल— श्री शिव कुमार शर्मा 'शैल' २७९

प्रकाशन-परिचय—

कविता : १९५४— श्री अनंत कुमार पाषाण २९२
अभियान— श्री मधुसूदन २९६

संपादकीय—

राष्ट्रभाषा और साहित्यकार—स्तुत्य—अमृत या अम्रत—हिन्दी का विरोध—बांडुग की प्रतिध्वनि—जेनेवा सम्मेलन २९७

आवरण का चित्र—हलधर—चित्रकार श्री भांड

सम्पादकीय निवेदन

सितम्बर मास के अन्त तक राज्य-पुनर्गठन-आयोग राज्यों के पुनर्गठन के सम्बन्ध में अपना प्रतिवेदन प्रकाशित कर रहा है। भारत राष्ट्र के इतिहास में यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है, जिसका प्रभाव राज्यों के सांस्कृतिक एवं साहित्यिक भविष्य पर पड़ना अवश्यम्भावी है। देश के विचारकों एवं प्रतिभाशाली लेखकों से हमारा निवेदन है कि इस सम्बन्ध में वे अपने विचार अवश्य लिखें। 'भारती' के अक्टूबर और नवम्बर के अंकों में हम इस विषय के निबन्धों को विशेष रूप से देना चाहते हैं। निबन्ध छोटे और विचारवर्द्धक तथा तथ्यों पर आधारित होंगे यह तो हम अपेक्षा करते ही हैं।

समस्त लेखकों को पृथक्-पृथक् पत्र भेजने का समय नहीं रह गया। अतएव इस निवेदन के द्वारा ही हम इस विषय पर लिखने का निमंत्रण भेज रहे हैं।

—सम्पादक

आगामी अक्टूबर अंक
के
आकर्षण

१२ कविताएँ—
- पूजागीत
- कवि से
- चिरविरहिणी
- शशिगीत
- गात गाता जा रहा हूँ
- तुमने पूजा स्वीकार नही की तो क्या ? आदि

६ लेख—
- संस्कृत साहित्य में नाम ग्रहण
- फतेहपुरी में प्राप्त हस्तलिखित ग्रन्थ
- आधुनिक आलोचना
- श्री धूमकेतु
- मध्यदेश आदि

६ कहानियाँ—
- भगवान बुद्ध की आत्मकथा
- अभियुक्त पर वैज्ञानिक अभियान
- सफेद दस्ताने
- कविता की चोरी आदि

गद्यगीत, प्रकाशन-परिचय तथा सम्पादकीय

—कुछ लेखक—

- श्री सोहनलाल द्विवेदी
- श्री शिवमंगलसिंह सुमन
- श्री उदयशंकर भट्ट
- श्री नटवरलाल स्नेही
- श्री परदेशी
- श्री विनोद रस्तोगी
- श्री रामशंकर भट्टाचार्य
- श्री नीरज
- श्री ओमप्रकाश
- श्री विद्यावती मिश्र
- श्री विमला बाँठिया
- श्री कान्ता आदि

भारती

गीत

—श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—

रस की बूंदें बरसो, नव घन !
पावन सावन सरसो, नव घन !

कमलों के वन वारि-विमोचन,
छा लो गगन वलाहक-वाहन,
धान-जुवार-उड़द-अरहर-धन
धारण कर कर हरसो, नव घन !

खेत निराती ग्राम-कामिनी,
नभ-नयनों दमकती दामिनी,
लखकर लौटी वास भामिनी,
सुख समीर तन परसो, नव घन !

चन्द्र-किरण

—श्री रामकुमार चतुर्वेदी 'चञ्चल'—

क्षण इठलाती, क्षण बलखाती,
चन्द्र-किरण धरती पर आई !

(१)

पात बने सोपान मनोहर,
फूल बने पाँवड़े मृदुलतर;
ले मधुपर्क खड़ीं मंजरियाँ,
मंद व्यजन करती पुरवाई।
चन्द्र-किरण धरती पर आई !

(२)

चन्द्र-किरण यह या मधुबाला ?
भरकर निज नयनों में हाला,
रजत महल से उतर रही है
लेती यौवन की अँगड़ाई !
चन्द्र-किरण धरती पर आई !

(३)

यह पूनम उन्मत्त गुजरिया,
जिसके सिर पर चन्द्र-गगरिया !
किस नटखट कान्हाँ ने इसकी
गोरस की गगरी छलकाई ?
चन्द्र-किरण धरती पर आई !

(४)

अथवा चन्द्र विवर से आती,
यह गोरी नागिन लहराती,
जिसके मतवाले दंशन ने
अग-जग की सुधबुध बिसराई !
चन्द्र-किरण धरती पर आई !

(५)

यह शशि है या दर्पण प्यारा,
जिसमें बिंबित रूप तुम्हारा !
स्वर्गिक काया की सुन्दरता
ज्योति बनी जल-थल में छाई !
चन्द्र-किरण धरती पर आई !

(६)

यह नभ की दूती मन-भाती,
जो संदेश तुम्हारा लाती !
मैंने आज इसे दर्दीले
गीतों की पहुँची पहनाई !
चन्द्र-किरण धरती पर आई !

बौद्धमत पर पुराणों
के आक्रमण

— श्री रामधारीसिंह 'दिनकर'

बौद्धधर्म के भारत से लुप्त होने के अनेक कारण बताये जाते हैं, जिनमें से एक यह भी है कि जब उसकी शिक्षाएँ हिन्दुत्व के भीतर पच गयीं तब हिन्दू और बौद्ध अलग रहने में असमर्थ हो गये। छोटी चीज बड़ी चीज के भीतर समा गयी। हिन्दुत्व ने अपने आलिंगन में कसकर बौद्धधर्म को मार डाला। उसने बौद्धों को अपनाने के लिए, उनके अनेक सिद्धान्तों को स्वीकार कर लिया, किन्तु, बौद्धमत की जिन बातों को वह बिलकुल अग्राह्य समझता था, उनकी धार मोथी करने के लिए पुराणों में उसने अनेक धार्मिक कथाओं की सृष्टि कर दी। कुमारिल ने बौद्ध मत का विरोध कर्मकांड के आधार पर किया था और शंकराचार्य ने ज्ञान का पक्ष लेकर। दक्षिण भारत में शैव जनता जैन-सम्प्रदाय से अधिक रुष्ट थी, किन्तु; वैष्णवों के प्रधान शत्रु बौद्ध थे। इसलिए, बौद्धमत को नीचा दिखाने का प्रयास वैष्णव-पुराणों में ही अधिक मिलता है।

सबसे बड़ी बाधा यह थी कि बुद्ध विष्णु का अवतार माने जा चुके थे, इसलिए, उनके मत पर आक्रमण करना जरा असुविधाजनक हो गया था। इस असुविधा को दूर करने के निमित्त, विचित्र-विचित्र कथाएँ गढ़ी जाने लगीं। एक कथा यह है कि एक बार असुरों ने वैदिक बिधि से यज्ञ करके इतना बल प्राप्त कर लिया कि वे देवताओं से भी बली हो गये। इस पर देवताओं ने भयभीत होकर विष्णु से प्रार्थना की और विष्णु ने कृपा करके बुद्ध का अवतार लिया और असुरों से कहा कि वेद की सत्ता को मत मानो तथा वैदिक विधि से यज्ञ मत करो, क्योंकि यज्ञ में पशुहिंसा होती है। निदान, असुरों ने यज्ञ करना छोड़ दिया और वे, फिर से, देवताओं की तुलना में दुर्बल हो गये। इस कथा के भीतर से कई बाण निकलते हैं। एक तो यह कि बुद्ध का अवतार असुरों के कल्याण के निमित्त हुआ था। दूसरा यह कि यज्ञ नहीं करने से मनुष्य की शक्ति छीजती है। और तीसरा यह कि जो असुर नहीं हैं, उन्हें बुद्ध के उपदेशों को नहीं मानना चाहिए।

विष्णु-पुराण में एक और कथा आती है, जिसमें एक राजा मरकर श्वान-योनि में उत्पन्न होता है। उसकी सती रानी उसे पहचान लेती है और कहती है, "महाराज! आप किस कारण श्वान-योनि में उत्पन्न हुए? क्या आपको इसका स्मरण नहीं है कि तीर्थ स्नान के बाद, पाषंडी से आपस करने के कारण आपको यह, कुत्सित

योनि प्राप्त हुई है ?" इस कथा में पाषंडी से अभिप्राय जैन या बौद्ध श्रमण से है और उसका लक्ष्य यह है कि जो जैन या बौद्ध श्रमण हैं, वे नीचे हैं, अतः पुण्यात्मा लोगों को इन जैनों और बौद्धों से बात नहीं करनी चाहिए।

ब्राह्मण-धर्मावलम्बी बौद्ध श्रमणों से बात भी नहीं करें, यह विधान करते हुए विष्णु-पुराण में, निम्न-लिखित श्लोक मिलता है जो मनुस्मृति के चतुर्थ अध्याय में भी उपलब्ध है—

पाषंडिनो विकर्मस्थान्बैडालव्रतिकांच्छठान्।
हैतुकान्बकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्॥

(वेदवाह्य कर्म करने वाले, मार्जारव्रत धारण करने वाले, हेतुवादी और बक-वृत्ति पाषंडियों की, शब्दों से भी, पूजा न करे।)

स्पष्ट है कि जब श्रमणों में सच्चरित्रता थी तब ब्राह्मण उन पर ऐसे आक्रमण नहीं करते थे और करते भी हों, तो वे निरर्थक होते होंगे। यदि श्रमण अपनी अवस्था को सुधार कर जनसाधारण के कल्याण का मार्ग पकड़ते, तो पुराणों के इन वारों से उनका कुछ भी नहीं बिगड़ता। "पर वैसा न करके पुराणों के आक्रमण से अपनी रक्षा करने के लिए, वे एक प्रकार से महापंक में ही कूद पड़े। एक के बाद एक तन्त्र की रचना करके वे अपने सम्दाय की रक्षा करने के प्रयत्न करने लगे। पर, दिन में बुद्ध की पूजा और रात को वाम-मार्ग को स्वीकार करके नग्न स्त्री की पूजा करने का मेल कैसा बैठता ?"*

समाज में बौद्धधर्म की इतनी अधिक निन्दा हुई कि शंकर का मायावाद भी, अन्त में, जनसाधारण को ग्राह्य नहीं हुआ, क्योंकि उससे बौद्धों के शून्यवाद की गन्ध आती थी। यही कारण है कि शंकर के बाद ही, रामानुज, निम्बार्क, मध्व, वल्लभाचार्य आदि सन्तों ने द्वैत या विशिष्टाद्वैत का प्रचार आरम्भ कर दिया और जबकि शंकर का अद्वैत-सिद्धान्त पंडितों तक ही सीमित रहा, द्वैत और विशिष्टाद्वैत पर अवलंबित धर्म बड़ी ही आसानी से सारी जनता में फैल गया।

बौद्ध धर्म के खिलाफ, ब्राह्मणत्व का षड्यन्त्र अनेक प्रकार से चल रहा था। मध्यकालीन धर्मसाधना में पं० हजारीप्रसाद जी द्विवेदी ने लिखा है कि 'कूर्मपुराण के १६ वें अध्याय में कहा गया है कि शिवजी की प्रेरणा से विष्णु ने ही कपाल, लकुल, वाम, भैरव, आदि हजारों मोहशास्त्रों की रचना की थी।···सांख्य-प्रवचन-भाष्य में पद्मपुराण के कुछ श्लोक उद्धृत किये गये हैं, जिसमें शिवजी ने पार्वती को सम्बोधन करके कहा है कि 'हे देवि ! मायावाद बड़ा असत् शास्त्र है। मैंने ही कलियुग में ब्राह्मण

---

* भारतीय संस्कृति और अहिंसा से।

का रूप धारण करके इस शास्त्र की रचना की है। इसमें मैंने श्रुति-वाक्य का गलत अर्थ किया है और कर्मस्वरूप की त्याज्यता का प्रतिपादन किया है। सर्व कर्मों के परिभ्रंश को बता करके नैष्कर्म्य-भावना का मैंने समर्थन किया है। यह प्रच्छन्न बौद्ध मत है।' अर्थात्, पंडितों ने शंकर को भी दंडित करने का प्रयास किया, क्योंकि उन्होंने बौद्धों के शून्यवाद का प्रभाव ग्रहण किया था।

सातवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में सुन्दर पांड्य ने जैनों पर भयानक अत्याचार किया। "ईस्वी सन की सोलहवीं शताब्दी में सिंहल द्वीप का राजा राजसिंह अपने पिता को मारकर गद्दी पर बैठा। उसने बौद्ध-संघ को आमंत्रित करके उससे पितृ-वध का प्रायश्चित्त पूछा। भिक्षु-संघ ने व्यवस्था दी कि प्रायश्चित्त देना हमारे बस की बात नहीं है। तब उसने शैवधर्म स्वीकार कर लिया और भिक्षु-संघ पर भयंकर अत्याचार शुरू कर दिया। चार-पाँच वर्ष के अन्दर ही सारे सिंहल-द्वीप में एक भी भिक्षु नहीं रह गया।"*

प्रबोध-चन्द्रोदय नाटक में जैन और बौद्ध श्रमणों का जो रूप अंकित किया गया है, वह अत्यन्त पतित और घृणा उपजाने वाला है। यह नाटक कृष्णमिश्र नाम के दण्डी परिव्राजक ने चन्देल राजा कीर्त्तिवर्मा के राज्य-काल में लिखा था। कहते हैं, सन १०६५ ई० में यह नाटक उक्त राजा के सामने खेला भी गया था। इस नाटक के एक प्रकरण में शान्ति और करुणा अपनी सखी श्रद्धा की प्रतीक्षा में खड़ी हैं। इतने में वहाँ दिगम्बर (जैन) सिद्धान्त प्रवेश करता है और कहता है—

दिगम्बर—ओं णमो अलिहन्ताणं। (आकाश की ओर देखकर) अरे रे श्रावको, सुनो! हमारे इस मलमय पुद्गलपिंड की सब प्रकार के जलों से भी कैसे शुद्धि होगी? पर, आत्मा विमल-स्वभाव है और उसका ज्ञान ऋषि-परिचर्या से होता है। क्या कहते हो? यह ऋषि-परिचर्या कौन-सी? तो फिर सुनो। दूर से दंडवत करो और सत्कारपूर्वक उन्हें मिष्टान्न भोजन दो। यदि वे तुम्हारी स्त्रियों से अतिप्रसंग करें तो अपने मन में ईर्ष्यामल उत्पन्न न होने दो।

(अनन्तर भिक्षुरूपधारी बुद्धागम (बौद्धमत का प्रतीक) हाथ में पुस्तक लेकर प्रवेश करता है)

भिक्षु—(विचार करके) भो, भो, उपासको! सब पदार्थ क्षण-स्थायी और अनात्मक हैं। वे बाह्य-से जान पड़ते हैं। पर जब चित्त संतति में से सब वासनाएँ निकल जाती हैं, तब वह विषयों से विरक्त हो जाती है। (जरा इधर-उधर घूमकर बड़ी आढ्यता से) अरे, यह सौगत धर्म, सचमुच, अच्छा है जिसमें सौख्य है और मोक्ष

---

* वही।

भी। सोने को उत्तम आवास, अपनी पसन्द की बनियों की स्त्रियाँ, नियमित समय पर मिष्ट भोजन, उत्तम बिछौने, श्रद्धा से स्त्रियाँ पूजा करती हैं और, इस प्रकार, बड़े आराम से चाँदनी रातें कट जाती हैं।

करुणा—सखि, तरुण ताड़ के वृक्ष के समान ऊँचा, काषाय वस्त्र धारण किये, मुंडित-सिर यह कौन आ रहा है ?

शांति—सखि, यह बुद्धागम है।

भिक्षु—(आकाश की ओर देखकर) रे, रे, उपासको और भिक्षुओ ! भगवान सुगत का यह वचनामृत सुनो। (पुस्तक पढ़ता है) मैं दिव्य चक्षु से लोगों की सुगति और दुर्गति देखता हूँ। सब संस्कार क्षणिक हैं। आत्मा स्थायी नहीं। इसलिए, भिक्षु स्त्रियों से अतिप्रसंग करें, जो भी ईर्ष्या न करे, कारण, ईर्ष्या चित्त का मालिन्य है।

(इतने में कापालिकरूपधारी सोमसिद्धांत प्रवेश करता है। तब क्षपणक जैन, जो पहले से मौजूद है, उसके पास जाकर उससे कहता है)

क्षपणक—अरे कापालिक ! मनुष्यों की हड्डियों की माला धारण करने वाले, तेरा धर्म कौन-सा है और मोक्ष कौन-सा है ?

कापालिक—अरे क्षपणक, हमारा धर्म कौन-सा है, यह सुन। हम मनुष्य के भेजा, आँतें, वसा और मांस से भरी आहुतियाँ देते हैं। और मनुष्य की खोपड़ी से सुरापान करके पारण करते हैं। ताजा कटे मनुष्य के गले से निकली हुई रक्त की धारा के बलिदान से महाभैरव की पूजा करते हैं।

(इतने में, कापालिक से क्षपणक और बौद्ध भिक्षु, दोनों का विवाद हो जाता है और कापालिक उन पर तलवार उठा कर टूटता है। फिर कापालिक एक युवती कपालिनी से कहता है कि तू बारी-बारी से दोनों का आलिंगन कर। आलिंगित होते ही भिक्षु गद्-गद होकर कहने लगता है)—

भिक्षु—अहा-हा, इस कपालिनी का स्पर्श कितना सुखकर है। मैंने, न जाने, कितनी राँडों का आलिंगन किया होगा। पर, मैं सौ बार बुद्ध की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि ऐसा आनन्द मुझे कभी नहीं मिला। सचमुच, कापालिकों का कार्य बड़ा पुण्यप्रद है और यह सोमसिद्धान्त वर्णनीय है। यह धर्म आश्चर्यजनक है। हे महाभाग, मैंने बुद्ध-धर्म बिल्कुल छोड़ दिया। अब मैं परमेश्वर-सिद्धान्त में प्रवेश करता हूँ। इसलिए तुम मेरे आचार्य और मैं तुम्हारा शिष्य। मुझे परमेश्वरी दीक्षा दो।

और क्षपणक भी गद्गद होकर कहता है—

क्षपणक—(रोमांचित होकर) अरिहंत ! अरिहंत ! कपालिनी के स्पर्श में कैसा सुख है। सुन्दरी , दे, दे, पुनः मुझे आलिंगन दे। ····अरे, कापालिकों का दर्शन

सुख का और मोक्ष का साधन है। कापालिक, अब मैं तुम्हारा दास होगया हूँ। मुझे भी महाभैरव के अनुशासन की दीक्षा दो।*

नाटककार ने यहाँ किसी को भी नहीं छोड़ा है। जैन और बौद्ध भिक्षुओं तथा पाशुपत कापालिकों के द्वारा धर्म और नैतिकता की जो दुर्दशा उन दिनों हो रही थी, उसका नाटक में पूरा चित्र आगया है। अतिशयोक्ति को बाद दे दें तब भी, यह वर्णन तत्कालीन समाज पर यथेष्ठ प्रकाश डालता है। यह भारत के घोर नैतिक पतन का चित्र है। श्रमण भी धर्म से गिर कर पापाचार में जा फँसे थे, किन्तु, पापियों की उग्रता और कठोरता उनमें नहीं थी, इसलिए कापालिकों ने उन्हें दबा दिया। "शैव कापालिकों ने तलवार, स्त्री और मदिरा, इन तीन साधनों का उपयोग करके बौद्ध एवं जैन श्रमणों को अपने पन्थ में आने को बाध्य किया होगा और जहाँ यह सम्भव नहीं था, वहाँ उनका उच्छेद किया होगा।†

ब्राह्मणों और बौद्धों के बीच जो संघर्ष मचा, उसके फलस्वरूप स्मृतियों में कड़े अनुशासनों की व्यवस्था की गयी, जात-पाँत और छुआ-छात के बन्धन और भी कठोर बना दिये गये और धर्म में रूढ़ियाँ प्रधान बन बैठीं। ज्यों-ज्यों ब्राह्मणत्व अपनी पवित्रता की रक्षा के लिए, नये-नये चंगुल निकालता जाता था, त्यों-त्यों उन लोगों पर अत्याचार बढ़ता जाता था, जो समाज के निचले स्तर पर बसते थे, और जो जन्मना कलंकित होने के अभिशाप से बचने के लिए उस दल की ओर बढ़े जा रहे थे जो दल बौद्ध सन्तों के प्रभाव में था और जिसे सन्तों के ये उपदेश बहुत अच्छे लगते थे कि मनुष्य को श्रेष्ठता जन्म से नहीं, कर्म से मिलती है, और वे सारे शास्त्र अनादरणीय हैं जो मनुष्य को मनुष्य से हीन बताते हैं।

---

* वही। † धर्मानन्द कोसाम्बी।

कहानी—

बड़ा भारी काम

—श्री रमेशचन्द्र बत्ती

गुलदस्तों के फूल नहीं बदले गये थे। मेरे जूतों पर पालिश नहीं किया गया था। अखबार गोल मेज पर रखा जाने के बजाय अलमारी के ऊपर पड़ा था। ठीक चार बजे दीनू चाय लाता है, पर पाँच बजने को आ गये, अभी तक कुछ नहीं। मैंने पुकारा—"दीनू !"

कोई न बोला। फिर पुकारा—"श्यामदास !"

"जी हजूर !" वह पीछे के दरवाजे से मेरे सामने आ खड़ा हुआ।

"आज दीनू नहीं आया ?"

"जी हाँ साब !"

"तभी सारे काम गड़बड़ हो रहे हैं।"

"वो बंगले का काम समझा तो गिया है, अब एक-दो दिन में सब ठीक तरे करने लगूँगा मालक।" श्यामदास अपनी धोती के सिरे से टेबिल पर रखा काँच पोंछने लगा।

'हमने दो नौकर इसलिए रखे हैं कि किसी तरह काम में गड़बड़ न हो। पर वह गया कहाँ है ?" मैं टेबिल पर दोनों पाँव रखे बोला।

"उसको तो साब बड़ा भारी काम मिल गिया।"

"बड़ा भारी काम ? कैसा काम ?"

"वो साब, फिलम में एक्टर बन गिया।"

"एक्टर बन गया ?" मेरा अचरज बढ़ा।

"हाँ मालक ! वो आज परकास टाकीज में एक खेल चल रिया है। रंगीन बिलकुल, वो उसका एक्टर है साब।"

"एक्टिंग के लिए बम्बई जाना पड़ता है बुद्धू, यहाँ कोई स्टूडियो थोड़े ही है।"

"नहीं साब। वो इतना बड़ा आदमी हो गिया कि बम्बई से सारे लोग उसके वास्ते यहाँ आ गिये थे।"

मुझे बहुत ही अजीब लगी ये बातें। मेरे घर चाय बनाने वाला, मसहरी बाँधने वाला, पॉलिश करने वाला छोकरा एक्टर बन सकता है, इस बात का अन्दाज भी नहीं था। तकदीर ही कह सकते हैं इसे। भाग्य है।

"तो आज कहाँ गया है वह ?" मैंने सोच-सोच में पूछा।

"ग्राज तो साब वो ग्रपने घर वाले लोगों को तमाशा बताने ले गिया है।"

"जिसमें उसने एक्टिंग किया है?"

"हाँ साब। बोल रिया था कि कोट-पेण्ट सिलवाऊँगा मैं। उसने बताया साब, कि एक्टर लोगों को लाख-लाख रुपये मिलते हैं। बात छिपाता है वो तो, मूँ पे नूर ग्रा गिया उसके, ग्रौर झक कपड़े पेरने लगा। साब, उसको एक लाख रुपया मिल गया होगा, नहीं-नहीं करते भी।"

मैं चुप ही रहा। चालीस रुपये महीने में यहाँ काम करते हुए गाली सुनने वाला ग्रादमी एक लाख रुपया कमाने लगा! उसका चेहरा···है तो जरा खूबसूरत। पर यहाँ तो भिश्ती की तरह रहता था। न कमीज ठीक-सी ग्रौर न ही धोती ग्रच्छी। धूल का मोती निकला। मानलो कि उसे बड़े-बड़े काण्ट्रेक्ट मिलने लगे। एक साथ पच्चीसों फिल्मों में काम करने लगा। एक फिल्म, एक लाख। दो फिल्म, दो लाख। तीन फिल्म, तीन लाख।....क्या कमी रुपयों की? ग्रौर फिर ग्रखबारों में नाम पढ़ो, फ़ोटो देखो। एक्टर साहब रूस जा रहे हैं, इंग्लैण्ड जा रहे हैं।···

"उस फिल्म में काम क्या किया है उसने?"

"वोई काम साब। फिलम में एक काम होता है साब। एक लड़की के साथ हजूर। वो काम भी किया होगा साब, कुडुंग-कुडुंग मारना, घोड़ा चलाना, ग्राग लगाना। साब, ये बात तो नहीं पूछी उससे।"

शायद वह हीरो हो फिल्म का। विलन का पार्ट भी मिल सकता है उसे। पर ग्रभी तो छोटा रोल मिला होगा।

"तो वह यहाँ की नौकरी छोड़ देगा?"

"ग्रौर नहीं तो क्या साब। ग्रभी तो सीधी-साँठ बात केता है कि मालिक की नौकरी छोड़ के काँ ठौर मिलेगा मुझे, पर गप्प है ये, एक न एक दिन याँ से चम्पत होगा तो बम्बई जाके साँस लेगा साब!" श्यामदास ग्रोंठ भींचे बोलता रहा।

दीनू के एक्टर बन जाने की बात सुनकर मुझे ग्रपनी उम्र का ग्रठारहवाँ साल याद ग्राता है। न जाने कौनसी फिल्म-कम्पनी का विज्ञापन पढ़ा था मैंने। शायद जहाँगीराबाद या जलंधर···ऐसा ही कुछ नाम था उस शहर का। एक रुपये का मनी-ग्रार्डर भेजा था मैंने। जवाब ग्राया कि ग्रपना फोटो भेजो। बाँके-तिरछे पोज में तस्वीर खिचवाई। तब बड़ा शौकीन था मैं ऐसी बातों का। बस, फोटो भेज दिया। फिर एक कार्ड ग्राया कि दस रुपये फीस भेजो। वह भी भेजी। फिर एक ग्राने टिकिट का मोटा-सा बुक पोस्ट मिला। उसमें बहुत सारी रंगीन-रंगीन छोटी-मोटी किताबें थीं, सब में एक बात लिखी थी—जवानी की बीमारियाँ खतरनाक होती हैं ग्रौर उसके लिए हमसे ग्रक्सीर दवाइयाँ मँगवाइये। कम्पनी-वम्पनी भाप बन गयी। मुफ्त में दस

एक ग्यारह और दो तेरह रुपये की चपत लगी। पर दीन की बातें बहुत तेज रहीं। सब बातें चुपचाप हो गयीं। आज जरा छोटा काम मिला, कल उससे बड़ा, परसों उससे भी बड़ा मिल जाय। सीढ़ी-सीढ़ी ही छत पर चढ़ा जाना है। तकदीर कुछ होती जरूर है। अब कल से उसके बारे में कहानियाँ छपेगीं—"मसहरी बाँधनेवाला छोकरा महान कलाकार बन गया। फिल्म-जगत् का दैदीप्यमान सितारा दीनू दो वर्ष पहले जूतों पर पालिश करता था।" इन बातों पर जितना अचरज करो, उतना कम। साले को डाँटता रहता था मैं। एक बार तो बेंत से पीटा भी था, और अब, उसके एक्टर बन जाने के बाद उसको उँगली भी छुआ दूँ तो जनता मारे मुझे। पर मान गये भाई उसे!

श्यामदास चाय रख गया, इतने में ही मैंने बाहर देखा तो उसी मैले-मैले से फटे लिबास में दीनू चला आ रहा था।....बड़ा आदमी बन गया, पर घमंड छू तक नहीं गया है इसे। लगता सचमुच कलाकार है।...चलता किस अदा से है, इस तरह हाथ हिला-हिलाकर। बाल बिखरा रखे हैं, पर बड़े भले दिखाई देते हैं। पर है बदमाश, आया है उसी तरह जैसे आज भी वह मेरे घर का कप-बसी धोने वाला छोकरा हो। जान-बूझकर ऐसा करता होगा यह कि बाद में जब यह बात फैल जाय तो मैं शर्मिन्दा हो जाऊँ। पर अच्छा ही है यह कि मेरे घर काम करने वाला छोकरा इतना बड़ा एक्टर बन रहा है।

अन्दर आ उसने मुझे सलाम किया और पाँव बढ़ाए तो मैंने कहा—"बैठो दीनू।" वह जरा देर खड़ा ही रहा, फिर नीचे बैठने लगा तो मैंने उसका हाथ पकड़ लिया—"कुर्सी पर बैठो।"

"मैं हुजूर ?"

"हां, तुम, दीनू।" वह डरा-डरा सा बैठा। इस तरह भोलापन दिखाने में भी एक्टिंग होता है।

'श्यामदास!....एक चाय और लाओ।"

दीनू ऊपर-नीचे देखने लगा। मैंने प्याला दीनू की ओर बढ़ाया—"पियो।"

"मैं हुजूर ?"

"हाँ, तुम, दीनू।"

उसके चाय पीने के ढँग में भी एक्टिंग था। मैंने तश्तरी उठाकर पान उसकी तरफ बढ़ाया - "लो।"

'मैं हुजूर ?"

"हाँ, तुम, दीनू।"

उसने पान खाया तो श्यामदास बाँए दरवाजे से अन्दर चला गया।

मैंने पूछा – "तुम तो एक्टर बन गये।"

"काहे के साब ! मैं तो वैसाई हूँ।"

उसमें मुझे महानता अलग ही अलग दिखी।

"यह तो बताओ, तुमेने कौनसा एक्टिंग किया ?"

"छोटा-सा साब।"

"पहले यह बताओ, लड़के के साथ थे या लड़की के । अभी तो छोटा पार्ट मिला होगा, पर आगे से तुम अच्छे एक्टर बन सकते हो।"

वह चुप रहा।

"तुम पहुँच कैसे गये पर वहाँ तक ?"

"वो साब, सिमरोल में एक्टर सूटिंग के वास्ते आये थे। मैं उन दिनों वहीं था मालक।

"अच्छा तो, किसी लड़की के साथ तुम रहे ?"

"हाँ साब !"—वह अजीब भोलेपन से बोला—'एक लड़की सामने खड़ी थी और मेरे को एक परदा उठाने को कहा पीछे से।"

"ऊँ···।"

"हाँ नहीं तो क्या !"

"अच्छा, तो इस पिक्चर में उस लड़की के साथ तुम खड़े दिख रहे होओगे।"

'नहीं साब, लड़की ही दिखती है। मैं तो परदे के पीछे आ गिया। पिक्चर में मेरी चार अंगुलियाँ और अंगूठे का नाखून दिखता है साब।"

मैं पानी में डूबा-डूबा-सा हो गया।

"पर साब पैसा तो मिलता है।" वह फिर बोला।

शायद ठीक हो— मैंने सोचा—"कभी-कभार सड़ा काम करना पड़ता है, पर पैसे अच्छे चित हो जाते हैं।"

"सो क्या दिया उन्होंने ?" मैंने पूछा।

"काम भोत छोटा, पर पैसा खूब—" वह खुश होकर बोला—"साब दो आने दिये, दो चालू चाय के दाम।"

उसकी बात सुन मुझे छत में से धूल उड़ती दिखी। सोचा कि उसे कुछ कहूँ, इतनी देर में वह मेज़ पर रखे कप-बसी उठा एक्टर की तरह हाथ-पाँव हिलाता अन्दर चला गया।

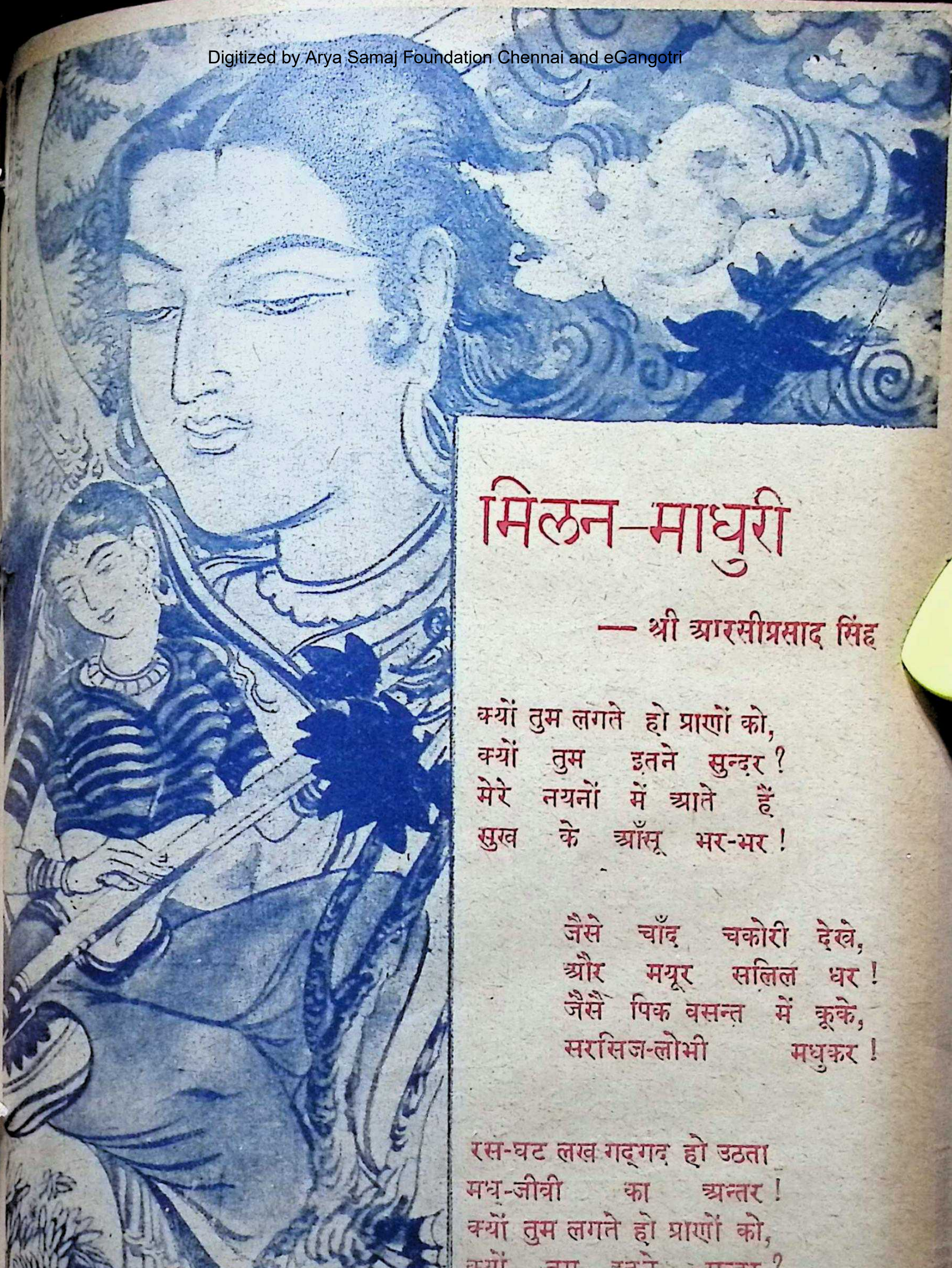

मिलन-माधुरी

— श्री आरसीप्रसाद सिंह

क्यों तुम लगते हो प्राणों को,
क्यों तुम इतने सुन्दर?
मेरे नयनों में आते हैं
सुख के आँसू भर-भर!

जैसे चाँद चकोरी देखे,
और मयूर सलिल धर!
जैसे पिक वसन्त में कूके,
सरसिज-लोभी मधुकर!

रस-घट लख गद्गद हो उठता
मधु-जीवी का अन्तर!
क्यों तुम लगते हो प्राणों को,
क्यों तुम इतने सुन्दर?

चुप हो जाते तार बीन के,
आहत स्वर खो जाता!
जाने, किस जादू का मुझ पर
यों प्रभाव हो जाता?

व्यक्त न कर पाते हैं जिसको
गीतों के सौ निर्झर !
क्यों तुम लगते हो प्राणों को,
क्यों तुम इतने सुन्दर ?

क्षण भर क्रीड़ा कर जाते हो
मेरे मन-उपवन में !
ओ तुम मेरे श्याम-सलोने,
आते हो निर्जन में !

क्यों तुम इतने कोमल-निर्मल,
क्यों इतने चंचल पर ?
क्यों तुम लगते हो प्राणों को,
क्यों तुम इतने सुन्दर ?

वह मुस्कान तुम्हारी केशर-
ज्वाला-सी जल जाती !
जिसकी शीतल ताप रेशमी
पत्थर को पिघलाती।

कब तक रहे तुम्हारी छवि
छन्दों के लय में बँध कर ?
क्यों तुम लगते हो प्राणों को,
क्यों तुम इतने सुन्दर ?

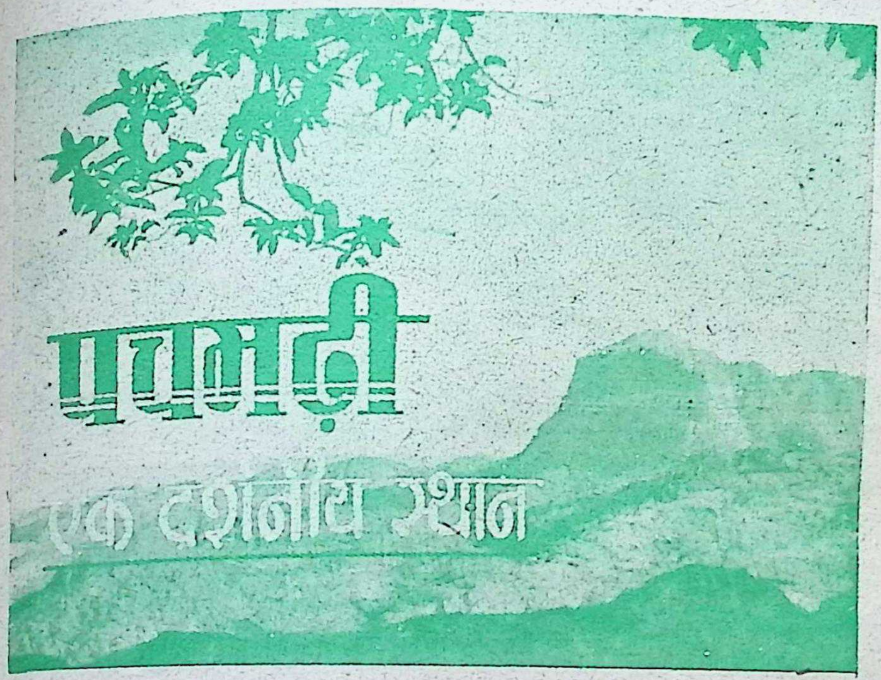

पचमढ़ी

एक दर्शनीय स्थान

— श्री ब्रिजलाल बियाणी

भारतवर्ष दर्शनीय और सौंदर्यमय स्थानों से भरा हुआ है। यहाँ कई सुन्दर स्थान हैं, जहाँ मानवी कला है और निसर्ग का सौंदर्य भी। केवल नैसर्गिक सौंदर्य के धनी स्थल हैं, जैसे मध्यप्रदेश में स्थित कान्हा किसली का जंगल। केवल मानवी कला से सुशोभित स्थान भी है जैसे जयपुर, मैसूर आदि शहर। ऐसे भी अनेक स्थान हैं जहाँ नैसर्गिक सौंदय के साथ मानवी सुख और आराम का समन्वय किया गया है। जितने पहाड़ी स्थान हैं, उनमें नैसर्गिक सौंदर्य के साथ ही मानव सुख की व्यवस्था है। उष्ण देश होने के कारण ऐसे पहाड़ी स्थानों का—जहाँ ग्रीष्मकाल में मानव को शीतल मन्द समीर का आनन्द मिलता है—विशेष उपयोग है और है विशेष सौंदर्य भी। इसी नाते मैंने अपने सौंदर्य स्थानों में से पचमढ़ी को चुना है, जो साधारण मानवी निवास-स्थानों से अधिक ऊँचाई पर है, जहाँ नैसर्गिकसौंदर्य है और मानव के लिए ग्रीष्मकाल में आराम की हवा। वस्तुतः पचमढ़ी प्राकृतिक सौंदर्य के विविध रूपों का एक अक्षय भण्डार है।

पचमढ़ी के नाम में कुछ ऐतिहासिक महत्ता भी है। कहते हैं कि पाँचों पाण्डवों ने इसे अपनी एकवर्षीय अज्ञातवास की अवधि में अपना आश्रय स्थान बनाया था। एक पहाड़ी में खुदी पाँच गुफाएँ इस बात का प्रमाण हैं। महाभारत में उल्लिखित

खाण्डव वन से भी इस बात की पुष्टि होती है। अतः उस समय इसे "पांचमढ़ी" नाम ही दिया गया था और आज इसका अपभ्रंश रूप हमारे सामने है। यहाँ मूल निवासी गोंड और कोरकू हैं। कुछ इतिहासकारों का मत यह भी है कि पहले पहल आर्य लोग यहीं आकर बसे थे। देवदार, ओक, पाइन्स, चमेली और रोजप्लामजा के वृक्ष यहाँ के जंगलों में बहुतायत से होते हैं।

मध्यप्रदेश का प्रत्येक निवासी, जो भूगोल का थोड़ा भी ज्ञान रखता है, सतपुड़ा की पर्वत श्रेणियों से परिचित है। ये श्रेणियाँ नर्मदा और ताप्ती नदी की घाटियों को विभाजित करती हुई पूर्व-पश्चिम लगभग ६०० मील की लम्बाई तक फैली हुई हैं। सतपुड़ा के घने जंगलों से ढके शैल-शिखरों में पचमढ़ी की उच्च समभूमि समुद्र-सतह से ३५०० फुट ऊँची है। धूपगढ़, जो न केवल सतपुड़ा की, बल्कि हिमालय और दक्षिण भारत में नीलगिरि के मध्य आबू पहाड़ को छोड़ कर, सर्वोच्च चोटी है, ४४५४ फुट ऊँचाई पर है। सतपुड़ा की समस्त श्रेणियों में महादेव की पर्वत श्रेणियाँ सर्वोत्तम एवं सुन्दर मानी जाती हैं।

पचमढ़ी मध्यप्रदेश का विकसमान हिल स्टेशन है। यहाँ का पठार क्षेत्र काफी लम्बा है और अन्य हिल स्टेशनों की अपेक्षा, यहाँ की एक विशेषता यह है, कि कितने भी ऊँचे शिखर पर चढ़ जाने के उपरान्त भी यहाँ हिल स्टेशन का भास नहीं होता तथा चारों ओर समतल भूमि ही दिखाई देती है। पचमढ़ी होशंगाबाद जिले के सोहागपुर तहसील में दक्षिण पूर्व में स्थित है और मध्वप्रदेश सरकार का ग्रीष्म-कालीन निवासस्थान है। पहाड़ियों से घिरा होने के उपरान्त भी, यहाँ मोटरों द्वारा सहज ही पहुँचा जा सकता है। नागपुर से सड़क द्वारा यह १६८ मील है। समस्त देश के सभी मार्गों से रेल द्वारा पिपरिया तक पहुँचा जा सकता है तथा वहाँ से पचमढ़ी के लिए सी० पी० टी० एस० लिमिटेड की मोटर बसों की व्यवस्था है। पचमढ़ी में भी उक्त कम्पनी का डिपो है। देश के समस्त प्रमुख स्थानों से यह प्रायः मध्य में ही बसा है। दिल्ली से ५५९ मील, इलाहाबाद से ३७२ व बम्बई, कलकत्ता तथा मद्रास से क्रमशः ५०५, ८१२, १११८ मील दूर है। मध्यप्रदेश राज्य शासन का इसे समस्त आधुनिक साधनों तथा सुख-सुविधाओं से सम्पन्न एक पूर्ण विकसित हिल स्टेशन बनाने का प्रयास है। इसके विकासार्थ जो कदम उठाये गये हैं, उनमें प्रमुख है, बिजली और पानी की व्यवस्था। एक अच्छे हिल स्टेशन के लिए यातायात के सुलभ साधन, स्वास्थ्यप्रद जलवायु, आवश्यक सुविधाओं, स्वस्थ भोजनालयों एवं आवास साधनों की व्यवस्था, मनोरंजन साधनों तथा रमणीय प्राकृतिक दृश्यों की अनिवार्य आवश्यकता होती है। करीब ५००० व्यक्तियों की जनसंख्या वाला यह उपनगर हिल स्टेशन के रूप में इन आवश्यकताओं की अधिकांशतः पूर्ति करता है ऐसा कहने में मुझे तनिक भी संकोच

नहीं । छोटा-सा कस्बा होते हुए भी यहाँ हाईस्कूल, अस्पताल, तहसील, कोर्ट, गवर्नमेंट हाऊस, रेस्ट हाऊस, सर्किट हाऊस तथा सरकारी व गैर सरकारी कई बंगले हैं । भ्रमणार्थियों के सुख-साधनों के लिए निवास स्थान, आवश्यक बाजार, चित्रपट गृह, क्लब, डाक व तार घर इत्यादि की समुचित व्यवस्था है । यह टेलीफोन द्वारा भी सम्बद्ध है । होटलों का प्रबन्ध अभी फिलहाल परिपक्व नहीं, तथापि शासन इस दिशा में प्रयत्नशील है । सर्किट हाऊस तथा होटल ब्लाक्स में रहनेवाले यात्रियों के लिए शासन ने एक होटल का उचित प्रबन्ध किया है जो आधुनिकतम साधनों से परिपूर्ण और सुसज्जित है तथा भारतीय एवं पश्चिमी दोनों ही प्रकार का भोजन यहाँ प्राप्त हो सकता है ।

आरोग्य की दृष्टि से यहाँ का जलवायु स्वास्थ्यवर्धक है । "हाईलेण्ड्स ऑफ इंडिया" के लेखक केप्टन जे० फोरसाइथ ने पचमढ़ी को श्रेष्ठ आरोग्य स्थान बताया है । ग्रीष्म ऋतु में यहाँ का तापमान औसतन ९० रहता है और कभी कभी १०० डिग्री तक चला जाता है । यह तापमान अन्य ठंडे स्थानों की अपेक्षा कम नहीं कहा जा सकता, फिर भी पचमढ़ी की विशेषता यह है कि इन दिनों में भी यहाँ निरन्तर शीतल मन्द समीर बहता ही रहता है । इस स्थान के ग्रीष्म का ताप असहनीय नहीं है, शीत भी अधिक और असह्य नही है, वायु में कुछ शुष्कता भी है । अतः सब प्रकार के प्रकृति वालों के लिए यह समान रूपेण लाभदायक हिल स्टेशन है, इसी कारण राष्ट्रपतिजी की प्रकृति को वह लाभदायक हुआ और अभी तक दो बार उनका निवास पचमढ़ी रहा है । पचमढ़ी निवास से उनके स्वास्थ्य में लाभ हुआ है और साथ ही पचमढ़ी की हिल स्टेशन के नाते प्रतिष्ठा भी बढ़ी है ।

पचमढ़ी के प्रमुख आकर्षण हैं. उसके प्राकृतिक शोभा-स्थल । अनेक दर्शनीय स्थान, प्राकृतिक दृश्य, स्नान-कुंड, जल-प्रपात, गुफा आदि भ्रमणार्थियों के लिए रमणीक आकर्षण हैं जो संख्या में लगभग १०५ हैं । इनमें से कुछ प्रमुख स्थल धूपगढ़, चौरागढ़, जंबूद्वीप, महादेव, राजेन्द्रगिरि, पावस प्रपात, जलावतरण, जटाशंकर, जमुना कुंड, संगम, हाण्डी खोह हैं, जो विशेष उल्लेखनीय हैं ।

धूपगढ़ अपनी नैसर्गिक सुषमा के लिए प्रसिद्ध है । यहाँ से सूर्योदय व सूर्यास्त के समय आसपास के दृश्य बड़े सुन्दर लगते हैं । देनवा नदी का उद्गम भी यहीं है । अधिक ऊँचाई पर होने से यह काफी ठंडा है । यहाँ पर्यटकों के लिए एक डाक बंगला भी बनवाया है ।

चौरागढ़ पर चढ़ने के लिए ७०० सीढ़ियों का एक लम्बा माग है । शिवरात्रि के समय लगने वाले मेले में यात्री मनों वजन के त्रिशूल लाकर रुद्र पूजा के लिए यहाँ चढ़ाते हैं । यह शिखर ऊबड़-खाबड़ यात्रापथ होते हुए भी अत्यन्त आकर्षक चित्र

प्रस्तुत करता है। लोहे व पीतल के बड़े-बड़े त्रिशूलों का यहाँ एक विशाल ढेर लग जाता है। इन त्रिशूलों के विशाल समूह का अवलोकन कर मानवी भक्ति के दर्शन होते हैं। ईश्वरी शक्ति को पूजा से और भेंट से प्रसन्न करने का नमूना मिलता है और साथ ही मानवी कमजोरी के अन्तस्थ का अवलोकन भी हो जाता है। जब उस दन्त-कथा को मैं सुनता हूँ कि एक व्यक्ति यहाँ से एक त्रिशूल उठा कर लेगया, तो उसे इस कारण ऐसा कष्ट हुआ जो तभी निवरण हुआ जब उसने उस त्रिशूल को वहाँ लाकर रख दिया। सत्यता या कार्य-कारण का निर्णय करना कठिन है, पर संसार की अनन्त शक्तियाँ प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष किस प्रकार कार्य करती हैं, इस प्रश्न के विषय में मन विचारमग्न अवश्य हो जाता है।

महादेव तीन ओर से घिरी हुई गुफा है। इसके भीतर अनेक मूर्तियाँ हैं और गुफा में बूंद-बूंद करके पानी टपकता रहता है। शीतल जल से युक्त यहाँ एक कुण्ड है जो यात्रियों की थकावट को क्षण भर में दूर कर देता है। रास्ता कुछ दुर्गम नहीं कहा जा सकता, यद्यपि यहाँ तक पहुँचने के लिए दो पहाड़ियाँ पार करनी पड़ती हैं।

अविराम गति से तीन सौ पचास फुट ऊँचाई से गिरने वाला 'रजत प्रपात' अपना एक विशेष महत्त्व रखता है। नीचे के गहरे कुण्ड का पानी कड़ी से कड़ी धूप में भी हिम के समान शीतल रहता है। आगे चलकर यह पानी देनवा नदी में विलीन हो जाता है। प्रपात के निचले भाग तक पहुँचना बड़ा परिश्रम-साध्य है। जब जाने वाले एक या अनेक मित्र और कभी-कभी पति-पत्नी भी इस प्रपात के नीचे बैठ स्नान करते हैं तो संसार को भूलने का अनुभव जरूर आ जाता है।

'मधु-प्रपात' इस उपनगर से ढाई मील दूर है। लगभग १५० फुट ऊँचाई से गिरने वाला यह प्रपात नीचे स्नान करने वालों को एक विशेष आनन्द प्रदान करता है। इसके समीप ही जमुना है, जिसमें तैरने का प्रबन्ध है।

पचमढ़ी के 'संगम' नामक स्थान में तैरने का आनन्द कुछ विशेष ही है। जल स्वच्छ और शीतल है. इतना ही नहीं, परन्तु तैरने वाला चाहे तो मीलों तक तैरता हुआ जा सकता है और यह विशेषता तरुण तैराकों के लिए स्फूर्तिदायक और आह्लादकारक है।

दो चट्टानों के बीच से गिरने वाली 'जलावतरण' की धारा का कलकल स्वर काफी दूर से सुनाई पड़ता है। इसकी उत्ताल तरंगों से निकलने वाली सतरंगी बौछारें मन को आकर्षित करने में सफल होती हैं। इसका ऊपरी भाग वन-भोज के लिए उत्तम है। समीप ही 'सुन्दर कुण्ड' नामक कुण्ड में तैरने का आनन्द उठाया जा सकता है। इसी रास्ते पर 'द्रौपदी-द्वीप' नामक एक स्थान है जहाँ एक जलधारा बहती हुई सहसा-सी एक सौ फुट गहरे गड्ढे में समा जाती है।

'जटाशंकर' पचमढ़ी के दर्शनीय स्थलों में सबसे निकट है। 'जम्बू द्वीप' नामक धारा इस गुफा के मध्य में से बहती है, जो कल्पनातीत सुन्दर है। जटाशंकर गर्मी के दिनों में अत्यधिक ठंडा रहता है। इस गुफा के भीतर प्राकृतिक मूर्तियाँ भी हैं।

इसी प्रकार है 'राजेन्द्रगिरि' जहाँ सदा शीतल बयार बहती रहती है। इसका नामकरण दो वर्ष पूर्व डा० राजेन्द्रप्रसादजी के पचमढ़ी आगमन पर ही किया गया है। यहाँ एक छोटा-सा पार्क भी बनाया गया है और गिरि के ऊपर जाने के लिए रास्ता सुगम कर दिया गया है।

'संगम', 'वनश्री विहार' एवं 'अप्सरा विहार' सदृश स्वाभाविक कुण्ड भी यहाँ के प्रमुख आकर्षण हैं जो भ्रमणार्थियों द्वारा वन-भोज के लिए विशेषतः चुने जाते हैं।

गौल्फ मैदानों के पास में स्थित सरकारी उद्यान में शाम के समय काफी चहल-पहल दिखाई पड़ती है। हरी-हरी घास, सुन्दरतम पुष्पों के पंक्तिबद्ध पौधों के समीप छोटे-छोटे निकुंजों में बैठकर लोग स्वर्गीय सुख प्राप्त करते दिखलाई पड़ते हैं। साथ ही पचमढ़ी की बीस मील की सीमा में वन्य पशुओं से परिपूर्ण झरिया के सघन वन शिकार के लिए प्रसिद्ध हैं।

वास्तव में पचमढ़ी पर प्रकृति का वरदहस्त है। एक से एक बढ़कर सुन्दर एवं आकर्षक स्थान यहाँ हैं। कहना पड़ेगा—कोई भ्रमणार्थी हो या दृश्य-दर्शक, मनमौजी हो या सन्तोष और शान्ति का अन्वेषक दार्शनिक, क्रीड़ा प्रेमी हो या तैराक, कवि हो या चित्रकार—सतपुड़ा के महिमामंडित हृदयस्थल पचमढ़ी में उसे सब कुछ मिल जाएगा, उसके समस्त अभावों की पूर्ति हो जाएगी और वह उपभोग करेगा ऐसे अनोखे सन्तोष और शान्ति-सुख का जिसकी वह बार-बार अभिलाषा करेगा। पचमढ़ी के इस प्राकृतिक सौन्दर्य में शांति है, इसकी विस्तीर्णता में आनन्द है, तो साथ ही आधुनिक आविष्कारों से निर्जनित सुखों का कुछ अंश में अभाव भी है। न तो यहाँ अच्छे चित्रपट गृह हैं और न दौड़-धूप है, न मानवों का अथाह समूह और न कुछ जीवन की तेज गति। अतः पचमढ़ी में प्राचीनता है, प्राकृतिक सौन्दर्य है और वर्त्तमान आविष्कारों की आवश्यक सुविधाएँ भी। एक बार देखने से पचमढ़ी के सौन्दर्य की अधिक कल्पना होगी और आकर्षण पैदा होगा।

इमली का पेड़

—श्री बालकृष्णराव—

पेड़ इमली का घना होता शिशिर में,
छाँह ठंढी हैं खुले हाथों लुटाता।
चाहता है सर्दियों में कौन लेकिन
दिन बिताने के लिए छाया किसी की ?
पर हमें विश्वास हो जाता सहज ही
जेठ में जब जल रहा होगा धरातल
काम तब यह पेड़ आएगा हमारे।

पर न होंगीं पत्तियाँ जब लू चलेगी,
माँगते जब छाँह आएँगे यहाँ हम;
एक रूखी-सी हँसी हँसकर कहेगी
डाल सूनी, 'व्यर्थ है यह खोज, राही;
'तुम जिसे औदार्य समझे थे, नहीं थी
'भावना वह वृक्ष की, प्रतिबिम्ब केवल
'था हमारी लहलहाती प्रचुरता का
'जो झलकता था तुम्हारी याचना में।'

कहानी—

दो अन्त

— श्री शोभाराम श्रीवास्तव

बम्बई के महालक्ष्मी में स्थित रेस कोर्स में आज भीड़ का ताँता लगा था। रेस कोर्स मोटर स्टैन्ड में बहुरंगी कारें उद्यान में खिले फूलों की भाँति चमक रही थीं। दर्शक-अलिन्द खचाखच भर चुका था। बहुमूल्य कपड़ों से लदे लक्ष्मी पुत्र कभी कलाई में बँधी घड़ी, और कभी हाथ में दबी पुस्तक की ओर देख रहे थे। सब उत्सुक थे। सब की आँखें उस बड़ी घड़ी पर रह रह कर जा रही थीं। पर वह तो नियमित थी। उस पर किसी का नियंत्रण नहीं था। आखिर उस घड़ी ने सवा तीन बजाये।

बन्दूक के शाट की ध्वनि वायु के थपेड़ों पर तैरती हुई कामिनी की प्रतीक्षा की भावना की तरह आगे बढ़ी। लक्ष्मी-पुत्रों के हाथ बगल में टँगी दूरबीनों पर गये। हाथ उठे और आँखें दो लम्बे काले छेदों में घुस गयीं। उन्हें दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गयी। कैमरा मेनों ने एंगिल मिलाया। लक्ष्मी-पुत्रों के हाथ ऊपर उठे और हिलने लगे। ओठ तन्मयता से विभिन्न नामों का उच्चारण करने लगे।

उन आवाजों में विभिन्नता थी, पर 'शाबाश डारलिंग” “चियर अप डारलिंग” की ध्वनि ही वातावरण में आधिपत्य जमाये थी। भक्तों की पुकार भगवान ने सुन ली, डारलिंग पहली आई।

शोर हुआ। प्रसन्नता की लहर दौड़ी और कुछ लोगों के चेहरे पीले पड़ गये। जिन लोगों का अनुमान फलीभूत हुआ था, उनके सीने फूलकर कुप्पा हो गये।

सर डेविड का कहना ही क्या था। प्रेस रिपोर्टर, रेडियो प्रतिनिधि, कैमरामेनों और रेस संयोजक से लेकर मामूली से मामूली अश्व-दौड़–प्रेमी उन्हें घेरे खड़े थे। डारलिंग के मालिक थे न वे। डारलिंग के विषय में प्रश्नों की बौछार लग गयीं। सर डैविड बड़ी प्रसन्नता से एक-एक प्रश्न का उत्तर दे रहे थे।

उस प्रसन्नता का एक छोटा-सा हिस्सा प्रीतम को भी मिल गया था। वह बड़ी शान से सईसों से कह रहा था—“किसी ऐसे-वैसे को घोड़ी है? प्रीतम सईस की घोड़ी है। पहली न आएगी तो क्या करेगी।”

अन्य सईस चुपचाप प्रीतम के भाग्य की सराहना कर रहे थे।

रेसकोर्स से प्रीतम सीधे घर गया। “बड़ी देर से लौटे हो, भँवरे जैसे गुनगुना रहे हो आज” किसी सरस ध्वनि ने प्रीतम का स्वागत किया। पति ने पत्नी के कन्धे झकझोरते हुए कहा—“नाचो गाओ, जानती हो आज हमारी डारलिंग फर्स्ट आई है।”

"तो फिर अभी बाजार जाकर सब्जी ले आओ। आज रात रूखी रोटी तो न खानी पड़ेगी। साहब ने इनाम तो दिया ही होगा।"

इनाम, सब्जी और सूखी रोटी के शब्दों के तीरों ने प्रीतम की भावुकता की दीवारों को तोड़कर उसे यथार्थ की दुनियाँ में ला पटका। उसका हाथ जेब में गया, पर वह जेब डारलिंग की सेवा करने वाले प्रीतम की जेब थी, डारलिंग के मालिक डैविड की नहीं, कि अँगुलियों और हथेली के बीच हरे, नीले रंग के कागज निकल आते जो देखने में तो दो कौड़ी के हैं, पर संसार इन्हीं के इशारों पर नाचता है। उसके हाथ में सिर्फ दो पैसे की तीन सिगरेट वाली चार मीनार छाप एक सिगरेट आ गयी।

सिगरेट को अँगुलियों के बीच में दबाते हुए प्रीतम ने इशारा किया। पास ही पड़े एक कागज के टुकड़े को लालटेन से जलाकर प्रीतम की पत्नी ने सिगरेट जला दी। प्रीतम सिगरेट के कशों के साथ सपनों की दुनियाँ में खो गया।

"फिर वही चिन्ता," प्रीतम की पत्नी ने उस की तन्द्रा तोड़ते हुए कहा—"हम गरीब काहे काहे की चिन्ता करेंगे। जो होना है सो होगा ही, चलो खाना खालो।"

वह सिगरेट खतम करके उठा। हाथ-पैर धोकर चौके में बैठ गया। पत्नी ने अलमोनियम की टूटी सी थाली में कुछ रोटी और नमक रख दिया। खाना खाकर वह पत्नी द्वारा लगाए बिस्तर पर लेट गया। "आज तो खड़े-खड़े थक गये होगे, लाओ पाँव दबा दूँ" कहकर उसकी पत्नी पाँव दबाने लगी।

"तुम कितनी भली हो राधा" प्रीतम ने कहा—"घर आकर मैं भूल जाता हूँ कि मैं तीस रुपया माहवार पानेवाला सईस हूँ।"

पाँव दबाते-दबाते राधा ने कहा—"देखो जी, ज्यादा प्रशंसा की तो मैं भी लड़ने लगूँगी।"

आराम पाकर प्रीतम अलसाने लगा। तब दबी जबान से राधा ने कहा—"सुबह मेरे पेट में दर्द होने लगा था। लल्लू की माँ कह रही थीं कि दिन पूरे हो गये हैं। कुछ पैसों का प्रबन्ध कर रखना। जरूरत पड़ सकती है।"

"हाँ" प्रीतम ने उत्तर दिया—"आजकल डारलिंग खूब जीत रही हैं। साहब को बहुत फायदा हो रहा है। उन्हीं से माँग लूँगा। आखिर डारलिंग की सेवा तो मैं ही करता हूँ।"

अगले शनिवार को फिर रेस थी। प्रीतम ने पैसों के लिए डैविड से प्रार्थना की। पर डैविड ने कुछ ध्यान नहीं दिया। बड़े आदमी गरीबों की मुश्किलों और मजबूरियों को नहीं समझते। उदास मन से प्रीतम डारलिंग को लेकर रेसकोर्स पहुँचा। पिछले शनिबार की ही तरह रेसकोर्स भरा था। वैसा ही उत्साह था। आज प्रातः सभी

दर्शक डारलिंग के विषय में सोच रहे थे। पिछली बार वह जीती थी न। पर न जाने क्यों, इस शोर गुल में भी प्रीतम को मरघट जैसी शान्ति अनुभव हो रही थी। रह-रह कर उसके सामने पत्नी का पीला चहरा घूम जाता था। डारलिंग को यथा-स्थान बाँधकर, वह सईसों में बैठ गया।

ठीक समय पर रेस शुरू हुई। भीड़ में शोर गुल होने लगा। "चियर अप डारलिंग" की आवाज आज भी वातावरण पर आधिपत्य जमाये थी।

डारलिंग को जैसे आज पंख लग गये हों। जैसे आज उसने हवा को भी हराने की ठान ली हो। वह दौड़ी ही जा रही थी, दौड़ी ही···। उस पर बाजी लगाने वालों के दिल जोरों से धड़क रहे थे। सामने से परोसी थाली उठा ली गयी, अचानक एक झटका लगा और डारलिंग अपने सवार के साथ गिर-पड़ी, वह कुछ फड़फड़ाई और हमेशा-हमेशा के लिए सो गयी।

रेस बन्द करदी गयी और सारी भीड़ डारलिंग की लाश के पास इकट्ठी हो गयी। प्रीतम भी भागा-भागा डारलिंग के पास पहुँचा।

सर डैविड रो पड़े। लोगों ने समवेदना प्रकट की। जब सर डैविड कुछ शान्त हुए, तो उन्होंने कहा—"डारलिंग मेरी जान थी।" और उनकी आँखों के सामने सौ-सौ के हजारों नोट और डारलिंग की लाश घूम गयी।

तभी अचानक प्रीतम भावावेश में चिल्ला पड़ा—"डारलिंग मर गयी, मेरी रोजी, मेरी मालकिन।"

और तभी भीड़ में से आवाज आई—"प्रीतम घर चलो, बच्चा होते समय राधा मर गयी है।"

गीत

—श्री वीरेन्द्र मिश्र—

मैं तो प्राणों के माथे पर लगने वाला सिन्दूर हूँ,
तुम सपनों की अमराई में बजने वाली शहनाई हो।

(१)

मैं जो भी बिरहा गाता हूँ, तुम कजरी-सी दुहराती हो;
मैं गीतों में कह देता हूँ, तुम आँखों में शरमाती हो;
मैं यौवन के सूरज-चन्दा से छन कर आती धूप हूँ,
तुम धरती पर मस्ती बन कर उठने वाली तरुणाई हो।

(२)

मेरे गुंजन के छिड़ते ही भंवरे गा-गा उड़ने लगतें,
तुम खिलती हो तो फूलों के अनगिन मेले जुड़ने लगते,
मैं रंग पंचमी का गुलाल हूँ, अनुरागों की धूल हूँ,
तुम वासन्ती चुनरी में शायद नर्तन करने आई हो।

(३)

साँसे गरमाने लगतीं जब सूरज हटता आकाशों से,
तुम पंखा झलने लगती हों अपनी दो ठण्डी साँसों से,
मैं यामा की नागिन बाहों में पड़ी शलभ की भूल हूँ,
तुम उस दीपक-सी जो कि तिमिर से करने चला सगाई हो।

(४)

देखे जाओ कजरारी आँखों से नयनों की उजियारी,
हम-तुम देखें पूरक सपने हँस कर गा कर बारी बारी,
मधुमासों का विस्तार समेटे मैं सागर का कूल हूँ,
तुम दूर देश से आती लहरों की आकुल अँगड़ाई हो।

(५)

सुख के इन मिलन-सवेरों पर फिर दुख की विरहा शाम न हो,
अपने दुलार से छाँह करो मेरे आँसू नीलाम न हों,
जिस पर सावन हरियाली तुम—मैं वह मधुमासी दूब हूँ,
मैं छेड़े बादल-राग मयूरी बन कर तुम इतराई हो।

(६)

जो प्रेम करेगा जीवन में वह गीत हमारा गाएगा,
जब काल घिरेगा सपनों पर, वह साथ हमारे आएगा,
मैं महानाश के नयनों में चुभ जाने वाला शूल हूँ,
मेरी गति में तूफान और तुम आँधी बन कर छाई हो।

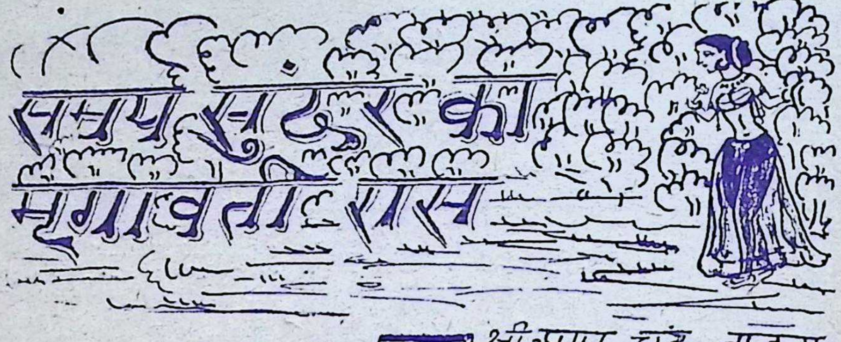

समय सुन्दर की मृगावती रास

—श्री अगर चंद नाहटा

जिस प्रकार पद्मावती नामक कई सतियाँ हो गयी हैं, उसी प्रकार मृगावती नामक कई सतियाँ हुई हैं। कुतबन की मृगावती से समयसुन्दर की मृगावती की कथा सर्वथा भिन्न है। इस मृगावती का सम्बन्ध जैनधर्म से ही था। भगवान महावीर की प्रधान शिष्या चन्दनबाला की यह शिष्या थी। जैन समाज में १६ सती स्त्रियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। इनमें मृगावती भी एक है। इस कथा का अति संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

मृगावती वैशाली के गणराज्य के राजा चेटक की पुत्री थी और कौशांबी के महाराज शतानिक की पटरानी थी। भगवान महावीर की माता त्रिशला की यह बहिन थी, इस नाते भगवान महावीर की मौसी थी। एक बार जब मृगावती गर्भवती थी, उसे रुधिर से भरी हुई बावड़ी में स्नान करने का दोहृद उत्पन्न हुआ। मन्त्री ने बुद्धिबल से एक बावड़ी के जल को लाल रंग द्वारा रुधिर जैसा बना दिया और उसमें स्नान करके रानी ने दोहृद पूर्ण किया। पर ज्योंही वह वापिका से बाहर निकल रही थी, रक्तवर्णी मृगावती को, आकाश में उड़ता हुआ भारंड पक्षी मांसपिंड समझ कर उड़ा ले चला।

इस तरह राजा और रानी का बड़ा दुःखद वियोग हुआ। मृगावती को भारंड पक्षी ने किसी वन या द्वीप में फेंक दिया और वहाँ वह एक ऋषि द्वारा सचेतन हो आश्रम में पहुँची और वहीं समय पर पुत्र जना, जिसका नाम उदयन रखा गया।

उदयन ने एक भील को मणि के लिए सर्प को मारते हुए देखा और सर्प को बचाने के लिए भील को उसने अपनी माता से अमूल्य कंकण लेकर दे दिया। उस कंकण को बेचने के लिए भील कौशांबी आया। कंकण पर मृगावती एवं राजा का नाम था। इसलिए दूकानदार ने उसे पकड़ कर राजा के हवाले कर दिया। कंकण कैसे व कहाँ से मिला, पूछने के प्रसंग से राजा को मृगावती का पता चला। इससे हर्षित हो शतानिक भील के साथ मलयाचल वन के आश्रम में पहुँच कर उदयन और मृगावती से मिला। १४ वर्षों के बाद दोनों का दुःखद वियोग समाप्त हुआ। मृगावती और

कुमार को लेकर महाराजा कौशांबी आये और सुख से रहने लगे। उदयन वीणा-वादन में प्रसिद्ध हुआ।

अन्य दा महाराज ने सभा में अपनी समृद्धि एवं राजसभा की शोभा का बखान किया, जिसे सुनकर एक दूत ने सभा भवन में चित्रों की कमी बतलाई। महाराजा ने इस कमी की पूर्ति के लिए अच्छे-अच्छे चित्रकारों को बुलाकर सभा भवन को सुन्दर चित्रों से सुशोभित करवाया। सभा-भवन में एक यक्ष से वर-प्राप्त कुशल चित्रकार ने महारानी मृगावती के पैर का अँगूठा देख उसका हूबहू चित्र बनाया, जिसमें महारानी की जंघा के तिल का भी चिह्न था। महाराज जब सभा भवन देखने आये, तो देखकर बड़े प्रसन्न हुए, पर मृगावती के चित्र पर ध्यान देते हुए जब जंघा का तिल का चिह्न उनकी दृष्टि में आया, वे बड़े कुपित हुए और चित्रकार को प्राणदण्ड की आज्ञा दे दी। इस अन्याय से क्षुभित होकर सभी चित्रकारों ने महाराज से न्याय की माँग की। उन्होंने कहा, दैवी वर से इसने यह हूबहू चित्र बनाया है, अतः सर्वथा निर्दोष है। चित्रकार से पूछने पर उसने अपनी यक्ष से वर-प्राप्ति की कहानी कह सुनाई, जिस वर से वह किसी व्यक्ति के अँगूठे मात्र को देखकर उसका पूरा चित्र बना सकता है। महाराजा ने इसकी परीक्षा ली, पर अन्त में इसके दाहिने हाथ को कटवा ही दिया।

चित्रकार ने अन्याय से अत्यन्त कुपित हो पुनः यक्ष की आराधना की। यक्ष ने उसे बाँये हाथ से भी दाहिने हाथ की तरह चित्र बना सकने का वर दिया। उसने शतानिक को कष्ट में डालने के लिए मृगावती का सुन्दर चित्र बनाकर पर-स्त्री-लम्पट उज्जैनी नरेश चंडप्रद्योतन को दिखलाया। प्रद्योतन ने उस पर मोहित होकर शतानिक के पास मृगावती को माँगने के लिए दूत भेजा। शतानिक इस अनुचित प्रस्ताव को कैसे मान लेते ?

अन्त में कामान्ध प्रद्योतन ने कौशाम्बी पर चढ़ाई कर दी। नगर आक्रमण के बाद अतिसार रोग से शतानिक शीघ्र ही चल बसे। अतः मृगावती ने नगर और अपने शील की रक्षा के लिए प्रद्योतन के पास दूती द्वारा यह सन्देश भेजा कि महाराजा का देहान्त अभी-अभी हुआ है, अतः मैं शोक में हूँ, कुमार उदयन भी अभी बालक है। अतः अभी तो धैर्य रखिए। पहले आप हमारी शत्रुओं से रक्षा के लिए अच्छा मजबूत सुदृढ़ गढ़ बनवायें और सैनिक सामग्री आदि से नगर को भरवा दें, जिससे शत्रुओं के उपद्रव से हम सुरक्षित रह सकें। फिर जैसी आपकी आज्ञा होगी, पालन की जायगी। कामान्ध प्रद्योतन ने बिना ही युद्ध, कार्य सफल हुआ देख, मृगावती के प्रस्तावानुसार सुदृढ़ किला बनवाकर सारी सामग्री भी सुरक्षा के लिए दे दी। तदनन्तर दूती द्वारा मृगावती से कहलवाया कि तुम्हारी अभिलाषा मैंने पूरी कर दी, अब मेरी कामना भी

पूर्ण करो। मृगावती ने इस प्रस्ताव को अनौचित्यपूर्ण बतलाते हुए उसकी भर्त्सना की और मरणान्त तक शीलखण्डन न करने की दृढ़ता प्रकट की।

इसी समय भगवान महावीर कौशांबी के बाहर उद्यान में पधारे। प्रद्योतन और मृगावती उनके उपदेश श्रवण करने के लिए गये। उनकी वाणी से मृगावती वैराग्य वासित होकर दीक्षा लेने को प्रस्तुत हुई। महाराजकुमार उदयन का राज्याभिषेक इससे पूर्व हो चुका था। उसने १२ व्रत ग्रहण किये। मृगावती ने प्रद्योतन से दीक्षा लेने की अनुमति माँगी और बड़े महोत्सव के साथ भगवान महावीर के पास दीक्षित हुई। दीक्षानन्तर वह भगवान महावीर की प्रधान शिष्या चन्दनबाला के पास रहने लगी। निरन्तर तप संयम की साधना करते हुए उन्होंने अपने जीवन को सफल बनाया।

एक बार सूर्य और चन्द्र विमानों पर आरूढ़ होकर भगवान की वन्दना के लिए आये। चन्दनबाला और मृगावती दोनों वहीं थीं। सन्ध्या समय जानकर चन्दनबाला तो अन्य साध्वियों के साथ अपने ठहरने के स्थान पर चली गयी और प्रतिक्रमण आदि धार्मिक क्रिया करने लगी। पर सूर्य चन्द्र के प्रकाश के कारण मृगावती को समय का ठीक भान न रहा, अतः वह वहीं पर बैठी रही। सूर्य चन्द्र के स्वस्थान जाने पर जब चारों ओर अँधेरा छा गया, तो अपनी भूल पर पश्चात्ताप करती हुई वह तुरन्त उपाश्रय जा पहुँची। चन्दनबाला ने हितबुद्धि से कुछ उपालम्भ के रूप में कहा कि रात्रि में साध्वी को बाहर नहीं रहना चाहिए। मृगावती ने कहा, समय का ठीक ज्ञान न होने के कारण ही यह भूल हुई व इसका मुझे पश्चात्ताप है। चन्दनबाला धर्मजागरण करते हुए सो गयी। मृगावती को गुरुणी के पैर दाबते हुए तीव्र पश्चात्ताप के कारण कैवल्य ज्ञान प्राप्त हो गया। चन्दनबाला को विदित होने पर उसके भी शुभ भाव बढ़े व कैवल्य ज्ञान प्राप्त हो गया। आयुष्य कर्म पूर्ण होने पर दोनों मोक्ष पधारीं।

कविवर समयसुन्दर ने प्रस्तुत कथा राजस्थानी पद्यों में बड़ी सरल भाषा में सुन्दर ढंग से चित्रित की है। शतानिक के सभा भवन में चित्रकारी किये जाने के प्रसंग से कवि ने तत्कालीन चित्र-भवनों के चित्रों का बड़े विस्तार से वर्णन किया है। इसी प्रकार मृगावती के रूपसौन्दर्य आदि अनेक प्रसंगों पर भी कवि ने अच्छे ढंग से वर्णन किया है।

प्रस्तुत काव्य तीन खण्डों में विभक्त है। पहले खण्ड में भारण्ड पक्षी संहरण, तापसाश्रम में १४ वर्ष तक निवास, फिर कौशांबी में समागमन प्रसंग है। यह १३ ढालों में है। पद्य संख्या २६६ है।

दूसरे खण्ड में उदयनकुमार वीणावादन,* चित्र-सभाकरण, निपुण चित्रकार

---

* यहाँ तक प्रसंग कई ग्रन्थों में नहीं है।

हस्त छेदन, चंड प्रद्योतन कौशांबी वेष्टन, शतानिक का परलिक गमन तक का प्रसंग है। इसमें भी १३ ढालें हैं और २६६ पद्य हैं।

तीसरे खंड में चंडप्रद्योतन नवप्राकारार्पण, वीरागमन, मृगावती दीक्षा, उदयन श्रावक व्रत ग्रहण मृगावती चन्दना कैवल्योत्पत्ति का वर्णन है। इसमें बारह ढालें एवं २११ गाथाएँ हैं। कुल ढालों की संख्या ३४ एवं पद्यों की संख्या ७४३ है। अनुष्टुप छन्द के अनुसार श्लोक संख्या ११०० है।

कवि ने इसकी रचना संवत १६६८ में मुल्तान में की है। जेसलमेर के श्रावक रीहड़गोत्रीय कर्मचन्द्र के आग्रह से इस "मोहन वेलि" ग्रंथ की रचना हुई थी। इसमें सिन्धी, पूर्व, मरुधर और गुजराज में प्रचलित नयी-नयी ढालों का प्रयोग किया है। कवि ने राग के बिना ढाल का गाना अच्छा नहीं लगता, इसलिए मीठी ढाल और राग दोनों के संयोग की आवश्यकता का निर्देश किया है।

तीसरे खंड की नवमीं ढाल सिन्धी भाषा में हैं। प्रारम्भ में इससे पूर्व रचे गये सांब प्रद्युम्न चौपाई और प्रत्येक बुद्ध चौपाई का उल्लेख करते हुए शील की महिमा के प्रसंग से मृगावती का चरित्र कहा जा रहा है, लिखा है।

दूसरे और तीसरे खंडों के प्रारंभ में स्वगच्छ के प्रभाविक एवं अति प्रसिद्ध आचार्य जिनकुशल सूरिजी एवं जिनदत्त सूरिजी का स्मरण करते हुए उनकी महिमा वर्णित की है। कुशल सूरिजी की स्तवना करते हुए उनके चमत्कार का उल्लेख किया है। वह इस प्रकार है—

परतउ एक मइ पेखीयउ, नगर मरोठ मझार
मेह मांग्यउ वूठो तुरत, हम अनेक अधिकार।
तिण तुम्ह नहं महं प्रारथ्यउ, समरथ साहिब जांण
मइ बीजउ खंड मांडीयउ, तूं शीघ्र चाढ़ि परमांण।

जिनदत्त सूरिजी की स्तवनाओं में अंबड़ द्वारा युगप्रधान प्रसिद्धि, ६४ योगिणिया व ५२ क्षेत्रपाल को जीतना और नाम स्मरण से बिजली का न पड़ना इन अतिशयों का उल्लेख किया है।

कवि की वर्णन शैली का परिचय देने के लिए सभा भवन के चित्रों के वर्णन का प्रसंग बड़ा महत्त्व का होने से नीचे दिया जा रहा है।

चतुर चीतारउ रूप चीतरइ रे, राजमहल तणी भींत रे।
ज्ञान विज्ञान वारू केलवइ रे, रंजिवा राजा नूं चीतरे ।।२।।
चउद सुपन पहिला चीतर्या रे, चीतर्या अष्ट मंगलीक रे।
राम सीता रूप चीतर्या रे, लक्षमण राम नजीक रे ।।३।।

बली रे वानर हनमंत चीतर्यउ रे, जेहनउ लांबउ पूंछ रे।
रूप वशिष्ट तणउ लिख्यउ रे, मोटी दाढ़ी मूंछ रे॥४॥
रूप लिख्यउ रावण तणउ रे, दश माथा जसु दीस रे।
खडग चंद्रहास जे हाथ मइं रे, श्रवण नयन भुज वीस रे॥५॥
ईसर नउ रूप चीतर्यउ रे, अहि आभ्रण रूंड माल रे।
चंद्र कला गंगा सिरइ रे, वृषभ वाहन कंठमाल रे॥६॥
रूप ब्रह्मा तणउ चीतर्यउ रे, चतुर्मुख बुढ़उ जटाल रे।
हाथ कमंडल जलभर्यउ रे, जनोइ जपमाल रे॥७॥
रूप लिख्यउ श्री कृष्णनउ रे, मुरली मनोहर श्याम रे।
संख गदा चक्र हाथमई, चतुर्भुज अति अभिराम रे॥८॥
चंद्र सूरिज नवग्रह चीतर्या रे, चीतर्यउ गणेशनउ रूप रे।
पैट मोटउ सूंड गजतणी, उंदिर वाहन अनूप रे॥९॥
भलानह भारंड पंखी चीतर्या रे, एक उदर गाबडि दोई रे।
जगति भखइ फल जू जुपा रे, जीव जुदा बेउ होय रे॥१०॥
गरुड़ मयूर सुक सारिका रे, पंखी रूप अनेक रे।
निपुण चीतारह सगल्या चीतर्या रे, वारू जांणइ विवेक रे॥११॥
मुगल का बली सूद्धा चीतर्या रे, मुख राता चूंची आंखि रे।
माथइ मोटा पाघड़ ढूंमणां रे, ते जाणइ तीर नाख रे॥१२॥
रूप फरंगी कीधा फूटरा रे, ओड़इ माथइ टोप रे।
ढीला पहिरह सूथण कोथला रे, छेड़्या करइ बहु कोप रे॥१३॥
हबसी चीतर्या काला अति घणूं रे, पांडुर वरण पठाण रे।
गरढ़ा बूढ़ा काजी चीतर्या रे, वाचता कतेब कुराण रे॥१४॥
पंच वरण आभा चीतर्या रे, चीतरा पोलि प्रकार रे।
चतुर चीतारउ जाण पणउ घणूं रे, चीतर्या सकल प्रकार रे॥१५॥
निपुण चीतारइ दीठउ एकदा रे, मृगावती राणी नउ अंगूठ रे।
वस्त्र अंतर पिणि प्रगटीयउ रे, कांति करी अति सुठ दे॥१६॥
तेहनइ अनुसारइ सगलउ चीतर्यउ रे, मृगावती राणी नउ रूप रे।
सकलकला आपणी केलवी रे, कीधउ तेहनउ सरूप रे॥१७॥
रूप चीतरता राणी तणउ रे, साथलि पड्यउ मसि बिंदु रे।
तुरत चीतारउ बिलखउ थयो रे, एह जणावइ दुख दंद रे॥१८॥
बीजे वाने बिंदु फेडयउ रे, बलि पड्यउ तेणिज ठाम रे।
बलि रे चीतारर ते दूरइ कीयउ रे, एह नउ नहीं रहां काम रे॥१९॥

हग वार वार तिहां पडइ रे, मसिनउ बिंदु ते एक रे।
चतुर चीतारउ इम चींतवइ रे, मन धरि परम विवेक रे ।।२०।।
राणी साथलि सीह हों स्यई, तिलउ रे इहां परमारथ एह रे।
मुज नइ वर दीधउ मोटइ देवता रे, अन्यथा किम थाये तेह रे ।।२१।।

उपरोक्त चित्र वर्णन में जो मुगल, काबली, फरंगी, हवसी आदि का स्वरूप चित्रण किया है वह बहुत ही महत्त्व का है। उससे इनकी विशेषताओं का परिज्ञान बहुत ही अच्छे रूप में हो जाता है।

मृगावती की उपरोक्त कथा सम्बन्धी अन्य भी कई जैन ग्रंथ प्राप्त हैं। इनमें से कुछ ग्रंथ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। संस्कृत काव्यों में मलधारीगच्छ के देवप्रभ सूरि का मृगावती चरित्र २४०० श्लोकों के परिमाण का काव्य है। यह पं० हीरालाल हंसराज, जामनगर से सन १९०९ में प्रकाशित हो चुका है।

राजस्थानी जैन काव्यों में समयसुन्दर से पहले के दो और काव्य रचे गये हैं, जिनमें से प्रथम उपकेशगच्छीय विनयसमुद्र रचित की एक मात्र प्रति हमारे संग्रह में है। इसकी रचना सं० १६०२ के वै० ५ सोमवार को बीकानेर में हुई है। सं० १६०४ की बीकानेर में ही लिखी हुई ३१ पत्रों की प्रति हमारे संग्रह में है।

दूसरा मृगावती का आख्यान, तपागच्छीय हीरविजयसूरि शिष्य सकलचन्द्र रचित प्राप्त है, जिसका परिमाण ५५८ श्लोकों का है। सं०१६४४ में लिखित प्रति प्राप्त होने से इसकी रचना इससे पूर्व की सिद्ध है।

समय सुन्दर बहुत बड़े विद्वान ग्रंथकार एवं सुकवि होगये है। उनका कुछ परिचय नागरी प्रचरिणी पत्रिका में प्रकाशित 'कविवर समयसुन्दर" शीर्षक लेख में दिया जा चुका है।

मृगावती रास के प्रारम्भ एवं अन्त के कुछ पद्य यहाँ दिये जा रहे हैं—
प्रारंभिक पद्य —

समरूं सरसति सामिनी, प्रणमुं सद्गुरु पाय।
बेकर जोड़ी वीनवुं, मागुं एक पसाय ।।१।।
सरस वचन दीउ सरसति, सुणतां अमीय समाण।
सद्गुरु पणि सानिधि करो, निर्मल दीऊ मुज न्यान ।।२।।
सब प्रजून्न नी चोपइ, प्रत्येकबुद्ध बखांण।
जिम परमाणइं चांडीया, तिम चाडो परमाण ।।३।।
दान शील तप भावना, च्यारे धर्म प्रधान।
शील सरीखो को नही, हम बोलइ व्रधमांण ।।४।।

× × ×

प्रह ऊठी सहु को. जपइ, शीलवंत नां नाम।
ब्राह्मी चन्दनबालिका, इत्यादिक अभिराम ।।८।।
तेणइ कारणि भगतिं भणुं मृगावती चरित्र।
सावधांत थइ सांभलो, जनम करउ सुपवित्र ।।९।।

अंतिम पद्य—

सहर बड़ा मुलताण विशेषा, कान सुण्या अब देख्या वे।
सुमतिनाथ श्री पास जिणंदा, मूल नायक सुख कंदा बे।
खरतर संघ भला मुलतानी, नगर मुख्य दीवाणी बे।
सिंधु श्रावक संघ सौभागी, गुरु गच्छ केरा बहुरागी बे।
जाण श्रावक ते जेसलमेरा, मरम लहइ धर्म केरा बे।
करमचंद रीहड़ जाणीता, साह वसइ सुविछता वे।
संधि पूरव मरुधर गुजराती, ढाल नवीनव भाती बे।
चतुर विचक्षण तुम्हें होइ, ढाल म भांगज्यो कोइ बे।
भागी चूड़िमइं नहीं सकारा, तुटि लरिमइं ज्युं हारा बे।
भागइ मनि न सोहइ वयरागी, तिम न सोहइ ढ़ाल भागी बे।
कनक मुदड़ी नग विहूणी, रसवती जेम अलूंणी बे।
कंत विना जिम नार विरंगी राग विण ढ़ाल न चंगी बे।
मीठी ढाल राग सिउं मेली, जिम मिश्री दूध भेली बे।
तेहभणी ढ़ाल रागसिउं कह्यो, चतुर तुम्हें जस लेयो बे।
बारमी ढ़ाल खंड त्रीजानो, समय सुंदर मनिमानी बे।
श्री खरतर गछ कमल जिणंदा युगप्रधान जिनचंदा बे।
श्री जिनसिंघ सूरि सोभागी, पुण्यदशा जसु जागी बे।
प्रथम शिष्य श्रीं पूज्यां केरां,सकलचन्द्र गुरु मेरा बे।
तसु प्रसादि थया ग्रंथ पूरा, प्रगट्या सुजस पंडूरा बे।
सोलसइं अडसठा वरषे हुइ चउपइ घणे हरखे बे।
मृगावती चरण कह्या त्रिहुं खंडे, घणे आनंद घमंडे बे।
‘मोहणवेलि’ चउपइ सुणतां, भणतां नइ वलि गुणतां बे।
समयसुंदर थइ संघ आसीसा, ऋद्धि वृद्धि सुजगीसा बे।

•

विजन और मैं

— श्री रमाकान्त श्रीवास्तव

मैं देख रहा हूँ
धरती के ओठों के ऊपर
झुक रहा गगन सन्नाटे में;
रोमाञ्च विजन में व्याप रहा;
दिल की धड़कन के स्वर जाकर
दूरस्थ क्षितिज के प्राचीरों को छू आते।
यह विजन दूर तक फैला है
उस सागर-सा,
नौकाओं की फिसलन से जो अनजाना है,
जिसके ऊपर की वायु झुकी
पतवारों के आलिंगन से है अनजानी।
बेहद फैली है ख़ामोशी
लगता है गुमसुम डूब रहा जीवित समाधि ले लेने को।
भूतों की रूहें चित्र खींचली मौन, धुंध की कूँची से
क़ब्रिस्तानों के चित्र सामने उभरे आते।
जिस तरफ़ निगाहें जाती हैं
लगता कोई आहिस्ते से
हल्की सर्राहट पर तिरकर
बचकर निगाह से निकल गया।
यह सर्राहट बिछती जाती
चौंकती निगाहों के सम्मुख।
धक धक करता है दिल
जैसे धड़कनें आख़िरी जीवन की
धक धक करतीं।
यह वीरानी

धरती पर की चेतनता के पहले जैसी;
यह वीरानी
चेतनता की अर्थी के उठ जाने जैसी।
लगता शरीर से आत्मा को खींचे लेती,
खिंचता जाता मैं भी खिंचाव के साथ साथ
अपनी अर्थी अपने ही कंधों पर धरकर
अनजाने गाता साँसों की सन-सन में
मरसिया मौत का अपना ही।
यह विजन फ़िल्म-सा उघरा है
एक्स-रे ज़िन्दगी का इस पर
उभरा उभरा
मातम की मौन उदासी की साँसें भरता।
हँसी-खुशी,
रोना-धोना,
संगीत-साज
सशरीर हुए-से
छायाओं-से काँप रहे।
जैसे कि ज़िन्दगी के रहस्य के स्याह चित्र—
के माथे पर
पड़ रहीं सिकुड़नें रह-रहकर
ज़िन्दगी-मौत के प्रश्नों में उलझी उलझी।
यह विजन घोर सन्नाटे का
निःशब्द शब्दमय हो रहता इसमें आकर।
ख़ामोश खड़ा
सहमा ठिठुरा
मैं सुनता हूँ
मेरी देही के रोम-कूप से
अजब अजब ध्वनियाँ उठतीं
जब झनक घोर सन्नाटे को उनमें पड़ती।
मैं सोच रहा—
ज़िन्दगी नहीं कुछ, बुदबुद है
सुनसान मौत के वीरानी सन्नाटे पर।

गुजराती कहानी—

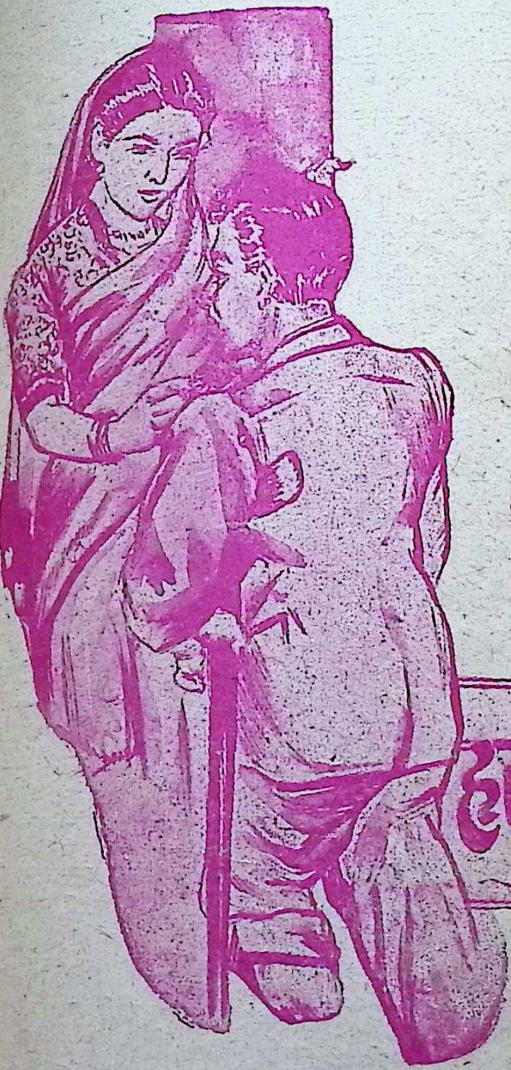

"मैं ? क्या तू मुझे नहीं पहचान पा रही हैं ?" आने वाले ने धीमे से जवाब दिया। इसके शब्दों में करुणा बह रही थी। "मैं ललितमोहन !"

"क्या ?" लक्ष्मी भयभीत हो उठी। "ललितमोहन या उसका भूत !"

जमीन पर लकड़ी टकराने की कर्कश आवाज हुई और ललितमोहन आगे बढ़ा।

हृदयदर्पण

श्री धूमकेतु

पन्नालाल कुरसी पर बैठे सिगरेट से धुआँ छोड़ रहे थे; और बार-बार अपनी दृष्टि सीढ़ी की ओर घुमाते थे। वृद्ध होते हुए युवक-से दिखाई देने वाले उनके दृढ़ शरीर पर भी समय अपना प्रहार कर चुका था, और इससे दीवान साहब की चकोर जैसी आँखों में वृद्धावस्था की शिथिलता आ गयी थी। चेहरे पर झलकी वृद्धावस्था के कारण इनकी कठोरता किंचित् नरमा गयी-सी लगती थी। दीवान साहब ने सिगरेट पूरी की, इतने में सीढ़ी पर किसी के आने की आहट आने लगी। नूपुर की झंकार के बाद रूपे के घण्टे-सा मधुर रणत्कार तुरन्त ही सुनाई दिया—"मामा, आप मुझे बुलाते हैं, क्या ?"

"हाँ, हाँ, बिटिया लक्ष्मी, आओ।"

पन्द्रह-सत्रह वर्ष की इठलाती युवती ने कमरे में प्रवेश किया। इसके मुख पर लक्ष्मी-सी चंचलता थी, और विलासप्रिय स्वभाव की अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक परिमाण से किंचित अधिक इसकी मस्त आँखों में तेजी थी।

कुरसी पर दीवान साहब बैठे थे, और सामने के कोच पर वह आकर बैठी।

"लक्ष्मी, तुझसे एक बात कहना चाहता हूँ। तू शिक्षित है, इससे जीवन की गंभीरता समझ सकती है। बता, तूने अब क्या विचार किया है?"

"किस बात का मामा?"

"सुन, ललितमोहन तुझे पसन्द है क्या?"

लक्ष्मी लज्जित होकर नीचे देखने लगी—पाँव के अँगूठे से धरती कुरेदने लगी, और उसके चेहरे पर लाली दौड़ गयी!

"देख बेटी, लज्जित होने का यह समय नहीं है, सुन ले जरा। तेरा मन कन्हैयालाल पर झुक रहा है, पर कन्हैयालाल तो मूर्ख और उड़ाऊ है। इसे तो मैंने दूर का रिश्तेदार मानकर अपना व्यक्तिगत सेक्रेटरी बनाया है, इतना ही, और इसमें विलासी स्वभाव के अतिरिक्त और कोई गुण नहीं है।"

श्री धूमकेतू

लक्ष्मी सुनती रही। दीवान साहब और भी आगे बढ़े—"यदि हो सके तो ललितमोहन की ओर आगे बढ़ना, यह मेरा भतीजा है। बस, अब जाओ। आज से पन्द्रह दिन के भीतर मुझे जवाब दे देगी न?"

लक्ष्मी ने ऊपर देखा। वह लज्जा दूर कर बोली—"और ललितमोहन पसन्द न आये तो?"

"तो तुझे विल में पचास हजार देने का लिखा है, वह रद्द कर दूँगा।"

दीवान साहब ने थोड़ा कठोर उत्तर दे दिया।

लक्ष्मी बिना बोले घर चली गयी। वहाँ कन्हैया इसकी बाट देखता था। सबसे नवीन फैशन के बाल, मोहक चहरा और प्रियदर्शी स्वभाव—स्त्रियों को जीतने की कई कलाएँ कन्हैया के पास विद्यमान थीं। वह थोड़ा झुककर, हाथ धरती से छूला

कर माथे पर लगाते हुए—सलाम करते हुए बोला—"पधारिए, पधारिए ! आपको मालूम ही कैसे हो सकता है कि यह कन्हैया आपकी पपीहे की तरह राह देखता होगा।"

अधिक परिचय ने कन्हैया को इतनी स्वतन्त्रता लेने का अधिकारी बना दिया था। फिर, सेठ पन्नालाल का यह प्राइवेट सेक्रेटरी था, और लक्ष्मी सेठ की आश्रिता-सी थी। इससे लक्ष्मी भी इतनी स्वतन्त्रता में अपनी आँखें न चढ़ाती। इसका मन ऐसे-ऐसे प्रसंगों से कन्हैया की ओर खिंचा जा रहा था।

यह नाटक इतना अभिनीत हुआ ही था कि रंगभूमि पर एक नये आगंतुक ने प्रवेश किया—"अरे खूब !"

कन्हैयालाल के मन को इसकी उपस्थिति अच्छी न लगी, परन्तु मुँह की मुद्रा स्वाभाविक बनाए रखकर इसने कहा—"ललितमोहन, तू कब आ गया रे ?"

"कल रात्रि को।"

ललितमोहन दिल्ली रहता था। अपने काका के यहाँ महीने भर में एकाध बार आ जाता। सामाजिक कार्यों में वह अपना सहयोग देता था और इससे सारे दिल्ली शहर में वह प्रख्यात था। इसकी डॉक्टरी भी दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती जा रही थी।

पन्द्रह दिन तो देखते ही देखते बीत गये। इन पन्द्रह दिनों में लक्ष्मी ललितमोहन के परिचय में भी आई। ललितमोहन के गंभीर स्वभाव के वातावरण में वह घबरा जाती। और इसके बाद जब कन्हैया की मधुर ध्वनि सुनती, तभी इसके जी में जी आता ! ललितमोहन की प्रत्येक बात से लक्ष्मी आनंदित अवश्य होती, उसकी भावना भी वह अवश्य ग्रहण कर लेती, परन्तु उसका गंभीर स्वभाव इसे बिलकुल नापसन्द था, और इससे ही इसका दिल कन्हैया की ओर खिंचा जा रहा था।

पर एक बार कन्हैयालाल ने अपना मूल स्वभाव दिखा दिया, और इसके पश्चात लक्ष्मी ललितमोहन की ओर अधिक से अधिक झुकती गयी।

घनघोर बादल छाये थे, और वर्षा टूट पड़ने की तयारी कर रही थी। ललितमोहन, उसकी माता, कल्याण नायक और लक्ष्मी—सब अँगीठी के पास बैठकर ताप रहे थे, और गप्पें लगा रहे थे। थोड़ी दूर पड़ी हुई आरामकुर्सी पर पड़ा हुआ कन्हैयालाल भी भूल रहा था। उसी समय आधे पागल-से एक गरीब-से आदमी ने आकर कन्हैयालाल से प्रश्न किया—"सेठ पन्नालाल के मन्त्री आप हैं ?"

"क्यों ?"

"यह चिट्ठी है।"

कन्हैया ने चिट्ठी लेकर मुँह बिचकाते कहा—"निकम्मी जिम्मेवारी"

लक्ष्मी यह तमाशा देख रही थी। वह हँसते हुए बोली—"क्या है, मंत्री साहब ?"

कन्हैयालाल ने जल्दी से उत्तर दिया—"यह तो मंत्री साहब के नाम चिट्ठी है।" और यह कहकर उसने ललितमोहन की ओर हाथ बढ़ाकर चिट्ठी फेंक दी। ललितमोहन ने चिट्ठी पढ़कर कन्हैयालाल की ओर देखा—"कन्हैयाजी ! आपकी दिल्लगी कभी तो गरीब को अभिशाप बन जाती है।"

आये हुए ग़रीब आदमी ने विनय की—"मां-बाप ! मेरा इकलौता पुत्र बीमार है। यदि यह पानी बरसा, तो वह मर जाएगा। चलिए जल्दी साहब !"

हाँ, हाँ, सच बात है बिचारे की। ललितमोहन, इसका मजाक मत उड़ाइये। जाइए इसके साथ !"

ललितमोहन ने तिरस्कार भरी दृष्टि से कन्हैया की ओर देखा। और फिर वह गंभीर होकर बोला—"कन्हैयाजी ! देखिए, अपना घर बदलना इस आदमी की तात्कालिक आवश्यकता है, कारण कि इसका बेटा बीमार है। सेंठ ने भी लिखा है कि—'हमारे नये मकान का, इसके घर के नजदीक से नजदीक का कमरा खाली करदो।' आप जाओ। संकटापन्न का कार्य है।"

कन्हैयालाल उत्तर में केवल हँस पड़ा "वाह भाई वाह, इस ग़रीब आदमी को क्यों बनाते हो ? देखा भाई ! दुनियाँ इसी तरह चलती है न ! आप मंत्री होते हुए भी जाते नहीं हैं और मुझ-से अनजान आदमी को मंत्री बनाए डालते हैं ! यदि मैं मंत्री होता तो इतनी देर क्यों लगाता ?"

ललितमोहन अत्यन्त क्रोधित हुआ। कन्हैयालाल मज़ाक उड़ा रहा था, और उस गरीब का जी जा रहा था। वह खड़ा हुआ—"कन्हैया ! तू जाता है या नहीं ?"

"नहीं मंत्री साहब !"

वह ग़रीब आदमी फिर गिड़गिड़ाया—'भाई ! आप दोनों में से कौन मंत्री हैं—यह मुझे मालूम नहीं है। मुझे बनाकर हँसने का यह समय नहीं है। वर्षा आने के पहले घर बदल डालूँगा तो मेरा इकलौता बेटा जी जाएगा, न्यूमोनिया से बच जाएगा....!"

"अच्छा भाई !" कन्हैयालाल ने उत्तर दिया "देख, ये चलते हैं मंत्री साहब तेरे साथ !"

ललितमोहन एक भी शब्द बोले बिना चल पड़ा। ग़रीब आदमी और ललितमोहन जैसे ही बाहर निकले, धुँआँधार वर्षा होने लगी। फ़िर भी रात्रि के सघन अन्धकार को चीरकर आती हुई कन्हैया के हँसने की आवाज इन दोनों ने सुनी !

दूसरे दिन लक्ष्मी को पता चला कि उस गरीब आदमी का लड़का ऊपर पानी गिरने से न्यूमोनिया की बीमारी से इस क्षणभंगुर जगत को छोड़ कर चला गया ! लक्ष्मी

गंभीर हो गयी। उसने कन्हैया को स्वाभाविक स्वरूप में देख लिया। कन्हैया की धारणा में जीवन भी जुआ था। लक्ष्मी आज गंभीर मुद्रा में ललितमोहन से लगी खड़ी थी। ललितमोहन ने उसकी ओर देखा और कहा—"लक्ष्मी, तू आज शान्त कैसी हो गयी ?"

लक्ष्मी के हृदय में तूफान उठ रहा था। आज अन्तिम दिन था। कन्हैयालाल, विलास की साक्षात मूर्ति-सा सबेरे मिलते ही लक्ष्मी का मन चलित कर गया था। नाजुक शरीर, मोहक चेहरा और पान खाये हुए-से अरुण अधरों का अवर्णनीय रस-प्रवाह, कपोल में छोटी बिन्दी, नवीनतम फैशन के बाल और आँखों में जादू। कन्हैया किस प्रकार छोड़ा जा सकता है ? दूसरी ओर ललितमोहन की सादी पोशाक के नीचे सुन्दर दीप्तिमान आत्मा, पन्नालाल का उत्तराधिकारी, सच्चा गृहस्थ और लक्ष्मी के योग्य निर्मल-स्वभाव !

दोनों के आकर्षणों के बीच चुनाव कर लेने के लिए भावनाओं का तुमुल युद्ध हुआ। अन्त में ललितमोहन की ओर ही मन गया, किन्तु ललितमोहन सादा, ठंडे स्वभाव का पुरुष था, मस्त रसिक नहीं।

"लक्ष्मी !···शान्त कैसी है ?"

लक्ष्मी ने मौन भंगिमा से मनोभाव बनाते तलवार की धार-से अपने नैन घुमाये। ठंडा ललितमोहन शालीनता से एक डग आगे बढ़ा। उसने लक्ष्मी का हाथ अपने हाथ में ले लिया। कितना सुन्दर स्पर्श !

फिर भी लक्ष्मी ने इन्कार नहीं किया। वह खड़ी रही।

"लक्ष्मी, दीवानजी ने क्या कहा है ?"

"क्या कहा है ? कुछ नहीं।"

—और वह चपलतापूर्वक भाग गयी। अपने घर चली गयी।

कन्हैयालाल निराश हुआ। लक्ष्मी के सामने आते ही, उसने उसे रोकने का प्रयत्न किया। किन्तु वह तो क्रुद्ध मुद्रा में ही चली गयी। अन्ततोगत्वा ललितमोहन और लक्ष्मी का विवाह भी हो गया।

कुछ दिन पश्चात ललितमोहन को बाहर जाना पड़ा। एक देशी राजा काश्मीर की सैर के लिए जा रहे थे। ललितमोहन लक्ष्मी को यहाँ छोड़कर अकेला ही उसके साथ गया। यदि न जाय तो उज्ज्वल भविष्य हाथ से जा रहा था ! लक्ष्मी अकेली रही। पर कन्हैयालाल उसके मन से बिलकुल हटा न था।

ललितमोहन काश्मीर गया। लक्ष्मी-ललितमोहन के बीच पत्र व्यवहार भी चलता था।

एक दिन अचानक ललितमोहन की मृत्यु का समाचार आया ! काश्मीर से

लौटते समय रेलगाड़ी दुर्घटना-ग्रस्त हुई, और उसमें मरे हुए लोगों की सूची में ललितमोहन का नाम भी था ! इधर सेठ पन्नालाल के यहाँ एक सन्तान भी उत्पन्न हुई थी, और इससे ललितमोहन का उत्तराधिकार भी समाप्त हो गया था !

एक बार सावन मास की भयंकर रात्रि में वर्षा के छींटे पड़ रहे थे। लक्ष्मी अकेली अपने कमरे में बैठी कुछ सोच रही थी। कन्हैयालाल का संसर्ग ललितमोहन की मृत्यु के बाद काफी बढ़ गया था। ललितमोहन की मृत्यु से लक्ष्मी निरंकुश थी, और कन्हैयालाल अधिक से अधिक रसिक बनता जा रहा था। आज सबेरे भी वह आया था, और दोनों के बीच बहुत देर तक बातचीत भी हुई थी। "क्यों लक्ष्मी, आखिर तूने क्या सोचा है ?"—कन्हैयालाल ने सिगरेट पीते हुए यह प्रश्न सबेरे पूछा था। लक्ष्मी लज्जित हो गयी ! और उसने अपनी बात मानों आँखों से कह दी !

कन्हैयालाल ने रसमय शब्दों में कहा—"लक्ष्मी, हम कुछ समय रुक जाएँ और फिर सदा के लिए एक हो जाएँ, यही ठीक होगा !"

लक्ष्मी ने "हाँ" कहा और सूचना दी—"ठीक है, पर आप अभी यहाँ का आना जाना बन्द कर दीजिए।"

"इसका अर्थ यह है न, कि मैं तुझे एक दिन नया लगूँ" ?

"नहीं। लोगों का मुँह बन्द हो जाए। पर हाँ, मुझे यह भास होता ही रहता है कि ललितमोहन अभी जीवित है !"

"तार आया, अखबार में भी पढ़ा। क्या यह सब झूठ हो सकता है ?"

कन्हैयालाल चला गया।

"जिन्दा हो यह अशक्य है", यह सबेरे दोनों ने स्वीकार कर लिया था। और अब लक्ष्मी इस पर सोच विचार कर रही थी। पर इतने में प्रवेश द्वार पर किसी ने थपथपाया ! स्टोव के ऊपर का चाय का पानी वैसा ही छोड़ कर द्वार के पास वह गयी और पूछा, "कौन ?"

"मैं !" बाहर से आवाज आई।

लक्ष्मी उबलते पानी में चाय डालने के लिए अलमारी की ओर गयी, और जाती हुई बोली—"कौन, कल्याण ? आओ, द्वार खुला है।"

लक्ष्मी ने मान लिया कि आने वाला कल्याण नायक होगा। यह तो अपने चाय बनाने के काम में व्यस्त थी। इतने में आने वाले की परछाईं इसकी कुर्सी के सामने पड़ी।

लक्ष्मी ने जल्दी से उसकी ओर देखा। और जो दृश्य उसने देखा उससे वह स्तब्ध हो गयी। इसके गले से जोर से निकल पड़ा। "तू कौन है.....रे ?"

"मैं ? क्या तू मुझे नहीं पहचान पा रही है ? आने वाले ने धीमे से जवाब दिया। इसके शब्दों में करुणा बह रही थी। मैं ललितमोहन !"

"क्या ?" लक्ष्मी भयभीत हो उठी। "ललितमोहन या उसका भूत !"

"जमीन पर लकड़ी टकराने की कर्कश आवाज हुई और ललितमोहन आगे बढ़ा। लक्ष्मी का ध्यान तुरन्त उसी ओर गया। ललितमोहन लकड़ी की सहायता से चल रहा था। वह शीघ्रता से बोल उठी—"नहीं, तू ललितमोहन नहीं है।"

ललितमोहन के चेहरे पर विषाद की गहरी छाया छा गयी। इसके कद्रूप बने हुए चेहरे में मानों अभी बाहर निकल आएगी ऐसी, मांस के बड़े लोथड़े-सी दाहिनी आँख फड़कती थी। एक लुंजा हाथ बिलकुल निराधार-सा लटक रहा था। वह अत्यन्त करुण और गंभीर स्वर से बोला—"लक्ष्मी, तू मुझे नहीं पहचानती है ? मैं ललितमोहन हूँ। रेलगाड़ी की दुर्घटना से मेरी यह दशा हुई है।"

लक्ष्मी से मानों यह सहा न जाता हो, इस तरह इसने हाथों से आँखें बन्द करलीं और काँपते स्वर से बोली—"अरे, आप भले ललितमोहन हों—पर मुझसे यह देखा नहीं जाता है ! अरे, पर आपकी आँख ! पर आप तो—"

"मर चुका हूँ—ऐसा तूने सुना था न ?"

"हाँ।"

"वह गलत है; मैं जिन्दा हूँ!" लक्ष्मी धरती पर इसके चरण-कमलों में झुक पड़ी और बोली—"ललितमोहन, दया कीजिए, कृपा करके ऐसे ही रहिए, प्रकट न होइए !'

ललितमोहन का चेहरा ग्लानि-से छा गया। तुरन्त ही उसकी आँखों में साधुता का तेज चमक उठा और धीरे से भावपूर्ण शब्दों में बोला—"अप्रकट रहूँ—यह तू कहती है ?"

"हाँ।"

लकड़ी की एक कर्कश आवाज हुई, और लक्ष्मी उठ कर खड़ी हो इसके पहले तो वह ठेठ द्वार के पास पहुँच गया था। उसने गंभीर स्वर से कहा—"लक्ष्मी ! मैं तुझे वचन देता हूँ कि मैं अप्रकट रहूँगा। तू सुखी हो। किन्तु इतना याद रखना कि जीवन की हर स्थिति में कुछ सच्चा सौन्दर्य छिपा रहता है, जीवन की प्रत्येक अवस्था पवित्र है।"

ललितमोहन डॉक्टर कृष्णमोहन के घर गया। उसे दुर्घटना से बचाकर उसकी सेवा करने वाला वही आदमी था।

डॉक्टर के यहाँ आज तक पड़ा रहा था, और इसने अपने घर जाने की प्रार्थना करके आज छुट्टी माँगी थी, कारण कि कृष्णमोहन अभी इसे श्रम करने देने क

तयार न था। ललितमोहन ने गुप्त रहकर लक्ष्मी से मिलने का विचार किया। आज यह इच्छा पूर्ण हुई। वह धीमे तथा ग्लानि भरे डगों से डाक्टर के यहाँ चला।

ललितमोहन ने धीरे से द्वार में प्रवेश किया। सौम्य स्वभाव की मूर्ति जैसी कृष्णमोहन की पत्नी द्वार में खड़ी थी। इसका नाम भी लक्ष्मी था—पर नाम ही एक था, हृदय अलग!

"ललितमोहन भाई, हो आए?" लक्ष्मी का मधुर स्वर ललितमोहन का हृदय वेधने लगा।

"हाँ, लक्ष्मी!" ललितमोहन उसके पाँवों में झुक गया—"मेरी माता बनकर तू मेरा पालन-पोषण कर, अपनी माता की गोद में बैठने जैसी शान्ति आज मुझे तेरें सान्निध्य से मिलती है!"

"क्या हुआ ललितमोहन, हो आये क्या?"

ललितमोहन की आँखों से आँसुओं की धाराएँ बहने लगीं।

"मां, यह पूछ तू मेरी शान्ति भंग कर रही है, यह प्रश्न छोड़ दे!"

लक्ष्मी सारी बात समझ गयी; वह बिना अधिक बोले ललितमोहन के पास बैठ गयी। "ललितमोहन!"

"मां!"

"एक बात याद आती है—मेरा भाई भी तेरी-सी अवस्था में था। इससे वह दुखी रहता था। मेरी मां के पास वह बहुत रुदन करता, तो मां कहतीं—'स्नेह दोष को पी जाता है। यदि दोष न पिया जाय, तो स्नेह न हो। जब सब तुझे तिरस्कृत करेंगे, तब भी इस गोद में तेरे लिए सदा स्थान रहेगा'!"

"मैं भाई को चिढ़ाती। भाई बिचारा चल बसा। पर आज मुझे वह प्रसंग बेध रहा है। ललितमोहन! मेरे भाई! उस दोष के निवारण का ईश्वर ने आज मुझे अवसर दिया है!"

बिखरते बादलों से कौमुदी खिल रही थी, और इस प्रकाश में ललितमोहन और लक्ष्मी की आँखें मिल गयीं। एक में आभार, करुणा और आश्चर्य था; दूसरी में माता-सा विशुद्ध प्रेम, और स्त्रीत्व की पूर्णाहुति!

प्यारे चित्रकार! यह चित्र अंकित कर दे!

अनुवादक—श्री शांति आँकड़ियाकर

नींद

—श्री महेन्द्र भटनागर—

आज मेरे लोचनों में
नींद घिरती आ रही है!

व्योम से आती हुई रजनी
मृदुल माँ-वत् करों से थपकियाँ देती,
नव-सितारों से जड़ित आँचल
बिछा है, आँख सुख की झपकियाँ लेतीं,
चंद्र-मुख से सित-सुधा की
धार झरती आ रही है!
आज मेरे लोचनों में
नींद घिरती आ रही है!

सुन रहा हूँ स्नेह का मधुमय
तुम्हारा गीत कुसुमों और डालों से,
प्रति-ध्वनित है आज पत्थर से
वही संगीत सरिता और नालों से,
रागिनी उर में सुखद मद
भाव भरती जा रही है!
आज मेरे लोचनों में
नींद घिरती आ रही है!

बन्द पलकों के हुए पट, पर
दिखाई दे रहा यह, पी रहा हूँ मैं,
नव पयोधर से किसी का दूध
शीतल, भान भी है यह, कहाँ हूँ मैं,
स्वस्थ मांसल देह-छाया
झूम गिरती आ रही है!
आज मेरे लोचनों में
नींद घिरती आ रही है!

छत्तीसगढ़ का लोककाव्य

— श्री राजेन्द्र गुप्त

किसी भी देश का लोक-काव्य उसकी संस्कृति का प्रतीक होता है। छत्तीसगढ़ की जलवायु और धरती से भी ऐसे लोक काव्य की सृष्टि और पुष्टि हुई है। करमा, ददरिया, सुआ, भोजली, बिहाव, सोहर, बीरम और डंडा से इसका परिचय मिलता है। इन सब गीतों में शब्द सम्पद या छन्द वैचित्र्य न होते हुए भी, भाव सम्पद की कमी नहीं है। शिल्पकार जिस तरह अपनी छेनी से ऐसी कला का सृजन करता है जिसे संसार पसन्द करता है, उसी तरह लोक-काव्य की दो-चार पंक्तियों में ऐसा चित्रांकन देखने को मिलता है, जिससे सभी आनन्द विभोर हो जाते हैं।

छत्तीसगढ़ के ग्रामों में सुआगीत का बड़ा प्रचार है। सुआगीत छत्तीसगढ़ी लोक काव्य एवं लोक संगीत का एक अंग है। इन गीतों के रचयिता के सम्बन्ध में कोई बात दृढ़ता से नहीं कही जा सकती, फिर भी ऐसा समझा जाता है कि रचना में छत्तीसगढ़ी ग्रामीण स्त्रियों का ही विशेष हाथ रहता है। उत्सव, आनन्द, विरह, मिलन एवं अन्य शुभ अवसरों के लिए स्त्रियों ने इन्हें तयार किया है। सुआगीत में अपूर्व सुन्दरता है और है अपूर्व रससिक्तता। सुआगीत में कोमलता और करुणा के समन्वय से जिस अलौकिक मूर्ति की रचना हुई है, वैसी अन्यत्र नहीं मिलती।

वसन्त के आगमन पर प्रकृति जब सिहर उठती है, पल्लव मस्ती से झूमने लगते हैं, फूल-फूल पर मधु उत्सव होता है, कोकिल का कण्ठ फूट पड़ता है, इन स्वर्गीय क्षणों में छत्तीसगढ़ी ग्राम युवतियाँ भी अपने को संयत नहीं रख पातीं और सुआ की प्रतिमा एक टोकनी में रखकर परम्परागत शृंगारों से अलंकृत हो वृत्ताकार, तालियाँ बजाती हुई दो दलों में ये गीत गाती हैं। इन सरलाओं के कण्ठ से इन गीतो में जीवन आ जाता है और वे भाव-विभोरी गायिकाएँ तन्मयता से झुक-झुक कर नाचने लगती हैं। सुनिए—

सुअनारे सुअना भर मोरे सुअनारे !
प्रथम दल— पहिले गबन के देहरी बैठारे,
छोड़ राजा जाथौ बन झारि
काकर सन खइहौं, काकर सन खेलिहों
का देख रहि हौं मन बाँधि।

दूसरा दल— अँगना लगा ले तुलसी के बिरवा
उला देख रहि मन बाँधि,
तुलसी के बिरवा हरियर हरियर
मोर पिया करत बनीज,
तुलसी के बिरवा झुरमुर झुरमुर
मोर पिया गे रन जूझ।

किसी नव विवाहिता का पति विदेश जा रहा है, उसी के उद्‌गार में युवतियों का प्रथम दल गा रहा है। वह पति से कह रही है, "अभी ही तो मैं ससुराल आई हूँ और अभी ही तुम वन को चले। मैं किसके साथ खेलूंगी, किसके साथ खाऊँगी और काहे से धीरज बनाए रखूँगी ?"

दूसरा दल उसे उत्तर देता है, "धीरज बनाये रखने के लिए तुम अपने आँगन में तुलसी का एक वृक्ष लगा लो। यदि वृक्ष हरा रहे, तो समझना कि तुम्हारे प्रियतम वाणिज्य व्यवसाय कर रहे हैं, यदि वृक्ष सूखने लगे तो सोचना कि वे रण में जूझ गये हैं।"

उत्सवों की रोचकता और सफलता के लिए लोकगीतों का गायन आवश्यक होता है। छत्तीसगढ़ के मनोरम वातावरण में कुछ ऐसे प्राकृतिक तत्व हैं, जो साहित्य, संगीत और कला को स्वाभाविक रूप से प्रेरणा प्रदान करते हैं। फलतः प्रत्येक उत्सव या त्यौहार के आते ही छत्तीसगढ़ की स्त्रियाँ गायन-वादन से आनन्द विभोर हो जाती हैं।

सावन के महीने में जब चतुर्दिक हरियाली फैली रहती है, रक्षाबन्धन के एक सप्ताह पूर्व बालिकाएँ एवं महिलाएँ टोकनी में खाद डाल कर अन्न के दाने बो देती हैं और इस हरियाली से छाये पौधों को देवी का प्रतीक मान कर महिलाएँ पूजनादि करते समय अपने मनोहर कण्ठ से वे हृदयग्राही, चित्ताकर्षक गीत गाती हैं, जिन्हें सुन कर रसिक हृदय झूम उठता है और पत्थर भी पसीज जाता है। ये ही भोजली गीत कहलाते हैं। रमणियों के हृदय कमल खिल जाते हैं और मन मयूर नाचने लगते हैं, ऐसे समय में उनके आन्तरिक भाव फूट पड़ते हैं। जरा अनुभव कीजिए—

देवि गंगा देवि, गंगा लहरा तुरंगा
हमरो भोजलि देवि के भीजें आठों अंगा।
माड़ी भर जोधरी पोरिस कुसियारे
जल्दी जल्दी बाढ़ो भोजलि होयौ कुसियारे।

"हे देवी गंगा, अपनी लहरों से हमारी भोजली देवी के आठो अंग भिगो दे। हे भोजली देवी ! जल्दी जल्दी बढ़कर बड़ी होओ।"

दिवस के अथक परिश्रम के उपरान्त रात्रि में नारियाँ ग्राम में निश्चित प्रमुख स्थान पर एकत्रित हो नचौरी गाती हैं, जिसमें हास्य रसात्मक पुट के साथ विरह, पारस्परिक प्रेम, गृह-कलह आदि का मनोरम सजीव और हृदयस्पर्शी चित्रण रहता है। सुनिए—

ओ दिदी मोरे पिया गे परदेस।
न कोन्हू आवे; न कोन्हू जावे, न भेजे सनदेस,
पिया गे परदेस।
काकर बर मेंहर मेंहदी रचाऊँ,
काकर बर संवारू केस,
काकर बर रेंहर भात साग राधों,
पिया बसे दूर देश।
बिभाथे* ओकर† बिन मोला दिदी
मोर सास ससुर के देस,
मोर पिया गे परदेस !

गाने के साथ बजता है ढोल। स्त्रियों के मधुर स्वर, ढोल की मीठी ध्वनि और गीतों के चरण, सभी मिलकर एक दिव्य आनन्द की सृष्टि करते हैं। यह आनन्द केवल छत्तीसगढ़ के गाँवों में ही देखने को मिलेगा। शहर के कृत्रिम वातावरण में नहीं।

अन्त में ये गीत नाट्य-गीत में परिवर्तित हो जाते हैं। विरहिणी एवं ज्योतिषी के वार्तालाप के रूप में एक गीत है। अपने प्रियतम से मिलने की इच्छुक एक विरहिणी ज्योतिषी से प्रिय मिलन के सम्बन्ध में पूछती है कि उसके व्रतपूजा करने पर भी प्रियतम ने उसे क्यों छोड़ा और कब मिलेंगे—

कौन गुना में परतेजेगा बैगा हो—कौन गुना में,
मावै नहाथौं, सुरुज पंइया लागाथौं,
चन्दा अरग में देथौंगा – कौन गुना में०
पूजा विरत करथौं, माळा ल जपथौं,
चद डोंख भाई ल बोकरा छलुकगा—कौन गुना में०
राति-राति जागि के जोहत हो रहा,
बिसर डारेंव अपन सुध ल गा—कौन गुना में०
तोर पंइया लागौं तोर बिनती करौं,
मोला बता पिया कब आगीगा—कौन गुना में०

---

* अच्छा लगता। † उनके

ज्योतिषी बताता है कि माघ के मेले में मिलेंगे—

माघ के मेला, पुन्नी नहाए ल ला,
पिया ल अपन तें पांवे टुरीओ—
अपन पिया ल पावे।

विरहिणी पूछती है वह क्या पहनकर वहाँ नहाएगी और फिर क्या पहनेगी—

काला पहिर मैं तुन्नी नहावौं
काला पहिर के घर आहुँगा—कौन गुना में०

ज्योतिषी कहता है कि उसका प्रियतम उसे वहाँ रेशम की धोतियाँ पहनने को देगा—

धोतिया पहिर के पुन्नी नहावे
पोतिया पहिर के घर आवे।
टुरी-ओ अपन पिया ल पावे।

विवाह सम्बन्धी गीत सब प्रदेश और भाषाओं के समान ही छत्तीसगढ़ी में भी अधिकता से प्राप्त होते हैं।

वर-वधू मंडप में बैठे हैं। विवाह-कार्य चालू हैं। स्त्रियाँ समवेत स्वर में गाती जा रही हैं। ऊंचे चबूतरे पर बैठे पिता ने घनी तुलसी के नीचे बैठी सोने चाँदी से सजी दुलहिन बनी गोरी पुत्री की आँखों से साँवला दूल्हा देखकर टपकी मोती-सी बूंदे देखीं। उसने पुत्री को साँवले रंग की शालीनता और काला गोरा होना नैसर्गिक घटना बताकर सांत्वना दी—

ऊँचे चंवरा बबा और चौपलिया, घन तुलसी के पेड़ हो
जेही तरी बैठी बिटिया, वोही तरी हिंगुन सुनार हो।
हार गढ़ाइया, बबा टिकुली गढ़ाइया, नथनी गढ़ाइया हो।
अतका पहिर के बिटिया चौक में बैठ, गिरथे मोती कस बूँद हो।
का थोरे होगे बिटिया चौक में बैठे, गिरथे मोती कस बूँद हो।
का थोर होगे, बिटिया कहे बर मलीन हो ?
सोन थोर होगे कि रूप थोर होगे, काहे बर बदन मलीन हो।
न बबा सोना थोर, न बबा रूपा थोरे, न बबा बदन मलीन।
हम बबा गोरे-गोरे, प्रभू जी हैं कारे ऐही बर मलीन हो।
काहे गोरे बिटिया भिन कहिहा कारे हैं श्री भगवान हो।
माई के कोख कोंहार के आवा, कोई कारे कोई गोरे हो।

लड़की की विदा का दृश्य कितना वेदनामय होता है, हर भारतीय माँ का हृदय

जानता है। छत्तीसगढ़ी स्त्रियों में लड़की के मैके से बिदा होते समय जो गीत गाया जाता है, उसमें कितनी करुणा भरी रहती है, इसका चित्र देखिए—

आ मोर दाई मैं जावत हो धियाँ अकेल
हई-हई रे मोर बीरम मैं तो धियाँ जावत हो अकेल
दाई ददा के इन्दरी जरत हे, भौजी के जियरा जुड़ाय
हई-हई रे मोरे बीरना भौजी के जियरा जुड़ाय

पाँच भाइयों की एक बहिन आज जा रही है। माता-पिता की छाती फटी जा रही है और भावज का कलेजा ठण्डा हो रहा है।

गोई के अंगना एक पेड़ लिमुआ
ओ मोरो दाई सब पंछी करथे बसेर,
दाई के अलौरिन, ददा के दुलौरिन
ओ मोरो बीरम गरब टूटत हे ससुरार।

प्रियतम के घर में एक नीबू का पेड़ है, जिस पर पंछी बसेरा करते हैं। मैं माँ-बाप के लाड़-प्यार से पली हूँ, वहाँ मेरा गर्व टूट जायगा।

शादी के कुछ महीने उपरान्त छत्तीसगढ़ में गौने की प्रथा है। इस समय कन्या के यहाँ गाये जाने वाले गीत अत्यन्त सरस, मधुर एवं करुणरस से ओत-प्रोत होते हैं जो वज्र हृदय को भी पिघला देते हैं, जिन्हें सुन कर वास्तव में हृदय विदीर्ण होने लगता है और शरीर स्नेह से रोमांचित हो उठता है—

दूध के रांधेव दूध खिचरी मोर बहिनी।
खायेन जंघिया जोर
पहिली कौंरा के उठाती मैं, बहिनी,
पहुँचिन ससुरे के लोग
सथराला* दियेवँ सरकाय,
तीसर कौंरा के उठाती में
पहुँचे संदेसिया ससुरे के।
ओ खबरिया गा ददा मोर।
पिंजरा लं दिये छटकाय।
सिया के सियरिया छोड़ेवँ,
डीह के ठाकुर छोड़ेवँ,
संगी के मैं साथ छोड़ेवँ

---

* काँसे की थाली।

भौजी के साथ छोड़ेवँ
भाई के हाथ छोड़ेवँ
देस ले विदेस भयेवँ
राज ले विराज होगेवँ
चिरई बसेर करेवँ
हँसा बसेर करेवँ ।
पुर * के पुतर बर, दाई, † मैं संग लगेवँ
सभिया खवाये घी लौंदी ओ दाई भोर,
अधरतिया चना के दार,
कुकरा के बासत ‡ दूध खिचरी ओ दाई !
मैं कौन दिन करिहौं घुटान £ ओ दाई ?
बेटा रहितेवँ तोर घर में रहितेवँ ।
बेटी भयेवँ, बिरान ओ दाई ?
आज चिरैयाँ, रनबन,¶ सबन, ओ दाई ।
काली चिरैया, बड़ दूर ओ दाई ।
आज के चन्दा नियरे नियरे रहिये ओ बहिनी
काली के चन्दा--बड़ दूर ओ बहिनी—

उपर्युक्त गीत में पवित्र एवं सरल प्रेम और करुण विरह वेदना की अभिव्यक्ति बरबस हृदय को स्पंदित करती है । गीत के शब्द भी बड़ी मार्मिकता एवं सार्थकता से चुने गये हैं ।

प्रेम और विरह सम्बन्धी गीतों पर छत्तीसगढ़ का अत्यधिक प्रभाव है, परन्तु उच्चारण अपना है । एक प्रेमिका अपने प्रेमी से पैरों के लिए पायल की याचना करती है । उसका हृदय पायल के लिए बुरी तरह तड़प रहा है । देखिए, वह अपनी माँग किस सुन्दर ढंग से सामने रखती है ।

ओ हो हो हो रे हाय ।
मोला पायरी के साध,
लौदे हीरा रुन झुन बाजै रे ।
चुटुक चुटुक तुर चुटकी बाजै,
पैरिन के झंकार,
आनै गुस्सा झे हौवें,
मही लगै हों पार ।

---

* परदेश † माँ ‡ सबेरे £ प्रतिदान ¶ बेठिकाना ।

पायल की बात करते करते उसकी माँ बनने की साध सामने आ जाती है। शायद लज्जा के कारण उसे वह अपने दैनिक जीवन में नहीं कह सकी, तभी तो गीतों का सुन्दर माध्यम मिला है। सुनिए—

न चाँदी ककना बोंहटा और न चाँदी चूरा,
आने सुख देवै हीरा, तोर हाथ के टूरा।

विरहिणी शकुन्तला के साथ विरह वेदना का अन्त नहीं हो गया, यह पीर तो सृष्टि के आदि से है और अन्त तक रहेगी। अतः एक छत्तीसगढ़ी विरहिणी में भी हम उसी शकुन्तला की झाँकी पा जाएँ तो अचरज की बात नहीं—

ए हे रे हाय! कहाँ गए घरवारे,
बंगला सूना कर गये रे।
भौंरा प्यासे मधु बिना,
कोयल बिना बसन्त
जाने श्री भगवन्त
चैत चरेरे घाम है,
धरती आग समान,
तैसे हम तुम्हारे बिना
जाने श्री भगवान।
जेठ महिना वो कोयल बोलै,
मन में बोलै मोर
जब तो तोरी सुरता आवै
जियरा में उठे हिलोर।

इस प्रकार उपरोक्त लोक गीत छत्तीसगढ़ी लोक काव्य की अमूल्य निधि है आधुनिक हिन्दी कविता की तरह इनमें न तो शब्दजाल है और न छन्दों का ही बन्धन। जिस तरह नदी की धारा स्वच्छन्द कल-कल ध्वनि के साथ बहती है, वन में वायु मरमर स्वर के साथ निर्बन्ध रूप में चलती है, अरण्य में फूल अपनी स्वाभाविक खुशी के साथ सौन्दर्य की सृष्टि करते हैं, ठीक इसी तरह छत्तीसगढ़ी गानों में भी छन्द की कोई बाधा नहीं है, पर मधुरता और स्वर का अभाव भी नहीं।

जीवन-गीत

—श्री अरविन्द—

मन की कुटिया में साधों का स्नेह लिए,
साँसों की बाती से जीवन दीप जलाता हूँ।

मेरे गीत बुझाया करते मरुथल की चिर प्यास।
मेरे गीत चलाया करते बिरहिन की हर साँस।
मेरे गीत जगाया करते आशा में विश्वास।
मेरे गीत बुलाया करते पतझर में मधुमास।

नयनघनों में सावन की बरसात लिए,
भादों की काली रातों में कजरी गाता हूँ।

सुरभि चुरा मेरे गीतों से महक उठी अमराई।
मेरे गीतों से मस्ती से बहक उठी पुरवाई।
मेरे गीतों की हाला पी मत्त पिकी बौराई।
मेरे गीतों से स्वर लेकर गूँज उठी शहनाई।

हूँ गायक गुमनाम, हाथ में जामलिए,
गीतों की मदिरा के दो-दो घूँट पिलाता हूँ।

मेरे गीत नहीं जग की नश्वरता से अनजान।
मत समझो, क्षणभंगुरता की नहीं इन्हें पहचान।
नहीं अमरता का सांसें भी ले आईं वरदान।
किन्तु दिये जाता हूँ जग को जिन गीतों का दान–

उन गीतों में जीवन का सन्देश लिए,
'सत्यं शिवम् सुन्दरम्' का दर्शन समझाता हूँ।

कहानी—

विमाता

-- श्री लीलाप्रकाश

"लो खुश हो जाओ, घी के दिये जलाओ। राजू पकड़ गया" प्रभाकर के स्वर में दुःख, घृणा, तिरस्कार, व्यंग्य, सभी कुछ था।

भामा चौंक पड़ी, "कह क्या रहे हो ?"

"ठीक ही कह रहा हूँ। खुश हो न अब ?" व्यंग्य अपनी सीमा पर था।

वह हतबुद्धि सी खड़ी रह गयी। "यह तुम क्या कह रहे हो ? कैसे पकड़ गया ? कहाँ पकड़ गया ?"

"यह जानकर क्या करोगी ? इतना ही काफ़ी नहीं कि लड़का पकड़ कर जेल में ठूँस दिया गया ?"

कहते कहते वह आँगन में पड़ी चारपाई पर "धम"-से बैठ गया।

"लेकिन यह मुझ पर आरोप कैसा ? क्या विमाता हूँ इसी से ? आज यदि वह मेरे पेट से जन्मा होता तो यह कहने का साहस किसे होता ?" उसकी आँखों में आँसू थे और होठों पर व्यंग्य।

"यदि वह तुम्हारे पेट से जन्मा होता तो तुम उसे अच्छी शिक्षा देतीं, उसे यों न बिगाड़तीं। पैसे दे-देकर झूठा दिखावा, झूठा लाड़ करके उसकी ज़िन्दगी न बरबाद करतीं। तुमने उसके प्रति माँ का कर्तव्य नहीं किया, तुम उसकी शत्रु निकलीं" दुःख और क्रोध से वह अधीर था।

"ठीक है। जब माँ नहीं हूँ तब शत्रु ही हूँ" उसके मुख पर कुटिल मुस्कान थी "किन्तु इसके उत्तरदायी तुम हो, मैं नहीं। तुमने मुझे कभी एक क्षण को भी यह न समझने दिया कि राजू मेरा पुत्र है। तुमने मुझे उसकी दूसरी माँ के रूप में ही देखा और तुम्हारे विचार से दूसरी माँ कभी बच्चे को ममत्व नहीं दे सकी। दोषी तुम हो, मैं नहीं। भूल गये वह रात्रि ? जब मेरे विवाह के प्रथम मिलन की रात थी ?"

वह उसके मुख की ओर देख रहा था।

"तुमने कमरे में आते ही मुझ पर अपना प्रभुत्व जमाना चाहा था। शायद, तुम्हें डर था, कहीं मैं तुम पर हावी न हो जाऊँ और तुम्हारे बच्चे, तुम्हारी पहली पत्नी के, जिसे शायद तुम बहुत चाहते थे, इस प्रेम चिह्न को मैं नष्ट न कर डालूँ। तुम्हारा मन ही नहीं, विचार भी दूषित थे, तुम्हारे संस्कार भी दूषित थे। यह तब नहीं समझी थी, अब समझी हूँ। भूल गये वह रात ? प्रथम मिलन की आशा में जब नई नवेली दुलहिन पति से प्यार-भरी मादक बातें सुनने की चाह मन में रखती है, उस समय तुमसे मुझे कर्तव्य की कठोर व्याख्या सुनने को मिली थी। तुमने राज को मेरी छाया से भी दूर रखा था। तुम्हें और तुम्हारे प्रियजनों को डर था,

कहीं मैं उस पर अपनी कुदृष्टि न डाल दूँ। याद हैं वे शब्द जो तुमने कहे थे ? 'मैं तुमको केवल इसलिए लाया हूँ कि बच्चे को और घर को सँभालो। बच्चे को दुख दोगी, तो मुझसे किसी बात की आशा न करना।' ओफ ! काश, तुमने एक नारी का हृदय समझा होता ! काश, तुमने राजू को लाकर मेरे हाथों सौंप दिया होता और मुझसे कहते ! लो इसे सँभालो, यह तुम्हारा है। आह ! किन्तु, तुम तो पिता पहले थे, पति बाद में, और पति का तो अभिनय ही तुम्हें करना पड़ रहा था ! तुम्हारा दूसरा विवाह जो था। जाने दो वह सब। यदि उस दिन तुमने मुझ पर विश्वास करके राजू को मुझे सौंपा होता तो कैसा अच्छा होता !" उसकी साँस घुटने लगी थी।

वह उसका मुख ताक रहा था "कहो. चुप क्यों हो गयी ? कह डालो।"

"कहूँगी, अवश्य कहूँगी" आँखों में आए आँसू क्रोध की ज्वाला में सूखते जा रहे थे, "तुम्हारा अभियोग है कि मैंने उसे लाड़ करके बिगाड़ा, किन्तु, यदि उसके माँगने पर मैं उसे रुपया न देती, तो क्या तुम कभी यह भूल सकते कि मैं उसकी अपनी माँ नहीं हूँ और इसी से बच्चे की इच्छाएँ पूर्ण नहीं करती, उसे सताती हूँ ? वह हठी होता गया, जिद्दी होता गया। उसके विरुद्ध कुछ कहने का मुझे साहस नहीं रह गया। तुमने उसके विरुद्ध कुछ कहने पर, मेरी बात पर कभी कान दिया ? तुमने समझा कि तुम आदर्श पिता हो। तुम्हारे हृदय में पुत्र-प्रेम था, और मैं ? मैं तो तुम्हारी दृष्टि में सदैव ही विमाता रही।"

प्रभाकर के मुख से घृणा का भाव हट रहा था। "वह दिन याद है ? जब पहली बार पैसे चुराने के कारण मैंने उसके गाल पर चाँटा मारा था ? तब तुम कितना बिगड़ उठे थे। मेरी बात सुनने के बजाय तुमने पड़ोसियों के कथन पर ही अधिक विश्वास किया था। काश, तुम समझ सकते कि ये दुनिया वाले किसी की शान्ति नहीं देख सकते। ये भरे पूरे घर में आग लगा कर ही प्रसन्न होते हैं। और तुम ? तुममें इतना साहस ही कहाँ था कि दुनिया वालों का मुँह बन्द कर सकते, उनसे चिल्ला कर कह सकते कि 'वह उसकी माँ है और जो ठीक समझे करने का उसे अधिकार है।' तुमने उसे मुझे. माँ के समान प्यार करना मेरा आदर करना सिखाया होता तो आज यह दिन न देखना पड़ता। भली बुरी कैसी भी थी मैं किन्तु जब तुमने मुझे उसकी माँ के पद पर आसीन किया था, तो उस पद की मर्यादा बनाए रखना भी तुम्हारा कर्त्तव्य था। तुम ही उसके असली शत्रु हो। काश, तुम समझ सकते कि विमाता, कोई नारी अपनी इच्छा से नहीं बनती। यह संज्ञा, इस सम्बन्ध का बोझिल दायित्व और यह विमाता होने के कलंक का कटु अनुभव—सभी पुरुषों की ही देन है" वह रो रही थी, आँसुओं की बाढ़ आ गयी थी।

× × ×

प्रभाकर का सारा शरीर काँप उठा। "नहीं, नहीं" वह पुकार उठा और उसकी आँख खुल गयी। ओह! तो यह सब स्वप्न था। फिर भी उसका कलेजा धक-धक कर रहा था। दुःस्वप्न की छाप अभी भी उस पर पड़ी हुई थी। स्वप्न और सत्य का अनुमान लगाना कठिन हो रहा था। दोनों हाथों से आँखें मल कर वह उठ कर बैठ गया। उसने देखा, पास ही कुर्सी पर बैठी-बैठी भामा, अपने नववधू के वेश में ही, दोनों घुटनों के बीच सिर रखे ऊँघ गयी है। उसे याद हो आया, उसने कमरे में आते ही, किस रूक्षता से भामा से कहा था "देखो, मैंने अपने लिए यह विवाह नहीं किया है। बच्चे की खातिर जबरन मुझे विवाह करना पड़ा। तुम्हें उसे यत्न से रखना होगा।"

भामा ने उत्तर में कुछ नहीं कहा था। केवल अश्रुपूर्ण नेत्र दूसरी ओर फेर लिए थे। प्रभाकर ने उसके भावों को न समझने की चेष्टा ही की थी और न समझ ही पाया था। एक नवोढ़ा दुलहिन के हृदय में क्या भाव, क्या अरमान होंगे, इसका अनुमान लगाने का उसने प्रयत्न ही न किया था। उसने तो केवल कठोर आदेश ही दिया था, ओह! निस्संदेह ही उसने एक भारी गलती कर डाली थी। यह स्वप्न उसके अपने मन व मस्तिष्क के विकृत विचारों का ही परिचायक था। बच्चे और विमाता के बीच अच्छे सम्बन्ध उपजाने का दायित्व सबसे अधिक पुरुष पर ही है, यह वह समझ गया था। उसने चैन की साँस ली। दरवाजा खोल कर वह धड़धड़ाता हुआ नीचे उतर गया।

भामा जाग चुकी थी और पति की घबराहट व उसकी मनःस्थिति का कुछ पता लगाने में असमर्थ वह एक दम घबरा गयी। मन विषाद से भर गया। यह जीवन का कैसा अनुभव है! पुरुष का यह कैसा व्यवहार है, जिसमें नारी की भावनाओं का कोई अस्तित्व ही नहीं! वह सोच ही रही थी कि प्रभाकर ने लाकर नन्हें बच्चे को उसकी गोद में डाल दिया। भामा चौंक पड़ी।

"लो इसे सँभालो। तुम्हें देने को आज की रात, मेरे पास इससे सुन्दर उपहार और कोई नहीं है। इसे अपना ही समझना। तुम ही इसकी मां हो" प्रभाकर ने भामा के निकट बैठते हुए कहा।

भामा ने बच्चे को अपनी गोद में ले लिया। विमाता बनने का अवसाद न जाने कहाँ विलीन हो गया था, उसने माँ के हृदय की पुलक का अनुभव किया। बच्चा रो पड़ा था। भामा ने उसके मुख पर चुम्बन ले लिया। इधर प्रभाकर भी क्यों चूकता। भामा के कपोलों पर उसने अपना प्रेम चिह्न अंकित कर दिया। भामा की आँखें हर्ष-विषाद के जल में तैर रही थीं—ओठों पर मीठी मुस्कान और मुख पर शान्ति के भाव स्पष्ट थे।

मैं कैसे कहदूँ वसुधा पर विहँसा स्वर्ण विहान !

—श्री मनोहर प्रभाकर--

मैं कैसे कहदूँ वसुधा पर, विहँसा स्वर्ण विहान !

मुखर न जन-मन की वीणा के
अभी उल्लसित तार।
अभी न अम्बर में गूँजी है
रस-भीनी झंकार।
धरती का स्वामी सोता है
अभी बुभुक्षित पेट।
सृजन हार हो रहा स्वयं ही
क्षण-क्षण मटियामेट।
बुनकर की गृहिणी फिरती है
ले अधनंगी देह।
शिल्पायन फुट पाथों पड़ता
होकर नित निर्गेह।
फिर कैसे कह दूँ, जागी है आदम की सन्तान ?
मैं कैसे कह दूँ वसुधा पर विहँसा स्वर्ण विहान !
चाँदी के टुकड़ों पर होता
जहाँ रूप-व्यापार।
प्यार नहीं बन सका जहाँ पर
यौवन का शृंगार।
सिसक सिसक रह जाते मन में
जहाँ प्रीत के गीत।
स्नेह-भावना जहाँ मनुज की
रहती सदा सभीत।
जहाँ मुक्त मानव-जीवन पर
पग-पग पर प्रतिबन्ध।
जहाँ न क्षण भर भी बह पाती
जीवन-सरि निर्बन्ध।
वसुन्धरा वह नहीं, एक है रे, वह निरा स्मशान !
मैं कैसे कह दूँ वसुधा पर विहँसा स्वर्ण विहान !

ध्वंस-देहरी पर स्थित मानव,
मांग रहा है त्राण।
प्राणों की भिक्षा दो उसको,
दो पल भर परि-त्राण।

यह एटम, यह उद्जन बम, ये
गोलों की बौछार।
गन मशीन ये, तोप तमंचे,
विध्वंसक हथियार।

मानव के जीवन का करते
ये निर्मम उपहास।
त्रस्त मनुजता खो बैठी है
जीवन का विश्वास।
रे, धरती माँ के अधरों की उजड़ रही मुस्कान!
मैं कैसे कहदूँ वसुधा पर विहँसा स्वर्ण विहान!

देखो! साथी जन-जीवन की
सरिता के उस कूल;
कुम्हलाये जाते अरमानों के
सतरंगी फूल।
पड़ा उमंगों के निर्झर का
मन्थर आज प्रवाह।
शेष रहा जाता जीवन में
एक दाह, बस दाह।
रही न जीवन की लतिका में
वह मादक हरिताभ।
घोर तमिस्रा से आच्छादित
उर का नभ नीलाभ।
फिर कैसे कहदूँ जीवन का मुसकाया उद्यान।
मैं कैसे कहदूँ वसुधा पर विहँसा स्वर्ण विहान।

मेघदूत - एक दृष्टि

— श्री चिदानन्द

जिस समय युवक कालिदास के मन में एक ओर विमल विश्व प्रकृति से अनन्त प्रेरणाएँ आ रही थीं, दूसरी ओर यौवन-सुलभ वासना की वात्या भीतर भीतर प्रबल वेग से बह रही थी, नारी के कोमल सौन्दर्य की झकोरें हृदय के अन्तस्तल में टकरा कर उन्हें झकझोर देती थीं, और जिस समय यौवन की महती आकांक्षा तथा आदर्श वासनाओं से संघर्ष कर रहे थे और कवि को शकुन्तला का चरम आदर्श गढ़ने में समय बाकी था, सम्भवतः उसी समय मेघदूत विराट प्रतिभा का द्योतक बनकर यौवन की उच्छृंखलता तथा सौन्दर्य पिपासा लेकर कवि हृदय से निकल पड़ा, उछल पड़ा।

कालिदास की इस समय की कल्पनाओं में उनकी महानता की सूचना थी—विराट प्रतिभा का उन्मेष था, मानो यही मेघदूत कालिदास की काम-वासना का शोध—अमंगल का प्रत्याख्यान, तथा सम्पूर्ण भारतीय आदर्शों की एक भूमिका ही था। शकुन्तला में जो काम, प्रेम, सौन्दर्य, भ्रान्ति, अवधि और मिलन के विषय हैं वे मेघदूत में सूच्य रूप में दिखाई पड़ते हैं। शकुन्तला और कुमारसम्भव में जो काम अभिशाप तथा ज्ञान के अनल में जला दिया गया—विरहानल में गला दिया गया, वही "काम" इस मेघदूत में प्रारम्भ में ही एक ही शाप में शेष कर दिया गया है—कला के जादू से।

कोमल कैशोर्य के अतिक्रमण करने के बाद युवक को यौवन का नया भार भार-सा लगता है। एक ओर से वासनाएँ उमड़ आती हैं, दूसरी ओर लोकेषणा तथा चरम आदर्श की कल्पनाएँ एकाएक मस्तिष्क में गूँज उठती हैं। वहाँ प्रेम और काम, त्याग और भोग, तथा पतन और उत्थान का एक विराट संघर्ष ही होता रहता है।

कालिदास के लोकेषणा के आग्रह तथा प्राकृतिक और कृत्रिम सौन्दर्य चयन की अभिलाषा, यौवन की मादकता तथा आदर्श जीवन के आदर्श से ही मेघदूत का जन्म होता है। यहाँ पर कवि की वेदना राह ढूँढ रही थी, थोड़ा सा सन्देश का अवलम्बन मिल गया, बस एक सन्देश के आधार पर कालिदास ने एक अमर काव्य रच डाला—मेघदूत कवि-प्रतिभा के नवल उन्मेष, यौवन की मादकता तथा सौन्दर्य की उत्ताल तरंगों में प्रवाहित होने लगा।

मेघदूत यक्ष की करुण वेदना नहीं है, बल्कि कालिदास के विरही हृदय का उद्दाम और उद्दण्ड उद्गार है, यौवन तथा काम का मनोविश्लेषण है, विश्व के किसी भी विरही हृदय तथा मन की व्याख्या है, और यक्ष विरही विश्व-युवक का ही प्रतीक है।

मेघदूत कृत्रिम तथा प्राकृतिक सौन्दर्य की खान है। उसका पूर्वमेघ प्राकृतिक सौन्दर्य में पूर्ण है। पूवार्द्ध विरह, भ्रान्ति, अभिशाप तथा ज्वलन से ओतप्रोत हुआ है; उत्तरार्द्ध स्वर्गीय रंगभूमि की महाकल्पनाओं से ओतप्रोत हुआ है, सौन्दर्य कल्पना की पराकाष्ठा की सूचना है—कवि के आन्तरिक हृदय का ही परिचायक है।

यौवन में कालिदास ने जिस उच्छ्वास को पसन्द किया था वह है एक उन्मादना तथा एक अभाव का उच्छ्वास, मेघदूत इसी अभाव की ही व्याख्या है। एक शब्द में यह कहा जा सकता है कि इसमें यौवन की उमंगें हैं, सौन्दर्य की पिपासा है, तथा मिलन की साधें हैं।

इस काव्य का आरम्भ परवशता, दासता, तथा कर्त्तव्य को धक्का देकर स्वच्छन्दता, विद्रोह, विस्मृति और अभिशाप से होता है। मानो यौवन की उच्छृंखलता ही "स्वाधिकारात् प्रमत्तः" होकर यौवन का नशा बन कर कर्त्तव्य तथा मंगलाकांक्षा को पैरों तले कुचल डालती है—पैरों से ठुकरा देती है। पर इसके फलस्वरूप उसे शाप, विरह और ज्वलन भोगना पड़ता है। फिर यही उमंग, विस्मृति, अभिशाप तथा ज्वलन आगे बढ़ कर शकुन्तला में जगह जगह पर मिलते हैं।

साधना? साधना पतन और उत्थान के एक समावेश का ही नाम है, पर जिसका अन्तिम ध्येय उत्थान ही है। जहाँ पतन नहीं, वहाँ उत्थान भी नहीं है। यदि सरिता एक बार उत्तुंग पर्वत शिखर से नीचे की ओर अन्धस्रोत लेकर नहीं बह गयी तो उसमें वह शक्ति कहाँ, वह बल और प्रबल प्रवाह कहाँ कि वह उमड़ कर लक्षित महासमुद्र में मिल सके? सम्भवतः इसलिए ही शकुन्तला और यक्ष दोनों का पतन ही होता है।

यौवन,·· फिर युवक! हाँ, इसमें पतन ही उत्थान के आदर्शवाद से कहीं अधिक स्वाभाविक जान पड़ता है। सम्भवतः इसीलिए यक्ष अपने कर्म तथा धर्म से पहले पतित दिखलाया गया है।

फिर रहा उसका अभिशाप। हो सकता है कि कालिदास ही स्वयं किसी राजा के आश्रय से कभी विताड़ित हुए हों। पर उस एतिहासिकता की अपेक्षा मेघदूत का मनोवैज्ञानिक आधार अधिक सत्य और सर्वकालिक है।

जब युवक पहले पहल कर्त्तव्य का बोझा सिर पर ढोता है और सौन्दर्यप्रेम और वासना की उत्ताल तरंगें आकर उससे टकराती हैं उसी समय ऐसी भूलें अवश्यं-

भावी रूप में हो जाती हैं । कालिदास ने तो यक्ष के साथ यक्ष-पत्नी की कल्पना कर यौवन की उच्छृंखलता के साथ भारतीय आदर्श का एक-पत्नीत्व-धर्म जोड़ दिया है, अमंगल और अनौचित्य पर परदा डाल दिया है, परन्तु इस यौवन समय के अर्थार्थी तथा कामी युवक के मन में एक नहीं सैकड़ों मानसिक परियाँ मँडराती हैं—एक नहीं, लाखों यक्षपत्नी की कल्पनाएँ आती हैं । युवक जिस सौन्दर्य को, जिन कल्पनाओं को इस संसार में नहीं देख पाता है, उसे स्वप्निल संसार में तथा काल्पनिक लोक में नहीं देखेगा तो और कहाँ ? बस इसीलिए कहना पड़ता है कि कालिदास ने युवक हृदय को मेघदूत में एक रूप दिया है । मेघदूत युवक मन की कल्पित भावनाओं का ही आधार रूप है । इसमें उसकी दिवा-स्वप्न की कल्पनाएँ, आदर्श जीवन की साधें, उपभोग की इच्छाएँ आकर मिलजुल गयी हैं, घुलमिल गयी हैं । यक्ष की भाँति प्रत्येक युवक एक मनगढ़न्त आदर्श सुन्दरी चाहता है, एक आदर्श-गृह चाहता है – एक नहीं कई कल्पनाएँ करता है । अतएव प्रत्येक युवक के मन में एक-एक मेघदूत छिपा हुआ है । पर क्या वे अपनी साधों को प्राप्त करने में सफलीभूत होते हैं ? सफलता ! समय कहाँ ? धर्म,···कर्म,····सांसारिक कर्म उन युवकों की मधुर कल्पनाओं पर कुठाराघात करते हैं; उनकी नशीली नींद एवं मदिर मधुर स्वप्न के घनावरण को एकाएक झंकृत और अस्तव्यस्त कर देते हैं । युवक एक बार चौंक उठता है और धर्म, अर्थ और काम उसके स्वतंत्र-पंखों को अपने कठोर हाथों में जकड़ देते हैं—फिर युवक को जीविका और कर्त्तव्य पर विवश होना पड़ता है । ठीक इसी कर्त्तव्य तथा अभिलाषा के संघर्ष और संगम स्थल पर ही मेघदूत का जन्म होता है । यह ही तो मेघदूत में—एक ओर कुबेर (धनपति) की पराधीनता और दूसरी ओर यक्षप्रिया की याद है ।

विश्वयुवक का प्रतीक यक्ष यौवनचापल्य से कर्त्तव्य पर पदाघात करता है । उसकी स्मृति और उसका कर्त्तव्य-ज्ञान उसके बासी फूल के समान ही कुम्हला जाते हैं । पर इस भ्रान्ति का फल क्षमा नहीं है । यौवन की उदण्डता तथा अवहेलना की भ्रान्ति थी यह । यौवन में ज्ञान तथा अज्ञान का समावेश है । क्षमा ? जानने वालों पर कभी क्षमा नहीं की जाती, नहीं की जाती । फिर जानने वाले का दोष क्षम्य ही नहीं होता है अथच दण्ड ही उसका औचित्य है । अतएव काम-दमन के लिए, शुद्धि के लिए, यक्ष को जलना पड़ता है, गलना पड़ता है—प्रिय से दूर रह कर साधना करनी पड़ती है ।

कालिदास की यह बात बहुत खटकती है कि कई ग्रन्थों में उन्होंने एक ही बात का प्रचार किया है । वासनाओं का शोध उन्होंने शाकुन्तलम्, कुमारसम्भव, तथा मेघदूत में दिखलाया है । सम्भवतः इसकी बार-बार की पुनरावृत्ति से उन्होंने शुद्धि का महत्त्व बढ़ाया है, भारतीय आदर्शवादिता का प्रचार किया है, यथार्थ को आदर्श की ओर

बढ़ाया है और पतन से उत्थान की ओर मार्ग दिखलाया है, अमंगल से मंगल की सूचना दी है।

भारतीय आदर्श में संयम से ही उपभोग किया जाता है, त्याग से भोग किया जाता है। इसी बात को महाकवि रवीन्द्रनाथ ने साहित्य मे और आध्यात्मिक ग्रन्थों ने भी कई बार दोहराया है—

"त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः" अर्थात् त्याग से भोग करो, लोभ मत करो। इसीलिए महाकवि कालिदास ने उमड़ती हुई वासनाओं की लहरों का तिरस्कार किया है– उन्हें शाप तथा देश निष्कासन की ज्वाला में जलाया है—गलाया है।

पर क्या वही वासना मेघदूत में शुद्ध हो सकी, वर्णनों में छिप सकी ? नहीं, शकुन्तला में जो संयम है, जो सीमा है वह सीमा मेघदूत में नहीं है। इस काव्य की वर्णनाओं की फाँकों से वासना टपक पड़ती है। पर हाँ, 'युवक मन की यथार्थ-व्याख्या' के परदे के अन्तराल में उसे छिपाया जा सकता है। मेघदूत सीमा-असीमा, यथार्थ-आदर्श उच्छृंखलता तथा शासन, वीभत्सता तथा सौन्दर्य के एक विराट संघर्ष पर ही आधारित है। जहाँ उच्छृंखलता बढ़ी, वहाँ शाप उपस्थित हुआ, जहाँ यथार्थ वर्णन चला, वहाँ शुद्धि का आदर्श आ खड़ा हुआ है। परन्तु जहाँ वर्णन वीभत्सता तथा लक्षित उन्मादना की ओर बढ़ा, वहीं कवि अग्रसर हुआ और उसके युवक हृदय ने स्पष्ट ही कठिनाई से ही वीभत्स शृंगार से बचा पाया है। इसमें शिव अशिव—सौन्दर्य तथा असुन्दरता का एक द्वन्द्व चल रहा है। तो भी आदर्शवादिता को भेदकर इसके उच्छृंखल वर्णन कहीं-कहीं दिखलाई पड़ते हैं। अतः कहा जाता है कि मेघदूत यौवनकाल का काव्य है और संघर्षमय युवक हृदय का हार्दिक उद्गार है, अन्यथा वयोवृद्ध कवि शायद ही ऐसा गा सकते थे—

प्रस्थानन्ते कथमपि सखे लम्बमानस्य भावि
ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः।

भले हीं मेघदूत में शकुन्तला की भाँति सत्य, सौन्दर्य और शुभ का सुन्दर समावेश न हो, पर मेघदूत का यक्ष पागल है और शुद्धि तथा आदर्शवादिता और दार्शनिकता उत्तर मेघ के अन्त में ही टपकती है। अभी तो वह यक्ष बादल ही को दूत बनाकर भेजता है—उसे होश कहाँ है ?

मेघदूत में आदर्श का पुट है, परन्तु यह सम्पूर्ण काव्य सौन्दर्य-मदिरा का घट है। अधिकांश पाठक भी इस मदिरा का ही पान करते हैं। यथार्थ वर्णन और कल्पनाएं आदर्श को ढँक देती हैं।

परन्तु मेघदूत में उपभोग की तरह-तरह की आकांक्षाएँ तथा आलिंगन और चुम्बन नहीं दिखाई पड़ते हैं। सिर्फ इसमें 'स्मरण' और संवेग ही सक्रिय होते हैं।

परन्तु उसकी यह भावना दब-छपकर, घुल-मिलकर तथा रूपान्तरित होकर मेघदूत के सुन्दर वर्णनों में रंग बिरंगे पंख लगा कर उमड़ती है। कभी-कभी वह यक्षमन की नग्न सौन्दर्य-लालसा में तथा 'विवृत जघना' की कामना में व्यक्त होती है। पर यह कहना अयथार्थ होगा कि सौन्दर्य वर्णन काम-वासना का ही रूपान्तर है, कारण कि प्रकृत सौन्दर्य में वासना की तीव्रता नहीं रहती, केवल विमल आह्लाद, मृदुल आनन्द और तृप्ति का वहाँ दर्शन होता है। कीचड़ यदि अपने विकास पथ में कभी कमल बन गयी तो वह फिर कीचड़ नहीं है। हमारे यक्ष को पता नहीं था कि बादल जड़ है या चेतन। कामुक सदा भ्रान्त ही रहता है। इसी बात को कालिदास ने विक्रमोर्वशी के विरही राजा की उक्ति में दिखलाया है। वह राजा बादल देख कर उसे निशाचर समझकर कहता है—

मई जाणिअँ मिअलोअणो णिसि अस कोइ हरेइ
जावणु णंवतडि सामलो धाराहरु बरिं सेइं

जब तक उसने पानी नहीं बरसाया, राजा भ्रान्त होकर उसे राक्षस ही कहता रहा। पर मेघदूत की भ्रान्ति में यक्ष का प्रचेतन मन भी तो नहीं काम करता है। उसे तो विस्मृत ही हो गया है कि बादल जड़ वस्तु है।

हाँ, जब प्रिया की वेदना स्मृति पट पर छा जाती है तब सारा संसार अन्धकारमय दिखलाई पड़ता है या फिर प्रियामय ही। इस ज्ञान-लोप पर कालिदास मानो विहँस कर कह उठते हैं—"कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाश्चेतनेषु।" परन्तु विरही यक्ष, आत्मविस्मृत यक्ष यहाँ अज्ञात और अचेतन अवस्था में बादल को दूत बनाकर भेजता है।

आज का नवविवाहित युवक कार्यक्षेत्र के कठोर नियम पालन कर जब विदेश जाता है, उसके मन में यक्ष विरह की सी कितनी भावनाएँ उठती होंगीं। यक्ष की भाँति वह प्रिया की ओर से आने वाली हवा में प्रिया की गन्ध, प्रिया की अनुभूति पाता होगा। कार्यकाल के थोड़े से अवसर में वह दूर-दूर दिग्वलय की ओर कितनी बार टकटकी लगाए ताकता रह जाता होगा, प्रिया के गुलाबी लिफाफे को चाव से देखता होगा, सिर में कलम रगड़ कर कितनी मिलन की कल्पनाएँ कर आत्म विस्मृत हो जाता होगा, इसे केवल अनुभवी युवक ही जान सकता है। कालिदास का यक्ष इसी युवक का प्रतीक है। अतः मेघदूत का पागलपन युवक और यौवन का ही पागलपन है और मेघदूत युवक और यौवन की ही व्याख्या है। इसीलिए तो मेघदूत में मादकता, पागलपन तथा उमंगें और कभी-कभी संयत वर्णन का अभाव भी दिखाई पड़ता है।

पूर्वमेघ लौकिक सौन्दर्य या प्राकृतिक सौन्दर्य प्रधान है। कालिदास का सौन्दर्य-पिपासु मन ही मेघदूत में बादल बनकर विश्व सौन्दर्य का निरीक्षण कर रहा है। छोटे से

सन्देश के लिए कल्पना की उड़ान से इतनी महाकल्पना कर लेना कालिदास की विशेषता है। सम्भवतः एक बादल के प्रत्यक्ष दर्शन से ही प्रेरित होकर कवि ने एक काव्य रच डाला है। अतः मेघदूत तिल को ताल बनाने वाला काव्य है—सीमा को असीमता और क्षुद्र को महानता की ओर बढ़ाने वाली काव्य-साधना है। इससे पता चलता है कि कथावस्तु तथा प्रेरणा के आधार पर कवि काव्य में अपने विराट अन्तर की ही व्याख्या करता है; कविता कवि की सूक्ष्म आत्मा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

मनुष्य की प्रवृत्तियों में परिवर्तन लाने में विश्व-प्रकृति का बड़ा हाथ रहता है। बाह्य प्रकृति भी बहुत कुछ प्रभाव डालती है। विरही के लिए बादल का प्रभाव तो साहित्य का रूढ़िगत मालूम पड़ता है, परन्तु एकान्त कोठरी ही खुले स्थान की अपेक्षा मन में तरह तरह की भावनाएँ लाने में समर्थ होती है। अन्धकार रात्रि में ही भयादि की भावनाएँ मन में आती हैं। यक्ष अकेला था, विरही था, फिर आषाढ़ के काले काले बादल उमड़ घुमड़ कर आये। वह अपने को कैसे सम्हाल सकता था? उसकी धुँधली स्मृति की रेखाएँ फिर गाढ़ से गाढ़तर होने लगीं, उसकी वासनाएँ तीव्र से तीव्रतर हो उठीं, वह अपने को भूल गया और बादल को दूत बनाकर भेजने लगा। यही कल्पना प्रारम्भ से मनोवैज्ञानिक आधार पर आश्रित है, और इसलिए कहा जा सकता है कि यक्ष की भावोद्रेकता, भूल, विस्मृति, तल्लीनता, आत्मविस्मृति और वातुलतादि उसकी वय, परिस्थिति, सूनापन तथा विरहवेदना या विच्छेद की ही सृष्टि है।

कालिदास पूर्वमेघ के द्वितीय पाद में यक्ष तथा बादल में बन्धुत्व की स्थापना कराते हैं। यक्ष प्रिया से प्रेम करता है इसलिए बादल से भी प्रेम करता है। प्रिया प्रिय होने पर उसका संदेशवाहक भी प्रिय हो जाता है। मानों वह एक से प्रेम कर दुनिया से प्रेम करना सीखता है। जिसने एक से प्रेम करना नहीं सीखा, वह विश्व से प्रेम नहीं कर सकता, हाँ धोखा दे सकता है। पर जो सीधे विश्व से ही प्रेम करना सीख चुका है, उसे प्रेम की ज्वाला नहीं सता सकती।

यक्ष ने तो एक ही से अच्छेद्य प्रेम करना सीखा है, इसलिए वह बादल की शीर्णता, तृष्णा, क्षुधा, श्रान्ति तथा क्लान्ति पर दुःखित होता है। उसे वहाँ क्लान्त होने पर पर्वत पर ठहरने, तथा शीर्ण होने पर नदी की विमल धारा से तृषा मिटाने के लिए उपदेश देता है, अनुरोध करता है।

आगे बढ़ने पर यह प्रेम-विषय और खुल जाता है। यक्ष अपनी वेदना से प्रेयसी की वेदना को नापता है, फिर और वेदनायुक्त हो जाता है। सच्चे प्रेमी तो वेदना से ही स्वयं वेदनाग्रस्त होते हैं। पर यक्ष अपनी वेदना से विश्व-वेदना का ही अनुभव करता है। उसे धूल, फूल, लहर तथा किरण में भी विरह की वेदना दिखाई

देती है। अतः वह बादल से प्रार्थना करता है कि उन सबकी प्रेम-क्रीड़ा में वह बाधा न पहुँचावे। "नवल-नवल कमल खिलते रहें, सूरज की पीली-पीली किरणें अबाधगति से उनको चुम्बन करती रहें। पर, रे मेघ ! परदा बना कर उनकी लीलाओं में कभी बाधा न डालना।" फिर यक्ष को इस आषाढ़ आगमन में बगुलियों की गर्भ धारण करने की इच्छा और वेदना भी मालूम हो जाती है; जो प्रकारान्तर से प्रिया की ही याद है, प्रिया की ही वेदना है। विरही ही विरही की हृदय-वेदना जान सकता है। अनुभवी अनुभव का सच्चा ज्ञान रख सकता है।

यक्ष अपनी हार्दिक वासनाओं को विश्व प्रकृति पर न्यस्त कर अपने मन को ही काव्य का रूप दे देता है। युवक के मन में स्त्री की भावना तथा रूपरेखाएँ सर्वदा रहती हैं, अतः यक्ष को चारों ओर स्त्री ही दिखाई देती है। वेदान्त के अनुसार मन ही बाहर आकर वस्तुओं का रूप धारण कर लेता है। फिर मनुष्य-मन का रहस्य यह है कि वह अपने आह्लाद या वेदना को ही विश्व के आह्लाद या वेदना में देखता है। अतएव यक्ष को शेष प्रकृति में नारी का रूप दिखाई देता है। कभी यक्ष का मन बादल बन कर नदी में तैरने वाली विहंमपाँति से नदी की करधनी देख लेता है, कभी पानी के हट जाने पर वह कृश प्रिया का नितम्ब देख लेता है, कभी मधुर, मदिर, मन्द वात्या में उसे जलक्रीड़ारत नारी की ही सुगन्धि मिलने लगती है। कभी-कभी वह वन्य युवतियों की सुन्दरता देखने के लिए बादल से प्रार्थना करता है। कभी खुले जघन का सरस रस लेने की सूचना देकर वह अपनी वासना ही प्रगट करता है। इसी तरह यक्ष को सारे विश्व में नारी ही नारी दिखलाई पड़ती है और यौवन मन की व्याख्या के लिए ये वर्णन यथार्थ ही हुए हैं।

मेघदूत में सौन्दर्य तत्त्व तथा शिवतत्त्व का सम्यक मिलन है। इसमें काम तथा नैतिकता का एक संघर्ष दिखाई देता है। पूर्वमेघ में जहाँ कहीं उच्छृंखल वर्णन मिलता है तो उसके पास में ही शिव की चारु चन्द्रिका चमकती हुई दिखाई देती है—घूम फिर कर भक्ति तथा पूजा की बातें आ जाती हैं। इससे ज्ञात होता है कि नैतिकता तथा काम के संघर्ष से ही मेघदूत का जन्म हुआ है। फिर मेघदूत के सौन्दर्य वर्णन तथा उसकी आदर्शवादिता से सौन्दर्यतत्त्व तथा मंगलतत्त्व या शिवतत्त्व का समावेश एवं सम्यक् सम्मिलन ही दिखलाई पड़ता है।

अन्त में यह कहना उचित होगा कि मेघदूत कल्पना और सत्य की मिलन-स्थली है। मेघदूत की कल्पनाएँ कोरी कल्पना नहीं हैं – वे तो युवक मन की सच्ची कल्पना हैं। फिर मेघदूत वह काव्य है जिसमें "मनुष्य मन" अभा पर आश्रित होकर विश्व के कोने-कोने में अपने ही बिछुड़े हुए अंश को ढूँढ़ता है। अतः यह काव्य

मानव मन के 'अभाव' पर ही आश्रित है और वियोग से संयोग, अपूर्णता से पूर्णता तथा पतन से उत्थान की ओर बढ़ना ही इस काव्य का लक्ष्य है।

पूर्वमेघ के प्रारम्भ से अन्त तक यौवन की भ्रान्ति, उन्मादना, सौन्दर्य पिपासा, भक्ति तथा विश्व-वेदना के सहानुभूतिपूर्ण चित्र भरे पड़े हैं। इसमें सौन्दर्य तथा वीभत्सता, कर्त्तव्य-बन्धन तथा उससे विद्रोह और मोक्ष, उच्छृंखलता तथा शासन और काम तथा नैतिकता का एक विराट् संघर्ष ही दिखाई देता है।

यह काव्य सौन्दर्य, आदर्श और संघर्ष के आधार पर आश्रित अमर काव्य है।

गीत

—श्री चन्द्रप्रकाश दुबे—

बहुत दिनों के बाद तुम्हें देखा, आँखें भर आईं।

सहज सुलभ कल्पना तुम्हारी,
वाणी की निश्छल समरसता।
पूनम की उजयाली सा मुख
सरयू की गति सी मादकता।

गदराए आंचल की झोली
पलकों पर काजल की रेखा।
आज स्वप्न में पुनः न जाने,
अकस्मात तुमको ही देखा।

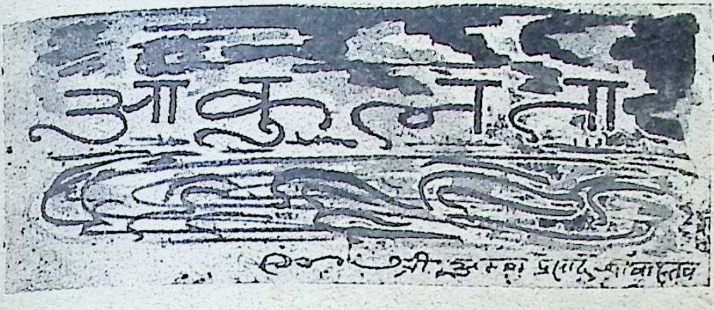

अपनी आकुलता से ही मैं, अपने को समझा लेता हूँ।
सतत धधकती ज्वाला से ही, अपनी तपन बुझा लेता हूँ।

नयन-प्यालियों से आँसू बन, छलक रहा है प्यार तुम्हारा;
रोम-रोम उठकर कह उठते, प्रणयभरा व्यापार तुम्हारा;
प्रिये, हृदय पर निठुर नियति ने जो असह्य आघात किया है;
उसी वेदना से मैं, अपने गहरे घाव भरे जाता हूँ।

छिपा हुआ राकेश खोजते-मानस में तूफान उठे हैं;
खोया सा आधार खोजते, आकुल हो अरमान उठे हैं;
बरबस अरे, किसी की सुधि में उर से आह निकल जाती है,
मैं उन आहों को ही अपने मधुमय गान समझ लेता हूँ।

कलरव और सुहाग उषा का मन को मूक बना देता है;
सन्ध्या-रञ्जित राग हृदय में, हलकी हूक उठा देता है;
प्रिये, देख लेता सपनों में तव मुसकाती मूर्ति सलौनी;
मैं निशि के उन सपनों को ही दिन का सत्य समझ लेता हूँ।

अश्रु-कणों में छिपा किसी ने मुझको अपना हास दिया है;
ओझल होकर नयनों से इन नयनों में ही वास किया है;
आज अकेले पन के भय से कातर हृदय धड़क जाता है;
मैं उर की उस धड़कन को ही प्रिय का प्यार समझ लेता हूँ।

विधि की निठुराई में मुझको क्रीड़ा का व्यापार छिपा है;
इस परवशता की पीड़ा में जीवन का आधार छिपा है;
शून्य जगत औ' शून्य गगन है, प्राणों में भी सूनापन है;
मैं इस सूने पन को ही अपना संसार समझ लेता हूँ।

कहानी—

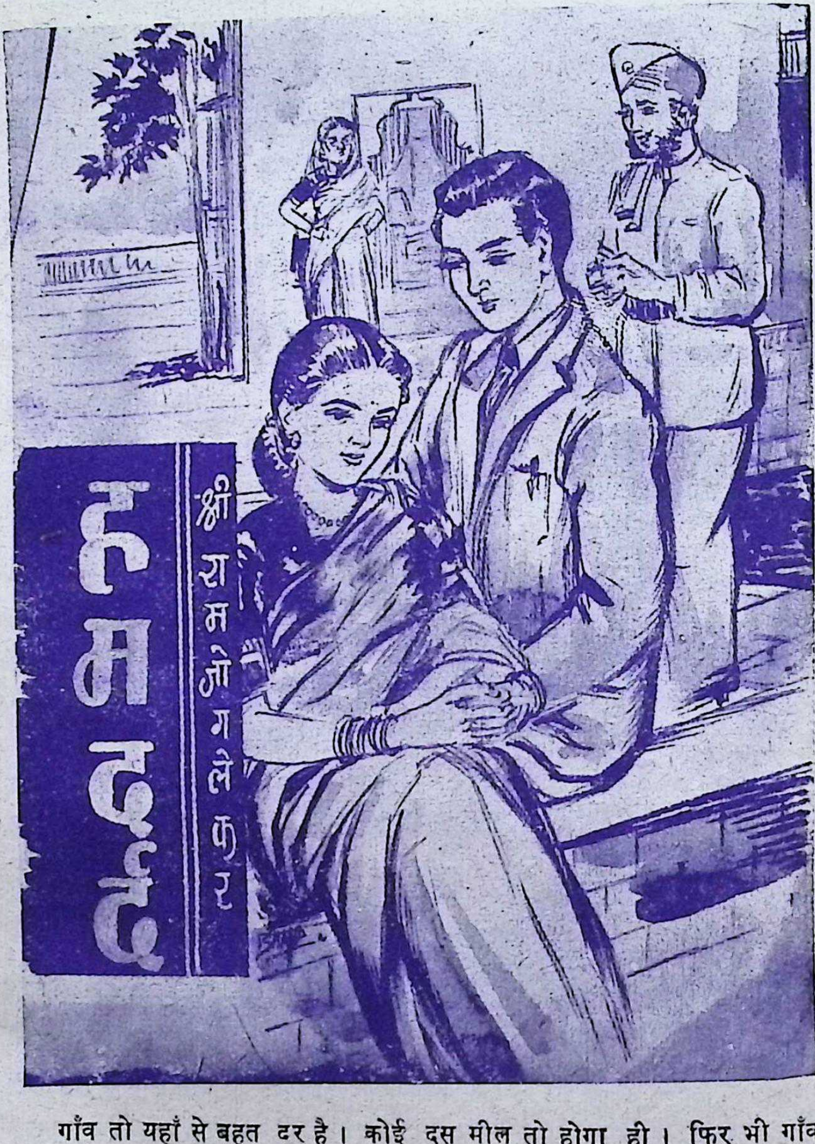

गाँव तो यहाँ से बहुत दूर है। कोई दस मील तो होगा ही। फिर भी गाँव का डाँक बंगला यहाँ बना है। दूर होते हुए भी बंगला सदा आबाद ही रहता है। मुझे सालों बीत गये हैं इसके कोने में पड़े-पड़े, लेकिन कदाचित एकाध सप्ताह याद आ सकता है जब बंगला न खुला हो और उसके परदों की फड़फड़ और बैरा की "जी ऽऽ साब" की चिल्लाहट से दिन में हम बेचैन न रहे हों और रात को पीपल पर सोये कौवे न जागे हों! और इस सारे आवागमन के कारण दो हैं। जी हाँ, दो।

एक तो यह है कि यह जगह एक स्वप्न-भूमि है; प्रत्यक्ष। नदी गाँव से होकर

आते-आते इस बंगले को तीनों तरफ से घेरती हुई आगे चली जाती है। बीच के हिस्से में एक टीला है, जिसका नदी तरफ का हिस्सा टूट कर चट्टान की दीवार-सी बनी है और इसके ठीक ऊपर बंगला बना है। बंगला आलीशान है। उसकी दीवारें सफेद हैं और मीनारें लाल पुती हैं। एक बार, मुझे बैलगाड़ी में बैठ कर बरसात के दिनों में नदी के उस पार जाने का काम पड़ा था, तब पुल पर से नदी के पानी में पड़ी झुकी चट्टान की और इसके ऊपर के डाक बंगले की परछाईं देख कर मुझे दुलहन याद आई थी जो विवाह के दिन दूल्हे की बाट में सिर पर सेहरा बांधे चिंताकुल अपना चेहरा दर्पण में निहारती हो। गोरों के जमाने में इस बंगले के आसपास खूब घने पेड़ लगाये गये थे। वे अब बड़े-बड़े हो गये हैं। उनकी एक विचित्र सुगंध ऊँची-ऊँची डालों में से सूंऽसूंऽ करते निकलती हवा के साथ बारहोंमास चौबीसों घंटे बंगले को घेरे रहती है। इस बंगले के नदी तरफ की बाजू में बने चबूतरे पर बैठे-बैठे दोनों तरफ ऊँचे-ऊँचे घने हरे भरे पेड़ों में खो जाने वाले नदी के निर्मल-स्वच्छ और मंद-मंद बहते पानी को निहारते साँझ सबेरे की इठलाती सुगंधित हवा में समय व्यतीत कर देना, यहाँ आने वाले बहुत पसन्द करते हैं, यह मैं जानता हूँ।

आवागमन का दूसरा कारण मैं हूँ—मैं स्वयं! वैसे देखा जाय, तो डाक बंगले से अब मेरा कोई वास्ता नहीं है। एक जमाने में जरूर था। तब मैं बैरा था, लेकिन अब वर्तमान बैरे की दया के दो कौर खाये यहाँ पड़ा रहता हूँ। आये मुसाफिरों को बंगले के चबूतरे पर बैठे-बैठे चुटकुले सुनाता रहता हूँ। जाते-जाते वे कुछ मुझे भी देते जाते हैं। उससे भी जिन्दगी कटती रहती है। जाने वाले बहुधा कहते हैं, "भै मुंदन, तुम्हारी बातें बड़ी दिलचस्प होती हैं! सुनने एक दफा और आएँगे!" और सिर्फ कहते ही नहीं, आते भी हैं। कई बार आए हैं। लोगों ने मेरी बातें सुनते-सुनते बार-बार घंटों बिता दिए हैं। इसीलिए मेरा दावा है कि मैं उनकी रुचि जानता हूँ, और यह भी कि आवागमन का एक कारण मैं भी हूँ।

लेकिन डाक बंगले की सुन्दरता और मुसाफिरों की रुचि मेरे यहाँ पड़े रहने का कारण नहीं है। मेरा कारण या रहस्य कहिए, कुछ और ही है, जो सीने में छिपा है और दुनियाँ का घटनाक्रम उस पर पत्थरों जैसा गिरते-गिरते कबर-सा बन गया है। फिर भी मैं जानता हूँ, वह रहस्य ही मेरा जीवित साथी है, जिसे पालते मैं इस जगह पड़ा हूँ। उसी के कारण मैं स्वयं को इस बंगले का मालिक समझता हूँ। मैं जानता हूँ, यह बंगला डाक बंगला है, जो सरकारी है, और उसका कोई मालिक नहीं कहला सकता। फिर भी, इसकी मिट्टी ने मेरा खून पिया है और इसका गौरव मेरे सम्मान के मूल्य से बचा है। मैं समझता हूँ, मैंने पर्याप्त मूल्य चुका दिया है और इसीलिए यह बंगला मेरा है।

भारती

बात उस जमाने से चली आ रही है, जब मैं भला चंगा था और इस बंगले का बैरा था। ठीक अभी भी चलती रही है, जब मैं बैरे की नौकरी से हटाया जा चुका हूँ और टूटी कमर लिए बंगले के कोने में पड़े-पड़े प्रत्येक दिन काट रहा हूँ।

जिन दिनों की बात है, वह सात-आठ साल पहले सर्दी के थे। उस दिन, दोपहर, सर्दी की मरी-सी धूप में, दो मुसाफिरों को बिदा करके और बंगला बन्द कर, एक बीड़ी पी ही रहा था, कि एक बड़ी-सी लेण्डो गाड़ी ढेर सी लाल गर्दा उछालते बंगले के फाटक में मुड़ी। मैंने बीड़ी को बुझा कर पगड़ी में रखदी, और पट्टा सम्हाल ही रहा था कि गाड़ी आकर सीढ़ीयों पर लग भी गयी। आने वाले कोई रईस मालूम पड़े। उनके बैरे ने झट से उतर कर फाटक खोला, तो लाल-पीली मिट्टी से भूत बने लोग-बाग बाहर निकल पड़े। उनमें एक सफेद बालों वाले व्यक्ति, जो सारे गुट के मुखिया मालूम देते थे, वे थे और एक जवान आदमी के अतिरिक्त तीन स्त्रियाँ थीं, जिनमें से एक माँ होनी चाहिए और दो लड़कियाँ। मैं डिग्गी में से सामान उतार ही रहा था कि माँजी बोलीं "खानसामा, हम दो दिन रहेंगे। सारा इन्तजाम बिलकुल ठीक होना चाहिए।" मैं, "जी हूजूर" कह रहा था कि नवयुवक बोला—"माँ जी, दो दिन तो—"लेकिन माँ जी ने बात काट दी। बोली, देखो राकेश, मैं सुनने की नहीं। दो दिन तो रहना ही पड़ेगा। क्यों मीना बिटिया?" मैं कनखियों से देख रहा था। माँ जी के कहते दो लड़कियों में से, एक जो गोरी और बनी ठनी थी, वह मटक कर खड़ी रह गयी और जो सादी और कुछ साँवली थी, वह उदास मुँह लिए धीमे से भीतर चली गयी।

हम बैरा लोगों में दोस्ती बड़ी जल्दी हो जाती है! सामान उतारते-उतारते मैंने मुसाफिरों के बैरे से जान लिया कि मेरा अनुमान ठीक था। वे वृद्ध व्यक्ति पिता थे। वह अधेड़ स्त्री मां थी, गोरी लड़की मीना उनकी निजी पुत्री थी और वह साँवली सीधी-सी लड़की सौतेली अर्थात पिता जी के पहले विवाह की लड़की थी। रहे राकेश बाबू, वे? ओफ़! वे ही तो सारे झगड़े की जड़ थे।

आधे घण्टे बाद, चाय देते-देते, मैं भांप गया कि गुट में श्रीमती जी का पल्ला भारी था और पिता जी के हाथ में दूसरी लड़की की ओर—जिसका नाम सरला होना मालूम हुआ—बेबस आँखों से देखना और ठण्डी आहें भरना, इसके सिवाय और कुछ भी नहीं था। चाय की टेबल पर बार-बार सरला की तरफ बढ़ता राकेश का उत्साह जबरन 'मीना बिटिया' की तरफ मोड़ लिया जा रहा था। उसी रात की बात है, गरम दूध के प्याले ट्रे में रखकर सब को देने जा रहा था। सरला के कमरे के दरवाजे पर पहुँच कर जाली का दरवाजा खोलने ही वाला था, कि उस कमरे के बाहर वाले बरामदे की तरफ से दबी आवाज आई "सरल!" और जवाब भी मिला "जीSS"। जवाब देते बरामदे के दरवाजे की तरफ बढ़ने वाली सरला को एक आवाज

ने और पुकारा 'सरला !" वह तीखी पुकार माता जी की थी। सरला मुड़ी और बगल वाले माता जी के कमरे में चली गयी। मैंने कमरे के भीतर होकर माता जी की आवाज पर कान लगाये। "कहाँ जा रही थी ? खबरदार जो राकेश की तरफ गयी। वह तुम्हारे लिए नहीं है।" दूध के प्याले रख कर, ट्रे का बोझ तो मैंने हल्का किया, किन्तु उससे भी भारी शीशे का सा गोला सीने में सम्हालते, मैं अपनी कोठरी पर वापस आगया। वह सारी रात मैंनं बड़ी बेचैनी से काटी। दूसरे सारे दिन का तमाशा चल रहा था—"देखा राकेश, मीना ऐसी है—, मीना वैसी है—, मीना यह करती है—, मीना वह करती है—; मीना का विचार ऐसा है—, मीना का विचार वैसा है—," और साथ में यह भी "सरला; तू उधर जाकर यह कर तो—वह कर तो।"

शाम को चार बजे, मैंने चाय लगाई और सरला को बुलाने गया। वह चबूतरे पर नदी की तरफ वाली अधकटी नीची मुंडेरी पर बैठी, नीचे नदी के पानी को देख रही थी। मैं जाकर कुछ बोलूँ, इसके पहले राकेश बाबू भी आ गये। वे बोले, "सरल—" इतने में कहीं से माँ जी फट पड़ीं और बोलीं "अरे राकेश, देखो तो बाबू जी बुला रहे हैं।" हम सब मिलकर बँगले के बरामदे की तरफ देखने लगे। बाबू जी अर्थात सरला के पिता हकलाए "न—नहीं" और फिर माँजी की फटी आँखें देखकर, सरला से निगाह चुराते बोले "हाँ, हाँ, बेटा मैं बुला रहा हूँ।" राकेश चल दिया। राकेश गया, देखकर माँजी सरला पर दाँत पीसने लगीं "कल मुँहीं, लाख कहा मानती ही नहीं। चल घर पर, फिर देखती हूँ।" फिर मुझे सुनता खड़ा पाकर चिल्लाईं "तुम क्या करते हो यहाँ ?" मैं चौंका और घबड़ाकर पीछे हटा। ध्यान नहीं रहा। पीछे नदी के तरफ की चबूतरे की नीची मुंडेर थी। उस पर से अपने को सम्हाल न सका और मुझे कुछ याद नहीं है।

फिर याद तब की है, जब मैं गाँव के अस्पताल में खाट पर पड़ा था और कराह रहा था। महमानों का बैरा पास था। उससे पता चला कि मैं टीले से नीचे गिर पड़ा था और पत्थरों से टकरा कर मेरी कमर की हड्डी टूट गयी है। दुर्घटना के दिन मुझे अस्पताल में पहुँचाकर महमान अपने घर चल दिये थे। मुझे होश में पाकर उनका बैरा जाने लगा। बोला "छोटी बीबीजी ने कहा है, मुझे माफ करना।" "छोटी बीबी ?" मैंने पूछा। "हाँ, सरला बीबी।" मैं जोर से चिल्लाकर रो पड़ा। लेकिन नहीं बता सकता कि टूटी हड्डी के दर्द से या—मैं नहीं जानता।

अस्पताल से छुट्टी पाकर बँगले गया। देखा, तो नया बैरा काम करने आ गया था। आदम गाँव का ही था और जान पहचान भी थी। बोला "आ गये मुन्दन भैया ! कसम खुदा की, तुम्हारे बचने की किसी को उम्मीद नहीं थी।" फिर मुझे हाथ पकड़ कर चबूतरे की तरफ ले जाते बोला "तुम्हारे लिए नया हुक्म आया है।

तुम्हें बँगले का चौकीदार बना दिया गया है—तनख्वाह आधी मिलेगी।" मुझे सदमा पहुँचा। मेरी नेकी और बफादारी का यह अंजाम! मेरा खून गुस्से से उबल उठा। दौड़ते खून से गरम कनपटियाँ "साँय-साँय" बोलती प्रतीत होने लगीं। कमजोर तो था ही, और गुस्सा चढ़ने पर ताव से मेरे हाथ-पाँव काँपने लगे। नया बैरा समझा, मुझे गश आ गया है। वह मुझे चबूतरे पर ले गया और आराम से बिठाते हुए बोला "गिरने पर, उठाकर तुम्हें यहाँ ही रखा था। देखो, ये मिटते हुए हलके काले कबरे दाग तुम्हारे ही तो खून के हैं।" मेरे खून के दाग? ओह, इस मिट्टी ने मेरा खून अपना लिया है। अब मैं इसका हो गया हूँ। तो फिर यह भी मेरी है। इन विचारों में मैं बह रहा था और नये बैरे ने मुझे कुछ पूछा था। मैं कह गया "हूँ"। उसने कंधा हिलाया तो मैं चौंका, वह कह रहा था "चलो, अपना नया काम देख लो।" "नया काम?" "हाँ, हाँ, तुमने अभी तो कहा कि तुम चौकीदारी करोगे! और आखिर हर्ज भी क्या है?" मैं सोचता रहा—चौकीदारी! आधी तनख्वाह पर चौकीदारी? यह जमीन मेरे खून की है, यह मेरी है, तो मैं भी इसी का हूँ। चलो, चौकीदारी ही सही—और इस तरह मैं बैरे से चौकीदार बन गया। भले-चंगे बैरे से लूला-लँगड़ा चौकीदार!

फिर दुनियाँ का घटनाक्रम चलता ही रहा। मुसाफिर आए, रहे, मैं उन्हें चाँदनी रातों में चबूतरे पर चुटकुले सुनाता रहा और वे जाते भी रहे। फिर भी उनमें आनन्द न था। मुसाफिरों के आने की प्रसन्नता में प्रतीक्षा की आह थी, चाँदनी रातों की बातचीत में खोज की चाह थी और उनके जाने के दुःख में सारी उमंगों का पछतावा था। मैं अनुभव कर रहा था कि मुझसे कोई भूल हुई है और उसे सुधारने को मुझे एक अवसर और चाहिए।

कहते हैं, मालिक के घर देर है, लेकिन अन्धेर नहीं। लेकिन मेरी राय से शायद अन्धेर भी है। अन्यथा सालों की प्रतीक्षा के बाद मेरा चाहा अवसर बुझे दिये जैसा ऊजड़ और सुनसान बनकर निर्जीव-सी सरला के रूप में क्यों आता? सालों बाद बरसात की मनहूस रात में एक पुरानी सी स्टेशन वैगन आई। उसमें ठसाठस सामान भरा था। संभवतः पहाड़ों पर जाने वालों में से थी। एक मोटा सा काला आदमी गाड़ी चला रहा था। वे काले साहब जोधपुरी कोट के ऊपरी बटन खोलते नीचे उतरे। मैं बरामदे के कोने में पड़ा था। लालटेन के धीमे उजाले में कान के हीरे चमकाते चीख पड़े—"कौन है रे बदतमीज! सोया पड़ा है? सामान कौन उतारेगा, तेरा बाप?" इतने में बैरा दौड़ता आया। बोला "हुजूर, वह तो चौकीदार है। बेचारा लँगड़ा है। सामान मैं उतार लूँगा।" "हूँ! चौकीदार! मुझे तो कोई चोर-लफंगा दीखता है।" उनके पास बैठी लिपी-पुती औरत नीचे उतरी—याने मेरा निजी ख्याल ऐसा हुआ—वह तो

ऐसी मालूम दी कि वह संस्कार और शील का साथ नहीं रखती। चांदी-सोने के उजाले में ही कदम उठती है। ये दोनों तो अन्दर चले गये। उनके नौकर ने गाड़ी का पिछला दरवाजा खोला था और वह किसी के उतरने की राह देख रहा था। सूखी खाँसी से सचेत करते लड़खड़ाते डगों पर एक स्त्री का ढाँचा नौकर के सहारे सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। टँगे टिमटिमाते उजाले के नीचे मैंने पहँचाना। ओह, ये तो सरला बीबी हैं! सरला बीबी! मेरी आकुल उमंगों की अन्तिम मंजिल! क्या यही है वह, जिसकी मुझे बाट थी?

सरला बीबी हाँफती-हाँफती दूसरे कमरे में चली गयीं। उन्हें आराम कुर्सी पर लोटी देखकर, मैं अपने आँसू छिपाने अपनी कोठरी की तरफ चल पड़ा। नहाने का इन्तजाम करके मेहमानों का नौकर आया। मैंने मुँह फेर लिया। मेरी नाक की "सु-सर्रर" की आवाज सुनकर वह बोला "क्या मालिक के बोलने का बुरा मान गये भैय्यन! अरे, छोड़ो भी उस पापी की बातों को!" "कौन पापी!" "वही चांडाल--राजा साहब, अन्यायी, सज्जनता तो कभी छू कर नहीं गयी उसे। जबसे मालिक ने यहाँ तैनात किया है, तब से लातों की खुराक पर पल रहा हूँ। अगर बीबी जी नहीं होतीं—" "कौन सरला बीबी जी!" "हां! लेकिन तुम्हें नाम कैसे मालूम?" "भाई, एक बार पहले भी तो आ चुकीं हैं। राकेश बाबू, बाबू जी, माँ जी और दो लड़कियाँ!" "अच्छा तो वे यहां ही आये थे। लौटने के बाद माँ जी यहाँ के बैरे के नाम से आग उगला करती थीं। उसी के कारण उन का रचा रचाया खेल टूट गया।" "मैं ही तो वह बैरा हूँ।" लेकिन मैंने क्या बिगाड़ा है?" "वे अपनी बिटिया मीना बीबी का ब्याह राकेश बाबू से करना चाहती थीं, लेकिन तुम्हारे गिरने-विरने से सारा रंग बिखर गया। लौटने पर राकेश बाबू चले गये।" "लेकिन वे तो शायद सरला बीबी से—" "हाँ यार, अपने राम का अन्दाज यही है। माँ जी ने सारे बिगड़े खेल का भंडा सरला बीबी के सर फोड़ा। कहती थीं, सरला चबूतरे पर न जाती, तो तुम भी उसे बुलाने नहीं जाते। फिर घटना भी नहीं होती, और चाय पर माँ जी मीनादेवी की मँगनी पूरी कर ही लेतीं।" "और राकेश बाबू?" "वो तो कच्चे निकले। जो मुँह लेकर गये, आज तक दर्शन नहीं दिये। माँ जी ने कमाल तो तब दिखाया जब सरला बीबी का ब्याह इस जानवर से, जिसकी दो पत्नियाँ मर चुकी हैं, ढेर सा पैसा देकर कर दिया, उनके रिश्ते में का है न? उस दिन से मैंने कभी सरला बीबी को मुस्कराते भी नहीं देखा है। यह रीछ, बाबू जी को धौंस-धमकियाँ देकर पैसे मँगाता है। खूब शराब पीकर मकान में दंगल मचा देता है, और बजारू औरतें लाकर उनके सामने सरला बीबी को अपमानित करता है। बीबी को तिल-तिल करके खा रहा है। अब तो बीबी को दिक हो गयी है। ससुराल से इलाज के नाम से रुपये लेकर पहाड़ पर जा रहे हैं साहबजादे! दवा तो नहीं, लेकिन दारू जरूर आती रही है।"

रात को चौकीदारी करने बंगले पर गया और सरला बीबी वाले कमरे के दरवाजे पर पड़ा रहा। मेरा मन तो बहुत उछल रहा था कि अन्दर जाऊँ और मन चाही सब बातें कह दूँ ! लेकिन हिम्मत नहीं पड़ती थी । एक तरफ सरला बीबी की सूखी खाँसी की खाँय-खाँय चल रही थी और दूसरी तरफ से 'हीः हीः होः होः' के साथ ठसाठस बोतलें खुलने की आवाज थी। रात के बारह बज चुके। दूर नदी पर चिड़ियाँ टिलल-टिलल की दुखभरी आवाज से सुनसान रात का काला-काला परदा फाड़कर दिल को अनौखे डर से हिलाने लगीं । सरला बीबी को खाँसी बढ़ गयी । दम घुट कर परेशान हो गयीं, और उनने पानी माँगा । मैं लँगड़ाता कमरे में गया और मैंने उन्हें पानी पिलाया। पानी का गिलास लौटाते उन्होंने मेरी तरफ देखा, बोलीं "बैरा, ओह तुम ! बैरा, मुझे माफ"—और खाँसी से वे आगे बोल न सकीं। मैं सिटपिटाते बोला "माफ ? बीबी जी, माफी तो मुझे माँगनी चाहिए।" सरला बीबी खांसी के मारे तड़पने लगीं। उनका मुँह सफेद फक हो गया, तो मैं घबराया, कमरे से बाहर आया और लँगड़ाता-गिरता बगल के दूसरे कमरे के दरवाजे के पास से बोला "मालिक, मालिक।" "कौन है मनहूस, तनहाई में दखल दे रहा है ? मालिक-मालिक का बच्चा !" दरवाजे पर आते मालिक बोले "क्या है ?" मैंने जवाब दिया "मालकिन की तबियत खराब है ?" 'खराब है ! अभी मरी नहीं ?' फिर शराब की मस्ती में झूमते वे सरला बीबी के कमरे में घुसे और झल्लाये "क्या खों-खों मचा रखी है ? चैन से सोने भी नहीं देती ! क्यों बुलाया था मुझे ?" सरला बीबी क्या बोलतीं ? वे मुँह फेर कर रोने लगीं। मैं अचम्भे में रह गया। करने क्या गया था और क्या हो गया। मैंने बोलने की कोशिश की "मालिक"—लेकिन राजा साहब चिल्लाये 'तू चुप रह शैतान !" और बीबी जी पर चिल्ला पड़े—"बोलती है या नहीं ! ऐसा एक झापड़ देता हूँ कि अभी जबान खुल जायगी।" राजा साहब ने हाथ उठाया, मैं बीच में पड़ा तो थप्पड़ मुझे लगा। राजा साहब मुझ पर गालियों की बौछार करने लगे। मैंने सफाई में सरला बीबी की कसम खाते उनके पैरों की तरफ हाथ बढ़ाया, तो राजा साहब आपे से बाहर हो गये। उन्होंने पास पड़ी सरला बीबी की जूती उठा फेंक कर मारी। मैंने हाथों से बचाने का प्रयास किया, लेकिन जूती मेरी छाती पर लगकर मेरे हाथों में अटकी रह गयी। राजा साहब मुझे धक्का मार कर, कमरे से बाहर कर, अपने कमरे में चले गये। धक्के से मैं बाहर आ गिरा। जूती अभी भी मैंने सीने पर दबा रखी थी। उसे लेकर, वैसा ही उठकर, अपने कमरे में चला गया। रात भर मेरे सीने के ऊपर सरला बीबी की जूती थी और सीने के भीतर प्रसन्नता और सन्तोष का उफान, कि जूती की मार से मेरा सम्मान तो बलिदान हो गया, पर इस बलिदान से निरपराध सरला बीबी को मैंने अपमान की पीड़ा से बचाया है और यह भी कि

मेरे बँगले के भीतर एक निरपराध की मानहानि मैंने रोकी और बंगले का गौरव सुरक्षित रहा।

सबेरा हुआ। सामान बाँधते समय मुझे बुलवाकर राजा साहब ने मुझ पर जूती की चोरी का कसूर लगाया। मैंने चोरी से इन्कार किया। और बात ठीक भी थी। जूती मैंने चुराई थोड़े ही थी? वह मेरा इनाम था, जो मैंने रख लिया। फिर जाते-जाते राजा साहब बंगले की किताब में मेरे खिलाफ शिकायत लिखकर मुझे चोर और स्त्रियों से असभ्यता से पेश आता लिख गये।

आजकल न्याय बड़ी जल्दी होता है! राजा साहब के मोटर की उछली गद्दी भी शायद पूरी तरह से बैठ नहीं पाई होगी, कि उसके पहले ही मेरा निर्णय हो गया और मैं चौकीदारी से भी हटा दिया गया। बची खुची चौकीदारी भी जाती रही। फिर भी मैं बंगले में पड़ा हूँ। बैरा मुझसे कहता है "मुंदन भैया, अब क्या होगा? कोई और काम तलाश कर लो ना?" मैं उसे जवाब देता हूँ कि वह ठीक कहता है, मुझे अब दूसरा इन्तजाम कर लेना चाहिए। लेकिन मैं ये कैसे बताऊँ कि अभी भी बंगले में रहने में मेरा कोई उद्देश्य है?

आजकल मैं अधिकतर बंगले के बरामदे में बैठे-बैठे रास्ते की ओर देखते हुए समय बिताता हूँ। बहुत सोचने के बाद, अब मैं समझ गया हूँ कि मैं क्या चाहता हूँ और मुझे क्या चाहिए है। नहीं, मुझे सरला बीबी से जैसा साधारणतया समझा जाता है, वैसा प्यार नहीं है। बस बात इतनी सी है कि उनका दुःख मैंने समझ लिया है, और मैं उनसे एक बार फिर मिलकर डाकबंगले के पिछले चबूतरे पर चाँदनी रात में उनसे कह देना चाहता हूँ कि अपनी पीर का बोझ उन्हें अकेली को न उठाना चाहिए। दुःख वे मुझे बतावें, सारा पीड़ा का भार मुझ पर छोड़दें और छिटकी चाँदनी में मेरी बातों पर एक बार धीरे से मुस्करा दें। बस, इतनी सी बात! लेकिन वे आवें तब ना?

अभी-अभी की बात है। मैं और बैरा रास्ते की तरफ देखते चिलम पी रहे थे। पहाड़ों की तरफ से एक स्टेशन वॅगन गाँव की ओर तेजी से निकल गयी। मैं देखता रह गया। सामान खचाखच भरा था, कुछ देखा-सा भी मालूम होता था, लेकिन गाड़ी के भीतर एक मोटे काले आदमी के सिवाय और कोई नहीं था। बैरा बोला 'देखो, देखो, वह गाड़ी है! याद है?" "नहीं" मैं बोला। "वाह, नहीं कैसे? वही पेटियाँ, वही बिस्तरे, वही साहब, सब तो है? नहीं कैसे? हाँ, वे बीबी जी नहीं दिख रही हैं; मर गयी होंगी और क्या?" "नहीं, नहीं जी" मैं बोला "तुम बकते हो; यह गाड़ी वह नहीं हो सकती।"

(शेष अगले पृष्ठ के नीचे)

मेघ-गीत

— श्री रामेश्वर "त्रिवेणी —

बरसो-बरसो हे मेघ सघन !
तुम बूँद-बूँद बरसो, बरसो हे मेघ सघन !
तुम बूँद-बूँद बरसो !

चातक की मूक पिपासा पर
सातों स्वर साधे बरसो तुम,
विजन-विपिन औ' मधुवन में भी
रिमझिम लहरी में चहको तुम,
मेरे आकुल चातक उर पर
तुम स्वाँति सजल बन झरो, झरो हे श्याम सघन !
तुम बूँद-बूँद बरसो, बरसो हे मेघ सघन !
तुम बूँद-बूँद बरसो !

बरसो, कुसुम सजल दृग खोलें,
कलियों के अरुण-अधर भीगें,
मखमल सी घास सुहानी औ'
धन खेतों की रानी भीगें,
नयी भावना को लेकर तुम
कवि की कविता बन हँसो, हँसो हे मेघ सघन !
तुम बूँद-बूँद बरसो, बरसो हे मेघ सघन !
तुम बूँद-बूँद बरसो !

(पिछले पृष्ठ का शेष)

और वह बेचारा क्या जाने कि हो भी, तो मैं नहीं मान सकता। हमारे बंगले के एक कोने में एक सिंदूर से रँगा पत्थर पड़ा था। उसे मैं आजकल चुपके से फूल चढ़ा दिया करता हूँ। सरला बीबी की जूती उसके नीचे रखी है।

आजकल कुछ अजब सपना आता है। उसमें चबूतरे पर चाँदनी रात में सरला बीबी, मूँढ़े पर बैठी, घुटने पर घुटना रखे, पैर हिलाती और अधूरी पहनी मेरे पास की जूती को अँगूठे पर नचाती, ठोड़ी हथेली में गड़ाकर धीमे से मुस्कराती हैं और कहती हैं "भाई, मुन्दन—।"

कहानी—

मातृत्व की भूख

— कुमारी सुन्दर बापट

भादों की रात थी। किन्तु काले बादल आकाश में गरज-गरज कर ही रह जाते थे। बादल घिर आने से हवा एकदम रुक गयी थी और मृत्यु-लोक के ज़ीव मात्र का दम घुटा जा रहा था। जलमाला नदी की लहरें मंथर गति से जल को बहाव की ओर धकेल रही थीं। वे अपना काम करते-करते थक गयी थीं और विश्राम लेना चाहती थीं। किन्तु जीवन में यदि विश्राम हो, तो जीवन की गति ही रुक जाय। अचानक झर-झर बूँदे गिरने लगीं। एक नई आशा से लहरों ने ऊपर देखा, हवा चलने लगी और लहरें फिर से मस्ती से झूमने लगीं।

जलमाला के उस तट पर, कुछ दूर, एक छोटा-सा नगर बसा था। और इस किनारे पर माझी की एक छोटी-सी झोंपड़ी खड़ी हुई थी, जिसमें एक दीप टिमटिमा रहा था। दीपक का आलोक उस घनी अँधेरी रात्रि में भूले भटके राही को मार्ग पर लाने के लिए पर्याप्त था। माझी एक नन्हीं-सी बालिका को क्रोड़ में लिए गहरी निद्रा में स्वप्न लोक की यात्रा कर रहा था।

वर्षा जोर से होने लगी और दीपक की लौ हवा के झोकों के साथ नाचने लगी। अभी उसमें जीवन था, संघर्ष करने की शक्ति थी, और थी अपना अस्तित्व बनाए रखने की अमिट लालसा।

सहसा नदी के इस तट से एक कोमल कंठ की गुहार वायु के झोकों के साथ उस तट से जा टकराई।

"माझी ऽऽऽ"

नीरवता ने उसके उत्तर में प्रतिध्वनि की। पुनः उच्च स्वर से एक-दो-तीन बार वही आवाज सुनाई दी। युवती अपनी सारी शक्ति से माझी को पुकार रही थी, किन्तु, उस पार आवाज का पहुँचना कठिन था। दीपक के आलोक ने पुनः उसे साहस दिया और वह बराबर चिल्लाती ही रही। उधर माझी का स्वप्न भंग हुआ। उसके कानों में मधुर कंठ का स्वर गूँजने लगा। उसे अनुभव हुआ कि कोई बुला रहा है। एक क्षण उसने सोचा कि रात के समय इस आँधी पानी में कौन बुला सकता है और आँख बन्द कर सो गया। परन्तु अब आवाज अधिक तीव्र थी। वाध्य होकर उसे उठना ही पड़ा। चारपाई से उठकर उसने बालिका को अच्छी तरह से चादर उढ़ा दी और स्वयं एक कम्बल ओढ़े लाठी लेकर चल दिया। छोटा-सा बाँस का द्वार खोलते ही

पानी तेजी से भीतर जाने लगा। उसने शीघ्रता से द्वार बन्द किया और कुछ सीढ़ियाँ उतर कर नाव के पास पहुँच गया। अब यह जानने में देर न लगी कि आवाज किसी युवती की थी। उसने आश्चर्य, कौतूहल, उत्साह और आशंका लिए नाव को लहरों पर छोड़ दी। पानी का बहाव तेज हो गया था, इसलिए नाव अपने आप ही निश्चित स्थान की ओर चली जा रही थी। कुछ ही समय में नाव तट पर आ लगी। अंधकार के आवरण में से सहसा माझी ने देखा कि एक युवती सिर से पैर तक भींगी हुई बदन सिकोड़े खड़ी है। आश्चर्य से उसने पूछा—"बिटिया, इतनी रात को कहाँ जा रही हो?"

"उस पार……"

इन दो शब्दों में ही इतने गहरे भाव भरे थे कि माझी का साहस न हुआ कि उससे और कुछ पूछे। उसने तुरन्त अपना कम्बल उसे ओढ़ने को दे दिया और युवती के नाव में बैठते ही उसने नाव खे दी।

इस आँधी तूफान में यह नारी क्यों उस पार जाना चाहती है, इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए माझी बेचैन हो उठा, किन्तु उस प्रस्तर मूर्ति के आगे उसे बोलने का साहस न हुआ। उसके एक ही शब्द में उसकी निर्भीकता, दृढ़ता और अटल विश्वास का परिचय उसे प्राप्त हो चुका था। अपने कौतूहल को दबाकर वह तेजी से डाँड़ मारने लगा और लहरों पर नाव नृत्य करने लगी। वर्षा उसका साथ दे रही थी। दर्शक के रूप में माझी और प्रस्तर मूर्ति अपने-अपने स्थान पर खोये-खोये बैठे थे। नाव किनारे लगते ही सहसा माझी ने कहा—"बिटिया, उतर जाओ।"

नाव से उतर कर वह युवती एक क्षण किनारे पर खड़ी रही, फिर माझी के हाथ में कुछ थमा कर जाने को उद्यत हुई। माझी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने तपाक से पूछा, "बिटिया, यह तुम क्या कर रही हो? इस अन्धकारमय रात्रि को तुम कहाँ जाओगी? चलो, रात भर मेरी झोंपड़ी में आराम कर लेना। सुबह होते ही जहाँ चाहो वहाँ चली जाना।"

गौरी ने एक क्षण सोच कर कहा "बाबा, तुम्हें बहुत कष्ट दे चुकी हूँ, अब और कष्ट नहीं देना चाहती।"

माझी ने कहा "अरे, क्या बातें कर रही हो बिटिया, यह तो मेरा काम ही है। इसी के सहारे तो जिन्दा हूँ।"

गौरी बिना कुछ कहे ही उसके साथ हो ली और कुछ ही क्षण में वे झोंपड़ी में पहुँच गये। माझी ने अपनी फटी धोती को चारपाई से उठाकर गौरी को वस्त्र बदलने के लिए कहा! उसने निःसंकोच धोती पहन ली और कम्बल को ओढ़कर वह एक कोने में दुबक कर बैठ गयी।

माझी ने जो चादर बालिका को उढ़ाई थी, उसे धीरे से उठा कर अपने शरीर पर लपेट ली और गीले वस्त्र निचोड़ कर एक बाँस पर फैला दिये। उसका जीर्ण शरीर जाड़ा लगने से काँप रहा था। उसने काँपते हाथों से ही आग जलाई और थोड़ी देर में आग के प्रकाश से झोंपड़ी जगमगा उठी।

गौरी अब भी चुपचाप एक कोने में निर्जीव-सी बैठी सब कुछ देख रही थी। उसके मुख के भाव ज्वार के बाद की शान्ति प्रकट कर रहे थे। वृद्ध से नहीं रहा गया और उसने कहा—"बिटिया! आग से हाथ गरम करलो, तुम काफी भीगी हो।"

गौरी खिसक कर आग के पास बैठ गयी। और आग की उठती ज्वाला में उसने अपने हाथ गरम कर लिए। आज उसने दृढ़ निश्चय के साथ भाग्य पर अपने को छोड़ दिया था, एक अटल विश्वास लिए अपनी जीवन-नौका अदृष्ट सागर में छोड़ दी थी। उसके चेहरे पर भय न था, किन्तु वह मुरझाया हुआ था। इतनी देर बाद उसका ध्यान माझी के कौतूहल भरे नेत्रों की ओर गया, जो सामने बैठा अपने ही विचारों में खोया-सा एक टक उसकी ओर देख रहा था। सहसा गौरी के होठ हिले और एक धीमी आवाज उसके मुँह से निकल पड़ी।

"बाबा, तुम्हें परेशान होने की कोई बात नहीं। तुमने आज मुझ पर जो एहसान किया है उसे मैं कभी नहीं भुला सकूँगी। तुम भी उसी समाज के प्राणी हो, जिसने मुझे अपना घर छोड़ने के लिए बाध्य किया। दुनियाँ कितनी विचित्र है। एक ओर जहाँ दुर्गन्ध है, वहाँ दूसरी ओर धीमी-धीमी सुगन्ध भी, जिसको पाकर मानव एक बार सब दुर्गन्ध को एक क्षण के लिए भुला देता है।"

बाबा में इतनी बुद्धि कहाँ थी कि वह इन सब साहित्यिक बातों को समझ सके। उसने बेचैन होकर कहा "बिटिया, यह बताओ कि आखिर तुम घर छोड़ कर इस प्रकार कहाँ जाओगी?"

"जाऊँगी कहीं नहीं बाबा, कुछ थोड़े दिन के लिए मेहनत-मजदूरी कर लूँगी और फिर लौट कर अपने गाँव चली जाऊँगी।"

बाबा के सामने यह नारी एक पहेली थी। वह न तो उसकी बातों को समझ सका और न उसमें इतना धीरज था कि वह उसको समझने की चेष्टा करता। अधीर होकर उसने कहा, "बिटिया, तुम्हारी बातें कुछ भी मेरी समझ में नहीं आ रहीं।"

गौरी ने बाबा की बेचैनी दूर करने के लिए कहना शुरू किया कि वह एक विधवा थी। ब्याह के दो-तीन साल बाद ही उसका पति मर गया और वह मेहनत मजदूरी करके अपना पेट पालने लगी। नगर के एक सभ्य परिवार में वह भोजन बनाने का काम करने लगी। उसका जीवन यंत्रवत् चल रहा था। नगर से लगभग लगी हुई मजदूरों की बस्ती में उसने एक कमरा ले रखा था और उसी कमरे में उसका

सारा संसार समाया हुआ था। एकाकी जीवन से वह ऊब गयी थी, किन्तु वह यह भी नहीं चाहती थी कि अपने को सौंप कर किसी के अधीन हो जाय। विगत जीवन की कटु स्मृतियाँ बार-बार उसे प्रताड़ित कर रही थीं। उसका पति क्रोधी और शराबी था। गौरी का यौवन और मादकता उसे आकर्षित न कर सकी। वह उसके साथ सदा मारपीट करता रहता। कई दिन ऐसे निकल जाते कि वह भूखी ही पड़ी रह जाती। निर्धनता अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी और इसी संघर्ष में शंकर इस दुनियाँ से चल बसा। तब से अब तक, करीब दो वर्ष से वह अपना एकाकी जीवन यंत्रवत काट रही थी। किन्तु उसके हृदय में एक कसक थी। यदि उसकी भी गोद भरी होती, तो वह उसके सहारे अपना जीवन हँस कर काट देती। मातृत्व की भूख उसमें तीव्र रूप से जाग उठी, किन्तु इसके साथ ही मनुष्य के प्रति उसे जो घृणा उत्पन्न हो गयी थी वह उसे दबा देती। वह माता बनना चाहती थी, किन्तु किसी की गुलाम बन कर नहीं, स्वतन्त्र रूप से और यह होना असम्भव था। मानसिक संघर्ष चल रहा था। मातृत्व की भावना ने घृणा को दबा दिया और वह अपने अनजाने गिरीश के हाथों अर्पित हो गयी। हुआ वही जो बीज बोने पर होता है। बीज में अंकुर निकल आया और अंकुर के बाद उसने एक नन्हे से पौधे का रूप ग्रहण किया। चारों ओर बस्ती में काना-फूँसी होने लगी। किन्तु यह किसी को मालूम नहीं था कि समाज की दृष्टि से इस गुरुतर अपराध का सहयोगी कौन है। अनेक मुँह अनेक बातें होने लगीं, यहाँ तक कि उसे मकान छोड़ने को भी समाज ने बाध्य कर दिया।

विधुर गिरीश गौरी से विवाह करना चाहता था, किन्तु गौरी इस बात के लिए प्रस्तुत न थी। वह पुनः अपने को गुलाम बना कर जीवन को जकड़ना नहीं चाहती थी। कटु अनुभवों की स्मृति ने पुनः उसके मस्तिष्क में मनुष्य के प्रति घृणा उत्पन्न कर दी। किन्तु समाज उसे मुक्त रूप से रहने देने के लिए कहाँ तयार था।

एक दिन गिरीश विवाह का प्रस्ताव लेकर उसके पास आया। किन्तु उसने बात टाल दी। वह सोचता था, यह एक विचित्र नारी है जिसे समझना उसके मस्तिष्क से परे की बात है।

दिन बीतते गये और पौधा पनपता गया। धुँधले वातावरण में गौरी ने अपना मार्ग निश्चित किया। उसे समाज के प्रति रोष था, किन्तु साथ ही समाज ने जो अमूल्य भेंट उसे दी थी, उसकी तुलना में उसका रोष फीका पड़ गया। वह सोचती, समाज उसे कब तक प्रताड़ित करेगा ? समय इन सब बातों को विस्मृति के गर्त्त में ढकेल देगा और वह आशा का दीप लिए अपने जीवन के शेष दिन सुख में काट देगी। यदि वह विवाह भी कर लेती है, तो इससे अधिक क्या होगा ? एक की जगह चार बच्चों

(शेष पृष्ठ २८१ पर)

रूपक कथा—

बेल का बल

—श्री शिवकुमार शर्मा 'शैल'

धरती की गोद में एक नन्हा पौधा मुस्करा उठा। क्रमशः वह विकासाकाश की ओर बढ़ने लगा। पनपने लगा। पक्षी, पशु, मनुष्य प्रत्येक उसे आशा भरी दृष्टि से निहारते और उसकी प्रशंसा करते। हवा आकर उसका जी बहलाती। सूरज की नन्हीं किरणें सबेरे-सबेरे उसे कुछ गरम, कुछ ठंडा, कुछ तीखा आभास देकर जगा जातीं। मेह उसे नहला-धुलाकर हरे ताजे पत्तों से इस तरह सजा देते जैसे कोई नादान दूल्हा पूरे साज व सिंगार के साथ खड़ा हो गया हो। सावन के काले बादल उमड़ते-घुमड़ते आसमान को छा लेते और फिर खुल-खुलकर उसके दिल में कुछ गुदगुदी पैदा कर देते। भादों की गंभीर, मौन और भयावनी रात्रि उसमें एक सिहरन और सनसनी फैला देती। वसन्त की पूनों उसके दिल में यौवन की उमंग और उन्मादना की कलम लगा देती। वह बढ़ता ही गया।

लेखक

उसका तना दृढ़ हो गया। चारों तरफ पत्ते भर गये। शाखाएँ फूट पड़ीं। फल के मूल—फूल—चारों ओर पत्तों की जालियों से झांकने लगे। पंछी उसमें आकर अपना घोंसला बनाने लगे। राही उसकी घनी छाया के नीचे विश्राम पाते। जीवधारी भानु के प्रखर तेज से पराभूत हो दौड़े-दौड़े उसकी छाया की शरण लेते, और घंटों बैठे रहते। प्रत्येक उस पेड़ से सुख की सांस, छाया का आश्रय और सतत परिश्रम के पश्चात विश्राम-विराम पाता। फिर इस उपकार के बदले में कोई उसके चिरयौवन की शुभकामना करता, कोई दीर्घायु का आशीर्वाद देता, तो कोई उसकी दानशीलता की दुहाई देता। वह जवान हो गया।

उस दिन की संध्या थी। वही संध्या, जिसे अपत्ते अंचल में रात की गहरी अंधियारी छिपानी थी; आशंका की एकान्त प्रतीक थी। क्षितिज में एक ओर प्रतीची लपलपाते अग्नि पिंड को निगलने को उतारू थी। और प्राची रात की स्याही को उगल रही थी। दो विरुद्ध रंगों की संयोग-बेला थी वह। एकाएक एक अंधड़ उठ खड़ा हुआ।

काले वस्त्र पहन बादलों का दल भी आ निकला और बिजली कौंध उठी। अंधड़ से उस विशाल वृक्ष का कलेजा हिल उठा। बिजली से वह चकाचौंध हो गया। उसका हृदय काँप गया। कितनी डर भरी संध्या थी वह! बड़ी विषम, एकदम अद्‌भुत, बहुत ही विचित्र। अंधड़ का फिर एक झोंका आया। उस आवेग में एक पीली पतली लता शून्य में लहराती हुई आई, जैसे कोई क्रुद्ध नागिन उड़कर किसी को डसने जा रही हो। वही बेल, जिसे दुनियाँ "अमर" कहती है। वही तन्वंगी अमर बेल जो दिखने में सुनहरी, खूबसूरत, स्पर्श करने में मखमली, रेशे-सी कोमल और जिसके ग्रहण करने ही से बसन्त ऊजड़ हो जाता है। वह कोमलांगी, बहुजन-परायणा उस विशाल वृक्ष के शरीर में बरबस, असंयत और अव्यवस्थित रूप से आ लगी। वृक्ष को क्षणेक को किंचित सुख का अनुभव हुआ। शायद वह उसकी शोभा श्री को बढ़ाएगी। पर वह किसी की हँसी सुनकर चौंक गया। कोई हँस रहा था····ही-ही, ही-ही। चारों तरफ देखा, किन्तु कुछ नहीं। केवल एक ठूँठ दीख पड़ा उसे, जिसके खोखले से हवा टकरा रही थी-ही, ही, ही। घड़ियों पर घड़ियाँ बीतीं, और हफ्तों से महीने। लता का प्रकाश इतना विस्तृत हुआ कि अपने बाहु-बन्धन में उसने वृक्ष के सारे तन को सहेज लिया। वृक्ष उसी तरह दिखता था जैसे किसी सुन्दर मोर के पाश में अधमरा नाग। जैसे कोई सुनहरी तलवार उसके सीने में पिरो रहा हो। जैसे किसी अबूझ का प्यार हो।

बसन्त आया। पेड़ फूलों से बस गये। हवा सुगन्ध से भर गयी। किन्तु उस विशाल वृक्ष के लिए असमय सूना पतझड़ था। पक्षी अपना बसेरा उठा ले गये। पत्ते एक-एक करके गिर गये। फूल अभी खिलने भी न पाये थे, कि कलियाँ अलसा कर अस्तित्त्वहीन हो गयीं। सारा वैभव, सारी विभूति मिट गयी।

वह ठूँठ हो गया।

पशु, पक्षी सभी उसे सहानुभूति की दृष्टि से देखते और मुँह मोड़ लेते। कोई उसके पास फटकता भी न था। धूप की दुपहरी में गिलहरी और चूहे को भी उसकी फटी और बारीक छाया सहन न होती थी। शायद सचमुच यौवन अपने आप भी सूक्ष्म और मूल्यवान है जो किसी प्रभावशाली आघात से टुकड़े-टुकड़े हो जाए। क्या वह किसी पहाड़ी की सबसे ऊँची जगह की एक गोल शिला जैसा है जो किसी के धक्के से इस बुरी तरह भड़भड़ाती गिरती है कि धरती की किसी खाई में विलीन हो जाती है।

शायद वृक्ष अब सोच रहा था—

जो अंग-मात्र को सुख पहुँचाती है, वह वस्तु प्रायः विनाशिनी होती है।

बेल निरीह थी। नहीं,····वह एक भड़कते हुए अंगार की चिलकती हुई चिन-

गारी थी। वह सुन्दर थी, रंगीन थी, किन्तु नहीं वह एक सुनहला जाल था, न सुलझने वाली उलझन थी। रेशम की कोमल पर झीमट डोर थी वह, गले में आखिरी दम तक चिपटी रहने वाली। वह केवल लता थी, नहीं वह अमर बेल थी। बिचारा विशाल वृक्ष! काश, अपने प्राणों की अन्तिम घड़ियाँ गिनने से पहले वह समझ सकता उस "बेल का बल"।

(पृष्ठ २७८ का शेष)

की माँ बन जायगी और निर्धनता उसे इस लायक भी नहीं छोड़ेगी कि वह अच्छी तरह से अपने बच्चों का पालन-पोषण भी कर सके। आज भी वह मजदूरी कर रही है, पीछे भी उसे मजदूरी करना पड़ेगी और सिर पर इतना बोझ····। इससे अच्छा यही होगा कि वह अपनी अभिलाषाएँ एक पर ही केन्द्रित कर सके। समाज साल-दो साल उसे परेशान करेगा। अन्ततः सब बातें शान्त हो जाएँगीं। इस आँधी-तूफान में यदि नौका किनारे लग गयी तो····। एक असीम सुख की कल्पना से उसका सारा शरीर सिहर उठा।

इन बातों को सुनने में वृद्ध माझी इतना तल्लीन हो गया था कि प्रभात की किरणों ने कब उसकी झोंपड़ी में प्रवेश किया, इसका उसे पता ही न लगा। इस नारी की बात सुन कर उसकी आँखों से प्रेमाश्रु झरने लगे।

सहसा उसकी दृष्टि खाट पर पड़ी बालिका पर गयी और एक तीव्र वेदना ने उसे झकझोर डाला। उसने सोचा "यदि मन्नो भी इतनी साहसी होती, तो आज इस दुनियाँ में इस अबोध बच्ची को छोड़कर संसार से घबड़ाकर क्यों आत्महत्या करती?"

अवतार

—श्री मोहनलाल अवस्थी 'मोहन'—

जब होती है निर्जीव जगत की काया,
जब खुले हुए लोचन पथरा जाते हैं,
जब होठों पर जग का जीवन आ जाता,
धरती के आँसू नभ पर छा जाते हैं,

जब अंधकार पथ भी न देखने देता;
दानव बढ़ता है, मानव क्षय होता है,
करवटें बदलने लगता है जब कण-कण
तब कृष्ण चन्द्र स्वयमेव उदय होता है।

जन-भाग्य-द्वार की लौह अर्गलाएँ सब
भीषण झटके के साथ छूट जाती हैं,
दानवता बँध जाती है, और मनुज की
जंजीरें अपने आप टूट जाती हैं।

कंसत्व नीचता की वाचाल क्रियाएँ
थककर हो अपने आप मूक जाती हैं,
उद्धार मनुज का करने चलता है जो
सरिताएँ उसको देख सूख जाती हैं।

नर नारी उसके पीछे चल देते हैं
अपने लौकिक व्यवहार भूल जाते हैं,
यह कठिन नहीं है, अरे देखकर उसको–
अति कुटिल सर्प फुंकार भूल जाते हैं।

संदेश यही ले तुम उतरे वसुधा पर,
तुम उतरे, मानव चला स्वर्ग के ऊपर,
तुम उमड़ पड़े घनश्याम, देखकर दुख को
शत अमृत धार नव बरस पड़ीं इस भू पर।

जो लास नृत्य मधुवन में सीखा तुमने
उसने तांडव बनकर रणक्षेत्र कँपाया,
सीखे जनता से गीत, सुनायी गीता,
मानों तुमने यह दुनियाँ को बतलाया—
"लखकर केवल सांसारिक बाह्य क्रियाएँ
मानव का मूल्य न जाना जा सकता है,
वह क्या है, क्षण भर में क्या हो सकता है,
केवल शरीर यह नहीं बता सकता है।
यदि जीवन बहता है तो क्या बहता है,
यह तो उसके स्वभाव का परिचायक है,
जो औरों को भी अपने साथ बहाए
वह जीवन जीवन है, जग का नायक है।
साँसें जीवन का जड़ व्यापार नहीं हैं,
साँसों के भीतर क्रांति पला करती है,
जीवन का अर्थ न समझो केवल पानी,
जीवन के भीतर आग जला करती है।
जो धूल धरा के ऊपर पड़ी हुई है,
वह भूमि छोड़ नभ में भी उड़ सकती है,
जो सरिता मंद, सरल-सीधी बहती है,
दुर्गम पथ आने पर मुड़ भी सकती है।
जो प्राण प्रेम के ऊपर टिके हुए हैं,
कर्त्तव्य उन्हें भी तजकर चल सकता है,
जो वेणु बजा वृन्दावन में मृदु रव से,
वह पांचजन्य का रूप बदल सकता है।"
तुम यहीं, जगत में पले, यहीं पर खेले,
बस खेल समझकर सब कुछ कर दिखलाया,
अपने दृढ़ भुजदंडों के ऊपर तुमने
दुखियों के कष्टों का गिरिराज उठाया।
अवतार वही है मनुज साथ रहकर भी
जिसका कर कुछ अनुमान नहीं पाता है,
लेता है जग में जन्म, जगत में रहता,
पर जग उसको पहचान नहीं पाता है।

मध्यकालीन हिन्दी

—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी

ईसवी सातवीं शताब्दी तथा उसके कुछ शताब्दियों पश्चात भी समस्त भारत की राष्ट्रभाषा संस्कृत रही। धुर दक्षिण से उत्तर तक लगभग समस्त राजकीय शिलालेख संस्कृत में मिलते हैं। अपवाद स्वरूप कुछ लेख अन्य स्थानीय भाषाओं में भी हैं। राष्ट्रभाषा संस्कृत द्वारा समस्त भारत में विचारों का आदान-प्रदान होता था। साथ ही लोक-भाषाएँ, विभिन्न प्राकृतों के रूप में विकसित हो रही थीं। बौद्ध और जैन सम्प्रदायों ने जन-सम्पर्क-स्थापन के प्रयास में प्राकृतों में बहुत बड़े साहित्य का निर्माण किया। यद्यपि शौरसेनी, मागधी, महाराष्ट्री, पैशाची आदि प्राकृतों के अनेक स्थानीय भेद हो गये थे, परन्तु शिष्ट साहित्य की बहुप्रचलित मान्य भाषा महाराष्ट्री और शौरसेनी अपभ्रंश थी। महाराष्ट्री और शौरसेनी के मेल से 'नागर' प्राकृत का जन्म हुआ।* इसका केन्द्र मध्यदेश था। समस्त मध्यदेश, राजस्थान तथा गुजरात में यह लोकभाषा के रूप में पूर्णतः प्रतिष्ठित हो गयी थी। पूर्व की ओर इस प्राकृत का विस्तार होने पर उसका मागधी से मेल हुआ, जिसके परिणामस्वरूप अर्धमागधी का जन्म हुआ जिसका प्रचार प्रयाग और मगध के बीच रहा। संस्कृत के पश्चात इनके द्वारा ही भारत राष्ट्र ने विचारों का आदान-प्रदान किया। हिन्दी और प्राकृतों के बीच की कड़ी अपभ्रंश हैं। ये अपभ्रंश अनेक स्थानीय भेदों को लेकर चली थीं, परन्तु वे एक व्यापक काव्यभाषा को मानती थीं।

इन अपभ्रंशों से ईसवी ग्यारहवीं शताब्दी से वर्तमान हिन्दी तथा अन्य प्रान्तीय भाषाओं का निर्माण प्रारम्भ हो गया था। प्रयाग से लेकर गुजरात तक, अर्थात् मध्यदेश, राजस्थान और गुजरात में जिस भाषा का विकास हुआ वह मूल रूप में बहुत अंशों में समानता लिए हुए थी। प्रयाग के पूर्व में भी तिरहुत से विद्यापति की कीर्त्तिलता और सिद्धों की भाषा भी इसी केन्द्रीय भाषा की ओर उन्मुख है। यही कारण है कि जहाँ सहरपा, कन्हपा और शबरपा तथा 'कीर्त्तिलता' की भाषा प्राचीन हिन्दी मानी जाती है, वहाँ राजस्थान की डिंगल-पिंगल, भडौंच के गणपति की 'माधवानल कामकंदला' की भाषा भी प्राचीन हिन्दी ही है। प्राचीन मराठी

---

* अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी : क्या हिन्दी मेरठ की बोली है ?, भारती, जून १९५४, पृष्ठ ५

भी उसके प्रभाव को लिए हुए है। बौद्ध-जैन-सिद्ध-नाथ सम्प्रदायों ने इसे धुर दक्षिण तक पहुँचा दिया। व्यापारिक और राजकीय सम्पर्क भी उत्तर की भाषा दक्षिण में ले गये। अलाउद्दीन के आक्रमण के पूर्व ही उस भाषा का सूत्रपात हो चुका था जिसे आज दखनी हिन्दी के नाम से सम्बोधित करते हैं।

प्रान्तीय भाषाओं का विकास किस प्रकार होता गया और केन्द्रीकरण के साथ-साथ भाषाओं का विकेन्द्रीकरण किन कारणों से होता रहा, इसके विवेचन का यह स्थान नहीं। यहाँ तो केवल हिन्दी के विकास पर विचार करना है। मगध के पश्चिम की अपभ्रंश अनेक रूपों में विकसित हुई। जब पूर्व-मध्यकालीन प्राकृतों ने अपभ्रंशों का रूप धारण किया, तब उनके द्वारा जो देशव्यापी देसी भाषा का निर्माण हुआ था वह अनेक रूप में बिखरने लगी। धुर पूर्व में बंगाली, ठेठ पश्चिम में गुजराती, तथा दक्षिण में मराठी भाषाओं का विकास हुआ। उत्तर-पश्चिम में पंजाबी ने रूप ग्रहण किया। मध्यदेश में हिन्दी के प्रकृत रूप का विकास हुआ। इस मध्यदेश की भाषा का प्रसार पूर्वी राजस्थान और बिहार तक रहा। पश्चिमी राजस्थान में वह गुजराती के रूप से प्रभावित रही तथा अपभ्रंश से पूर्णतः मुक्त न हो सकी। पूर्व में वह मागधी की परम्परा से अभिभूत रही। उत्तर-पश्चिम में पूर्वी पंजाब में पंजाबी प्रभाव होना प्राकृतिक था। परन्तु ये सभी सीमावर्ती रूप केन्द्रीय भाषा की ओर उन्मुख रहे तथा स्थानीय प्रभावों के होते हुए भी मध्यदेशीया हिन्दी के अंग बने रहे।

हिन्दी के विकास की स्पष्टतः दो अवस्थाएँ दिखाई देती हैं। ईसवी बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी तक वह अपभ्रंश के प्रभाव से पूर्णतः मुक्त न हो सकी थी। आगे दो शताब्दियों में उसका वह संस्कृत-तत्सम-शब्द-बहुल रूप बन गया था जिसमें आगे उत्तर-मध्यकाल का विशाल साहित्य लिखा गया। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इन दो कालों को हिन्दी के विकास के 'प्राकृत काल' और 'संस्कृत काल' कहा है।* प्राकृत काल में जिस अपभ्रंश हिन्दी का निर्माण हुआ, उसमें मान्यता शौरसेनी नागर अपभ्रंश को थी। हिन्दी के प्राकृत-कालीन रूप के विकास का इतिहास यहाँ अनावश्यक है, उसके सम्बन्ध में एक ही बात यहाँ स्मरण रखने योग्य है कि उसका मध्यदेश का रूप ही टकसाली माना जाता था, जो मध्यदेशीया अपभ्रंश के रूप में विकसित हुई थी। आगे चौदहवीं, पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में हिन्दी के जिस रूप का निर्माण हुआ, उसका केन्द्र ग्वालियर था। इन तीन सौ वर्षों तक इस नवीन हिन्दी का नाम ही 'ग्वालियरी भाषा' था। यद्यपि यह भाषा उत्तर भारत की आर्ष काव्यभाषा थी तथा उसका प्रसार गुजरात, महाराष्ट्र और धुर दक्षिण में भी हुआ था, परन्तु उसका नामकरण उस

---

* रामचन्द्र शुक्ल : बुद्धचरित्र, पृष्ठ १२.

स्थान के नाम पर हुआ जहाँ की भाषा इन समस्त प्रदेशों में उसका व्यवहार करने वालों के लिए प्रामाणिक रूप में मान्य थी। आज से दस वर्ष पूर्व इसी आशय से हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान श्री चन्द्रबली पांडे ने प्राचीन परम्परा की ओर संकेत करते हुए लिखा था कि इन चार शताब्दियों में (ईसवी चौदहवीं से सत्रहवीं शताब्दी तक) 'होता यह था कि जब किसी शब्द के प्रयोग पर विवाद होता था तब व्रजभाषा का ही प्रयोग शिष्ट माना जाता था। अर्थात् भाषा की टकसाल व्रजभूमि अथवा ग्वालियर मानी जाती थी।'[*] पांडेजी ने 'व्रजभाषा और व्रजभूमि' का उल्लेख प्रचलित रूढ़ि के पालन में किया है। व्रजभूमि की भाषा, १७ वीं शताब्दी के पश्चात कुछ कवियों और सम्प्रदायों के द्वारा टकसाली मानी गयी, उसके पूर्व टकसाली रूप ग्वालियरी का ही मान्य था। श्री पांडेजी ने आगे अपने 'केशवदास' में 'ग्वालियरी भाषा' पर कुछ अधिक विचार किया है और केशवदास की भाषा को 'ग्वालियरी' कहा है।[†] भले ही अस्पष्ट और उलझे हुए रूप में हो, परन्तु 'ग्वालियरी' की ओर सर्वप्रथम सकेत करने का श्रेय श्री पांडेजी को है।[‡]

इस विषय में अद्यतन अभिमत श्री राहुल सांकृत्यायन ने प्रकट किया है। श्री राहुल ने लिखा है "जान पड़ता है, तुगलकों के शासन के अन्त में दिल्ली की सल्तनत के कमजोर पड़ जाने पर व्रज-ग्वालेरी भाषा के क्षेत्र में जो राज्य कायम हुआ, उसका केन्द्र ग्वालियर था, इसलिए व्रज-बुन्देलखण्डी का नाम ग्वालेरी भाषा भी कहा जाने लगा।" साथ ही राहुल जी ने लिखा है "व्रजभाषा और ग्वालेरी को कभी पर्याय माना जाता था। वस्तुतः बुन्देली और व्रज की भाषाएँ इतनी समानताएँ रखती हैं, कि अभी भी कितने ही व्रज-भाषा-भाषी बुन्देली को व्रज की एक बोली ही समझते हैं, और जिसे आज के बुन्देले पसन्द नहीं करते। जब आज इतनी समानता है, तो आज से साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व तो वह और भी रही होगी।"[×]

प्रश्न किसी के कहने और किसी के पसन्द करने या नापसन्द करने का नहीं है, महत्त्वपूर्ण प्रश्न है ऐतिहासिक वास्तविकता जानने का और सत्यान्वेषक-बुद्धि से उसे मानने का। श्री चन्द्रबली पांडे और श्री राहुल सांकृत्यायन के इन दो अभिमतों की अभिव्यक्ति के बीच इतनी सामग्री ज्ञात हो चुकी है कि मध्यकालीन हिन्दी की

---

[*] चन्द्रबली पाण्डे अनुराग बाँसुरी, पृष्ठ ६।

[†] चन्द्रबली पाण्डे, केशवदास, पृष्ठ २६४।

[‡] प्रस्तुत लेखक की पुस्तक "मानसिंह और मानकुतूहल" की भूमिका।

[×] राहुल सांकृत्यायन : ग्वालियर और हिन्दी कविता, भारती, अगस्त १९५५ पृष्ठ १६७।

विकास-परम्परा को कुछ अधिक स्पष्टता के साथ तथ्यों के आधार पर निरूपित किया जा सके।

जिस समय हिन्दी के "संस्कृत रूप" का विकास हुआ, उस समय ब्रजमण्डल नामक क्षेत्र अथवा ब्रजभाषा नामक भाषा का अस्तित्त्व नहीं था।[*] न उस समय बुन्देलखण्ड अथवा बुन्देली भाषा नाम ही प्रचलित था। ये संज्ञाएँ बहुत बाद की हैं और इनके आधार पर हिन्दी के विकास की प्रारम्भिक अवस्था को समझना सम्भव नहीं है। उस समय, अर्थात् तेरहवीं शताब्दी से सोलहवीं शताब्दी तक, इस प्रदेश को मध्यदेश कहा जाता था और यहाँ विकसित हुई हिन्दी के नाम "देशी भाषा", "भाषा", "मध्यदेश की बोली" अथवा "ग्वालियरी भाषा" मिलते हैं।[†]

परन्तु आज समस्त मध्यकालीन हिन्दी साहित्य की भाषा को ब्रजभाषा नाम देने की परम्परा ही नहीं चल पड़ी है, वरन् समस्त मध्यकालीन हिन्दी साहित्य की भाषा को मथुरा-गोकुल के संकुचित क्षेत्र की स्थानीय शब्दावली, व्याकरण तथा प्रयोगों के मापदण्ड से परखने की रीति भी चल पड़ी है। यह भयंकर ऐतिहासिक विपर्यय है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने बुद्ध चरित्र को शुद्ध यानी मथुरा की भाषा, ब्रजभाषा में लिखने के प्रयास के समर्थन में लिखा है "ऐसी भाषा को देखते हुए ब्रजभाषा को जो 'ऐतिहासिक' या 'मरी हुई' कहे उसे अपना अनाड़ीपन दूर करने के लिए दिल्ली भाड़ झोंकने न जाना होगा, मथुरा की एक परिक्रमा से ही काम चल जायगा।"[‡] संवत १९७९ वि० में जब शुक्ल जी ने यह वाक्य लिखा था, तब ब्रजभाषा "ऐतिहासिक" भले ही न हो पर आज वि० सं० २०१२ में वह क्या है यह कहने की आवश्यकता नहीं। इसमें किसी को कोई अफ़सोस करने की बात भी नहीं, भाषा के रूप तो बदलते ही रहे हैं, बदलते ही रहेंगे। ब्रजभाषा नाम से निर्देशित साहित्य भारतीय वाङ्मय की अमर विभूति है, यह मानने में किसी को आपत्ति नहीं, परन्तु साथ ही यह भी ऐतिहासिक सत्य है कि मथुरा की परिक्रमा से जो भाषा जानी जायगी, उसके विशुद्ध रूप में काव्य रचना करने वाले **नेही महाँ ब्रजभाषा प्रबीन** बहुत बाद को और बहुत थोड़े पैदा हुए हैं। मध्यकालीन काव्यभाषा के वास्तविक रूप को समझने

---

[*] डॉ० सत्येन्द्र, ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ ४९ तथा डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, ब्रजभाषा, पृष्ठ १६-१७।

[†] रेखता नाम भी बाद का है, जो मुगल दरबार में खड़ी बोली-युक्त पद्य के लिए प्रयुक्त हुआ, और जिसका विकास दिल्ली में पंजाबी के प्रभाव के कारण हुआ। इस भाषा को 'गूजरी' नाम भी दिया गया।

[‡] रामचन्द्र शुक्ल : बुद्ध चरित्र, काव्य-भाषा, पृष्ठ ५५।

के लिए न दिल्ली भाड़ झोंकने के लिए जाने की आवश्यकता है और न चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता में प्रस्थापित ब्रज मण्डल के चौरासी कोस की परिक्रमा करने की आवश्यकता है। इसके लिए तो विष्णुदास, मानक, थेघनाथ, चतुर्भुजदास निगम, केशवदास, सूरदास, तुलसीदास, मीरां, बैजू, तानसेन, बिहारीलाल, महाकविराय सुन्दर दास, यशवन्तसिंह, भिखारीदास, भूषण जैसे कवियों की कृतियों के अवगाहन और ग्वालियर तथा ओरछा की रज लेकर बेतवा और चम्बल के जल से मनमुकुर निर्मल करने से काम चल जायगा।

मध्यकाल के हिन्दी साहित्य को ब्रजभाषा, बुन्देलखण्डी अथवा अवधी कोई भी नाम देने में किसी को उतनी आपत्ति नहीं हो सकती; आखिर नाम में धरा भी क्या है, परन्तु जिस प्रवृत्ति के कारण हिन्दी भाषा और साहित्य के विवेचनों में अत्यन्त विद्रूप परिणाम निकले हैं वह है मथुरा-गोकुल की बोली को टकसाली मानकर हिन्दी के संस्कृत रूप के विकास से लेकर बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक की काव्य-भाषा के परीक्षण की भावना। इसी के कारण ब्रजभाषा और ब्रजमण्डल के महत्त्व प्राप्त करने के पूर्व की भाषा का नाम "ब्रजभाषा" दिया जाता है;* सूर, केशव, तुलसी, बिहारी जैसे अनेक महाकवियों की भाषा को ब्रजभाषा मानकर उसमें बुन्देलखंडी-अवधी का प्रभाव बतलाया जाता है। इन स्थापनाओं से ऊब कर, उनकी प्रतिक्रिया के रूप में यह भी लिख दिया जाता है 'चन्देल साम्राज्य के अधिकांश भाग में बुन्देलखण्डी भाषा अपनी अनेक स्थानीय बोलियों के साथ ग्यारहवीं-बारहवीं सदी में विकसित हो रही थी।'†

वास्तविकता यह है कि १६वीं-१७वीं शताब्दियों के पूर्व ब्रजभाषा अर्थात ब्रजमंडल को केन्द्र मानकर चलने वाली भाषा का न जन्म ही हुआ था, न उसकी कल्पना ही की गयी थी। उस समय भाषा की टकसाल कहीं अन्यत्र थी। वह उस प्रदेश में थी जिसे डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने अपने ग्रन्थ "ब्रजभाषा" में ब्रजभाषा के क्षेत्र से बाहर बतलाया है।‡ ग्वालियर और बुन्देलखण्ड की भाषा को ही इस समय काव्यभाषा का टकसाली रूप माना जाता था। उसका विस्तार समस्त मध्यदेश में था। पूर्वी राजस्थान, दिल्ली, अयोध्या और सुदूर विंध्याटवी के काव्य-मर्मज्ञ उसमें रचना करते थे। तब तक 'ब्रजमंडल" वर्तमान अर्थों में उसका एक छोटा-सा अंश मात्र था, जहाँ के विद्वानों को भी ग्वालियर में प्रश्रय मिलता था। यह ग्वालियरी, मध्यदेशीया शौरसेनी

---

* डॉ० धीरेन्द्र वर्मा : ब्रजभाषा, पृष्ठ १७।

† केशवेन्द्र मिश्र : चन्देलों का इतिहास, पृष्ठ २१३.

‡ डॉ० धीरेन्द्र वर्मा : ब्रजभाषा, मानचित्र।

की पुत्री, अपना शब्द-भण्डार संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और मुस्लिम सम्पर्क के पश्चात अरबी-फारसी तक से भरती थी। पुष्टिमार्गी अष्टसखाओं को भी उसका ही रूप दाय में मिला था। जब मानसिंह तोमर का अखाड़ा ई० १५२४ में उखड़ा, तब उसके पण्डित, साहित्यकार, कलावन्त, चित्रकार, शिल्पी दिल्ली, आगरा, ओरछा, रीवां आदि में फैल गये। गायक बैजू और तानसेन इसी अखाड़े के शिष्य थे। विष्णुदास, मानसिंह, बैजू, तानसेन, रामदास आदि का पद-साहित्य सूर को मिला था और इसी भेद को न समझने के कारण सूर की भाषा में बुन्देली प्रभाव दिखाई देता है। वह प्रभाव नहीं, उस समय की प्रतिष्ठित काव्यभाषा का रूप है। इसी ग्वालियरी भाषा को लेकर केशव और बिहारी के पूर्वज ओरछा गये थे, इसे लेकर ही अयोध्या का मानक अयोध्या लौटा होगा और इसे ही लेकर ग्वालियर के गूजर, खिलजी और तुगलकों की सेनाओं के साथ दक्षिण गये होंगे तथा उनके ही कारण दखिनी हिन्दी का एक नाम "गूजरी" पड़ा होगा।* गोस्वामी तुलसीदास ने स्वयंभू की रामायण पढ़ी थी,† उसकी पूर्वतम उपलब्ध प्रति ग्वालियर में लिखी मिलती है।‡ चित्रकूट में अधिक समय श्रद्धापूर्वक बिताने वाले गोस्वामी जी की भाषा में बुन्देली प्रभाव देखने वाले यदि ये तथ्य स्मरण रखें और ग्वालियर में बनी व्यापक काव्य-भाषा को दृष्टि में रखें, तो ग्रियर्सन साहब द्वारा भारत के खंड-खंड करने के प्रयास में प्रदत्त बुन्देलखंडी नाम की भाषा के ब्रजभाषा में घुस बैठने की इतिहास-विरुद्ध कल्पना न करें। "ब्रजभाषा" और "ब्रजमंडल" नाम तो खोजने पर सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में मिल भी जाएँगे, परन्तु बुन्देलखंडी बोली या भाषा नाम कब और कहाँ प्रयुक्त हुआ है, इस पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। बुन्देलों ने बुन्देलखंड नाम दिया, परन्तु उन्हें बुन्देली भाषा नाम देने की आवश्यकता न थी। उनके प्रदेश की भाषा उस समय समस्त हिन्दीभाषी जनता की आर्ष काव्यभाषा थी, वे उसे संकुचित रूप क्यों देते ?

इस मध्यकालीन काव्यभाषा का रूप यदि ब्रजभाषा से मिलता है तो इस कारण से, कि आगे जन्म ग्रहण करने वाले ब्रजमंडल में भी वह मान्य काव्यभाषा थी, वह ब्रजमंडल मध्यदेश का ही एक छोटा-सा भाग था। मथुरा की परिक्रमा की सीमा में भाषा के रूप को आबद्ध कर पुष्टि मार्ग के प्रचार के पूर्व अथवा उसके पश्चात

---

* श्रीराम शर्मा : दखिनी का पद्य और गद्य : सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या की अवतरणिका, पृष्ठ ५।

† राहुल सांकृत्यायन, तुलसी और स्वयंभू या शंभू : सरस्वती, सितम्बर १९[illegible]५, पृष्ठ १५६।

‡ राहुल सांकृत्यायन, ग्वालियर और हिन्दी कविता, भारती, अगस्त १९५५ पृष्ठ १६७।

हिन्दी के समर्थ कवियों ने (कुछ अत्यन्त अल्प संख्यक कवियों को छोड़कर) रचनाएँ नहीं कीं। जब नाम बदल ही गया, तो उसे स्वीकार अवश्य कर लिया गया, परन्तु इस भाषा की परिभाषा ही बदल दी गयी और भिखारीदास ने इसी काव्यभाषा की परम्परा को देखकर ही व्यवस्था दी **ब्रजभाषा हेतु ब्रजवास ही न अनुमान्यो।**

जैसा हम उपर कह चुके हैं, नाम में कोई महत्व नहीं। ११ वीं शताब्दी से १९ वीं शताब्दी तक की मध्यकालीन हिन्दी भाषा को ब्रजभाषा कह लीजिए, अवधी कह लीजिए, भाषा कह लीजिए, चाहे हिन्दवी या हिन्दी कह लीजिए; महत्वपूर्ण बात है उसकी रूप-परंपरा को समझने की। "ब्रजभाषा" नाम अपने साथ मथुरा की परिक्रमा की संकुचित भावना लेकर चलता है, वह उसका प्रतीक बन गया है। इसके कारण हमें इस मध्यकालीन काव्यभाषा में बुन्देलखंडी, कनौजी, राजस्थानी, अवधी, मालवी विभेदों की दीवारें खड़ी दिखाई देती हैं, जो वास्तव में उसमें कभी नहीं मानी गयीं। जिस प्रकार जायसी ने ग्रामीणों में इस्लाम के सिद्धान्तों के लिए व्यापक काव्यभाषा का रूप छोड़कर अवध की स्थानीय बोली को अपनाया, उसी प्रकार साम्प्रदायिक आग्रह से पुष्टि मार्ग ने मथुरा-गोकुल की बोली के रूपों को अपनाया। वे मध्यकालीन काव्यभाषा के आर्ष रूप नहीं हैं, उसके अपवाद हैं। अपवादों से नियम नहीं बनते। इसके विपरीत, ग्वालियरी भाषा नाम के पीछे उस व्यापक काव्यभाषा की कल्पना है, जो मध्यकाल की काव्यभाषा थी। इस तथ्य का विस्मरण ही समस्त गड़बड़ी का मूल है।

मध्यकालीन हिन्दी की मान्य काव्यभाषा के विवेचन को हमने तीन अंगो में विभाजित किया है। पहला यह कि मध्यकाल में मध्यदेश से क्या आशय समझा जाता था, दूसरा यह कि मध्यकालीन काव्यभाषा की नाम-परंपरा क्या रही है और उसका केन्द्रीय रूप किस स्थान का माना जाता था और तीसरा यह कि उस काव्यभाषा का रूप क्या था। इन तीनों विषयों को हृदयंगम करने के पश्चात ही उस मध्यकालीन हिन्दी काव्यभाषा का सही रूप से विवेचन हो सकता है, जिसके विषय में पं० रामचन्द्र शुक्ल लिख गये हैं—"यद्यपि यह वाणी ब्रजभाषा के नाम से प्रसिद्ध है, पर वास्तव में अपने संस्कृत रूप में यह सारे उत्तरापथ की काव्यभाषा रही है (और है)।"* उसे नाम कोई भी दे लीजिए, प्रधान प्रश्न उसके रूप तथा उसकी ऐतिहासिक परंपरा का है।

---

* रामचन्द्र शुक्ल : बुद्ध चरित्र, पृष्ठ २ (कोष्टक हमने लगाए हैं)।

प्रकाशन परिचय

कविता : १९५४

कविता के संकलन निकलते ही रहते हैं; अवश्य ही इधर उनकी संख्या में शायद कुछ बढ़ती होने का कारण यही हो सकता है कि तथाकथित नयी कविता का नया होना एक विशेष प्रकार के उत्साह की सृष्टि करता है जो एकदम से हँस कर उड़ा देने की बात भी नहीं है।

इधर निकलने वाले संकलनों में दो संकलन विशेष रूप से जाने गये। एक तो 'नयी कविता' और दूसरा 'कविता: १९५४'। कविता: १९५४ में श्री अजितकुमार एवं श्री देवीशंकर अवस्थी के सम्पादकत्व में १९५४ में प्रकाशित समस्त कविताओं में से प्रतिनिधि रचनाएँ चुनी गयी हैं। प्रारम्भ में अपना लक्ष्य स्पष्ट करते हुए सम्पादकों ने कहा है—'स्पष्ट है कि ऐसे किसी संकलन में एकरूपता ले आना सम्भव और कदाचित वांछित भी न था। किन्तु आप स्वयं अनुभव करेंगे कि इसमें एकरूपता का नितान्त अभाव हो, ऐसा भी नहीं है।' एकरूपता की सिद्धि का यही प्रयास इस संकलन की ताकत है।

१९५४ में प्रकाशित कविता का अवश्य ही यह अच्छा परिचय है। पूरा पढ़ जाने पर तीन बातें विशेष रूप से सामने आती हैं:—

(१) शब्दों का मोह।

(२) नव्य जीवन-दृष्टि का उत्साह।

(३) दैनिक जीवन की अनुभूति-गरिमा।

बहुत अच्छी कविताओं में शब्दों का मोह नहीं भी है, किन्तु नयी पीढ़ी के इन नये निर्माताओं को अवश्य ही कुछ विशेष प्रकार की ध्वनियों से मोह है। नयी विकासोन्मुख प्रतिभाओं को छोड़ कर पुराने आचार्यों को भी देखिए—

(१) है विरोधाभास समरसता चरण दो,
छाँह उनकी परम प्रज्ञातीत माया!
मृत्तिका से भी मृदुल कोमल हृदय है,
वज्रदृढ़ ब्रह्मांड काञ्चनकान्ति काया!

(श्री नरेन्द्र शर्मा)

या

(२) पंख खोल, पंख तोल, द्विज मनसिज, पंख खोल;
सुन रे, उड्डीयन के अभिमंत्रित गगन बोल।
अन्न-कण-चयन में ही नित त्वदीय चंचु पगी·······
(श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन')

या

(३) अधूरी हो, पर सहज थी अनुभूति :
मरी लाज मुझे साज बन ढांप गयी—
(श्री अज्ञेय)

नये कवियों में इस प्रकार के शब्दमोह के दो कारण हैं। एक तो वे लोग है जो नियमित रूप से 'लण्डन मैगेज़ीन' आदि पढ़ते हैं और पाश्चात्य साहित्य में शब्द-शोध के विभिन्न शूरवीरों से तीरन्दाजी सीख रहे हैं और दूसरे वे लोग हैं जो अपनी जगह एकदम सही और मजबूत हैं, किन्तु छायावाद के संगीत-सौष्ठव का जिन पर इतना अधिक प्रभाव है कि वे उसी युग की सूक्ष्म पदावली को भिन्न-भिन्न तरीके से सजा कर देख रहे हैं। नयी कविताओं में या नये ढँग की कविताओं में कई अच्छे खासे जाने पहिचाने कवि पाठक के प्रति क्रूर हैं और अपने प्रति लापरवाह।

(१) ये बेदिली ही न हों संगे-आस्तानए-यार.
वगरना इश्क की मंजिल ये हो तो क्यों कर हो।

या

(२) हम विकल्प के वल्कल में संशय विष पीड़ित·······

परन्तु ये सब सतह की बातें हैं और तलहटी में अनेक बन्द सीपियाँ भी हैं जिनमें मोती बन रहे हैं,— प्रवाल हैं,—एक नवीन कोष का आयोजन है। अनेक नये स्वर इधर मुखरित हुए हैं जो गम्भीरता से एक नयी बात को नये ढंग से कहना चाहते हैं। इसलिए नहीं कि अब औरों का ध्यान खींचने को कुछ नये ढंग से कहना चाहिए, किन्तु इसलिए कि जगत को और जीवन को, कला को और साहित्य को उन्होंने नयी आँखों देखा है।

जिस उत्साह से इधर साहित्य के बुजुर्ग बच्चों की खिल्ली उड़ाते रहे हैं, उसी उत्साह से बच्चों का हठ भी बढ़ता गया है। जिस प्रकार नवीन के नागर समर्थक मेज ठोक कर कह रहे हैं कि बूढ़े खब्बीसों की बकबक पर ध्यान न दो, उसी प्रकार पुरातन के प्रेमी पुजारी ढोल पीट कर कह रहे हैं कि इन कल के लौंडों की जुबाँदराजी तो देखिए जरा! हमारे सामने इनका ये मजाल!

प्रकाशन परिचय

'कविता : १९५४' साहित्य के इस अवांछित द्वैत का निराकरण करके साहित्य की एकता की प्रतिष्ठा करती है !

जिसे आज नयी कविता के नाम से जाना-पहचाना जा रहा है, उसके सम्बन्ध में भ्रान्त धारणाएँ बनी हैं। इन भ्रान्त धारणाओं का कारण प्रधान रूप से यह है कि प्रस्तुत पीढ़ी के पूर्व की एक प्रयोगवादी पीढ़ी ने न केवल प्रयोग-विवाद की पराकाष्ठा प्रस्तुत की थी, अपितु अंग्रेजी के ऐसे विचारकों को और लेखकों को प्रतिध्वनित करना प्रारम्भ किया था, जिनका साहित्य-विद्रोह मूलतः ईसाई-धर्म की प्रतिक्रिया में खड़ा किया गया था। यौन की एक बाह्य पवित्रता पर जिस प्रकार का जोर गिरजाघरों ने डालना शुरू किया था, डी० एच० लारेंस ने उसके विरुद्ध गतिलाभ किया। उच्च मध्य वर्ग के बचकाने सदस्यों ने जिस प्रकार का प्रदर्शनवाद (Exhibitionism) अपना कर एक कृत्रिम जीवनचर्या का सूत्रपात किया था, टी० एस० इलियट ने उसका विरोध किया है। निश्चय ही भारतवर्ष में तो धर्म, अर्थ, काम तीनों की सिद्धि में मोक्ष को सुस्थित किया है। कामशास्त्र पर हमारे यहाँ के बड़े-बड़े मुनियों ने सूत्र लिखे हैं। इलियट और डी० एच० लारेंस को प्रतिध्वनित करना हिन्दी की साड़ी पर पैबन्द लगाना है। अवश्य ही सदा 'फ्रेंच मित्रों' या 'मल्ल-युद्ध-विवरणों' का उल्लेख करके कई लेखकों ने बिचारे अल्पशिक्षित पाठक के दिल में आतंक पैदा कर दिया है और अपने साथ के लिखनेवालों को 'हैण्ड्स अप' (Hands up) की अवस्था में रखा है। निश्चय ही यह स्थिति टिकाऊ नहीं हो सकती !

आज जिस प्रकार के भाषा-विन्यास को विशेष रूप से आधुनिक कहा जाता है उसकी परम्परा दादू, कबीर आदि से लगाकर निराला तक है। "रस गगन गुफा में अजर झरै" या "धुबिया फिर मर जायेगा, लीजे चादर धोय !" या गुरू गोरखनाथ की अनेक पंक्तियाँ आधुनिक से भी आधुनिक हैं। जिस प्रकार की फक्कड़ लापरवाही से कबीर शान्त रस में हास्य रस की खटाई डाल देते हैं वह आधुनिक मनोवृत्ति के निर्माण में सहायक होने जैसा तत्व है। अश्वत्थ वृक्ष जो ब्रह्मरूप है, उलटा है। इसलिए साधक की बातें भी उल्टी सी लगती हैं।

पुराण-प्रतीकों की सनातन प्रतिष्ठा से हिन्दू आस्था का सौन्दर्यप्रधान दृष्टिकोण बना है। प्रसिद्ध विद्वान डा० आनन्द कुमार स्वामी ने इस सम्बन्ध में 'दी डांस ऑफ़ शिव' (The Dance of Shiva) नामक जो प्रसिद्ध पुस्तक लिखी है, वह प्रत्येक हिन्दी पाठक को पढ़नी चाहिए। इन पुराण प्रतीकों की शक्ति इसी में है कि अनुभूति करने वाले के हृदय में उत्पन्न अनेक रसों से भिन्न मात्र कौतुक भाव से देखने वाले परम पुरुष को उसमें स्वतंत्र किया गया है। इसीलिए गणेश हैं, विष्णु का नारी रूप है, शंकर का मोहिनी के पीछे भागना है, पार्वती जैसी सती का स्वयं अपने पति को खाकर धूमा-

वती नाम पाना है। अनेक बातें हैं जो हमारी जीवन दृष्टि को संयोजित रखती हैं। परिणाम है—हिन्दू धर्म की परम्परा का मूल सत्य—

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः॥
(श्रीमद्भगवद्गीता-१८-१६)

(ऐसा होने से जो अपूर्णं बूद्धि द्वारा केवल अपने को कर्ता समझता है वह मूर्खं कुछ नहीं समझता !)

यहीं से कौतुक-भाव का मूल उत्स हमें प्राप्त होता है। पिछले युग के महानतम कवि महाप्राण निराला में हमने इसी चेतना को पुष्पित-पल्लवित होते देखा था—

मैं लिखती—सब कहते।
तुम चहते प्रिय, चहते।

आज के युग में भी इस चेतना की सिद्धि का प्रयास नवीन पीढ़ी सविनय कर रही है—

शब्दों की कथा एक मेरी है,
गीतों के पात्र सब तुम्हारे हैं।

× × ×

भ्रम ही हो टूट जायः कथा नहीं मेरी है,
मेरे संग : गीत-कथा-पात्र सब तुम्हारे हैं।
(श्री कीर्ति चौधरी)

या

सौ बार गया-आया हूँ जैसे इस पथ से,
पैदल, गाड़ी से, गज से,
घोड़े से, रथ से !

(श्री भवानीप्रसाद मिश्र)

या

आतुर हूँ
शांति उपशांति औ' अशांति के समस्त व्यूह
शर के समान भेद
ऊपर आऊँ तत्काल

जल-जाल मुक्त हो
अतुल गौरव-युक्त हो
विनत हो तो सप्रेम कहूँ —
जो हूँ—
तुम्हारा ही तो किया कराया हूँ
लो—
मोती लाया हूँ—

(श्री ओंकारनाथ श्रीवास्तव)

मगर यही नहीं। चित्र-व्यंजना के नये उपादानों के भी जो दर्शन हमें इस संकलन में प्राप्य हैं, उन्हें देख कर एक नवीन युग की प्रतीति होती है। आत्मा की आबोहवा का नक्शा है कविता. अंग्रेजी में कहिए कि चार्ट। इन नये चित्रों में एक सातवीं ऋतु की खोज है—

शीशे में अनजाने तन के आभास हिले
अनदेखे पग में जादू के घुँघरू छमके
कालीनों में ऊनी फूल दबे और खिले
थाप पड़ी पहले कुछ तेजी से फिर थमके

(श्री धर्मवीर भारती)

या

कोस भर तक केवड़े का
है गसा गुंजान जंगल
उन कँटीली झाड़ियों में
उलझ जाता चाँद चंचल

(श्री गिरजाकुमार माथुर)

या

श्री अजितकुमार की पैड़ियों के समान ऊपर-ऊपर जाती ध्वनियों से निर्मित एक चित्र देखिए—

चलते थे जिन पर
वे सड़कें भी   मुड़ तुड़ कर
खतम हो गयी थीं,
सब आवाजें

कभी यहाँ कभी वहाँ थोड़ी या बहुत देर
बोल : सो गयी थी !

निश्चय ही संकलन में मंच-मुखर प्रदर्शन-तत्पर और यहाँ तक कि भाव-तस्कर भी कुछ जन इधर-उधर हो सकते हैं। सब कविताएँ ऐसी नहीं हैं कि देखते ही आप तड़प उठें ! अनेक कविताएँ ऐसी भी हैं कि जिन्हें देख कर कुछ कोफ्त भी आपको हो। किन्तु एक ऐसे संकलन में, जिसमें हिन्दी के प्रायः प्रत्येक कवि की एक प्रतिनिधि रचना देने का प्रयास किया गया है, इस प्रकार के दोषों का होना स्वाभाविक है !

पुराने से पुराने व नये से नये, प्रगतिशील व अप्रगतिशील(?) प्रायः प्रत्येक कवि को शामिल करने का प्रयास इसमें है। हालांकि शायद रांगेय राघव जैसा एकाध नाम छूट भी गया हो, परन्तु ९९ प्रतिशत लेखक इसमें ऐसे आ गये हैं जिन्हें आ जाना चाहिए था।

आशा है इस संग्रह का उपयोग नये कवियों को समझने में किया जा सकेगा।

— श्री अनंतकुमार पाषाण

अभियान (कविता संग्रह)—श्री महेन्द्र भटनागर प्रकाशक आदर्श विद्यामंदिर, ३१ गौरीकुंड, इन्दौर। मूल्य १।।) पृ० सं० ८७

कवि महेन्द्र जीवन के कवि हैं, युवक. भावुक तथा संवेदनशील। उनकी सन ४२ से ४९ तक की कविताएँ इस संग्रह में संकलित हैं। यह काल अत्यन्त उथल-पुथल का है तथा प्रत्येक मानव इस काल की घटनाओं से किसी न किसी रूप में प्रभावित हुआ है। कवि भी देश की स्वातंत्र्याभिलाषा, गरीबी, वर्गभेद तथा अन्य विपर्ययों से प्रभावित हुआ है और उसी की संवेदना उसके इन गीतों में मुखरित हुई है। 'नया सबेरा' जैसे एकाध गीत को छोड़ सारी रचनाएँ भावयुक्त तथा प्रभावशाली हैं। 'मालवानां जयः' 'नारी', 'मृत्युदीप' आदि कविताएँ सुन्दर हैं। प्रत्येक कविता प्रेमी को पठनीय तथा मननीय इस कविता संग्रह का हम स्वागत करते हैं।

—श्री मधसूदन

संपादकीय

राष्ट्रभाषा और साहित्यकार

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के पुरी अधिवेशन को सन्देश देते हुए महामहिम राष्ट्रपति जी ने हमें आह्वान किया है। उस सन्देश में उनने कहा है कि "घोषणा मात्र से कोई भाषा किसी समस्त राष्ट्र की भाषा नहीं बन सकती।" आगे राष्ट्रपति जी ने अहिन्दी भाषी प्रदेशों में हिन्दी के प्रसार पर भी बल दिया है। जहाँ तक हिन्दी के समस्त राष्ट्र की भाषा बनने के सामर्थ्य का प्रश्न है, वह हमारे सामने सदैव सन्नद्ध खड़ा है। गत अप्रैल मास में इन्हीं पृष्ठों में "हिन्दी वाङ्मय की दिशा" शीर्षक से हमने कहा था कि "अल्पसंख्यक अपवादों को छोड़कर हिन्दी वाङ्मय आज अब तक की हुई कला-सृष्टि पर सिंहावलोकन करने के लिए अधिक प्रतिभा एवं तन्मयता के साथ संलग्न हैं।" और "उच्चकोटि की प्रतिभाओं को इस क्षेत्र में विनियोजित होने में संकोच के परित्याग की तथा सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक महत्त्व की कृतियाँ भारत-भारती के अनुशीलकों के लिए प्रस्तुत करने की हिन्दी के राष्ट्रभाषात्व की दृष्टि से भी" आवश्यकता बतलाई थी। सहयोगिनी "नई धारा" ने इस संकोच के मूल का अनावरण "आलोचनात्मक बनाम सृजनात्मक" शीर्षक में किया है। "आलोचना की पुस्तक तुरन्त छप जाती है और तुरन्त बिक जाती है। टटके पैसे मिलते हैं, सो अलग।" टटके पैसों के महत्त्व की आज के युग में उपेक्षा नहीं की जा सकती, फिर भी मनुष्य की अनेक प्रवृत्तियाँ पर्युषित पैसों पर अथवा बिना पैसों के भी चल ही रही हैं। कम से कम राष्ट्र के अथवा राष्ट्रभाषा के सम्मान का जहाँ प्रश्न उत्पन्न हो जाए, वहाँ सृजन-क्षम प्रतिभाओं को आगे आना ही चाहिए। कठिनाइयाँ और अभाव तो आड़े आते ही हैं, परन्तु यह भूलने की बात नहीं है कि तुलसी, प्रसाद, प्रेमचन्द या निराला प्रचुरता की सन्तान नहीं हैं। इन्हें प्रकाश में लाने का श्रेय कठिनाइयों के आगे अविनत रहने वाली वाणी-साधना को ही हो सकता है।

स्तुत्य

"नागपुर टाइम्स" नागपुर से प्रकाशित अंग्रेजी का समाचार पत्र है। वह अपने पृष्ठों में ही "हिन्दी नागपुर टाइम्स" हिन्दी में दे रहा है। हेतु और परिस्थिति का महत्त्व उतना नहीं है, जितना इसका कि नदी किसी भी दिशा से बहे, उसका प्रवाह समुद्राभिमुख ही होता है, निष्ठा का प्रकार कोई भी हो, नमस्कार सब केशव को ही

अर्पित होते हैं और हिन्दी की किसी भी प्रकार सेवा की जाय, वह उसके राष्ट्र-भाषात्व-सम्पादन में सहायक होती है। सचमुच, नागपुर टाइम्स का यह सत्प्रयास स्तुत्य है।

अमृत या अम्रत

साधारणतया अमृत शब्द का 'मृ' संयुक्ताक्षर न होकर 'ऋ' की मात्रा युक्त म् है। इधर प्रवृत्ति देखने में यह आई है कि कुछ महानुभाव इसे लिखते 'मृ' हैं और पढ़ते हैं 'म्र'। गद्य में तो यह प्रवृत्ति लक्षित नहीं हो पाती है, परन्तु पद्य में इस स्वच्छन्दता से कठिनाई उपस्थित होती है। 'म्र' पढ़ा जाता है, इससे तात्पर्य यही है कि इससे पूर्व के 'अ' को 'संयुक्ताद्यं' आदि के अनुसार गुरु मानकर कहीं-कहीं छन्द की पूर्ति की जाती है। देवनागरी लिपि की विशेषता ही यह है कि उसमें जैसा लिखा जाता है, वैसा ही पढ़ा भी जाता है। 'अम्रत' बोलने वाले महानुभावों को यदि वैसा ही बोलना अभीष्ट है, तो वैसा ही लिखने लगने में भी कोई हानि नहीं है। भाषा का निर्माण साहित्य-सृष्टाओं द्वारा ही होता है, तब 'अम्रत' लिखा जाने पर इसे 'अमृत' का तद्भव रूप मान लिया जायगा, और श्री दिनकर के 'रश्मिरथी' आदि स्थलों पर, जहाँ इसे 'अमृत' उच्चारण करते हुए 'अमृत' लिखा गया है, तत्सम प्रयोग माना जायगा। किन्तु पाठक पर 'अमृत' लिखकर छन्दोभंग न होने देने के लिए 'अम्रत' 'अम्रित' या 'अम्रुत' (कौन जाने क्या ?) उच्चारण का भार डाल देना उचित नहीं है। वैसे कवि सर्वतंत्र स्वतंत्र होते हैं, कोई अंकुश स्वीकार नहीं करते हैं। परन्तु लिपि और भाषा के बिना उनके हृदय में भरा सौन्दर्य मुखर नहीं हो सकता, अतः इनकी सीमाएँ तो मानें ही।

हिन्दी का विरोध

आज के जीवन की विडम्बना है यह कि अनेक बातों का शब्दार्थ कुछ होता है और फलितार्थ कुछ और। ऐसा ही कुछ द्रविड़काजगम का हिन्दी-विरोध भी है, यह घटनाक्रम से स्पष्ट हो उठा है। अब तक हिन्दी के विरोध का जो ढंग— रेलवे स्टेशनों के हिन्दी में लिखे नामों को तारकोल से पोत देना—इनने अपनाया था, उससे यही प्रकट होता था कि इस विरोध के पीछे अज्ञान है, राष्ट्रभाषा की आवश्यकता की अनभिज्ञता है अथवा हिन्दी से भिन्न किसी अनाशंसित भाषा को राष्ट्रभाषा बनाने की अनूहित आकांक्षा। राजनीतिक रस्सा खिंचाई में इस प्रकार के मूढ़ग्राह देखे भी जाते हैं। परन्तु पिछले दिनों द्रविड़काजगम ने हिन्दी का विरोध करने के लिए राष्ट्रीय झण्डे का अपमान करने का जो ढग अपनाया, उससे चल रहे इस कट्टर विरोध का रूप कुछ रेखाएँ लेता, उभर कर स्पष्ट होता प्रतीत होता है। राष्ट्रध्वज तो राष्ट्र-ध्वज ही है, उसकी छाया में हिन्दी राष्ट्रभाषा बने तो क्या या अन्य कोई भाषा बने

तो क्या ! यह जो कुछ भी विरोध है, उसका आधार सांस्कृतिक नहीं है, भाषा का ही नहीं है, इससे यह स्पष्ट हो गया है; उसके पीछे राष्ट्रव्यापी सहयोग की भावना से उठे तर्क या आधारों की अनुभूति नहीं है, यह ऊपर आ गया है। द्रविड़काजगम का यह विरोध वस्तुत: हिन्दी का नहीं है, यह है विरोध भारत की राष्ट्रीय एकता का, एक महान शक्ति के रूप में उदयोन्मुख संगठित भारत का और इसे उसी दृष्टि से देखना समीचीन होगा।

बांडुंग की प्रतिध्वनि

पिछले बांडुंग सम्मेलन में जो राग अलापे गये उनकी प्रतिध्वनि आज भी सुनने को मिल रही है, साम्राज्य और उपनिवेशवाद से पीड़ित एशिया के समाज में पश्चिम के स्वरों का लंका और पाकिस्तान से उठा विसंवादी घोष आज भी रह-रह कर अंतरिक्ष में, इस सम्मेलन में सम्मिलित हुए अनेक देशों ने जब पुर्तगाल के गोवा में जमे रहने की उच्च स्वर से भर्त्सना की है, तब प्रतिध्वनित हो रहा है। गोवा के प्रश्न को लेकर इन दोनों देशों ने जिस मनोवृत्ति का परिचय दिया है, उस सम्मेलन के निश्चयों की जो अवहेलना की है, वह अपने आप में विद्रूप है, और जिस उदार लक्ष्य को लेकर आज अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सामंजस्यपूर्ण प्रयास किये जा सकते हैं उसके विपरीत सीमित एवं सत्तापरायण-स्वार्थों की लिप्सा पश्चिमी सत्ताओं के चरणचुम्बन द्वारा पूर्ण करने की अभिलाषाओं का समय की गति के साथ निष्फल हो जाने वाला अशोभन प्रयास मात्र है यह।

"उपनिवेशवाद अपने सभी रूपों में एक बुराई है, जिसका जल्दी से जल्दी अंत करना चाहिए।" बांडुंग सम्मेलन के इस निर्णय की छाया में पाकिस्तान के उच्चायुक्त राजा गजनफरअली खां ने एक पत्र प्रतिनिधि सम्मेलन में बताया है कि पाकिस्तानी गोवा की पुलिस की नौकरियों में हैं, पाकिस्तान की गोवा के मामले में दिलचस्पी है. पाकिस्तान और गोवा के सम्बन्ध सामान्य हैं तथा गोवा में पाक व्यापारी हैं। पश्चिमी देशों की शक्तिलिप्सा के हस्तक बने पाकिस्तान के इन प्रतिनिधि ने यह बात अनभिज्ञता के आवरण में प्रकट करना उचित नहीं समझा कि पाकिस्तान का गोवा में साथ कैसा और कितना व्यापार चालू है और करांची-गोवा के बीच क्या हवाई यातायात प्रारम्भ होने वाला है। बांडुंग सम्मेलन के उपर्युक्त निर्णय का गोवा के मामले से सम्बन्ध है, यह उनकी मन: स्थिति में समझ में आने वाली बात नहीं थी। और पाकिस्तान के प्रतिनिधि के मुँह से ही निकली बात गोवा शासन को पाकिस्तान से सभी प्रकार की सहायता मिलने के तथ्यों की पृष्ठभूमि में वह बताने के लिए अपर्याप्त नहीं है कि वह देश पुर्तगाल के पतनोन्मुख उपनिवेशवादी वितान का एक स्तम्भ बनकर अपनी सार्थकता मान रहा है।

उधर श्री जान कोटलेवाला इस प्रतीक्षा में बैठे हैं कि भारत या पुर्तगाल उनसे गोवा के मामले पर मध्यस्थता की प्रार्थना करे, तब उनकी अहमहमिका की तृप्ति हो।

समय अपनी गति से बढ़ता जाता है। पूर्व ही क्या, सारा संसार आज शोषण, उत्पीड़न और स्वातंत्र्यापहरण के विरुद्ध उठ रहा है। रंग या संकुचित राष्ट्रीयता की ओट में इन दुष्प्रवृत्तियों को समर्थन देने वाले व्यापार को उन देशों के जनमानस का समर्थन भी अधिक समय तक प्राप्त होता नहीं रह सकता, जहाँ के कर्णधारों के कंठ से ये पुराने घिसे-पिटे राग प्रस्फुट हो रहे हैं।

गोवा की मुक्ति का प्रयास गोवा के भीतर रहने वाले भारतीय करें अथवा बाहर रहने वाले या सरकार करे, उपनिवेश और साम्राज्य अब रह नहीं सकते, गोवा का स्वतन्त्र होना निश्चित है, परन्तु इतिहास आज के इन पड़ोसियों के सम्बन्ध में क्या कहेगा?

जेनेवा सम्मेलन

सामरिक महाशक्तियों का प्रतीक्षित जेनेवा सम्मेलन सम्पन्न हो सका, यह प्रसन्नता की बात है। अमेरिका ने इस सम्मेलन में सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न जर्मनी की एकता का उठाया। रूस ने एशिया के कुछ प्रश्न रखे और एटम या हाइड्रोजन बम को प्रयोग रोकने की चर्चा हुई। अधिक महत्त्व जर्मनी की एकता को दिया गया और महाशक्तियाँ अणु-अस्त्रों की रोक के लिए प्रयत्नशील भी हैं।

जर्मनी का एकीकरण, जिसे इतना अग्रसर किया जा रहा है, उसका लक्ष्य यदि केवल उपनिवेश अथवा साम्राज्य के इच्छुक योरोपीय देशों के विभिन्न दलों का शक्ति अर्जन मात्र है, तब उससे संसार के कल्याण की आशा नहीं है और अणु-अस्त्र स्वयं में उतनी बड़ी विभीषिका नहीं है, जितनी उनकी आवश्यकता को जन्म देने वाली उपनिवेश और साम्राज्य की भूख जो अफ्रीका और एशिया में अपना गोचर आज भी ढूँढ़ती फिरती है। इन महत्त्वपूर्ण सम्मेलनों के द्वारा, शक्ति संतुलन के, विश्वमानव की दृष्टि से छोटे कामों के स्थान पर सम्पूर्ण पराधीनता के अन्त का—फिर वह उपनिवेश के रूप में हो, साम्राज्य के रूप में हो, गोआ में हो, मलाया में हो, हिन्दचीन में हो या मोरक्को में हो—विश्वकल्याणकारी कार्य प्रारम्भ होना चाहिए। हम पहाड़ न खोदें चूहा निकालने के लिए और विश्व की बात न करें अपने हित की दृष्टि से।

विद्यामंदिर-प्रकाशन, ग्वालियर

के

तीन अभिनव प्रकाशन—

वे अनुपम ग्रंथ हैं—

हमारे पड़ोसी देश—

लेखक—स्वर्गीय प्रो० रंजन

प्रस्तावना लेखक—डॉ० वासुदेवशरण

उत्तर प्रदेश की पंचायत पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत।

प्रसिद्ध देश भक्त विद्वान तथा घुमक्कड़ स्व० प्रो० श्री रघुनाथ सिंह रंजन ने इस में अपनी हिन्दचीन, स्याम आदि की यात्राओं का सुन्दर एवं सजीव वर्णन किया है। इसे पढ़ते समय आप अपने आपको भूल वर्णित देशों में ही पहुँच जाएँगे। उपन्यास की भाँति रोचक तथा भूगोल एवं इतिहास की भाँति शिक्षाप्रद। अनेक चित्र तथा कला पूर्ण तिरंगे सजिल्द आवरण सहित मूल्य २॥)

लक्ष्यहीन—

भूमिका लेखिका—महादेवी वर्मा

लेखिका—कुमारी उर्मिला बनर्जी

हिन्दी की सफल कहानी लेखिका कुमारी बनर्जी की ७ सुन्दर हृदयग्राही तथा मर्मस्पर्शी कहानियों का इस संग्रह में संकलन है। हजारों प्रतियाँ हाथों-हाथ बिक चुकी हैं। आज ही मगाएँ। मूल्य १)

काश्मीर की घाटियों में—

लेखक—श्री लक्ष्मीनारायण अग्रवाल

मध्यभारत शासन द्वारा पुरस्कृत एवं प्रोत्साहित

काश्मीर पर निर्मम पाकिस्तानी आक्रमण, बेकारी की समस्या आदि आज के राष्ट्रीय प्रत्याघातों का सजीव वर्णन लिये हुए ५ एकांकी नाटकों का संग्रह। इसका प्रत्येक एकांकी सफलता पूर्वक अभिनीत किया जाकर सहस्त्रश: दर्शकों की स्मृति पर स्थायी छाप छोड़ गया है। मूल्य २)

अपने पुस्तकालय के लिये आज ही मंगाकर उसे समृद्ध करिये।

तीनों पुस्तकें एक साथ मँगाने पर डाक व्यय नहीं लिया जावेगा।

अपना ऑर्डर आज ही दें—

व्यवस्थापक
विद्यामन्दिर प्रकाशन
सराफा, ग्वालियर।

वार्षिक
६)

राष्ट्रभारती

एक प्रति
॥=)

—:सम्पादक:—

मोहनलाल भट्ट
हृषीकेश शर्मा

(१) यह हिन्दी पत्रिकाओं में सबसे अधिक सस्ती, एक सुन्दर साहित्यिक और सांस्कृतिक मासिक पत्रिका है। (२) इस पत्रिका को राष्ट्र-भाषा हिन्दी के तथा लगभग सभी भारतीय साहित्य और संस्कृति को बल व प्रेरणा पहुंचाने वाले प्रान्तीय भाषाओं के श्रेष्ठ लेख, विद्वान साहित्यकारों का सहयोग प्राप्त है। (३) इसमें ज्ञानपोषक और मनोरंजक श्रेष्ठ लेख, कविताएँ, कहानियाँ, एकांकी नाटक, रेखाचित्र और शब्दचित्र रहते हैं। (४) बंगला, मराठी, गुजराती आदि भारतीय भाषाओं के सुन्दर हिन्दी अनुवाद भी इसमें रहते हैं। (५) प्रतिमास पहली तारीख को प्रकाशित होती है।

ग्राहक बना देने वालों को विशेष सुविधा। एजेंसी तथा विज्ञापन दर के लिए लिखिये।

"राष्ट्रभारती" हिन्दीनगर, वर्धा [मध्य-प्रदेश]

पश्चिमोत्तर भारत की प्रमुख हिन्दी मासिक पत्रिका

विश्व ज्योति

—:सम्पादक:—

श्री विश्वबन्धु शास्त्री, श्री सन्तराम, बी ए०

संचालक—श्री विश्वेश्वरानन्द

विश्व-हित की साधना के लिए—

(क) शुद्ध सांस्कृतिक साहित्य का सृजन,
(ख) प्राचीन और नवीन ज्ञान-विज्ञान का समन्वय,
(ग) बौद्धिक क्रान्ति और नई चेतना का जागरण,
(घ) अन्यायपूर्ण सामाजिक विषमताओं का दूरीकरण,
(ङ) सभी प्रकार के विचारों का निष्पक्ष अध्ययन और आलोचन।

वार्षिक चन्दा: ८) रुपये

१०) रु० वार्षिक चन्दा देकर विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान के सदस्य बन जाने पर भेंट के रूप में मुफ्त।

पत्र-व्यवहार का पता:—
व्यवस्थापक 'विश्वज्योति', साधु आश्रम
होश्यारपुर (पंजाब)

उत्तर प्रदेश शासन द्वारा पुरस्कृत—

मध्यभारत शासन द्वारा शिक्षा संस्थाओं को स्वीकृत—

पुरातात्विक शोध का रोचक ग्रन्थ

त्रिपुरी

लेखक—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी

भारत के तीन प्राचीन वैभवशाली नगरों का इतिहास—

विदिशा—जो अत्यन्त प्राचीन काल से भारत का सांस्कृतिक केन्द्र रही है—

पद्मावती—जहाँ नाग, गुप्त और पूर्व मध्यकालीन प्रतापी राजवंशों ने साहित्य एवं कला की उपासना की—

बाघ—जहाँ की मूर्त्तिकला और चित्रकला भारत की श्रेष्ठतम कृतियों में है—

की हृदयग्राही गाथा की रोचक शोध—

प्राचीन साहित्य, पुराणों, शिलालेखों तथा अवशेषों पर से लिखा गया वर्णन।

सुन्दर जिल्द, अनेक चित्र। मूल्य २)

कुछ सम्मतियाँ—

सामग्री अत्यन्त श्रेष्ठ तथा शैली हृदयग्राहक है—

—श्री व्ही० पी० अग्निहोत्री
भारत शासन के अण्डर सेक्रेटरी,
शिक्षा विभाग

यह हिन्दी साहित्य और इतिहास के वैभव की दिशा है—

—डॉ० रामकुमार वर्मा

इतिहास के विद्यार्थियों के लिये यह पुस्तक बड़े काम की है—

—"नई धारा"

विद्या मंदिर प्रकाशन; सराफा, ग्वालियर

× हिन्दी साहित्य में युगान्तर—
× भारतीय जन-जीवन में नई दिशा—
× काम सम्बन्धी सम्वाद एवम् साहित्य—
× काम तथा मनोविज्ञान सम्बन्धी खोज—

एक प्रति ।=) ❀ **मस्ती** ❀ वार्षिक ४)

सम्पादक—नरेन्द्र धीर

—यदि आप ग्राहक नहीं बने हैं तो आज ही ४) भेज कर वार्षिक ग्राहक बनें।
—यदि आपने विज्ञापन इसमें नहीं दिया है तो आज ही विज्ञापन भेजदें।
—यदि आपने एजेन्सी नहीं ली है, तो आज ही एजेन्सी लेलें।

आज ही लिखिए—व्यवस्थापक "मस्ती" खन्ना (पू० पंजाब)

रूस, अमेरिका, चीन, चेकोस्लोवाकिया तथा पूर्वीय एशियायी देशों तक
अपना व्यापार, देश तथा विदेशों तक फैलाने के लिये,

भारती में

विज्ञापन दीजिये।

दरों के लिये आज ही लिखें,

व्यवस्थापक,
'भारती'

जिस साहित्य का जीवन से सम्बन्ध नहीं, वह निरर्थक है।
जो साहित्य मानव-जाति की सेवा की प्रेरणा नहीं देता,
वह निष्प्रयोजनीय है। और

जो साहित्य बुद्धि-भेद उत्पन्न करता है, वह अनिष्टकारी है।

जीवन साहित्य

में जीवन, मानव-जाति की सेवा की प्रेरणा और एकनिष्ट बुद्धि से
अपने मार्ग पर चलने का बल मिलेगा।

एक प्रति अवश्य देखने की कृपा कीजिये।

वार्षिक मूल्य ४) एक प्रति ।=)

सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली।

पुस्तकालयों तथा अध्ययन कक्षों के लिए अनिवार्य—

भारतीय सांस्कृतिक इतिहास का महान् ग्रंथ

जिसकी छपते ही सैकड़ों प्रतियाँ बिक गईं—

✻ भारत की मूर्तिकला ✻

★

लेखक

श्री हरिहरनिवास द्विवेदी

प्राग् ऐतिहासिक काल से वर्तमान काल तक भारतीय मूर्तिकला के विकास का अत्यन्त प्रामाणिक साथ ही सरल और हृदयग्राही शैली में लिखा गया इतिहास। हिन्दी के लिए यह ग्रन्थ अपूर्व देन है।

अत्यन्त सुन्दर छपाई, मनोहर जिल्द, १०० से अधिक आर्टपेपर पर छपे चित्र।

मूल्य १०) रुपया। डाक व्यय पृथक्।

आज ही ऑर्डर दें

प्रबन्धक

विद्या मंदिर प्रकाशन, सराफा, ग्वालियर

दीपावली

के पुनीत अवसर पर

'नया समाज'

की

नई भेंट

● कहानी अंक ●

'नया समाज' के विशेषांकों की हिन्दी-संसार में अब तक इसलिए धाक नहीं रही है कि वे बड़े भारी भरकम और तड़क-भड़क वाले होते हैं; बल्कि इसलिए कि वे सुरुचिपूर्ण, उद्देश्यपूर्ण और शिक्षापूर्ण होते हैं। इसके नवनिर्माण-अंक, संस्कृति-अंक, स्वास्थ्य-अंक, जनतंत्र-अंक, परिवार-नियोजन-अंक, साहित्यांक आदि को जनता ने इतना पसन्द किया कि आज तक भी उनकी माँग बराबर बनी हुई है। हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि इसका अगला विशेषांक

● कहानी अंक ●

इसी परम्परा की रक्षा करने वाला होगा। इसमें देश-विदेश की चुनी हुई सुरुचिपूर्ण और उद्देश्यपरक कहानियाँ रहेंगी, जैसी आजकल के पत्र-पत्रिकाओं में प्रायः कम ही सुलभ होती हैं।

**आप यदि ग्राहक नहीं बने हैं, तो आज ही ८) भेजकर ग्राहक बन जायँ।
अपनी प्रति पहले से सुरक्षित करवा लें।**

व्यवस्थापक,
'नया समाज'
३३, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता-१

'देशबन्धु' मासिक का

कहानी-विशेषांक

प्रकाशन—मास अक्टूबर, १९५५

विशेषांक की एक प्रति का मूल्य बारह आना और पृष्ठ सं० १२५
(३० अक्टूबर सन ५५ तक) ३) रु० भेजकर ग्राहक
बनने वालों को यह विशेषांक मुफ्त मिलेगा !
इसके प्रधान सम्पादक होंगे—
हिन्दी-जगत के माने हुए विद्वान एवं प्रसिद्ध लेखक
श्रीकृष्णदत्त वाजपेयी एम० ए०, विद्यालंकार
आज ही ग्राहक बनिये अथवा ।।।) भेजकर विशेषांक की प्रति सुरक्षित कराइये।
एजेन्ट अपनी प्रतियाँ तथा विज्ञापनदाता अपना स्थान
शीघ्र ही सुरक्षित करायें।

'देशबन्धु' कार्यालय, मथुरा

सभी कहते हैं इतना अनोखा पत्र नहीं देखा

'जिन्दगी और व्यापार'

(जीवनोपयोगी मासिक पत्र)

पो० जमालपुर : बिहार (भारत)

शुभकामनाएं

जीवन को शक्ति प्रदान करता है—अनोखा:—"आज" विचार नए, योजनायें नई, शैली अनूठी—**प्रो० रामचरण महेन्द्र**, तथ्यवादी दृष्टिकोण—**डॉ० बच्चन** एम० ए०, पी० एच० डी०, हिन्दी-संसार को अच्छी चीज मिल रही है—**श्री रामवृक्ष बेनीपुरी**, मनोवैज्ञानिक एवं सत्य भावों से पूर्ण—**श्री जयगोपाल मिश्र एम० ए०**, प्रवृत्ति बड़प्पन की दिशा में है—**श्री वृन्दावनलाल वर्मा**, अपने ढंग का इतना अनोखा पत्र देखा नहीं—**श्री केशवचन्द्र वर्मा**, जीवनोपयोगी स्वस्थ दृष्टिकोण—**श्री अनन्त-गोपाल शेवड़े**, सुपाच्य, सुपाठ्य, सुरुचिपूर्ण—**श्री मोरेश्वरराम पल्लीवार**, रोचक, मनोरंजक—**'अजन्ता' हैदराबाद**।

सम्पादक—
श्री राजेन्द्रप्रसाद

सहसम्पादक—
श्री देवप्रकाश गुप्त 'अंगार'

(द्विवार्षिक शुल्क २।।) वार्षिक १।।) एक प्रति =) पृष्ठ संख्या १६)

आज ही मनीऑर्डर भेजे,

—:नवीन योजना 'शक्ति विशेषांक' अक्टूबर में ही:—

दक्षिण-भारती

(दक्षिण-भारत की सचित्र मासिक पत्रिका)

आप अभी तक इसके ग्राहक न बने हों तो शीघ्र ही ग्राहक बनें। इसे कल पर छोड़ना एक भूल होगी।

वार्षिक चन्दा ६)
प्रति अंक ॥)

दक्षिण-भारती कार्यालय
अफजलगंज, हैदराबाद (दक्षिण)

तार : हिन्दी
फोन नं० ५४५०

अजन्ता

: मासिक :

प्रकाशक : हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद [दक्षिण]

मूल्य : ६-०-० भा. मु. वार्षिक

किसी भी मास से ग्राहक बना जा सकता है।

कुछ विशेषताएँ

१. उच्च कोटि का साहित्य
२. सुन्दर और स्वच्छ छपाई
३. कलापूर्ण चित्र

संपादक
श्री वंशीधर विद्यालंकार
श्री श्रीराम शर्मा

कुछ सम्मतियाँ

१. "अजन्ता का अपना व्यक्तित्व है"—श्री बनारसीदास चतुर्वेदी
२. "अजन्ता सुंदर और स्वच्छ पत्रिका है"—श्री दिनकर जी
३. "अजन्ता साहित्य का नया कल्पवृक्ष है"—श्री वासुदेवशरण अग्रवाल
४. "अजन्ता हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिकाओं में से एक है।"
श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी

दिनारा पधारिए

विशाल वीर सरोवर में नाव की सैर,

- हरियाली भरे खेत,
- संतरों, अमरूदों के बाग,
- बतखों, काले हरिनों तथा
- मछलियों का शिकार
- मनोरम पहाड़ियों की विस्तृत पृष्ठभूमि
- ग्राम जीवन की सुन्दरता

आपको

इस शरत् ऋतु में

आमंत्रित करती हैं

ठहरने के लिये डाक बंगला

झांसी से सुगम यातायात

विशेष विवरण के लिए लिखें

मंत्री केन्द्र पंचायत,
दिनारा (ग्वालियर)

झांसी से दिन में तीन तथा शिवपुरी से दो बार बस सर्विस जाती तथा आती है।

दि गिर्द डिस्ट्रिक्ट को-ऑपरेटिव्ह बैंक लि० लश्कर

स्थापित सन् १६१८

शाखायें—डबरा, भांडेर, उपशाखायें—मुरार, भितरवार.

१. अधिकृत पूंजी	२,००,०००, रुपया
२. स्वीकृत पूंजी	१,७०,०००, रुपया
३. रक्षित कोष	८२,०००, रुपया
४. अन्य कोष	१,४०,६००, रुपया

५. फिक्स्ड करेण्ट तथा सेविंग अकाउण्ट खाते खोले जाते हैं। डिपाजिट्स पर सूद दर निम्न प्रकार है। एक वर्ष से अधिक की फिक्स्ड डिपाजिट पर छै मासिक सूद दिया जाता है।

फिक्स्ड		
६ माह	२।।।) प्रतिशत	वार्षिक
१ वर्ष	३) प्रतिशत	,,
२ वर्ष	३।) प्रतिशत	,,
३ वर्ष	३।।) प्रतिशत	,,
सेविंग	२।।) प्रतिशत	,,

६. त्रय-वर्षीय नगद पत्र ९) रु० में १०) रु० का मिलता है।

७. बैंक बहुत मामूली कमीशन पर अपनी शाखाओं पर ड्राफ्ट इश्यू करता है।

८. यह बैंक अनियमित जोखमदारी की ग्रामीण सहकारी समितियों में रुपया इन्व्हेस्ट करता है। इसलिए इन्व्हेस्टमेन्ट सुरक्षित व बेखतरे है। बैंक के अकाउन्ट्स का हर साल शासन से एप्रूव्हड आडीटर्स द्वारा आडिट होता है।

कृपया बैंक से सम्बन्ध स्थापित कीजिये।

रामनाथ शर्मा	रामकृष्ण दीक्षित
मैनेजर	व्हाइस चैयरमैन

"अमेरिकन और अँग्रेजी प्रकाशनों से भी टक्कर"

हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी की समस्त रचनाओं का संग्रह

बेनीपुरी-ग्रन्थावली

(दस खंडों में)

दूसरा खंड भी प्रकाशित हो गया !

पहला खंड

शब्दचित्र : कहानी : उपन्यास

दूसरा खंड

नाटक : एकांकी : रूपक

प्रत्येक खंड में ५०० से ७०० पृष्ठ

चित्रों से जगमग

बढ़िया कागज पर मोनो की छपाई

रेक्सिन की पक्की सुनहरी जिल्द

नयनाभिराम तिरंगा आवरण

मूल्य प्रति खंड १२॥)

दोनों प्रकाशित खंडों का मूल्य २५)

(दोनों खंड साथ मँगाने पर डाकखर्च माफ)

दसो खंड के लिये १००)

अग्रिम भेजकर अपनी प्रतियाँ

घर बैठे प्राप्त किया कीजिए !

बेनीपुरी की लेखनी

श्री मैथलीशरण गुप्त—

यह लेखनी है या जादू की छड़ी है

आपके हाथ में !

पं० माखनलाल चतुर्वेदी—

बेनीपुरी की लेखनी फौलाद उगलती है !

आचार्य शिवपूजन सहाय—

बेनीपुरी की भाषा चपल खंजन-सी

फुदकती चलती है !

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी—

हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ शब्द-चित्रकार कौन ?

निस्संकोच ही बेनीपुरी !

ग्रन्थावली का प्रकाशन !

श्री रामधारीसिंह दिनकर—

हिन्दी का रिकार्ड प्रकाशन: पुस्तकालय

की शोभा और श्रृंगार !

श्री जगदीशचन्द्र माथुर—

जैसी चित्रोपम कृतियाँ, वैसी ही

नयनाभिराम रूप-सज्जा !

डॉ० हेमचन्द्र जोशी—

छपाई, सफाई, गेट-अप, एक-से-एक

उत्कृष्ट !

श्री अनन्तगोपाल शेवड़े—

अमेरिकन और अंग्रेजी प्रकाशनों

से भी टक्कर !

बेनीपुरी-प्रकाशन : पटना—६

मध्यभारत के प्रतिनिधि विक्रेता—

विद्यामंदिर प्रकाशन, सराफा, ग्वालियर

याद रखिए पत्रिका के लिए—
१. एक निश्चित उद्देश्य चाहिए !
२. उसका अपना व्यक्तित्व चाहिए !

नई धारा

ऐसी ही एक मासिक पत्रिका है जो अशोक प्रेस, पटना से प्रकाशित हो रही है। कहानियाँ, कविताएँ, शब्द चित्र, संस्मरण, नाटक, आलोचना, निबन्ध ।

हिन्दी में नई धारा के प्रतीक श्री रामवृक्ष बेनीपुरी इसका सम्पादन कर रहे हैं।

प्रादेशिक सरकारों के शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत ।

जिसकी सहायता के लिए साहित्य महारथियों का सम्पादक मंडल संगठित किया गया है ।

डिमाई अठपेजी के १०० पृष्ठ, पक्की जिल्द, आकर्षक कवर, सचित्र, सुसज्जित ।

एक अंक १ रु० **वार्षिक १० रु०**

प्रबन्धक नई धारा, अशोक प्रेस, पटना ६

तार—हिन्दी फोन नं० ४८०९

हिन्दी-वाणी

: मासिक :

प्रकाशक—मैसूर हिन्दी साहित्य परिषद, फर्स्ट मेन रोड, चामराजपेट, बैंगलोर-२
संपादक—पी० आर० श्रीनिवास शास्त्री

मूल्य—३-०-० वार्षिक

१. उच्चकोटि का साहित्य २. उच्चकोटि का कन्नड़ साहित्य ३. सुन्दर तथा स्वच्छ छपाई ।

आप शीघ्र ही ग्राहक बनिये । कर्नाटक की एक मात्र हिन्दी मासिक पत्रिका ।

कल्पना

साहित्य, संस्कृति और कला की मासिक-पत्रिका

जिसने

हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता का एक नया प्रतिमान स्थापित किया है ।

कृतियाँ, निबन्ध, कविता, कहानी, एकांकी स्तंभ, संपादकीय, पाठकों के पत्र, समालोचना तथा पुस्तक-परिचय, साहित्य-धारा ।

पृष्ठ संख्या १०० वार्षिक शुल्क १२) रु०

एक प्रति १) रु०

'कल्पना' कार्यालय;
८३१, बेगम बाजार, हैदराबाद-द०

विद्यामन्दिर प्रकाशन

की

नवीन भेंट

मानसिंह और मानकुतहल

लेखक—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी

मध्यभारत कला-परिषद ने जिस पर वर्ष का
प्रथम पुरस्कार दिया—

उत्तर प्रदेश सरकार ने जिसके लेखक को ६००)रु०
पुरस्कार देकर सम्मानित किया है—

भारत के सांस्कृतिक इतिहास के एक अज्ञात परिच्छेद का प्रथम प्रकाशन—

भारतीय संगीत, हिन्दी साहित्य तथा कलाओं के विकास पर नवीन शोध—

(मध्यभारत शिक्षा विभाग द्वारा राज्य की शिक्षा संस्थाओं तथा पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत)

मूल्य ५)

कुछ सम्मतियाँ

—श्री नारायणस्वरूप शर्मा, एम० ए०, मंत्री, हिन्दी परिषद, लन्दन—पुस्तक कला-परिषद के प्रथम पुरस्कार की अधिकारी है। हिन्दी साहित्य को इस खोजपूर्ण देन के लिये आप मेरी हार्दिक बधाई लेखक तक पहुँचा दें।

—श्री सियारामशरण गुप्त—"मानसिंह और मानकुतूहल का प्रकाशन हिन्दी के स्वस्थ और विस्तृत दृष्टिकोण का परिचायक है। ऐसे प्रकाशन से आपकी पूर्व परम्परा का गौरव और बढ़ गया है।"

विद्या मंदिर कप्राशन सराफा ग्वालियर

पंचायत—सन्देश

[बिहार राज्य पंचायत परिषद् द्वारा संचालित मासिक पत्र]

जिसके प्रत्येक अंक में

पंचायत सम्बन्धी उत्कृष्ट मौलिक कई रचनाओं के साथ-साथ कहानी, कविता एकांकी, निबन्ध तथा अनेक स्थायी स्तम्भों के अन्तर्गगत महत्त्वपूर्ण तथा उपादेय सामग्रियाँ अनिवार्य रूप से प्रकाशित की जाती हैं। पंचायतों के लिए विशेष रूप से संग्रहणीय।

चन्दा

वार्षिक—साढ़े चार रुपये ● एक अंक का—छः आने

प्रधान सम्पादक
पं० विनोदानन्द झा

सम्पादक
परमानन्द दोषी

कार्यालयः—
पंचायत-सन्देश
पटना लॉ टाइम्स बिल्डिंग्स कदमकुआँ, पटना--३

आयुर्वेद का गौरव ! अत्यन्त बलकारक !!

'दिनारा' स्वर्ण मृगांक

- ● बहुमूल्य द्रव्यों से बना
- ● अद्वितीय वाजीकरण
- ● अंग-अंग में नयी स्फूर्ति
- ● प्रत्येक मात्रा में अपूर्व ताकत
- ● तत्काल स्थायी प्रभाव

२० दिन की दवा का मूल्य ८) ४० दिन का १५) डाक व्यय अलग

सीधा रसायनशाला से मँगाइए

दिनारा आरोग्य भवन, ग्वालियर

सफेद कोढ़ की पेटेण्ट दवा

भगवान श्री जैन पाँचोरा (खानदेश) के पुत्री का कोढ़ अच्छा हो गया और आपने हमको ५१) रु० इनाम दिया। ऐसे कई इनाम मिले और कोढ़ के हजारों लोग अच्छे हो गये। मू० ५) रु०, डा० ख० १५ आ०, विवरणपत्र मुफ्त मँगावें। नक्कालों से सावधान रहें।

वैद्य वी० आर० बोरकर, आयुर्वेद भवन
पो० मंगरूलपीर, जिला अकोला (बरार) मध्यप्रदेश

१४ सितम्बर

हिंदी-दिवस

हम प्रतिज्ञा करें

१. हम अपना प्रतिदिन का कार्य राष्ट्रभाषा हिन्दी अथवा मातृभाषा में ही करेंगे।

२. हिन्दी को अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त गौरवशालिनी राष्ट्रभाषा बनाएंगे।

३. राष्ट्रभाषा हिन्दी और राष्ट्रलिपि देवनागरी का सन्देश घर घर पहुँचा कर राष्ट्रीय एकता की भावना को दृढ़ करेंगे।

४. राष्ट्रभाषा हिन्दी और प्रान्तीय भाषाओं के विकास को एक दूसरे का पूरक मानकर दोनों का विकास करेंगे।

५. 'एक हृदय हो भारत जननी' के मूलमंत्र को राष्ट्रभाषा के प्रचार द्वारा सफल बनाएंगे।

विद्यामंदिर प्रकाशन, ग्वालियर

विद्यामन्दिर प्रकाशन की नवीन भेंट.

मध्यदेश और उसकी भाषा

लेखक—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी

मध्यदेश की भाषा—मध्यदेश की सीमाएँ—हिन्दी भाषा की नाम परम्परा—मध्यकालीन हिन्दी का रूप—ग्वालियरी भाषा—१५ वीं शताब्दी का हिन्दी साहित्य—व्रजभाषा का वास्तविक रूप और उद्गम आदि अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों पर प्रथम बार प्रामाणिक विवरण इस पुस्तक में प्रस्तुत किया गया है।

स्मरण रखें इसके बिना आपका हिन्दी भाषा और साहित्य का ज्ञान अधूरा है। आज ही अपनी प्रति मँगाएँ। मूल्य ५), डाक व्यय ।।।)

प्रबन्धक

विद्यामन्दिर प्रकाशन,

सराफा, ग्वालियर (म० भा०)

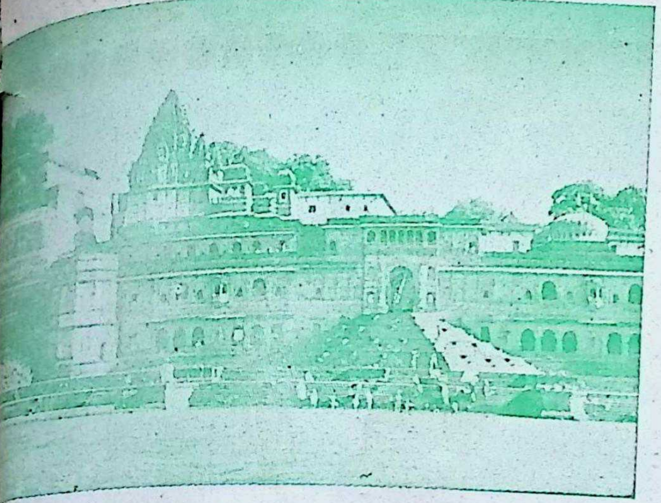

— महेश्वर का घाट एवं छत्री —

'नगर सुन्दर एक महेश्वर'

— कै. राजकवि भा. रा. तांबे

कै. राजकवि भा. रा० तांबे द्वारा वर्णित देवी अहिल्याबाई का

महेश्वर

भ्रमण के लिये सुन्दर स्थान है

उसी प्रकार

महेश्वर की

लुगड़ी

साड़ियां

एवं

खन

का भारतीय महिलाओं के जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है

मंदिर में दर्शनीय स्थापत्य-कला का एक सुन्दर नमूना

गृह उद्योगों

को

प्रोत्साहन

दीजिये

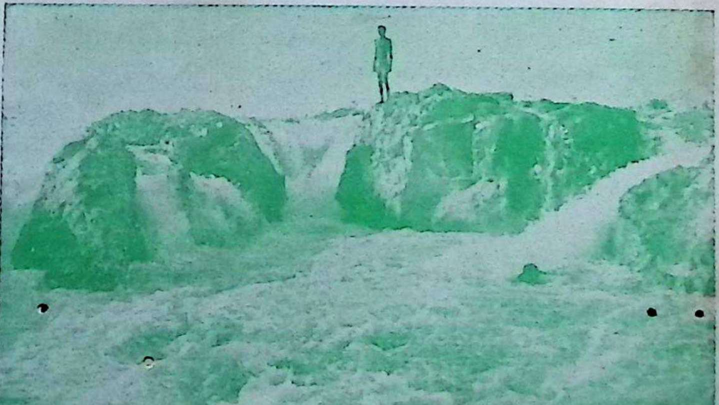

— सहस्रधारा (नर्मदा) —

— सूचना विभाग, मध्यभारत शासन द्वारा प्रकाशित —

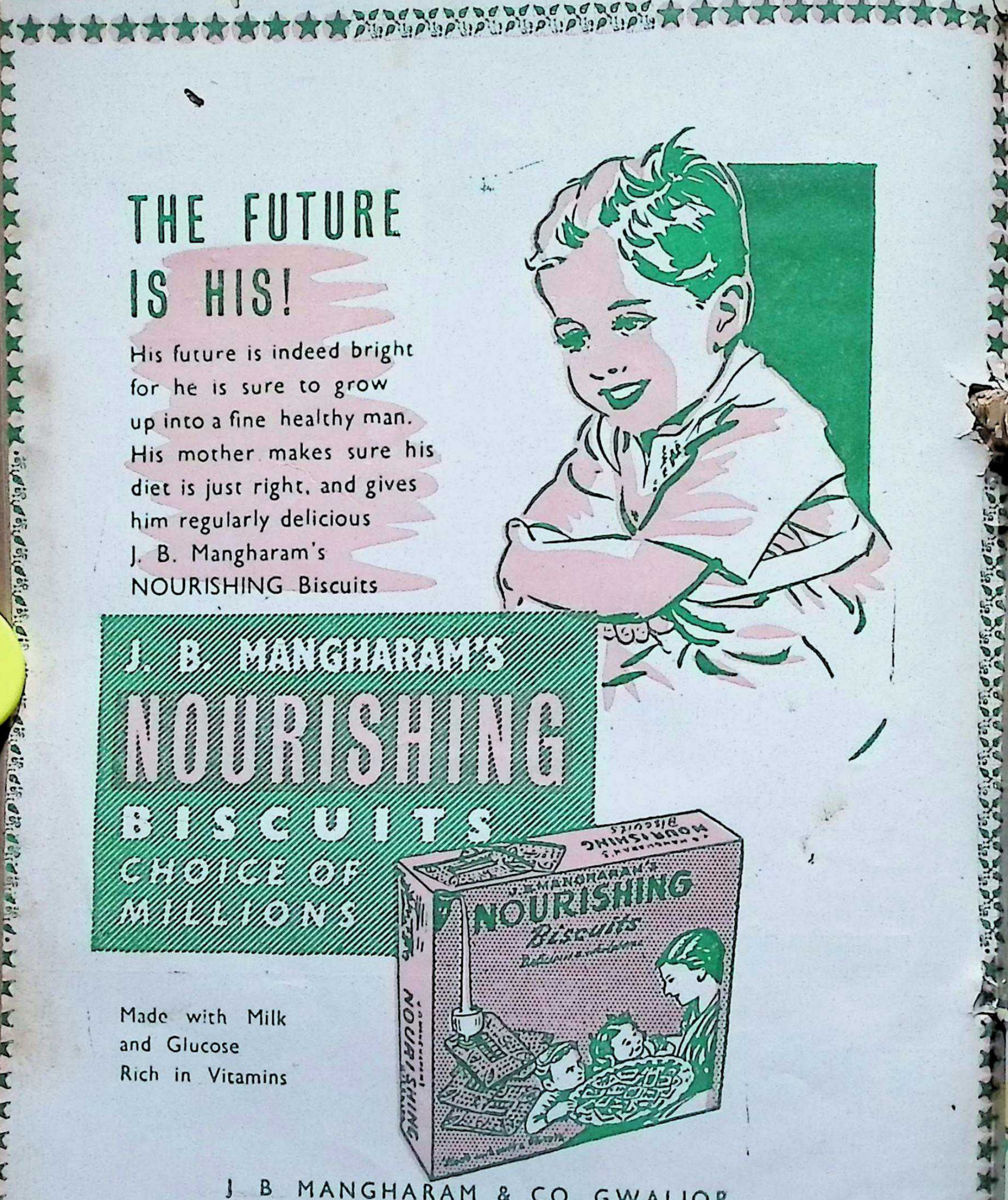

THE FUTURE IS HIS!

His future is indeed bright for he is sure to grow up into a fine healthy man. His mother makes sure his diet is just right, and gives him regularly delicious J. B. Mangharam's NOURISHING Biscuits

J. B. MANGHARAM'S

NOURISHING

BISCUITS

CHOICE OF MILLIONS

Made with Milk
and Glucose
Rich in Vitamins

J B MANGHARAM & CO., GWALIOR

श्री भगवानलाल शर्मा द्वारा नवप्रभात प्रेस, ग्वालियर में मुद्रित तथा प्रकाशित ।

भारती

दीपावली, १९५५

ाहित्य, संस्कृति एवं कला की मासिक पत्रिक

विद्यामन्दिर प्रकाशन की नवीन भेंट !

—बीसवीं शताब्दी का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ—

मध्यदेशीय भाषा

(ग्वालियरी)

लेखक—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी

विद्वान लेखक ने इस पुस्तक में वर्तमान हिन्दी साहित्य के इतिहास की अनेक भ्रांत धारणाओं की जड़ हिला कर, नवीन दिशा दी है। मध्यदेश की भाषा, सीमा तथा हिन्दी की नाम-परम्परा का प्रथम बार प्रामाणिक विवेचन इस पुस्तक में किया गया है।

श्री राहुल सांकृत्यायन इसके सम्बन्ध में कहते हैं—

"हिन्दी पाठकों को इतनी सामयिक और ज्ञानवर्धक पुस्तक देने के लिए द्विवेदी जी का कृतज्ञ होना चाहिए।"

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं—

"इसकी स्थापना चौंका देने वाली है। मैं स्वयं इतनी करारी बौद्धिक उथल-पुथल के लिए तैयार न था। लेकिन लेखक ने जो कहा है उसे इतने प्रमाणों से टिकाया है कि मन सोचने के लिए विवश होता है।"

डॉ० सत्येन्द्र का मत है—

'आपने अच्छी और नई सामग्री देने की चेष्टा की है।"

श्री कुंजीलाल दुबे, उपकुलपति, नागपुर विश्वविद्यालय लिखते हैं—

"भाषा विज्ञान के क्षेत्र में यह पुस्तक अपना अक्षुण्ण स्थान बनाए रहेगी।"

आज ही अपनी प्रति मँगाइए। इसके बिना आपका पुस्तक-संग्रह अपूर्ण है। विद्वानों ने इसे इस शताब्दी का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ माना है।

सुन्दर सजिल्द, तिरंगा आवरण। पृष्ठ संख्या २५०; मूल्य ५) रु०, डाक व्यय अलग।

विद्यामंदिर प्रकाशन, ग्वालियर

फर्ग्युसन के

ट्रेक्टर्स तथा कृषि के औजार

आपका नववर्ष

धन धान्यपूर्ण बनाने के लिये तत्पर हैं—

अपनी किसी भी मशीनरी

सम्बन्धी आवश्यकताओं के लिये मिलें या लिखें—

उत्तरी मध्यभारत के एकमात्र विक्रेता—

मे० मोदी ब्रदर्स,

स्टेशन रोड, ग्वालियर

सेठ मोहनलाल हरगोविंददास जबलपुर

द्वारा निर्मित

५१ वर्षों से सारे भारत में सुप्रसिद्ध

शेर छाप बीड़ी

MOHANLAL HARGOVIND
BIDI
JUBBULPORE
No 7
जबलपुर

शेर छाप बीड़ी

नं० ७

अपने मधुर स्वाद एवं उत्तमता के कारण

पसंद की जाती हैं

वितरक

शेर बीड़ी एजेन्सी, लश्कर

अंग्रेजी औषधियों के

एकमात्र प्रमाणिक विक्रेता

मूता मेडीकल स्टोर्स

सराफा बाजार, लश्कर

आपका नया वर्ष

स्वास्थ्य एवं मंगलमय बनाने के लिये अपनी
सेवाएँ अर्पित करता है

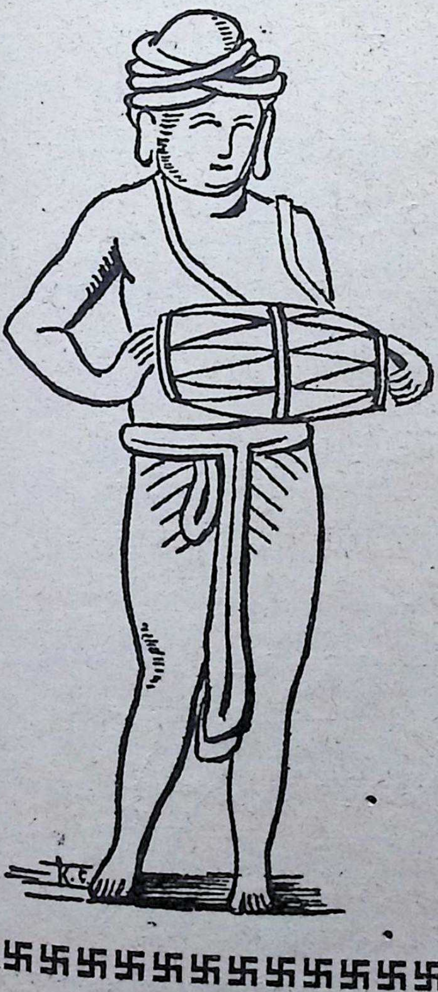

लक्ष्मी होटल

शिन्दे की छावनी, ग्वालियर

आपके नये वर्ष का

सम्पर्क मधुमय, व्यापार सम्पन्न
तथा यात्रा सुखमय होने की
कामना करता है

उचित व्यय में घर जैसी सुविधाओं
के लिये हमारी सेवाएँ लीजिए

तथा

अपना ग्वालियर प्रवास सुखमय
बनाइये

सुन्दर सुखमय

बस स्टॉप तथा
सक्रेटरिएट के निकट

फोन नं० ६६

उत्तर प्रदेश शासन द्वारा पुरस्कृत--

मध्यभारत तथा मध्यप्रदेश शासन द्वारा शिक्षा संस्थाओं के हेतु स्वीकृत--

पुरातात्विक शोध का रोचक ग्रन्थ

त्रिपुरी

लेखक—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी

भारत के तीन प्राचीन वैभवशाली नगरों का इतिहास—

विदिशा—जो अत्यन्त प्राचीन काल से भारत का सांस्कृतिक केन्द्र रही है—

पद्मावती—जहाँ नाग, गुप्त और पूर्व मध्यकालीन प्रतापी राजवंशों ने साहित्य एवं कला की उपासना की—

बाघ—जहाँ की मूर्तिकला और चित्रकला भारत की श्रेष्ठतम कृतियों में है—

की हृदयग्राही गाथा की रोचक शोध—

प्राचीन साहित्य, पुराणों, शिलालेखों तथा अवशेषों पर से लिखा गया वर्णन।

सुन्दर जिल्द, अनेक चित्र। मूल्य २)

कुछ सम्मतियाँ—

सामग्री अत्यन्त श्रेष्ठ तथा शैली हृदयग्राहक है—

—श्री व्ही० पी० अग्निहोत्री
भारत शासन के अण्डर सेक्रेटरी,
शिक्षा विभाग

यह हिन्दी साहित्य और इतिहास के वैभव की दिशा है—

--डॉ० रामकुमार वर्मा

इतिहास के विद्यार्थियों के लिये यह पुस्तक बड़े काम की है—

—"नई धारा"

—विद्या मंदिर प्रकाशन, सराफा, ग्वालियर

सचित्र पारिवारिक पत्रिका

आरसी के

अक्टूबर विशेषांक

की

एक झलक

सर्वश्री रजनी पनिकर, प्रेम स्वरूप श्रीवास्तव, सरोज लूथरा, वेदान्त महर्षि, तथा अन्य लेखक लेखिकाओं की कहानियाँ।

सर्वश्री तारा पाण्डेय, विद्यावती मिश्र, शकुन्तला माथुर, सरस्वती कुमार दीपक, रमाकान्त श्रीवास्तव आदि की कविताएँ और गीत।

श्री विष्णु प्रभाकर का एकांकी व श्री भागीरथ शुक्ल योगी का धारावाहिक उपन्यास।

सर्वश्री सावित्री वर्मा, आनन्द प्रकाश जैन, पद्मा श्रीवास्तव, सिद्धेश्वर अवस्थी आदि के गृह उपयोगी लेख पढ़िये।

बुनाई—"अंगरेजी पुस्तकों से नमूना कैसे उतारें" विशेष लेख। ब्लाउज पर सितारों का काम। पुरुषों की दोरंगी जरसी, अनेक फुटकर डिजाइन।

कढ़ाई—उषारावत, वीणारानी, विजय सक्सेना आदि के कढ़ाई के नमूने।

बेलें—क्रोशिया, टैटिंग और सलाई की बेल बुनिए। तौलिये पर कढ़ाई करिए।

आरसी पाकशाला—की पाक विधियाँ घर में आजमाकर उनका स्वाद लीजिए। और नई-नई रोचक उपयोगी व शिक्षात्मक रचनाओं का स्वाद लीजिए।

आज ही ४) मनीआर्डर से भेजकर वार्षिक ग्राहक बनिये। एजेन्ट बन्धु अपनी प्रतियाँ शीघ्र ही सुरक्षित करालें। १५० पृष्ठ के इस विशेषांक का मूल्य ।।।) है।

आरसी कार्यालय, स्वरूप नगर, कानपुर।

"अमेरिकन और अँग्रेजी प्रकाशनों से भी टक्कर"

हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी की समस्त रचनाओं का संग्रह

बेनीपुरी-ग्रन्थावली

(दस खंडों में)

दूसरा खंड भी प्रकाशित हो गया !

पहला खंड

शब्दचित्र : कहानी : उपन्यास

दूसरा खंड

नाटक : एकांकी : रूपक

प्रत्येक खंड में ५०० से ७०० पृष्ठ

चित्रों से जगमग

बढ़िया कागज पर सोनो की छपाई

रेक्सिन की पक्की सुनहरी जिल्द

नयनाभिराम तिरंगा आवरण

मूल्य प्रति खंड १२॥)

दोनों प्रकाशित खंडों का मूल्य २५)

(दोनों खंड साथ मँगाने पर डाकखर्च माफ)

दसो खंड के लिये १००)

अग्रिम भेजकर अपनी प्रतियाँ
घर बैठे प्राप्त किया कीजिए !

बेनीपुरी की लेखनी

श्री मैथलीशरण गुप्त—

यह लेखनी है या जादू की छड़ी है
आपके हाथ में !

पं० माखनलाल चतुर्वेदी—

बेनीपुरी की लेखनी फौलाद उगलती है !

आचार्य शिवपूजन सहाय—

बेनीपुरी की भाषा चपल खंजन-सी
फुदकती चलती है !

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी—

हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ शब्द-चित्रकार कौन ?
निस्संकोच ही बेनीपुरी !

ग्रन्थावली का प्रकाशन !

श्री रामधारीसिंह दिनकर—

हिन्दी का रिकार्ड प्रकाशन: पुस्तकालय
की शोभा और शृंगार !

श्री जगदीशचन्द्र माथुर—

जैसी चित्रोपम कृतियाँ, वैसी ही
नयनाभिराम रूप-सज्जा !

डॉ० हेमचन्द्र जोशी—

छपाई, सफाई, गेट-अप, एक-से-एक
उत्कृष्ट !

श्री अनन्तगोपाल शेवड़े—

अमेरिकन और अंग्रेजी प्रकाशनों
से भी टक्कर !

बेनीपुरी-प्रकाशन :- पटना—६

मध्यभारत के प्रतिनिधि विक्रेता—

विद्यामंदिर प्रकाशन, सराफा, ग्वालियर

सफ़ेद कोढ़ की पेटेण्ट दवा

भगवान श्री जैन पाँचोरा (खानदेश) के पुत्री का कोढ़ अच्छा हो गया और आपने हमको ५१) रु० इनाम दिया। ऐसे कई इनाम मिले और कोढ़ के हजारों लोग अच्छे हो गये। मू० ५) रु०, डा० ख० १५ आ०, विवरणपत्र मुफ्त मँगावें। नक्कालों से सावधान रहें।

वैद्य बी० आर० बोरकर, आयुर्वेद भवन
पो० मंगरूलपीर, जिला अकोला (बरार) मध्यप्रदेश

पंचायत—सन्देश

[बिहार राज्य पंचायत परिषद् द्वारा संचालित मासिक पत्र]

जिसके प्रत्येक अंक में

पंचायत सम्बन्धी उत्कृष्ट मौलिक कई रचनाओं के साथ-साथ कहानी, कविता एकांकी, निबन्ध तथा अनेक स्थायी स्तम्भों के अन्तर्गत महत्त्वपूर्ण तथा उपादेय सामग्रियाँ अनिवार्य रूप से प्रकाशित की जाती हैं। पंचायतों के लिए विशेष रूप से संग्रहणीय।

चन्दा

वार्षिक—साढ़े चार रुपये ● एक अंक का—छः आने

प्रधान सम्पादक
पं० विनोदानन्द झा

सम्पादक
परमानन्द दोषी

कार्यालय:—
पंचायत-सन्देश
पटना लॉ टाइम्स बिल्डिंग्स, कदमकुआँ, पटना--३

आयुर्वेद का गौरव ! अत्यन्त बलकारक !!

'दिनारा' स्वर्ण मृगांक

- ● बहुमूल्य द्रव्यों से बना
- ● अद्वितीय बाजीकरण
- ● अंग-अंग में नयी स्फूर्ति
- ● प्रत्येक मात्रा में अपूर्व ताक़त
- ● तत्काल स्थायी प्रभाव

२० दिन की दवा का मूल्य ८) ४० दिन का १५) डाक व्यय अलग

सीधा रसायनशाला से मँगाइए

दिनारा आरोग्य भवन, ग्वालियर

घर बैठे मुफ्त परीक्षा

सरकार से रजिस्टर्ड विद्यापीठ की आयुर्वेद व साहित्य की विशारद, रत्न, भूषण, अलंकार व आचार्य आदि परीक्षायें मुफ्त दीजिये और डिप्लोमा प्राप्त कर लाभ उठाइये। विवरणपत्रिका के लिये ।) के डाक टिकिट भेजिये।

पता:—राष्ट्रीय विद्यापीठ (रजि०),
मुहल्ला—गढ़ा, जबलपुर (म० प्र०)

गीताञ्जलि के बाद—

भारतीय साहित्य का अन्यतम आकर्षण.

'मन की बातें'

ले०—श्री चिदानन्द

मूल्य ॥)

राष्ट्रभाषा सभा, कटक (१) उड़ीसा

—: ज्ञातव्य :—

- ● पंचायत-प्रपत्र प्रस्तुतकर्ता
- ● हथकड़ी, बैजादिपूर्त्तिकर्ता
- ● रबर-स्टाम्प निर्माता
- ● कानूनी पुस्तक विक्रेता

★ पंचायत ★

(भारत का सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)

सम्पादक—श्री चन्द्रदेवनारायण

वार्षिक ३) एक प्रति ।)

★ स्टेशनरी के सारे सामान हम से सुलभ मूल्य में प्राप्त करें।

व्यवस्थापक

युगान्तर प्रेस एवं प्रकाशन

मोतीहारी (बिहार)

मासिक साहित्य में स्पृहणीय वृद्धि

प्रतिभा

हिन्दी मासिक

भारतीय प्रतिभा की प्रतिनिधि

वार्षिक मूल्य ६ रुपये, एक प्रति १२ आने

पृष्ठ संख्या १००

प्रकाशक

प्रतिभा प्रकाशन लिमिटेड

वर्धा रोड,

नागपुर

गुलाबसिंह एण्ड सन्स के समस्त रेल्वे-स्टालों पर प्राप्त
मध्यप्रदेश, बम्बई, पंजाब, हिमाचलप्रदेश, भोपाल, अजमेर, हैदराबाद,
काश्मीर, विंध्यप्रदेश, मध्यभारत, तथा अनेक राज्यों की शिक्षा-
संस्थाओं, पंचायतों एवं पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

भारती

वर्ष २ खंड १] दीपावली, १९५५ [अंक २ पूर्णांक १६

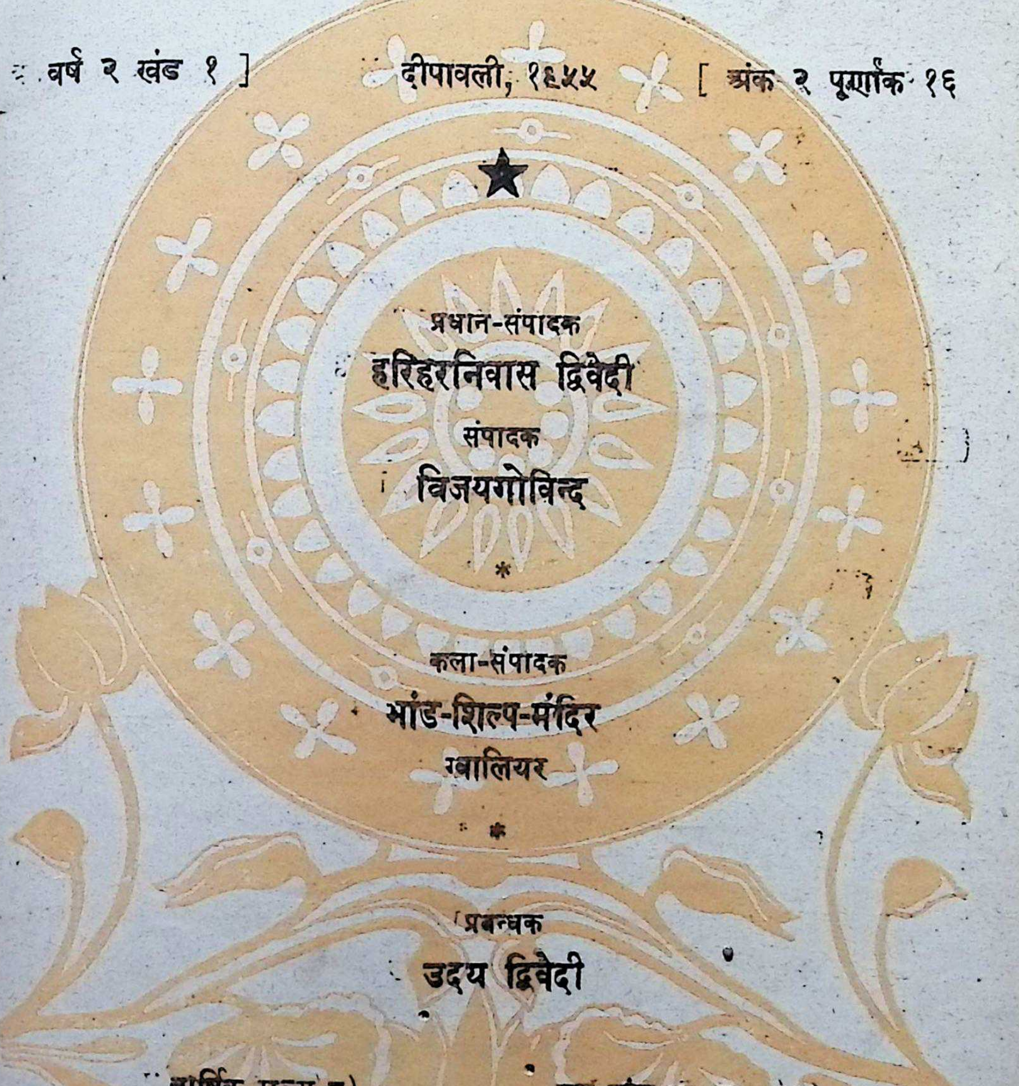

★

प्रधान-संपादक
हरिहरनिवास द्विवेदी
संपादक
विजयगोविन्द

*

कला-संपादक
भांड-शिल्प-मंदिर
ग्वालियर

*

प्रबन्धक
उदय द्विवेदी

वार्षिक मूल्य ८) एक अंक का मूल्य |||)

भारती-कार्यालय, ग्वालियर

इस अंक के लेखक

श्री शिवमंगलसिंह सुमन—पुष्प कुंज इन्दौर (म० भा०)
श्री उदयशंकर भट्ट—ऑल इंडिया रेडियो, नई दिल्ली
श्री नटवरलाल स्नेही—पर्णकुटी प्रकाशन, नागदा (म० भा०)
श्री परदेशी—ओर्लेम, मलाड, बम्बई
श्री बालकृष्ण बलदुवा—५७।१२७, बेलदारफाटक, सिरकी मोहाल, कानपुर
श्री विनोद रस्तोगी—७।१४०, स्वरूपनगर, कानपुर
श्री रामशंकर भट्टाचार्य—टीकमणि संस्कृत कॉलेज, दशाश्वमेध घाट, बनारस
प्रो० नीरज—हिन्दी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ
श्री आनन्दस्वरूप भटनागर—मुरार (ग्वालियर)
श्री विद्यावती मिश्र—दुर्विजयगंज, धानमंडी, लखनऊ
श्री जयगोपाल मिश्र फतेहपुरी—साधना कुटीर, २१ सहरारावाग, इलाहाबाद
श्री सुन्दर लोहिया—हिमाचल हिन्दी साहित्य परिषद, मंडी (हिमाचलप्रदेश)
श्री ओमप्रकाश—७ डी (गवर्नमेन्ट क्वार्टर्स), करौलबाग, नई दिल्ली
श्री विद्यापति मिश्र—द्वारा पं. श्यामचरण मिश्र, एम. ए., नवाबगंज, काशी
श्री भास्कर रामचन्द्र भालेराव—रायसिंह का बाग, लश्कर (म० भा०)
श्री मुकुटबिहारी सरोज—जनकगंज, लश्कर (म० भा०)
श्री रमाकान्त श्रीवास्तव—१०६।१, सीसामऊ, कानपुर
श्री दिवाकर—मशकगंज, लखनऊ
श्री कादम्बरी यामा—पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस विश्वविद्यालय, बनारस
श्री उमानन्दन चतुर्वेदी—बजाजखाना, घंटाघर, कोटा (राजस्थान)
श्री विमला बांठिया—२००, भाटापाड़ा, कोटा (राजस्थान)
श्री देवप्रकाश गुप्त 'अंगार'—स्नोईपॅलेस, जमालपुर (बिहार)
श्री शान्ति ऑकड़ियाकर—टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, मोर्वी (सौराष्ट्र)
श्री कान्ता—पो० बा० १५३, हैदराबाद
श्री मनोहर प्रभाकर—अमरज्योति साप्ताहिक, जयपुर (राजस्थान)
श्री कालिकाप्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर'—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा (म० प्र०)
श्री कैलाश शर्मा—१८, लोधीपुरा नं० २, इन्दौर (म० भा०)

'भारती'–सम्पादक की प्रार्थनाएँ

कृपया—

१. समस्त रचनाएँ, समालोचनार्थ पुस्तकें, परिवर्तन के सामयिक-पत्र आदि, सम्पादक 'भारती', सराफ़ा, ग्वालियर के पते पर, पूरे डाक-टिकट लगाकर, भेजें।

२. रचनाएँ सामान्यतः अच्छे कागज़ों पर, एक ही ओर, चारों ओर उचित हाशिया छोड़कर, टाइप की गयी या सुपाठ्य अक्षरों में स्याही से लिखी गयी भेजें।

३. केवल वही रचनाएँ भेजें, जो पहले कहीं भी प्रकाशित न हुई हों। 'भारती' में छप चुकने के एक मास बाद रचयिता अपनी रचना चाहे जहाँ छपा सकते हैं।

४. यथासंभव प्रत्येक रचना की प्रतिलिपि अपने पास रख लेने का कष्ट करें। अस्वीकृत रचनाएँ वापस मँगाने के लिए डाक के टिकिट अवश्य भिजवाएँ। कविताएँ वापस न हो सकेंगी।

५. चार सप्ताह के अन्दर स्वीकृति की सूचना न मिलने पर यह समझ लें कि रचना 'भारती' में प्रकाशित न हो सकेगी।

६. प्रत्येक रचना के नीचे अपना पूरा नाम और पता स्पष्ट लिखने का कष्ट करें।

७. अनूदित रचना पर उसके अनूदित होने की सूचना लिखें। मूल लेखक की अनुमति लें।

८. समालोचनार्थ पुस्तकों आदि की दो-दो प्रतियाँ भिजवाएँ।

भारती पर पाठकों के

अभिमत

हिन्दी की सर्व श्रेष्ठ पत्रिका

● **नागपुर टाइम्स—**

—साहित्यिक विचारधारा तथा संस्कृति को इसका योगदान निःसंदेह बहुमूल्य है।

● **श्री लालजीराम शुक्ल काशी—**

—भारती का सम्पादन सचमुच सराहनीय है। हिन्दी की प्रथम कोटि की पत्रिकाओं में भारती का प्रथम स्थान है। भारत की प्रगति हिन्दी की सेवा और स्वस्थ साहित्य की दिशा में आपका प्रयास स्तुत्य है।

● **श्री शोभाराम श्रीवास्तव—**

—सामग्री चयन छपाई सफाई सभी दृष्टिकोणों से "भारती" सही अर्थों में मां भारती की एक सफल पुजारिन है।

● **श्री प्रतापनारायण टंडन—**

—भारती का नया अंक देखा बहुत सुन्दर है। रचनाओं का चयन सुरुचिपूर्ण है।

● **प्रो० श्री गजानन शर्मा बिलासपुर—**

—भारती का अंतरंग जितना गहरा है वहिरंग उतना ही आकर्षक और मोहक है।

● **श्री पन्नालाल गुप्त, भवानी मंडी (कोटा)**

—भारती एक उच्चकोटि की पत्रिका है।

● **प्रो० विनयमोहन शर्मा नागपुर—**

—कलापूर्ण रूप देखकर मन प्रसन्न हो जाता है। सामग्री भी आप शोधपूर्ण और उपयोगी दे रहे हैं। उसमें लिखने का लालच होता है।

सागर पार से भारती का अभिनन्दन

लंदन की हिन्दी परिषद के मंत्री श्री वेदप्रकाश बटुक—

—'वस्तुत: ही मेरी दृष्टि में किसी पत्रिका का उत्कर्ष प्रथम वर्ष में इतना नहीं हुआ। नववर्ष पर मेरी बधाई और मंगलकामना स्वीकार कीजिये।

माननीय श्री ब्रिजलाल बियाणी, वित्त-मन्त्री मध्यप्रदेश—

—कलामय और आकर्षक है।

श्री अरविन्द पुष्प—

—अंक ऐसा प्रतीत हुआ मानो साहित्यकुंज के खिले हुए सौरभयुक्त फूलों का एक महकता हुआ गुलदस्ता ही सामने आ गया।

श्रीमती विद्यावती मिश्र, लखनऊ—

—'भारती' सज्जा, चयन तथा सुरुचि सभी दृष्टियों से मुझे पसन्द आई। हिन्दी की प्राय: सभी पत्रिकाएँ देखने को मिल जाती हैं और मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं कि भारती के स्तर की पत्रिकाएँ हिन्दी में अधिक नहीं। मेरी हार्दिक बधाई।

श्री वीरेन्द्रकुमार जैन, बम्बई—

—इस बीच 'भारती' ने सभी दृष्टियों में अपने नाम के योग्य गौरव अर्जन किया है। उसके इस समुन्नत स्वरूप पर उनके द्वितीय वर्ष प्रवेश पर बधाई।

श्री युधिष्ठिर भार्गव, आइ० ए० एस०, शिक्षा सचिव, मध्यभारत शासन—

—'भारती' के अंक मुझे नियमित मिल रहे हैं और मैं उनका अध्ययन भी कर रहा हूँ। उपलब्ध सामग्री उच्च स्तर की है तथा संकलन सुन्दर है।

अनुक्रमणिका

कविता— पृष्ठ

सोमगान— विजय ३०१

तुमने इतना मान दिया है
तो लज्जा भी रक्खो—श्री शिवमंगलसिंह 'सुमन' ३०२

कवि से— श्री नटवरलाल 'स्नेही' ... ३१०

विवेक पर है बाण चलाया— श्री बालकृष्ण बलदुवा ... ३१८

गीत— श्री विनोद रस्तोगी ३१९

चिरविरहिणी— प्रो० नीरज ३३२

गीत— श्री विद्यावती मिश्र ... ३४१

गीत— श्री सुन्दर लोहिया ... ३४६

शशिगीत— श्री विद्यापति मिश्र ३६१

गीत— श्री मुकुटबिहारी सरोज ... ३६५

गीत— श्री दिवाकर ३७२

रामराज्य के फूल खिलाओ देश में— श्री देवप्रकाश गुप्त 'अंगार' ... ३८७

गीत— श्री कान्ता ... ३९४

जगमगाओ गीत मेरे— श्री कैलाश शर्मा ४०९

गद्य-गीत—

तुम्हीं— श्री उमानंदन चतुर्वेदी ३७८

कहानी—

भगवान बुद्ध की आत्मकथा
(धारावाहिक)—श्री परदेशी ३११

सफेद दस्ताने— श्री ए० साफ़नोव
अनुवादक—श्री आनंद स्वरूप भगनागर ३३४

अभियुक्त पर अभियान— श्री ओम्प्रकाश ३४८

स्वप्न संभव— श्री विमला बांठिया ... ३७९

काव्य-रूपक—

दीप जलायें— श्री मनोहर प्रभाकर ... ३९५

भारती

शब्द-चित्र—

कविता की चोरी— श्री रमाकांत श्रीवास्तव ३६६

लेख—

मेरी सब से प्रिय रचना— श्री उदयशंकर भट्ट ३०४
संस्कृत साहित्य में नामग्रहण— श्री रामशंकर भट्टाचार्य ३२०
फतेहपुर में प्राप्त हस्तलिखित ग्रन्थ— श्री जयगोपाल मिश्र फतेहपुरी ३४२
कल्याणमल्ल और उनका अनंनरंग— श्री भास्कर रामचंद्र भालेराव ३६२
आधुनिक आलोचना— श्री कादम्बरी यामा ... ३७३
गुजरात के साहित्यकार धूमकेतु— श्री शांति आँकड़ियाकर ... ३८८
रीतिकालीन काव्य की पृष्ठभूमि— श्री कालिकाप्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर' ४०१
प्रकाशन-परिचय— ४१०
बेनीपुरी ग्रंथावली—भूमि व्यवस्था सुधार की प्रगति—आचार्य विनोबा भावे

संपादकीय—

मा गृधः—राष्ट्रभाषा की ओर ४१२

मुखपृष्ठ—विक्रम की विजय-यात्रा—चित्रकार श्री उपेन्द्र महारथी।

आगामी अंक
के
आकर्षण

११ कविताएँ—

- पूजागीत
- चिरंतन
- दो रूप
- आसमान की ओर आदि

६ कहानियाँ—

- गूँगा
- भगवान बुद्ध की आत्मकथा (धारावाहिक)
- आँसुओं की मूर्ति
- पंखा नहीं चलेगा आदि

६ लेख—

- हरिराम व्यास और सूरदास
- मध्यप्रदेश की प्राचीन शिल्पकला
- मलाया और भारत का सांस्कृतिक सम्बन्ध
- लोकसाहित्य का महत्त्व

गद्यगीत, प्रकाशन-परिचय तथा सम्पादकीय

—कुछ लेखक—

- श्री सोहनलाल द्विवेदी
- श्री अंचल
- श्री गिरिजाकुमार माथुर
- श्री प्रयागदत्त शुक्ल
- श्री अवनीन्द्रकुमार
- श्री प्रभाकर माचवे
- श्री मोहनलाल अवस्थी
- श्री कमला दीक्षित
- श्री जरगर

ग्रामीण पाठकों की सेवा में

भारती का जानकारी विभाग

भारती के ग्रामीण पाठकों को उचित तथा बिना मूल्य सेवा देने की दृष्टि से हमने 'कृषि मशीन परामर्श दाता विभाग' स्थापित किया है। यह विभाग ग्राम-पंचायतों तथा ग्रामीण पाठकों को उनके कृषि सम्बन्धी औजारों, मशीनों तथा खादों के सम्बन्ध में परामर्श देगा। आपको नई मशीन और औजार खरीदना हो, आपकी मशीन में कोई अड़चन हो, शासन द्वारा खाद वितरण अथवा मशीनरी खरीदने में दी जाने वाली सहायता के सम्बन्ध में जानकारी लेना हो तो नीचे लिखे पर एक पत्र डाल दीजिए। आप तक सारी जानकारी बिना मूल्य पहुँच जावेगी।

व्यवस्थापक
भारती कार्यालय (जानकारी विभाग)
सराफा, ग्वालियर

व्यवस्थापकीय निवेदन

हम इस बार अपने पाठकों की सेवा में समय पर न पहुँच सके। हमें इसके लिए अत्यन्त खेद है। आगे से नियमित हम आपकी सेवा में पहुँचेंगे तथा अगले मासों में इस एक मास की कमी पूरी कर देंगे। आशा है हमारे पाठकगण इस प्रतीक्षा कराने के लिए हमें क्षमा करेंगे।

भारती

सोमगान

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया।
इन्द्राय पातवे सुतः ॥ ऋक्० । मं० ६। अ० १ । सू० १।१

हे सोम ! चन्द्र किरणों से बोधित, आसुत हो,
कर-कर आनंदित अंग-अंग मधुतम रस भर
बह चलो, छलकती कवि-छंदों की धारा में,
नर-भोग्य बने सुरपति का वैभव अवनी पर।

रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहतम्।
द्रुणा सधस्थमासदत् ॥ ऋक्० । मं० ६। अ० १। सू० १।२

द्युत कनक चषक-वेला पर उच्छल चपल लहर,
उच्छस्त्र सैन्यदल का यह या अभियान द्रवित,
तुम असुर-बलोच्छेदन-प्रवाह के उत्स, सभा-
राजित हो, तुमसे सभी तत्त्व हों नयन-चरित।

—विजय

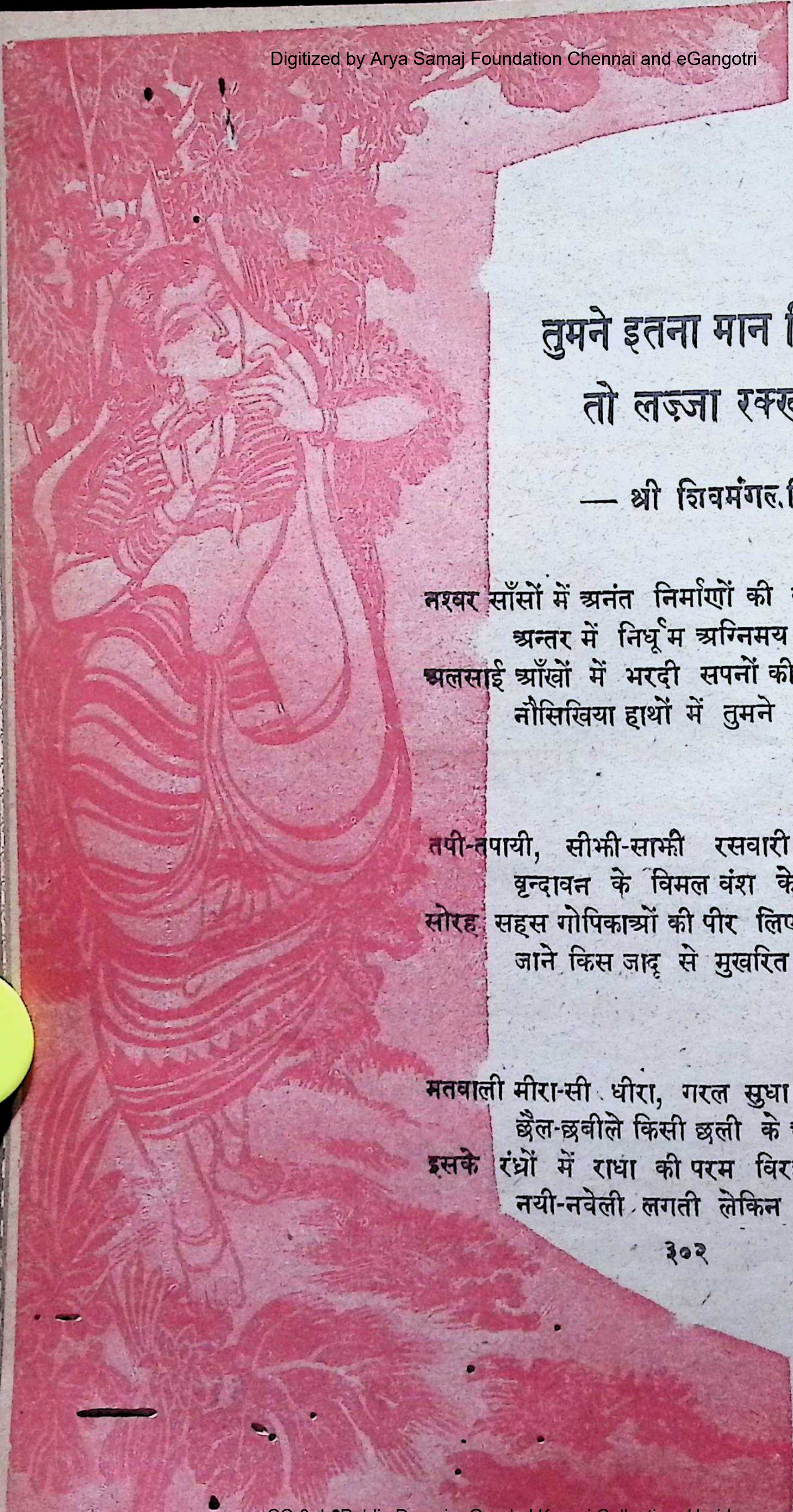

तुमने इतना मान दिया है तो लज़्जा रक्खो

— श्री शिवमंगल सिंह 'सुमन' —

नश्वर साँसों में अनंत निर्माणों की समिधा,
अन्तर में निर्धूम अग्निमय लपटों की बेदी,
अलसाई आँखों में भरदी सपनों की थाती,
नौसिखिया हाथों में तुमने बाँसुरिया दे दी।

तपी-तपायी, सीझी-साझी रसवारी माती
वृन्दावन के विमल वंश के भीटे से काटी
सोरह सहस गोपिकाओं की पीर लिए उर में
जाने किस जादू से मुखरित हुई मूक-माटी,

मतवाली मीरा-सी धीरा, गरल सुधा करती,
छैल-छबीले किसी छली के अली-अंश-सी है,
इसके रंध्रों में राधा की परम विरह-भाषा,
नयी-नवेली लगती लेकिन उसी वंश की है।

इसे बजाऊँ तो बजता है तार-तार तनका,
रक्तशिराओं में नागिन-सी लहरें मार रही,
इसकी डसन न मौका देती पानी माँग सकूँ,
साँस-साँस में मौत सौत-सी रूप सँवार रही।

जिसका जहर जिन्दगी देता उसकी बलिहारी,
जीने-मरने को इतना संबल क्या कुछ कम है ?
नाव उम्र की झोले खाती जिन हल्कोरों पर
आँखों के खारे पानी में उनका संभ्रम है।

तुमने जो कुछ दिया उसे किस आँचल में बाँधूँ ?
जीवन तो स्वर पर न्यौछावर होने का आदी,
बाहर-भीतर रास हो रहा शरत्-पूर्णिमा का,
चिर-छवि का वरदान दे गया अंबर आह्लादी।

अब बिखरूँ तो शून्य हमारा, भय-संशय किसका ?
एक तुम्हीं में लय होने की साध रही बाकी,
मेरे स्वर पर सबका दावा, धन्य हो गया मैं,
मन-वृन्दावन, केलि-कुंज की पुतली में झाँकी।

अब घनश्याम घिरो जी भर कर जीवन भरो भरो,
चीर-हरण हो गया हृदय का, इतना और करो
मेरे अधरों पर द्वापर की स्वर-सज्जा रक्खो,
तुमने इतना मान दिया है, तो लज्जा रक्खो !

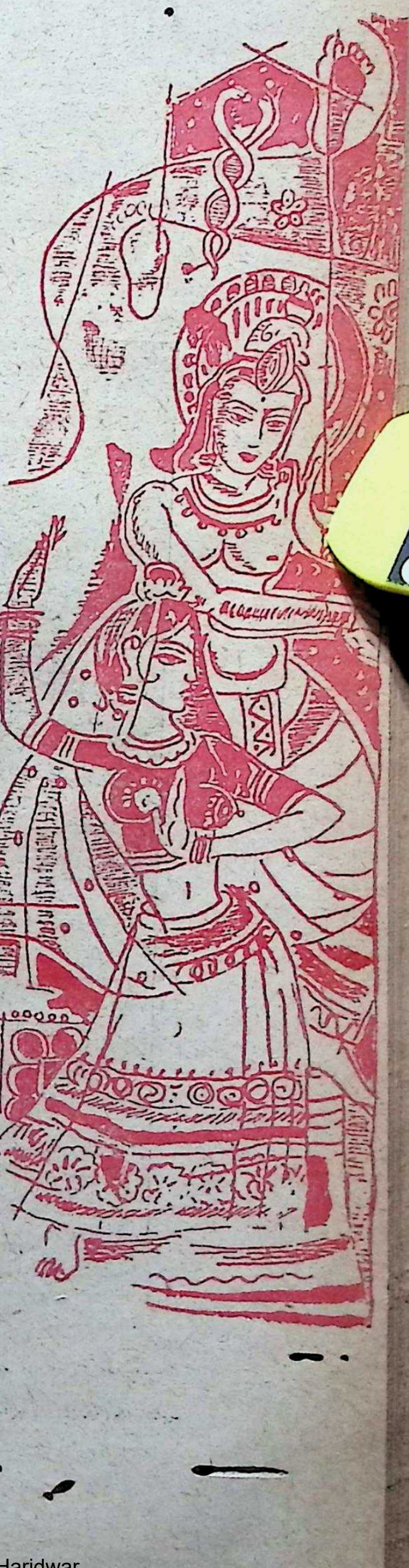

मेरी सब से प्रिय रचना

— श्री उदयशंकर भट्ट

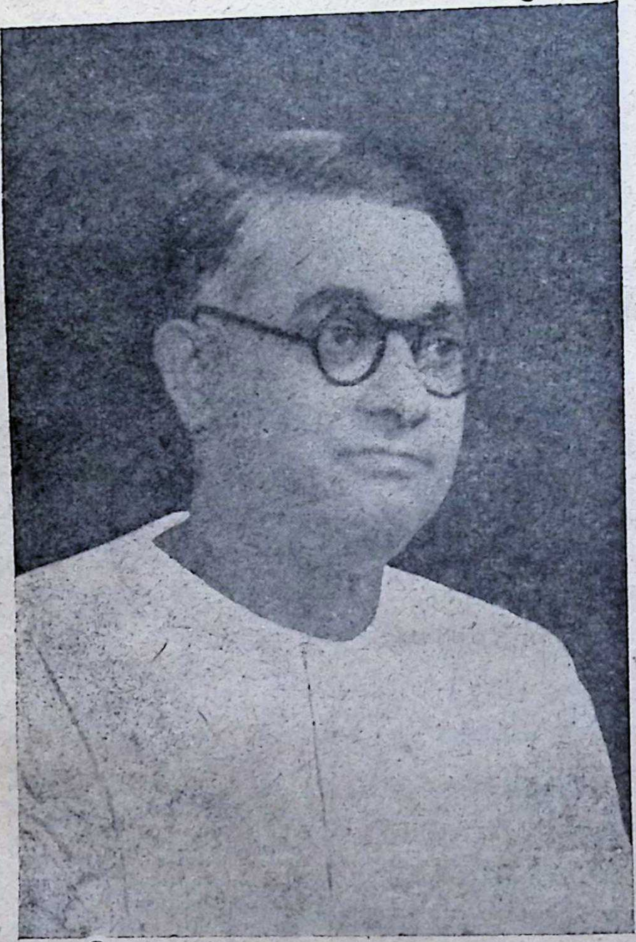

श्री उदयशंकर भट्ट

नाटकों में मेरी सबसे प्रिय रचना कौन-सी हैं, इस प्रश्न का उत्तर देना न तो इतना सरल है और न उसका रूप निर्णय, सहज स्वाभाविक, कि मैं उंगली उठाकर बता दूं कि मेरी अमुक रचना मुझे सबसे प्रिय है। लेखक जो कुछ भी लिखता है या उसने जो कुछ लिखा है उसमें सन्तान की तरह उसका मांस, रक्त दोनों ही रहते हैं। हृदय तो निश्चित रूप से है ही। साहित्यिक रूप में कहूँ तो रचना में लेखक की अनुभूति प्रेरणा दोनों ही रहती हैं तथा उसके हृदय का अन्तर्मथित रस। प्रश्न केवल इतना है जिससे रचना की सर्वोत्कृष्टता सिद्ध होती है कि जिस काल में रचना की गयी, समय की दृष्टि से क्या वह उपयुक्त था ? या लेखक में उस विशिष्ट रचना के प्रति उतना तादात्म्य था ? यह निश्चित बात है कि किसी भी

मेरी सब से प्रिय रचना

लेखक का, चाहे वह कितना ही महान लेखक क्यों न हो, सारा सृजन एक-सा नहीं होता। उसमें देश, काल, वातावरण, परिस्थिति का अनुपात कम या घनता में रहता है। जैसे किसी पिता की सब सन्तान एक-सी नहीं होतीं, मेरी रचनाओं के सम्बन्ध में भी यही कहा जा सकता है। फिर एक बात और, कि प्रत्येक लेखक का एक 'पीक-टाइम' या 'क्लाइमेक्स' काल होता है जिसमें उसका सृजन पराकाष्ठा या चरम सीमा पर पहुँच जाता है। उस समय की उसकी मनोदशा में जो पक्वता, वस्तु के प्रति साक्षात दृष्टि होती है, वही लेखक को उत्कृष्ट रचना के लिए प्रेरित करती है। फिर कुछ सृजन लेखक की अवस्था पर भी निर्भर करता है। मैं मानता हूँ, अठारह से तीस वर्ष तक का काल (इससे अधिक भी बढ़ सकता है) शृंगार-प्रधान, सौन्दर्य-सम्पन्न रचना के लिए होता है। उसमें विवेक, तर्क की अपेक्षा भावोद्वेल्लन, संवेदनग्रहणीयता, औपचारिक रागात्मकता की प्रबलता होती है। बाह्य सौन्दर्य की भावभूमि पर मनोरागों में चंचलता, अतृप्ति की प्यास उस समय अधिक जागरूक होती है। इस काल का साहित्य सौन्दर्य से आप्यायित क्षणों का साहित्य होता है। कल्पना-प्रवण मानस में जो उद्दाम तरंगें उठती हैं वही सृजन को प्रेरणा देती हैं। इसके बाद का साहित्य अनुभूति-प्रधान, कल्पना-गौण साहित्य को जन्म देता है। उस समय का साहित्य कहा जाय तो पहले की अपेक्षा अधिक स्थायी होता है। अनुभूति प्रधान मस्तिष्क की रचना जीवन के अधिक निकट और दृष्टि में व्यापक होती है। फिर भी यह कोई नियम नहीं है कि सब के साथ ही ऐसा होता हो। यह तो सब लेखक की रस-ग्राहिता पर निर्भर है। उसकी मनोदशा पर आधारित है।

मैंने कई प्रकार के नाटक लिखे हैं—ऐतिहासिक, सामाजिक, पौराणिक, गीति-नाट्य, भावनाट्य एवं एकांकी नाटक। मुझे लगता है जैसे सभी में मैंने अपने प्राणों का समावेश करने की चेष्टा की है। फिर भी प्राण-तादात्म्य की दृष्टि से उनमें कुछ भेद करके मैं आगे अपनी बात कहूँगा और कहने की चेष्टा करूँगा कि अब भी मुझे जो प्रिय है वह कौनसी वस्तु है। पहले ऐतिहासिक नाटकों की बात कहूँ। ऐतिहासिक नाटकों में विक्रमादित्य, दाहर, मुक्तिपथ और शक विजय में मुझे 'शक विजय' पसन्द है। इस नाटक में राष्ट्रीयता, धार्मिकता, सौन्दर्य-प्रतिपत्ति का चरम संयोग हुआ है। कालकाचार्य के धर्म प्रचार में व्याघात हुआ। उनकी बहन सरस्वती को उज्जयिनी का राजा गर्दभिल्ल उड़ा ले गया और उसने सरस्वती के रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उसे अपने महल में कैद कर लिया। आचार्य कालक को प्रयत्न करने पर भी जब सफलता न मिली, तो वे आवेश में विक्षिप्त हो गये और बदला लेने के लिए वे भारत से बाहर जाकर शकों को बुला लाये। राजा गर्दभिल्ल को शकों की सहायता से नेस्त-नाबूद कर दिया। किन्तु इस कार्य के द्वारा देश पर जो विपत्ति के बादल घहराये, उनमें

वे स्वयं दग्ध हो गये। ऐतिहासिक दृष्टि से यह नाटक दाहर की तरह है, किन्तु जिस अवस्था में मैंने यह नाटक लिखा, वह काल दाहर से अधिक प्रौढ़ता का था। इसीलिए उसमें घटनाओं की गहनता से नाटकत्व अधिक समृद्ध हो उठा। अपील की दृष्टि से भी यह नाटक सब ऐतिहासिक नाटकों में सुन्दर बन पड़ा है, क्योंकि मैं नाटक ही नहीं, सम्पूर्ण साहित्य को सोद्देश्यवादी मानता हूँ।

बड़े सामाजिक नाटकों में "नया समाज" जो मैंने अभी हाल में लिखा है, अच्छा लगा है, यद्यपि मैं उसे अपनी सर्वश्रेष्ठ रचना नहीं कह सकता। हाँ, कुछ सामाजिक एकांकी जरूर ऐसे हैं जिन पर मुझे गर्व है, और मैं कह सकता हूँ, वे सामाजिक एकांकी निश्चय ही बहुत सुन्दर बन पड़े हैं। 'अन्धकार और प्रकाश' नाटकीय घनत्व की दृष्टि से अच्छा नाटक है। फिर एकांकी नाटकों की संख्या भी कम नहीं हैं, जो मैं सब पर एक नजर डाल कर कह सकूं। इस समय मुझे एक ही नाटक याद आ रहा है। वस्तु की उपयोगिता और क्लाइमेक्स की दृष्टि से कुछ नाटक जरूर ऐसे हैं जिनकी पाठकों, दर्शकों एवं आलोचकों ने काफी प्रशंसा की है जैसे बाबूजी, वापिसी, दो अतिथि, ग्रहदशा आदि।

मैं सोचता हूँ कि आखिर साहित्य की सर्वश्रेष्ठता की कसौटी क्या होनी चाहिए। "किस बात से" हम कहें कि अमुक नाटक मेरी सर्वश्रेष्ठ कृति है। तो यों समझिए कि क्या जो वस्तु साहित्य के लिए चुनी गयी है, क्या वह उसके लिए उपयुक्त थी, कहाँ तक उसका निर्वाह हुआ, किस तरह परिपुष्ट हुई, उसमें अनावश्यक भाग तो नहीं आ पाया जिसने वस्तु की महत्ता को दबा दिया। फिर संवादों ने उसमें कहाँ तक सहायता की है। पात्रों की उपयुक्तता, उनका मनोवैज्ञानिक रूप, अपने उद्देश्य के प्रति दृष्टि और सब के ऊपर नाटकीय दृष्टि से सांगोपांगता, यही कुछ तत्त्व हैं जिनके आधार पर एक नाटक को सफल या असफल कहा जा सकता है। इसी नजर से जब मैं अपने नाटकों की आलोचना करता हूँ तो कुछ एकांकी नाटकों को छोड़ कर, जिन्हें मैं अपनी सुन्दर कृति कह सकता हूँ, मेरा ध्यान अपने भाव-नाट्य मत्स्यगंधा की ओर जाता है। मैंने वैसे कई काव्य-नाटक लिखे हैं। विश्वामित्र, मत्स्यगंधा, राधा, अश्वत्थामा, एकला चलो रे, मदन-दहन, गुरु द्रोण आदि। ये सभी सफलता की कसौटी पर कसे जाने पर ठीक भी होंगे, किन्तु मैं मत्स्यगंधा को अपनी सर्वश्रेष्ठ कृति मानता हूँ। यह भाव-नाट्य आज से अठारह-उन्नीस वर्ष पूर्व अचानक ही लिखा गया। इससे पूर्व मैं अंबा नाटक लिख चुका था। किन्तु सत्यवती के चरित्र का मुझ पर नशा छा रहा था। अंबा नाटक में सत्यवती आई है, किन्तु वस्तु की दृष्टि से उसे प्रमुख स्थान नहीं दिया जा सकता था। एक कसक बनी रही कि लिखने के बाद भी जैसे वह चरित्र मानो मेरी आँखों के सामने बार-बार आकर झूमने लगता। उसके रूप-सौन्दर्य और यौवन की उदग्रगंध

से मेरा रोम-रोम भर उठा। महाभारत का यह पात्र रात को सोते-सोते भी मुझ से अपनी कहनी कहता। मुझे लगता, जैसे यह मेरा मस्तिष्क फाड़कर निकलना चाहता है, और यदि न निकला तो शायद मुझे पागल कर देगा। आज मैं अपनी उस मनोदशा का पूर्ण विवरण तो नहीं दे सकता, इतना ही कह सकता हूँ कि रचना के लिए इतना तीव्र आवेग मैंने कम ही पाया है। और एक दिन वह छन्दोबद्ध होकर फूट निकला। शायद इसकी रचना में मेरा कम से कम समय लगा है।

मत्स्यगंधा महाभारत में आये उस धीवर की लड़की की कहानी है जिसका विवाह शान्तनु से हुआ। पाराशर ने एक बार गंगा पार जाते समय उसे अमर यौवन का वरदान दिया। अनन्त यौवन के वरदान की कामना और उससे प्राप्त सुख एवं चिरकालीन चरम विडम्बना यही नाटक की कथा है। इसमें चार पात्र हैं जिनमें अनंग अन्तर का प्रतीक है। शेष तीन में एक स्वयं मत्स्यगंधा है।

हाँ, तो मत्स्यगंधा की एक सखी है सुभु। सांयकाल का समय है। गंगा के तट पर एक उद्यान में पुष्पचयन कर रही है। चयन करने के बाद यौवन की मृदु उठान से उन्मादिनी मत्स्यगंधा फूल चुनती हुई ठहर जाती है। सुभु संध्या के सौन्दर्य में मग्न सी होकर कहती है—

देखो, सखि देखो, देखती हो अरे कैसा यह—
मंजु-वीणा-पाणि शारदा की स्मित कान्ति इव—
स्फटिक-प्रफुल्ल-धौत धरा धाम दीखता है।
मन्द-मन्द मारुत का प्राण-सा निखर रहा,
मान-सा बिखर रहा, शची के विलास-सा
मधुर। इस वेला री, दिनान्त में प्रभात-सा
हुआ है। विशद चल वीचिमाल-जालियों में
धुलने लगी हैं सब रक्तिमा समेट कर
आशाएँ हृदय की। मधुर-मधुर-तर
भरता है कोलाहल, मुखरित हो होकर।
माधवी की, यूथिका की, मंजुश्री पुष्प-राशि
मद के चषक से उँडेलती प्रभूत अति
पावन वनान्त में निशा का मुख खोलकर।
देख अरी, देखा कैसा····

तब मत्स्यगंधा फूल चुनती हुई ठहरकर कहती है—

नित्य देखती हूँ सखि, मुक्त गुच्छ-तारिका का
नभ में अनभ्र हास। क्षितिज के मुख पर

रोलियों सी लाल-लाल होली-सी जलती है,
जैसे सारे नभ का अनल जल-जलकर
मदहीन उसे कर देने उठ आया आज।
और देखती हूँ द्वितीया के चंद्रमा ने दूर
मांसहीन अपने हृदय की रेख खींचकर
उस नील नभ का सुनील पट चीर दिया !.
नागदन्तिका सी वक्र गाढ़ दी किसी ने वहाँ
अनजान में ही और ग्रन्थियाँ कपूर की।

अनंग को देखकर मत्स्यगंधा कहती है—

देख तुम्हें हे अनंग, प्राण आस लिए आया—
जैसे लिए आ रहा कि शेष हो, अशेष को।
कैसे तुम सुन्दर ! ज्यों मिश्रण शैशव का,
यौवन का, तारिका का, विधु का विलास सब।
आहा, तुम्हें देख मानों जीवन परम साध
जुड़ आई हो, ज्यों बाल रवि उषा संग संग।
देखी ऐसी, देखी कब, दामिनी की शुभ्र रेखा—
मूर्त रूप धर चली, उतरी अनन्त से—
इस जग-दुःख से अमर करने के लिए,
युक्त करने के लिए सुख को अमृत में।
मानों विश्व राग ही शरीर धर आया हो।
हीरक के सर में जड़ी है नीलमणि मानो,
बुरक दिए हैं लाल कूटके कहीं कहीं।
अष्टमी के चन्द्रमा की फांक ऐसी शुभ्र आंख
कर्ण कुहरों से कुछ कहने चली है आज ?

अब आप पाराशर से अनन्त यौवन का वरदान पाकर भी वैधव्य का चिर दुःख भोगती हुई मत्स्यगंधा के कुछ अन्तिम उद्‌गार सुनिए……

यौवन के सागर का अन्त ही नहीं है कहीं,
मेरा मन तूफानों में उड़ा हुआ जा रहा।
मेरा स्वर्ग हीन हुआ हाय, स्वर्ग रौरव है,
आशा औ' उमंग हुई भार हैं अनन्त की।
चंड-रवि-रश्मि-उग्र कौन भर गया हाय

दाहक अनल-सी मृदुल तन-मन में।
यह अति वेगमय, यह अति दाह मय।
मैं हूँ, क्रूर काल की कराल अग्नि-मालिका,
जो न बुझती है, नित्य धाँय-धाँय जलती है,
ज्ञान-अम्बु पा के भी न होती है विफल-सी।
जलती हूँ रवि-सी, अनन्त पाप-पातक-सी,
जलती हूँ अग्नि-सी प्रलम्ब देह-यष्टि ले।
यौवन अनन्त दान, यौवन अनन्त स्नान,
अभिशाप वरदान, अपलाप वरदान।
नभ-भ्रष्ट तारिका-सी घूमती प्रकाश लिए,
धूमकेतु धरा की प्रबुद्ध धूम-वाहिनी।
मेरा मन अग्नि-अश्रु बरसा न शांत होता,
द्विगुणित वासना भड़कती हुताग्नि-सी।
हन्त, हत यौवन का अन्तहीन यह वेग
धूमिल निविडतर घोरतर घनतर।

यह नाटक मुझे सर्वश्रेष्ठ क्यों लगा, इसके सम्बन्ध में एक दो बातें यहाँ बतला देना आवश्यक है। पहली बात यह है कि मत्स्यगंधा के रूप में यह नारी मात्र के यौवन की कहानी है। इसके सुख और दुःख भी हमारे जीवन में अनादि काल से चले आ रहे हैं। रूप भेद भले ही हो, किन्तु यौवन और सौन्दर्य की अनन्त धारा हमारे जीवन में अब भी वैसी ही प्रवाहित हो रही है जैसी आदि काल के मनुष्य में थी। यौवन की······उच्छल तरंग राशि उमंगों के तटों से टकराकर अब भी वैसी ही बह रही है। यह सब इसलिए है कि कुछ प्रश्न अनन्त उत्तर पाकर भी प्रश्न ही बने रहते हैं। सत्यवती युवती नारी का शाश्वत प्रतीक है। और वह न कभी बूढ़ा होता है, न बालक ही बनता है। इसी कारण इसके मनोवेग भी शाश्वत और चिर सत्य हैं। मैंने माना है कि इस प्रकार का साहित्य न कभी काल से धुँधला होता है, न······परिस्थितियों से जराग्रस्त। मत्स्यगंधा को पढ़कर अब भी मुझे सन्तोष मिलता है, और लगता है कि यह कहानी मनुष्य जीवन की चिरस्थायी कहानी है, जो युग-युगान्त से चली आयी है और युग-युगान्त तक चली जाएगी। जब तक मनुष्य में सवेदनशीलता रहेगी, वह इस प्रकार की चीजों से तृप्ति पाएगा।

कवि से

— श्री नटवरलाल 'स्नेही' —

बहुत लिखीं कवि ! 'प्रिया-पिया' के आँसू से तुमने कविताएँ,
बोलीं युग-युग तक मानव की मनोभूमि पर प्रणय-लताएँ।
किया लेखनी ने जी भर कर युगों वासना का विष-वर्षण,
अमृत-तत्त्व के स्थान, गिरा ने किया नाश का ही आवाहन।

आज तुम्हें आवाहन करना होगा, सो भी रुद्राणी का,
करना होगा मान विमर्दन 'सालाजार' दुरभिमानी का,
'सत्यमेव जयते' उद्घोषण करना होगा कविताओं को,
रक्तबीज का बीजोन्मूलन करना होगा दृढ़ बाँहों को।

प्रबल प्रभञ्जन की साँसों का स्वर कविता में भरना होगा,
धड़कन के छन्दों को धरती के चरणों पर धरना होगा।
उस शोणित से लिखना होगा जिसे कि वीरों ने छलकाया,
गोवा की धरती ने जिसका मस्तक पर-सिंदूर लगाया।

देखो, दुर्मद दैत्य-दमन की ज्वाला चूम रही अम्बर को,
सावधान ! यह सुखा न डाले मानव के साहस-सागर को।
दधीचि ! तुम पर युग से जग का आधारित उद्धार रहा है,
लिखो वज्र की लेखनियों से, कवि-कर्त्तव्य पुकार रहा है।

धारावाहिक—

भगवान बुद्ध की आत्मकथा

— श्री परदेशी

"एक कासापन मिले बाबा, एक कासापन मिले बाबा, कोई इस जीव को रोटी का टुकड़ा दे अय्य बा ।"—पुकारने वाले उस व्यक्ति की पीठ सर्वथा झुक गयी थी । लाठी के सहारे, वह कठिनाई से एक-एक डग चल रहा था । पैर लड़खड़ाते थे । हाथ काँपते थे और सिर किसी वायु-विकम्पित फुनगी-सा हिल रहा था, ग्रीवा पर वह भार रूप प्रतीत होता था । बोल निकलने के साथ ही मुँह से बहुत सी लार टपक पड़ती, जिसे उसके रूखे चीथड़े तुरन्त पी जाते । मक्खियाँ उस पर भिनभिना रही थीं । उस अद्भुत जीवधारी के केश और भौंह श्वेत थे, और दृष्टि काली पड़ गयी थी ।

वह इस प्रकार चल रहा था, मानों धरती पर कुछ खोज रहा है । पीछा करते नटखट लड़कों में से एक ने पूछा, "बाबा क्या खोजता है ?"—"अपनी युवावस्था"—दूसरा बोला, और शेष सब खिलखिला कर हँस दिए ।

"ले बाबा, यह कासापन" दल के एक बालक ने उस पुरुष के हाथों में कंकर रख दिया । कंकर का भान होने पर बाबा ने अपनी लकुटी चलाई, पर वे चपल बालक क्या उसकी पहुँच में आते ? उन्होंने जोर से अट्टहास किया और तालियाँ बजाईं ।

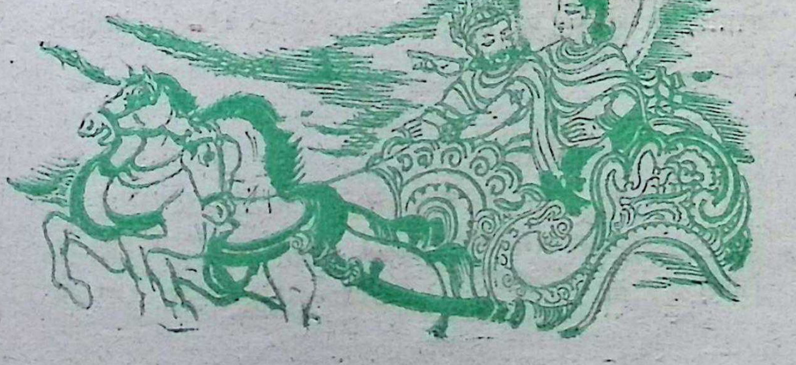

राजमार्ग पर काफ़ी भीड़ थी । हमारा रथ धीरे-धीरे उद्यान भूमि की ओर बढ़ रहा था । मैं कब से बाबा को देख रहा था—

"रथ रोको," मेंने कहा ।

"..................."

"आर्य छन्न, अश्वों को अविलम्ब रोको ।"

राजरथ रुक गया । मैं नीचे उतर पड़ा ।

जब से उस देहधारी को देखा, मेरे मन में न जाने क्या हो रहा था । तन में कम्पन भर गया था । मन में सिहरन थी । ऐसा पुरुष तो मैंने आज पहली बार देखा था ।

"...क्या है कुमार ?" छन्ना ने पूछा ।

"....देखो, देखो आर्य, इस व्यक्ति को क्या हो गया है ? इसका क्या खो गया है ? बालक कहते हैं इसका यौवन खो गया है, तुम ढूंढ दो न, छन्न ।"

आर्य छन्न कैसे हैं, वे तो नितान्त मौन रहे ।

मेरी आँखों में आँसू भर आए । गद्गद् कंठ से पूछा, "श्रेष्ठ छन्दक, कहो न, यह पुरुष कौन है ?"

सम्भवतः मेरे अश्रु-दल देख आर्य ने उत्तर दिया—

"यह वृद्ध है कुमार ।"

"वृद्ध क्या होता है, आर्य ?"

"....जरा-जर्जरित जीव को वृद्ध कहते हैं। इसे अब अधिक दिन नहीं जीना है ?"

"....सौम्य छन्न, इसके केश श्वेत क्यों हो गये हैं ?"

"...आयु के कारण ।"

"....आयु क्या वस्तु है आर्य ?"

"....कालक्षेप को आयु कहते हैं कुमार ।"

"....इसके दाँत कहाँ गये, और इसकी पीठ औरों के समान सीधी क्यों नहीं है आर्य ?"

"....यह जरावस्था का धर्म है कुमार ।"

"...यदि यह धर्म है, तो क्या सबको धारण करना पड़ता है ?"

"....यथार्थ है देव ।"

"....अय्य छन्न, क्या तुम भी एक दिन ऐसे हो जाओगे ?"

"...हाँ कुमार ।"

—और अब तो छन्दक के मुख पर वेदना-भाव स्पष्ट झलक आया । उसकी दृष्टि में भी करुणा भर आई ।

"...और क्या मैं भी बूढ़ा हो जाऊँगा, क्या यह अनिवार्य है ?"

"—देव, आप, हम और सभी मनुष्यों के लिए जरावस्था है, जो अनिवार्य है।"

मैं तो स्तब्ध रह गया। निष्कम्प दीपशिखा-सा अचपल जलता रहा। मेरे सम्मुख अपनी जरावस्था का चित्र घूमने लगा—

टेढ़े-मेढ़े झुके दंड का सहारा लिए चल रहा हूँ···सारे अंग शिथिल पड़ गये हैं, एक-एक डग में पग लड़खड़ाते हैं····श्वेत केशी हूँ। अरदन मुख से लार टपकती है। मक्खियाँ मँडरा रही हैं। और सबसे अधिक कष्टदायी है कि उत्पीड़क दुष्ट, वाचाल बालक मेरी हँसी उड़ा रहे हैं। हाथ में कासापन के नाम पर कंकर रख जाते हैं। पीछे से अन्तरीय खींचते हैं···बारम्बार पूछते हैं···बाबा, तेरी अम्बपाली कहाँ गयी ? मैंने अपने मुख पर हाथ फिराया····।

बालवृंद का सुस्पष्ट हास और करतल-रव मेरे समक्ष प्रतिध्वनित-आलोकित हो उठा। मैं अपने ही बस में न रहा। क्षिप्रतापूर्वक राजरथ में आरूढ़ हुआ।

"भद्र, बस उद्यान जाना रहने दो। रथ तुरन्त लौटा लो।"

"देव को क्या हुआ है ?"—छन्दक व्यथित हो उठा।

"कुछ नहीं छन्न, घबराओ नहीं। रथ हेमन्त प्रसाद लौटा लो।"

छन्दक ने कहा—"जो आज्ञा देव।"

रथ लौट कर चलने लगा।

—"मैं वृद्धावस्था को मिटा दूंगा"—मैंने मन ही मन कहा।

मैंने पूछा, "छन्दक, वह वृद्ध रोटी-रोटी क्यों पुकारता था ?"

"वह भूखा था, देव।"

'वह भूखा क्यों रहता है, आर्य ?"

"क्योंकि, उसके पास खाने को रोटी नहीं है।"

"रोटी नहीं है, तो भात क्यों नहीं खाता ?"

"उसके पास न रोटी है, न भात। खाने को कुछ भी नहीं है।"

"हैं···आर्य छन्न, तुम मिथ्या तो नहीं कहते ?"

"नहीं, मैं कुमार का सेवक हूँ, कुमार से मिथ्या-भाषण कैसे करूँगा ?"

"तो क्या ऐसे भी व्यक्ति हैं, जिन्हें रोटी दुर्लभ है ?"

"कुमारदेव का कथन यथार्थ है।"

"फिर वे भूखे ही रहते होंगे, भूखे ही सोते होंगे ?"

"हाँ कुमार !"

—"मैं भूख को मिटा दूंगा।" मैंने अपने निश्चय से कहा।

'और भद्र छन्दक !"

"आज्ञा हो आर्य !"

"वह कार्षापण द्रव्य क्यों माँगता था ?"

"खाद्य-क्रय के निमित्त।"

"तो क्या खाद्य का क्रय-विक्रय होता है ?"

"परम भट्टारक महाराज के राज्य में भी होने लगा है।"

"खाद्य-विक्रय तो पाप है छन्ना ?"

"पाप है कुमार।"

"तो, परम भट्टारक भी पाप के भागी होंगे, छन्दक ?"

"ऐसा न कहिए कुमार, ऐसा सोचना भी पाप है। शान्तम्-पापम् शान्तम्-पापम्।"

"मैं खाद्य-विक्रय को मिटा दूंगा"—मेरी मुट्ठियाँ बँध गयीं।

"कुमार को क्या होगया है ?"

भोले छन्ना के कोष में इसके अतिरिक्त दूसरा प्रश्न कहाँ ?

यशोधरा नहीं मानी। मुझे अमरू-आवृत आसंदी पर बैठना ही पड़ा।

"यश, क्या सचमुच रात हो आई है ?"

"आर्यपुत्र विश्राम करें, दो प्रहर रात्रि बीत चुकी है।"

"यशोधरे, जीवन में विश्राम नहीं है।"

"देव को दासी क्या उत्तर दे ?"

"मैंने कई वार कहा आर्ये, अपने को दासी न कहो। तुमने एक क्षण भी न माना।"

"दुखी न हों देव, मेरे देवी कहाने का समय अभी नहीं आया। लगता है वह शुभ दिन दूर नहीं।"

और मैंने देखा, यशोधरा के अभिनील नेत्रों में बड़े-बड़े आँसू डबडबा आए हैं। बड़ी देर से जो रुलाई वह रोके बैठी थी, एक ज्वार की तरह उठी, और उस कंचनांगी की वेत्रयष्टि देही को झकझोर गयी। बोली—"देवी के रहते, आज आर्य इतने अवसन्न क्यों हैं ?"

"सुभगे, सायंकाल को राजोद्यान जाते समय, मैंने एक त्रस्त दुर्बलताग्रस्त व्यक्ति देखा। आर्य छन्दक ने बताया, यह वृद्ध है। और सुनो तो यशोधरा, छन्दक ने कहा—सबके लिए वृद्ध होना अनिवार्य है। तब से मैं सोच रहा हूँ, वार्द्धक्य को कैसे मिटा दूं ?"

"देव, अपराध क्षमा हो, घटने-बढ़ने बनने-मिटने और गिरने-उठने की सतत क्रिया पर ही संसार निर्भर है।"

"उचित कहती हो...."

"रुक क्यों गये आर्य ?"

"और यश…"

"कहिए नाथ ।"

"मैं सोचता हूँ…."

"देव सोचते हैं, क्या सोचते है ?"

"मैं सोचता था यशोधरा, एक दिन तुम भी वृद्धा हो जाओगी। तुम्हारे ये सावन-घन से सघन केश श्वेत हो जाएँगे। यशोधरा ! तुम्हारे अश्विन के निरभ्र नभ-से निर्मल नयन धुँधले मंद हो जाएँगे, यशोधरा ! तुम्हारे ये पद्मपुष्पों-से कपोल मुरझा जाएंगे, यशोधरा ! ये अविवर दंत एक-एक कर गिर जाएँगे। मुख से…" मैं आगे कुछ न कह सका।

पर, यशोधरा रुक न सकी, बोली "कपिलवस्तु की राजवधू जरावस्था से नहीं डरती, कुमार ! जो अवश्यम्भावी है, उसके लिए सोच क्या ? उसके लिए क्या शोक और क्या अनुताप देव ?"

"किन्तु, वह भी क्या जीवन, जिसमें जरावस्था हो ?"

"क्षमा हो देव, जीवन ही में जरा आती है। शैशव, यौवन और जरा—काल-गति के विराम-चिह्न हैं ।"

'मनुष्य अवश्यम्भावी दुर्दान्त महाकाल की गति फेर देगा ।"

यश का मन लजवन्ती-सा लजा गया। बड़ी-बड़ी पलकें उन्मद बदलियों-सी झुक आईं, बोली—"देव, रात बहुत बीत चली है।"

"तुम जाओ यशोधरा, राहुल जग जाएगा ।"

"देव !"

"देवि, तुमने एक दिन भी मेरी बात नहीं मानी ।"

"आर्यपुत्र, शैवालिका भोजन लिए कब से खड़ी है ।"

और "भोजन" शब्द ने मुझ पर वज्रवार किया "हाँ, हाँ…यशोधरा ! वह वृद्ध रोटी का टुकड़ा माँग रहा था। वह रो-रो कर 'रोटी-रोटी' पुकार रहा था। 'एक कासापन दो, बाबा एक कासापन दो…रोटी का टुकड़ा मिले अय्य बा, रोटी का टुकड़ा ।' मधुकंठिनि, उसका दीन स्वर अब भी मेरे कानों में गूँज रहा है। उस भूखे वृद्ध की जरा-जीर्ण प्रतिमा मेरी आँखों के सम्मुख प्रत्यक्ष खड़ी है राहुलमाता।

"….वह अभागा अब भी भूखा होगा। तुमने कभी सोचा यश, लोग भूखे क्यों रहते हैं ? भूखे रहने को मजबूर क्यों हैं ? मैंने छन्ना से कहा था, 'आर्य छन्न, राज-कोष में, कहते हैं अनन्त धनराशि है। कोटि-कोटि स्वर्ण-रौप्य मुद्राएँ हैं, इस वृद्ध को कुछ दिला देना ।

“तब छन्दक ने उत्तर दिया····‘कोष पर राज-परिषद का अधिकार है ।’ तो मैंने पूछा····राज-परिषद लोगों को भूखा मारेगी ?

‘ऐसा न कहो देव, राज-परिषद सर्वोपरि सत्ता है, उसके अधिकार के विषय में प्रश्न उठाना, ईश्वर के अस्तित्व को चुनौती देने के तुल्य है ।’ —छन्दक ने यही कहा था, तन्वि ! यह छन्ना यह न करो, वह न करो, यह न कहो, वह न कहो आदि के अतिरिक्त और भी कुछ जानता है, या नहीं ?

“तब मैंने कहा····‘मेरा हीरक-हार इसे दे दो छन्दक ।’ तो, उसकी विनम्रता बोली····‘कठोर राजाज्ञा है कि आप बाह्य व्यक्ति से न संभाषण करें, न अन्य व्यवहार सम्बन्ध ही रखें ।’

“···तो, क्या चारुलोचने, हम राजाज्ञा के बंदी है ? क्या सिद्धार्थकुमार किसी सत्ता के अनीतिपूर्ण आदेश का दास है ? क्या मैं इसलिए राजपुत्र हूँ कि लोग भूख से तड़पें ? तुम····तुम यह क्या कहती हो कि राजाज्ञा लोकहित के लिए प्रकाशित होती है ! तो, तुम्ही बताओ, लक्ष-लक्ष जनता को भूखा रहने में, प्रजा का क्या हित देखा गया है ? मैं स्पष्ट सुन रहा हूँ, यशोधरा, इसमें किसी अन्यायी-वर्ग का लोभ रो रहा है । तुम मानो या न मानो, यशोधरा, मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि जन-जन की रोटी और रोटी के अधिकार, निहित-स्वार्थ वर्ग-विशेष-द्वारा मुष्टिबद्ध हैं ।”

“सुकेशि, रात बीतने वाली है, अन्धकार जाने वाला है, और नया उजेला आने वाला है । कल का सूरज उगने दो, मैं कहता हूँ, सिद्धार्थ कहता है, कल का सूरज उगने दो, मैं अपनी आवाज उठाऊँगा, जिनके पेट खाली हैं, और जिनके अधिकार छिन गये हैं, उन सबको लेकर मैं परम भट्टारक के प्रासाद में प्रार्थी होऊँगा । यदि महाराज और परिषद ने मेरे विनम्र निर्वैर निवेदन को स्वीकार किया तो ठीक, अन्यथा अस्वीकार किया तो याद रखो यशोधरे, मैं तुम्हारे आभिजात्य-दर्गों में वह आग लगाऊँगा जो सहस्राब्दियों तक नहीं बुझ सकेगी । सुहासिनि, मैं श्रेष्ठियों की उस सैन्य-सुरक्षित बद्ध मुष्टि को तोड़ दूँगा, और रोटी को आजाद करूँगा·········

“विकल न हो राजकन्ये, सिद्धार्थ पागल नहीं हो गया है । प्रस्तुत प्रश्नों से पलायन करना “जीवन” नहीं है । देवि, देवि, वह वृद्ध इस समय कहाँ होगा ? देखो न, कितनी प्रखर हिमवर्षा हो रही है । नीचे द्रुम-वल्लरियाँ तुषारपात के आघात से विच्छिन्ना पड़ी हैं । गगनांगन में तारे काँप रहे हैं । तुम्हारे अरुण अधरों पर प्रकम्प की लहर व्याप्त है । यशोधरा, कहो उस वृद्ध की क्या दशा होगी ? उसके तन पर मात्र एक अधोवसन था । न जाने वह कहाँ ठिठुर रहा होगा ?

“जिसमें एक भी प्राणी भूखा है, वह कैसा जनतन्त्र है ? जिसमें एक भी व्यक्ति नंगा है, वह कैसा गणतन्त्र है ?

“मैं···मैं राजाज्ञा से द्रोह करूँगा। मैं उस वृद्ध के पास जाऊँगा और उसके बुढ़ापे को जवानी में बदल दूँगा। मध्यदेश का भावी सम्राट् एक साधारण व्यक्ति से मिलने में भी असमर्थ ! वाह रे सम्राट् ! हूँ···हूँ···हूँ···देवि, मैं भूख को मिटा दूँगा··· मैं आयु की अवधि को मिटा दूँगा। परम भट्टारक प्रातः स्मरणीय महामहिम महाराज शुद्धोधन के राज्य में, जहाँ सुरापी सामन्त और व्यभिचरित श्रेष्ठीगण प्रमाद प्रमत्त विचरते हैं, शाक्यवधु, वहाँ वृद्ध और अबल-अपाहिज रोटी-रोटी को तरसते हैं, भूखा रहने को बाध्य हैं। उत्तंग अट्टालिकावन्ती कपिला में, जहाँ कुलकन्याएं प्रतिपल परिधान पलटती हैं, वहाँ मनुष्य अर्द्ध नग्न भटक रहा है·······और मैं कहता हूँ, आर्यावर्त्त की अभंग एवं परम पवित्र न्याय-परम्परा के नाम पर कहता हूँ, इस पुंजीभूत पाप का भार पुण्यश्लोक परमभट्टारक पर है, मुझ पर है, और यशोधरे, तुम पर है,···· और राहुल पर है और छन्दक पर है, और इस शैवालिका पर है, उस जीवान्तक देवदत्त पर है····शैवालिके···शै वा लि के,··भोजन का थाल लौटा ले जाओ, शैवालिके, परम-भट्टारक चक्रवर्ती सम्राट् जनता को भूखों मारने के अपराधी हैं। जाओ, जाओ, नगर-नगर, घर-घर और चौराहों पर घोषणा कर दो कि समस्त धर्मभूमि के भूखे, भिखमंगे और अछूत नर-नारायण इस अपराधी सम्राट् का न्याय करेंगे·······करेंगे न, राहुल माता ? शैवालिके, तुम्हारी स्वामिनी····अहा···देवी यशोधरा इसलिए सुवेशधारिणी सदलंकृता है कि कोटि-कोटि निस्सहाय नर-नारी नग्न रहने को बाध्य कर दिए गये हैं। कपिलवस्तु के इस नभचुम्बी वातायन से मैं दसों दिशादासों को पुकार-पुकार कर कहता हूँ कि ओ, रे····ओ····तुम कैसे दास हो, जो यह भी नहीं जानते कि स्वामिनी और स्वामी-पुत्रों के कपोलों की लालिमा में तुम्हारा अपना अभिशोषित लहू छटपटा रहा है। वे लाख-लाख प्राणी, जिनके मांस-मज्जा से राजमहल आलोकित हैं, अब अधिक दिन बलि न बनेंगे। जिस पल वे एकत्र हो समवेत स्वर में अन्न, अधिकार और वस्त्र का विजयघोष लहराएँगे, उस दिन देखना यशोधरा, सिंहासन भूलुंठित होंगे। और राजमुकुटों की नीलामी होगी। देवि, एक न एक दिन महाराज, महारानी और नवजात युवराज को जनसमूह के आगे-आगे विधवा कपिलवस्तु के राजमार्गों पर नंगे पैरों चलना पड़ेगा और “जनता की जय” कहने को बाध्य होना पड़ेगा। पार्षद, पंडित और वेदपाठी विप्रगण अब जनता को अधिक दिन भ्रम में न रख सकेंगे। मैं कहूँगा—द्रव्य में नहीं, दरिद्र में नारायण है। स्वामी नहीं, जो सबका सेवक है वही हरि-जन है। बदलेगा, युग दशा, दिशा और व्यवस्था बदलेगा। प्रारब्ध, परमेश्वर और पाप-पुण्य की परिभाषाएँ आमूल परिवर्तित होंगी। यशोधरे, काँप रही हो ? अभी तो वह दिन दूर है·······

“जरा निकट बैठो देवबाला, मुझे न जाने क्या हो गया है ? आज की रात्रि

मुझे न जाने क्या क्या कह रही है। लगता है, कहीं दूर से कोई मुझे पुकार रहा है। हे पुकारने हारे, मैं आऊँगा, जरूर आऊँगा···

"देवि, सिंहद्वार पर शहनाइयाँ बजने लगीं, तो क्या भोर हो गया ? मैं तुम्हारे रतनारे नयनों की गुलाबी नींद हरने वाला अपराधी बन गया हूँ। दंड दो चाहे क्षमा करो। शैवालिके, आर्य छन्दक को बुलाओ।

"तुम जाओ राहुलमाता, कपिलवस्तु का भावी युवराज जाग गया होगा। वह राजअम्बा की राह देखता होगा। जाओ देवि, क्षमा करना, मेरी त्रुटियाँ मन में न लाना।"

और कोई मेरी पदांगुलियाँ पूजकर, उष्ण ओसबिन्दु चढ़ा गयी !

उसके जाने पर, जाने कब तक, मैं वैसा ही बैठा रहा। स्थिर, पर अस्थिर ! मैं बैठा ही रहा·······सम्मुख रथ था, राजपथ था, वृद्ध था और मेरे कानों में गूँज रहा था—

"एक कासापन मिले बाबा, कोई इस जीव को रोटी का टुकड़ा दो अय्य बा ?"

मैं चौंक कर उठ बैठा !

(क्रमशः)

विवेक पर है बाण चलाया

— श्री बालकृष्ण बलदुवा —

अपनों से जो चाहा, उनसे मिला न, इतरों से मिल पाया।
अपनों ने सदैव ही मुझको काँटों में लेजा उलझाया॥
कभी न पूछा "जीवित है या मरण-प्राय है ?" द्वन्द्व-निरत से।
उनकी ही माया-ममता ने इधर मुझे अतिशय भरमाया॥
और आज आदर्श शिखण्डी-सा है खड़ा सामने मेरे।
लेकर उसकी ओट मोह ने है विवेक पर बाण चलाया॥

गीत

— विनोद रस्तोगी —

करो मत इस राही से प्यार !

आज आ गया द्वार तुम्हारे;
पथ की थकन, तपन के मारे;
चल दूँगा कल, क्यों करती हो—
मुझसे आँखें चार ?
करो मत इस राही से प्यार !!

मेरा क्या, मैं बहता पानी;
मेरी मंजिल है अनजानी;
परदेसी का कौन ठिकाना—
क्या उसका घर-द्वार !
करो मत इस राही से प्यार !!

गति से मेरी हुई सगाई;
रुकने की क्यों कसम खिलाई;
कैसे बाँध सकोगी आँचल—
मैं सागर का ज्वार ?
करो मत इस राही से प्यार !!

संस्कृत साहित्य में नाम-ग्रहण

—श्री रामशंकर भट्टाचार्य

किसी भी भाषा में 'व्यक्ति का नाम' एक अध्येतव्य महत्त्वपूर्ण विषय है। केवल नामों के तात्त्विक अध्ययन से भाषा तथा लोक-चरित्र की प्रकृति के विषय में अनेक रहस्यपूर्ण तथ्यों का ज्ञान होता है। 'नाम' में दो मुख्य विचार्य विषय होते हैं—नाम-करण तथा नाम-ग्रहण। इसमें' इतर मनुष्य नाम' तथा 'मनुष्येतर नाम' यह नाम-विभाग हो सकता है, कारण कि मनुष्येतर पदार्थों की नाम-करण पद्धति मनुष्य-नामकरण पद्धति का सर्वथा अनुसरण नहीं करती है। इस निबन्ध में 'मनुष्य-नाम-ग्रहण' पर विचार किया गया है।

नाम-ग्रहण का अर्थ है—संस्कृत ग्रन्थों में किसी के नाम का उल्लेख। हम देखते हैं कि इस नामोल्लेख प्रक्रिया में पूर्वाचार्यों ने अनेक पद्धतियों का आश्रय लिया है। आज सामाजिक तथा साहित्यिक परिस्थिति में परिवर्तन हो जाने के कारण तथा प्राचीन काल की समस्याओं से वर्तमान काल की समस्याओं में युगानुसार असाधारण विलक्षणता आ जाने से हम इन विभिन्नताओं के कारण दर्शाने में असमर्थ हैं। यद्यपि कहीं-कहीं हमने कारण की उपपत्ति के लिए कुछ प्रयास किया है, परन्तु यह उपपत्ति निर्दोष है—ऐसा नहीं कहा जा सकता।

वस्तुतः आज की दृष्टि में ऐतिहासिक नाम का स्वरूप एक समस्या की तरह जान पड़ता है। कहीं-कहीं इन समस्याओं के समाधान के लिए प्रयास किया गया है, पर अभी भी इस विषय में कुछ चरम निर्णय करना असंभव-सा है। विद्वानों से अनुरोध है कि वे इस 'नाम-समस्या' के समाधान के लिए यत्नवान् हों।

ऐतिहासिक नाम सम्बन्धी समस्याओं के उल्लेख करने के पहले हमें यह जान लेना चाहिए कि नामस्वरूप के विषय में हमारे पूर्वाचार्यों में भी सन्देह था, और उन्होंने कदाचित् इस विषय में विमर्श भी किया है।

उदाहरण के लिए हम आचार्य शंकर के वाक्य का स्मरण कर सकते हैं। २।१।१ वेदान्त सूत्र के भाष्य में उन्होंने 'ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे ज्ञानैर्बिभर्ति जायमानं च पश्येत्' इस श्वेताश्वतरमन्त्रस्थ (५।२) 'कपिल' नाम के ऊपर विचार किया है। यद्यपि यह शब्द स्पष्ट रूप से सांख्योपज्ञ कपिल के ही नाम का उल्लेख कर रहा है, पर शंकर कहते हैं कि यह 'श्रुतिसामान्य' है। उनके कथन का तात्पर्य यह है कि यहाँ कपिल' शब्द का किसी ऐतिहासिक पुरुष से तात्पर्य नहीं है, क्योंकि किसी विशेष विवरण के

उल्लेख के बिना सामान्य शब्द से विशिष्ट अर्थ का निश्चय नहीं करना चाहिए। ऐतिहासिक नाम-निर्णय में शंकर की यह पद्धति यद्यपि अनवद्य है, पर इस न्याय का अनुचित प्रयोग करके असत्य निश्चय भी किया जा सकता है—यह ज्ञातव्य है।

इस प्रकार का एक विचार सांख्यभाष्य के अन्त में विज्ञान भिक्षु ने भी किया है। उन्होंने 'अग्न्यवतार कपिल' तथा 'भगवदवतार कपिल' रूप दो भेद दिखाए हैं, और इसके लिए युक्ति भी दी है। पौराणिक नामों के निर्णय में उनकी युक्ति अनेक स्थल पर संगत होती है।

इस प्रसंग में यह जान लेना चाहिए कि कुछ पूर्वकालीन विद्वान उपनिषदादिग्रंथस्थ व्यक्तिवाचक नामों के विचार में पूर्णतः उदासीन रहते हैं। उनका कथन है कि ये सब नाम कल्पित हैं और औपनिषद सत्य को रोचक करके कहने के लिए आख्यानों की रचना की गयी है। किसी स्थल पर यह बात सत्य हो सकती है, पर उपनिषदादि के सब ऋषि काल्पनिक हों—ऐसा कहने से 'इतिहास' नामक पदार्थ का लोप हो जायगा। यह मत अति प्राचीन काल में भी मान्य नहीं था, अतः आलोचानार्ह भी नहीं है।

व्यक्तिवाचक नामों के अध्ययन में पहले हम देखते हैं कि कभी-कभी एक व्यक्ति के नामोल्लेख में एक ही ग्रन्थ या प्रघट्टक में उस नाम के पर्यायों का भी ग्रहण किया गया है। निम्न उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाएगी:—

(१) महाभारत वन पर्व में कर्ण के पास उसके पिता सूर्य के आगमन सम्बन्धी प्रसंग में सूर्य शब्द के साथ-साथ रश्मिमान्, विभावसु तथा सहस्रांशु इन तीनों शब्दों का व्यवहार किया गया है (देखो अध्याय ३०१)। अब जो व्यक्ति 'सूर्य' शब्द को एक-व्यक्तिवाचक नाम समझता है (यह मत युक्त है या नहीं—इसका विचार यहाँ नहीं किया जाएगा), उसके लिए यह एक समस्या है कि सूर्य के पर्यायवाची शब्द भी सूर्य के साथ क्यों पढ़े गये। यह कहना संगत नहीं होगा कि विभावसु आदि शब्द सूर्य के विशेषण हैं, क्योंकि यदि शब्द का यौगिक अर्थ मानकर विभावसु को विशेषणपद कहा जा सकता है, तो सूर्य को भी क्यों नहीं विशेषणवाची समझा जाय। यौगिक रीति से सूर्य भी विशेषण शब्द हो सकता है।

(२) नचिकेता की प्रसिद्ध कथा तैत्तिरीय ब्राह्मण में मिलती है (३।११।८)। वहाँ यह कहा गया है कि मृत्युनामधेय ऋषि के साथ नचिकेता का प्रश्नोत्तर हुआ। यह कथा कठोपनिषत् में भी अतिविस्तृत रूप में है। यहाँ मृत्यु शब्द के साथ यम तथा अन्तक शब्द का भी व्यवहार है। यह भी हो सकता है कि ब्राह्मणस्थ कथा एक ऐतिहासिक सत्य कथा हो। परन्तु उपनिषत् में कथा की सत्यता पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया, कारण कि मोक्षोपदेश करना ही वहाँ का विषय था और कुछ रोचकता के

लिए एक प्राचीन ऐतिहासिक घटना का, जो इस प्रकार के उपदेश के साथ कुछ सादृश्य मूलक सम्बन्ध रखती थी, आश्रय लिया गया।

(३) वेद के ऋषियों के विषय में भी यही समस्या है। मनुस्मृति में तथा अन्यत्र भी यह कहा गया है कि अग्नि, वायु तथा रवि से वेदों का प्रकटीकरण (या प्रणयन) हुआ था। अब यदि हम अग्नि आदि शब्दों को मनुष्यनाम मान लें, तो समस्या यह खड़ी होती है कि अनेक प्रामाणिक ग्रन्थों में रवि, वायु तथा अग्नि शब्दों के पर्यायवाची शब्द भी पठित हैं, जैसे 'सूर्यात् सामवेदः' (शतपथ ११।५।८) या 'सामनि आदित्यात्' (छान्दोग्य ४।१७।२)।

यह एक समस्या है कि नामों के पर्यायों का प्रयोग नामोल्लेख में क्यों किया गया है। शास्त्र में संज्ञा को 'व्यक्तपरिमाण' कहा गया है (प्रदीप १।२।१), जिसका अर्थ है—'जिसका शब्दानुपूर्वी नियत हो', अतः संज्ञावाची शब्दों के पर्यायों का प्रयोग असंभव है—ऐसा मानना होगा।

इस प्रसंग में एक बात और ध्यान देने योग्य है। हम कभी-कभी व्यक्तिवाचक नामों की द्विरूपता का भी साक्षात्कार करते हैं। 'हनूमान' नाम के स्थान पर 'हनुमान' (शब्द भेद प्रकाश कोष) आदि इसके उदाहरण हैं। उपर्युक्त नियम के अनुसार ऐसा व्यवहार असंगत है। इस प्रकार के व्यवहार का कारण क्या है– यह गवेषणीय है। हनुमान् शब्द का अर्थ है 'जिसका प्रशस्त हनु है।' पर हनुमान् शब्द जब संज्ञा होगा, तो 'शरादीनांच' (६।३।१२०) इस पाणिनीय सूत्र से 'हनूमान्' होगा। अतः सामान्यतः यही प्रतीत होता है कि 'हनूमान्' ही प्रकृत नाम है, 'हनुमान्' या तो विशेषण है, या परवर्तीकाल में ऐसा शब्द-सादृश्य-सम्बन्ध से प्रचलित हो गया है। पर यह एक समस्या अभी भी है।

प्राचीन भारत में यह परम्परा थी कि किसी व्यक्ति की जैसे अपनी संज्ञा होती थी, वैसे उसका अभिधान उसके वंश-सम्बन्धी नाम से भी होता था। पुराकालीन ऋषियों के नामों का आश्रय लेकर जब हम उनके काल का निर्णय करते हैं, तब हमें अनुक्षण यह स्मरण रखना उचित है कि जिस नाम का आश्रय लेकर काल-निर्णय किया जा रहा है, वह नाम वस्तुतः व्यक्ति की संज्ञा है या वंश-सम्बन्ध-मूलक नाम है। वंश-सम्बन्ध-मूलक नाम यदि है तो उस एक नाम से बहुसंख्यक व्यक्ति अभिहित हो सकते हैं, अतः केवल उसी के बल पर काल-निर्णय करना सर्वथा सन्देहास्पद ही होगा। उदाहरण देने के पहले वंश नाम का अर्थ दिया जा रहा है:—

वंश नाम मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं—गोत्र-नाम तथा युव-नाम। पाणिनि ने कहा है--'अपत्यं पौत्र-प्रभृति गोत्रम्' (४।१।१६२) तथा 'जीवति तु वंश्ये युवा'

(४।१।१६३)*; अतः सिद्ध होता है कि गोत्र-नाम तथा युव-नाम एकार्थक नहीं हैं। अब हम जब साहित्य का अवलोकन करते हैं तो देखते हैं कि एक ही व्यक्ति को 'गोत्र-नाम' से तथा कभी-कभी 'युव-नाम' से कहा गया है। ऐसे उदाहरण विरल हैं, पर ये उदाहरण ऐतिहासिक समस्या हैं। हम उदाहरण देने के बाद इस रहस्य की यथासम्भव उपपत्ति करेंगे।

पहला उदाहरण स्वयं भगवान पाणिनि हैं। सर्वत्र उन्हें 'पाणिनि' नाम से ही कहा गया है। पर ऐसा भी स्थल है, जहाँ उन्हें 'पाणिन' कहा गया है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि पाणिनि शब्द गोत्र-प्रत्ययान्त है और पाणिन शब्द युव-प्रत्ययान्त। इसी पद्धति का दूसरा उदाहरण आचार्य कात्यायन भी हैं।[1] (कात्यायन शब्द गोत्र-प्रत्ययान्त है।) कभी-कभी इनको 'कात्य' भी कहा गया है। यह कात्य शब्द युव-प्रत्ययान्त है। अनुसन्धान करने पर इस प्रकार के अन्य उदाहरण भी मिल सकते हैं।

इस समस्या की उपपत्ति के पहले हमें 'गोत्र', 'युव' आदि का भेद जानना होगा। गोत्र का सविशेष निर्देशन ऊपर किया गया है। 'युवा' के विषय में विशेष बात यह है कि यदि वंश्य (पिता, पितामह—उत्पादक पितृ आदि परपम्रा) जीवित हो, तो पौत्र से प्रारम्भ करके जितने परम्पराक्रम से अपत्य होंगे, उनकी 'युवसंज्ञा' होगी। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि युवसंज्ञा के साथ गोत्रसंज्ञा का समावेश नहीं होता। यदि समावेश हो, तो जो विपर्यय होगा—आकर ग्रन्थ में उसका विचार है।

अब प्रकृत समस्या लीजिए। ४।१।६३ सूत्र पर एक वार्त्तिक है—'वृद्धस्य च पूजायाम्', जिसका अर्थ है—पूजा का अर्थ यदि गम्यमान हो, तो गोत्र की युवसंज्ञा होती है। सुतरां कत का गोत्रापत्य में कात्य होगा, और युवापत्य में कात्यायन होगा, पर इस वार्त्तिक से कात्य को भी कात्यायन कहा जायगा। पाणिन तथा पाणिनि के विषय में भी यही बात चरितार्थ होती है†।

---

* सूत्रार्थ—पौत्र से आरम्भ होकर जो अपत्य होता है, उनको 'गोत्र' कहा जाता है। अपत्य शब्द सम्बन्धिशब्द है, अतः जो स्वयं किसी का अपत्य है, उसकी अपेक्षा से भी जो पौत्र या पौत्र-पुत्र हैं, उनको भी गोत्र कहा जायगा। अपत्य केवल पुत्र नहीं है, परन्तु पुत्र-पौत्र आदि सन्ततियों का पर्याय है (भाष्य ५।१।५९)। गोत्रसंज्ञा के विषय में एक अन्य नियम यह भी है—'यस्य पौत्रादि तं प्रत्येव गोत्र-संज्ञा', अर्थात जो अंगिरस का पौत्र तथा गर्ग का पुत्र है, वह 'गोत्र नहीं होगा। क्योंकि वह गर्ग का पौत्र प्रभृति अपत्य नहीं है।

† संस्कृत साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि व्यक्ति के नाम रखने की पद्धति अनेक प्रकार की थी। 'नाक्षत्र नाम' 'दैवनाम' आदि इस विषय में उदाहरणीय हैं।

वस्तुतः प्राचीन भारत में किसी भी व्यक्ति के दो नाम व्यवहार में आते थे। एक व्यक्तिगत नाम तथा दूसरा वंश-सम्बन्ध-मूलक। इस व्यवहार का एक प्रत्यक्ष उदाहरण प्रश्नोपनिषत् के आरम्भ में दीख पड़ता है। यथा—'सुकेशा च भारद्वाजः, शैव्यश्च सत्यकामः, सौर्यायणी च गार्ग्यः, कौसल्यश्चाश्वलायनो, भार्गवो वैदर्भिः, कबन्धी कात्यायनः, ते ह एते……'। यहाँ एक-एक ब्रह्म जिज्ञासु के दो-दो नाम कहे गये हैं।

इन नामों के स्वरूप-विश्लेषण में आचार्य शंकर ने कहा है कि सुकेशा, सत्यकाम, कौसल्य तथा कबन्धी ये चार नाम हैं। भारद्वाज, भरद्वाज के अपत्य; शैव्य, शिवि के अपत्य; सौर्यायणी, सौर्य के अपत्य; सौर्य, सूर्य के अपत्य; कात्यायन, कत्य के अपत्य और आश्वलायन अश्वल के अपत्य के वंश-सम्बन्धमूलक नाम हैं।

शंकराचार्य ने गार्ग्य को गर्गगोत्रोत्पन्न कहा है, गर्ग का अपत्य नहीं और इसी प्रकार भार्गव भृगु का गोत्रापत्य है।

शंकर ने वैदर्भि को 'विदर्भेभवः' कहा है। यह देश-सम्बन्ध-युक्त नाम है। शंकर के इस कथन से ज्ञात होता है कि संस्कृत साहित्य में नामोल्लेख के प्रसंग में व्यक्तिगत नाम के अतिरिक्त और भी अन्य नामों का प्रचलन था, यथा (क) गोत्र नाम, (ख) अपत्य नाम, (ग) देश सम्बन्धी। शंकर ने यह भी दिखाया है कि जब 'कबन्धी' को कात्यायन कहा गया था, तब उनका प्रपितामह जीवित था (विद्यमान प्रपितामहो यस्य सः, युव-प्रत्ययः)।

उपर्युक्त विचार से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन भारत के ऐतिहासिक नामों की समस्या अत्यधिक जटिल है। एक गोत्र-प्रत्यय-युक्त नाम (जैसे गार्ग्य) अनेक व्यक्तियों का हो सकता है, युवप्रत्यय-युक्त गार्ग्यायण नाम भी इसी प्रकार का है। आधुनिक इतिहासज्ञ इस रहस्य को बहुधा भूल गया है, और वह गोत्रप्रत्ययान्त या युवप्रत्ययान्त नामों को देखकर उन सब की एकता की कल्पना करता है, जिससे अनेक प्रकार के विपर्यय हो गये हैं।

पुराण आदि का पारायण करने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि नाम रखने की कई पद्धतियाँ थीं। हमने दिखाया है कि व्यक्तिनाम के साथ-साथ वंशद्योतक नाम भी होता था। इसके साथ यह भी जानना चाहिए कि विद्यासंबन्धज्ञापक नाम भी होता था और चूंकि वह नाम आचार्यनाम से सम्बन्धित होता है, अतः व्यक्तिवाचक नामों के साथ इन नामों का सांकर्य भी हुआ है, जो कठिन समस्याएँ उत्पन्न करता है।

कभी-कभी व्यक्तिगत नाम तथा विशेषण का सांकर्य हो गया है और इससे नाम-स्वरूप-निर्णय एक दुःसमाधेय समस्या का रूप ग्रहण करता है। इस समस्या के कई अवान्तर भेद हैं, जिनका एक संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

सर्वानुक्रमणी में ऋग्वेद मंडल ८ सूक्त ३ के मन्त्र २१-२४ अंश का देवता 'कौरयाणस्य पाकस्थाम्नो दानस्तुतिः' कहा गया है। इससे यह स्थापना की जा सकती है कि इन मन्त्रों में 'कुरुयाण के पुत्र पाकस्थामा' की दानस्तुति का वर्णन किया गया है। वस्तुतः यह विशेष्य-विशेषण से उत्पन्न एक नाम-समस्या है। कौरयाण किसी व्यक्ति का नाम नहीं हो सकता, कारण कि पाणिनि का स्वरविधान इस निर्णय का विरोधी है। इसके ऐतिहासिक नाम होने की अवस्था में यहाँ प्रत्यय स्वर से अन्तोदात्त होता। यहाँ पूर्वपद प्रकृतिस्वर है, अतः यह विशेषणवाची शब्द है। सुतरां यह किसी व्यक्ति का नाम नहीं है।

नामों के विषय में इस संदर्भ की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, उनका उल्लेख पूर्वक निराकरण श्री युधिष्ठिरमीमांसक जी ने 'ऋग्वेद की दानस्तुतियाँ' शीर्षक ग्रन्थ में किया है। विशेष जिज्ञासुओं को उस ग्रंथ का अवलोकन करना चाहिए।

आचार्यों ने नामोल्लेख के समय जैसे व्यक्तिवाचक नाम लिया है, वैसे ही कभी-कभी श्रद्धेय आचार्य की उपाधि ली है। यह उपाधि और नाम एक साथ मिलकर कभी-कभी अनेक प्रकार की भ्रान्तियों की उत्पत्ति करते हैं। निम्न उदाहरणों से यह बात भलीभाँति स्पष्ट हो जाएगी।

पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में सूत्र किया है—'अवङ् स्फोटायनस्य' (६-१-१२३)। यह सूत्र स्फोटायन के मत को दिखाता है। अष्टाध्यायी में आपिशलि आदि आचार्यों के नाम हैं, अतः यह शब्द भी किसी का नाम है—यह विनिगमना सामान्यतः निकलती है। विशेषतः किसी का मत प्रदर्शित करने के प्रसंग में उसका नाम लेना ही उचित होता है। उपाधि का उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं होती। यह शब्द उपाधि है, ऐसा हरदत्त ने कहा है (स्फोटः अयनं परायणं यस्य स स्फोटप्रतिपादनपरो वैयाकरणाचार्यः—पदमंजरी)। पर हरदत्त ने यह विचार नहीं किया कि यह नाम क्यों नहीं है। कोई व्याख्याकार कहता है कि यदि यह नाम होता, तो 'स्फौटायन' शब्द बनता (स्फुट का गोत्रापत्य—इस अर्थ में फक् प्रत्यय होकर), परन्तु यदि अन्य प्रकार से विग्रह किया जाय (नारायण शब्द की तरह), तो यह दोष नहीं होगा। वस्तुतः कौन नाम है तथा कौन उपाधि है,' वह नामोल्लेख व्यापार की एक समस्या है।

इस प्रकार का दूसरा उदाहरण 'व्यास' या 'वेदव्यास' नाम है। यद्यपि सामान्यतः देखने से यह व्यक्तिवाचक शब्द जैसा प्रतीत होता है, पर वस्तुतः यह एक उपाधि है। पुराणों में बराबर कहा गया है कि वेद का व्यास (विभजन) करने के कारण 'व्यास' होता है। शास्त्र में अनेक व्यासों के नाम तथा काल दिये हुए हैं, जो इस समस्या का किसी सीमा तक समाधान भी करते हैं।

हम 'मनु' नाम को भी इसी समस्या का एक प्रसिद्ध उदाहरण समझते हैं। पुराणों में कहा गया है—'कृते कृते स्मृतेर्विप्र प्रणेता जायते मनुः' (विष्णु ३-२-४६)। कुमारिल ने भी कहा है—'यज्ञेध्वर्युरिव ह्यस्ति मनुर्मन्वन्तरेसदा' (तन्त्रवार्त्तिक १-३-३)। अतः मनु को 'नाम' न समझकर 'उपाधि' समझना ही युक्ततर होगा, अन्यथा नाम-निर्णय में समस्या उत्पन्न होगी।

विशेषणवाची शब्द के विशेष्य की तरह व्यवहार में 'दशानन' 'कणाद' आदि शब्द निःसन्देह रूप से उदाहार्य हो सकते हैं। हम स्थान-स्थान पर 'दशानन' शब्द के स्थल पर 'दशास्य' शब्द का प्रयोग पाते हैं जो ज्ञापित करता है कि यह शब्द व्यक्ति-वाचक नाम नहीं है। पर यह एक समस्या की तरह तब आता है जब हम विशेष्य शब्द की तरह इस शब्द के प्रयोगों को देखते हैं। पर हमें यह जानना चाहिए कि किसी व्यक्ति का विशेषण परिस्थिति विशेष में विशेष्य की तरह व्यवहार्य हो जाता है। 'बुद्ध' शब्द इस प्रकार के व्यवहार का प्रमुख उदाहरण है। यह शब्द अवश्यमेव विशेषण-वाची है, पर नाम की तरह एक महापुरुष में व्यवहृत होता है। 'कणाद' भी नाम नहीं है, क्योंकि 'कणभुक्' 'कणभक्ष' आदि शब्द भी उस व्यक्ति के लिए आते हैं। इन शब्दों में 'कणाद' शब्द की ही अतिप्रसिद्धि है, और इसलिए यह भ्रम परवर्ती काल में उत्पन्न हो सकता है कि यह नाम है या विशेषण। अक्षपाद और अक्षचरण में भी यह बात चरितार्थ होती है।

नामकरण में सर्वाधिक जटिल समस्या का अब उल्लेख किया जा रहा है। प्रायः यह ठीक माना जा सकता है कि यदि व्यक्ति तथा उसके पिता का नाम निश्चित हो, तो उस व्यक्ति के परिचय में विपर्यास नहीं हो सकता, अर्थात् 'राम' यदि किसी का नाम हो, तो उसके परिचय में विपर्यास हो सकता है, क्योंकि उस नाम के कई व्यक्ति हो सकते हैं। पर यदि पितृ नाम के उल्लेख के साथ 'दाशरथिराम' कहा जाय तो यह 'राम' निश्चित हो जाता है, क्योंकि पिता तथा पुत्र के नाम अविकल रूप से समान होना अन्यत्र दुष्कर है।

संस्कृत साहित्य में इस नियम के अनेक अपवाद स्थल हैं। पिता तथा पुत्र के समान नाम विभिन्न देश और काल में एकाधिक बार आजाते हैं, जिससे ऐतिहासिक काल-निर्णय में प्रबलतम बाधा उत्पन्न हो जाती है। हम 'दाशरथिराम' नामक व्यक्ति को त्रेता के अन्तकालीन व्यक्ति समझ जाते हैं, हमें सन्देह भी नहीं होता कि 'दशरथ तथा राम' पिता तथा पुत्र रूप से एकाधिक बार इस भारतवर्ष में उत्पन्न हो चुके हैं। निम्न उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

पाण्डव वंश में परीक्षित राजा था, जिसके पुत्र का नाम 'जनमेजय' था। शास्त्र में अतएव 'पारिक्षित जनमेजय' का उल्लेख आता है, और ऐतिहासिक इस

जनमेजय को पूर्वोक्त पाण्डव ही समझते हैं। यह बात ठीक है, पर इसके साथ यह भी जान लेना चाहिए 'पारिक्षित जनमेजय' अत्यन्त पुरातन काल में भी हो चुका है। स्वयं भीष्म ने इस सत्य घटना का उल्लेख किया है—'आसीद् राजा महावीर्यः' (महाभारत शान्तिपर्व, अध्याय १४६)। जब भीष्म 'आसीत्' क्रिया का प्रयोग कर रहे हैं, तो यह सन्देह ही नहीं रह जाता कि 'पारीक्षित जनमेजय' पुराकाल का है।

इस प्रकार का अन्य उदाहरण 'दैवाराति जनक' भी हैं। जब 'दैवाराति' विशेषण दे दिया गया, तब यह सन्देह नहीं होता कि यह नाम अन्य काल में भी हो सकता है। पर वास्तव सत्य यही है कि एक ही नाम और विशेषण युक्त व्यक्तित्वों का अस्तित्व विभिन्न कालों में रहा है। इसका विशद निरूपण 'ब्राह्मण ग्रन्थों का इतिहास' प्रबन्ध में श्री भगवद्दत्त जी ने किया है।

विशेषण की विशेष्यरूपता नामनिर्णय में सर्वाधिक बाधक तत्त्व है। महाभारत में कहा गया है कि भीष्म ने उग्रायुध राजा को मारा है—'ये न चोग्रायुधो राजा चक्रवर्ती दुरासदः, दग्धश्चास्त्र प्रतापेन स मया युधि पातितः' (शान्तिपर्व २६।१०), पर अश्वघोष ने सौन्दरनन्द में इस घटना के लिए 'जनमेजय' शब्द का व्यवहार किया है (७।४४)। हो सकता है कि 'जनमेजय' उसका नामान्तर हो, या यह भी हो सकता है कि 'जनमेजय' उसका विशेषण हो, जो विशेष्य की तरह व्यवहृत हुआ।

हम स्पष्ट देखते हैं कि भीष्म का प्रकृत नाम 'देवव्रत' था। भयानक प्रतिज्ञा करने के कारण उनका नाम 'भीष्म'रूप से प्रसिद्ध हो गया। उनसे सब डरते थे, इसलिए भी भीष्म नाम की प्रसिद्धि हुई होगी (बिभेति अस्मात् इति भीष्मः)।

नाम के साथ 'विशेषण' तथा 'उपाधि' का सांकर्य एक गवेषणीय विषय है। प्रचीन भारतीय इतिहास के गवेषकों को इस विषय में सावधानी से विचार करना चाहिए। हमें यह सत्य प्रतीत होता है कि प्राचीन भारतीय इतिहास के ग्रन्थों में यह सांकर्य बहुत मात्रा में है। प्राचीन काल में परम्परागत उपदेश सुरक्षित रहने के कारण ऐसे स्थलों पर भ्रम नहीं होता था, पर आज भ्रम होना अनिवार्य हो गया है। सावधान होकर इस भ्रम का निराकरण करना चाहिए।

प्राचीन काल में भारत की जनता का यह प्रसिद्ध शिष्टाचार था कि वे वेदों से शब्दों को लेकर व्यक्तियों के नाम रखते थे। इन ऐतिहासिक नामों के साथ वैदिक शब्दसादृश्य देख कर सभी पश्चात्त्य ऐतिहासकारों ने वेदों के कालनिर्णय का प्रयास कूर्म-लोम-गणना की तरह किया है। जब महाभारत जैसे ऐतिहासिक ग्रन्थों में 'यदु' 'तुर्वशु' आदि नाम मिलते हैं तथा वेद मन्त्र में भी एकत्र इन नामों का पाठ दीख पड़ता है, तब यह सन्देह होना स्वाभाविक हो जाता है कि

वह मन्त्र इन ऐतिहासिक व्यक्तियों से सम्बन्धित ही है। यह दोष पाश्चात्य ऐतिहासिकों में पूर्ण मात्रा में है, और हमारे देश के मध्यकालीन आचार्य तथा आधुनिक आलोचकों में यह दोष क्रमविवर्द्धमान रूप में है।

हमें यह जानना होगा कि वेद के ब्राह्मण ग्रन्थ तथा पुराणों में जितने व्यक्तिवाचक नाम आये हैं, वे शब्द मूल वेद में भी हैं। वशिष्ठ, विश्वामित्र, पुरूरवा, उर्वशी, मनु आदि शब्द जब वेद संहिता में प्रयुक्त होते हैं और उनके युद्ध-मिलन संयोग-वियोग आदि वर्णित होते हैं, तब यह संदेह हो जाता है कि ये शब्द व्यक्तियों के नाम हैं। पर बात ऐसी नहीं है। यहाँ तक देखा जाता है कि कभी-कभी मन्त्र की वर्णना ऐतिहासिक घटना की तरह बहुलांश में मालूम पड़ती है, पर निश्चित रूप से यह जानना चाहिए कि वह कोई ऐतिहासिक घटना नहीं है। एक उदाहरण देकर यह बात स्पष्ट की जा रही है।

यजुर्वेद में कहा गया है—'उर्वश्यस्या युरसि पुरूरवासि' (५।२)। इस स्थान पर शतपथ ब्राह्मण भी कहता है—'उर्वशी वाऽप्सराः, पुरूरवाः पतिरथ यत् तस्मात् मिथुनादजायत तदायु" (३।४।१।२२)। पर यह कोई ऐतिहासिक घटना नहीं है।

वेदमन्त्रस्थ शब्द से नाम रखने के कारण कितनी भ्रांतियाँ उत्पन्न हुईं, उसका विशद निरूपण लेखान्तर में किया जायगा।

ऐतिहासिक प्राचीन नामों के विषय में व्याकरण शास्त्र में एक ऐसा नियम उल्लिखित है, जिसके प्रयोग में महती सूक्ष्म दृष्टि तथा बहुशास्त्र दर्शित्व की आवश्यकता है। आचार्य भर्तृहरि ने स्वकृत वाक्यपदीय में इस नियम का उल्लेख किया है। उनकी कारिका है--

अभिव्यक्तपदार्था ये स्वतन्त्रा लोकविश्रुताः।
शास्त्रार्थस्तेषु कर्तव्यः शब्देषु न तदुक्तिषु॥

अर्थात्—जो पदार्थ स्वतन्त्र तथा लोक में अति प्रसिद्ध हैं, व्याकरण शास्त्र की प्रक्रिया उन प्रसिद्ध शब्दों में ही प्रवृत्त होती है, उनके समान आनुपूर्वीयुक्त शब्दों में नहीं। यह नियम नाम के विषय में ही प्रवर्तित होता है, अतः यह इतिहास से सम्बन्ध रखता है।

इस नियम की उपपत्ति तथा तात्पर्य इस प्रकार है। व्याकरण के गणपाठों में जिन विशिष्ट नामों का पाठ है (बाहु, नड आदि), उन शब्दों से शास्त्रीय कार्य तभी होगा, यदि स्मृतिशास्त्रप्रसिद्ध व्यक्ति लिया जाय, अन्यथा नहीं। श्रौतसूत्र में जिस 'बाहु' ऋषि का नाम है, उसके अपत्य को तो 'बाहवि' कहा जायगा, पर आज यदि किसी का नाम 'बाहु' रखा जाय, तो उसके अपत्य को 'बाहव' कहा जायगा—बाहवि-नहीं। इस विषय में जो तर्क है, इसको कैयटाचार्य ने दिखाया है,

यथा--'एतच्च स्मृतिशास्त्रस्य अर्थतोऽनादित्वात् अनाद्यर्थाभिधायिग्रहणस्य न्याय्यत्वात् लभ्यते' (प्रदीप ४।१।९६) संज्ञा आदि होती है, अतः सदृश शब्द से अपत्य प्रत्यय नहीं होगा। प्राचीन काल में जो अश्वलऋषि थे, उनके युवापत्य को तो 'आश्वलायन कहा जायगा, पर इदानींतन यदि कोई अश्वल हो, तो उसके युवापत्य को 'आश्वलायन नहीं कहा जायगा। इस नियम के रहस्य को हम अभी भी यथावत् नहीं समझ पाये हैं।

कभी-कभी व्यक्ति का नाम तथा अन्य प्रकार के गुणवाचक शब्दों में सांकर्य हो गया है, जो आज एक समस्या की तरह विद्यमान है। एक वैयाकरण थे, जिनका नाम था 'शाकटायन'। अवश्यमेव यह नाम नहीं है, पर वंश सम्बन्धी नाम है (शकटस्य गोत्रापत्यम् शाकटायनः)। पर किसी-किसी का अनुमान है कि शकट के साथ एक विशिष्ट सम्बन्ध के कारण आचार्य को शाकटायन कहा जाता था*। यद्यपि यह अनुमान असम्यक् है, तथापि नाम समस्या के वैचित्र्य को दिखाने के लिए यह कहा गया है।

जैसे आचरणवैचित्र्य के कारण व्यक्ति का कुछ न कुछ नया नाम पड़ जाता है, वैसा उच्चारण में विचित्रता के कारण भी किसी व्यक्ति की प्रसिद्धि नामान्तर से हो जाती है। पतंजलि ने महाभाष्य में कहा है कि कुछ ऋषि थे, जो 'यद्वा नः, तद्वा नः' ऐसे कहने के स्थान पर 'यर्वाणस्तर्वाणः' कहते थे। उच्चारण में ऐसी विचित्रता होने के कारण उन ऋषियों का नाम भी 'यर्वाणस्तर्वाणः' पड़ गया था (पस्पशाह्निक)। संभव है 'उग्रश्रवाः' 'लोमहर्षण' आदि नाम भी व्यक्ति की प्रकृति के अनुसार रखे गये होंगे, यद्यपि ऐसे निर्णय के लिए पर्याप्त प्रमाणों की आवश्यकता है।

नाम के साथ नाम के 'एकदेशग्रहण' करने की रीति संस्कृत समाज में अति प्रसिद्ध थी, और इसीलिए कहीं-कहीं कुछ समस्याओं का उद्भव भी हो गया है। हम देखते हैं कि दशरथ के जिस पुत्र के लिए 'राम' शब्द का उल्लेख बार-बार आया है, भवभूति ने उसी को 'रामभद्र' शब्द से अभिहित किया है। कथासरित्सागर आदि में भी इसी शब्द का प्रयोग है। इधर 'परशुराम' नाम का एक देश भी 'राम' है। अतः शास्त्र में 'राम' शब्द जब आता है, तब हमारे लिए यह एक समस्या हो जाती है कि यह 'दाशरथि राम' है या 'परशुराम'। धीर चित्त से इस समस्या का निराकरण करना चाहिए। जैसे पुराण में कहा गया है—'त्रेताद्वापरयोः सन्धौ रामः

---

* शकट से सम्बन्धित इस घटना का उल्लेख महाभाष्य में है—'तद्यथा वैयाकरणानां शाकटायनो रथमार्ग आसीनः शकटसार्थं यान्तं नोपलेभे' (३।२।११५)। किसी-किसी का अनुमान है कि शकट सम्बन्धी इस घटना के कारण ही उनका नाम शाकटायन पड़ गया था।

शस्त्रभृतांवरः, असकृत् पार्थिवं क्षत्रं जघानामर्षचोदितः (आदिपर्व २।३) । यहाँ कार्य से पता लगाना चाहिए कि यह राम दाशरथिराम है, या परशुराम ।

अब हम एकदेश सम्बन्धी कुछ विशिष्ट समस्याओं का उल्लेख करने जा रहे हैं । एक व्यक्ति का ही नाम स्वरभेद से विभिन्न स्थलों पर परिवर्तित रूप में प्रयुक्त दीख पड़ता है । मनुपुत्र का नाम 'शर्याति' कहा जाता है, पर कहीं-कहीं उसी के लिए शर्यात शब्द का भी व्यवहार है—'शर्यातो वा इदं मानवः' (शतपथ ब्राह्मण ४।१।५२) । महाभारत में जिसका नाम 'नरिष्यन्तं' कहा गया है (आदिपर्व ७०।१३), चरक में उसी को नरिष्यन् कहा गया है (चिकित्सास्थान) । पुराणों में मलन्दनपुत्र का नाम 'वत्सप्रीति' कहा गया है । विष्णु पुराण में उसी को 'वत्सप्री' (४।१।२०), तथा कात्यायन की सर्वानुक्रमणी में 'वत्सप्रि' कहा गया है । मान्धाता के गुरु का नाम मत्स्यपुराण में 'उत्तङ्क' कहा गया है (४७।२४३) पर अन्य पुराण में 'उदंक' भी दीख पड़ता है ।

एकदेश से सम्बन्धित अन्य प्रकार की समस्या भी है । कभी-कभी समासबद्ध नामों का एकदेश ही कहीं कथित होता है, अन्य भाग नहीं । जिसका नाम ब्रह्माण्डपुराण में 'नाभागोदिष्ट' कहा गया है (३।६०।२), उसी को विष्णुपुराण में केवल 'नाभाग' ही कहा गया (४।१।७) । यहाँ समस्या का समाधान भी पूर्वोक्त उपाय से करना चाहिए ।

कभी-कभी उपसर्गप्रयोग सम्बन्धी मतभेद हो गया है, जो एक दुरपनेय समस्या है । पुराणों में प्रह्लाद के पुत्रों के नाम 'कुम्भ' और 'निकुम्भ' दिये गये हैं, पर हरिवंश पुराण (३।३६।३५) में 'जम्भ' तथा 'सुजम्भ' हैं । यदि यह भेद लेखक की असावधानी से न हो गया हो, तो यह एक समस्या है । दूसरा उदाहरण लीजिए—वायुपुराण (९७।८१) के अनुसार युद्ध में असुरों का सेनापति 'सुजंभ' था, पर उसी व्यक्ति को ब्रह्माण्डपुराण (३।७२।८१) 'जंभ' कहता है । नाम में इस प्रकार का परिवर्तन संगत नहीं होता । ये शब्द विशेषण भी नहीं हैं । सुतरां, ऐसा व्यवहार तात्कालिक समाज में प्रचलित था कि कभी-कभी उपसर्ग का त्याग करके भी नाम का उल्लेख किया जा सकता है, यह हमें मानना पड़ता है, यद्यपि यह आज एक समस्या की तरह ही हमारे पास विद्यमान है ।

कभी-कभी एकदेश के पर्याय शब्दों का प्रयोग करके भी नामों का निर्देश किया गया है । किसी के अनुसार पतंजलि का नामांतर 'शेषनाग' था, पर कभी-कभी 'शेषाहि' 'फणीन्द्र' 'नागनाथ' आदि शब्दों का भी व्यवहार मिलता है । ये शब्द विशेषण नहीं हैं—यह स्पष्ट है ।

शब्दसादृश्य से नाम में किस प्रकार का भ्रम उत्पन्न होता है, इसका उदाहरण

प्रस्तुत किया जा रहा है। सांख्यकारिका की एक टीका है 'जयमंगला', जिसके रचयिता का नाम 'शंकराचार्य' कहा जाता था, जो प्रस्थानत्रयी के भी भाष्यकार हैं। वस्तुतः कारिकाभाष्यकार 'शंकरार्य' हैं, शंकराचार्य नहीं, यह ऐतिहासिक दृष्टि से प्रमाणित हो चुका है। यहाँ 'शंकरार्य' नाम से 'शंकराचार्य' नाम का जो सादृष्य है; वही इस भ्रम का कारण है।

हमारे पूर्वाचार्य भी इस तथ्य से परिचित थे कि शब्दसादृश्य से व्यक्ति में भी अभिन्नता का बोध होने की पूरी संभावना है, अतः इस भ्रम के निराकरण के लिए वे कभी-कभी बड़ी सावधानी से शब्दों का प्रयोग करते थे। एक उदाहरण लीजिए—शाकटायन नामधेय दो वैयाकरण हो चुके हैं। एक प्राक्पाणिनीय और दूसरा अर्वाक्पाणिनीय। नामसादृश्य से भ्रम न हो जाय, इसलिए अर्वाचीन व्याकरण ग्रन्थों में नवीन शाकटायन के लिए 'अभिनव-शाकटायन' शब्द का व्यवहार किया गया है, जो ठीक ही है।

कभी-कभी व्याकरणप्रक्रिया के बल पर भी आचार्यों ने नाम-सम्बन्धी विचार किया है, पर नामकरण में 'संज्ञाप्रमाण' वाद के अभ्युपगम होने के कारण व्याकरण-नियम से ऐतिहासिक निर्णय करना एक दुष्कर कार्य है। इस पद्धति से अन्तिम निर्णय हो भी नहीं सकता। उदाहरणार्थ 'नारायण' शब्द व्याकरणनियम के अनुसार उसका ही नाम हो सकता है जो लक्ष्मी का पति हो, पर हम देखते हैं कि पौराणिक युग में ही इस नियम का उल्लंघन हो गया था। वेदान्त स्यमन्तक में आचार्य बलदेव ने कहा था—'नाराग्रणशब्दः खलु श्रीपतेरेव संज्ञा, पूर्वपदात्संज्ञायामग [८-४-३] इति तस्यैव णत्वविधानात्', पर यह विचार अयथार्थ है।

इस प्रसंग में एक बात और ज्ञातव्य है। संस्कृत व्याकरण में कुछ ऐसे नियम हैं जिनसे यह प्रमाणित होता है कि 'अनुकम्पा' 'कुत्सन' 'क्षुद्रता' आदि ज्ञापन के समय व्यक्तिवाचक नाम में कुछ परिवर्तन या परिवर्जन हुआ करता था। जैसे—जिसका नाम 'उपेन्द्रदत्त' है, यदि अनुकम्पा के साथ उसका नाम लिया जाय, तो 'उपिल' या 'उपिक' कहा जायगा इत्यादि। पाणिनि ने ऐसे कुछ नियम अपनी अष्टाध्यायी में दिखाए हैं (अध्याय ५ पाद ३)। साधारण दृष्टि से ये विभिन्न नाम विभिन्न व्यक्तियों के नामों की तरह ही प्रतीत होते हैं, पर जीवन की घटनाओं की समता को देख कर तथा शब्दशास्त्रीय नियमों की उपपत्ति को समझकर इन समस्याओं का समाधान होना चाहिए।

व्यक्ति-नाम की तरह संस्कृत ग्रन्थों के नामों में भी अनेक प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हो गयी हैं, जिनका समाधान सहसा सम्भव नहीं है।

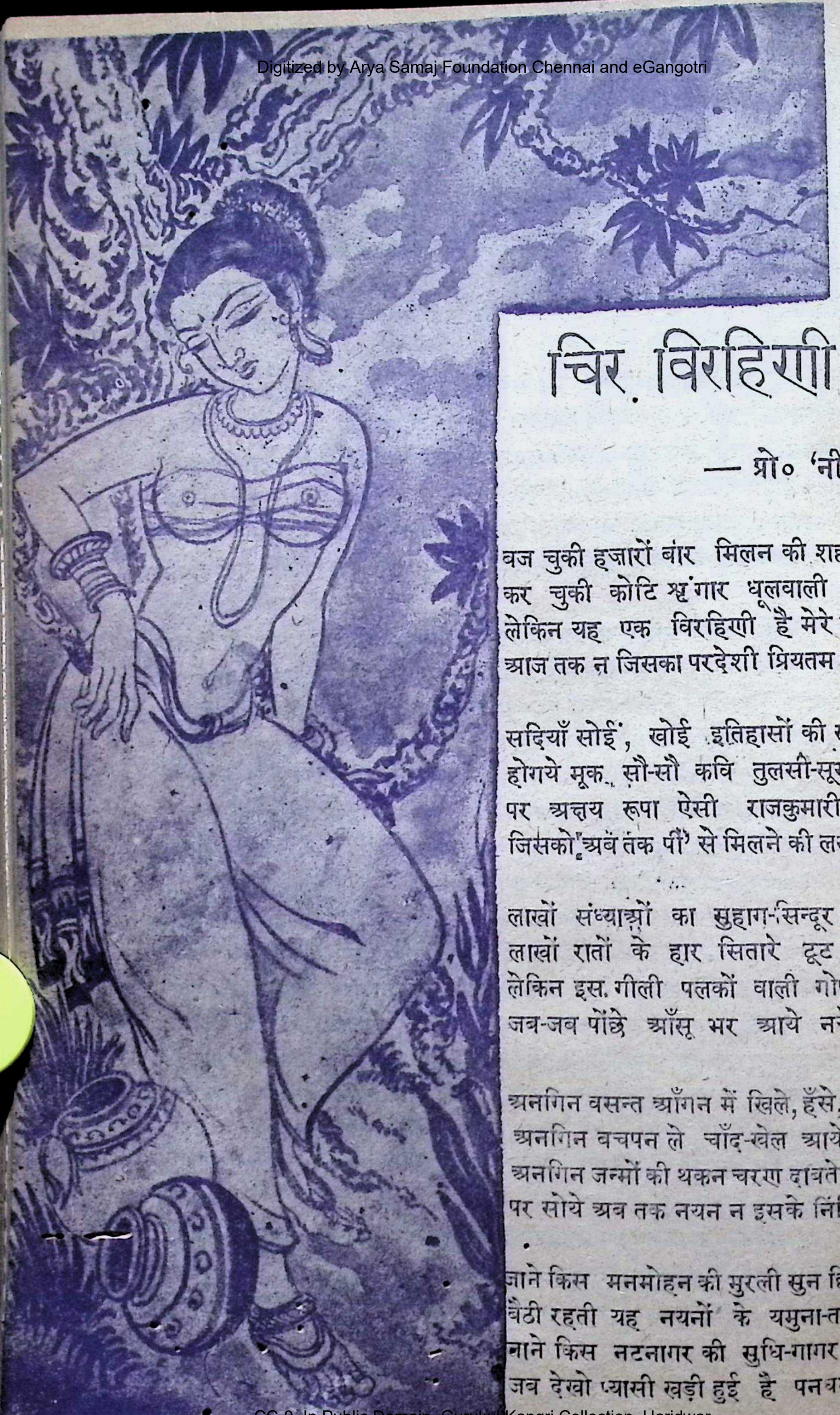

चिर विरहिणी

— प्रो० 'नीरज'

बज चुकी हज़ारों बांर मिलन की शहनाई,
कर चुकी कोटि श्रृंगार धूलवाली काया,
लेकिन यह एक विरहिणी है मेरे घर में
आज तक न जिसका परदेशी प्रियतम आया।

सदियाँ सोईं, खोई इतिहासों की स्याही,
होगये मूक सौ-सौ कवि तुलसी-सूरदास,
पर अक्षय रूपा ऐसी राजकुमारी यह
जिसको 'अब तक पी' से मिलने की लगी आस।

लाखों संध्याओं का सुहाग-सिन्दूर झरा,
लाखों रातों के हार सितारे टूट गये,
लेकिन इस गीली पलकों वाली गोपी के
जब-जब पोंछे आँसू भर आये नये-नये।

अनगिन बसन्त आँगन में खिले, हँसे, रोये,
अनगिन बचपन ले चाँद-खेल आये द्वारे,
अनगिन जन्मों की थकन चरण दाबते थकी,
पर सोये अब तक नयन न इसके निंदियारे!

जाने किस मनमोहन की मुरली सुन छिन-छिन,
बैठी रहती यह नयनों के यमुना-तट पर,
जाने किस नटनागर की सुधि-गागर थामे
जब देखो प्यासी खड़ी हुई है पनघट पर!

होते ही साँझ सिसकने लगती साँसों में,
शशि की खिड़की पर बैठी रात बिताती है,
भोर के साथ ही गीले फूलों में छिपकर
हर एक हवा से पाती कहीं पठाती है!

जो बोल बोल देती बन जाता महाकाव्य,
सुन लेती जो ध्वनियाँ हो जाती हैं श्रुतियाँ,
जो आँसू पोंछ छिटक देती है त्रिभुवन में
वे नभ में तारे, भू पर कहलाते कलियाँ!

यह चिर वियोगिनी कौन? कहाँ से आई है?
किस छली श्याम की यह मतवाली मीरा है?
यह मिट्टी की माया? या छलना श्वासों की?
या मेरी ही आत्मा यह मिलन-अधीरा है?

रूसी कहानी—

— श्री ए० साफ्रनोव

सफेद कोमल ऊनी दस्तानों की बुनाई की प्रगति बराबर धीमी प्रतीत हो रही है। ठहर-ठहर कर कुसुमांजना दीवार पर लगी घड़ी की तरफ चिन्ता से देख लेती है। तीन बज चुके हैं और तड़के ही छह बजे नित्या को अपनी लम्बी यात्रा पर चले जाना है।

तेल का छोटा लैम्प प्रकाशपुंज उँडेल रहा है, सतर्क सूखी अंगुलियों पर और चमकीली आबदार सलाइयों पर, जो फन्दे पर फन्दा डालता झिलमिलाती हुई भीतर बाहर आ जा रही हैं। उसकी गोद में बल खाती, घूमती ऊन की गेंद, सफेद रेशम से रूँएदार किलोल करते बिल्ली के बच्चे जैसी लग रही है।

पीछे की तरफ कढ़े उसके बाल कनपटी पर चाँदी जैसे सफेद हो चुके हैं। उसके सुन्दर महराबी ओठ परस्पर जोर से मिले हुए हैं। जैसे-जैसे समय बीत रहा है वह घड़ी पर जल्दी-जल्दी दृष्टि डाल रही है और हर बार उसकी बड़ी-बड़ी सदय आँखों में चिन्ता की झलक दिखाई दे जाती है। घड़ी की सुइयाँ आज इतनी जल्दी चल रही हैं! इतनी अधीरता से! एक क्षण के लिए उसके मन में विचार आया, 'शायद आज घड़ी को फिर कुछ हो गया है', किन्तु नहीं, मुर्गे ने भी तो अभी तीसरी बार आँगन में बाँग दी है, और मुर्गा कभी असमय नहीं बोलता।

अब उसकी सतर्क अंगुलियाँ और भी शीघ्रता से चलने लगीं, और भी सतर्कता से। वह नित्या को बिना दस्तानों के नहीं जाने दे सकती। कँपकँपी पैदा करने वाली अक्टूबर की ठंडी हवा शोकाकुल-सी सन-सन कर रही है और खिड़की के नीचे वाले बेर के पेड़ को झकझोर रही है जिसकी एक कठोर नंगी टहनी खिड़की के शीशे पर

खट-खट कर देती है और कुसुमांजना को लगता है कि सामूहिक खेत की घुड़साल का सईस 'डैविड' दरवाजा खटखटा रहा है और यह खबर देने आया है कि नित्या के जाने की गाड़ी के घोड़े तयार हैं।

कमरे के एक अँधेरे कोने से उसके बेटे की मौन और नियमित साँस की ध्वनि आ रही है जिससे अधिक मधुर गान उसके कानों के लिए और जिससे अधिक मूल्यवान पदार्थ उसके लिए संसार में नहीं है। यह गहरी शीतल साँस थी जीवन की प्रतीक, जिसे उसने जन्म दिया है, पाला-पोसा है और न जाने कितनी आपदाओं से कितने, रोगों से सुरक्षित रखा है। कुसुमांजना ने गहन अन्तर्वेदना के साथ सोचा कि अब घड़ी की बड़ी सुई केवल तीन ही बार और घूमेगी और वह निर्मम अवश्यम्भावी दुःखद वेला आ ही जाएगी जब उसका बेटा चला जाएगा—वहाँ, जहाँ पहले अनेक जा चुके हैं और लौटे नहीं हैं।

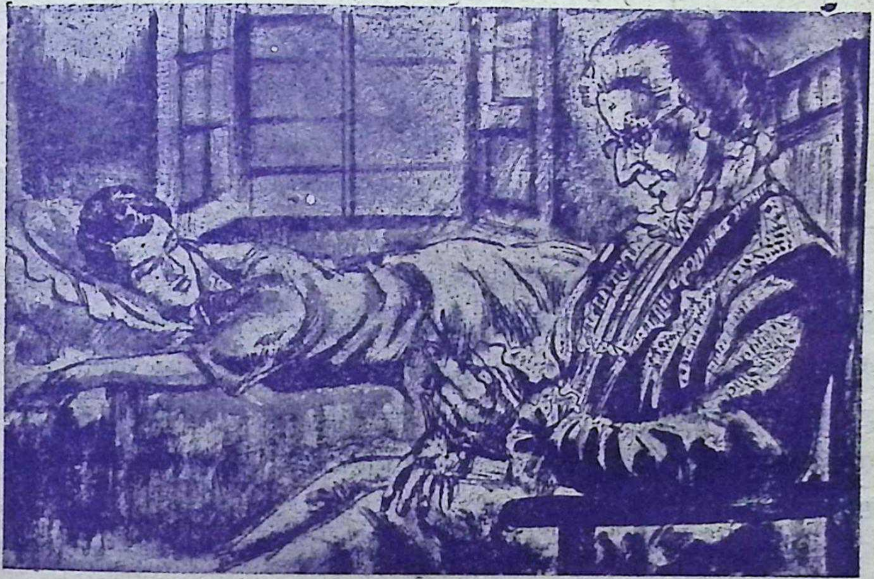

चमकती हुई बुनने की सलाइयाँ फन्दे पर फ़न्दा बनाती भीतर बाहर आ-जा रही हैं, द्रुत और द्रुततर। अब केवल अँगूठा बनना शेष है।

सब कुछ इतनी जल्दी, अनाशंकित और अकस्मात हो गया कि सारी घटना कुसुमांजना के मन में एक महान आपत्ति के रूप में आई, एक ऐसे कर्मफल के रूप में कि जिसकी भागी वह अपने को किसी भी कल्पना से नहीं मान सकती।

कल संध्या को कितना सुख था उसके हृदय में। नित्या मास्को से अचानक ही मिलने आ गया था—इतना प्रसन्नचित्त, आँखें भावावेश से चमकती हुई। एक

अवर्णनीय कोई बात थी उसमें, जिसने उसे और समय से अधिक रूपवान बना दिया था। और कुसुमांजना ने देखते ही जान लिया था कि उसके सामने अब एक छोटा लड़का नहीं, एक नवयुवक था, उसके बेटे में एक परिवर्तन आ गया था, महान और घटनापूर्ण।

उसने अपनी छाती से लगाते हुए सोचा था, 'शायद वह किसी से प्रेम करने लगा है' और उसके हाथ अपने बेटे के मुलायम घुँघराले कत्थई बालों पर फिरने लगे थे। उस जगह वह खड़ा था, लम्बा कद, कुछ गोल से कन्धे—ठीक जैसे कि उसके बाप के थे—और उसकी तरफ देख रहा था, और युवाओं जैसी भारी आवाज से बोला था, "देखो, माँ, मैं आगया······माँ, तुम कितनी प्यारी हो······"

वह इतना शर्मीला था कि अपने हृदय के उमड़ते हुए भावों को सादा और साधारण शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकता था और उसका गला माँ को जोर से चिपटाने में बिलकुल रुँध गया था। कुसुमांजना ने भी हुमक कर खुद उसे छाती से लगा लिया था और उसकी नाक में आई थी उसके बालों की सुगन्ध और उसकी साँस की महक जिसमें तम्बाकू का असर था। वह सिगरेट पीने लगा है यह जानकर उसे तनिक भी बुरा नहीं लगा था, यद्यपि साधारणतया वह तम्बाकू की तीव्र गन्ध को सहन नहीं कर सकती थी।

हाँ, नित्या अब जवान हो गया था, यद्यपि उसने अभी अठारह बसन्त भी पार नहीं किये थे। वह अब विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हो गया था और इतिहास, दर्शन तथा साहित्य के कॉलेज का विद्यार्थी था। कुसुमांजना किंचित भी नहीं समझ पाती थी कि वह वहाँ क्या सीखता था, तो भी वह उसके पत्रों पर पता लिखती थी······· 'अमुक-अमुक—दर्शन की फॅकल्टी का विद्यार्थी' तो उसे अपार गर्व का अनुभव होता था।

विशाल नगरों और पक्की सड़कों से बहुत दूर, जीवन भर सदा गाँव ही में रहने के कारण, कुसुमांजना के लिए इन शब्दों में रहस्य और गूढ़ता होते हुए भी एक उच्चता का भाव सम्मिलित था और जब भी वह इनका प्रयोग अथवा उच्चारण करती थी, उसके हृदय पर एक गहरा प्रभाव पड़ता था। नित्या भी समझता था कि उसकी माँ के लिए उसके जटिल संसार में प्रवेश कर सकना दुस्साध्य है। वह सदैव उससे सरल ढंग से बातचीत करने का प्रयास करता था, जैसे कि किसी बच्चे से।

"देखो, माँ, दर्शन भी विज्ञान ही का एक अंग विशेष है। इससे मनुष्य यह जान लेता है कि पृथ्वी पर उसके जीने का क्या ध्येय है·······"

"प्रिय नित्या, प्रत्येक मनुष्य अपने सुख के लिए जीता है, जैसे कि मैं तुम्हारे कारण जी रही हूँ·······"

"हाँ, माँ, यह भी एक दार्शनिक विचारधारा ही है, किन्तु·······मैं कैसे समझाऊँ, माँ·······यह सही विचारधारा नहीं है। समझो, कि यदि मनुष्य अपने ही सुख के लिए जिए, तो सब के सुख की प्राप्ति के लिए कौन प्रयत्न करेगा? और वास्तव में मनुष्य को सब के लिए जीना चाहिए, अपने देश के लिए, मनुष्य जाति के लिए········"

किन्तु यही; उसके लिए बहुत गूढ़ था। तो भी इससे एक परिणाम तो अवश्य ही निकलता था कि कुसुमांजना की भी—एक अर्धशिक्षित बूढ़ी स्त्री की अपनी स्वयं की एक दार्शनिक विचारधारा थी और आत्मसरलता के कारण यह बात जाने बिना ही अब तक वह रहती आ रही थी, और साथ ही यह बात भी थी कि जिस प्रकार उसे जीना चाहिए था वैसे वह जी नहीं रही थी।

कुसुआंजनता ने खिड़की के बाहर दृष्टि डाली। उसके बाहर उसका अपना अनुभवगम्य और प्यारा संसार फैला हुआ था जिसकी प्रत्येक वस्तु थी समझ में आने वाली और परिचित।

खिड़की के नीचे बेर का पेड़ बैंजनी बेरों के भारी गुच्छों से लदा अनोखा दृश्य उपस्थित कर रहा था। एक सफेद मुर्गा छत की मुँडेर पर एक टाँग से खड़ा था। कमरे की छत हरी काई के मखमली फर्श से ढकी हुई थी। कुए पर लटकता हुआ लकड़ी का डोल हवा के झोकों से इधर उधर झूल रहा था।

उसका सारा जीवन इसी नीची छत के तले व्यतीत हुआ था। उसके सामने टाँड़ पर चीनी का प्याला रखा हुआ था जिससे नित्या ने सदा दूध पिया था, तब से जब वह एक नन्हा बच्चा था········। कुसुमांजना ने अपने बेटे को दूध देने के लिए उसे उठाया था और अपनी पीड़ा को—जिससे उसका हृदय बैठा सा जा रहा था—दबा कर कहा था, "बेटा, तू जो समझता है वह बिल्कुल ठीक है·······और फिर, मैंने कहीं शिक्षा भी तो नहीं पाई है। तू सदैव मुझ से बहुत ज्यादा जानता और समझता है·······"

नित्या उसके पास तक गया था और अपनी भुजा से उसके कन्धों को उसने कस लिया था, जैसा कि वह तब करता था जब उसे अपने किसी कृत्य की क्षमा चाहना होती थी।

"मैं कहता हूँ मेरी अच्छी मां········" उसने गहरी साँस भर कर अस्पष्ट उच्चारण से टूटे से शब्दों में कहा था, "मैं कहता हूँ·······हाँ माँ·······मेरा सामान बाँध दो·······क्यों न माँ?·······मुझे तड़के ही चले जाना है······"

"जाना है?······तड़के?·······कहाँ?········"

नित्या ने घूम कर, दूर डूबते हुए सूरज की ओर हाथ बढ़ा कर संकेत करते हुए उत्तर दिया था, "वहाँ, माँ, वहाँ।"

कुसुमांजना की अंगुलियाँ एकाएक शिथिल और निःशक्त हो गयी थीं और प्याला उसके हाथ से खन्न से जमीन पर गिर कर सैकड़ों टुकड़ों में बिखर गया था। कुसुमांजना ने उसके गिरने की आवाज को सुना तक नहीं था—उस आवाज को जो दो मिनट पहले उसके हृदय को निराशा से भर देने को काफी होती—और खोई सी उसकी ओर ताकती हुई स्तम्भित सी रह गयी थी और उसके रोम-रोम को ऐसा भासित हुआ कि उन दोनों के बीच कोई अत्यन्त ठण्डी वस्तु आ गयी है, ठीक उसी प्रकार कि जैसे बरफ जम जाने से जब किसी नदी का प्रवाह रुक जाता है और यद्यपि हिम की पतली चादर के पार जलकमल की हरी-हरी प्यालियाँ उसकी गहराइयों में देखी जा सकती हैं जिससे वहाँ जीवन होने का अनुमान होता है, तो भी जैसे ही उनकी ओर हाथ बढ़ाया जाता है, बर्फ़ की रुकावट आड़े आ जाती है। सब कुछ जमा हुआ होता है……जीवन रहित।

“नित्या,……वत्स,……क्या तेरी आयु भी युद्ध सेवा के लिए आमन्त्रित हो चुकी है?”

“नही, मैं स्वयं अपनी इच्छा से जा रहा हूँ। मैंने ही अपना नाम दे दिया है……माँ, माँ……ओह, मैं जानता हूँ कि यह सब सुन कर तुम्हें कितनी वेदना हो रही है……कितनी यन्त्रणा,……किन्तु माँ, प्रयत्न करो और मुझे समझो……मैं ऐसे नहीं रह सकता……सीधी बात है कि ऐसे अवसर पर मुझे अपना समय दर्शन-शिक्षा में नष्ट करने का कोई अधिकार नहीं है……”

लेकिन, नहीं, नहीं……नहीं……तू इस तरह नहीं जा सकता……नहीं जा सकता……नित्या, मेरे लाल……अपनी बूढ़ी माँ को छोड़ कर……”धीमे-धीमे कहे गये ये शब्द उसके ओठों से शीघ्र और अधिक शीघ्र तथा अधिकाधिक तीव्र होकर निकल रहे थे, मानो नित्या का रहना या चले जाना इन्हीं पर निर्भर हो।

“बेटा……लाल!……किन्तु तू वास्तव में नहीं जा सकता……माना कि तू बड़ा हो गया है, मेरे रत्न! किन्तु मैंने तो तुझे बड़ा बनते मुश्किल से ही देखा है……अभी कल ही की सी तो बात है कि तू बिल्कुल बच्चा था……पिछले साल ही तो मैंने तेरी उस जाकेट को फिर से सींकर ठीक किया था……और अब जरा आस्तीनों को तो देख……तेरी बाँहें किस प्रकार उनसे बाहर निकल आई हैं……”

और ठीक तब, जब स्कूल की धारीदार जाकेट का मानसिक चित्र उसके सामने आया था, उसकी आँखों में आँसू डबडबा आए थे और छलक कर उसके कपोलों पर बह निकले थे। उसका समस्त शरीर, जब वह हताश हो अपने बेटे से लिपट गयी थी, हिस्टीरिया के दौरे जैसा कंपित हो उठा था।

"मैं तुझे जाने नहीं दूँगी ……नहीं दूँगी……बता तू किस विचार में है ? नित्या, बेटा, बेटा ……इस बुढ़ापे में मेरे ऊपर दया कर……अपनी असहाय माँ पर कुछ तो तरस खा……मैंने तेरे लिए कभी कुछ उठा नहीं रखा……हर वस्तु का, हर सुख का बलिदान किया……अपने स्वास्थ्य का……रोटी के अन्तिम टुकड़े तक का…… नित्या, ओ नित्या……"

वह उसी की ओर आशा और याचना भरी दृष्टि से देखती रही थी, उसके हाथों को चुम्बनों से भर दिया था। और नित्या वहीं खड़ा रहा था, उसका सिर शोक से झुका हुआ था और उसकी आँखों में थी एक विवशता-सूचक शून्य-दृष्टि, उसकी माँ के समान उसके पतले ओठ पीड़ा और हृद्वेदना से कंपित थे।

"मैं ऐसा नहीं कर सकता माँ, कैसे ऐसा कर सकता हूँ ? मेरी भोली माँ, मैं वचनबद्ध हूँ……मैंने टैंक-विरोधी सेना में भरती होने के लिए स्वयं हस्ताक्षर किये हैं……मैं शत्रु के टैंकों से लड़ने जाऊँगा……काँच और बारूद भरे हथगोलों से उन को नष्ट करूँगा……उनमें आग लगा दूँगा……किन्तु तुम्हें मेरे लिए डरने की, मेरे लिए चिन्तित होने की किंचित भी आवश्यकता नहीं है माँ !"

नित्या ने उसे सान्त्वना देने के लिए अपनी शक्ति भर प्रयत्न किये थे, किन्तु उसके हाथ स्वयं इतने भारी हो गये थे जैसे कि उन में सीसा भरा हो। और अनियमित सी विक्षिप्त गति से उन्हीं हाथों को माँ के बालों पर फेरा था और जोर से उसके सीने से जा लगा था, मानो अपनी संतप्त आत्मा के लिए उसके हृदय में सहारा और प्रोत्साहन ढूँढ़ रहा हो। और अब चूँकि यह भी आवश्यक था कि माँ को अपने उस संसार की गम्भीर प्रकृति समझाई जाय जो उसके छोटे संसार की निर्धारित सीमाओं से परे था, इसलिए नित्या ने अपने माथे पर पड़े कत्थई केश समूह को झटके के साथ पीछे फेंक कर—जैसा कि जन समूह के सामने भाषण देते समय करने की उसकी आदत थी—और अनेक प्रकार के हाथों के संकेत करते हुए जोर से और भावावेश से बोलना प्रारम्भ कर दिया था।

"इतिहास हमें कभी क्षमा नहीं करेगा, यदि हम विजय प्राप्त नहीं करेंगे…… मेरी प्रेममयी हृदयपारखी और कर्त्तव्यनिष्ठ माँ अपने बेटे को उस बड़ी आदरणीय माता की सेवा से, जो उसकी भी माता है, उसके संकटकाल में उसके काम आने से किस प्रकार विमुख कर सकती है……। माँ, माँ,……मुझे आशीर्वाद दो कि मैं अपनी इन छोटी किन्तु बलशाली भुजाओं से उस माता के काम आ सकूँ जिसने हमें जन्म दिया है, जिसकी गोद में हम पले हैं, बड़े हुए हैं और फले फूले हैं……हमें ऐसे कठिन समय में बड़े से बड़ा त्याग और प्यारे से प्यारा बलिदान करने के लिए तत्पर रहना

चाहिए·······अपने देश के भविष्य के लिए······मनुष्य जाति के भविष्य और कल्याण के लिए·······"

उसने अपने आँसू पोंछ लिये थे और उसके बाहुपाश में दौड़ गयी थी अपना मुख उसके वक्ष पर दबाती हुई, कंपितगात उसके उष्ण शरीर से चिपकती हुई, उसे अपनी ओर खींचती हुई मानो एक ही इच्छा ने उसके हृदय को पूर्ण रूप से भर लिया हो कि वह अपने बेटे को छिपा ले, कहीं भी, अपने अस्तित्व के भीतर, अपने हृदय के नीचे······जिससे उसे उसका त्याग न करना पड़े जो उपादान था उसके समस्त जीवन का, उसकी सारी आशाओं और सुख का।

······चमकती हुई बुनने की सलाइयाँ फन्दे पर फन्दा बनाती भीतर बाहर आ-जा रही हैं, द्रुत और द्रुततर। अब केवल अँगूठा बुनना शेष है·······और फिर उसे दस्तानों पर कोई निशानी भी तो बनानी पड़ेगी, क्योंकि बहुत से दस्ताने एक जैसे होते हैं और सम्भव है कि वह इन्हें कहीं रख कर भूल जाय। फिर इन जैसे दस्ताने उसे और नहीं मिल सकते······इतने गरम, उसकी अपनी ही माँ के हाथ के बुने हुए। निशानी किसी चमकीले ऊन की होनी चाहिए जो इतनी बड़ी हो कि आँख झट पहचान ले। हाँ, हाँ,······ठीक तो है, दस्तानों की पीठ पर लाल ऊन से खजूर के पेड़ काढ़ दिए जाएँ।

कुसुमांजना ने दस्तानों पर बने खजूर के पेड़ों को देखा, उन्हें अपने ओठों पर दबाया, मुँह से धीरे-धीरे प्यार भरे शब्द फुसफुसाते हुए, ऐसे कि जिन्हें केवल एक माँ का हृदय ही सृजन कर सकता है अपने प्रेम के असीम भण्डार से।

(आगामी अंक में समाप्य)

अनुवादक—श्री आनन्दस्वरूप भटनागर

गीत

— श्री विद्यावती मिश्र —

तुमने पूजा स्वीकार नहीं की तो भी क्या ?

स्वीकृति का तब प्रश्न कि जब फल की इच्छा
होती, मन में तीव्र प्राप्ति की अभिलाषा,
पर मुझको विश्वास प्राण का—यह चातक
रहा सदा से और रहेगा चिर प्यासा,

एक याचना की थी तुम्हें परखने-भर को,
तुमने वह अंगीकार नहीं की तो भी क्या ?
तुमने पूजा स्वीकार नहीं की तो भी क्या ?

मेरे श्रद्धा-सुमन न मुरझाने वाले,
आत्मसमर्पण-अमृत उन्हें करता सिंचित,
अर्चन के उपकरण दूसरे यहाँ नहीं,
प्रतिमा है, मैं हूँ, चरणों में सीस नमित।

मैं रही बुलाती तुम्हें अकेलापन न खले,
सार्थक वह करुण पुकार नहीं की तो भी क्या ?
तुमने पूजा स्वीकार नहीं की तो भी क्या ?

फतेहपुर में प्राप्त हस्तालिखित ग्रन्थ

— श्री जयगोपाल मिश्र फतेहपुरी

महापण्डित राहुल प्रयाग आये यह बात दस महीने पूर्व की है। उनके साथ उनके द्वारा विशिष्ट खोज के ताल-पत्र थे, जिनमें आदि सिद्ध 'शरहपा' का ग्यारहवीं शताब्दी की अनमेल लिपि में लिखित दूहाकोष था जिसका अमृत पत्रिका दफ़्तर में राहुल को चाय पार्टी देते समय फोटो लिया गया था और वह दूसरे दिन पत्रों में 'विशिष्ट खोजी राहुल' शीर्षक लेख में छपा भी था। उसके बाद मैं दो दिन उनके साथ बनारस तक रहा। वे पटना चले गये थे, मैं प्रयाग लौट आया था। प्रयाग से मैं उनके साथ रामबाग स्टेशन से छावनी तक के समय में अपने जनपद के अवधी लोकगीतों के बारे में बात करता रहा, जिनके लिए मुझे महापण्डित से देहरादून हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मंच पर प्रोत्साहन मिला था कि इन निधियों को खोजना आवश्यक है। ट्रेन से ही उनकी प्रेरणा से मैंने माधवगंज स्टेशन से एक पत्र अपने जनपद के कर्नल टाड और ग्रियर्सन—कैप्टेन शूरवीरसिंह—को लिखा कि वे इस दिशा में भी ध्यान दें कि फतेहपुर उस समय का उच्चतम सांस्कृतिक केन्द्र था जब नदियों के सहारे सभ्यता नावों पर डोलती थी। सचमुच मेरे मित्र ने अथक परिश्रम किया और उसके फलस्वरूप आज हिन्दी जगत में जिन ग्रन्थों के लिए काशी नागरी प्रचारिणी के खोज-पत्र, बाबू श्यामसुन्दरदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डा० रामकुमार वर्मा, रसाल प्रभृति हिन्दी के अवगाहक लिखते चले आए हों कि मृगावती कुतुबन शेख़ का, हिन्दी जगत का पहला प्रेमाख्यान था, भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की लाइब्रेरी में उसके कुछ अंश होने पाए जाते हैं, किन्तु बाद में उन्हें कोई उठा ले गया; मियाँ मंझन की मधु-मालती के लिए विद्वान लेखक 'रसाल' जी ने अपने हिन्दी साहित्य प्रकाश में सन १९३१ में लिखा है कि यह उच्चकोटि की प्रेमवार्त्ता है, किन्तु इसकी कोई भी प्रामाणिक प्रति हिन्दी में उपलब्ध नहीं, सुनने में आता है कि उसमें प्रकृति-वर्णन, रस-रंग के अतिरिक्त, ऋतु वर्णन बड़ा ही रोचक है; ऐसे ग्रन्थ हमारे ही घर, हमारे ही अभिन्नात्मन सहयोगी सहपाठी रावत ओमप्रकाशसिंह के बक्सों में मिल गये, जहाँ मैं सन् १९१४ में उनके नाना रावत हरप्रसादसिंह की लिखापढ़ी के पत्र न्यूयार्क और विलायत के देखकर बन्द करवा दिया करता था, यह कहकर कि हिन्दी के इन पुराने ग्रन्थों को समय से साधन जुटा कर देखेंगे।

इसी बीच कैप्टेन शूरवीरसिंह जी ने सूचना दी कि हस्वा में, जो मुगल बादशाहों

की राजधानी इलाहाबाद के पहले रह चुका है, १७ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में एक महान सन्त चन्ददास हो गये हैं। इनकी समाधि है वहाँ। उनके ग्रन्थ कैथी में हैं। रूपान्तरित करा रहा हूँ। बड़े ही उपयोगी हैं। बड़ी उत्कण्ठा व्यापी। कई बार 'पत्रदूत' के पन्नों मे कैप्टेन ने सन्त चन्द का साहित्य प्रकाशित किया, किन्तु हमारी आँखें तब खुलीं, जब हमने देखा कि उनके लिखे १० महाकाव्य हैं, जिनमें सवा लाख से ऊपर पदों की बानगी है, जहाँ सूर, तुलसी, मीरा तीनों के पदों की सुस्पष्ट छाप वाले गेय पद हैं। यथा:—

जनम जात सिरान तेरो।
अंजुली को नीर जैसे, होत अह-निशि हानि तेरो,
सांस छीजत पंथ आवन, घटत घट पटवान तेरो।
उड़त ऊपर शीश हूँ पर, काल प्रबल सचान तेरो,
धन जोर बोरत ज्ञान माया, बावरी बौरान तेरो.......
जनम जात सिरान तेरो.......

संत चंद ने कृष्ण और राम दोनों की एक साथ उपासना की। दोनों पर दो बड़े काव्य कृष्णकौमुदी और रामचरित्र लिखे। यह बड़ी अद्भुत बात है कि उन्होंने राधा तथा माता जानकी का साथ-साथ वर्णन किया है। व्याजस्तुति में वे बड़े ही सिद्धहस्त थे। यथा:—

गागरी निवार वार नागरी धारिए,
सुजान श्याम मान तैं—
न पंथ रार ठान तैं—
कुलीन-कान-आन तैं
दगान-बान टारिये।
रसी रसान घान सी
सुधा भरी कृपान सी
सो खंजनी प्रमान सी
निहारबो निहारिये।

कहीं-कहीं तो ऐसा लगता है, मानो चाचा कबीर की साखियाँ फीकी पड़ गयीं, यथा:—

जइहै जोवन, रूप, तन, सुत, धन, नारी, गेह।
'चंद' भजन बिनु बावरे, क्यों डहकावत देह॥
भरी घरी धनसों ढरी, अरी सवेर विचार।
'चंद' अबेर निवेर नहिं, बिना सो भजन मुरारि॥

मधुकर वारिज ही बसै, बसै न अमर-निवास।
'चंद' ताहि विधि हरि-चरन, बसत सदा उर दास॥
माला तेरे नाम की, मेरे मन की जाप।
कर माला के फेर सों, सरै न तेरो काज॥
निर्गुन रूप निरंजना, सर्गुन श्री भगवान।
निर्गुन-सर्गुन मध्य में, 'चंद' करो असनान॥

इस प्रकार जहाँ मीरा की पदावली मिलती है, उसमें भी दर्शन-शास्त्र उच्च रूप धारण कर उतरता है, यथा:—

मेरे तो मृदंग, बीन, ताल राग सोई
जेहि के सो मर्म कोट, वेद-राग बोई।
जांन ले जहान-ज्ञान, मान ले विधान-ध्यान,
एक ही समाधि-सिद्ध और है न कोई।
सांस को प्रमान देख, ब्रह्म को न रूप रेख,
'चंद' हैं अनेक, एक जान तीन लोई।
मेरे तो..

खोज यहाँ तक पहुँची थी कि कैप्टेन शूरवीरसिंहजी ने अपने अध्यवसाय एवं व्यक्ति-परक कुशलता से नगर फतेहपुर के विशिष्ट निवासियों को यह बताने की चेष्टा की कि इस कृति को मिश्र-बांधव—डा० शिवगोपाल तथा जयगोपाल मिश्र—भारत-व्यापी प्रचार दे सकने में समर्थ होंगे। हमने इन शब्दों को 'चन्द' की आन्तरिक पुकार और कैप्टेन का आशीर्वाद माना। फिर क्या था, प्रयाग के महानतम विद्वानों ने एक सप्ताह के अन्दर देख लिया कि सन्त चन्द की कृतियाँ सचमुच भूल से भक्त-माल में वर्णित करने को रह गयीं। सन्त* चन्द की जन्मभू हस्वा के लिए दस व्यक्तियों की अन्वेषण-समिति दिनांक २०-८-५५ को मेरे द्वारा ले जाई गयी, जिसमें डा० रामकुमार वर्मा तथा पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल एवं पहाड़ी प्रभृति विद्वान थे।

इसी के एक सप्ताह पूर्व डा० शिवगोपाल मिश्र ने एकड़ला जाकर रावत ओमप्रकाशसिंह के ग्रन्थों की सूची तयार की, जिसमें १५० ग्रन्थ मिले। कुछ वैद्यक तथा बहुत कुछ संस्कृत की पोथियों को उन्होंने अलग किया, जो डा० रघुवीर की भाँति कई टम सामग्री है। इतनी सामग्री केवल एक गाँव में, एक ही राजघराने में प्राप्त हो गयी।

यहीं एक पोथी "ज्ञान सागर" की मिली, जिसे सन्त हंसदास ने सम्वत् १७७४

---

* सन्त चन्द नाभादास जी के परवर्ती ज्ञात होते हैं। नाभादास जी को गोस्वामी तुलसीदास जी के समकालीन माना जाता है।

में लिखा था। उसने अपने बारे में लिखा कि वह हसन जुलाहा था, औरङ्गजेब पातशाह उस समय के बादशाह हैं। इन्हीं हंस तथा परमहंस दो सन्तों की वार्ता बाद में सन्त चन्द ने अपने "गीता-ज्ञान" में की है। इससे पता चलता है कि ये इनके गुरु या भक्ति-प्रेरक थे। सन्त हंस लिखते हैं:—

अल्ला जात अजात है,
न मैं हिन्दू, मैं न मुस्लिम
हसन, हंस एक बात है।
कब रैदास तोपची राखे
कब कबीर धन जोरा,
कब पीपा को मार गिरायो
संतन केर ढिंढोरा।

काम शोध का चालू है। आयेदिन हमें पुस्तकों के पाने की सूचना हर्षातिरेक से पूरित करती है। हमने देखा कि केवल फतेहपुर जनपद में एक अच्छे बड़े संग्रहालय की आवश्यकता पड़ गयी। हमने अपने जनपद के म्युनिसिपल बोर्ड के चेयरमैन बाबू केशवसरन को लिखा कि वे "टाउन हाल" में यावत सामग्री रखवाने की चेष्टा करें। उन्होंने हमारी बात पर ध्यान दिया है। कैप्टेन शूरवीर की खोज चालू है।

अब हिन्दी जगत में यह कहते बनता है कि जैसे मराठी का इतिहास जब ग्रांड फ्रूंक ने अपने मन से चौपट-चरन लिखकर प्रामाणिक वस्तुओं को जला दिया, तब महादेव गोविन्द रानडे रो पड़े कि अरे, यह तो हमारी संस्कृति को कलुषित एवं विकृत रूप में रख गया। किन्तु उसी समय एक प्रायमरी स्कूल का अध्यापक श्री विश्वनाथ रानडे ने संकल्प किया कि वह अभी पूंजी को ढूंढ़ निकालेगा। फलतः उसकी लकुट में सत्तू पेट भरने को बँधा था, हाथ में पथदर्शिका एवं रात्रिबोधिनी लालटैन थी। लोग कहते, पागल है। किन्तु प्रत्येक गाँव के हस्तलिखित साहित्य का ढेर वह एक मित्र के किराये के मकान में लगाता गया। देशवालों ने उसकी कीमत न जानी। आखिर अमेरिकन आए। उन्होंने चार लाख रुपया अनुदान दिया और अब उसी संकलित साहित्य के बल पर पूना में रिसर्च समिति कायम हो गयी, जहाँ से २२ बड़े ग्रन्थों के आकार में मराठी साहित्य छपा। ठीक ऐसी ही आवश्यकता हिन्दी साहित्य के शोध एवं अवगाहन के लिए अपेक्षित है।

अब हमने अपने जनपद की सरकार का ध्यान आकृष्ट किया है कि वह हमारी संस्था से तय करे कि इस साहित्य को किस प्रकार जन-हिताय प्रयुक्त किया जाए। इतना ही नहीं "भारती" के पाठकों तथा मध्यदेश की हिन्दी संस्थाओं को मेरा निमंत्रण है कि आवें और इन सामग्रियों का अवलोकन कर हमें मार्गदर्शन दें कि इस अक्षय भण्डार का क्या होना चाहिए।

गीत

— श्री सुन्दर लोहिया —

जब पुष्प नये खिलते वन में,
कुछ भाव नये उठते मन में।

मधुवात नहीं, सुधियों का यह
कुछ ऐसा झोंका आता है।
भूलना चाहता मैं जिसको
स्मृति में वह आन समाता है।

मैं अपने को खो देता हूँ,
जगती का मुझको ध्यान नहीं,
जब जीवन के सूने पथ में
ध्यान तुम्हारा आ जाता है।

बेसुध हो जाता हूँ उस क्षण
मैं उन नयनों को याद किये
जिनसे स्रोत प्रणय के बहकर
झरझर आते थे जीवन में।

जब पुष्प नये खिलते वन में,
कुछ भाव नये उठते मन में।

जब प्रात-पवन के झटकोले
नन्ही कलियाँ सुप्त जगाते,
जब कुसुमों से लिपट-लिपट कर
मधुपी मधुरस मधुर चुराते,

मैं अपने को खो देता हूँ
तब इन कलियों के संपुट में,
जब प्रात पवन की लहरों पर
नाव तुम्हारी स्मृति की तिरती,

बेसुध हो जाता हूँ उस क्षण
मैं, उन अधरों को याद किये,
जो अनजाने ही हिल उठते
गीत प्रणय की मधु कंपन से।

जब पुष्प नये खिलते वन में,
कुछ भाव नये उठते मन में।

वैज्ञानिक कहानी—

अभियुक्त पर अभियान

—श्री ओमप्रकाश

अशोक अपने कमरे में बैठा खिड़की में से वृक्षों की हरित आभा का आनन्द ले रहा था कि उसकी मेज पर लगी घंटी बज उठी। अशोक को विश्राम के इस समय किसी से मिलना थोड़ा अखरा, पर उसका व्यवसाय ही ऐसा था, इसलिए मन मारकर मेज पर लगे एक बटन को दबा दिया। कमरे के एक टेलीविजन पट पर द्वार पर खड़े व्यक्ति का प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखाई दिया। उस छाया को देखकर अशोक का मन द्रवित हो उठा। चालीस वर्ष की एक प्रौढ़ स्त्री अत्यधिक घबरायी हुई द्वार पर खड़ी घंटी को बार-बार बजा रही थी। उसने अपनी मेज के नीचे लगे एक और बटन को दबा दिया। उसे दबाते ही अशोक के कमरे का द्वार स्वतः ही खुल गया और प्रौढ़ा को उसी समय सुनाई दिया—"श्रीमती जी, आप अन्दर आ सकती है।"

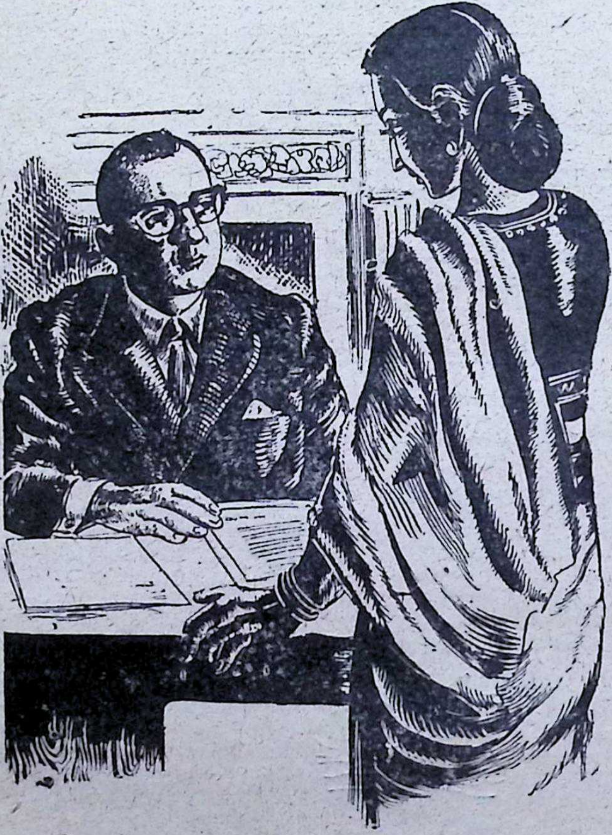

थोड़ा साहस कर उसने कमरे में प्रवेश किया।

द्वार के स्वतः खुलते ही और इस प्रकार का सम्बोधन सुनते ही प्रौढ़ा और घबरा गयी। पर उसकी दृष्टि में गुप्तचर अशोक का महत्त्व बढ़ गया। थोड़ा साहस कर उसने

कमरे में प्रवेश किया। अशोक ने उठकर उसका अभिनन्दन किया और बैठने की प्रार्थना की। प्रौढ़ा कुछ हिचकती हुई-सी बैठ गयी।

"कहिए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?"

अशोक की मृदु वाणी सुनकर प्रौढ़ा अत्यधिक प्रभावित हुई। वह रुआँसी-सी बोली—"अब तो आपही मेरी रक्षा कर सकते हैं। मेरा कुछ दिन में ही सर्वस्व लुट जायगा।"

"इतना घबराइए नहीं। थोड़ा स्वस्थ होकर आप अपनी बात कहें। जो कुछ भी मैं आपकी सहायता कर सकता हूँ अवश्य करूँगा।"

प्रौढ़ा थोड़ा स्थिर होकर बोली—"मैं इस नगर के सब से बड़े लोहे के व्यापारी की पत्नी हूँ। मेरे पति······" आगे कहते वह थोड़ा हिचकी।

अशोक प्रौढ़ा के मन की बात को भाँप गया—"विश्वास रखिए, जो कुछ आप यहाँ कहेंगी, उसका कोई अंश भी कभी प्रकट नहीं होगा। यदि ऐसा न हो, तो फिर लोग मुझपर विश्वास कैसे करें और मेरा काम तो लगभग ठप्प ही हो जाय।"

अशोक का आश्वासन पाकर वह कुछ प्रफुल्ल मन से बोली—"मेरे पति यद्यपि प्रौढ़ हो चुके हैं, पर उनको एक कामिनी ने अपने मायाजाल में फँसा लिया है। वे धीरे-धीरे अपनी समस्त सम्पत्ति उसी पर लुटाते जा रहे हैं। वे इतने मदहोश हो गये हैं कि उनको यह भी ज्ञात नहीं कि उनके कारोबार में लगा हुआ दूसरा साझीदार उनकी असावधानी के कारण अत्यधिक माल कारखाने से गुप्त ढंग से निकाल चुका है। भला हो हमारे मुनीम जी का जो यह सारा कच्चा चिट्ठा मुझे बताते रहते हैं।"

थोड़ा रुक कर उसने कहना आरम्भ किया "यद्यपि इतनी अधिक आयु में विलासोन्मुख होना बुरा है, पर मुझे व्यक्तिगत इसमें भी कोई आपत्ति नहीं थी। पर यदि यह सब कुछ इसी प्रकार चलता रहा तो उनके दो किशोर पुत्र और तीन दुधमुँही पुत्रियों का भविष्य क्या होगा, इसी की चिन्ता रातदिन मुझे खाये जाती है। अनेक दिनों से आपके पास आने का विचार था, पर बार-बार घर की बदनामी के भय से रुक जाती थी।"

"इस कार्य में मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?" भेदभरी दृष्टि से अशोक ने कहा।

"आप यदि चाहें तो मेरा और मेरे बच्चों का भविष्य उज्ज्वल बना सकते हैं। सेठ जी को यदि आप किसी प्रकार यह विश्वास दिला सकें कि जिस कामिनी के चक्कर में वे पड़े हैं, वह चरित्रहीन है और जिस साझीदार को वे सत्य का अवतार मानते हैं, वह पूरा बेईमान है, तो उनकी आँखें खुल जाएंगी और जहाँ तक मैंने सुना है, आप अपने आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों की सहायता से यह सबकुछ कर सकते हैं। अपने

पारिश्रमिक की आप चिन्ता न कीजिए। जो कुछ भी आप चाहेंगे, वह मैं देने को तैयार हूँ" कहते हुए प्रौढ़ा ने विनय पूर्वक हाथ जोड़ दिये।

अशोक लज्जित होकर बोला—"बस, बहन जी, यह आप क्या कर रही हैं। मैं आपके इस कार्य के लिए पूरा प्रयत्न करूँगा और मैं आशा करता हूँ कि दो महीने के अन्दर-अन्दर सेठ जी ठीक हो जाएँगे। उन्हें वास्तविक तथ्यों से पूरी तरह परिचित कराना मेरा उत्तरदायित्व है। पर उस विषय में मैं आपसे कुछ बातें पूछना चाहता हूँ।"

"अवश्य।"

"कारखाने में सेठ जी का कार्यालय किस प्रकार का बना हुआ है?"

"एक बार देखने गयी थी। बहुत ही भव्य है। पर अब मुनीम जी से ज्ञात हुआ है कि उन्होंने अपने कार्यालय को माइक्रोफोन-प्रूफ बनवा लिया है। इसमें हजारों रुपये व्यय किये हैं। कहते हैं कि अब कोई व्यक्ति कार्यालय में अन्दर प्रवेश किये बिना वहाँ का कोई भेद प्राप्त नहीं कर सकता। और कार्यालय में बिना उनकी इच्छा के कोई प्रवेश नहीं कर सकता। सब कुछ विद्युत-नियंत्रित है। किवाड़ों के स्थान पर स्पात का ढाँचा खड़ा है जो रात्रि के समय अन्दर से बन्द रहता है। मैंने एक दिन उनसे इसका कारण पूछा, तो उन्होंने कह दिया कि आजकल व्यापारी एक दूसरे का भेद लेकर अपना कारोबार बढ़ाना और दूसरे का घटाना चाहते हैं। इसलिए मुझे यह रक्षात्मक कार्यवाही करनी पड़ी है। पर मुझे तो उनकी इस बात पर विश्वास होता नहीं है।"

"अच्छा, सेठ जी अपने कार्यालय से कब लौटते हैं?"

"बस यही मत पूछिए", एक लम्बी साँस भर कर प्रौढ़ा बोली "पहले तो वे सदा ही साँझ हुए घर आ जाते थे। पर आजकल पिछले छह महीने से, रात गये १०-११ बजे घर में आते हैं। जब कभी देर से आने का कारण पूछती हूँ, तो बड़ी लापरवाही से कह देते हैं कि आजकल बड़ा काम रहता है। मुझे तो लगता है, वे उसी चुड़ैल के साथ रात का यह समय व्यतीत करते हैं।"

अशोक प्रौढ़ा की बातों को सुनकर कुछ समय के लिए चुप हो गया। फिर जैसे कुछ सोचता हुआ बोला—"सेठ जी के साझीदार के विषय में भी क्या आप कुछ बता सकती हैं?"

"वह सब आपको मुनीम जी से ज्ञात हो सकता है। कभी-कभी मुझे लगता है कि कहीं मेरा भ्रम ही तो नहीं है। मेरे पास कोई किसी प्रकार का प्रमाण उनके उस कामिनी के साथ इस अनाचारिक सम्बन्ध का नहीं है। न मैं यह पूर्ण विश्वास के साथ कह ही सकती हूँ कि वास्तव में इस प्रकार का कोई अनुचित सम्बन्ध सेठ जी किसी से रखते हैं। पर उनका खोया-खोया-सा रहना, सभी कार्यों में अनमनापन दिखाना और

अपने कारोबार से पूरी तरह उदासीन रहना, यह सब कुछ इसी प्रकार के सम्बन्ध की ओर संकेत करता है, ऐसा मेरा अनुमान है।"

"अच्छा, कल मैं किसी समय आपकी सेवा में उपस्थित होऊँगा। इस बीच में इस मामले के विषय में मैं गहराई के साथ विचार करना चाहता हूँ।"

प्रौढ़ा ने उठते हुए कहा, "ठीक है, कल मैं आपकी प्रतीक्षा करूँगी। पर मेरे और मेरे बच्चों पर दया कीजिएगा। मेरा घर नगर के बाहर उपनगर में स्थित है और मुझे अनीता कहते हैं।"

अशोक ने महिला की इस सूचना के लिए आभार प्रदर्शित किया। अभिवादन करके प्रौढ़ महिला कमरे से बाहर निकल आई। और अशोक उसको छोड़कर पुनः कमरे में आकर ध्यानमग्न हो गया।

कुछ समय पश्चात पुनः घंटी बज उठी। अशोक ने बटन दबाकर टेलीविजन पट पर देखा, एक बड़ा-सा लिफाफा द्वार की चौखट पर पड़ा है और काले लबादे से अपने को ढके एक व्यक्ति मुड़कर तेजी से भाग रहा है। अशोक तुरन्त उठा, बटन दबाकर द्वार खोला। पर उस समय तक वह व्यक्ति अन्धकार में लुप्त हो गया था। अशोक नीचे पड़ा लिफाफा उठा कर कमरे में आया। लिफाफा खोलकर पढ़ा, लिखा था, "सावधान—सेठ जी के मामले में हाथ डालना जीवन से खेलना है। समझदार हो तो अपने को दूर रखो।"

अशोक इस पत्र को पढ़कर केवल मुस्करा दिया। न जाने इस प्रकार की कितनी धमकियाँ उसको नित्य ही मिलती रहती हैं। पर एक बात का उसे निश्चय हो गया कि सेठ जी के मामले के पीछे अवश्य ही किसी संगठित दल का हाथ ज्ञात होता है। उसने सोचा, चलो एक समस्या तो हल हुई। उस रात्रि को अशोक के कमरे की बत्ती बहुत देर तक जलती रही। न जाने क्या-क्या योजना बनाकर वह सोने के लिए मेज पर से उठा।

दूसरे दिन वह दोपहर पश्चात अनीता की कोठी पर जा पहुँचा। कोठी नगर से बाहर थी। उसकी भव्यता देखते ही बनती थी। घंटी बजाई, तो एक नौकर द्वार पर उपस्थित हुआ, जो उसे ड्राइंगरूम में ले गया। वहाँ जाकर वह बैठ गया। कुछ समय पश्चात अनीता जी आईं। अभिवादन के पश्चात अशोक ने अनीता से कहा, 'मैं आपके पतिदेव का टेलीफोन देखना चाहता हूँ।"

"अवश्य देखिए। मेरे साथ अन्दर आइए।"

इतना कहकर वह अशोक को अन्दर एक कमरे में ले गयी। कमरा विलास की सामग्रियों से पूर्ण रूप से सुसज्जित था। पर अशोक का ध्यान सीधा टेलीफोन पर गया। उसने टेलीफोन का निरीक्षण किया। वह चालू दशा में था। उसने अपनी जेब

से दियासलाई के बक्स जितना बड़ा एक डब्बा निकाला और उसको टेलीफोन के नीचे लगा दिया। डब्बे में अनीता को ड्राई बैटरी का एक छोटा-सा सेल भी दिखाई दिया। अनीता चकित होकर बोली "यह क्या है ?"

"बैटरी से चलने वाला रेडियो-प्रेषित्र है। इस कमरे में से आगे जो भी बातचीत होगी, वह सब यह रेडियो-प्रेषित्र मेरे कमरे में पहुँचाता रहेगा। वहाँ पर मैंने एक टेपरिकार्डर लगा रखा है, उस पर यहाँ के सब सन्देश अंकित होते रहेंगे।"

इसके पश्चात अशोक ने अपनी जेब से एक और छोटा यन्त्र निकाला। इसमें ३६ नियोन-गैसधारी सूक्ष्म बल्ब लगे हुए थे। प्रत्येक बल्ब के सिरे से दो तार निकले हुए थे और ये सभी तार एक डिब्बे में चले गये थे। इस डिब्बे के दूसरी ओर एक प्लगधारी तार लगा हुआ था। इसी प्लग को टेलीफोन के संग्राहक पर लगाया। ३६ बल्बों में से एक बल्ब जल उठा। इस पर १५ नम्बर अंकित था।

इतना काम करने के पश्चात अशोक उठा और अनीता से बोला "मुझे अभी बहुत काम है। यदि आप आज्ञा दें तो मैं आपके बाथरूम में जाकर अपना वेश बदल आऊँ।"

अनीता को कौतूहल हुआ कि वह अपना कैसा वेश बनाना चाहता है और किस लिए। पर उसे यह सब पूछने का साहस न हुआ। उसने कमरे से लगा हुआ बाथरूम दिखा दिया और वह उसी कमरे में चुपचाप बैठ गयी। कुछ समय पश्चात बाथरूम खुला और अनीता ने देखा, तार विभाग का एक मिस्त्री उसके सम्मुख खड़ा है। अनीता कुछ हिचकिचा कर बोली "आपको इस वेश की क्या आवश्यकता पड़ गयी ?"

"समय आने पर आप सब कुछ समझ जाएँगी" और इतना कह कर अशोक कोठी से बाहर हो गया। कोठी के सामने तारों के खम्भे पर वह चढ़ गया। और जिन दो तारों का सेठ जी की कोठी के टेलीफोन से सम्बन्ध था, उन दोनों पर एक टेप वायर लगा दिया। इसके पश्चात तार विभाग का मिस्त्री बना हुआ अशोक खम्भे पर से उतर आया। कुछ दूर आगे चल कर उसे एक खाली टैक्सी जाती दिखाई दी। उसको रोक कर वह उसी में बैठ गया और नगर से लगभग तीन मील दूर जाकर एक सुनसान जगह में उतर पड़ा। टेलीफोन के खम्भे इधर आकर नगर की अपेक्षा कुछ छितरे हो गये थे। वह एक खम्भे पर चढ़ा। जेब से वही ३६ नियोन गैस धारी बल्बों का डिब्बा निकाला, जिसको वह फोन-लाइन-लोकेटर कहता था। वह खम्भे पर लगे पचासों तारों के समूह पर डिब्बे के प्लग को उस समय तक लगाता रहा, जब तक कि पुनः १५ नम्बर का बल्ब न जल उठा। बल्ब को जलाने वाले दोनों तारों से उसने अपनी जेब से दो तार निकाल कर सम्बन्ध स्थापित किया और खम्भे से उतर आया।

ये दोनों तार पर्याप्त लम्बे थे। इनको लेकर वह पास ही एक खंडहर में घुस गया। ऐसा लगता था जैसे अशोक के लिए वह खंडहर पूर्वपरिचित हो। वह तेजी से टूटी-फूटी दीवारों को पार करता हुआ, पत्थरों और ईंटों के ढेरों पर चलता हुआ अन्त में एक ऐसे स्थान पर पहुँच गया जहाँ एक पुराना कमरा अब भी खड़ा था। इसी कमरे में आकर वह नीचे बैठ गया। दोनों तारों को उसने एक जेबी रेडियो-संग्राहक से जोड़ा और रेडियो-संग्राहक का सम्बन्ध एक टेप-रिकार्डर से। इसके पश्चात वह बाहर निकल आया। अपने वस्त्रों में छिपा एक छोटा सा कुदाल निकाल कर, उसकी सहायता से अशोक ने खंडहर के इस कमरे से लेकर खम्भे तक फैले दोनों तारों को भूगर्भ में छिपा दिया।

इतना कर चुकने के बाद अशोक थोड़ा चिन्तारहित हुआ। अब सायंकाल हो चुका था। भगवान भास्कर की स्वर्णिम किरणें टूटे खंडहर पर पड़ रही थीं और अशोक कमरे में बैठा रेडियो-संग्राहक को सुन रहा था। उस कमरे में लगभग दो घंटे बैठा रहा। अचानक रेडियो-संग्राहक की एक सूचना को सुन कर वह उछल पड़ा। सेठ जी अपनी कोठी में बैठे हुए टेलीफोन पर किसी कामिनी से बातें कर रहे थे। उसने सुना कि सेठ जी कामिनी से कह रहे हैं कि कल शाम को वह उनके कार्यालय में आए। अशोक के लिए यह पर्याप्त था। टेप-रिकार्डर ने सेठ जी की बोली हुई यह बात अंकित कर ली थी। अब इसको टेप-रिकार्डर का दूसरा बटन घुमाकर किसी को भी सुनाया जा सकता था। सब यही समझते कि लोहे के व्यापारी सेठ जी किसी कामिनी युवती से बातें कर रहे हैं। रेडियो-संग्राहक और टेप-रिकार्डर को कार्य करता छोड़ कर अशोक उस कमरे से निकल कर बाहर आया और पैदल ही नगर की ओर चल पड़ा।

जब अशोक ने नगर में प्रवेश किया, पर्याप्त रात्रि हो चुकी थी। पर वह अपने कमरे पर जाने के बजाय बाजार की ओर मुड़ गया। एक टैक्सी लेकर वह सेठ जी के कारखाने की ओर चल पड़ा। कारखाने से कुछ दूर इधर ही उसने टैक्सी छोड़ दी। कारखाना अब भी चल रहा था। द्वारपाल ने अशोक को तार विभाग का कर्मचारी समझ कर उसके अन्दर प्रवेश करने में कोई आपत्ति नहीं की। अशोक कारखाने के एक कर्मचारी से सेठ जी के कार्यालय का पता पूछ उसी ओर बढ़ा। कार्यालय बन्द था। वास्तव में वह बहुत मजबूत था। उसे देख कर वह समझ गया कि कार्यालय में प्रवेश पाना असम्भव है। इसलिए वह तुरन्त ही बाहर निकल आया। उसने पुनः टैक्सी पकड़ी और अबकी बार अपने कमरे के निकट आकर उतर पड़ा। अपनी कोठी के पीछे पहुँच कर उसने दीवार में लगा बटन दबा कर एक गुप्त द्वार खोला और अन्दर चला गया।

वह कमरे में आया तो उसने अनीता को प्रतीक्षा करते हुए पाया। अनीता ने

उसको देखते ही कहा—"मैं तो घबरा गयी कि आप क्यों नहीं लौटे। कोठी पर आपकी पोशाक रखी थी। सोचा उसे भी देती आऊँ और कुछ कुशल समाचार भी मिल जाएँगे। यहाँ पर भी मुझे पर्याप्त देर हो गयी है। पर आपने मिस्त्री की पोशाक कब और कैसे उतार दी।"

"यह सब तो मैं आपको फिर कभी बताऊँगा। अब पर्याप्त विलम्ब हो गया है। आप कोठी पर जाइए। हमें अपने कार्यों से किसी को भी सन्देह करने का अवसर नहीं देना चाहिए। हाँ, एक बात आप कल ही कर लीजिएगा। आज बाजार में मैंने एक ऐसा सैट देखा है जिसमें टेलीविजन, रेडियो और ग्रामोफोन तीनों यूनिट लगे हैं। इसका मूल्य ३२५०) है। कल ही उसको खरीद कर अपने पति को भेंट दे डालिए यह बताते हुए कि कार्यालय में आपको मनोरंजन का साधन कुछ नहीं है। इसी दृष्टि से मैंने इसको खरीदा है। इस बात का भी आग्रह कीजिए कि वे कल ही लेजाकर इस सैट को कार्यालय में रख दें। पर एक बात स्मरण रहे कि सैट को खरीदकर आप इसे सबसे प्रथम मेरे कमरे पर लाइएगा। तभी उसे कोठी ले जाइए।" इतना कहकर अशोक ने अनीता से विदा माँगी।

दूसरे दिन, दिन के लगभग दस बजे अनीता सैट लेकर अशोक के कमरे पर आ गयी। अशोक ने सैट में लगा रेडियो-यूनिट अलग किया, उसे खोला और कल जैसा ही एक रेडियो-प्रेषित्र रेडियो की कैबिनेट के अन्दर लगे लाउडस्पीकर में रख दिया। उसे बन्द कर, वह पूरा सैट उसने अनीता को लौटा दिया और उसका कौतूहल शान्त करता हुआ अशोक बोला—"अब सेठ जी के माइक्रोफोन-प्रूफ कार्यालय की दीवारों के भी कान हो जाएँगे, पर शर्त यही है कि इस सैट को आज ही सेठ जी अपने कार्यालय में रखलें।"

"इसकी आप चिन्ता न कीजिए, मैंने उनको इस केलिए सहमत कर लिया है। वे आज दोपहर केवल इसी लिए कोठी पर आएँगे। अच्छा अब मैं चलती हूँ।"

अशोक उस दिन सांयकाल अपने एक सहयोगी रमेश के साथ खण्डहर के कमरे में बैठा था। उसने एक और रेडियो-संग्राहक वहां लाकर रख दिया था। इसका सम्बन्ध भी एक टेपरिकार्डर से जोड़ दिया गया था। वह कभी प्रथम संग्राहक की बातें सुनने लगता और कभी दूसरे की। दूसरे संग्राहक में सेठ जी अपने कार्यालय में बैठे कामिनी से प्रेमालाप कर रहे थे। उनके इस प्रेमालाप के भेद को उनके कार्यालय में रखा हुआ अनीता का भेंट वाला सैट अपने अन्दर रेडियो-प्रेषित्र छिपाए अशोक तक पहुँचा रहा था। आज ही अशोक को सेठ जी और कामिनी के सम्बन्धों के विषय में अनेक महत्वपूर्ण बातें ज्ञात हुईं। उसको यह भी पता चला कि कामिनी सेठ जी के साझीदार का नाम बार-बार ले रही है। अशोक रेडियो-संग्राहकों और टेपरिकार्डरों को चालू दशा में छोड़

कर उठा । अपने सहयोगी रमेश को बराबर कमरे में रहने का और यदि इस बीच कोई आवश्यक सन्देश रमेश संग्राहकों से सुने तो उसको तुरन्त सूचित करने का आदेश दिया । उसने रमेश को बताया कि उसे यह मामला कुछ उलझा हुआ सा लग रहा है, इसलिए वह स्वंय नगर को लौटना चाहता है । सेठ जी आज ११ बजे से पूर्व कोठी जाने वाले नहीं थे । इसलिए अशोक नगर की ओर चल पड़ा । मार्ग में जो भी पहली टैक्सी मिली, उसीमें बैठ कर वह सेठ जी की कोठी में जा पहुँचा । ड्राइंग रूम में जाकर अनीता को बुलवाया । अनीता को देखते ही उसने कहा, "धन्यवाद अनीता जी, आपका भेंट वाला सैट सेठ जी के कार्यालय की एक-एक सूचना मुझे दे रहा है, वे सब टेपरिकार्डर पर अंकित की जा रही हैं जिनको आप जब चाहेंगी सुन सकेंगी । पर इस समय एक और आवश्यक कार्य से मैं आया हूँ । मैं आपके मुनीम जी से भेंट करना चाहता हूँ, इसलिए उनको कल प्रातः काल ही मेरे कमरे पर भेज दीजिएगा ।" इतना कह कर अशोक उठा और कोठी से बाहर निकल आया । अपने कमरे के द्वार पर आते ही उसे एक लिफाफा मिला । उसने उसे उठाकर खोला, "तुम्हारा अनीता से मिलना-जुलना बढ़ गया है । तुमने हमारी प्रथम चेतावनी पर कोई ध्यान नहीं दिया । अब भी समय है । इस मामले में हाथ डाल कर तुमने भूल की है । एक सप्ताह का समय तुमको और दिया जाता है । इसके बाद भी तुम नहीं सँभले, तो फिर तुम इस दुनियाँ में जीवित नहीं रहोगे ।"

अशोक चेतावनी को पढ़ कर मुस्करा दिया । हाँ, वह इतना समझ गया कि अभी तक विरोधी दल को उसकी कार्यवाहियों का पता नहीं चला है । उसको यह भी ज्ञात हो गया कि एक सप्ताह में ही उसे अपना कार्य समाप्त कर लेना चाहिए ।

दूसरे दिन प्रातः काल ही मुनीम जी अशोक के कमरे पर आए । मुनीम जी को देखकर कोई भी उनकी भलमनसाहत को जान सकता था । भोलापन उनके मुख से जैसे टपकता था । ऐसे व्यक्ति को देख कर कोई यह अनुमान नहीं लगा सकता था कि वह किसी का कुछ बुरा भी कर सकता है । इधर-उधर की बातचीत के बाद अशोक ने मुनीम जी से पूछा, "मुनीम जी, एक बात बताइए । आपके सेठ जी के साझीदार कारखाने में कब आ जाते हैं ?"

"लगभग उसी समय जब सेठ जी आते हैं ।"

"और कब तक रहते हैं ?"

"सांयकाल जब सेठ जी उठते हैं । उन्हीं के साथ वे भी उठते हैं । सेठ जी अपने एक विशेष कमरे में चले जाते हैं और साझीदार बाहर चले जाते हैं ।"

"क्या वे दिन में किसी भी काम से बाहर नहीं जाते ?"

"हां । केवल प्रातः ६ बजे काफी पीने के लिए अवश्य ही निकट के एक रेस्तराँ में जाते हैं ।"

"कितनी देर में लौटते हैं वहाँ से ?"

"यही कोई एक घंटे में"

"साझीदार का अपना अलग टेलीफोन है ?"

"हां।"

"क्या आज मैं साझीदार के कमरे में उस समय प्रवेश पा सकता हूँ जब वे काफी पीने जाएँगे?"

मुनीम जी कुछ सोचने लगे ।

अशोक थोड़ा मुस्करा कर बोला । "आप अभी जाकर साझीदार के आने से पूर्व उनके टेलीफोन का रिसीवर तोड़ दीजिए । साझीदार के आने पर उनको बता दीजिए कि रिसीवर टूट गया है और उसके लिए तार विभाग का मिस्त्री बुलाया है । जब साझीदार काफी पीने जाएँगे, मैं मिस्त्री के रूप में आपके पास आऊँगा । आप मेरे साथ चल कर उनका टेलीफ़ोन ठीक करवा दीजिए ।"मुनीम जी को उसकी योजना पर थोड़ा आश्चर्य हुआ, पर वे मुँह से बोले कुछ नहीं । चुपचाप अपनी सहमति देकर चले गये।

लगभग ९ बजे अशोक मिस्त्री के रूप में कारखाने पहुँचा । अतः जैसे ही द्वार में प्रवेश किया, देखा साझीदार बाहर निकले आ रहे हैं । उसे देख कर वे बोले, "हमारा फोन शीघ्र ठीक करदो । हमारे सभी आवश्यक कार्य रुक से गये हैं ।"

उसने सिर हिलाकर अपनी सहमति प्रकट की । साझीदार बाहर चले गये । मुनीम जी के साथ अशोक ने साझीदार के कमरे में प्रवेश किया । वह अपने घर से ही एक नया रिसीवर के लाया था । उसने एक घड़ी जितना बड़ा रेडियो-प्रेषित्र इस नये रिसीवर माइक्रोफोन में फिट कर दिया था । टेलीफोन पर की हुई सभी बातें रेडियो-प्रेषित्र द्वारा अशोक जहाँ चाहता वहाँ प्राप्त कर सकता था । टेलीफोन रिसीवर बदलने में उसे क़ेवल आधा घंटा लगा और उसके पश्चात वह कारखाने से बाहर चला गया। पर्याप्त दूर जाकर उसने एक टैक्सी पकड़ी और उसमें बैठगया । खण्डहर लगभग एक मील रह जाने पर वह टैक्सी छोड़कर पैदल चलने लगा ।

जब खण्डहर में पहुँचा, तो उसने देखा, रमेश आराम से लेटा हुआ है । अशोक को देखकर वह बैठ गया । उसने अशोक को बताया कि कल से आज तक अनेक महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ टेपरिकार्डरों पर संग्रह हो चुकी हैं । अशोक वह सब जानने को बड़ा उत्सुक था । पर उत्सुकता को दबाकर उसने पहले एक तीसरा रेडियो-संग्राहक और टेपरिकार्डर लगा दिया । उसने रमेश को बताया कि यह तीसरा रेडियो और टेपरिकार्डरका सैट सेठ जी के साझीदार के कमरे में टेलीफोन में रखे रेडियो-प्रेषित्र से सम्बन्धित है । इसके पश्चात वह पहले रखे हुए दोनों टेपरिकार्डरों में संग्रह की हुई बातों को सुनने लगा ।

सेठ जी की रिकार्ड की हुई ध्वनि बोल रही थी, कभी-कभी बीच में कामिनी की बोली भी सुनाई पड़ जाती थी। पर इतने में ही तीसरा रेडियो-संग्राहक भी बोल उठा। उससे जो सूचनाएँ अशोक को मिलीं, उससे तो वह चकित रह गया। अशोक और रमेश लगभग दो घंटे तक साझीदार की बातों को सुनते रहे। उससे उन्हें ज्ञात हुआ कि साझीदार ने अब तक लगभग दो लाख रुपये मूल्य के कारखाने के बने हुए औजार, यन्त्र और डाइयाँ कारखाने से बाहर निकाल दिये हैं और उनको दूसरे नगर में एक गोदाम में भण्डारित कर लिया है। उसको यह भी ज्ञात हुआ कि साझीदार ने उसमें से पर्याप्त माल बेच दिया है और शेष को एक दुकान में रख कर अपना स्वतन्त्र व्यापार करने के प्रयत्न में है।

अशोक को इस मामले में जटिलताएँ बढ़ती सी ज्ञात हुईं। वह बहुत देर तक रमेश से बातें करता रहा। अनेक आदेश देकर अशोक ने रमेश से विदा ली। अशोक का मन बार-बार कह रहा था कि साझीदार का कामिनी के साथ अवश्य ही कोई सम्बन्ध होना चाहिए। पर अभी तक इस विषय में उसे कोई तथ्य नहीं मिला था। आज उसने निश्चय किया कि सायंकाल साझीदार का कारखाने से निकलते समय पीछा किया जाय। अशोक ने एक पब्लिक टेलीफोन से अनीता को फोन किया। उसने बताया कि अब कम से कम तीन चार दिन तक वह उससे मिलने का प्रयत्न न करे। यदि कोई विशेष सूचना देनी हो, तो एक विशेष टेलीफोन का नम्बर उसने अनीता को बताया। अशोक के कमरे में कोई टेलीफोन नहीं था और उसका कारण यह था कि उसे भय था कि उससे उसके कमरे का भेद भी बिना प्रवेश किये प्राप्त किया जा सकता है।

इसके पश्चात अशोक अपने कमरे पर आया। कुछ समय पश्चात अशोक की जेब में पड़ा रेडियो-संग्राहक बोल उठा। इसका सम्बन्ध सीधा खण्डहर से बना हुआ था। रमेश बोल रहा था। उसने कहा, अभी-अभी साझीदार के टेलीफोन पर कामिनी की आवाज सुनाई पड़ी है। पर आवाज़ बहुत धीमी थी, इसलिए उसने क्या कहा, यह ज्ञात नहीं हुआ। रमेश की इस सूचना ने अशोक के मस्तिष्क में एक नई विचार-तरंग उत्पन्न करदी। वह पर्याप्त समय तक सोचता रहा।

सायंकाल अशोक कारखाने के सामने एक टैक्सी में बैठा था। कुछ समय पश्चात साझीदार अपनी कार में बैठा बाहर निकला। अशोक ने टैक्सी-चालाक को उस कार का पीछा करने का आदेश दिया। कार इधर-उधर घूमती हुई नगर से बाहर निकल आई। नगर से लगभग एक मील दूर जाकर एक निकुंज के समीप कार खड़ी हो गयी थी। अशोक ने अपनी टैक्सी को लगभग एक फर्लांग दूर पर खड़ा कर लिया। कुछ देर बाद दूसरी दिशा से एक कार और आई और निकुंज के समीप ही रुकी। उसमें से एक युवती उतरी।

कुछ झुटपुटा सा हो गया था। इसलिए अंधेरे में अशोक को युवती का मुख स्पष्ट दिखाई नहीं दिया। वह कुछ देर तक खड़ी रहकर इधर-उधर देखती रही। अशोक को अच्छा अवसर मिला। उसने अपने थैले से एक विद्युतकणधारी कैमरा निकाला। यह कैमरा घोर अन्धकार में भी चित्र ले सकता था। इसकी फ्लैश लाइट के लिए अशोक एक विशेष प्रकार के फ्लैश बल्ब उपयोग किया करता था, जिससे इन्फ्रारेड किरणें निकलती थीं और जो चित्र लेते समय केवल इतना ही चमकता था जितना कि सुलगी सिगरेट का अगला सिरा। इसी से अशोक ने उस युवती का चित्र लिया। अशोक ने अपने दूर-वीक्षणयन्त्र से देखा कि निकुंज से निकल कर साझीदार उसी युर्वती के पास आ गया है। अशोक ने तुरन्त ही अपने थैले से पैराबोलिक माइक्रोफोन निकाला और उसको टैक्सी की छत पर फिट कर लिया। पैराबोलिक माइक्रोफोन में एक कनकेव दर्पण था और एक संग्राहक था। पैराबोलिक माइक्रोफोन के लगाते ही, अशोक को युवती और साझीदार की बातें इतनी स्पष्ट सुनाई पड़ने लगीं जैसे कि कोई दो व्यक्ति उसके निकट में ही खड़े बातें कर रहे हों। युवती की ध्वनि को सुनकर अशोक चौंक पड़ा। यह तो ठीक कामिनी की आंवाज थी। उसने पैराबोलिक माइक्रोफोन के साथ अपना जेबी टेप-रिकॉर्डर सम्बन्धित कर दिया।

अन्धकार ने सम्पूर्ण धरा को आत्मसात कर लिया था। हाथ को हाथ सुझाई नहीं पड़ता था और साझीदार तथा कामिनी एक दूसरे के आलिंगन में बद्ध आपस में प्रेमालाप कर रहे थे। अशोक को इससे अच्छा दूसरा अवसर न जान पड़ा। उसने अपने विद्युतकणधारी कैमरे से इसी दशा में उनके चित्र लिये और उनका सम्पूर्ण प्रेमालाप टेपरिकॉर्डर द्वारा संग्रह कर लिया। टैक्सी का चालक अशोक के इन क्रिया कलापों को देख कर यही समझा कि कोई सर्वेक्षण कर्मचारी आसपास की भूमि तथा वातावरण का सर्वे कर रहा है। अपना काम पूरा कर अशोक ने टैक्सी को नगर की ओर चलने का आदेश दिया। आज उसे अपनी खोज की सब से महत्त्वपूर्ण कड़ी प्राप्त हुई थी। वह इसी कड़ी के इर्दगिर्द घटनाओं की लड़ी को पिरोने लगा।

अशोक का कार्य लगभग समाप्त हो गया था। चेतावनी की अवधि पूरी होने में अभी पांच दिन शेष थे। इसलिए अशोक कुछ निश्चिन्त हो कर कमरे पर आया और पैर फैला कर सो गया।

दूसरे दिन प्रातः काल ही उठ कर उसने एक इंजीनियर का वेश धारण किया। एक किराये का ट्रक लेकर वह नगर की सड़कों का सर्वेक्षण करता हुआ लगभग ९ बजे सेठ जी के कारखाने के निकट वाले रेस्तराँ के सामने सड़क के उस पार जाकर ट्रक को रुकवाया और वहीं पर खड़ा कभी वह सड़क के इस ओर और कभी उस ओर का सर्वेक्षण करने लगा। बीच-बीच में खड़ा होकर अपने यन्त्र को भी ठीक करता जाता था।

वास्तव में अशोक का यह कार्य तो केवल नाट्य मात्र था। उसके नेत्र कारखाने के द्वार पर थे और उसके कान हाथ में लिए हुए पैराबोलिक माइक्रोफोन की ओर थे जो लगभग एक दूरवीक्षण यन्त्र की तरह दिखाई देता था।

कुछ समय पश्चात कारखाने से साझीदार बाहर निकला और निकल कर रेस्तरां में उसने प्रवेश किया। पर अशोक को यह देख कर बड़ा विस्मय हुआ कि वह रेस्तरां के दूसरे द्वार से तुरन्त ही बाहर निकल आया और बाहर खड़ी एक कार में जाकर बैठ गया। कार में बैठा वह चालक से कुछ बातें करने लगा। अशोक ने अपने पैराबोलिक माइक्रोफोन का मुख उसी दिशा में मोड़ दिया। अशोक को साझीदार और चालक की बातें स्पष्ट सुनाई पड़ने लगीं। कार की खिड़कियाँ खुली हुई थीं। साझीदार ने अपनी जेब से एक कागज का पुलन्दा निकाला। पैराबोलिक माइक्रोफोन का लक्ष्य इस समय कार की खुली हुई वह खिड़की थी जिसमें से साझीदार और चालक के मुख स्पष्ट दिखाई देते थे। माइक्रोफोन तिपाई पर रखा काली मलमल से ढका हुआ था। साझीदार और चालक की बातें इसी की सहायता से अशोक को इस प्रकार सुनाई देने लगीं, जैसे वे दोनों उसी के पास खड़े बातें कर रहे हों।

साझीदार चालक से अपने चुराये हुए माल की बिक्री के बिलों के विषय में बातें कर रहा था। लगभग १५ मिनट में अशोक को उनकी बातचीत से यह ज्ञात हो गया कि साझीदार द्वारा चुराये हुए माल के गोदाम का पूरा पता क्या है, वह कौन से नगर में है। इस माल के ग्राहकों के नाम और पते क्या हैं।

अशोक का कार्य लगभग समाप्ति पर था। वह खंडहर में पहुँचा। रमेश सकुशल सभी प्रकार के सन्देशों को सुन चुका था और टेपरिकार्डरों पर वे सभी अंकित हो चुके थे। अशोक ने विद्युतकण कैमरे द्वारा लिये हुए चित्रों को बनवा लिया था। रमेश को कुछ आदेश देकर अशोक पुनः नगर में आ गया। वह सीधा सेठ जी के कारखाने पहुँचा। सेठ जी से एकान्त में मिला और उनको सारी कथा कह सुनाई। सेठ जी की पोल खुल चुकी थी। वे अशोक के प्रसिद्ध नाम से खूब परिचित थे। अशोक ने सेठ जी से आग्रह किया कि वह उसकी बातों के प्रमाण जानने के लिए कुछ समय के लिए उसके साथ चलें। सेठ जी जाना तो नहीं चाहते थे, पर विवश थे। कार में बैठ कर अशोक के साथ चल पड़े। अशोक ने खण्डहर में कुछ दूर पर कार रुकवाई और सेठ जी को अपने साथ लेकर खण्डहर में प्रवेश किया। कमरे में जाकर टेपरिकार्डरों पर अंकित सभी सन्देश सेठ जी को सुनाए। उनको साझीदार और कामिनी के वे चित्र भी दिखाये जो उसने उस दिन सायंकाल लिये थे। सेठजी जहाँ एक ओर अपने दुष्कार्यों पर लज्जित थे, वहाँ दूसरी ओर कामिनी और साझीदार पर उन्हें अत्यधिक रोष आया। सेठ जी के कहने पर अशोक अपने सभी रेडियो-संग्राहक और टेपरिकार्डरों को कार में रखने

के लिए ले आया । रमेश भी इसके साथ था । सेठ जी ने चालक को कोठी पर चलने का आदेश दिया । कोठी पर पहुँच कर उन्होंने फोन द्वारा साझीदार को फोन पर आने के लिए कहा । इस बीच में अशोक की अनीता से भेंट हो चुकी थी । सेठ जी भी सब कुछ समझ गये थे । वे अशोक के सम्मुख ही अनीता को सम्बोधित करते हुए बोले, “अनीता, मैं अपने व्यवहार से अत्यधिक लज्जित हूँ । तुमने अशोक के द्वारा मुझे दुर्घटना के पूर्व ही बचा लिया है । मुझे तुम क्षमा करो । भविष्य के लिए मैं वचन देता हूँ कि इस प्रकार का कोई अवसर तुमको नहीं दूँगा ।”

अब तक साझीदार भी आ चुका था । अशोक को देख कर वह चौंका । अशोक केवल मुस्करा दिया । सेठ जी के कहने से साझीदार को उसकी सम्पूर्ण करनी अशोक ने टेपरिकार्डरों पर संग्रहीत सन्देशों द्वारा सुनाई । साझीदार ने देखा कि सेठ जी के पास उसके विरुद्ध अकाट्य प्रमाण उपस्थित हैं । वह गिड़गिड़ाकर सेठ जी के पैरों पर गिर पड़ा, पर सेठ जी उसको पुलिस में देने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ थे । अनीता के पूछने पर साझीदार ने बताया कि कामिनी के चक्कर में सेठ जी को फसाना भी उसी का काम है, क्योंकि बिना ऐसा किये वह कारखाने का माल गायब नहीं कर सकता था । सेठ जी कामिनी के कारण असावधान हो गये और उसको अवसर मिल गया । अनीता ने साझीदार के ठीक बातें बताने के कारण सेठ जी से कहा कि उसको पुलिस में न दिया जाय । सेठ जी अनीता के सम्मुख पर्याप्त लज्जित थे । वे तुरन्त उसकी बात मान गये । साझीदार को जितना माल उसने चुराया था, उसका भुगतान करना पड़ा । सेठ जी ने उसका साझा भी समाप्त कर दिया । और साझीदार को दस हजार रुपये अशोक के पारिश्रमिक के भी देने पड़े । अनीता और सेठ जी सदैव के लिए अशोक के आभार से दब गये ।

शशिगीत

— श्री विद्यापति मिश्र —

श्वेत कमल से मृदुल करों
निज मुख पर झीना आँचल धर,
सज-धज कर शशिबाला
सोई नभ के नीले मखमल पर।

उसने प्रिय को पहनाने को
चम्पक हार सजाये,
प्रिय-पथ आलोकित करने
को, तारों के दीप जलाये।

बहुत प्रतीक्षा करने पर, जब
वहाँ न आया कोई,
सिसक-सिसक कर अश्रु बहा
कर, खूब हृदय भर वह रोई।

नभ के नन्दन-वन की कलिका
पिय-दुख में ही कुम्हल गयी,
हाय, प्रात होते-होते ही
तुहिन रूप में बिखर गयी।

कल्याणमल्ल और उनका अनंगरंग

—श्री भास्कर रामचन्द्र भालेराव

हमें अपने इतिहास-संशोधन में १९१७ में एक संस्कृत ग्रंथ मिला, जिसका नाम है 'अनंगरंग'। हमने इसकी मराठी-टीकात्मक एक प्रति सन् १९१० में मालवा में देखी थी, जो लिथो पर छपी थी। उसी की दूसरी संस्कृत मूल प्रति हमें ग्वालियर में १९२० में मिली। अधिक ढूँढ़ने पर तीसरी एक और प्रति ग्वालियर के निकटवर्ती एक जिले में हिन्दी-अनुवाद-युक्त भी मिली। ग्वालियर में उसकी बहुतायत से प्रतियाँ मिलती हैं। इस प्रकार हमारे संग्रहालय में ग्रंथ की इस समय तीन विभिन्न प्रतियाँ मौजूद हैं। एक मित्र के पास अमृतसर की बृजभूषण कम्पनी द्वारा प्रकाशित अन्य काम-साहित्य के साथ ही अनंगरंग का अंग्रेजी अनुवाद भी देखने को मिला। इतने में मराठी पत्रों में एक समाचार पढ़ने को मिला। महाराष्ट्र के किसी प्रकाशक ने भी अनंगरंग नूतन संस्करण मराठी में प्रकाशित किया था।

यह अनंगरंग ग्रंथ तँवर राजवंशीय ग्वालियर के मानमन्दिर के निर्माता राजा मानसिंह के पिता राजर्षि कल्याणमल्ल (सिंह) का लिखा हुआ है। उसमें अंकित ऐतिहासिक संदर्भ महत्त्वपूर्ण है। संस्कृत संस्करण में आरम्भिक निम्न श्लोक हैं:—

लोदीवंशावतंसो हतरिपुवनिता-नेत्रवारिप्रपूर-
प्रादुर्भूतांबुवाहिन्यमलवरयशो लीलया प्लावितश्च।
तत्पुत्रख्यातनामा-रहमद-नृपतेः. कामसिद्धांतविद्वा-
ञ्जीयाच्छ्रीलाडखानक्षितिपतिमुकुटेघृष्टपादारविंदः।

लोदी सम्राट की क्या ही उपमा-उत्प्रेक्षा-युक्त प्रशंसा की है! सम्राट के पुत्र अहमद कामशास्त्र में प्रवीण थे। उनके वंशज (मंत्री) लाड खां के प्रति भी शुभाशा प्रकट की गयी है। दूसरा श्लोक है:—

अस्यैव कौतुक निमित्तमनंगरंग-
ग्रंथं विलासिजन-वल्लभमातनोति।
श्रीमन्महाकविरशेषकलाविदग्धः
कल्याणमल्ल इति भूपमुनिर्यशस्वी॥

इस कविता में कल्याणमल्ल को राजर्षि कहा है, जो किसी आधुनिक साहित्यिक या राजनैतिक क्षेत्र का व्यक्ति नहीं था।

ग्रंथ के विविध-विषय-युक्त परिच्छेद हैं। प्रत्येक परिच्छेद में लिखा है:—

इति श्रीमल्लाडनवलविनोदाय महाकविकल्याणमल्ल—
विरचितो अनंगरंगवर्णनोनाम प्रथमस्थलः।

अन्त में:—

श्री मल्लोदीवंशावतंस–श्रीमल्लाडखान—
विनोदाय श्री-महर्षि-महाकवि-कल्याणमल्लविरचितो
अनंगरंग-संभोग-निरूपणनाम दशमस्थलः।

अलबत्ता इस पूर्ति में आरम्भिक अहमद नृप का नाम नहीं है, वरन लाडखाँ को लोदी वंश का ही कहा है। ग्रंथांतर्गत वर्णन में एक संदर्भ विशेष महत्त्व का है, जो रचयिता, उसका निवास, समय आदि संकेतों पर भली भाँति प्रकाश डालता है। 'पंचम स्थल' में 'देशे-देशे स्त्रीणां लक्षणं' में सबसे प्रथम मध्यदेश और उसके निकट मालव देश के लक्षण बताये हैं; तदनंतर अन्य प्रान्तों--गुर्जर, लाट, कर्नाटकादि स्त्रियों के: —

विचित्रवेशा शुचि-कर्मदक्षा,
सुशीलिनी दंतनखाद्विरक्ता।
मनोज--संग्राम--विनोद--रंगा,
स्यान्मध्यदेश--प्रभवा पुरंध्री।

इस ग्रंथ में सबसे पहले मध्यदेश का ही वर्णन है और इस ग्रंथ की प्रायः अधिकांश प्रतियाँ ग्वालियर तथा उसके आसपास ही मिलने से हमारे उस ऐतिहासिक सिद्धान्त की ही पुष्टि करती है, जिसे हम आगे लिख रहे हैं।

लोदी-वंशावतंस का दिल्ली में १४५० से राज्य स्थापित हुआ। उस वंश के प्रथम पुरुष बहलोल लोदी (भालेल) का राज्यकाल १४४७ से १४८८ माना जाता है। उसके पुत्र सिक़न्दर लोदी ने १४८८ से १५१८ तक शासन की बागडोर सँभाली। ग्वालियर के तँवर राजा कीरतसिंह १४५५ से १४७९ तक राज्य करते रहे। उनके अनन्तर उनके पुत्र कल्याणसिंह ने (सन्दर्भ-गजेटियर) १४७९ से १४८६ तक शासन सँभाला। उनके बाद ही उनके पुत्र प्रसिद्ध कलाप्रिय राजा मानसिंह हुए। ग्वालियर के आसपास ही 'अनंगरंग' की अधिक प्रतियाँ प्राप्त होने, उसमें सर्वप्रथम मध्यदेश का उल्लेख, दिल्ली सम्राट लोदियों का और ग्रंथकार का समकालीन होना तथा लोदियों के स्पष्ट सन्दर्भ के देखते यह निःसन्देह रूप से कहा जा सकता सकता है कि तँवर राजा कल्याण (मल्ल) सिंह ने ही अनंगरंग की रचना अपने मित्र सम्राट बहलोल लोदी के प्रीत्यर्थ की, क्योंकि वे दोनों समकालीन थे। सिकन्दर लोदी का काल उसके बाद का था। अब प्रश्न यह है कि 'लोदीवंशावतंस' का 'तत्पुत्र-ख्यात-नामा-रहमद नृपते' कौन था; क्योंकि बहलोल का बड़ा लड़का बरबक जौनपुर का बादशाह बना था, जिसके मन्त्री एक प्रसिद्ध हिन्दी उपन्यास के नायक 'काला पहाड़' के नाम से हिन्दी जनता सुपरिचित

है ही, दूसरा पुत्र सिकन्दर दिल्ली के सिंहासन पर बैठा था। उसका अहमद नामक पुत्र अवश्य था, किन्तु वह परावर्ती होने से ग्रंथ का नायक नहीं हो सकता। अतएव हो न हो, बहलोल का ही अहमद नाम का एक और पुत्र होगा। या संभवत: 'बरबक' का ही नाम अहमद हो। वह नवयुवक राजपुत्र काम-सिद्धान्त-प्रवीण हो भी सकता है। तत्पुत्र युवराज को राजा—छोटे राजा कहना प्रचार में भी है। हमारे डॉ० रघुवीर-सिंह तो बहलोल को भलाबुरा कहते हैं (पृ० २०३-म० म० का भारत) किन्तु डॉ० ईश्वरीप्रसाद की राय में Though he was not learned, ye the encouraged learning अतएव बहलोल और उसके पुत्र की रंजना के लिए लाडखाँ (मन्त्री, राजदूत, किलेदार, राजपुत्र या सम्बन्धी) ने यह ग्रंथ सम्राट को भेंट किया होगा। गजेटियर के शब्दों में कल्याणमल्ल का काल १४७९-८६ई० था। अत: प्रश्न है कि ग्रंथ-रचना का अवसर उसे कैसे मिला ? किन्तु क्या उस समय यह प्रथा नहीं थी कि अपनी साहित्यिक कृतियाँ राजा-बाबुओं या आश्रयदाताओं के नाम प्रकाशित की जावें ? परमार वंशीय राजा भोज की विविध कलाकृतियाँ क्या उन्हीं की लिखी कही जा सकती हैं ? उनमें काव्य-नाटकादि के साथ संगतराशों के भी ग्रंथ हैं।

राजर्षि महाकवि कल्याणमल्ल के ग्रंथ की विषयसूची का क्रम निम्न है। आरंभिक नामकरण "सर्वसंग्रह" के देखते यह ग्रंथ अपने विषय का ज्ञानकोश कहा जा सकता है। आरम्भ में रति और कामदेव तथा उनके उद्गाता भगवान शंकर की स्तुति के अनंतर पूर्वाचार्यों की वंदना के साथ ऊपर उद्धृत शासनकाल तथा ग्रंथकार का परिचय दिया गया है। अनंतर पद्मिनी, शंखिनी, चित्रिणी, हस्तिनी आदि नायिकाओं का प्रथम स्थल में वर्णन किया गया है। द्वितीय स्थल में उनकी चन्द्रकला, मनोभावनाओं तथा उनकी पूर्ति के उपाय सुझाए हैं। तृतीय स्थल (परिच्छेद)में स्त्री-पुरुष-लक्षण, बृषल, अश्वल, मृगी, अश्वी आदि जाति-विशेष का विवेचन है, जिसका नाम सुरत-भेद-निरूपण दिया है। चौथे स्थल में सभी देव, गन्धर्व, यक्ष, काक, वानर, खर जाति-स्वरूप से साम्य आदि सामान्य धर्म का तथा पाँचवे स्थल में देशज-धर्म-निरूपण, जिसमें विभिन्न प्रान्तों की स्त्रियों की विशेषता का वर्णन है। छठे स्थल में कई प्रकार की औषधियों, द्रावणादि मंत्र-प्रयोग, केश-श्रेष्ठकरण (बाल बढ़ाने) केश-रंजन आदि का विवेचन है। सातवे में वात्स्यायन केआधार पर वशीकरणादि निरूपण, जिसमें वशीकरण, अंजन, मंत्र, अंगराग आदि हैं। आठवे में विवाह-उद्देश्य, जिसमें ज्योतिष–कन्याजामातृ-लक्षण तथा सामुद्रिक का विवेचन है। नवे में वाह्य-संभोग-निरूपण तथा अंतिम दशम स्थल में नायिका, सुरत-भेद तथा अष्ट-महानायिका पर प्रकाश डाला गया है। ग्रंथ के हिन्दी रूपान्तर में जो सारणियाँ दी गयी हैं, वे अपूर्व हैं। किन्तु उसमें अश्लीलता का विस्फोट है, अतएव हम उसका परिस्फोट करना उचित नहीं समझते।

गीत

— श्री मुकुटबिहारी सरोज —

अगर मुझे दुख है, तो बस इस बात का,
तुमने बहुत गलत समझा मेरे इन्सान को।

(१)

प्यासा हूँ, इसका मतलब यह तो नहीं
सागर के हाथों बिक जाएँगे अधर,
चन्दा की दो बूँद सुधा के वास्ते
चरण छोड़ देंगे रेगिस्तानी डगर,
तन के रोम नहीं बँध पाये यदि दुनियाँ की डोर में,
इस के लिए नहीं कोसा जाता मन के ईमान को।

(२)

साँसें आह-कराह बिछा कर सो गयीं,
इसका मतलब नहीं कि सपने मर गये,
यह तो ऐसा अकथनीय अहसान है
जिसे तुम्हारे जैसे, अपने कर गये,
आँखें सावन के पानी से करतीं हैं शृंगार यदि,
इसके लिए नहीं समझा जाता मुर्दा अरमान को।

(३)

बगिया के पातों से पतझर मिल गया,
तुमने समझ लिया, हर गीत उदास है,
एक बार जिसको सुन शव भी जी उठे,
ऐसा स्वर मेरी कोयल के पास है,
यह तो मेरी काया की मस्ती की अपनी बात है
जो हँस कर आसन देती है आँगन में तूफान को
तुमने बहुत गलत समझा मेरे इन्सान को।

शब्द-चित्र—

कविता की चोरी

— श्री रमाकान्त श्रीवास्तव

किसी कवि सम्मेलन में यदि कोई कवि दूसरे की कविता सुनाकर वाहवाही प्राप्त करले, तो उससे अधिक बुद्धिमान व्यक्ति कौन हो सकता है ? बुद्धिमान तो कहना ही चाहिए, क्योंकि वह न केवल श्रोताओं को, वरन मंच पर उपस्थित कवियों को भी मूर्ख बना देता है । बना ही नहीं देता है— उनकी मूर्खता को डंके की चोट पर सिद्ध भी कर देता है । किन्तु यदि कविता-पाठ के बीच कोई कवि जी की पोल-पट्टी खोल दे, तो आप निश्चित समझिए कि सारी आवभगत पर पानी फिर जायगा और फिर तो चुल्लू भर पानी में डूब मरने की बात पैदा हो जाएगी । किसी को चाहे इसका अनुभव हुआ हो या नहीं, पर मैं तो भुक्तभोगी हूँ । शायद आपकी उत्सुकता जाग उठी है । तो सुनिए न, मैं निःसंकोच सुना रहा हूँ ।

उस दिन सर्दी कुछ अधिक थी । खाना खाकर पड़ रहा । रोज की तरह नीचे सड़क पर चक्कर काटने, पान की दूकान पर सिगरेट पीने और उधर से गुजरने वाली लड़कियों को घूरने नहीं गया । जी हाँ, यदि ऐसा न करूँ, तो प्रेरणा कैसे मिले ? और बिना प्रेरणा के लिखा ही क्या जा सकता है ?

हाँ, तो अभी लेटा ही था कि लिहाफ की दँदक में झपकियाँ लेने लगा । तभी किवाड़ पर किसी के खटखटाने की आवाज से आँखें मलता हुआ उठ खड़ा हुआ । दरवाजा खोला । दो सज्जन, बिल्कुल अप-टू-डेट सामने खड़े थे । दोनों ने हाथ जोड़ कर नमस्ते किया । समझते देर न लगी कि वे कौन हैं, और ठीक ही समझा । उनमें से एक महाशय बोले—“मैंने आपको बड़ी तकलीफ दी, क्षमा कीजिएगा ।” “नहीं-नहीं, तकलीफ की कौन-सी बात है ? कहिए क्या आज्ञा है ?” मैंने शिष्टाचार के लहजे में तत्काल उत्तर दिया । “हम लोग यहाँ से २० मील दूर, सहीमाबाद से आए हैं.” उन्हीं महाशय ने फिर कहा । “सहीमाबाद,” मैंने दोहराया । “हाँ सहीमाबाद काफी बड़ा कस्बा है । पढ़े और गैर पढ़े सभी तरह के लोग रहते हैं । आज रात वहाँ कविसम्मेलन है । हम लोग आपको लेने आए हैं ।” बड़े ही विनीत भाव से वे फिर बोले ।

जैसा कि मेरा स्वभाव है, ऐसी बातचीत के बाद मेरी इच्छा सिगरेट पीने को हो जाती है । बाएँ हाथ से कमीज की जेब को टटोला, सिगरेट की डिब्बी नहीं थी,

बोला—"मुझे क्षमा करें तो बड़ी कृपा होगी। आज तो एक कविसम्मेलन यहाँ शहर में भी है। लेने आए थे, पर मैं नहीं गया। कई दिनों से मुझे जुकाम है, सर्दी से बचना चाहता हूँ।"

"ऐसा न कहें। यदि आप नहीं चलेंगे, तो कस्बे के लोग बहुत निराश होंगे। आपको सुनने को बहुत इच्छुक हैं।........कोई तकलीफ नहीं होगी। कार ले आया हूँ, कुछ मिनटों में पहुँच जायँगे," उन्हीं महाशय ने कहा। "कवि समेम्लन समाप्त होने पर तत्काल छोड़ जायँगे," दूसरे महाशय जो अब तक मौन थे, बोले।

"कार तो लेकर यहाँ शहर से भी आए थे। आप सच मानिए, आज के लिए तो लखनऊ से भी निमंत्रण आया था। ५१) देते, पर नहीं गया। रोज रोज कवि सम्मेलनों में जाने से बड़ी.........." जेब से पत्र निकाल कर उन्हें थमाते हुए कहा "देखिए पत्र, मैं बहाना नहीं कर रहा।"

पत्र को बिना पढ़े वे बोले, "आप जैसे ऊँचे कलाकार के लिए ५१) कौनसी बड़ी बात है। यह तो कहिए कि आपकी महानता है, जो आप चले जाते हैं। चढ़ा-उतरी की बात नहीं। हम लोग भी आपको १५१) देने का निश्चय करके आए हैं।"

सुन कर मुझे अपने पुराने सूट की याद आ गयी। दोनों कोहनी के ऊपर का कपड़ा उड़ गया है और अस्तर झाँकने लगा है। पैंट का पीछे का भाग भी जीर्ण हो गया है। जब तक चलता है, तभी तक। मुझे मौन देखकर उन्हें शायद कुछ और उत्साह बढ़ा—"अब आप हम लोगों पर दया करें। कस्बे के लोग पलक-पाँवड़े बिछाए आपकी राह तक रहे होंगे।" और इधर सूट के बाद मेरा पुराना लिहाफ भी आँखों में झूल गया। जगह जगह फर्द फट गयी है। अस्तर कहीं-कहीं तो बिल्कुल ही उड़ गया है। सोते समय यदि याद न रही और पैर तने, तो अन्दर घुस कर उखड़ी हुई रुई को समेटते हुए एक किनारे लगा देते हैं। और भी कोई चीज याद आ जाती, किन्तु उन्होंने "कहिए क्या आज्ञा दे रहे हैं," कह कर मेरे ध्यान को भंग कर दिया। "वैसे तो मेरी इच्छा नहीं थी, किन्तु आप लोगों का चूँकि आग्रह है, अतएव मैं चलूँगा।" प्रसन्न मुद्रा से दोनों ही महाशय बोले—"धन्यवाद।"

मैंने अन्दर जाकर पत्नी को सारी बातचीत संक्षेप में बतादी। उन्होंने सर्दी और जुकाम की याद दिलाई, किन्तु कवि सम्मेलन में न जाने पर कोई विशेष जोर नहीं दिया। जानती हैं मेरा स्वभाव कि मैं अपने इरादे को मुश्किल से बदलता हूँ। कपड़े पहने और उन लोगों के साथ चल दिया।

कार काफी तेज रफ्तार से चल रही थी। कुछ मिनटों में ही निश्चित स्थान पर आ गया। अनेक कविगण बैठे हुए धुँआधार सिगरेट के कश छोड़ रहे थे। सारा शामियाना श्रोताओं से खचाखच भरा था। मेरे आगमन की सूचना दी गयी।

हजारों आँखें मुझ पर केन्द्रित हो गयीं। प्रसन्नता की एक लहर-सी दौड़ गयी। देखते ही देखते मैं लोगों से घिर गया। बड़ी कठिनाई से वे हट सके और मुझे एक कैम्प में ले जाया गया।

कैम्प में पड़ी एक खाली कुर्सी पर बैठ गया, क्यों कि बैठने के लिए अनुरोध किया गया। सामने की मेज पर शराब से भरा हुआ जार और एक पैग रख दिया गया। एक महाशय, जिनको शायद कवियों की आवभगत सुपुर्द की गयी थी, जार से पैग में शराब डालते हुए बोले– "असली शैम्पियन है यह।" पैग भर जाने पर फिर बोले --" लीजिए, टेस्ट तो कीजिए इसका।"

"मुझे जुकाम है, यदि सूख गया तो तकलीफ बढ़ जायगी," मैंने कहा।

वे हँसे—"यह किसने आप से कह दिया ? अरे, जुकाम तो चुटकी के साथ भगा देगी। पीजिए तो, एक ही पैग लीजिए। फिर पढ़ना भी तो है आपको।"

"मेरा जुकाम अक्सर सूख जाता है, फिर मैं इसका आदी नहीं हूँ," मैंने उत्तर दिया।

"खाने के लिए कुछ मँगवाऊँ ?" उन्होंने पूछा।

"खाना तो खाकर आया हूँ। मैं तो सोने जा रहा था, किन्तु………।"

"बड़ी कृपा की आपने," दोनों हाथ जोड़कर वे बोले। फिर अपने किसी साथी से कहा—"गरम गरम कबाब की दो टिकियाँ ले आना………परहेज तो कोई होगा नहीं ?" मुझसे बोले।

"वैसे परहेज तो नहीं है, लेकिन मेरी इच्छा कुछ भी खाने की नहीं है।" मैंने कहा।

वे बोले—"कबाब की टिकियाँ विशेष ढंग से बनाई गयी हैं। लज़ीज़ तो हैं ही, ऊपर से उबले हुए अंडे की जर्दी लपेट दी गयी है। आप खाइए तो सही।"

मैंने कहा—"मैं खा लूँगा तो नींद आने लगेगी, फिर पढ़ नहीं सकूँगा, मुझे क्षमा करें।"

इस बीच कवि सम्मेलन प्रारम्भ हो गया था। मैंने पूछा—"कोई बाहर से भी आया है ?"

"नहीं, केवल स्थानीय कवि हैं। हम लोगों ने तो आपको सुनने के लिए बुलाया है ?"

मैंने सोचा, चलो ठीक रहा। कस्बे के तुक्कड़ कवि क्या लिखते होंगे। मंच मेरे हाथ रहेगा।

मंच पर पहुँचा, तो एक कवि जी कविता-पाठ कर रहे थे। श्रोताओं और कवियों में कुछ ऐसी फुसफुसाहट हुई कि उनको रुक जाना पड़ा। जब मैं बैठ गया, तो

उन्होंने फिर पढ़ना शुरू किया। उनकी शेष कविता को मैं सुन रहा था—"वे अतीत के सुखमय दिन क्या भुलाए जा सकते हैं ? मैं अपने ढोरों को लिए हुए गाँव से दूर मूजवनी को चीरता हुआ कछार में पहुँच जाता था। वह अल्हड़ बालिका, मेरी प्रेमिका भी अपने माँ-बाप की आँख बचाकर आ जाती थीं, वहीं। ढोर कछार में चरते और हम दोनों मूजवनी की छाँह में बैठकर बातें किया करते। आज भी उस मजवनी में घूम आता हूँ, किन्तु वह अल्हड़ बालिका अब नहीं मिलती। मैं उसका नाम ले-लेकर पुकारता हूँ।"

कविता समाप्त हुई। तालियों की गड़गड़ाहट शान्त होने पर अध्यक्ष महोदय ने, जो कस्बे के ही कोई वयोवृद्ध व्यक्ति थे, दूसरे कवि को बुलाया। उनकी कविता का शीर्षक था—"अलाव की याद।" कविता हास्यरस की थी। भाव इस प्रकार था:—

'अलाव की गरम राख की भुनी हुई शकरकंदी अब मेरे लिए सपना बन गयी हैं। शाम से ही अलाव जला देता, तापता और सोने जाने के पहले उसकी राख में शकरकंदी गाड़ देता। सबेरे उनका नाश्ता करता। एक बार शकरकंदी इतनी खा गया कि अपच हो गया। डाक्टरों-वैद्यों की दवाएँ कारगर साबित न हुईं और वही हुआ जो दवाओं के असफल होने पर होता है। अब भी अलाव की शकरकंदी खाने को जी करता है।"

व्यंग-कविता को सुनकर लोगों की हँसी मुश्किल से रुकी। मैं तो बगलें झाँकने लगा। सोचा—कस्बे के कवि बहुत अच्छा लिखते हैं। शहर के कवि भला कभी ऐसी कल्पना कर सकते हैं ? मेरी कविताओं को लोग पसन्द भी करेंगे ? जी में आया, अध्यक्ष महोदय के पास एक चिट भिजवाकर अनुरोध करूँ कि मुझे पहले पढ़ा दें तो अच्छा हो, क्योंकि मेरी तबियत कुछ भारी हो रही है। मुझ में हीनता का भाव आ रहा था—यदि ऐसी अच्छी-अच्छी कविताएँ पढ़ी गयीं, तो मेरी भद्द हो जाएगी।

इसी बीच तीसरे कवि को बुलाया गया। कविता का शीर्षक था—"सैर-सपाटा।" कविता पूरी तो याद नहीं, किन्तु जितनी याद रह सकी उसका भाव इस प्रकार था:—

"उस पुराने पीपल के नीचे आधी रात के समय अब भी घूमने जाता हूँ। कभी-कभी तो पीपल पर चढ़ जाता हूँ और उसकी टहनियों को जब जोर से झंझोरता हूँ, तो रात का सन्नाटा गूँज उठता है। वहीं पर मेरे बाबा की समाधि है। मैं उस पर दीपक जलाता हूँ। उनकी याद करके रोता हूँ। मेरी आवाज सियारों की आवाज में खो रहती है। कमबख्त सियार भी उसी समय बोलने लगते हैं। आधी रात ढलने

पर समाधि से उठकर पास के तालाब पर कुछ देर बैठता हूँ। उसके पानी में ढेले फेंकता हूँ और चक्करदार लहरों को देखता हूँ।"

कविता समाप्त होने पर पुनः तालियों की गड़गड़ाहट हुई। मंच पर बैठे कवियों ने भी, जब तक कविता पढ़ी गयी, झूम-झूमकर दाद दी। मैं आश्चर्य से मुहँ बाए सुन रहा था और सोच रहा था—बहुत सुन्दर लिखते हैं ये लोग। कल्पना की नवीनता के क्या कहने। एक कवि जी जो मुझ से सटे बैठे थे, बोले—"देखा आपने नये-नये प्रयोग।" मैंने केवल सिर हिला दिया।

अब एक कवयित्री बुलाई गयीं। कविता का शीर्षक था—"बिछोह" भाव इस प्रकार था:—

"जब खाने-पीने का आराम हुआ, प्रियतम से बिछोह हो गया। वे मुझ से प्यार करते थे, जैसे भँवरा कमल से करता है, नदी समन्दर से करती है, पानी ढलान से करता है। उस दिन तेज बुखार चढ़ने पर मैंने अपने प्रियतम से कहा था—'यदि मैं मर गयी तो क्या तुम मेरी याद करोगे?' आँखों में आँसू भर कर बोले—'मेरी युग-युग की संगिनि, तुम्हारे बिना मैं जीवित भी रह सकूँगा?' मैंने उनके सिर पर बुखार से तप्त हाथ फेरते हुए कहा—'ऐसा न कहो नाथ, ऐसा न कहो।"

सचमुच कविता बड़ी सुन्दर थी। सीधी-सादी बात थी। रहस्य में लपेट कर उसे पहेली नहीं बनाया गया था। एक कवि जी ने कहा—"सुनी आपने कविता? यह प्रियतम भगवान नहीं, सांसारिक है, तभी तो हृदय को अपील कर गयी। अब छायावाद और रहस्यवाद का युग गया।" मैं उनके मुहँ की ओर देखने लगा, सोचा, कोई नौसिखिया कवि है, जो मुझे जानता नहीं है, अन्यथा कविता पर इस तरह की टिप्पणी देकर मुझे समझाता नहीं।

अब चौथे कवि बुलाए गये। परिचय में बताया गया कि वे प्रगतिवादी कवि हैं। उनकी कविता में ओज गुण की प्रधानता रहती है। कविता का शीर्षक तो मुझे याद नहीं, किन्तु कविता का भाव कुछ इस प्रकार था:—

"चढ़ बैठो इन शोषण करने वाले मानवों पर। दबोच दो उनका गला। ऐंठ दो उनकी देह कि सारा खून निचुड़ कर माटी में सोख जाय। साँझ होते ही किसी पेड़ पर छिप कर बैठ जाओ और जब भी उनमें से कोई उसके नीचे से निकले, डाल सहित उसके ऊपर कूद पड़ो। यदि इतने पर भी बच जाय, तो विकराल रूप धारण कर, सामने हू-हू-हू करके खड़े हो जाओ। हाथ लगाने की जरूरत भी नहीं पड़ेगी। डर से ही उसकी आँखें निकल आएँगी। देह निर्जीव होकर लुढ़क जायगी।"

कविता सुनाकर आए, तो वे मेरे ही पास बैठे। मैंने पूछा—"डाल लेकर कूद पड़ने का क्या तात्पर्य है? बहुत जोरदार कविताएँ आप लिखते हैं।" वे बोले—

"मैं तो प्रगतिवाद पर विश्वास करता हूँ। डाल लेकर कूदने का अर्थ इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं कि आप शोषण के सब्ज ढाँचे को तोड़-फोड़ डालें।........कहिए, सुन्दर प्रयोग है न!" मैंने कहा—"निस्सन्देह, बहुत ही मौलिक है।"

इस बीच अध्यक्ष महोदय ने एक अन्य कवि को बुलाया। शीर्षक अब भी नहीं सुना। संक्षेप में भाव इस प्रकार था:—

"जब आकाश में पूरा चाँद मुस्कराता होता है, तो मैं कब्रिस्तान में जा कर कलई से पुती हुई कब्रों को देखता हूँ। सोचता हूँ-- क्या ये किसी ताजमहल से कम हैं! मेरी कब्र पर मेरी पत्नी दीपक जलाने आती है। कई बार चाहा कि उसका हाथ पकड़ कर कहूँ—रानी, तुम्हारी याद में मैं घुला जा रहा हूँ। तुम शरीर मैं अशरीर। मिलूँ तो कैसे मिलूँ।.... किन्तु ऐसा नहीं करता। सोचता हूँ बेचारी डर जायगी। फिर वह पतिव्रता स्त्री ठहरी, उसकी आत्मा को ठेस लगेगी।"

इस कविता को सुन कर मेरी साहित्यिक बुद्धि जवाब देने लगी। कब्र, शरीर, अशरीर जैसे प्रतीकों का अर्थ संदेह उत्पन्न करने लगा। मैं सोचने लगा, कहाँ आ गया। पूर्ववर्ती दूसरी कविताएँ भी संदेह-जनक लगीं। मुझे अपनी पत्नी की याद आई और दोनों बच्चों की भी। गला बैठा जा रहा था। बार-बार खाँस-खाँस कर साफ कर रहा था। कवि लोग कविताएँ सुनाए जा रहे थे। पहले की तरह उनकी कविताओं को सुनने की एकाग्रता अब मुझ में नहीं थी, फिर भी बीच-बीच जो भनक पड़ जाती कानों में, वह मेरे संदेह को पुष्ट कर देती।

अन्त में मेरा लम्बा चौड़ा परिचय देकर बुलाया गया। मैं कविता पढ़ने लगा:—

जय हनुमान ज्ञान गुन सागर,
जय कपीस तिहुँ लोक उजागर।

आवाज आई—यह कविता इनकी नहीं है। चोरी की कविता है। हटाओ मंच से,......और मैं पढ़े जा रहा था:—

रामदूत अतुलित बल धामा,
अंजनि पुत्र पवन सुत नामा।

आवाजें बराबर आ रही थीं—चोर है, मारो इसे, कौन लाया ऐसे कवि को,.......और मैं पढ़े जा रहा था:—

महावीर विक्रम बजरंगी,
कुमति निवार सुमति के संगी।

× × ×

भूत पिशाच निकट नहिं आवें........

आवाजें बन्द हो गयी थीं। मैंने आँखें खोलीं—घोर सन्नाटा। न कवि, न श्रोता। मैं बेहोश हो गया।

× × ×

डाक्टर ने कहा—"मैं तुम्हारी सूझ की तारीफ करता हूँ। अन्यथा तुम्हारा बच कर आ सकना असंभव था।"

गीत

—— श्री दिवाकर ——

गीत गाता जा रहा हूँ।
उर-उदधि का मान रखने को व्यथा-बाड़व छिपाये
यत्न से दृग-सीपियों ने अश्रु हैं मोती बनाये
मूल्य क्या इन मोतियों का आँकता मैं जा रहा हूँ।
चल निरन्तर राह पर निज, वायु को चलना सिखाया,
जल निरन्तर साधना में, दीप को जलना सिखाया,
ठोकरों ने जो सिखाया है, सिखाता जा रहा हूँ।
कल्पना मेरी सजग रहती सदा जग को जगाती,
शक्ति का सञ्चार करती जबकि दुनियाँ डगमगाती,
लड़खड़ाते हैं कदम पर मुस्कराता जा रहा हूँ।
गगन के शुभ दीप का शृंगार काली रात ही है,
सफलता-सोपान मानव की व्यथा-संघात ही है,
आह से पाषाण को पानी बनाता जा रहा हूँ।
है असम्भव कुछ नहीं उसके लिए जिसमें लगन है,
है खड़ा आराध्य सम्मुख ध्यान में यदि तू मगन है,
धूल में भी फूल साहस से उगाता जा रहा हूँ।

आधुनिक-आलोचना

— श्री कादम्बरी यामा

हिन्दी की आलोचना पद्मसिंह शर्मा तथा मिश्रबंधुओं से प्रारम्भ होकर पं० रामचंद्र शुक्ल जी के समय तक अपनी प्रौढ़ता तक पहुँचती है। परन्तु यह आलोचना आलोचनाशास्त्र को चरम सीमा तक नहीं पहुँचा पाती है। अतएव उसका विकास होना स्वाभाविक है।

हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में आजकल भिन्न-भिन्न वादों से प्रभावित विभिन्न आलोचनाएँ दृष्टव्य होती हैं। उनमें मनोवैज्ञानिक तथा मार्क्सवादी आलोचनाएँ प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त विभिन्न वादों के पारस्परिक प्रभावों से और कई तरह की मिश्रित आलोचना-पद्धतियाँ भी प्रचलित हैं।

नंददुलारे वाजपेयी की आलोचना समालोचनार्थ मनोविज्ञान तथा ऐतिहासिक आधार को ग्रहण करती है। और आज की प्रभाववादी आलोचना वादों के चक्कर में न पड़ कर अपनी स्वतंत्र शैली का नव निर्माण करती है।

परन्तु जब नयी आलोचना की बात उठती है, तब हम न केवल मनोवैज्ञानिक और मार्क्सवादी आलोचनाओं को ही ग्रहण करते हैं, परन्तु शुक्लेतर आधुनिक अन्यान्य चलित या गतिशील आलोचनाओं को भी उसकी सीमा में समाविष्ट करते हैं। इस प्रकार की आलोचनाओं में कुछ ये हैं:—

(१) मनोवैज्ञानिक आलोचना
(२) मार्क्सवादी आलोचना
(३) ऐतिहासिक या विभिन्न आलोचना
(४) प्रभाववादी आलोचना

वैसे तो और भी कई प्रकार की आलोचनाओं के नाम गिनाए जा सकते हैं, पर वे विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं। प्रस्तुत लेख का विषय प्रोक्त समीक्षा—आलोचना पद्धतियों का परिचय देना है।

मनोवैज्ञानिक आलोचना—

मनोवैज्ञानिक आलोचना की मूल धारणा है कि काव्य या कला दमित (शोधित या परिवर्तित Redirected) कामवासना की ही प्रकारान्तर अभिव्यक्ति है। अतः महान कलाकारों की महत कलाकृतियों को मनोवैज्ञानिक आलोचक काम का ही प्रकारान्तर रूप मानता है। उसके मत में तुलसीदास तथा सूरदास को उनकी अपनी

असफल तथा परिवर्तित काम-प्रवृत्तियों ने ही महान बनाया है और उन्होंने असफलता की ऊँची-ऊँची चट्टानों से टकरा कर फिर आदर्शवाद का पल्ला पकड़ा है। अतः मनोवैज्ञानिक आलोचक कवि के काव्य में उसकी विकसित मनोवृत्तियों का पता लगाने में ही अपनी अधिक शक्ति और समय का व्यय करता हैं। इस क्रिया के द्वारा उसे कवि की प्रेरणा के मूल तत्त्वों का बहुत कुछ पता लग जाता है। और यदि यह आलोचना सफल होती है तो कवि के अन्तर्व्यक्तित्व तथा महानता की भी सूचना साहित्यप्रेमियों को मिल जाती है। और ये सूचनाएँ कभी-कभी इतनी महत्त्वपूर्ण होती हैं कि स्वयं कवि या कलाकार भी काव्य या कलाकृति के रचना-काल में उन्हें नहीं जानता और उसका अचेतन मन स्वयं उसकी महानता को व्यक्त कर देता है।

मनोवैज्ञानिक आलोचकों का यह भी कहना है कि कविकल्पना, सौन्दर्याकांक्षा या विशेष पात्र की सृष्टि भी कवि की उन अपूर्ण वासनाओं की अपूर्णता की ही एक तरह से पूर्ति है। उन के मत में जिस कवि का जीवन जितना ही अधिक संघर्षों एवं गुत्थियों से अपूर्ण होगा, उसने जीवन के जितने ही अधिक उतार-चढ़ाव देखे होंगे, वह उतना ही अच्छा कलाकार, बन सकता है या बन सकेगा। कुछ दूर तक तो यह बात मानी भी जा सकती है कि काव्य कवि के अन्तर्द्वन्द्वों का बाह्य रूप है। पर इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि सभी मनोरोगी, महान तो बहुत दूर की बात है, नाम मात्र के कलाकार भी नहीं बन सकते। कवि के काव्य में उसके अन्तर्वैषम्य का एक तरह से रेचन हो जाता है, कलुष तथा गुत्थियाँ कट-कट कर अमृत और जीवन-स्रोत में परिणत हो जाती हैं। कवि या कलाकार बनने के लिए व्यक्ति में कला के निर्माण के लिए सूक्ष्म चक्षु चाहिए—साधना चाहिए। और साधना के बाद यदि कीचड़ कमल बन जाता है तो उसे हम कीचड़ की संज्ञा तो कदापि नहीं दे सकते।

आलोचना के समस्त क्षेत्रों में मनोवैज्ञानिक आलोचना-पद्धति समान रूप से प्रवेश नहीं कर पाती, पर उसकी विश्लेषण-प्रणाली तथा वैज्ञानिक रीति कुछ समस्याओं के अन्वेषण तथा सुलझाव के लिए प्रसिद्ध हैं। फ्रायड के मनोविज्ञान तथा वैज्ञानिकों की विश्लेषण-पद्धति ने हिन्दी में मनोवैज्ञानिक आलोचना का श्रीगणेश कराया है।

हिन्दी के मनोवैज्ञानिक आलोचकों की श्रेणी में हम डा० नरेन्द्र, इलाचंद्र जोशी तथा अज्ञेय जी का नाम प्रमुख रूप से ले सकते हैं।

मार्क्सवादी आलोचना—

जहाँ मनोवैज्ञानिक आलोचक अन्तर्मन की गहन बातों का पता लगाने में व्यस्त रहता है एवं मनोवैज्ञानिक चरित्र-विश्लेषण को ही साहित्य में ऊँचा स्थान देता है, मार्क्सवादी आलोचक अपनी आलोचना में वास्तविक यथार्थ चित्रण, वर्गसंघर्ष तथा सामाजिक चेतना को ही अधिक महत्त्व देता है। अतः कहा जा सकता है कि मार्क्सवादी

आलोचना सूक्ष्म-विद्रोही आलोचना के रूप में हिन्दी-आलोचना के क्षेत्र में दिखलाई पड़ती है। यह आलोचना अर्थशास्त्र तथा उपयोगितावाद सम्बन्धी पूर्ण बौद्धिक आलोचना है।

यदि कोई मार्क्सवादी आलोचक किसी रचना की आलोचना करने बैठे और उस रचना में उसे पूँजीपतियों के प्रति विद्रोह या उनके विपक्ष में दो-एक भी शब्द न मिलें, तो उसे उस रचना में रस ही न मिलेगा। मार्क्सवादी आलोचना में हमें स्थल-स्थल पर मन की भूख (आनंद, सौन्दर्य, भाव तथा सत्य) की अपेक्षा तन तथा रोटी की ही तीव्र गंध मिलेगी। यदि सर्वहारा दल के चित्र 'गोदान' में न मिले होते तो मार्क्सवादी आलोचक के लिए उसका मूल्य दो कौड़ी भी न होता, भले ही उसके मनोवैज्ञानिक पात्र सरस तथा अधिक समुन्नत हुए होते। मार्क्सवादी आलोचक संघर्ष चाहता है, संघर्ष! पूँजीपति और मजदूरों का संघर्ष, अमीरो-गरीबों का संघर्ष।

मार्क्सवादी आलोचना के सम्बन्ध में एक बात हमें बराबर याद रखना चाहिए कि यह आलोचना-पद्धति अपने आप में पूर्ण न हो कर आंशिक है। वह व्यापक क्षेत्र में प्रवेश नहीं कर पाती और साहित्य के क्षेत्र में पूर्ण रूप से लागू नहीं की जा सकती। हाँ, परिपूरक आलोचना के रूप में यह अवश्य अस्तित्व बनाए रख सकती है।

गोर्की का महान उद्देश्य कुछ इसी तरह का था कि साहित्य या कला वास्तविकता के अध्ययन तथा उसको पूर्णरूपेण जानने के साधन हैं। पर आजकल की मार्क्सवादी आलोचना, अर्थशास्त्रीय एवं संकुचित सी हो गयी है।

मार्क्सवादी आलोचक कवि-जीवन के आर्थिक आधार या अर्थ, तात्कालिक सामाजिक-स्थिति-जन्य चित्रण की सफलता को क्रमशः अपनी आलोचना की कसौटी मान लेते हैं।

हिन्दी के मार्क्सवादी आलोचकों में डॉ० रामविलास शर्मा, शिवदानसिंह चौहान एवं प्रभाकर माचवे प्रमुख हैं। उदीयमान आलोचक नामवरसिंह भी इसी पद्धति के पक्षपाती हैं।

ऐतिहासिक आलोचना—

आधुनिक युग में भी कुछ आलोचक प्राचीन सिद्धान्तवाद को मूल मान कर शास्त्रीय आलोचनाएँ किया करते हैं। कभी-कभी वे उन सैद्धान्तिक पद्धतियों के मूल ग्रंथों का हिन्दी अनुवाद भी किया करते हैं और कभी-कभी शास्त्रीय आलोचना के साथ पश्चिमी आलोचना का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया करते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ आलोचक ऐसे भी हैं जो सीमित घेरे की सीमित आलोचनाएँ खोजपूर्ण ढंग से किया करते हैं। फिर इन्हें छोड़कर जो आलोचक आजकल अत्याधुनिक कहे जाते हैं, उनमें वाजपेयी जी प्रधान हैं। इनकी आलोचना-शैली कोई मौलिक तथा

स्थिरमान नहीं है, वरन शुक्लेतर आलोचना-शैलियों के समाहार से इनकी आलोचना-पद्धति का निर्माण हुआ है। यद्यपि शुक्ल जी की साहित्यिक घसीट के साथ-साथ वैयक्तिक अभिरुचियाँ भी थीं, पर इनके साथ ही उनमें आलोचनात्मक इतिहास को परखने की कला तथा विश्लेषणात्मक शक्ति का अभाव न था। वाजपेयी जी ने ऐतिहासिक आधार तथा मनोवैज्ञानिक पर्यवेक्षण के साथ कवियों का मूल्य-निर्द्धारण किया है। इनकी आलोचना-पद्धति को केवल ऐतिहासिक आलोचना कह देना अनुचित है, क्योंकि वे पंत या निराला जी के जीवनगत ऐतिहासिक विकास के साथ-साथ उनकी मानसिक वृत्तियों तथा काव्याभिव्यक्ति को "हिन्दी साहित्य: बीसवी शताब्दी" में प्रकाशित करते हैं। सम्भवतः भूमिका में उन्होंने अपनी आलोचना के आधार भी स्पष्ट कर दिये हैं। प्रोक्त ग्रंथ में वे देशकाल के अनुसार कवि की मनःस्थिति का संकेत करते हुए उसके जीवन की ऐतिहासिकता तथा विकास का अच्छा परिचय देते हैं। परन्तु सच बात तो यह हैं कि उनकी यह शैली अपने में घुलमिल कर अभी तक मौलिक एवं स्वकीय नहीं बन पायी है।

प्रभाववादी आलोचना—

प्रभाववादी आलोचना काव्य-पठनान्तर तात्कालिक प्रभाव से उत्पन्न होती है। 'शकुन्तला' के विषय में गेटे का कथन एक प्रकार की प्रभाववादी आलोचना ही कही जा सकती है। परन्तु आज की प्रभाववादी आलोचना विभिन्न वादों की कटुता तथा बन्धन से मुक्त होने के लिए एक तरह का साहित्यिक प्रयास है। इस आलोचना की मूल वृत्ति है ऊब। आधुनिक युग के कुछ आलोचक मनोवैज्ञानिक तथा मार्क्सवादी संकुचित घेरे से अपने को तथा अपनी आलोचना को बाहर निकालने के लिए जिस वैयक्तिक आलोचना का निर्माण करते हैं, उसी का नाम है "प्रभाववादी आलोचना"।

प्रभाववादी आलोचक काव्य-पठनोपरान्त अपने तत्पर चित्त पर पड़े प्रभाव से अपनी वैयक्तिक अनुभूति को ज्यों की त्यों अपनी शैली में व्यक्त करता है। अतः यह आलोचना वस्तुतः अनुभूति, व्यक्ति तथा संस्कार के भेद से सदा अलग हुआ करती है।

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी इस आलोचना के पोषक हैं। परन्तु अभी तक किन्हीं स्वस्थ हाथों में न पड़ने से यह आलोचनात्मक शैली मात्र रह गयी है।

वस्तुतः तथ्य तो यह है कि प्रभावग्रहण करने वाला आलोचक जितना बड़ा, ऊँचा या दूरदर्शक और विश्लेषक होगा, उसकी आलोचनाएँ उतनी ही उच्चकोटि की होंगीं।

गेटे या गुरुदेव रवीन्द्र की संवेगशील-तरंगवत आलोचनाएँ अपने ढंग की अकेली हैं। रवीन्द्र का प्राचीन साहित्य कहीं-कहीं तुलनात्मक होने पर भी अधिकतर प्रभाववादी ही है। उन आलोचनाओं की शैली चाहे जो हो, यह मानना ही पड़ता है

कि आलोचक की अपनी पैनी दृष्टि है। आलोचना करने के लिए जहाँ लोचन नहीं, वहाँ विकट पारिभाषिक शब्द तथा बवंडरशैली सर्वदा प्रयोजन-हीन हैं।

कविता में जैसे कवि का व्यक्तित्व झलकता है, वैसे ही आलोचना में आलोचक का। पर उसे अपनी आलोचना में अधिक 'नमक-मिर्च' नहीं मिलाना चाहिए। यदि आलोचक अपनी पैनी आँखों का परिचय देने के लिए आवश्यकता से अधिक देखने की कोशिश करता है, तो वह खोज पाठक को खटकती है। सच्ची आलोचना आलोचक की सम्यग्दृष्टि की परिचायिका होती है। वही दृष्टि प्रतिभा है, जो अपनी आलोचना की अलग सत्ता की स्थापना करती है। आलोचक को सिर्फ इतना ध्यान में रखना चाहिए कि वह अपनी दृष्टि तथा अनुभूति के लिए सदा आत्मविश्वासी एवं सच्चा रहे। उसे जिस तरह अनुभव होता हो, उसे सच्चाई से उसी तरह निःसंकोच व्यक्त करे।

यहाँ एक बात स्वीकार करने में किसी प्रकार की हिचक नहीं होना चाहिए कि संसार में आलोचना की कसौटियाँ हमेशा बदलती रहेंगी, पर उनका जन्म प्रभाववादी आलोचना से ही होगा। वैयक्तिक भेद से प्रभाव के मूल तथा केन्द्र या दृष्टि अलग-अलग रहेगी। पर प्रभाववादी आलोचना की मृत्यु नहीं होगी।

आधुनिक आलोचना के क्षेत्र की ओर ध्यान देने पर एक और बात का पता लगता है। वह यह कि हिन्दी में आज तक मौलिक आलोचना-कृतियों का अभाव ही है। इसे स्पष्टतः यों कहा जा सकता है कि जैसे टालसटाय, टैगोर या टी० एस० इलियट की मौलिक आलोचना-कृतियाँ तथा सिद्धान्त हैं, वैसी कृतियाँ तथा सिद्धान्त हिन्दी में नहीं हैं। तिस पर भी शुक्ल जी को आर्नोल्ड कह कर नामधारी पिछलग्गू वाहवाही लूट रहे हैं। अज्ञेय जी ने यद्यपि मनोवैज्ञानिक आलोचना का पल्ला पकड़ा, पर उन्हें गर्व है कि उन्होंने 'शेखर' का निर्माण टी० एस० इलियट के कथन* के अनुसार किया है। (अज्ञेय जी को संभवतः अभी तक विश्वास है कि उन्होंने 'शेखर' में केवल निरीक्षण भर किया है, अपना व्यक्तित्व अलग कर रखा है।)

हिन्दी में आलोचना के नाम पर प्रकाशित कृतियों को देखने पर पता चलता है कि उनमें से कुछ तो 'एक अध्ययन' मात्र हैं और कुछ 'संग्रह' या इधर-उधर से बटोरे गये लेख। पर और भी खेद की बात तो यह है कि ये सभी "परीक्षोपयोगी" ही हैं, मौलिक अनुसंधान-मूलक आलोचना नहीं। इस कार्य का प्रधान श्रेय आगरा तथा दिल्ली के प्रकाशकों को विशेष रूप से मिलना चाहिए।

डाक्टरेट के लिए लिखी गयी जो अनुसंधान-मूलक आलोचनाएँ हिन्दी में मिलती

---

* Poetry is not an impression of personality, but an escape from personality.

हैं, वे अधिकतर एम० ए० परीक्षा के नोट्स तथा शालोपयोगी व्यापारिक पुस्तकों की श्रेणी में आती हैं। एक बार हिन्दी के एक प्रमुख आलोचक ने, जो काशी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग से संबद्ध हैं, मुझ से कहा था कि 'जब हिन्दी में अच्छे काव्यों का अभाव है तो अच्छी आलोचना कैसे लिखी जा सकती है?' पर आलोचना केवल काव्य पर आश्रित नहीं है। उसका स्वतन्त्र स्वरूप भी है, जिसे रूप देने का भार नयी पीढ़ी पर है।

गद्यगीत—

तुम्हीं

— श्री उमानन्दन चतुर्वेदी —

क्या वह तुम्हीं हो जो इन सोने वालों की दुनियाँ में शुक्र की उज्ज्वल हरीतिमा के सहारे चुपचाप एक मधुर जागरण बन कर उतर पड़ते हो ?

जब विश्व की सम्पूर्ण चेतना धीरे-धीरे नींद के निस्तल पारावार में डूब-डूब कर नीचे बैठ जाती है, तो क्या तुम्हीं आकर अपनी मन्द श्वासों से एक के बाद एक सपनों की लहरें छोड़ते हुए सूक्ष्म के फेनिल अवशेषों को अदृश्य कूल के अधरों की ओर बरबस खींचे ले जाते हो, चुम्बनों की मधुर स्मृतियों से रंग भरने को ?

क्या तुम्हीं ने उस दिन गाया था जब मेरी जीवन-वीणा के दोनों तार आप ही आप उन्मत्त होकर बज उठे थे ? जब मैंने चाँदी की डोर से गुथे हुए पलकों में आँसुओं के मोती की झालर सजाई थी तो सोते में चुपके से मेरे हीरक-शृंगार को विशृंखल करके भाग जाने वाले भी क्या तुम्हीं थे ?

अरे, तब तो वह तुम्हारा ही चुम्बन था जिसने मेरी आँखों में एक मदिर लाली भरदी और प्राणों में उन्माद।

कहानी—

स्वप्न संभव

— श्री विमला बांठिया

एक बड़े से शिलाखंड पर शिला के ही सहारे वह बैठी थी। उसके पैर नदी के जल से खिलवाड़ कर रहे थे। नदी के दूसरी पार बड़े-बड़े वृक्ष खड़े थे, जिनके पीछे सुरम्य पर्वतराशि थी, जो हरी-हरी धास या पेड़ों से ढकी होने से दूर से ऐसी दिखाई देती थी, मानों हरी मखमली साड़ी पहने कोई दुलहन किलक-किलक कर हँस रही हो। इस पार से वह पर्वत-शृंखला बहुत ही मनोरम दिखाई पड़ती थी। वह जिस शिलाखंड पर बैठी थी, उसके ठीक पीछे महादेव का मन्दिर था। महादेव के प्रति उसके मन में एक अजीब-सी श्रद्धा और विश्वास था। उनके दर्शन किये बिना वह जल का स्पर्श तक न करती थी और जब भी अवसर पाती इधर खिसक आती। दर्शन कर उसी शिलाखंड पर बैठी घंटों नदी की ओर ताका करती और उसकी कल-कल ध्वनि में अपना अतीत, वर्तमान, भविष्य सभी कुछ भूल जाती। रंग उसका श्याम था, पालिश किये हुए काले पत्थर के समान चमकदार, और नक्श ऐसे, मानो किसी अप्रतिम कलाकार की छैनी की रगड़ खाकर काला पत्थर एक असीम सौन्दर्यमय मूर्ति के रूप में खिल उठा हो। उम्र उसकी यही उन्नीस-बीस साल की होगी, पर उसके मुख का वह भोला-सा भाव उसे बिल्कुल ही नन्हीं-सी बच्ची बना देता था। नदीतट सुनसान था। वह निश्चल बैठी एकटक जल की ओर ताक रही थी कि बिना किसी सूचना के एक पत्थर उसके पैरों के पास पानी में आ गिरा, जिसके कारण वह ऊपर से नीचे तक पानी से सराबोर हो गयी। वह हँस पड़ी, मुख घुमाया और कूदकर आगन्तुक के सामने जा खड़ी हुई, बोली—"तुमने सोचा होगा, मैं डर जाऊंगी, क्यों ?"

आगन्तुक ने धीमेधीमे-से स्वर में कहा—"न, तुम बहुत बहादुर हो। पर तुम्हें सर्दी नहीं लगती राधा ? इतने कपड़े पहने रहने पर भी मैं काँपे रहा हूँ और तुम बस एक ही कपड़ा पहने हो। मरने की सोची है क्या ?" राधा मुस्कराई, बोली—"मौत माँगने से नहीं आती लक्षमरण। यह सर्दी मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकती। इससे भी बिकट सर्दी मैंने एक चोली में सही है, चिन्ता न करो।"

लक्षमरण क्षरण भर अपलक उसे देखता रहा। रातदिन के परिश्रम से राधा का लावण्य निखर उठा था। 'कितनी सुन्दर है यह, और कितनी परिश्रमी' लक्षमरण ने

सोचा। वह स्वयं को राधा के समक्ष हीन मानता है। 'आदर्श क्या है, इसकी विवेचना करने लायक ज्ञान उसने नहीं पाया, किन्तु राधा की कर्म और वाक्-शक्ति दो ऐसी चीज़ें हैं जिससे वह लक्षमण की दृष्टि में बहुत ऊँची उठ गयी थी। कुछ ही महीने उसे यहाँ आए हुए हैं। शेखावाटी के एक बूढ़े किसान की यह चौथी स्त्री थी। न जाने किस हृदयहीन ने इस कली को उस खूसट के गले बाँध दिया था। बूढ़ा मर गया, तो लक्षमण का पिता रामदीन. जो दूर के रिश्ते में राधा का ससुर लगता था, उसे अनाथ समझ अपने घर ले आया। राधा ने गृहस्थी का भार अपने कन्धों पर उठा लिया। वह तब भी हँसती हुई आई थी और आज भी हँसती हैं। दो दिन में वह पड़ोसियों की अपनी बन गयी। वह सबसे हँसकर बोलती, दुख-दर्द में काम आती। सब उसमे स्नेह करते थे।

लक्षमण को यों अपलक ताकते देख वह हँस उठी, बोली—"क्या देख रहे हो इतना ? जमीन की बाबत दद्दा से झगड़ तो नहीं आए। इतने दिन हो गये, पर तुम लोग अपनी भूदान की योजना भी नहीं बना सके। क्या सोचा है ?"

लक्षमण ने शान्त भाव से राधा को देखा। राधा के प्रति उसके मन में आदर था, अनुराग था। किन्तु यह अनुराग सागर-सा शान्त था, निर्विकार और निश्चल। राधा के प्रति उसका प्रेम आज तक बढ़ता रहा हैं, पर मुँह फोड़कर बाहर कभी नहीं आया। लक्षमण समझता है कि राधा की जो निर्धारित सीमाएँ हैं, उसे उन्हीं में बँधकर चलना है, पर साथ ही यह भी जानता है कि वह है एक हल्की-फुल्की बँदरिया-सी ही सरल और निस:संकोची। और शायद इसीलिए वह उसके प्रति अपने अनुराग की बात उससे कह नहीं पाता। दोनों सदा साथ रहते हैं, काम करते हैं, पर मर्यादा से बाहर पैर नहीं रखते। देखते हुए सहसा लक्षमण की दृष्टि कुछ धुँधली-सी पड़ गयी, कहा—"बड़ी मुसीबत है राधा, गाँव के सब युवक तैयार हैं, पर दद्दा सुनते ही नहीं। कहते हैं कि सरकार से नहर के रास्ते में जितनी ज़मीन पड़ती है उसके पैसे लो, तब नहर निकालो। हम कौन ऐसे भारी रईस हैं जो सेंतमेंत अपनी जमीन दे दें। उनकी देखा-देखी और लोग भी तैयार नहीं होते, समझ में नहीं आता क्या करें।"

राधा गम्भीर हो गयी, बोली—"यह तो बुरा है लक्षमण, जमीन तो देनी ही चाहिए, सीधी तरह नहीं देंगे तो सरकार जबरदस्ती ले लेगी। और देखा जाए तो ऐसे पीछे हटने से काम चलेगा भी कैसे ? आज देखो, हमें खेतों की सिंचाई के लिए बरसात को ताकना पड़ता है। पिछले साल बरसात नहीं हुई तो खेती सूख गयी। ऐसा ही होता रहा तो आगे न हमारे पास ढोर रहेंगे, न घर होगा और न खाने को अनाज। हमें उधार लेना पड़ता है और एवज में अपने ढोर, गहने, मकान तक बेच देने पड़ते हैं। ना, लक्षमण, दद्दा को तुम्हें राजी करना ही चाहिए। वे गाँव के मुखिया हैं। उनके तैयार होते ही सब अपनी जमीन खुशी से दे देंगे।"

राधा की बातों से लक्षमण उत्तरोत्तर चकित होता गया। उसने कब और कहाँ इतना सीखा, समझ नहीं सका। ऐसी ही बातें वह भी तो सोचता था, पर मानो ऊपर से। मानो उनमें कुछ सार ही नहीं था। अब उसके नेत्रों के आगे पिछले कई सालों के ऐसे चित्र घूम गये जब किसानों ने सूखे से त्रस्त होकर अपने घर, ढोर-और अन्त में जमीन तक महाजनों को बेच दी थी। गयी हुई जमीन दोबारा लौटा सकने लायक पैसा फिर वे जुटा नहीं सके। वे किसान, जो पहले अपनी जमीन के स्वयं मालिक थे, अब दूसरे के नाम पर उसी जमीन को गोड़ते-बोते थे। कभी-कभी तो अवस्था इतनी गिर जाती थी कि भयंकर रोगों में भी वे एक बूँद दवा न ले सकते। घर का प्यारा से प्यारा आँखों के सामने दम तोड़ देता और वे बेबस बैठे ताका करते। यह समय बहुत पुराना नहीं है। हाँ, आज अवश्य गाँव में सरकारी अस्पताल है जहाँ रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा की जाती है। युवक डाक्टर मानो मानवता की साकार मूर्ति था। इतना दयावान और सहृदय कि आवश्यकता के समय रातें रोगी के सिरहाने बैठा-बैठा बिता देता था। अमीर, गरीब, ऊँच-नीच किसी के प्रति उसके मन में भेदभाव नहीं था। वह बड़े गर्व से कहा करता था कि मैं स्वतंत्र भारत का नागरिक हूँ, जिसकी संस्कृति ने हर क्षेत्र में मानव मात्र को समान समझना सिखाया है। डाक्टर जो कहता था, वही करता भी था। जिस सहृदयता से वह पंडित दाताराम की चिकित्सा करता, उतने ही स्नेह से कालू भंगी की नाड़ी देखता था। उसी के प्रयत्न से गाँव में पिछले वर्ष एक पाठशाला खुल गयी थी। बच्चे तो पढ़ते ही थे, पर लक्षमण जैसे युवक भी रात्रि को पाठशाला में अध्ययन के निमित्त जाया करते थे। डाक्टर की संगति का ही फल था कि लक्षमण का हृदय भी भेदभाव की श्रृंखलाओं को तोड़ कर उन्मुक्त हो उठा था। पिछले चार वर्षों में गाँव के वातावरण में आशातीत परिवर्तन हुआ। गाँव के बड़े-बूढ़ों ने खूब नाक-भौं सिकोड़ी, पर देश की इस भावी श्रृंखला की कड़ियों के आगे उनकी एक न चली। लक्षमण और उसके साथी दिन में खेतों पर काम करते और रात में पढ़ते। लक्षमण कभी-कभी अनमना अवश्य हो उठता था, पर वह इतना हलका नहीं था कि हृदय का भाव प्रकट कर देता। वह जानता था कि उसका प्रथम कर्त्तव्य देश के प्रति है और कर्त्तव्य भावना से ऊँचा होता है। भूदान यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए जी-जान से उसे प्रयत्न करना है, गाँव की भूमि को स्वर्ग बनाना है, उसके बाद वह अपनी हृदयगत भावनाओं का विश्लेषण कर सकने का अधिकारी होगा। मस्तक उन्नत कर बोला—"हाँ राधा, तुम्हारी बात बिलकुल ठीक है। डाक्टर बाबू कहते थे कि भारत गाँवों का देश है, इस कारण हर गाँव वाले को चाहिए कि वह अपने गाँव की उन्नति करने की कोशिश करे, ताकि संसार में भारत का नाम ऊँचा हो। गाँव के लोग पढ़ेलिखे नहीं हैं, भेदभाव, छूतछात, न जाने क्या क्या दोष उनमें भरे पड़े हैं, जिन्हें हटाने की बड़ी

जरूरत है। जमींदारी अब नहीं रही। हर आदमी को समझना चाहिए कि गाँव उसका है और उसे ऊँचा उठाना उसका धर्म है। वह देश की उन्नति की कड़ी है। इस काम में सरकार गाँव वालों की कितनी मदद चाह रही है। यदि सब सरकार के काम को अपना समझ कर हाथ बटाएँ तो सरकार का काम कितना हल्का हो जाएगा, गाँव कितने अच्छे हो जाएंगे। गाँव का हर बच्चा पढ़ालिखा होगा। खेती के इन नये तरीकों से काम लेकर हम फसल भी अच्छी पैदा कर सकेंगे। इसके लिए गाँव में से नहर का निकलना जरूरी है। हमें अपनी भूमि सरकार को दे देनी चाहिए। संत विनोबा की वाणी मानकर भूदान यज्ञ करना चाहिए, कि संपत्ति एक की न होकर सब की हो जाय। सच राधा, डाक्टर बाबू की बात मन में ऐसी जमती हैं कि क्या कहूँ। यदि इन बूढ़ों की अकल इतनी ठोस न हो, तो हमारे गाँव स्वर्ग बन जायँ।"

राधा हँस पड़ी, बोली—"बूढों को क्यों कोसते हो लक्षमण! अपने बल पर विश्वास करो। श्रद्धा, प्रेम और साहस ने किसे नहीं जीता। हाँ छीना-झपटी करके तो तुम्हें कुछ भी नहीं मिलेगा। धीरज भी तो कोई चीज है। धीरे-धीरे सब मान जाएँगे। अच्छा, चलें अब, शाम हो रही है। पढ़ने भी तो जाओगे। तुम्हारे कारण देखो मैं भी कितना सीख गयी हूँ। तुम गुरु हो मेरे।" कह कर लक्षमण की ओर देख कर वह फिर हँस पड़ी। लक्षमण के बड़े-बड़े नेत्रों में अनुराग झलक आया। राधा की ओर देखकर वह भी मुस्करा दिया।

× × ×

रोटी बेलते-बेलते राधा ने रामदीन से कहा—"इस बार ज्वार तो खूब बढ़िया है दद्दा, देखते ही मन खिल उठता है। बस नहर निकलने के बाद तो अपनी धरती सोना ही बरसाने लगेगी।"

राधा की पहली बात से तो रामदीन प्रसन्न हुआ था, पर दूसरी से चिढ़ गया, बोला—"फिर वही नहर की बात। तुम लोगों का सिर फिर गया दीखे मुझे तो। दो चार अच्छर पढ़ लिये, तो मानो किला जीत लिया। अरे नहर वाले रास्ते में ही तो अपना पूरा खेत पड़े है, वो ही चला गया तो खावेंगे क्या। आज कल के छोरा-छोरी क्या हुए, आग का गोला हो गये। जिस घर में देखो वहाँ यही, बस जमीन दे दो, नहर निकलने दो। उसपर उन संत विनोबा जी का सन्देस आता है कि जमीन दान करदो। यह भी खूब रही! खरीदने में तो पैसे लगे हमारे बाप-दादों के, सींचे हमने अपने हाड़ों से और ये लोग ऐसे माँगें मानो फोकट में हमने कहीं से जमीन लेली हो। विनोबा आवें चाहे तुम लोग गरजो, जमीन मैं नहीं दूँगा।"

राधा रामदीन का यह उग्र रूप देख कर सहम गयी। वह परायी थी। यह ठीक था कि यहाँ भी उसे अपनी मेहनत के बदौलत ही इतना सुख मिल रहा था, पर अन्य स्थान पर उसे यह सुरक्षा, यह सम्मान नहीं मिल पाता। रामदीन का घर उसका अपना

ही घर था। उसका वह सम्मान करती थी। वह वृद्ध था, उसका सम्मान करना भी चाहिए था, फिर भी विनोबा के लिए इस प्रकार की बात सुनकर उसे अच्छा नहीं लगा। वह पुरुष, जिसने लोक-कल्याण के लिए अपना सब सुख-दुख ताक पर रख छोड़ा है, सभी की श्रद्धा का पात्र है। विनोबा के बारे में राधा ने जो कुछ सुना है, वह लक्षमण से ही सुना है और जितना भी वह जानती है उससे ही उसका मन श्रद्धा एवं भक्ति से ओत-प्रोत हो गया है। पर रामदीन से वह क्या कहे! वही नहीं, आज न जाने कितनों के मन में अपनी जमीन अपनी ही कर रखने का यह मोह है। इसे वे छोड़ना नहीं चाहते, पर छोड़ना तो होगा ही। हमें एक का नहीं, सबका भला देखना है। भारत से दुख-दैन्य, गरीबी को समूल नष्ट कर देना है, तभी तो हम सच्चे अर्थों में स्वतंत्रता पा सकेंगे। यह सब राधा लक्षमण के मुख से सुनती और गुनती रहती है। रामदीन आज न माने, पर कल मानना ही होगा। राधा बोली नहीं, पर रामदीन के संकल्प को जड़ से उजाड़ देने का उसने मन ही मन निश्चय कर लिया।

रामदीन ने राधा का मुख देखकर सोचा कि वह शायद बुरा मान गयी है। कुछ कहना ही चाहता था कि लक्षमण आ गया। राधा का मुख चूल्हे की आँच के कारण इन्द्रधनुष सा सातरंगी दिखाई दे रहा था। उसकी ओर देख कर आज सहसा उसका मन दुख से भर गया। इस छोटी-सी उम्र में संसार के सब सुखों की ओर से उसे उदासीन कर देने वाले समाज के प्रति उसका मन आक्रोश से भर उठा। वह बूढ़ा तो मानो उसे 'विधवा' की संज्ञा दे मरा। लक्षमण ऊँचे कुल का है। उसके समाज में 'विधवा विवाह' नहीं होता। छोटी हो चाहे बड़ी, 'विधवा' जीवन भर पति के नाम पर बैठी रोती रहे, यही उसने देखा है। पर राधा को देखने के बाद से उसे लग रहा था, कि समाज के ये कायदे कानून तो बस भोली गौ के वध के लिए हैं। यह भला कहां का न्याय है कि पुरुष तो एक स्त्री के मरते ही दूसरा विवाह रचा ले और स्त्री एक ही के नाम पर जीवन भर दुख की भट्टी में झुलसती रहे। नहीं, ये सब ढकोसले हैं। डाक्टर बाबू ठीक कहते हैं कि ये सब पोंगापंथियों की खींची हुई लकीरें हैं, जिन्हें अब तोड़ना ही पड़ेगा। राधा का उस बूढ़े किसान से विवाह विवाह नहीं, ग्रामीण समाज की वेदी पर मूक गाय का बलिदान था। डाक्टर बाबू भी तो कितनी ही बार इस विषय पर उससे बात कर चुके हैं कि लक्षमण राधा से विवाह करले, पर यहाँ गाँव में खुल्लमखुल्ला अभी न तो वह ऐसा कर ही सकता है और न यह अवसर इस बात के लिए अनुकूल ही है। इसके सिवा वह राधा की मनोवृत्ति से भी परिचित नहीं था। क्या पता वह इस विवाह को पसन्द करे, न करे! सड़ी-गली वस्तु जैसे फेंक दी जाती है, उसी दृष्टि से यदि वह इस विवाह को देखती हो तो! इस प्रकार का कोई भी कदम उठाने के लिए उसे राधा की मनोवृत्ति का पता लगाना पड़ेगा। शायद

कभी अनुकूल वातावरण मिल जाय, इसी आशा में उसने विवाह के न जाने कितने प्रस्ताव ठुकरा दिये थे। वह समाज की इन रूढ़िवादी लकीरों को तोड़ नवयुग का निर्माण करना चाहता था। न जाने क्यों राधा को देखकर उसका चेहरा भक से जल उठा, पर उसे रामदीन न देख सका। देखा किसी की नीची दृष्टि ने, किन्तु बिना कोई भाव प्रदर्शित किये वह दृष्टि बराबर हाथ की रोटी की ओर ही लगी रही।

रामदीन ने पूछा—"हाथ-मुँह धो लिया ?"

"हाँ।"

"तो खाने बैठ।"

खाते-खाते लक्षमण कुछ सोच रहा था, फिर कहा—"दद्दा।"

"हाँ।"

"नहर की योजना पक्की है। मुझे कल ज़मीन के बारे में आखिरी फ़ैसला दे देना है। बताओ तुमने क्या सोचा है ?"

रामदीन जल उठा, बोला—"कहा तो कि मैं अपनी जमीन का एक इंच टुकड़ा भी नहीं दूंगा। पहले कीमत दो, तब सरकार से कहो कि बात करे। यहाँ कोई खैरात का माल नहीं है।"

लक्षमण गम्भीर होकर बोला—"मैंने तो सोच लिया है दद्दा, कि सारी ज़मीन दे दूंगा और एक कौड़ी न माँगूगा। यदि सरकार दूसरी जगह ज़मीन देगी तो ठीक, नहीं तो सारा भार उसी पर डाल कर निश्चिन्त हो जाऊँगा। जमीन मेरी नहीं, देश की है, हम तो उसके सेवक भर हैं। दद्दा, हमें अपना नहीं, सारे गाँव का भला देखना है।"

रामदीन ने तीखे स्वर में कहा—"जिस जमीन को मैंने अपना खून-पसीना एक करके बनाया है, उसे बेमोल दे दूं ? कभी नहीं, लछमन ऐसा कभी नहीं होगा। मेरे जीते जी तू इस ज़मीन का एक टुकड़ा भी नहीं दे पायगा सो समझ रख।"

और धीरे-धीरे बात इतनी बढ़ गयी कि रामदीन ने लक्षमण के गाल पर 'चटाख' से एक थप्पड़ जमा दिया। लक्षमण की आँखें पहले तो लाल हो गयीं, फिर एकदम शान्त भाव झलक आया, बोला—"जमीन हर हालत में देनी पड़ेगी दद्दा। मुझे कल उत्तर देना है। तुम 'ना' न करो, गम्भीरता से सोचो दद्दा।" कहकर वह थाली छोड़ कर चला गया।

रामदीन का सिर उसकी छाती पर लटक गया। क्या सचमुच उसका बेटा होकर लक्षमण बाप-दादों की ज़मीन दान कर देगा ? पर वह सरकार को जमीन क्यों दे ? सरकार ने उसे क्या दिया है ? स्वतंत्रता मिली है तो सरकार को मिली है, उसे नहीं मिली। खेती सूख जाती है तो कोई उसे अनाज देने नहीं आता, उसका लगान

माफ़ नहीं करता। पर यदि लक्षमण नहीं माना तो ? यह ज़मीन तो उसी की है। जमीन वही गोड़ता है, बोता है। वह स्वयं तो रखवाली भर करता है। जमीन की ममता काट देना कितना कठिन है, यह कोई किसान से पूछे। अपनी हड्डी-पसली एक कर वह खेत बोता है, फसल काटता है, तब भी भर पेट खाने को नहीं मिलता। रामदीन बीते जमाने को नहीं भूला है जब उसे अकाल पड़ने पर फाके करने पड़े थे और किसी ने उसकी बात नहीं पूछी थी। अपनी मेहनत से आज उसने इस ज़मीन को बनाया था, किसी से छीना नहीं था।

"दद्दा।"

रामदीन ने झुका हुआ मुख उठाया, भावहीन स्वर में कहा :—"हाँ !"

"रोटी खालो दद्दा ! ठंडी होने पर खा नहीं सकोगे।"

रामदीन थाली पर से उठ गया, बोला—"नहीं खाई जायगी बहू। लक्षमण अधखाया चला गया। ऐसी बात तो आज तक कभी नहीं हुई। इतनी फेर-बदल जमाने में कैसे हो गयी !"

राधा ने धीरे से कहा—"नाराज न हों तो एक बात कहूँ।"

"कह !"

"आपने लक्षमण को मार कर अच्छा नहीं किया दद्दा, जवान बेटे पर हाथ उठाना ठीक नहीं।"

रामदीन ने दुख से कहा—"करोध में आदमी पागल हो जाता है। तू ही कह, यह जमीन मैं दे दूँ, फिर खाऊँगा क्या ? लक्षमण तो समझता नहीं ! न जाने किससे ये बातें सीखी हैं। जिस घर में देखो, वहीं यह तकरार कि जमीन दे दो। मेरा तो दिमाग काम नहीं देता।"

"दद्दा !"

"हाँ।"

"एक के भले से सबका भला क्या ज्यादा अच्छा नहीं है ?"

रामदीन ने सजग होकर कहा—"क्या मतलब ! हाँ, हाँ, बोल, मैं नाराज थोड़ी हूँ तुझसे।"

"इस गाँव से जो नहर निकलेगी, उसके कारण बहुतों की जमीन चली जायगी, पर सरकार उन्हें कुछ ठिकाने पर जरूर लगायगी दद्दा ! सोचो तो, जिस साल सूखा पड़ता है, लोगों की क्या दशा होती है ! नहर निकलने से खेती का कितना आराम हो जायगा। जमीन देने के लिए ना न करो दद्दा ! यह तो पुण्य का काम है। इससे हाथ नहीं खींचना चाहिए।"

"पर.......!"

"मन में हिचक न रखो दद्दा, लक्ष्मण की बात मानलो। वे बहुत समझदार हैं। डाक्टर बाबू के कारण वे कितना समझने लगे हैं! भारत सरकार के साथ हमें पूरा सहयोग देना चाहिए दद्दा। लक्ष्मण की बात मानलो, जमीन देदो।"

"..............।"

"जमीन देदो दद्दा! तुम आगे बढ़ोगे तो सब तैयार हो जाएंगे। दो दद्दा! सबको देखो, एक को मत देखो।"

"ओह!" रामदीन ने अपना सिर पकड़ लिया—"अच्छा, अच्छा, मैं सोचूँगा, सोचूँगा" कहता हुआ वह खाट पर पड़ गया।

× × × ×

कुछ वर्ष बाद :—

एक गाढ़े की धोती व कमीज पहने लक्ष्मण नहर के किनारे खड़ा था। राधा एक बड़े से पत्थर पर बैठी कह रही थी—"रामराज्य का हमारा स्वप्न पूरा हो गया। आज हम सब देश के जिम्मेदार नागरिक हैं और अभी ही हमने सच्चे मायनों में स्वतंत्रता प्राप्त की है। हमारा गाँव! कितना बदल गया है! इतना स्वच्छ भरा पूरा तो यह कभी नहीं रहा!"

लक्ष्मण धीरे से हँस पड़ा और साथ ही लक्ष्मण का छोटा रूप जगत भी खिलखिला उठा। लक्ष्मण अब खेत का स्वामी नहीं सेवक था। पैदावार का एक उचित भाग उसे मिलता है, बाकी वह सरकार को दे देता है। भारत में जैसे युग बदल गया है। हर गाँव में मानो अमृत की धारा बह रही है। रूढ़िवादी पोंगापंथियों द्वारा निर्मित ढकोसलों की जंजीरें टूट-टूट कर गिरती जा रहीं हैं। प्रत्येक घर एक नये जीवन से किलकता है। खेत सोना बरसाते हैं। लक्ष्मण के नेत्रों के आगे अतीत के कई चित्र घूम गये। तब क्या था, और आज क्या है। रामदीन, सुखलाल, दीनानाथ, गाँव के बड़े-बूढ़े तक उसकी बनाई मर्यादाओं को स्वीकार करते हैं। वह अपने गाँव की सभा का अध्यक्ष जो है।

पाठ-पीछे लहलहाते खेतों को दृष्टिभर देख लक्ष्मण उन्मुक्त हृदय से हँस उठा।

रामराज्य के फूल खिलाओ देश में

— श्री देवप्रकाश गुप्त 'अंगार' —

रामराज्य के उजले हँसते फूल खिलाओ देश में,
तभी एशिया का मुखड़ा मुस्काएगा !

धरती पहिने धानी-धानी चूनरी,
आँगन-अम्बर बजे नेह की बंसरी,
आत्मा की उर्वशी सत्य की सेविका
धरती के बेटे मुस्काएँ कनक-किरण की छाँव में,
तभी तिमिर का परदेशी घबड़ाएगा !
तभी एशिया का मुखड़ा मुस्काएगा !

मेहनत के मोती चमकीले ताज रे,
गीत रेशमी ज्योतित नया समाज रे,
दीप्य सृजन के स्वर को दो सम्मान सब,
पंच प्रदीप बलें जीवन के ऊँचे-नीचे ठाँव में,
तभी फूल, फौलादी जादू लाएगा !
तभी एशिया का मुखड़ा मुस्काएगा !

विश्व-शांति का पांचजन्य फूँको सभी,
सत्-सुन्दर का पंथ नहीं छोड़ो कभी,
शाहजहाँ मिट्टी का रहे उदास नहीं,
सम्मोहन की बसे माधुरी जन-गण-मन के भाव में,
तभी ऐक्य का पञ्चम रस बरसाएगा !
तभी एशिया का मुखड़ा मुस्काएगा !

स्वर्ग देश के माथे बाँधे सेहरा,
वृद्ध हिमालय का चमके तब चेहरा,
सुख-श्री की बेटी से शादी गीत की,
सौ-सौ तूफानों के पौरुष नव विहान के पाँव में,
तभी साँस का चाँद धरा पर आएगा !

राम राज्य के फूल सजीले खिलें शहर औ' गाँव में,
तभी रश्मि-नीलम-वितान तन जाएगा !
तभी एशिया का मुखड़ा मुस्काएगा !

गुजरात के श्रेष्ठ साहित्यकार—

धूमकेतु

— श्री शांति आंकड़ियाकर

गुजराती साहित्याकाश में सब से अधिक प्रकाशित तारा धूमकेतु हैं। एक बहुत छोटे गाँव में और पिछड़े हुए प्रदेश में जन्म लेकर उन्होंने जो-जो यातनाएँ सहन की हैं, वे सचमुच हमारे लिए अनुताप की बात हैं, लज्जा का कारण हैं। और उन्हीं यातनाओं ने उन्हें प्रेरणा, शक्ति और अनवरत कार्य करने की लगन प्रदान की, जिससे वे आज हमारे मान्य साहित्यकार बने हैं। उन्होंने कुल मिलाकर कहानी-संग्रह, ऐतिहासिक उपन्यास, चिन्तन, मनन और चरित्र की ६६ पुस्तकें लिखी हैं जो इस प्रकार हैं—कहानी-संग्रह : तणखा मंडल १-२-३-४, प्रदीप, त्रिभेदो, आकाशदीप, परिशेष, वनछाया, अनामिका, वनरेखा, सुवर्णरेखा, प्रतिबिंब, मल्लिका अने बीजी वातो पड़छाया, ज्ञानगोष्ठि, पड़ने छांयड़े, जलदीप। ऐतिहासिक उपन्यास : वादिनी देवी, अजित भीमदेव, चौलादेवी, राजसन्यासी, कर्णावती, राजकन्या. जयसिंह सिद्धराज, त्रिभुवन गंड, अवन्तिनाथ, गुर्जरेश्वर कुमारपाल, राजर्षि कुमारपाल, नायिकादेवी, रायकरण घेसो, राजमुकुट, अजिता, पराजय, पृथ्वीश, आम्रपाली। गद्यकृतियाँ : रजकण, पभ्ररेणु, मेघबिन्दु, जलबिन्दु, तुषारबिंदु, तेजबिन्दु, सर्जन अने चिन्तन, वातायन, जिब्राननी जीवन-वाणी। नाट्य कृतियाँ : ठण्डीक्रूरता अने बीजां नाटको, परशुराम, नेपोलियन, हुएनसंग, श्री हेमचन्द्राचार्य। जीवनचरित्रावलि : इतिहास-दर्शन, वीर वनराज, पगदण्डी (प्रवास), आनन्द रात्रि अने बीजी वातो, जीवनपंथ (आत्मकथा), जीवनरंग (आत्म कथा), लोक- रामायण भाग १-२, भारत इतिहास नुं रेखादर्शन, गुजरातनुं इतिहास-दर्शन, ज्ञान-कथाओ भाग १-२-३-४, तेजनी मूर्तिओ, पड़घा। इनके उपरान्त २०-२५ पुस्तकें अब तक अप्रकाशित हैं जो निकट भविष्य में प्रकाशित होंगी। इनकी लेखनी इतनी तेजस्वी है कि पढ़ने वाला स्वयं पुस्तक में खो जाता है और पुस्तक पूर्ण किये

लेखक

बिना मन नहीं मानता। इनकी शैली हृदय को बेधती हुई निश्चित ध्येय तक पहुँच जाती है। इनका व्यक्तित्व वास्तवतावादी और संवेदनशील है। इनकी प्रत्येक रचना में समाज के मध्यवर्ग की मनोदशा का यथार्थ चित्रण है जो गुजरात के बहुत कम लेखकों की कृतियों में दिखाई देता है। मैं तो यह भी कहूँगा कि जैसे प्रेमचन्द को पाकर हिन्दी साहित्य समृद्ध हुआ है, वैसे ही धूमकेतु को पाकर गुजराती साहित्य श्रीसम्पन्न हुआ है और विकसित भी हुआ है।

इन महान साहित्य-सम्राट का जन्म सौराष्ट्र के मध्य सौराष्ट्र जिले में वीरपुर नामक एक छोटे गाँव में सन् १८९२ की १२ दिसम्बर को हुआ। उस दिन विक्रम संवत् १९४९ के मार्गशीर्ष मास के कृष्ण पक्ष की नवमी तिथि और सोमवार था। इनके पिता जी का नाम गोवर्धनराम जोशी था। धूमकेतु का नाम पहले भीमदेव रखा गया था और फिर गौरीशंकर। किसी समय बीलखा-वासी इनके सम्बन्धी गौरीशंकर भट्ट जी ने उनका नाम मणिराय भी रखा था। जाति के हैं ये खेड़ापाल ब्राह्मण। गुजरात और सौराष्ट्र में ही खेड़ापाल ब्राह्मण नामक जाति है, स्वभाव से नम्र, शरीर से हृष्ट-पुष्ट, गुण से निश्छल और श्रद्धालु। खेड़ापाल जाति के कुछ कुटुंब आजकल मद्रास में भी रहते हैं। धूमकेतु को बचपन से ही साहित्य की ओर अभिरुचि थी। छुटपन में उन्होंने 'विहारी', 'कुदरत प्रेमी' आदि नामों से रचनाएँ लिखी हैं, जिन्हें हम आगे देखेंगे। बाद में 'धूमकेतु' नाम से लिखना आरम्भ किया और आजकल उसी नाम से वे लिख रहे हैं।

इन्होंने प्राथमिक शिक्षा वीरपुर में ग्रहण की। माध्यमिक शिक्षा के कुछ साल जेतपुर में और कुछ पोरबंदर में बिताए। पोरबन्दर में पढ़ते समय इनका विवाह हो गया और इस तरह अध्ययन और गृहस्थी, दोनों का उत्तरदायित्व इनके ऊपर बचपन से ही आ गया। माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करते समय भी आपने बहुत कष्ट सहन किये हैं। उस समय इनके ऊपर इतनी कठिनाइयाँ छा गयी थीं, जिनका पूरा-पूरा वर्णन यहाँ स्थानाभाव के कारण उचित नहीं है। गुजराती की सातवीं श्रेणी उत्तीर्ण करके इन्हें शिक्षक होना पड़ा और नौकरी करते समय भी हैडमास्टरों ने उन्हें बहुत कष्ट दिये। प्राथमिक शिक्षक की नौकरी वीरमपुर में की। इसके पश्चात नौकरी छोड़ कर वे फिर शिक्षा लेने के लिए पहले हाई स्कूल में, फिर कॉलेज में प्रविष्ट हुए। इनका कॉलेज-जीवन भी उतना ही दुःखभरा है। बी० ए० होने के बाद हाई स्कूल में शिक्षक हुए। वहाँ से फिर रेल्वे के दफ्तर में क्लर्की की और फिर अहमदाबाद के सर चिनुभाई नामक मिल-मालिक के यहाँ व्यक्तिगत शिक्षक नियुक्त हुए। अहमदाबाद आने के पश्चात ही इनके जीवन से यशस्विता का सम्पर्क प्रारंभ होता है जो दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है।

इस प्रकार इनके जीवन-विकास से संक्षेप में परिचित होकर इनकी साहित्य विषयक प्रवृत्तियों का, ठेठ बचपन से लेकर अब तक का पर्यवेक्षण करेंगे । इनके जीवन से मिलने वाली प्रेरणा इनके सारे साहित्य में प्रत्येक स्थान पर दृष्टिगोचर होती है। इनकी सारी रचनाओं में संवेदनशीलता और वास्तविकता के दर्शन होते हैं।

कुछ समय के लिए इन्हें बीलखा में शिक्षक होना पड़ा था। तब ये श्रीमन्नथूराम शर्मा जी के आश्रम में रहते थे। यहाँ इन्हें एक सुअवसर प्राप्त हुआ था। दक्षरणामूर्ति नामक एक पुस्तकालय वहाँ था, और उसमें असंख्य पुस्तकें थीं । सामयिक भी प्रचुर संख्या में इसमें आते थे । आश्रम की इस भूमिका की प्रेरणा से धूमकेतु ने लिखना आरम्भ किया और एक-दो नहीं, एक साथ ७६ उपन्यास लिखना आरम्भ किये। उनके नाम भी आश्चर्यजनक थे । 'अवधूत', 'ऐम० ए० ऐल-ऐल० बी०' 'कंथाकुमारी', 'विहारी', 'रमा', 'यशपाल', 'कुदरत विहार'! उक्त उपन्यासों में से एक भी पूरा न हो सका! उन्हें अधूरे छोड़, एक बड़ी तत्त्वज्ञान की पुस्तक का लिखना आरम्भ किया। वह भी अपूर्ण ही रही। उसी समय उत्साह के वेग में इन्होंने एक साल में चार हजार चौथाई फुलस्केप के पृष्ठ लिख डाले ! पर इससे इनको एक महान लाभ यह हुआ कि इस व्यायाम से अधिक लिख सकने का अभ्यास उन्हें सहज हो गया।

इनकी पहली कृति 'उद्गार' नामक पत्र में 'शुद्धमनोबल' शीर्षक से प्रकाशित हुई। पहली प्रकाशित कृति 'शुद्ध मनोबल' का नमूना कुछ भी परिवर्तन किये बिना जैसा का तैसा यहाँ देता हूँ।

"अशुद्ध और अदृढ़ मन से की हुई भक्ति वृथा है। शुद्ध और दृढ़ मन से की हुई भक्ति ही परमात्मा को प्रसन्न करने का सामर्थ्य रखती है। जीवन का हर पल शुद्ध विचार में व्यतीत करो। हर विचार पहले हृदय में उदय होता है, फिर मंथित होता है और बाद में वह वज्रलेप होकर मनुष्य के मन में अपनी निरंकुश सत्ता चलाता है.... ...."। गोवर्धनराम, मणिलाल नभुभाई, कलापी, केशवकृति अरपो, नर्मद आदि का प्रभाव इस गद्यकृति पर स्पष्ट दिखाई देता है । किसी सामयिक में प्रकाशित हुई इनकी यह प्रथम रचना है। उसके पहले उन्होंने लिखा अधिक है, पर प्रकाशित कहीं भी नहीं हुआ। इस तरह १९०९-१० से आरम्भ हुई साहित्य-प्रवृत्ति को ठेठ १९२६ में प्रतिष्ठा मिलती है। इन सोलह वर्षों की साहित्य-साधना ने धूमकेतु को क्या लाभ पहुँचाया, यह इनके शब्दों में ही हम देखेंगे—'उसी समय या मेरे कॉलेज-जीवन में यदि मेरी रचनाएँ प्रकाशित होने लगतीं और एक-दो स्थल पर मेरा चित्र छापा जाता, तो मुझे प्रतीत होता है कि आज मेरा जो विकास हुआ है यह कभी भी नहीं हो पाता। मेरी रचनाएँ किसी ने भी प्रकाशित नहीं की, किन्तु मैं अत्यंत उत्साह से लिखता गया। इससे अधिक लिखने का गुप्त अभ्यास भी मुझे होता गया । और यही कारण है

कि मैं आज पर्याप्त गति से घंटों तक एकचित्त होकर लिख सकता हूँ। और पीछे मैंने ही स्वयं उस समय की अपनी अपरिपक्व रचनाएँ जला दी हैं—प्रसन्न चित्त से।' इनकी उस समय लिखी 'कुदरत विहार' पुस्तक से—जो अप्रकाशित है और जिसका अप्रकाशित रहना ही उचित है—उस काल की इनकी मानसिक स्थिति का दिग्दर्शन करने के आशय से, कुछ अंश यहाँ उद्धृत करता हूँ—

'विश्वमान्य ग्रन्थ, यह क्या है ? कुदरत के सौंदर्य से कुदरत विहार करने से उच्चतम भावनाओं का सद्त पुरुषों द्वारा लिखा हुआ लेख। कुदरत विहार करने से उच्च मानव हृदयों को हुआ पवित्र अनुभव······' 'कुदरत विहार' जिस नोटबुक में लिखी गयी है, उसी पर, अंगरेजी में, किसी कहानी के लिए लिखा गया व्याकरण की दृष्टि से विचित्र स्मरण लेख है:—'In the my new story will help me the Mahimunam Strotas'

प्रारंभ मे इन्होंने कुछ कविताएँ भी लिखीं। उल्लेखनीय बात तो यह है कि इन्होंने कुछ कविताएँ या भजन हिन्दी में भी लिखे हैं। एक 'राह·······' (आगे का शब्द मिला नहीं प्रतीत होता है) नामक हिन्दी भजन उनकी भाषा में ही यहाँ देता हूँ।

'हम तो रे भगुवो भेख धरेंगे
भेख धरेंगे अलख जगावेंगे—हम तो···
भेख धरी हम चल जावेंगे, हम पीछु कोई न आवेंगे
हम पिछु कदि कोई आवे तो पत्ता नहीं पावेंगे····
हम शयनन में भूमितल करना, अक्र हमेरा ओढ़नना,
भावे पहेरी देश फिरेंगे शितल जल में नावेंगे···
आसन मारी बैठे अगन में इन्द्रीयकुं दहन करेंगे
मृगचर्म पर स्थिति हमारी जयशंभो वदन वदेंगे···'

उस समय इनके ऊपर वैराग्य का प्रबल प्रभाव था। कई भजनों की रचना भी की और कई का संपादन किया था और ऐसा करके एक भजनावलि छपवाने की इनकी इच्छा थी। पर कुछ कारणवश वह रह गया। इसके संबंध में इनके शब्द ही देखिए—'उस समय भेख ले लेने की मेरी इच्छा प्रबल थी। वैराग्य के काव्य भी बहुत लिखे थे। अच्छा हुआ कि उसी समय की नोंदपोथी के अनुसार, जेब में सवा रुपये ही थे और अधूरे में पूरा बीलखा में कोई छापाखाना न था। वरना यह भजनावलि प्रकट होकर रामकहानी ही रह जाती !'

अब तक की रचनाओं में जो एक प्रकार की अनुकरण-वृत्ति की प्रतिध्वनि थी, उसका उल्लेख धूमकेतु ने दिनांक १४-१२-१९२० के एक स्मृतिलेख में किया है।

इसके पश्चात नरसिंहराव, कलापी और कान्त के प्रभाव से कुछ और काव्य भी इनने लिखे। इनके कुछ नमूने यहाँ दिये जाते हैं। एक खंडकाव्य है और उसका प्रारम्भ इस प्रकार होता है:—

शीतलता शान्ति बरसती है गहरे गम्भीर गगन से।
पूरे वन में शान्ति छा गयी हिलते पल्लव न पवन से॥*

इसके पश्चात चाँदनी का वर्णन आता है। इसमें एक योगी बैठे हुए अपनी कंथा सी रहे हैं, पर वृक्ष के रेशों की डोरी सूची में पिरोई नहीं जाती है। फिर पार्वती और शंकर का यह कथोपकथन है:—

हिमालय की तनया पूछे कुतूहल से "है कौन यह ?"
"यहाँ भर्तृहरि योगी राज त्याग रहा है,
"परब्रह्म चिंतन करके ऋषि तुल्य हुआ है।"
"तब प्रभो ! ठहर तनिक वरदान दीजिए।"
"यह योगी भर्तृहरि संत-सिरमौर है।
स्पृहा नहीं इसे, ईश तुल्य योगी यह,
स्पृहा नहीं इसे विभुधाम की भी,
यह योगी भर्तृहरि, हमें दर्शनीय है,
इसे फिर दर्शन ? कहो कैसे यह उचित है ?"

खंडकाव्य के सम्बन्ध में धूमकेतु की मान्यता इस प्रकार है:—

"खंडकाव्य, यह एक प्रकार से कहानी का पद्यात्मक रूपांतर है। यह भेद यदि लक्ष्य में लिया जाय तो इसमें जो किंचित छंदोव्यायाम के विषम कौशल का दर्शन होता है उससे परे बीजरूप में यह कहानी मात्र है। खंडकाव्य में कहानी के बीज, विकास और चरमसीमा, तीनों छिपे रहते हैं।"

इस प्रकार के काव्य की ओर से गद्य की ओर इनकी तेजस्वी लेखनी कॉलेज जीवन में मुड़ी। छब्बीस वर्ष की आयु में वे कॉलेज से पढ़ रहे थे और तब 'वीसमीं सदी' में इनके गद्य-लेख प्रकाशित होने लगे थे। इनकी लेखनी बचपन से ही प्रतिक्षण तेजस्वी ही होती जा रही थी। अपनी असाधारण प्रज्ञा और चिंतन से वे आज गुजरात के मान्य साहित्यकार बन गये हैं। इनकी प्रत्येक गद्यकृति में सजीवता है। भाषा सरल और परिमार्जित होती है। आजकल के पाठक इनकी एक सुन्दर कहानी 'मृत्यु के बाद युगल मिलन' से परिचित हैं, फिर भी इनकी एक गद्यकृति का नमूना यहाँ देता हूँ।

---

* लेखक का हिन्दी अनुवाद।

भैयादादा (कहानी)—'पंडित जी के साथ घूमने गया। हम भैयादादा की झोंपड़ी पर जा बैठे। एक दूध वाली दूध की मटकी लेकर बाहर निकली, पर इतना सशक्त, सीधा और निर्मल शरीर आज तक मैंने कभी भी नहीं देखा……।'

इनके छोटी कहानी सम्बन्धी विचार भी मननीय और जानने योग्य हैं। पर स्थानाभाव के कारण हम इनके प्रेरणादायी उद्गार देकर ही यह लेख समाप्त करेंगे।

"सर्जक का काम सौन्दर्य छिपाने का है और विवेचक का काम उस सौन्दर्य को फिर प्रकट करने का है।"

"आदर्श को जब समाचार मिलता है कि मेरे में भी कोई रस लेने वाला है, तो उसकी आनन्दसृष्टि की प्रफुल्लता और खिल उठती है। और कल्पना की मनोभूमि पर रचना करने वाले लेखक की तो यह एक ही महामूल्य समृद्धि गिनी जा सकती है।

"जीवन की सच्ची करुणता बड़े होने में है।"

इनके शिक्षण-विषयक विचार क्या हैं, यह इससे जाना जा सकता है—"परीक्षा की सारी प्रणाली में यदि कोई परिवर्तन नहीं किया जाएगा, तो अब तक उसने तेजस्विता लूट लेने का धंधा किया है, पर अब वह उस निस्तेजता को तेजस्विता के नाम से पुकारने का अत्यन्त हानिकारक धंधा प्रारंभ कर बैठेगी। अतः हमारे विद्यापीठों को अब या तो वेशपरिवर्तन करना चाहिए अथवा उसे डिग्रियाँ बेचने के धंधे में परिवर्तन करना या डिग्रियों को विश्वविद्यालय के गौरव की प्रतीक रूप बनाना चाहिए। बाकी यदि यह नहीं बदलेगी तो प्रजा का सर्वनाश करेगी याद करा-करा कर कचरापट्टी पढ़ा कर अथवा प्रांतीयता की अग्नि जलाकर!"

आज जब मैं यह लिख रहा हूँ, मेरे से बहुत कुछ दूरी पर ही इन महापुरुष का जन्मस्थान वीरपुर गाँव अभी भी किसी और साहित्यकार के उत्पन्न होने की प्रतीक्षा करता हुआ निस्तेज-सा खड़ा है। मैं कई बार अत्युत्साह से वीरपुर इन महान साहित्यकार के संस्मरण-स्थानों को देखने और मन ही मन पूजने जाता हूँ, तो यहाँ के पेड़, पर्वत के काले-काले पत्थर, नदी, झरने और दूर-दूर तक उजड़े हुए मैदान और इसके बीच होकर कई मोड़ लेता हुआ जेतपुर-वीरपुर का देहाती पथ-सभी इनकी यातनाओं की गवाही देने-से लगते हैं। उनसे मानों संदेश मिलता है कि वे यातनाएँ ही इनके बड़प्पन की नींव थीं। और सचमुच मर्यादित यातनाओं में ही आशा छिपी रहती है और उससे आदमी ऊपर उठ सकता है।

मैं ईश्वर से श्री धूमकेतु की चिरायु के लिए प्रार्थना करता हूँ। इनकी अमर और जीवित रचनाएं हजारों वर्ष तक लोगों को प्रेरणा और शांति देती रहेंगी बिना किसी दीर्घजीवन की प्रार्थना की अपेक्षा के और यही साहित्यकार की विशेषता है, यही उसका युग उससे अपेक्षा करता है।

गीत

— श्री कान्ता —

रे दीप तुझे पल-पल जलना !

कभी न थकना जलते-जलते—
सुन्दर नाम जलन है तेरा,
अपनी आभा को बिखरा कर
धोता जग का गहन अँधेरा;
बाती अकुलाई-सी बोले—
रे मन के नेह ! सदा गलना !
रे दीप ! तुझे पल-पल जलना !

चलती-चलती यदि मैं पागल
अपनी सुधबुध भी बिसराऊँ,
पैर थकें, मंजिल ओझल हो,
कौन दिशा सो समझ न पाऊँ;
तब मुझ में ज्योति जगा कर तू
पथ आलोकित करते चलना !
रे दीप ! तुझे पल-पल जलना !

तरु की छाया में बैठूँ मैं,
यदि फिर उठना तनिक न भाये,
घनी विवशता के वश होकर
आँखों में बादल छा जाये;
तब मुझ अभागिनी पर तू ही
करुणा बन बूँद-बूँद ढलना !
रे दीप ! तुझे पल-पल जलना !

तन साथ न दे, अभिलाष मरे
औ सूनापन हृदय लुभाये,
अधर तरस कर भी गाने को
यदि गीत न कोई गा पायें;
तब मेरी अवचन स्मृतियों में
बन कर भाव प्रणय के पलना !
रे दीप ! तुझे पल-पल जलना !

काव्य-रूपक—

दीप जलायें

— श्री मनोहर प्रभाकर —

वाचक—हुए तिरोहित शनैः शनैः सब धन कजरारे।
चमक रहे हैं ज्योतिर्मय हो शुभ्र सितारे।
गई पिया के देश पुनः पावस दीवानी।
मुस्काती अब यहाँ गुलाली शीत सुहानी।

वाचिका—शीतल मन्द समीर स्नेह का सरगम गाता।
प्राणों की हर धड़कन में उन्माद जगाता।
थिरक रही है भाव--लोक की मधुमय क्यारी।
महक रही है मस्ती से मन की फुलवारी।

वाचक—खेतों में सो चुकी सभी फसलें कल्याणी।
मुक्त कंठ से गूँज रही जन मन की वाणी।
लिपे-पुते उज्ज्वल अतीव सब घर आँगन हैं।
पुलकित धरती जैसे घर आये साजन हैं।

वाचिका—अग-जग में सर्वत्र हर्ष उल्लास समाया।
द्विगुणित करने इसे तभी दीपोत्सव आया।
आज धरा पर अम्बर जैसे उतर रहा है।
कोटि-कोटि दीपों से भूतल दमक रहा है।

वाचक—तम के ऊपर यह प्रकाश का विजय-पर्व है।
या पापों पर पुण्यप्रभा का राज्य-गर्व है।
सत्य-सूर्य का यह असत्य पर ज्योति-पुंज है।
या मरुथल पर मुस्काता ज्यों सघन कुंज है।

वाचिका—इसी हर्ष में हम मनहर ये साज सजाते।
हिलमिल कर यह दीपों का त्यौहार मनाते।
जगमग करते कंगूरे सब महल अटा के।
उधर छोड़ते बच्चे खुलकर छुरी-पटाके।

(बच्चों का शोरगुल और छुरी-पटाकों की आवाजें)

एक बालक—रामू, श्यामू, आओ मिलकर,
छोड़ें फूलझड़ी।

रामू—क्या रक्खा है फूलझड़ी में,
हम छोड़ेंगे 'हुक्का'।
नहीं चलेगा इसके आगे
तनिक तुम्हार तुक्का।

श्यामू—अरे बावले ही हो तुम सब,
छोड़ो 'छुरी-लड़ी'।

सामूहिक स्वर—रामू, श्याम, आओ मिलकर
छोड़ें फूलझड़ी।

रामू—नहीं नहीं, 'मेहताब' छुड़ाओ,
होगा बहुत उजाला।

श्यामू—प्यारे भाई, छोड़ो तुम सब
'फव्वारा' मतवाला।

सुन्दर—बातों में न बिताओ साथी,
यह आनन्द घड़ी।

सामूहिक स्वर—रामू, श्यामू, आओ, मिलकर
छोड़ें फूलझड़ी।

वाचक—ये बच्चे तो इधर कर रहे निज मनमानी।
उधर सुन रहे कुछ दादी से दीप-कहानी।

हेमा—दीपोत्सव की कहो हमें नानी, वह गाथा।
सुन जिसको हो गर्वोन्नत हम सब का माथा।

नानी—सुनो, सुनाऊँ गाथा मेरी बिटिया रानी।
आज दशानन मार राम आये रजधानी।
वर्ष चतुर्दश बाद प्रजा से आज मिले थे।
जन-गण-मन में इस दिन पुलक-प्रसून खिले थे।

प्रेमा—नानी, नरकासुर को भी तो इस दिन मारा।
गोवर्धन को शायद आज कृष्ण ने धारा?

नानी—बेटी, चतुर्दशी के दिन था नरकासुर मारा।
और प्रतिपदा को गोवर्धन प्रभु ने धारा।
दीपावलि की प्रचलित कितनी और कथाएँ।
जिनके साथ जुड़ी जीवन की हर्ष-व्यथाएँ।

(विलयन)

वाचक—रंग-बिरंगे वस्त्रों में सजकर सुन्दरियाँ।
डोल रही ज्यों भू पर अमरावति की परियाँ।
तरुणाई पर आज मधुरिमा नयी छा रही।
मस्त बहारें आज नया ज्यों गीत गा रही।

वाचिका—सजे हुए सब के हाथों में थाल रुपहले।
जगमग करते जिन में अनगिन दीप सुनहले।
तम का दम सब जिनके आगे टूट रहा है।
अन्तर का उल्लास गीत बन फूट रहा है।

(समूह गान)

मन का दीप जलाओ सजनी,
मन का दीप जलाओ री।
आज अमा की निशि में तुम सब,
पूनम बन मुसकाओ री।

आज न किंचित् रहे अँधेरा,
बिहँसे उर में नया सबेरा।
अंधकार-मय इस रजनी में,
ज्योति किरण बिखराओ री।
पूनम बन मुसकाओ री।

बन जाओ तुम स्वयं चाँदनी,
दमक उठे यह गहन यामिनी।
मुक्त कंठ से आज मिलन की
मुरली मधुर बजाओ री।
पूनम बन मुसकाओ री।

बुझी हुई लौ पुनः लगा लो,
प्राणों में स्नेहिल रस ढालो।
प्रीति-डोर में बाँध स्वर्ग की
दुनियाँ यहाँ उतारो री।
पूनम बन मुसकाओ री।

× × ×

वाचक—ये रसभीगे गीत उन्हीं के मन को भाते।
जिनके साजन पास मिलन का पर्व मनाते।
किन्तु वियोगिन को नागिन सी लगती रातें।
टीस जगाती मन में ये दीपों की पाँतें।

(विरह गीत)

एक विरहिणी—नयनों में किस परदेशी की रूप-ज्योति मुसकाए रे।
प्राणों की सुनसान निशा में सुधि के दीप जलाए रे।

धरती और गगन के घर में
अनगिन दीपक जल रहे।
मेरे मन में मधुर मिलन के
स्वप्न अधूरे पल रहे।
आज किसी की दूरी दिल में,
सौ-सौ तीर चुभाए रे।
प्राणों की सुनसान निशा में
सुधि के दीप जलाए रे।
मद से भरी उमंगे उर की
पाहुन बनकर डोलतीं।
मस्त बहारें लाजवती यूँ
घूंघट के पट खोलतीं।
बेसुध हुए सभी संयोगी
यौवन-पर्व मनाएँ रे।
प्राणों की सुनसान निशा में
सुधि के दीप जालाएँ रे।
आधी रात उनींदी आंखें,
मन का मीत न पास है।
सोई पीर जगाता फिर यह
रस भीगा वातास है।
आजा ओ, परदेशी अब तो,
ये पलकें घबराएँ रे।
प्राणों की सुनसान निशा में
सुधि के दीप जालाएँ रे।

वाचक—इए दुनियाँ से दूर और भी दुनियाँ न्यारी।
जहाँ निराशा की छाई अब भी अँधियारी।
सुनो उधर से ही आतीं ये ठंडी आहें।
हो न सकी हैं पूरी जिनके मन की चाहें।

एक कृषक—मैं भूखा भगवान, अरे सोता हूँ भूखा।
मेरे मन का खेत आज भी रहता सूखा।
ठग हो जी तुम मुझे अन्नदाता कह छलते।
मेरे श्रम पर ये मोटे गद्दीधर पलते।

एक बच्चे का स्वर—माँ, इन सबने आज नये कपड़े पहने हैं।
और देह पर सजे स्वर्ण के शत गहने हैं।
फिर हम ही क्यों फटेहाल हैं आज बता माँ!
हमने ही क्या करी बड़ी है कौन खता माँ!

दूसरे बच्चे का स्वर—माँ मुझको भी आज दिलाओ नये खिलौने।
लूँगा मैं तो ये मिट्टी के मृग के छौने।
और सुनो, यह थोड़ी सी चमचम भी लूँगा।
इसमें से मैं और किसी को तनिक न दूँगा।

(स्वगत)

माता—हे ईश्वर, मैं सचमुच ही कितनी हूँ पापिन।
शिशु की चाहों की बनती नित ही हत्यारिन।

(प्रकट रूप में)

बेटा, वे सब बौरे जो मीठा खाते हैं,
आमाशय में इससे कीड़े पड़ जाते हैं।
और व्यर्थ ये मिट्टी के निर्जीव खिलौने,
क्या रक्खा है इनमें घर को चलो सलोने।

बुनकर की स्त्री का स्वर—अधनंगी हूँ मैं बुनकर की हृदय-स्वामिनी।
तन ढकने को दूभर जिसको एक काटनी।

शिल्पायन की—मैं महलों का निर्माता फुटपाथों सोता।
क्षीण ध्वनि—हँसते हैं ये ओठ मगर अन्तर है रोता।

वाचक—इस सब का है अर्थ न आई वह खुशहाली।
जब समता की धरती पर मन सके दिवाली।

अंधकार के शूल रोक कर राह खड़े हैं।
अभी करोड़ों दीप विश्व में बुझे पड़े हैं।

(सहगान)

दीप करोड़ों बुझे पड़े हैं,
आओ साथी इन्हें जलाएँ।
संघर्षों की आँधी आती।
जीवन-बाती बुझ-बुझ जाती।
स्नेह पिलाकर इससे अपने—
अन्तर की हम लगन लगाएँ।
आओ साथी इन्हें जलाएँ।
वे दीपक जो आज जलेंगे,
इनमें कल के स्वप्न पलेंगे।
इन सपनों की खातिर ही हम
नयनों में नव ज्योति जलाएँ,
आओ साथी, इन्हें जलाएँ।

रीतिकालीन काव्य की पृष्ठ-भूमि

—श्री कालिकाप्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर'

हिन्दी-साहित्य में रीति-काल संवत् १७०० से १६०० तक माना जाता है। संवत् १७०० के पूर्व कुछ रीति-ग्रंथ अवश्य लिखे गये जिनमें केशव कवि की 'कविप्रिया' मुख्य है। कवि केशव का जन्म संवत् १६१२ और मृत्यु संवत् १६७४ माना जाता है। ये संस्कृत भाषा और साहित्य के प्रकांड पंडित तथा काव्य-शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान थे। आपने संस्कृत-साहित्य के रीति-ग्रंथों का मंथन कर मौलिक रूप में रीति-शास्त्र को उपस्थित करने की चेष्टा की, परन्तु केशव के पांडित्य ने उनकी कवित्व-शक्ति को दबा रखा था, इसलिए वे अपनी कृतियों में वह सरसता नहीं ला सके जो रीति-ग्रंथकार के लिए आवश्यक थी। हाँ, 'रामचन्द्रिका' के कई स्थलों में आपको अवश्य सफलता मिली और इस सफलता का कारण वह सामन्ती वातावरण था, जिसमें केशव रम गये थे।

केशव के पूर्व संवत् १५६८ में कृपाराम ने रस-रीति पर 'हित तरंगिणी' नाम का एक ग्रंथ लिखा, जो दोहों में है। दोहों का प्रयोग लेखक ने इसलिए किया कि उसकी दृष्टि में यह छन्द काव्य की 'सुघरता' को बढ़ाने में सहायक होगा। यद्यपि दोहे बहुत उच्चकोटि के नहीं हैं, भाषा भी साधारण है, परन्तु कुछ में चमत्कार अवश्य पाया जाता है और ऐसा जान पड़ता है कि लेखक का ध्यान चमत्कार की ओर अधिक था। नीचे लिखे कुछ दोहे इसी प्रकार के हैं:—

आजु सबारे हौं गयी नंद लाल हित ताल।
कुमुद कुमुदनी के भटू निरखे औरै हाल॥
पति आयो परदेस तैं ऋतु बसंत को मानि।
झमकि-झमकि निज महल में रहलै करै सुरानि॥

दोहों में 'सबारे' शब्द का प्रयोग उचित नहीं जान पड़ता। यदि 'आजु सकारे' लिखा जाता तो भाषा की मर्यादा सुरक्षित रहती। 'सबारे' शब्द का प्रयोग न तो व्रजभाषा में होता है, न खड़ी बोली में। 'सबा' या 'सबारा' कोई शब्द ही नहीं। अरबी भाषा में अवश्य 'सबा' शब्द का प्रयोग होता है, जिसका अर्थ प्रातःकाल पूर्व की ओर से चलने वाली हवा होता है। 'सकारे' शब्द का प्रयोग हिन्दी के प्रायः सभी प्रतिष्ठित कवियों ने किया है:—

अवधेश के द्वारे सकारे गयी,
सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
—तुलसी

गये मयूर तमचुर जो हारे,
उन्हहिं पुकारे साँझ सकारे।
—जायसी

कृपाराम के समकालीन मोहनलाल ने 'शृंगार-सागर' नाम का एक ग्रंथ लिखा। जिसमें आपने शृंगार की लाक्षणिक विवेचना की। हिन्दी में यह अपने ढंग का पहला ही ग्रंथ था। नरहरि कवि के साथी 'करनेस' य 'कर्णेश' ने 'कर्णाभरण', 'श्रुतिभरण' और 'रूप भूषण' तीन ग्रंथ लिखे, जिनमें अलंकारों का विवेचन किया गया, परन्तु ग्रथों की रचना के बाद केशव जिस रीति-परम्परा को लेकर आए, उसे ही परवर्ती कवियों ने ग्रहण किया, यद्यपि उनके मुख्य आधार संस्कृत-ग्रंथ थे।

केशव के समय में संस्कृत के वे सभी ग्रंथ विद्यमान थे, जिन्हें 'रीति-ग्रंथ' या लक्षण-ग्रंथ कहा जाता है। उन सभी ग्रंथों में साहित्य, विशेषकर काव्य का शास्त्रीय विवेचन मिलता है। भरतमुनि, भामह, दण्डी, बामन, आनंदवर्धन जैसे आचार्य संस्कृत-साहित्य-क्षेत्र में अपनी मौलिक विचार-धाराओं के कारण अत्यन्त ख्याति प्राप्त कर चुके थे और उनके विचार भी आपस में एक दूसरे से बहुत मिलते-जुलते थे। उन आचार्यों ने विभिन्न अंगों का विवेचन तो किया ही, साथ ही अपना निजी सिद्धान्त भी छोड़ गये। उद्भट, मम्मट और अपने को 'पंडितराजतिलक' कहने वाले पंडितराज जगन्नाथ भी, जिन्होंने 'साहित्य दर्पण' नाम का ग्रंथ लिखा, उच्च श्रेणी के आचार्य और साहित्य-मर्मज्ञ थे। इन आचार्यों ने विशद रूप से काव्य का तात्त्विक विश्लेषण कर एक प्रकार से साहित्य और काव्य-शास्त्र का व्याकरण उपस्थित किया और यह बिना किसी संकोच के कहा जा सकता है कि रीति-काल में हिन्दी के कवियों ने सिद्धान्तों में उन आचार्यों द्वारा निर्धारित मार्ग का ही अनुसरण किया और जो कुछ इधर-उधर झुके, वे भ्रम में पड़ गये।

व्यापक दृष्टि से संस्कृत के आचार्यों की विचार-धारा को पाँच प्रमुख सम्प्रदायों में बाँटा जा सकता है:—(१) रस-सम्प्रदाय, (२) अलंकार-सम्प्रदाय, (३) रीति-सम्प्रदाय, (४) वक्रोक्ति-सम्प्रदाय और (५) ध्वनि-सम्प्रदाय। सर्व प्रथम रस-सम्प्रदाय ही आता है क्योंकि इसके प्रवर्त्तक आदि लक्षणग्रंथ या रीतिग्रंथ-प्रणेता भरत मुनि थे जिन्होंने 'नाट्यशास्त्र' में काव्य का शास्त्रीय विवेचन किया, यद्यपि उसमें अधिकांश बातें दृश्य काव्य को ही लेकर लिखी गयीं। इस रस-सम्प्रदाय का आधार भी दृश्य काव्य से ही प्रारम्भ होता है।

भरत मुनि के पूर्व इसका शास्त्रीय विवेचन और आराधन किसी न किसी रूप में अवश्य हो चुका था। अग्निपुराण में भी इसका महत्त्व माना गया। भरत के नाटय-शास्त्र का आधार 'नाट्यवेद' था, जिसके लेखक ब्रह्मा बताए जाते हैं।

इस सम्बन्ध में एक कथा भी प्रचलित है। इन ब्रह्मा के मतानुसार सुकुमार कौशिकी वृत्ति का अभिनय शिव के अतिरिक्त कोई नहीं कर सकता था। ब्रह्मा भरत मुनि और उनके शिष्यों को एक बार कैलाश पर्वत पर शिव के पास ले गये और वहाँ त्रिपुरदाह नाम का नाटक खेला गया। शिव ने इसके अभिनय की बड़ी प्रशंसा की और इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने नाटक के पूर्वरंगों * के साथ अपने ताण्डव के करणों और अंगहारों † के प्रयुक्त करने की उन्हें स्वीकृति दी और अपने गण तंडु‡ को आदेश दिया कि वह भरत मुनि को इसकी शिक्षा देवे। ¶ १३ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में शारदातनय ने 'भावप्रकाशन' में नाट्य-शास्त्र की उत्पत्ति पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला, जिसमें नाट्य-शास्त्र की रचना भरत मुनि के समय में मानी गयी है। इस पर ब्रह्मा के नाट्यवेद का बहुत प्रभाव है। इसमें शंकर द्वारा ब्रह्मा को नाट्य-शास्त्र की शिक्षा नंदिकेश्वर द्वारा दिलाने का उल्लेख है। £ इसके बाद ब्रह्मा ने भगवती भारती के सहयोग से भरत मुनि को नाट्य-शास्त्र की दीक्षा दी। ब्रह्मा के नाट्यवेद में बारह हजार श्लोकों का संग्रह बताया जाता है, जिससे अनुमान लगता है कि यह ग्रन्थ कितना बड़ा रहा होगा। भरत मुनि ने इसका साररूप प्रस्तुत किया। ऐसा जान पड़ता है कि ब्रह्मा नाम के कोई ऋषि प्रथम नाट्य-शास्त्र के प्रणेता थे, जिसे 'नाट्यवेद' कहा जाता है और नंदिकेश्वर नाम का भी कोई आचार्य रहा होगा। राजशेखर की 'काव्यमीमांसा' से भी नंदिकेश्वर के शास्त्र-ज्ञान पर प्रकाश पड़ता है। ×
ब्रह्मा और नंदिकेश्वर के ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होते, सम्भव है उन्होंने अपना ज्ञान प्राचीन परिपाटी के अनुसार शिष्यों को कंठस्थ कराया हो। भरत मुनि ही सर्व प्रथम ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने विचारों को ग्रन्थ का रूप दिया।

पहले रस नाट्य या दृश्यकाव्य का ही विषय समझा जाता था और भामह से लेकर वामन तक अर्थात् छठी शताब्दी से नवीं शताब्दी के आरम्भ तक काव्य में

---

* वह संगीत या प्रार्थना जो नाटक के आरम्भ में विघ्नों को शान्त करने के लिए की जाती है।

† नृत्य की मुद्राएँ।

‡ शंकर जी के गण नंदिकेश्वर।

¶ भरतः नाट्य-शास्त्र, अध्याय ४ से १८।

£ एके द्वादशसाहस्रैः श्लोकैरेकं तदर्धतः।
षड्भिः श्लोकसहस्रैर्यो नाट्यवेदस्य संग्रहः।
शारदातनय, भावप्रकाशन, अधिकार १०, पृष्ठ २८७।

× "रूपनिरूपणीयं भरतः रसाधिकारिकं नंदिकेश्वरः।"
काव्यमीमांसा, अध्याय १।

अलंकारों का ही महत्त्व था । रस-सम्प्रदाय का समावेश धीरे-धीरे हुआ और इसकी प्रधानता दिन पर दिन बढ़ती गयी, यहाँ तक कि रस को काव्य की आत्मा कहा जाने लगा । दण्डी, भामह, वामन और उद्भट जैसे आचार्यों ने भी यद्यपि स्पष्टरूप से रस की सर्वोपरि क्षमता को नहीं स्वीकार किया, परन्तु वे रस-सम्प्रदाय की विचार-धारा से प्रभावित अवश्य होने लगे थे । भामह के समय तक रस को काव्य का अप्रधान धर्म ही माना जाता था, कारण कि इन आचार्यों की दृष्टि ज्ञेयपक्षीय (OBJECTIVE) नहीं थीं । नवीं शताब्दी में आनन्दवर्द्धनाचार्य ने अपने ग्रन्थ ध्वन्या-लोक में इसकी ध्वनिरूप से प्रधानता स्वीकार की और उनके बाद के आचार्यों ने भी उस पर किसी प्रकार की आपत्ति नहीं की । बाद में अभिनवगुप्त (सन ९९० से १०२०) ने उसका अन्तर्भाव ध्वनि में किया और बताया कि सहृदयों के अन्तःकरण के धर्म का नाम ही ध्वनि है, जो ज्ञातृपक्षीय (SUBJECTIVE) होती है । अभिनवगुप्त की विचारधारा को अभिव्यक्तिवाद का नाम दिया गया जिसमें काव्यार्थ मुख्य वह माना गया, जिसमें काव्य का आनन्द निहित हो । अभिनवगुप्त के समकालीन भट्टनायक* प्रेक्षक के हृदय में रस की अवस्थिति मानते थे और उनके मतानुसार स्थायी भाव से रस बनने तक की प्रक्रिया में तीन शक्तियाँ अभिधा, भावकत्व और योजकत्व का प्रयोग होता था । अभिनव गुप्त ने कहा कि भावकत्व और योजकत्व का काम तो व्यंजना और ध्वनि से चल जाता है, फिर उनका अस्तित्व अलग क्यों माना जाय ? भावकत्व तो भावों का गुण है ही । भरत मुनि ने कहा भी है कि 'भाव काव्यार्थों को भावना का विषय बनाते हैं ।'†

अभिनवगुप्त के अनुसार काव्य का आनंद काव्यार्थ में रहता है और संचारी भावों से पुष्ट होकर स्थायी भाव ही आस्वादपुष्ट काव्यार्थ के अस्तित्व का आधार होता है तथा रस में पहले से ही भोग का भाव विद्यमान रहता है । रस वही है जिसका आस्वाद हो सके । तातपर्य यह कि भट्ट नायक के विचार से जहाँ असत् (झूठे) इत्यादि भावों का आस्वाद होता है, वहाँ अभिनव गुप्त के मत से वासना रूप में स्थित भावों का आस्वाद होता है । ऐसी हालत में आपके अनुसार स्थायी भावों का विभावादि के साथ संयोग होने से व्यंग्य-व्यंजक भाव सम्बन्ध से अथवा विभावादि के पारस्परिक संयोग से रस की निष्पत्ति या अभिव्यक्ति होती है । यह मत भरत मुनि के मत का ही समर्थन करता है ।

अभिनवगुप्त के पूर्व भट्टलोल्लट एवं शंकुक के मत भी आचार्य भट्टनायक के मत से पृथक प्रचलित थे । भट्टलोल्लट(ई० ७००-८००)स्थायी भाव से संचारी भाव का

---

* आस्वाद्यत्वाद्रसः—अभिनवगुप्त ।

† काव्यार्थान् भावयतीतिभावः—नाट्यशास्त्र ।

पोष्यपोषक सम्बन्ध होने से स्थायी भाव की पुष्टि को ही रस मानते थे और उनके मत से स्थायी भाव से विभाव का सम्बन्ध होने के कारण स्थायी भाव की उत्पत्ति तथा गम्य-गमक सम्बन्ध होने से स्थायी भाव की निष्पत्ति या अभिव्यक्ति होती है। शंकुक (ई० ८२५) ने जो मत प्रकट किया, उसे अनुमानवाद माना गया और उन्होंने चार प्रकार की प्रतीतियों की प्रतिष्ठा की (१) सम्यक प्रतीति, (२) मिथ्या प्रतीति, (३) संशय प्रतीति और (४) सादृश्य प्रतीति।

रंगमंच पर 'शाकुन्तल' का अभिनय हो रहा है। इसमें शकुन्तला को शकुन्तला मानना है सम्यक, परन्तु जहाँ शकुन्तला का अस्तित्वबोध हो रहा हो और आगे चलकर यह बोध भ्रमपूर्ण सिद्ध हो, तो मिथ्या प्रतीति मानेंगे। जहाँ शकुन्तला है या नहीं यही शंका हो जाय, वहाँ संशय प्रतीति तथा जहाँ सादृश्य-सा बोध हो, वहाँ सादृश्य प्रतीति है। परन्तु इनके अतिरिक्त भी एक प्रतीति है, जिसमें किसी की कल्पना चित्र-पट पर अंकित चित्र के आधार पर की जाती है और इस प्रतीति का आधार "चित्र तुरंगादि न्याय" है। वस्तुतः प्रेक्षक तो अभिनेत्री को ही शकुन्तला समझ कर उसमें स्थायी भावों की कल्पना करते हैं, फिर स्थायी भावों से रस को पृथक किया भी नहीं जा सकता। विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से ही शकुन्तला में रति का अनुमान किया जा सकता है और यहीं रस की निष्पत्ति हो जाती है। काव्य में वही कार्य शब्दों के द्वारा होता है जो दृश्य काव्य या नाटक में अभिनय के द्वारा। इसीलिए सर्व प्रथम आचार्य रुद्रट* ने यह घोषित किया कि रस केवल नाटक तक ही सीमित नहीं हैं, वरन काव्य-क्षेत्र में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है और काव्य के लिए रस अनिवार्य हैं। रसहीन काव्य को आपने काव्य मानने में भी आपत्ति की।† उनका यह कहना था कि व्यभिचारी एवं सात्विक भावों को भी रस रूप में विकसित किया जा सकता है। आपने ही रसों को अलंकारों की दासता से निकाल कर उन्हें स्वतन्त्र पद पर प्रतिष्ठित कराने की चेष्टा की‡ और फिर तो आनंदवर्धन ने काव्य की आत्मा ध्वनि का समर्थन करते हुए भी रस के महत्त्व को स्वीकार किया।¶ आनंदवर्धन का समय ८४० ई० के लगभग है। अग्निपुराण की रचना इसके बाद की होने के

---

* रुद्रट और रुद्रभट्ट एक ही आचार्य के नाम हैं। रामस्वामी शास्त्री लिखित 'भाव प्रकाशन' की भूमिका, पृष्ठ ६८-६९।

† काव्यालंकार, १२-३।

‡ शृंगारतिलक, १-५।

¶ काव्यस्यात्मा स एवार्थः तथा आदिकवेः पुरा क्रौंचद्वन्द्व वियोगोत्थः शोकाःश्लोकत्वमागतः। ध्वन्यालोक १-५।

कारण उसमें रस की महत्ता प्रतिपादित होना स्वाभाविक ही है ।[*] राजशेखर (८८० से ९२० ई०) ने काव्य के विभिन्न अंगों का वर्णन करते हुए कहा कि काव्य का शरीर शब्दार्थ, मुख संस्कृत, प्राकृत बाहु; उक्ति-वैचित्र्य वचन, रस आत्मा और छन्द रोमावलि हैं ।[†]

इस प्रकार से रस-तत्त्व की प्रधानता दृश्य काव्य से श्रव्य काव्य में आयी और काव्य में रस को उसकी आत्मा मानकर खोज की जाने लगी । भरत मुनि ने इसकी निष्पत्ति का जो महत्त्व माना था वह धीरे-धीरे जोर पकड़ता गया और फिर तो भोजराज (१०१८-१०५४ ई०) ने इस सिद्धान्त का बड़ी दृढ़ता और विद्वत्ता के साथ समर्थन किया है ।[‡] विश्वनाथ ने रस को काव्य की आत्मा और रसानुभूति के लिए सात्वोद्रेक तथा आत्मप्रकाश की आवश्यकता बतलाई । रस के आनन्द को आपने ब्रह्मानन्द-सहोदर कहा । पंडितराज जगन्नाथ ने रस-ध्वनि का उत्कृष्ट तत्त्व रस माना और कहा कि वह निजस्वरूपानन्द है ।[¶] रस की यह मान्यता संस्कृत-साहित्य में तब तक अटल रही, जब तक ध्वनिसम्प्रदाय ने अपना सिक्का नहीं जमाया ।

हिन्दी काव्य-शास्त्र में भी आचार्यों ने रस की चर्चा अवश्य की, परन्तु रीतिकालीन कवियों ने, हिन्दी के प्रथम रीतिग्रन्थकार केशव कवि ने काव्य में भामह, उद्भट और दण्डी के सम्प्रदाय को मानकर अलंकारों को ही विशेषता दी, अपने काव्य-ग्रन्थों में अलंकारों की छटा तथा पंडिताई दिखलाने में कई स्थलों पर काव्य की आत्मा को ही कुचल डाला । आपने कविता को एक स्त्री के रूप में मानकर उसके सोलहों शृंगारों का विवेचन करते हुए लिखा कि:—

सुबरण जरित पदारथनि, भूषण भूसित मान ।
कविप्रिया है कवि प्रिया, कवि की जीवन प्रान ।
केशव सोरह भाव सुभ, सुवरन मय सुकुमार ।
कविप्रिया के जानिये, यह सोरह शृंगार ।

काव्य में अलंकारों का महत्त्व सर्वोपरि ठहराते हुए केशव ने यहाँ तक कह डाला कि:—

जदपि सुजात सुलच्छनी सुवरन सरस सुवृत्त ।
भूसन विनु न विराजई कविता बनिता मित्त ।

---

[*] अग्निपुराण, पृष्ठ ३३९ ।

[†] राजशेखर : काव्यमीमांसा, पृष्ठ ६ ।

[‡] सरस्वती कंठाभरण ५।८।

[¶] साहित्यदर्पण, तृतीय परिच्छेद ।

आपकी कृतियों में भी यह मनोवृत्ति स्पष्ट दिखलाई देती है, जिसमें कवि अलंकारों, विशेषकर शब्दालंकारों के पीछे पागल-सा दौड़ता जान पड़ता है:—

विधि के समान है विमानीकृत राजहंस,
विविध विबुधयुत मेरु सो अचल है।
दीपति दिपति अति सातौ दीप देखियत,
दूसरे दिलीप के सहस वाको वल है।
सागर उजागर सो बहु वाहिनी को पति,
धनदान प्रिय कै धौ सूरज अमल है।
सब विधि समरथ राजै राजा दशरथ,
भागीरथ पथ-गामी गंगा कैसो जल है।

इसमें कवि ने उत्प्रेक्षा अलंकार का आश्रय लेकर अनुप्रासों की आभा में राजा दशरथ की कीर्ति का जो वर्णन किया है, इसमें गंगाजल की पवित्रता भले ही हो, प्रवाह नहीं मिलता। ऐसा लगता है, मानो कवि ने प्रवाह के बीच में शब्दों के पहाड़ डाल दिये हों।

देव कवि (जन्म संवत १७३०) ने काव्य के सम्बन्ध में शास्त्रीय दृष्टि से अच्छा विचार किया और उन्होंने अपने पांडित्य को कवि पर हावी नहीं होने दिया। आपने रस के लौकिक और अलौकिक दो भेद किये और शृंगार रस को प्रधानता देते हुए अलौकिक[*] रस के तीन भेद स्वपतिक, मनोरथ और औपनायक किये। लौकिक रस के नौ भेद आपने अन्य आचार्यों की भाँति ही माने। परन्तु अभिधा शक्ति को काव्य में उत्तम बताते हुए लिखा, 'अभिधा उत्तम काव्य है।' 'अधम व्यंजना रस विरस'—कहने में जान पड़ता है, देव कवि व्यंजना के शास्त्रीय अर्थ को ध्यान में न रख कर व्यावहारिक अर्थ में पड़ गये, नहीं तो व्यंजना की इस प्रकार अवहेलना न करते। अलौकिक रस की कल्पना केवल देव के पांडित्य का खिलवाड़ मात्र ही था और उसके भेद तो उपहास्पद से हैं क्योंकि ये भेद तो लौकिक रस के भी किये जा सकते हैं। 'काव्य रसायन' में शृंगाररस की व्यापकता अवश्य सुन्दर ढंग से समझाई गयी है।[†] रसों को आपने भाव-बस माना है, परन्तु अलंकारों की उपेक्षा नहीं की।[‡] राजा भोज ने 'शृंगारप्रकाश' में काव्य के रंजन पक्ष को लेकर शृंगार रस को ही एक

---

[*] भूलि कहत नौ रस सुकवि, सकल मूल शृंगार। —भवानी विलास।

[†] काव्य रसायन, ३, पृष्ठ ३२।

[‡] काव्यसार शब्दार्थ को, रस तिहि काव्यै सार।
सो रस बरसत भाव बस, अलंकार अधिकार। —काव्य रसायन।

मात्र रस माना है ।* देव के विचारों पर उन्हीं का प्रभाव अधिक जान पड़ता है । शृंगार का स्थायी भाव प्रेम स्वयं एक महत्त्वपूर्ण अंग है मानव की रागात्मक प्रवृत्तियों का; इसलिए उसको काव्य में विशेष महत्त्व मिलना अस्वाभाविक भी नहीं था । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने काव्य में सिद्धावस्था को उसकी प्रशांत, निर्विघ्न और अबाध भूमि माना है, जिसमें पावन और रंजन का पूर्ण प्रसाद दिखाई पड़ता है और इस भूमि का एक मात्र अधिष्ठाता-देवता 'प्रेम है ।'† वही प्रेम जिसके लिए कवियों ने यहाँ तक कह डाला:—

रति इक तन में संचरै सब तन कंचन होय ।

—कबीर

रामहिं केवल प्रेम पियारा । जानि लेय जो जानन हारा ।

—तुलसी

देव के पश्चात हिन्दी में अनेक कवियों ने रीतिग्रंथों की रचना की और उन्हीं में रीतिकालीन कविता परिवेष्टित है, परन्तु वास्तव में इन रीति-ग्रंथों का आधार संस्कृत साहित्य के आचार्यों की विचारधारा है, जो विभिन्न रूपों में विकसित तथा परिवर्द्धित होती रही । यह विचारधारा ही हमारे रीति-साहित्य की शास्त्रीय पृष्ठभूमि है । उसमें मौलिकता केवल उदाहरणों के रूप में ही पायी जाती है । विचारों की मौलिकता तो बहुत ही कम है और वह मौलिकता रीतिकाव्य के कवि पा भी नहीं सकते थे ।

---

* शृंगार एकैकश्चतुर्वर्गैककारणं रस इति । शृंगारप्रकाश, प्रथम प्रकाश ।

† रामचन्द्र शुक्ल : रसमीमांसा, पृष्ठ १८० ।

जगमगाओ दीप मेरे

—श्री कैलाश शर्मा—

(१)

जल रहे हो तुम युगों से,
रात तो फिर भी अँधेरी,
जल चुकी शत कामनाएँ,
शलभ की श्रेणी घनेरी;
जगमगा जल-जल युगों से
जलन के ही कण बिखेरे !

(२)

प्रलय झंझावात फिर भी
ज्योति तो अवशेष तुम में,
जगत में क्षण-क्षण मिटाएँ,
पर अटल विश्वास मन में;
बस एक ही दृढ़ साध लेकर
दीप मेरे जल उठो रे !

(३)

जल उठो तुम साधना में,
हो उठे संसार भासित,
टक लगी रह जाय, पुलकें
शत हृदय औ' प्राण विकसित;
हर्ष की सस्मित लहर में
गीत तुम गाओ मधुर रे !

जगमगाओ दीप मेरे !!!

प्रकाशन परिचय

बेनीपुरी ग्रन्थावली : दूसरा खंड, लेखक : श्री रामवृक्ष बेनीपुरी, प्रकाशक : बेनीपुरी प्रकाशन, मूल्य : १२।।) रु० ।

बेनीपुरी ग्रन्थावली के दूसरे खंड में बेनीपुरी जी के नाटक, एकांकी और रूपकों का संग्रह है। इसमें (१) अम्बपाली (२) तथागत और (३) विजेता नाटक हैं। (१) सीता की मां (२) अमर ज्योति (३) शकुन्तला (४) राम राज्य व (५) गाँव के देवता रूपक हैं। (१) संघमित्रा (२) सिंहल विजय (३) नेत्रदान और (४) नया समाज एकांकी हैं।

इस तरह संग्रह में कुल १२ रचनाएँ हैं। यह संकलन और यह प्रकाशन किसी भाग्यशाली लेखक को ही प्राप्त हो सकता है। बेनीपुरी जी अपनी भाषा और शैली में अद्वितीय हैं। उनकी भाषा का लोच और शब्दों का ओज किसी भी विषय को मार्मिक, हृदयस्पर्शी, भावपूर्ण एवं प्राणवान बना देता है। क्या स्केच, क्या कहानी, क्या नाटक, क्या रूपक और क्या एकांकी, हरएक विषय में बेनीपुरी जी का व्यक्तित्व स्पष्ट झलकता है। हिन्दी के अनन्य शब्दचित्र-कार, सिद्धहस्त नाट्यकार, प्राणपुंज कथाकार और इन सब से ऊपर अमर शैली-शिल्पी, बेनीपुरी जी माता भारती के उन वरदपुत्रों में से हैं, जिन्हें अटूट प्रतिभा और श्रम-शक्ति प्राप्त हुई है। जीवन के संघर्षों में से निकले हुए बेनीपुरी जी हिन्दी-साहित्य के कीर्ति-स्तम्भ हैं। उनकी रचनाएँ राष्ट्र-भाषा हिन्दी को गौरवान्वित करने में समर्थ हैं।

जिन रचनाओं का संग्रह 'बेनीपुरी ग्रन्थावली' के द्वितीय खण्ड में किया गया है, वे पूर्व में ही ख्याति के शिखर का स्पर्श कर चुकी हैं। ऐसी ख्याति-प्राप्त रचनाओं के मात्र पुनर्मुद्रण के सम्बन्ध में, वर्तमान प्रसंग को लेकर कुछ लिखा जाय, वह केवल अप्रासंगिक होगा। लेकिन जिस रूप और सज्जा के साथ बेनीपुरी जी की कृतियों का संग्रह किया गया है, यह हिन्दी साहित्य और साहित्यकारों के लिए अभूतपूर्व एवं साहसिक प्रयास है। सुन्दर कलेवर, कलापूर्ण छपाई, तिरंगे चित्र, बढ़िया कागज इन सब विशेषताओं ने मिलकर बेनीपुरी ग्रन्थावली को चमका दिया है। अंग्रेजी साहित्य के भव्य एवं कलापूर्ण प्रकाशनों से प्रभावित व्यक्तियों की अलमारियों में भी यह ग्रन्थावली गौरवपूर्ण स्थान ग्रहण कर सकती है तथा उनकी सुरुचि की परिचायक हो सकती है। हमारा विश्वास है कि इस ग्रन्थावली के प्रकाशन से हिन्दी के गौरव में वृद्धि

होगी और राष्ट्रभाषा के प्रति अन्य भाषा भाषियों में भी स्नेह तथा आकर्षण उत्पन्न होगा।

—श्री शम्भूनाथ सक्सेना

भूमि व्यवस्था सुधार की प्रगति—प्रकाशक : प्रकाशन विभाग भारतीय शासन, नई दिल्ली।

भूमि व्यवस्था भारत के अर्थशास्त्रियों का पीढ़ियों से सिरदर्द रहा है। अन्य कृषि प्रधान देशों की भाँति यहाँ भी यह हमारी अर्थनीति की दुर्योधन-जंघा ही रही है। परन्तु देश की अन्य स्वातंत्र्योत्तर समस्याओं की भाँति इसे भी अन्य देशों के विपरीत शांतिपूर्ण भारतीय ढंग से सुलझाने की ओर अब तक जो कुछ हुआ है, उसका रोचक विवरण योजना-आयोग द्वारा प्रणीत इस पुस्तक में किया गया है। भूमि समस्या की पृष्ठभूमि, उसको सुलझाने के वैधानिक प्रयत्न तथा भूदान आदि का आँकड़ों सहित संक्षेप में किन्तु स्पष्ट वर्णन किया गया है। भारतीय अर्थशास्त्र के प्रत्येक विद्यार्थी के लिए भूमि-समस्या के लिए किये गये भारतीय प्रयत्नों पर यह उपयोगी पुस्तिका है।

आचार्य विनोबा भावे (जीवन वृत्त तथा प्रवृत्ति परिचय)—प्रकाशक : प्रकाशन विभाग भारतीय शासन, नई दिल्ली।

बापू के पश्चात् भारत ने संसार को यदि कोई आध्यात्मिक प्रतिभा प्रदान की है तो वे हैं आचार्य श्री विनोबा भावे। अहिंसक भू-क्रांति के प्रणेता इस मनीषी एवं महावीर की जीवनगाथा इस पुस्तक में दी गयी है। भाषा सरल तथा हृदयग्राही एवं शैली रोचक है। प्रारम्भ से अन्त तक पाठक तल्लीन रहता है। चित्रों ने पुस्तक को अधिक सजीव एवं रोचक बना दिया है। वास्तव में विनोबा जी पर इस प्रकार की सर्वांग संपूर्ण पुस्तक की, जिसमें उनके व्यक्तिगत जीवन, आध्यात्मिक पृष्ठभूमि तथा राजनीतिक विचारों का इतना सुन्दर विवेचन हो, बड़ी आवश्यकता थी। इस कमी को पूरा करने के लिए प्रकाशन विभाग साधुवाद का पात्र है।

—श्री मधुसूदन

संपादकीय

मा गृधः

एक श्रुति है। उसके अनुसार सांस्कृतिक जगत में जो कुछ हुआ है, विविध कलाओं के क्षेत्र में राष्ट्र ने युग-युग में जो भी रचना की है, अतीत के महामानव ने जिन काव्यों, प्रबन्धों किंवा साहित्य का सृजन किया है, उसके उन्मुक्त संगीत ने जितना भी दिगाओं को आपूरित किया है, उसकी तूली अथवा छैनी ने जहाँ भी जीवन के सौन्दर्य को आकार दिया है, उस सब में, उसने अपनी स्वयं की और उस पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावशील परिवर्ती वातावरण की अटूट अभिव्यक्ति की है। उस श्रुति के ही शब्दों में कहें तो 'जगती' में 'यत् किंचित्'—जो कुछ भी 'जगत्'—राष्ट्र के जीवन को अभिव्यक्ति देने वाली यह साहित्य-कला के सृजन की चलती हुई परम्परा है, 'इदं सर्वम्'—यह सब 'ईशावास्यम्' राष्ट्र के अमर्त्य जीवन का आवास है।

तात्त्विक 'ईश' के समान ही व्यक्ति की अपेक्षा से राष्ट्र को—मानव-समाज को हम अविनाशी और अक्षर मानते हैं। यह महापुरुष एक व्यक्ति की ही भाँति जैसे-जैसे महाकाल के पदविन्यास के साथ-साथ चरण-निक्षेप करता हुआ सतत चलता है, क्षरणशील व्यक्तियों के लिए अपने पदचिह्न—अपनी जीवनलीला की अमरकहानी, कदाचित उसकी परम्परा की अक्षरता की सूचना देने के लिए छोड़ता चलता है। मनुष्य मर जाता है, मरता रहता है, परन्तु राष्ट्र की अमरता से उसके मर्त्य जीवन को एक अद्भुत स्फूर्ति और प्रेरणा प्राप्त होती है, उसकी सभी सत्य, शिव एवं सुन्दर की ओर अग्रसर प्रवृत्तियों की अपेक्षा से।

इस श्रुति के अनुसार ऐसा सभी साहित्य, सभी सामग्री, वह पाण्डुलिपियों के रूप में हो, चित्रों के रूप में हो, मूर्तियों के रूप में हो अथवा अन्य किसी प्रकार के इस महामानव के लीलावशेष के रूप में हो, राष्ट्र का आवास है, राष्ट्र की सम्पत्ति है, भले ही वह किसी के व्यक्तिगत संग्रह में परंपराओं से चली आ रही हो, क्रय की गयी हो अथवा 'पुटियाई' या उड़ाई गयी हो।

इन्हीं पृष्ठों में श्री जयगोपाल मिश्र का एक लेख प्रकाशित है और ४ सितम्बर की अमृतपत्रिका में भी श्री कैलाश कल्पित ने साहित्यिक खोज की सूचना दी है। उसके अनुसार फतेहपुरी के कुछ शालीन परिवारों ने इस श्रुति के अर्थ का सम्यग्बोध किया है। राष्ट्र की जीवन-कथा का अन्वेषण कर राष्ट्र को बताने वाले खोजियों

को प्रचुर सामग्री इस प्रकार प्राप्त हुई है। भारतवर्ष जैसे विशाल कथा वाले महादेश में यह घटना छोटी है। छोटी कहने से तात्पर्य यह नहीं कि मिश्रबन्धुओं का, केप्टेन शूरवीरसिंह का, किंवा हस्तलिखित ग्रन्थ देने वाले परिवारों का प्रयास महत्त्वहीन है। उद्देश्य यह है कि ऐसी बहुत घटनाएँ होना अवशिष्ट हैं और भारत की जीवन-गाथा की शृंखला की अनेक कड़ियाँ जुड़ने और पुष्ट होने की प्रतीक्षा कर रही हैं।

श्रुति आगे कहती है 'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः'। यह उन महानुभावों के लिए, जिनके पास ऐसे संग्रह हैं, श्रुति का स्पष्ट मार्गनिर्देश है। स्वत्व का मोह बड़ा विचित्र होता है। येनकेन प्रकारेण मनुष्य के पास जो भी संग्रह हो जाता है, वह उसे विमूढ़ भाव से छाती से चिपटाए रहता है, बिना अपनी सामर्थ्य का, व्यक्ति के छोटे से जीवनकाल का और उत्तराधिकारियों की उस संग्रह की ओर उपेक्षा की संभावना का अनुमान किये। हो सकता है कि ऐसे संग्रह जिनकी व्यक्तिगत संपत्ति बने पड़े हैं, उनमें स्वयं भी अन्वेषण की अभिरुचि हो और कुछ सामर्थ्य भी हो, परन्तु व्यक्तिगत सामर्थ्य ससीम है और समाज की निःसीम। फिर कितना यह 'ईशावास्यम्' नष्ट हो चुका इस सीमित क्षमता वाले संग्राहक के अधिकार में और आगे कितना और करना चाहता है वह अपने मोह में? अतः आदेश अन्वेषण कीजिए 'भुंजीथाः' से स्पष्टतः पहले किया गया है, दान का नहीं, शब्द है 'त्यक्तेन', त्याग का। त्याग कीजिए उसका, पहले, तत्काल। उसे जो पहला सार्वजनिक संग्रहालय मिले, उसमें छोड़ आइए। राष्ट्र की अमूल्य संपत्ति के जल, अग्नि, दीमक एवं चूहों द्वारा नष्ट किये जाने की, रद्दी में बिकने की, गला कर टोकनी बन जाने की और व्यक्तिगत अधिकार में रहते हुए उसका विविध दृष्टिकोण से मुक्त अध्ययन न हो सकने की सम्भावनाओं के कारणभूत बनने के अक्षम्य नैतिक अपराध से बचिए। फिर 'भुंजीथाः'। तत्पश्चात उसका उपयोग कीजिए राष्ट्रकथा की उसमें छिपी शृंखला को अनवगुंठित करके।

इस श्रुति का निषेधात्मक अंश इस सम्बन्ध में शासन के कर्त्तव्य का भी निर्देश करता है। उसे 'मा गृधः कस्यस्विद्धनम्' की व्यवस्था देनी चाहिए, करनी चाहिए। ऐसे विधान का निर्माण होना चाहिए कि हस्तलिखित ग्रंथ किसी की व्यक्तिगत संपत्ति न रह सकें, राष्ट्र की सीमाओं के बाहर न जा सकें। यह आवश्यक है कि इस राष्ट्रीय संपत्ति का पता लगाया जाय, उसके मूल्य के मान निर्धारित हों, जो चाहें उन्हें उचित प्रतिदान देकर इस समस्त सामग्री को प्राप्त किया जाय और उसका उपयोग राष्ट्र की परंपराओं के अन्वेषण में सार्वजनिक रूप से हो सके इसकी व्यवस्था हो। उससे विशाल अध्ययनकक्षों का निर्माण हो जहाँ अध्ययनशील व्यक्ति कार्य कर सकें। यह संग्रह कार्य अन्वेषकों के करने का नहीं है। उनके जीवनकाल, प्रतिभा और शक्ति को 'मा गृधः' में कहे गये श्रुति-निषेध को न मानने वाले 'गृद्धों' के नखचंचु-

आघातों से छिन्न-भिन्न होने के लिए छोड़ देना असम्यक है। इन्हें तुष्ट करने के लिए अन्वेषकों के पास अर्थ हो, यह कल्पना ही व्यर्थ है। वैसे श्री मिश्रबंधुओं जैसे उत्साही और कर्मठ व्यक्तियों का और श्रुति के निर्देश और निषेधों का क्रियापूर्ण पाठ देने वाले कॅप्टेन शूरवीरसिंह जैसे महानुभावों का भी अभाव नहीं है। यह राष्ट्र के उदात्त जीवन का प्रतीक है। परन्तु राज्य निश्चेष्ट न रहे, आज लोक शासन होते हुए उसी लोक की गौरव-गाथा—जितनी भी बची है—अकारण ही कालकवलित न हो जाय अथवा जिस प्रकार उसके उज्ज्वल पृष्ठ बोस्टन और लंदन के संग्रहों में प्रवास कर गये, उसकी पुनरावृत्ति न हो, ऐसी व्यवस्था वह अविलंब करे।

राष्ट्रभाषा की ओर

शासन में राष्ट्र भाषा हिन्दी का समादेश आज, अभी भी हो सकता है। वह केवल राज्य संस्था के निर्णय का प्रश्न है। राष्ट्रभाषात्व का व्यावहारिक स्वरूप इससे कुछ भिन्न है। उसमें पूर्वग्राह, संकोच, आलस्य, अपराक्रम जैसी अनेक बाधाएँ हैं और उनका प्रबलतम रूप दिखाई देता है विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में, जिनका भारत के पराधीनता-काल का स्वरूप अभी ज्यों का त्यों चला आ रहा है। एलोपैथी चिकित्सा पद्धति, उसके चिकित्सालय और विद्यालय इस रूप को इसके पूर्वरूप से निकटतम रखते आ रहे हैं।

ग्वालियर स्थित मैडिकल कॉलेज ने इस दिशा में अग्रणी पदनिक्षेप किया है। इस कॉलेज के प्रिंसिपल प्रो० बी० एन० राव ने पिछले दिनों कॉलेज की हिन्दी परिषद का उद्घाटन करते हुए कदाचित अपने प्रथम हिन्दी भाषण में अन्य शिक्षण-संस्थाओं में भी ऐसी परिषदों की स्थापना की आवश्यकता उस समय के लिए तयार रहने की दृष्टि से बताई, जब हिन्दी शिक्षा का माध्यम हो जाएगी। इस परिषद के अतिरिक्त इस कॉलेज में रोगीपत्रक हिन्दी में लिखे जा रहे हैं, विद्यार्थियों को पारिभाषिक हिन्दी शब्दावली से परिचित कराया जा रहा है और इसी मेडिकल कॉलेज की वार्षिक पत्रिका में हिन्दी विभाग प्रारम्भ हुआ है।

हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद की ओर अग्रसर करने वाला प्रो० राव की इस संस्था का यह पग अन्य मेडिकल कॉलेज और वैज्ञानिक शिक्षण-संस्थाओं के लिए अनुकरणीय है, इनकी इस स्फूर्ति में साधुवाद की पात्रता है।

विद्यामन्दिर प्रकाशन

की

नवीन भेंट

मानसिंह और मानकुतूहल

लेखक—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी

मध्यभारत कला-परिषद ने जिस पर वर्ष का
प्रथम पुरस्कार दिया—

उत्तर प्रदेश सरकार ने जिसके लेखक को ६००)रु०
पुरस्कार देकर सम्मानित किया है—

भारत के सांस्कृतिक इतिहास के एक अज्ञात परिच्छेद का प्रथम प्रकाशन—

भारतीय संगीत, हिन्दी साहित्य तथा कलाओं के विकास पर नवीन शोध—

(मध्यभारत तथा मध्यप्रदेश शिक्षा विभाग द्वारा राज्य की शिक्षा संस्थाओं तथा पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत)

मूल्य ५)

कुछ सम्मतियाँ

—श्री नारायणस्वरूप शर्मा, एम० ए०, मंत्री, हिन्दी परिषद, लन्दन—पुस्तक कला-परिषद के प्रथम पुरस्कार की अधिकारी है। हिन्दी साहित्य को इस खोजपूर्ण देन के लिये आप मेरी हार्दिक बधाई लेखक तक पहुँचा दें।

—श्री सियारामशरण गुप्त—"मानसिंह और मानकुतूहल का प्रकाशन हिन्दी के स्वस्थ और विस्तृत दृष्टिकोण का परिचायक है। ऐसे प्रकाशन से आपकी पूर्व परम्परा का गौरव और बढ़ गया है।"

विद्या मंदिर प्रकाशन सराफा . ग्वालियर

विद्यामंदिर-काशन, ग्वालियर
के
तीन अभिनव प्रकाशन—.

वे अनुपम ग्रंथ हैं—

हमारे पड़ौसी देश—

लेखक—स्वर्गीय प्रो० रंजन

प्रस्तावना लेखक—डॉ० वासुदेवशरण

उत्तर प्रदेश तथा विंध्यप्रदेश की पंचायत पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत।

प्रसिद्ध देश भक्त विद्वान तथा घुमक्कड़ स्व० प्रो० श्री रघुनाथ सिंह रंजन ने इस में अपनी हिन्दचीन, स्याम आदि की यात्राओं का सुन्दर एवं सजीव वर्णन किया है। इसे पढ़ते समय आप अपने आपको भूल वर्णित देशों में ही पहुँच जाएँगे। उपन्यास की भाँति रोचक तथा भूगोल एवं इतिहास की भाँति शिक्षाप्रद। अनेक चित्र तथा कला पूर्ण तिरंगे सजिल्द आवरण सहित मूल्य २।।)

लक्ष्यहीन—

भूमिका लेखिका—महादेवी वर्मा

लेखिका—कुमारी उर्मिला बनर्जी

हिन्दी की सफल कहानी लेखिका कुमारी बनर्जी की ७ सुन्दर हृदयग्राही तथा मर्मस्पर्शी कहानियों का इस संग्रह में संकलन है। हजारों प्रतियाँ हाथों-हाथ बिक चुकी हैं। आज ही मगाएँ। मूल्य १)

काश्मीर की घाटियों में—

लेखक—श्री लक्ष्मीनारायण अग्रवाल

मध्यभारत शासन द्वारा पुरस्कृत एवं प्रोत्साहित

काश्मीर पर निर्मम पाकिस्तानी आक्रमण, बेकारी की समस्या आदि आज के राष्ट्रीय प्रत्याघातों का सजीव वर्णन लिये हुए ५ एकांकी नाटकों का संग्रह। इसका प्रत्येक एकांकी सफलता पूर्वक अभिनीत किया जाकर सहस्त्रशः दर्शकों की स्मृति पर स्थायी छाप छोड़ गया है।

मूल्य २)

अपने पुस्तकालय के लिये आज ही मंगाकर उसे समृद्ध करिये।

तीनों पुस्तकें एक साथ मँगाने पर डाक व्यय नहीं लिया जावेगा।

अपना ऑर्डर आज ही दें—

व्यवस्थापक
विद्यामन्दिर प्रकाशन
सराफा, ग्वालियर।

उपरोक्त तीनों पुस्तकें मध्यप्रदेश की शिक्षा संस्थाओं तथा पुस्तकालयों के हेतु मान्य है।

पुस्तकालयों तथा अध्ययन कर्त्ताओं के लिए अनिवार्य—
भारतीय सांस्कृतिक इतिहास का महान् ग्रंथ
जिसकी छपते ही सैकड़ों प्रतियाँ बिक गईं—

भारत की मूर्तिकला

लेखक
श्री हरिहरनिवास द्विवेदी

प्राग् ऐतिहासिक काल से वर्तमान काल तक भारतीय मूर्तिकला के विकास का अत्यन्त प्रामाणिक साथ ही सरल और हृदयग्राही शैली में लिखा गया इतिहास। हिन्दी के लिए यह ग्रन्थ अपूर्व देन है।

अत्यन्त सुन्दर छपाई, मनोहर जिल्द, १०० से अधिक आर्टपेपर पर छपे चित्र।

मूल्य १०) रुपया। डाक व्यय पृथक्।

आज ही ऑर्डर दें

प्रबन्धक
विद्या मंदिर प्रकाशन, सराफा, ग्वालियर

पुस्तकालय
113535
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

× हिन्दी साहित्य में युगान्तर—
× भारतीय जन-जीवन में नई दिशा—
× काम सम्बन्धी सम्वाद एवम् साहित्य—
× काम तथा मनोविज्ञान सम्बन्धी खोज—

एक प्रति ।=) ❀ **मस्ती** ❀ वार्षिक ४)

सम्पादक—नरेन्द्र धीर

—यदि आप ग्राहक नहीं बने हैं तो आज ही ४) भेज कर वार्षिक ग्राहक बनें।
—यदि आपने विज्ञापन इसमें नहीं दिया है तो आज ही विज्ञापन भेजदें।
—यदि आपने एजेन्सी नहीं ली है, तो आज ही एजेन्सी लेलें।

आज ही लिखिए—व्यवस्थापक "मस्ती" खन्ना (पू० पंजाब)

रूस, अमेरिका, चीन, चेकोस्लोवाकिया तथा पूर्वीय एशियायी देशों तक अपना व्यापार, देश तथा विदेशों तक फैलाने के लिये,

भारती में

विज्ञापन दीजिये।

दरों के लिये आज ही लिखें,

व्यवस्थापक,
'भारती'

जिस साहित्य का जीवन से सम्बन्ध नहीं, वह निरर्थक है।
जो साहित्य मानव-जाति की सेवा की प्रेरणा नहीं देता,
वह निष्प्रयोजनीय है। और

जो साहित्य बुद्धि-भेद उत्पन्न करता है, वह अनिष्टकारी है।

जीवन साहित्य

में जीवन, मानव-जाति की सेवा की प्रेरणा और एकनिष्ट बुद्धि से अपने मार्ग पर चलने का बल मिलेगा।

एक प्रति अवश्य देखने की कृपा कीजिये।

वार्षिक मूल्य ४) एक प्रति ।=)

सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली।

याद रखिए पत्रिका के लिए— १. एक निश्चित उद्देश्य चाहिए ! २. उसका अपना व्यक्तित्व चाहिए !

नई धारा

ऐसी ही एक मासिक पत्रिका है जो अशोक प्रेस, पटना से प्रकाशित हो रही है। कहानियाँ, कविताएँ, शब्द चित्र, संस्मरण, नाटक, आलोचना, निबन्ध।

हिन्दी में नई धारा के प्रतीक श्री रामवृक्ष बेनीपुरी इसका सम्पादन कर रहे हैं।

प्रादेशिक सरकारों के शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत।

जिसकी सहायता के लिए साहित्य महारथियों का सम्पादक मंडल संगठित किया गया है।

डिमाई अठपेजी के १०० पृष्ठ, पक्की जिल्द, आकर्षक कवर, सचित्र, सुसज्जित।

एक अंक १ रु० **वार्षिक १० रु०**

प्रबन्धक नई धारा, अशोक प्रेस, पटना ६

तार—हिन्दी फोन नं० ४८०९

हिन्दी-वाणी

: मासिक :

प्रकाशक—मैसूर हिन्दी साहित्य परिषद, फर्स्ट मेन रोड, चामराजपेट, बैंगलोर-२

संपादक—पी० आर० श्रीनिवास शास्त्री

मूल्य—३-०-० वार्षिक

१. उच्चकोटि का साहित्य २. उच्चकोटि का कन्नड़ साहित्य ३. सुन्दर तथा स्वच्छ छपाई।

आप शीघ्र ही ग्राहक बनिये। कर्नाटक की एक मात्र हिन्दी मासिक पत्रिका।

कल्पना

साहित्य, संस्कृति और कला की मासिक-पत्रिका

जिसने

हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता का एक नया प्रतिमान स्थापित किया है।

कृतियाँ, निबन्ध, कविता, कहानी, एकांकी स्तंभ, संपादकीय, पाठकों के पत्र, समालोचना तथा पुस्तक-परिचय, साहित्य-धारा।

पृष्ठ संख्या १०० वार्षिक शुल्क १२) रु०

एक प्रति १) रु०

'कल्पना' कार्यालय,
८३१, बेगम बाजार, हैदराबाद-द०

113535

दीपावली

के पुनीत अवसर पर

'नया समाज'

की

नई भेंट

● कहानी अंक ●

'नया समाज' के विशेषांकों की हिन्दी-संसार में अब तक इसलिए धाक नहीं रही है कि वे बड़े भारी भरकम और तड़क-भड़क वाले होते हैं; बल्कि इसलिए कि वे सुरुचिपूर्ण, उद्देश्यपूर्ण और शिक्षापूर्ण होते हैं। इसके नवनिर्माण-अंक, संस्कृति-अंक, स्वास्थ्य-अंक, जनतंत्र-अंक, परिवार-नियोजन-अंक, साहित्यांक आदि को जनता ने इतना पसन्द किया कि आज तक भी उनकी माँग बराबर बनी हुई है। हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि इसका अगला विशेषांक

● कहानी अंक ●

इसी परम्परा की रक्षा करने वाला होगा। इसमें देश-विदेश की चुनी हुई सुरुचिपूर्ण और उद्देश्यपरक कहानियाँ रहेंगी, जैसी आजकल के पत्र-पत्रिकाओं में प्रायः कम ही सुलभ होती हैं।

आप यदि ग्राहक नहीं बने हैं, तो आज ही ८) भेजकर ग्राहक बन जायँ।
अपनी प्रति पहले से सुरक्षित करवा लें।

व्यवस्थापक,
'नया समाज'
३३, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता-१

दिनारा पधारिए

विशाल चीर सरोवर में नाव की सैर,

- हरियाली भरे खेत,
- संतरों, अमरूदों के बाग,
- बतखों, काले हरिनों तथा
- मछलियों का शिकार
- मनोरम पहाड़ियों की विस्तृत पृष्ठभूमि
- ग्राम जीवन की सुन्दरता

आपको

इस शरत् ऋतु में

आमंत्रित करती हैं

ठहरने के लिये डाक बंगला

झांसी से सुगम यातायात

विशेष विवरण के लिए लिखें

मंत्री केन्द्र पंचायत,
दिनारा (ग्वालियर)

झांसी से दिन में तीन तथा शिवपुरी से दो बार बस सर्विस जाती तथा आती है।

वार्षिक
६)

राष्ट्रभारती

एक प्रति
।।=)

—:सम्पादक:—

मोहनलाल भट्ट
हृषीकेश शर्मा

(१) यह हिन्दी पत्रिकाओं में सबसे अधिक सस्ती, एक सुन्दर साहित्यिक और सांस्कृतिक मासिक पत्रिका है। (२) इस पत्रिका को राष्ट्र-भाषा हिन्दी के तथा लगभग सभी भारतीय साहित्य और संस्कृति को बल व प्रेरणा पहुंचाने वाले प्रान्तीय भाषाओं के श्रेष्ठ लेख, विद्वान साहित्यकारों का सहयोग प्राप्त है। (३) इसमें ज्ञानपोषक और मनोरंजक श्रेष्ठ लेख, कविताएँ, कहानियाँ, एकांकी नाटक, रेखाचित्र और शब्दचित्र रहते हैं। (४) बंगला, मराठी, गुजराती आदि भारतीय भाषाओं के सुन्दर हिन्दी अनुवाद भी इसमें रहते हैं। (५) प्रतिमास पहली तारीख को प्रकाशित होती है।

ग्राहक बना देने वालों को विशेष सुविधा । एजेंसी तथा विज्ञापन दर के लिए लिखिये।

“राष्ट्रभारती” हिन्दीनगर, वर्धा [मध्य-प्रदेश]

पश्चिमोत्तर भारत की प्रमुख हिन्दी मासिक पत्रिका

विश्व ज्योति

—:सम्पादक:—

श्री विश्वबन्धु शास्त्री, श्री सन्तराम, बी ए०

संचालक—श्री विश्वेश्वरानन्द

विश्व-हित की साधना के लिए—

(क) शुद्ध सांस्कृतिक साहित्य का सृजन,
(ख) प्राचीन और नवीन ज्ञान-विज्ञान का समन्वय,
(ग) बौद्धिक क्रान्ति और नई चेतना का जागरण,
(घ) अन्यायपूर्ण सामाजिक विषमताओं का दूरीकरण,
(ङ) सभी प्रकार के विचारों का निष्पक्ष अध्ययन और आलोचन ।

वार्षिक चन्दा: ८) रुपये

१०) रु० वार्षिक चन्दा देकर विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान के सदस्य बन जाने पर भेंट के रूप में मुफ्त ।

पत्र-व्यवहार का पता:—

व्यवस्थापक ‘विश्वज्योति’, साधु आश्रम
होश्यारपुर (पंजाब)

दक्षिण-भारती

(दक्षिण-भारत की सचित्र मासिक पत्रिका)

आप अभी तक इसके ग्राहक न बने हों तो शीघ्र ही ग्राहक बनें। इसे कल पर छोड़ना एक भूल होगी।

वार्षिक चन्दा ६)   प्रति अंक ।।)

दक्षिण-भारती कार्यालय
अफजलगंज, हैदराबाद (दक्षिण)

तार : हिन्दी   फोन नं० ५४५०.

अजन्ता

: मासिक :

प्रकाशक : हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद [दक्षिण]

मूल्य : ६-०-० भा. मु. वार्षिक

किसी भी मास से ग्राहक बना जा सकता है।

कुछ विशेषताएँ

१. उच्च कोटि का साहित्य
२. सुन्दर और स्वच्छ छपाई
३. कलापूर्ण चित्र

संपादक
श्री वंशीधर विद्यालंकार
श्री श्रीराम शर्मा

कुछ सम्मतियाँ

१. "अजन्ता का अपना व्यक्तित्व है"—श्री बनारसीदास चतुर्वेदी
२. "अजन्ता सुंदर और स्वच्छ पत्रिका है"—श्री दिनकर जी
३. "अजन्ता साहित्य का नया कल्पवृक्ष है"—श्री वासुदेवशरण अग्रवाल
४. "अजन्ता हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिकाओं में से एक है।"
श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी

दि गिर्द डिस्ट्रिक्ट को-ऑपरेटिव्ह बैंक लि० लश्कर

स्थापित सन् १९१८

शाखायें—डबरा, भांडेर, उपशाखायें—मुरार, भितरवार

१. अधिकृत पूंजी	२,००,०००, रुपया
२. स्वीकृत पूंजी	१,७०,०००, रुपया
३. रक्षित कोष	८२,०००, रुपया
४. अन्य कोष	१,४०,६००, रुपया

५. फिक्स्ड करेण्ट तथा सेविंग अकाउण्ट खाते खोले जाते हैं। डिपाजिट्स पर सूद बर निम्न प्रकार है। एक वर्ष से अधिक की फिक्स्ड डिपाजिट पर छै मासिक सूद दिया जाता है।

फिक्स्ड

६ माह	२।।।) प्रतिशत	वार्षिक
१ वर्ष	३) प्रतिशत	,,
२ वर्ष	३।) प्रतिशत	,,
३ वर्ष	३।।) प्रतिशत	,,
सेविंग	२।।) प्रतिशत	,,

६. त्रय-वर्षीय नगद पत्र ९) रु० में १०) रु० का मिलता है।

७. बैंक बहुत मामूली कमीशन पर अपनी शाखाओं पर ड्राफ्ट इश्यू करता है।

८. यह बैंक अनियमित जोखमदारी की ग्रामीण सहकारी समितियों में रुपया इन्व्हेस्ट करता है। इसलिए इन्व्हेस्टमेन्ट सुरक्षित व बेखतरे है। बैंक के अकाउन्ट्स का हर साल शासन से एप्रूव्हड आडीटर्स द्वारा आडिट होता है।

कृपया बैंक से सम्बन्ध स्थापित कीजिये।

रामनाथ शर्मा
मैनेजर

रामकृष्ण दीक्षित
व्हाइस चैयरमैन

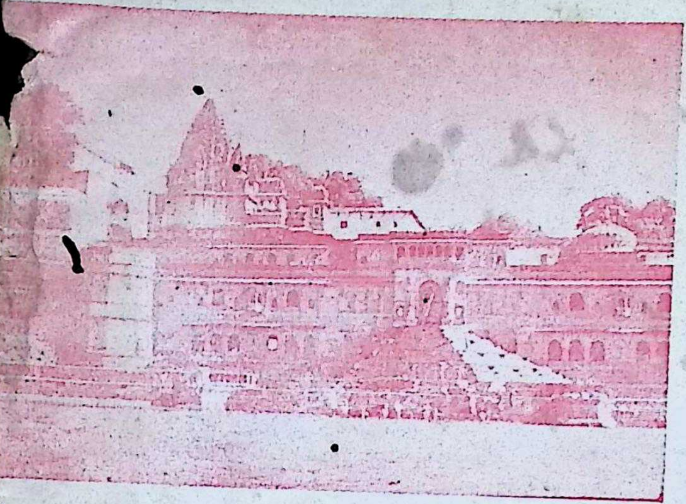

— महेश्वर का घाट एवं छत्री —

'नगर सुन्दर एक महेश्व

— कै. राजकवि भा. रा. तांबे

कै. राजकवि भा. रा० तांबे द्वा
वर्णित देवी अहिल्याबाई का

महेश्वर

भ्रमण के लिये सुन्दर स्थान है

उसी प्रकार

महेश्वर की

लुगड़ी

★

★

साड़ियां

एवं

खन

का भारतीय महिलाओं के जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है

Compiled
1999-2000

मंदिर में दर्शनीय स्थापत्य-
कला का एक सुन्दर नमूना

गृह उद्योगों

को

प्रोत्साहन

दीजिये

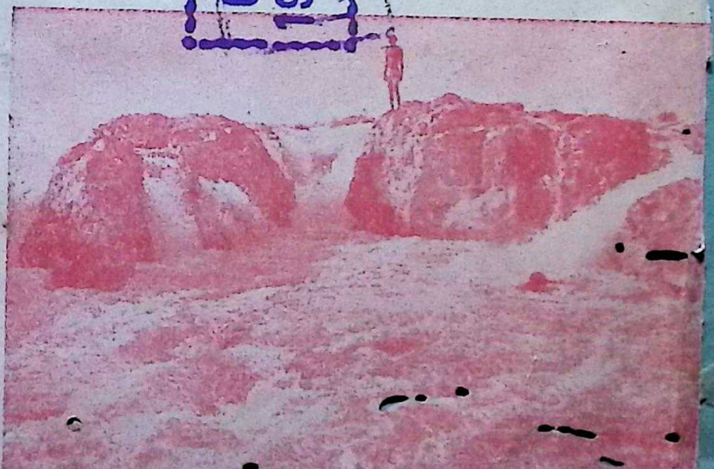

— सहस्रधारा (नर्मदा) —

— सूचना विभाग, मध्यभारत शासन द्वारा प्रकाशित

J. B. MANGHARAM'S
NOURISHING
Biscuits
NOURISHING

THE FUTURE IS HIS!

His future is indeed bright for he is sure to grow up into a fine, healthy man His mother makes sure his diet is just right, and gives him regularly delicious J. B. Mangharam's NOURISHING Biscuits.

J. B. MANGHARAM'S
NOURISHING
BISCUITS
CHOICE OF MILLIONS

Made with Milk
and Glucose
Rich in Vitamins

Diwali Greetings

श्री भगवानलाल शर्मा द्वारा नवप्रभात प्रेस, ग्वालियर में मुद्रित तथा प्रकाशित।

76031

श्री भगवानलाल शर्मा द्वारा नवप्रभा